।।श्रीः।।
।।नमो राघवाय।।
।।श्रीसीतारामौ विजयेते।।

धर्मचक्रवर्तिमहामहोपाध्यायवाचस्पतिकविकुलरत्नमहाकवि
जगद्गुरुरामभद्राचार्यविकलाङ्गविश्वविद्यालयीयजीवनपर्यन्तकुलाधिपति
श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरप्रस्थानत्रयीभाष्याकार
जगद्गुरुरामानन्दाचार्यस्वामिरामभद्राचार्यप्रणीतम्

गीतरामायणम्

(गीतसीताभिरामं संस्कृतगीतमहाकाव्यम्)

प्रकाशकः

जगद्गुरुरामभद्राचार्यविकलाङ्गविश्वविद्यालयः

चित्रकूटः उ०प्र० २१०२०४

प्रकाशक :

जगद्गुरुरामभद्राचार्यविकलाङ्गविश्वविद्यालयः
चित्रकूटः उ०प्र० २१०२०४

प्रथमावृत्ति :

मकरसङ्क्रान्तिः विक्रमाब्दः २०६७
१४ जनवरी २०११ (गीतरामायणप्रणेतुर्जन्मदिनम्)

पुस्तकप्राप्ति स्थानम् :

* जगद्गुरुरामभद्राचार्यविकलाङ्गविश्वविद्यालयः
चित्रकूटः उ०प्र० २१०२०४
* श्रीतुलसीपीठ आमोदवन पो० नयागाँव
चित्रकूट जनपद सतना म०प्र० ४८५३३१

देयराशिः

पञ्चशतानि (५०० रुपये)

कम्पोजिंग :

श्रीसांई कम्प्यूटर
३, डी० रोड, इलाहाबाद २११००३
दूरभाष : ०५३२-२५६४६४२, ०९३३५५८६३५२, ०९४५२४०३३८४

मुद्रक :

नागरी प्रेस
९१/१८६, अलोपीबाग, इलाहाबाद २११००६
दूरभाष : ०५३२-२५०२९३५, ०९४१५२३९९५८, ०९३३५११०७३८

।।श्रीः।।

।।नमो राघवाय।।

।।श्रीमद्राघवो विजयते। श्रीसीतारामौ विजयेते।।

गीतरामायणम्

(गीतसीताभिरामं संस्कृतगीतमहाकाव्यम्)

प्रणेता
श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरजगद्गुरुरामानन्दाचार्य-
स्वामिरामभद्राचार्यः प्रस्थानत्रयीभाष्यकारः

श्रीसीतानाथसमारम्भां श्रीरामानन्दार्यमध्यमाम्।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे श्रीगुरुपरम्पराम्।।

अथ मया प्रस्थानत्रयीभाष्यकारेण श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरजगद्गुरुरामानन्दाचार्यस्वामिरामभद्राचार्येण गिरिधरकविना गीतरामायणं गीतसीताभिरामं संस्कृतगीतमहाकाव्यं विरचयता गीयते।

अथ बालकाण्डम्

गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये
बालकाण्डे
गीतस्तुतसीतारामचन्द्रो नाम

प्रथमः सर्गः

मङ्गलाचरणम्

श्रीसीताहृत्सरोजे कृतनिजनिलयो नीलरत्नावदातो
रातः श्रीप्रेमराया रघुकुलमहिषीमान्यया मञ्जुगुञ्जः।
ऐश्वर्याद्यैः षडङ्घ्रिर्भजनजनिरसं रातु रामानुगेभ्यो
भौमीभव्यास्यकञ्जासवमभिरसयन् रामराजालिराजः।।१।।

भौमीटीका–

जय जय श्रीसीताभिराम श्रीराम राम रघुकुलनन्दन।
निखिललोकनयनाभिराम घनश्याम कामरिपुमनचन्दन।।
सुकृतगीत सीताभिराम सुरगिरागीतरामायण की।
भौमी व्याख्या राष्ट्रगिरा में करता शुभ पारायण की।।

अब मैं अपने ही द्वारा विरचित संस्कृत गीतकाव्य गीतरामायणम् (गीतसीताभिरामम्) की राष्ट्रभाषा हिन्दी में भावार्थरूप में '**भौमी**' नामक व्याख्या प्रस्तुत करता हूँ। जिससे संस्कृत भाषा से अनभिज्ञ महानुभाव भी गीतरामायणम् को सरलता से समझकर गा सकेंगे।

गीतरामायणम् के रचयिता महाकवि जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामिरामभद्राचार्य आशीर्वादात्मक मंगलाचरण स्रग्धरा छन्द में प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि श्रीसीताजी के हृदय कमल को जिन्होंने अपना निवास स्थान बना लिया है, जो नीलमणि के समान सुन्दर हैं, श्रीरामप्रेम की एकमात्र धनाढ्य रघुकुल की रानियों में माननीया भगवती कौसल्या जी ने जिन्हें प्रकट करके संसार को समर्पित किया है, जिनका गुञ्जन अर्थात् शब्द बहुत ही मधुर है, जो ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्यरूप छः चरणों से युक्त हैं, ऐसे भूमिनन्दिनी सीताजी के मुखकमल के सौन्दर्यमकरन्द का पान करने वाले भ्रमरश्रेष्ठ राजाधिराज भगवान् श्रीराम श्रीरामानुगामी श्रीरामभक्त वैष्णवों को भजन से उत्पन्न रस प्रदान करते रहें।

यदि चिकीर्षसि राममयं मनः
यदि बुभूषसि भौमिभवे जनः।
नवपदीललितां श्रितभारतीं
गिरिधरस्य तदा शृणु भारतीम्।।२।।

भौमी– अब महाकवि श्रीगीतरामायणम् के रसिक अनुशीलन पाठकों को सावधान करते हुए द्रुतविलम्बित छन्द में कहते हैं–यदि आप अपने मन को श्रीराममय बनाना चाहते हैं तथा यदि आप भूमिनन्दिनी सीताजी के पति श्रीराम के भक्त बनना चाहते हैं तो फिर नवीन–नवीन पदों से ललित, भगवती सरस्वती का श्रयण करने वाली, गीतरामायणम् के रूप में प्रस्तुत होने वाली **गिरिधर** कवि की वाणी को अवश्य श्रवण कीजिए।

दर्शं दर्शं सहर्षं हरिमवनिजया स्वर्णसिंहासनस्थं
नामं नामं विरामं भवभयविपदां राममात्माभिरामम्।
भावं भावं भवानीभवभवकृपया लब्धरोमाञ्चदेहे
गायं गायं गवास्मानगदतु हनुमान् गीतसीताभिरामम्।।३।।

भौमी– अब महाकवि श्रीहनुमान् जी के श्रीचरणों में प्रार्थना करते हुए कहते हैं– भूमिपुत्री सीताजी के साथ स्वर्ण सिंहासन पर विराजमान प्रभु श्रीराम को प्रसन्नतापूर्वक निहार–निहार कर, संसार के भय और विपत्तियों के विनाश के एकमात्र कारण, विशुद्ध आत्माओं में अभिरमण करने वाले श्रीराम को बार–बार नमन करके, भवानीपति श्रीशंकर के भी आराध्य भगवान् श्रीराम की कृपा से बार–बार रोमांच को प्राप्त करते हुए, अपनी दिव्यवाणी से '**गीतसीताभिरामम्**' नामक संस्कृतगीत महाकाव्य का गान करते हुए अञ्जनानन्दवर्धन श्रीहनुमान् हम सबको सांसारिक रोगों से मुक्त करते रहें।

सीतारामप्रथितचरितप्रेमपीयूषभाग्भिः
सर्गैर्लोकाधिपनयनकैर्भोगदृग्व्योमचैत्यैः ।
सीताप्रीत्यै विरचयति रामायणं रामभद्राऽऽ-
चार्यो दैव्यां गिरि गिरिधरो गीतसीताभिरामम् ।।४।।

भौमी– अब महाकवि रचयिष्यमाण ग्रन्थ की प्रतिज्ञा करते हुए कहते हैं कि–श्रीसीताराम जी के प्रसिद्ध चरित्रों में निःस्यूत प्रेमामृत से युक्त अट्‌ठाईस सर्गों में एवं एक हजार आठ गीतों में **गिरिधर** कवि नाम से प्रसिद्ध जगद्‌गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य भगवती श्रीसीता जी की प्रीति के लिए 'गीतरामायणम्' नामक संस्कृतगीतकाव्य की रचना कर रहे हैं–

गीत संख्या १

रामनवाम्बुददामिनि हरिभामिनि हे।
सीते धरणिकुमारि जय जय जानकि हे।।१।।
गिरेन्दिरागिरिजाजनि जगतिजननि हे।
श्रीरघुचन्द्रचकोरि जय जय जानकि हे।।२।।
चम्पककनकविकाशिनि सितवासिनि हे।
मैथिलि जनककिशोरि जय जय जानकि हे।।३।।
हरकार्मुकमदखण्डिनि महिमण्डिनि हे।
कोसलराजवधूटि जय जय जानकि हे।।४।।
चित्रकूटसुविहारिणि वनचारिणि हे।
सुजनसुजीवनिमूलि जय जय जानकि हे।।५।।
दण्डकविपिनविलासिनि भयनाशिनि हे।
दनुजवनजहिमरात्रि जय जय जानकि हे।।६।।
मारुतिवरसुरवल्लारि रतिजित्वरि हे।
पावकपावनि देवि जय जय जानकि हे।।७।।
लक्ष्मणभरतशुभङ्करि रिपुहेश्वरि हे।
सततमवधसाम्राज्ञि जय जय जानकि हे।।८।।
ब्रह्ममयि व्रतभावनि जनतावनि हे
गिरिधरमव जगदम्ब जय जय जानकि हे।।९।।

भौमी– अब महाकवि गीतरामायणम् के बालकाण्ड के मंगलाचरण रूप में प्रथम गीत का उद्‌भावन करते हुए भगवती जानकी का जय–जयकार कर रहे हैं। हे श्रीरामरूप नवीन बादल की विद्युत! हे भगवान राम की धर्मपत्नी! हे पृथ्वीपुत्री! हे जनक नन्दिनी सीते! आपकी जय हो, जय हो। हे, सरस्वती, लक्ष्मी एवं पार्वती को भी जन्म देने वाली, सम्पूर्ण संसार की माँ, श्रीराममुखचन्द्र की चकोरी सीताजी आपकी जय हो–जय हो।

चम्पा एवं सुवर्ण को भी अपनी शोभा से विकास प्रदान करने वाली, नीलवस्त्र धारण करने वाली, मिथिला में प्रकट हुई हे जनकराजकिशोरी सीते! आपकी जय हो, जय हो। हे शंकरजी के धनुष के अहंकार को दूर करने वाली, पृथ्वी की अलङ्कारस्वरूपा तथा कोसलराज दशरथ की बड़ी बहूरानी, सीताजी आपकी जय हो, जय हो। हे चित्रकूट विहारिणी! वन में भ्रमण करने वाली श्रीवैष्णवजन के लिए जीवनमूलिकास्वरूपा श्रीसीताजी आपकी जय हो, जय हो। हे दण्डकवन को अलङ्कृत करने वाली, भक्तों के भय को दूर करने वाली, राक्षसकुलरूप कमल वन के लिए हेमन्त ऋतु की रात्रि रूप श्रीसीताजी! आपकी जय हो, जय हो। हे हनुमान् जी के वरदानों के लिए कल्पलतास्वरूपिणी, अपनी शोभा से रति को जीतने वाली, अपने निवास से अग्नि को भी पवित्र करने वाली देवि श्रीसीते! आपकी जय हो, जय हो। हे श्रीलक्ष्मण-भरत का कल्याण करने वाली, श्रीशत्रुघ्नलालजी की भी ईश्वरी अर्थात् बड़ी भाभी की भूमिका में शत्रुघ्न का लालन-पालन करने वाली, निरन्तर श्रीअवध की साम्राज्ञी, महारानी जी आपकी जय हो-जय हो। हे ब्रह्मस्वरूपिणी, समस्त व्रतों की जन्मदात्री, जनता की रक्षा करने वाली सीते! आप मुझ कवि **गिरिधर** की रक्षा कीजिए, आपकी जय हो, जय हो।

गीत संख्या २

सुभगशरासनसायक रघुनायक हे।
कटितटलसितनिषङ्ग जय जय राम हरे।।१।।
अमितमनोजमनोहर तडिदम्बर हे
नलिननयन नरदेव जय जय राम हरे।।२।।
कोसलजासुखवर्धन हृतबन्धन हे
दशरथराजकिशोर जय जय राम हरे।।३।।
स्मररिपुकार्मुकखण्डन महिमण्डन हे
जानकिरमण मुकुन्द जय जय राम हरे।।४।।
शरदमलेन्दुसमानन श्रितकानन हे
सीतानलिनिदिनेश जय जय राम हरे।।५।।
समरनिहतखरदूषण गतदूषण हे
खगशबरीप्रतिपाल जय जय राम हरे।।६।।
सखितसुकण्ठविभीषण रणभीषण हे
दशमुखकमलतुषार जय जय राम हरे।।७।।
लक्ष्मणभरतसमर्चित रिपुहार्चित हे
मारुतिमानसहंस जय जय राम हरे।।८।।
कोसलपुरजनरञ्जन भवभञ्जन हे
गिरिधरमव श्रीराम जय जय राम हरे।।९।।

भौमी- अब कवि भगवान् श्रीराम की जय-जयकार करते हुए कहते हैं- सुन्दर धनुषबाण धारण करने वाले, कटितट पर तरकश को सुशोभित करने वाले हे रघुनाथ श्रीराम! आपकी जय, जय हो। असंख्य

कामदेवों के मनों को हरने वाले, विद्युत् के समान पीताम्बर को धारण करने वाले, कमलनेत्र, मनुष्यों में देवता, महाराज श्रीराम आपकी जय हो, जय हो। हे कौसल्या के सुख को बढ़ाने वाले, भवबन्धन को नष्ट करने वाले, महाराज दशरथ के किशोर राजकुमार श्रीराम आपकी जय–जयकार हो। हे शंकर जी के धनुष को तोड़ने वाले, पृथ्वी के अलंकारस्वरूप, सीतारमण, भुक्ति–मुक्ति प्रदाता, भगवान् श्रीराम आपकी जय हो, जय हो। शरद्कालीन विमल चन्द्र के समान मुखमण्डल एवं प्रसन्नता से वनवास स्वीकार करने वाले, श्रीसीतारूप कमलिनी के सूर्य, श्रीराम आपकी जय हो, जय हो। युद्ध में खरदूषण का वध करने वाले, समस्त दोषों से रहित, जटायु व शबरी का प्रतिपाल करने वाले श्रीराम आपकी जय हो, जय हो। हे सुग्रीव–विभीषण के मित्र, संग्राम में भयंकर, रावणरूप कमल के लिए तुषारस्वरूप श्रीराम आपकी जय हो, जय हो। श्रीलक्ष्मण एवं श्रीभरत के द्वारा पूजित, श्री शत्रुघ्न लाल से सत्कृत एवं श्रीहनुमान् के मनमानस सरोवर के राजहंस श्रीराम आपकी जय हो, जय हो। हे अयोध्यावासियों को आनन्दित करने वाले भवभयनाशक प्रभु श्रीराम मुझ कवि **गिरिधर** की रक्षा कीजिए। आपकी जय, जय हो।

गीत संख्या ३

हृदये निवेश्य रामं नयने निमील्य श्यामम्।
पूजनमहं करिष्ये अर्चनमहं करिष्ये।।
निर्विकारमथ मनोमन्दिरं भावमयं निर्माय।
सानुजसीतं कृपापरीतं रामं तत्र निधाय।
आवाह्य धारणाख्यं दत्वासनं सुविख्यम् ।
पूजनमहं करिष्ये अर्चनमहं करिष्ये।।१।।
प्रीतिं पाद्यं प्रणतिं स्वर्घ्यं स्वाचमनं सत्सङ्गम्।
स्नानार्थं ते सरयूसलिलं भवदनुरागमभङ्गम् ।
सदुपासनासुवस्त्रं त्रैभावयज्ञसूत्रम्।
पूजनमहं करिष्ये अर्चनमहं करिष्ये।।२।।
सम्बन्धं हरिभक्तिनिबन्धं मुदितापरिमलधारि।
मलयमनोरथमण्डितगन्धं भववासनाप्रहारि।
सुमनो मनो मदीयं सुविरागि राघवीयम्।
पूजनमहं करिष्ये अर्चनमहं करिष्ये।।३।।
श्रद्धाधूपं सौरभभूपं दूरितकुमतिकुगन्धम् ।
सुस्मृतिदीपं वितिमिरदीपं दलितदुरितनिर्बन्धम् ।
धृतचारुचित्तद्वारं सुस्नेहसर्पिसारम् ।
पूजनमहं करिष्ये अर्चनमहं करिष्ये।।४।।
नवधाभक्तिमनोहरमधुरं प्रेमभक्तिनैवेद्यम् ।

अनन्यतातुलसीदलमण्डितसुललितरुचिमावेद्यम्।
सुस्वादुभावभव्यं सुममत्वनीरनव्यम् ।
पूजनमहं करिष्ये अर्चनमहं करिष्ये।।५।।
विगलितमत्सरसंशयमूलं प्रेममञ्जुताम्बूलम् ।
रामकथाखदिरं प्रभुपादासक्तिसुधं सुखमूलम्।
वृत्तिर्दृढा मदीया सुप्रदक्षिणा त्वदीया।
पूजनमहं करिष्ये अर्चनमहं करिष्ये।।६।।
सङ्कल्पः स्वयमेव चामरे स्मरणं घण्टानादम् ।
शंखध्वनिं निश्चयं बुद्धेर्भजने दमितविषादम्।
विरहाश्रुदिव्यमर्घ्यं विलपनलसन्महार्घ्यम् ।
पूजनमहं करिष्ये अर्चनमहं करिष्ये।।७।।
सप्तावरणवर्तिकामण्डितनीराजनं करिष्ये ।
सप्तसप्तकृत्वः करणैरथ भक्त्या मनो हरिष्ये।
भजनं चतुर्विधं मे सुमनोऽञ्जलिं शुभं ते
पूजनमहं करिष्ये अर्चनमहं करिष्ये।।८।।
जानकिजीवन विलसितयौवन राघव जलधरश्याम।
गिरिधरकविकृतमानसपूजामङ्गीकुरु हे राम।
त्रायस्व दासमेनं नतपाल पाहि दीनम्।
पूजनमहं करिष्ये अर्चनमहं करिष्ये।।९।।

भौमी– अब महाकवि अपने मनोराज्य में प्रभु श्रीराम की मानसिक पूजा करते हुए गा रहे हैं। मैं अपने हृदय में श्यामवर्ण श्रीराम को विराजमान करके बाहरी आँखें बन्दकर उन्हीं प्रभु की मानसपूजा व अर्चना करूँगा। सम्पूर्ण विकारों से रहित, भावनाओं से पूर्ण अपने मन को ही मन्दिर बनाकर उसमें श्रीलक्ष्मणसीता सहित कृपापूर्ण श्रीराम को ही इष्टदेवता के रूप में पधराकर, आह्वान करके धारणा नामक शोभायुक्त आसन समर्पित कर पूजन अर्चन करूँगा। हे प्रभो! अपनी प्रीति को ही आपका पाद्य तथा प्रणाम को अर्घ्य एवं सत्संग को ही आचमन बनाकर आपके स्नानार्थ अपने निर्मल अनुराग को ही सरयू जल के रूप में उपस्थित करके श्रेष्ठ उपासनारूप वस्त्र धारण कराकर अपने तीनों भावों अर्थात् सख्य, वात्सल्य और दास्य को ही यज्ञोपवीत बनाकर आपकी पूजा अर्चना करूँगा। भजन की प्रसन्नता रूप सुरभि से युक्त आप श्रीराम की भक्ति से निबद्ध, भववासना को नष्ट करने वाले, मंगलमय मनोरथरूप मलय सुगन्ध से युक्त, सेवक–सेव्य भाव रूप सम्बन्ध को ही मैं आपके लिए गन्ध समर्पित करूँगा। श्रेष्ठ वैराग्य से युक्त आप श्रीराघव के लिए समर्पित अपने मन को ही मैं पुष्प के रूप में आपको समर्पित करूँगा। हे प्रभो! अपनी श्रद्धा को ही मैं श्रेष्ठ सुगन्ध से युक्त धूप बनाऊँगा जिसमें दुर्गन्ध नहीं होगी और अन्धकार रूप हाथी को दलित करने वाले दीप के रूप में मैं प्रस्तुत करूँगा अपनी स्मृति को जहाँ हठरूप दारिद्र्य नहीं होगा। जहाँ सुन्दर स्नेह ही घी बनकर जगमगाएगा और उस दीपक को मैं अपनी चित्तरूप देहली पर विराजमान कराकर आपकी पूजा–अर्चना करूँगा। हे प्रभो! अपनी

नवधाभक्तिरूप नौ मिष्ठान्नों से सजाकर, अनन्यता तुलसीदल से मण्डित सुन्दर ललित रुचि से पूर्ण प्रेमभक्ति को ही नैवेद्य के रूप में अर्पित करूँगा जहाँ आपके प्रति निःस्वार्थ ममत्व जल होगा और निर्मल भाव ही अलौकिक स्वाद होगा। इस प्रकार मैं आपकी पूजा-अर्चना करूँगा। हे प्रभो! मत्सर और संशय के मूल से रहित मेरा निर्मल प्रेम ही आपके लिए ताम्बूल होगा उसमें श्रीरामकथा ही कत्थे की भूमिका निभाएगी और आपके श्रीचरण की आसक्ति ही चूना बन जाएगी। मेरी दृढ़ वृत्ति ही आपकी सुन्दर प्रदक्षिणा होगी। इस प्रकार मैं आपकी मानसी पूजा करूँगा। हे प्रभो! मेरा संकल्प ही आपका चामर होगा तथा स्मरण घण्टानाद। भजन में विषाद को नष्ट करने वाला मेरी बुद्धि का दृढ़ निश्चय ही शंखध्वनि, मेरे विरह के आँसू ही मेरे विलापों की बहूमूल्यता से युक्त विशेषार्घ्य की भूमिका निभाएँगे। यही मेरी मानसिक पूजा अर्चना होगी। हे प्रभो! अपने सात आवरणों से युक्त, सात वर्तिकाओं द्वारा सजी हुई नीराजना से अपने चौदह करणों अर्थात् दस इन्द्रिय और चार अन्तःकरणों द्वारा मैं आपकी चौदह आरती करूँगा और अपनी भक्ति से आपके मन को भी हर लूँगा। अपने चार प्रकार के भजन को आपकी पुष्पाञ्जलि बनाकर मैं आपकी पूजा-अर्चना करूँगा। हे जानकीजीवन! हे युवावस्था को भी सुशोभित करने वाले, नवीन बादल के समान श्यामल, रघुश्रेष्ठ हे प्रभो राम! इस **गिरिधर** कवि द्वारा की गई यह मानसिक पूजा आप स्वीकार करें। इस दास की रक्षा करें और हे प्रणतपाल! इस दीन को भवबाधाओं से बचा लें, मैं आपकी सदैव मानसिक पूजा करूँगा।

गीत संख्या ४

दशावतारस्तुतिः

अधिलयजलधिधृता भवता महिनौका।
श्रितमनुवेदमयेन जनौका।
राघव धृतमत्स्यशरीर जय श्रीराम हरे।।१।।
कुधरमवन् भगवन् स्वकरे धृतमन्दर।
भववारिधिमन्दर गुणमन्दिर।
राघव धृतकमठशरीर जय श्रीराम हरे।।२।।
कनकनयनमवता भवतावनिरूढा।
निशिनलिने स्वलिनीव निगूढा।
राघव धृतसौकररूप जय श्रीराम हरे।।३।।
शितनखकनककशिपुतनुवीरणदारण।
जनप्रहलादविपत्तिविदारण।
राघव धृतनृहरिशरीर जय श्रीराम हरे।।४।।
भिक्षयसे बलिमवनिमह वटुविग्रह।
पदनखजनितगङ्गखलनिग्रह।
राघव धृतवामनरूप जय श्रीराम हरे।।५।।
द्विजकुलशस्यपयोदपरश्वधधारण।

हैहयपतिगजपतिमदवारण ।
राघव धृतभृगुवररूप जय श्रीराम हरे।।६।।
दशरथकौसल्यासुकृताब्धिसुधाकर ।
रामचन्द्ररणहतदशकन्धर ।
राघव प्रकटितनृपरूप जय श्रीराम हरे।।७।।
कंसवंशवनदहन सुजनसुखशालिन्।
राधावर गिरिधर वनमालिन्।
राघव धृतकृष्णशरीर जय श्रीराम हरे।।८।।
करुणयसेऽकरुणेषु विधूतविरोधः।
समदर्शी हृदि संश्रितबोधः।
राघव धृतबुद्धशरीर जय श्रीराम हरे।।९।।
म्लेच्छेभ्योऽपि विधित्सुः पदनिर्वाणम्।
कलयसि सहजकृपोऽपि कृपाणम्।
राघव धृतकल्किशरीर जय श्रीराम हरे।।१०।।
गिरिधरकविकृतगीतं परममुदारम्।
शृणु हर मे भवशोकमपारम्।
राघव धृतदशविधरूप जय श्रीराम हरे।।११।।

भौमी–अब महाकवि भगवान् श्रीराम को ही दश अवतारों के अवतारीरूप में प्रस्तुत करते हुए यह शास्त्रीयसंगीतविधापूर्ण ललित गीत गाते हैं–हे प्रभो श्रीराम! आपने प्रलय के समय अपनी शरण में आये हुए वैदिक वाङ्मय के साथ वर्तमान वैवस्वत मनु का उद्धार करने के लिए पृथ्वी को ही नौका बनाकर स्वयं मत्स्यावतार ग्रहण करके अपने सींग में धारण किया था। जो सम्पूर्ण जीवों का निवास स्थान है। हे मत्स्यमूर्ते राघव! आपकी जय हो। हे भगवन् ! जब समुद्रमन्थन के समय मन्दराचल पर्वत पाताल में धंसने लगा था तब उस पर्वत की रक्षा करते हुए समस्त गुणों के मन्दिर भवसागर को मथने के लिए मन्दर के समान हो करके भी आप श्रीराघव ने कच्छप का रूप धारण करके अपनी पीठ पर मन्दराचल को धारण कर लिया था। हे कच्छपावतार श्रीराम! आपकी जय हो। हे प्रभो श्रीराम! हिरण्याक्ष का वध करते हुए आपश्री ने अपने दाँतों पर पृथ्वी को धारण किया था वह पृथ्वी आपके दाँतों पर उसी प्रकार सुशोभित हुई थी जैसे रात्रि के समय कमल में भ्रमरी छिप गई हो। हे शूकरावतारी श्रीराम! आपकी जय हो। अपने नुकीले नखों से हिरणयकशिपु रूप कोमल घास को फाड़ देने वाले भक्त प्रह्लाद की विपत्ति को दूर करने वाले नृसिंहावतारधारी राघव! आपकी जय हो। अहो! ब्राह्मण वटु शरीर धारण करके वही आपश्री महाराज बलि से तीन पग भूमि माँगते हैं जिन आपश्री के चरणकमल से गंगा जी प्रकट हुई, जिन आपश्री ने बड़े-बड़े दुष्टों को दण्डित किया ऐसे श्रीवामनावतारी प्रभु श्रीराम आपकी जय हो। हे प्रभो! आपने परशुराम का रूप धारण करके ब्राह्मण कुलरूप खेती के लिए दिव्य बादल बने फरसे को धारण किया और आप सहस्रबाहु रूप मतवाले हाथी को नष्ट करने के लिए अंकुश बने। हे परशुराम रूपी अवतारी श्रीराम! आपकी जय हो। हे श्रीराघव प्रभु राम! आपने अवतारी होते हुए भी

श्रीअवध में स्वयं को श्रेष्ठ राजा के रूप में प्रकट किया। हे श्रीदशरथ एवं माँ कौसल्या के पुण्य क्षीरसागर के चन्द्रमा, युद्ध में रावण का वध करने वाले रामचन्द्र श्रीराघव आपकी जय हो। हे राघव! आपने श्रीकृष्ण शरीर धारण करके कंस के वंश को उसी प्रकार नष्ट किया जैसे बांस के वन को अग्नि नष्ट कर देती है। सुजनों को सुख देने वाले हे राधावर, हे गोवर्धनधारी, हे वनमाली रामाभिन्नश्रीकृष्ण! आपकी जय हो। हे प्रभो! आप बुद्ध शरीर धारण कर निर्दय लोगों पर भी करुणा करते हैं। आप सम्पूर्ण विरोधों से रहित समदर्शी तथा दिव्य ज्ञान के आश्रय हैं। हे बुद्ध जगन्नाथस्वरूप श्रीराम! आपकी जय हो। हे परमात्मन्! सहज कृपालु होकर भी म्लेच्छ लोगों के लिए निर्वाण पद का विधान करने की इच्छा से आपश्री हस्तकमल में तलवार धारण करते हैं। हे कल्कि अवतार के अवतारी श्रीराम! आपकी जय हो। हे प्रभु श्रीराघव! मुझ **गिरिधर** कवि द्वारा प्रणीत इस श्रेष्ठ गीत को सुनिए और मेरे अपार भवशोक को दूर कीजिए। हे दशावतारों के अवतारी श्रीराम! आपकी जय हो।

गीत संख्या ५

श्रीराम दीनबन्धो घनश्याम शीलसिन्धो।
कुरु निर्मलं मनो मे कुरु सद्बलं मनो मे ।।
हे रघुनायक जनसुखदायक कोसलराजकिशोर ।
सरसिजलोचन भवभयमोचन विश्वविलोचनचोर ।।
दिवसेशवंशकेतो भवभीमसिन्धुसेतो ।
कुरु निर्मलं मनो मे कुरु सद्बलं मनो मे।।१।।
क्षणमपि विमलं तवपदकमलं चिन्तयते नहि देव ।
ध्यायति विषयं भवभयनिलयं सम्बद्धं स्वयमेव ।।
न कदापि यात्यरोगं म्रियते विपन्नभोगं ।
कुरु निर्मलं मनो मे कुरु सद्बलं मनो मे।।।।२।।
त्यक्त्वा तव चरितामृतमनिशं पातुं भवमृगवारि ।
दिशि दिशि भ्राम्यति नहि विश्राम्यति ताम्यति ममताधारि।।
निजपादपद्मभृङ्गं विमदं विमुक्तसङ्गं ।
कुरु निर्मलं मनो मे कुरु सद्बलं मनो मे।।३।।
चञ्चलकपिरिवाभिकं भगवन् भ्राम्यति द्वारे द्वारे ।
वानरबन्धो वर्जय बलवद् भ्रष्टं भवकान्तारे ।।
निजभावरज्जुबन्धं नर्तय विभो विबन्धम् ।
कुरु निर्मलं मनो मे कुरु सद्बलं मनो मे।।४।।
सारमेय इव यत्र तत्र किल स्वच्छन्दं परियाति ।
साहं साहं तिरस्कारमपि भुक्तोज्झितमश्नाति ।।
लभते न वै विरामं दण्डय शठं निकामम् ।

कुरु निर्मलं मनो मे कुरु सद्बलं मनो मे।।५।।
हरिण इवार्तं सुखतृष्णार्तं दिशि दिशि भ्रमति विषण्णम् ।
हे हरिणाक्षिदयित हरिणानुग पालय मरणासन्नम् ।।
निजपादप्रेमनीरं पायय विलुब्धधीरम् ।
कुरु निर्मलं मनो मे कुरु सद्बलं मनो मे।।६।।
मोहत्रिकूटे श्रितमलकूटे दृष्ट्वा विषयतडागम् ।
दुष्टमतङ्गः श्रितभवरंङ्गः पिबति पयो धृतरागम् ।।
झषराजराजग्रस्तं त्रस्तं भयाद् विषस्तम् ।
कुरु निर्मलं मनो मे कुरु सद्बलं मनो मे।।७।।
ग्राहग्रस्तमबलमतिदीनं म्रियमाणं परिपाहि ।
अभयसुदर्शननिहतमहाझष कृपानिधे किल त्राहि ।।
कुरु मा विभो विलम्बं दिश ते करावलम्बम् ।
कुरु निर्मलं मनो मे कुरु सद्बलं मनो मे।।८।।
हे हरहृदयसरोरुहमधुकर प्रणतिं प्रभो गृहाण ।
गिरिधरमनोमतङ्गं निजचरणाङ्कुशतो निगृहाण ।।
आगच्छ रावणारे वस मानसे खरारे ।
कुरु निर्मलं मनो मे कुरु सद्बलं मनो मे।।९।।

भौमी- महाकवि प्रभु श्रीराम से प्रार्थना करते हुए कहते हैं हे श्रीराम! घनश्याम! दीनबन्धु श्रीराम! मेरे मन को निर्मल कीजिए और उसे सन्तों के बल से सम्पन्न बनाइए। हे रघुनायक! हे भक्तों के सुखदाता! हे दशरथराजकिशोर! हे कमलनयन! भवभयहारी, विश्व के नेत्रों को चुराने वाले, सूर्यवंश के पताकास्वरूप, भयंकर संसारसागर को पार करने के लिए सेतुस्वरूप प्रभु श्रीराम मेरे मन को निर्मल बनाइए तथा उसे आत्मबल संपन्न बनाइए। हे प्रभो! यह मेरा मन एक भी क्षण निर्मल होकर आपके श्रीचरण का चिन्तन नहीं करता और स्वयं सम्बद्ध होकर भवभय के निवासस्थानरूप संसार के विषय का ही ध्यान करता रहता है इसीलिए यह कभी भी रोगमुक्त नहीं हो पाता और भोगों से थककर यह मरता जा रहा है। अतः इसे निर्मल कीजिए और सत्संग बल से युक्त कीजिए। हे प्रभो! यह दुष्ट मन आपके चरितामृत को छोड़कर संसार की मरुमरीचिका का जल पीने के लिए सभी दिशाओं में भटकता रहता है। कभी विश्राम नहीं लेता। कुटुम्ब की ममता से युक्त नीच मन बहुत ही कष्ट पा रहा है। इसे मद से हीन और अनासक्त बनाकर अपने श्रीचरणकमल का भ्रमर बना लीजिए। इसे निर्मल कर दीजिए और भजन बल से सम्पन्न कर दीजिए। हे वानरों को बन्धु जैसे प्रेम देने वाले प्रभु श्रीराम! मेरा यह कामी मन चञ्चल बन्दर की भाँति ही द्वार-द्वार पर भटक रहा है। संसार वन में भूले हुए इस मन को बलपूर्वक रोक लीजिए। इसके विकार बन्धन को दूर कीजिए और अपनी भाव रस्सी में बाँधकर इसे नचाइए, निर्मल बनाइए और श्रेष्ठ बल से युक्त कीजिए। हे परमेश्वर! मेरा स्वच्छन्द मन कुत्ते के समान ही जहाँ-तहाँ भटक रहा है। अपमान सह-सहकर भी यह जूठन ही चाटता रहता है। कभी विराम नहीं लेता। इस शठ को बहुत दण्डित कीजिए। इसे निर्मल बनाइए और दिव्य बल से सम्पन्न कीजिए। हे

प्रभो! मेरा दुष्ट मन मृगतृष्णा से आर्त होकर हरिण की भाँति व्याकुल हुआ सभी दिशाओं में भटकता रहता है। हे मृगाक्षि सीता जी के पति, हे कपटमृग के अनुगामी श्रीराम मरणासन्न इस मन को पालिए और धीर जनों के विरोधी इस मन को अपने श्रीचरण का प्रेमजल पिला दीजिए और इसे निर्मल बना दीजिए। हे प्रभो! यह दुष्ट हाथी संसार की रंगभूमि पर घूमता हुआ इस मलकूट युक्त मोह त्रिकूट पर विषय सरोवर को देखकर उसका रागात्मक जल पी रहा है। इसे कामरूप ग्राह ने ग्रस लिया है। यह भयभीत होकर नष्ट हो चुका है। इसे निर्मल बनाइए। हे प्रभो! ग्राह से ग्रस्त निर्बल, अत्यन्त दीन, मरणासन्न इस मन मतंग की रक्षा कीजिए। अपने अभयदानरूप सुदर्शन से कामग्राह का वध करके मन गजराज को बचा लीजिए। हे प्रभो! विलम्ब मत कीजिए, अपने श्रीहस्त का अवलम्ब दीजिए। इसे निर्मल बनाइए और सात्त्विक बल से सम्पन्न कीजिए। हे श्रीशंकर के हृदयकमल भ्रमर प्रभु श्रीराम! मेरा प्रणाम स्वीकार कीजिए और मुझ कवि **गिरिधर** के मनमतंग को अपनी चरण की अंकुश रेखा से नियंत्रित कीजिए। हे रावण के शत्रु प्रभु श्रीराम! आइए। हे खरारे! मेरे मन में बस जाइए। इसे निर्मल बनाइए और अपनी भक्ति का बल प्रदान कीजिए।

गीत संख्या ६

राघव तव धन्या मर्यादा ।
सुरनरमुनिसुखदा गतवादा शमितसमस्तविषादा।।१।।
सत्यसन्ध इह धर्मरथी त्वं पालितवैदिकसेतुः ।
त्वमिव त्वं ते राम सकलसद्गुणजलधी रघुकेतुः।।२।।
परब्रह्म पुरुषोत्तम ईशः सर्वज्ञः स्वयमेव ।
स्वीकृतवानथैकनारीव्रतमीड्यं व्रती त्वमेव।।३।।
सदाचारचारित्रशीलनिधिरेकस्त्वं सविवेकः ।
पतिव्रतास्त्रिभुवने कोटिशः पत्नीव्रतस्त्वमेकः।।४।।
सीतातोऽन्या स्वप्नेऽपि स्त्री काचित् त्वया न दृष्टा ।
अहो अले नलिनीव्यतिरिक्ता नैव सुमालिः स्पृष्टा।।५।।
कुसुमधन्वना स्मरेणापि नो विजितो धन्विधुरीणः ।
योषादृक्सायकैर्न विद्धस्त्वं सायकिप्रवीणः।।६।।
नालुभ्यः सुरराजदुर्लभे प्राज्ये कौसलराज्ये ।
सानुजगृहिणिरितः कण्ठीरव इव काननसाम्राज्ये।।७।।
नाकुप्यः कोपितः कुमतिना दशशिरसा कृतसेतुः ।
जलधौ लङ्कां गतो हतरिपुर्जगदगमङ्गलहेतुः।।८।।
कामक्रोधलोभनामकमथ जितवान् नरकद्वारम् ।
नरकान्तक गिरिधरं पाहि नरकाभिमुखं सविकारम्।।९।।

भौमी– अब महाकवि अपने इष्टदेव श्रीराम की मर्यादा का स्तवन करते हुए कहते हैं– हे राघव! देवता

मनुष्य एवं मुनियों को सुख देने वाले, संपूर्ण वाद-विवादों से रहित, समस्त विषादों को नष्ट करने वाले आप श्रीराम की मर्यादा धन्य है। हे प्रभो! इस दृष्ट जगत् में आप ही एकमात्र सत्यसन्ध अर्थात् सत्यप्रतिज्ञ हैं। आप धर्मरथ पर आरूढ़ होकर वैदिक धर्म सेतु का पालन किए हैं। हे श्रीराम आपके समान आप ही हैं। आप समस्त सद्गुणों के महासागर तथा रघुकुल के ध्वज हैं। आप परब्रह्म परमात्मा पुरुषोत्तम अर्थात् क्षर और अक्षर शरीर जीवात्मा से अतीत परम पुरुष, सबके शासक, सर्वज्ञ होते हुए भी स्वयमेव नरलीला रंगमंच पर एक नारीव्रत जैसे कठिनतम व्रत को स्वीकार कर लोकोत्तर आदर्श का पालन कर रहे हैं। हे प्रभो! आप विवेकवान्, सदाचार, चरित्र और शील के एकमात्र निदर्शन हैं। तीनों लोकों में पतिव्रताएँ तो करोड़ों हैं परन्तु पत्नीव्रत तो एकमात्र आप ही हैं। प्रभो! आपश्री ने स्वप्न में भी श्रीसीता जी से अतिरिक्त किसी नारी पर दृष्टि नहीं डाली। अहो भ्रमरश्रेष्ठ! तुमने कमलिनी को छोड़कर अन्य पुष्पों की पंक्ति का स्पर्श भी नहीं किया। तुम विलक्षण भ्रमर हो। हे धन्वियों में धुरीण! तुम पुष्पधन्वा काम के द्वारा भी नहीं जीते गए। हे कुशल बाणधारी! तुम किसी भी नारी के नेत्रबाण से भी कभी नहीं बिद्ध हुए। आप इन्द्र के लिए दुर्लभ स्वर्णसंपदा से पूर्ण अयोध्या के राज पर भी नहीं लुब्ध हुए और सिंह की भाँति अपने छोटे भाई लक्ष्मण और धर्मपत्नी श्रीसीता जी के साथ वन के साम्राज्य में पधार गए। कुबुद्धि रावण द्वारा क्रोध के लिए उकसाए जाने पर भी आप कुपित नहीं हुए और समुद्र में सेतु बाँधकर लंका पर आक्रमण करके त्रिलोकशत्रु रावण का वध करके जड़-चेतन सभी के मंगल के कारण बन गए। हे भगवन्! आपने काम, क्रोध, लोभ नामक तीनों नरकद्वारों को जीत लिया है। अतएव हे नरकान्तक! विकारों से भरे हुए नरक की ओर मुख किए हुए अर्थात् नरक जाने की पूर्ण पात्रता से युक्त मुझ कवि **गिरिधर** को बचा लीजिए, मेरी रक्षा कीजिए।

गीत संख्या ७

अभिरम मनो रमावरचरणे।
सुरनरमुनिशरणे भयहरणे निजजनतारणतरणे।।१।।
बन्धुजीवराजीवसमरुणे सरसशिरीषसवर्णे।।२।।
शुकसनकादिभवादिसकरुणे देवधुनीभवकरणे।।३।।
गौतमपत्नीपातकदरणे मैथिलिहृदयाभरणे।।४।।
हरहृत्सरसि सरोरुहतरुणे कलिमलकलुषविदरणे।।५।।
लक्ष्मणभरतसुजीवनकरणे हनुमत्सुखविस्तरणे।।६।।
परमहंसमुनिवैष्णववरणे दण्डकविपिनविचरणे।।७।।
वनभुवि कपटहरिणमनुसरणे मंगलमोदवितरणे।।८।।
चित्रकूटवनशैलविहरणे अशरणगिरिधरशरणे।।९।।

भौमी- अब महाकवि अपने मन को प्रभु श्रीराम के चरणों में रमने के लिए प्रोत्साहित करते हैं–हे मेरे मन! तुम सीतापति श्रीराम के श्रीचरणों में रम जाओ। जो देवता, मनुष्य और मुनियों के आश्रय हैं तथा अपने भक्तों के लिए संसारसागर से तारणार्थ नौका के समान हैं, जो बन्धु पुष्प एवं लालकमल के समान अरुण हैं जो कोमलता में शिरीष पुष्प के समकक्ष हैं, जो शुकाचार्य, सनकादिमहर्षिगण तथा शिव आदि देवगणों के प्रति करुणापूर्ण हैं, जो गंगाजी के जन्मदाता श्री वामन भगवान के भी मूलकारण हैं, जो गौतम ऋषि की पत्नी

अहल्या के पातकों के नाशक तथा मिथिलाधिराज कन्या श्रीसीता जी के हृदय के अलंकार हैं, जो शिवजी के हृदय सरोवर के नवीन कमल तथा कलियुग के मलों और पापों के नाशक हैं, जो लक्ष्मण एवं भरत जी के जीवनदाता तथा श्रीहनुमान् जी के सुखों के विस्तारक हैं, जो परमहंस मुनिगण श्रीवैष्णवों के वरणीय तथा दण्डकवन में विहार करते रहते हैं, जो दण्डकवन की पगडंडियों में कपटमृग मारीच का अनुसरण करते हैं और जो अपने भक्तों के लिए मंगल और प्रसन्नता का वितरण करते हैं, जो चित्रकूट वन और कामद पर्वत पर विहार करते हैं तथा शरणहीन मुझ **गिरिधर** कवि के एकमात्र आश्रय हैं, ऐसे श्रीराम के श्रीचरण में रम जाओ।

गीत संख्या ८

(युगलगीतम्)

भजे हृदि कोटिकामकमनीयौ सुरनरमुनिनमनीयौ।
श्रीसीतारामौ भजे।।१।।
पुरहरहृदयसरोजमधुकरौ रतिरतिपतिरमणीयौ।
श्रीसीतारामौ भजे।।२।।
चपलानन्दपयोदसुन्दरौ विधिहरिहरभजनीयौ।
श्रीसीतारामौ भजे।।३।।
धृतवरकार्मुकविशिखनिषङ्गौ विमलसतां श्रयणीयौ।
श्रीसीतारामौ भजे।।४।।
पीतनीलसरसीरुहसुभगौ भगवन्तौ वरणीयौ।
श्रीसीतारामौ भजे।।५।।
चित्रकूटवनशैलविहरणौ सदा समादरणीयौ।
श्रीसीतारामौ भजे।।६।।
शरणागतभवभीतिनाशनौ क्वापि न विस्मरणीयौ।
श्रीसीतारामौ भजे।।७।।
मारुतिलक्ष्मणभरतवन्दितौ सततमनुस्मरणीयौ।
श्रीसीतारामौ भजे।।८।।
मनसा वाचा तथा कर्मणा कविगिरिधरमननीयौ।
श्रीसीतारामौ भजे।।९।।

भौमी- भगवान् श्रीसीतारामजी के भजन करने की प्रतिज्ञा करते हुए महाकवि कहते हैं–मैं करोड़ों रति कामदेवों से सुन्दर देवता, मुनि और मनुष्यों के नमन करने योग्य भगवान् श्रीसीतारामजी का भजन करता हूँ जो त्रिपुरासुर के शत्रु शिवजी के हृदय कमल के भ्रमरस्वरूप हैं तथा रति और काम को रमणीयता जिनसे प्राप्त हुई है, जो बिजली और आनंद के बादल के समान सुन्दर हैं, जो ब्रह्मा, विष्णु तथा शङ्कर के भजनीय हैं तथा जो निर्विकार सन्तों के भी आश्रयणीय हैं, जो पीले–नीले कमलों के समान सुन्दर षडैश्वर्य सम्पन्न भगवत् स्वरूप तथा सबके वरणीय हैं, जो चित्रकूट के वन और पर्वतों पर विहार करने वाले हैं तथा जो सदैव प्राणियों के लिए

आदरणीय हैं, जो शरणागतों के भवभय को नष्ट करने वाले हैं और जो कभी भी कहीं भी भुलाए नहीं जा सकते, जो हनुमान् जी, लक्ष्मण जी, भरत जी द्वारा वन्दित हैं और जो निरंतर अनुकूलता पूर्वक स्मरणीय हैं अर्थात् जिनका प्रतिकूलता से स्मरण करना उचित नहीं है और जो मन से वाणी से तथा कर्म से **गिरिधर** कवि के लिए मननीय हैं ऐसे श्रीसीताराम जी का मैं भजन करता हूँ।

विशेष– यह गीत अवधी लोकधुन में निबद्ध है। इसे प्रायशः माताएँ विवाहोत्सव में गाती हैं। उसका आकार यों समझना चाहिए–

''जेहिं दिन राम जनकपुर आए......
देखन आई सारी दुनिया श्रीसीताराम जी भजो........।''

सन्दर्भश्लोकः

केचिद् ध्यानपरायणाः सुकृतिनः पारम्परं वै भवाद्
भूयिष्ठं समुपासते तु विरजं तन्निर्गुणं निष्क्रियम् ।
किन्त्वस्मन्नयनाभिरामविषयः श्यामस्तमालद्युतिः
कौसल्यासुकृताब्धिशारदशशी श्रीराघवो राजते।।१।।

भौमी– इस सन्दर्भश्लोक में कवि अपने मनोभावों को व्यक्त करते हुए कहते हैं– कुछ सुकृत् जन ध्यानस्थ होकर जगत् के व्यवहार से अत्यन्त दूर रजोगुण से रहित उस अपूर्व निर्गुण और निष्क्रिय ब्रह्म का भजन करते हैं तो किया करें; किन्तु मेरे नेत्रों के तो विषय बन चुके हें तमाल वृक्ष के समान सुन्दर महारानी कौसल्या के पुण्यसागर को तरंगित करने के लिए शरद् पूर्णिमा के चन्द्रस्वरूप श्रीराघव।

गीत संख्या ९

अये मन्मनो नित्यमेवेति गाय
नमो राघवाय नमो राघवाय।
मते! मे विनिश्चिन्विदं मङ्गलाय
नमो राघवाय नमो राघवाय।।
इदं जीवमात्रस्य सद्धर्ममूलं
इदं घोरसंसारकूपारकूलम्।
इदं चानुकूलं श्रुतिर्निर्णिनाय
नमो राघवाय नमो राघवाय।।१।।
इदं विश्वरोगस्य दिव्यं निदानं
तृषार्तस्य चित्तस्य चेदं निपानम्।
इदं शन्निधानं स्मृतिर्निश्चिकाय
नमो राघवाय नमो राघवाय ।।२।।

इदं गायतीशः सगौरीगणेशः
इदं ध्यायती स्वानुगश्रीरमेशः।
नमस्यामिदं वक्ति वेधा विधाय
नमो राघवाय नमो राघवाय।।३।।
इदं कौत्यहो कुः पयो रौति चेदं
इदं भाषतेऽग्निर्नभो वक्त्यखेदम्।
इदं वाति वातः सदाशं प्रवाय
नमो राघवाय नमो राघवाय।।४।।
हृषीकैरिदं सन्ततं प्रार्थ्यमानं
इदं प्राणकैः प्राणतश्चार्थ्यमानम्।
इदं पञ्चभूतैर्नुतं कौशलाय
नमो राघवाय नमो राघवाय।।५।।
तमालाब्दनीलाय लीलाधराय
व्रताढ्याय धीराय सीतावराय।
लसत्कर्मणे ब्रह्मणे चिन्मयाय
नमो राघवाय नमो राघवाय।।६।।
जनी राघवो मे पिता राघवो मे
सखा राघवो मे धनं राघवो मे।
न मेऽन्या गती राघवं तं विहाय
नमो राघवाय नमो राघवाय।।७।।
न जानामि मन्त्रं न यन्त्रं न तन्त्रं
न जाने विधिं कञ्चनास्मात् स्वतन्त्रम् ।
अहं मुक्तचिन्तः स्वमस्मै प्रदाय
नमो राघवाय नमो राघवाय।।८।।
नमो राघवायेति मन्त्रं षडर्णं
सदा रामभक्त्येकवर्ण्यं सुवर्णम् ।
गिरा गाय गिरिधरमनोऽस्मिन् निधाय
नमो राघवाय नमो राघवाय।।९।।

भौमी– अब अपने आराध्य श्रीराघव को नमस्कार करते हुए कवि अपने प्रिय ''नमो राघवाय'' उद्घोष को आधार बनाकर गीत गा रहे हैं– अरे मेरे मन! 'नमो राघवाय–नमो राघवाय' यही उद्घोष तुम निरन्तर गाते रहो। हे मेरी बुद्धि तुम भी जगत् के मंगल के लिए 'नमो राघवाय' यही उद्घोष निश्चित कर लो। यही उद्घोष जीवमात्र का श्रेष्ठ धर्ममूल है। 'नमो राघवाय' ही संसार सागर का किनारा है। श्रुति ने भी इसी का अनुकूलता

से निर्णय कर लिया है। ' नमो राघवाय' उद्घोष ही विश्व के रोगों की दिव्य ओषधि है। यही उद्घोष प्यास से व्याकुल चित्त के लिए जलाशय है। स्मृति में भी इसी उद्घोष को कल्याणों का कोश निश्चित किया है। इसी उद्घोष को पार्वतीगणेश सहित शिव जी गाते हैं, अपने अनुगामियों सहित भगवान् विष्णु भी इसी का ध्यान करते हैं। ब्रह्मा जी भी श्रीराम की पूजा करके 'नमो राघवाय' कीर्तन करते रहते हैं। 'नमो राघवाय' उद्घोष पृथ्वी करती रहती है। जल अपने प्रवाह में इसी को गाता रहता है। अग्नि अपने स्फुलिंगों में इसी को रटता रहता है। आकाश अपनी सनसनाहट में 'नमो राघवाय' कहता है। वायु सदा बहता हुआ अपनी हरहराहट में 'नमो राघवाय' की टेर लगाता रहता है। इन्द्रियाँ इसी की प्रार्थना करती रहती हैं। प्राण अपने प्राणभूत जीवात्मा से इसी को माँगते रहते हैं। अपनी कुशलता के लिए पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश 'नमो राघवाय' कहकर भगवान् श्रीराम को नमन करते रहते हैं। तमाल और बादल के समान नीले, अलौकिक लीलाओं को धारण करने वाले, दिव्य व्रतों से संपन्न सीतापति, श्रेष्ठ कर्मों से युक्त चिन्मय परब्रह्म श्रीराघव को नमस्कार-नमस्कार। श्रीराघव ही मेरे माता, पिता, मित्र और धन हैं। प्रभु राघव को छोड़कर मेरा अन्य गन्तव्य नहीं है। उन्हीं शिशु राघव को नमस्कार है, नमस्कार है। मैं मन्त्र, यन्त्र और तन्त्र कुछ भी नहीं जानता तथा श्रीराघव के अतिरिक्त कोई भी स्वतंत्र विधि मैं नहीं जानता। मैं अपना सबकुछ श्रीराघव को समर्पित करके अब पूर्णतया निश्चिन्त हो चुका हूँ। हे **गिरिधर**! निरन्तर रामभक्तों के द्वारा वरणीय, सुन्दर अक्षरों से युक्त 'नमो राघवाय' यही छः अक्षरों का मन्त्र भगवान् श्रीराम में मन लगाकर गाते रहो।

सन्दर्भश्लोकः

मन्दाकिनीपुण्यतटे विहारी सीतासरोजास्यविकासकारी।
भग्नत्रिकूटः श्रितचित्रकूटः श्रीराघवो मङ्गलमातनोतु।।१।।

कवि जगत् के लिए श्रीराघव से मंगल की प्रार्थना करते हुए कहते हैं– श्री मन्दाकिनी के पवित्र तट पर विहार करने वाले श्रीसीता के मुखकमल के विकासक भक्तों के कामक्रोधलोभात्मक कूट को नष्ट करने वाले श्रीचित्रकूटविहारी राघव सरकार जगत् के लिए मंगल का विस्तार करें।

गीत संख्या १०

हे चित्रकूटविहारिन् निजं दर्शनमाशुदेयम्।
हे रघुनन्दन निजजनचन्दन तूणचापशरधारिन्
निजं दर्शनमाशुदेयम्।।१।।
वल्कलपटधर जलधरसुन्दर जटामुकुटरुचिकारिन्
निजं दर्शनमाशुदेयम्।।२।।
सीतानयनचकोरसुधाकर मन्दाकिनितटचारिन्
निजं दर्शनमाशुदेयम्।।३।।
शङ्करमानसराजमरालक मुनिजनमानसहारिन्
निजं दर्शनमाशुदेयम्।।४।।
करुणासागर सुन्दरनागर शरणागतसुखकारिन्
निजं दर्शनमाशुदेयम्।।५।।

तरुणतमालपयोदमनोहर   दण्डकदुरितविदारिन्
निजं दर्शनमाशुदेयम्।।६।।
सुरपतिसुतमदहर करुणाकर भववासनाप्रहारिन्
निजं दर्शनमाशुदेयम्।।७।।
रावणसूदनमतमधुसूदन   जनगुणनिकरप्रचारिन्
निजं दर्शनमाशुदेयम्।।८।।
म्रियते दर्शनकृते गिरिधरः पाहि पाहि भयहारिन्
निजं दर्शनमाशुदेयम्।।९।।

भौमी– अब कवि प्रभु श्रीराघव से दर्शन की प्रार्थना करते हैं– हे चित्रकूटविहारी प्रभु आप शीघ्र अपना दर्शन दें। हे रघुकुल को आनंद करने वाले अपने भक्तों को आह्लादित करने वाले, तरकश धनुष बाण धारण करने वाले, वल्कलवस्त्रधारी, बरसाती बादल के समान सुन्दर, जटामुकुट की शोभा को बढ़ाने वाले, सीताजी के नेत्रचकोर के चन्द्रमा, मन्दाकिनी के तट पर विहार करने वाले, शिव जी के मन मानसरोवर के राजहंस, मुनिजन के मनों को चुराने वाले, करुणा के समुद्र, सुन्दर तथा चतुर, शरणागतों को सुख देने वाले, नवीन तमाल एवं मेघ के समान सुन्दर, दण्डकवन के पाप को विदीर्ण करने वाले, इन्द्रपुत्र जयन्त का मद भङ्ग करने वाले, करुणा की खान, संसार की वासना को नष्ट-भ्रष्ट करने वाले, रावण का वध करने वाले, मधु के शत्रु भगवान् विष्णु द्वारा भी पूजित, भक्तों के गुणों का प्रचार करने वाले हे प्रभु श्रीराम! **गिरिधर** कवि तो आपके दर्शन के लिए मर रहा है। हे भक्तभयहारिन्! आप मेरी रक्षा कीजिए।

विशेष– यह गीत अवधी की लचारी लोकधुन के आधार पर निबद्ध है, जिसके बोल हैं–

''कैसे धरऊँ मन धीरा, हमार दोउ हीरा निकरि गए''

गीत संख्या ११

राघव मम भवभरं व्युदस्य।
हे रविवंशवनजवनभानो मायातमीं निरस्य।।१।।
ममताचपलचकोरीवल्लभमोहचन्द्रमपसारय।
वारय पापोलूककुलं मत्सरस्त्येनमपवारय।।२।।
भजनरीतिनलिनीमपशोकय कुलटामतिं सशोकय।
विमलविरतिकोकीञ्च विशोकय भीतिकुमुदिनीं शोकय।।३।।
रश्मिरथ्य निजकृपारश्मिभिः जगदगमिदं प्रकाशय।
चिरसुप्तं मामपि सम्बोधय नीचनिराशां नाशय।।४।।
गुञ्जय निजानुरागमधुकरं निजपदपद्मे मत्तम्।
कूजय मधुरमनोरथपिकमथ निजगुणगानविमत्तम्।।५।।

भावमयं खगकुलं निरलसं वियति विशुद्ध विनोदय।
गापय प्रीतिकोकिलां किल सुखलोकं प्रभो प्रमोदय।।६।।
निर्विकारमथ सुमनः सुमनः सुमनः सुखं विकासय।
परमानन्दमरन्दभरेण परेश पुनश्च चकाशय।।७।।
मम विवेककिसलयमभिनवय नवीनपयोधरसुन्दर।
शरणागतपञ्जरविरुदं स्मर हे भववारिधिमन्दर।।८।।
स्वप्रपत्तिमयमुषःकालमभिलोकय देव विभातम्।
गिरिधरहृद्‌यगगने उदितः प्रकटय प्रार्थितं प्रभातम्।।९।।

भौमी– अब रूपक अलंकार द्वारा भगवान् श्रीराम से प्रार्थना करते हुए कहते हैं– हे राघव! प्रभु श्रीराम मेरे संसारभार को नष्ट कर दीजिए। हे सूर्यवंशरूप कमल के सूर्य श्रीराम! मेरे जीवन में आई हुई माया रूपी रात्रि को निरस्त कर दीजिए अर्थात् दूर भगा दीजिए। ममतारूपिणी चंचल चकोरी के प्रिय मोहरूपी चन्द्रमा को दूर कर दीजिए। पापरूप उल्लुओं के समूह को भगा दीजिए और मत्सररूप चोर को मुझसे दूर कर दीजिए। भजन की पद्धतिरूप कमलिनी को प्रसन्न कीजिए। कुमतिरूपिणी कुलटा को शोकाकुल कीजिए अर्थात् दुर्बुद्धि को हर लीजिए और निर्मल विरतिरूपिणी चक्रवाकी को प्रसन्न कीजिए तथा संसार की भयविडंबना रूप कुमुदिनी को दुःखी कर दीजिए। हे रश्मिरथ्य, अर्थात् रश्मि रथ सूर्य के कुल में प्रकट प्रभु श्रीराम! अपने कृपा किरणों द्वारा इस जडचेतनात्मक जगत् को प्रकाशित कीजिए और चिरकाल से सोये हुए मुझे भी जगा दीजिए और मेरी नीच निराशा को नष्ट कर दीजिए। अपने श्रीचरण में मतवाले मेरे प्रेमरूप भ्रमर को गुञ्जित कर दीजिए अर्थात् गुनगुनवा दीजिए। अपने गुणगान में पागल मेरे मधुरमनोरथरूप कोकिल को कुहका दीजिए। हे प्रभो! परमपवित्र श्रीराम! मेरे भावरूप पक्षिसमूह को आलस्यरहित करके भावनामय आकाश में विनोदित कीजिए, आपविषयक मेरी प्रीतिरूप कोकिला से अपना गुणगान कराइए। मेरे सुख समूह को सन्तुष्ट कीजिए। हे सुमनः अर्थात श्रेष्ठ मन वाले श्रीराम! मेरे विकार रहित सुन्दर मनरूप पुष्प को सुखपूर्वक विकसित कीजिए और हे परमेश्वर! पुनः मेरे मनःपुष्प को परमानंदरूप मकरंद से भरकर सुशोभित कीजिए। हे नवीन बादल के समान सुन्दर, मेरे विवेकरूप पल्लव को नवीन बनाइए और हे भवसागर को मथने के लिए मन्दराचलस्वरूप प्रभु! आप शरणागत के लिए पिंजरे के समान हैं, इस विरुद का भी स्मरण कीजिए। हे प्रभु श्रीराम, देवाधिदेव, अपनी शरणागतरूप इस उषाकाल को निहारिए और मुझ कवि **गिरिधर** के हृदयाकाश में सूर्य के समान उदित होकर मेरे द्वारा प्रार्थित प्रातःकाल को प्रकट कीजिए। अर्थात् प्रभातकाल की संपूर्ण भूमिका मेरे हृदयरूप आकाश में उपस्थित कर दीजिए।

सन्दर्भश्लोकः

जानीमः परमं ब्रह्म कौसल्योत्सङ्गलालितम् ।
धूलिधूसरसर्वाङ्गं राघवं लघु विग्रहम्।।१।।

भौमी– हम तो कौसल्या जी के द्वारा अपनी गोद में लेकर दुलराए जाते हुए सम्पूर्ण अंगों में धूलि से धूसरित बालरूप श्रीराघव को ही परब्रह्म के रूप में जानते हैं।

गीत संख्या १२

राघव मा कुरु किमपि विलम्बम् ।
अधिभवनिधि मज्जते सपदि मे दिश कररुहावलम्बम्।।१।।
षड्विकारमलकलितमनार्यं पामरपातकपीनम्।
पाहि पाहि पार्वतीनाथ हित! पापपयोनिधिमीनम्।।२।।
शरणागतपालकं तव यशः सद्भ्यः श्रुत्वा यातम्।
अगतिं पतितमिमं परिपालय श्रीपदरजोऽनुयातम्।।३।।
सर्वैर्जगति निरादृतमभिकं शरणागतमघपात्रम्।
प्रांशुपातकं पाहि परमपद गलधृतकलियुगदात्रम्।।४।।
यया करुणया राम रक्षितो गृद्ध्रो जरठजटायुः।
तयैवाद्य पाल्यतामेष निष्पक्षः शीघ्रमघायुः।।५।।
मन्त्रमथो यन्त्रं न च तन्त्रं योगविधिं न हि जाने।
भ्राम्यन्भवाटवीमभि सततं त्वामपि नाथ विजाने।।६।।
लब्ध्वा मानवतनुं भजनमपि विषयी क्वापि न कुर्वे।
त्वयि न दधे क्षणमात्रमपि मनस्तनुरुचिविगणितदूर्वे।।७।।
एतावान्निर्घृणो निरीशो निकृतो निम्नो नीचः।
मयि कपटिनि कुटिले कुमतौ जिह्नेति हरे मारीचः।।८।।
तव गुरुगोत्रजनिर्द्विजबन्धुर्गतदृक् साधनहीनः।
अनेनैव भावेन गिरिधरो रक्ष्यो नितरां दीनः।।९।।

भौमी- हे श्रीराघव, कुछ भी विलम्ब मत कीजिए। इस संसार सागर में डूबते हुए मुझको अपने श्रीकर की उँगली का अवलम्ब दे दीजिए। हे पार्वतीपति शिव जी के आराध्य, छः विकारों और मलों से युक्त, असभ्य, नीच, पापों के कारण स्थूल, पापसागर की मछली मुझ जीव की रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए। आप शरणागतों के पालक हैं ऐसा आपका यश महात्माओं से सुनकर आपके श्रीचरणों में आए हुए और आपकी चरणधूलि का अनुगमन करते हुए सभी गतियों से शून्य इस पतित का पालन कीजिए। इस संसार में सबके द्वारा अपमानित कामान्ध, पापों के पात्ररूप, कलिकाल द्वारा गले में काटने वाले हँसिया नामक शस्त्र को धारण किए हुए मुझ बहुत बड़े पापी की रक्षा कीजिए क्योंकि आप परमपद स्वरूप हैं। हे श्रीराम! आपने जिस करुणा से बूढ़े गृद्ध जटायु की रक्षा की थी उसी करुणा से लोक-परलोक दोनों पक्षों से हीन इस पापायु जन की भी शीघ्र रक्षा कीजिए। हे नाथ! मैं मन्त्र, यन्त्र, तन्त्र और योगविधि भी नहीं जानता, यहाँ तक कि संसार के जंगल में दिनरात भटकता हुआ मैं आपश्री का भी तो अपमान करता हूँ। हे प्रभो! मानव शरीर पाकर भी मैं विषयी प्राणी कभी भी आपका भजन नहीं करता, अपनी शरीरकांति से दूर्वादल की भी सुंदरता को लज्जित करने वाले आपश्री में भी एक क्षण भी मैं अपने मन को नहीं लगाता। हे श्रीहरे! मैं इतना निर्दय, अनीश्वरवादी, सभी के द्वारा ठुकराया हुआ निम्नपथगामी नीच हूँ कि मुझ कपटी, कुटिल, कुबुद्धि प्राणी पर तो कपटमृग बना

हुआ मारीच भी लज्जित हो जाता है। हे प्रभो! मैं कवि **गिरिधर** आपके गुरुदेव श्रीवसिष्ठ के गोत्र में जन्मा हूँ। यद्यपि मैं ब्राह्मणोचित कर्मों से हीन होने के कारण द्विजबन्धु अर्थात् अधम ब्राह्मण हूँ, मैं नेत्रहीन और साधनों से भी हीन हूँ, परन्तु आपके गुरुगोत्र में मेरा जन्म हुआ है केवल इसी भाव से आप मेरी रक्षा कीजिए।

गीत संख्या १३

कर्हिंचित्तव कृपा मयि भविष्यति प्रभो।
या कृपा ते कृपाणीव हन्तुं हरे
कर्हिंचिन्मद्रिपून् प्राभविष्यति प्रभो।।१।।
या कृपा ते भवत्तोऽपि वल्सलतरा
कर्हिंचिन्मय्यनाथे द्रविष्यति प्रभो।।२।।
या कृपा हे कृपानाथ निर्जरगवी
कर्हिंचिन्मङ्गलं मे स्त्रविष्यति प्रभो।।३।।
या कृपा ते कमनकल्पतरुवल्लरी
कर्हिंचिन्मत्कृते शम्भविष्यति प्रभो।।४।।
या कृपा ते कृपणपाल चिन्तामणिः
कर्हि चिन्मद्दरिद्रां दविष्यति प्रभो।।५।।
या कृपा ते पुनातीव गङ्गाजगद्
कर्हिंचिन्मन्मलान्यभि भविष्यति प्रभो।।६।।
या कृपा ते सुमातेव ममतामयी
कर्हिंचिन्मद्व्यथामनुभविष्यति प्रभो।।७।।
या कृपा ते स्वयं रामसीतामयी
कर्हिंचिन्मां विपद्भ्योऽप्यविष्यति प्रभो।।८।।
या कृपा ते सुनौकेव भववारिधेः
कर्हिंचिद् गिरिधराय प्लविष्यति प्रभो।।९।।

भौमी– अब कवि श्रीराम की कृपायाचना करते हुए प्रार्थना करते हैं– हे प्रभु श्रीराम! मुझ पर आपकी कृपा कब होगी? आपकी जो कृपा तलवार के समान है वह मेरे बाह्य और आन्तर शत्रुओं को मार डालने में कब समर्थ होगी? जो आपकी कृपा आपश्री से भी अधिक वत्सला है वह मुझ अनाथ पर कब द्रवित होगी? हे कृपानाथ! आपकी जो कृपा कामधेनु के समान है वह मेरे लिए कब मंगलरूप दुग्ध को प्रदान करेगी? जो आपकी कृपा सुन्दर कल्पलता के समान है वह मेरे लिए कल्याणों को कब उत्पन्न करेगी? हे दीनों के पालक प्रभु श्रीराम! आपकी जो कृपा चिन्तामणि के समान अभीष्टदायिनी है वह मेरी दर्रिद्रता को कब भस्मसात् करेगी अर्थात् मुझको आपके प्रेमधन से कब सम्पन्न करेगी। हे प्रभो! आपकी जो कृपा गंगाजी के समान सम्पूर्णजगत् को पवित्र करती रहती है वह मेरे मलों को कब नष्ट करेगी? हे प्रभो! आपकी जो कृपा आदर्श माता की भाँति ममतामयी है वह मेरी व्यथा का कब अनुभव करेगी। हे प्रभो! आपकी जो कृपा श्रीसीतास्वरूपा

है वह विपत्तियों से मेरी कब रक्षा करेगी? आपकी जो कृपा भवसागर से पार करने के लिए सुन्दर नौका के समान है वह मुझ कवि **गिरिधर** के लिए कब जहाज बनेगी अर्थात् मुझे पार कब करेगी?

गीत संख्या १४

कर्हिचित्तां कृपां मयि करिष्यसि हरे।।
रामराजीवलोचन सुगुणवारिधे
विमलविज्ञान तामनुसरिष्यसि हरे।।१।।
यां समाश्रित्य पारं गजाद्या गता
विश्ववारान्निधौ येऽपतन्दुस्तरे।।२।।
तामुपासीन एषोऽस्मि पापीष्ठको
नाथ रोदिम्यनीशो मले निर्भरे।।३।।
परमबर्बरखलः पापिचूडामणिः
क्रन्दमानोऽस्म्यनाथः श्लथक्कुस्वरे।।४।।
सन्मुखेभ्यो निशम्याथ कीर्तिं शुभाम्
तावकीनां मृताऽशोप्यसून् स्वान् भरे।।५।।
कुत्र गच्छामि कं वेदये वेदनाम्
लब्धजन्मास्मि काले कलौ दुर्भरे।।६।।
ज्ञानगर्वोप्यखर्वो महान् मत्सरो
दुष्टधीर्दैव बीजं वपाम्यूसरे।।७।।
भूरिनिष्किञ्चनोऽसाधनोऽहं जनो
घोरसिन्धुं कथं नाथ वै निस्तरे।।८।।
हे प्रणतपाल नरपाल सीतापते
राम कार्या कृपा पामरे गिरिधरे।।९।।

भौमी- हे श्रीहरे! आप वह कृपा मुझ पर कब करेंगे? हे लाल कमल के समान नेत्र वाले, सद् गुणों के महासागर निर्मल विज्ञान संपन्न प्रभु श्रीराम! उस कृपा का अनुसरण कब करेंगे, जिस कृपा को प्राप्त करके गज– अजामिल आदि भवसागर से पार चले गए, जो अतरणीय भवसिन्धु में गिर पड़े थे। हे नाथ! उसी कृपा का मैंने भी सहारा लिया है जो बहुत बड़ा पापी हूँ। अतएव असमर्थ होकर भयंकर मल में फँसा हुआ रो रहा हूँ। हे प्रभो! परम बर्बर (अन्त्यन्त नीच), खल, पापियों में चूडामणि अर्थात् श्रेष्ठ पापी, असहाय होकर काँपते हुए विकृत स्वर में क्रन्दन कर रहा हूँ। मेरी आशाएँ मर चुकी हैं फिर भी सन्तों के मुख से आपश्री की शुभकीर्ति सुनकर पुनः आशान्वित होकर अपने प्राणों को धारण कर रहा हूँ कि कभी न कभी आपकी मुझ पर कृपा होगी ही। मैं कहाँ जाऊँ? अपनी वेदना किससे कहूँ? क्योंकि मैंने दुर्भर कलिकाल में जन्म लिया है, मुझे ज्ञान का बहुत गर्व है और मेरे मन में बहुत बड़ा मत्सर भी है। दुष्ट बुद्धि वाला मैं ऊसर में बीज बो रहा हूँ जो कभी नहीं अंकुरित होगा। हे प्रभो! मैं अत्यन्त निष्किञ्चन साधनहीन एक जीव हूँ। आप ही बताएँ मैं इस घोर भवसागर से

कैसे पार होऊँ? अन्त में मैं यही कह सकता हूँ कि हे प्रणतों के पालक, सीतापते राजाधिराज श्रीराम! मुझ पामर **गिरिधर** कवि पर ऐसी कृपा की जाय जिससे मैं भवसागर तर जाऊँ।

गीत संख्या १५

राम शीघ्रं मयीषत्कृपा क्रियताम्।
मनः षड्भिर्विकारैर्न विक्रियताम्।।
त्यक्त्वा रागरोषौ सकलजीवशोषौ
भवत्पादपद्मं हृदा व्रियताम्।।१।।
यावन्तोऽप्यभीष्टाः शरीरसम्बन्धा
भवत्येव सर्वैः समाहूयताम्।।२।।
अनन्येन मनसा विगतभूरिरभसा
भवद्व्यतिरिक्तं निराक्रियताम्।।३।।
सत्सङ्गकीर्तनभजनखिन्नसेवा
भवत्प्रीत्यर्थं समनुश्रियताम्।।४।।
कलिमलविजनितं निखिलदोषराशिम्
मारं मारं मनसा निराद्रियताम्।।५।।
भवद्भक्तिबाधकसकलदोषजातम्
चेतसो बलेन तद् बहिः क्रियताम्।।६।।
मनोव्योम्नि भगवन् मनोज्ञमुखचन्द्रमा-
श्चक्षुश्चकोरकेण सत्क्रियताम्।।७।।
प्राकृतःप्रवञ्चको मलीमयूरव्यंसकः
परितः प्रपञ्चोऽपि परिह्रियताम्।।८।।
करसरोजयुगलं युगलकृपालसितम्
रामभद्र गिरिधरशिरसि ध्रियताम्।।९।।

भौमी- हे श्रीराम! मुझ पर थोड़ी कृपा की जाय जिससे मेरा मन छहों विकारों से विकृत न हो। संपूर्ण जीवों को सुखाने वाले राग और रोष को छोड़कर मेरे हृदय द्वारा आपके श्रीचरणों का वरण किया जाय। जितने भी इस शरीर के मनभाए संबंध हैं वे आपश्री में ही समाहित हो जायें। सम्पूर्ण उद्वेग से रहित मेरे अनन्यमन द्वारा आपसे अतिरिक्त सभी सम्बन्धियों को दूर कर दिया जाय। आपश्री के सन्तोष के लिए ही सत्संग, कीर्तन, भजन और विकलांग जनों की सेवा की जाय। कलिमल से उत्पन्न हुई सम्पूर्ण दोषराशियों को बार-बार नष्ट करके मेरे मन द्वारा उनका निरादर किया जाय। आपके भजन के बाधक सम्पूर्ण दोषों को बलपूर्वक चित्त से बाहर किया जाय। मेरे मन के आकाश में विराजमान आपश्री के सुन्दर मुखचन्द्र का मेरा मानसिक नेत्रचकोर समादर करता रहे। यह प्रकृति के सम्बन्धों से युक्त जीवात्मा को ठगने वाला, मलिन, मयूर के समान धूर्त

संसार का प्रपञ्च भी मेरे द्वारा छोड़ दिया जाय। हे रामभद्र! आप दोनों श्रीसीताराम जी की कृपा से सुशोभित आपका करकमल युगल मुझ कवि **गिरिधर** के शिर पर रख दिया जाय।

सन्दर्भश्लोकः

स्वर्नीता कृपया यया च गणिका मुक्ता गजाद्या यया
मध्येवारिधि शैलसेतुरवितो वन्या यया पालिताः।
मद्वारे च विलम्बसे रघुपते तामेव कुर्वन् कृपां
मद्दुर्दैवदवाग्निनैव च कृपा कादम्बिनी शोषिता।।१।।

हे प्रभु श्रीराम! आपकी जिस कृपा ने रूपजीवा गणिका वेश्या को भी स्वर्ग दे दिया, जिस कृपा ने गज, गृद्ध आदि को मुक्त कर दिया, आपकी जिस कृपा ने सागर के बीच में पत्थरों का सेतु बँधा दिया , जिस कृपा ने असभ्य वानरों और भालुओं का भी पालन किया हे रघुपते! आप उसी कृपा को करने में मेरी बारी आने पर विलंब कर रहे हैं। लगता है कि मेरे दुर्भाग्यरूप दावाग्नि ने भी आपकी कृपा मेघमाला को भी सुखा दिया है।

गीत संख्या १६

कथय किम् कृपा विस्मृता राम।
उत्तरकोसलपते दिशोत्तरमभिनवजलधरश्याम।।१।।
स्तम्भात्प्रकटीभूय नृहरिवपुषा प्रह्लादस्त्रातः।
वैदिकधर्मं द्विषन्विनिहतोऽसुरस्तदीयस्तातः।।२।।
प्रणतपाल हे तथा पाल्यतां मम कल्पिता प्रतिज्ञा।
भवेदन्यथा जगति श्रिता जगदीश्वर ते दुर्भिज्ञा।।३।।
निजरिपुबन्धुःकिल विभीषणो भवता त्रातो भृत्यः।
सम्प्रति कलिनाप्यहं ताडितः शिरसि विकल्पितनृत्यः।।४।।
विपटा सदसि भवन्ती द्रुपदसुता भवता सन्त्राता।
सम्प्रति मम वृत्तिर्हे भगवन् किल पाञ्चाली जाता।।५।।
धावसि दण्डकवने प्रसभमनुगच्छन्कपटकुरङ्गम्।
मम राघव सम्प्रति नियच्छ चञ्चलमथमनस्तुरङ्गम्।।६।।
रासि राम भरताय पादुकां चित्रकूटगिरिचारिन्।
देहि तथावलम्बनं मह्यं सीतामनोविहारिन्।।७।।
हंसि मैथिलीमपाजिहीर्षुं रघुवर दनुजविराधम्।
हर्तुकाममथमतिं कलिं क्षमसे किं लसदपराधम्।।८।।
हे अदभ्रकरुणासागर नटनागर दूषणदूषण।
शरणागतं पाहि गिरिधरमपि रामभद्र नृपभूषण।।९।।

भौमी- हे श्रीराम! आप बताएँ आपने अपनी कृपा को क्यों भुला दिया है? हे उत्तर कोसल के स्वामी नवीन बादल के समान श्यामल प्रभु श्रीराम उत्तर दीजिए। आपने नृसिंह रूप धारण करके, खम्भे से प्रगट होकर प्रह्लाद की रक्षा की। वैदिक धर्मद्रोही उस असुर हिरण्यकशिपु का वध किया जो भक्त प्रह्लाद का पिता था। हे प्रणतपाल! उसी प्रकार मेरी प्रतिज्ञा का पालन कीजिए नहीं तो हे जगदीश्वर! इस संसार में आपका अपयश फैल जाएगा। आपने अपने शत्रु रावण के भाई भक्त विभीषण की रक्षा की। इस समय अनेक प्रकार से नाचता हुआ मैं भी कलिकाल द्वारा शिर पर ताडित हुआ हूँ। अर्थात् रावण ने विभीषण की छाती पर प्रहार किया था तब आपने उसकी रक्षा की थी; जबकि कलिकाल ने मेरे शिर पर प्रहार किया है फिर भी मेरी रक्षा नहीं कर रहे हैं। आपने कृष्णावतार में राजसभा में निर्वस्त्र होती हुई द्रौपदी की रक्षा की तो हे भगवन्! इस समय मेरी वृत्ति भी पाञ्चाली हो गई है अर्थात् बहुत लोगों पर निष्ठा करने लगी है। अतः इसकी रक्षा करके इसे एकनिष्ठ बनाइए। हे श्रीराघव! आपश्री दण्डकवन में कपटमृग के पीछे दौड़ते हैं और उसका वध करते हैं। इस समय मेरे मनरूप चञ्चल अश्व को नियंत्रित कर लीजिए। हे श्रीराम! आप श्रीचित्रकूट में विराजमान श्रीभरत को पादुका प्रदान करते हैं, हे सीता जी के मन में विहार करने वाले प्रभु, उसी प्रकार मुझे भी कोई न कोई अवलम्ब दीजिए। हे रघुवर! आप श्रीसीता जी के हरण की इच्छा कर रहे विराध नामक राक्षस का वध करते हैं तो फिर मेरी बुद्धि के हरण की कामना कर रहे अपराधी कलिकाल को क्यों क्षमा कर रहे हैं। हे असीम करुणा के सागर, चतुर लीलानट, दूषण के भी शत्रु, राजाओं के अलंकार श्रीरामभद्र, शरण में आए हुए मुझ कवि **गिरिधर** की भी रक्षा कर लीजिए।

गीत संख्या १७

जय राम सगुण करुणानिधान
जय विधिहरिहरकृतचरितगान।।१।।
जय तनुरुचिविगणितकोटिकाम
जय रामराम नयनाभिराम।।२।।
जय दशरथसुकृतपयोधिचंद्र
शोभासमुद्र जय रामचन्द्र।।३।।
जय अजगवखण्डन जानकीश
जय जनकसुखद कोसलाधीश।।४।।
जय पितृनिदेशकृतविपिनगमन
जय चित्रकूटभयकूटशमन।।५।।
जय सुरपतिसुतमदहरणबिशिख
जय दनुजगहनवनदहनत्रिशिख।।६।।
जय दण्डकपावनकरणचरण
जय कपटहरिणकृतशमनुसरण।।७।।
जय प्रणतपाल मारुतिकृपाल
जय दशमुखवंशकरालकाल।।८।।

जय कोसलनृप राजीवनयन
जय कृतगिरिधरहृदरण्यशयन।।९।।

भौमी– अब महाकवि श्रीराम का जय-जयकार कर रहे हैं– हे सगुणसाकार, ब्रह्म, करुणानिधान श्रीराम आपकी जय हो। ब्रह्मा, विष्णु और शिव द्वारा जिनके चरित्र का गान किया गया है ऐसे प्रभु श्रीराम आपकी जय हो। अपनी शरीरशोभा से करोड़ों कामों की निंदा करने वाले, परशुराम के भी नेत्रों को आनन्द देने वाले प्रभु राम आपकी जय हो। हे दशरथ जी के पुण्यक्षीरसागर के चन्द्रमा आपकी जय हो। हे शोभा के सागर श्रीरामचन्द्र आपकी जय हो। हे शिवधनुष तोड़ने वाले सीतापति, जनक को सुख देने वाले, अयोध्यापति श्रीराम आपकी जय हो, जय हो। पिता की आज्ञा पालन करते हुए वनगमन करने वाले प्रभु आपकी जय हो, चित्रकूट के भयसमूहों को नष्ट करने वाले प्रभु आपकी जय हो। इन्द्रपुत्र जयन्त के अहङ्कार नाशक बाणधारी प्रभु आपकी जय हो और राक्षसवन को भस्म करने के लिए अग्निस्वरूप प्रभु आपकी जय हो। दण्डकवन को पवित्र करने वाले श्रीचरण कमल, कपटमृग का अनुसरण करने वाले प्रभु श्रीराम आपकी जय हो, जय हो। हे प्रणतों के पालक, श्रीहनुमान् जी पर कृपा करने वाले प्रभु आपकी जय हो। हे रावणवंश के भयानक काल आपकी जय हो। हे अयोध्याधिपति, हे राजीवनयन, हे कवि **गिरिधर** के हृदयरूप वन में शयन करने वाले प्रभु श्रीराम आपकी जय हो, जय हो।

गीत संख्या १८

वरदीय मदीयमनो नियच्छ
निजपादपद्मभक्तिं प्रयच्छ।।१।।
हे शङ्करमानसराजहंस
हे हंसवंशहंसावतंस।।२।।
हे सीताननचन्दिरचकोर
जनचित्तचोर हतदनुजघोर।।३।।
हे रघुकुलकैरवकमनचन्द्र
सुमनोऽभिरमय मम रामचन्द्र।।४।।
मदमान महां ममतां जहातु
संकल्पशून्यमथ भवति भातु।।५।।
न कथञ्चन मां विकरोतु राम
भजनं करोतु वितनोतु धाम।।६।।
चञ्चलकपिमिव निगृहाण प्रभो
चरणे बधान न पुषाण विभो।।७।।
अतिनीचमिदं पतितं पुनीहि
मम पापवनं लवतत लुनीहि।।८।।

हे भरतभद्र भवभाव भाहि
गिरिधरं धनुर्धर पाहि पाहि।।९।।

भौमी– हे वरदान देने वाली सीता जी के पति श्रीराम मेरे मन को नियंत्रित कीजिए। मुझे अपने श्रीचरणकमल की भक्ति दीजिए। हे श्रीशंकर के मनमानस सरोवर के राजहंस, हे सूर्यवंश के सूर्य, श्रीदशरथ के भी आभूषण, हे सीता जी के मुखचन्द्र के चकोर, हे भक्तों के चित्त को चुराने वाले, हे घोर राक्षसों का वध करने वाले, हे रघुकुलरूप कुमुदवन को विकसित करने वाले चन्द्रमा, हे श्रीरामचन्द्र मेरे सुन्दर मन को रमा दीजिए। मेरा यह मन मदमान और संसार की बहुत बड़ी ममता को छोड़ दे तथा सभी संकल्पों से शून्य होकर आपके समीप ही सुशोभित हो। हे श्रीराम! यह मन किसी भी प्रकार मुझे विकृत न करे, आपका भजन करे और दिव्य तेज का विस्तार करे। हे प्रभो! चञ्चल बंदर के समान दुष्ट इस मेरे मन को निगृहीत कीजिए। हे सर्वव्यापक! इसे अपने चरणों में बाँध लीजिए, इसका पोषण मत कीजिए। हे लव के पिताश्री! इस अत्यन्त नीच पतित मन को पवित्र कीजिए और मेरे पाप के वन को काट डालिए। हे श्रीभरत का कल्याण करने वाले, हे श्रीशंकर द्वारा पूजित प्रभु श्रीराम! आप प्रकाशित होइए। हे धनुर्धर! मुझ कवि **गिरिधर** की रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए।

गीत संख्या १९

श्रृणु हे राजीवनयन राम रावणारे।
भ्रमति भवभवाटवीमभीक्ष्णमक्षियुगलहते।।
मयि द्रव दयानिधे प्ररूढषड्विकारे।।१।।
कोऽपि नो सहायकः पिता न माता स्वामी सखा।
बन्धुरो निमज्जति भवाम्बुधावपारे।।२।।
निराधारे निराचारे निरासारे निराकारे।
विषीदामि भगवन्निलीनघोरकारे।।३।।
कं ब्रजामि कं भजामि कं वदामि कं श्रयामि।
दूरचुल्लुकोऽस्मि जातो भ्राम्यन् द्वारे द्वारे।।४।।
श्रुत्वा तुलसिदासमुखात् सुस्वभावं दाशरथेः।
कथं कथञ्चिदागतोऽहं महाराजद्वारे।।५।।
कामक्रोधलोभनक्रमहामत्स्यसङ्कुले ।
भयाकुले विभेमि भीषभीमपारावारे।।६।।
झटिति सम्प्रसार्यतामाजानुबाहुर्महाबाहो।
देहि मे करावलम्बनं प्रभो खरारे।।७।।
खलु विलम्ब्य महाराज राजराज दीनबन्धो।
पाहि पाहि मां निमग्नं वारिधावसारे।।८।।
शोषणेभ्यो वैभवविकारपूगपोषणेभ्यो।
गिरिधरं गिरीश रक्ष रक्ष राक्षसारे।।९।।

भौमी- अब महाकवि अपने आराध्य के प्रति दैन्य प्रकट करते हुए कहते हैं– हे राजीवलोचन! रावण के शत्रु सुनिए– दोनों नेत्रों से हीन संसार के वन में भटकते हुए छहों विकारों से युक्त मुझ साधक पर आप द्रवित हो जाइए; क्योंकि आप दयानिधि हैं। इस अपार सागर में डूबते हुए मेरे विषय में पिता–माता, स्वामी, मित्र, भाई आदि कोई भी सहायक नहीं है। भगवन्! घोर बन्दीगृह से युक्त, आधाररहित, आचरणरहित, श्रेष्ठ आकारों से रहित, और तत्त्वहीन इस संसार में मैं बहुत कष्ट पा रहा हूँ। प्रभो! किसके पास जाऊँ? किसका भजन करूँ? किससे कहूँ? किसका आश्रय लूँ? द्वार–द्वार पर भटकता हुआ मैं, एक चुल्लू जल भी नहीं पा रहा हूँ। गोस्वामी तुलसीदास जी के मुख से आपश्री दशरथनंदन का सुन्दर स्वभाव सुनकर मैं आप महाराज के द्वार पर किसी प्रकार आ गया हूँ। हे भयों के भी ईश्वर प्रभु श्रीराम! काम, क्रोध, लोभरूप घड़ियाल और महामत्स्यों से युक्त भयाकुल भयंकर इस संसारसागर में मैं बहुत डर रहा हूँ। हे महाबाहो! हे खर के शत्रु! सर्वसमर्थ प्रभु श्रीराम! अपने आजानुबाहु शीघ्र बढाइए और मुझे अपने श्रीहस्त का अवलम्बन दीजिए। हे महाराज! हे राजाओं के राजा! हे दीनबन्धु श्रीराम! अब विलंब मत कीजिए। असार संसारसागर में डूबे हुए मुझ दास की रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए। हे वाणी के ईश्वर! हे राक्षसों के शत्रु भगवान् श्रीराम! संसार के विकार समूहों के पोषक यह चकाचौंध केवल शोषण ही कर रहे हैं। इसलिए मुझ **गिरिधर** की इनसे रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए।

गीत संख्या २०

जय जय राम सीताराम।
भवमहाम्बुधि मथनमन्दर सहजसुन्दरश्याम।।१।।
तनुविभाजितनवलजलधरकोटिशितशतकाम।
वामभागविराजमानधरित्रिसुताभिराम।।२।।
कटिनिषङ्गशिलीमुखावलिकलितकरशरचाप।
दिनकरान्वयदीप दिनकरकोटिकोटिप्रताप।।३।।
शिशुदिवाकरचारुचपलाबल्गुबल्कलवस्त्र।
प्रणतजनरक्षणनिपुणचण कलितसद्गुणशस्त्र।।४।।
शिरसि मृदुलप्रसूनमण्डितजटामुकुटमनोज्ञ।
विमलबोध विशुद्धविग्रह महितकाननभोग्य।।५।।
सततसीतालक्ष्मणार्चित सुभगचरणसरोज।
विजितरतिऋतुराजसहचरकोटिकोटिमनोज।।६।।
पतितपावनचरितचर्चित वन्दनीयचरित्र।
सुकविमानसहंसमङ्गल विश्ववार्धिवहित्र।।७।।
मैथिलीमञ्जुलमनोहरवदनचन्द्रचकोर।
प्रणतजनसंकटनिकरहर कोसलेन्द्रकिशोर।।८।।
ब्रह्म परमेश्वर नरेश्वर नलिनसुमसुकुमार।
विहर गिरिधरमनसि चिन्मय चित्रकूटविहार।।९।।

भौमी- अब रूपक ताल में निबद्ध गीत गाते हुए महाकवि अपने आराध्य श्रीसीताराम जी की जय–जयकार करते हैं। भवसागर को मथने के लिए मन्दरस्वरूप, स्वभाव से सुन्दर, श्याम शरीर हे श्रीराम! हे श्रीसीताराम! आपकी जय हो, जय हो। अपने शरीर की कांति से नवीन बादल एवं अगणित कामदेवों को जीतने वाले, वामभाग में विराजमान पृथ्वीपुत्री जानकी जी को आनंद देने वाले प्रभु आपकी जय हो। कटितट पर बाणों से भरे हुए दो तरकश धारण करने वाले, श्रीहस्त में धनुषबाण धारण किए हुए, सूर्यकुल के दीपक एवं कोटि–कोटि सूर्यों के समान प्रताप वाले प्रभु, आपकी जय हो। करोड़ों बालसूर्यों एवं बिजली के समान शोभा से संपन्न पीतवल्कलवस्त्र धारण किए हुए एवं प्रणतजनों के रक्षण की कुशलता से युक्त, श्रेष्ठ सद्‌गुण एवं शस्त्रों को धारण करने वाले प्रभु, आपकी जय हो। शिर पर कोमल पुष्पों से युक्त सुन्दर जटामुकुट धारण किए हुए, निर्मलज्ञानसम्पन्न, तीनों गुणों से अतीत विशुद्ध शरीर एवं वनभोग्य विषयों को भी सम्मानित करने वाले प्रभु, आपकी जय हो। श्रीसीतालक्ष्मण जी से निरन्तर पूजित सुन्दर श्रीचरणकमल अपनी इस मूर्तिजयी शोभा से रति, वसन्त एवं कामदेव को जीतने वाले प्रभु श्रीराम आपकी जय हो। पतितपावन जैसे सुयश से सुशोभित वन्दनीय चरित्रवाले श्रेष्ठ कवियों के मनरूप मानससरोवर के हंस, भवसागर के लिए जलपोत स्वरूप मंगलमूर्ति श्रीराम आपकी जय हो। श्रीसीता जी के मधुर एवं मनोहर मुखचन्द्र के चकोर भक्तों के संकट समूह को नष्ट करने वाले दशरथ राजकिशोर आपकी जय हो–जय हो। हे परब्रह्म परमेश्वर, हे राजाधिराज, हे कमल से भी सुकुमार शरीर, हे चिन्मय चित्रकूट में विहार करने वाले प्रभु श्रीराम मुझ **गिरिधर** के मन में विहार कीजिए।

गीत संख्या २१

कं ब्रवीमि वेदनां विना भवन्तमीश्वरम्।
कः शृणोति सङ्कटं सतामृते श्रियोवरम्।।१।।
एक एव वैभवान्प्रपन्नपालनव्रतः।
सत्यसन्ध एक एव दीनरक्षणे रतः।।२।।
त्वां विहाय कस्य हृद्यशेषशेषसंस्थितिः।
कस्य हृद्यहो प्रपन्नपालविरुदसंस्मृतिः।।३।।
कोऽभवत्प्रतिश्रुतिं ह्यवन्मनुष्यकेसरी।
केन निर्विशेष चिन्तनेऽप्यरक्षि वै करी।।४।।
कोऽपुनात्स्वपादधूलितः शिलामघायुषम्।
सञ्चकार कः सुतो यथा जडं जटायुषम्।।५।।
कश्चखाद सम्प्रसस्य भिल्लभामिनीफलम्।
कस्य नाम मारुतेरभूत् समग्रसम्बलम्।।६।।
केन बन्धुताडितः कपिस्सखेव पालितः।
केन वैरिबन्धुरप्यमोघवैर्लालितः।।७।।
प्रस्तराश्च केन लीलयाम्बुधौ हि तारिताः।
केन नाम जापिनां ग्रहा अपि प्रतारिताः।।८।।

षड्विकारिशेखरं कुबोधभारभृत्खरम्।
को गिरा गृणाति गिरिधरं विना धनुर्धरम्।।९।।

भौमी– आपश्री सर्वसमर्थ प्रभु श्रीराम के बिना मैं अपनी वेदना किससे कहूँ। सीतापति आप श्री के बिना सन्तों का संकट कौन सुनता है? इस त्रिलोकी में शरणागतों के पालन का व्रत लेने वाले एकमात्र आप ही हैं। एकमात्र आप ही दीनों की रक्षा में तत्पर और सत्यप्रतिज्ञ हैं। भला आपको छोड़कर कौन संपूर्ण भक्तों के पास उपस्थित रहता है? अरे! आपको छोड़कर किसके हृदय में शरणागत विरुद का स्मरण रहता है। भला आपको छोड़कर भक्त की प्रतिज्ञा की रक्षा करने के लिए कौन नरसिंह बना? बिना किसी के नाम चिन्तन करने पर भी आपके अतिरिक्त किसने गजराज की रक्षा की। आपके अतिरिक्त पापिनी शिला को अपनी चरणधूलि से किसने पवित्र किया? और आपके अतिरिक्त अधम गृद्ध जटायु का किसने पुत्र की भाँति दाह संस्कार किया? आपके अतिरिक्त भील्लिनी के फल किसने खाये, आपके अतिरिक्त किसका नाम श्रीहनुमान् जी का संबल बना। आपके अतिरिक्त अपने भाई से प्रताड़ित वानर सुग्रीव को किसने पाला? आप के अतिरिक्त शत्रु के भाई विभीषण को अमोघ वर देकर किसने सम्मानित किया? आपके अतिरिक्त किसने समुद्र में पत्थरों को तैराया और किसने अपने नामजापकों के सभी ग्रहों को दूर किया? आप ही बताइए, आपश्री धनुर्धारी राघवेन्द्र राम के बिना छहों विकारों से युक्त, पापियों के मुकुटमणि अज्ञानभार को ढोते गधे के समान मुझ **गिरिधर** को अपनी वाणी से बुलाकर किसने सम्मानित किया? केवल आपने और किसी ने नहीं।

गीत संख्या २२

रामभद्र रोदिमि पतन् भवसागरमध्ये।
उपवसामि धनदालयेऽपीन्धनं न विन्ध्ये।।१।।
त्वादृक् सुपतितपावनो नो श्रुतो न दृष्टः।
मादृक् पतितशिरोमर्णिन विधात्रा सृष्टः।।२।।
अनन्वयं ह्युभयत्र वै पश्याब्जविलोचन।
त्वमिव त्वमहमिवाहकं भवभीतिविमोचन।।३।।
मया त्वादृशे स्वामिने दत्तं निजपृष्ठम्।
दण्डयसे न तथापि किं मां पापवरिष्ठम्।।४।।
सति सर्वज्ञशिरोमणौ नाथे च समर्थे।
पतितस्सीदति सेवकः संकटे निरर्थे।।५।।
स्वातिघने सतिवारिदे चातकोऽपि म्रियते।
सति सिंहे तस्यार्भको जम्बुकेन हृयते।।६।।
भवति कामरिपुवन्दिते किल नृत्यति कामः।
किं प्रभवति दिवसेश्वरे रजनीपरिणामः।।७।।
शीघ्रमेहि करुणानिधे कौतुकं विलोचय।
तर्जय कालमिमं कलिं शोकञ्च विमोचय।।८।।

गिरिधरमानसमन्दिरे प्रतितिष्ठ खरारे।
विहर दिवानिशि सञ्चरन्नघनाशमघारे।।९।।

भौमी– हे रामभद्र! मैं भवसागर में गिरता हुआ रो रहा हूँ। मैं कुबेर के भी भवन में उपवास कर रहा हूँ और मुझे विन्ध्याचल में भी जलाने के लिए लकड़ी भी नहीं मिल रही है। हे प्रभो, आपके समान पतितपावन न सुना गया न देखा गया और मेरे समान भी पतित शिरोमणि विधाता के द्वारा रचा ही नहीं गया। हे कमललोचन! आप दोनों ओर अनन्वय देखिए अर्थात् यदि आपके समान कोई पतितपावन नहीं है तो मेरे समान कोई पतित भी नहीं है। हे भवभयहारी श्रीहरि आपके समान आप ही हैं तो मेरे समान मैं ही हूँ। मैंने आप जैसे स्वामी को पीठ दी है फिर भी आप मुझ सबसे बड़े पापी को क्यों नहीं दंडित करते हैं। आश्चर्य है आप जैसे सर्वज्ञशिरोमणि समर्थ स्वामी के रहते हुए भी यह सेवक निरर्थक संकट में पड़कर कष्ट पा रहा है। अरे, स्वाति के मेघ जैसे जलदाता के रहने पर भी चातक पानी के विना मर रहा है। सिंह के उपस्थित होते हुए भी उसका बच्चा गीदड़ के द्वारा चुराया जा रहा है। शङ्कर द्वारा पूजित आपश्री के उपस्थित रहने पर भी मेरे आगे काम नर्तन कर रहा है। सूर्य के उपस्थित होने पर भी रात्रि का परिणाम (अन्धकार) क्यों समर्थ हो रहा है? क्या यह उचित है? हे करुणानिधान श्रीराम शीघ्र आइए और यह कौतुक देखिए। इस कलिकाल को तर्जना दीजिए और मेरा शोक दूर कर दीजिए। हे खरदूषण के शत्रु श्रीराम! मुझ कवि **गिरिधर** के मानस मन्दिर में प्रतिष्ठित होइए और पापहारी हरि मेरे पापों को नष्ट करते हुए मेरे मनमन्दिर में दिवानिशि विहार कीजिए।

गीत संख्या २३

रघुनन्दन राघव राम हरे
जय राम हरे सीताराम हरे।।
जय तनुजितशतशतकाम हरे
जय नीलसरोरुहश्याम हरे।
जय भवभयविषदविराम हरे
जय राम हरे सीताराम हरे।।१।।
जय कोमलश्यामशरीर हरे
रघुवीर हरे रणधीर हरे।
जय नरपतिललितललाम हरे
जय राम हरे सीताराम हरे।।२।।
जय रघुकुलकैरवचन्द्र हरे
जय शोभासुगुणसमुद्र हरे।
जय जनलोचनाभिराम हरे
जय राम हरे सीताराम हरे।।३।।
जय रविकरनिन्दकवस्त्र हरे
जय खलगणनाशकशस्त्र हरे।

जय सुन्दरसुभगनिकाम हरे
जय राम हरे सीताराम हरे।।४।।
जय शङ्करमानसहंस हरे
जय दिनकरकुलावतंस हरे।
जय सीतावर सुखधाम हरे
जय राम हरे सीताराम हरे।।५।।
जय दशरथराजकुमार हरे
जय शिरिषकुसुमसुकुमार हरे।
जय राघव पुण्यप्रणाम हरे
जय राम हरे सीताराम हरे।।६।।
जय दशमुखकालकराल हरे
जय सेवकसज्जनपाल हरे।
जय शीलसकलगुणधाम हरे
जय राम हरे सीताराम हरे।।७।।
जय कोसलमञ्जुलभूप हरे
जय भग्नविनतभवकूप हरे।
जय पूरितनिजजनकाम हरे
जय राम हरे सीताराम हरे।।८।।
जय कटितटलसितनिषङ्ग हरे
जय चरणसरोरुहरङ्ग हरे।
जय गिरिधरदृग्विश्राम हरे
जय राम हरे सीताराम हरे।।९।।

भौमी- हे रघुनन्दन, हे राघव, हे श्रीराम, हे सीताराम, श्रीहरि आपकी जय हो। अपनी शोभा से करोड़ों कामों को जीतने वाले, नील कमल के समान श्यामल और संसार की विपत्तियों के विरामस्थल हे श्रीराम! आपकी जय हो। हे कोमलश्यामशरीर, हे रघुवीर, हे रणधीर हे राजाओं में सुन्दर रत्न श्रीराम, आपकी जय हो। हे रघुकुलकुमुद के चन्द्रमा! हे शोभा और सद्‌गुणों के महासमुद्र! हे भक्तों के नेत्रों को आनंद देनेवाले श्रीराम! आपकी जय हो। हे सूर्यकिरणों के निन्दक पीताम्बरधारी, हे खलों को नष्ट करने वाले दिव्यशस्त्रों से संपन्न हे सुन्दरों में भी सुन्दर, काम के निषेधक प्रभु श्रीराम आपकी जय हो। हे शिव जी के मन मानस के सरोवर के हंस, हे सूर्यकुल के आभूषण, हे संसार की इच्छाओं से रहित, हे सीतापति श्रीराम आपकी जय हो। हे दशरथ जी के ज्येष्ठ राजकुमार, शिरीष पुष्प के समान सुकुमार पवित्र प्रणाम श्रीराम, आपकी जय हो। हे रावण के कराल काल, हे सेवकसज्जनों के पालक, शील आदि श्रेष्ठ गुणों के भवन श्रीराम आपकी जय हो, जय हो। हे श्री अयोध्या के श्रेष्ठ राजा, हे भक्तों के भवकूपों के नाशक, निजजनों की कामनाओं के पूर्ण करने वाले प्रभु

राम आपकी जय हो। हे कटितट पर तरकस सुशोभित करने वाले, अपने श्रीचरणों में भक्तों को आनंद देने वाले और **गिरिधर** कवि के नेत्रों में विश्राम करने वाले श्रीराम आपकी जय हो, जय हो।

गीत संख्या २४

गीयतां रघुपति हि श्रीरामः सीतालोचनमनोऽभिरामः।।१।।
शङ्करमानसमञ्जुलहंसः हंसवंशवनरुहकलहंसः।।२।।
धृतकरतलशायकवरचापः कोटिकोटिरविसदृशप्रतापः।।३।।
मुनिगणगीतसुमङ्गललीलः वेदपुराणविदितगुणशीलः।।४।।
वर्धितकौसल्यासुखसिन्धुः भरतशत्रुहरलक्ष्मणबन्धुः।।५।।
श्यामसरोरुहजलदशरीरः परमहंसदयितो रघुवीरः।।६।।
मारुतिमानसमञ्जुमरालः श्रीराघवः प्रणतकुलपालः।।७।।
दशमुखकदनप्रबलभुजदण्डः कालकरालसदृशकोदण्डः।।८।।
ब्राह्मणधेनुसुजनहितकारी गिरिधरमानसभवनविहारी।।९।।

भौमी- उन रघुपति श्रीराम का गुणगान करना चाहिए जो सीता जी के नेत्र और मन के आनंददाता हैं जो शिव जी के मन-मानस सरोवर के सुन्दर हंस तथा सूर्यवंश रूप कमल को विकसित करने के लिए स्वयं बालसूर्य स्वरूप हैं। जिन्होंने करकमल में धनुष-बाण धारण किए हैं, जिनका प्रताप करोड़ों-करोड़ों सूर्यों के समान है, जिनकी मंगलमयी लीलाओं का मुनिगण गान करते हैं, जिनके गुण और स्वभाव वेदों और पुराणों में प्रसिद्ध है, जिन्होंने कौसल्या जी के सुख महासागर को तरङ्गित किया है और जो भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न के बड़े भैया हैं जिनका शरीर नीले कमल और बादल के समान सुन्दर है, जो परमहंसों को प्रिय और परमहंस महात्मा जिन्हें प्रिय हैं जो त्यागवीरता, दया वीरता, विद्या वीरता, पराक्रम वीरता तथा धर्म वीरता से उपलक्षित होकर रघुकुल के एकमात्र वीर हैं जो श्रीहनुमान के मनमानस के राजहंस तथा शरणागतों के पालक हैं। जिनकी भुजाएँ रावण के दशों शिरों को काटने में समर्थ हैं और भयंकर काल ही जिनका धनुष है और जो ब्राह्मण, गौ और सन्तों के हितकारी तथा **गिरिधर** कवि के मानस भवन में निरन्तर विहार करते रहते हैं, ऐसे प्रभु श्रीराम का गुणगान करते रहना चाहिए।

गीत संख्या २५

मङ्गलानि तव हे रघुनन्दन
करुणाकर सज्जनकुलचन्दन।।१।।
कटिनिषङ्गकरकार्मुकशायक
भाग्यविधायक जनसुखदायक।।२।।
तरुणतमालजलदसमविग्रह
कृपानिधान विहितखलनिग्रह।।३।।
शिवसर्वस्व चरित्रमनोहर
रणकौशलचकितीकृतहरिहर ।।४।।

शरणागतपालक भवभञ्जन
कृपानिधान सुजनकुलरञ्जन।।५।।
मर्यादापुरुषोत्तम राघव
सदाभक्तभवसागरवाडव ।।६।।
श्रीसीतावर दीनदयालो
लक्ष्मणवन्दित परं कृपालो।।७।।
मारुतिसेवितचरणसरोरुह
मधुपविनिन्दकसुभगशिरोरुह ।।८।।
परमीश्वर सुखमङ्गलकारिन्
गिरिधरमानसविपिनविहारिन् ।।९।।

भौमी- हे रघुनन्दन, हे करुणा की खान, हे सज्जन कुल को आनन्द देने वाले, हे कटि में तरकस तथा श्रीहस्त में धनुष बाण धारण करने वाले, हे भाग्य विधाता, हे भक्तों के सुखदाता, हे नवीनतमाल तथा बादल के समान श्रीविग्रह, करुणा के कोश एवं दुष्टों के दंडदाता, हे शिव जी के सर्वस्व रूप मनोहर चरित्रों से संपन्न तथा अपनी युद्धकुशलता से विष्णु और शिव को चकित करने वाले, शरणागतों के पालक, संसार भार को नष्ट करने वाले, कृपा के खजाना, तुम सज्जन समूह को आनंद देने वाले, मर्यादा पुरुषोत्तम रघुवंशियों में श्रेष्ठ, सदैव भक्त के भवसागर को सुखाने हेतु वाडवाग्निस्वरूप, सीतापति, दीनों पर दया करने वाले, लक्ष्मण जी के द्वारा वन्दित, हे परमकृपालु, हे प्रभो, हे हनुमान जी द्वारा सेवित श्रीचरणकमल, भ्रमरों को भी निंदित करने वाले, काले घुँघराले केशों से युक्त, हे परमेश्वर, हे सुखों और मंगलों को करने वाले, **गिरिधर** कवि के मनरूपवन में विहार करने वाले, भगवान् श्रीराम, आपका मंगल हो, मंगल हो।

गीत संख्या २६

ध्यायतां जलदसुन्दरश्यामः
तनुसुषमाजितशतशतकामः ।।१।।
दशरथसुकृतपयोनिधिचन्द्रः
परमानन्दसुधासुखसान्द्रः ।।२।।
शरणागतपालनशुभशीलः
शिवसनकादिकथितनवलीलः ।।३।।
श्रीसीतामुखचन्द्रचकोरः
कुशलः कोसलराजकिशोरः ।।४।।
कारुणिकः श्रुतिसम्मतकर्मा
वैदिकधर्ममहितवरवर्मा ।।५।।
कलित दिव्यमङ्गलसुखसिन्धुः
जनवत्सलो दीनकुलबन्धुः।।६।।

निशितविशिखमण्डितकोदण्डः
कामहस्तिकरसमभुजदण्डः ।।७।।
भारतभाग्यनवाम्बरभानुः
दनुजमहावनदहनकृशानुः ।।८।।
भवभयसङ्कटशोकविरामः
कृतगिरिधरमानसविश्रामः ।।९।।

भौमी- अपनी शरीर की शोभा से अनेक कामों को निंदित करने वाले महाराज दशरथ के पुण्यरूप क्षीरसागर के चन्द्रमा, परमानंद रूप अमृत एवं अनुकूल वेदनीय सुख के घनीभूत विग्रह, शरणागतों का पालन ही जिनका कल्याणमय स्वभाव है, जिनकी नवीन लीलाओं का शुकाचार्य और सनकादि गान करते हैं। जो परम कारुणिक हैं, जो वेद सम्मत कर्म करने में ही विश्वास करते हैं, वैदिक धर्म ही जिनका सुन्दर कवच है, जो दिव्य मंगल और सुख के महासागर हैं, जो भक्तवत्सल तथा दीनजनों के एकमात्र बन्धु हैं, जिनका धनुष नुकीले बाण से सुशोभित है, जिनकी भुजाएँ कामदेव के हाथी की सूँड के समान हैं, जो भारतभाग्यरूप नवीन आकाश के सूर्य हैं, जो राक्षसकुल रूप महावन को भस्म करने के लिए अग्नि स्वरूप हैं, जो संसार के भयसंकट और शोक के अभाव के स्थान हैं, जो **गिरिधर** कवि के मन में विश्राम करते हैं ऐसे नवीन बादल के समान श्याम भगवान श्रीराम का ध्यान करना चाहिए। राम का गुणगान कीजिए, राम का ही ध्यान कीजिए।

गीत संख्या २७

सपदि किल रमय मनो मम राम
नीचनिरङ्कुशनिकृतनिरादृतमिदं दमय श्रीराम।।१।।
हे हरहृदयसरोजमधुपवर
रघुवर करुणासिन्धो।।२।।
शीघ्रं मनोगजं नियच्छ
चरणाङ्कुशतो जनबन्धो।।३।।
क्षणमपि नो तिष्ठति भवत-
श्चरणे बहुमलं तनोति।।४।।
वारं वारं सुस्मृतवारं
जीवमिदं विकरोति।।५।।
व्रणयति हृदयं गतभयमदयम्
नहि शिक्षणं शृणोति।।६।।
भुक्तोज्झिता न हो विषयान्
श्वेवेदं सदा विवृणोति।।७।।
हे हनुमत्सारङ्गपयोधर
मैथिलिहृदयललाम ।।८।।

शरणागतं गिरिधरं पायाः
प्रणतहृदयविश्राम ।।९।।

भौमी– हे श्रीराम! मेरे मन को शीघ्र ही रमा दीजिए। इस नीच, अपमानित, अनुशासन के अंकुश से रहित, संसार से ठुकराए हुए मन का दमन कीजिए। हे शंकर जी के हृदयकमल के भ्रमरश्रेष्ठ, करुणा के महासागर, सज्जनों के बन्धु रघुवर श्रीराम इस मन मतंग को अपने चरण के अंकुश से शीघ्र ही नियन्त्रित कीजिए। हे प्रभो! यह एक भी क्षण आपके श्रीचरण में स्थिर नहीं रहता, निम्नकोटि के मल का विस्तार करता रहता है। बारम्बार वासनारूप वारांगना का स्मरण करके इस जीवात्मा को भी विकृत करता है। हे प्रभो! यह निर्दय मेरा मन निर्भीक होकर मेरे हृदय को घायल करता रहता है। किसी की शिक्षा भी नहीं सुनता। अहो! कुत्ते की भाँति भोगकर छोड़े हुए विषयों का ही वरण करता है। हे हनुमान्‌रूप चातक के स्वातिघन श्रीराम, हे सीताजी के हृदय के श्रीरत्न, प्रणतों के हृदय में विश्राम करने वाले प्रभु! शरण में आए हुए मुझ **गिरिधर** की रक्षा कीजिए।

सन्दर्भश्लोकः

सीतारामौ तदनुभरतो लक्ष्मणो वायुसूनुः
श्रीवाल्मीकिस्तदनुतुलसीदासनामा कवीन्द्रः।
वन्द्यायोध्या रघुपतिपदैरङ्कितैश्चित्रकूटो
लोके शेते नवसुकृतिनो रामभक्त्यै जयन्ति।।१।।

भौमी– श्रीसीताजी, भगवान श्रीराम अनन्तर श्रीभरत, लक्ष्मण, श्रीहनुमान्, महर्षि वाल्मीकि, गोस्वामी तुलसीदास, वन्दनीया श्रीअयोध्या, श्रीराम के श्रीचरण से अंकित श्रीचित्रकूट ये नौ (९) सुकृज्जन तीनों लोकों में श्रीराम भक्ति के लिए उत्कृष्ट उपकरण के रूप में विराजमान हैं।

गीत संख्या २८

जयति राघवप्रिया सीता महितजनकसमेतसीता।
लसदवधसाकेतसीता जयति राघवप्रिया सीता।।१।।
आदिशक्ती रामभक्तिः रामपदपरमानुरक्तिः।
ब्रह्ममयमायाभिव्यक्तिः विश्ववन्द्यसती पुनीता जयति राघवप्रिया सीता।।२।।
गोसुरगवीगव्यदेहा विहितरघुवरपदस्नेहा हरधनुर्मदखण्डनेहा।
चक्रवर्तिवधू विनीता जयति राघवप्रिया सीता।।३।।
चतुरमिथिलाधिपकिशोरी राममुखचन्दिरचकोरी।
रुचिविजितरतिरमागौरी मूर्तिरिवकृपा प्रणीता जयति राघवप्रिया सीता।।४।।
राघवेण समं विहर्तुम् भूभरं किल समाहर्तुम्।
वनजुषां भवभयं हर्तुम् वनमिता वनिताऽवनीता जयति राघवप्रिया सीता।।५।।

चित्रकूटविहारदक्षा प्रणतजनरक्षैकदीक्षा।
कृतपुरन्दरपुत्ररक्षा आर्यनारीगुणपरीता जयति राघवप्रिया सीता।।६।।
कृतहुताशनमध्यवासा क्षपितसेवकमनस्त्रासा।
विहतलंकापतिदुराशा वरदवल्लभमनसिनीता जयति राघवप्रिया सीता।।७।।
पवनसुतसौमित्रिमाता राममहिषी जगत्ख्याता।
सिद्धिरिव रघुराजिराता भगवती भगवत्प्रतीता जयति राघवप्रिया सीता।।८।।
विशदवेदपुराणगीता संहितागमकाव्यगीता।
आदिकवितुलसीसुगीता सततगिरिधरगिरा गीता जयति राघवप्रिया सीता।।९।।

भौमी- जनक के सहित हल की रेखा को सम्मानित करने वाली, श्रीअवध एवं साकेत को सुशोभित करने वाली, श्रीराघव की धर्मपत्नी श्रीसीताजी की जय हो। आदिशक्ति श्रीरामभक्तिस्वरूपिणी, श्रीराम की परम अनुरक्तिस्वरूपा, स्वयं परब्रह्मस्वरूपिणी, भगवान श्रीराम की साक्षात् कृपामय प्रस्तुति, समस्त संसार में वन्दनीय पवित्र सती सीता जी की जय हो। पृथ्वीरूप कामधेनु का गव्यरूप जिनका शरीर है अर्थात् जो पृथ्वी से प्रकट हुई हैं, जिन्होंने श्रीराम के चरणकमल में स्नेह किया है, जिनकी चेष्टा से शिव जी के धनुष का मद खण्डित हुआ ऐसी विनम्र चक्रवर्ती दशरथ जी की बड़ी पुत्रवधू सीता जी की जय हो। चतुर महाराज जनक की राजकिशोरी श्रीराम के मुखचन्द्र की चकोरी, अपनी शोभा से रति, लक्ष्मी और गौरी को भी जीतने वाली मूर्तिमयी श्रीराम की कृपा सीता जी की जय हो। श्रीराम के साथ विहार करने के लिए भूभार को समेटने के लिए, वनवासियों का भवभय हरने के लिए, युवती होकर भी पृथ्वी पर पधारकर वनवास स्वीकार करने वाली श्रीसीता जी की जय हो। चित्रकूट के विहार में कुशल, प्रणतजनों की रक्षा को ही अपनी दीक्षा मानने वाली, इन्द्रपुत्र जयन्त की प्राणरक्षा करने वाली, भारतीय नारी के सम्पूर्ण गुणों से युक्त सीताजी की जय हो। अग्नि के मध्य निवास करने वाली भक्तों के मन का त्रास नष्ट करने वाली लंकापतिरावण के दुराशा को नष्ट करने वाली, वरदान देने वाले अपने प्राण वल्लभ श्रीराम के मनोमंदिर में विराजमान श्रीसीता जी की जय हो। पवनपुत्र और लक्ष्मण जी की माँ जगत् विख्यात श्रीराम की पत्नी, रघुकुल के राजा श्रीराम को जनक जी द्वारा सिद्ध के समान ही प्रदान की हुई भगवान श्रीराम की एकमात्र विश्वासपात्र रूपा भगवती सीता जी की जय हो। वेद–पुराणों द्वारा संहिता और काव्यों द्वारा जिन्हें निरन्तर गाया गया, जिनको आदिकवि वाल्मीकि और तुलसीदास जी ने गाया, ऐसी मुझ कवि **गिरिधर** की वाणी के गान का विषय बनी भगवती सीता जी की जय हो।

गीत संख्या २९

जयति रघुकुलतिलकरामः।
आप्तकामः पूर्णकामः छविविनिन्दितकोटिकामः।।१।।
जानकीहृदयाभिरामः निटिलनयनमनोभिरामः।
प्रणतजननयनाभिरामः निखिलराजकुलाभिरामः।।२।।
अमलमरकतमणिश्यामः सजलमञ्जुलघनश्यामः।
विमलयामुनजलश्यामः नवलदूर्वादलश्यामः।।३।।

अमृतकरकरनिकरहासः मैथिलीहृदयाधिवासः।
विहितमुनिसरसिजविकासः श्रीकरः श्रीहृल्ललामः।।४।।
शिशुमिहिरकरपीतपटधर पापशरकरकटिशराकर।
सततनिजजनभीतिघनहर हरहरात्मजकृतप्रणामः।।५।।
मुनिवधूदुरितापहारी गिरिशकार्मुकभङ्गकारी।
परशुराममदापहारी दशरथार्तिहरोऽविकामः।।६।।
चित्रकूटविहारभावन विहितदण्डकविपिनपावन।
कृतकनकहरिणानुधावन खगशवरिकाभयविरामः।।७।।
महितमारुततनयपृष्ठः कपिसखो रिपुबन्धुनिष्ठः।
रणरतो विदुषां वरिष्ठः दशमुखान्तकरोऽविरामः।।८।।
कोसलापतिरीड्यचरितः पदपयोरुहप्रकटसरितः।
गिरिधरेण गिरामुखरितः गीयते सीताभिरामः।।९।।

भौमी– समस्त कामनाओं को प्राप्त किये हुए एवं भक्तों की सभी इच्छाओं को पूर्ण करने वाले, अपनी शोभा से कोटि–कोटि कामों की निन्दित करने वाले रघुकुल तिलक श्रीराम की जय हो। श्रीसीता जी के हृदय को आनन्द देने वाले, जिनके मस्तक पर नेत्र हैं ऐसे शिव के मन को रमाने वाले, प्रणतजनों के नेत्रों को आनन्द देने वाले, सम्पूर्ण राजवंशों के आनन्ददाता श्रीराम की जय हो। नवीन मरकतमणि के समान श्यामल, सुन्दर वर्षाकालीन बादल के समान श्यामल, शरदकालीन यमुना जल के समान श्यामल, कोमल दूर्वादल के समान श्यामल श्रीराम की जय हो। अमृतस्रावी चन्द्रमा के किरणों के समान हासवाले, सीताजी के हृदय में निवास करने वाले, मुनिजनरूप कमल के विकासक दिव्य शोभा को प्रस्तुत करने वाले, सीता जी के हृदय रत्न श्रीराम की जय हो। बालसूर्य के समान पीतवस्त्र धारण करने वाले, हाथ में धनुष बाण एवं कटि में तरकस से सुशोभित, अपने भक्तों के सघन भय को हरने वाले, शिव एवं शिवजी के पुत्र कार्तिकेय और गणपति के भी प्रणम्य श्रीराम की जय हो। अहल्या के पाप को हरने वाले, शिवजी का धनुर्भङ्ग करने वाले, परशुराम के मद को भङ्ग करने वाले, श्रीदशरथ के आर्तिनाशक, विकृत कामनाओं से रहित श्रीराम की जय हो। श्री चित्रकूट में विहार से प्रसन्न, दण्डक वन को पवित्र करने वाले, कपटमृगमारीचि के पीछे–पीछे दौड़ने वाले, जटायु और शबरी के भय के अवसान स्थान श्रीराम की जय हो। श्री हनुमान् की पीठ को सम्मान देने वाले, सुग्रीव के मित्र शत्रुबन्धु विभीषण में भी विश्वास और निष्ठा रखने वाले, संग्राम में कुशल, विद्वानों में श्रेष्ठ, रावण के विनाशकारी, स्वयं अन्त से रहित श्रीराम की जय हो। अयोध्यापति पवित्र चरित्र से सम्पन्न, वामनरूप में अपने श्रीचरण से गङ्गा जी को प्रकट करने वाले, श्रीसीताभिराम भगवान् राम का कवि **गिरिधर** द्वारा भी संस्कृत भाषा में मुखरित होकर गुणगान किया जा रहा है, जय श्री सीताराम।

गीत संख्या ३०

जयति रघुपतिभक्तभरतः।
रामप्रेमप्रयागभरतः रामनामसुयागभरतः।।१।।

रामप्रेममयावतारः रामसेवाधर्महारः।
रामभक्तिसुधैकसारः रामपदपाथोजनिरतः।।२।।
खड्गधाराव्रतमहीपः दिनकरान्वयरत्नदीपः।
सततकृतराघवसमीपः विषमतमविषविषयविरतः।।३।।
अवधसुखवैभवविरागी रामचन्द्रपदानुरागी।
विरहसिंहासनसुरागी प्रभुवियोगविदग्धसुरतः।।४।।
नग्नपदगतचित्रकूटः भगवदीयसुभावकूटः।
शिरसिकल्पितजटाजूटः रामसीताभक्तिभरितः।।५।।
नदन्नन्दिग्रामवासी दर्भशयनगुहानिवासी।
राम राम रटन्नुदासी नयननिर्गलदश्रुसरितः।।६।।
पादुकानृपसचिववर्यः सततनिन्दितजननिकार्यः।
निशिदिवार्चितलक्ष्मणार्यः राघवं प्रणिधाय पुरतः।।७।।
विहितताम्रदृगश्रुजातः परिरुदन्शत्रुघ्नताातः।
नामजापकपारिजातः राममेव विभाव्य परितः।।८।।
भ्रातृभावसुभक्तिसीमा भरतनामा रामप्रेमा।
गिरिधरं सुखयेत्सभूमा माण्डवीपतिरीड्यचरितः।।९।।

भौमी- श्रीराम प्रेम के प्रयागरूप, श्रीराम नाम महायज्ञ, श्रीराम भक्त भरत जी की जय हो। जो श्रीराम प्रेम के ही अवतार हैं, श्रीराम सेवा ही जिनके हृदय का हार है, श्रीराम भक्तिरूप अमृत ही जिनका सार-सर्वस्व है ऐसे श्रीराम चरणकमल में निरत भरत जी की जय हो। खड्गधाराव्रतियों के महाराज, सूर्यवंश के रत्नमय दीपक निरन्तर श्रीराघव की समीपता करने वाले, अत्यन्त भयङ्कर विषयरूप विष से विरक्त भैया भरत की जय हो। श्री अवध के सुख-वैभवों से विरक्त, श्रीरामचन्द्र के चरणकमल में अनुरक्त एवं विरह के सिंहासन में आसक्त तथा भगवान् श्रीराम के वियोगाग्नि में संसार के भोग को भष्म करने देने वाले भरत जी की जय हो। नग्न चरणों से चित्रकूट प्रस्थान करने वाले, भगवदीय भावों के शिखरस्वरूप शिर पर जटाजूट धारण किये हुये, श्रीराम-सीता की भक्ति से भरे हुए भरतजी की जय हो। नन्दिग्राम में वास करके, श्रीराम विरह में क्रन्दन करते हुये भूमि में खोदकर बनाई हुई गुफा में कुश बिछाकर शयन करने वाले, विषयों से उदासीन रहकर श्रीराम राम रटते हुये अपने आँखों से आँसुओं की नदी बहाने वाले भरत जी की जय हो। अपने समक्ष श्रीराघव को उपस्थित करके पादुका महाराज के श्रेष्ठ मन्त्री की भूमिका निभाने वाले, माँ कैकेयी के कुकृत्यों की सदैव निन्दा करने वाले एवं रातदिन लक्ष्मण जी के बड़े भैया श्रीराम की पूजा करने वाले भरत जी की जय हो। शत्रुघ्न के बड़े भ्राता, श्रीराम नाम जापकों के लिये कल्पवृक्ष स्वरूप, सर्वत्र श्रीराम की ही भावना करके निरन्तर अपने लाल आँखों से आँसू बहाकर फूट-फूट कर रो रहे भरत जी की जय हो। माण्डवी के पति, स्तुति करने योग्य चरित्र वाले, भ्रातृत्व और भक्ति की सीमा, भरत नामक श्रीरामप्रेम, प्रभु श्रीराम के अत्यन्त निकटतम परिकर भावसे भरत मुझ **गिरिधर** को सुखी कर दें।

गीत संख्या ३१

जयति वै लक्ष्मण उदारः।
रामलक्ष्यमनः प्रसारः प्रथितलक्ष्मणनामसारः।।१।।
शेषिहरिशेषावतारः तनुविनिन्दितकर्णिकारः।
धृतरजितसमभुवनभारः सुमित्रादशरथकुमारः।।२।।
पीतचम्पककमलवर्णः रुचिविजितहिमगिरिसुवर्णः।
रामचन्द्रचरित्रकर्णः भवमहाम्बुधिकर्णधारः।।३।।
तूणशायकचापधारी कुणपकुलदर्पप्रहारी।
जनकसंशयशोकहारी नामरामानुजप्रचारः।।४।।
रामसेवारससुयोगः त्यक्तकोसलराज्यभोगः।
हतसुजनभवभीमरोगः सकलवैष्णवहृदयहारः।।५।।
रामसेवासुखविहारः जानकीवत्सलाधारः।
चित्रकूटहृदेकहारः दनुजसूदनसूत्रधारः।।६।।
उर्मिलापतिरतिविसङ्गः जानकीपदपद्मभृङ्गः।
रामसेवामात्ररङ्गः प्रभाव्रीडितकोटिमारः।।७।।
रामरणनिधिबाहुसेतुः दशमुखान्वयधूमकेतुः।
विबुधसुजनानन्दहेतुः शक्रजित्सरसिजतुषारः।।८।।
जीवजगदाचार्यवर्यः बलकदर्थीकृतकदर्यः।
सततसेवितराघवार्यो भवतु हृतगिरिधरविकारः।।९।।

भौमी– श्रीरामरूप लक्ष्य में जिनका मन प्रसरित रहता है, जिन्होंने लक्ष्मण नाम के सारतत्त्व को प्रकट किया ऐसे उदार लक्ष्मण की जय हो। जो शेषी श्रीराम के शेष अर्थात् सेवकरूप अवतार हैं, जिन्होंने अपनी शोभा से कर्णिकार पुष्प को जीत लिया है, जिन्होंने धूलि कण के समान पृथ्वी के भार को धारण किया है, ऐसे महारानी सुमित्रा और महाराज दशरथ के सुपुत्र श्रीलक्ष्मणकुमार की जय हो। पीली चम्पा और पीले कमल के समान सुन्दर, अपनी शोभा से स्वर्ण को भी जीतने वाले तथा श्रीरामचन्द्र के चरित्र को ही अपने कानों का विषय बनाने वाले, संसारसागर के कर्णधारस्वरूप लक्ष्मण जी की जय हो। तरकस–धनुष–बाण धारण करने वाले, राक्षस कुल के अहङ्कार को नष्ट करने वाले, महाराज जनक के संशय और शोक को मिटा देने वाले, जगत् में रामानुज नाम से विख्यात श्रीलक्ष्मण की जय हो। श्रीराम सेवा का रस ही जिनका सुन्दर सुयोग है, जिन्होंने श्रीराम सेवा के लिये ही श्रीअवध का राज्यभोग छोड़ दिया है और जिनके द्वारा भक्तजनों के भयङ्कर सांसारिक रोग नष्ट कर दिये गये हैं, ऐसे सभी वैष्णव जनों के हृदयहारस्वरूप लक्ष्मण जी की जय हो। श्रीरामसेवा में ही जो अपना सुखविहार मानते हैं, जो सीता जी के वत्सल रस के आश्रयालम्बन हैं, ऐसे श्री चित्रकूट के हृदयहारस्वरूप, राक्षसों के विनाश के सूत्रधार लक्ष्मण जी की जय हो। उर्मिला के पति संसार के रति से अत्यन्त अनासक्त, श्री सीताजी के चरण कमल के भ्रमर, श्रीरामसेवा में ही आनन्द की अनुभूति करने वाले, अपनी कान्ति से करोड़ों कामदेवों को लज्जित करने वाले लक्ष्मण जी की जय हो। श्री राम के युद्ध

सागर में जिनकी भुजा ही सेतु बनी, ऐसे रावणवंशरूप वंशवन के लिये अग्नि, देवता और सज्जनों के आनन्द के एकमात्र कारण तथा इन्द्रजित् मेघनादरूप कमल के लिये साक्षात् ओला श्रीलक्ष्मण की जय हो। जीवजगत् के श्रेष्ठ आचार्य, अपने बल से दुष्टों को समाप्त करने वाले, निरन्तर अपने बड़े भ्राता श्रीराघव जी की सेवा करने वाले, कुमार श्रीलक्ष्मण मुझ कवि **गिरिधर** के विकारों को समाप्त कर दें।

गीत संख्या ३२

जयति हनुमानाञ्जनेयः।
योगिधेयः ज्ञानिगेयः भवविभावितभागधेयः।।१।।
परममङ्गलभजनकीर्तनसकलकलिमलकुलनिकृन्तन।
पतितपावनहृदयचन्दन पवननन्दन नामधेयः।।२।।
जातरूपगिरीन्द्ररूपित विपुलदिनकरकुलसरुपित।
नेति नेति निगमनिरूपित खलविरुपितरूपधेयः।।३।।
परमधीरः महावीरः बज्रवरवानरशरीरः।
हृदयधृतरघुवंशवीरः समरधीरो विधिविधेयः।।४।।
रामभक्तशिवावतारः सकलगुणमङ्गलागारः।
मैथिलीवात्सल्यसारः विपुलवीर्यबलोऽप्रमेयः।।५।।
शैलधारी ब्रह्मचारी रामलक्ष्मणमोदकारी।
जानकीसन्तापहारी दलितनिशिचरचयोऽजेयः।।६।।
गोष्पदितजलनिधिरशङ्कः दनुजकाननकृतातङ्कः।
होलिकाकृतकनकलङ्क रोषपावकसमाधेयः।।७।।
दशवदनकुलकदनशीलः वेदविश्रुतविशदलीलः।
रामदूतवरः सुशीलः समरजीवितमागधेयः।।८।।
परंवैष्णवचक्रवर्ती रामभक्तजनानुवर्ती ।
रामभक्तिरसप्रवर्ती सदा गिरिधरगिरा गेयः।।९।।

भौमी- योगियों के ध्येय और ज्ञानियों के ज्ञेय तथा शिव जी भी जिनके भाग्य की प्रशंसा करते हैं ऐसे अञ्जनानन्दवर्धन हनुमान् जी की जय हो। जिनका भजन और कीर्तन परम मङ्गलमय है, जो संपूर्ण कलिमलों को नष्ट करने वाले हैं, ऐसे पतितपावन श्रीराम के हृदय को शीतल करने वाले पवन पुत्र हनुमान् की जय हो। जिनका स्वरूप स्वर्ण पर्वत के समान तथा जो अनेक सूर्यों के समान प्रकाशमान हैं, नेति–नेति कहकर वेदों ने जिनका निरूपण किया है, ऐसे खलों को विकृत करने वाले भीमरूप संपन्न हनुमान् जी की जय हो। ऐसे परमवीर वज्र के समान वानरशरीर, अपने हृदय में रघुवीर श्रीरामजी को विराजमान कराने वाले, युद्ध में स्थिर, ब्रह्मा जी के भी गुरु हनुमान् जी की जय हो। श्रीरामभक्त शङ्कर जी के अवतार, संपूर्ण गुण और मङ्गल के भवन, सीताजी के वात्सल्य के आलम्बन, अनन्तबल और पराक्रम से संपन्न, प्रमाणों से भी परे हनुमान् जी की जय हो। हाथ में पर्वत लिये हुए बालब्रह्मचारी श्रीरामलक्ष्मण को आनन्दित करने वाले, सीताजी के संताप को

हरने वाले, राक्षसों के संहारकर्ता अजेय हनुमान् जी की जय हो। जिन्होंने सागर को गाय का खुर जैसा बना दिया और जिन्होंने राक्षसवन में आतंक फैलाया तथा जिन्होंने स्वर्ण की लङ्का की होली जलाई, ऐसे श्रीसीताजी के क्रोधाग्नि के समाधानकर्ता हनुमान् जी की जय हो। जिनका स्वभाव ही रावण के कुल का विनाशक बना, जिनकी लीलाएं वेदों में प्रसिद्ध हैं ऐसे युद्ध में मेघनाद की वीरघातिनी शक्ति से मूर्च्छित सुमित्रानन्दन लक्ष्मण जी को जीवित करने वाले सुशील रामदूत हनुमान् जी की जय हो। ऐसे वैष्णव श्रेष्ठों के चक्रवर्ती श्रीरामभक्तों का अनुगमन करने वाले, श्रीरामभक्तिरस के प्रवर्तक और **गिरिधर** कवि की वाणी से सदैव ही गेय श्रीहनुमान् जी की निरन्तर जय हो।

गीत संख्या ३३

जयति वाल्मीकिः कवीन्द्रः।
भार्गवो वै भूसुरेन्द्रः चरणपङ्कजनतसुरेन्द्रः।।१।।
व्याधसङ्गात् कुस्वभावः सप्तऋषिदर्शनप्रभावः।
रामनामजपानुभावः पुनर्ब्रह्म महामुनीन्द्रः।।२।।
प्रथमकविताजन्मदाता आदिकविरथकाव्यधाता।
कविवराणां पिता माता पण्डयार्चितपण्डितेन्द्रः।।३।।
प्रथमरामायणस्त्रष्टा रामलीलामन्त्रद्रष्टा।
रामनामसुयागयष्टा कलपदैस्तोषितकपीन्द्रः।।४।।
मूलरामायणं गायन् रामकीर्तिं पिबन् कायन् ।
सदा सीतापदं ध्यायन् स्वरमधुरताजितपिकेन्द्रः।।५।।
लसदनुष्टुब्बहुलवृत्तैः विशदसीतारामवृत्तैः।
हनुमदादिकभक्तिकृत्यैः सञ्जगौ सारस्वतेन्द्रः।।६।।
अवनिपुत्र्यनुरागसर्गैः भरतलक्ष्मणकृतविसर्गैः।
रामचरितरसालवर्गैः रससमावर्जितशुकेन्द्रः।।७।।
अलङ्काररसाभिधाने काव्यगुणगौरवविधाने।
मनुजमर्यादाविताने रामभक्तिलसद्रसेन्द्रः।।८।।
रम्यरामायणप्रसङ्गैः विहतकलिकुलसमलसङ्गैः।
विजितशुचिगङ्गातरङ्गैः गिरिधरं समवतु ऋषीन्द्रः।।९।।

भौमी- भृगुवंश में उत्पन्न, ब्राह्मण श्रेष्ठ, अपने चरण कमल में इन्द्र को भी झुका देने वाले, कवीन्द्र वाल्मीकि की जय हो। पूर्व में व्याधों के सङ्गसे कुत्सित स्वभाव वाले, पुनः सप्तर्षियों के दर्शन प्रभाव से और श्रीराम नाम जप की कृपा से फिर ब्रह्मर्षि पद पर प्रतिष्ठित हुए वाल्मीकि जी की जय हो। प्रथम कविता के जन्मदाता, आदिकवि, काव्यजगत के ब्रह्मा, कविकुल के पिता–माता और अपनी सदसत् विवेकिनी बुद्धि से श्रेष्ठ पण्डितों को सम्मानित करने वाले, महर्षि वाल्मीकि की जय हो। प्रथम रामायण के रचयिता, श्रीरामलीला के रहस्य मंत्रद्रष्टा, रामनाम यज्ञ के यज्वा, अपने श्रेष्ठ पदों से कवियों को सन्तुष्ट करने वाले महाकवि वाल्मीकि

जी की जय हो। मूल रामायण को गाते हुये, श्रीरामकीर्ति रस को पी-पी कर कहते हुये सदैव श्रीसीता पद का ध्यान करते हुये, अपने स्वर की मधुरता से श्रेष्ठ कोकिल को जीतने वाले, महर्षि वाल्मीकि जी की जय हो। जिन सारस्वतेन्द्र अर्थात् कविश्रेष्ठ वाल्मीकि जी ने पवित्र सीतारामजी के चरित्रों से युक्त हनुमानजी आदि वैष्णवों के भक्तिकृत्यों से सुशोभित अनुष्टुप बहुत सुन्दर छन्दों में शतकोटि रामायण का गान किया, ऐसे महर्षि वाल्मीकि जी की जय हो। भूमिपुत्री सीताजी के अनुराग और निश्चयों से पूर्ण, श्रीभरत और लक्ष्मण जी के त्याग से संपन्न, श्रीरामचरितरूप बहुरंगे आम्र फलों के द्वारा श्रीराम रस से शुकाचार्य जैसे परमहंस को भी अपनी ओर आकर्षित करने वाले महर्षि वाल्मीकि जी की जय हो। मनुष्य की मर्यादा के वितानों से युक्त, अलंकार और रसों के कथन से पूर्ण, काव्यगुणों के गौरव की रचना में जिन्होंने रसराज शृंगार को भी श्रीरामभक्तिरस से सुशोभित कर दिया, ऐसे महर्षि वाल्मीकि जी की जय हो। कलिकाल के मलसमूहों को नष्ट करने वाले, अपनी पवित्रता से गंगाजी के तरंगों को भी जीतने वाले ऐसे श्रेष्ठ श्रीरामायण के प्रसंगों द्वारा ऋषिश्रेष्ठ वाल्मीकि मुझ कवि **गिरिधर** की रक्षा कर लें।

गीत संख्या ३४

जयति कविगुरुतुलसिदासः।
रामलक्ष्मणचरणदासः सुभगसीतास्मरणदासः।।१।।
सबाल्मीकिशुभावतारः भणितिभामिन्यलंकारः।
रामनामजपैकसारः रामभक्तमनोनिवासः।।२।।
ग्रामराजापुरविहारी तरणितनयापुलिनचारी।
सततसेवितधनुर्धारी जननिहुलसीमुखोल्लासः।।३।।
चन्द्रनृपजलधामचन्द्रः विरतिरात्र्यभिरामचन्द्रः।
गीतसीतारामचन्द्रः सन्तकुलकैरवविकासः।।४।।
लब्धनरहरिदासदीक्षः श्रितसनातनधर्मशिक्षः।
रामपद्मपदप्रतीक्षः क्षपितवैष्णवमनस्त्रासः।।५।।
रामतिलकविभातभालः रामघट्टसुकीर्तिभालः।
चित्रकूटतपोरसालः विहतखलकलिकुटिलरासः।।६।।
विश्वविश्रुतविभुविभूतिः विश्वनाथकृपाविभूतिः।
भारतीयसुखानुभूतिः सुसाहित्यविभाविभासः।।७।।
श्लोकदोहासोरठालसछन्दचौपाईसुधारस-
रचितरामचरित्रमानससुकवितावनिताविलासः ।।८।।
रामकथावरेण्यगाता रामभक्तजनैकधाता।
गिरिधरं भवभयात् त्राता जयति रघुवरहृदयवासः।।९।।

भौमी- श्रीराम-लक्ष्मण-सीता जी के चरण के वास एवं सुन्दर सीताजी के स्मरण के दास कविकुल के गुरु गोस्वामी तुलसीदास जी की जय हो। महर्षि वाल्मीकि के मंगलमय अवतार, कविता-वनिता के आभूषण,

श्रीराम नाम जप को ही एकमात्र तत्व मानने वाले उन गोस्वामी तुलसीदास जी की जय हो। राजापुर ग्राम में विहार करने वाले, यमुना तट पर भ्रमण करने वाले, निरन्तर धनुर्धारी श्रीराम की सेवा करने वाले, माता हुलसी के मुखोल्लास रूप (प्रसन्नता) तुलसीदास जी की जय हो। चन्द्रमा ही जिनके राजा हैं ऐसे ब्राह्मण कुलरूप क्षीरसागर के चन्द्रमा वैराग्यभावनारूप रात्रि के आनन्ददायक चन्द्र स्वरूप, श्री सीताराम चन्द्र को गाने वाले, सन्तरूप कुमुदवन के विकास कर्ता, गोस्वामी तुलसीदास जी की जय हो। श्री नरहरिदास जी से विरक्त वैष्णवी दीक्षा प्राप्त करके, सनातन धर्म की शिक्षा का आश्रय लेकर, जिन्होंने श्रीराम के चरणकमल की प्रतीक्षा की और वैष्णव जन के मन का त्रास नष्ट किया, ऐसे तुलसीदास जी की जय हो। जिनका श्रीमस्तक श्रीराम के द्वारा किये हुये तिलक से सुशोभित हुआ, जिनकी कीर्तिमाला चित्रकूट के रामघाट पर विराजी, जिन्हें चित्रकूट में तपस्या करके श्रीराम रस की अनुभूति हुई तथा जिन्होंने कलियुग का कुटिल रास नष्ट किया, ऐसे तुलसीदास जी की जय हो। परमात्मा श्रीराम के विश्व प्रसिद्ध विभूति स्वरूप, श्रीविश्वनाथ जी की कृपा रूप विभूति से युक्त, भारतीय दर्शन में सुख की अनुभूति करने वाले, सुन्दर साहित्य की कान्ति से प्रकाशित तुलसीदास जी महाराज की जय हो। जिन्होंने श्लोक-दोहा-सोरठा-छन्द और चौपाई जैसे मुख्य वृत्तों में श्रीरामचरितमानस की रचना करके कविता वनिता को बड़भागिनी बना दिया ऐसे गोस्वामी तुलसीदास जी की जय हो। श्रीरामकथा के श्रेष्ठ गायक, श्रीरामभक्त जनों के ब्रह्मा, अपने रामचरितमानस से मुझ कवि **गिरिधर** को भी भवभय से छुड़ाने वाले, भगवान श्रीसीताराम को अपने हृदय में बसाने वाले गोस्वामी तुलसीदास जी की जय हो।

गीत संख्या ३५

जयति रघुपति पुर्ययोध्या।
मनुविनिर्मितपुर्ययोध्या दशरथश्रिति पुर्ययोध्या।।१।।
आयतारवियोजनान्तं त्रीणि विस्तीर्णा दिगन्तम् ।
दीपयन्ती दीप्यमाना धाम विलसति पुर्ययोध्या।।२।।
अयोभिर्हरिविधिगिरीशैः शेषमुनिनारदगणेशैः।
सदाऽयोवद्ध्यायमाना ध्यानपरिणतिपुर्य्ययोध्या।।३।।
सरससरयूनीरशोभा सुकवियोगिमुनीन्द्रलोभा।
परमहंसैर्ज्ञायमाना ज्ञानगुरुगतिपुर्य्ययोध्या।।४।।
आदिकविना विविधसर्गैस्तुलसिदासगिराप्रवर्गैः।
सुकविवर्गैर्गीयमाना गानगुणधृतिपुर्य्ययोध्या।।५।।
दक्षिणे सरितो विमानं प्रथितत्रिशतधनुष्प्रमाणम्।
रामजन्मस्थलममाना लसति दधती पुर्ययोध्या।।६।।
यत्र खेलति रजसि रामः सानुजो नयनाभिरामः।
तेन भक्त्या भज्यमाना भाति भगवती पुर्ययोध्या।।७।।
यत्र विहरति मुदा सीता राघवेण समं प्रतीता।
हनुमता संसेव्यमाना भक्तिसंस्थितिपुर्ययोध्या।।८।।

श्रुतिसहस्त्रैः श्रूयमाणा रामभक्तैः श्रीयमाणा।
गिरिधराय प्रीयमाणा प्रेमपरिमिति पुर्ययोध्या।।९।।

भौमी– श्रीराम की पुरी अयोध्या की जय हो, वैवश्वत मनु ने जिसकी सीमा का निर्धारण किया और जो महाराज दशरथ की निवास राजधानी बनी, उस अयोध्या की जय हो। जो बारह योजन आयत और तीन योजन विस्तीर्ण है, वह संपूर्ण दिगन्तों को प्रकाशित करती हुई और स्वयं भी प्रकाशमान होती हुई, परमधाम रूप में विराजमान है। जो अयोभिः अर्थात् विष्णु, ब्रह्मा और शिवजी द्वारा एवं शेष देवर्षि नारद एवं गणपति द्वारा लौह के समान स्थिर होकर ध्यान का विषय बनायी जाती हुई ध्यान की सीमा बन चुकी है। जहाँ दिव्य सलिला सरयू शोभा पा रही हैं, जिस पर श्रेष्ठ कवि योगीन्द्र और मुनीन्द्र लुब्ध हो रहे हैं, जो परमहंसों के भी ज्ञान का विषय बनकर ज्ञान के गुरुओं का गन्तव्य स्थान बन गयी है। आदिकवि महर्षि वाल्मीकि के अनेक सर्गों तथा गोस्वामी तुलसीदास के अनेक वाणी–विभागों द्वारा कहीं कवितावली की कविताओं में, कहीं गीतावली के गीतों में और अन्य कवियों द्वारा भी गायी जाती हुई गीत परंपरा की धारणा शक्ति बन गयी है। सरयू माँ से दक्षिण की ओर तीन सौ धनुष की दूरी पर विशिष्ट सम्मान युक्त श्रीराम जन्मस्थल को धारण करती हुयी श्री अयोध्या सुशोभित हो रही है। जिस श्री अयोध्या में श्रीभरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न के साथ भगवान बालरूप राम खेलते हुये भक्तों के नेत्रों को आनन्द देते रहते हैं, उनके द्वारा भी भक्ति से भजी जाती हुई भगवती अर्थात् षडैश्वर्य संपन्न अयोध्या सुशोभित हो रही है। जिस श्री अयोध्या में भगवान श्रीराम के साथ विश्वस्त भाव से श्रीसीताजी विहार करती रहती हैं, ऐसी हनुमान जी द्वारा सेवित होती हुई भक्ति के निवास स्थान अयोध्या जी विराजमान हो रही है। अनेक श्रुतियों द्वारा श्रवण का विषय बनायी जाती हुई श्री रामभक्तों द्वारा आश्रय की जाती हुई और कवि **गिरिधर** के ऊपर प्रसन्न होती हुई यह अयोध्या पुरी श्रीराम प्रेम की सीमा बन गयी है, श्रीअवधधाम की जय हो जय हो।

गीत संख्या ३६

जयति चिन्मयचित्रकूटः।
रजतवर्णसुचित्रकूटः शुचिसुवर्णविचित्रकूटः।।१।।
शुभविवेकक्षेत्रकूटः विरतिवैभववेत्रकूटः।
ज्ञानयोगत्रिनेत्रकूटः रामभक्तिसवित्रकूटः।।२।।
महितमन्दाकिनितरङ्गः विहितकलिमलकलुषभङ्गः।
ललितसीतारामरङ्गः कलितकामदमित्रकूटः।।३।।
अत्रिरनसूयावदातः गुप्तगोदावरिविभातः।
स्फटिकशिलाप्रभाप्रभातः जडजयन्तजवित्रकूटः।।४।।
प्रथितरघुपतिपर्णशालः ललितलक्ष्मणरतिरसालः।
जानकीचरणाङ्कमालः प्रभुपदाङ्कपवित्रकूटः।।५।।
अतुलतुलसीपीठशोभः पवनसुतपदहतक्षोभः।
सुखदसाधनसुधनलोभः विषयविपिनलवित्रकूटः।।६।।

कलिततुलसीदासकूटः रामपैथिलिरासकूटः।
सुजनवृन्दविलासकूटः भरतचारुचरित्रकूटः।।७।।
द्रुहिणहरिहरजन्मभूमिः रामलक्ष्मणकर्मभूमिः।
भजनसाधनमर्मभूमिः प्रणतदोषसहित्रकूटः।।८।।
रामरत्नं समाहर्तुं साधनासंसदि विहर्तुम् ।
घोरभवसागरं तर्तुं गिरिधराय बहित्रकूटः।।९।।

भौमी- चाँदी के वर्ण वाले आश्चर्यमय शिखरों से युक्त तथा स्वर्ण शिखरों से विचित्र परमचेतन चित्रकूट की जय हो। जो सुन्दर विवेक का क्षेत्र तथा वैराग्य वैभव की वेत्रलता से युक्त शिखरों वाला और ज्ञानयोगरूप महादेव से युक्त एवं श्रीरामभक्ति के जन्मदाता शिखरों से सनाथित है। जो मन्दाकिनी के तरंगों से पूजित तथा कलियुग के मल और पापों को नष्ट करने वाला, श्रीसीताराम जी की विहारस्थली बना हुआ कामद पर्वत के सूर्य जैसे शिखरों से सुशोभित हो रहा है। जो तीनों सत्व-रजस्-तमस् नामक प्राकृत गुणों से रहित है, जो अनसूया जी के तप से स्वच्छ गुप्त गोदावरी से सुशोभित एवं स्फटिक शिला की प्रभा से प्रकाशित तथा मूर्ख जयन्त के प्राणान्तकारी भयवेग का रक्षा स्थान है। जहाँ श्रीराम की पवित्र पर्णशाला है, जो श्री लक्ष्मण की भक्ति से रसीला हो चुका है, जहाँ श्रीसीता के श्रीचरणकमल के चिन्ह माला की भाँति विराज रहे हैं, जिसके शिखर भगवान श्रीराम के चरण चिन्हों से पवित्र हो चुके हैं। जहाँ अतुलनीय है तुलसीपीठ की शोभा और हनुमान जी के श्री चरणों ने जिसका क्षोभ नष्ट कर दिया है, जहाँ सुखद भजन साधन का लोभ है और जिसके शिखर विषय वन को काटने के लिये लवित्र अर्थात् हँसिया (खेती काटने वाला एक हथियार) बन गये हैं। जहाँ के शिखर तुलसीदास जी को सुख देते हैं, जिसके शिखरों पर श्रीसीताराम जी के महारास होते हैं और जिसके शिखरों पर वैष्णव-वृन्द भजन सुख के विलास का अनुभव करते हैं और जिसके शिखरों पर श्रीभरत के दिव्य चरित्र प्रकट हुये। जो ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवजी की जन्मभूमि, श्रीरामलक्ष्मण की कर्मभूमि एवं साधन भजन के मर्मभूमि, और प्रणतजनों के दोषों को सहन करने वाले शिखरों से युक्त हैं। जिसके शिखर श्रीरामरत्न प्राप्त करने के लिये, साधना के संसद में विहार करने के लिये, अगम भवसागर को पार करने के लिये **गिरिधर** कवि के हेतु विशाल जलयान बन गये हैं, ऐसी चित्रकूट की जय हो।

इति
श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरमहाकविजगद्गुरुरामानन्दाचार्यस्वामिरामभद्राचार्यगिरिधरकविप्रणीते गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये बालकाण्डे गीतस्तुतसीतारामचन्द्रो नाम प्रथमः सर्गः।

इस प्रकार श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर महाकवि जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य गिरिधरकवि द्वारा विरचित गीतरामायण 'गीतसीताभिराम' नामक संस्कृत गीतमहाकाव्य के बालकाण्ड में गीतस्तुतसीतारामचन्द्र नामक प्रथम सर्ग सम्पन्न हुआ।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

।।श्रीः।।

।।नमो राघवाय।।

गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये
बालकाण्डे

गीतराघवाविर्भावो नाम

द्वितीयः सर्गः

सन्दर्भश्लोकः

श्रीमत्साकेतलोके परमसुभगया संस्थया वामभागे
सीतादेव्या विभातो विजितचपलया स्वर्णसिंहासनस्थः।
रामो रामाभिरामो नवजलदरुची राजमानो महिम्ना
सानन्दं स्तूयमानः सुरकुलऋषिणा गीतसीताभिरामः।।१।।

भौमीः- श्री साकेतलोक में अपनी शोभा से बिजली को जीतने वाले अत्यन्त सुन्दर वामभाग में विराजमान श्रीसीता देवी के साथ, स्वर्णसिंहासन पर स्थित स्वाभाविक सौन्दर्य से सुशोभित हो रहे भक्तजनों के आनन्ददाता भगवती सीता जी के सुखद एवं अपनी महिमा से देदीप्यमान नवीन बादल के समान कांति वाले भगवान श्रीराम आनंद के साथ देवर्षि नारद जी के द्वारा स्तुति के विषय बन गए हैं। अर्थात् अपने वामभाग में स्थित श्रीसीता जी के साथ स्वर्णसिंहासन पर विराजित साकेतविहारी श्रीराम की श्रीनारद स्तुति कर रहे हैं।

गीत संख्या १

जयति निर्मलरामचरितम्।
मधुरमधुरं रुचिररुचिरं कलितकविताललितसरितम्।।१।।
ज्ञानभक्तिसुधानिधानम् निचितराघवकीर्तिगानम् ।
आदिकविकलकण्ठपानम् तुलसिदासगिरा मुखरितम्।।२।।
प्रथितरघुवरविपिनवासं मैथिलीलक्ष्मणविलासम्।
कथितदशमुखवंशनाशं भरतभावविशुद्धभरितम्।।३।।
रामराज्यमहार्घशीलं निचितरघुपतिललितलीलम्।
सततनिहिततमालनीलं भवतु गिरिधरहृदि विचरितम्।।४।।

भौमी- अत्यन्त मधुर, अत्यन्त सुन्दर एवं ललितकलित कविताओं की नदी से युक्त निर्मल श्रीरामचरित

की जय हो। ज्ञान भक्तिरूप अमृत के कोश श्रीराघव की कीर्तिगाथा से युक्त, आदिकवि महर्षि वाल्मीकि के कोकिल कण्ठ का पेय, गोस्वामी तुलसीदास जी की वाणी से मुखरित श्रीरामचरित की जय हो। जिसमें श्रीराघव की वनवासगाथा प्रसिद्ध है। जिसमें श्रीसीता एवं लक्ष्मण जी की निःस्वार्थ सेवा का आनन्द वर्णित है। जहाँ रावण वध की लीला का कथन किया गया है ऐसे पवित्र भरतजी के भावों से ओत-प्रोत श्रीरामचरित की जय हो। श्रीरामराज्य के बहुमूल्य चरित्रों से युक्त श्रीराम की ललित लीलाओं से भरपूर एवं तमाल के समान नीलवर्ण प्रभु श्रीराम का निवास स्थान रूप यह श्रीरामचरित मुझ कवि **गिरिधर** के हृदय में सदैव विराजता रहे।

सन्दर्भश्लोकः

पौलस्त्यावग्रहार्तैर्हतनिजविभवैर्देवदन्तिप्रकाण्डै-
र्धावद्भिर्भीतभीतैः सरमिव ससरः प्राणरक्षैकचित्तैः।
ब्रह्माद्यैः प्राञ्जलीड्यैः सहहरहरिभिः प्रोल्लसन्नेत्रबाष्पैः
सिञ्चद्भिः पादपद्मं प्रणतभयहरो गद्गदं राम ऊचे।।१।।

भौमी- पुलस्त्य के पौत्र रावण रूप दुष्कार्य से आर्त्त अत्यन्त भयभीत, पानी से भरे हुए तालाब की ओर दौड़ते हुए, शिव एवं विष्णु के साथ हाथ जोड़े हुए देवता रूप जंगली हाथियों द्वारा अपने प्राणों की रक्षा में तन्मय होकर अपने नेत्रों के आँसुओं से प्रभु की चरण कमल को सींचते हुए, प्रणतभयहारी, श्रीराम से गद्गद स्वर में निवेदन किया गया है। अर्थात् जैसे निदाघकाल में प्यासा हाथी तालाब की ओर दौड़ता है, उसी प्रकार देवता साकेतबिहारी श्रीराम के पास आये और अपनी प्रार्थना प्रस्तुत की।

विशेष- इस छन्द में प्रयुक्त सरयू शब्द 'अजन्त' होकर तालाब का वाची है। ''**सर्वे सान्ताः अजन्ताः**'' इस नियम से यह अव्याकृत नहीं है।

गीत संख्या २

जगदीश जगदुद्धर प्रभो अवतर प्रभो अवतर प्रभो।
जगते मनुजमुपहर प्रभो अवतर प्रभो अवतर प्रभो।।
रोदित्यनाथा गौरियं सीदति विनाथा द्यौरियम्।
गवि दिवि शुभानि वितर प्रभो अवतर प्रभो अवतर प्रभो।।१।।
क्रन्दते धर्मो भीभरो नन्दत्यधर्मो विज्वरः।
साध्वसं सम्प्रति हर प्रभो अवतर प्रभो अवतर प्रभो।।२।।
श्रुतिसेतुरेवोच्छिद्यते सज्जनसमाजः खिद्यते।
निजभारतं परिचर प्रभो अवतर प्रभो अवतर प्रभो।।३।।
आतङ्कवादमहाग्रहो रावयति राष्ट्रमसद्ग्रहो।
जनरावणं संहर प्रभो अवतर प्रभो अवतर प्रभो।।४।।
आयाहि अयोध्यां राम हे पालय निजान् सुखधाम हे।
गिरिधरदुरितमपहर प्रभो अवतर प्रभो अवतर प्रभो।।५।।

भौमी– देवता प्रार्थना के स्वर में साकेतबिहारी श्रीराम से निवेदन करते हैं, हे जगदीश्वर प्रभो! इस जगत् का उद्धार कीजिए। अवतार लीजिए, अवतार लीजिए। हे प्रभो! जगत् को मनुष्य का उपहार दीजिए। अर्थात् जब आप मनुष्य बनकर आएँगे। तो जगत् को मनुष्यता का उपहार मिल जाएगा। परमात्मन् अनाथ हुई यह पृथ्वी चिल्ला रही है और इसके साथ असहाय गौएँ भी चिल्ला रही हैं, स्वर्ग भी सहायकों से शून्य होकर दुःखी हो रहा है। आप पृथ्वी और स्वर्ग में कल्याण का वितरण कीजिए और अवतार लीजिए। प्रभो, भयभीत हुआ सनातनधर्म चिल्ला रहा है और अधर्म निश्चिंत होकर प्रसन्न हो रहा है, इस समय हम सबका भय दूर कीजिए। परमात्मन् अवतार लीजिए, अवतार लीजिए। हे परमेश्वर! इस वैदिक धर्म का सेतु टूट रहा है और सज्जनों का समाज दुःखी हो रहा है। हे भगवन् आप अपने भारत की परिचर्या अर्थात् सेवा कीजिए। अर्थात् अवतार लीजिए, अवतार लीजिए। हे दीनबन्धो! असद् विचारों का आग्रही यह आतंकवाद रूप महाग्रह आपके राष्ट्र को रुला रहा है। इस आतंकवाद रूप लोकरावण का संहार कीजिए। भगवन् अवतार लीजिए। हे श्रीराम! आप श्रीअवध में पधारिये। हे सुख के भवन प्रभो! आप अपने भक्तों का पालन कीजिए और कवि **गिरिधर** के पाप-समूह को नष्ट कीजिए। हे साकेताधिपति श्रीराम आप अवतार लीजिए।

सन्दर्भश्लोकः

श्रुत्वा वाणीं रावणव्यार्दितानाम्
गीर्वाणानां पादकञ्जं गतानाम्।
उत्फुल्लाक्षो निर्भयान्संविधास्यन्
दैव्यां वाण्यां राममेघो जगर्ज।।१।।

भौमी– इस प्रकार अपने श्रीचरण कमल में प्रपन्न रावण के द्वारा प्रताड़ित देवताओं की वाणी सुनकर उन्हें निर्भय करने के लिए प्रसन्न कमल नेत्र श्रीराम मेघ ने देववाणी में स्पष्ट बोलते हुए गर्जना की।

गीतसंख्या ३

भारतेऽयोध्यायां मया दशरथगृहेऽवतरिष्यते।
श्रीरामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्नाख्ययानुचरिष्यते ।।
देवता मा भैषीष्ट भो धैर्यञ्च मा क्षयिषीष्ट भो।
शीघ्रं मया युष्मत्कृते नरवेष एष धरिष्यते।।१।।
अंशैस्त्रिभिर्हरिभिर्मया ननु सीतया सुविनीतया।
सुफलय्य कौसल्यामनोरथवल्लरीं विचरिष्यते।।२।।
विसखण्डभञ्जं वृषपतेश्चापं विभज्य च जानकीम्।
स्वीकृत्य वनवासच्छलाद्भूतलभरोऽपहरिष्यते।।३।।
युधि रावणं हत्वा मया जगदपभयं कृत्वा मया।
निजभक्तिमङ्गलसम्पदा ननु गिरिधरे वितरिष्यते।।४।।

भौमी- साकेतबिहारी श्रीराम देवताओं से बोले– मैं भारतवर्ष में श्रीअयोध्या में महाराज दशरथ के घर में अवतार लूँगा। राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न नाम से प्रकट होकर मानवता की सेवा करूँगा। हे देवताओं! भयभीत मत हो, अपना धैर्य मत खोओ, तुम लोगों के लिये ही मैं शीघ्र ही यहीं भारत में नरवेश धारण करूँगा, जो तुम साकेत में देख रहे हो। अपने तीनों अंशों अर्थात् बैकुण्ठाधिपति, क्षीरसागरशायी, श्वेतद्वीपाधिपति तीनों विष्णुओं के साथ और साकेतलोक की महारानी अपनी नित्य सहचारिणी आह्लादिनी शक्ति अति विनम्र भगवती सीताजी के साथ अवतार लेकर माता कौसल्या जी की मनोरथ कल्पलता को सुफल बनाकर मैं श्री अवध में विचरण करूँगा। तात्पर्यतः मैं साकेतबिहारी राम ही श्रीअवध में रामरूप से प्रकट होऊँगा। साकेत की महारानी श्रीसीता जी श्रीअवध में भी मुझ राम की धर्मपत्नी बनकर प्रस्तुत होंगी। बैकुण्ठाधिपति विष्णु भरत बनकर, क्षीरसागरशायी विष्णु लक्ष्मण बनकर, श्वेतद्वीपाधिपति विष्णु शत्रुघ्न बनकर मेरी सेवा में उपस्थित होंगे। कमलदंड के समान शिवधनुष तोड़कर स्वयंवर में जानकी जी को प्राप्त करके, वनवास के बहाने मैं पृथ्वी का भार हरण कर लूँगा। इसी प्रकार युद्ध में रावण को मारकर, संसार को निर्भय बनाकर मैं कवि **गिरिधर** को भी अपनी मंगलमयी भक्ति सम्पदा का वितरण करूँगा।

विशेष-

वैकुण्ठेशस्तु भरतः क्षीराब्धीशश्च लक्ष्मणः
श्वेतद्वीपेशशत्रुघ्नो रामसेवार्थमागताः।।

सन्दर्भश्लोकौ

श्रुत्वा वाक्यं रघुकुलपतेः सन्निवृत्ताश्च देवाः
भूयो जाता जगति कपयो रामकैङ्कर्यकामाः।
शम्भुश्चायं ननु पवनतोऽप्यञ्जनायां प्रजज्ञे
प्रातः स्वात्यां कनकवपुषा मङ्गले मङ्गलाढ्यः।।१।।
तस्मिञ्जाते महाभागे रामपादपरायणे।
सुराश्च ववृषुः पुष्पं गन्धर्वाश्च कलं जगुः।।२।।

भौमी- इस प्रकार श्रीराम की वाणी सुनकर साकेत से देवतागण लौट आए और भगवान श्रीराम की सेवा के लिए मर्त्यलोक में वानररूप में जन्म लिये। भगवान् शिव श्रीपवन के संकल्प से माता अंजना के गर्भ में आकर प्रातःकाल स्वाति नक्षत्र में कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी, प्रातःकाल मंगल के दिन स्वर्ण के समान शरीर धारण करके श्रीहनुमान् के रूप में प्रकट हुए। इस प्रकार श्रीरामभक्त हनुमान के प्रकट होने पर देवताओं ने पुष्पवर्षा की और गन्धर्व गीत गाने लगे।

गीत संख्या ४

अञ्जने जीव्याच्चिरं तव पुत्रः।।
राघवचरणसरोजमधुकरो वीर्यपयोधिनिमज्जितमित्रः।।१।।
रामार्थं धृतवानरदेहं तव गेहे विचकास्ति त्रिनेत्रः।।२।।
ब्रह्मचर्यनिष्ठः सुवरिष्ठः कोटिवज्रवरविग्रहगात्रः।।३।।

वेगविनतविनतावरसूनुः कल्पितसागरगोष्पदमात्रः।।४।।
वर्धापनं गिरिधरो गायति जयतु सदा खलखलकुलदात्रः।।५।।

भौमी- अब महाकवि बधाई लोकधुन के स्वर में गन्धर्वों के मुख से गीत गवाते हैं-हे अञ्जना माता! आपके आयुष्मान-पुत्र श्रीहनुमान जी चिरंजीवी हों, चिरंजीवी हों, ये श्रीराम के चरणकमल के भ्रमर बनेंगे और अपने पराक्रम के महासागर में सूर्य को डुबो देंगे। अर्थात् शीघ्र ही सूर्यनारायण को निगल जाएँगे। भगवान श्रीराम की सेवा के लिए वानर का शरीर धारण करके स्वयं त्रिनेत्र शंकर ही आपके भवन में सुशोभित हो रहे हैं। ये अपने वेग से वनितापुत्र गरुड़ को भी झुका देंगे और समुद्र को भी गौ के खुर के समान छोटा करके लाँघ जाएँगे। इसके साथ-साथ कवि **गिरिधर** भी बधाई गा रहे हैं। राक्षस रूप खलिहान को काटने के लिये हसिया शस्त्र स्वरूप श्रीहनुमान् जी आपकी जय हो।

सन्दर्भश्लोकौ

रामच्छ्रीशतरूपया वरमसौ लब्ध्वा तपस्तोषितात्
कौसल्याप्रिययाऽन्वितो दशरथः स्वायम्भुवोऽभून्मनुः।
कालं षष्टिसहस्रवर्षमसुतो विघ्नोऽध्ययोध्यं नयन्
पुत्रापूर्वपयोमुचं मखमथो ईजे वसिष्ठानुगः।।१।।
प्रादुर्भूतो जुह्वतो जातवेदाः विभ्रत्पात्रीं पायसे नाभिपूर्णाम् ।
मन्ये साक्षात् सद्गुरुर्ब्रह्मविद्यां दित्सुः प्रायाद्ब्रह्मणा वृंहिताभाम्।।२।।

भौमी- तपस्या से प्रसन्न श्रीराम से वरदान पाकर शतरुपा ही कौसल्या जी के रूप में परिणत हुई और स्वयं स्वायं भुवमनु ही महाराज दशरथ के रूप में अवतीर्ण हुए। साठ हजार वर्ष पर्यन्त अयोध्यापुरी में पुत्रहीन रहकर उद्विग्न मन से समय की प्रतीक्षा करते हुए, महाराज ने वसिष्ठ जी के निर्देशकत्व में पुत्ररूप अपूर्व जल की वर्षा करने वाले मेघकल्प पुत्रेष्टि-याग का अनुष्ठान किया। इस प्रकार पुत्रेष्टि-याग में आहुति देते हुए महाराज दशरथ के समक्ष पायस अर्थात् खीर से भरी बटुलोई हाथ में लिये हुए स्वयं अग्निदेव प्रकट हो गये। मुझे ऐसा लगता है मानो ब्रह्म के द्वारा प्रकाशित होती हुई ब्रह्मविद्या को प्रदान करने की इच्छा से साक्षात् सद्गुरुदेव ही प्रकट हो गये हैं। अब अग्निदेव गीत गा रहे हैं।

गीत संख्या ५

वह्निर्गायति

शृणु शृणु चक्रवर्तिनरेश।
गुरुवसिष्ठाशिषा दिष्ट्या वर्धसे मनुजेश।।१।।
अद्य धन्यशिरोमणिस्त्वं जगति कोसलराज।
प्राप्तपरमानन्द इव नरराजराजविराज।।२।।
गृह्यतामिदमथ हविष्यं ब्रह्ममयमवनीश।
यथायोग्यं विभज पत्नीत्रयेऽत्रैव गवीश।।३।।

लप्स्यसे चतुरः सुपुत्रान् फलानीव महान्ति।
ब्रह्मजिज्ञासुर्महावाक्यानि यथा विभान्ति।।४।।
स्वमथ राघववदनचन्द्रचकोरकं प्रविधाय।
गाय गिरिधरप्रभुं प्रमुदितमनसि नित्यं ध्याय।।५।।

भौमी– अग्निदेव बोले– हे चक्रवर्ती महाराज सुनिए सुनिए, सौभाग्य से श्रीगुरुदेव वसिष्ठ के आशीर्वाद से आपका अभ्युदय हो रहा है। हे कौशलेश्वर! आज आप संसार के धन्यों में भी शिरोमणि बन गये हैं। हे मनुष्येश्वर! परमानन्द को प्राप्त किये हुए मुक्तात्मा की भाँति अब आप सुशोभित हों। हे पृथ्वीपते! यह ब्रह्ममय हविष्य ग्रहण कीजिए। हे इन्द्रियों के नियन्त्रक महाराज! इसी यज्ञशाला में बुलाकर अपनी तीनों सवर्णा पत्नियों–कौसल्या, कैकेयी, सुमित्रा में इस हव्य को योग्यतानुसार बाँट दीजिए। अर्थात् इसका अर्धांश कौसल्या को प्रदान कीजिए, चतुर्थांश कैकयी को और चतुर्थांश में दो भाग करके कौसल्या कैकेयी के हाथों से दोनों अष्टमांशों को सुमित्रा जी को वितरित कीजिए। इससे आप मोक्ष, काम, धर्म, अर्थ जैसे महाफलों के समान चार पुत्र प्राप्त करेंगे, जिस प्रकार ब्रह्म जिज्ञासु चार महावाक्यों को प्राप्त कर लेता है। अब आप स्वयं को श्रीराघव के मुखचन्द्र का चकोर बनाकर, प्रसन्न मन में उन्हीं का निरन्तर ध्यान करते हुए **गिरिधर** कवि के प्रभु श्रीराम को निरन्तर गाते रहें।

विशेष– महावाक्य चार कहे गए हैं– प्रज्ञानम् ब्रह्म, अयमात्मा ब्रह्म, तत्त्वमसि, अहं ब्रह्मास्मि।

सन्दर्भश्लोकाः

कौसल्या ननु कैकयी मगधजा लब्ध्वा चरुं भूपते
र्हस्ताद्धस्तिवधूसमानगतयो गर्भान् सदर्भान् दधुः।
तूर्यं चेश्वरमेव तैजसमथो विश्वं मुहुर्भूतये
स्वाध्यायाभ्यसनादिवाप्तमतिकास्तिस्त्रः श्रुतीनां विधाः।।१।।
प्राप्ते द्वादशमासि मङ्गलदिने चैत्रे नवम्यां सिते
पक्षे चाभिजिते पुनर्वसुमये माध्यन्दिने भास्करे।
कर्कं लग्नमिते गुरौ शशिभृता पञ्चग्रहे सोच्चके
कौसल्यापुरतोऽभवत्प्रकटितो रामः षडात्मा हरिः।।२।।
मेषस्य भानौ मकरस्य मङ्गले तुलाशनौ कर्कवृहस्पतौ तथा।
मीनस्य शुक्रे किल वेदसागरे आविर्बभौ राघव ईड्यगौरवः।।३।।

भौमी– अब कवि तीन सन्दर्भ श्लोकों द्वारा इस कथावस्तु को क्रमबद्ध करते हुए सन्दर्भशुद्धि के माध्यम से श्रीराम के जन्म का गान कर रहे हैं। जिस प्रकार स्वाध्याय के अभ्यास से श्रुतियों की तीनों विधाएँ– ज्ञान, उपासना, क्रिया जिस प्रकार तुरीय, प्राज्ञ (ईश्वर) तैजस् और विश्वविभु को धारण करती हैं उसी प्रकार जगत के कल्याण के लिए गजगामिनी कौसल्या, कैकेयी, सुमित्रा ने महाराज दशरथ के हाथ से चरु प्राप्त करके सन्त ही जिनके बालक हैं ऐसे चार उत्तम गर्भों को धारण किया। अर्थात् कौसल्या जी ने श्रीराम को गर्भ में धारण किया जैसे आन्वीक्षिकी की श्रुति तुरीय चेतना को धारण करती है। कैकेयी जी ने श्रीभरत को धारण

किया जैसे कर्मकाण्ड की श्रुति प्राज्ञ ईश्वर को धारण करती है। सुमित्रा जी ने श्री लक्ष्मण, शत्रुघ्न को गर्भ में धारण किया जैसे उपासना काण्ड की श्रुति तैजस और विश्वविभु को धारण करती है। यहाँ श्री राम तुरीय श्रीभरत प्राज्ञ, श्री शत्रुघ्न तैजस और श्री लक्ष्मण विश्वविराट विभु कहे जाते हैं। इस प्रकार बारह महीने बीत जाने पर चैत्र शुक्ल पक्ष नवमी मंगल दिन अभिजित मुहूर्त, पुनर्वसु नक्षत्र, मध्यदिन की पवित्र बेला, कर्क लग्न एवं केन्द्र के चन्द्रमा के साथ पाँच ग्रहों के अपने उच्च स्थान में विराजमान होने पर भगवती कौसल्या के समक्ष षडैश्वर्य सम्पन्न भगवान श्रीराम प्रकट हुए। मेष के सूर्य, मकर के मंगल, तुला के शनि, कर्क के वृहस्पति तथा मीन के शुक्र की उपस्थिति में '**वेदसागर**' नामक योग में स्तुतयोग्य गौरव के साथ भगवान श्रीराम आविर्भूत हुए।

गीत संख्या ६

कविर्गायति

प्रकटोऽभवदीशो ब्रह्मगवीशो गोद्विजसुरभयहारी।
विधिहरिहरवन्द्यो विभुरनवद्यो दशरथभवनविहारी।।
श्रितशम्भुचतुर्मुखपूर्णचन्द्रमुखकौसल्यासुखकारी ।
नवकन्दकलेवरपीतवसनवरतूणचापशरधारी ।।१।।
तनुबहुविधभूषणसुरकुलभूषणदूषणरिपुघनवर्णः ।
धृतकनककिरीटः कृतखलकीटः कुण्डलमण्डितकर्णः।।
शुभचरितपरीतः परमविनीतः मखोपवीतसुवर्णः।
शुकसुन्दरनासः शशिकरहासः कृतसेवकविगतर्णः।।२।।
कलकौस्तुभकण्ठो महितसुकण्ठः समरुणनीरजनयनः।
मुखविगणितचन्द्रः सुदशनसान्द्रो मङ्गलगुणगणचयनः।।
श्रीवत्सरसालो धृतवनमालो नाभिगभीरऋगयनः।
शुचिसुन्दरमूर्तिः शुभगुणपूर्तिः कृतसज्जनहृदिशयनः।।३।।
लसदीष्टापूर्तं सुकृतं मूर्तं धृतविग्रहमायातम्।
चिन्मयशिशुदेहं गुणगणगेहं किमपि पुण्यमिवयातम्।।
वरधामकिशोरं महितचकोरं चञ्चलचक्षू रातम्।
कविगिरिधरगीतं ब्रह्मकमीतं दृग्गोचरं विभातम्।।४।।

भौमी– अब कवि गा रहे हैं– सबके ईश्वर, परब्रह्म इन्द्रिय, बुद्धि, वाणी और पृथ्वी के नियन्ता, गौ देवता और ब्राह्मणों के भयहारी, ब्रह्मा, विष्णु और शिव के भी वन्दनीय, सर्वव्यापी, अत्यन्त पवित्र श्रीदशरथ के भवन में विहार करने वाले, शंकर और ब्रह्मा के आश्रयदाता, पूर्णचन्द्र के समान मुखमंडल वाले, कौसल्या जी को आनंद देने वाले नवीन बादल के समान श्रीविग्रह, पीताम्बरधारी, तरकश, धनुष और बाण धारण किये हुए, भगवान श्रीराम कौसल्या जी के सामने प्रकट हुए। शरीर पर बहुत से अलंकारों से सुसज्जित, देवकुल के आभूषण, दूषण नामक राक्षस के शत्रु, मेघवर्णी स्वर्णमुकुट धारण किये हुए, खलों को छोटे कीड़ों के समान

मानकर मसल देने वाले, कानों में कुण्डल से समलंकृत दिव्यचरित्र से युक्त, परम विनम्र, स्वर्ण का यज्ञोपवीत धारण किये हुए, तोते के समान सुन्दर नासिका वाले, चन्द्रकिरण के समान मुसकान से युक्त, सेवकों को सभी ऋणों से मुक्त करने वाले प्रभु श्रीराम कौसल्या जी के सामने प्रकट हुए। कण्ठ में कौस्तुभ धारण किये हुए भविष्य में सुग्रीव को सम्मानित करने वाले, लाल कमल जैसे नेत्र, मुख की कांति से चन्द्रमा को अपमानित करने वाले, घने-घने सुन्दर दाँतों वाले, मंगल और सुखों का सञ्चय करने वाले, श्रीवत्स लाञ्छन से सुन्दर, हृदय में वनमाला धारण किये हुए गम्भीर नाभि, सभी ऋचाओं के आश्रय अत्यन्त सुन्दर मूर्ति, सभी श्रेष्ठ गुणों की पूर्णता के स्थान, सज्जनों के हृदय में शयन करने वाले प्रभु श्रीराम कौसल्या जी के समक्ष प्रकट हुए। आज महाराज का इष्टापूर्ति से युक्त सुकृति ही मूर्तिमान होकर सुन्दर विग्रह धारण करके आ गया। मानो महाराज का कोई अनिर्वचनीय पुण्य ही सभी गुणगणों का भवन बनकर चेतनामय बालरूप धारण करके उपस्थित हो गया है। ऐसा लगता है मानो श्रेष्ठ तेज ही चकोर को सन्तुष्ट करने वाला किशोर चन्द्र बनकर, चञ्चल नेत्रों को प्राप्त करा दिया गया हो। वस्तुतस्तु शोभा से युक्त सुखात्मक ब्रह्म ही कवि **गिरिधर** के गीत का विषय बनकर कौसल्या जी को दृष्टिगोचर हो रहा हो।

सन्दर्भश्लोकः

कौसल्यया प्रार्थित एव देवो बालो वभूवाथ तमालनीलः।
तमङ्कमारूढमगूढलीलं माता जगौ गीतमुदारशीलम्।।१।।

भौमी- माता कौसल्या जी की प्रार्थना पर भगवान श्रीराम तमाल के समान नीलवर्णी बालक बन गए। उन प्रकटलीला वाले बालराघव को गोद में लेकर माता कौसल्या प्रभु के उदारशील को ख्यापित करने वाला गीत गाने लगीं।

गीत संख्या-७

सकलचराचरनायक जनसुखदायक हे
प्रभु महामहिभारमपहर्तुं ममान्तिके यातोऽसि हे।।१।।
वृहदपि जगदिदं वृंहदपि ब्रह्मवरिष्ठमपि हे
प्रभु मम मनोरथलतिकां फलयितुं शिशुर्भूत्वा यातोऽसि हे।।२।।
महितत्रिनेत्रो विचित्रोऽसि जीवमात्रसूत्रोऽसि हे
मम पुत्रो भूत्वा पिबसि पयोदं विधातुरपि तातोऽसि हे।।३।।
वेदा नैव जानन्ति भवन्तमृषीन्द्रा मुनीन्द्राश्च हे
सैव गृहासक्तराजमहिष्या मयैवाद्य ज्ञातोऽसि हे।।४।।
पितुरपि पिता मातुर्माताऽसि जीवमात्रधाताऽसि हे
प्रभो गिरिधरभावं दृढयितुं मनुजबालो जातोऽसि हे।।५।।

भौमी- माँ कहती हैं- हे सम्पूर्ण जड़चेतनों के नायक! हे भक्तों के सुखदाता प्रभु श्रीराम! आप पृथ्वी का महान भार हरने के लिए मेरे निकट बालरूप से प्रकट हुए हैं। आप स्वयं सबसे बड़े होकर भी जगत् को बड़ा अर्थात् विस्तृत करके भी सबसे श्रेष्ठ, परब्रह्म परमात्मा होते हुए भी मेरी मनोरथ लता को फलवती बनाने

के लिए बालक बनकर आये हुए हैं। हे प्रभो! तीन नेत्र वाले शंकर भी आप की पूजा करते हैं। आप स्वयं आश्चर्यमय हैं। जीवमात्र के सूत्रधार होते हुए भी ब्रह्मा जी के पिता होकर भी इस समय मेरे पुत्र बनकर मेरा स्तनपान कर रहे हैं। आपका यह कौतुक है। प्रभो! जो आपको वेद, ऋषिश्रेष्ठ और मुनिश्रेष्ठ भी नहीं जान पाते, वही आप श्रीराम मुझ गृहासक्त कोसलराज की पट्टमहिषी कौसल्या द्वारा आज ज्ञान का विषय बनाए जा रहे हैं। अर्थात् मैं आज आपको जान पा रही हूँ। हे प्रभो! आप पिता के पिता, माता की माता और संपूर्ण जीवों के पालक होकर भी **गिरिधर** कवि के वात्सल्य भाव को दृढ़ करने के लिए ही मनुष्य बालक के रूप में प्रकट हुए हैं।

गीत संख्या ८

भविष्यति भारतं सनाथं कुशोकं विहास्यति हे।
हरे रक्षः कुलमार्तं विनाथं विशोकं न यास्यति हे।।१।।
दर्शं दर्शं बाललीलादर्शं पिता प्रहर्षमेष्यति हे।
हरे मातृवर्गस्त्यक्त्वा चतुर्वर्गं भवन्तमनुनेष्यति हे।।२।।
शिवो भुशुण्डिना साकं बाललीलां तवानुभविष्यति हे।
हरे गिरिशायिनोऽपि त्वयि हृदयं यथायतु द्रविष्यति हे।।३।।
यदा शिशुलीलायां कुतुकतो भवान् धनुर्धरिष्यति हे।
हरे रावणस्य भीममपि हृदयं तदानीं विदरिष्यति हे।।४।।
जानुपाणिचरः कल किलकन् भवान् यदाचरिष्यति हे।
हरे गिरिधरमनोवाञ्छालतिका तदैव सुफलिष्यति हे।।५।।

भौमी- हे श्रीहरे! आपको पाकर भारत सनाथ हो गया, वहाँ अपने कुत्सित शोक को समाप्त कर देगा और राक्षसकुल आर्त्त और असहाय होगा। वह विशोक अर्थात् शोक का अभाव प्राप्त नहीं करेगा, अर्थात् दुःखी ही रहेगा। आपकी बाल-लीला के आदर्शों को निहार-निहार कर आपके पिता जी प्रसन्न होंगे, हे श्रीहरे! मुझ सहित आपकी सात सौ माताएँ अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष को छोड़कर आप को ही दुलारने और मनुहार करने में लग जाएँगी। हे श्रीहरे! शिव जी भी काकभुशुंडि के साथ आपकी बाललीला का अनुभव करेंगे और पर्वत पर शयन करने वाले शिव का भी कठोर हृदय आपको देखकर लाह के समान पिघल जाएगा। हे प्रभो! जब बाललीला में आप खेल-खेल में धनुष उठा लेंगे, उसी समय रावण का हृदय विदीर्ण हो जायेगा। हे प्रभो! जब किलकारी करते हुए आप घुटनों के बल हाथ-पाँव से चलेंगे, उसी समय **गिरिधर** की इच्छारूपिणी लता फलवती हो जाएगी।

गीत संख्या ९

वलिमभियामि ते रघुचन्द्र।
भासि लघुरपि ललितचरितैर्हसितशाम्भवचन्द्र।।१।।
व्यापको व्याप्यो भवन् ब्रह्मापि बालो भासि।
नयनयोरञ्जनं कलयन् निरञ्जनो विभासि।।२।।

निर्गुणोऽपि निरस्तमायागुणः सगुणसुरूप।
विविधविधमाचरंश्चरितं लससि सुरनरभूप।।३।।
विगतसकलविनोद कोऽपि विनोदमेव तनोषि।
विविधविधलीलारहसि प्रतिबिम्बतो वितनोषि।।४।।
मत्कृते षड्गुणा मग्नास्त्वयि विभो भास्यन्ति।
छगन मगन इतीव लोकास्त्वामतो गास्यन्ति।।५।।
अजन्मापि सुजन्म गृह्णन् नृपं रमयसि राम।
वरद गिरिधरहृदयमपि लघु सपदि कुरु निजधाम।।६।।

भौमी- माता कौसल्या कहती हैं– हे रघुचन्द्र श्रीराम! मैं आपकी बलिहारी जाती हूँ, आप छोटे होते हुए भी अपनी ललित चरित्रों से शिव जी के मस्तक पर रहने वाले चन्द्रमा की भी हँसी उड़ाते हुए से सुशोभित हो रहे हैं। आप व्यापक होकर भी व्याप्य, ब्रह्म अर्थात् , सबसे बड़े होकर भी छोटा–सा बालक बनकर सुशोभित हो रहे हैं, आप निरंजन अर्थात् कर्म के लेप से रहित होकर भी नेत्रों में अंजन धारण करके बहुत सुन्दर लग रहे हैं। हे देवताओं के भी ईश्वर! सगुण साकार राघव! आप निर्गुण होकर भी माया गुणों का निरसन करके अनेक प्रकार के चरित्र करते हुए सुशोभित हो रहे हैं। आप सभी विनोदों से रहित होकर भी विनोद ही करते रहते हैं, आप एकान्त में अपने प्रतिबिम्बों से भी अनेक लीलाओं का विस्तार करते हैं। मेरे ही लिए आपके व्यापकत्व, ब्रह्मत्व, निरंजनत्व, निर्गुणत्व, अविनोदत्व और अजत्व नामक छहों गुण आप में ही छिपे हुए शोभित होंगे, इसीलिए लोग आपको छगन–मगन कहकर गायेंगे। हे वरदाता श्रीराम! आप अजन्मा होकर भी सुन्दर जन्म ग्रहण करके महाराज चक्रवर्ती जी को रमा रहे हैं, उसी प्रकार **गिरिधर** कवि के हृदय को भी शीघ्र ही अपना छोटा–सा धाम बना लीजिये।

गीत संख्या १०

कविर्गायति–

अतिसिकुसुमनवजलधर सरसिजसुमलघु हे।
हरे परमपि धृतशिशुवरतनुगुणकृतरघुलघु हे।।१।।
लघुलघुनलिनचरण युगपदनखमपि लघु हे।
हरे शिशुदिनकररुचिविगणित धृतकटिपटलघु हे।।२।।
स्त्रगुरसि विलसति महिसुरगुरुतरपदलघु हे।
हरे दरवर कलवल सुमहितमणिवर पदलघु हे।।३।।
उडुपतिसमरुचिमृदुशुचिसरसिजमुखलघु हे।
हरे नयनकमलवरभृकुटिकुटिलकचसुखलघु हे।।४।।
निखिलदुरितहर रघुवर निजजनसुखकर हे।
गिरिधरमव कुविपद इह हर भवभयहर हे।।५।।

भौमी- अब स्वयं कवि भगवान श्रीराम की शिशुरूप माधुरी का गान कर रहे हैं– अहो! तीसी के फूल,

नवीन बादल और कमल पुष्प के समान सुन्दर परब्रह्म भगवान श्रीराम ने बालरूप धारण करके भी अपने गुणों से राजा रघु को भी छोटा कर दिया। प्रभु के चरणकमल भी छोटे-छोटे एवं उनके नख भी छोटे-छोटे हैं, इसी प्रकार बालसूर्य को तिरष्कृत करने वाली कटितट पर विराजमान पीली कछनी भी छोटी है। प्रभु के गले में विराजमान माला सुशोभित हो रही है और उनके वक्ष पर छोटा-सा ब्राह्मण का चरण चिन्ह भी विराजमान हो रहा है, इसी प्रकार श्रेष्ठ शंख के समान गला और उसमें विराजमान छोटा-सा मणिहार बहुत सुन्दर लग रहा है। चन्द्रमा के समान सुन्दर कमल मुख भी छोटा है, इसी प्रकार कमल के समान नेत्र, टेढ़ी भृकुटि और टेढ़े-टेढ़े कुंचित केश बहुत सुखप्रद हो रहे हैं। हे संपूर्ण पापहारी, हे शंकर जी के भी भय को दूर करने वाले, सुखकारी रघुवर राम, मुझ कवि **गिरिधर** की भी कुत्सित विपत्तियों से रक्षा कीजिये।

सन्दर्भश्लोकः

पर्जन्यमिव घर्मार्ताः श्रुत्वा वै रोदनं शिशोः।
आयोध्यकाश्च मुदिता ननृतुर्तुष्टुवुर्जगुः।।१।।

भौमी- जिस प्रकार चिलचिलाती धूप से व्याकुल लोग मेघ का गर्जन सुनकर प्रसन्न होते हैं, उसी प्रकार बालक श्रीराम का रोदन सुनकर सभी अयोध्यावासी प्रसन्न होकर नाचने लगे, स्तुति करने लगे और गाने लगे।

गीत संख्या ११

वदति वर्धापी आङ्गणेषु वदति वर्धापी आङ्गणेषु।।
अद्याऽयोध्यामितो राघवो लोका नृत्यन्त्याङ्गणेषु।।१।।
आयोध्यकाः प्रेमभरमुदिताः सर्वे गायन्त्यङ्गणेषु।।२।।
कौसल्या कैकयी सुमित्रा मङ्गलरचनाः प्राङ्गणेषु।।३।।
नृपो वारयति हयराजरत्नं क्वापि न लज्जा रङ्गणेषु।।४।।
वर्धापनं गिरिधरो गायति मग्नस्तरलतरङ्गणेषु।।५।।

भौमी- अब कवि बधाई लोक धुन में गीत प्रस्तुत कर रहे हैं जिसके बोल हैं- ''बधैया बाजे आँगने में''

भौमी- आज महाराज दशरथ के आँगने में बधाई बज रही है, आज ही अयोध्या में श्रीराम प्रकट हुए हैं, लोग महाराज के आँगन में नाच रहे हैं। अयोध्यावासी प्रेम की निर्भरता से प्रसन्न हैं और सभी महाराज के आँगन में बालगीत गा रहे हैं। कौसल्या, कैकेयी और सुमित्रा जी राजप्राङ्गण में मङ्गलों से सजी हुई हैं। महाराज हाथी, घोड़ा, मणि लुटा रहे हैं, कहीं भी दरिद्रों में लज्जा नहीं है। और भगवान की प्रेम तरंगों में मग्न हुआ **गिरिधर** कवि भी बधाई गा रहा है।

गीत संख्या १२

राज्ञो दशरथस्य जाताः कुमाराः वर्धाप्यो वाद्यन्ते।।
रामभरतलक्ष्मणशत्रुघ्नाः शिरिषकुसुमसुकुमाराः।।१।।
सुभगाः सुमुखाः समे सुशीलाः क्षपितविनतभवभाराः।।२।।
नार्यो नरा बालका वृद्धा मुदिता विगतविकाराः।।३।।

लोकाः समे नरीनृत्यन्ते जेगीयन्त उदाराः।।४।।
वर्धापनं गिरिधरो गायति वर्धन्तां सुकुमाराः।।५।।

भौमी- महाराज दशरथ के यहाँ चार पुत्र प्रकट हुए हैं, श्रीअवध में बधाइयाँ बज रही हैं। शिरीष पुष्प के समान कोमल श्रीराम-भरत-लक्ष्मण-शत्रुघ्न प्रकट हुए हैं, राजभवन में बधाइयाँ बज रही हैं। सभी कुमार सुन्दर, सुमुख, सुशील तथा भक्तों के भार को हरने वाले हैं, अतएव बधाइयाँ बज रही हैं। महिलाएँ पुरुष, बालक, वृद्ध सभी विकाररहित होकर प्रसन्न हैं, अतः बधाइयाँ बज रही हैं। सभी लोग बार-बार नाच रहे हैं और पुनः-पुनः गा रहे हैं और बधाइयाँ बज रही हैं। और इनके साथ **गिरिधर** कवि भी वर्धापन गा रहा है, चारों राजकुमारों की बधाई हो।

गीत संख्या १३

समवेतैरद्य मङ्गलगीतं गीयताम्।।
राज्ञी कौसल्या सुतमजनयत् सोहिलो मृदु गीयताम्।।१।।
रचय मुक्तामयचतुष्कं माङ्गलिकं चानीयताम् ।।२।।
प्रतिगृहं गोमयालिप्तं नवलतुलसी धीयताम् ।।३।।
रोचनं दधिदुग्धदूर्वाः सादरं सन्धीयताम् ।।४।।
गणपश्रीहरिशिवभवानीपूजनं प्रविधीयताम् ।।५।।
धेनुमणिगणवसनमन्नं ब्राह्मणेभ्यो दीयताम् ।।६।।
विप्रवधूसुवासिनीभिः सुवसनं परिधीयताम् ।।७।।
रामजन्ममहोत्सवं किल गिरिधरो जेगीयताम् ।।८।।

भौमी- आज सब लोग मिलकर मंगल गान करें, सोहर गायें क्योंकि रानी कौसल्या जी ने पुत्र को जन्म दिया है। मोतियों के चौके पूरो, मांगलिक द्रव्य ले आओ। प्रत्येक घर को गोबर से लिपाई करो, नवीन तुलसी लगाओ। गोरोचन, दही, दूध, दूर्वादल सब-कुछ आदरपूर्वक इकट्ठा करो। गणपति, विष्णु, शिवपार्वती का पूजन करो। गाय, मणि, वस्त्र, अन्न यह सब ब्राह्मणों को दो। ब्राह्मण पत्नियाँ और भी अवध की विवाहित-पुत्रियाँ सुन्दर वस्त्र धारण कर लें। इस प्रकार **गिरिधर** कवि भी श्रीरामजन्मोत्सव को बार-बार गायें।

सन्दर्भश्लोकः

दशरथगृहिणीसुभागभूत्यै सुरललनाः स्पृहयाम्बभूवुरुच्चैः।
नयनसुवनसिक्तसुस्तनार्चा जगुरथ दिव्यवधूवधूमचर्चाः।।१।।

भौमी- महाराज दशरथ की धर्मपत्नी कौसल्या, कैकेयी और सुमित्राजी की सौभाग्य संपत्ति पर देववधुएँ भी स्पृहा करने लगीं और अपने नेत्र के सुन्दर जल से अपने वक्ष के कुंकुमों को धोती हुई श्रेष्ठ देवांगनाएँ अलौकिक राज- महिषियों के सौभाग्य को सराहती हुई गाने लगीं।

गीत संख्या १४

किमपि किमपि कलगीतं मधुरमृदु गायति हे।
माता रघुवरवदनसरोजं मनसि किल ध्यायति हे।।१।।
पुनरपि पुलकशरीरा सुमुखी मुखं चुम्बति हे।
मन्ये परमं निधानं श्रुतिनिहितं सदम्बा समम्बति हे।।२।।
उरसि निवेश्य सुलघुशिशुमञ्चले निगूहति हे।
किं वा दशरथसुकृतसमूहं समुह्य समूहति हे।।३।।
दृष्टिदोषभीता कपोलयोः सुकज्जलं विलिम्पति हे।
शङ्के नीलनीलनलिनसुकोषयोः पिकावभिलिम्पति हे।।४।।
धन्या धन्या राज्ञी कौसल्या माता दशरथपुण्यमति हे।
ययोः पुत्रो भूत्वा गिरिधरप्रभुरपि शिशुरतिविलसति हे।।५।।

भौमी-अहो! माता कौसल्या कुछ-कुछ बहुत कोमल और मधुर स्वर में गा रही हैं तथा श्रीराम के मुखकमल का मन में ध्यान कर रही हैं। फिर पुलकित होकर सुन्दर मुख वाली माता कौसल्या प्रभु का मुख चूमती हैं, मुझे लगता है कि वे प्रभु की माताश्री श्रुतियों में छिपे हुए उस परमतत्व को दुलारती हुई सम्हाल रही हैं। अपने हृदय से लगाकर उन परब्रह्म बालक भगवान श्रीराम को माताश्री आँचल में ढँक लेती हैं, क्या वे बिखरे हुये दशरथ जी के पुण्य को ही समेटकर हृदय में छिपा तो नहीं रही हैं। दृष्टिदोष के भय से माताश्री प्रभु के कपोलों पर दो काजल के टिप्पे लगा रही हैं, मुझे शंका होती है कि जैसे वे नीले-नीले दो कमल-कोशों में दो-कोकिलाओं की रचना कर रही हों। माता कौसल्या रानी धन्य हैं और महाराज दशरथ का भी अत्यन्त पुण्य है, जिनके पुत्र बनकर **गिरिधर** कवि के स्वामी भगवान श्रीराम बालरूप में बहुत सुन्दर लग रहे हैं।

गीत संख्या १५

दीव्यत दीव्यत देवदेव्यः कुरुत मा विलम्बमिह हे।
देव्यो दीव्यत दिव्यामयोध्यां बालकं दिव्यं दीव्येम हे।।१।।
सीव्यत सीव्यत सुरसाध्य मा साध्वस कदम्बमिह हे।
साध्यः शिवस्यापि दुराराध्य हेतो झिगुलिवस्त्रं सीव्येम हे।।२।।
चलत चलत चलिताक्ष्यो न भयनिकुरम्बमिह हे।
सख्यः सकलजनस्य सखायं सपदि गत्वा पश्येम हे।।३।।
नटत नटत सुरनार्यो न लज्जावलम्बमिह हे।
नार्यो माया नटी नाटनचाणमपि रामं परितो नटेम हे।।४।।
भवत भवत भावभव्या न दुरितकरम्बमिह हे।
आल्यो गिरिधरप्रभुमभिनृत्य प्रसन्ना पुरतो भवेम हे।।५।।

भौमी-हे देवियों! स्तुति करो, स्तुति करो, विलंब मत करो, सर्वप्रथम तो दिव्य अयोध्या की स्तुति करो,

पश्चात् हम दिव्य बालक की स्तुति करें। हे सतियों! सिलो, सिलो किसी प्रकार का भय मत करो, सखियों! शिवजी के भी दुराराध्य प्रभु श्रीराम के लिये हम झिगुली वस्त्र सिलें। हे चंचलनेत्रों वाली सखियों! चलो–चलो, किसी प्रकार का भय मत करो, सखियों! सम्पूर्ण जीवों के मित्ररूप श्रीराम को हम चलकर निहारें। हे देवियों! नाचो–नाचो, यहाँ लज्जा का अवलंबन मत करो, हे देवियों! माया नटी को नचाने में कुशल शिशु श्रीराम के समक्ष हम नाचें। हे सखियों! भावुक बनो–भावुक बनो, यहाँ किसी प्रकार के पापों का समूह नहीं है, सखियों! कवि **गिरिधर** प्रभु के समक्ष नाचकर हम प्रसन्न हो जायँ।

सन्दर्भश्लोकः

अयोध्यासौभाग्ये प्रकटिततनौ श्रीरघुपतौ
नटन् गायन्नृत्यन् प्रणदितसुवाद्यः पुरजनः।
स्फुरद्ब्रह्मानन्दः शिशुरुदितसंस्त्रावमुदितो
दृगं भो निष्यन्दो मधुरमिदमूचे दशरथः।।१।।

भौमी–श्रीअवध के सौभाग्यरूप प्रभु श्रीराम के बालरूप में प्रकट हो जाने पर तथा श्रीअवधवासियों के ऊँचे स्वर में बोलते–गाते–नाचते एवं सुन्दर वाद्य बजाते रहने पर बालक श्रीराम के प्रथम रोदन के श्रवण से प्रसन्न हृदय में स्फुरित ब्रह्मानन्द से ओत–प्रोत नेत्रों में आँसू भरे हुए महाराज दशरथ मधुर स्वर में इस प्रकार बोले।

गीत संख्या १६

अद्य सोहरगीतं गापयध्वं राघवो मम गृहमेतः।
अद्य मङ्गलवाद्यं वादयध्वं राघवो मम गृहमेतः।।१।।
षष्टिसहस्त्रवर्षमनु मह्यं प्राप्तं सुखं गतं दुरितमसत्यम्।
अद्य मुक्ताचतुष्कं पूरयध्वं राघवो मम गृहमेतः।।२।।
वितरत मणिगणहयगजवसनं षड्पञ्चाशद्विधमृदुमञ्जुलमसनम्।
अद्य तोरणं द्वारेषु रचयध्वं राघवो मम गृहमेतः।।३।।
नृत्यत गायत हृष्यत लोका भजत मुकुन्दं परिहृतशोकाः।।
अद्य पुण्याऽहं द्विजैर्वाचयध्वं राघवो मम गृहमेतः।।४।।
सुतो जानुपाणिचरःपुरतश्चलिष्यति तदा मम मनोरथलतिका फलिष्यति।
अद्य गिरिधरप्रभुं लालयध्वं राघवो मम गृहमेतः।।५।।

भौमी–आज सब लोग सोहर गीत गायें और मंगल वाद्य बजायें, क्योंकि राघव सरकार मेरे भवन में पधार आये हैं। साठ हजार वर्षों के पश्चात् मेरे लिए यह सुख प्राप्त हुआ है और मेरा असह्य–दारिद्रय चला गया है। आज मोतियों के चौके पुरवाओ श्रीराघव प्रभु मेरे घर में प्रकट हुए हैं। आज मणिगण–हाथी, घोड़े और वस्त्र लुटाओ और छप्पन भोग मीठे सुन्दर भोजन सभी को खिलाओ, आज द्वारों पर वन्दनवार सजाओ, क्योंकि श्रीराघव मेरे घर में आविर्भूत हुए हैं। सभी लोग नाचो–गाओ–प्रसन्न हो जाओ और शोक छोड़कर भगवान बाल मुकुन्द का भजन करो, आज ब्राह्मणों द्वारा पुण्याहवाचन करवाओ, प्रभु राघव मेरे यहाँ पधारे हैं। जब मेरे

आयुष्मान् राघव घुटनों से चलना प्रारंभ करेंगे, तब मेरे मनोरथ की लता फलवती होगी। आज **गिरिधर** कवि के स्वामी बालरूप भगवान का लालन करो, श्रीराघव प्रभु मेरे भवन में प्रकट हुए हैं।

गीत संख्या १७

अयोध्यायामभूद् रामजन्म वर्धापी संवाद्यते।।
अद्य निर्गुणः सगुणो जातः सुतोऽभवन् निखिलनृणां तातः।
अद्य पूतं महीपतिसद्म वर्धापी संवाद्यते।।१।।
ज्ञानगिरागोतीतमखण्डं द्विभुजमभूत् धृतशरकोदण्डम्।
अद्य प्रकटं लसति परब्रह्म वर्धापी संवाद्यते।।२।।
परमानन्दे मुदितायोध्या नृत्यति गायति सुरवरबोध्या।
अद्य पूर्णं लसति शुभकर्म वर्धापी संवाद्यते।।३।।
सरयूः सरसा भाति वसन्तः परमानन्दाविष्टदिगन्तः।
ज्ञात्वा गिरिधरः प्रसीदति मर्म वर्धापी संवाद्यते।।४।।

भौमी-अयोध्या में श्रीराम का जन्म हुआ, आज वहाँ बधाई बज रही है। आज निर्गुण ब्रह्म सगुण हो गये, समस्त संसार के पिता पुत्र बने, आज महाराज का भवन पवित्र हो गया, बधाई बज रही है। ज्ञान-वाणी और इन्द्रियों से अतीत, अखण्ड, परब्रह्म परमात्मा धुनष-बाण धारण करके, दो भुजाओं वाले सुन्दर मनुष्य रूप में प्रकट हो गये हैं, श्रीअवध में बधाई बज रही है। देवताओं द्वारा जानने-योग्य श्रीअयोध्या आज परमानन्द में मुदित है, आज संपूर्ण श्रेष्ठकर्म पूर्ण होकर सुशोभित हो रहे हैं, श्रीअयोध्या में बधाई बज रही है। आज सरयू स्वच्छ जलधारा बह रही है, और परमानन्द से संपूर्ण दिग दिगन्तों को सराबोर करता हुआ वसन्त शोभित हो रहा है, यह मर्म जानकर आज **गिरिधर** कवि बहुत प्रसन्न है।

सन्दर्भश्लोकः

जातकर्मणि सम्पन्ने नान्दीमुखपुरःसरम्।
नखच्छेदनमारब्धा नृत्यन्ती प्राह नापिती।।१।।

भौमी-जातकर्म संपन्न होने पर, नान्दीमुख श्राद्ध के साथ प्रभु श्रीराघव का नख काटती हुई, नाचती हुई नाइन (नउनियाँ) बोली।

गीत संख्या १८

आदास्ये महीपते! कौसल्याकरकङ्कणम् ।
सुमित्राकरकङ्कणं कैकेयी करकङ्कणम्।।
विभ्रती निजाङ्के रामं लोकलोचनाभिरामम् ।
नापिती नमितनयना प्राह पङ्क्तिधोरणम्।।१।।
वृद्धेऽपि वयसि विधिसूनूकृपया विधाता।
विदधे विधिज्ञो महाराजमङ्गलक्षणम्।।२।।

शिवस्यापि दुर्लभं भवत्कृते सुलभमिदम्।
पुत्ररत्नमेतत् प्राप्तवान् प्रभो विलक्षणम्।।३।।
कोटिकामकमनीयं नखशिखरमणीयम्।
विशदविरुदमेतं महापुरुषलक्षणम्।।४।।
श्रृणु श्रृणु राजराज चक्रवर्तिमहाराज प्रीतिदानम्।
विना नानुमोदिष्ये सुतेक्षणम्।।५।।
गिरिधरप्रभुमथ स्वाञ्चले निगूहयन्ती राजयन्ती।
विरराज रघुराजप्राङ्गणम् ।।६।।

भौमी-हे महाराज! आज मैं लाला के नख काटने के नेग में कौसल्या जी के हाथ का कङ्कण (कंगन) लूँगी। इसी प्रकार कैकेयी के हाथ का कङ्कण (कंगन) और सुमित्रा जी के हाथ का कङ्कण (कंगन) भी लूँगी। इस प्रकार समस्त लोकों के नेत्रों को आनन्द देने वाले श्रीराम को अपनी गोद में ली हुई, नेत्रों को कुछ नीचे की हुई, नाइन महाराज दशरथ से ठनगन (नेग लेने का हठ) करने लगी। हे महाराज! आपकी साठ हजार वर्ष की वृद्धावस्था में भी ब्रह्माजी के पुत्र वसिष्ठ जी की कृपा से विधि को जानने वाले विधाता ने यह मंगल क्षण उपस्थित किया है। हे स्वामिन् ! शिव जी के लिए भी दुर्लभ यह क्षण आपको सुलभ हो गया, आपने सभी बालकों से विलक्षण यह पुत्ररत्न प्राप्त किया है। हे महाराज! यह बालक करोड़ों कामदेवों के भी इच्छा का विषय है, यह नखशिखपर्यन्त सुन्दर तथा निर्मल यश वाला है, इसमें तो महापुरुष साकेत विहारी भगवान श्रीराम के सभी लक्षण दिख रहे हैं। वही पीताम्बर, वही शार्ङ्गधनुष, वे ही दो तरकश, उनमें उसी प्रकार अक्षयबाण, उसी प्रकार वक्ष पर श्रीवत्सलांछन, उसी प्रकार वैजयन्ती माला और कौस्तुभ मणि, वे ही किरीट-कुण्डलादि आभूषण, वही नील-मेघ जैसा श्यामल कलेवर, मुझे लगता है कि साकेतबिहारी श्रीराम ही अवधबिहारी बन गये हैं। हे राजाओं के राजा! हे चक्रवर्ती महाराज! सुनिये-सुनिये जब तक नेग नहीं दीजियेगा, तब तक मैं पुत्र-दर्शन का अनुमोदन नहीं करूँगी। इस प्रकार **गिरिधर** कवि के प्रभु श्रीराघव को अपने आँचल में छिपाती हुई, नउनियाँ रघुराज दशरथ के प्रांगण को शोभित करती हुई स्वयं भी सुशोभित हुई।

गीत संख्या १९

अद्य परममङ्गले कोसले सुता नरपतेश्चत्वारः।
कौसल्याकैकेयीसुमित्राद्वारो हतनरकद्वारः।।१।।
रामभरतलक्ष्मणशत्रुघ्ना मङ्गलमयसुखदातारः।
शरणागतजनकल्पपादपा ईशास्त्रिभुवनधातारः।।२।।
सङ्गायन्ति मङ्गलं गीतं सह वाद्यैः शुभगातारः।
गजरथतुरङ्गधेनुमणिवसनं रान्ति रुचिरमथरातारः।।३।।
सहतुलसिकारोपितास्तरवः ये खलु मङ्गलकर्तारः।
पूज्यन्ते गणपतिहरगुरवो विघ्नवरूथपहर्तारः।।४।।

आयोध्यकाः प्रेमभरमुदिताः परमानन्दविजेतारः।
गिरिधरहृदि विहरन्तु नित्यशश्चत्वारः खलजेतारः।।५।।

भौमी–आज अयोध्यापुरी में परम मंगल है, महाराज दशरथ जी के यहाँ चार पुत्र प्रकट हुए हैं, उन्होंने कौसल्या, कैकेयी और सुमित्रा जी को जन्मद्वार अर्थात् मातारूप में स्वीकारा है, श्रीराम ने कौसल्या जी को, श्रीभरत ने कैकेयी को, श्रीलक्ष्मण–शत्रुघ्न ने सुमित्रा जी को माता माना है और इन चारों भ्राताओं ने काम–क्रोध–लोभ–मोह नामक नरक द्वारों को नष्ट किया है। श्रीराम–भरत–लक्ष्मण–शत्रुघ्न, ये चारों ईश्वर हैं, ये शरणागतों के लिए कल्पवृक्ष, मंगल और सुख के दाता तथा तीनों लोकों के रक्षक हैं। सुन्दर गायक लोग वाद्यों के साथ सुन्दर मंगल गीत गा रहे हैं और दानी लोग हाथी–रथ–घोड़े–गाय–मणि और वस्त्रों का सुन्दर दान कर रहे हैं। जो मंगल करने वाले हैं ऐसे तुलसी आदि वृक्ष लगाए जा रहे हैं और विघ्नबरूथों को हरने वाले शिव–गुरु और गणपति पूजे जा रहे हैं। परमानन्द को भी जीत लेने वाले, अयोध्यावासी प्रेम से आनन्दित हो रहे हैं, इस प्रकार दुष्टों के विजयी चारों भ्राता श्रीराम–भरत–लक्ष्मण–शत्रुघ्न **गिरिधर** कवि के हृदय में निरन्तर विहार करें।

गीत संख्या २०

अद्य दिनं सुदिनं हे मातः।
परमेश्वरो नरपतेर्भवने सुतरूपः सञ्जातः।।
धन्या मङ्गलदिवसमण्डिता चैत्रशुक्लतिथिनवमी।
रिक्तं प्राति नमति नवचरितं धृतनवशक्तिरनवमी।।१।।
हरिप्रीतमभिजित्सुमुहूर्तं पुनः पुनर्वसुसहितम् ।
दशरथयागा पूर्वमपूर्वं तत्राऽभून्महमहितम्।।२।
स्वोच्चारविकुजगुरुकविरविजा ग्रहाःपञ्चहृतशूलाः।
स्वमनुग्राहयितुं प्रथमायां पङ्क्तौ मङ्गलमूलाः।।३।।
वर्षन्त्युत सुमनांसि सुमनसो नट्यो नभसि नटन्ति।
गिरिधरप्रभुर्जयतु जयतादिति दिवि देवता रटन्ति।।४।।

भौमी–अयोध्या की एक बहू अपनी सासु–माँ से कह रही है– हे माँ! आज का दिन सुदिन है, क्योंकि परब्रह्म परमेश्वर श्रीराम ही महाराज दशरथ के भवन में पुत्ररूप धारण करके प्रकट हुये हैं। मंगल दिन से सुशोभित चैत्र शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि धन्य है, यह रिक्ता होने पर भी प्रभु के प्राकट्य के कारण इस रिक्त जगत को प्रसन्नता से भर रही है, नवीन चरित्रों से संपन्न श्रीराम को नमन कर रही है। यह नवमी विमला–उत्कर्षिणी–योगा–ज्ञाना–क्रिया–प्रह्वी–सत्या–ईशाना और अनुग्रहा नामक नौ परमेश्वर शक्तियों से युक्त है। यह अनुपम है। हे माँ! प्रभु को प्रिय अभिजित् मुहूर्त्त, पुनर्वसु नक्षत्र के सहित इसी नवमी के मध्य–दिवस में उपस्थित हुआ है, उसी शुभ घड़ी में दशरथ जी के यज्ञ का अपूर्वरूप उत्सवों से युक्त, अपूर्व बालक परब्रह्म परमात्मा तत्व ही प्रकट हुआ। हे माँ! स्वयं को प्रभु से अनुगृहीत कराने के लिए ही सभी मंगलों के मूल सूर्य–

मंगल–शनि–बृहस्पति और शुक्र ये पाँचों ग्रह मंगल के मूल बनकर प्रथम पंक्ति में स्थित होते हुए, अपने उच्चस्थान पर विराजमान हो गए हैं। अर्थात् मेष के सूर्य, मकर के मंगल, तुला के शनि, कर्क के बृहस्पति और मीन के शुक्र उच्च स्थान पर जाकर प्रभु की कृपा प्राप्त कर रहे हैं। देवता प्रसन्न होकर आकाश से पुष्पवर्षा कर रहे हैं, अप्सराएँ नाच रही हैं, **गिरिधर** के प्रभु श्रीराम की जय हो, जय हो, इस प्रकार स्वर्ग में देवता रट लगा रहे हैं।

गीत संख्या २१

अद्य रामः शिशुर्दृश्यताम् दृश्यताम्।।
कोसलेयं पुरी सत्तुरीया तुरी तत्र गत्वा तुरी कृष्यताम् कृष्यताम्।।१।।
रामजन्मोत्सवे ध्वस्तकामोद्भवे तत्र शान्तं मनो दिश्यताम् दिश्यताम्।।२।।
नर्तने योषितां कीर्तने सात्वतां तत्र चेतश्चिरं श्लिष्यताम् श्लिष्यताम्।।३।।
रामवर्धापने हर्षसंज्ञापने तत्र चात्मव्यथा क्लिश्यताम् क्लिश्यताम्।।४।।
गिरिधरेणास्तमायाभरेणापि भोः रामपादाम्बुजं स्पृश्यताम् स्पृश्यताम्।।५।।

भौमी–हे माँ! आजबालरूप श्रीराम जी के बार–बार दर्शन किए जायँ। यह अयोध्यापुरी तुरीय ब्रह्म श्रीराम की आतुरी अर्थात् बाल–चपलता से युक्त हो गई है, वहाँ जाकर अपनी आतुरी अर्थात् संसार की रोग व्याकुलता नष्ट कर दी जाय। कामादि विकारों को नष्ट करने वाले, उस श्रीराम–जन्मोत्सव में अपने शान्त मन को समर्पित कर दिया जाय। महिलाओं के नर्तन में, श्रीवैष्णव के कीर्त्तन में अपने चित्त को बहुत काल के लिए जोड़ दिया जाय। हर्ष को सूचित करने वाली उस श्रीराम जी की बधाई में आत्मा की व्यथा समाप्त कर ली जाय। इस प्रकार सांसारिक माया का भार छोड़कर कवि **गिरिधर** के द्वारा भी बार–बार श्रीराम के चरण कमल का स्पर्श कर लिया जाय।

गीत संख्या २२

रामनाम्ने परब्रह्मणे मङ्गलम्।
दिव्यधाम्ने चिरं ब्रह्मणे मङ्गलम्।।
नीलकञ्जाभदूर्वात्विषे मङ्गलं
दत्तसंश्रेयसे सत्पुषे मङ्गलम्।
विश्वविख्यातसत्कर्मणे मङ्गलं
रामनाम्ने परब्रह्मणे मङ्गलम्।।१।।
पङ्क्तिस्यन्दनमनस्यन्दिने मङ्गलं
योगिमुनिजननयननन्दिने मङ्गलम्।
क्लिप्तसेवकसुजनशर्मणे मङ्गलं
रामनाम्ने परब्रह्मणे मङ्गलम्।।२।।

बालभूषणवसनशार्ङ्गिणे मङ्गलं
दशरथाजिररजोरागिणे मङ्गलम्।
ज्ञानिदुर्ज्ञेयहृन्मर्मणे मङ्गलं
रामनाम्ने परब्रह्मणे मङ्गलम्।।३।।
मातृसुस्तन्यपानस्पृहे मङ्गलं
वेदविद्युड्विधानद्रुहे मङ्गलम्।
स्त्रग्विणे धर्मसद्वर्मणे मङ्गलं
रामनाम्ने परब्रह्मणे मङ्गलम्।।४।।
क्रीडतेऽक्लिष्टकामाय ते मङ्गलं
रामरामाभिरामाय ते मङ्गलम्।
दासगिरिधरनयननर्मणे मङ्गलं
रामनाम्ने परब्रह्मणे मङ्गलम्।।५।।

भौमी- राम नामक परब्रह्म का मंगल हो, दिव्य तेजोमय परब्रह्म परमेश्वर का चिरकालपर्यन्त मंगल हो। नीलकमल और दूर्वादल के समान सुन्दर श्रीराम का मंगल हो, भक्तों को श्रेय प्रदान करने वाले सन्तों के पोषक विख्यात, श्रेष्ठकर्म में निरत प्रभु श्रीराम का मंगल हो। दशरथ जी के मन को आनन्दित करने वाले राघव सरकार का मंगल हो, अपने सेवक श्रीवैष्णवों को सुख देने वाले प्रभु श्रीराम आपका मंगल हो। बालोचित अलंकार, वस्त्र एवं शार्ङ्गधनुष धारण करने वाले, महाराज दशरथ के आँगन की धूल में राग की अनुभूति करने वाले, योगीजनों के द्वारा भी जिनके हृदय का आशय दुर्ज्ञेय है, ऐसे परब्रह्म श्रीराम का मंगल हो। माँ कौसल्या के स्तन्यपान से स्पृहा रखने वाले, वेद द्वेषी जनों के कार्यकलाप का विद्रोह करने वाले, वनमालाधारी धर्म को ही कवच मानने वाले प्रभु श्रीराम का मंगल हो। श्रीअवध में खेलते हुये एवं भक्तों के आनन्द के लिए अलौकिक इच्छाएँ करने वाले, परशुराम और रामा अर्थात् मैथिलानियों को आनन्द देने वाले, मुझ दासानुदास **गिरिधर** के नेत्रों को आनन्द देने वाले परब्रह्म श्रीराम का मंगल हो।

गीत संख्या २३

राज्ञी कौसल्याऽजनयत् सुपुत्रं कोसलपुरे वाद्यते वर्धापी।
कालिन्दीसलिलमेघदूर्वासवर्णं नीरजनवलनीलनेत्रम्।।१।।
सेवकदुरितहरणलघुलघुचरणं करुणाकृपादिव्यपात्रम्।।२।।
कोटिकोटिकलाधरनिन्दकसुवदनं भवसागरपोतकचरित्रम्।।३।।
मनसिजमधुपमञ्जुमेचकसुकेशं विषयगहनकाननलवित्रम्।।४।।
कविगिरिधरजीवनसर्वस्वं परब्रह्म परमं पवित्रम्।।५।।

भौमी- अब कवि अवध अंचल की प्रसिद्ध लोक धुनि 'नचारी' में बधाई गीत प्रस्तुत कर रहे हैं- महारानी कौसल्या ने सुन्दर पुत्र को जन्म दिया है, अवधपुर में बधाई बज रही है। यमुना जल, मेघ एवं दूर्वादल के समान नील-कान्ति तथा नवीन नीलेकमल के समान कजरारे नेत्र वाले राजकुमार को कौसल्या जी ने जन्म दिया है, अतः बधाई बज रही है। सेवकों के पाप हरने वाले, जिनके छोटे-छोटे चरण हैं, जो करुणा और कृपा के अलौकिक पात्र हैं, ऐसे प्रभु को माँ कौसल्या ने जन्म दिया, अतः अवध में बधाई बज रही है। जिनका मुख करोड़ों-करोड़ों चन्द्रमाओं का निन्दक है, जिनका चरित्र भवसागर के लिए जहाज है। जिनके केश कामदेव के भ्रमर के समान श्याम हैं, जो स्वयं भक्तों के घने विषय वन को काटने के लिए लवित्र अर्थात् हँसिया शस्त्र के समान हैं, जो कवि **गिरिधर** के जीवनसर्वस्व परम पवित्र परब्रह्म परमात्मा हैं, उन्हीं को कौसल्या जी ने अपने पुत्ररूप में प्रकट किया है, श्रीअयोध्या में बधाई बज रही है।

सन्दर्भश्लोकः

समश्वेता श्वेताम्बरविजितताराधिपविभा
समायाताऽयोध्यापुरिकपटभृत्या तनुधरा।
मुदारोप्य स्वाङ्कं पदनतवृषाङ्कं शिशुमिमं
निकृन्तन्ती नालां गिरिधरगिरेला परिजगौ।।१।।

भौमी- उसी समय श्रीअयोध्यापुर में कपट-सेविका (धगड़िन) का वेष बनाकर भगवती सरस्वती पधारीं, जो सर्वशुक्ला थीं और जिन्होंने अपने श्वेतवस्त्र की कान्ति से चन्द्रमा की भी शोभा को जीत लिया था, ऐसी भगवती सरस्वती जिनके चरणों में भगवान शंकर भी नत होते हैं, ऐसे शिशु भगवान राम को गोद में लेकर उनके नाल (नार) काटती हुई, **गिरिधर** कवि की वाणी को माध्यम बनाकर गाने लगीं।

गीत संख्या २४

वर्धापनानि व्याहृयन्ताम् अवधपुरे रामः प्रकटितः।
रामः प्रकटितः अभिरामः प्रकटितः रामः प्रकटितः घनश्यामः प्रकटितः।।१।।
स्वयं नदन्ती नभसि दुन्दुभयः स्वर्मन्दिराण्यलङ्क्रियन्ताम्।।२।।
रघुपतिजन्ममहोत्सवं द्रष्टुं यानानि सुरैः संस्क्रियन्ताम्।।३।।
शचीरमापार्वतीप्रभृतिभिः भूषणानि गात्रेषु ध्रियन्ताम्।।४।।
मोदन्तां साधवस्त्रिभुवने रक्षः कुलानि वै म्रियन्ताम्।।५।।
रामजन्ममङ्गलमथगातुं गिरिधरगीतान्याद्रियन्ताम्।।६।।

भौमी- अरे! बधाई हो, बधाई हो, सब लोग बधाइयाँ गायें, श्रीअवधपुर में भगवान राम प्रकट हुए हैं, सबको आनन्द देने वाले, नील मेघ के समान श्यामल श्रीराम प्रकट हुए हैं बधाइयाँ गाओ। देखो, आकाश में दुन्दुभियाँ स्वयं बज रही हैं, स्वर्ग के मन्दिरों को सजाओ। श्रीराम का जन्म महोत्सव देखने के लिए देवगण अपने विमानों को सजा लें। शची-लक्ष्मी-पार्वती आदि देवियाँ अपने अङ्गों में सुन्दर अलंकार धारण कर लें।

अब तीनों लोक में साधुजन प्रसन्न हों, सभी राक्षस परिवार मरें। श्रीराम जन्म का मंगल गाने के लिए **गिरिधर** कवि के गीतों का समादर किया जाय, सब लोग बधाइयाँ गायें, श्रीअवध में श्रीराम का प्राकट्य हुआ है।

गीत संख्या २५

अथ राजानं प्रति-

सुखं नालाकर्तनं करिष्ये कौसल्यायाः साटीं ग्रहीष्ये।
भृत्या वदति सस्मिता नृपतिं बारम्बारमाग्रहीष्ये।।१।।
प्राज्यं न राज्यं नैव लोकसाम्राज्यं महाराज किमपि परिग्रहीष्ये।।२।।
यावन्न लभे महीपतेस्वाभीष्टं तावत् साधिकारं विग्रहीष्ये।।३।।
एतद् विकल्पं न विद्यते त्रिभुवने इदं धनं कोषे सङ्ग्रहीष्ये।।४।।
गिरिधरप्रभुर्यस्यां प्रथमं प्रकटितः तयैवाद्य स्वमनुग्रहीष्ये।।५।।

भौमी- अब सरस्वती जी महाराज दशरथ को संबोधित करती हुई गाती हैं–हे महाराज! मैं सुखपूर्वक लालन की नाला (नार) काटूँगी, इन्हें तनिक भी कष्ट नहीं होगा, परन्तु उपहार में कौसल्या जी की साड़ी अवश्य लूँगी। धगड़िन मुस्कुराकर महाराज से कहती है, मैं आप से बार-बार यही आग्रह करूँगी। हे महाराज! इस नेग के विकल्प में मैं आपका प्राज्य अर्थात् स्वर्ण भण्डार नहीं लूँगी, अवध का राज्य नहीं लूँगी, किंवा तीनों लोकों का साम्राज्य भी नहीं लूँगी, लूँगी केवल कौसल्या रानी की साड़ी। हे महाराज! जब तक मैं अपना मुँह माँगा नेग नहीं पाऊँगी, तब तक अधिकारपूर्वक अपनी नेग के लिए आपसे ठनगन करती रहूँगी। इसका विकल्प तीनों लोकों में भी नहीं है, इस धन को मैं अपने कोष में संग्रह करके रखूँगी। जिस साड़ी के अँचल पर **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम प्रथम बार प्रकट हुए हैं, कौसल्या रानी की उसी साड़ी से आज मैं स्वयं को अनुगृहीत करूँगी, अर्थात् बालरूप श्रीराम के प्राकट्य की प्रथम क्षण की साक्षिणी साड़ी ही अब मैं निरन्तर धारण किए रहूँगी, उसे कभी उतारूँगी ही नहीं।

फिर कवि बधाई गीत ही प्रस्तुत कर रहे हैं–

गीत संख्या २६

अद्याजागरीदयोध्याभागः प्रकटितो रघुनाथः।।
राज्ञी कौसल्यायाः कुक्षिः सुफलिता सफलितो दशरथभागः।।१।।
सफला सज्जनवाञ्छालतिका सफलितो भूतलविभागः।। २।।
ऋष्यशृङ्गपुत्रेष्टिः सफला सफलो वसिष्ठस्य त्यागः।। ३।।
सफला दिशा सुसफला विदिशा सफलो वैष्णवविरागः।।४।।
सफला गिरिधरमङ्गलकविता सफलः शुभानुरागः।।५।।

भौमी- आज श्रीअयोध्या का सौभाग्य जग गया, यहाँ रघुकुल के नाथ श्रीराम प्रकट हो गए। महारानी कौसल्या जी की कोख फलवती हो गई, महाराज दशरथ का यज्ञ भी सफल हो गया। रघु अर्थात् जीवमात्र के स्वामी श्रीराम प्रकट हो गए। सज्जनों की इच्छारूपी लता में आज फल लग गये, यह भारत भूमि का भाग

कोसलदेश सफल हो गया, यहाँ संपूर्ण जीवों की प्रार्थना का विषय श्रीराम प्रकट हो गए। महर्षि ऋष्यशृंग की पुत्रेष्टि यज्ञ सफल हुई और गुरुदेव वसिष्ठ का त्याग भी सफल हुआ, क्योंकि इन्हीं दोनों ऋषियों के प्रयोग से जगत के रघु अर्थात् ईष्टदेव स्वामी श्रीराम प्रकट हुए। आज दिशाएँ और विदिशाएँ सफल हो गईं और श्रीवैष्णवजनों का वैराग्य भी सफल हो गया, इन्हीं की प्रार्थना को पूर्ण करने के लिए भगवान श्रीराम प्रकट हुए हैं। और यह बधाई गाकर **गिरिधर** कवि की कविता सफल हो गयी तथा इस कवि का कल्याणकारी श्रीराम अनुराग भी सफल हो गया, क्योंकि रघु अर्थात् संपूर्ण जीवों के नाथ अर्थात् आशीर्वाद रूप में यथेष्ट वरदान देने के लिए भगवान श्रीराम प्रकट हो गए हैं।

गीत संख्या २७

वाद्यते कोसले वर्धापी राघवः प्रकटितः।।
चैत्रशुक्लनवमीशुभदिवसो मङ्गलमयोविश्वव्यापी।
वर्धापी राघवः प्रकटितः।।१।।
नृत्यति गायति हृष्यति लोको जय जय जय संलापी।
वर्धापी राघवः प्रकटितः।।२।।
लङ्केशः शं लभते न पापी हृदि सीदति परितापी।
वर्धापी राघवः प्रकटितः।।३।।
प्रकटः परमेश्वरो भूतले कोटिदिनेशप्रतापी।
वर्धापी राघवः प्रकटितः।।४।।
नृत्यति वर्धापयन् गिरिधरो घनमिव वीक्ष्य कलापी।
वर्धापी राघवः प्रकटितः।।५।।

भौमी–आज अयोध्या पुरी में बधाई बज रही है, बधाई है श्रीराघव प्रकट हुए हैं। आज का दिन विश्वव्यापी मंगलमय, चैत्रशुक्ल पक्ष नवमी से युक्त है, बधाई है श्रीराघव की प्राकट्य की। इस समय संपूर्ण संसार जय हो, जय हो, जय हो कहता हुआ नाच रहा है, गा रहा है और प्रसन्न हो रहा है, बधाई हो भगवान श्रीराम के प्राकट्य की। इस समय पापी रावण शान्ति नहीं पा रहा है, सभी को कष्ट देने वाला दुष्ट रावण हृदय में घबरा रहा है, बधाई हो रावणशत्रु श्रीराम के प्राकट्य की। करोड़ों सूर्य के समान प्रताप वाले परब्रह्म परमेश्वर ही आज श्रीअवध में प्रकट हुए हैं, बधाई हो मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के प्राकट्य की। इस उत्सव में बादल को निहारकर मयूर की भाँति बधाई देता हुआ कवि **गिरिधर** भी नाच रहा है, बधाई हो कौसल्यानन्दवर्धन श्रीराम के प्राकट्य की।

गीत संख्या २८

स्वजनप्रियप्राण हे राघव शुभं वर्धापनं ब्रूमः।
सतां सन्त्राण हे राघव भवद्वर्धापनं ब्रूमः।।१।।

सुदिवसो धन्यतम एषः प्रगतभयविघ्नलवलेशः।
सुखितगीर्वाण हे राघव! भवद् वर्धापनं ब्रूमः।।२।।
वदान्या चैत्रसितनवमी सुधन्या शक्तिरिव नवमी।
निहतनिर्याण हे राघव भवद्वर्धापनं ब्रूमः।।३।।
प्रमोदय राम सद्वर्गं विनोदय भीमत्रैवर्गम्।
महितनिर्वाण हे राघव भवद्वर्धापनं ब्रूमः।।४।।
विहर गिरिधरमनसि नित्यं शिशो तव चेदमथकृत्यम्।
लसितशितबाण हे राघव भवद्वर्धापनं ब्रूमः।।५।।

भौमी- हे अपने भक्तों के प्रेमास्पद राघव! हम आपकी बधाई गाते हैं। हे संतों के संरक्षक प्रभु! हम आपकी बधाई गाते हैं। यह दिन धन्य है, आज इसके भयों और विघ्नों का थोड़ा-सा अंश भी दूर हो गया है। हे देवताओं के सुखदाता श्री राघव! हम आपका बधाई गान कर रहे हैं। धन्यवादार्ह परमात्मा की नवमी अर्थात् अनुग्रहा-शक्ति के समान ही यह चैत्रशुक्ल नवमी धन्य हो गई है। हे निज-भक्तों के नरक कष्ट के विनाशक राघव सरकार हम आपकी बधाई गा रहे हैं। हे प्रभु श्रीराम! सन्तों के वर्ग को प्रसन्न कीजिये और भयंकर काम-क्रोध-लोभ के वर्ग को नष्ट कीजिये, हे मोक्ष को भी सन्मान देने वाले श्रीराघव! हम आपका बधाई गान कर रहे हैं।

गीत संख्या २९

वाद्यते वर्धापी दशरथद्वारे।।
पुरुषोत्तमोऽभवन् नृपसूनुः शुचिदिनकरपरिवारे।। १।।
नृत्यन्त्यो गायन्ति योषितः प्राचीरे प्राकारे।। २।।
जनसंबाधोऽभवन् नृपभवने लसितविविधशृङ्गारे।।३।।
त्रातुं गोद्विजसतो रघुपतिः प्रकटोऽभूत् संसारे।।४।।
राघव पाहि गिरिधरं विप्रं पतितं पारावारे।।५।।

भौमी- आज महाराज दशरथ के द्वार पर बधाई बज रही है, क्योंकि पवित्र सूर्य परिवार में प्रकट होकर पुराण पुरुषोत्तम परमात्मा ही महाराज दशरथ जी के पुत्र बन गए हैं, अतः उनके द्वार पर बधाई बज रही है। आज चहरदीवारी के पास और परकोटों पर महिलाएँ नृत्य करती हुई गा रही हैं। अनेक शृंगारों से सुसज्जित महाराज के भवन में भारी भीड़ उमड़ आई है। क्योंकि गौ-ब्राह्मण और सन्तों की रक्षा करने के लिए साकेत बिहारी भगवान श्रीराम ही इस संसार में अवधबिहारी श्रीराम रूप में प्रकट हुए हैं। हे श्रीराघव! इस संसार सागर में पड़े हुए एक ब्राह्मण **गिरिधर** कवि की भी रक्षा कर लीजिए।

गीत संख्या ३०

प्रणतजनप्राणधन राघव सुवर्धापी सुवर्धापी।
विमलविज्ञानधन राघव सुवर्धापी सुवर्धापी।।१।।

त्वयाऽयोध्यासुखं याता सकल लोके सुविख्याता।
महितदशरथभवन राघव सुवर्धापी सुवर्धापी।।२।।
वसन्तो भाति सुखनिलयः सुवातो वाति मृदुमलयः।
सुमुखशोभासदन राघव सुवर्धापी सुवर्धापी।।३।।
मधुरमधुरो मधुर्मासः सिता नवमी सुखोल्लासः।
विभामोहितमदन राघव सुवर्धापी सुवर्धापी।।४।।
मुहूर्तं चाभिजिद् धन्यं पुनर्वसुयुक्तमतिमान्यम्।
गुणावर्जितसुजन राघव सुवर्धापी सुवर्धापी।।५।।
जगत्सर्वं धृतानन्दं निरीक्ष्यार्भञ्च गोविन्दम्।
सुखितगिरिधरनयन राघव सुवर्धापी सुवर्धापी।।६।।

भौमी- हे प्रणतजनों के प्राणधन श्रीराघव! आपकी बधाई हो, बधाई हो। हे निर्मलविज्ञान के बादल प्रभु! आपकी बधाई हो, बधाई हो। आपके कारण यह अयोध्या अपूर्वसुख को प्राप्त हुई और संपूर्ण लोक में प्रसिद्ध हो गई। हे महाराज दशरथ के भवन को सन्मान देने वाले राघव! आपकी बधाई हो, बधाई हो। अहो! आज संपूर्ण सुखों का आश्रय बनकर वसन्त सुशोभित हो रहा है और मन्द-मन्द मलय वायु बह रहा है। हे सुन्दर मुख वाले शोभा के धाम श्रीराघव! आपकी बधाई हो, बधाई हो। अहो! यह चैत्र का महीना अत्यन्त मधुर है, यह शुक्लपक्ष की नौमी सुखउल्लसित हो रही है। अपनी कान्ति से कामदेवों को मोहित करने वाले श्रीराघव! आपकी बधाई हो, बधाई हो। पुनर्वसु नक्षत्र से युक्त यह अभिजित् मुहूर्त्त अत्यन्त माननीय और धन्य है, अपने गुणों से सज्जनों को आकृष्ट करने वाले श्रीराघव! आपकी बधाई हो, बधाई हो। आपश्री गोविन्द को बालरूप में निहारकर यह संपूर्ण जगत् आनन्दमय हो रहा है। हे **गिरिधर** कवि के नेत्रों को आनन्द देने वाले राघव! आपकी बधाई हो, बधाई हो।

गीत संख्या ३१

अद्यतनी सखि नवमी सुविचित्रा।
यस्यामेव मातरोऽभूवन् कौसल्या कैकयी सुमित्रा।।१।।
नो भूता न भविष्यति भव्या शृणु सखि तिथिरीदृशी कदाचित्।
यस्यां सार्धमंशकैरंशी प्रकटो भगवान् शिशुर्मुदाचित् ।।२।।
गर्भाधानपुंसवनसीमन्तोन्नयनैः सुसंस्कृता बालाः।
चत्वारो धर्मा इव जाताश्चत्वारो नृपसुता नृपालाः।।३।।
पूर्णा नृपदशरथमनोरथाः ससुतास्तिस्त्रो राजमहिष्यः।
वर्षन्त्यथ सुमनांसि सुमनसो रान्ति चाशिषो विप्रविदुष्यः।।४।।
जातकर्मसंस्कृता चकासति नृपपुत्रा कृतवैदिककृत्याः।
सुगुणाढ्याः शरदीव निरभ्रे गगने यथा विभान्त्यादित्याः।।५।।

वाणी वाणीं समाकर्ण्य विबभौ गद्गद्वाणी गीर्वाणी।
गिरिधरप्रभुं जगाविन्द्राणी दिवि गवि सहसर्वा शर्वाणी।।६।।

भौमी- हे सखी! आजकी यह नौमी अत्यंत विचित्र हो गई है, जिसमें श्री कौसल्या-कैकेयी-सुमित्रा माँ बन गईं। हे सखी! सुनों ऐसी तिथि न पहले कभी हुई और न भविष्य में कभी होगी, जिसमें अपने तीनों विष्णु अंशों के साथ सभी अवतारों के अंशी भगवान श्रीराम प्रसन्नतापूर्वक महाराज दशरथ के यहाँ प्रकट हुए। गर्भाधान-पुंसवन और सीमन्तोन्नयन संस्कारों से सुसंस्कृत महाराज के चारों बालक मानों मनुष्य के पालक चार धर्मों के रूप में प्रकट हुए हैं।

विशेष- धर्म के चार भेद होते हैं, सामान्य धर्म, विशेष धर्म, विशेषतर धर्म, विशेषतम धर्म। श्रीराम सामान्य धर्म का अर्थात् धर्म के सभी अंगों का पालन करते हैं। श्रीलक्ष्मण भगवत् कैंकर्यरूप विशेष धर्म का श्रीभरत भगवत् पारतन्त्र्यरूप विशेषतर धर्म का। और श्रीशत्रुघ्न भागवत पारतन्त्र्यरूप विशेषतम धर्म का पालन करते हैं। महाराज दशरथ के मनोरथ पूर्ण हुए, तीनों राजरानियाँ, पुत्रवती हुईं, देवता फूलों की वर्षा कर रहे हैं और ब्राह्मण पत्नियाँ आशीर्वाद दे रही हैं। इस प्रकार जातकर्म संस्कार से संपन्न चारों राजकुमार वेद विधान के पुण्य से युक्त होकर शरदकाल में मेघरहित आकाश में उदित हुए चार सूर्य जैसे विराजमान हो रहे हैं। इस प्रकार सरस्वती जी की वाणी सुनकर गद्गद् स्वर वाली संस्कृत वाणी सुशोभित हुई और **गिरिधर** कवि के प्रभु को स्वर्ग में इन्द्राणी ने गाया और श्रीअयोध्या की भूमि पर पधारकर शिवजी के साथ पार्वती ने भी गाया।

गीत संख्या ३२

अद्य राघवषष्ठी आयाता हे रसिके।
आयाता हे रसिके समायाता हे रसिके।।
चैत्रचारुरविसितचतुर्दशी गवि भुवि दिवि विख्याता हे रसिके।।१।।
गृहगृहमवधपुरे महोत्सवे मुदिता जनता जाता हे रसिके।।२।।
वर्धापनं वाद्यते दिव्यं सोहिलो गायति गाता हे रसिके।।३।।
कौसल्या गतशल्या मुदिता ससलिलदृग् जलजाता रसिके।।४।।
षष्ठीमर्चति नृपो दशरथो विकसति वीक्ष्य विधाता हे रसिके।।५।।
गिरिधरप्रभु शिशुमुखमरुन्धती शुचि चुम्बति गुरुमाता हे रसिके।।६।।

भौमी- अब श्रीराम की छठी (छट्ठी) उत्सव का वर्णन करते हैं-एक सखी दूसरी सखी से कहती है कि हे सखी! आज श्रीराघव जी की छठी आ गयी है। यह चैत्र शुक्ल-पक्ष चतुर्दशी रविवार दिन में संपन्न हुई षष्ठी वेदों में, पृथिवी पर और स्वर्ग में प्रसिद्ध हो गई। अयोध्या के प्रत्येक गृह में छठी (छट्ठी) का महोत्सव हो रहा है, संपूर्ण जनता प्रसन्न है। चारों ओर बधाइयाँ बज रही हैं और गायक लोग सोहिलो गीत गा रहे हैं। कौसल्या जी शोक से रहित होकर प्रसन्न हो रही हैं, उनके नेत्र जल से भर गए हैं। महाराज दशरथ प्रसन्न होकर छठी पूजन कर रहे हैं, यह देखकर ब्रह्मा जी बहुत प्रसन्न हो रहे हैं। **गिरिधर** के प्रभु शिशु श्रीराम का मुख चूम रही हैं-गुरु माता अरुन्धती।

गीत संख्या ३३

अद्य धृतमङ्गला विभाति षष्ठी रजनी।
भाति षष्ठी रजनी विभाति षष्ठी रजनी।।
चैत्रचतुर्दशी चारूनिशाकरमधुरमयूखैर्विभाति षष्ठी रजनी।।१।।
दशरथपुत्रचतुष्टयमभितः निचितदुरितमपि दाति षष्ठी रजनी।।२।।
जाग्रत मा निद्रात रमण्यो राघवरतिमपि राति षष्ठी रजनी।।३।।
पश्यत पश्यत शिशून् मृगाक्ष्यो जीवनफलं ददाति षष्ठी रजनी।।४।।
मङ्गलमिदमरुन्धती कुरुते गिरिधरं भवभयात् पाति षष्ठी रजनी।।५।।

भौमी- आज संपूर्ण मंगलों को धारण की हुई, श्रीराम जन्म की छठी रात सुन्दर लग रही है। चैत्र शुक्लपक्ष की चतुर्दशी के सुन्दर चन्द्रमा की दिव्य किरणों से छठी की रात बहुत सुन्दर लग रही है। श्री दशरथ जी के चारों पुत्रों के पास फैले हुए, नरलीलोचित होना आदि विघ्नों को भी छठी की रात नष्ट कर रही है। हे सुन्दरियों! आज जागरण करो, सोओ मत, क्योंकि यह छठी की रात श्रीराम प्रेम का वितरण ही कर रही है। हे मृगनयनियों! इन बालकों को निहारो, निहारो, यह छठी की रात हमें जीवन का फल भी दे रही है। भगवती अरुन्धती मंगलाचार की विधि कर रही हैं और प्रभु जन्म की यह छठी रात मुझ कवि **गिरिधर** को संसार के भय से मुक्त कर रही है।

गीत संख्या ३४

अद्य सख्यः सुखेनागता द्वादशी।
आगता द्वादशी स्वागता द्वादशी।।
बारहीति सामान्यलोके प्रसिद्धा बाराही श्रुतीव चागता द्वादशी।।१।।
शिशूनां चतुर्णां च सूतिका विशुद्ध्यै जाह्नवीकृतीव चागता द्वादशी।।२।।
नखच्छेदरीतिं नापितानी विधत्ते मङ्गलविभूतीवागता द्वादशी।।३।।
अङ्केषु गृह्णीध्वं भाग्यं वृणीध्वं मञ्जुलसमूतीवागता द्वादशी।।४।।
प्रभुस्पर्शमभिलषति गिरिधरः शरणागतिरिवागता द्वादशी।।५।।

भौमी- हे सखियों! आज सुख से शिशु राघव की बरही आ गई। (पुत्र के जन्म के बारहवें दिन का उत्सव)। हम इसका स्वागत करती हैं। सामान्य लोक में बारही शब्द से प्रसिद्ध यह बरही, बाराहीश्रुति के समान आ गई। चारों बालकों की सूतिका पवित्रता के लिए यह बारही गंगाजी के समान आ गई। आज नाईन बालकों के नख काटने की विधि संपन्न कर रही हैं, यह बारही निर्मल विभूति के समान आ गई है। हे सखियों! चारों बालकों को गोद में लो, अपने भाग्य का वरण करो, यह बारही परमेश्वर की मंगलमयी लीला के समान आ गई। इसी व्याज से **गिरिधर** कवि भी भगवान का स्पर्श चाहता है, क्योंकि यह बारही शरणागति के समान आ गई है।

गीत संख्या ३५

शिशो राघव नृपतिभवने सुखं जीव्याः शतं शरदाम्।
कलितलाघव सुमतिभवने सुखं जीव्याः शतं शरदाम्।।१।।
दिनं नो धन्यतां जातं जननमपि मान्यतां यातम्।
सदा हिन्दूत्वशन्तन्तून् शिवं सीव्याः शतं शरदाम्।।२।।
सदा ते वर्धतां तेजः विदिशि दिशि वर्धतामोजः।
सुभारतवर्षवरसदने भवं भव्याः शतं शरदाम्।।३।।
भव त्वं वत्स दीर्घायुः मृकण्डात्मेव सुस्नायुः।
सतां मङ्गलमये वदने द्रवन् द्रव्याः शतं शरदाम्।।४।।
प्रतापी भानुवद् भूयाः सदा श्रेष्ठान् मुहुः स्तूयाः।
नृणां सौभाग्यसुखशयने नवन् नव्याः शतं शरदाम्।।५।।
चलन् खेलन् हसन् किलकन् अवधवसुधां श्रिया तिलकन्।
सदा गिरिधरनमितनयने दिवन् दीव्याः शतं शरदाम्।।६।।

भौमी- हे शिशु राघव! महाराज के भवन में आप अनन्तवर्षपर्यंत जीवित रहें। हे शीघ्रता संपन्न प्रभु! सद्बुद्धि संपन्न महाराज के पास आप अनन्त वर्ष पर्यन्त जीवित रहें। हे प्रभु! आज हमारा दिन धन्य हुआ और यह जन्म भी सम्मानित हुआ, आप सदैव अनन्तवर्षपर्यन्त हिन्दुत्व की तन्तुओं को सिलते रहें। हे राघव! आपका तेज निरन्तर बढ़ता रहे और आपका ओज दिशाओं और विदिशाओं में भी प्रसारित होता रहे। इस भारत वर्ष के श्रेष्ठ भवन में आप अनन्तवर्षपर्यन्त कल्याण को भव्यता प्रदान करते रहें। हे वत्स! आप मार्कण्डेय की भाँति सुन्दर स्नायुओं से संपन्न होकर दीर्घायु बनें, आप अनन्त वर्षों तक सन्तों के मंगलमय वचनों में द्रवित होकर द्रव्य की भूमिका निभायें। आप सूर्य की भाँति प्रतापी बनें और निरन्तर श्रेष्ठों की प्रशंसा करते रहें, मनुष्यों के सुख सौभाग्य के शयन के समय आप अनन्तवर्षपर्यन्त नमन करते हुए नवीनता का संचार करते रहें। हे श्रीराघव! चलते हुए, खेलते हुए, किलकते हुए, हँसते हुए निरन्तर भारत भूमि को अपने गुणों द्वारा तिलकित अर्थात् सम्मानित करते हुए सदैव **गिरिधर** के विनम्र नेत्रों में खेलते हुए आप अनन्तवर्ष तक देदीप्यमान रहें।

गीत संख्या ३६

धन्या धन्या राज्ञी कौसल्या माता धन्या कोसलपुरी हे।
राघव धन्यः पिता राजा दशरथोऽपि धन्या विधिचातुरी हे।।१।।
धन्या धन्या सरयूः सुसरिता पुलिनमपि धन्यं धन्यं हे।
राघव धन्या धन्या तव बालकेलिर्धरणितलं धन्यं धन्यं हे।।२।।
धन्या धन्या अयोध्यायाः धूलिर्वसनमपि धन्यं धन्यं हे
राघव धन्यं तव क्रीडनकजातं भूषणमपि धन्यं धन्यं हे।।३।।

धन्यो धन्यो लोके सैव प्राणी भवन्तं यदि ध्यायति हे।
राघव धन्या धन्या गिरिधरवाणी भवन्तमेव गायति हे।।४।।

भौमी– महारानी कौसल्या धन्य हैं, श्री अयोध्यापुरी धन्य है और महाराज पिता दशरथ भी धन्य हैं तथा विधाता की चतुरता भी धन्य है। श्रेष्ठ नदी सरयू धन्य हैं और उनका तट भी धन्य है। हे राघव! आपकी बाललीला धन्य है और यह पृथिवी तल भी धन्य है। हे श्रीराघव! अयोध्याकी धूलि धन्य है, आपकी क्रीड़ा भी धन्य है, आपके वस्त्र धन्य हैं और आपके आभूषण भी धन्य हैं। हे प्रभु! लोक में वह प्राणी धन्य है जो आपका ध्यान करता है और मुझ कवि **गिरिधर** की वाणी भी धन्य है जो निरन्तर आपको ही गाती है, प्रायशः संस्कृत में कभी–कभी हिन्दी में।

इति
श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरमहाकविजगद्गुरुरामानन्दाचार्यस्वामिरामभद्राचार्यगिरिधरकविप्रणीते गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये बालकाण्डे गीतराघवाविर्भावो नाम द्वितीयः सर्गः।

इस प्रकार श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर महाकवि जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य गिरिधरकवि द्वारा विरचित गीतरामायण 'गीतसीताभिराम' नामक संस्कृत गीतमहाकाव्य के बालकाण्ड में गीतराघवाविर्भाव नामक द्वितीय सर्ग सम्पन्न हुआ।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

।।श्रीः।।

।।नमो राघवाय।।

गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये बालकाण्डे

गीतराघवबालकेलिर्नाम

तृतीयः सर्गः

सन्दर्भश्लोकः

अजन्मनोऽप्यर्ककुले सुजन्म यत् अनामकस्यापि च नामसंस्कृतिः।
निरञ्जनस्यापि दृगम्बुजाञ्जनं समञ्जसे सर्वमिदं समञ्जसम्।। १।।

भौमी– अजन्मा होकर भी सूर्यवंश में प्रभु का जन्म ग्रहण करना, अनाम होकर भी परमेश्वर का नामकरण संस्कार, निरञ्जन होकर कमलनेत्रों में अञ्जन धारण करना, यह सभी परस्पर विरुद्ध धर्म परमात्मा में समञ्जस अर्थात् अविरुद्ध, अनुकूल ही हैं। क्योंकि भगवान श्रीराम का सबसे सामञ्जस्य है।

गीत संख्या १

प्रतिगृहमवधसुमङ्गलं कलितेष्टापूर्तम्।
रघुवर नामकरणफलं शुभमद्यमुहूर्तम्।।
नभसि नटन्ति सुराङ्गनाः सुवदति वर्धापी।
शुभमभिदधति पुराङ्गना हर्षो जनव्यापी।।१।।
दिशि दिशि विदिशि महोत्सवः सुखमति संसारे
जनसम्मर्दसुगौरवो दशरथनृपद्वारे।।२।।
आसीना सुचतुष्कके तिस्रोऽपि महिष्यः
विभ्राणाश्चतुरः सुतान् स्वाङ्केषु विदुष्यः।।३।।
सपदि वसिष्ठमुनीश्वरो नरपेणाहूतः।
दृष्ट्वा गिरिधरप्रभुमुखं विस्मयाभिभूतः।।४।।

भौमी– आज श्रीअयोध्या के प्रत्येक भवन में इष्टापूर्त के साथ सुंदर मंगल हो रहा है। आज प्रभु श्रीराघव के नामकरण के अनुकूल दिव्यमुहूर्त्त आ गया है। आकाश में देवाङ्गनाएँ नाच रही हैं, सुन्दर बधाई बज रही है। श्री अवधपुरी की महिलाएँ सुन्दर गीत गा रही हैं प्रभु के नामकरण का आनंद सम्पूर्ण लोकों में व्याप्त हो रहा है। आज प्रत्येक दिशा में और दिशाओं के अन्तरालों में भी यह महोत्सव छा गया है। इस महोत्सव के उपलक्ष्य

में महाराज दशरथ के द्वार पर जनता की भारी भीड़ जम गई है। आज संसार भर में यह सुख छा गया है। महाराज की तीनों पट्टमहिषियाँ जो भगवत् तत्व को भलीभाँति जानती हैं, आज चारों–पुत्रों को गोद में लेकर सुन्दर चौके पर बैठी हैं। महाराज दशरथ जी द्वारा, सम्मान के साथ शीघ्र आहूत हुए (बुलाए हुए) महर्षि वसिष्ठ जी ने जब **गिरिधर** कवि के स्वामी श्री राघव का मुख निहारा तब वे विस्मय से अभिभूत हो उठे।

विशेष– यह गीत गोस्वामी तुलसीदास जी की गीतावली के एक गीत के अनुसार निबद्ध है जिसके बोल इस प्रकार है–

बाजहिं अवध गहागहे आनंद बधाये।
नामकरण रघुवरन के नृपसुदिनसो धाये।।

गीत संख्या २

हे कृपाकर राम राघव पापतः परिपाहि माम्।
हे समर्जितसद्गुणार्णव तापतः किल त्राहि माम्।।१।।
व्यापको व्याप्योऽभवन् जातः शिशुर्ज्ञातो मया।
हे चपल चल जानुपद्भ्यां शीघ्रमेवायाहि माम्।।२।।
अमितवर्षेभ्यः प्रतीक्षां नाथ कुर्वे त्वत्कृते।
दीनबन्धो दीनमेनं सत्वरं ह्युपयाहि माम्।।३।।
हा निराहारोऽपि रोदिमि किन्नु संशृणुषे विभो।
पतितपावन पादरजसा राघवेन्द्र पुनीहि माम्।।४।।
नामकरणं ते चिकीर्षुर्धाष्ट्र्यमेतद् क्षम्यताम्।
हे क्षमामूर्ते सपदि निजकिङ्करं प्रविधेहि माम्।।५।।
आकुले नयने मदीये क्षिप्रमाश्वासय हरे।
बालवर कलवलगिरा गिरिधरगिरीश गृणीहि माम्।।६।।

भौमी– अब वसिष्ठ जी प्रभु की स्तुति करते हुए कहते हैं– हे कृपा की खान, श्रीराम राघव सरकार! पापों से मेरी रक्षा कीजिए। हे अर्जित किये हुए सद्गुणों के समुद्र प्रभु, तीनों तापों से मेरी रक्षा कीजिए। हे प्रभो! मैंने जान लिया है कि आप व्यापक होते हुए भी व्याप्य अर्थात् छोटे से दशरथ जी के भवन में बालक बनकर प्रकट हुए हैं। हे चपल! अपने घुटनों से चलकर शीघ्र ही मेरे समीप आ जाओ। हे प्रभो! आपके लिए मैं अनेक वर्षों से प्रतीक्षा कर रहा हूँ। हे दीनबन्धो! निश्चयपूर्वक अत्यन्त शीघ्र इस दीन वसिष्ठ के पास आ जाओ। हा, हा!! मैं निराहार अर्थात् भोजन छोड़कर रो रहा हूँ। हे प्रभो आप क्यों नहीं सुन रहे हैं। हे राघवेन्द्र! हे पतितपावन! अपनी चरणकमल की धूलि से मुझे पवित्र कीजिए। हे परमात्मा! क्षमा के विग्रह प्रभो! मैं आपका नामकरण करना चाह रहा हूँ। मेरी यह धृष्टता क्षमा कीजिए। और शीघ्र ही मुझे अपना सेवक बना लीजिए। हे हरे! मेरे नेत्र अकुला रहे हैं। आप शीघ्र आश्वासन दीजिए। हे कवि **गिरिधर** की वाणी के स्वामिन् बालकश्रेष्ठ श्रीराघव आप अपनी तोतली बोली से एक बार मुझसे भाषण कर लीजिए।

गीत संख्या ३

कविर्गायति-

दशरथनृपतिसमर्चितो विधिवद्विधिपुत्रः।
विधिमकरोद् विधिचर्चितः सहविप्रत्रिनेत्रः।।१।।
पठति मुदा रक्षा-ऋचः सस्वरमृषिराजः।
पुण्याहं ब्रूते पुनः पुलकितमुनिराजः।।२।।
ज्येष्ठं बालमथाब्रवीद् राममानन्दसिन्धुम्।
कैकयिजं भरतं मुदा ख्यातसज्जनबन्धुम्।।३।।
सौमित्रिं लक्ष्मणमथो रामभक्तिलक्षणम्।
शत्रुघ्नं च कनिष्ठकं रिपुवधविचक्षणम्।।४।।
मुनिश्चतुर्णामपि मुदा नामकरणं कृत्वा।
गिरिधरप्रभुमपिगृहमगात् दक्षिणां गृहीत्वा।।५।।

भौमी- अब स्वयं कवि गा रहे हैं-इस प्रकार कहकर ब्रह्मा जी के अष्टम-पुत्र महर्षि वसिष्ठ जी ने स्वयं महाराज दशरथ से पूजित होकर ब्रह्मा जी का आदेश पाकर अन्य ब्राह्मण एवं शिवजी के साथ प्रसन्नता से भगवान श्रीराघव की नामकरण विधि प्रारंभ की। ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठ जी रक्षा ऋचा का सुस्वर पाठ कर रहे हैं और फिर पुलकित होकर महर्षि पुण्याहवाचन कर रहे हैं। महर्षि वसिष्ठ जी ने कौसल्या जी से प्रकट हुए आनन्द के महासागर प्रभु ज्येष्ठ राजकुमार का नाम राम कहा, अर्थात् घोषित किया। इसी प्रकार प्रसिद्ध वैष्णवों के बन्धु कैकेयी पुत्र का नाम श्रीभरत कहा, इसीप्रकार श्रीरामभक्ति के लक्षण से संपन्न सुमित्रा के ज्येष्ठ कुमार का नाम लक्ष्मण कहा और शत्रुवध में कुशल कनिष्ठ सुमित्रा-पुत्र का नाम शत्रुघ्न रखा। इस प्रकार महर्षि वसिष्ठ जी महाराज के चारों पुत्रों का राम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न नामकरण करके **गिरिधर** प्रभु श्रीराम को ही दक्षिणा रूप में ग्रहण करके आश्रम पधार गए।

विशेष- यह गीत भी गीत संख्या एक की निर्दिष्ट लोकधुन के आधार पर ही है।

सन्दर्भश्लोकः

कन्दावदातं जनपारिजातं काकानुगं कल्पितकाकपक्षम्।
श्रीराघवं बाणधनुर्दधानं वक्रालकं बालकमाश्रयामि।।१।।

भौमी- नवीन मेघ के समान सुन्दर भक्तों के लिए कल्पवृक्ष स्वरूप काकभुशुण्डि जी के पीछे-पीछे चलने वाले सुन्दर काकपक्ष अर्थात् स्कन्ध तक लटके हुए बालों से युक्त हाथ में छोटे-छोटे धनुष बाण लिए हुए घुँघराली लटों वाले बालक भगवान श्रीराघव का मैं आश्रय ले रहा हूँ।

गीत संख्या ४

कविर्गायति-

अद्य बालः प्रभुर्दृश्यताम् दृश्यताम्।।
नीलनीलाम्बुदश्यामलं निर्मलम् ।
चारु दृष्ट्वा दृशोः सन्तृषा कृष्यताम्।।१।।
लोकलोकाभिरामोऽभिरामः सताम्।
चक्षुषा दृश्यताम् वक्षसा श्लिष्यताम्।।२।।
कोटिकन्दर्पदर्पघ्नदेहत्विषा ।
पञ्चजन्मा महाक्लेषकः क्लिष्यताम्।।३।।
नो विलम्बो विधेयः कराभ्यामयम्।
गिरिधरेण त्वया राघवः स्पृश्यताम्।।४।।

भौमी- अब महाकवि स्वयं गा रहे हैं- आज बालरूप श्रीराघव के बार-बार दर्शन करें। नीले मेघ के समान श्यामल, निर्मल, शिशुरूप में भगवान श्रीराम को निहारकर अपने नेत्रों की प्यास को शान्त कर लें। अरे जीव! संसार के नेत्रों को आनंद देने वाले सन्तों के सुखदाता प्रभु शिशुराम के नेत्र से दर्शन करो और हृदय से लगा लो। अहो, अरे कवि **गिरिधर**! कोटि-कोटि कामदेवों के गर्व को नष्ट करने वाले प्रभु श्रीराम के शरीर की कांति से अपने पाँचों अविद्याओं से उत्पन्न महाक्लेशों को समाप्त कर लो, विलंब मत करो। **गिरिधर** खेलते हुए श्रीराघव को अपने दोनों हाथों से स्पर्श कर लो। पकड़ लो।

गीत संख्या ५

राघव चित्रं तव शैशवचरित्रं किमुत कोऽपि वचसा वदेत्।।
जगत्पिता पुत्रको दशरथगृहमायातः।
विरजस्कोऽपि च रजोरूषितो दृग्गोचरं प्रयातः।।
एतज्जाह्नवीजलादपि पवित्रं किमुत कोऽपि वचसा वदेत्।।१।।
व्यापकोऽपि भो व्याप्यो भूत्वा खेलसि लघुतमदेशे।
कोटिकोटिब्रह्माण्डाधीशो लघुतमतल्पे शेषे।।
एतद् भीमपापकटुकाननलवित्रं किमुत कोऽपि वचसा वदेत्।।२।।
निर्गुणोऽपि सगुणो भूत्वा त्वं भगवन् जगदाधारः।
कौसल्यापयसे स्पृहयालुः शतक्षीरकूपारः।।
एतद् भक्तजनमानसपवित्रं किमुत कोऽपि वचसा वदेत्।।३।।
बारम्बारमुपनिषत् कथयति महतोऽप्येष महीयान्।
कौसल्यायाः कृते समभवो लघुतोऽप्यहो लघीयान्।।
एतत् गिरिधरकृते भवनिधिवहित्रं किमुत कोऽपि वचसा वदेत्।।४।।

भौमी- अब कवि अद्‌भुत अलंकार की भंगिमा से अवधी और भोजपुरी में प्रचलित कहरवा लोकधुन में संस्कृतगीत गाते हुए कहते हैं– हे राघव! आपका बाल चरित्र बहुत ही अद्‌भुत है। इसे भला वाणी से कौन कह सकता है? भला बताइये, आप जगत के पिता होकर महाराज दशरथ के भवन में पुत्र बनकर पधारे। आप विरजस्क अर्थात् रजोगुण के लेप से रहित होकर भी श्रीअवध में धूरि–धूसरित होकर लोगों के नेत्रों के विषय बने हैं। यह चरित्र तो गंगा जी के जल से भी पवित्र है, इसे वाणी से कौन वर्णन कर सकता है? अरे प्रभो! आप व्यापक अर्थात् सभी चराचर में रहकर भी आज व्याप्य बनकर दशरथ जी के छोटे से आँगन में खेल रहे हैं। करोड़ों–करोड़ों ब्रह्माण्डों के अधीश्वर होकर भी आप माता कौसल्या के बहुत छोटे से पलंग पर सो जाते हैं। आपका यह चरित्र भयंकर पापों के भयानक वन को काटने के लिए कुल्हाड़ी के समान है। इसे अपनी वाणी से कौन वर्णन करे? प्रभो! आप प्राकृतगुणों से रहित निर्गुण होकर भी इस समय सकल कल्याण गुणगणों से युक्त सगुण बनकर षडैश्वर्य सम्पन्न होकर जगत के आधार होकर भी रोम–रोम में करोड़ों क्षीरसागरों को धारण करके भी कौसल्या जी के स्तन के दूध की स्पृहा करते हैं। अर्थात् उसके लिए लालायित रहते हैं। यही आपका चरित्र भक्तजनों के मन को पवित्र करता है। यह किसी के वाणी का विषय नहीं है। उपनिषद् बार–बार कहती है कि परमात्मा महान से भी महान हैं। वही आप माता कौसल्या के लिए लघु से भी लघु बन गए। यही आपका चरित्र मुझ कवि **गिरिधर** के लए भवसागर से पार होने के लए जल का जहाज बन गया है। आपका यह चरित्र वाणी से कौन कह सकता है? यह तो केवल अनुभवगम्य है।

विशेष- इस गीत की 'कहरवा' लोकधुन के बोल निम्नलिखित हैं–

''राघव धनि धनि बारैं रावुरि बाललीला,
गिरा से केहू कैसे कही।''

सन्दर्भश्लोकः

कौसल्यास्तनपानलालसमना मन्दस्मितोऽव्यक्तवाग्
एकं ब्रह्म गुणालकावृतमुखाम्भोजो घनश्यामलः।
खेलन् पङ्क्तिरथाजिरे रघुवरो बालानुजैः सुन्दरो
देवो धूलिविधूसरो विजयते रामो मुकुन्दः शिशुः।।१।।

भौमी- महाकवि अपने शिशु राघव का विजयगान करते हुए कहते हैं– कौसल्या जी के स्तनपान के लिए जिनके मन में निरन्तर लालसा बनी रहती है ऐसे मन्द–मन्द मुस्कान और तोतली बोली से युक्त एक अर्थात् सभी उपमाओं से रहित ब्रह्म होकर घुँघराली लटों से घिरे हुए मुखमंडल वाले, नीले मेघ के समान श्यामल बालमित्रों और छोटे भ्राताओं के साथ महाराज दशरथ के आँगन में खेलते हुए धूलि से धूसरित होकर भी अत्यन्त प्रकाशमान भक्तों के भुक्ति–मुक्ति के प्रदाता, अत्यन्त सुन्दर बालरूप भगवान श्रीराम सबसे उत्कृष्ट रूप में विराजमान हो रहे हैं।

गीत संख्या ६

राजतेऽधिशयनं कौसल्या क्रोडे कृत्वा शिशुरामम्।
वियदाशेव निहतभवपाशा परमानन्दघनश्यामम्।।१।।

कर्हिचित् सुमुखचन्द्रचकोरितनयनं सकलसुकृतधामम्।
कर्हिचिच्च विधुवदनं चुम्बति निजभाग्यं नामम् नामम्।।२।।
कर्हिचित् समनुलालयते तनुशोभाविगणितशतकामम्।
पुनः पुनः प्रणमति पुलकाङ्गी दशरथयागफलारामम्।।३।।
कर्हिचिच्च पाययते स्तन्यं प्रेम्णा सुजनदृगभिरामम्।
दृष्ट्वा छविं गिरिधरो लभते हृदये पूर्णं विश्रामम्।।४।।

भौमी– अहो! आज भगवती कौसल्या सम्पूर्ण भवपाशों को समाप्त करके, अपनी गोद में शिशु श्रीराम को लेकर पलंग पर उसी प्रकार सुशोभित हो रही हैं, जैसे वर्षाकालीन परमानंद मेघ को धारण की हुई आकाशदिशा। कभी–कभी माँ अपने नेत्रों को श्रीराम मुखचन्द्र का चकोर बना लेती हैं तो कभी सम्पूर्ण सुखों के धाम चन्द्रमुख श्रीराम को चूमती हुई अपने भाग्य को बार–बार नमस्कार करती हुई प्रसन्न होती हैं। कभी–कभी शरीर की शोभा से करोड़ों कामों को अपमानित करने वाले श्रीराम को माता दुलारती हैं तो कभी–कभी दशरथ जी के यज्ञ के फल के उद्यानरूप श्रीराम को पुलकित होकर प्रणाम करती हैं। कभी–कभी भक्तजनों के लोचनाभिराम प्रभु को माँ स्तनपान कराती हैं। इस छवि को निहारकर **गिरिधर** कवि भी हृदय में पूर्ण विश्राम पा जाता है।

विशेष– यह गीत तुलसीकृत गीतावली के– ''सुभग सेज शोभित कौसल्या रुचिर राम शिशु गोद लिए'' गीत की धुन के आधार पर है।

गीत संख्या ७

अद्य कौसल्यायशो जेगीयताम्।।
ब्रह्मशिशुमभिलालयन्तीं निजमनो नेनीयताम्।
तदङ्के नवजलदसुभगः शिशुवरो देधीयताम्।।१।।
वारयत मणिगणं मुक्तासमस्वं देदीयताम्।
हसत नृत्यत पठत गायत मात्मना बेभीयताम्।।२।।
रघुपते शुचिबाललीला जनमनसि लेलीयताम्।
इमां गायं गायमनघां सज्जनश्चेकीयताम्।।३।।
परमहंसाभिमतराघवरतिसुधा पेपीयताम्।
सान्द्ररामानन्दकन्दे गिरिधरः केकीयताम्।।४।।

भौमी– अब कवि वागीश्वरी राग में माता कौसल्या का यशोगान कर रहे हैं। आज भगवती कौसल्या जी का यश बार–बार गाया जाय। बाल रूप में विद्यमान परब्रह्म को दुलारती हुई कौसल्या जी के समीप ही अपने मन को सतत् ले जाया जाय और कौसल्या जी की गोद में विराजमान नवीन मेघ के समान सुन्दर बालक श्रीराम का बारंबार धारणा में ध्यान किया जाय और मणिमोतियों की निछावर करो, अपना सर्वस्व प्रभु के चरणों में लुटा दो। हँसो, नाचो, प्रभु के चरित्र पढ़ो, गाओ स्वयं से मत डरो, अपने मन में श्रीराम की बाललीला को समाहित कर लो। इस लीला को गा–गाकर श्रीवैष्णव जन इस रस का चयन करें और परमहंसों की भी

अभीष्ट श्रीराम प्रेमसुधा का बारंबार पान करें और अत्यन्त सघन श्रीराम के आनंदमेघ का **गिरिधर** कवि भी मयूर बन जाय।

गीत संख्या ८

ललितसुतं लालयते माता।
कौसल्या गतभवभयशल्या सजलनयनजलजाता।।१।।
लघुलघुचरणसरोरुहमनुपमनीरदनीलशरीरम् ।
दर्शं दर्शममन्दं हर्षं ब्रजति मुहू रघुवीरम्।। २।।
चुम्बति लघुविधुमुखं कदाचित् ध्यायति चिरं कदाचित्।
प्रणमति निजं भाग्यमहिमानं गायति कलं कदाचित्।।३।।
अञ्चलपटसम्भृतं सुतं पाययते स्नुतं पयोदम्।
प्राची प्रतिपद्विधुं किमुत धाययति सुधां सविनोदम्।।४।।
उत्सङ्गे कृतशिशुमतिरभसा प्रोच्छालयति मृगाक्षी।
जाह्नवीव रोलम्बशावमथ नभसि चमूरु चलाक्षी।।५।।
यस्मै सुखाय स्पृहयते श्रीरुमा गिरा सुरराज्ञी।
गिरिधरप्रभुतत्सुखजलधौ मग्ना कोसलसाम्राज्ञी।।६।।

भौमी- अब कवि हवेली गीत की धुन में संस्कृत गीत प्रस्तुत करते हैं– संसार के भय के घावों से रहित अश्रुपूरित कमलनेत्र कौसल्या माता, अपने ललित लाल श्री राघव जी को दुलार रही हैं। छोटे–छोटे उपमारहित चरणकमल नीले बादल के समान शरीर रघुकुल के वीर श्रीराम को पुनः–पुनः निहार–निहारकर कौसल्या जी अत्यन्त हर्ष प्राप्त कर रही हैं। कभी–कभी प्रभु का मुखचन्द्र चूमती हैं तो कभी बहुत देर तक ध्यान करती हैं। कभी अपने भाग्य की महिमा को प्रणाम करती हैं तो माता जी कभी मधुर–मधुर गीत गाती हैं। माता कौसल्या अपने आँचल से ढँककर श्रीराघव को स्तनपान करा रही हैं। क्या पूर्वदिशा ही प्रतिपद की चन्द्रमा को विनोदपूर्वक अमृतपान करा रही है? अवश्य। कभी बालक राम की गोद में लेकर माँ कौसल्या उसी प्रकार उछाल रही हैं जैसे गंगा जी ही सुन्दर नारी का रूप धारणकर भ्रमर शावक को आकाश में उछालती हैं। जिस सुख के लिए लक्ष्मी, पार्वती और इन्द्राणी स्पृहा करती रहती हैं **गिरिधर** के स्वामी श्रीराम संबंधी उसी आनन्दसागर में कोसल देश की महारानी कौसल्या जी मग्न हैं।

गीत संख्या ९

राम लालन विवर्धिष्यसे त्वं कदा बाललीलां प्रवर्तिष्यसे त्वं कदा।।
आनखेभ्यः शिखां यावदानन्दघन अङ्गमङ्गश्रियालिङ्गितं श्रीसदन।
वीक्ष्य ते वारयिष्याम्यहं स्वं कदा राम लालन विबर्धिष्यसे त्वं कदा।।१।।
कञ्जकुड्मलसमानं त्वदीयं पदं सर्वसौभाग्यदं सम्पदामास्पदम्।
नूपुरं धारयिष्ये मुदाहं कदा राम लालन विवर्धिष्यसे त्वं कदा।।२।।

कोटिकादम्बिनीनिन्दिकां ते तनूं बालरविवाससा चन्दिकां सन्मनुम्।
चारु संस्कारयिष्ये सदाहं कदा राम लालन विवर्धिष्यसे त्वं कदा।।३।।
चारुचन्दिरसमानं स्मितीयाननं कामखञ्जनदृगञ्जनसमामाननम्।
नित्य! नीहारयिष्ये तवाहं कदा राम लालन विवर्धिष्यसे त्वं कदा।।४।।
हे तपनकुल दिवाकर विवर्धस्व भो! सुकविगिरिधरमनसि साधु वर्तस्व भो।
गीतमुच्चारयिष्ये सुखाहं कदा रामलालन विवर्धिष्यसे त्वं कदा।।५।।

भौमी- हे रामललन! आप कब बड़े होंगे? और आप कब बाललीलाएँ प्रवर्तित करेंगे। हे आनंदघन हे श्रीनिवास प्रभो! आपके नख से शिखापर्यन्त शोभायुक्त प्रत्येक अंग को निहारकर मैं अपने को ही कब निछावर करूँगी। सम्पूर्ण सौभाग्य को देने वाले, सम्पूर्ण सम्पत्तियों के स्थान कमल के मुकुल के समान आपके श्रीचरण में मैं कब नूपुर धारण कराऊँगी? करोड़ों मेघमालाओं को निंदित करने वाली, सज्जनों के मन्त्रों की आराध्य सहज सुन्दर आपकी श्याममूर्ति को मैं बालसूर्य को लजाने वाले पीताम्बर और आभूषणों से कब सजाऊँगी? कामदेव के खञ्जरीट पक्षी के समान नेत्र में अञ्जन से युक्त पूर्णचन्द्रमा के समान सुन्दर आपके मुखचन्द्र को मैं कब निहारूँगी? हे सूर्यकुल के सूर्य! आप शीघ्र बड़े हो जायँ, सुकवि **गिरिधर** के मन में सानन्द विराजें। आपके बालस्वरूप गीतों को मैं कब उच्चारूँगी? इस प्रकार माता कौसल्या मनोरथ कर रही हैं।

गीत संख्या १०

ललन कदा वर्धिष्यसे बलिमाता।
कौसल्या कथयति गतशल्या सलिलनयन जलजाता।।१।।
कदा चलन्तं त्वां समीक्ष्य भूषणानि वारयितास्मि।
कदा त्वया कलवलवचसा मामेत्याकारयितास्मि।।२।।
कदा स्खलन् पिच्छलंश्चलंस्त्वं मामभियाष्यसि राम।
कामयमानः कदा कल्यमपि शत्स्यसि हे निष्काम।।३।।
कदा बालकैरनुजैः साकं यास्यसि भो क्रीडिष्यन्।
कदा भविष्यसि कोटिकोटिकामान् वपुषा व्रीडिष्यन्।।४।।
रघुकुलकैरवचन्द्र भवद्गौरवमयदिनं समीक्ष्ये।
राघव गिरिधरकविना साकं तव वर्धनं प्रतीक्ष्ये।।५।।

भौमी- कमल नेत्र में आँसू भरकर सांसारिक पीड़ा से रहित माता कौसल्या कहती हैं– हे राघव ललन जू! आप कब बड़े होंगे? मैं बलिहारी जाती हूँ। आपको पग से चलते देख मैं कब भूषणों को न्यौछावर करूँगी? आप तोतली बोली में माँ–माँ कहकर मुझे कब बुलायेंगे? हे निष्काम श्रीराम! आप लड़खड़ाते–फिसलते–चलते हुए मेरे पास पग से कब आयेंगे? आप कलेवा माँगते हुए मेरे सामने ठुनुक–ठुनुक कर कब रोयेंगे? हे राघव! आप अपने बालमित्र और छोटे भाइयों के साथ कब खेलने के लिए जाएंगे और अपने शरीर की कान्ति से करोड़ों किशोर कामों को कब लज्जित करेंगे? हे रघुकुलकुमुद के चन्द्रमा श्रीराम! मैं आपके

गौरवमय दिन की समीक्ष्या कर रही हूँ, अर्थात् मन में मनोरथ कर रही हूँ। हे राघव! **गिरिधर** कवि के साथ ही मैं कौसल्या आपश्री के बढ़ने की प्रतीक्षा कर रही हूँ।

गीत संख्या ११

कविर्गायति-

दशरथनृपभवने विलसति कौसल्या।।
सितवासोवरवपुषि वसाना वक्षसि वत्सलरसं दधाना।
वरशरदिव गगने विलसति कौसल्या।।१।।
रघुकुलकुमुदकुमुदमकलङ्कं क्रोडे दधती सुतं शुभाङ्कम्।
वियदिव नीलघने विलसति कौसल्या।।२।।
क्वापि पयोदात् पयः स्त्रवन्ती क्वापि वत्सला सुते द्रवन्ती।
उपनिषदिव सुजने विलसति कौसल्या।।३।।
पुनरजविधुमुख सुधां पिबन्ती कृपण इवाञ्चलपटे ह्यवन्ती।
द्युषदिव देवजने विलसति कौसल्या।।४।।
गिरिधरगीरिव गीतं गायति ब्रह्ममयं निजपुत्रं ध्यायति।
दृशदिव सुरविपिने विलसति कौसल्या।।५।।

भौमी- अब कवि कौसल्या जी की मनोदशा का गान करते हुए कहते हैं, महाराज दशरथ के राजभवन में माता कौसल्या सुशोभित हो रही हैं। श्रेष्ठ शरीर पर नीला वस्त्र पहनी हुई, वक्ष में वत्सल रस को धारण करती हुई कौसल्या जी आकाश में पवित्र शरद् ऋतु के समान महाराज के भवन में सुशोभित हो रही हैं। रघुकुल रूप कुमुद को विकसित करने के लिए, निष्कलंक चन्द्रस्वरूप शुभलक्षण वाले पुत्र श्रीराम को गोद में ली हुई माता कौसल्या नील बादल में आकाश दिशा की भाँति राजभवन में सुशोभित हो रही हैं। कभी थन से दूध चुचाती हुई, तो कभी वात्सल्यवती होने के कारण पुत्र शिशुराम पर स्वयं पिघलती हुई माता कौसल्या जिज्ञासु श्रीवैष्णव के समक्ष उपनिषद् की भाँति राजभवन में शोभा पा रही हैं। पुनः अजन्मा श्रीराम के मुखचन्द्र की शोभा सुधा को पीती हुई और कृपण की भाँति अपने सुकृतधन श्रीराम को अंचल में छिपाती हुई माता कौसल्या देवजन के समक्ष स्वर्ग निवास-स्थली के समान राजभवन में सुशोभित हो रही हैं। **गिरिधर** कवि की वाणी की भाँति माताश्री प्रभु का बालगीत गा रही हैं और फिर अपने पुत्र बने हुए परब्रह्म परमेश्वर श्रीराम का स्थिर होकर ध्यान कर रही हैं। अहो! माता कौसल्या नन्दनवन में स्थित पाषाण-शिला की मूर्ति की भाँति राजभवन में सुशोभित हो रही हैं।

सन्दर्भश्लोकः

बहिर्निष्क्रमणे नीतं सरयूपुलिनं हरिम्।
रामं राजीवपत्राक्षं दृष्ट्वा काचित् सखी जगौ।।१।।

भौमी- बहिर्निष्क्रमण संस्कार के समय श्रीसरयू के तट पर लाए हुए राजीवलोचन भगवान श्रीराम को देखकर कोई सखी गाने लगी।

गीत संख्या १२

अद्य सानुजस्त्रिमासो रामो जातो हे शुभे।
नीलकञ्जकन्दमरकतावदातो हे शुभे।।
बहिर्निष्क्रमणशुभसंस्कारेण संस्कृतः कुलगुरुवरस्वस्तिवाचनपुरस्कृतः।
हो अद्य सरयूपयसि पूर्णं स्नातो हे शुभे।।१।।
विधिपौत्रीप्रवाहे उच्छालयति चरणौ अधिविधुबन्धुजीवराजीवानुकरणौ।
हो पाणिविभाविगणितवारिजातो हे शुभे।।२।।
लालं लालं लालमथ स्नापयति जननी सिनीवालीमुषागमं ज्ञापयति रजनी।
हो उपजाह्नवीव वारिदो विभातो हे शुभे।।३।।
अङ्गमङ्गं भूषणैर्विभूषितं विभाति हे प्रावृषि प्रभातमिव प्रभातं प्रभाति हे।
हो भरतलक्ष्मणशत्रुसूदनतातो हे शुभे।।४।।
मातुरङ्केऽप्यरङ्कः श्रीवत्साङ्को विराजते दिवीव शरदि शुभ्रः शशाङ्कोऽभिराजते।
हो कविगिरिधरकृते पारिजातो हे शुभे।।५।।

भौमी- हे शुभलक्षणे सखी! नीलमेघ-नीलकमल और मरकतमणि के समान सुन्दर श्रीराम आज अपने तीनों भाइयों समेत तीन महीने के हो चुके हैं। बहिर्निष्क्रमण संस्कार से संस्कृत तथा गुरु वसिष्ठ जी के स्वस्तिवाचन से पुरस्कृत होकर शिशु राघव जी आज सरयू जल में शिर से स्नान कर चुके हैं। हे सखी! देखो ब्रह्माजी की पौत्री सरयूजी के प्रवाह में श्रीराम अपने चरणों को उछाल रहे हैं, मानों चन्द्रमा में बन्धूक-पुष्प और कमल खिल रहे हों, अपने श्रीहस्त की शोभा से इन्होंने कमल को भी लज्जित कर दिया है। सखी! अपने लालन को बार-बार दुलारकर माता कौसल्या स्नान करा रही हैं, मानो उजेली रात्रि अमावस्या को प्रातःकाल के आगमन की सूचना दे रही हो। श्रीराम ऐसे प्रतीत हो रहे हैं मानो गंगा जी के समीप बादल आ गया हो। आज प्रभु का अंग-अंग आभूषणों से सजकर सुशोभित हो रहा है, मानो-वर्षाकाल में प्रभात ही सूर्य किरणों से रंग गया हो। इस प्रकार श्रीभरत-लक्ष्मण और शत्रुघ्न के बड़े भैया श्रीराम आज तीन महीने के हो गए हैं। श्रीवत्सलांछन श्रीराम अरंक अर्थात् भगवान विष्णु भी जिनके सामने रंक अर्थात् दरिद्र लगते हैं, ऐसे सद्गुण संपन्न होकर कौसल्या जी की गोद में विराज रहे हैं, जैसे शरद् की पूर्णिमा के दिन आकाश में पूर्ण चन्द्रमा सुशोभित होते हैं। ये ही शिशु राघव **गिरिधर** कवि के लिए कल्पवृक्ष स्वरूप हैं।

विशेष- यह गीत मिथिला की लोकधुन के स्वर में निबद्ध किया गया है, जिसके बोल हैं ''आज आरती उतारो सखी सियवर की''।

गीत संख्या १३

पश्य सखि! रामः शिशुः किल खेलति।
तल्पगतो जाह्नवीप्रवाहगतमिन्दीवरमवहेलति।।१।।
रहसि रहस्यमयो रभसा काकेन समं किल क्रीडति।
जम्बूफलपरिलुब्धमदनमधुकरशोभामपि ब्रीडति।।२।।

रहसि मुदाकरपदं चालयंश्चपलो बालनिसर्गात्।
वारयती चतुर्भक्तान् ननु चतुर्विधादपवर्गात्।।३।।
कौसल्या पश्यन्ती सुभगं बालं हृदये ध्यायति।
स्वानन्दाय गिरा दैव्या गिरिधरो गीतमपि गायति।।४।।

भौमी- श्रीअवध की एक सखी दूसरी सखी से कहती है; हे सखी! देखो शिशु श्रीराम खेल रहे हैं और वे पलंग पर विराजमान होकर गंगाजी के प्रवाह को प्राप्त नीलेकमल को भी तिरस्कृत कर रहे हैं। स्वयं रहस्यमय होकर बालरूप श्रीराम काकभुशुण्डि के साथ खेल रहे हैं, वे जामुन के फल पर लुब्ध कामदेव के भ्रमर की शोभा को भी लज्जित कर रहे हैं। बालस्वभाव से एकान्त में चंचल श्रीराम हाथ-चरण चलाते हुए, अपने आर्त्त-जिज्ञासु-अर्थार्थी तथा ज्ञानी इन चारों प्रकार के भक्तों को अर्थ-धर्म-काम-मोक्ष इस पुरुषार्थ के चतुर्वर्गों से दूर कर रहे हैं। माता कौसल्या कल्याणकारी बालक श्रीराम को निहारती हुई हृदय में ध्यान कर रही हैं तथा अपने आनन्द के लिए **गिरिधर** कवि भी **हवेली** परंपरा में संस्कृत में यह गीत गा रहे हैं।

विशेष- काकभुशुण्डि जी का उपमान है जामुन का फल और श्रीराम का उपमान है भ्रमर, 'व्रीडां आचष्टे' इति ब्रीडति यह नामधातु प्रयोग है।

सन्दर्भश्लोकः

दशरथः परिपूर्णमनोरथः सुतमवाप्यमुदा महिषीकरात्।
समनुलालयति स्म गतज्वरश्चिरदरिद्र इवैत्य मरुन्मणिम्।।१।।

भौमी- महाराज दशरथ का मनोरथ परिपूर्ण हो गया है, वे महारानी कौसल्या के हाथ से पुत्र श्रीराम को गोद में लेकर बहुत देर तक दुलारते रहे, जैसे बहुत कालों का दरिद्र चिन्तामणि प्राप्त करके प्रसन्न हो रहा हो।

गीत संख्या १४

दशरथो गायति-

स्वर्गिणोऽप्यद्य मह्यं समीर्ष्यन्ति भो।
नास्ति तत्रापि चैवंविधं वै सुखम्।।
नाभ्यसूयामि तेभ्यो मनाक् तत्कृपाम्।
प्राप्य पश्यामि पार्वणनिशाकरमुखम्।।१।।
भूत्वा जगतां पिता पुत्रको मेऽभवत्।
सर्वसम्पन्मयोऽकिञ्चनेऽप्यद्रवत् ।।
तातताततेति मां वक्षते बालकः।
संप्रशंसन्ति सर्वे पुरन्दरसखम्।।२।।
इष्टापूर्तं कृतं किं तपः किं श्रितम्।
साधनं किं धृतं किञ्च पुण्यं चितम्।।

येन चैवातिशयितो विभूत्या स्वया।
विश्वविश्रुतविभूतिं सुखं शतमखम्।।३।।
एक एवात्र देवो मयाऽऽराधितः।
प्रेमनामा सुधामा सुखं साधितः।।
येन गिरिधरप्रभुः पुत्रतां मे गतो।
जाह्नवीजन्मजन्मास्पदं यन्नखम्।।४।।

भौमी- महाराज दशरथ गा रहे हैं-अहो! स्वर्ग के देवता भी आज मुझ पर ईर्ष्या कर रहे हैं, क्योंकि वहाँ इस प्रकार का सुख नहीं है। परंतु मैं उन पर किंचित् भी असूया (दोषदर्शन) नहीं कर रहा हूँ, क्योंकि उन देवताओं की कृपा प्राप्त करके ही मैं पूर्णचन्द्र मुख श्रीराम को निहार रहा हूँ। जगत के पिता होकर भी प्रभु श्रीराम मेरे पुत्र बने और सम्पूर्ण संपत्तियों से युक्त होकर भी मुझ अकिंचन पर द्रवित हुए, अब प्रभु श्रीराघव मुझे तात-तात कहकर बुलाएँगे और सभी देवता मुझ इन्द्र के मित्र की प्रशंसा करेंगे। अहो! मैंने कौन इष्टापूर्त किया, कौन-सी तपस्या की, कौन-सा साधन धारण किया और कौन-सा पुण्य इकट्ठा किया, जिससे आज विश्व की संपूर्ण विभूतियों से युक्त सौ अश्वमेध यज्ञ करने वाले इन्द्र से भी मैं अधिक हो गया हूँ अर्थात् इन्द्र को भी मुझ जैसा सुख नहीं मिल रहा है? मैंने प्रेम नामक एक ही देवता की आराधना की है और उन्हीं सुन्दर-तेजस्वी भगवत्-प्रेम देवता की स्वार्थरहित होकर सुखपूर्वक साधना की है उन्हीं प्रेम भगवान की कृपा से वे **गिरिधर** कवि के स्वामी मेरे पुत्र बने, जिनके श्रीचरण का नख गंगा जी के जन्मदाता वामन भगवान का भी जन्मस्थान है।

विशेष- यह काव्याली लोकभाषा में कव्वाली के ढाल का गीत है।

गीत संख्या १५

अहो मम भूरि भूरि सौभाग्यम्।
शेषकोटिरपिकल्पकोटिभिर्नालमीडितुं भाग्यम्।।१।।
यः खलु योगियतीन्द्राणामपि मनसाप्यहो अगम्यः।
सोऽसावभून् मामकः पुत्रः सततं सतां प्रणम्यः।।२।।
यो दयालुरथ वेदविश्रुतः शरणागतप्रतिपालः।
सम्पाल्यते मया सोऽयं शिवमानसमञ्जुमरालः।।३।।
यो वै लोकपालविवुधानपि विभवैः सङ्क्रीणीते।
गिरिधरप्रभुः स एव स्वमर्भो मम किल विक्रीणीते।।४।।

भौमी- अब महाराज दशरथ हवेली परंपरा में संस्कृत गीत गा रहे हैं। अहो! आज मेरा बहुत बड़ा सौभाग्य है, निश्चित ही करोड़ों कल्पपर्यंत करोड़ों शेषनारायण भी मेरे भाग्य की स्तुति नहीं कर सकते। अहो! जो प्रभु योगियों और संन्यासियों के लिए मन से भी अगम्य हैं, वे ये ही श्रीराम जो सन्तों के सदैव प्रणम्य हैं, आज मेरे पुत्र बन गए हैं। अरे! जो प्रभु दयालु हैं और जो शरणागतों के प्रतिपालक के रूप में वेदों में भी प्रसिद्ध हैं, उन्हीं इन शिव जी के मनमानस सरोवर के राजहंस श्रीराम को अभी मैं छुन्नु-मुन्नु कह करके पाल रहा हूँ अर्थात् लालन-

पालन कर रहा हूँ। अरे! जो **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम अपने वैभव से लोकपाल जैसे देवताओं को भी क्रय कर लेते हैं, वे ही प्रभु श्रीराम आज बालक बनकर स्वयं को मेरे हाथ बेच दे रहे हैं।

सन्दर्भश्लोकः

निरीक्ष्यैतं ताम्यत् तरुणतमतापिच्छजलदम्
कृपासिन्धुं बन्धुं प्रणतजनताया भयहरम्।
हराराध्यं साध्यं विमलमनसां बालकहरिम्
सुमित्रा सन्मित्रा किमपि किल चित्रं प्रणिजगौ।।१।।

भौमी– अपनी कान्ति से नवीन तमाल वृक्ष और बादल को भी लज्जित करने वाले, कृपा के सागर प्रणतजनों के भयहारी बन्धु, शिवजी के भी आराध्य, निर्मल मन वाले महात्माओं के साध्य इन बालक श्रीराम को निहारकर सन्तों को अपना सहयोगी मानने वाली माता सुमित्रा कुछ विस्मयकारी गीत गा उठीं। जो हवेली पद्धति के दादरा ढाल का है।

गीत संख्या १६

कदाङ्घ्रिभिश्चलिष्यथ चत्वारः कुमाराः।।
कदाङ्घ्रिभिश्चलिष्यथ चत्वारः कुमाराः।
रामभरतलक्ष्मणशत्रुघ्नाः शिरिषकुसुमसुकुमाराः।।
कदाजिरे ललिष्यथ चत्वारः कुमाराः।।१।।
बालविभूषणभूषितदेहाः सुषमाजितशतमाराः।
परमहंसमानसहंसेहा अपहृतभूतलभाराः।।
कदावलं वलिष्यथ चत्वारः कुमाराः।।२।।
क्रीडन्तः किलकिताः हसन्तः सन्तः क्षपितविकाराः।
बालैः साकं पुनरस्माकं वर्धितमोदप्रचाराः।।
कदाखिलाः खेलिष्यथ चत्वारः कुमाराः।।३।।
केशरिशावमात्रदृढगात्रा वैभवपारावाराः।
करतलधृतकार्मुकबाणाः पुरवीथीविहितविहाराः।।
कदा खलान् खलिष्यथ चत्वारः कुमाराः।।४।।
मातॄणां राज्ञः प्रकृतीनां मधुरमनोरथमल्लीम्।
कवेर्गिरिधरस्यापि मनोज्ञां कलितकल्पनावल्लीम्।।
कदा फलां फलिष्यथ चत्वारः कुमाराः।।५।।

भौमी– हे चारों कुमारों! तुम लोग चरणों से कब चलोगे? श्रीराम-भरत-लक्ष्मण-शत्रुघ्न तुम लोग शिरीष पुष्प के समान सुकुमार हो। हमारे आँगन में तुम चारों भाई कब आनन्द से खेलोगे? बालोचित विभूषणों से अपने अंगों को सुशोभित करके अपनी शोभा से करोड़ों कामदेवों को जीतते हुए, परमहंसों के भी

मनमानस सरोवर में हंस के समान विहार करते हुए, भक्तों के भवभार को दूर करने वाले तुम चारों भाई कब बल को भी बलवान बनाओगे? बालकों के साथ क्रीड़ा करते हुए किलककर हँसते हुए, संसार के विकारों को नष्ट करते हुए, हम माताओं के हर्ष को बढ़ाते हुए, अखण्ड स्वरूप वाले तुम चारों राजकुमार कब खेलोगे? सिंह के बच्चों के समान दृढ़ शरीरवाले, वैभवों के महासागर रूप, हाथ में धनुषबाण धारण करके श्रीअयोध्या की गलियों में विहार करते हुए, तुम चारों भाई कब दुष्टों का दमन करोगे? अपनी माताओं की, महाराज की प्रजाओं की मधुर मनोरथों की चमेली तथा **गिरिधर** कवि की भी कोमल– कल्पना की लता जो अभी तक फलवती नहीं हुई है, को तुम चारों राजकुमार कब फलवती बनाओगे?

सन्दर्भश्लोकः

अथ श्रावणे श्राविताभीष्टभावे वृहद्बर्हिसारङ्गकन्दाभिरावे।
नृपालाङ्गणे वीक्ष्य दोलाविहारे जगुः किन्नराः सानुजं रामभद्रम्।।१।।

भौमी– इसके पश्चात् अभीष्ट भावों को सुनाने वाले एवं मयूरचातक तथा बादलों के गर्जन से युक्त श्रावण महीने में महाराज दशरथ के आँगन में झूला उत्सव के विहार के सन्दर्भ में संलग्न निहारकर भाइयों सहित श्रीराम को उद्देश्य करके किन्नरों ने गाया।

गीत संख्या १७

अद्य दोलाविहारी मुदा दोल्यते।
वीक्ष्य चेतस्सतां वै समान्दोल्यते।।१।।
श्रावणं मोदमङ्गलसुखश्रावणं बर्हिसारङ्गकेकाहृतं द्रावणम्।
पश्य सरयूनदी चापि कल्लोल्यते।।२।।
कर्हिचिन्मेघमाला वृणोत्यम्बरं कम्रकादम्बिनी काशते सत्वरम्।
मातृभिश्चापि दोला समादोल्यते।।३।।
चक्रवर्ती विलोक्याथ मोदाऽऽतुरो रश्मिहस्तः शनैर्दोलयंश्चातुरः।
चारु कौसल्यया चापि हिन्दोल्यते।।४।।
कज्जलीं चापि गायन्ति नार्यो नराः वीक्ष्य दिव्यामभीख्यां मुहुर्निर्भराः।
गिरिधरेणापि कामं मनाग् लोल्यते।।५।।

भौमी– आज दोलाविहारी सरकार प्रसन्नता से झूल रहे हैं, ऐसा देखकर सन्तों का चित्त भी आन्दोलित हो रहा है। यह श्रावण प्रसन्नता मंगल और सुख का श्रावी है, इसी प्रकार मयूर और चातकों की वाणी से यहाँ मन द्रवीभूत होता है, देखो सरयू नदी भी तरंगों से तरंगायित हो रही है। कभी–कभी मेघमाला पर्वत को ढक लेती है और वेगवती मेघमाला सुशोभित हो उठती है और माताएँ भी राम–लला को झूलों पर झुलाती हैं। चक्रवर्ती दशरथ भी यह देखकर प्रसन्न हो उठते हैं और स्वयं डोरी पकड़कर झुलाने लगते हैं। माता कौसल्या भी आज हिंडोला झूला रही हैं। इस दिव्य शोभा को देखकर महिलाएँ और पुरुष आनन्द में आप्लावित होकर कज्जली गा उठते हैं और कवि **गिरिधर** भी आनन्दित हो उठता है।

गीत संख्या १८

अद्य रामस्य दोला सुखं दोल्यताम्।
मानसं च सतां लोलताम्।।
श्रावणं सुखं विभातु संवृतं च खं प्रभातु
नभोनीलनीलनीलितं निचोलताम्।।१।।
कलां कोकिलाः कूजन्तु शुभे षट्पदाः गुञ्जन्तु
दिव्यसर्गो निसर्गतो महोलताम्।।२।।
मातापितॄणां सुखानि भक्तिसल्लसन्मुखानि
प्राप्य सरयूस्तरङ्गैः कल्लोलताम्।।३।।
कोसलेश कज्जलीं भक्तिभावनाञ्जलिं
वीक्ष्य गिरिधरकवेर्मनो विलोलताम्।।४।।

भौमी– यह गीत मीरजापुरी कजली लोकधुन में निबद्ध है, जिसके बोल हैं ''जामवंत जी के पद सीस नाइके, चले हनुमत हरषाई के।।'' आज श्रीराम का हिंडोला सुख से आन्दोलित हो और सन्तों का मन इस पर लहराता रहे। श्रावण सुशोभित हो, आकाश मेघों से घिरा हुआ शोभा पाए, आकाश मण्डल गहन नीलिमा से घिरा हुआ नीला अंगवस्त्र धारण कर ले। कोकिल कुहकें और भौंरें गुंजार करें, देवताओं का स्वर्ग प्राकृतिक तेज से युक्त हो जाय। भक्ति से सुशोभित भविष्यों वाले श्रीराघव के पिता महाराज दशरथ एवं प्रभु की सभी माताओं का सुख प्राप्त कर भगवती सरयू तरंगों से कल्लोलित हो उठें। इस प्रकार भक्ति की भावनाँजली से युक्त भगवान श्रीराम की कज्जली को देखकर **गिरिधर** कवि का मन चंचल होकर उसी में लग जाय।

सन्दर्भश्लोकः

दोल्यमानं शिशुं दृष्ट्वा रामं सुस्मितमानसा।
कौसल्या वारयन्तीव प्राह राज्ञी सखीः कलम्।।१।।

भौमी– झूले पर झूलते हुए अपने प्रिय पुत्र राघव को देखकर मन में मुस्कराती हुई देवी कौसल्या सखियों को मना करती हुई–सी मधुर स्वर में गाने लगी।

गीत संख्या १९

मा मा दोलयतां सखिवर्गो रामो भीतो राजति हे।।
शुभे श्रावणे विलसति गगनं मेघघटायां मग्नं सखि हे।
गायति कज्जलीं खगवरवर्गो रामो भीतो राजति हे।।१।।
मन्दं कन्दो वर्षति सलिलं हृष्यति भावसुकलिलं सखि हे।
ईर्ष्यत्यस्मभ्यं सुस्वर्गो रामो भीतो राजति हे।।२।।
द्रुतं चालयति परिजनवर्गो विस्मृतसुखापवर्गः सखि हे।
नास्ते तस्मिन् बालविसर्गो रामो भीतो राजति हे।।३।।

गिरिधरप्रभुं दोलयति दोला क्रियतां शीघ्रमलोला सखि हे।
चिरं मोदतां वैष्णववर्गो रामो भीतो राजति हे।।४।।

भौमी– अब माता कौसल्या अवधी अँचल में प्रसिद्ध कजली की ढाल में गीत गाती हुई कहती हैं–हे सखियों! झूला अधिक वेग से मत झुलाओ। मेरे बालक राघव डर रहे हैं। सखियों! श्रावण मास शुक्ल तृतीया के मंगलमय दिन में नीलघटाओं में डूबा हुआ यह आकाश सुशोभित हो रहा है। श्रेष्ठ–पक्षियों का समूह कज्जली गीत गा रहा है। सखि! मेघ मन्द–मन्द जल बरस् रहा है और हमारा भावात्मक जगत्मय पंख बहुत प्रसन्न हो रहा है। आज स्वर्गलोक भी हम पर ईर्ष्या कर रहा है। हे सखि! आज मोक्ष सुख को भूलकर यह राज–परिवार झूला वेग से चला रहा है। इसमें बच्चों का भी त्याग नहीं है अर्थात् बालक भी इसमें सम्मिलित हैं। परन्तु द्रुतगति से झूला झुलाने पर मेरे बालक राम डर रहे हैं। सखि! **गिरिधर** कवि के स्वामी प्रभु शिशु राम को यह हिंडोला हिला रही है, इसे शीघ्र ही स्थिरकर दो। इस महोत्सव में श्रीवैष्णवों का वर्ग बहुत काल तक आनन्द का अनुभव करता रहे।

गीत संख्या २०

दिव्यदोला शनैः सखि चाल्यतां भक्तिपरम्परा पाल्यताम्।।
शुभः श्रावणो हि मासः प्रकृतिसुषमाविलासः।
शान्तचेतसैव कालः प्रतिपाल्यताम्।।१।।
नीलमम्बरं विभाति मञ्जुमारुतोऽपि वाति।
प्राति सरयूः शुभानि तन्निभाल्यताम्।।२।।
देवि! कैकेयि! सुमित्रे! पश्यतं छविं विचित्रे!
इतः क्षणं नैव मानसं विचाल्यताम्।।३।।
श्रावणीमनोज्ञगीतं देवभारतीविनीतम्।
गायताऽपि गिरिधरेण शिशुर्लाल्यताम्।।४।।

भौमी– कौसल्या जी कहती हैं, हे सखी! यह दिव्य झूला, धीरे–धीरे चलाओ, भक्ति परंपरा का पालन करो। प्रकृति के सुषमा से युक्त, यह श्रावण महीना बहुत ही शुभ है, शान्तचित्त से इस समय का आनन्द लिया जाय। यह नीला आकाश सुन्दर लग रहा है और वायु भी मन्द–मन्द चल रहा है सरयू हम सबको कल्याण से परिपूर्ण कर रही हैं, उसे संहाला जाय। हे देवी कैकेयी और सुमित्रे! यह छवि निहारो, इससे एक क्षण भी मन को मत हटाओ। देवभाषा में अत्यन्त विनम्रता से निर्मित यह श्रावणी सुन्दर गीत (कज्जली) गाते हुए कवि **गिरिधर** के द्वारा शिशुरूप श्रीराम का लालन किया जाय।

गीत संख्या २१

कविर्गायति–

दोलायां दोलति रघुचन्द्रः।
भवपालकः पालनामध्ये विलसति विधुरिव वियति वितन्द्रः।।१।।

कनकरत्नमणिरचितपालना तदुपरि राजति बालमुकुन्दः।
मन्ये रविगुरुकुजकरङ्कके लसति ललितसुषमामयकन्दः।।२।।
उपरि लम्बि धर्तुं क्रीडनकं किलकति सम्प्रसार्य निजपाणी।
शरणागतजीवानादातुं यतते किमुत सुखित सत्प्राणी।।३।।
क्वापि रहसि करकञ्जाभ्यां पदकञ्जं मुखकञ्जे निवेशयति।
मुनिजनजुष्टाङ्गुष्ठपानमिषतः सज्जुष्टं स्वं प्रवेशयति।।४।।
दर्शं दर्शमिमां शिशुलीलां ससुखं कौसल्या दोलयते।
एतत् सुखलवमप्यनुभवितुं गिरिधरमानसमपि लोलयते।।५।।

भौमी- अब कवि स्वयं प्रभु की सुषमा का गान करते हैं–रघुकुल के चन्द्रमा भगवान श्रीराम झूले में झूल रहे हैं, भगवान शंकर के भी पालक होकर भी प्रभु श्रीराम पालना के बीच उसी प्रकार सुशोभित हो रहे हैं, जैसे पूर्ण चन्द्रमा आकाश में शोभित होते हैं। स्वर्ण–रत्न एवं मणियों से निर्मित सुन्दर पालना विराज रही है, उस पर बालमुकुन्द सुन्दर लग रहे हैं। मैं मानता हूँ कि सूर्य–मंगल और बृहस्पति से रचित पिटारी में परम शोभा से निर्मित बादल ही सुशोभित हो रहा है। रामलला जी पालना के ऊपर ऊपरी भाग में लटक रहे खिलौनों को लेने के लिए अपने श्रीहस्त फैलाकर लपकते हैं, क्या प्रभु शरणागत जीवों को स्वीकार करने के लिए यत्न कर रहे हैं, क्योंकि सन्त ही उनके प्राण हैं। कभी एकान्त में अपने कर–कमलों से चरण कमल को मुखकमल में ले लेते हैं, मुनिगणों से सेवित अंगुष्ठपान के बहाने सन्तों का जूठन ही अपने में प्रविष्ट करते रहते हैं। इस बाललीला को देख–देखकर कौसल्या जी धीरे–धीरे प्रेम से राघव जी को झुला रही हैं और इस सुख के लेशमात्र का अनुभव करने के लिए **गिरिधर** कवि का मन भी चंचल हो उठा है।

गीत संख्या २२

दोलां दोलय वत्स राघव वृता गगने घनाः।।
वर्षति सुखविन्दुर्नैव भास्करो न चेन्दु-
र्भाति वत्सलो रसेन्दुस्तमः साध्वसं विना।।१।।
दर्दुरचातकमयूरपक्षिकलरवप्रपूर–
पूर्णा वसुधा च तूर्णा भास्वद् भानुनन्दनाः।।२।।
योगियतयश्च द्वारे मग्ना हर्षपारावारे
वन्दिविरूदप्रचारे दर्शनातुरनयनाः।।३।।
चक्रवर्तिनः समीपे राजद्भानुकुलदीपे
प्रेम्णा विहितप्रतीक्षाः सर्वे सन्ति सुजनाः।।४।।
दोलां दोलय हे कृपालो निद्रां त्यज हे दयालो
कवौ गिरिधरे च शीघ्रं प्रभो भव सुमनाः।।५।।

भौमी- हे वत्स राघव! झूला झूलिए, आकाश में बादल घिर आए हैं। देखो राघव! मेघ सुख बिन्दुओं की वर्षा कर रहा है। यह सायंकाल का समय है, अतः इस समय न सूर्य हैं न चन्द्रमा, अन्धकार के भय के बिना

इस समय तो हमारा वत्सल-रस चन्द्रमा ही प्रकाशित हो रहा है। इस समय मेढ़क-चातक-मोर आदि पक्षियों के कलरवों के प्रवाह से यह पृथिवी पूर्ण हो गई है, इसमें आपके दर्शनों की त्वरा है, यहाँ भानुनन्दन अर्थात् अश्विनी कुमार भी आभा प्राप्त कर रहे हैं। वन्दीजनों के विरुद के प्रचार से युक्त राजद्वार पर हर्ष के सागर में मग्न, आपके श्रीदर्शन के लिए आतुर नेत्र वाले योगी और संन्यासी इस उत्सव को देखने के लिए उपस्थित हैं। सूर्यकुल के दीपक आपश्री के महाराज चक्रवर्ती के निकट विराजमान होने पर सभी वैष्णवजन आपके झूला उत्सव की प्रतीक्षा कर रहे हैं। हे कृपालो! अब झूला झूलिए और अपनी नींद छोड़िए और हे श्रीराम! मुझ **गिरिधर** कवि पर भी आप प्रसन्न मन होइये।

गीत संख्या २३

सखी गायति-

पश्य सखि दशरथक्रोडे रामम्।
निखिललोकलावण्यलालितं सज्जनमनोऽभिरामम्।।१।।
तरुणतमालतरणितनयाजलदूर्वासदृशशरीरम्।
निर्विकारसच्चिदानन्दकन्दं पदसेवितधीरम्।।२।।
गङ्गाजनकजनकसौरभपल्लवसमसमरुणचरणम्।
कदलीस्तम्भसक्थिकेशरिकटिनिजजनभवभयहरणम्।।३।।
मदनकलभकरबाहुमनोहरशिशुरविसमकरकञ्जम्।
कम्बुकपोतविमदकलकण्ठं चिबुकमहितसुखपुञ्जम्।।४।।
कमलमुकुलशशधरवरवदनं शुकनासिकं सुवेशम्।
खञ्जननयनमदनकार्मुकवरभृकुटिमधुपकलकेशम्।।५।।
दशरथयागापूर्वमपूर्वं तनुसुषमाजितमारम्।
गिरिधरजीवनधनं पश्य सखि शिशुमतिसीसुकुमारम्।।६।।

भौमी- अब श्रीअवध की सखी गा रही है- हे सखी! संपूर्ण लोकों की सुन्दरता से पालित, सज्जनों के मन को आनन्द देने वाले श्रीराम! महाराज दशरथ जी की गोद में विराज रहे हैं। सखी! नवीन तमाल-यमुना जल और दूर्वादल के समान शरीर वाले, विकार रहित सच्चिदानन्दघन स्वरूप धीर, जिनके चरणों की सेवा करते हैं; ऐसे श्रीराम को देखो। सखी! देखो प्रभु के आम्र के पल्लव के समान लाल-लाल चरण, गंगाजी के जन्मदाता भगवान वामन के भी अंशी हैं। प्रभु की जंघाएँ केले के स्तम्भ के समान और प्रभु का कटिप्रदेश सिंह के कटि के समान है, जो भवभय का हरण करता है। कामदेव के हाथी के बच्चे के शुंड के समान भगवान की भुजाएँ हैं और बालसूर्य के समान लाल हैं, भगवान के करकमल, इसी प्रकार भगवान के सुन्दर कण्ठ से शंख और कबूतर भी लज्जित हो चुके हैं और श्रीराम के चिबुक से सुख की राशि को भी सम्मान मिला है। शिशु राघव जी का मुख कमल के कोश और चन्द्रमा के समान है, उनकी तोते की चोंच के समान नासिका और वेश बहुत मनोहर है, खिरणीच पक्षी के समान नेत्र, कामदेव के धनुष के समान भौंहें एवं कामदेव के भ्रमरों के समान सुन्दर केश हैं। हे सखी! महाराज दशरथ के यज्ञ के फलस्वरूप अद्वितीय, शरीर

की शोभा से करोड़ों कामों को जीतने वाले तीसी के फूल के समान सुन्दर **गिरिधर** कवि के जीवन–धन श्रीराम को देखो।

विशेष– यह गीत भी हवेली गीत पद्धति के ढाल में निबद्ध है।

सन्दर्भश्लोकः

कपटपाखण्डदम्भमत्सरमदस्तम्भकैतवनिकुरम्बलम्बमानदुष्टकुकथां
रागद्वेषकण्टकभयाकुलां समाकुलां महामहीं रसेशक्लेशशूलमूलकापथाम्।
षड्विकारनिरासारदुर्विचारपारावारभीमवीचिविकृतविलासमङ्गलश्लथां
गिरिधरो गिरं गृणीते वरदं वरं वृणीते पालनाविहारी हरिर्हरतु मम व्यथाम्।।१।।

भौमी– कपट–पाखण्ड–दंभ–मत्सर–अहंकार, कपट से जनित कुकृत्य को आश्रय मानकर प्रचलित हो रहे दुष्टों की कुत्सित कथा से युक्त, राग द्वेष–रूप काँटों के भय से युक्त एवं आकुलता की पृथिवी तथा सांसारिक श्रृंगार से उत्पन्न क्लेश और कष्टों के मूल; कुत्सित मार्गों वाली, छहों विकारों से युक्त तत्वहीन दुर्विचारों के महासागर की तरंगों से विकृत विलासों वाली और जहाँ से मंगल ही फिसल गए हैं, ऐसी मेरी भव व्यथा को पालना बिहारी श्रीहरि दूर करें, इस प्रकार **गिरिधर** कवि प्रार्थना करते हुए भगवान से वरदान माँगते हैं।

गीत संख्या–२४

गायति कविः–

हरतु व्यथां हरिर्मम पालनाविहारी।
भवभयमूलां श्रितशमशूलां प्रतिकूलां शमयतु सुखकारी।।१।।
दोलारज्वा मनोमतङ्गं सपदि नियच्छतु कार्मुकधारी।
आन्दोलयतु दोलया साकं बुद्धिं सज्जनमानसचारी।।२।।
स्वयं दोल्यमानो मम दोलयतात् अहङ्कारमयि विपद्विदारी।
स्वच्छन्दं गिरिधरोऽपि गायतु गीतं भवतो भयापहारी।।३।।

भौमी– अब कवि हवेली पद्धति का गीत गाते हुए कहते हैं–पालना बिहारी हरि हमारी व्यथा हर लें, जो भवभयों की मूल कारण है तथा जो शम–यमादि के लिए कष्टकर तथा साधकों के लिए प्रतिकूल हैं, उस व्यथा को सुख देने वाले प्रभु शान्त कर दें। धनुर्धारी भगवान अपने झूले के डोर से मेरे मन–मतंग को नियंत्रित कर दें। विपत्ति को नष्ट करने वाले भगवान श्रीराम स्वयं झूलते हुए मेरे अहंकार को भी इस झूले में झुलाकर अपना भक्त बना लें। इस प्रकार **गिरिधर** भी स्वच्छन्द होकर आपका गीत गाये, क्योंकि आप भक्त–भयहारी हैं।

गीत संख्या–२५

राजति श्रीरामब्रह्म बालरूपधारी।
सर्वव्यापकोऽपि दशरथाजिरविहारी।।१।।

इन्द्रनीलमणिश्यामो लोकलोचनाभिरामो।
देवदेवो देहविभा कामदर्पहारी।।२।।
स्वायम्भुवमनुदेविशतरूपाभक्तिवशः ।
परमपिता शिशुर्भवन् मोदितनरनारी।।३।।
लघुलघुनवनलिनचरण-त्रिविधतापपापहरण ।
वामदेवहृदाभरणशरणसौख्यकारी ।।४।।
वक्षसि श्रीवत्सलसित-तरुणतुलसिकासुमहित।
कामकलभशुण्डबाहुसज्जनभयहारी ।।५।।
निष्कलङ्कचन्द्रवदनकमलनयनशोभासदन ।
विजितमदनमेचककचमधुपमदप्रहारी ।।६।।
किलकति विहसति विरौति मातरं मुदा प्रणौति।
धौति भूरि पातकानि सुजनहृदयचारी।।७।।
गिरिधरो गिरं गृणीते वरदमिह वरं वृणीते।
पालयतात् पालनीयं पालनाविहारी।।८।।

भौमी- पुनः हवेली पद्धति के गीत में भगवान श्रीराम के बालरूप का वर्णन करते हुए महाकवि गाते हैं-बालरूप धारण किए हुए, सर्वव्यापक होकर भी महाराज दशरथ के आँगन में विहार करने वाले बालरूप श्रीराम बहुत सुशोभित हो रहे हैं। देवाधिदेव भगवान श्रीराम मरकतमणि के समान श्यामल संसार के नेत्रों को आनन्द देने वाले तथा अपने शरीर की कान्ति से कामदेव के अहंकार को भी हरण कर रहे हैं। स्वायंभुव मनु और देवी शतरूपा की भक्ति के वश में होकर सभी नर-नारियों को आनन्द देते हुए परम-पिता परमात्मा भी आज बालक बन गए हैं। प्रभु के छोटे-छोटे कमलचरण तीनों तापों और पापों को हरने वाले हैं तथा भगवान शंकर के भी हृदय के अलंकार प्रभु श्रीराम शरणागतों को सुख दे रहे हैं। भगवान के वक्ष पर श्रीवत्सलांछन विराज रहा है, जो नवीन तुलसी की माया से सुशोभित है और श्रीराम के बाहु कामदेव के हस्तिशावक के शुण्ड के समान तथा सज्जनों के भयहर्ता हैं। भगवान श्रीराम का मुख निष्कलंक चन्द्रमा के समान है, भगवान के नेत्र कमल के समान तथा शोभा के भवन हैं, प्रभु ने सुन्दरता से काम को भी जीत लिया है, प्रभु के काले घुँघराले बाल भ्रमर का भी मद नष्ट कर रहे हैं। सज्जनों के हृदय में विचरण करने वाले भगवान श्रीराम किलकारी करते हैं, हँसते हैं, ऊँचे स्वर में बोलते हैं, माँ को प्रणाम करते हैं और स्मरण करने वालों के सभी पापों को धो डालते हैं। कवि **गिरिधर** गीत गाता हुआ वरदान देने वाले प्रभु से यह वरदान माँगता है कि पालनाबिहारी हरि मुझ पालनीय भक्त का पालन करें।

गीत संख्या-२६

अद्य राघवः सुखोपविष्टो दशरथाङ्गणे।
द्रष्टुमागताः सुराः पौरन्दरपुराङ्गणे।।१।।

पालनां विहाय परिहाय स्वसहायताम्।
पालको बालको भवन् विभ्रँल्लघुकायताम्।।२।।
आव आव कथयन् समाह्वयति मातरम्।
अङ्गुल्या सङ्केतयति लक्ष्मणं च भ्रातरम्।।३।।
कौसल्याप्याहूय शिशुं दर्शयते दशरथम्।
रामशिशुसौभगरथोल्लसन्मनोरथम् ।।४।।
शोभां बभूवाथ वीक्ष्य पिता हर्षनिर्भरः।
पूरयिष्यन् मनोरथः शीघ्रं सहगिरिधरः।।५।।

भौमी- कवि पुनः हवेली पद्धति का शास्त्रीय गीत गा रहे हैं, अहो! आज श्रीराघव महाराज दशरथ के आँगन में सुखपूर्वक आसीन अर्थात् बैठे हैं, नरलीला में प्रथमवार आसीन हुए प्रभु के दर्शन करने इन्द्र के मित्र दशरथ के आँगन में सभी देवता पधार आए हैं। पालने को छोड़कर अपने सहायकों के समूह से दूर होकर संसार के पालक प्रभु छोटा शरीर धारण कर, बालक बनकर आव-आव-(आइये-आइये) कहकर माँ कौसल्या को बुला रहे हैं और भाई लक्ष्मण को अपनी अंगुली से संकेत करके पास बुला रहे हैं। श्रीराम बालरूप राघव के सौन्दर्यरूप रथ पर जिनका मनोरथ समुल्लसित हो रहा है, ऐसे महाराज दशरथ को बुला-बुलाकर कौसल्या जी बालरूप राघव की झाँकी दिखा रही हैं। पिता दशरथ इस शोभा को देखकर हर्ष से निर्भर हो उठे, क्योंकि **गिरिधर** कवि के साथ ही इनके सभी मनोरथ शिशु राघव की कृपा से शीघ्र पूर्ण हो जायेंगे।

गीत संख्या-२७

महाराजः पश्यतूपविष्टं सुखं राघवम्।
घोरभववारिनिधिदुर्निवार्यवाडवम् ।।१।।
इन्द्रनीलमणिश्यामं कामकोटिसुन्दरम्।
हेयगुणप्रत्यनीकसद्गुणैकमन्दिरम् ।।२।।
सस्मितवदनारविन्दनयनविजितखञ्जनम् ।
निरञ्जनं तथाप्यहो पश्य मञ्जुलाञ्जनम्।।३।।
भवद्भक्तिवशंवदं सज्जनसुखप्रदम्।
महाराज लालय सतां मनोज्ञमास्पदम्।।४।।
आवामथ पालयेव लोकप्रतिपालकम्।
गिरिधरेण सार्धमद्य पश्य विभुं बालकम्।।५।।

भौमी- माता कौसल्या कहती हैं, हे महाराज! घोर संसारसागर को सुखाने के लिए अमोघ वाड़वाग्निस्वरूप, आँगन में किसी की सहायता के बिना सुखपूर्वक बैठे हुए शिशु राघव को तनिक निहारिए तो। हे महाराज! तनिक देखिए तो, इन्द्रनील मणि के समान श्यामल करोड़ों कामदेवों के समान सुन्दर, त्याज्य गुणों के विरोधी, वात्सल्यादि उपादेय गुणों के एकमात्र मन्दिर, मन्दहास पूर्ण कमलमुख और खंजनपक्षी के भी विजेता नेत्र, अहो! निरंजन अर्थात् कर्मलेप से रहित होते हुए भी श्रीनेत्रों में सुन्दर काजल लगाए हुए प्रभु शिशुराम को

निहारिए। आपकी भक्ति के वशीभूत सज्जनों के सुखदाता और सज्जनों के एकमात्र आश्रय, शिशुराघव को दुलारिये महाराज! लोक के प्रतिपालक प्रभु शिशु राघव को हम दोनों दशरथ-कौसल्या सुख से पालें, हे महाराज! **गिरिधर** कवि के साथ ही आप विभु अर्थात् संपूर्ण मूर्त्त द्रव्यों के सहयोगी बालक शिशुराम को निहारिये।

गीत संख्या-२८

अधुनैव शिशुनाऽजिरे मुदोपविश्यते।
किमुत शशिनि बालवारिधरो देव दृश्यते।।१।।
किमुतेन्दीवरं चाधिगङ्गमधिभ्राजते।
किमुत भवत्पुण्यमद्य मूर्तिमद्विराजते।।२।।
लम्बन्ते सुताननमभीक्ष्णमहो कुन्तलाः।
किं पिबन्ति विधौ सुधां मधुकरा महोज्ज्वलाः।।३।।
पश्य शिशुः स्वाङ्गुलिभिः कचान् भाति वारयन्।
मन्ये विधुर्वैधुन्तुदं कुजैः सन् निवारयन्।।४।।
अहो इयं माधुरी हृदाङ्गणे निवेश्यताम्।
गिरिधरेण साकमद्य बालकः प्रवेश्यताम्।।५।।

भौमी- माता कौसल्या कहती हैं-हे महाराज! अभी-अभी इसी समय आँगन में किसी सहायता के बिना बालक श्रीराम बैठ रहे हैं, हे देव! क्या चन्द्रमा में छोटा-सा बालक दिख रहा है? या आँगन में बैठे हुए राघव? क्या गंगाजी में नीलाकमल सुशोभित हो रहा है? अथवा क्या आपका पुण्य ही बालरूप धारण करके श्रीराम रूप में विराज रहा है? देखिये महाराज! बालक के मुख पर बड़े-बड़े घुँघराले बाल लटक रहे हैं, क्या चन्द्रमा के पास जाकर बादल अमृत तो नहीं पी रहे? देखिए महाराज! शिशु राघव अपने अंगुलियों से मुख पर लटकते हुए बालों को हटा रहे हैं, लगता है जैसे चन्द्रमा ही राहु-समूहों को मंगलों की सहायता से भगा रहे हों। अहो! यह रूपमाधुरी हम दोनों अपने हृदय के प्रांगण में पधरा लें और कवि **गिरिधर** के साथ बालरूप राघव को हम अपने मन में छिपा लें।

गीत संख्या-२९

ललितसुतं लालय नरपाल।
सफलमनोरथकल्पवल्लरीधन्यमहामहिपाल ।।१।।
आवयोर्मनोवाञ्छां नूनं सम्भावयन् कृपालुः।
जगत्पिताऽपि भवन् सूनुर्नौ प्रकटो दीनदयालुः।।२।।
महाराज राजीवलोचनं पश्यन् सफलय नेत्रम्।
धन्यं कुरु भारतक्षेत्रमथ सम्मानय स्वक्षेत्रम्।।३।।
मणिमिव फणी सलिलमिव मीनो बालं हृदये गोपय।
गिरिधरप्राणधनं सङ्गोपय मा मा सुकृतं लोपय।।४।।

भौमी- माता कौसल्या हवेली पद्धति का ही गीत गाती हुई कहती हैं, हे महाराज! आपकी मनोरथ कल्पलता में फल लग गया है, आप धन्य हैं। निश्चित् हम दोनों की इच्छा का सम्मान करते हुए दीनों के दयालु जगत्पिता प्रभु श्रीराम पुत्र बनकर प्रकट हुए हैं। हे महाराज! राजीवलोचन श्रीराम को निहारकर अपने नेत्रों को सफल कीजिए, भारत भूमि को धन्य कीजिए, और अपने क्षेत्र मुझ कौसल्या को भी श्रीराम की माता के रूप में सम्मान दीजिए। सर्प जैसे मणि को छिपा के रखता है, मछली जैसे जल का सम्मान करता है, उसी प्रकार शिशु राम का सम्मान कीजिए, कवि **गिरिधर** के प्राणधन श्रीराम को हृदय में छुपा लीजिए और अपने सुकृत को नष्ट मत कीजिए।

सन्दर्भश्लोकः

संभावयंश्चेतसि धर्मपत्नीं पत्नीत्वमस्याः बहुमन्यमानः।
स्वाङ्के गृहीत्वा शिशुरामभद्रं जगाद जीमूतगिरा गभीरम्।।१।।

भौमी- अपने चित्त में धर्मपत्नी कौसल्या जी का सम्मान करते हुए और उनके पत्नी सम्बन्धी गुण का बहुत आदर करते हुए, बालक श्रीरामभद्र को गोद में लेकर महाराज दशरथ मेघ जैसी वाणी में गंभीरार्थक वाक्य बोले।

गीत संख्या-३०

अद्य किमु सुकृतं चरितं मया।
विधिहरिहरपूजितः शिशुवरः सन्दिष्टो येन त्वया।।१।।
दुराराध्यमपि योगियतीनां लालयामि भक्त्यैकया।
नूनं त्वत् कृपया कौसल्ये विश्चिनोमि मत्या स्वया।।२।।
हरहृन्मानसबालमरालं प्रीणयामि प्रीत्या यया।
दिवानिशं गिरिधरो विधत्तां नयनपुटे रत्याऽनया।।३।।

भौमी- महाराज वागीश्वरी राग में हवेली ढाल का गीत गाते हुए कहते हैं, अहो! आज मैंने कौन-सा सुकृत किया है, जिसके कारण ब्रह्मा-विष्णु और शंकर जी से पूजित परब्रह्म श्रीराम ही आपके द्वारा बालक रूप में मुझे दिये गए हैं। अहो! योगी-यतियों के भी दुराराध्य परमात्मा श्रीराम को आज अनन्य पुत्र विषयक वात्सल्य-भक्ति से दुलार रहा हूँ, हे कौसल्ये! आपकी कृपा से ही मैं अपनी बुद्धि से इस प्रकार निश्चय कर पा रहा हूँ। शंकर जी के हृदय मानससरोवर के बालहंस रूप श्रीराम को मैं जिस प्रीति से दिवानिश प्रसन्न करता रहा हूँ, **गिरिधर** कवि भी उसी अनन्य-रति से प्रभु राघव को अपने नेत्र सम्पुट में धारण कर लें।

गीत संख्या-३१

कविर्गायति-

ललितसुतं जननी लालयते।
श्रितसहस्रब्रह्माण्डमिवाण्डं पक्षिणीव परितः पालयते।।१।।

कर्हिचिदञ्चलवृतं स्तनमथो माता धातारं धाययते।
"रसो वै स इति" श्रुतिप्रसिद्धमपि वत्सलसुधारसं पाययते।।२।।
सुरकुलभूषणमपि विभूषणैर्नखशिखमनघं संवारयते।
शोभां दृष्ट्वा मणिगणवसनं कौसल्या रामे वारयते।।३।।
स्तब्धा कर्हिचिदचलचेतसा राघवविधुवदनं किल ध्यायति।
ध्यानमिदं जीवनसर्वस्वं गीतं गिरा गिरिधरो गायति।।४।।

भौमी- अब स्वयं कवि मंगल राग में गाते हैं, अत्यन्त सुन्दर बालक श्रीराम जी का माता कौसल्या लालन कर रही हैं, कोटि-कोटि ब्रह्माण्डाधिपति को भी माता कौसल्या ऐश्वर्य की विस्मृति के साथ पाल रही हैं, जैसे चिड़िया अपने अंडे को पालती है। कभी अपने अंचल से ढँककर जगत के धाता श्रीराम को माता जी स्तनपान कराती हैं। यह परमात्मा रसरूप हैं, इस प्रकार श्रुति प्रसिद्ध परमेश्वर को भी वत्सल रससुधा पिला रही हैं। देवकुल के आभूषण प्रभु को भी कौसल्या जी नख से शिखापर्यन्त अलंकारों से सजा रही हैं, शोभा को निहारकर श्रीराम पर मणि एवं वस्त्र वारणा कर रही हैं। कभी प्रेम में स्तब्ध होकर अचल मुद्रा में कौसल्या माता भगवान श्रीराम के मुखचन्द्र का ध्यान करने लगती हैं, इसी ध्यान को अपना जीवन सर्वस्व मानकर **गिरिधर** कवि संस्कृत वाणी में बद्ध करके गीत गा रहे हैं।

गीत संख्या-३२

रामललनो मम राघवललनो मम प्राङ्गणेषु खेलन्नास्ते रामललनः।।
अञ्जलिना धूसरति धूल्या शिरोभागं।
विधव इवार्पयति कुजैर्घनोऽम्बुजपरागम्।।
आकाशश्चकास्ति कलितकैरववनः।।१।।
धूलधूसरोऽपि शिशुर्नितरां विराजते।
कोटिकोटिकाममवन् विभया विभ्राजते।।
दर्शं दर्शं इमं मोदते हि सज्जनः।।२।।
स्खलति चलति खेलति दिनेशवंशभूषणः।
पूर्णपुरातनोऽप्येष दूषणविदूषणः।।
पश्य सखि पुरतोऽस्ति सौभगघनः।।३।।
पश्य पश्य कैकेयि पश्य हे सुमित्रे।
चक्रवर्तिसुकृतं मूर्तमाङ्गणे पवित्रे।।
मोमुद्यते नितरां गिरिधरमनः।।४।।

भौमी- भगवती कौसल्या भैरवी राग में कहती हैं अहो! मेरे राम ललना आज मेरे आँगन में खेल रहे हैं, अपनी अँजुली से भर-भरकर सिर पर धूल डाल रहे हैं। ऐसा लगता है, मानो स्वयं बादल मंगलों को माध्यम बनाकर चन्द्रमा को कमल का पराग अर्पित कर रहा है। अहो! धूलि से भरा हुआ भी यह बालक बहुत सुन्दर

लग रहा है, अपनी कान्ति से यह कोटि–कोटि कामदेवों को भी पीछे छोड़ता हुआ सुशोभित हो रहा है, इस बालक को निहार–निहारकर वैष्णव जन प्रसन्न हो रहे हैं। सखी! सूर्यकुल के भूषण शिशु राम लड़खड़ाते हैं, चलते हैं, खेलते हैं, पूर्णपुरातन ब्रह्मरूप श्रीराम सभी दूषणों के नष्ट करने वाले हैं, सखी! देखो, मेरे समक्ष इस समय सौंदर्य का बादल विराज रहा है। हे कैकेयी! देखो, हे सुमित्रे! देखो, आज चक्रवर्ती महाराज का पुण्य ही बालरूप में परिणत होकर इस पवित्र आँगन में खेल रहा है; इसे देखकर कवि **गिरिधर** का मन अत्यन्त प्रसन्न हो रहा है।

सन्दर्भश्लोकः

अन्नप्राशनकाय राजमहिषी रामस्य रङ्गार्चनं
कृत्वा सा विनिवेद्य भोजनमयं सुस्वादु नानाविधम्।
गत्वा सत्वरमागतार्चनगृहं प्राश्नन्तमर्भं स्वकं
कौसल्या शयितं निरीक्ष्य किल तं विस्मापिता सञ्जगौ।।१।।

भौमी- अब कवि कथावस्तु को जोड़ने के लिए सन्दर्भश्लोक में कहते हैं, श्रीराम के अन्नप्राशन के लिए अवधराज महिषी कौसल्या जी रंगनाथ जी की पूजा करके उन्हें अनेक स्वाद संपन्न राजभोग नैवेद्य करके बाहर जाकर फिर मंदिर में आकर वहाँ शिशु राम को भोजन करते और पुनः शयन गृह में शयन करते हुए प्रभु को देखकर विस्मित होकर इस प्रकार गाने लगीं।

गीत संख्या-३३

राम राघवो मम राम राघवो
मम मन्दिरेऽपि भुञ्जानो राम राघवः।
मम पालनायां दोल्यमानो राम राघवः।।
लघु लघु कवलं स्ववदनं प्रवेशयन्।
विधौ भावसुधां यथा नीरदो निवेशयन्।।
भ्राजते स्वप्रभया ललितलाघवः।।१।।
पायसेषु कुटिलकुटिलकुन्तलानि स्नापयन्।
राजते यथैव शशिनि नीरदान्निधापयन्।।
किलकति कलं विनोदभग्नरौरवः।।२।।
करजैराकारयति काकं भुशुण्डिनम्।
खादयति किमुत घनः काममञ्जुतुण्डिनम्।।
शूलपाणिमानसाभिरामकलरवः ।।३।।
रङ्गनाथं शाययित्वा भुङ्क्ते कृपालुः।
कारुणिकचूडामणिः सज्जनदयालुः।।
गिरिधराय रातु जुष्टं विपुलवैभवः।।४।।

भौमी- अरे! मेरे राम, मेरे शिशुरूप राघव, इसी समय मेरे मन्दिर में भोजन भी कर रहे हैं तथा मेरे पालने में झूल भी रहे हैं। देखो, मेरे राघव छोटा-छोटा ग्रास अपने मुख में डाल रहे हैं, जैसे बादल चन्द्रमा में भावामृत निविष्ट कर रहा हो, अत्यन्त ललित चंचलता वाले प्रभु अपनी ही कान्ति से सुशोभित हो रहे हैं। पायस अर्थात् खीर में घुँघराले-घुँघराले बालों को लहराते हुए राघव ऐसे लग रहे हैं, जैसे स्वयं वे चन्द्रमा में बादलों को छिपा रहे हों, अपनी किलकारी और बालविनोद से प्रभु ने भक्तों के रौरव को नष्ट कर दिया है। देखो, राघवजू अपनी अँगुलियों से संकेत करके काकभुशुण्डि को बुला रहे हैं और कामदेव से रची हुई-सी सुन्दर चोंच वाले भुशुण्डी को कुछ खिला रहे हैं, इनकी बाल किलकन शंकर जी के भी मन को आनन्द दे रही है। रंगनाथ जी को सुलाकर राघव सरकार स्वयं भोजन कर रहे हैं, कारुणिकों के चूड़ामणि सज्जनों पर दया करने वाले, प्रभु श्रीराम मुझ कवि **गिरिधर** को भी अपना थोड़ा-सा जूठन दे दें, क्योंकि आपका वैभव बहुत विशाल है।

गीत संख्या-३४

अत्र वै राघवः तत्र वै राघवः
यत्र कुत्रापि सर्वत्र वै राघवः।।
मन्दिरेऽप्येष भुञ्जानो वै दृश्यते
पालनायां शयानः समास्पृश्यते।
कोटिब्रह्माण्डसंजित्वरो राघवः
यत्र कुत्रापि सर्वत्र वै राघवः।।१।।
किन्नु स्वप्नो मया दृश्यते हे विधे
किञ्च सत्यं हृदा श्लिष्यते सन्निधे।
एक एवाद्य द्वेधा कथं राघवः
यत्र कुत्रापि सर्वत्र वै राघवः।।२।।
शायितःपालनायाञ्च शृङ्गारितः
वारं वारं जनानां रवो वारितः।
मन्दिरं कथमितः सत्वरो राघवः
यत्र कुत्रापि सर्वत्र वै राघवः।।३।।
दिव्यदेवा कथं चागताः ह्यत्र भो
कोटिसूर्यादयः सुस्थिता हे प्रभो।
किञ्च गिरिधरमनश्चोरयन् राघवः
यत्र कुत्रापि सर्वत्र वै राघवः।।४।।

भौमी- कौसल्या जी कहती हैं, अरे! यहाँ अर्थात् मन्दिर में भी राघव और वहाँ अर्थात् पालने में भी राघव, मैं जहाँ-जहाँ देख रही हूँ, सर्वत्र राघव ही राघव दिख रहे हैं। वे मुझे मंदिर में भोजन करते हुए दिख रहे हैं और पालना में शयन करते हुए भी मैं उनका स्पर्श कर रही हूँ। करोड़ों ब्रह्माण्ड की विजयी राघव मुझे जहाँ-तहाँ सर्वत्र दिख रहे हैं। हे विधाता! क्या मैं आज सपना देख रही हूँ? अथवा हे कल्याण के निधान परमेश्वर रंगनाथ! क्या मैं सत्य का हृदय से स्पर्श कर रही हूँ? आज एक ही राघव दो रूपों में क्यों दर्शन दे रहे हैं? मैंने

शृंगार करके राघव जी को पालना में सुलाया है और बार-बार लोगों को चिल्लाने से मना किया, जिससे प्रभु की नींद न टूट जाए। पर मेरे सोए हुए राघव अतिशीघ्र रंगनाथ मंदिर में कैसे आ गए? अरे! यहाँ दिव्य देवता कैसे आ गए? यहाँ करोड़ों सूर्यों का प्रकाश कैसे स्थित हो गया? क्या बालरूप राघव कवि **गिरिधर** के मन को तो नहीं चुरा रहे हैं?

सन्दर्भश्लोकः

दृष्ट्वा तदद्भुतं रूपं विस्मयाविष्टमानसा।
कौसल्या कंपिता रामं स्तोतुं समुपचक्रमे।।१।।

भौमी- भगवान श्रीराम के इस अद्भुतरूप को देखकर विस्मय से युक्त मन वाली कौसल्या प्रभु की स्तुति करने लगीं।

गीत संख्या-३५

राघव क्रियतां क्षमा नैव ज्ञातो मया।
नैव ज्ञातो मया अवध्यातो मया।।१।।
प्रबलजगज्जालकालचक्रे पतन्त्या।
क्षणमपि श्रीचरणो न ध्यातो मया।।२।।
चक्रवर्तिगृहिणीति गर्वं दधत्या।
भागवतसुधर्मो न पातो मया।।३।।
कदाचिद् विमूढया स्वकीयमनःकलशो।
भवद्भक्तिसुधया न प्रातो मया।।४।।
अविवेकहेतोर्महितश्रुतिसेतो-
र्वात्सल्यभावो न त्रातो मया।।५।।
गिरिधरप्रभवे निखिललोकविभवे।
क्षेमाय प्रेमा न रातो मया।।६।।

भौमी-हे राघवसरकार! आप क्षमा करें, आपको मैं नहीं जान पाई, इसीलिए मैंने आपका अपमान कर दिया। हे प्रभो! इस संसार के प्रबल जाल और कालचक्र में पड़ी हुई, मैंने एक क्षण भी आपका ध्यान नहीं किया। मैं चक्रवर्ती की राजमहिषी हूँ, इस अहंकार को धारण करती हुई; मैंने भागवत धर्मकी रक्षा नहीं की। मुझ मूर्खा ने कभी भी आपकी भक्तिसुधा से अपने हृदय-कलश को परिपूर्ण नहीं किया। अपने अविवेक के कारण वैदिक सेतु का सम्मान करने वाले आपश्री के वात्सल्य भाव की भी मैंने रक्षा नहीं की। अपने कल्याण के लिए मैंने सम्पूर्ण लोक व्यापी **गिरिधर** कवि के स्वामी आपश्री राघव सरकार को अपने प्रेम का समर्पण भी नहीं किया, मैं आपश्री को नहीं जान पाई, हे राघव आप मुझे क्षमा कीजिए।

सन्दर्भश्लोकः

भीतां मातरमाज्ञाय संहरन् रूपमद्भुतम् ।
भूत्वा बालः पुना रामः शान्त्वयन् जननीं जगौ।।१।।

भौमी-माँ को भयभीत देखकर अपना अद्भुत रूप समेटते हुए फिर बालक रूप में उपस्थित होकर भगवान श्रीराम जननी कौसल्या जी को सांत्वना देते हुए इस प्रकार गाने लगे।

गीत संख्या-३६

हृदये मा भैषीर्मम मातः।
तव विवेकवर्धनायैष मम चरितविशेषो जातः।।१।।
दृष्टं मत्प्रतिरोमकोटिकोटिब्रह्माण्डाधारम् ।
स्पृहये तव पयसे तथापि धृतकोटिक्षीरकूपारम्।।२।।
मत्तो विभ्यति विधिहरिहरयमकालभानुरजनीशाः।
प्रतिविम्बाद् विभेमि तदहं यद् वसे समस्तदिगीशाः।।३।।
योऽहं मायानटीं नर्तयन् जगदिह सततमटामि।
सोऽहं तव चुटुकीशब्दादिह नित्यं जननि नटामि।।४।।
अद्भुतरूमिदं निरन्तरं हृदये मातर्ध्याय।
भुवनमङ्गलं शिशुहरिचरितं सुरगिरि गिरिधर गाय।।५।।

भौमी- अब हवेली पद्धति में गीत प्रस्तुत करते हुए भगवान राम कहते हैं, हे मेरी माँ! आप हृदय में मत डरें, आपश्री के विवेक के संवर्धन के लिए ही मेरा यह विशेष चरित्र प्रकट हुआ। आपने देखा, मेरा प्रत्येक रोम करोड़ों-करोड़ों ब्रह्माण्डों का आधार तथा करोड़ों-करोड़ों क्षीरसागरों को धारण करता है फिर भी उन कोटि-कोटि दुग्ध सिन्धुओं को छोड़कर मैं आपके स्तन से निर्झरित कतिपय दुग्धबिन्दुओं के लिए लालायित रहता हूँ। आप देख रही हैं, ब्रह्मा-विष्णु-शिव-यम-काल-सूर्य-चन्द्र ये सभी मुझसे डरते हैं, जिसके वश में सभी दिग्पाल हैं। वह मैं आपके भवन में अपने प्रतिबिम्ब से भी डर जाता हूँ, जो मैं मायानटी को नचाता हुआ सतत संसार में भ्रमण करता रहता हूँ, वही मैं आपकी चुटकी के शब्दों के संकेत से नाचता हूँ। हे माँ! मेरे इस अद्भुतरूप का हृदय में निरन्तर ध्यान किया कीजिए, हे **गिरिधर** कवि! तुम भी इस भुवन- मंगल श्रीरामचरित्र को देववाणी में सदैव गाते ही रहो।

इति

श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरमहाकविजगद्गुरुरामानन्दाचार्यस्वामिरामभद्राचार्यगिरिधरकविप्रणीते गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये बालकाण्डे गीतराघवबालकेलिर्नाम तृतीयः सर्गः।

इस प्रकार श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर महाकवि जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य गिरिधरकवि द्वारा विरचित गीतरामायण 'गीतसीताभिराम' नामक संस्कृत गीतमहाकाव्य के बालकाण्ड में गीतराघवबालकेलि नामक तृतीयः सर्ग सम्पन्न हुआ।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

।।श्रीः।।

।।नमो राघवाय।।

गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये
बालकाण्डे

गीतराघवबाललीलो नाम

चतुर्थः सर्गः

गीत संख्या-१

स्खलति चलति रामचन्द्रो वाद्यते पदनूपुरः।।
किलकति विहसति प्रयाति पतति सुत्थितश्च याति।
एति लाति क्रोडे रामं दशरथस्यान्तःपुरः।।१।।
अञ्चलैर्रजांसि प्रोक्ष्य बाष्पधारया मुदौक्ष्य।
लाल्यमानो मातृभिः पुनश्च धूलिधूसरः।।२।।
कुन्तला मुखं स्पृशन्ति सतां क्लेशकं कृषन्ति।
कौसल्याकुमारः सुकुमारो मारसुन्दरः।।३।।
नखशिखमृदुरुचिररुचिरसुधामेघमधुरमधुर-
कलबलवरवचनमुखरभवमहाब्धिमन्दरः ।।४।।
दशरथः शिशुं निहार्य निमिषन् निमिषं निवार्य।
मुक्तामणिं वारयते गाप्यमानगिरिधरः।।५।।

भौमी- अब महाकवि चतुर्थ सर्ग में भगवान राम की बाललीला का वर्णन करते हुए गा रहे हैं–आज श्रीराम ठुमुक–ठुमुक चल रहे हैं। उनके चरण में नूपुर बज रहा है। शिशु राघव किलकते हैं, हँसते हैं, दौड़ते हैं, गिरते हैं, उठते हैं, फिर चलने लगते हैं, माँ के पास आते हैं। फिर महाराज की रानियाँ उन्हें गोद में ले लेती हैं। माताएँ आँचल से प्रभु की धूल झाड़कर पुनः अपने गरम प्रेमाश्रुओं में नहला कर श्रीराघव को दुलारती हैं। पुनः माताओं की गोद से उतरकर श्रीराघव धूलि–धूसरित हो जाते हैं, अर्थात् अपने शरीर में धूल भर लेते हैं। प्रभु की घुँघराली लटें उनके श्रीमुख मण्डल का स्पर्श कर रही हैं। सज्जनों के क्लेश को दूर कर रही हैं। कौसल्यानन्दवर्धन प्रभो अत्यन्त सुकुमार और कामदेव से भी सुन्दर हैं एवं कामदेव ने भी श्रीराम से ही सुन्दरता पाई है। प्रभु श्रीराम नख से शिखपर्यन्त अत्यन्त सुन्दर अमृत के बादल से भी मधुर तोतली बोली बोलते हुए भवसागर के लिए मन्दराचल स्वरूप हैं। दशरथ जी महाराज बालराघव को निहारकर गिरती हुई पलकों को रोककर, प्रभु पर मुक्तामणि की वारणा करते हैं और **गिरिधर** कवि से गीत गवा रहे हैं।

विशेष- यह गीत ''ठुमुक चलत रामचन्द्र बाजत.......' की ढाल पर ही है।

सन्दर्भश्लोकः

श्रीरामं समनुव्रतं निशि दिवा सल्लक्षणं लक्ष्मणम्
शय्याहारविहारकेलिपुटके छायामिवार्कातपम्।
शत्रुघ्नञ्च तथा सदैव भरतं प्रेम्णा भजन्तं मुदा
दृष्ट्वा कोसलराजराजतनयान् स्नेहाज्जगौ कैकयी।।१।।

भौमी- शयन, आहार, विहार आदि भिन्न–क्रीड़ाओं में सूर्यनारायण का अनुगमन करती हुई छाया के समान, श्रेष्ठ लक्षणों वाले लक्ष्मण जी को तथा इसी प्रकार प्रेम और प्रसन्नता से श्रीभरत जी का भजन करते हुए शत्रुघ्न को श्याम–गौर दो जोड़ियों में विभक्त देखकर दशरथ राजकुमारों का चिन्तन करके मझली माँ–कैकेयी प्रेमपूर्वक गा उठीं।

गीत संख्या–२

पश्य लीलां चतुर्णां सुतानां शुभे।
बालभावेऽपि चादर्शितानां शुभे।।
यद्यपि समानशीलरूपगुणवयसाम्।
चतुर्भिर्पुमर्थैरुपमितानां शुभे।।१।।
मोक्षमिव धर्मो राममनुव्रतो लक्ष्मणः।
धत्ते सुखं भगवच्छ्रितानां शुभे।।२।।
कामं राघवीयमिव शत्रुघ्नोऽप्यर्थः।
भजन् भरत मान्यः सात्वतानां शुभे।।३।।
क्रीडतां च युगपत् पतितपावनानाम्।
शोभां पश्य श्रेयसीरतानां शुभे।।४।।
गिरिधरप्रभूणाञ्च जगतां विभूनाम्।
विनतवृन्दरक्षाव्रतानां शुभे।।५।।

भौमी- कैकेयी माता एक सखी को सम्बोधित करती हुई कहती हैं हे सखि! बाललीला में भी आदर्श मर्यादा का पालन कर रहे, मेरे चारों पुत्रों की लीला तो देखो! यद्यपि मेरे चारों बेटे शील, रूप, गुण और अवस्था में समान ही हैं। इन्हें चारों पुरुषार्थों मोक्ष, काम, धर्म और अर्थ से उपमित किया जाता है। तात्पर्यतः श्रीराम मोक्ष के, भरत काम के, लक्ष्मण धर्म के और शत्रुघ्न अर्थ के उपमेय हैं। यहाँ काम शब्द परमेश्वर के कैंकर्य की इच्छारूप अर्थ में प्रयुक्त हुआ और अर्थ भगवत प्रेमधन के रूप है। धर्म भगवद् भजन के अर्थ में, मोक्ष नित्य भगवत् परिकर के अर्थ में। देखो, लक्ष्मण श्रीराम का अनुगमन करते हुये भगवत् भक्तों के सुख का उसी प्रकार विधान कर रहे हैं– जैसे धर्म मोक्ष का अनुगमन करता है। श्रीवैष्णवों के सम्माननीय शत्रुघ्न भरत की उसी प्रकार सेवा कर रहे हैं– जैसे अर्थ भगवत् विषयक इच्छा का अनुसरण करता है। हे सखी! भक्तों के कल्याण में लगे हुए पतितों को पवित्र करने वाले एक ही साथ खेल रहे मेरे चारों पुत्रों की शोभा देखो। सखी! समस्त संसार के परमेश्वर, ईश्वर, तैजस और विराट नामक विभुरूप भक्तों की रक्षा को ही अपना व्रत मानने

वाले **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न की शोभा देखो और श्रीराम को परमेश्वर विभु भरत को ईश्वर विभु, शत्रुघ्न को तैजस विभु तथा लक्ष्मण को विराट विभु समझो।

विशेष- यह गीत एक लोक धुन के ढाल में निबद्ध है- जिसके बोल 'छाडि कहाँ जाइबै हो........।

गीत संख्या-३

मातरो रामशिशुं स्नपयन्ति।
सरयूपयसा सुरमातॄरपि निजभाग्यैस्त्रपयन्ति।।
कोष्णजलं कैकय्यभिषिञ्चति, सुरभिसुमित्रा पयो निषिञ्चति
कौसल्या परिमृषति शुभाङ्गं समाः श्रमं ग्लपयन्ति।।१।।
शनैः प्रोक्ष्य शिशुवरं स्वाञ्चलैः समार्द्रयन्ति पुनर्दृगसलिलैः
पुनरभिसिच्य क्षरक्षीरेण वरं वत्सं लपयन्ति।।२।।
श्रपयन्ते दुरितानि जनन्यो नीलकमल इव शरद्रजन्यः
इदं रामशिशुचरितं गातुं गिरिधरमाज्ञपयन्ति।।३।।

भौमी- अब कवि हवेली पद्धति में ही भगवान शिशु राम की स्नान झाँकी का गान कर रहे हैं। माताएँ शिशुराघव को स्नान करा रही हैं। श्रीसरयू के जल से प्रभु को नहलाती हुई महारानियाँ अपने भाग्यों से देवमाताओं को भी लज्जित कर रही हैं, इसलिए कि देवमाताएँ परमेश्वर को पुत्ररूप में प्राप्त नहीं कर सकीं जबकि इन्होंने प्राप्त कर लिया। माता कैकेयी प्रभु को थोड़े-थोड़े गरम जल से नहला रही हैं। माता सुमित्रा सुगन्धित जल से श्रीराम का अभिषेक कर रही हैं और कौसल्या जी धीरे-धीरे कोमल अंगों को मल रही हैं, सभी माताएँ श्रीराम की स्नान लीला में सम्मिलित होकर अपना श्रम समाप्त कर रही हैं। धीरे-धीरे अपने आँचलों से पोंछकर पुनः अपने नेत्रजलों से स्नान कराकर पुनः अपने थन से चूते हुए दूध से अभिषेक करके श्रेष्ठ बालक श्रीराम को दुलार रही हैं। नीलकमल को सन्निधि में शरद् की उजाली रात्रियों के समान माताएँ प्रभु श्रीराम के समीप उपस्थित होकर अपने सभी संकटों को समाप्त करती हुई शिशु राघव जी के इस बालचरित्र को गाने के लिए मुझ कवि **गिरिधर** को आज्ञा दे रही हैं।

गीत संख्या-४

अलङ्कृतमलङ्कारयन्ते नृपतिसुकृतं शृङ्गारयन्ते।।
अङ्कमुपवेश्य श्रीरामं इन्द्रमणिनीरधरश्यामम्।
संस्कृतं सुसंस्कारयन्ते।।१।।
तिलकमथ दधति भालदेशे कुसुमगुच्छं कुञ्चितकेशे।
श्रुतौ कुण्डलं धारयन्ते।।२।।
कपोले कलितकृष्णविन्दुं किमुत हरिणाङ्कयन्त इन्दुम्।
दृशोः कज्जलं कारयन्ते।।३।।

पुनः परिधाप्यपीतवस्त्रं प्रणतजनखेदभङ्गकास्त्रम्।
वसनमणिगणं वारयन्ते।।४।।
अङ्कमासीनशिशुं दृष्ट्वा स्तनाभ्यां पयो भूरि सृष्ट्वा।
भवाद् गिरिधरं तारयन्ते।।५।।

भौमी- अब कवि श्रीराम के अलङ्कारों का गान कर रहे हैं–माताएँ पूर्णरूप से अलङ्कृत श्रीराम को भी सजा रही हैं, इसी व्याज से महाराज दशरथ जी के पुण्य को शृङ्गारित कर रही हैं। मरकतमणि और नीलेमेघ के समान श्यामल, वैदिक संस्कारों से संस्कृत श्रीराम को गोद में बिठाकर, माताएँ उपकरणों से सजा रही हैं। प्रभु के मस्तक पर तिलक लगा रही हैं और घुँघराले केशों में पुष्पों का गुच्छा सजा रही हैं तथा प्रभु के कानों में कुण्डल धारण करा रही हैं। प्रभु के कपोल पर माताएँ काला टिप्पा लगा रही हैं। क्या चन्द्रमा को ही माताएँ हरिण के अंक से चिह्नित कर रही हैं? माताएँ प्रभु के नेत्र में काजल लगा रही हैं। पुनः भक्तजनों के कष्ट को नष्ट करने के लिए कास्त्र अर्थात् ब्रह्मास्त्रस्वरूप पीताम्बर प्रभु को धारण कराकर प्रभु पर वस्त्र और मणिगणों को निछावर करती हैं। अपनी गोद में वे आसीन प्रभु श्रीराम को देखकर अपने स्तनों से दुग्धधारा की वर्षा करके तीनों माताएँ मुझ कवि **गिरिधर** को भी भवसागर से पार कर रही हैं।

सन्दर्भश्लोकः

दृष्ट्वा भाग्यं च राज्ञीणां राज्ञो दशरथस्य च।
रामभक्तिपरीतात्मा वीणया नारदो जगौ।।१।।

भौमी- महाराज दशरथ एवं उनकी सभी महारानियों का भाग्य देखकर श्रीरामभक्ति से परिपूर्ण अन्तःकरण से वीणा बजाते हुए श्रीनारद जी गीत गाने लगे।

गीत संख्या-५

यूयं धन्या धन्या राघवजनन्यो न काऽपि नारी युष्मत्समा।
यूयं भूरिमान्या सौभगरजन्यो न काऽपि नारी युष्मत्समा।।१।।
स्पृहयतेऽस्मै सुखायेन्द्राणी गिरा रमा सुभगा शर्वाणी
तद् वो हस्तगतं कोसलरमण्यो न काऽपि नारी युष्मत्समा।।२।।
युष्मत्क्रोडमथो आरोढुं युष्मत्वत्सलरसं च बोधुम्
वाञ्छन् भगवान्निहास्ते सुखधरण्यो न काऽपि नारी युष्मत्समा।।३।।
कोटिदुग्धसागरधृतरोमा युष्मत्पयसे ललति विभूमा
गिरिधरवन्द्यमाना दशरथगृहिण्यो न काऽपि नारी युष्मत्समा।।४।।

भौमी- महाकवि कहरवा लोकधुन में नारद के द्वारा यह गीत गवाते हैं–हे राघव जी की माताओं! आप लोग बहुत धन्य हैं, कोई नारी आपके समान नही है। हे सौन्दर्य की श्रेष्ठ रात्रिस्वरूपा रानियों! आप लोग बहुत सम्माननीय हैं। जिस सुख के लिए इन्द्राणी, सरस्वती, लक्ष्मी और सुन्दर पार्वती भी तरसती रहती हैं, वही सुख आप लोगों को हस्तगत है। हे कोसलदेश की महारानियों! आप के समान कोई नारी नहीं है। हे सुख की

जन्मभूमि राजमहिषियों! आपकी गोद में चढ़ने के लिए और आपके वत्सल रस को स्वीकार करने के लिए स्वयं भगवान यहाँ प्रतीक्षारत हैं। जिनके रोम-रोम में करोड़ों-करोड़ों क्षीरसागर विराजते हैं, ऐसे परमात्मा आपका स्तनपान करने के लिए लालायित रहते हैं। हे महाराज दशरथ की गृहलक्ष्मियों! आप **गिरिधर** कवि की भी वन्दनीय हैं।

सन्दर्भश्लोकः

मातर्व्योम्नि कएष मन्मुखरुचिस्त्वन्नामपश्चार्द्धभाग्
भो! नो नागरिपोः समानसुभगः कर्पूरको नो शिशो!।
तत्पर्यायपदेन यो मित इति ज्ञातस्ततश्चन्द्रमाः
कौसल्याप्रतिभां इमां रघुपतेर्वीक्ष्यावताद् विस्मिता।।१।।

भौमी- श्रीराम आकाश में उदित चन्द्रमा को देखकर माँ कौसल्या से पूछते हैं-माताश्री! मेरे मुख के समान कांतिवाला यह कौन है? माँ ने कहा- तुम्हारे नाम का उत्तरार्ध अर्थात् चन्द्रमा। श्रीराम ने कहा कि मेरे नाम के उत्तरार्ध में तो बहुत से शब्द आते हैं-कभी राम के साथ भद्र भी आता है, कभी सिंह भी, यह कौन है? क्या यह सिंह के समान सुन्दर है? नहीं मुझे लगता है कि यह कपूर का खण्ड है। माँ ने कहा नहीं बेटे। जिसे कपूर के पर्यायवाची से उपमित किया जाता है वह कपूर का पर्यायवाची है-चन्द्र। चन्द्रेण मीयते उपमीयते इति चन्द्रमाः। श्रीराम ने कहा-अच्छा! अच्छा! कपूर तो केवल चन्द्रमा से ही उपमित किया जाता है। मैं जान गया, यह चन्द्रमा है। श्रीराघव की इस प्रतिभा को देखकर विस्मित कौसल्या जी हम सबकी रक्षा करें।

गीत संख्या-६

शशाङ्के कुतः श्यामता जाता।
पृच्छति जननीमतिकुतूहलाद् बालस्त्रिभुवनधाता।।१।।
कृष्णमृगस्तव शरभयाद् विधुं यातो नैतन् मातः।
कपटमृगं प्रणिहन्मि नापरं तस्य विमोहः ख्यातः।।२।।
दशमुखभयाद् भुवो याता या विधुं श्यामता दृष्टा।
कथं राहुभीतोऽसौ पायान्महीमूढता स्पष्टा।।३।।
त्वमथ वीक्ष्य चन्द्रमसं निजदयिताननरूपसमानम्।
शशिनि गतः श्यामः किल दृष्टः कर्तुं तदधरपानम्।।४।।
नहि मातः पीये तवस्तनं श्रुत्वा मनुजेन्द्राणी।
सस्मितमुखी विस्मिता जाता चकिता गिरिधरवाणी।।५।।

भौमी- तीनों लोकों का भरण-पोषण करने वाले भगवान श्रीराम बाललीला करते हुए अत्यन्त कौतूहल से माता कौसल्या जी से पूछते हैं कि माताश्री! चन्द्रमा में कालिमा कहाँ से आ गई? माता कौसल्या जी ने उत्तर दिया- आपके बाण के भय से भयभीत हुआ कृष्णसार-मृग चन्द्रमा में प्रवेश कर गया है। उसी की यह श्यामता दिख रही है। श्रीराघव ने उत्तर दिया नहीं माँ-ऐसा नहीं है। मैं केवल कपटमृग को ही मारता हूँ और किसी को नहीं, क्योंकि उसका मोह प्रसिद्ध है और मृग मुझसे क्यों डरेंगे। फिर माँ ने उत्तर दिया रावण के भय

से पृथ्वी चन्द्रमा के पास चली गई। अतः पृथ्वी की श्यामता चन्द्रमा में दिख रही है। पुनः श्रीराघव ने प्रत्युत्तर दिया–माँ, चन्द्रमा स्वयं राहु से भयभीत रहता है, अतः वह पृथ्वी की रक्षा कैसे कर सकेगा? इसलिए अपनी रक्षा के लिए पृथ्वी का चन्द्रमा के पास जाने की इच्छा का क्रम पृथ्वी की बहुत बड़ी मूर्खता होगी जबकि पृथ्वी मूर्ख नहीं है। तब कौसल्या जी ने कहा कि हे राघव! चन्द्रमा आपकी दुलहिन के समान है, अतः आप इसे देखकर अपनी दुल्हन का अधरामृत पीने के लिए इसमें प्रवेश कर गए हैं, इससे आपकी श्यामता ही चन्द्रमा में दिख रही है। राघव ने कहा–नहीं–नहीं माँ, अभी तो मैं आपका केवल स्तनपान करता हूँ। अतएव अभी न कोई दुलहिन है और न ही मैंने चन्द्रमा में प्रवेश किया है। फिर चन्द्रमा में श्यामता कैसी? इस प्रकार प्रभु के वचनों से निरुत्तर होकर महारानी कौसल्या मुस्कराती हुई विस्मित हो गईं और **गिरिधर** कवि की वाणी चकित हो गई।

सन्दर्भश्लोकः

मातः कोऽयमिहाम्बरे कथय भो त्वद्भालविन्दूपमः
क्षीराब्धेर्नवनीतकं प्रदिश मे खादिष्यते साम्प्रतम्।
छीः छीः तत्र तु वर्ततेऽसितविभः किं खाद्यतां पुत्रकः
प्रक्षाल्यर्षिसुताजलेऽवतु हरिर्विस्मापयन् कैकयीम्।।१।।

भौमी– श्रीराम ने माँ कैकेयी से पूछा–माँ! आपके मस्तक की बिन्दी के समान आकार वाला यह आकाश में कौन है? मझली माँ ने कहा–बेटे! यह तो क्षीरसागर का मक्खन है। बालराघव ने कहा–माँ! इसे अभी मँगवा दीजिए, मैं अभी इसे खाऊँगा। माँ कैकेयी ने कहा–छीः छीः देख नहीं रहे हो? इसमें कुछ काला–काला लगा है। इसे क्या खाओगे? बालराघव ने कहा– इसे सरयू जल में धो लूँगा। इस प्रकार कैकेयी माँ को चकित करने वाले बालरूप भगवान श्रीराघव हम सबकी रक्षा करें।

गीत संख्या–७

जननि मह्यं चन्द्रक्रीडनकं देहि।
सङ्क्रीडिष्ये शशिना सार्धं तत्सत्वरं विधेहि।।१।।
अस्मै गगननिवासो रुचितश्त्वहमपि चाम्बरनीलः।
अयं शम्भुभूषणमहमपि तद्हृदये निवसनशीलः।।२।।
अयं श्यामचन्द्रस्त्वहमपि भुवि 'रामचन्द्र' इति ख्यातः।
बहुसाधर्म्यमावयोस्तस्मात्त्यज सन्देहं मातः।।३।।
आनय चन्द्रमसं शीघ्रं मे तत्क्लेशं शमयिष्ये।
गिरिधरप्रभुः क्रीडनं चन्द्रं हृदयनभसि रमयिष्ये।।४।।

भौमी– श्रीराम कहते हैं– हे माँ! मुझे चन्दखिलौना दे दीजिए। मैं चन्द्रमा के साथ खेलूँगा। आप शीघ्र ऐसी व्यवस्था कर दीजिए। इस चन्द्रमा को आकाशनिवास भाता है। तो मैं भी आकाश के समाननीलवर्ण हूँ। चन्द्रमा शंकर–जी का शिरोभूषण है, तो मैं भी शिव जी के हृदय में निवास करता हूँ, यह श्यामचन्द्र कहा जाता है तो मैं रामचन्द्र हूँ। हम दोनों में बहुत सादृश्य है। अतः माँ सन्देह छोड़ दीजिए। शीघ्र मेरे लिए चन्द्रखिलौना ला

दीजिए, उसके सभी क्लेशों को मैं समाप्त कर दूँगा। **गिरिधर** कवि का स्वामी मैं चन्द्र-खिलौने को अपने हृदयाकाश में रमाऊँगा।

सन्दर्भश्लोकः

क्रीडित्वा सुचिरं सुखं सदनुजैर्मित्रैः समित्रान्वया-
म्भोजानीकदिवाकरं रघुवरं श्रान्तं श्लथद्भूषणम्।
सायं चास्तमिते रवौ खगकुले नीडं गते मूकतां
रामं शाययितुं सचेष्टमनसस्तिस्त्रो जगुर्मातरः।।१।।

भौमी- अपने तीनों छोटे भाइयों और मित्रों के साथ दिनभर खेलकर थके हुए सूर्यकमल के सूर्य बिखरे हुए आभूषणों वाले बालक श्रीराम को सूर्यनारायण के अस्त हो जाने पर अपने-अपने घोंसले में चुपचाप पक्षियों के शयन कर जाने पर सायंकाल शयन कराने के लिए उपस्थित तीनों माताएँ शयन गीत गाने लगीं।

गीत संख्या-८

शयनमथ शीलय हे शिशुराम।।
सकलं दिनं क्रीडितं शिशुभिर्गृहेऽजिरे वीथीस्वभिराम
अधुना विश्रम परिकलितश्रम दत्तसमस्तभुवनविश्राम।।१।।
आयाद्रजनी निद्राजननी शेते खगकुलमपि निर्दाम।
त्वमपि न शेषे शयितेऽशेषे शेषसहस्त्रकथितगुणग्राम।।२।।
कुटिलामुखं लम्बिता केशा भूषणमपि शिथिलं सुखधाम।
निमिषं निमिषति निमिषमुन्मिषति नयनपक्ष्म तव हे घनश्याम।।३।।
त्वमथ शेष्व गायेयं गीतं राम कामरिपुपूरितकाम।
प्रातः पुनर्गिरिधरो लब्धा तव पदाब्जसुरजः श्रीराम।।४।।

भौमी- हे शिशु राघव! अब शयन स्वीकार कीजिए। क्योंकि आप सम्पूर्ण दिन घर में, आँगन में और अवध की गलियों में बालमित्रों के साथ खेलकर थक गए हैं। हे सुन्दर हे सारे संसार को विश्राम देने वाले और भक्तों के कष्ट स्वयं ले लेने वाले बाल राघव! अब विश्राम कीजिए। निद्रा की माँ रात आ गई। बंधनमुक्त पक्षीगण भी सो रहे हैं। सहस्त्रों शेष जिनका गुणगान गाते हैं, ऐसे हे रामभद्र! सबके सो जाने पर भी आप नहीं सो रहे हैं। हे सुखों के भवन! हे घनश्याम श्रीराम! घुँघराले केश आपके मुख पर लटक रहे हैं। आपके आभूषण बिखर रहे हैं। आपकी पलकें क्षण में खुलती हैं, क्षण में मुँद जाती हैं। अब आप सो जाइए, मैं भी शयन गीत गाऊँ। हे शंकर जी की इच्छा को पूर्ण करने वाले श्रीराम! पुनः कल प्रातः **गिरिधर** कवि भी आपके श्रीचरण कमल का पराग प्राप्त करेगा।

गीत संख्या-९

त्वं शेष्वाऽहं गायेयं तव विधुवदनं ध्यायेयम्।।
सुत पश्य शर्वरी माता निद्रासम्मुखमायाता।

सान्ध्ये त्वां सन्ध्यायेयं तव विधुवदनं ध्यायेयम् ।।१।।
चन्द्रमास्समुदितो भातः मृदु वाति मलयवरवातः।
तव चरितं निध्यायेयम् तव विधुवदनं ध्यायेयम् ।।२।।
तव मुखमभिलषति प्रमीला सुखमपि वितरति शिशुलीला।
गिरिधरगिरमनुध्यायेयं तव विधुवदनं ध्यायेयम् ।।३।।

भौमी- माँ कौसल्या कहती हैं-हे वत्स राघव! आप सो जायँ, मैं गीत गाऊँ और आपके चन्द्रमुख का ध्यान करूँ। हे पुत्र! देखो रात्रिमाता भी निद्रा के निकट आ गई हैं। आप सो जाइए। इस सांध्यवेला में मैं आपका सम्यक् ध्यान कर लूँ। देखिए, इस समय पूर्व उदित हुए चन्द्रमा शोभित हो रहे हैं और मन्द-मन्द मलय वायु भी चल रहा है। आप शयन करें। मैं आपके चरित्र का बार-बार अभ्यास करूँ। हे राघव! आपके मुख पर प्रमिला अर्थात् (जमुहाई) सुशोभित हो रही है और आपकी बाललीला सभी को सुख का वितरण कर रही है, मैं कवि **गिरिधर** की वाणी का अनुशीलन कर लूँ। आप शयन करें, मैं आपको शयनगीत सुनाऊँ और आपके श्रीचन्द्रमुख का ध्यान कर लूँ।

विशेष- इस प्रकार के ढाल को लोरी गीत कहते हैं। इसके बोल इस प्रकार हैं-

''तुम सो जाओ मैं गाऊँ तुम्हे निरख-निरख सुख पाऊँ।।''

गीत संख्या-१०

शेतां शेतां कुमारो राघवः।
मम प्राणाधारो राघवः शेतां शेताम्।।१।।
हे दिनकरवंशविभूषण जितदूषण दूषणदूषण
खलकमलतुषारो राघवः शेतां शेताम्।।२।।
कमलिनी वियुक्ता पत्या कुमुदिनी सभर्ता गत्या
हृतभूतलभारो राघवः शेतां शेताम्।।३।।
अनुनयते त्वामथ निद्रा अभिनयते वदने तन्द्रा
सुखमङ्गलसारो राघवः शेतां शेताम्।।४।।
मा वार्तां कुरु दनुजारे अङ्गीकुरु शयनमघारे
हृतगिरिधरकारो राघवः शेतां शेताम्।।५।।

भौमी-माँ कौसल्या लोरी के ढाल के गीत गा रही हैं। हे मेरे प्राणाधार! रघुकुल में प्रकट सम्पूर्ण जीवों के हितैषी कुमार राघव! आप शयन करें, शयन करें। हे सूर्यकुल के आभूषण दूषण नामक राक्षस को जीतने वाले दोषों को भी नष्ट करने वाले प्रभु! आप राक्षस रूप कमलों को नष्ट करने के लिए हिमपात के समान हैं। आप शयन कर लीजिए। कमलिनी अपने पति सूर्य से विछुड़ गई है और कुमुदिनी सौभाग्य प्राप्ति के कारण चन्द्रमा से युक्त हो गई है और आप संसार का भार हरने वाले हैं, अतः शयन कर लीजिए। देखिये, निद्रा आपका अनुनय कर रही है और तन्द्रा आपके मुख पर अभिनय कर रही है और आप सुखों और मंगलों के सारभूत वस्तु हैं, आप

शयन कर लीजिए। हे दैत्यों के शत्रु! अब वार्तालाप मत कीजिए, हे पाप नाशक! अब शयन स्वीकार कर लो। हे भगवान! आप कवि **गिरिधर** की भी यमकारा को नष्ट करने वाले हैं। आप शयन करिये।

सन्दर्भश्लोकः

तल्पे शयानं किल तज्जनन्यो
निशीथराजीवसमानवक्त्रम् ।
रामं रमालालितपादपद्मं
सम्बोधयन्त्यः प्रजगुः प्रभाते।।१।।

भौमी– इस प्रकार मध्य रात्रि के कमल के समान मुखवाले लक्ष्मी द्वारा जिनके चरणकमल का लालन किया गया है, ऐसे तल्प पर शयन कर रहे शिशु–श्रीराम को सम्बोधित करती हुई, प्रातःकाल उनकी माताएँ गाने लगीं।

गीत संख्या–११

जागृहि जगन्निवास राघव शशिकिरणहास।
माता प्राह पुनः पुनः पुत्र पश्य प्रातः।।१।।
शाश्वतसुषमासमुद्र रामभद्र रामचन्द्र।
शेषशारदे त्वदीयगुणान् मनसि प्रातः।।२।।
गता सती शर्वरी प्रदाय त्वन्मुखाय रुचिम्।
खण्डिकामिवेन्दुः कुमुदिनीं वियोज्य यातः।।३।।
चकति चारुचक्रवाकी रौति चकोरी वराकी।
संङ्कुचितः कुमुदगणोऽप्युडुगणो न भातः।।४।।
खगा कलरवं रुवन्ति योगिनो मुनयः स्तुवन्ति।
सन्तस्त्वां नुवन्ति येषां त्वमसि पारिजातः।।५।।
विकसति कमलं तटागे प्रसृतपद्मिनीपरागे।
नटति सारघञ्च पायं पायमलिव्रातः।।६।।
गुञ्जति रोलम्बवृन्दं पिकः कूजति स्वच्छन्दम्।
शीतलसुगन्धमन्दं वाति मलयवातः।।७।।
सरसः सरयूप्रवाहः विप्रसज्जनावगाहः।
तरलमहोत्साहो भाति मौक्तिकावदातः।।८।।
उदयति तव वंशकरो दीप्यमानो दिवाकरः।
प्राच्यां दिशि निखिललोके महोत्सवो रातः।।९।।
उन्मीलय नयनकञ्जं सफलय जनपुण्यपुञ्जम्।
गिरिधरं विलोकय कृपादृष्ट्या विश्वधातः।।१०।।

भौमी- अब भैरव राग में माँ गीत प्रस्तुत करती हैं। हे जगन्निवास! हे चन्द्रमा की किरण के समान हास वाले राघव आप जग जायें। माँ कौसल्या बार-बार कह रही हैं, हे पुत्र! यह प्रातःकाल देखो। हे नित्य परम शोभा के सागर रामभद्र-रामचन्द्र! शेष और सरस्वती भी आपके गुणों को अपने मन में भर रहे हैं। राघव आप के मुख को अपनी शोभा देकर साध्वी रात्रि चन्द्रमा के साथ चली गई और चन्द्रमा भी खण्डिका अर्थात् उपनायिका की भाँति कुमुदिनी को वियुक्त करके चले जा चुके हैं। इस समय चकई बहुत प्रसन्न हो रही है। बिचारी चकोरी रो रही है। कुमुदगण संकुचित हो गये है, और तारागण भी नहीं चमक रहे हैं। पक्षी सुन्दर स्वर में बोल रहे हैं। योगीजन और मुनि आपकी स्तुति कर रहे हैं। आप जिनके कल्प वृक्ष हैं, ऐसे सन्त आपको प्रणाम कर रहे हैं। पद्मिनी की पराग से व्याप्त सरोवर में कमल खिल रहा है और कमल का मकरन्द पी-पीकर भ्रमर समूह मत्त होकर नाच रहा है। भौंरों का समूह गुंजार कर रहा है, कोयल स्वच्छन्दता से कुहू कुहू बोल रही है और शीतल-मन्द-सुगन्ध-मलय वायु बह रहा है। ब्राह्मण और श्रीवैष्णवों के स्नान का स्थानरूप सरयू का प्रवाह तरंगों के उत्साह से युक्त होकर मुक्तामणि के समान स्वच्छ तथा बहुत सुन्दर लग रहा है। हे राघव! देखिये, आपके वंश के प्रवर्तक सूर्यनारायण प्रकाशित होते हुए पूर्व दिशा में उदित हो रहे हैं और सम्पूर्ण लोकों में उन्होंने महोत्सव प्रदान कर दिया है। हे विश्व के पालनकर्त्ता बालरूप राघव! आप कमल नेत्र खोलिये, भक्तों का पुण्य सफल कीजिए और अपनी कृपादृष्टि से **गिरिधर** कवि को निहारिये।

गीत संख्या-१२

तात जातं प्रभातं परमपावनं
जातु जागृहि जनानन्दकारिन्।।१।।
राम राजीवलोचन कृपावारिधे
दर्शनं देहि भवभयप्रहारिन्।।२।।
प्राक् च भानूदयात् सारथिश्चाऽरुणो-
ऽनाशयद् ध्वान्तमानन्दकारिन्।।३।।
यथा त्वत्तः पुरा लक्ष्मणो हन्ति वै
शात्रवान् शत्रुसङ्कटविदारिन्।।४।।
विकसिते सरसिजे नटति मधुकरकरो
मोदयन्नो मनो नर्महारिन्।।५।।
यथा मेचककचास्त्वन्मुखाम्भोरुहे
लम्बमानामहेष्वासधारिन् ।।६।।
झटिति जागृहि प्रभो तल्पमुज्झाशुभो
भक्तकादम्बकाननविचारिन् ।।७।।
मातापितृपरिकरं सुखय कविगिरिधरं
राम हे दशरथाजिरविहारिन्।।८।।

भौमी-माँ कौसल्या कहती हैं, हे भक्तों के आनन्दकारी प्यारे राघव! परम पवित्र प्रातःकाल हो गया है, अब आप जग जाइये। हे राजीव लोचन कृपासागर श्रीराम! हे भवभय को नष्ट करने वाले प्रभु! आप दर्शन

दीजिए। हे आनन्द के जन्मदाता! हे शत्रुसमूह को विदीर्ण करने वाले शिशुराघव! सूर्योदय के पहले ही सूर्यनारायण के सारथी अरुण ने अन्धकार नष्ट कर दिया है, जैसे आपके पूर्व ही लक्ष्मण जी शत्रुओं को नष्ट कर देंगे। हे संसार के वासना विलास हरने वाले, विशाल धनुष धारण करने वाले राघव! कमल के विकसित होने पर हमारे मन को आनन्दित करता हुआ भ्रमरों का समूह कमल पर उसी प्रकार मँडरा कर नाच रहा है, जैसे आपके काले घुँघराले बाल आप के मुखकमल पर लटकते रहते हैं। हे भक्तसमूहरूप वन में विचरण करने वाले दशरथ जी के आँगन में विहार करने वाले प्रभु श्रीराम! आप शीघ्र जाग जाइये। अपना शयन शीघ्र छोड़ दीजिये, अपने माता-पिताश्री सेवकवर्ग एवं कवि **गिरिधर** को भी सुखी कर दीजिए।

गीत संख्या-१३

प्रातरभूज्जागृहि रघुनन्दन प्रणतपाल जनमानसचन्दन।
याता रजनी समभूत्प्रातः वाति मञ्जुमृदुमलयजवातः।।१।।
ताम्रचूडमुखरः सुखकारी गुञ्जति मधुपो वनजविहारी।
तातस्त्वां प्रतीक्षते द्वारे जागृहि जागृहि शीघ्रमघारे।।२।।
चल निमज्ज परिधापय वसनं विहस निदर्शय लघुलघुदशनम्।
प्रातराशमपि सपदि विधेयं गिरिधरकवये जुष्टं देयम्।।३।।

भौमी- हे प्रणतपाल! हे भक्तों के मन को शीतल करने वाले रघुनन्दन, प्रातःकाल हो गया, आप जग जाइये। देखिये, रात चली गई, प्रातःकाल हो गया और मलयाचल से आया हुआ वायु धीरे-धीरे चल रहा है। देखिये, मुर्गे का स्वर अत्यन्त सुखकर हो रहा है और कमलवन में विहार करने वाला भ्रमर गुंजन कर रहा है। आपके पिताश्री आपके दर्शनों की प्रतीक्षा कर रहे हैं। हे पापहारी श्रीहरे! आप शीघ्र जग जाइये-जग जाइये। चलो स्नान करो, वस्त्र धारण कराओ, मुस्कुराओ और अपनी छोटी-छोटी दँतुलियों को दिखाओ। शीघ्र कुछ प्रातराश अर्थात् दूध पियो, और **गिरिधर** कवि को थोड़ा-सा जूठन दे दो।

गीत संख्या-१४

राघवस्य भाले लसति तिलको विलसति तिलको
दृष्ट्वा लालायते नयनम्।।
अरुन्धत्या कमलकरेण रुचिरचितः।
शुभाशिषां राशिरिव नैपुणेन निचितः।।
त्रिसन्ध्यमिवाग्नीरुल्लसति तिलको विलसति तिलकः।।१।।
दशरथपुण्यमिव मस्तके शुविहितम्।
श्रुतिसुनिधानमिव निटिले विनिहितम्।।
नीलधनवेणीं विहसति तिलको विलसति तिलका:।।२।।
कुटिलालकानां लम्बितानां भालदेशे।
नीलपयसामिवार्कपुत्रीप्रदेशे ।।
कवियुगकुजं विरसति तिलको विलसति तिलकः।।३।।

श्वेतरेखाद्वयमध्येऽरुणरेखा राजते।
गङ्गाद्विप्रवाहमध्ये सरस्वती भ्राजते।।
गिरिधरहृदि निवसति तिलको विलसति तिलकः।।४।।

भौमी– राघव जी के मस्तक पर तिलक अत्यन्त सुशोभित हो रहा है। उसे देखकर पुनर्दर्शनों के लिए नेत्र लालायित हो रहे हैं। अरुन्धती जी द्वारा अपने करकमल से यह रुचिपूर्वक मस्तक पर लगाया गया है, मानों यह सुन्दर आशीर्वाद को राशि के रूप में कुशलता से मस्तक पर स्थापित किया गया है। यह तीनों संध्याओं में किया जाता हुआ अग्नि के समान सुशोभित हो रहा है। इसे देखकर नेत्र लालायित हो रहे हैं। महाराज दशरथ का पुण्य ही मानो मस्तक पर विराज रहा है किंवा वेदों का मंगलमय विधान ही प्रभु के भाल पर शोभा पा रहा है नीले बादल के बीच संभावित त्रिवेणी की भी हँसी उड़ा रहा है, ऐसे सुन्दर-तिलक को देखकर नेत्र लालायित हो रहे हैं। कालिन्दी के तट पर नीले जलों की भाँति लटके हुये घुँघराले बालों के बीच मस्तक पर विराजमान यह तिलक दो शुक्राचार्य और मंगल को भी रसहीन बना रहा है। तात्पर्य यह है कि शुक्र का रंग श्वेत होता है और मंगल का लाल, यहाँ ऊर्ध्वपुण्ड्र की दो श्वेत-रेखाओं की उपमा दो शुक्र से तथा लाल श्री की उपमा मंगल से दी गई है। दो श्वेत रेखाओं के बीच में एक लालरेखा उसी प्रकार सुशोभित हो रही है, जैसे गंगा जी के दो प्रवाहों के बीच सरस्वती जी विराजमान हो, कवि **गिरिधर** के हृदय में भी प्रभु की यह तिलक झाँकी विराज रही है। इसे देखकर नेत्र लालायित हो रहे हैं।

विशेष– यह गीत पूर्वांचल की एक लोकधुन के आधार पर निबद्ध है, जिसके बोल हैं–

राघव जी के भाल पर तिलक झलके
देखि ललचे नयनवा।

गीत संख्या-१५

अद्य क्रीडनाय राघवेण सखि गम्यते।
चराचरं जीवकुलं रामेणाद्य रम्यते।।
करधृतललितललितशरधनुषा ।
कौसल्याजठरपुण्यपयोनिधिजनुषा ।।
अगजगदिदं चरितेन परिरम्यते।।१।।
अग्रे रामचन्द्रो याति पृष्ठे याति लक्ष्मणः।
भरतञ्च शत्रुघ्नोऽनुगच्छति विचक्षणः।।
द्वीन्दीवरं पुण्डरीकद्वयेनानुगम्यते।।२।।
अहोभाग्यमहोभाग्यमयोध्यानिवासिनाम् ।
नैतत् समं भाग्यं सखि सुरपुरवासिनाम्।।
यैरयं लोकाभिरामो रामस्तु प्रणम्यते।।३।।
बालक्रीडाभिरनुजसुहृदश्च रञ्जयन्।

शरणागतानां सखि भवभयं भञ्जयन्।।
अनेनैव योगीजनमनोऽपि नियम्यते।।४।।
वर्षं वर्षं सुमनांसि मोदन्ते सुमनसः।
विशीदन्ति रावणाद्या रिपवो विमनसः।।
राघवेण गिरिधरविषादोऽपि विरम्यते।।५।।

भौमी- एक सखी दूसरी सखी से कह रही है—हे सखी! आज श्रीराम खेलने के लिए बाहर पधार रहे हैं। सम्पूर्ण जड़-चेतनात्मक जीवकुल को आज श्रीराम रमा रहे हैं। अपने करकमल में छोटे-छोटे धनुष-बाण धारण किये हुये कौसल्या जी के गर्भ रूप पवित्र क्षीरसागर से उत्पन्न चन्द्रमा श्रीराम के द्वारा सम्पूर्ण जड़-चेतनात्मक लोक अपने चरित्रों से आनन्दित किया जा रहा है। आगे-आगे श्रीराम चल रहे हैं, उनके पीछे-पीछे श्रीलक्ष्मण; इसी प्रकार कुशल शत्रुघ्नलाल, भरत जी के पीछे-पीछे जा रहे हैं। आज दो श्वेतकमल दो नीलकमलों का मानों अनुसरण कर रहे हैं। अयोध्यावासियों का अहोभाग्य है, अहोभाग्य है। हे सखी! इनके समान सौभाग्य देवलोक वासियों का भी नहीं है, जिनके द्वारा लोकाभिराम श्रीराम को प्रणाम किया जा रहा है। हे सखी! बाल क्रीड़ाओं के द्वारा श्रीराम छोटे भाइयों और मित्रों को आनन्द दे रहे हैं और शरणागतों के भवभय को भी नष्ट कर रहे हैं। इन्हीं के द्वारा योगीजनों का मन भी नियंत्रित किया जा रहा है। पुष्पों की वर्षा कर करके देवता प्रसन्न हो रहे हैं और रावण आदि विकृत मन वाले शत्रु आज दुःखी हो रहे हैं। श्रीराम के द्वारा कवि **गिरिधर** का विषाद भी समाप्त किया जा रहा है।

विशेष- यह गीत गुजराती रास '**गरबे**' की ढाल पर निबद्ध किया गया है।

गीत संख्या-१६

मामकीनं मनोऽचूचुरस्त्वं बालमन्दस्मितैर्हे खरारे।
सर्वमायाविनोऽदूदुरस्त्वं दीनरक्षाव्रतैः दूषणारे।।१।।
जानुपद्भ्यां चलंश्चारु किलकन् भव्यभारतमिदं भाले तिलकन्।
राशिरिङ्गन् क्वणन्नूपुरस्त्वं स्वेभ्य आनन्दमर्चन् मुरारे।।२।।
क्वापि धावन् स्खलन् क्वापि गच्छन् क्वापि काकाय जुष्टं प्रयच्छन्।
सन्नियच्छन् मनः क्वापि नृणां भासि कामारि करिवर्यवारे।।३।।
क्वापि वालार्कवासो विविभृत् क्वापि प्रतिबिम्बतश्चापि विभ्यत्
मोदकं लक्ष्मणायार्पयिष्यन् दासि विपदं सतामर्दितारे।।४।।
नेति नेतीति यं वेद वेदो यं जगादागमोऽपास्तखेदः।
सैव सङ्क्रीडमानोऽविमानो राम राराज्यसे राजद्वारे।।५।।
सम्मुखं शीघ्रमायाहि राघव मा गमो मत्तो दूरं दयार्णव।
सत्वरं शं विदध्या धनुर्धर सीदतो गिरिधरस्याप्यघारे।।६।।

भौमी- हे खरनामक राक्षस के शत्रु प्रभुराम! आपने बालोचित मन्द मुस्कान से मेरे चित्त को चुरा लिया। हे दूषण के नाशक श्रीराघव! आपने अपनी दीनरक्षाव्रतों से सभी मायावियों को दूर कर दिया। हे मुरदैत्य के

शत्रु प्रभु! आप घुटनों से चलते हुए किलकारी करते हुए भव्य भारत को ही अपनी मस्तक का तिलक बनाते हुए, रेंगते हुए, चरण में नूपुर बजाते हुए, संतों का सम्मान करते हुए, आप अपनों को दिव्य आनन्द प्रदान कर रहे हैं। हे शिवरूप श्रेष्ठहाथी के बन्धन स्वरूप प्रभो! कहीं दौड़ते हुए, कहीं लड़खड़ाते हुए, कहीं जाते हुए, कहीं भुशुण्डी जी को जूठन खिलाते हुए, कहीं प्राणियों के मन को विषयों से नियंत्रित करते हुए सुशोभित होते हैं। हे शत्रुओं के नाशक! कहीं तो बालसूर्य के समान पीत वस्त्र को धारण करते हुए, कहीं अपने प्रतिबिम्ब से भी डरते हुए और लक्ष्मण जी को लड्डू प्रसाद देते हुए आप सन्तों के विपत्ति-वन को काट डालते हैं। जिनको वेद नेति-नेति कहकर जानते हैं और आगम ने भी खेद से रहित होकर जिन्हें गाया, वही आप श्रीराम मानरहित होकर अपने बालमित्रों के साथ खेलते हुए महाराज दशरथ के द्वार पर सुशोभित हो रहे हैं। हे पापहारी श्रीहरि! मेरे सम्मुख शीघ्र आइए। हे दया के सागर! मुझसे दूर मत जाइए। हे धनुर्धर! कष्ट से व्याकुल इस कवि **गिरिधर** का भी शीघ्र कल्याण कीजिए।

गीत संख्या-१७

कविर्गायति-

राघवो जननीसन्निधौ जीमति।
यथा निखिलमाधुरीसुधामपि जलदः शशिनि ससीमति।।१।।
किञ्चित् किञ्चित्क्षिपतेऽन्नं भुवि दृष्ट्वेदं प्रतिभाति।
अवनिविलीनां दयितां किञ्चिद् भोक्तुं कणिकां राति।।२।।
आव आव कथयन् भुशुण्डिनं भोक्तुं चामन्त्रयते।
किमुत नीरदः पुंस्कोकिलमिह सम्प्रति सम्मन्त्रयते।।३।।
लघुलघुकवलं मुखे दधाना सङ्खादयते माता।
तस्याः समं सुकृतमिह पुरतो निष्पादयति विधाता।।४।।
कपटबालवेषस्त्रिपुरारिः क्षणमपि नो विरहयते।
तस्यै राघवशिशुमुखपृषते कविगिरिधरः स्पृहयते।।५।।

भौमी-अब कवि स्वयं हवेली पद्धति में राघव जी का जेवनार गा रहे हैं-आज श्रीराघव माँ के सान्निध्य में जीम रहे हैं, अर्थात् भोजन कर रहे हैं, मानों नीला बादल ही संपूर्ण माधुरी से युक्त अमृत को ही चन्द्रमा में ले जाकर सीमाबद्ध कर रहा है। प्रभु कुछ-कुछ कण पृथिवी पर गिरा दे रहे हैं, यह दृश्य देखकर ऐसा लग रहा है, मानों पृथिवी में छिपी हुई अपनी प्राणबल्लभा सीता जी को ही कुछ खाने के लिए समर्पित कर रहे हैं। 'आवा-आवा', इस प्रकार कहकर प्रभु भुशुण्डी जी को अपने आप भोजन करने के लिए आमंत्रित कर रहे हैं, क्या कहीं बादल, पुरुष, कोयल को ही तो नहीं बुला रहा है? छोटे-छोटे कवल मुख में देती हुई माँ कौसल्या प्रभु को भोजन करा रही हैं और भगवान ब्रह्मा जी कौसल्या जी के संपूर्ण सुकृत का निष्पादन कर रहे हैं। भगवान शिव भी कपटमय बाल-वेश बनाये हुए एक भी क्षण रामलला को नहीं छोड़ते, इस प्रकार राघव जी के मुखचन्द्र की एक बूँद के लिए **गिरिधर** कवि स्पृहा कर रहा है।

गीत संख्या-१८

लक्ष्मणः प्राह-

हे रघुनाथ खेलितुं चल चल।।
तरुणतमालसमानमनोहरदेहविभाव्रीडितयमुनाजल।
परमानन्दसान्द्रनवनीरद कृपावारिकरतुष्टकृषीवल।।१।।
शरदमलेन्दुसमानशुभानन नयनविजितनन्दनवनशतदल।
दशनकान्तिकमनीयकुन्दरुचि करिकरसमभुजदण्डमहाबल।।२।।
कलकपोतवरकण्ठतुलसिकामहितवत्स श्रीवत्ससुसम्बल।
नासाशुकपिकवचनमनोरमसुधाशमितशतकोटिहलाहल।।३।।
धृतलघुलघुतूणीरचापशर तपनप्रतापत्रितापमहानल।
अस्माभिः सह गच्छ खेलितुं हे रघुवर गिरिधरलोचनफल।।४।।

भौमी–अब श्रीलक्ष्मण भगवान राम से कहते हैं–हे रघुनाथ जी! अब, खेलने के लिए चलिए। नवीन तमाल के समान मनोहर देह की कान्ति से यमुना जल को लज्जित करने वाले, परमानन्दरूप घने बादल, कृपारूप जल से साधकरूप किसानों को प्रसन्न करने वाले प्रभु! अब खेलने के लिए पधारिए। शरद् कालीन चन्द्रमा के समान सुन्दर मुखवाले, नेत्र की कान्ति से नन्दनवन के कमल को भी जीतने वाले, दाँत की कान्ति से कुंद की शोभा को भी सुन्दर बनाने वाले, हाथी की शुंड के समान भुजदण्ड वाले, महाबली प्रभु! आप खेलने के लिए पधारें। सुन्दर कपोत के समान कंठ, तुलसीमाला से सुशोभित वक्षस्थल, श्रीवत्सलांछन के आधार, तोते के समान नासिका, कोयल के समान सुन्दर वाणी की सुधा से करोड़ों विषों को शान्त करने वाले प्रभु! आप खेलने के लिए पधारें। छोटे-छोटे तरकस धनुष-बाण धारण करने वाले, सूर्य के समान प्रतापी, तीनों तापों को भी भस्म करने के लिए अग्निस्वरूप, **गिरिधर** कवि के नेत्रों के फल हे रघुश्रेष्ठ श्रीराघव! हमारे साथ खेलने पधारिए।

सन्दर्भश्लोकः

गच्छन्तं सानुजं रामं नियच्छन्तं सतां मनः।
प्रयच्छन्तं सुखं स्वेभ्योऽवोचत् कैकयवंशजा।।१।।

भौमी–सन्तों का मन नियंत्रित करते हुए आत्मीय जनों को सुख देते हुए छोटे भ्राताओं के सहित राजभवन से क्रीड़ार्थ जाते हुए श्रीराम को निहारकर कैकेय-वंश में उत्पन्न रूपमालिनी कैकेयी माँ बोलीं।

गीत संख्या-१९

क्रीडितुं भ्रातृमित्रैश्च साकं मा विदूरं गमो रामलालन।
ब्रीडितुं सिंहशावांश्च राघव मास्तु भूरिश्रमो रामलालन।।१।।
साम्प्रतं नो कृतः प्रातराशो मा स्म भून्मातृवर्गो निराशः।
जीम पूर्णामृताकरसमानन मास्तु ते विभ्रमो रामलालन।।२।।

पश्य भानु:प्रखरतां प्रयातो म्लास्यसे त्वं वपुर्वारिजातः।
श्रीचरणशरणगतपारिजातो वल्गुवाचं यमो रामलालन।।३।।
एहि राघव कुरु स्तन्यपानं गोपयाम्यञ्चले त्वां निधानम् ।
त्वं सतां प्रेमपात्रं निपानं स्वस्ति ते विश्रमो रामलालन।।४।।
सोढुमर्हः कथं घर्मचण्डं कोमलाङ्गो रवेर्वै प्रचण्डम्।
जीव राजीवलोचन चिरं वै सुकविगिरिधररमो रामलालन।।५।।

भौमी- माँ कैकेई कहने लगीं- हे रामलालन! अपने बालमित्रों और भ्राताओं के साथ खेलने के लिए दूर मत जाओ। सिंहशावकों को लज्जित करने के लिए आप अधिक श्रम न करें क्योंकि वह तो आपके लिए स्वाभाविक है। इस समय आपने प्रातः का जलपान नहीं किया। मातृवर्ग निराश न हों। हे पूर्ण चन्द्रमा के समान प्रभु! आप कुछ जलपान ले लें। आपको किसी प्रकार का उतावलापन नहीं करना चाहिए। हे नियत मधुरवाणी के धनी रामलालन जी! आप शरणागतों के लिए पारिजात स्वरूप हैं। आपका शरीर कमल के समान सुकुमार है। इधर सूर्यनारायण भी प्रखर हो चुके हैं। आप कहीं कुम्भला न जायँ। मझली माँ कहने लगीं- आओ राघव! दुद्धू पी लो। महाराज के धनस्वरूप तुम्हें मैं आँचल में छिपा लूँ। तुम सन्तों के प्रेमपात्र और निपान अर्थात् जलाशय हो। हे राघव! आपका कल्याण हो और आप मेरी गोद में विश्राम करें। अहो! रामलालन, आपके अंग बड़े कोमल हैं। आप सूर्यनारायण की प्रचंड धूप कैसे सह सकेंगे? हे राजीवलोचन, श्रीराम! आप सुकवि **गिरिधर** को रमाते हुए अनन्तकालपर्यन्त जीवित रहें।

गीत संख्या-२०

शिशुभिः क्रीडति बालमुकुन्दः।
सखिभिः सुभगैरनुजैः साकं पूर्णः परमानन्दः।।१।।
कर्हिचिदाप्तकन्दुकैः क्रीडन् रमयति परिकरलोकम्।
कर्हिचिदपिक्रीडने शक्तः कुरुते जगद्विशोकम्।।२।।
धावति क्वापि धावयन् भ्रातॄन् तनुते शैशवलीलाम्।
हसन् हासयन् सरयूतीरे त्रिभुवनमङ्गलशीलाम्।।३।।
अपराजितोऽप्यहो विजितः सन् भरतविजयमभिनन्दन्।
सदा विलोचनपथे विहरतात् गिरिधरहृदयं चन्दन्।।४।।

भौमी-बाल मुकुन्द श्रीराम बालकों के साथ खेल रहे हैं। पूर्ण, परमानन्दस्वरूप होते हुए भी प्रभु श्रीराम मित्रों एवं सुन्दर भ्राताओं के साथ बाल-केलि कर रहे हैं। कभी प्राप्त गेंद के साथ खेलते हुए अपने सेवकों को रमाते हैं तो कभी अन्य क्रीड़ाओं में तन्मय होकर, संसार को शोकरहित करते हैं। कभी दौड़ते हैं तो कभी अपने भाइयों को दौड़ाते हुए हँसते-हँसाते हुए प्रभु श्रीराम सरयू के तट पर तीनों लोकों को मंगल देने वाली बाललीला करते हैं। स्वयं अपराजित होकर भी, खेल में भरत जी से पराजित होकर उनकी विजय का अभिनन्दन करते हैं। इस प्रकार **गिरिधर** कवि के हृदय को शीतल करते हुए बालरूप राघव मेरे नेत्रपथ पर निरंतर विहार करते रहें।

सन्दर्भश्लोकः

कदा मित्रैः साकं भरतमहितं लक्ष्मणनुतम्
हसन्तं श्रीरामं द्रुहिणसुतपुत्रीवरतटे।
लसन्तं खेलन्तं धृतविशिखचापं घननिभम्
करिष्येऽहं बालं नयनपथगं ब्रह्मसगुणम्।।१।।

भौमी–अब कवि अपना मनोरथ प्रस्तुत कर रहे हैं। अहो! ब्रह्मा के पुत्र वसिष्ठ जी की पुत्री सरयू जी के तट पर मित्रों के साथ खेलते हुए भरत जी द्वारा पूजित, लक्ष्मण जी द्वारा प्रणत, नीलमेघ के समान सुन्दर धनुष बाण धारण किए हुए दिव्य शोभा से युक्त खेलते हुए, प्रसन्न सगुण–साकार परब्रह्म स्वरूप, बालक श्रीराम को मैं अपने नेत्रों का विषय कब बनाऊँगा?

गीत संख्या–२१

आरामे रमते रामः सह सुहृदनुजैः श्रीरामः।
आत्माराम इवैष निर्गुणं सगुणं ब्रह्मवपुर्धामः।।१।।
पश्य पश्य धावति शिशुमध्ये सतां सदैव दृगभिरामः।
क्रीडति कलं कन्दुकैः कामं कामवैरिवर्धितकामः।।२।।
रघुकुलपद्मपतङ्गः पद्भ्यां क्षिपति पतङ्गमविश्रामः।
मन्ये जीवमीशमानिनमिह जनदिशि हिनोत्यवितकामः।।३।।
हसति हासयति चलति चालयति परमानन्दघनश्यामः।
नन्दति नन्दयते सुहृदः खलु भक्तकल्पविटपारामः।।४।।
अभिनन्द्यते सुरैः सुमवृष्ट्या चक्रवर्तिमखपरिणामः।
जयजयेति किन्नरैर्गीयिते गिरिधरगीतगुणग्रामः।।५।।

भौमी–कैकेयी जी कहती हैं– मित्रों और भ्राताओं के साथ श्री जी को भी रमाने वाले मेरे राम बगीचे में आनन्द के साथ खेल रहे हैं। देखो सखियों! आत्माराम होकर भी निर्गुण होकर भी सगुण साकार, परम तेजस्वी, सज्जनों के नेत्रों को सदैव आनन्द देने वाले, ये राघव बालकों के बीच दौड़ रहे हैं। देखो सखि! काम के शत्रु शिव जी के भी मन में अपने दर्शनों की कामना बढ़ाने वाले रघुकुल कमल के सूर्य श्रीराम गेंद खेल रहे हैं और बिना किसी भ्रम के चरणों से गेंद को फेंकते हैं, (इसी क्रीड़ा को आज फुटबाल कहते हैं)। मैं ऐसा मानती हूँ कि पाद–कन्दुक क्रीड़ा के ब्याज से अपने को ईश्वर मानने वाले जीव को ही भगवान दिशा–दिशा में झटकाते रहते हैं और उनकी इच्छाओं को भी नष्ट करते रहते हैं, अर्थात् कभी पूर्ण नहीं करते। परमानन्दमय बादल के समान श्यामल, अपने भक्तों के लिए कल्पवृक्षस्वरूप श्रीराम हँसते हैं, हँसाते हैं। चलते हैं, मित्रों को अपने पास बुलाते हैं, स्वयं प्रसन्न होते हैं और मित्रों को भी प्रसन्न करते हैं। महाराज दशरथ के यज्ञ के शुभ फलस्वरूप प्रभु! पुष्पवृष्टि के द्वारा देवताओं द्वारा अभिनन्दित हो रहे हैं। **गिरिधर** कवि के द्वारा जिनका गुणगान गाया गया, ऐसे प्रभु श्रीराम जय–जयकार के साथ किन्नरों द्वारा भी गाए जा रहे हैं।

सन्दर्भश्लोकः

आरामे रममाणं तं रामं राजीवलोचनम्।
सहानुजं हरिं दृष्ट्वा काचित् सीमन्तिनी जगौ।।१।।

भौमी- छोटे भाइयों के साथ उद्यान में आनंदपूर्वक खेलते हुए राजीवलोचन परमेश्वर श्रीराम को निहारकर कोई श्रीअवध की सुहागिनी महिला हवेली गीत के ढाल में गा उठी।

गीत संख्या-२२

रामः सुहृद्बन्धुतां रमयति।
दशरथसुकृतमञ्जुलारामे क्रीडन् सखि सुजनानभिरमयति।।१।।
नीलतामरसजलदसुन्दरो निजदिशि नियतमनोऽपि नियमयति।
विहितसुकृतपदनतनिकराणां सममनुनयनफलं परिणमयति।।२।।
अलिगणनिकरविनिन्दकचिकुरनिकरविभया विपदञ्च विरमयति।
सङ्गापयन् बाललीलामथ सफलां गिरिधरगिरमपि गमयति।।३।।

भौमी–हे सखि! श्रीराम अपने मित्रों और बन्धु-बान्धवों के समूह को रमा रहे हैं। दशरथ जी के पुण्यरूप सुन्दर उद्यान में श्रीराम अपने भक्त श्रीवैष्णवों को आनंदित कर रहे हैं। नीलेकमल एवं बादल के समान प्रभु अपने भजन की दिशा में निश्चित किए मन को भी नियमित कर रहे हैं। अनेक जन्मजन्मान्तर के पुण्य किये हुए एवं प्रभु के चरणों में प्रणत हुए, भक्त समूहों के नेत्रों के फल को भी समान रूप से अनुकूल प्राप्ति की ओर लिए जा रहे हैं। भ्रमरों को भी निन्दित करने वाले केशसमूहों की शोभा से भक्तों की विपत्तियों को भी प्रभु नष्ट कर रहे हैं और इसी बहाने अपनी बाललीला गवाते हुए मुझ **गिरिधर** कवि की वाणी को सफल बना रहे हैं।

सन्दर्भश्लोकः

अथो चिकीर्षन् किल कर्णवेधं रामस्य राजीवदृशः सबन्धोः।
समस्तभद्रस्य च भद्रसूक्तं पठन् वसिष्ठो प्रजगौ सुगीतम्।।१।।

भौमी–इसके पश्चात् अर्थात् प्रभु के प्राकट्य के तीसरे वर्ष भाइयों सहित कमल नेत्र श्रीराम का कर्णवेध संस्कार करने की इच्छा करते हुए ब्रह्मर्षि वसिष्ठ जी समस्त संसार का कल्याण करने वाले प्रभु श्रीरामभद्र के लिए भद्रसूक्त पढ़ते हुए इस प्रकार भद्रगीत गाने लगे।

गीत संख्या-२३

अद्य राघवस्य शोभा निहार्यतां वसनभूषणमणिर्वार्यताम्।।
वेधयामि कर्णाववेधस्य धातुः।
संस्करोमि संस्कारणं मुदा पितुर्मातुः।।

अद्य संस्कृतोऽपि हरिः संस्कार्यताम्।।१।।
सकलभद्रनिधेः कृते भद्रसूक्तं वाच्यते।
सर्वमङ्गलविधेः कृते मङ्गलञ्च याच्यते।।
अद्य बाललीला हरेरवधार्यताम्।।२।।
अद्य राज्ञी कौसल्या समस्तैरभिनन्द्यताम्।
चक्रवर्तिदशरथस्य सुकृतञ्च वन्द्यताम्।।
दृश्यमालोकद्भिः क्षणो न निवार्यताम्।।३।।
रोदितु न शिशुर्भूरिमिष्टान्नं प्रदीयताम्।
क्रीडनाय काकभुशुण्डी च समानीयताम्।।
श्रुतौ कुण्डलं नवीनं परिधार्यताम्।।४।।
पूजयन्तु कौशलाय गौरिहरगणेशान्।
लुण्ठयन्तु हेमरत्नगजरथानशेषान्।।
गिरा गिरिधरस्य मङ्गलमुच्चार्यताम्।।५।।

भौमी–आज श्रीराघव की शोभा निहारो और वस्त्र, भूषण, मणियों को निछावर करो। आज किसी भी प्रकार से वेधरहित परमात्मा श्रीराम के कान मैं छिदा रहा हूँ। संस्कारों के पिता-माता प्रभु को भी मैं संस्कार सम्पन्न कर रहा हूँ। सब प्रकार से संस्कृत श्रीहरि को संस्कार सम्पन्न कराओ। सम्पूर्ण कल्याणों के निधान प्रभु के लिए आज भद्रसूक्त का वाचन किया जा रहा है और सम्पूर्ण मंगलों के विधानस्वरूप प्रभु के लिए मंगल की प्रार्थना की जा रही है। प्रभु की इस बाललीला का चिन्तन किया जाय। आज कौसल्या रानी का सभी अभिनन्दन करें और महाराज जी के सुकृति का सब लोग वन्दन करें। इस दृश्य का अवलोकन करते हुए एक क्षण के लिए भी पलक बन्द मत कीजिए। बालक रोये न इसलिए इन्हें बहुत-सी मिठाइयाँ दी जाय, खेलने के लिए काकभुशुण्डि जी को बुला लिया जाय। प्रभु के कान में धीरे से नया कुण्डल पहनाया जाय। कुशलता के लिए शंकर पार्वती, और गणपति की पूजा की जाय और हाथी, घोड़े, रत्न आदि सभी बहुमूल्य वस्तुएँ लुटाई जायँ, कवि **गिरिधर** की वाणी से मंगल का उच्चारण कराया जाय।

विशेष- यह गीत बुन्देलखण्ड की एक लोकधुन की ढाल में निबद्ध है- जिसके बोल हैं-

''यह न होवे धनुष को तोरिवो, कठिन कंकन गाँठ छोरबो।''

गीत संख्या-२४

कलितकुण्डलो रामो राजति।
परमानन्दपयोदो गुरुयुगसहितः समधिकमहो विराजति।।१।।
स्थाल्यां धृतं मोदकं विहसन् खादति बन्धून् त्रींश्च खादयति।
किमुत प्रपत्तिसुधापरिवेशं त्रिविधान् शरणागतान् ह्लादयति।।२।।
कर्णवेधसंस्कारमण्डितो जननीर्वै सहानुजः प्रणमति।
तरुणतमालः कल्पवल्लिकाः शम्पाः किमुत वारिदोऽपिनमति।।३।।

दृष्ट्वा बालवर्यमर्यादां योगिजनो नतशिरसा ध्यायति।
सतां कामधेनुं शिशुलीलां संस्कृतगिरा गिरिधरो गायति।।४।।

भौमी–अब महाकवि हवेली पद्धति में भगवान की कर्णबेधलीला का गान कर रहे हैं। अहो! आज नवीन कुण्डल धारण करके भगवान शिशु राम उसी प्रकार से शोभित हो रहे हैं, जैसे दो बृहस्पतियों के साथ परमानन्दमय बादल विराजमान हो रहे हों। स्थाली में रखा हुआ लड्डू हँसते हुए प्रभु खा रहे हैं और तीनों भाइयों को भी खिला रहे हैं। क्या तीन प्रकार के मानसिक, वाचिक और कायिक शरणागतों को प्रभु प्रपत्ति–अमृत को परोसकर आह्लादित कर रहे हैं? कर्णवेध के संस्कार से युक्त कान छिदाए हुए प्रभु श्रीराम छोटे भाइयों सहित अपनी तीनों माताओं को प्रणाम कर रहे हैं। मानो नवीन तमालवृक्ष और बादल स्वर्ण की कल्पलता और बिजली को प्रणाम कर रहे हों। इस प्रकार बालरूप प्रभु की मर्यादा देखकर योगीजन विनम्र शिर से प्रभु की इस मर्यादा का ध्यान कर रहे हैं और सज्जनों की कामधेनु रूप प्रभु की बाललीला को **गिरिधर** कवि भी संस्कृतवाणी में गा रहे हैं।

सन्दर्भश्लोकः

अथ प्रीतः प्रीत्या रघुकुलपुरोधा पुररिपु–
प्रियं प्रार्थ्यं प्रार्थ्यं सकलसुरचूडामणिमसौ।
चलच्चूडं चूडाकरणविधिना राममनुजैः
समं संस्कुर्वाणः सुरगिरि वसिष्ठः प्रणिजगौ।।१।।

भौमी–कर्णवेध संस्कार के पश्चात् त्रिपुरासुर के शत्रु भगवान शंकर जी के भी प्रिय प्रार्थनीय देवताओं के भी प्रिय, सम्पूर्ण देवताओं के मुकुट मणि, घुँघुराले केशों वाले भगवान श्रीराम को भाइयों के साथ चूड़ाकरण संस्कार से संस्कृत करते हुए रघुकुल के पुरोहित श्रीवसिष्ठ जी संस्कृत भाषा में यह गीत गा उठे–

गीत संख्या–२५

रामचूडाकरणं संविधीयताम्।
अद्य सकलैः सुमङ्गलं गीयताम्।।
व्यापको ब्रह्म परमेश्वरश्चिन्मयः।
सच्चिदानन्दकन्दो हरिस्तन्मयः।।
घने चपलेव केशो विलीयताम्।।१।।
किं क्षुरप्रं चलेच्छ्रीहरेर्मस्तके।
निष्कले निष्प्रपञ्चे मलापास्तके।।
लोकलीलैव सा समाधीयताम्।।२।।
राज्ञीकौसल्यासुकृताब्धिचन्द्रः प्रभुः।
हेयगुणवर्ज्यशोभासमुद्रो विभुः।।
संस्कृतः संस्कृते हृदि विधीयताम्।।३।।

लब्धबहुदक्षिणैः विप्रवर्यैः समम्।
त्यक्तमायागुणैर्विभ्रमद्विभ्रमम् ।।
सुकविगिरिधरेण रामो मनसि नीयताम्।।४।।

भौमी–श्रीराम का चूड़ाकरण संस्कार किया जाय और आज सब लोग सुमंगल गान करें। यह श्रीराम व्यापक ब्रह्म, परमेश्वर, चेतनामय, सच्चिदानंद के बादलस्वरूप, पापहारी और परमतत्व रूप हैं, इसलिए इनके केश काटे नहीं जा सकते। बादल में बिजली की भाँति श्रीराम के केशों का समूह इनके मस्तक में ही विलीन हो जाय। कलाओं से रहित सारे प्रपञ्चों से दूर संसार के मनों से अतीत, प्रभु के मस्तक पर क्या छुरी चल सकती है? यह तो वैदिक मर्यादा की लोकलीला है। इसका इसी प्रकार समाधान कर लेना चाहिए। प्रभु श्रीराम महारानी कौसल्या के पुण्यक्षीर–सागर के चन्द्रमा हैं। ये हेयगुणों से रहित और शोभा के सागर हैं। अपने संस्कार सम्पन्न हृदय में इन संस्कार सम्पन्न प्रभु को धारण करें। इस प्रकार बहुत–सी दक्षिणा प्राप्त मायागुणों से रहित भ्रमरहित ब्राह्मणों के साथ कवि **गिरिधर** के द्वारा भी श्रीराम को मन में धारण किया जाय।

सन्दर्भश्लोकः

भुञ्जानश्चक्रवर्ती सममशितुमथो राममाजुह्वदर्भं
त्येक्त्वेष्टान्नाब्रजन्तं रघुकुलमहिषी धावमानाऽपि धर्तुम्।
नाशक्नोद् योगचित्तैर्मुनिजनमनसा दुर्धरं धूर्जटीड्यं
कौसल्या भग्नशल्या श्रममहितमुखी प्राह चित्रं सुमित्राम्।।१।।

भौमी–भोजन करते हुए चक्रवर्ती जी अपने ही साथ भोजन करने के लिए बालक श्रीराम को बुला रहे हैं। परन्तु अपने बालमित्रों को छोड़कर न आते हुए श्रीराम को पकड़ने के लिए दौड़ती हुई रघुकुल की महारानी कौसल्या जब शिव जी के भी स्तुत्य, योगियों के चित्त तथा मुनियों के मन से भी न धारण करने योग्य श्रीराम को जब नहीं पकड़ पाईं तब श्रम के बिन्दुओं से शोभित मुखवाली संसार के कष्टों से रहित कौसल्या सुमित्रा से इस प्रकार बोलीं–

गीत संख्या–२६

राघवो नैव शक्यो मया धर्तुं सुमित्रे धेहि बालं मुदा।
लाघवान् नैव शक्यः सोऽनुसर्तुं सुमित्रे धेहि बालं मुदा।।१।।
यः स्वतन्त्र ईश्वरस्त्र्यधीशः निर्विकार एको जगदीशः।
कथं शक्यः सोऽद्य मया वशीकर्तुं सुमित्रे धेहि बालं मुदा।।२।।
यः प्रतिरोमकलितकोट्यण्डः प्रबलप्रतापविजितमार्तण्डः।
कथं शक्यः स ममाञ्चले विहर्तुं सुमित्रे धेहि बालं मुदा।।३।।
नेति नेति यं गायति वेदः समदर्शी हरिरस्तविभेदः।
कथं शक्यो मया राज्ञे उपहर्तुं सुमित्रे धेहि बालं मुदा।।४।।

यं न शारदा प्रभवति गातुं सूक्तिः किमलं सिन्धुं मातुम्।
कथं शक्यो गिरिधरगिरि समाहर्तुं सुमित्रे धेहि बालं मुदा।।५।।

भौमी–हे सुमित्रे! मैं राघव को नहीं पकड़ पा रही हूँ। इस बालक को प्रसन्नता से पकड़ो तो, लघुता के कारण मैं इनके पीछे–पीछे भी नहीं चल पा रही हूँ। इन्हें तुम्हीं पकड़ो। जो स्वतन्त्र, सर्वसमर्थ, सभी विकारों से रहित, उपमारहित और जगत के ईश्वर हैं, उनको मैं कैसे वश में कर सकती हूँ? जिनके रोम–रोम में कोटि–कोटि ब्रह्माण्ड रहते हैं। जिन्होंने अपने प्रताप से सूर्यनारायण को जीता है, वे मेरे अञ्चल में कैसे विहार कर सकते हैं? जिन्हें नेति–नेति कहकर वेद गाते हैं, जो समदर्शी पापहारी तथा भेदों से रहित हैं, उन श्रीराघव को मैं पकड़कर महाराज को कैसे सौंपूँ। जिनको सरस्वती भी नहीं गा सकती क्या छोटी–सी सीपी सागर को समेट सकती है? वही प्रभु कवि **गिरिधर** की वाणी में कैसे समाहित हो सकते हैं।

गीत संख्या–२७

आव ललन रघुरायिन् कौसल्या त्वां समनुलालयेत्।।
शिशुभिः खेलतः प्रहरं यातं शोषं गतं वदनजलजातम्।
निजजनमोदप्रदायिन् कौसल्या त्वां समनुलालयेत्।।१।।
आगच्छ राघव पयः पाययेऽहं तव मुखचन्द्रमथो ध्यायेऽहम् ।
खगकुलकदनविधायिन् कौसल्या त्वां समनुलालयेत्।।२।।
धावन्त्या मम देहं श्रान्तं शिथिलाः केशाः वदनं क्लान्तम् ।
वञ्चय मा महामायिन् कौसल्या त्वां समनुलालयेत्।।३।।
कोसलनृपतिस्त्वां प्रतीक्षते गिरिधरसुमतिस्त्वां समीक्षते।
सम्प्रसीद सुखदायिन् कौसल्या त्वां समनुलालयेत्।।४।।

भौमी–हे जीवों को आनन्द देने वाले रामलला! आ जाइए। कौसल्या आपको दुलार करेंगी। बच्चों के साथ खेलते हुए आपने तीन घण्टे बिता दिए। आपका मुखकमल सूख गया है। अपने भक्तों को आनन्द देने वाले प्रभु आप आ जाइए। हे राघव! हे दुष्टों का नाश करने वाले! आइए, आपको मैं स्तनपान कराऊँगी और आपके मुखचन्द्र का मैं ध्यान करूँगी। दौड़ते–दौड़ते मेरा शरीर थक गया है। मेरे केश शिथिल हो गये हैं। मेरे मुख पर पसीने की बूँदे आ गई हैं। हे महामायाविन्! अब मुझे मत ठगिए। अयोध्याधिपति महाराज दशरथ आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। **गिरिधर** कवि की सुन्दर बुद्धि भी आपकी समीक्षा कर रही है। हे सर्वसुखदाता प्रभु! आप प्रसन्न हो आएँ, कौसल्या आपको दुलार करेंगी।

सन्दर्भश्लोकः

अथाक्षरारम्भविधौ परेशतुः प्रतन्वतो मानवलोकशिक्षणम्।
श्रुतिश्च शेषश्च सरस्वती शिवः समागमन् केल्युपजीविनो यथा।।१।।

भौमी–इसके अनन्तर मनुष्य मान की शिक्षा का विस्तार कर रहे प्रभु श्रीराम की अक्षरारंभ विधि के समय बाललीला के उपकरण की ही भाँति श्रुति–सरस्वती–शेष एवं शिव जी पधार आए।

गीत संख्या-२८

हरिमिह लेखयति सुभगा सरस्वती।।
शेषदत्तपट्टिकायामुपचारैः पूजितायां
शिक्षयति स्वराकारं वर्णाकारं भास्वती।।१।।
सूत्राणि चतुर्दशैव चतुरः संल्लापयति
चतुरचक्रचूडामणिः शिवः प्रियपार्वती।।२।।
ह्रस्वदीर्घप्लुतभेदं वेदो वेदयतेऽभेदं
विगलितखेदं प्राह श्रुतिरपि शाश्वती।।३।।
चतुरोऽपि चतुरान् प्रशिक्षयन्ते चत्वारोऽपि
दर्शं दर्शं मोमुद्यते दशरथः सुकृती।।४।।
अक्षरस्य चाक्षरारम्भणगीतं गायं गायं
भवति सनाथा नूनं गिरिधरभारती।।५।।

भौमी–श्रेष्ठ सरस्वती आज भगवान श्रीराम को लिखना सिखा रही हैं। षोडशोपचारों से पूजित शेष के द्वारा दी हुई पट्टिका में भगवती सरस्वती स्वरों के आकार और वर्णों के आकार की शिक्षा दे रही हैं। पार्वती जी के प्रिय चतुरसमूहों के शिरोमणि शिव जी चारों राजकुमारों को चौदह सूत्रों का उच्चारण करा रहे हैं। सभी खेदों से रहित अभेदस्वरूप परमात्मा को शाश्वती श्रुति भी ह्रस्व-दीर्घ-प्लुत का भेद सिखा रही हैं। इस प्रकार सरस्वती-शेष-शिव और श्रुति ये चारों भाग्यशाली परिकर चारों राजकुमारों को शिक्षा दे रहे हैं। इस प्रकार अक्षर परब्रह्म श्रीराम के अक्षरारंभ गीत को गा-गाकर **गिरिधर** कवि की वाणी भी सनाथ हो रही है।

विशेष- चतुर्दश सूत्र निम्नवत् हैं–

अइउण् – ऋलृक् – एओङ् – ऐऔच् – हयवरट् – लण् – ञमङणनम् – झभञ् – घढधष् – जबगडदश् – खफछठथचटतव् – कपय् – शषसर् – हल्।

सन्दर्भश्लोकौ

अथो कुमाराश्चतुरः कुमाराः जाता विभाव्रीडितकोटिमाराः।
गुणैकसारा विलसद्विचाराः श्रीकोसलाधीशमनोविहाराः।।१।।
समेत्य तातं ननु मातृकत्रयं प्रफुल्लपाथोजमनोज्ञलोचनः।
समुत्सुकः सन् व्रतवन्धने विधौ जगाद जीमूतगिरा स राघवः।।२।।

भौमी–इसके पश्चात् श्रेष्ठगुणरूप एकमात्र तत्व वाले, विचारों से सुशोभित, दशरथ जी के मन में विहार करने वाले, अपनी प्रभा से करोड़ों कामदेवों को लज्जित करने वाले, श्रीराम-भरत-लक्ष्मण-शत्रुघ्न चारों राजकुमार कुमार हो गए अर्थात् पाँच वर्ष की कौमारावस्था को पूर्ण करके छठें वर्ष में प्रवेश कर गए। ''बलकामः क्षत्रियं षष्ठे वर्षे उपनयीत'' अर्थात् बल की कामना करने वाला क्षत्रिय पिता अपने पुत्र को छठें वर्ष में उपवीत कर दे, इस वेदवचन का पालने करते हुए, विकसित कमल के समान सुन्दर नेत्र वाले श्रीराघव व्रतबन्ध अर्थात् यज्ञोपवीत संस्कार में उत्कंठित होते हुए पिता श्री दशरथ एवं तीनों माताओं कौसल्या-

कैकेयी–सुमित्रा के पास जाकर मेघ के समान गंभीर वाणी में अवध परंपरा के आँचलिक लोक धुन की ढाल में और उसी परंपरा की भावना में गीत गाते हुए बोले।

गीत संख्या–२९

देहि चर्तुभ्यः पितर्ननु यज्ञसूत्रं
विना यज्ञसूत्रं वै नो कापि न जातिः।
स्थातुं न शक्यमधिवैवस्वतमनुपङ्क्ति।।१।।
देहि कौसल्यामातर्नश्च यज्ञसूत्रं
विना यज्ञसूत्रं वै नः क्षत्रिया न जातिः।
स्थातुं न शक्यं मधिभगीरथपङ्क्ति।।२।।
देहि कैकयीमातर्नश्च यज्ञसूत्रं
विना यज्ञसूत्रं वै नो न्यूनैव जातिः।
स्थातुं न शक्यमधिककुस्थपङ्क्ति।।३।।
देहि सुमित्रामातर्नश्च यज्ञसूत्रं
विना यज्ञसूत्रं वै नो सुस्थिरा न जातिः।
स्थातुं न शक्यमधिरघुनृपपङ्क्ति।।४।।
गिरिधरप्रभुगिरं श्रुत्वा महाराजः
सहभार्यो हसति मुदं परियाति।
परमानन्दसुधापयोधौ स्नाति।।५।।

भौमी–श्रीराम अवध की लोक धुन और अवध की भावना में कहते हैं–हे पिता जी! अब हमें जनेऊ दे दीजिए, अर्थात् यज्ञोपवीत संस्कार करा दीजिए। बिना यज्ञोपवीत के हमारी कोई जाति निश्चित नहीं हो रही है, और हम वैवश्वत मनु की पंक्ति में नहीं बैठ पा रहे हैं। हे कौसल्या माता! हमें यज्ञोपवीत दिला दीजिए, क्योंकि बिना यज्ञोपवीत के हमारी क्षत्रिय जाति निश्चित नहीं हो रही है और हम महाराज भगीरथ की पंक्ति में नहीं बैठ पा रहे हैं। हे कैकेयी माता! हमें यज्ञोपवीत दिला दीजिए, क्योंकि बिना यज्ञोपवीत के हमारी कोई जाति स्थिर नहीं है, हम यज्ञोपवीत के बिना महाराज रघु की पंक्ति में नहीं बैठ पा रहे हैं। इस प्रकार **गिरिधर** कवि के प्रभु श्रीराम की वाणी सुनकर महाराज दशरथ तीनों महारानियों के साथ हँस रहे हैं और प्रसन्नता को प्राप्त कर रहे हैं तथा परमानन्द अमृत के महासागर में स्नान कर रहे हैं।

विशेष– यह गीत अवध अंचल के शुद्ध लोक धुन के ढाल में निबद्ध है। इसका बोल है–

देहु न मोरे बाबा मुझके जनेऊ।
बिना रे जनेऊ मोरि ओछरी जाति,
बैठ न पाऊँ राजा भागीरथी पाँति।।

गीत संख्या-३०

सम्मुखमासीना कौसल्या राज्ञी चक्रवर्तिनमनुनयति हो।
चतुर्णां कुमाराणां च सूनुनां ब्रतबन्धाय च विनयति हो।।
श्रृणु श्रृणु नृपकुलमुकुटमणे श्रुतिसम्मतसत्पथ हो।
चतुर्णां कुमाराणामुपनयनके शुभमुहूर्तं सन्धेयमथ हो।।
ब्रह्मवर्चसकामः पञ्चवर्षे द्विजं श्रुतिरुपनेतुं कथयति हो।
बलकामः क्षत्रियस्तु षष्ठवर्षे व्रतबन्धे वेदः प्रथयति हो।।
षष्ठवर्षा जाता इमे मम पुत्रका समाहूय वसिष्ठमृषिं हो।
उपवीतविधिपयसा सेचय सर्वमनोरथशुभकृषिं हो।।
पूरणीयं मौक्तिकचतुष्कमपि पूजनीयो गणपतिदेवो हो।
दुरितसमाप्तये सुपुत्रकाणां शुभं कार्यमथ सर्वमेव हो।।
द्वादशवटवोऽपि भोजनीया गौरीगणपती ध्यायत हो।
भवसिन्धुतरणाय कलिकाले गिरिधरगीतानि गायत हो।।

भौमी–महाराज के निकट बैठी हुई महारानी कौसल्या, चारों पुत्रों के यज्ञोपवीत के लिए चक्रवर्ती जी से अनुनय और विनय कर रही हैं। हे राजवंश के मुकुटमणि! हे वेदसंमत श्रेष्ठ मार्ग का अनुसरण करने वाले महाराज! सुनिए, सुनिए, अब चारों पुत्रों के उपनयन संस्कार के लिए सुन्दर मुहूर्त्त का अनुसन्धान कर लीजिए। महाराज! श्रुति कहती है कि पुत्र के ब्रह्मवर्चस्वी की कामना करने वाला ब्राह्मण पिता बेटे का पाँचवें वर्ष में उपवीत कर दे। इसी प्रकार बल की कामना करने वाला क्षत्रिय पिता बेटे का छठे वर्ष में उपवीत करे, ऐसी वेद भगवान आज्ञा देते हैं। मेरे चारों बेटे छठे वर्ष में प्रवेश कर चुके हैं, अतः महर्षि वसिष्ठ जी को बुलाकर उपवीत के विधान से सभी की मनोरथ रूप खेती को सींच लीजिए। अब मोतियों से चौका पुराया जाय, गणपति की पूजा की जाय, पुत्रों के विघ्नों की समाप्ति के लिए सभी शुभकार्य किये जायँ। बारह बटुओं को भोजन कराया जाय और सब लोग गौरी-गणपति का ध्यान करो, इस कलिकाल में भी भवसागर से पार होने के लिए **गिरिधर** कवि द्वारा रचित 'गीत रामायणम्' के गीतों को गाओ।

गीत संख्या-३१

सरस्वती जगौ–

यस्मिन् वने सीकरो न दोलति खगो न कल्लोलति।।
तस्मिन् वने विष्टो राजा श्रीदशरथः कृन्तति पलाशदण्डम्।
लुञ्चति च मौञ्जीकाण्डम्।।१।।
अरे अरे वरुण गोस्वामिन्! श्रृणुष्व मम प्रार्थितं हे।
स्वामिन् रामकृते देहि किंशुकदण्डं तथैव मौञ्जीकाण्डं हे।।२।।
तेन खलु दण्डेन दण्डयिष्यन्ते रावणाद्या निशिचरा हे।

स्वामिन् मौञ्ज्या वन्धयिष्यन्ते च दुष्टा रामेण रणमूर्धनि हे।।३।।
अरे अरे अवधस्य तक्षन् तवापि खलु भूरिभाग्यं ते।
तक्षन् निर्मायस्व पादुकाश्चतस्त्रश्चतुर्णां सूनुनां हे।।४।।
अरे अरे अवधस्य नापित श्रुणु मम ज्ञापितं हे।
नापित औदुम्बरं दन्तधावनमानय विलम्बं नो विधेय इह हे।।५।।
अरे अरे अवधसुवासिन्यो विवुधविलासिन्यो हे।
देव्यो कुर्वे राघवस्योपवीतं गायत गिरिधरगीतानि हे।।६।।

भौमी–अब सरस्वती गा रही हैं– अहो! जिस वन में सींक भी नहीं डोलती, पक्षी भी नहीं कल्लोल करता, उसी वन में बैठे हुए महाराज दशरथ पलाश दण्ड काट रहे हैं,और मौंजी इकट्ठी कर रहे हैं। हे वरुणस्वामी! मेरी प्रार्थना सुनिए, हे स्वामी! रामजी के लिए पलाश दण्ड और मुंज का गट्ठा दे दीजिए। हे वरुणदेव! पलाश निर्मित उस दंड से श्रीराम रावणादि राक्षसों को दंडित करेंगे और मुंज की रस्सी से दुष्टों को बाँधेंगे। हे अवध के बढ़ई! तुम्हारा भी अहोभाग्य है, तुम महाराज के चारों राजकुमारों के लिए चार जोड़ी पादुका बनाओ। हे अयोध्या के नाई! मेरी आज्ञा सुनो, श्रीराम के लिए गूलर की दातून ले आओ, विलंब मत करो। हे सुवासिनियों! अवध की विवाहित बेटियों! हे देवियों! मैं राघव जी का उपवीतोत्सव कर रही हूँ, **गिरिधर** कवि के द्वारा रचित गीत गाओ।

गीत संख्या–३२

पुनर्जगौ सरस्वती–

तिष्ठंश्चतुष्के मणिमुक्तामये वटू रामचन्द्रो राजति हे।
भरतलक्ष्मणशत्रुघ्नैः स्वभ्रातृभिः समं मध्येमण्डपं विराजति हे।।१।।
प्रमुदितमनाः श्रीवसिष्ठो गुरुः वेदमन्त्रमुच्चारयति हे।
प्रज्वलितमग्निमथ पूजयित्वा कर्मकाण्डं प्रचारयति हे।।२।।
दत्तं यज्ञसूत्रं चर्तुभ्यो मुदा तेषु नितरां च शोभते हे।
शङ्के नीलपीतसरसिजयुग्मे हरिधनुर्मनो लोभते हे।।३।।
मौञ्जीमेखलापलाशदण्डयुता याचमाना मातृर्भिक्षां हे।
भिक्षां भवति देहीति व्याहरमाणा शिक्षयन्तो लोकशिक्षां हे ।।४।।
मातुलेन लोभितोऽपि वधूकृते नैव राघवोऽपि लुभ्यति हे।
गिरिधरगुरुकुलं मुदितमगात् नो मनसि रामः क्षुभ्यति हे।।५।।

भौमी–सरस्वती फिर गा रही हैं– आज मुक्तामय चौके में बैठे हुए बटु–वेषधारी श्रीराम सुन्दर लग रहे हैं, भरत–लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न इन तीनों भाइयों के साथ मंडप के मध्य में श्रीराम विराजमान हो रहे हैं। प्रसन्न मन से गुरुदेव वसिष्ठ वेद मंत्रों का उच्चारण कर रहे हैं, और प्रज्ज्वलित–अग्नि की पूजा करके कर्मकांड का प्रचारण कर रहे हैं। चारों भ्राताओं को दिया हुआ यज्ञोपवीत अत्यंत सुन्दर लग रहा है, मुझे शंका होती है कि जैसे दो–दो नीले और पीले कमलों पर विराजमान हुआ इन्द्रधनुष ही मन को आकर्षित कर रहा है। आज मौंजी–मेखला

और पलाश-दण्ड से युक्त चारों राजकुमार "भिक्षां भवति देहि" कहते हुए, लोक को शिक्षित करते हुए माताओं से भिक्षा माँग रहे हैं। बहू के लिए मामा के द्वारा लोभित किए जाने पर भी श्रीराम लुब्ध नहीं हो रहे हैं और कवि **गिरिधर** के वंश प्रवर्तक वसिष्ठ जी के गुरुकुल में अध्ययनार्थ श्रीराम पधार रहे हैं, उनका मन क्षुब्ध नहीं हो रहा है।

सन्दर्भश्लोकौ

उर्वीं गुर्वीं प्रकुर्वन् पदकमलरूचा मेखलां यज्ञसूत्रं
विभ्राणः शिक्षमाणो निगममपि धनुर्वेदविद्यां वसिष्ठात्।
कन्दश्यामोऽभिरामो विहितजनमनस्सद्मवासो वसानः
पातुश्रीरामचन्द्रस्त्वचमथ रुचिरां रौरवीं रौरवान्नः।।१।।
पश्यन्तस्सानुजं रामं दण्डमौञ्जीधरं वटुम्।
स्वस्तिवाकं ब्रुवाणाश्च वसिष्ठवटवो जगुः।।२।।

भौमी–कोमल चरण कमल की कान्ति से पृथ्वी को गौरवशालिनी बनाते हुए, मेखला और यज्ञसूत्र धारण करते हुए, नियम-पालन के साथ श्रीवसिष्ठ जी से वेद-वेदांग सहित धनुर्वेद का अध्ययन करते हुए रुरु मृग का चर्म धारण किये हुए, भक्तों के मन मन्दिर के निवासी, नीले मेघ के समान, अत्यंत सुन्दर भगवान श्रीरामचन्द्र रौरव नरक से हमारी रक्षा करें। मौंजी-मेखला एवं पलाश-दण्ड धारण किए हुए, बटुवेषधारी श्रीराम को निहारकर वसिष्ठ देव के शिष्ट बटुगण स्वस्तिवाचन करते हुए गीत गाने लगे।

गीत संख्या-३३

वसिष्ठानन्दवर्धन ते वयं वर्धापनं ब्रूमः।
क्षपितसंसारबन्धन ते वयं वर्धापनं ब्रूमः।।१।।
समाव्रज भानुकुलकेतो महितसद्धर्मश्रुतिसेतो।
निखिलजनचारुचन्दन ते वयं वर्धापनं ब्रूमः।।२।।
सनाथं नाथ कुलमेतद् दिनं श्रीराम शुभमेतद्।
अवधपुरनयननन्दन ते वयं वर्धापनं ब्रूमः।।३।।
अये नवनीरधरसुन्दर महाभववारिनिधिमन्दर।
चरणश्रितभीतिभञ्जन ते वयं वर्धापनं ब्रूमः।।४।।
वयं सुस्वागतं कुर्मः शुभं राघव समातन्मः।
प्रणतकुलचित्तरञ्जन ते वयं वर्धापनं ब्रूमः।।५।।
अधीष्वास्मद्गुरोर्विद्यां हरास्माकं जडाविद्याम्।
सुकवि गिरिधरनयनधन ते वयं वर्धापनं ब्रूमः।।६।।

भौमी–हे वसिष्ठ जी के आनन्द को बढ़ाने वाले श्रीराम! हम आपका वर्धापन बोल रहे हैं, हे सांसारिक बन्धनों को नष्ट करने वाले प्रभु! हम आपका बधाई गान कर रहे हैं। वैदिक सेतु का सम्मान करने वाले, भक्तों

के मन को शीतल करने वाले चन्दनस्वरूप सूर्यकुल के ध्वजस्वरूप हे श्रीराम! हम आपका मङ्गलाचरण कर रहे हैं, आप पधारें। हे नाथ! आज यह गुरुकुल सनाथ हो गया है, आज यह दिन भी धन्य हो गया है हे अवधवासियों के नेत्रों को आनन्द देने वाले प्रभु! हम आपकी अगुवानी में बधाई गा रहे हैं। हे नीलबादल के समान सुन्दर! संसारसागर के लिए मन्दरस्वरूप, शरणागतों के भयहारी श्रीहरि! हम आपका पुण्याहवाचन रूप वर्धापन कर रहे हैं। हे राघव! हम आपका स्वागत करते हैं, हम आपके कल्याण का विस्तार करते हैं। हे प्रणतजनों के चित्त को सुख देने वाले प्रभु! हम आपके आगमन पर बधाई बोल रहे हैं। हे प्रभो! हमारे गुरुदेव से वेदविद्या का अध्ययन कीजिए और हमारी जड़-अविद्या को हर लीजिए। हे **गिरिधर** कवि के नेत्र के धन! हम आपका बधाई गान कर रहे हैं।

सन्दर्भश्लोकः

अथानुजैः भानुकुलावतंसः साकं महन्मानसराजहंसः।
सारुन्धतीकस्य गुरोः पदाब्जरोलम्बतामाश्रयदाप्तहर्षः।।१।।

भौमी–इसके अनन्तर सज्जनों के मनमानस सरोवर के राजहंसरूप सूर्यकुल के सूर्य भगवान श्रीराम अपने भाइयों के सहित प्रसन्नतापूर्वक श्रीवसिष्ठ और माता अरुन्धती जी के चरणकमल के भ्रमर बन गए।

गीत संख्या-३४

कविर्गायति-

रामं वीक्षत उटजेऽरुन्धती।
अनिमिषनयना सुनिमिषनयनं नयननीरमपि रुन्धती।।१।।
द्रष्टुं निरुपमवटुं राघवं करजैःपतिमाजुह्वती।
लौकिकसुतवासनां समिधमिव हरिप्रेमाग्नौ जुह्वती।।२।।
कोटिकामकमनीयकलेवरमाप्त्वा हरिमुटजे सती।
सर्षपलवणैः हरिं वारयति दृग्दोषादिव बिभ्यती।।३।।
सत्यं किमिदमुताहो स्वप्नो नहि नहि यदहं जाग्रती।
मुदिता परमपुमर्थमिवेत्वा शतशतजन्मदरिद्रती।।४।।
हृदयकलशमथ वत्सलरसपीयूषपृषद्भिः पिप्रती।।
नृत्यन्त्यङ्के श्रीवत्साङ्कं गिरिधरप्रभुमिह बिभ्रती।।५।।

भौमी–अब महाकवि स्वयं 'वागीश्वरी' राग में गीत गा रहे हैं– सुन्दर पलकों से युक्त नेत्र वाले, श्रीराम को अपलक नेत्र से अपनी कुटिया में निहारती हुई माता अरुन्धती नेत्रों के अश्रुजल को रोक रही हैं। भगवती अरुन्धती इन अलौकिक बटु श्रीराम के दर्शनों के लिए अपने पति वसिष्ठ जी को अंगुलियों से संकेत कर रही हैं और प्रभु श्रीराम के प्रेमाग्नि में सांसारिक पुत्र-वासना को समिधा की भाँति हवन कर रही हैं। करोड़ों-करोड़ों कामदेवों के समान सुन्दर श्रीविग्रह-प्रभु श्रीराम को अपनी कुटिया में प्राप्त करके लोगों के दृष्टि-दोषों से डरती हुई-सी माता अरुन्धती श्रीहरि को भी सरसों और नमक से बार रही हैं। यह सत्य है कि सपना नहीं–

नहीं क्योंकि मैं जग रही हूँ, अरुन्धती इतनी प्रसन्न हो रही हैं कि मानों करोड़ों जन्मों की दरिद्र महिला परम पुरुषार्थ प्रेमचिन्तामणि को प्राप्त कर ली हों। अपने हृदय-कलश को वत्सलरस सुधा के बिन्दुओं से भरती हुई श्रीवत्सलांछन **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम को अपने गोद में लेकर माता अरुन्धती नाच रही हैं।

गीत संख्या-३५

राघवो गुरुतः शास्त्रमधीते।
ब्रह्मचर्यनिरतो वटुवेषो मुदितः स्वगुरौ प्रीते।।१।।
श्यामसरोरुहसमकलेवरो मौञ्जमेखलाधारी।
धृतपलाशदण्डो भुजदण्डोन्मथितसुजनभयकारी।।२।।
सकृन्निगदमात्रेण गुरोर्धारयति सममथ वेदम्।
पूर्वाभ्यस्तमिहाभिनयति शिक्षणमथविगलितखेदम्।।३।।
धनुर्वेदमपि सरहस्यं किल रहसि रमेशो गृह्णन्।
अनायासमुपशमसंहारौ प्राप्नोत् खलान् निगृह्णन्।।४।।
उपनिषदोऽपि समुपनिषेदुरियमनघप्रिया इव प्रीताः।
चत्वारो न चिरादथजाता विद्याविनयविनीताः।।५।।
सहानुजैः कतिपयैरहोभिः प्राप्य समस्ताः विद्याः।
समावर्तनार्थं गिरिधरप्रभुरासीद्धन्तुमविद्याः।।६।।

भौमी–श्री राघवेन्द्र प्रभु राम गुरुदेव से शास्त्र का अध्ययन कर रहे हैं, वे ब्रह्मचर्यव्रत धारण किए हैं, अपनी सेवा से गुरुदेव के प्रसन्न होने पर प्रभु प्रसन्न हो रहे हैं। प्रभु का श्रीविग्रह नीलेकमल के समान है, वे मौंजी-मेखला तथा पलाश-दण्ड धारण किये हुए हैं, प्रभु के भुजदण्ड सज्जनों को भय देने वाले राक्षसों को दण्डित करते रहते हैं। एक बार गुरुमुख से सुनने मात्र से प्रभु सम्पूर्ण वेदों को धारण कर रहे हैं, वस्तुतः वह तो उनका पूर्वाभ्यस्त है, इस समय तो खेदरहित सज्जनों की शिक्षा का अभिनय मात्र कर रहे हैं। सीतापति श्रीराम दुष्टों को दण्ड देने के लिए एकान्त में गुरुदेव से सरहस्य-धनुर्वेद ग्रहण करते हुए, बिना प्रयास के उपशन और उपसंहार भी प्राप्त कर लिया। प्रसन्न हुई निष्पाप पत्नियों की भाँति सम्पूर्ण उपनिषदें भी प्रभु श्रीराम को प्राप्त हो गईं, इस प्रकार श्रीराम-भरत-लक्ष्मण-शत्रुघ्न चारों भ्राता शीघ्र ही विद्या और विनय से शिक्षित हो गए। इस प्रकार कुछ ही दिनों में **गिरिधर** कवि के प्रभु श्रीराम छोटे भाइयों सहित सम्पूर्ण विद्याएँ पढ़कर पंचपर्वा अविद्या का हनन करने के लिए गुरुदेव के पास समावर्त्तन संस्कारार्थ दीक्षान्त विधि के लिए उपस्थित हुए।

सन्दर्भश्लोकः

दीक्षयिष्यन् कुमारांस्तान् प्रेषयिष्यंश्च कोसलान्।
प्राह गद्गदया वाचा चतुरश्चातुराननिः।।१।।

भौमी–चारों राजकुमारों को दीक्षान्त विधि से सम्पन्न करते हुए पुनः अयोध्या के लिए श्रीराम-भरत-लक्ष्मण-शत्रुघ्न को प्रस्थान की अनुमति देते हुए ब्रह्मा जी के पुत्र वसिष्ठ जी गद्गद् स्वर में बोले।

गीत संख्या-३६

राघव याहि गृहमभिराम।
सर्वविद्याव्रतस्नातः सानुजः श्रीराम।।१।।
स्वयं सर्वज्ञः परेश्वर ब्रह्म वेत्सि सुमर्म।
सर्वमुक्तमनुक्तमथ जानासि वैदिककर्म।।२।।
प्रवचनात् स्वाध्यायतो मा कुरु प्रमादं तात।
सततवैदिकधर्मरक्षणरतो दृग्जलजात।।३।।
याहि तात सुखेन श्रीकोसलान् पुनरायाहि।
द्रष्टुकामो गुरू आवां रामनित्यं भाहि।।४।।
याहि राष्ट्रहिताय जहि शात्रवान् संयुगधीर।
विहर गुरु गिरिधरमनसि श्रीराम रघुकुलवीर।।५।।

भौमी–अब रूपक ताल में वसिष्ठ जी गीत गाते हुए कह रहे हैं। हे सहज सुन्दर! शिव जी को भी रमाने वाले, रघुकुल में प्रकट भगवान राम! अब आप संपूर्ण विद्याव्रतों में स्नात अर्थात् निपुण हो गए हैं, अतएव भाइयों सहित श्रीअवध राजभवन को पधारिए। हे प्रभु! आप सर्वज्ञ हैं, आप वेद के सभी मर्मों को जानते हैं, जो मैंने कहा है और जो नहीं भी कहा है, वह सब वैदिक कर्म आप जानते हैं। हे कमलनेत्र! हे तात राघव! आप संपूर्ण वैदिक धर्म में तत्पर रहें, स्वाध्याय और प्रवचन से कभी प्रमाद न करें। हे तात! आप प्रसन्नता से श्रीअवध पधारें और हम दोनों गुरुमाता अरुन्धती और गुरु वसिष्ठ को देखने के लिए आश्रम फिर आएँ और हे श्रीराम! आप हम दोनों के समक्ष निरंतर प्रकाशमान रहें। हे समरधीर श्रीराम! आप राष्ट्र के हित के लिए पधारें, युद्ध में शत्रुओं को मारें और अपने गुरु गोत्र में उत्पन्न मुझ कवि **गिरिधर** के मन में सतत विहार करते रहे।

इति
श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरमहाकविजगद्गुरुरामानन्दाचार्यस्वामिरामभद्राचार्यगिरिधरकविप्रणीते गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये बालकाण्डे गीतराघवबाललीलो नाम चतुर्थः सर्गः।।

इस प्रकार श्रीचित्रकूट तुलसीपीठाधीश्वर महाकवि जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य गिरिधरकवि द्वारा विरचित गीतरामायण 'गीतसीताभिराम' नामक संस्कृत गीतमहाकाव्य के बालकाण्ड में गीतराघवबाललीला नामक चतुर्थ सर्ग सम्पन्न हुआ।

।।श्रीराघवः श्न्तनोतु।।

।।श्रीः।।

।।नमो राघवाय।।

गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये
बालकाण्डे

गीतसीताभिर्भावो नाम

पञ्चमः सर्गः

सन्दर्भश्लोकः

सुरवरदयिता जननी त्रिभुवनवन्द्या विराजते धरणी।
यस्यां साक्षात् सीता प्रकटितविभवा समाक्रीडति।।१।।

भौमी–श्रीहरि विष्णु की प्रिया, सबकी माता, तीनों लोकों की वन्दनीया पृथ्वी माता विराज रही हैं, जिनमें साक्षात् जगज्जननी सीता जी अपना वैभव प्रकट करके सुशोभित हो रही हैं।

गीत संख्या–१

जयति जगति मिथिलापुरी हे भुवि तिलकस्वरूपा।
भुवनजननिजनिचातुरी हे भञ्जितभवकूपा।।१।।
यस्यामभूज्जनको नृपो हे सीरध्वजनामा।
ब्रह्मविचारपरायणो हे योगवर्धितधामा।।२।।
जीवनमुक्तमहीपतिर्गेहेऽपि विदेहः।
योगी भोगीवाचरन् हे प्रभुगूढस्नेहः।।३।।
यं स्म पतीयति वसुमती हे दत्वा सुतामपि सीताम्।
त्रैकालिकभूपान् जयन् भाति कीर्त्तिं प्रतीताम्।।४।।
अधियोगभोगवरसम्पुटं गोपायाञ्चक्रे नूत्नम्।
गिरिधरप्रभूपायमौकुटं रामप्रेमसुरत्नम्।।५।।

भौमी–अब कवि मिथिलाँचल में प्रसिद्ध विद्यापति की लोकधुन की ढाल में गीत प्रस्तुत करते हुए कहते हैं–अहो! पृथ्वी की तिलकस्वरूपा, त्रिभुवनजननी सीता जी की उत्पत्ति की चतुरता से युक्त, संसारकूप को नष्ट करने वाली, मिथिलापुरी संसार में सभी से श्रेष्ठ बनकर विराज रही है। जिस मिथिलापुरी में याज्ञवल्क्य जी से प्रशिक्षित योग–क्रिया के द्वारा अपने तेज को बढ़ाने वाले, सीरध्वज नामक राजा जनक उत्पन्न हुए। वे

महाराज जनक जीवनमुक्त की भूमिका में थे, वे घर में रहकर भी विदेह दशा को प्राप्त कर चुके थे। उन्होंने योग-भोग के संपुट में श्रीरामप्रेम छुपा रखा था, अतएव योगी होकर भी महाराज जनक भोगी जैसा आचरण करते थे। जिन महाराज जनक को सीता जैसी पुत्री प्रदान कर पृथ्वी ने अपना साक्षात् पति माना, उन महाराज ने तीनों काल के राजाओं को जीतकर पृथ्वीपति की यथार्थ कीर्ति को प्राप्त किया। जिन महाराज जनक ने योग-भोग के संपुट में **गिरिधर** कवि के प्रभु श्रीराम के नवीन प्रेमरत्न को छिपाया और प्रसन्नता से रक्षा की।

सन्दर्भश्लोकौ

अथैकदा कल्पितसोमयागः सीरध्वजः काञ्चनलाङ्गलेन।
क्रष्टुं महीं बीजयितुं सपुण्यारण्यं लसत्पुण्यमना जगाम।।१।।
वैशाखमासे शुभशुक्लपक्षे तिथौ नवम्यां किल भौमवारे।
शुभे मुहूर्तेऽभिजिति प्रशस्तं प्राकट्यमाहुः किल भूमिजायाः।।२।।

भौमी–अब कवि भगवती सीताजी के प्राकट्य प्रसंग को क्रमबद्ध कर रहे हैं। एक बार सीरध्वज महाराज जनक सोमयज्ञ की संकल्पना करके सोमलता के वपनार्थ स्वर्ण के हल से पृथ्वी को जोतने के लिए वैशाख शुक्ल नवमी भौमवार अभिजित् मुहुर्त में प्रसन्नता पूर्वक पुण्यारण्य पधारे। यही तिथि-वार-नक्षत्र सीताजी के प्राकट्य के लिए प्रशस्त कहा गया है।

गीत संख्या-२

वैशाखमासे शुभे शुक्लपक्षे नवम्यां च भौमवारे हे।
हरिहरि मध्याह्नीके पुण्यारण्ये भूमिं जनको राजा कृषति स्म हे।।१।।
करधृतकाञ्चनलाङ्गलो मिथिलेशो भाति स्म हे।
हरिहरि आरण्यकं यथैव जिज्ञासुर्विचारैर्विभाति स्म हे।।२।।
सोमलतावपनार्थं राज्ञा विधीयमानसीतामध्ये हे।
हरिहरि सीता प्रकटिता च भूमिं भित्वा श्रुतेरिव ब्रह्मविद्या हे।।३।।
चम्पककनकशरीरा सुन्दरी त्रिभुवने ख्याता हे।
हरिहरि प्रभुमुखचन्द्रचकोरी तु जनककिशोरी जाता हे।।४।।
वर्षन्ति स्म देवाः प्रसूनानि व्योमवाद्यं वाद्यते स्म हे।
हरिहरि गिरिधरगीतेन गीतेन जगदिदं ह्लाद्यते स्म हे।।५।।

भौमी–अब कवि मिथिलाँचल में ही प्रसिद्ध लोक धुन में गीत प्रस्तुत कर रहे हैं–वैशाख मास, शुक्ल पक्ष, नवमी, मंगलवार मध्याह्न के समय राजा जनक पुण्यारण्य में पृथ्वी को जोतना प्रारंभ किये। महाराज जनक हाथ में सोने का हल लेकर पुण्यारण्य की भूमि जोतते हुए, उसी प्रकार सुशोभित हो रहे थे, जैसे कोई ब्रह्मजिज्ञासु आरण्यक ब्राह्मण का विचारों से आलोडन कर रहा हो। सोमलता के बोने के लिए जब महाराज जनक अपने हल से रेखा ही बना रहे थे कि उसी समय उसी के बीच में पृथ्वी को फोड़कर सीताजी उसी प्रकार प्रकट हुईं, जैसे श्रुति से ब्रह्मविद्या प्रकट होती है। चंपा और स्वर्ण के समान शरीर वाली, तीनों लोक में विख्यात, श्रीरामचन्द्र के मुखचन्द्र की चकोरी, साकेत विहारिणी सीताजी ही जनकराज की पुत्री रूप में प्रकट

हुईं। देवता पुष्प बरसाने लगे, आकाश में देववाद्य बजने लगे और **गिरिधर** कवि द्वारा गाये हुए गीत से सारा संसार आह्लादित होने लगा।

गीत संख्या-३

प्रकटिता कुमारी नतसुरनारी श्रितहलसीता सीता।
रघुचन्द्रचकोरी जनककिशोरी सुविमलचरितपुनीता।।
सुन्दरवरवामा हृदि धृतरामा रामभक्तिसुविनीता।
नवचम्पकवर्णा विजितसुवर्णा श्रुतिगणगीतसुगीता।।१।।
धृतकनकापीडा कृतखलपीडा ब्रीडामन्मथनारी।
श्रितमौक्तिनासा शशिकरहासा विलसति भूमिकुमारी।।
दाडिमरुचिदशना नीलसुवसना चरणविनतवनचारी।
करकङ्कणशोभा हृतमदलोभा लोभितभुवनविहारी।।२।।
जितभानुहुताशनश्रितकमलासनसिंहासनमासीना ।
वरविलसच्छत्रा परमपवित्रा चित्रा शुभा नवीना।।
वसुसखीपरीता प्रथाप्रतीता रघुवरचिन्तनलीना।
जितलोकललामा सुभगा श्यामा प्राच्यप्यर्वाचीना।।३।।
शतचलाप्रकाशा विजिताकाशा लसदनकाशा दिव्या।
वृहदशरणशरणा सरसिजचरणा कर्णाभूषणभव्या।।
श्रुतिकुण्डललोला लसितकपोला सततमलोला नव्या।
कविगिरिधरगीता प्रभवति सीता धरणिसुरगवी गव्या।।४।।

भौमी–अब कवि '**भए प्रगट कृपाला दीनदयाला**' की ढाल में सीताजी का प्राकट्य गीत प्रस्तुत कर रहे हैं–देववधुएँ जिन्हें प्रणाम करती हैं, ऐसी श्रीराममुखचन्द्र की चकोरी, अत्यंत निर्मल चरित्रों से पवित्र, हृदय में श्रीराम को धारण की हुई, श्रीरामभक्तिरूप होने के कारण अत्यंत पवित्र, सुन्दर षोडशी महिला का वेषधारण की हुई, हल की सीता अर्थात् रेखा का आश्रय ली हुई, नवीन चंपा के समान कान्ति वाली, अपनी शोभा से स्वर्ण को जीतने वाली, वैदिक ऋचाओं द्वारा अनेक गीतों में गाई जाने वाली, श्रीसीता ही जनकराज किशोरी के रूप में प्रथम अवस्थापन्न सोलह वर्ष की दीखने वाली कन्या के रूप में प्रकट हुईं। दुष्टों को पीड़ित करने वाली, स्वर्ण मुकुट धारण की हुई, कामपत्नी रति को भी लज्जित करने वाली, नासिका में मुक्तामणि धारण की हुई, चन्द्रमा के किरणों के समान हास वाली, अनार के दानों के समान दाँत वाली, नीलवस्त्र धारण की हुई, श्रीहस्त में विराजमान कंकण की शोभा से युक्त, मद-लोभादि को नष्ट करने वाली, भुवनविहारी भगवान श्रीराम को भी लुभा देने वाली, जिनके चरणों में वनचारी कोल-भील-वानर-भालु भी भविष्य में झुकने वाले हैं, ऐसी भूमिनन्दिनी सीताजी पुण्यारण्य (पुनौरा) की धरती पर प्रकट होकर सुशोभित हो रही हैं। अपने तेज से सूर्यनारायण और अग्नि को भी जीतने वाले, पद्मासन के आकार में दीखने वाले, दिव्य सिंहासन पर आसीन, सुन्दर छत्र से सुशोभित, परम पावन, आश्चर्यमयी, कल्याणकारिणी, सदैव नवीन अवस्था में विराजमान, आठ सखियों से युक्त, प्रसिद्धि से संपन्न, श्रीराम की एकमात्र विश्वासपात्र और उन्हीं प्रभु के चिन्तन में लीन,

लोक के रत्नों को जीतने वाली, प्राची अर्थात् सबसे प्राचीन होकर भी अर्वाचीन रूप से संपन्न अर्थात् माँ होकर भी दुलहिन जैसी दिखती हुई सीता जी प्रकट हुईं। अनंत बिजलियों के समान प्रकाश वाली, आकाश अर्थात् भगवान श्रीराम को भी जीतने वाली, सबको आश्रय देने वाली, दिव्या अर्थात् साकेत लोक से आई हुई, ब्रह्मस्वरूपिणी, अशरणों को भी शरण देने वाली, कमल जैसे चरणों वाली, कानों के आभूषणों के कारण सुन्दर लगने वाली, चंचल कुंडलों को कान में धारण करने वाली, सुन्दर कपोलों वाली, सदैव स्थिर स्वभाव वाली, पृथ्वी रूप कामधेनु की गव्य अर्थात् दुग्ध-दधि- घृतधारा स्वरूप, नवीन अंगों से संपन्न, **गिरिधर** कवि के द्वारा गाई गई भगवती सीता आज प्रभाव संपन्न होती हुई प्रकट हुई हैं।

सीतारामहितैषिणी मखभुविर्भूय।
गिरिधरेश्वरी लसति वै दुरितगणानभिभूय।।

श्रीरामचन्द्र जी का हित करने के लिए, जनक जी की यज्ञभूमि में प्रकट होकर, **गिरिधर** कवि के पापों को समाप्त करती हुई, जनकनन्दिनी सीताजी विराजमान हो रही हैं। जनकपुर जनकलली की जय।

गीत संख्या-४

धन्या धन्या मिथिलाधरणी एषा धन्यो राजा जनकोऽपि हे।
यत्र सुता भूत्वा त्रिभुवनजननी किशोरी सीता विलसति हे।।१।।
चम्पककनकसुदेहा शिरसि छत्रं शोभमानं हे।
यस्याः नखशिखलक्ष्मीं लक्षयित्वा रामस्य मनो लोभमानं हे।।२।।
अष्टाभिश्च सखीभिः सुसेव्यमाना सततं प्रसाद्यमाना हे।
हरिहरि गिरिधरगीतं गायं गायं प्रहर्षिता सम्पाद्यमाना हे।।३।।

भौमी–अब कवि मिथिला के सोहर धुन में ही बधाई गीत प्रस्तुत कर रहे हैं। अहो! यह मिथिला की पृथ्वी धन्य है, धन्य है तथा महाराज जनक भी धन्य हैं जिन दोनों अर्थात् पृथ्वी और जनक के अनुराग से प्रभावित होकर तीनों लोकों की माता सीता जी उन्हीं पृथ्वी और राजा जनक की पुत्री होकर सुशोभित हो रही हैं। भगवती सीताजी का सुन्दर शरीर चम्पा और स्वर्ण के समान है। उनके मस्तक पर छत्र सुशोभित हो रहा है। सीता जी इतनी सुन्दर हैं कि जिनके नख-शिख-सौन्दर्य को देखकर भविष्यत् काल में श्रीराम का मन भी उन पर लुब्ध हो जायेगा। सीता जी आठ नित्य सखियों द्वारा सेवित हो रही हैं और प्रसन्न की जा रही हैं। इसी प्रकार **गिरिधर** कवि के गीतों को गा-गाकर वे आह्लादित की जा रही हैं।

गीत संख्या-५

सीताप्राकट्यमद्य जातं हे मातः गगनेऽपि वाद्यते वर्धापी।।
मातुः पृथिव्या कुक्षिः सफलिता लोके यशश्चारु ख्यातम्।।१।।
जय जय कथयति विनृत्यति गायति सुरवरमुनिवरव्रातम्।।२।।
अद्य महोत्सवो भूरि जनकपुरे सुखं नहि मनःसु सम्मातम्।।३।।
माता सुनयना रत्नानि लुण्ठयति पिता धेनुमणिगणजातम्।।४।।
गायं गायं सीताप्राकट्ययशो भव्यं गिरिधरस्य धन्यं जन्म जातम्।।५।।

भौमी- अब कवि मैथिल अंचल की बधाई लोकधुन की ढाल में सीता जी का प्राकट्य महोत्सव गा रहे हैं– एक मैथिली बालिका अपने माँ से कह रही है– हे माँ! आज सीता जी का प्राकट्य हुआ है। आकाश में भी बधाई बज रही है। माँ पृथ्वी की कोख सफल हो गई। लोक में उनका यश विख्यात हो गया। श्रेष्ठ देवताओं तथा मुनिजनों का समूह जय–जयकार कर रहा है, नाच रहा है और गा रहा है। आज जनकपुर में बहुत बड़ा महोत्सव हो रहा है, मन में सुख समा नहीं रहा है। माता सुनयना जी रत्न लुटा रही हैं और पिता जनक वस्त्र और मणिगण लुटा रहे हैं। इसी प्रकार सीता जी की प्राकट्य यशो गाथा गा–गाकर **गिरिधर** कवि का भी जन्म धन्य हो गया है।

सन्दर्भश्लोकौ

अथाययौ रविरिव भासयन् भुवं सशारदो विविधकलाविशारदः।
सनारदः सुरगणपूजितो मुदा मखावनिं जनकमहामहीपतेः।।१।।
निरीक्ष्य तां षोडशवर्षमाप्तां शम्पासुवर्णोपमदिव्यगात्राम्।
सिंहासनस्थां धृतधर्मसंस्थां सीतां प्रतीतां प्रजगौ सुरर्षिः।।२।।

भौमी- अब कवि दो सन्दर्भ श्लोकों में कथाक्रम को व्यवस्थित कर रहे हैं। इसके अनन्तर अनेक कलाओं में विशारद देवगणों से पूजित देवर्षि नारद सूर्य की भाँति पृथ्वी को प्रकाशित करते हुये सरस्वती जी के साथ महाराज जनक जी की यज्ञ भूमि में पधारे। बिजली और स्वर्ण के समान दिव्य शरीर वाली सोलह वर्ष की किशोरी जैसी दिखती हुई सभी धर्म–संस्थाओं को धारण करने वाली सिंहासन पर आसीन उन विश्वस्त सीता जी के दर्शन करके देवर्षि नारद एक गीत गा उठे।

गीत संख्या-६

जयतात् जनककिशोरी सीता।
आदिशक्तिहरिभक्तिरूपिणी प्रभुमुखचन्द्रचकोरी।।१।।
अशरणशरणा सरसिजचरणा श्रीसाकेतावनिविहारिणी।
चम्पकवर्णा कुण्डलकर्णा विलसदपर्णा मनश्चारिणी।।२।।
रामभक्तिपथप्रथमाचार्या जगज्जनस्थितिविलयकारिणी।
सम्प्रति लोके करुणा कार्या रामचन्द्रहृदजिरविहारिणी।।३।।
कर्तव्या सम्प्रति शिशुलीला रूपमेतदुपसंहरणीयम्।
सुरसरिदमलं चरितं विमलं शैशवानुकूलं चरणीयम्।।४।।
सिनोषि रामं तेन सीयसे तस्मान्नाम्ना ख्याता सीता।
सीताग्रात्प्रकटा स्यसि दुःखं ततोऽपि सीता हरिप्रतीता।।५।।
भारतीयललनोचितलीला भगवति किल भारते विधेया।
निजवरगुरुगोत्रे च गिरिधरे कृपया निजपदभक्तिर्देया।।६।।

भौमी- जनकराज पुत्री, आदिशक्ति, भगवद्भक्तिस्वरूपिणी, श्रीराम मुखचन्द्र की चकोरी, जनकराज

किशोरी सीता जी की जय हो। आप चम्पा के समान वर्ण वाली कान में कुण्डल धारण की हुई, सुन्दर पार्वती जी के मन में भ्रमण करने वाली श्रीराम भक्ति परम्परा की प्रथम आचार्या तथा संसार का जन्म, पालन और प्रलय करने वाली हैं। श्रीराम के हृदयांगण में विहार करने वाली सीता जी इस समय आप संसार पर करुणा करें। इस समय आप बाललीला करें और यह किशोरी रूप छिपा लें और बाल्यावस्था के अनुकूल ही गंगा जी के समान निर्मल चरित्र का विस्तार करें। आप श्रीराम को प्रेम बन्धन में बाँधती हैं और प्रभु के प्रेम-बंधन में बँध जाती हैं। सीता अर्थात् हल के अग्र भाग से आप प्रकट हुई हैं। आप दु:खों को नष्ट करती हैं। इन्हीं अनेक कारणों से आपका सीता नाम ख्यात होगा। आप स्वयं भगवान श्रीराम की विश्वासपात्र हैं। अत: आप सीता ही हैं। हे भगवति! इस भारतवर्ष में आप भारतीय आदर्श महिला की लीला प्रस्तुत करें और अपने पति श्रीराम के गुरु गोत्र में जन्में हुए मुझ कवि **गिरिधर** को अपने प्राणपति श्रीराम की भक्ति प्रदान करें।

गीत संख्या-७

सीताजनकराजजन्या भवतु कुलकमनीयकन्या।
ऐश्वर्यं संहरतु सुशीला मिथिला अयोध्या भूयाद् धन्या।।१।।
जनकसुनयनाक्रोडे क्रीडतु मैथिलीं वदतु वदान्या।
सुखयतु वै मैथिलानवधिनो ललना सकललोकमान्या।।२।।
रसिकमनोरथसुरतरुलतिकां का सुफलयतु त्वदन्या।
देया कृपया गिरिधरकवये निजवरभक्तिरनन्या।।३।।

भौमी- अब नारद जी अवध और मिथिला की नचारी लोक धुन की ढाल में गीत गा रहे हैं। हे सीता जी! आप जनकराज की पुत्री बनकर राजकुल की सुन्दर कन्या का रूप धारण कर लें। आप शीलवती हैं तथा अपना ऐश्वर्य समेट लीजिए जिससे आपको पुत्री रूप में पाकर मिथिला धन्य हो और बहूरूप में पाकर श्रीअयोध्या धन्य हो जाय। आप उदार स्वभाव वाली हैं अत: छोटी बालिका बनकर महाराज जनक और रानी सुनयना की गोद में खेलें और मैथिली भाषा में बोलें। आप सम्पूर्ण लोकों में माननीय महिला रूप में प्रकट होकर मैथिलों और अवधवासियों को सुखी कर दें। क्योंकि सख्यमिश्रित मधुरोपासनारूप कल्पलता को आपके अतिरिक्ति कौन देवी सुफल बना सकती है? आप कृपा करके **गिरिधर** कवि को भी अपने प्राणधन श्रीराम की अनन्य भक्ति प्रदान कर दें, जिसे प्रेम भक्ति कहा जाता है।

गीत संख्या-८

धन्यं धन्यं भाग्यं त्वदीयं जनकनृप सुतां प्राप्य भगवत्स्वरूपाम्।
धन्यं धन्यं पुण्यं युष्मदीयं जनकनृप सुतां प्राप्य भगवत्स्वरूपाम्।
दर्शं दर्शं सप्रहर्षमिमां लोकजननीं धन्यं धन्यं नयनं मदीयं जनकनृप।।१।।
प्रथमामाचार्यामिमामार्यां नामं नामं धन्यं धन्यं जन्मास्मदीयं जनकनृप।।२।।
ये भजन्ति ये भजिष्यन्ते देवीमेतां धन्यं धन्यं जीवनं तदीयं जनकनृप।।३।।
रक्ष राक्षसेभ्य: प्रयत्नेन महता न्यासं सहोल्लासं भगवदीयं जनकनृप।।४।।
गिरिधरगीतं गीतसीताभिरामं धन्यं महाकाव्यमेतदीयं जनकनृप।।५।।

भौमी– हे महाराज जनक! आपका भाग्य धन्य है और आपका पुण्य भी धन्य है। इन भगवत्स्वरूपिणी पुत्री को प्राप्तकर आप स्वयं धन्य हैं। आज प्रसन्नता के साथ इन लोकमाता सीता जी के दर्शन कर–करके मेरा नेत्र भी अतिशय धन्य है। हे महाराज! इन नारी श्रेष्ठ भक्ति परम्परा की प्रथम आचार्या सीताजी को बार–बार प्रणाम करके आज हमारा जन्म भी अतिशय धन्य हो रहा है। जो इन्हें भज रहे हैं और भविष्य में जो इन देवी का भजन करेंगे उनका जीवन भी अत्यन्त धन्य है। हे महाराज! ये सीता जी भगवान श्रीराम की धरोहर हैं। इनको बहुत बड़े प्रयास से और प्रसन्नता से सदैव राक्षसों से बचाते रहियेगा। इसी प्रकार **गिरिधर** कवि द्वारा गीतबद्ध किया हुआ श्रीसीता जी के यश से सम्बन्धित **गीतसीताभिरामं** नामक संस्कृत गीत महाकाव्य भी धन्य–धन्य है क्योंकि इसमें प्राकृत नायक–नायिका का वर्णन नहीं किया गया है और न ही इसमें उत्तेजक शृंगार का वर्णन है।

विशेष– इस गीत में कवि ने जानबूझकर 'भजिष्यन्ते' शब्द का प्रयोग किया है। सामान्यतः भज् धातु अनिट है। उसके लृट् लकार में भजिष्यन्ते नहीं बन सकता, वहाँ भक्ष्यन्ते बनता है। पर यह प्रयोग कवि को अनुकूल नहीं आया। अतः भजनं भजः भज् धातु से पचादित्वात् भाव में अच् प्रत्यय करके पुनः भजं करिष्यन्ते इति भजिष्यन्ते इस प्रकार व्युत्पत्ति करके आचारक्विबन्त शब्द से लृट् लकार में सेट् मानकर '**भजिष्यन्ते**' प्रयोग बनाया है। यही यहाँ कवि की वैयाकरण चातुरी है।

सन्दर्भश्लोकः

निगद्य भूवरपतिमित्थमादरात् पुनर्गते विवुध–ऋषौ यथागतम्।
प्रसेदिवान् कलितकरङ्कन्यको बुधो यथा जनकनृपः प्रपत्तिमान्।।१।।

भौमी– इस प्रकार पृथ्वी के वास्तविक पति जनक जी को समझाकर देवर्षि नारद के आकाश मार्ग से ब्रह्मलोक चले जाने पर एक सुन्दर पिटारी में कन्या सीता जी को लिये हुए जनकजी उसी प्रकार प्रसन्न हो रहे थे जैसे शरणागति को प्राप्त कर मुमुक्षु विद्वान प्रसन्न हो जाता है।

गीत संख्या–९

मुदितो विदेहकुलराजो गृहीतकरकन्यको हे।
स्नेहान् मिथिलां प्रविश्य निजपुरोधसमाह्वयदादरेण हे।।१।।
श्रृणु श्रृणु सतानन्द पुरोहित स्वस्तिवाकं वाचय हे।
अद्य जातं मम कन्याललाम यथेष्टवरं याचय हे।।२।।
गृहे गृहे मङ्गलानि गापय चतुष्काणि पूरय हे।
भगवन् ग्रहशान्तिं होमं विधेहि सकलविघ्नं दूरय हे।।३।।
विहस्याह पुरोहितः शतानन्दः किमु राजन् मूढो जातो हे।
राजन् पुत्र्यां किमु जातायां महोत्सवः किमु मङ्गलानां व्रातो हे।।४।।
पुत्री तु धनं परकीयं किमर्थमस्यां हर्षेण हे।
राजन् किमु परगेहं किल गन्त्र्यां महोत्सवप्रकर्षेण हे।।५।।

क्षुब्धः प्राह जनकः पुरोहितं भवताऽपि नेत्थं वाच्यं हे।
ब्रह्मन् पुत्री शतकोटिपुत्रसदृशी रहस्यं चेदं हृदि साच्यं हे।।६।।
इयमादिशक्तिर्हरिभक्तिः सततमियमनवद्या हे।
ब्रह्मन् अयोनिजा धरिणीललाम पवित्रा यथा बह्मविद्या हे।।७।।
न स्पृहये सूनवे कदापि ममैषा जीवनाशास्ति हे।
ब्रह्मन् समायाता निमिकुलभाग्यं क्षपितभवपाशास्ति हे।।८।।
कोटिकोटिपुत्रसमा मम पुत्री नाम्ना भुवि ख्याता सीता हे।
ब्रह्मन् गिरिधरगीतसुगीता सदैव सुप्रतीता सीता हे।।९।।

भौमी- अब कवि फिर मिथिलाँचल के सोहर धुन में ही यह गीत प्रस्तुत कर रहे हैं–महाराज जनक यज्ञस्थली से प्रकट कन्या को प्राप्त करके बहुत प्रसन्न हुए और स्नेह के साथ मिथिला में प्रवेश करके अपने कुलपुरोहित शतानन्द जी को आदरपूर्वक बुलाया और बोले– हे पुरोहित शतानंद जी सुनिये! सुनिये! आज मुझे पुत्रीरत्न की प्राप्ति हुई है। आप स्वस्ति-वाचन कीजिये और मनचाहा वरदान माँग लीजिये। हे भगवन्! जनकपुर के घर-घर में मंगलगान करवाइये, चौके पुरवाइये, ग्रहशान्ति होम कीजिये, सभी विघ्नों को दूर कीजिये। शतानन्द पुरोहित ने हँसकर कहा-राजन्! क्या आप मूढ़ हो गये हैं? अरे पुत्री के जन्म लेने पर कौन-सा महोत्सव? क्या मंगलों का समूह? अभी इन सबकी कोई आवश्यकता नहीं। राजन्! पुत्री तो पराया धन है, इसके लिए इतना बड़ा हर्ष क्या? पराये घर जाने वाली बेटी के लिए इतना बड़ा उत्सव क्यों? जनक जी ने क्षुब्ध होकर पुरोहित से कहा–आप ऐसा मत बोलें। एक बेटी सौ बेटों के समान होती है, यह रहस्य हृदय में स्थिर कर लें। ब्रह्मन्! मेरी बेटी आदिशक्ति हैं तथा यही निन्दारहित श्रीराम जी की भक्ति भी हैं, यह सांसारिक महिला के शरीर से नहीं उत्पन्न हुई हैं। यह पृथ्वी की रत्न और वेदान्त-विद्या के समान पवित्र हैं। हे ब्रह्मन्! सीताजी को प्राप्त कर अब मैं कभी भी पुत्र की इच्छा नहीं करता हूँ। यह मेरे जीवन की आशा हैं। निमिकुल के सौभाग्य के रूप में यह बेटी आई है, इससे मेरे भवबन्धन समाप्त हो जायेंगे। हे ब्रह्मन्! सीता नाम से विख्यात मेरी बेटी करोड़ों-करोड़ों पुत्रों के समान है। यही **गिरिधर** कवि के द्वारा निरन्तर गायी जा रही है और यही सीता मेरे विश्वास का पात्र है।

सन्दर्भश्लोकः

निशम्य तद् जनकगिरं पुरोधसा समाहृता द्विजकुलकेतवो बुधाः।
निरीक्ष्य तां कनकनिभां च कन्यकां जगुर्मुदा श्रुतिगणगीतगौरवा।।१।।

भौमी- इस प्रकार जनक जी की वाणी सुनकर शतानन्द पुरोहित ने विद्वान ब्राह्मण श्रेष्ठों को बुलवा लिया। वे ब्राह्मण वेद-मंत्रों द्वारा जिनका गौरव गान किया जा रहा है ऐसी चंपावर्णी कन्या के दर्शन करके प्रसन्नतापूर्वक गाने लगे।

गीत संख्या-१०

वाद्यते वर्धापी जनकराजद्वारे।
अद्य प्रकटिता त्रिभुवनजननी विलसितपुराकृतपुराणपुण्यसारे।।१।।

वैशाखे शुक्लपक्षे पावननवम्यां अभिजिति मुहूर्ते प्रसिद्धभौमवारे।।२।।
अयोनिजा भित्वा भूमिं प्रकटिता सीता मञ्जुलमहोत्सवःसमस्तसंसारे।।३।।
नृत्यन्त्यो वादयन्त्यो गायन्त्यो योषितो हर्षप्रकर्षोऽस्ति नृपपरिवारे।।४।।
ग्राहं ग्राहं क्रोडसमे लालयन्ते! जनकनृपकुमारीं प्राचीरे प्राकारे।।५।।
वर्धापनं गायन् कविर्गुरुर्गिरिधरो वारं वारं मज्जत्यानंदपारावारे।।६।।

भौमी- अब कवि शास्त्रीय दादरा ताल में निबद्ध करके सीता जी की बधाई गा रहे हैं। आज सुशोभित हो रहे पुराण पुरुषों के पूर्व में किये हुये पुण्यों के तत्वों से युक्त जनकराज द्वार पर बधाई बज रही है क्योंकि आज ही तीनों लोकों की माता सीता जी प्रकट हुई हैं। आज ही वैशाख शुक्ल पक्ष की पवित्र नवमी, अभिजित् मुहूर्त और सर्वप्रसिद्ध मंगलवार भी है। आज ही पृथ्वी को फाड़कर अयोनिजा सीता जी प्रकट हुई हैं। सम्पूर्ण संसार में आनन्दपूर्ण महोत्सव हो रहा है। सभी महिलाएँ नाचती, बाजे बजाती हुई गा रही हैं। राजपरिवार में बहुत हर्ष हो रहा है। सभी लोग दीवारों की छतों पर, परकोटों पर सीता जी को गोद में ले-लेकर राजपुत्री का दुलार कर रहे हैं और इस महोत्सव की बधाई गाता हुआ प्रभु के कुलगुरु में उत्पन्न कवि **गिरिधर** भी आनन्द के सागर में बार-बार नहा रहा है।

गीत संख्या-११

अद्य मङ्गलवाद्यं च वादनीयं जनकगेहे सीतागता।।
पुण्यारण्यधरणितो जाता नाम्ना सीता भुवि विख्याता।
अद्य निखिलजगन्नो विषादनीयं जनकगेहे सीतागता।।१।।
धन्योऽयं माधवः सुमासो दिशि दिशि विलसितविशदोल्लासः।
अद्य मङ्गलं च सम्पादनीयं जनक गेहे सीतागता।।२।।
पूज्यन्तां देवताः समस्ताः चर्च्यन्तां वीथिकाश्च व्यस्ताः।
अद्य मानसं च समाह्लादनीयम् जनकगेहे सीतागता।।३।।
कन्याजनिमहोत्सवं कार्यं केन चान्यथा नैव विचार्यम्।
गिरिधरेण गीतं सम्प्रसादनीयं जनकगेहे सीतागता।।४।।

भौमी- आज मांगलिक वाद्य बजाना चाहिए, क्योंकि जनकराज के भवन में सीता जी प्रकट हो गई हैं। ये पुण्यारण्य (पुनौरा) की पृथ्वी से प्रकट हुई हैं, सीतानाम से जगत में प्रसिद्ध हुई हैं, आज संपूर्ण जगत को दुःखी नहीं होना चाहिए, क्योंकि सीता जी का प्राकट्य हो चुका है। यह वैशाख मास धन्य है, सभी दिशाओं में आनन्द ही आनन्द सुशोभित हो रहा है, आज मंगलों का संपादन करना चाहिए और सीता जी का प्राकट्य हो गया। सभी देवताओं का पूजन किया जाय और व्यस्त गलियों को भी सजाया जाय, आज सभी के मन प्रसन्न हों, क्योंकि जनकराज के मन्दिर में सीताजी का अवतार हो चुका है। पुत्री जन्म का महोत्सव किया जाय, किसी के द्वारा कोई दूसरा विचार न किया जाय और कवि **गिरिधर** के द्वारा भी प्रसन्नतापूर्वक गीत गाया जाय, अब मिथिला में सीता जी प्रकट हो चुकी हैं।

गीत संख्या-१२

क्रोडे कृत्वा सुनयना हे लालयते सीताम्।
ससलिलसरसिजनयना हे पालयते सीताम्।।१।।
दामिनिकनकसुवर्णां हे सुममृदुलशरीराम्।
कुण्डलकलितसुकर्णां हे हृदि धृतरघुवीराम्।।२।।
लघुलघुनलिनितचरणां हे करसरसिजशोभाम्।
सन्ततमशरणशरणां हे कृतरघुवरलोभाम्।।३।।
चुम्बति पश्यति दोलति हे पाययते जननी।
गिरिधरस्वामिनिचान्द्रीं हे किमुपाति सुरजनी।।४।।

भौमी–अब कवि मिथिला की आँचलिक धुन में ही गीत प्रस्तुत कर रहे हैं–आज माता सुनयना सीता जी को गोद में लेकर दुलार रही हैं, कमलनेत्रों में आँसू भरकर अपनी इकलौती बेटी का पालन पोषण कर रही हैं। सीताजी का श्रीविग्रह बिजली और स्वर्ण के समान है, उनका शरीर पुष्प के समान कोमल है, सीताजी के कान में कुंडल और हृदय में श्रीराम विराजमान हैं। उनके चरण छोटे-छोटे और कमल के समान हैं, उनके हाथों पर भी कमल की शोभा है, वे अशरणों को भी शरण देती हैं तथा श्रीराम का उन्हें लोभ है। माता सुनयना बेटी को चूमती हैं, दुलारती हैं और स्तनपान कराती हैं, क्या कदाचित् उजाली रात ही **गिरिधर** कवि की स्वामिनी श्रीसीतारूप चाँदनी का लालन पालन कर रही है?

विशेष- इसी स्वर में मैथिलकोकिल विद्यापति ने मैथिली भाषा में बहुत से गीत गाए हैं।

गीत संख्या-१३

क्रीडन्ती किशोरी लघ्वी शमाङ्गणे सूते हे।
यदा तस्या नाम पृच्छे सीता सीता ब्रूते हे।।१।।
लघु लघु चरणाभ्यां मद्‌गृहं पुनीते हे।
कलवलगिरा पापकाननं लुनीते हे।।२।।
मन्दमन्दहासैर्जनशमलं श्रृणीते हे।
द्विद्विदशनाभ्यां! दीर्घदुरितं दृणीते हे।।३।।
अयोध्यानगरकथां श्रृणुते गृणीते हे।
गिरिधरप्रभुवरं मातरं वृणीते हे।।४।।

भौमी- आँगन में खेलती हुई जनकतनया सीताजी दिव्य कल्याण को जन्म दे रही हैं, जब उनका नाम पूछती हूँ, तब वे सीता-सीता कहकर उत्तर देती हैं। छोटे-छोटे चरणकमलों से सीताजी मेरे घर को पवित्र कर रही हैं और अपनी तोतली बोली से हमारे पाप के वन को काट डाल रही हैं। मन्द-मन्द हास से सीताजी भक्तों के मलों को समाप्त कर रही हैं, अपनी दो-दो दँतुलियों से भक्तों के पापों को विदीर्ण कर रही हैं। अयोध्या नगर की कथा सुनती हैं और कहती हैं और **गिरिधर** कवि के प्रभु श्रीराम को ही अपने वर रूप में माता जी से

मांगती हैं, अर्थात् कहती हैं कि माँ! श्रीराघव से मेरा विवाह करा दीजिए। यह गीत एक सुनयना जी की सखी गा रही है।

सन्दर्भश्लोकः

अथावोचत् सुनयना मैत्रेयीं द्रष्टुमागताम्।
प्रेमगद्‌गदया वाचा सीतावैचित्र्यमादरात्।।१।।

भौमी–एक बार याज्ञवल्क्य जी की पत्नी मैत्रेयी जी श्रीसीताजी के दर्शनों के लिए जनकराज भवन में पधारीं, तब प्रेम से गद्–गद् वाणी द्वारा आदरपूर्क सुनयना जी ने सीताजी की विचित्रता के सम्बन्ध में मैत्रेयी जी से पूछा।

गीत संख्या-१४

हे मातः किं कथयामि तवाग्रे सीता सुता विचित्रा मे।।
इमां वीक्ष्य प्रसवेन विना शुभे दुग्धं स्त्रवति स्तनो मम।
सीतां लालयितुं स्पृहयत इह दृष्ट्वा द्रवते मनो मम।।
हे मातः किं प्रथयामि तवाग्रे सीता जगत्पवित्रा मे।।१।।
यदा प्रभृत्या याता सीता परमप्रसन्ना जनकपुरी।
नार्यो नरा नरीनृत्यन्ते विलसति धातुश्च चातुरी।।
हे मातः किमुत वदामि तवाग्रे सीता विशदचरित्रा मे।।२।।
पुत्री दम्पत्योः समभीष्टा कोटिपुत्रतो गरीयसी।
कोटिकोटिगिरिजेन्द्राणी शारदारमातो वरीयसी।।
हे मातः किमु निगदामि तवाग्रे सीता महितविधित्रा मे।।३।।
जीवनमूलिमिवाति विशिष्टां पक्ष्मनयनमिव सुलालये।
गिरिधरप्रभोर्न्यासमथरक्ष्यं इति बुध्याहं निभालये।।
हे मातः सत्यं वदामि तवाग्रे सीता क्षमासहित्रा मे।।४।।

भौमी- रानी सुनयना कहती हैं–हे माँ मैत्रेयी! मेरी बेटी सीता जी तो विचित्र ही हैं। हे कल्याणी! बालक उत्पन्न किये बिना भी सीता जी को देखकर मेरे स्तन से दूध चू पड़ता है। सीताजी को देखकर उन्हें दुलारने के लिए इच्छुक होता हुआ मेरा मन द्रवित हो जाता है अर्थात् पिघल जाता है। हे माँ! आपके समक्ष मैं क्या कहूँ? मेरी सीताजी तो संपूर्ण जगत को पवित्र कर रही हैं। जब से सीताजी मिथिला में आई हैं, तब ही से जनकपुरी बहुत प्रसन्न है, सभी महिला–पुरुष नृत्य कर रहे हैं और ब्रह्मा जी की चतुरता भी सुशोभित हो रही है कि उनकी सौन्दर्य–कला का सीताजी के सम्मान में सदुपयोग हो रहा है। माँ! आपके सामने क्या कहूँ? मेरी सीताजी का चरित्र तो बहुत निर्मल है। माँ! हम पति–पत्नी, जनक और सुनयना ने प्रभु से श्रीराम भक्ति को ही पुत्रीरूप में माँगा था और वही हमें मिल गईं, ये करोड़ों बेटों से श्रेष्ठ हैं। हमारी सीता तो करोड़ों पार्वतियों, करोड़ों इन्द्राणियों, करोड़ों सरस्वतियों और करोड़ों लक्ष्मियों से भी उत्कृष्ट हैं। माँ मैत्रेयी! मैं आपको क्या बताऊँ? मेरी

सीता बेटी तो विचित्र अर्थात् ब्रह्माजी की रक्षा करने वाले विष्णु की भी पूज्या हैं। "महितः विधित्रः विष्णुः यां सा महितविधित्रा"।। माँ मैं बेटी सीता को अत्यंत विशिष्ट जीवनमूलिका समझकर उसी प्रकार दुलारती हूँ और पालती हूँ, जैसे पलक पुतरी की रक्षा करती है। सीताजी **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीरामजी की धरोहर हैं, इनकी यथाशक्ति रक्षा करनी चाहिए, इसी बुद्धि से मैं सदैव पुत्री सीता को संभालकर रखती हूँ। हे माँ! मैं आपको सत्य कह रही हूँ, मेरी सीता बेटी तो पृथ्वी का भी भार सहन करने वाली, क्षमा अर्थात् पृथ्वी की भी पुत्री हैं, व्यवहार में भले ही हम इन्हें पृथ्वी की पुत्री कहें, पर वास्तविकता में सीता पृथ्वी की भी माँ हैं।

सन्दर्भश्लोकः

शमञ्चन्तीं सीतां श्रुतिगदितगीतां भगवतीम्
स्वदृग्राजीवाभ्यां परिकलितप्रेमामृतभरा।
विशिष्टा सा हृष्टा भवकथनकृष्टावनिभुवो
विचित्रं मैत्रेयी गुणगरिमगुम्फं प्रणिजगौ।।१।।

भौमी–इस प्रकार सुनयना जी द्वारा सीताजी के कल्याण गाथा के प्रश्न से रोमांचित हुई ब्रह्मवादिनियों में विशिष्ट श्रीमैत्रेयी अपने कमलनेत्रों में सीताजी के प्रति उमड़े हुए प्रेमामृत–प्रवाह को धारण की हुई भूमिनन्दिनी के गुणों की गरिमा के गुच्छ से सजाए हुए गीत के द्वारा बेदों द्वारा गाए हुए गीतों से युक्त, सभी ऐश्वर्यों से संपन्न कल्याणकारिणी भगवती सीताजी को संबोधित करके प्रसन्नतापूर्वक गाने लगीं।

गीत संख्या–१५

धन्या धन्या राज्ञी सुनयना जगज्जननी मातृरूपा।।
आदिशक्तिरथ तव गृहे जाता सुमुखी सरसिजनयना।
जगज्जननी मातृरूपा।।१।।
प्रभुं तुरीयं मिथिलापुरीयं द्रक्ष्यति सफलितनयना।
जगज्जननी मातृरूपा।।२।।
भवतु विदेहो गुणाद् विदेहः नगरी लसतु त्रिनयना।
जगज्जननी मातृरूपा।।३।।
स्यात् सौभाग्यवती तव तनया संवृतनीरजनयना।
जगज्जननी मातृरूपा।।४।।
गिरिधरगीरपि गायतु गीतं कृतहरिगुणगणचयना।
जगज्जननी मातृरूपा।।५।।

भौमी–हे रानी सुनयना! आप धन्य हैं, आप जगज्जननी सीता जी की भी माँ अर्थात् संपूर्ण संसार की नानी माँ बन गईं। देखिए तो आपके भवन में स्वयं आदिशक्ति ही सुन्दर मुखवाली कमलनयनी बेटी बनकर जन्मीं। इन्हीं के कारण नेत्रों को सफल करती हुई यह मिथिलापुरी तुरीय परब्रह्म श्रीराम के भी दर्शन करेगी। भले गुणों से जनकजी विदेह बन जायँ, पर यह नगरी अब तीन नेत्रों से युक्त होगी, अर्थात् ज्ञान–वैराग्य और

भक्ति नेत्रों से सीताजी के ऐश्वर्य–सौन्दर्य और माधुर्य के दर्शन करेगी। कमलनेत्र श्रीराम को अपने हृदय में छुपाकर आपकी पुत्री सीता जी सौभाग्यवती बनें। और भगवान श्रीराम के गुणगणों का चयन करती हुई कवि **गिरिधर** की वाणी भी गीत गाती रहे।

गीत संख्या–१६

विलसति जनकमन्दिरे सीता।
बालभावमभितोऽभिनयन्ती विनयविवेकविचारविनीता।।१।।
लघुलघुनलिनितजानुपद्भिरपि गृहेऽजिरे वीथीसु च क्रीडति।
क्रीडनकानि ग्रहीतुं ललकति बालरतिं प्रभया परिब्रीडति।।२।।
पटपुत्रिकां निरीक्ष्य निर्मितां क्रीडनके सा तामपि मित्रति।
रामचन्द्रचित्रं चित्रांगी पश्यति चुम्बति पुनरथ चित्रति।।३।।
हृदिजपुटे निगूह्य पुलकाङ्गी निजसितनयनजलैरभिषिञ्चति।
किमुत कल्पजाम्बूनदलतिकापारिजातप्रतिकृतिं निषिञ्चति।।४।।
वीक्ष्य सुनयना करजैर्जनकं दुहितरमथ संकेत्य दर्शयति।
गिरिधरप्रभुभामिनीं भावितां भावमये पटले निदर्शयति।।५।।

भौमी–अब कवि हवेली पद्धति में सीता जी के सौन्दर्य का वर्णन कर रहे हैं–जनकमन्दिर में भगवती सीता जी सुशोभित हो रही हैं, दोनों प्रकार से बालभाव का अभिनय करती हुई विनम्रता–विवेक और विचार से प्रशिक्षित सीता जी शोभायमान हैं। सीता जी छोटे–छोटे अपने हस्त और श्रीचरणों से घर में, आँगन में और गलियों में खेलती हैं, खिलौने लेने के लिए लपकती हैं और अपनी प्रभा से वत्सल रति को भी लज्जित करती हैं। कपड़े से निर्मित गुड़िया को सीताजी खेल में अपना मित्र बना लेती हैं और श्रीरामचन्द्र के चित्र को निहारकर ध्यान से देखती हैं, चूमती हैं और पुनः चित्र बना लेती हैं। प्रभु के चित्र को हृदय में छिपाकर भगवती नेत्रों के आँसू से सींचती हैं, ऐसा लगता है, मानो कल्पवृक्ष की स्वर्णलता ही पारिजात की प्रतिमा का अभिषेक कर रही है। यह दृश्य देखकर रानी सुनयना जनक जी को अंगुलियों का संकेत करके सीताजी की इस भावमय पटल पर भविष्यत् काल में होने वाली **गिरिधर** कवि के प्रभु श्रीराम की धर्मपत्नी की निदर्शना ही करा रही हैं।

गीत संख्या–१७

सुनयना प्राह–

दिने दिने वर्धमाना शुक्लपक्षचान्द्रीव मिथिलानगरे सीता भाति हे।
पक्ष्मणा च पुत्तलीव निशि दिवा दम्पतिभ्यां पाल्यमाना नितरां विभाति हे।।१।।
शीघ्रमेव सीतायाश्च योग्यो वरश्चिन्तनीयश्चिन्मयस्वरूपा प्रतिभाति हे।
अयोनिजा दुहिता मे सर्वगुणमहिता वरोऽपि वरेण्यो भुवि ख्याति हे।।२।।
दिशि दिशि विदिशासु दृष्टिर्निपात्या नृपयत्नः सुमङ्गलं दधाति हे।
कन्यां कमनीयां वीक्ष्य वर्धमानां दिने दिने धैर्यं पते मां च विजहाति हे।।३।।

पुराऽपि मनोरथो मे दशरथसुतकृते सम्प्रति स नूतनतां याति हे।
गिरिधरप्रभुस्मृतौ स्फुरति च वामाङ्गं शकुनं सुमङ्गलं प्रयाति हे।।५।।

भौमी–अब सुनयना गा रही हैं–अहो! शुक्लपक्ष की चन्द्रलेखा की भाँति मेरी बेटी सीताजी मिथिला नगर में सुशोभित हो रही हैं। पलक द्वारा पुतली की भाँति रात–दिन हम राजदम्पति द्वारा पालित होती हुई सीताजी सुशोभित हो रही हैं। अब शीघ्र ही मेरी बेटी सीता के लिए सुन्दर वर का चिन्तन करना चाहिए। क्योंकि ये चिन्मय स्वरूपा हैं, मेरी बेटी अयोनिजा हैं, अतः इनके लिए सर्वगुणसंपन्न वर विचारणीय है, वह उपलब्ध भी है। हे प्राणपते! अब तो सुन्दर कन्या को दिन–दिन बढ़ती देखकर मेरा धैर्य टूट रहा है, सभी दिशाओं में, दिशाओं के कोणों में दृष्टि डालिए। सत् प्रयास मंगल करता ही है। दशरथ पुत्र श्रीराम के लिए मेरा प्रथम ही मनोरथ था, अब वह और भी नया होता जा रहा है, **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम के स्मरण से ही मेरा वामाङ्ग फड़क रहा है, निश्चित् कोई न कोई मंगल और शकुन प्रतीत हो रहा है।

गीत संख्या-१८

गायति कविः-

ललितललीं लालयति सुनयना।।
क्रोडे कृत्वाऽञ्चलेन वृत्वा क्षरितपयः पाययति सुनयना।
अधिपालनं कुमारीं कृत्वा शान्ता परिशाययति सुनयना।।१।।
आयाहि निद्रे जानकीनयने करजैश्च समाह्वयति सुनयना।
मम पुत्र्या नहि लगतु कुदृष्टिः सर्षपमथ वारयति सुनयना।।२।।
स्त्रवदपि नयननीरमथ भीत्या वसनैः परिसारयति सुनयना।
वत्सलसारचरितमिदमनघं गिरिधरमपि गापयति सुनयना।।३।।

भौमी–अब कवि हवेली पद्धति का गीत गाते हुए सीताजी की बाल झाँकी प्रस्तुत करते हैं–रानी सुनयना जी सुन्दरललीजू को दुलार रही हैं, सीताजी को गोद में लेकर आँचल से ढककर स्तन से चूता हुआ दूध पिला रही हैं। बेटी को पालने में लेटाकर शान्तभाव से सुनयना जी सीताजी को शयन करा रही हैं, आओ निंदरिया जानकी के आँख में आ जाओ, इस प्रकार सुनयना जी नींद को अंगुली से बुला रही हैं। मेरी बेटी को किसी के नजर न लग जाय, अतः सुनयना राई–लोन वार रही हैं, अमंगल के भय से गिरते हुए प्रेमाश्रु को भी वस्तु से रोक रही हैं। इसी प्रकार रानी सुनयना जी इस निष्पाप पुत्री विषयक वत्सल चरित्र को **गिरिधर** कवि से भी गवा रही हैं।

गीत संख्या-१९

क्रीडति किशोरी सीता दुग्धमतीतीरे हे।।
माण्डवीमुर्मिलां च श्रुतिकीर्तिं सङ्गे नीत्वा जानकी खेलन्ती भाति सुविमलनीरे हे।।१।।
फलपुष्पपत्रचये सुमृदुलपल्लवमये शीतलसुगन्धमन्दमलयसमीरे हे।।२।।
अष्टाभिः सखीभिः समं बालकेलिमनोरमं विहरति भूमिकन्या कमनकुटीरे हे।।३।।

किमपि परिहरति किमपि समाहरति हारं हारं यत्र तत्र जुष्टमुनिधीरे हे।।४।।
गिरिधरो गीतं गायन् हृदि शोभामिमां ध्यायन् मोदते विनोदपूर्णकोकिला सुकीरे हे।।५।।

भौमी–कवि पुनः हवेली पद्धति के गीत में ही सीता जी की बालकेलि का वर्णन कर रहे हैं–किशोरी जनकनन्दिनी जी दुधमती के तटपर खेल रही हैं, माण्डवी–उर्मिला और श्रुतिकीर्ति को साथ में लेकर जानकी जी निर्मल जल से संपन्न दुधमती के तट पर सुशोभित हो रही हैं। वह दुधमती तट फल–फूल–पत्तों तथा नवीन पल्लवों से संपन्न है, वहाँ शीतल–मन्द–सुगन्ध मलय वायु बह रहा है। भूमिनन्दिनी जानकी जी अपनी आठों सखियों के साथ दुधमती के तटपर बने हुए सुन्दर कुटीरों में बाललीला करती हुई विहार कर रही हैं। धीर–मुनियों से युक्त दुधमती तट पर जहाँ–तहाँ कुछ–कुछ ग्रहण करती हुई, कुछ वस्तुएँ फेंक देती हैं, और कुछ अपने पास रख लेती हैं। इस लीला का ध्यान करते हुए **गिरिधर** कवि भी मैथिल अंचल की संगीत पद्धति में गीत गाता हुआ कोकिल और शुकों के साथ प्रसन्न हो रहा है।

विशेष– यह गीत तुलसीकृत गीतावली के बालकांड के ६४ वें पद के आधार पर निबद्ध किया गया है।

गीत संख्या–२०

विलसति जनककुमारी हे मिथिलाराजगेहे।
निमिकुलराजकुमारी हे मिथिलाराजगेहे।।
चम्पकवर्णा नवकञ्जचरणा व्रीडितमन्मथनारी हे मिथिलाराजगेहे।।१।।
भगिनीसहिता गुणगणमहिता नतमारुतिब्रह्मचारी हे मिथिलाराजगेहे।।२।।
क्रोडे कृत्वा लालयति जनको मोदते ब्रह्मविचारी हे मिथिलाराजगेहे।।३।।
दर्शं दर्शं सुताविधुवदनं लोचनसलिलप्रचारी हे मिथिलाराजगेहे।।४।।
अस्या अनुरूपो गिरिधरप्रभुवरो दशरथभवनविहारी हे मिथिलाराजगेहे।।५।।

भौमी–अब कवि शुद्ध मैथिल लोकधुन में सीताजी की बाल लीला को गीतबद्ध कर रहे हैं–जनकजी की पुत्री सीता जी मैथिल राजभवन में शोभित हो रही हैं, निमि वंश की राजकुमारी मिथिला भवन में सुन्दर लग रही हैं। सीता जी का शरीर चंपा के समान है, उनके चरण नवीन कमल के समान हैं और सीताजी अपने रूप से कामपत्नी रति को भी लज्जित कर रही हैं। सीताजी जनकराज भवन में दिव्यगुणगणों से संपन्न होकर अपनी तीनों बहनों के साथ विराज रही हैं और समाधि में दर्शन करके ब्रह्मचारी हनुमान जी भी सीताजी को नमन कर रहे हैं। बेटी सीता के चन्द्रमुख को निहार–निहार कर महाराज के नेत्रों से आँसू बह रहे हैं। जनक जी मन में ही विचार कर रहे हैं कि मेरी बेटी के योग्य वर तो श्रीदशरथ के भवन में विहार करने वाले, **गिरिधर** कवि के स्वामी प्रभु श्रीराम ही हो सकते हैं।

सन्दर्भश्लोकौ

अथागमद् द्रष्टुमिमामनिन्द्यां देहप्रभाव्रीडितकोटिशम्पाम्।
स याज्ञवल्क्यो धृतयज्ञवल्क्यो मैत्रेयीनाथः श्रितमित्रवंश्याम्।।१।।
दृष्ट्वाऽथ सीतां नितरां विनीतां सुलक्षणां लक्षणबोधचुञ्चुः।
आहूय राजानमुदारसत्त्वं जगौ सुगीतं किल याज्ञवल्क्यः।।२।।

भौमी–इसके पश्चात् अपने देह की शोभा से करोड़ों बिजलियों को जीतने वाली, सूर्यवंशोद्‌भव श्रीराम को मन से श्रयण कर रही निन्दारहित बाल सीताजी के दर्शनों के लिए यज्ञ का बल्कल हाथ में लिए हुए मैत्रेयी के पति श्रीयाज्ञवल्क्य पधारे। लक्षण विचार में निपुण महर्षि याज्ञवल्क्य ने श्रेष्ठ लक्षणों से संपन्न अति विनम्र सीता जी के दर्शन करके जनक जी को बुलाकर इस प्रकार गीत गाया–

गीत संख्या २१

धन्योऽसि भो नृपमुकुटमणे जीवनं तव धन्यम्।
परमेश्वरीं सुतां पश्य हे कुरु नयनं धन्यम्।।१।।
नखशिखललितललामा हे जितकोटिकामवामा।
श्यामा हृदि धृतरामा हे रमणीया रामा।।२।।
आत्मारामसुसाध्या हे मुनिजनसमराध्या।
क्षमामयी क्षामेयी हे न कदाप्यपराध्या।।३।।
कोसलराजहृदीश्वरि हे ललना परमार्या।
गिरिधरस्वामिनी भामिनी हे किल प्रथमाचार्या।।४।।

भौमी–कवि विद्यापति की लोकधुन की ढाल में याज्ञवल्क्य से गीत गवा रहे हैं–याज्ञवल्क्य कहते हैं–हे राजाओं के मुकुटमणि महाराज जनक! आप धन्य हैं, आपका जीवन धन्य है, आपकी बेटी बनकर आई हुई परब्रह्मरूपा साकेतबिहारिणी परमेश्वरी सीता जी के दर्शन करिए, अपने नेत्र धन्य बना लीजिए। देखिए! सीताजी में नखशिखपर्यंत लालित्यरूप रत्न विराज रहा है, इन्होंने अपनी शोभा से करोड़ों कामपत्नियों को जीत लिया है, ये श्यामा अर्थात् मुग्धा नायिका के लक्षणों से संपन्न हैं, इन्होंने अपने हृदय में श्रीराम को धारण किया है, ये भविष्य में अत्यन्त सुन्दर आदर्श महिला बनेंगी। महाराज! पृथ्वी से प्रकट हुई सीता जी आत्माराम महर्षियों की साध्य हैं, इनमें क्षमा की अधिकता है, योगीजन इनकी आराधना करते हैं, इनका कभी भी अपराध नहीं करना चाहिए। महाराज! सीताजी **गिरिधर** कवि की स्वामिनी श्रेष्ठ लक्षणों से संपन्न महिला, भक्ति परंपरा की प्रथम आचार्या, श्रेष्ठ आर्यनारी तथा भगवान श्रीराम की हृदयेश्वरी हैं।

गीत संख्या २२

लालय सुतामिमां जगदम्बाम्।
धन्यं कुरु नरपाल जीवनं लब्ध्वा जगदालम्बाम्।।१।।
भूमिं भित्वा सीताग्रात् किल प्रकटा सती पुनीता।
तस्मात् सीता नाम्ना ख्याता भविता शाश्वतसीता।।२।।
प्रेम्णा श्रीरामं सिनोति सीयते पुनर्निजभर्त्रा।
स्यत्यमङ्गलं सुवति च जीवान् सूयत इदं विहर्त्रा।।३।।
स्वयं सच्चिदानन्दरूपिणी विगलितसकलविकारा।
मायानामपि माया चैवा क्षपितभीमभवभारा।।४।।

रूपदीपिका दीपशिखा निजभक्तानामनवद्या।
गिरिधरप्रभोः सततमाह्लादिनि शक्तिर्नित्यमनिन्द्या।।५।।

भौमी–पुनः याज्ञवल्क्य हवेली पद्धति में गाते हैं–हे महाराज! अब जगदंबा को ही अपनी पुत्रीरूप में पाकर लालन-पालन कीजिए, संपूर्ण संसार को आश्रय देने वाली, सीताजी को बेटी के रूप में प्राप्त कर अपना जीवन धन्य कीजिए। चूँकि ये पृथ्वी का भेदन करके आपकी सीता अर्थात् हलकी रेखा के अग्रभाग से प्रकट हुई हैं, इसीलिए परम पवित्र नित्य साकेत की सीताजी इस समय भी सीता नाम से प्रसिद्ध हो रही हैं। ये प्रेम से श्रीराम को बाँध रही हैं, स्वयं भी श्रीराम के प्रेम से बँध रही हैं, सारे अमंगलों को नष्ट कर रही हैं, जीवों को भजन के लिए प्रेरित कर रही हैं तथा अपने साथ विहार करने वाले प्रभु श्रीराम की इच्छा से संसार को जन्म दे देती हैं। इन अर्थों के अनुरूप सिनोति इति सीता, सीयतेतीति सीता, स्यतीति सीता, सुवति इति सीता, सूयते इति सीता इत्यादि व्युत्पत्तियों के द्वारा 'सिञ् धातु' 'षो धातु' 'सु धातु' 'सूञ् धातु' से भी क्त प्रत्यय पृषोदरादित्वात् निष्पन्न सीता ही इनका नाम है। ये स्वयं सच्चिदानन्द रूपिणी हैं, इन्हीं की कृपा से भक्तों के विकार दूर होते हैं, ये मायाओं की भी माया तथा समस्त भवभारों को दूर करने वाली हैं। ये रूप की दीपिका तथा अपने भक्तों के हृदय में विराजने वाली निन्दारहित, दीपशिखा **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम की आह्लादिनी शक्ति, नित्य निर्दोष हैं।

गीत संख्या २३

पश्य पश्य राजन् पश्य सुभगां कुमारीं हे।
पश्यतु सुनयना राज्ञी सुतां सुकुमारीं हे।।१।।
नखशिखरम्यामिमां जितकामवामां हे।
सुरमुनिसत्प्रणम्यां हृदि धृतरामां हे।।२।।
आसृष्टेर्न दृष्टा मया एतादृशी योषा हे।
एषा नो विधात्रा सृष्टा नितरामदोषा हे।।३।।
नूपुरौ दधानां पश्य पदयोरनिन्द्यां हे।
मुनिहंसौ नीडयन्ती किमुतानवद्यां हे।।४।।
किंकिणीं हाटकमयीं कट्यां पश्य विभ्रतीं हे।
किमुत प्रपत्तीमेव पूर्णतया पिप्रतीं हे।।५।।
सितवासःसंवसानां पश्य भूपलसितां हे।
पुरुषरतिं दधानां पुरतो विलसितां हे।।६।।
कङ्कणौ करयोरस्याः नितरां विभातो हे।
शुक्लकृष्णयजुर्वेदौ मम प्रतिभातो हे।।७।।
गिरिधरस्वामिनीयं साम्प्रतं चकास्ति हे।
रामभद्रभामिनीयं भव्या विचकास्ति हे।।८।।

भौमी–पुनः याज्ञवल्क्य जी गीत गाते हुए महाराज जनक को प्रोत्साहित करते हैं–हे महाराज! इस सुन्दर पुत्री को देखिए, देखिए, देखिए। महारानी सुनयना भी सुकुमारी पुत्री के दर्शन करें। नख से शिखपर्यंत सुन्दर रति को भी जीतने वाली देवता–मनुष्य–मुनियों और सन्तों के प्रणम्य अपने हृदय में श्रीराम को विराजमान की हुई इन सीताजी के दर्शन कीजिए। महाराज! संपूर्ण संसार में ऐसी महिला मैंने नहीं देखी, ये ब्रह्मा जी की सृष्टि नहीं हैं, क्योंकि उनकी सृष्टि में गुण और दोष दोनों होते हैं, जबकि सीताजी में कोई दोष है ही नहीं। महाराज! देखिए, सीताजी को चरणों में नूपुर धारण किए हुए क्या कहें; सीताजी मुनिवेषधारी दो हंसों को अपने चरणकमलों में घोषला बनाने की अनुमति तो नहीं दे रही हैं? महाराज! देखिए सीताजी कटी प्रदेश में स्वर्ण किंकिणी धारण किए हुए हैं, लगता है कि सीताजी शरणागति सिद्धान्त को ही परिपूर्ण कर रही हैं। महाराज! नीलावस्त्र धारण की हुई, सुशोभित सीता जी को देखिए, ये नीलवस्त्र धारण करने के बहाने श्रीराम के प्रेम को ही धारण कर रही हैं। महाराज! कुमारी सीता के हाथों में दो कंकण सुशोभित हो रहे हैं, मुझे तो ये शुक्ल यजुर्वेद और कृष्ण यजुर्वेद ही प्रतीत हो रहे हैं। महाराज! इस समय **गिरिधर** कवि की स्वामिनी रूप में सीताजी सुशोभित हो रही हैं, और यही दशरथ जी के युवराज श्रीरामभद्र की होने वाली पत्नी रूप में भी विराज रही हैं।

गीत संख्या २४

जनक कुमारीं पुत्रीं भावेन पालय हे।
इयं सर्वसन्ततिललाम हे निमिवंशिन् राजन् गुणगौरवभाजन हे।।१।।
जीवनसुमूलिमिव प्रेम्णा लालय हे।
एषा सर्वललनाललाम हे निमिवंशिन् राजन् सुमहोत्सवभाजन हे।।२।।
सीतां मावमंस्था मा शंकिष्ठास्तस्यां हे।
इयं परब्रह्म परमधाम हे निमिवंशिन् राजन् अपुनर्भवभाजन हे।।३।।
रक्ष राक्षसेभ्यो भगवन् न्यासभूतां हे।
सीतां जप नित्यमस्याः नाम हे निमिवंशिन् राजन् करुणाभवभाजन हे।।४।।
गिरिधरस्वामिनीजनकत्वं प्राप्तो हे।
भावपारम्परीमातिक्रामहे निमिवंशिन् राजन् भववैभवभाजन हे।।५।।

भौमी–याज्ञवल्क्य फिर गाते हैं–हे महाराज जनक! इन कुमारी सीता का पुत्रीभाव से पालन कीजिए। हे गुण और गरिमा के पात्र निमिवंशी महाराज! ये सभी सन्तानों में रत्न हैं। हे सुन्दर महोत्सवों के पात्र राजन्! संजीवनी बूटी की भाँति इनका लालन–पालन कीजिए; ये सभी नारियों में श्रेष्ठ हैं। हे मोक्ष के पात्र निमिराज जनक! सीता जी का कभी अपमान मत कीजिएगा और उनमें शंका मत कीजिएगा, ये परम तेजोमय परब्रह्म ही हैं। हे करुणा और कल्याण के पात्र जनक! सीता जी भगवान श्रीराम की धरोहर हैं, राक्षसों से इनकी रक्षा कीजिए, इनके नाम का नित्य जप कीजिए। हे संसार के वैभवों के भाजन महाराज जनक! इस समय आप **गिरिधर** कवि की स्वामिनी सीताजी के पिता बन चुके हैं, इस भावपरंपरा का कभी अतिक्रमण मत कीजिएगा।

विशेष- यह गीत साकेतवासी श्रीखाकी बाबा सरकार के द्वारा रचित एक भोजपुरी के आंचलिक लोकगीत के ढाल पर निबद्ध है, जिसके बोल निम्नलिखित हैं–

रतन जड़ावल के कील लागल हे।
पहिरी चलत दुलहा राम हे मनभावन दुलहा मनमोहन दुलहा हे।

गीत संख्या २५

जनक कुमारी पुत्रीभावेन पाल्या हे मिथिलाधिप राजन्।
जगज्जननीं जानकीं जानीहि हे मिथिलाधिप राजन्।।१।।
जीवनसुमूलीरेषा प्राण इव पाल्या हे मिथिलाधिप राजन्।
दुरोदरदुर्दरं दृणीहि हे मिथिलाधिप राजन्।।२।।
सति भक्तिभावपूर्णशारदसुधांशौ हे मिथिलाधिप राजन्।
ज्ञानसौवीरकं मा क्रीणीहि हे मिथिलाधिप राजन्।।३।।
कोटिकोटिजन्मपुण्यफलप्रेमरत्नं हे मिथिलाधिप राजन्।
मा योगग्राहिणे विपरिक्रीणीहि हे मिथिलाधिप राजन्।।४।।
संशयकुठारात् क्रूरतर्कतीव्रधारात् हे मिथिलाधिप राजन्।
रससुरतरुं मा लुनीहि हे मिथिलाधिप राजन्।।५।।
गिरिधरप्रभुः परमात्मा पतिरस्या हे मिथिलाधिप राजन्।
तेन प्रत्यगात्मानं पुनीहि हे मिथिलाधिप राजन्।।६।।

भौमी–याज्ञवल्क्य फिर मिथिला के लोकधुन में गीत गा रहे हैं। हे जनक! कुमारी सीता जी का पुत्रीभाव से लालन करो। जानकी जी को जगत् की जननी समझो। ये साक्षात् जीवन की मूलिका हैं। इनका प्राण के समान पालन करो और भयंकर परिणाम वाले भय को समाप्त कर दो। भक्तिभावमय शरदकालीन अमृत किरण वाले चन्द्रमा के उपस्थित रहने पर तुम ज्ञान रूप खट्टी जावन का क्रय मत करो। करोड़ों-करोड़ों जन्मों के पुण्यफलरूप इस प्रेमरत्न को योगियों के हाथ मत बेच दो। हे मिथिलाधिपते! क्रूर तीखे तर्करूपधारा वाले इस संशय के कुल्हाड़े से रस रूप कल्पवृक्ष को मत काटो। हे महाराज! **गिरिधर** कवि के स्वामी परमात्मा श्रीराम ही इनके पति हैं। उनकी कृपा से और उनके सानिध्य से अपनी जीवात्मा को पवित्र कर लीजिए।

विशेष- इस गीत का मैथिल गीत ढाल इस प्रकार है–अपनी किशोरी जी के चरण मन इबै हे हम मिथिलै रहबै। मिथिला में बाटै चारो धाम हे हम मिथिलै रहबै।

गीत संख्या २६

भूप सीता सुता भज्यतां भज्यताम्।
सर्वशङ्काटवी भज्यतां भज्यताम्।।१।।
पश्य भित्वाऽवनीं प्रादुरासीदियं कोटिसज्जन्मनां पुण्यराशिः स्वयम्।
भावनास्त्रङ्मुदा सृज्यतां सृज्यताम्।। २।।

देवमायामयी रूपशीला सती शाश्वती भगवदीया तथा भगवती।
भवो भजनानले भर्ज्यतां भर्ज्यताम्।।३।।
गायतैतां मुदा लब्धसत्सम्पदा भक्तिभावितहृदा मोदता सर्वदा।
गिरिधरेणाप्यघं त्यज्यतां त्यज्यताम्।।४।।

भौमी–याज्ञवल्क्य आगे कहते हैं कि हे महाराज जनक! आप पुत्री सीता का निरन्तर भजन कीजिए और अपने मन में आने वाले सन्देह वन को काट डालिए। देखिये–करोड़ों करोड़ों श्रेष्ठ जन्म लेने वाले संतों की पुण्य–राशि रूपा सीताजी पृथ्वी को फोड़कर स्वयं प्रकट हुई हैं। इनके लिये तो प्रसन्नतापूर्वक आप अपनी भावना की माला बनाइये। ये पवित्र स्वभाव वाली साध्वी, निरन्तर विद्यमान रहने वाली, भगवान की आह्लादिनी शक्ति छहों ऐश्वर्यों से युक्त साक्षात् परमेश्वर श्रीराम की कृपा ही हैं। इनके भजन की अग्नि में इस संसारभाव को भून डालिये। श्रेष्ठ भगवद्भाव की सम्पत्ति प्राप्त करके भक्तिपूर्ण हृदय से प्रसन्नतापूर्वक सदैव इन्हीं सीता जी का यशोगान करते हुये **गिरिधर** कवि द्वारा भी अपना पाप छोड़ दिया जाय अर्थात् श्रीसीताराम के अतिरिक्त किसी भी देवी–देवता का चिन्तन न किया जाय।

गीत संख्या २७

श्रृणु श्रृणु भूपते वचनं मदीयं गूढं रहस्यं कथयामि ते।।
आदिशक्तिरेषा सीता भगवत्स्वरूपा।
प्रथामेतां सत्यां प्रथयामि ते।।१।।
पुरा सङ्कल्पितां तव मनोरथसुरलतां साम्प्रतमहह फलयामि ते।
सीताभविष्यत्कथां कथयन् महीपते समलितं मनश्छालयामि ते।।२।।
स्वयम्बरव्याजाद्रामो मिथिलापुरं ह्यागन्ता तं जामातारं कलयामि ते।
गिरिधरस्वामिने समर्प्य निजतनयां धन्यतामव कलयामि ते।।३।।

भौमी–पुनः याज्ञवल्क्य मिथिला के लोकधुन में कहते हैं कि हे महाराज! मेरा वचन सुनिये– मैं आपको गूढ़ रहस्य बता रहा हूँ। सीता जी आदिशक्ति और भगवद्स्वरूपिणी हैं इस तथ्य को मैं सत्य के प्रतिज्ञान से कह रहा हूँ। पूर्व संकल्पित तुम्हारी ही समक्ष फलवती देख रहा हूँ। तुम्हारे ही सामने सीता जी के सम्बन्ध में कथा कहता हुआ मैं व्यर्थ निर्मूलवादी पक्षों से मलिन हुये तुम्हारे मन को आज मैं क्षालित कर रहा हूँ। स्वयंवर के बहाने श्रीराम आपके मिथिलापुर में आयेंगे, उन्हीं को मैं आपका जामाता निश्चित कर रहा हूँ। **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम को अपनी पुत्री सीता को समर्पित करके आप धन्य हो जायेंगे, ऐसा मेरा मानना है।

गीत संख्या २८

स्वगतम्–

सीते त्वां कथं करवाणि प्रशंसाम्।
निरुपमरूपशीलगुणशोभां ललनाजगदवतंसाम्।।१।।

यदि चम्पकं तवोपमानमनुचितं तदपि जगदम्ब।
तन्निशि संकुचितं तव स्मितं सततमेकरसमम्ब।।२।।
कनकेनोपमीयसे चेन्महती अनौचिती जाता।
तत् कठोरमथ जडं चिन्मयी त्वं मृदुला विख्याता।।३।।
चरणौ तव वनरूहोपमातुं मनसाऽहं जिह्रेमि।
तन्निशि सम्पुटितं स्फुटाविमौ समन्वयंश्च विभेमि।।४।।
भवप्लवौ तव करौ वदन् पल्लवमिव किल सीदामि।
कलितकलङ्कचन्द्रमिव वदनं ब्रुवन् न प्रसीदामि।।५।।
वधिकवश्यखञ्जनमिवनयनं कथय कथं कथयानि।
अभयप्रदान्रदान् चपला इव प्रथय कथं प्रथयानि।।६।।
अमृतस्त्रावि कुन्तलान् विषधरभुजगैः किमु समयेयम्।
क्षणभङ्गां चपलामिव मूर्तिं कथयन् कं नमयेयम्।।७।।
अर्धदेहविषवन्धुमौखरीवरविश्लेषयुताभिः।
तुलये किं त्वां गिरिजावारिधिभवागिराकसुताभिः।।८।।
ज्ञात्वा सदा निरुपमामनघां निरवधिगुणां विनीताम्।
कविगिरिधरस्वामिनीं भगवतीं वन्द्यां वन्दे सीताम्।।९।।

भौमी–याज्ञवल्क्य अनन्वय अलंकार की भंगिमा से हवेली पद्धति में सीता जी का सौन्दर्य गान कर रहे हैं–हे सीते! आपका रूप, शील एवं आपकी शोभा ये सभी अवधि से रहित हैं। आप नारी जगत की अलंकार स्वरूपा हैं। आपकी मैं किस प्रकार प्रशंसा करूँ। हे जगत की माँ! यदि मैं चम्पा को आपका उपमान कहूँ तो बहुत अनुचित हो जायेगा। हे माँ! चम्पा रात्रि में संकुचित हो जाती है और आप रात-दिन मुस्कुराती रहती हैं। यदि मैं स्वर्ण से आपकी उपमा दूँ तो मुझसे बहुत बड़ा अनुचित हो जायेगा क्योंकि सोना तो कठोर और जड़ है, जबकि आप चिन्मयी (चेतना स्वरूपिणी) और अत्यन्त मृदुल प्रसिद्ध हैं। आपके चरणों को कमल से उपमित करते समय मैं मन से बहुत लज्जित होता हूँ। क्योंकि कमल रात्रि में सिकुड़ जाता है और आपके श्रीचरण सदैव विकसित रहते हैं अर्थात् रात्रि में भी खुलकर चलते हैं। अतः इनका समन्वय करते हुये मैं डरता हूँ। संसार-सागर के लिये जहाज के समान आपके श्रीहस्तों को पल्लव के समान कहता हुआ मैं बहुत दुःखी हो रहा हूँ क्योंकि पल्लव थोड़ा-सा भी भार नहीं उठा सकता, टूट जाता है जबकि आपके श्रीहस्त असंख्य लोगों को अपने पर चढ़ाकर संसार-सागर से पार हो जाते हैं। इसी प्रकार आपके श्रीमुख को कलंकी चन्द्रमा के समान कहता हुआ मैं प्रसन्न नहीं हो रहा हूँ। आप ही बताइये कि आपके श्री नेत्रों को मैं बहेलिये के वश में आने वाले खंजन पक्षी की भाँति कैसे कहूँ? तनिक बोलिये तो! संसार को अभय प्रदान करने वाले आपके सुन्दर दाँतों को मैं बिजली के समान कैसे प्रस्तुत करूँ? अमृत की वर्षा करने वाले आपके सुन्दर केशों को मैं विषैले साँपों से कैसे समानता प्रदान करूँ? आपकी अविनाशिनी मूर्ति को क्षणभंगुर बिजली के समान कहता हुआ मैं क्या काव्य-जगत की ब्रह्मा, महर्षि वाल्मीकि को अपने इस कुकृत्य से लज्जित करके झुका

दूँ? भगवती! आप ही बताएँ जो पार्वती अर्ध-देहा हैं तथा जिनका शरीर ही पूर्ण नहीं है, जिन लक्ष्मी का भाई विष है, जो सरस्वती बहुत बोलती हैं और जो कसुता अर्थात् ब्रह्मा की पुत्री रति अपने पति के वियोग से दु:खी रहती हैं इनसे मैं आपकी कैसे तुलना करूँ? क्योंकि आप पार्वती की भाँति अर्धदेह नहीं हैं। आप सर्वांगपूर्ण और सुन्दरी हैं। लक्ष्मी जैसे आपका भाई विष नहीं प्रत्युत् मंगलकारी मंगल-ग्रह है। सरस्वति की भाँति आप मुखर नहीं हैं और रति की भाँति आप पति से वियुक्त भी नहीं हैं। रति के पति को शिव जी ने जलाया जबकि आपके पति श्रीराम को शंकर जी ने हृदय में बसाया है। वस्तुत: मैं याज्ञवल्क्य आपश्री को सदैव उपमा रहित, निष्पाप, नि:सीम गुणों वाली, विनम्र, कवि **गिरिधर** की स्वामिनी, छहों ऐश्वर्यों से युक्त, प्राणिमात्र की वन्दनीय, साकेतविहारिणी सीता ही जानकर इस अवतार में भी आपका नित्य वन्दन करता हूँ।

सन्दर्भश्लोक:

अथो रहो दाडिमबीजराजिभि: प्रतर्पयन्ती जनकेन्द्रकन्यका।
स्वसारिकां हाटकपञ्जरस्थितां प्रगापकं गापयति स्म जानकी।।१।।

भौमी–कवि सन्दर्भश्लोक द्वारा अगली कथा को क्रमबद्ध कर रहे हैं–याज्ञवल्क्य जी के प्रस्थान करने के पश्चात् जनककुल में प्रकट सीरध्वज की राजपुत्री जानकी सीता जी एकान्त में सोने के पिंजरे में स्थित अपनी लाडली मैना को अनार के दानों से संतुष्ट करती हुई उससे एक सुन्दर गीत गवानें लगीं।

गीत संख्या २९

सारिकां पाठयते सीता शुभे वद सदा रामसीता।।
दाडिमीफलान्याशयन्ती पञ्जरे शुकीं शासयन्ती।
पाठयामास सुखं प्रीता शुभे वद सदा रामसीता।।१।।
रहसि सप्रेम राटयन्ती कुसंशयवनं पाटयन्ती।
श्लोकयामास भावनीता शुभे वद मुदा रामसीता।।२।।
सखीं सारिकां मानयन्ती फलं मधुरं समानयन्ती।
भोजयामास प्रीतिक्रीता शुभे वद सदा रामसीता।।३।।
प्रभुं गिरिधरं बोधयन्ती पुरातनमघं शोधयन्ती।
वाचयामास वचस्फीता शुभे वद सदा रामसीता।।४।।

भौमी–सीता जी मैना को पढ़ा रही हैं– हे कल्याणी! प्रसन्नता से रामसीता-रामसीता बोलो। मैना को अनार के दाने खिलाती हुई और उसकी प्रतिस्पर्धिनी पिंजरे में स्थित तोती को चुप कराती हुई सीताजी अपनी मित्र मैना को प्रसन्नता से पढ़ानें लगीं। रामसीता रामसीता बोल। एकान्त में मैना को रामसीता रामसीता रटाती हुई कुत्सित संशयों के वन को काटती हुई प्रेमपूर्वक भाव-विभोर हुई सीताजी श्रीराम यश को श्लोक बद्ध करने लगीं। मैना की प्रीति से क्रय की हुई-सी सीताजी सखी मैना का सम्मान करती हुई मधुर फल मँगवाकर उसे खिलाने लगीं और रामसीता रामसीता पढ़ानें लगीं। इसी बहाने **गिरिधर** कवि को भी प्रभु श्रीराम का बोध कराती हुई और साधक कवि के पूर्वकृत पापों को समाप्त करती हुई सुन्दर वाणी से युक्त सीताजी मैना से भी रामसीता रामसीता बुलवाने लगीं।

सन्दर्भश्लोकः

लीलाशुकमवेक्ष्याथ बुधं छात्रचरं सती।
हैमपञ्जर आसीनं जानकी समपीपठत्।।१।।

भौमी–एक बार साध्वी सती सीताजी अपने पूर्वविद्यार्थी लीलाशुक अर्थात् शुक वेषधारी शुकाचार्य जी को सोने के पिंजरे में बैठे हुये देखकर उन्हें भी एक सुन्दर पाठ पढ़ाने लगीं।

गीत संख्या ३०

पठ शुक सदा सीताराम।
छविविनिन्दितचारूचपलानीलनीरदश्याम ।।१।।
पीतनलिनीकोशकल्पितमुखरमधुकरदाम ।
कनकसुरललिकानुजुष्टतमालगुणाभिराम।।२।।
नवलनीलनिचोलसीलितपीतपटसुखधाम ।
सुकविगिरिधरमधुरमानसकृतयुगलविश्राम।।३।।

भौमी– अब रूपक ताल में श्रीसीताराम जी की समवेत् युगल शोभा का वर्णन प्रस्तुत कर रहे हैं। सीताजी प्रत्येक चरण में युगल झाँकी का सम्बोधनात्मक पद प्रयुक्त करती हुई शुक को पढ़ा रही हैं। हे शुक! सदैव सीता–राम सीता–राम पढ़ो। हे युगल सरकार! आपने अपने सम्मिलित छवि से सुन्दर बिजली और नीले बादल को भी निंदित किया है। आप दोनों उसी प्रकार लग रहे हैं, जैसे–पीली कमलिनी के कोश में गुंजायमान भ्रमर बँध गया हो और जैसे स्वर्ण की कल्पलता से आलिंगित गुणों से युक्त तमाल हो। आप दोनों अर्थात् सीता जी नवीन नीली कंचुकी धारण की हुई और आप श्रीराघव पीला वस्त्र धारण किये हुये इस प्रकार समवेत् श्रीसीताराम युगलस्वरूप आप दोनों सुकवि **गिरिधर** के मधुर मन में विश्राम करें। इस प्रकार पढ़ो।

सन्दर्भश्लोकः

स्वप्ने दृष्ट्वा रघुकुलमणिं नीलपाथोदकान्तं
स्वान्तं शान्तं यतितमनसं प्राविविक्षन्तमारात्।
सीता प्रीता पुलकित तनुर्बोधयन्ती च वेगात्
प्रत्यग्रं तत् स्खलितवचना मातरं प्राह साध्वी।।१।।

भौमी–एक बार भगवती सीताजी ने नीले बादल के समान सुन्दर संयत मन वाले, अपने शान्त मन में प्रवेश करते हुए रघुकुलमणि श्रीराम को स्वप्न में देखकर अपनी माँ सुनयना को जगाती हुई, प्रसन्नतापूर्वक रोमांचित होती हुई, गद्गद्–वाणी में सुनयना जी से इस प्रकार कहा।

गीत संख्या ३१

मातर्मया स्वप्ने दृष्टः किशोरः कोऽपि हृदयं प्रविष्टः।।
नखशिखशुभाङ्गः कोटिकामकमनीयो नैदृग्विधो नरो धात्रा सृष्टः।।१।।

ऊनद्वादशाब्दो विभाव्रीडितनवाब्दो नम्रनलिननयनोऽनुशिष्टः।।२।।
कुमुदबन्धुकरहासः पार्वणेन्दुवदनो दाडिमकुन्ददशनो न्यायशिष्टः।।३।।
प्रातः प्रभाकरकराभवरवसनः इन्दीवरवरणो विशिष्टः।।४।।
पीतोपवीतो धनुर्बाणधृग् विनीतः प्रथमाश्रमो यथा निदिष्टः।।५।।
अर्वाची सुभगा भव सीते मन्त्रमिमं पठन् विनिर्दिष्टः।।६।।
गिरिधरप्रभुः विधुर्मनोनभस्युदितः पुरा नेत्रमृगरथोपविष्टः।।७।।

भौमी–हे माँ! आज मैंने स्वप्न में एक किशोर को देखा, जो मेरे हृदय में प्रवेश कर रहा था। वह नख से शिखा–पर्यंत सुन्दर, कोटि–कोटि कामदेवों के भी इच्छा का विषय बन रहा था, इस प्रकार का पुरुष विधाता के द्वारा नहीं बनाया गया। वह किशोर बारह वर्ष की अवस्था का था, उसने अपनी कान्ति से नवीन बादल को लज्जित कर रखा था, उसके नेत्र कमल के समान थे तथा झुके हुए थे और वह पूर्णरूपेण अनुशासित था। उस किशोर की मुस्कान चन्द्रमा की किरण के समान थी, मुख पूर्णचन्द्र जैसा ही था, उसके दाँत–अनार और कुन्द के समान थे, वह न्यायमार्ग का अनुसरण करने वाला शिष्ट था। उस किशोर ने प्रातःकालीन सूर्य के समान तेजोमय वस्त्र धारण किए थे, वह नीले कमल के समान श्यामल, और विशिष्ट था। उसके कन्धे पर पीत–यज्ञोपवीत विराज रहा था, वह धनुर्बाणधारी किशोर इतना विनम्र था, मानों ब्रह्मचर्याश्रम ही उसके शरीर में प्रवेश कर गया हो। और किसी अज्ञात प्रेरणा से निर्दिष्ट होकर वह किशोर ''अर्वाची सुभगा भव सीते'' यह मंत्र पढ़ रहा था। **गिरिधर** कवि का स्वामी वह किशोरचन्द्र जो पहले मेरे नेत्रमृग रथ पर आरूढ़ हुआ था, इस समय मेरे मन आकाश में उदित हो गया है।

सुनयना प्राह–

सन्दर्भश्लोकः

स्वप्ने यत् यत् त्वया दृष्टं तच्चित्रय मनोरमम्।
तदाहं कल्पयिष्यामि शुभाशुभफलं सुते।।१।।

भौमी–अनन्तर सुनयना ने कहा–बेटी! आपने जो स्वप्न में देखा, उसी किशोर को चित्र में बनाकर दिखाइये, फिर मैं शुभाशुभ फल का विचार करूँगी।

गीत संख्या ३२

श्रीराघवं चित्रयति सीता।
मात्रा निर्दिष्टा संदिष्टा विधिना विवुधविधानविनीता।।१।।
परमप्रेमफलके रतिमस्याः सीता रविकुलरविं चित्रयति।
मित्रवंशसरसीरुहमित्रं निजमित्रं शाश्वतं मित्रयति।।२।।
नवलनलिनचरणौ पदाङ्गुलीः परमरम्यरेखाचतुष्टयम्।
कदलिजानुकेशरिकटिभागं उदरचारुलेखानिरामयम्।।३।।

कामकलभभुजदण्डयुगलमथ वक्षःस्थलविशालमतिरम्यम्।
कम्बुविनिन्दककम्रकण्डमतिपरमहंसमुनिवृन्दप्रणम्यम्।।४।।
उन्नतमसृणकपोलमहितझषकेतुकुण्डलं नीरजनयनम्।
मन्मथकार्मुकभृकुटिभालतिलकं समस्तशोभासुखचयनम्।।५।।
मदनमधुपनिन्दककुञ्चितकचकरसरसिजधृतवरशरचापम्।
परमधीरधन्वीशधुरन्धरकोटिकोटिरविसदृशप्रतापम्।।६।।
परममनोहरमूर्तिमधुरमथ श्रीवत्साङ्कमनङ्कमङ्कयति।
निजसौभाग्यमहिम्ना सीता कोटिकोटिशतरती रङ्कयति।।७।।
चित्रं परिनिर्माय वीक्षते वदनं हरिमुखचन्द्रचकोरी।
गिरिधरप्रभुपदपङ्कजभ्रमरी बभौ भूमिजा जनककिशोरी।।८।।

भौमी- अब हवेली पद्धति में गीत प्रस्तुत करते हैं–माँ के निर्देश पर और ब्रह्माजी के विशेष आग्रह पर अनेक विधानों में प्रशिक्षित सीताजी श्रीराघव का चित्र बना रही हैं। अपनी मधुर रतिरूप स्याही से परम प्रेम के चित्र फलक पर सीताजी सूर्यकुल के सूर्य श्रीराम को चित्र के माध्यम से अपना नित्य विश्वासपात्र बना रही हैं। चित्र में सीताजी श्रीराम के नवीनकमल जैसे चरणों को सुन्दर प्यारी अंगुलियों को, चरणों में कमल–ध्वज–अंकुश और वज्र जैसी चार रेखाओं को कदली जैसे पिदुरियों, सिंह जैसे कटितट और उदर पर तीन रेखाएँ भी चित्रित कर रही हैं। कामदेव के हाथी के शावक के शुँड जैसी भुजाएँ और विशाल वक्षस्थल, परमहंसों और मुनिवृन्दों के लिए प्रणम्य, शंख को लज्जित करने वाला गला चित्रित किया। सीताजी ने चित्र में प्रभु का उभरा हुआ कपोल, मकराकृत कुण्डल,कमल जैसा नेत्र और सभी शोभाओं का संग्रहालय मस्तक पर तिलक चित्रित किया। कामदेव के भ्रमरों को लजाने वाले घुँघराले काले बाल, हाथ में धनुष–बाण धारण किए हुए, अत्यन्त धीर प्रकृति, धनुर्धारियों में सर्वश्रेष्ठ, कोटि–कोटि सूर्यों के समान प्रतापी किशोर को चित्रित किया। आज सीताजी चित्र में प्रभु की परम मनोहर मूर्ति और निष्कलंक श्रीवत्सलांछन को भी अंकित कर रही हैं और साथ ही साथ अपने सौभाग्य की महिमा से करोड़ों–करोड़ों रतियों को भी दरिद्र बना रही हैं। इस प्रकार **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम के चरण कमल के भ्रमरी भूमिनन्दिनी जनकराज पुत्री सीताजी श्रीराम के मुखचन्द्र की चकोरी बनी हुई प्रभु का चित्र बनाकर उन्हीं के मुखचन्द्र को निहार रही हैं।

गीत संख्या ३३

सुनयना प्राह-

इदं चित्रं शृणु वत्से महाराजदशरथचक्रवर्तिसूनो रामस्यास्ति हे।
यत्र नित्यं सच्चिदानन्दः सुखस्यापि महासिन्धुः दुःखस्य लेषो यत्र नास्ति हे।।१।।
अस्तहेयप्रत्यनीका सकला कल्याणगुणा व्योम्नि यथा भानि यत्र भान्ति हे।
लोकसंग्रहोपयुक्ता मर्यादादिश्रेष्ठगुणा यत्र निरवद्या प्रतिभान्ति हे।।२।।
यदि ते वरेण्यः पुत्रि रामचन्द्रो वरो भूयान्निमिवंशः कृतार्थतां यातु हे।
गायं गायमिदं गीतं तवैव विवाहस्य गिरिधरभारती विभातु हे।।३।।

भौमी- अब सुनयना जी कहने लगीं- हे बेटी! सुनिए, यह चित्र तो चक्रवर्ती महाराज दशरथजी के ज्येष्ठपुत्र श्रीराम का है। जहाँ निरन्तर सच्चिदानन्द है, जहाँ सुख का महासागर है और दुःख का लेश भी नहीं है। बेटी! जिस प्रकार आकाश में नक्षत्र मंडल विराजते हैं, उसी प्रकार हेयगुणों से दूर सभी कल्याण गुणगण जहाँ विराजमान हैं और जहाँ लोकसंग्रहोपयोगी मर्यादा आदि श्रेष्ठगुण पापरहित होकर प्रतिविम्बित हो रहे हैं। हे बेटी! यदि इस प्रकार श्रेष्ठ श्रीराम जी तुम्हारे वर बन जायँ, तो निमिवंश कृतार्थ हो जाय और तुम्हारे विवाह का यह गीत गा-गाकर **गिरिधर** कवि की सरस्वती भी सुशोभित हो उठे।

सुनयना प्राह-

गीत संख्या ३४

परन्त्वेकमसमञ्जसं चित्तं स्पृशति पुत्रि सुकोमलो दशरथकुमारो हे।
कथङ्कारं धनुर्भङ्गं करोत्वेष बालकः कार्मुकः कठोरो वज्रसारो हे।।१।।
नित्यं परिपूजय भवानीं सीते ध्यानपरा! कमलाविमलयोर्नित्यं स्नाहि हे।
मंगलागौरीनाम व्रतं कुरु कल्याणि हे! द्विजेभ्यो वसनमन्नं राहि हे।।२।।
इतः पश्चिमायां दिशि अयोध्या सुनगरी हे, मनुना विनिर्मिता चकास्ति हे।
आयता रवियोजनं त्रीणि चापि विस्तृता सा द्वितीयामरावती विभाति हे।।३।।
तत्र श्वसुरालयस्ते स्वप्नफले निश्चितो हे सीते अयोध्यां शीघ्रं याहि हे।
भूत्वा गिरिधरप्रभुगेहिनी विदेहकन्ये वैष्णवान् सदैव परिपाहि हे।।४।।

भौमी-महारानी सुनयना कहने लगीं-सब कुछ ठीक है पर एक ही असामंजस्य मेरे चित्त को झकझोर रहा है। बेटी दशरथ राजकुमार बहुत कोमल हैं। बालक श्रीराम धनुर्भंग कैसे कर सकेंगे? यह शिवधनुष तो वज्र के समान कठोर है। सीते बेटी! आप ध्यान-परायण होकर पार्वती जी की नित्य पूजा करें, कमला-विमला नामक नदियों में स्नान करें, मंगला गौरी नामक व्रत करें और ब्राह्मणों को वस्त्र-अन्न दान करें। यहाँ से पश्चिम दिशा में अयोध्या नाम की नगरी है, जिसकी सीमा वैवस्वत मनु ने बनवाई है। वह बारह योजन आयत और तीन योजन विस्तृत है। वह दूसरी अमरावती जैसी लगती है। इस स्वप्नफल के अनुसार अयोध्या में ही आपकी ससुराल निश्चित है। आप शीघ्र ही श्रीअवध पधारें। **गिरिधर** कवि के स्वमी श्रीराम की धर्मपत्नी बनकर आप सभी वैष्णवों की रक्षा करेंगी।

विशेष- यह गीत मैथिल अँचल के एक विवाह लोकधुन की ढाल के आधार पर निबद्ध है। जिसका बोल निम्नवत् है-

मड़ये में बैसल जोगी जनकराजा करइ छथ बेटी क दान हे।

सन्दर्भश्लोकः

श्रुत्वा मातुर्गिरं सीता नरीनर्ति स्म भामिनी।
कादम्बिनीनिनादेन मयूरीव गतक्लमा।।१।।

भौमी-इस प्रकार माँ सुनयना की वाणी सुनकर सीताजी उसी प्रकार नाचने लगीं जैसे मेघमाला के निनाद से प्रसन्न होकर मोरनी नाचने लगती है।

गीत संख्या ३५

विलसति जनककिशोरी सीता पुलकिततनुः स्वभावविनीता।।१।।
विन्ध्यमिवानघरघुपतिभावं सा जुगोप किल कोकिलरावम्।।२।।
हृदयावनिपालितसुरवल्ली अनुदिनमण्डितमञ्जुलमल्ली।।३।।
सा निनाय शरदं सुकिशोरी गिरिधरप्रभुमुखचन्द्रचकोरी।।४।।

भौमी– अब कवि स्वयं तीन ताल में भगवती के सौन्दर्य का वर्णन कर रहे हैं। स्वभाव से विनम्र, रोमांच शरीर वाली जनकनंदिनी सीताजी सुशोभित हो रही हैं। कोकिलाओं को भी मुखरित करने वाले निष्पाप विंध्याचल जैसे श्रीराम के प्रति मधुर–भाव को सीताजी ने अपने हृदय में छिपा लिया। हृदयरूप पृथ्वी में उन्होंने भावनारूप कल्पलता का पालन किया और मिलन की आशारूप मल्लिका को निरन्तर सुशोभित किया। इस प्रकार **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराममुखचंद्रचकोरी सीताजी ने वर्षों बिता दिये।

गीत संख्या ३६

सपदि मां कदा मिलिष्यसि नाथ।
प्रणतपाल निजभक्तमनोरथपारिजात रघुनाथ।।१।।
कदा शुष्कजलमल्लोचनपथपथिकस्त्वं भवितासि।
दिवानिशं त्वत्कृते रुदन्त्यां कदा प्रभो द्रवितासि।।२।।
कदा भवान् समेत्य मिथिलां मम पाणिग्रहं विधाता।
कदा विरहपावके दहन्तीं भविता वै मम त्राता।।३।।
हे करुणाकूपारकृपाकर सपदि भूमिजां पाहि।
मज्जन्तं भववारिनिधौ गिरिधरं कविं किल त्राहि।।४।।

भौमी– अब सीता जी हवेली पद्धति का गीत गा रही हैं– हे प्रणतपाल! हे अपने भक्तों के मनोरथों के लिये कल्पवृक्ष स्वरूप, रघुकुल के नाथ मेरे नाथ! आप मुझे अति शीघ्र कब मिलेंगे? हे प्रभो! जिनके आँसू सूख गये हैं, ऐसे मेरे नेत्र, पथ के पथिक आप कब बनेंगे? दिन–रात आपके लिये रोती हुई मुझ सीता पर आप कब द्रवित होंगे? आप मिथिला में आकर मेरा पाणिग्रहण कब करेंगे और विरह की आग में जलती हुई मुझ सीता की आप कब रक्षा करेंगे? हे करुणा के सागर! कृपा की खान श्रीराम! मुझ सीता की शीघ्र रक्षा कीजिये और भवसागर में डूबते हुये **गिरिधर** कवि को भी बचा लीजिये।

इति

श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरमहाकविजगद्गुरुरामानन्दाचार्यस्वामिरामभद्राचार्यगिरिधरकविप्रणीते गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये बालकाण्डे
गीतसीताविर्भावो नाम पञ्चमः सर्गः।।

इस प्रकार श्री चित्रकूट तुलसीपीठाधीश्वर महाकवि जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य गिरिधरकवि द्वारा विरचित गीतरामायण गीतसीताभिराम संस्कृतगीतमहाकाव्य के बालकाण्ड में गीतसीताविर्भाव नामक पञ्चम सर्ग सम्पन्न हुआ।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

।।श्रीः।।

।।नमो राघवाय।।

गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये
बालकाण्डे

गीतयुगलकैशोरको नाम

षष्ठः सर्गः

सन्दर्भश्लोकः

स्वप्ने दृष्टं चिद्जगद्भ्यां विशिष्टं
रामं श्यामं सर्वलोकाभिरामम्।
ध्यायन्तीशा बाष्पपर्याकुलाक्षी
शं नो लेभे शान्तचित्ताऽपि सीता।।१।।

भौमी- अब कवि अगली कथा को क्रमबद्ध करते हुए श्लोक प्रस्तुत करते हैं—स्वप्न में दर्शन के विषय बने हुए चेतनजीव तथा जड़-जगत से विशिष्ट सम्पूर्ण लोकों को आनन्द देने वाले श्यामवर्णी भगवान श्रीराम को ध्यान में लाती हुई सीता जी शान्तचित्त होती हुई भी शान्ति नहीं पा रही थीं।

गीत संख्या-१

वीता समस्ता रात्री रघुनाथो न दृष्टः।।
क्षणमपि न लभे निद्रां नेत्रे तनुतेऽकं तन्द्रा तनुवेत्रे।
ग्लपयति मां भयदात्री रघुनाथो न दृष्टः।।१।।
नये निशां तारा गणयन्ती नृपकुललज्जामवगणयन्ती।
खिद्येऽहं कृशगात्री रघुनाथो न दृष्टः।।२।।
रोचेते भोजनशयने प्रावृषायिते नितरां नयने।
विरहव्यथा तनुदात्री रघुनाथो न दृष्टः।।३।।
मिथिलातोऽप्यतिदूराऽयोध्या किं साक्षात्कार्या श्रुतिबोध्या।
मम सौभाग्यविधात्री रघुनाथो न दृष्टः।।४।।
वसति प्रियतमो दूरे देशे गिरिधरप्रभुरथ पितुर्निदेशे।
कथं प्रेष्यतां पत्री रघुनाथो न दृष्टः।।५।।

भौमी- अब सीता जी विरह के गीत गाती हुई कहती हैं–अहो! सम्पूर्ण रात्रि बीत गई पर रघुनाथ जी के दर्शन नहीं हुए। मैं एक क्षण भी नेत्रों में निद्रा नहीं प्राप्त कर रही हूँ और तन्द्रा मेरी बेंत लता जैसी शरीर में दुःख का विस्तार करती जा रही है। यह भय देने वाली जमुहाई मुझे दुर्बल बना रही है। मैं क्या करूँ? राजकुल की लज्जा की भी चिन्ता न करती हुई तारा गिन–गिनकर रात बिता रही हूँ। अभी तक रघुनाथ जी के दर्शन नहीं हुए अतः दुर्बलांगी मैं बहुत दुःखी हो रही हूँ। भोजन–शयन कुछ भी नहीं अच्छा लग रहा है। मेरी आँखें बरसाती हो चुकी हैं। विरह की व्यथा मेरे शरीर को काट डाल रही है। अभी तक रघुनाथ जी के दर्शन नहीं हुए। अहो! मेरे सौभाग्य की निर्मापिका श्रीअयोध्या मिथिला से बहुत दूर है। उस वेद के प्रतिपाद्या के दर्शन कैसे करूँ? अभी तक रघुनाथ जी के ही दर्शन नहीं हुए। **गिरिधर** कवि के स्वामी मेरे प्रियतम श्रीराघव बहुत दूर देश में निवास कर रहे हैं और वे अपने पिताश्री के निर्देश में ही रहते हैं। मैं पत्रिका कैसे भेजूँ?

गीत संख्या–२

कदा मिलिता मां श्रीरघुवीरः।।
तनुसुषमाजिततरुणतमालो जलधरसुन्दरश्यामशरीरः।।१।।
कोमलकोसलराजकिशोरः शतशतसागरसमगम्भीरः।।२।।
विजितनवाब्दोऽपि द्वादशाब्दः परं धर्मधीरो धन्वी धुरिधीरः।।३।।
शिशु रविवसनो दाडिमदसनो नाकिनमितपदसंयुगधीरः।।४।।
गिरिधरप्रभुः कदा मया रंस्यते श्रितसरयूतटकुञ्जकुटीरः।।५।।

भौमी- अहो! अपने शरीर की शोभा से नवीन तमाल को जीतने वाले बादल के समान सुन्दर श्याम शरीर अत्यन्त कोमल चक्रवर्ती महाराज के किशोर, अनेक समुद्रों के समान गम्भीर नवीन बादल को जीतकर भी बारह वर्ष के किशोर, धर्म और धनुर्विद्या में धीर, बालसूर्य के समान वस्त्र धारण करने वाले, अनार के समान दन्त पंक्ति वाले, अपने चरणों में देवताओं को भी झुकाने वाले, युद्ध में स्थिर रहने वाले **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम –सरयू के तट पर स्थित कुंज–कुटीर में मेरे साथ कब रमण करेंगे?

गीत संख्या–३

राम राजीवलोचन मिलिष्यसि कदा।
भक्तभीतिमोचन तिलकधेनुरोचन लोचनपथे मे विचरिष्यसि कदा।।१।।
स्पर्शं स्पर्शं कपोलयोः कम्रकरकमलं विरहवारिशुचम्मे हरिष्यसि कदा।।२।।
प्रणयकोपमानिनीं च मानयन् रसज्ञः शिरसि पाणिपङ्कजं धरिष्यसि कदा।।३।।
गिरिधरमनोनिकुञ्जे मधुरभावपुष्पपुञ्जे मया समं राघव विहरिष्यसि कदा।।४।।

भौमी- फिर दादरा ताल में सीताजी गा रही हैं– हे राजीवलोचन श्रीराम! आप मुझे कब मिलेंगे? हे भक्तों के भय को दूर करने वाले, गोरोचन तिलक करने वाले प्रभु श्रीराम आप मेरे नेत्र पथ पर कब विचरण करेंगे? मेरे कपोलों पर कोमल करकमल का स्पर्श कर–करके आप मेरे विरह श्रमबिन्दुओं को कब पोछेंगे? हे रसिक प्रभु! प्रणयकोप में रूठी हुई मुझ सीता को मनाते हुए मेरे सिर पर अपने करकमल कब रखेंगे? हे राघव! मधुर भावपुष्पों से सजे हुए **गिरिधर** कवि के मनरूप निकुंज में आप मेरे साथ कब विहार करेंगे?

सन्दर्भश्लोकः

दृष्ट्वा निशीथेऽथ निशाधिनाथं
वक्त्रप्रभाहीननिशाकराभा ।
निनिन्द निन्दास्पदमेव मत्वा
दोषाकरं भूमिसुता च दोषा।।१।।

भौमी–अपने मुखप्रभा से चन्द्रप्रभा को लज्जित करने वाली भूमि कन्या जानकी जी अर्द्धरात्रि में चन्द्रमा को देखकर उस दोषाकर को दोषों का स्थान मानती हुई रात्रि में उसकी निन्दा करने लगीं।

गीत संख्या-४

विलससि किमु निशि नभसि निशाकर।।
रोहिणिसहितो महमहितस्त्वं, किम् मां हससि शशाङ्ककलाधर।।१।।
गौरुदारिको नित्यलम्पटो मा साहसं कृथा दोषाकर।।२।।
पीतकलः सकलङ्को वक्रः सैंहिकेयहतवैभव सज्वर।।३।।
गिरिधरप्रभुनामोत्तरार्धबलतो भव भाले भासि विभास्वर।।४।।

भौमी- सीता जी हवेली पद्धति में गाती हुई कहती हैं–हे चन्द्रमा! तुम आकाश में कैसे सुशोभित हो रहे हो? अपनी अन्य पत्नियों का अपमान करके केवल रोहिणी के साथ रहकर उसके साहचर्य से उपस्थित महोत्सवों में मग्न होकर शशिचिन्ह से कलंकित कलाओं को धारण करने वाले चन्द्र! तुम मेरी हँसी क्यों उड़ा रहे हो? तुम गुरुपत्नीगामी तथा नित्यलम्पट हो। अतः हे दोषाकर अर्थात् दोषों की खान चन्द्रमा! निरर्थक साहस मत करो। हे राहु के द्वारा नष्ट वैभव, चिन्ताकुल चन्द्रमा! देवताओं ने तुम्हारी कलाएँ पी ली हैं। तुम कलंकी और टेढ़े हो। तुममें केवल एक ही विशेषता है कि **गिरिधर** के प्रभु के स्वामी श्रीराम का उत्तरार्ध चन्द्र ही तुम्हारा नाम है। इसी बल से तुम शंकर भगवान के मस्तक पर विराज रहे हो अर्थात् यदि रामचन्द्र शब्द का उत्तरार्ध चन्द्र शब्द तुम्हारा नाम न होता तो कदाचित् तुमको भगवान शंकर अपने मस्तक पर न स्वीकारते।

गीत संख्या ५

शीघ्रमायाहि हे श्रीराम विरहिणी नितरां व्यथे।
हे शिवमानसराजहंस भवभीषणविपद्विराम।।१।।
त्वदृते युगायते खलु निमिषः कल्पायते त्वां विना दिवसः।
सर्वं जानासि पुण्यप्रणाम।।२।।
शून्यायते सकलसंसारः भोगो रोगो भूषणं भारः।
न मे रोचते मिथिलाधाम।।३।।
मा कृथा गिरिधरप्रभो विलम्बं देहि देव निजकरावलम्बम्।
पाहि सुकविगीतसीताभिराम।।४।।

भौमी- सीताजी पुनः अवध-मिथिला में प्रचलित लोकधुन की ढाल में गा रही हैं– हे श्रीराम! आप शीघ्र आ जाइये, विरहिणी मैं सीता बहुत व्यथित हो रही हूँ। हे शिवजी के मनमानस सरोवर के राजहंस! हे संसार की भयंकर विपत्ति नष्ट करने वाले प्रभु! आपके बिना एक क्षण युग समान लग रहा है और आपके अभाव में एक-एक दिन कल्प समान बीत रहा है। हे पुण्य-प्रणाम प्रभु! आप सब कुछ जानते हैं। मैं विरहिणी सीता आपके बिना बहुत व्याकुल हूँ। आपके बिना मुझे सारा संसार शून्य लग रहा है। मुझे भोग-रोग तथा आभूषण भार प्रतीत हो रहे हैं। मुझे मिथिलाधाम भी नहीं अच्छा लग रहा है। हे **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीरघुनाथ जी! अब विलंब मत कीजिए। हे देव! मुझे अपने करकमल का सहारा दीजिए और श्रेष्ठ कवियों के गीत का विषय बने हुए साकेत विहारी प्रभु अब मुझ मिथिलाविहारिणी सीता की रक्षा कीजिए।

विशेष- यह गीत एक आँचलिक लोकधुन पर निबद्ध है, जिसका बोल निम्नवत् है–

आओ शबरी के घर श्रीराम, बलैंया लेती मैया तेरी।।

सन्दर्भश्लोकौ

विभावयन्ती रघुवर्यमादरात्तदीयसंदर्शनसक्तमानसा।
निषेदुषी दुग्धमतीतटे सती समागतं नारदमाददर्श ह।।१।।
कृतप्रणामां स उवाच भूमिजां प्रहस्य वाचंयममौलिशेखरः।
खरोः खरारिः किमुतेप्सितो वरो ब्रवीतु चेद् गोप्यमिदं न मन्यते।।२।।

भौमी-अब कवि दो सन्दर्भश्लोकों से कथा को क्रमबद्ध कर रहे हैं– सीताजी आदरपूर्वक श्रीराम का चिन्तन कर रही हैं क्योंकि श्रीराम के दर्शन में ही उनका मन आसक्त है। इस प्रकार श्रीराम में तन्मय हुई दूधमती के तट पर बैठी हुई सीताजी ने अपने पास आये हुये नारद जी को देखा। और उन्हें प्रणाम किया फिर अल्पभाषियों में मुकुटमणि नारद जी ने पृथ्वीपुत्री सीता जी से कहा–राजकुमारी! लगता है आप खर के शत्रु श्रीराम को ही क्या अपना ईप्सित वर स्वीकार करती हैं। यदि यह विषय बहुत गोपनीय न हो तो मुझे बतायें।

गीत संख्या ६

श्रीसीता गायति–

महर्षे श्रूयतां शान्तः नरो मे प्रार्थितः कान्तः।
सुरर्षे श्रूयतां शान्तः नरो मेऽभ्यर्थितः कान्तः।।१।।
तपस्वी सञ्जितक्रोधः अनासक्तः स्फुरद्बोधः।
महान् कृतकामसंरोधः नरो मे प्रार्थितः कान्तः।।२।।
दयावान् धार्मिकः श्रीमान् विमुक्तस्त्यागवान् धीमान्।
प्रवीरःकालजिद् ह्रीमान् नरो मे प्रार्थितः कान्तः।।३।।
चिरायुः शीलमाङ्गल्यः कलितकारुण्यकौशल्यः।
सुमङ्गल्यो विगतशल्यः नरो मे प्रार्थितः कान्तः।।४।।
गतव्यभिचारवैगुण्यः लसत्चारित्र्यनैपुण्यः।
गदितगिरिधरगिरापुण्यः नरो मे प्रार्थितः कान्तः।।५।।

भौमी- अब सीता जी गा रही हैं–हे महर्षि! सुनिये! मैंने शान्तपुरुष को ही पति रूप में चाहा है। हे देवर्षि! सुनिए, मैंने इन्द्रियों के दमनकर्त्ता पुरुष को ही पति रूप में अभ्यर्थना का विषय बनाया है। मैंने उस पुरुष को पति रूप में चाहा है जो तपस्वी होते हुए भी क्रोध का विजेता हो और जो ज्ञानी होकर भी आसक्त न हो और जो महान होकर भी काम का विजेता हो। जो धार्मिक होकर भी दयालु हो, जो त्यागवान् होकर भी मुक्तिपथ का पथिक एवं बुद्धिमान हो। जो लज्जाशील वीर होकर भी काल का विजेता हो, वही वर मेरी इच्छा का विषय है। जो दीर्घायु होकर भी करुणा और कुशलता से युक्त होता हुआ शीलमांगल्य अर्थात् नारी को प्रसन्न करने की विधि जानता हो और जो सर्वमंगलमय तथा संसार की सभी पीड़ाओं से दूर हो, वैसा ही वर मेरी कामना का विषय है। जिसमें व्यभिचाररूप दुर्गुण न हो तथा जिसमें चरित्र रक्षा की निपुणता हो और **गिरिधर** कवि की वाणी से जिसके पुण्य का गान किया गया हो, ऐसा सकल कल्याण गुण-गण सम्पन्न पुरुषोत्तम ही मेरा पति हो सकता है।

सन्दर्भश्लोकः

भूमिजा भारतीभासा भासितस्वान्त ईश्वरः।
मुनीनां मानयन् मान्यां प्रजगौ तत्र नारदः।।१।।

भौमी- इस प्रकार भूमिनन्दिनी सीताजी की सरस्वती की शोभा से सुशोभित अन्तःकरण मुनियों के स्वामी नारद जी सम्माननीय सीताजी का सम्मान करते हुये इस प्रकार गाने लगे।

गीत संख्या ७

सीते! एवंविधो नर एकः।
तमतिरिच्य नापरस्त्रिलोक्यां वच्मि चेति सविवेकः।।१।।
कारुणिको विनयी मृदुभाषी सच्चरित्रमयमूर्तिः।
सदाचारनिपुणो गुरुनिष्ठो विहितमनोरथपूर्तिः।।२।।
नीलेन्दीवरघनश्यामलो मधुरः करुणासिन्धुः।
निर्विकारविग्रहो धन्विधुर्यो निजसेवकबन्धुः।।३।।
ऐक्ष्वाकः कमलेक्षण ईशः बुधो नीरदश्यामः।
गिरिधरप्रभुः विभुर्विदितात्मा दाशरथिः श्रीरामः।।४।।

भौमी-हे सीते! जिस प्रकार के वर की आपने इच्छा की है इस प्रकार का वर तो तीनों लोकों में एक ही है। यह बात मैं विवेक से कहा रहा हूँ कि मेरे द्वारा संकेतित वर के अतिरिक्त त्रिलोकी में कोई है ही नहीं, जो आपके अनुरूप हो जिसका मैं संकेत कर रहा हूँ वे करुणानिधान, विनम्र, मृदुभाषी, श्रेष्ठ चरित्रमय मूर्ति से युक्त हैं। वह सदाचार में निपुण गुरुजनों में निष्ठा रखने वाले और स्वजनों के मनोरथों की पूर्ति करने वाले हैं। वे नीले कमल के समान श्यामल-मधुर स्वभाव से सम्पन्न करुणा के सागर, सभी विकारों से रहित, अद्वितीय धनुर्धर और अपने सेवकों के बन्धु हैं। वे इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न सर्वसमर्थ, सर्वव्यापी, सबके मन को जानने वाले, सभी मूर्त-द्रव्यों के साथ रहने वाले **गिरिधर** कवि के स्वामी दशरथनन्दन श्रीराम ही आपकोवर रूप में प्राप्त होंगे।

सन्दर्भश्लोकः

श्रुत्वैव राघवगुणान्विबुधर्षिवक्त्रादानन्दवारिनिधिलीनमना महीजा।
प्रोद्बुद्धपूर्वपरिसेवितरामशोभा सुस्नेहगद्गद् गिरा निजगाद सीता।।१।।

भौमी– इस प्रकार नारदजी के मुख से भगवान श्रीराम के गुणों को सुनकर पूर्व अनुभूति की हुई श्रीराम की सेवा का स्मरण करके आनन्द के महासागर में डूबी हुई भूमिनन्दिनी सीता जी ने विशुद्ध प्रेम से गद्गद्वाणी में इस प्रकार कहा।

गीत संख्या ८

महर्षे! प्रोच्यतां कृपया कदा रामो मिलिष्यति माम्।
सुरर्षे! भण्यतां दयया कदा श्यामो मिलिष्यति माम्।।१।।
कदा कोमलकमलपद्भ्यां जनकपुरमागतः श्रीमान्।
विरहविग्नां वनजदृग्भ्यां स्वयं साक्षात् करिष्यति माम्।।२।।
कदा भङ्क्त्वा धनुः शैवं मुहुः कृत्वा बलं दैवम्।
शिरसि धृतपाणिराजीवं स्वयं सः स्वीकरिष्यति माम्।।३।।
स्वयंवरराजकं जित्वा समेषां संशयं हृत्वा।
कदा गिरिधरप्रभुर्नीत्वा प्रियेति व्याहरिष्यति माम्।।४।।

भौमी– भगवती सीता जी कहती हैं–हे महर्षि! आप कृपा करके बतायें कि श्रीराम मुझे कब मिलेंगे? हे देवर्षे! आप दयापूर्वक आज्ञा दें कि श्यामवर्ण श्रीराम मुझे कब मिलेंगे? हे महर्षे! अपूर्व शोभा सम्पन्न मेरे प्रभु कोमल चरणकमलों से मिथिला पधारकर मुझ विरह–विकल सीता को कमल नेत्रों से कब निहारेंगे? हे महर्षे! वह कब सुन्दर क्षण होगा जब श्रीराम शिव–धनुष तोड़कर सबको देवोचित–बल का दर्शन कराकर मेरे शिर पर अपने कमल कर का स्पर्श करके स्वयं मुझे स्वीकार करेंगे? स्वयंवर में आये हुये राजाओं को जीतकर सभी का संशय दूर करके **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम मुझे प्राप्त करके कब प्रिया जी कहकर मुझे बुलायेंगे?

गीत संख्या ९

अपि च–

रामं त्रिलोकाभिरामं कदा नु मुने साक्षात्करिष्ये।
मिथिलारङ्गमञ्चमभियातं नवलनयननिन्दितजलजातम्।
त्रिभुवनविपद्विरामं कदा नु मुने साक्षात्करिष्ये।।१।।
कुतुकभग्नभवभीषणचापं हृतनिजपदरतदारुणतापम्।
नरकुलललितललामं कदा नु मुने साक्षात्करिष्ये।।२।।
कारुणिकं विनयिनं सुशीलं मर्यादापुरुषोत्तमलीलम्।
तनुजितशतशतकामं कदा नु मुने साक्षात्करिष्ये।।३।।

धृतनिषङ्गसायककोदण्डं मदनकलभकरसमभुजदण्डम्।
गिरिधरदृग्विश्रामं कदा नु मुने साक्षात्करिष्ये।।४।।

भौमी- सीता जी और भी नचारी की धुन में गा रही हैं–हे मुने! तीनों लोकों को आनन्द देने वाले श्रीराम का मैं कब साक्षात्कार करूँगी? हे महर्षे! मिथिला के रंगमंच पर पधारे हुये अपने नवीन नेत्रों से कमल की शोभा की भी निन्दा किये हुये तीनों लोकों की विपत्ति को दूर करने वाले रघुनाथ जी को मैं कब निहारूँगी? जिन्होंने खेल-खेल में शंकर जी का धनुष तोड़ दिया है और सेवकों के दारुण-ताप को हर लिया है, ऐसे मनुष्य-कुल के सुन्दररत्न का दर्शन मैं कब करूँगी? करुणानिधान, विनम्र, सुशील, मर्यादा पुरुषोत्तम की लीला से सम्पन्न अपनी शोभा से कोटि-कोटि कामों को जीतने वाले प्रभु को मैं कब देख पाऊँगी? धनुष-बाण-तरकस धारण किये हुये, काम हस्तिशावक के शुंड समान भुजदण्ड वाले, **गिरिधर** कवि के नेत्रों में विश्राम करने वाले प्रभु श्रीराम का मैं कब साक्षात्कार करूँगी?

सन्दर्भश्लोकः

पुनः शांशयिकी बाला बालसारङ्गलोचना।
प्राह मानससारङ्गन्यस्तरामपदाम्बुजा।।१।।

भौमी- पुनः बाल-मृगनयनी अपने मन-भ्रमर को श्रीराम के चरणकमल में अर्पण की हुई सीता जी सन्देहपूर्ण अवस्था में बोलीं-

गीत संख्या १०

योऽवतारी कथं सोऽवतारो भवेदेष प्रश्नो महर्षे समाधीयताम्।
निर्विकारः कथं सद्विकारं व्रजेदेष प्रश्नो महर्षे समाधीयताम्।।
व्यापकः प्राप्नुयात् किं प्रभो व्याप्यतां प्रापकः प्रातु किं प्रायशः प्राप्यताम्।
सर्वदेशी कथं चैकदेशी लसेदेष प्रश्नो महर्षे समाधीयताम्।१।।
किं महत्त्वेऽणुता किं गुरोर्लाघवं किं नु माया प्रपञ्चः स्पृशेन् माधवम्।
किं जगच्छासकः शिष्यतां संश्रयेदेष प्रश्नो महर्षे समाधीयताम्।२।।
योह्यजन्मा वृणीते कथं जन्म भो, न्यस्तकर्मा प्रकुर्वीत किं कर्म भो।
यः समेषां पिता किं सुतः संभवेदेष प्रश्नो महर्षे समाधीयताम्।।।३।।
भूमिजाभारतीमग्नवैशारदो भाति सहशारदो मूकितो नारदः।
जानकीजानिलालित्यलीलामृतं गिरिधरेणापि नक्तं दिवं पीयताम्।।४।।

भौमी-अब सीता जी प्रश्न की मुद्रा में गीत गा रही हैं–हे महर्षे! जो प्रभु अवतारी हैं, वे अवतार कैसे हो सकते हैं? कृपया मेरे इस प्रश्न का समाधान कीजिये। जो साकेतबिहारी श्रीराम सर्वथा निर्विकार हैं, वे विकारयुक्त इस संसार में कैसे आ सकते हैं? हे देवर्षे! मेरे इस प्रश्न का समाधान कीजिए। हे मुनिवर्य! व्यापक व्याप्य कैसे हो सकता है? प्रापक प्राप्यता को कैसे पूर्ण करेगा? जो सर्वदेशी है वह एकदेशी बनकर कौसल्या जी के आँचल में कैसे शोभा पा सकता है? आप इस प्रश्न का समाधान करें। क्या महत् तत्व में

अणुत्व आ सकता है? क्या गुरु लघु बन सकता है? क्या जगत का शासक किसी की शिष्यता स्वीकार कर सकता है? मेरे इस प्रश्न का समाधान किया जाय। जो अजन्मा है वह जन्म कैसे स्वीकार कर सकता है? जो सभी कर्मों से दूर है, वह कर्म में प्रवृत्त कैसे होगा? जो सभी का पिता है, वह पुत्र कैसे बन सकता है? मेरे इस प्रश्न का समाधान किया जाय। इस प्रकार भूमिनन्दिनी सीताजी की सरस्वती ने नारदजी की सारी चतुरता मटियामेट कर दी और शारदाजी के साथ नारदजी चुप हो गये। भगवान श्रीसीताराम का यह ललित–लीलामृत रात–दिन **गिरिधर** कवि के द्वारा भी पान किया जाय।

गीत संख्या ११

सकलविरुद्धधर्माश्रयतावच्छेदकत्वं भगवत्वं प्रोक्तं बुधैः शृणु सीते स्वामिनि।
स एवावतारी स एवावतारो निर्विकारः परिणामवादस्तु निश्चिनु सीते स्वामिनि।।१।।
अहोरात्र इव काले सर्वेऽपि विरुद्धाधर्मा राम एवं नित्यमेव चिनु सीते स्वामिनि।
भक्तभावनानुसारी सत्प्रपन्नभयहारी अवतारी हरिप्रेम तनु सीते स्वामिनि।।२।।
जगज्जन्मस्थितिलयहेतुस्त्रातश्रुतिसेतुर्भानुवंशकेतुर्ज्ञात्वा धिनु सीते स्वामिनि।
निःसंशये ब्रह्मणि विचारपरशुधाराद्वारा संशयविपिनमपि क्षिणु सीते स्वामिनि।।३।।
स निर्गुणो निराकारः सगुणः साकारो ब्रह्म रामस्तत्र स्वमनः प्राहिणु सीते स्वामिनि।
नैव निर्धर्मकः स तु धर्म एव वै शरीरी गिरिधरप्रभुं वरं वृणु सीते स्वामिनि।।४।।

भौमी–अब नारद जी मिथिलाँचल की लोकधुन में उत्तर दे रहे हैं–हे स्वामिनि सीता जी सुनिये! विद्वानों ने भगवान का लक्षण करते हुए कहा है–'सकल विरुद्ध धर्माश्रयतावच्छेदकत्वं भगवत्वं' अर्थात् भगवान में सभी विरुद्ध–धर्म एक साथ रहा करते हैं। इसीलिए उनमें अवतारीत्व और अवतारत्व ये दोनों विरुद्ध धर्म एक साथ रहते हैं। अतः वे ही प्रभु श्रीराम साकेतलोक में अवतारी और श्रीअवध में अवतार भी हैं। स्वामिनी सीता जी! परमेश्वर का परिणामवाद निर्विकार है। आप इस प्रकार निश्चय कर लीजिए। यद्यपि आचार्य लोग ब्रह्म को परिणामी मानकर परिणामजनित विकार प्रकृति में मानकर समाधान करते हैं तथापि ब्रह्म अचिन्त्य–शक्ति के आधार पर परिणामी होकर भी निर्विकार रह सकता है। जैसे–एक दीपक अनेक दीपकों को उत्पन्न करके भी विकारवान नहीं होता। हे स्वामिनि सीता जी! जैसे एक ही समय में दिन–रात दोनों विरुद्धधर्मी रह लेते हैं उसी प्रकार सभी परस्पर विरुद्ध धर्म भगवान श्रीराम में निरन्तर विराजते हैं इस प्रकार आप मन के संकल्प का चयन कर लीजिए। भगवान श्रीराम अवतारी होकर भी भक्त की भावना का अनुसरण करते हुये शरणागत सन्तों का भय हरने के लिए अवतार भी ले लेते हैं। ऐसा जानकर उनमें प्रेम का विस्तार कीजिए। हे जनकनन्दिनीजू! सूर्यवंश के ध्वज के स्वरूप श्रीराम ही वैदिक धर्मसेतु के रक्षक और जगत के जन्म–स्थिति–प्रलय के कारण परब्रह्म ही हैं। ऐसा जानकर आप प्रसन्न हो जाइये। हे महारानी जू! संदेहरहित परब्रह्म में उत्पन्न हुये संशयरूप बन को विचाररूप कुल्हाड़े की धारा से काट डालिये। वही श्रीराम निर्गुण, निराकार और सगुण–साकार ब्रह्म भी हैं अर्थात् एक ही समय में हेय गुणों से रहित होने के कारण निर्गुण तथा उपादेय गुणों से युक्त होने के कारण सगुण! इसी प्रकार सांसारी आकारों से दूर होने से निराकार और भजन के लिए उपयोगी आकारों से युक्त होने के कारण साकार ब्रह्म श्रीराम ही हैं।आप अपना मन उन्हीं के चरणों में भेज दीजिए। हे महारानी जानकी जू! श्रीराम निर्धर्म ब्रह्म नहीं हैं, प्रत्युत् वे तो विग्रहवान धर्म ही हैं। अतः संदेह छोड़कर आप श्रीसीता जी **गिरिधर** कवि के प्रभु श्रीराम को ही वररूप में वरण कर लें।

विशेष– इस संस्कृत गीत का लोकधुन संबंधी ढाल इस प्रकार है–

''कवने नगर से पधारे दोऊ श्याम गौर
कहा तेरो पिताजी को नाम धनुधरिया
कवने पठाये केहिं हेतु तुम आये इतै
भरिवे को फूल दोना कहो धनुधरिया।।''

गीत संख्या १२

अपि च

सगुणनिर्गुणयोर्भेदो नास्ति।
यः सगुणः स तु प्रभुर्निर्गुणः भिदा न कापि चकास्ति।।
जलतुषारयोरिव तु तत्त्वतः द्वयोरेकता भाति।
न्यस्तहेयगुणतया निर्गुणः मायां विना विभाति।।१।।
स च कल्याणगुणगणैर्युक्तः सगुणो भवति हि नित्यम्।
नाना विधाऽवतारैः शं भक्तानां कुरुते नित्यम्।।२।।
निरुपमाश्च निःशेषा नित्या नियताकारास्तस्य।
आकारस्तम्भादेर्निरयात् निराकारताऽप्यस्य।।३।।
युगपन्निराकारसाकारः सगुणोऽप्यगुणो रामः।
अविकृतपरिणामी जगदीशः ख्यातः पुण्यप्रणामः।।४।।
अतो ज्ञानकर्कशतां त्यक्त्वा तं भावुका भजन्ति।
गिरिधरप्रभोर्लब्धबोधा अपि भक्तिं नैव त्यजन्ति।।५।।

भौमी–नारद जी हवेली पद्धति में कहते हैं और भी सगुण और निर्गुण में कोई भेद नहीं है। जो प्रभु सगुण हैं वही निर्गुण भी हैं। दोनों में किसी प्रकार का भेद नहीं है। वस्तुतस्तु दोनों की एकता जल और बर्फ के समान है। भगवान को निर्गुण इसलिये कहा जाता है कि वे मायिक हेयगुणों से रहित हैं। वे ही प्रभु कल्याण गुणगणों से युक्त होकर निरन्तर सगुण हुये बने रहते हैं और वे अपने अनेक अवतारों से अपने भक्तों का कल्याण करते रहते हैं। भगवान के आकार निरुपम हैं इसलिए भी वे निराकार हैं। '**निरुपमाः आकाराःयस्य स निराकारः**' सभी आकार भगवान के ही हैं, इसीलिए वे निराकार हैं। '**निःशेषाः आकाराः यस्य सः निराकारः**' भगवान के आकार नियत हैं। इसलिए वे निराकार हैं। '**निरन्तरम् नियता आकाराः यस्य स निराकारः।**' इसी प्रकार खंभे को फाड़कर प्रभु प्रकट हुए। इसलिए उन्हें निराकार कहते हैं। **निष्क्रान्तः आकारात् इति निराकारः।** पवित्र परिणाम वाले भगवान श्रीराम एक ही साथ निराकार–साकार तथा निर्गुण–सगुण भी हैं। वे जगत के ईश्वर तथा जगत के परिणामी होकर भी निर्विकार हैं। अर्थात् जगत भगवान का विवर्त नहीं है, प्रत्युत् परिणाम है। अतएव ब्रह्मसूत्र में भी ''**परिणामात्**'' (ब्रह्मसूत्र १,४,२६) कहकर परिणामवाद ही सिद्ध किया गया है। इसीलिए भावुक भक्त–लोग ज्ञान की कर्कशता छोड़कर भगवान का भजन करते हैं। ज्ञान प्राप्त करके भी ज्ञानी जन **गिरिधर** कवि के प्रभु श्रीराम की भक्ति नहीं छोड़ते।

गीत संख्या १३

भूमिजे भक्तिवशो भगवान्।
प्रणतपालको दीनहितैषी करुणाब्धिः श्रीमान्।।१।।
त्वं साक्षाद् भगवतो भक्तिरथ स च निरुपमगुणवान्।
रामो भगवान् परमात्मा परमेश्वर इति भूमान्।।२।।
स्वरूपसम्बन्धेन समस्तैर्गुणैर्युतः श्रुतिमान्।
अतो नैव व्यभिचरति तदीयं ब्राह्मं स च धृतिमान्।।३।।
भक्तिरेनमथ नयति निगमयति भक्त्यधीनतावान्।
गिरिधर भज रामं भगवन्तं प्रभुर्भक्तिगुणवान्।।४।।

भौमी–नारद जी पुनः हवेली पद्धति में ही गा रहे हैं–हे पृथ्वीनंदिनी सीते। भगवान श्रीराम शरणागतों के पालक दीनों के हितैषी, करुणा के महासागर, नित्य श्रीसम्पन्न होते हुए भी भक्ति के ही वश में रहते हैं। आप साक्षात् भगवान की भक्ति ही हैं और श्रीराम निरुपम गुणों से युक्त परमात्मा, परमेश्वर, नित्यसत्ता सम्पन्न भगवान हैं। यही आप और प्रभु का विवेचन है। धैर्य सम्पन्न वे श्रीराम वेदमय होकर भी स्वरूप सम्बन्ध से गुणों से युक्त रहते हैं। इसीलिए उनके ब्रह्मत्व में व्यभिचार नहीं आता। भगवान को भक्ति ही भक्त के पास ले जाती है। भक्ति ही उनका बोध कराती है। भगवान श्रीराम भक्त के अधीन हैं। हे कवि **गिरिधर**! तुम भी भगवान राम का ही भजन करो क्योंकि वे सर्वसमर्थ होकर भी भक्ति की रस्सी से बँधे रहते हैं।

गीत संख्या १४

यस्य श्रुत्वा गुणान् चित्तमुत्कण्ठतां तं विजानीहि प्राप्तं वरं भूमिजे।
यस्य ध्यात्वा वपुः स्वान्तमुत्कण्ठतां तं विजानीहि प्राप्तं वरं भूमिजे।।
यत्कथाकर्णपीयूषपायं शुभे यन्मधुरगीतगायं सुशम्पाविभे।
सन्ततं ते रसज्ञा समुत्कण्ठतां तं विजानीहि प्राप्तं वरं भूमिजे।।१।।
कोटिझषकेतुनिन्दकनवाम्बुदरुचौ यत्र कल्याणगुणगणविबर्धितशुचौ।
त्वन्मनोनीलकण्ठो नरीनृत्यतां तं विजानीहि प्राप्तं वरं भूमिजे।।२।।
यस्य सौन्दर्यसागरलसच्छविसुधाश्रावमावर्धतां तावकी दृक्क्षुधा।
यो वरेण्यो वरत्वे वरीवृत्यतां तं विजानीहि प्राप्तं वरं भूमिजे।।३।।
पुष्पवाट्यां सरवीतो निशम्यच्छविं त्वं दिदृक्क्षस्व यं भक्तपञ्जरविम्।
गिरिधरेशो दृशा ते दरीदृश्यतां तं विजानीहि प्राप्तं वरं भूमिजे।।४।।

भौमी–हे भूमिनंदिनी सीते! जिसके गुणों को सुनकर और जिसके स्वरूप का ध्यान करके उससे मिलने की आपके चित्त और मन में उत्कण्ठा जग जाय, उसी को आप अपना प्राप्त वर समझ लीजिएगा। हे सीते! जिनके कथामृत का पान करके, जिनके सम्बन्धी मधुरगीत गा करके भी आपकी जिह्वा को प्रभु का गुणानुवाद करने की निरन्तर उत्कण्ठा हो जाय, उसी को आप अपना वर समझ लीजियेगा। हे सीते! कल्याण

गुणरूप दिव्यजल से जिसकी पवित्रता निरन्तर बढ़ रही है, ऐसे करोड़ों कामदेवों को भी निन्दित करने वाले, नवीन बादल जैसी कान्ति से युक्त जिन घनश्याम के समक्ष आपका मनमयूर नाच उठे वही आपका वर होगा, ऐसा आप जानें। जिसके सौन्दर्य सागर की छवि सुधा का श्रवण करके भी आपके नेत्र की क्षुधा बढ़ जाय। जो सबका वरणीय होकर भी आपके वर-भाव में अतिशय वर्तमान हो, उसी को आप अपने प्राप्त-वररूप में समझ लीजिएगा। फुलवारी में सखी के मुख से जिनकी छवि सुनकर जिन भक्तकमल के सूर्य को देखने के लिए आपका मन करे और जिन **गिरिधर** कवि के ईश्वर को आपकी दृष्टि बार-बार निहारे उसी पुरुष विशेष को आप अपने पास आया हुआ वर समझ लीजिएगा।

गीत संख्या १५

धर धर धरणिसुते हृदि धैर्यम्। मा त्याक्षीर्हृदयस्य स्थैर्यम्।।१।।
कार्या देव्या सदा प्रतीक्षा। सफला स्यात्ते भाग्यसमीक्षा।।२।।
आयास्यति नवजलदश्यामः। भङ्क्ष्यति ते विरहं श्रीरामः।।३।।
कुतुकभग्नगौरीपतिचापः। भास्यति भूपे स्वमितप्रतापः।।४।।
धास्यति पाणिग्रहं पुनीतम्। गास्यति शुभं गिरिधरो गीतम्।।५।।

भौमी–हे पृथ्वीपुत्री सीते! हृदय में (धैर्य धारण कीजिए) अपने हृदय की स्थिरता मत छोड़िये। आप निरन्तर प्रतीक्षा कीजिए। आपके भाग्य की समीक्षा सफल हो। नवीन मेघ के समान श्रीराम आयेंगे और आपके विरह को समाप्त करेंगे। वे खेल-खेल में शिवजी का धनुष तोड़कर राजाओं के बीच असीम प्रतापी पुरुष के रूप में प्रकाशित होंगे और वह आपका पवित्र पाणिग्रहण करेंगे तथा कवि **गिरिधर** भी मंगल-गीत गायेंगे।

विशेष– यह गीत तीन ताल में निबद्ध है और इसे कल्याण के ही स्वर में गाना चाहिए।

गीत संख्या १६

अदः पूर्णं इदं पूर्णं द्वयं वैदेहि वै पूर्णम्।
न चामुष्मादिदं न्यूनं द्वयं वैदेहि वै पूर्णम्।।१।।
अदो नवतारि साकेते इदं त्ववतार्यवधकेते।
अदस्त्वगुणं इदं सगुणं द्वयं वैदेहि वै पूर्णम्।।२।।
अदो रामः इदं सीता त्वमेव स्नेहसमवीता।
न पूर्वस्मात् परं न्यूनं द्वयं वैदेहि वै पूर्णम्।।३।।
सुसौलभ्यात् सकारुण्यात् उदच्यं पूर्णमथपूर्णात्।
सदोत्कृष्टं शुभं पूर्णं इदं वैदेहि वै पूर्णम्।।४।।
गृहीत्वा पूर्णपूर्णांशं सगुणनिर्गुणसमस्तांशम्।
सुकवि गिरिधरप्रभुः पूर्णं द्वयं वैदेहि वै पूर्णम्।।५।।

भौमी–नारदजी पुनः लोकधुन में गाते हैं–हे सीते! वह अर्थात् साकेत के श्रीराम पूर्ण हैं और यह अर्थात्

अवध के श्रीराम भी पूर्ण हैं। दोनों ही पूर्ण हैं। वह इनसे न्यून नहीं हैं। दोनों ही पूर्ण हैं। अदः अर्थात् वे साकेतबिहारी श्रीराम अवतार नहीं लेते और इदं अर्थात् अवधबिहारी श्रीराम अवतार लेते हैं। वे निर्गुण हैं ये सगुण हैं, परन्तु दोनों ही पूर्ण हैं। दूसरे पक्ष में अदः अर्थात् वे हैं श्रीराम तथा इदं अर्थात् यह अत्यंत निकट वर्तमान इदं शब्द का अर्थ तुम्ही हो स्नेहमयी सीता! कोई किसी से कम नहीं है। तुम दोनों ही पूर्ण हो। परन्तु श्रीराम की अपेक्षा आप में सुलभता और करुणा की अधिकता है। अतः उन पूर्ण श्रीराम से पूर्ण अर्थात् आप उदच्यते अर्थात् अधिक पूज्य और उत्कृष्ट हैं। इसीलिए आप शुभ हैं, उत्कृष्ट हैं और पूर्ण भी हैं। इस प्रकार सगुण-निर्गुण रूप समस्त अंशों के अंशी पूर्ण परमात्मा के पूर्णांश को ग्रहण करके आप दोनों **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीसीताराम पूर्ण हैं।

विशेष- यह गीत '**पूर्णमदः पूर्णमिदं**' का पूर्ण भाष्य है।

गीत संख्या १७

अन्यच्च-

राजाऽपि दृष्टो महाराजोऽपि दृष्टो मम रामसदृशः।
कोऽपि राजा न दृष्टः।।
दीनजनबन्धुः करुणासिन्धुः कोऽस्ति भक्तभयहारी।
कः पदाब्जरजसा पतिशापात् पतिताहल्यातारी।।
देवोऽपि दृष्टो महादेवोऽपि दृष्टो मम राम सदृशः।
कोऽपि देवो न दृष्टः।।१।।
त्यक्त्वा सुरदुर्लभपितृराज्यं कोऽगात् वनं कृपालुः।
धीवरकोलकिरातजनानां को दयते स्म दयालुः।।
त्यागी च दृष्टो महात्यागी च दृष्टो मम रामसदृशः।
कोऽपि त्यागी न दृष्टः।।२।।
कस्य पतितपावनशुभविरुदं कोऽकृत गृद्धं तातम्।
कः शवरीजुष्टफलमश्नात् कोऽकृत कपिं स्वजातम्।।
योगी च दृष्टो महायोगी च दृष्टो मम रामसदृशः।
कोऽपि योगी न दृष्टः।।३।।
को वानरनिशिचरभल्लूकान् सचिवानकृत कृतज्ञः।
गिरिधरसम्मितागणितपतितान् कोऽपालयत गतिज्ञः।।
स्वामी च दृष्टो महास्वामी च दृष्टो मम राम सदृशः।
कोऽपि नाथो न दृष्टः।।४।।

भौमी-और भी! राजे भी देखे गये महाराजे भी देखे गये परन्तु मेरे राम जी के समान कोई राजा नहीं देखा गया। कौन हैं दीनजनों का बन्धु और करुणासिन्धु कौन हैं भक्तों का भयहर्ता? पति के शाप से पतित अहिल्या को अपने चरण कमल की धूलि से किसने तारा? हमने देवता भी देखा, महादेवता भी देखा, पर श्रीराम जैसा

कोई देवता नहीं देखा। देवतुल्य पिता का राज्य छोड़कर सामान्य–जनों पर कृपा करने के लिए वन में कौन गया? केवल श्रीराम केवट–कोल–किरातों पर किसने दया की? एकमात्र श्रीरामजी ने। मैंने त्यागी भी देखा और महात्यागी भी देखा पर श्रीराम जैसा कोई त्यागी नहीं देखा। पतितपावन जैसा विरुद किसने धारण किया? किसने जटायु को पिता माना? किसने शबरी के जूठे फल खाये और किसने वानरशरीरधारी हनुमान जी को अपना पुत्र बनाया? मैंने योगी भी देखे और महायोगी भी देखे हैं, पर मैंने राम जैसा कोई योगी नहीं देखा। किस कृतज्ञ ने वानर–भालू–और राक्षस को अपना मंत्री बनाया? किस गतिज्ञ ने मुझ कवि **गिरिधर** जैसे अनेक पतितों का पालन किया? हमने स्वामी भी देखा महास्वामी भी देखा पर मेरे राम जी जैसा कोई स्वामी नहीं देखा।

विशेष– यह गीत मेरे ही द्वारा रचित '**राजे भी देखे महाराजे भी देखे**' गीत की ही ढाल में निबद्ध है।

सन्दर्भश्लोकौ

दिवमिते गुणवर्णिनि नारदे विबुधवृद्धविचारविशारदे।
अवनिजाजनमण्डितमानसा विशिथिलामिथिलाधिपबालिका।।१।।
चारुशीलां समाहूय रामपादाब्जचन्द्रिका।
चकोरी मिथिलाधीशकिशोरी किञ्चिदाजगौ।।२।।

भौमी–इस प्रकार प्रभु का गुण वर्णन करके दैवीय–विचार में निपुण देवर्षि नारदजी के ब्रह्मलोक पधार जाने पर परमात्मा श्रीराम के आवेश से सुशोभित मन वाली पृथ्वीपुत्री मिथिलाधिराज कन्या जानकी जी कुछ क्षणों के लिए शिथिल हो गयीं। पश्चात् अपनी अन्तरंग सखी चारुशीलाजी को बुलाकर श्रीराम चरणकमल की नखमणि चन्द्रिका की चकोरी जनकराज किशोरी कुछ गाने लगीं।

गीत संख्या १८

सखि हे किं कथां कथयामि।
समस्यायाः समाधानं न मे त्वां व्यथयामि।।
जनुरिदं सुकुलीनवंशे वपुः परवशमेव।
मरणमपि याचितुमशक्यं चेद् वरं स्वयमेव।।१।।
राघवस्य कथां श्रृणोमि सदैव तं ध्यायामि।
तद् गुणान् किल चिन्तयामि निरन्तरं गायामि।।२।।
भोजनं न करोमि दिवसे निशि च नो निद्रामि।
दरिद्राति च मानसं भाग्यं स्वकीयं द्रामि।।३।।
राघवेण विना जगदिदं शून्यवत् प्रतिभाति।
अहो रजनीवल्लगति रविरेव शशी विभाति।।४।।
जानकीजीवनं चेच्छसि चारुशीले देहि।
शीघ्रमथ गिरिधरप्रभुं मम सन्निधौ प्रविधेहि।।५।।

भौमी–हे सखी! तुमसे क्या कहूँ? मेरी समस्या का कोई समाधान नहीं है। मैं तुम्हें दुःखी ही कर रही हूँ। मेरा जन्म–कुलीन–वंश में हुआ है। अतः घर से श्रीअयोध्या के लिये भाग नहीं सकती। शरीर पराधीन है, उसे त्याग नहीं सकती। मरण माँगना भी कठिन है, यदि वह स्वयं आ जाता तो अच्छा होता। मैं श्रीराम की कथा सुनती हूँ सदैव उनका ध्यान करती हूँ, उन्हीं प्रभु के गुणों का हृदय में चिन्तन करती हूँ और उन्हीं प्रभु का गान करती रहती हूँ। मैं दिन में भोजन नहीं लेती हूँ और रात में सोती नहीं हूँ। मेरा मन दरिद्र हो रहा है, मैं अपने भाग्य की भी निन्दा कर रही हूँ। श्रीराघव के बिना यह संसार शून्य जैसा प्रतीत हो रहा है। अहो! अर्थात् दिन–रात्रि के समान लग रहा है और सूर्य भी चन्द्रमा जैसे दिख रहे हैं। हे चारुशीले! यदि मुझ जानकी का जीवन चाहती हो तो जानकीजीवन श्रीराम को दे दो और **गिरिधर** कवि के स्वामी राघव जी को शीघ्र ही मेरे निकट ला दो।

गीत संख्या १९

सखि किं कथये निजभावम्।
जानन्त्यपि प्रभोः स्वभावम्।।
यदा प्रभृति नारदो गतः सखि वर्णितनाथचरित्रः।
तदा प्रभृति मां दहति निशि दिवा प्रभुविरहाग्निरमित्रः।।१।।
क्वायोध्या क्व च दूरदेशगा सुभगे जनकपुरीयम्।
क्वाहं पामरमतिरल्पज्ञा क्वेदं ब्रह्मतुरीयम्।।२।।
यद्यपि मां विहाय रघुनाथः कामपि नो परिणेता।
सदैवैकपत्नीव्रतनिरतो मर्यादाकृतचेताः।।३।।
रविणा प्रभेव विधुना चान्द्री रामेणाहमनन्या।
सीताया रामो निरन्तरं प्रकृतिश्चैषा मान्या।।४।।
लोकवेदसम्मता सुस्थिरा यदपीयं मीमांसा।
तदपि विकलयति मां गिरिधरप्रभुमुखविधुसुधापिपासा।।५।।

भौमी–पुनः सीता जी कहती हैं–हे सखी! मैं अपने प्रभु का स्वभाव जानती हुई भी अपने मन का भाव कैसे कहूँ? प्राणनाथ का चरित्र सुनाकर जब से श्रीनारद मेरे पास से गये हैं, तभी से शत्रु बना हुआ प्रभु का विरहाग्नि मुझे रात–दिन जला रहा है। कहाँ अयोध्या और कहाँ उससे बहुत दूर देश में बसी हुई यह मिथिलापुरी। कहाँ मैं अल्पबुद्धि सामान्य महिला, कहाँ तुरीयतत्व परब्रह्म श्रीराम। यद्यपि रघुनाथ जी मर्यादा पुरुषोत्तम और सदैव एकनारी–व्रती होने के कारण मुझे छोड़कर किसी भी नारी से विवाह नहीं करेंगे। जिस प्रकार सूर्य से उनकी प्रभा और चन्द्रमा से चन्द्रिका अभिन्न है, उसी प्रकार मैं भी श्रीराम से अनन्य हूँ। श्रीराम तो निरन्तर सीता के ही हैं। यही प्रकृति सर्वमान्य है। यद्यपि यह मीमांसा लोक और वेद दोनों से सम्मत है कि श्रीराम सीता के ही हैं, फिर भी **गिरिधर** कवि के प्रभु श्रीराम के मुखचंद्र की अमृत पिपासा ही मुझे व्याकुल कर रही हैं।

सन्दर्भश्लोकः

कदाचिद् वीक्ष्य दैवज्ञरूपिणं सा वृषाकपिम्।
वर्षद्वारम्बकाम्भोजा पप्रच्छेदं शुचिस्मिता।।१।।

भौमी–किसी समय ज्योतिषी के वेश में आये हुये भगवान शंकर को देखकर नेत्र कमल से अश्रु वर्षा करती हुई पवित्र मुस्कान वाली सीताजी इस प्रकार आदरपूर्वक पूछने लगीं।

गीत संख्या २०

किञ्चिदस्माकं सुशकुनं विचारय ज्यौतिषिन्।
कदाऽऽयास्यति रघुनाथ उच्चारय ज्यौतिषिन्।।
म्रियमाणां सीतां द्विज सुधां पाययेथा।
रघुकुलचन्द्रं मम सन्निधापयेथा।।
चिररोगिणीं चिकित्सयोपचारय ज्यौतिषिन्।।१।।
सत्यं सत्यं ब्रूहि ब्रूहि कदा तन्मुहूर्तम्।
सफलय ब्राह्मण मदीयमिष्टापूर्तम्।।
सीताजीवनविधानकं विधारय ज्यौतिषिन्।।२।।
कनकवसनमणिभूषणानि दास्ये।
भूसुरदम्पतीकृते भवनं विधास्ये।।
सत्यं ज्यौतिषस्य सुफलं विचारय ज्यौतिषिन्।।३।।
कनकदिवसो गुरो कदा सा गमिष्यति।
यदा मम नेत्रपूरो रामो नु भविष्यति।।
गिरिधरप्रभुदृशि निमिषं निवारय ज्यौतिषिन्।।४।।

भौमी–सीता जी शिव ज्योतिषी जी से कह रही हैं–हे ज्योतिषी जी! थोड़ा-सा हमारा सगुन विचार लीजिए। मेरे रघुनाथ जी कब आयेंगे? यह फल भाख दीजिए। हे ब्राह्मण देवता! मर रही मुझ सीता को अमृत पिला दीजिये। रघुकुल के चंद्रमा श्रीराघव को मेरे निकट ला दीजिए। इसी चिकित्सा से बहुत काल से रुग्ण मुझ सीता का उपचार कर दीजिए। हे ब्राह्मण! सत्य बताइये–सत्य बताइये वह मुहूर्त्त कब है? आप मेरी ईष्टापूर्त अर्थात् कुआँ बावली आदि के निर्माण के पुण्य को सफल कर दीजिए। मुझ सीता के जीवन के विधान को भी निश्चित कर दीजिए। अन्यथा मैं मर जाऊँगी। हे ज्योतिषी! आप अपने ज्योतिष का सत्य फल विचार दीजिए, प्रभु के आ जाने पर मैं आपको स्वर्ण-वस्त्र-मणि और भूषण का दान करूँगी और आप पति-पत्नी के लिए एक सुन्दर भवन बनवा दूँगी। हे गुरुदेव! वह सोने का दिन कब आयेगा? जब श्रीराम मेरे नेत्र के सामने होंगे। अब तो ज्योतिषी जी **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम के दर्शन में बाधा बन रही पलकों का गिरना भी रोक दीजिए।

विशेष- यह गीत ठेंठ मिथिला के आँचलिक धुन की ढाल में निबद्ध है। जिसके बोल हैं–

कनि हमरौ सगुनवां विचारु ज्यौतिषी।
कखनौ ऐतै रघुनाथ उच्चारु ज्यौतिषी।।

सन्दर्भश्लोकौ

वेदव्याससुतं प्रपत्तिनिगमं ज्ञातुं पुरैवागतम्
मायाकीरतनुं श्रियैव महितं वैराग्यसत्पञ्जरे।
सीताहूय सिताम्बकास्वलिखितं लीलाशुकं प्राहिणो-
द्रामायार्प्य सुपत्रमाशुसखिभिः श्रीकोसलावासिने।।१।।
गत्वा कीरो राघवीं राजधानीं दृष्ट्वा रामं क्वापि संक्रीडमानम्।
शौक्या वाचाहूय वाचंयमाय प्रादात् पत्रीं राघवायावनेय्याः।।२।।

भौमी–वेदव्यास जी के पुत्र शुकाचार्य जो कि पूर्व में ही शरणागति का रहस्य जानने के लिए श्रीसीता के चरणों में आये हुये थे सबके समक्ष उन्होंने लीला में तोते का रूप बना रखा था और श्री जी ने भी उन्हें वैराग्य के पिंजरे में रखकर शरणागति का रहस्य पढ़ाया था। आज उन्हीं शुकाचार्य को बुलाकर कजरारे–नैनों वाली सीता जी ने स्वहस्तलिखित एक पत्र सौंपा और कहा– यह तुम मित्रों के साथ खेल रहे कोसलराज किशोर श्रीराम को चुपके से सौंप देना। अनन्तर श्रीराम की राजधानी में जाकर एकान्त में खेलते हुए श्रीराम के दर्शन करके उन्हें तोते की ही वाणी में बुलाकर शुकाचार्य जी ने संयमित वाणी में बोलने वाले प्रभु श्रीराम को पृथ्वीनंदिनी सीता जी का पत्र सौंपा।

गीत संख्या २१

सीता प्राह–

जय जय रघुनन्दन खरारे हे जय स्वजनसौख्यकारिन्।
श्रुत्वा गुणास्ते श्रीदेवर्षिवक्त्रात् सारानसारे।
संसारे हे कामितास्मि कामदारिन्।।
जय जय रघुनन्दन ....।।१।।
उद्धर्तुं प्लवानिव सर्वजीवजगतां मग्नानामपारे।
पारावारे हे मोदितास्मि मोदितारिन्।।
जय जय रघुनन्दन ....।।२।।
त्रैलोक्यलावण्यलक्ष्मीमये रूपकुलललामे।
दनुजारे हे मोहितास्मि मोहहारिन्।।
जय जय रघुनन्दन ....।।३।।
सर्वचक्षुष्मतां चक्षुर्लाभे घनाभे आधारभूते।
निराधारे हे भवितास्मि भवप्रहारिन्।।
जय जय रघुनन्दन ....।।४।।
गिरिधरप्रभुं पतिमेव वृतवती पाहि राक्षसेभ्यो।

राक्षसारे हे त्वां गतास्म्यवधविहारिन्।।
जय जय रघुनन्दन ....।।५।।

भौमी–अब सीता जी पत्र में कह रही हैं– हे रघुनन्दन! हे खर नामक राक्षस के शत्रु! हे स्वजनों को सुख देने वाले प्रभु! आपकी जय हो, जय हो, जय हो। हे कामादिविकारों को नष्ट करने वाले प्रभु! श्री देवर्षि के मुख से आपके गुणों को सुनकर जो इस असार संसार में सारभूत तत्व हैं, मैं आपकी कामना करने लगी हूँ। हे शत्रुओं को भी प्रसन्न करने वाले प्रभु! उन गुणों को सुनकर जो अगाध सागर में डूबे हुये सम्पूर्ण जीवों के उद्धार के लिए जहाज के समान हैं, मैं आप पर बहुत प्रसन्न हो रही हूँ। हे मोह को हरने वाले प्रभु! आपके मनुष्य कुल के रत्न के समान एवं तीनों लोकों के सौन्दर्य की शोभा से युक्त रूप पर मैं मोहित हो चुकी हूँ। हे सांसारिक बाधाओं को नष्ट करने वाले हरे! सम्पूर्ण नेत्र वालों के नेत्रों के लाभ स्वरूप नीले बादल के समान सुन्दर आप श्री पर मैं अपना सम्पूर्ण भाव उड़ेल चुकी हूँ। हे अवध विहारिन **गिरिधर** कवि के स्वामी! आप श्रीराघव को ही मैंने पतिरूप में वरण कर लिया है। हे राक्षसों के शत्रु श्रीरघुनाथ! मैं आपको ही प्राप्त कर चुकी हूँ, आप मेरी राक्षसों से रक्षा कीजिए।

विशेष- यह गीत मिथिलाँचल के लोकधुन की ढाल पर निबद्ध है जिसका बोल है–

आइल अवध के बरतिया हे मिथिला के दुअरिया

गीत संख्या २२

मम विनतिं शृणु श्रीराम हे।
प्रणतपाल राजीवविलोचन प्रणतविवुधतरुनाम हे।१।।
जलधरसुन्दर भवनिधिमन्दर सुखमन्दिर गुणधाम हे।
आगच्छाशु कृपाकर रघुवर कामयस्व मां काम हे।।२।।
मा भुङ्क्तां हरिबलिं वायसो विजितदनुजसंग्राम हे।
गिरिधरप्रभो मां सपदि परिणय प्रणयपूर्णपरिणाम हे।।३।।

भौमी–अब सीता जी मालकौंश राग में निबद्ध गीत प्रस्तुत कर रही हैं। हे प्रणतपाल! हे लालकमल के समान नेत्र वाले! हे प्रणतजनों के कल्पवृक्ष स्वरूप नाम वाले! श्रीराम मेरी प्रार्थना सुनिये। हे बादल के समान सुन्दर! हे संसार सागर के मंदराचलरूप! हे सुख के मंदिर! हे श्रेष्ठ गुणों के भवन! हे कृपा के भाण्डागार! हे रघुकुल में श्रेष्ठ निष्काम श्रीराम! आप मेरी कामना कीजिए अर्थात् मुझे पत्नी रूप में अपनी इच्छा का विषय बनाइए। हे युद्ध में राक्षसों को जीतने वाले प्रभु! हे परिणाम में भी प्रणयपूर्ण श्रीराम! देखिये कहीं सिंह का भाव कौवा न खा जाय। हे **गिरिधर** कवि के स्वामी मुझे शीघ्रातिशीघ्र परिणीत कर दीजिए।

गीत संख्या २३

रघुनन्दन प्रणतिः श्रूयताम्।
मा मम भाग्यविबुधतरुलतिकागरलफलं परिषूयताम्।।
भग्नकामरिपुधनुषाऽजनुषा रक्षोबलमभिभूयताम्।

जित्वा राजकुलं स्वयम्बरे प्रभुणा मुहुः प्रभूयताम्।।१।।
त्वच्छरदिनकरकरनिकुरं वै रिपुतिमिरञ्च विधूयताम्।
तव विक्रमप्रभञ्जनवेगाच्छत्रुघटाप्यवधूयताम्।।२।।
सपदि मया सह जनकमण्डपे भवता लाजा हूयताम्।
गायन् सीतारामपरिणयं कविगिरिधरो न दूयताम्।।३।।

भौमी–सीता जी फिर मालकौंश में ही गा रही हैं–हे रघुनन्दन! मेरी प्रार्थना सुनी जाय। मेरी भाग्य रूप कल्पलता कहीं विषफल को न जन्म दे दे। अजन्मा और विष्णु को भी अंश के रूप में उत्पन्न करने वाले आप श्रीप्रभु राम के द्वारा शिवधनुष तोड़कर राक्षसों की सेना को और राक्षसों के बल को अभिभूत किया जाय अर्थात् कुचल दिया जाय और स्वयम्बर में राजकुल को जीतकर अपने पराक्रम का पुनः–पुनः प्रदर्शन किया जाय। इसी प्रकार आपके बाणरूप सूर्यों की दिव्य किरणों से आपके शत्रुरूप अंधकार का नाश हो जाय और आपके पराक्रमरूप वायु के वेग से शत्रु समूहरूप घटाएँ नष्ट हो जायँ। जनक मण्डप में मेरे साथ आप शीघ्र ही लाजाहुती करें अर्थात् अग्नि में धान की लावा डालें और इस प्रकार श्रीसीताराम का विवाह मंगल संस्कृत भाषा में गाते हुये **गिरिधर** कवि कभी दुःखी न हों।

गीत संख्या २४

हरे मिथिलापुरमागम्यताम्।।
आत्मारामरम्यमिथिलायाः आरामे आरम्यताम्।
रविकुलरविरमणीयरोचिषा भवविपदापि विरम्यताम्।।१।।
कमनकामरिपुकार्मुकभञ्जं जनकसंशयः शम्यताम्।
यद् धाष्ट्र्यं पत्रेऽस्मिन् लिखितं तत्क्षमयेव क्षम्यताम्।।२।।
सत्वरमीश्वरभवताप्यवता जनकप्रणः परिणम्यताम्।
गिरिधरहृदयनिकुञ्जे नित्यं राम मया सह रम्यताम्।।३।।

भौमी–सीता जी फिर मालकौंश में गाती हुई कहती हैं–हे श्रीहरे! आप मिथिलापुर में पधार आयें। हे आत्माराम! आप मिथिला के रमणीय उद्यानों में सानंद भ्रमण करें। सूर्यकुल के सूर्य आप श्रीराम के तेज से संसार के भय और विपत्ति का नाश हो जाय। और, हे सुन्दर! शिव जी का धनुष तोड़कर आप श्री द्वारा जनक जी के संशय का शमन किया जाय। इस पत्र में मैंने जो धृष्टतापूर्ण वाक्य लिखा हो, उसे आप अपने क्षमा से ही क्षमा कर दीजिए। इसी प्रकार हे ईश्वर! आप भी जनक की प्रतिज्ञा की रक्षा करते हुये उसे अतिशीघ्रता से परिणाम तक पहुँचा दें। हे श्रीराम! आप **गिरिधर** कवि के हृदयकुंज में मुझ सीता के साथ रमण कीजिए।

गीत संख्या २५

राघव मा कुरु किमपि विलम्बम्।
किञ्चिन् मिषेणागतो मिथिलां शीघ्रं दिश मे करावलम्बम्।।१।।
दिनकरकुलसरसीरुहदिनकर हर हरकार्मुक तिमिरस्तम्बम्।

विकसय सत्सरोजनिकुरम्बं लोकय लोकलोकरोलम्बम्।।२।।
गृह्णीस्वार्यपुत्र मम पाणिं दशमुखमपि कुरु विगतालम्बम्।
पूरय कविगिरिधरस्य रघुवर मधुरमनोरथकमनकरम्बम्।।३।।

भौमी–हे श्रीराघव! अब कुछ भी विलंब मत कीजिए। किसी भी बहाने मिथिला आकर मुझे अपने करकमल का शीघ्र अवलम्ब दीजिए। हे सूर्यकुल कमल के सूर्य! इस धनुषरूप अंधकार के आडंबर को हर लीजिए, हर लीजिए और हे प्रभो! संतरूप कमलवन को विकसित कीजिए, संसार के नेत्ररूप भ्रमर को भी प्रकाशित कर दीजिए। हे आर्यपुत्र! मेरा पाणिग्रहण कीजिए और रावण को भी असहाय कर दीजिए। इसी प्रकार **गिरिधर** कवि के मधुर मनोरथों के समूह को पूर्ण कर दीजिए।

गीत संख्या २६

सपदि कृपा क्रियतां झटिति दया क्रियताम्।
हे कोसलाविहारिन् श्रीकोसलाविहारिन्।।
नागृह्णे केवलमनुरन्धे द्रव मयि भगवन् भवभयहारिन्।।१।।
अबला गता भवन्तमतिबलं शरणं शरणागतसुखकारिन्।।२।।
शत्रुञ्जय रञ्जय मां दयितां भञ्जय विपदं विपद्विदारिन्।।३।।
त्रोटय शम्भुधनुः परिमोटय दशमुखमदमपि कार्मुकधारिन्।।४।।
मां परिणीय विहर हरपूजित गिरिधरकविसुमनोवनचारिन्।।५।।

भौमी–हे अवधविहारी! प्रभु मुझ पर शीघ्र कृपा कीजिए और शीघ्र दया कीजिए। मैं आपसे आग्रह नहीं कर रही हूँ, केवल अनुरोध कर रही हूँ। हे भवभयहारी भगवान! मुझ पर द्रवित हो जाइये। हे शरणागतों को सुख देने वाले प्रभु! मैं अबला अर्थात् बलहीन होती हुई भी अत्यन्त बलवान आपश्री की शरण में जाकर अब अबला अर्थात् अकार के व्यंग्यार्थरूप आपके बल से युक्त हो गई हूँ। हे विपत्ति को हरने वाले राघव! आप शत्रुओं को जीतिये। मुझ अपनी प्राणप्रिया को प्रसन्न कीजिए और मेरी विपत्ति को नष्ट कीजिए। हे धनुर्धर! शिवधनुष तोड़ दीजिए और रावण का मद मसल डालिए। हे **गिरिधर** कवि के सुन्दर मनरूप वन में भ्रमण करने वाले रघुनाथ जी मेरे साथ विवाह करके विहार कीजिए।

विशेष- यह गीत अवधी आँचल के एक लोकधुन की ढाल पर निबद्ध है, उसका बोल है–

तुम्हारे संग जइबै तुम्हारे संग रहिबै हे अवध बिहारी हे अवध बिहारी।

गीत संख्या २७

प्राणप्रियतम मदीया व्यथा श्रूयतां शान्तशन्तम मदीया कथा श्रूयताम्।।
सर्वान्तर्यामिन् सकललोकस्वामिन् व्यथयानया चित्ते मा दूयताम्।।१।।
त्वामन्तरेणेह गतसौख्या वनिता वनिता समनुवोभूयताम्।।२।।
मिथिला मे शिथिला विभाति हरे शीघ्रं करालम्वनं दीयताम्।।३।।
सारङ्गी म्रियते तृषातुरा स्वातिमेघ त्वदधरसुधा पीयताम्।।४।।

रुजति मनः कामं मनोभवः सर्वा समस्या समाधीयताम्।।५।।
गिरिधरप्रभो विभज्य शिवधनुः सीता विनीता च परिणीयताम्।।६।।

भौमी–सीताजी पुनः लोकधुन में ही कहती हैं कि हे प्राणप्रियतम! मेरी व्यथा सुन ली जाय। हे शान्त स्वभाव कल्याणकारी प्रभु! आप मेरी कथा सुन लें। हे सबके अन्तर्यामी! हे समस्त लोकों के स्वामी रघुनाथ जी मेरी इस व्यथा से आप चित्त में दुःखी मत होइये, प्रत्युत् इस व्यथा का निवारण कीजिए। हे दीनबन्धो! आप के बिना आप में पूर्ण अनुराग रखने वाली आरूढ़ यौवना यह सीता सुख से हीन हो चुकी है। इस सत्य का आप बार–बार अनुभव कीजिए। यह मिथिला मुझे शिथिल लग रही है अर्थात् इसमें रावणादि के प्रतिकार का पौरुष नहीं है। आप अति शीघ्र मुझे अपने कर का अवलम्बन दें। हे स्वाती के बादल! यह चातकी प्यास से मर रही है, वह आपका अधरामृत पान करे, ऐसी व्यवस्था कीजिए। आपके मिलन का मनोरथ मेरे मन को बहुत व्याकुल कर रहा है, आप सभी समस्याओं का समाधान कर दीजिए। हे **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराघव! शिव धनुष को तोड़कर मुझ विनम्र सीता का पाणिग्रहण कर लीजिए।

गीत संख्या २८

सीता प्राह–

राम हरे श्रीराम हरे सीदति सीता विषमज्वरे।।
सततं विलपति वनरुहनयना परिहृतभूषणभोजनशयना।
रोदिति दीना श्लथस्वरे।।१।।
दिशि दिशि भ्राम्यति नहि विश्राम्यति
निशि निशि ताम्यति परितः क्राम्यति।
पतति महीतलधूलिभरे।।२।।
अरुणकपोले सिततां याते सततकलितनयनाश्रुनिपाते।
विशति मनसि तव विषमशरे।।३।।
वदति न चलति न जल्पति दीना योगीवास्ति समाधौ लीना।
विकला त्वद्विरहप्रसरे।।४।।
तत्र भवन्तं ध्यायति सीता गिरिधरगीतं गायति सीता।
पाहि प्रपन्नां सपदि हरे।।५।।

भौमी–सीता जी पुनः तोड़ी राग में विरह गीत गाती हैं–हे श्री अर्थात् मुझ साकेतबिहारी सीता को रमाने वाले पापहारी हरि! योगियों के भी रमणस्थान श्रीराघव! आपकी यह सीता आपकी विरहात्मक विषमज्वर में बहुत कष्ट पा रही है। यह कमलनयनी सीता अलंकार, भोजन और शयन छोड़कर आपके लिए निरन्तर विलाप करती रहती है और शिथिलस्वर में दीनभाव से रोती रहती है। आपके बिना यह इधर–उधर भ्रमण करती, रात–रात व्याकुल होती, चारों ओर चक्कर लगाती और धूलि से भरे हुए पृथ्वी तल पर गिर पड़ती है। प्रभु! आपके स्मरणात्मक काम के मन में प्रवेश करते ही निरन्तर अश्रुपात होने के कारण मुझ सीता के लाल–लाल कपोल श्वेत पड़ गये हैं। आपके विरह के प्रसार में व्याकुल होती हुई यह सीता योगी की भाँति समाधि में लीन रहती

हैं। न बोलती है, न चलती है। कभी-कभी कुछ असम्बद्ध बोल जाती है। यह सीता आप आदरणीय का ध्यान करती रहती है और **गिरिधर** कवि के गीतों के विषय बने हुये आपका ही गान करती रहती है। हे श्रीहरे! आप की शरणागति इस प्रकार व्यथित मुझ सीता की शीघ्र रक्षा कीजिए।

सन्दर्भश्लोकः

पत्रं निशम्य शतपत्रभवाब्जनाभः सैरध्वजीचरितचिन्तनलीनचित्तः।
प्रत्युत्तरं लिखितुमैक्षत पार्श्ववर्तिताम्राम्रपल्लवमसौ दयिताधराभम्।।१।।

भौमी–इस प्रकार सीता जी के द्वारा लिखे हुए पत्र को सुनकर कमलजन्मा ब्रह्मा को भी उत्पन्न करने वाला कमल जिनकी नाभि से प्रकट हुआ ऐसे प्रभु श्रीराम विदेहनन्दिनी सीताजी के चरित्र के चिन्तन में चित्त से लीन हो गये और उन्होंने पत्र का प्रत्युत्तर लिखने के लिए अपने पास वर्तमान एक आम्र का पल्लव देखा, जो प्रभु की प्रिया सीता जी के अधर के ही समान अरुण था।

गीत संख्या २९

सदा चारित्रशीलां त्वामनन्यां जानकीं जाने।
शुभां पावित्र्यशीलां त्वामनन्यां जानकीं जाने।।१।।
मदर्थं सङ्कटं षोढं विपद्वृन्दं मुदा वोढम्।
सदा साद्गुण्यशीलां त्वां सुमान्यां जानकीं जाने।।२।।
जगन्माताऽपि विख्याता मदर्थं त्वं सुता जाता।
विदेहस्यार्यशीलां त्वां सुधन्यां जानकीं जाने।।३।।
सदैवैक्येऽप्यहो भार्या बुभूषन्ती ममाप्यार्या।
यदा सौन्दर्यशीलां त्वां वदान्यां जानकीं जाने।।४।।
शुभं सेवाव्रतं धृत्वा वरं पातिव्रतं कृत्वा।
सदैवैश्वर्यशीलां त्वां वरेण्यां जानकीं जाने।।५।।
मदीयां मानवीं लीलां प्रभावयितुं विनतशीलाम्।
ममाभिन्नां सुकविगिरिधरशरण्यां जानकीं जाने।।६।।

भौमी–प्रत्युत्तर लिखते हुए भगवान श्रीराम गाते हैं–मैं सदैव चरित्र युक्त स्वभाव वाली, मुझसे अनन्य आप जनकनन्दिनी को जानता हूँ। मैं कल्याणमयी स्वभाव से पवित्र मुझसे अतिरिक्त आश्रय का त्याग की हुई आपको अपने से अभिन्न ही जानता हूँ। मैं जानता हूँ कि आप श्रीजनकनन्दिनी ने मेरे लिये बहुत संकट सहे और प्रसन्नता से विपत्तियों का भार ढोया। आपके स्वभाव में सदैव श्रेष्ठ सद् गुण रहते हैं। आप सबकी माननीय हैं। जगत की माता के रूप में प्रसिद्ध होकर भी आप मेरे लिये ही जनकराजा की पुत्री बनीं। आपका शीलश्रेष्ठ है और आप धन्य हैं। ऐसा मैं समझता हूँ। अहो! सदैव मुझसे अभिन्न होकर भी आप लीला-रंगमंच पर मेरी पत्नी बनना चाहती हैं। आप सौंदर्यवती और निरन्तर धन्य हैं ऐसा मैं समझता हूँ। आप ऐश्वर्यवती होती हुई भी मेरी वरणीय होकर भी पवित्र सेवाव्रत को धारण करके पविव्रत धर्म का पालन कर रही हैं ऐसा मैं जानता हूँ।

मैं जानता हूँ कि आप मुझसे अभिन्न हैं और मेरी मानवलीला को प्रभावित करने के लिए ही मिथिला में अवतीर्ण हुई हैं। आपका स्वभाव विनम्र है और आप **गिरिधर** कवि को शरणागति देने में समर्थ हैं।

गीत संख्या ३०

यज्ञरक्षाच्छलेनैव मिथिलां पुरीमागमिष्यामि पद्भ्यां त्वदर्थं प्रिये।
धर्मदीक्षामिषेणोल्लसच्चातुरीं आव्रजिष्यामि पद्भ्यां त्वदर्थं प्रिये।।१।।
भावयन् भावनीयं महर्षेर्मखं तोषयन् सद्धविर्भिश्च मारुत्सखम्।
वर्धयन् मैथिलानां दृगञ्चलसुखं मानयिष्यामि मान्यान् त्वदर्थं प्रिये।।२।।
सानुजो घोरनक्तञ्चरान् मारयन् पादरजसाप्यहल्यां द्रुतं तारयन्।
कारयन् मुनिमनोरथलतां फलवतीं भावयिष्यामि भावं त्वदर्थं प्रिये।।३।।
राजकं त्वत्स्वयम्वरगतं सञ्जयन् रूपलावण्यतो मैथिलान् रञ्जयन्।
सुकविगिरिधरभवं कल्मषं भञ्जयन् त्रोटयिष्यामि चापं त्वदर्थं प्रिये।।४।।

भौमी–भगवान श्रीराम पत्र में आगे कहते हैं–हे प्रिये! यज्ञ रक्षा के बहाने से आपके लिए मैं मिथिलापुरी में पैदल आऊँगा। धर्म दीक्षा के ब्याज से ज्ञान चातुरी से युक्त जनकपुरी में मैं आपके लिये महर्षि विश्वामित्र के यज्ञ का सम्मान करते हुए श्रेष्ठ हविष्य से अग्नि को संतुष्ट करते हुये, मिथिलावासियों का नेत्र सुख बढ़ाते हुये मैं माननीय मिथिलापुरी का भी सम्मान करूँगा। हे जनकनंदिनी जू! आपही के लिए युद्ध में राक्षसों को मारकर चरण की धूल से अहल्या को तारकर विश्वामित्र की मनोरथ की लता को सफल बनाकर मिथिला के मधुर भाव का सम्मान करूँगा। हे सीते! केवल आपके लिए आपके स्वयम्बर में आये हुए राजाओं को जीतकर अपने रूप–माधुरी से मिथिलावासियों का मनोरंजन करके और कवि **गिरिधर** के मन के कल्मष को नष्ट करके मैं शिव जी का धनुष भी तोड़ दूँगा।

गीत संख्या ३१

त्यक्त्वा साकेतलोकस्य वैभवसुखं सीते भूमेः प्रजातास्यहो मत्कृते।
मल्ललितलीलाकार्येऽपि मारुत्सखं पंक्तिमासं प्रयातास्यहो मत्कृते।।१।।
नीरजस्का रजोराशिभिः क्रीडसे दिव्यदेहत्विषा विद्युतं व्रीडसे।
भूत्वा ब्रह्मादिमाताऽपि सीरध्वजे कन्यकीभूयजातास्यहो मत्कृते।।२।।
सर्वशक्तिस्वरूपाऽपि यन्मां शुभे पत्रतश्चाजुहोषीति चित्रं न तत्।
त्रोटनेऽपि क्षमा त्वं पिनाकस्य भो दिव्यकीर्तिं प्रदातास्यहो मत्कृते।।३।।
त्रोटयिष्यस्यलं नैज शक्त्या धनुः किन्त्वमाकारयस्येव मार्यव्रते।।
नूनमेतन् मिषेणैव मयि भूमिजे गौरवं संप्रधातास्यहो मत्कृते।।४।।
पद्मपद्भ्यां प्रगन्तासि सार्धं मया दण्डकारण्यमारातिवधहेतवे।
रावणं घातयित्वा च गिरिधरप्रभौ राजलक्ष्मीं निधातास्यहो मत्कृते।।५।।

भौमी– भगवान श्रीराम आगे कहते हैं–अहो सीते! मेरे ही लिए साकेत–लोक का वैभव सुख छोड़कर

आप पृथ्वी से प्रकट हुई हैं। मेरी ललित–लीला के संविधान में मेरे ही लिये आप दस मासपर्यन्त अग्नि में भी निवास करेंगी। आप स्वयं रजोगुण से रहित होकर भी बालिका बनकर धूल की राशि से खेल रही हैं और अपने शरीर की कांति से बिजली को भी लज्जित कर रही हैं। ब्रह्मादि देवताओं की माता होकर भी आप मेरे ही लिये जनक जी के यहाँ कन्या बनकर जन्म लीं। सर्वशक्तिस्वरूपा होकर भी आप मुझे पत्र से आह्वान कर रही हैं। यह कोई आश्चर्य नहीं है। स्वयं शिवधनुष तोड़ने में समर्थ होती हुई भी आप मेरे लिए दिव्य कीर्ति प्रदान करना चाह रही हैं। आप तो अपनी शक्ति से ही धनुष तोड़वायेंगी फिर भी इस प्रकार आप मुझे बुला रही हैं। निश्चित ही इसी बहाने हे पृथ्वीनंदिनी! आप मेरे लिए मुझमें दिव्य गौरव का विधान करना चाह रही हैं। हे प्रिये! शत्रु रावण के वध के लिए मेरे साथ आप अपने कोमल चरणकमलों से दण्डकारण्य भी जायेंगी। मेरे लिए रावण का वध कराकर **गिरिधर** कवि के स्वामी मुझ राम के समीप आप स्वयं राजलक्ष्मी को ले आयेंगी।

गीत संख्या ३२

मैथिलि तव धन्यं किल शीलम्।
कोऽपि न वेत्तुं प्रभवति भद्रे निखिलनिगमचितलीलम्।।१।।
स्वयं जगत्स्वामिनी भवन्ती भवसि साम्प्रतं दासी।
जननी जगतामपि वधूरहो मोदितकोसलवासी।।२।।
कोटिकोटिवाणीगिरिजालक्ष्मीसेवितपदकमला ।
श्वश्रूः स्वयं सेवितुं वाञ्छसि भूत्वा स्नुषा सुविमला।।३।।
त्यक्त्वा साकेतं परिसेवितकोसलराजनिकेता।
गिरिधरहृदयकुटीरे विहर सदा निजभर्तृसमेता।।४।।

भौमी– पुनः श्रीराम हवेली पद्धति का गीत गाते हुये कहते हैं कि– हे मिथिलाधिराजनन्दिनी सीते! सम्पूर्ण वेदों में वर्णित लीलाओं वाले आपके शील को कोई जान ही नहीं सकता। अहो धन्य है। स्वयं जगत की स्वामिनी होकर भी इस समय मेरी पत्नी बनकर आप दासी बनना चाह रही हैं और सारे संसार की माँ होकर भी अयोध्यावासियों को प्रसन्न करती हुई आप महाराज दशरथ की पुत्रवधू बन रही हैं। यद्यपि करोड़ों–करोड़ों सरस्वती, पार्वती एवं लक्ष्मियों द्वारा आपके श्रीचरणकमल की सेवा होती रहती है। ऐसी महिमा मण्डित होकर भी आप पवित्र पुत्रवधू बनकर सात सौ वेश बनाकर अपनी सात सौ सासुओं की सेवा करना चाहती हैं। साकेत को छोड़कर अवध राजभवन में बिराजकर अपने स्वामी मुझ राम के साथ **गिरिधर** कवि के हृदय कुटीर में विहार कीजिए।

गीत संख्या ३३

किशोरी तव चरितं कानुकरोतु।।
किं सरसी मन्दाकिनीसमतां दधती हृदि न दुनोतु।
किं खद्योती तपनविभायाः समतां मनाक् तनोतु।।१।।
यत्पदाब्जरज आकांक्षन्तो ब्रह्मादयः सुरेशाः।
तेपुर्विविधतपस्तनुतापं हरिहरशेषगणेशाः।।२।।

सैव साम्प्रतं दशरथगेहे भास्यसि वधूर्भवन्ती।
निजस्वरूपदीपिकया नरपतिभवनं विदीपयन्ती।।३।।
यस्याः कृपाकटाक्षं विबुधा नो स्वप्नेऽपि प्रापुः।
तां मैथिला बालिकाभूतां यत्नं विनाप्यवापुः।।४।।
एकमद्वयं द्वयसि वितनुसे विश्ववन्द्यदाम्पत्यम्।
निजे रामपत्नीत्वं सनुषे मयि किल सैतापत्यम्।।५।।
या साकेताधीशस्वामिनी सा नृपजनककिशोरी।
सीता सैव साम्प्रतं भास्यसि मन्मुखचन्द्रचकोरी।।६।।
निर्विवादमकलङ्कमघघ्नं तव निरवद्यचरित्रम्।
भवसिन्धोः मज्जतो गिरिधरस्यापि तदेव वहित्रम्।।७।।

भौमी- हे किशोरी जू! आपके चरित्र का कौन महिला अनुकरण कर सकती है? क्या छोटी-सी तलैया मन्दाकिनी की तुलना कर सकती है? ऐसा करने में क्या उसका मन लज्जित नहीं होगा? क्या खद्योती अर्थात् जुगुनूँ मादा सूर्य नारायण की प्रभा की तुलना कर सकती है? जिनके चरण कमल की धूलि को प्राप्त करने की इच्छा करते हुये विष्णु, शिव, शेष, गणेश, ब्रह्मादि अनेक देवता अनेक प्रकार से तप किये। वही आप इस समय अपने रूप की दीपिका से अयोध्या राजभवन को प्रकाशित करती हुई महाराज दशरथ की पुत्रवधू बनकर सुशोभित होंगी। देवता लोग स्वप्न में भी जिनकी कृपा कटाक्ष को नहीं प्राप्त कर सके उन्हीं आपको मिथिलावासियों ने कन्यारूप में सहजतः प्राप्त कर लिया। वस्तुतः मुझसे अभिन्न होकर भी आप लीला में दो भाव उपस्थित कर रही हैं। स्वयं में राम पत्नीत्व का और मुझमें सीतापतीत्व का। जो मुझसाकेताधिपति राम की स्वामिनी हैं वही इस समय जनक राजकन्या अवधराजवधू बनकर मेरे मुखचन्द्र की चकोरी बन रही हैं। वस्तुतः हे सीते! आपका यह निर्मल चरित्र निर्विवाद, निष्कलंक और पापहारी है और यही संसार सागर में डूबते हुये मुझ कवि **गिरिधर** का भी जलयान है।

गीत संख्या ३४

सीते चित्ते मा विकला भव।।
विरहतापतपनेन सुशीले स्वप्नेऽपि न भो यतुवत् त्वं द्रव।।१।।
नहि नीरन्ध्रनलिननयनाभ्यां मौक्तिकशरमिव सलिलं संस्त्रव।।२।।
मा हासीर्धरणिजे स्वधैर्यं मा गिरिसदृशं स्वान्तं किल जव।।३।।
मत्प्रीतये कनकलतिकामिव तनुं जनकनन्दिनि नितरामव।।४।।
गिरिधरप्रभोः पुरातनप्रीतिं गतभीतिं निजमनसाप्यनुभव।।५।।

भौमी- श्रीराम फिर शास्त्रीय हवेली पद्धति में कहते हैं कि हे सीते! आप चित्त में विकल न हों। हे सुशीले! आप स्वप्न में भी विरह ताप की ज्वाला से लाह की भाँति मत पिघलें और अपने निर्निमेष कमल नेत्रों से मुक्ता की माला की भांति आँसुओं की धारा मत चुवाइये। हे जनक नंदिनी अपना धैर्य मत छोड़िये और अपने पर्वत के समान मन को भी विचलित मत कीजिए। हे जनकनंदिनी जी स्वर्ण की लता के समान अपने

शरीर को मेरी प्रसन्नता के लिये यत्न से बचाकर रखिये। **गिरिधर** कवि के प्रभु मुझ राम की पुरातन प्रीति को अपने मन से अनुभव करती रहिये।

गीत संख्या ३५

प्रियतमे आयामि शीघ्रम्।।
सानुजः कौशिकसहायः जनकपुरमायामि शीघ्रम्।।१।।
निहतयज्ञध्वंसिनिशिचरकरस्त्वामुपयामि शीघ्रम्।।२।।
तारिताहल्यो मुदितभूसुरगणैः संयामि शीघ्रम्।।३।।
जनकनृपलोचनं निजतनुरोचिषा सुखयामि शीघ्रम्।।४।।
दुष्टनृपपङ्कजवनं सिंहो यथा नखयामि शीघ्रम्।।५।।
भग्नशंकरकार्मुकोऽहं भवव्यथां च हरामि शीघ्रम्।।६।।
त्वया सह गिरिधरहृदयकुञ्जाजिरे विहरामि शीघ्रम्।।७।।

भौमी– भगवान श्रीराम पुनः सात मात्रा रूपक ताल में गा रहे हैं–हे प्रियतमे सीते! मैं शीघ्र आ रहा हूँ। अपने छोटे भाई लक्ष्मण के साथ विश्वामित्र की सहायता करने के लिए मैं जनकनगरी में शीघ्र आ रहा हूँ। मैं यज्ञ–विरोधी राक्षस–समूह को मारकर तुम्हारे समीप शीघ्र आ रहा हूँ। मैं अहल्या का उद्धार करके ब्राह्मण समूहों के साथ शीघ्र उपस्थित हो रहा हूँ। मैं अपने शरीर की कांति से महाराज जनक के नेत्रों को शीघ्र सुखी कर रहा हूँ। दुष्टराज समूहरूप कमल वन को सिंह के समान शीघ्र ही प्रताप नख से विदीर्ण कर दूँगा। मैं शीघ्र ही शिव धनुष तोड़कर संसार की व्यथा को हर लूँगा और आपके साथ **गिरिधर** कवि के हृदय कुंज के आंगन में शीघ्र ही विहार करूंगा।

सन्दर्भश्लोकः

लब्ध्वा शुको राघवचारुपत्रं पतत्त्रिवर्यो मिथिलां जगाम।
ददौ स भौम्यै चिरविह्वलायै असून्त्यजन्त्या इव सोमपानम्।।१।।

भौमी– इस प्रकार श्रीराम का पत्र प्राप्त करके श्रेष्ठ पक्षी लीलाशुक श्रीमिथिला पधार गये। प्राणों को छोड़ती हुई विरहिणी के लिये अमृतपान के समान प्रभु का श्रीपत्र भूमिनन्दिनी श्रीसीता जी को सौंप दिया।

गीत संख्या ३६

पठति रघुचन्द्रपत्रं जनकनन्दिनी।।
रामकरकञ्जविन्यस्तमधुराक्षरं भावनासाक्षरं विश्ववरवन्दिनी।।१।।
भर्तृरूपानुकार्यक्षरैरङ्कितं रङ्कितेवाप्य चिन्तामणिं क्रन्दनी।।२।।
जातहर्षा चुचुम्बाथ भावाकुलाऽऽवक्षसाऽऽश्लिष्य दृग्वारिजस्यन्दनी।।३।।
सानुरागा नरीनृत्यमानाननं वाष्पपूर्णं पदाब्जेन संस्कन्दिनी।।४।।
गीतसीताभिरामं लसत्पत्रकं सुकवि गिरिधरप्रभोः सन्मनश्चन्दिनी।।५।।

भौमी- अब कवि स्वयं दस मात्रा झपताल में सीता जी की मनोदशा का वर्णन करते हुये गाते हैं। सम्पूर्ण विश्व के श्रेष्ठवन्दन की आश्रयरूपा जनकनंदिनी सीता जी भावना के साकार रूप श्रीराम के कर कमल से टंकित अक्षरों वाला पत्र पढ़ रही हैं। प्रभु श्रीराम के रूप का अनुकरण करने वाले नीले अक्षरों से अंकित पत्र को प्राप्त कर सीता जी उसी प्रकार प्रसन्न हो रही हैं जैसे धन के अभाव में बिलखती हुई दरिद्रा महिला को चिन्तामणि प्राप्त हो गया हो। अपने नेत्र से आँसू बहाती हुई प्रसन्न सीता जी पत्र को हृदय से लगाकर चूमने लगीं। सीता जी के हृदय में अनुराग उमड़ आया और वे नाचने लगीं और वे अपने अश्रुपूर्ण मुख से चरणकमल का स्पर्श करने लगीं। इस प्रकार सीताजी को आनन्द देने वाले गीतों से भरा हुआ यह पत्र प्राप्त कर जो कि **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम ने भेजा था, संतों के मन को आनन्द देने वाली सीता जी बहुत प्रसन्न हुईं।

इति

श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरमहाकविजगद्गुरुरामानन्दाचार्यस्वामिरामभद्राचार्यगिरिधरकविप्रणीते गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये बालकाण्डे गीतयुगलकैशोरको नाम षष्ठः सर्गः।

इस प्रकार श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर महाकवि जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य गिरिधरकवि द्वारा विरचित गीतरामायण 'गीतसीताभिराम' नामक संस्कृत गीतमहाकाव्य के बालकाण्ड में गीतयुगलकैशोरक नामक षष्ठ सर्ग सम्पन्न हुआ।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

।।श्रीः।।

।।नमो राघवाय।।

गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये
बालकाण्डे

गीतस्वयम्वरोपक्रमो नाम

सप्तमः सर्गः

मङ्गलाचरणम्

सीते मातः कमेतं वहसि हृदि सुते नीलवर्णं विधुं भोः
स श्वेतो नैव नीलोऽप्यपर इति मया नैव दृष्टः स दृश्यः।
क्वोत्पन्नः क्षीरसिन्धौ क्व खलु दिशि हरेर्भारते कोसलायाम्
कौसल्याकुक्षिनाम्नीति मुदितजननी जानकी कं करोतु।।१।।
सीते कः समुदेति खेति सुभगस्त्वद्वक्त्रशोभो हरिः।
किं सर्पो नहि सर्पहारमुकुटं किं मौक्तिकं नो तथा।।
मुक्तव्याहरणान्तिमार्थवचनः शम्भुः न तद्भूषणम्।
नोक्त्वा चन्द्रमिनाभिधान्तिमतया प्रीता च सीतावतु।।२।।

भौमी- अब कवि सप्तम सर्ग के दो श्लोकों में अत्यन्त मधुर कल्पना प्रस्तुत करते हुये सीता–सुनयना संवाद के व्याज से आशीर्वादात्मक मंगलाचरण विन्यस्त कर रहे हैं। एक बार माता सुनयना जी ने सीता जी को स्नान कराते हुये उनके हृदय की ओर ध्यान से देखा और कुतूहल से पूछा–सीते! बेटी! अपने हृदय के मध्य में किस नीलवर्णी पुरुष को तुमने धारण किया है? सीता जी ने उत्तर दिया–विधु को। अर्थात् श्रीवत्सलांछन साकेतविहारी श्रीराम को। कोश में विधु शब्द के चन्द्रमा और महाविष्णु ये दो अर्थ प्रसिद्ध हैं–‘विधुःश्रीवत्सलांछनः चन्द्रश्च’ सीता जी ने तो ‘विधु’ कहकर यह कहना चाहा कि वे श्रीवत्सलांछन महाविष्णु श्रीराम को ही अपने हृदय में धारण कर रही हैं। पर माता सुनयना ने विधु शब्द का अर्थ चन्द्र समझा और फिर पूछा–किशोरी जू! विधु तो श्वेत होता है जबकि तुम्हारे हृदय में तो नीलवर्ण दिख रहा है। सीता जी ने कहा–माँ! एक और भी विधु है जो नीलवर्ण होता है-माता सुनयना ने कहा–मैंने तो उसे कभी नहीं देखा। सीता जी ने उत्तर दिया हाँ, कुछ समय पश्चात् आप उन्हें देख लेंगी। सुनयना जी ने पूछा–यह नीलवर्णी विधु कहाँ उत्पन्न हुआ? सीता जी ने कहा– कौसल्या जी की कोख नामक क्षीरसागर में। सुनयना ने फिर पूछा। कौसल्या कौन? सीता जी ने कहा– कोसल महाराज की धर्मपत्नी। सुनयना जी ने कहा–कौसल्या कहाँ हैं? सीता जी ने कहा– यहाँ से पूर्व दिशा में इसी भारत देश में विराजमान कौसल्या नामक पुरी में जिसे अयोध्या भी कहते हैं। इस प्रकार अपनी वचन–चातुरी से माता सुनयना को प्रसन्न करती हुई जनकनन्दिनी सीता जी हम सबका कल्याण करें। पुनः एक बार माता सुनयना ने लाडली लली सीता जी से विनोद किया। सीते! तुम्हारे मुख जैसी शोभा वाला अत्यन्त सुन्दर

यह कौन आकाश में उदित हो रहा है? सीता जी ने भी श्रीरामचन्द्र जी का उत्तरार्ध होने के कारण पति के नामोच्चारण में संकोच का अनुभव करती हुई चन्द्र का पर्यायवाची 'हरि' शब्द कहकर उत्तर दिया। माँ! आकाश में हरि उदित हो रहे हैं सुनयना जी ने भी फँसाना चाहा बोलीं–सीते! क्या वह सर्प है? क्योंकि हरि का अर्थ सर्प भी होता है तो सीता जी ने उत्तर दिया–नहीं। यह तो सर्पहार (शिव जी का मुकुट) है। अर्थात् चन्द्रमा। सुनयना जी ने फिर सीता जी को चक्कर में डालना चाहा! तो क्या ये मुक्तामणि है? सीता जी ने कहा, नहीं– यह मुक्तजनों के द्वारा उच्चारित होने वाले महामन्त्र के अन्तिम अक्षर का अर्थ है। आशय यह है कि मुक्तजन 'राम' इस महामन्त्र का उच्चारण करते हैं। राम का अन्तिम अक्षर 'म'। 'म' के चंद्रमा और शिव, ये दोनों अर्थ प्रसिद्ध हैं। सीता जी ने प्रथम अर्थ का संकेत करते हुए कह दिया कि ये चन्द्रमा हैं। सुनयना जी ने दूसरा अर्थ 'शिव' मानकर पूछा। तो क्या ये शिव जी आकाश में उदित हो रहे हैं? क्योंकि रामशब्द के मकार का अर्थ शिव भी होता है। सीता जी ने कहा नहीं। ये शिव नहीं प्रत्युत शिव जी के आभूषण हैं। इस प्रकार अपने स्वामी श्रीरामचंद्र के नाम के अन्तर्गत होने से स्पष्ट रूप से चन्द्र शब्द का उच्चारण न करके उसका भिन्न-भिन्न युक्तियों से संकेत करती हुई परम प्रसन्न सीता जी हम सबकी रक्षा करें।

सन्दर्भश्लोकः

कदाचित् क्रीडन्ती स्वसृशुचिसखीभिः परिवृता
शनैः सीता गत्वा पितृमखगृहं तत्र पतितम्।
धनुर्दृष्ट्वा विज्यं रजसि विहितं पूजितमथो
प्रहासं तन्वाना पितरमिह पप्रच्छ तनया।।१।।

भौमी- कवि कथा प्रसंग को क्रमबद्ध कर रहे हैं। किसी समय अपनी तीनों बहनों मांडवी, उर्मिला, श्रुतिकीर्ति तथा आठों पवित्र सखियों के साथ खेलती हुई जनकनन्दिनी सीताजी–पिताश्री की यज्ञशाला में धीरे से जाकर वहाँ बिना डोरी के पड़े हुए धूलि से धूसरित फिर भी जनक जी द्वारा गंधाक्षत पुष्पों से पूजित हो रहे निरीह धनुष को देखकर परिहास करती हुई लाडली जू जनक जी से पूछने लगीं।

गीत संख्या-१

किमिदमवनिभरभूतं हे विलुठति महिपृष्ठे।
भवभयमिव परिभूतं हे चिति गरिमगरिष्ठे।।१।।
तम इव नभसि पुराणं हे खररजसि विलीनम्।
अहमिव मनसि समानं हे गुणरूपविहीनम्।।२।।
दिव इत नहुषसुकृतमिव हे स्खलितं गतलाभम्।
पुरमिह विशिखनिकृतमिव हे पतितं विगताभम्।।३।।
जडमिदमर्चसि रक्षसि हे पितरत्र किमर्थम् ।
तुषमवहन्तुमिहेच्छसि हे तण्डुलाय निरर्थम् ।।४।।
तदिदमलं मम पाणिर्हे धनुरस्यतु पुरतः।
अघमिव सुरवरवाणी हे विनिरस्यतु परितः।।५।।

उक्त्वेति गिरिधरस्वामिनी हे धनुरेव चकर्षे।
सुरधनुरिव शिशुदामिनी हे वामकरतो जहर्षे।।६।।

भौमी- सीता जी ने पूछा–पिताश्री! यह क्या है? जो पृथ्वी का भार–सा बना हुआ अपमानित हुआ संसार का भय जैसा, चेतना की गरिमा से श्रेष्ठ, मिथिला के भूभाग पर लोट रहा है। पिताश्री! ये कौन–सा अत्यन्त जीर्ण–क्षीण वस्तु विशेष है, जो आकाश में अन्धकार की भाँति भयंकर धूल में छिपा हुआ है। यह तो मन में मान के सहित अहंकार की भाँति गुणों और रूप से विहीन हो चुका है। पिताश्री! यह तो स्वर्ग से गिरे हुये राजा नहुष के पुण्य समान लाभ से रहित होकर निरीह जैसा गिरा पड़ा है। इसकी शोभा उसी प्रकार नष्ट हो गयी है मानो शिव जी के बाण से तितर–बितर हुआ त्रिपुरासुर का नगर ही हो। पिताश्री! किसलिए इस जड़–पदार्थ की आप पूजा कर रहे हैं और रक्षा करते रहते हैं? आप तो उसी प्रकार व्यर्थ की चेष्टा कर रहे हैं जैसे कोई चावल के धान की भूसी कूट रहा हो। इसीलिए जिस प्रकार देववाणी संस्कृत भाषा पाप को नष्ट कर देती है उसी प्रकार इस धनुष को मेरा हाथ ही सामने फेंक दे और चारों ओर घुमाकर इसे तहस–नहस कर दे, इस प्रकार कहकर इन्द्रधनुष को छोटी बिजली की बालिका की भाँति **गिरिधर** कवि की स्वामिनी सीता जी ने अपने बायें हाथ से धनुष को खींचकर घसीटा और बहुत प्रसन्न हुईं।

विशेष- यहाँ चकर्षे और जहर्षे प्रयोगों में कर्मव्यतिहार से आत्मने–पद किया गया है और यह भी मैथिल कोकिल विद्यापति के गीत की ढाल में निबद्ध है। जिसका बोल है– कुंज गलिन में रोकल हे पकरल मुरिसारी।

गीत संख्या-२

सीता शम्भुधनुर्भुवि कर्षति।।
केलिघोटकीकृतं कृतबला प्रबलाबलमिव बलं प्रकर्षति।
वारयते जनको न मानयति निरादृत्य नितरां च निकर्षति।।१।।
ज्यया कशीकृतया कषायदृक् काषं काषं स्वसन्निकर्षति।
बालदामिनी यथा हरिधनुर्धृत्वा धावति धाम्नि प्रधर्षति।।२।।
हृष्यति परिपश्यति सखीजने धरणौ धावति धनुराकर्षति।
मन्येऽसावबलाप्रवादमपि निराकृत्य सद्बलमुत्कर्षति।।३।।
जय जानकि कथयन् सुमनो बहुसुमनाः सुमनोगणः प्रवर्षति।
दृष्ट्वा स्वस्वामिनीप्रकर्षं गायन् गिरा गिरिधरो हर्षति।।४।।

भौमी- पुनः कवि हवेली पद्धति में गा रहे हैं–सीता जी शिवजी का धनुष घसीट रहीं हैं। श्रेष्ठबल से युक्त जानकी जी इस निर्बल धनुष को खेल का घोड़ा बनाकर बलपूर्वक खींच रही हैं जनक जी रोक रहे हैं फिर भी सीता जी नहीं मान रही हैं। वह धनुष को निरादरपूर्वक बहुत घसीट रही हैं। क्रोध से लाल नेत्र वाली सीता जी धनुष की डोरी को ही कोड़ा बनाकर उसी से घोड़ा बनाये हुये धनुष को पीट–पीट कर अपने सामने खींच लाती हैं। मानो इन्द्रधनुष को अपने हाथ में लेकर बिजली की बालिका दौड़ती हुई दिव्य तेज को प्रघर्षित कर रही हैं। सखीजनों के देखते–देखते सीताजी प्रसन्न हो रही हैं। दौड़ रही हैं और पृथ्वी पर धनुष को घसीटती जा रही हैं। मुझे लगता है कि सीता जी इसी बहाने नारी अबला है इस अपवाद को भी दूर करके सज्जनों के बल

का उत्कर्ष कर रही हैं। जय जानकी, जय जानकी कहकर देवगण प्रसन्नता से पुष्प-वृष्टि कर रहे हैं और अपनी स्वामिनी सीता जी का अभ्युदय देखकर **गिरिधर** कवि भी गीत गा-गाकर प्रसन्न हो रहा है।

सन्दर्भश्लोकाः

जानक्याः कौतुकं दृष्ट्वा विस्मितो जनको नृपः।
असाधारणतां मेने दुहितुर्दुहितृवत्सलः।।१।।
ततस्समाहूय गुरून् समन्त्रिणो निगद्य सीताभुजवीर्यवैभवम्।
गवेषयंश्तद् वरमादिपूरुषं स्वयम्वरं संरचयाम्बभूव ह।।२।।
अजूघुषद् विदेहेशो घोषणां सर्वसम्मताम्।
देशे देशे नरेन्द्राणां सविधे दूतमाध्यमात्।।३।।
यो राजसंसदि पुरारिधनुश्च विज्यं सज्यं विधाय परिभङ्क्ष्यति मध्यतो वै।
तं सर्वलोकपरिलोकितवीर्यलोकं सीताविशोकमनघञ्च वरिष्यतीति।।४।।
अथादिषन् महेशानं सीतासर्वार्थसाधिनी।
अयोध्यां गन्तुमेवाशु स्वप्ने कौशिकमादिश।।५।।
तथेति संप्रतिश्रुत्य नत्वा सीतां वृषाकपिः।
कौशिकं कोसलान् गन्तुं स्वप्न एव समादिशत्।।६।।
विश्वामित्रोऽपि यज्ञघ्नराक्षसान् संप्रघातयन्।
इयेष राघवं द्रष्टुं कोसले केलिमास्थितम्।।७।।
स च सङ्क्रीडमानोऽपि शिशुभिःश्यामसुन्दरः।
दृष्टो दशरथादिष्टो गायत्रीमन्त्रदर्शिना।।८।।

भौमी–सीता जी का यह कौतुक देखकर महाराज जनक विस्मित हो गये और पुत्री पर वात्सल्य-भाव रखने वाले महाराज ने बेटी सीता को असाधारण माना। इसके पश्चात् गुरुजनों और मन्त्रियों को बुलाकर उनके समक्ष सीता जी की भुजाओं के पराक्रम का बखान कर नन्दिनी जी के लिये वर रूप में परम पुरुष परमात्मा को खोजते हुये महाराज जनक ने सीता स्वयम्वर की संरचना की। महाराज जनक ने दूतों के माध्यम से प्रत्येक देश के राजाओं के पास तक सर्वसम्मत घोषणा सूचित करायी। घोषणा के शब्द निम्नवत् हैं-राज समाज में शिवधनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर जो उसे मध्य से तोड़ देगा सभी लोगों द्वारा पराक्रम के सम्बन्ध में परीक्षित उसी निष्पाप, पराक्रमी, शोकरहित महापुरुष को सीता जी वरण करेंगी। इसके अनंतर भगवती सीता जी ने शिव जी को आदेश दिया कि आप विश्वामित्र को स्वप्न में रामरक्षा-कवच का उपदेश करके, उन्हें शीघ्र अयोध्या जाने के लिए प्रेरित करिये। ऐसा ही होगा इस प्रकार प्रतिज्ञा करके सीता जी को प्रणाम करके शिवजी ने स्वप्न में ही श्री अयोध्या जाने के लिये विश्वामित्र को आदेश दे दिया और राम रक्षा का उपदेश दे दिया। महर्षि विश्वामित्र ने भी यज्ञ विध्वंशकारी राक्षसों का वध कराने के निमित्त श्री अवध में बाललीला करते हुये भगवान राम के दर्शनों की इच्छा की। बालकों के साथ खेलते हुये एवं पिता महाराज दशरथ के अनुशासन में रहते हुये श्यामसुन्दर भगवान श्रीराम के गायत्री मंत्र के दृष्टा विश्वामित्र ने दर्शन किये।

गीत संख्या-३

खेलति शिशुः सखिभिर्वृतः सरयूतटे श्रीराघवः।
शत्रुघ्नलक्ष्मणसंयुतो भरतार्चितः करुणार्णवः।।१।।
नवनीलनीरदसुन्दरः कलकम्रकेसरिकन्धरः।
शरचापतूणमनोहरः सुभगो लसत्करलाघवः।।२।।
शरदिन्दुकान्तशुभाननो दनुजेन्द्रदावहुताशनः।
व्रीडितविपुलबलशासनो हृतभक्तभीषणरौरवः।।३।।
नवनीलकञ्जविलोचनो जनपापतापविमोचनः।
शतकोटिदिनकररोचनो गुरुसेवयाश्रितगौरवः।।४।।
कन्दुकधरः क्रीडति क्वचिद् हरिशावकान् व्रीडति क्वचित्।
गिरिधरहृदयसदने क्वचित् विहरति भवाम्बुधिवाडवः।।५।।

भौमी–शत्रुघ्न–लक्ष्मण के साथ भरत जी द्वारा सम्मानित करुणासमुद्र भगवान श्रीराघव अपने बाल–सखाओं के सहित सरयू तट पर खेल रहे हैं। वे नवीन बादल के समान सुन्दर हैं तथा उनके स्कन्ध सिंह के समान सुदृढ़ हैं। वे धनुष–बाण धारण करने से अत्यन्त मनोहर व सलोने लग रहे हैं और उनके बाण का निशाना बहुत ही सुहावना है। उनका मुख शरदकालीन चन्द्र के समान सुन्दर है तथा वे राक्षस रूप वन को जलाने के लिये अग्नि के समान हैं। उन्होंने अपने प्रताप से असंख्य इन्द्रों को लज्जित किया है और वे अपने भक्तों की भयंकर रौरव यातना को नष्ट कर डालते हैं। वे प्रभु श्रीराम नवीन कमल के समान नेत्र वाले भक्तों के पाप–ताप को दूर करने वाले कोटि–कोटि सूर्यों के समान प्रकाशमान तथा गुरुजनों की सेवा से परम गौरवान्वित हो रहे हैं। कहीं तो श्रीराघव गेंद खेल रहे हैं और कहीं अपने पराक्रम से सिंहों के बच्चों को भी लज्जित कर देते हैं और कहीं **गिरिधर** कवि के हृदय सदन में विहार कर रहे हैं, वे इस संसार–सागर को नष्ट करने के लिये वाड़वाग्नि के समान हैं।

सन्दर्भश्लोकः

मनोरथरथारूढो गूढस्वेनैव तेजसा।
विश्वामित्रो महाभागः पथि प्राह शुचिस्मितः।।१।।

भौमी–इस प्रकार मनोरथों के रथ पर आरूढ़ और शिवजी द्वारा उपदिष्ट श्रीराम रक्षा प्रयोग से जनित अपने ही तेज से सुरक्षित विश्वामित्र श्रीअयोध्या के मार्ग में ही इस प्रकार मुस्कुराते हुए बोले।

गीत संख्या-४

अद्य गत्वा मया चारु कोसलपुरीं
रामचन्द्राननेन्दोः सुधा पीयताम्।
अद्य दृष्ट्वा तुरीयं लसच्चातुरीं
तत्र सर्वा समस्या समाधीयताम्।।१।।

सुप्रभाता निशा मेऽद्य मङ्गलदिशा
प्रेरितोऽहं शकुनसूचिदक्षिणदृशा।
चारुलोचनचकोरेण वै सादरं
कोमलः कोसलेन्दुः समाश्रीयताम्।।२।।
विश्वामित्रोऽपि मित्रं परं प्राणिनां
भक्तकञ्जैकमित्रं समासाद्य भोः।
स्वाभिमानं विहायैव राघवकरे
मुक्तिमूल्यं विनैवाद्य विक्रीयताम्।।३।।
याचकोऽहं हरिश्चन्द्रपुरतः पुरो
रामचन्द्रं तथैवाद्य याचे सुखम्।
प्रार्थ्यमान्यं वदान्यं नृपं दशरथं
रामरत्नं मनः सम्पुटे धीयताम्।।४।।
अद्य यास्याम्ययोध्यां भवन्याजकः
ब्रह्म साक्षात् करिष्ये परिव्राजकः।
यज्ञरक्षामिषेणाद्य लक्ष्मणयुतः
स्वाश्रमं गिरिधरेशः समानीयताम्।।५।।

भौमी–आज जाकर मनोहर श्री कोसलपुरी राम विधुमुख शशी की सुधा पी लूँ मैं।
आज चातुर्य मण्डित निरख तूर्य को अपनी सारी समस्या को हल कर लूँ मैं।।१।।
सुप्रभाता निशा मेरी मंगल दिशा प्रेरणा है शकुन सूचि दक्षिण दृशा।
चारु लोचन चकोरों से आदर सहित राम कोसल सुधाकर को वश कर लूँ मैं।।२।।
मित्र जग का विश्वामित्र हो करके मैं भक्त कुल कंज रवि राम को प्राप्त कर।
तज के अभिमान बिन मुक्ति के मोल अब आज विक्रीत रघुनाथ कर हो लूँ मैं।।३।।
मैं था याचक हरिश्चन्द्र का पूर्व में आज रघुचन्द्र को सुख से माँगू अहो।
लेके दशरथ सरीखे महादानी से मन के सम्पुट में प्रभु रत्न को धर लूँ मैं।।४।।
आज याज्ञिक हो कोसल को जाऊँगा मैं धर यतीवेश प्रभु को निहारूँगा मैं।
यज्ञ रक्षा के मिस से अनुज के सहित **गिरिधर** आश्रम रघुबर अतिथि कर लूँ मैं।।५।।

सन्दर्भश्लोकः

**स च राजसभां गत्वा गीयमानं च चारणैः।
ददर्श सानुजं रामं समीपे चक्रवर्तिनः।।१।।**

भौमी–महर्षि विश्वामित्र ने राजसभा में जाकर चक्रवर्ती महाराज दशरथ के समीप भाइयों सहित उन श्रीरामचंद्र जी के दर्शन किये जिनका यश चारण गा रहे थे।

गीत संख्या-५

जय नरलोकललाम सजलघनतनुसुषमामन्मथमदहारिन्।।
कौसल्यासुशुक्तिमौक्तिकवर दशरथसुकृतपयोधिसुधाकर।
सुजनचारुसारङ्गमधुपवर रविरविकुलसरोजसुखकारिन्।।१।।
जय मानव मानवताभूषण जय नरवर रघुवंशविभूषण।
भूमिभारमपहर रणभीषण खलकुलकदन शरासनधारिन्।।२।।
करुणावरुणालय धृतलाघव मर्यादापुरूषोत्तम राघव।
परब्रह्म सुजने सुमुखो भव गिरिधरेश जनमनोविहारिन्।।३।।

भौमी– जय नरलोक ललाम सजल घन, तनु सुषमा मन्मथमदहारी।
कौसल्या सुशुक्ति मौक्तिकवर, दशरथ सुकृत पयोधि सुधाकर।
सुमन चारु सारंग मधुपवर, रविरविकुल सरोज सुखकारी।।१।।
जय मानवमानवता भूषण, जय नरवर रघुवंश विभूषण।
भूमि भार हर लो रणभीषण खलकुल कदन शरासन धारी।।२।।
करुणा वरुणालय धृतलाघव मर्यादापुरुषोत्तम राघव।
परब्रह्म होवो प्रसन्न अब रामभद्र जनमनोविहारी।।३।।

सन्दर्भश्लोकः

निरीक्ष्यमाणोऽथ तमालनीलं पतन्तमङ्घ्रौ पतितार्तिहारम्।
हारं हरिं हर्षितहारहारं रामं निकामं मुनिरभ्यगायत्।।१।।

भौमी–इस प्रकार तमाल के समान नीलवर्ण पतितों के कष्ट को दूर करने वाले विष्णु के भी आराध्य शिव जी के पुत्र गणपति और कार्तिकेय उनके हार स्वरूप शेष नारायण को हर्षित करने वाले अपने चरण पड़े हुये भगवान राम के दर्शन करते हुये महर्षि विश्वामित्र ने इस प्रकार गाया।

गीत संख्या-६

मनसि मम वसतु सदा श्रीरामः।
निखिललोकलावण्यलालितो व्रीडितशतशतकामः।।
रुचिररसेन्द्रसरोवरजातं मसृणमृदुलनवमिव जलजातम्।
परममधुरसौन्दर्यविभातं रूपं दधदभिरामः।।१।।
तरुणतमालजलदसमशोभः परमहंसमानसकृतलोभः।
विगलितसुजनमनोविक्षोभः भवभयविपद्विरामः।।२।।
हरतु हरिर्मम भवपरितापं शमयतु शत्रुजनितसन्तापम्।
वितरतु दिशि दिशि कीर्तिकलापं क्षपितदुरितपरिणामः।।३।।
पातु मखं हतरिपुकुलयूथः रणहतनिशिचरगर्ववरूथः।
भवतु शम्भुकार्मुकखण्डनपरगिरिधरललितललामः।।४।।

भौमी–हमारे मन बसे सदा श्रीराम।

सकल लोक लावण्य सुलालित, लज्जित शत–शत काम।।
रुचिर शृंगार सरोवर सम्भव, कोमल मृदुल सजल घन नव–नव।
परम मधुर सुन्दरता अभिनव, रूप धरे अभिराम।।१।।
तरुण तमाल जलद सम शोभन, परम हंस मुनि मानस लोभन।
विगलित सकल सुजन मन छोभन, भवभय विपद् विराम।।२।।
मम परिताप सकल हरि हर लें, रिपु संताप दूर प्रभु कर दें।
दिशि दिश में निर्मल यश भर दें, हरें दूरित परिणाम।।३।।
शत्रु मार, कर लें मख रक्षण, हरें निशाचर गर्व विचक्षण।
करें शंभु कार्मुख खण्डन प्रभु, **गिरिधर** ललित ललाम।।४।।

सन्दर्भश्लोकः

कृतातिथ्योऽथ ब्रह्मर्षी राज्ञा पृष्टः स्वमागमम्।
यज्ञघ्नान् घातयन् रामं विश्वामित्रोऽभ्ययाचत।।१।।

भौमी–महाराज के द्वारा आतिथ्य सम्पन्न कर लिये जाने पर तथा उन्हीं के द्वारा अपने आगमन का कारण पूछे जाने पर यज्ञध्वंशी राक्षसों का वध कराने के लिये महर्षि विश्वामित्र जी ने महाराज दशरथ से श्रीराम–लक्ष्मण को माँगा।

गीत संख्या–७

राजन् देहि सानुजं रामम्।
काकपक्षधरमब्जसुन्दरं श्रीहृल्ललितललामम्।।१।।
धनुर्बाणतूणीरधारिणं मदनमनोहरवेषम्।
विदितवीररसविमलविग्रहं श्रितविधिविष्णुविशेषम्।।२।।
मनसिजमधुकरनिकरविनिन्दकविलुलितचिकुरकपोलम् ।
श्रुतियुगलसितश्रुतियुगमयमकराकृतकुण्डललोलम् ।।३।।
तिलकललितललाटमनसिजशुकचञ्चुविनिन्दकनासम् ।
जनाजीवराजीवलोचनं भवहरभ्रुकुटिविलासम्।।४।।
सौरभपल्लवविलसदधरविधुवदनसुधामयहासम् ।
दाडिमबीजदशनमनघं सुमनोहरवचनविकासम्।।५।।
कण्ठतरुणतुलसिकास्त्रगाहृतमुक्तसुमुक्ताहारम् ।
वक्षोविलसच्छ्रीवत्सं कौस्तुभमुनिमनोविहारम्।।६।।
शिशुदिनमणिदीधितिदेवितदीपितजाम्बूनदवस्त्रम् ।
अंसलमंसमखोपवीतमखरक्षणसक्षणशस्त्रम् ।।७।।

जाह्नवीजनकजनकसुखकरभवतारणतरणितचरणम्	।
श्रुतिचयविदितपतितपावनगुणमनुपममशरणशरणम्	।।८।।
परब्रह्म परमेश्वरमीड्यं क्षमं विजितशतकामम्।
रामं देहि मरकतश्यामं गिरिधरमनोऽभिरामम्।।९।।

भौमी- हे राजन! लक्ष्मण के सहित उन श्रीराम को दे दीजिये। जो काक पक्ष अर्थात् स्कन्ध तक लटकने वाले घुँघराले बालों से युक्त एवं नीलकमल के समान सुन्दर तथा श्रीजी के हृदय के रत्न हैं। जो धनुष-बाण तरकश धारण करने वाले और काम के मन को हरने वाले वेश से युक्त प्रसिद्ध वीर रस ही जिनका मंगलमय विग्रह है; ब्रह्मा-विष्णु और शेष भूषण शिव जिनके सेवक हैं। जिनके कपोल पर कामदेव के भ्रमरों को निन्दित करने वाले घुँघराले बाल लटक रहे हैं और चतुर वेदस्वरूप मकराकृत कुण्डल जिनकी शोभा बढ़ा रहे हैं। जिनके ललाट पर ललित तिलक है, जिनकी नासिका तोते की चोंच को भी लज्जित कर देती है, जिनके नेत्र सज्जनों के जीवनदाता और लाल कमल के समान हैं, जिनका भृकुटि विलास भवभयहारी है। जिनका अधर आम्रपल्लव के समान है, जिनका मुख चन्द्र के समान तथा मुस्कान अमृतमय है, जिनके दाँत अनार के बीज के समान हैं और जिनकी वाणी का विकास सज्जनों का मन हर लेता है ऐसे श्रीराम को मुझे दे दीजिये। जिनके कण्ठ में विराजमान तुलसी की माला अपनी सुगन्ध से मुक्तजनों को भी आकर्षित कर लेती है, जिनके वक्ष पर श्रीवत्सलांछन सुशोभित है और जिनका कौस्तुभमणि मुनिजन के मन का विहार स्थल बन गया है। जिनका पीताम्बर बालसूर्य की किरणों का निन्दक तथा प्रकाशमान शुद्ध स्वर्ण के समान है, जो अत्यन्त स्वस्थ हैं तथा जिनके स्कन्ध पर यज्ञोपवीत विराज रहा है और जिनका शस्त्र यज्ञ रक्षा में कुशल है। जिनके चरण गंगाजी के जन्मदाता वामन भगवान के अंशी विष्णु को भी आनन्द देने वाले संसार सागर को पार करने वाले एवं नवीन कमल के समान हैं, जिनका पतितपावन गुण वेदों में विदित है, जो अनुपमेय और अशरणों के भी शरण दाता हैं। ऐसे परब्रह्म परमेश्वर स्तुति करने योग्य, सर्वसमर्थ, अनेक कामों को जीतने वाले नीलमणि के समान श्यामल **गिरिधर** कवि के मन को अनुकूलता से रमाने वाले श्रीराम को मुझे दे दीजिये।।९।।

सन्दर्भश्लोकः

निशम्य राजा मुनिवाक्यवज्रं पपात भूमौ सविमूर्च्छितोऽभूत्।
पुनः समासादितदेहसञ्ज्ञो जगाद जीमूतगिरा गभीरम्।।१।।

भौमी- वज्र के समान कठोर विश्वामित्र का वाक्य सुनकर महाराज दशरथ मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े। फिर चेतना प्राप्त कर बादल के वाणी में गंभीरार्थक वचन बोले-

गीत संख्या-८

हस्तौ बध्वा पादौ नत्वा प्रार्थये भवन्तं हे सिद्धाश्रमसाधो।
रामचन्द्रं दातुं न शक्नोमि हे सिद्धाश्रमसाधो।।१।।
रामभद्र आस्ते मम प्राणानामाधारो हे सिद्धाश्रमसाधो।
रामलालं दातुं विदुनोमि हे सिद्धाश्रमसाधो।।२।।
सम्पूर्णाऽप्ययोध्या वधं विनाऽपि मरिष्यति हे सिद्धाश्रमसाधो।

रामं विना मृत्युं निश्चिनोमि हे सिद्धाश्रमसाधो।।३।।
अनभ्यस्तायुधो द्वादशाब्दो मम रामो हे सिद्धाश्रमसाधो।
ततश्चित्ते नितरां दुनोमि हे सिद्धाश्रमसाधो।।४।।
राममन्तरेण नैव जीवामि मुहूर्तं हे सिद्धाश्रमसाधो।
तत्प्रदाने धैर्यं न तनोमि हे सिद्धाश्रमसाधो।।५।।
राममेव वच्मि रामं चिन्तयामि नित्यं हे सिद्धाश्रमसाधो।
राममेव कर्णाभ्यां शृणोमि हे सिद्धाश्रमसाधो।।६।।
राममेव दर्शं दर्शं युञ्जे मनः क्षेत्रे हे सिद्धाश्रमसाधो।
सत्यमेव भवते प्रतिशृणोमि हे सिद्धाश्रमसाधो।।७।।
गिरिधरप्रभौ लोकलोचनाभिरामे हे सिद्धाश्रमसाधो।
रामे सर्वममतां सिनोमि हे सिद्धाश्रमसाधो।।८।।

भौमी–अब कवि बिहार–भोजपुर की लोकधुन में दशरथ जी का गीत प्रस्तुत कर रहे हैं जिसका ढाल है– हाथ जोर पाँय परि करीला बिनतिया हे बक्सर के बाबा। देत ना बनयलेन बबुआ राम हे बक्सर के बाबा। हे सिद्धाश्रम के बाबा विश्वामित्र! मैं हाथ जोड़कर, पाँय पड़कर आपसे प्रार्थना करता हूँ कि श्रीराम चन्द्र को मैं नहीं दे सकता। श्रीरामभद्र मेरे प्राणों के आधार हैं। इसीलिए उन्हें देने में मैं अत्यन्त व्याकुल हो रहा हूँ। हे सिद्धाश्रम के संत कौशिक जी! सम्पूर्ण अयोध्या श्रीराम के बिना वध के बिना भी मर जायेगी। श्रीराम के वियोग में मेरी मृत्यु भी निश्चित है। मेरे श्रीराम अभी शस्त्र चलाने में अभ्यस्त नहीं हैं। सम्प्रति, उनकी अवस्था बारह वर्ष से भी अल्प है। इससे मैं चित्त में बहुत चिन्तित हो रहा हूँ। मैं राम–राम ही रटता हूँ। श्रीराम का ही नित्य चिन्तन करता हूँ और कानों से भी श्रीराम शब्द ही सुनता हूँ। रामजी के बिना मैं एक मुहूर्त्त भी नहीं जी सकता। हे सिद्धाश्रम के सन्त! श्रीराम के प्रदान में मैं धैर्य नहीं रख पा रहा हूँ। हे सिद्धाश्रम के बाबा! श्रीराम को ही देख–देखकर मैं मन समेत इस शरीर में जुड़ रहा हूँ। आपके समक्ष मैं सत्य प्रतिज्ञान से कह रहा हूँ। **गिरिधर** कवि के स्वामी समस्त लोकों के नेत्रों को आनन्द देने वाले श्रीराम में ही मैंने अपनी सम्पूर्ण ममताएँ बाँध रखी हैं। हे सिद्धाश्रम के अधिपति विश्वामित्र जी! मैं श्रीराम को नहीं दे सकता।

गीत संख्या–९

राघवमहं न दास्ये मरणेऽपि हे मुनीश्वर।
प्राणा न मे भवेयुर्दानादितो यतीश्वर।।
नीरं विनाऽपि मीनो देहं धरेत् कदाचित्।
धर्तुं त्वहं न शक्ये रामं विना तनुं स्वित्।।
गात्रेषु वेपथुर्मे भीतस्य हे शुभाकर।।१।।
महता प्रयत्नतो मे लब्धाश्चतुः कुमाराः।
पितृमातृपरिजनानां जीव्या इमे उदाराः।।
लोचनचकोरचन्द्रं दास्यामि नैव मुनिवर।।२।।

यान्तं निरीक्ष्य नाथं शून्या भवेत्पुरीयम्।
स्थातुं कथं हि शक्या कौशिक विना तुरीयम्।।
त्रायस्व शोकवह्नेः पौरान् कृपापयोधर।।३।।
भगवन् प्रसीद लब्ध्वा राज्यं धनं सकोषम्।
गन्तास्मि पुत्रभार्यायुक्तो वनं सतोषम्।।
याचस्व मा सुतं मे मां संकटात्समुद्धर।।४।।
बालौ सुकोमलाङ्गौ श्रीरामलक्ष्मणौ मे।
युद्धे कथं घटेतां पुत्रावचक्षणौ मे।।
गिरिधरप्रभुं न दास्ये रोषं ऋषे समाहर।।५।।

भौमी– राघव को मैं न दूँगा मुनिनाथ मरते–मरते।
मेरे प्राण ना रहेंगे यह दान करते–करते।।
जल के बिना कदाचित मछली शरीर धारे।
पर मैं न जी सकूँगा इनको बिना निहारे
कौशिक सिहर रहे हैं मेरे अंग डरते–डरते।। राघव को.....।।१।।
कर यत्न चौथेपन में सुत चार मैंने पाया
पितु मातु पुरजनों को रघुचन्द्र ने जिलाया
लोचन चकोर तन्मय छवि पान करते–करते।। राघव को.....।।२।।
चलते विलोक प्रभु को होगा उजाड़ कौसल
मंगल भवन के जाते संभव कहाँ से मंगल
सींचे कृपालु तरु को मृदुपात झरते–झरते।। राघव को.....।।३।।
होवें प्रसन्न मुनिवर ले राजकोष सारा
रानी सुतों के संग मैं वन में करूँ गुजारा
ले गोद राम शिशु को सुख मोद भरते–भरते।। राघव को.....।।४।।
लड़के हैं राम लक्ष्मण कैसे करें लड़ाईं
गिरिधरप्रभु को देते बनता नहीं गुसाईं
कह यों पड़े चरण में, दृग नीर ढरते–ढरते।। राघव को.....।।५।।

सन्दर्भश्लोकौ

अथो वसिष्ठनिर्दिष्टभग्नमोहतमा नृपः।
ददौ कुशिकपुत्राय राघवं सहलक्ष्मणम्।।१।।
ततः पुरोधसा साकं ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः।
जगू राघवमाश्रित्य प्रस्थाने स्वस्तिवाचनम्।।२।।

भौमी–इसके पश्चात् वसिष्ठ के निर्देश पर महाराज दशरथ का मोहान्धकार नष्ट हुआ और उन्होंने लक्ष्मण

सहित श्रीराम को विश्वामित्र जी को समर्पित कर दिया। इसके अनन्तर पुरोहित वसिष्ठ जी के साथ वेदज्ञ ब्राह्मण-जन श्रीराम के प्रस्थान के समय उनका मंगलाशासन करते हुए गीत गाने लगे।

गीत संख्या-१०

गच्छ राघवसुखं स्वस्ति मङ्गलसुखं
नाधिकानेहसा भूय आगम्यताम्।
साधयित्वा मखं तुष्टमारुत्सखं
सानुजेनाशु सखिभिः समागम्यताम्।।१।।
सुप्रभाताः समाः सन्तु मञ्जुलनिशः
वासरं भास्वरं भान्तु भासुरदिशः।
त्वत्प्रतापानले बाणजिह्वाकुले
प्रोज्वले शत्रुभिर्भस्मतां गम्यताम्।।२।।
लब्धविद्यायशः कीर्तिमण्डितदिशः
जीव शरदां शतं दिव्यसंयुगरसः।
दिव्यविजयश्रिया त्वत्पदाम्भोरुहे
हे हरे हृष्टतन्वा समानम्यताम्।।३।।
हे तपनवंशपङ्कजदिवाकर विमल
पाहि पापीयसः शीलमन्दिर सरल।
रामराजीवलोचन कृपाकर तरल
चेतसा गिरिधरे वै सदा रम्यताम्।।४।।

भौमी–हे राघव सुखपूर्वक जाओ, आपका मंगलमय कल्याण हो, अतिशीघ्र ही पुनः आना। अग्नि को सन्तुष्ट करके, यज्ञ को सफल कर श्रीलक्ष्मण के साथ अतिशीघ्र आकर मिलो। आपके वर्ष मंगलमय प्रभात से युक्त हों, आपकी रात्रि मधुर हो, आपके दिन तेजोमय हों, आपकी सब दिशाएँ दिव्य आभा से युक्त होकर सदैव सुशोभित रहें। बाणरूप जीभ से युक्त जाज्वल्यमान तुम्हारे प्रतापरूप अग्नि में शत्रु-पतंगे की भाँति भस्म हो जायें। आप विद्या और यश प्राप्त करके सुयश से दिशाओं को सुशोभित कर दिव्य वीररस से सम्पन्न होकर अनन्तवर्ष पर्यन्त जीते रहें। हे भगवान! अलौकिक विजयश्री पुलकित शरीर वाली होकर आपके चरणकमलों में प्रणाम करे। हे सूर्यवंश रूप कमल के विमल सूर्य! हे शील के मन्दिर! हे सरल श्रीराम! हे कमलनेत्र! हे वत्स! हे चित्त से तरल अर्थात् करुण! आप कवि **गिरिधर** के हृदय में रमते रहें।

गीत संख्या-११

देवा जगुः-

राघवस्तु कौशिकेन सार्धं प्रयाति तं च लक्ष्मणोऽनुयाति।।
नीलतामरसश्यामकोमलशरीरः ।

कोटिकामकमनीयः समररङ्गधीरः।।
सिन्धुकोटिसमगभीरो धैर्यं न जहाति।।१।।
कटितटनिषङ्गलसितपाणिधनुःसायकः।
भानुवंशनायकः स्वभक्तमोददायकः।।
विनमितविनायको न धृतिं विजहाति।। २।।
शीतलसुगन्धमन्दपवनं निषेवते।
मार्गे परिश्रान्तं मुनिं राघवोऽपि सेवते।।
लोकलोचनानि चोरं चोरं पथि याति।।३।।
खगमृगसरित्सरांसि लक्ष्मणाय दर्शयन्।
मार्गे मधुरवार्ताभिः कौशिकं प्रहर्षयन्।।
चक्रवर्तिसूनुस्तृणशय्यायां विभाति।।४।।
सिंहशावकानां क्वचिद् दन्तांश्च गणयतः।
क्वचिद् घोरजन्तून् स्वबाणैर्व्रणयतः।।
गिरिधरप्रभोर्दृष्ट्वा मुनिसुखं न सम्माति।।५।।

भौमी–अब मैथिल लोकधुन में कवि श्रीराम की यात्रा का वर्णन करते हैं। देवता गाने लगे। श्रीराम विश्वामित्र के साथ प्रयाण कर रहे हैं और कुमार लक्ष्मण उनके पीछे–पीछे चल रहे हैं। प्रभु का शरीर नीले कमल के समान कोमल है, वे करोड़ों कामदेवों के समान सुन्दर तथा युद्ध–भूमि में स्थिर स्वभाव के हैं। प्रभु श्रीराम करोड़ों सागरों के समान गम्भीर हैं, इसीलिए धैर्य नहीं छोड़ रहे हैं। उनके कटि प्रदेश में तरकश तथा हाथ में धनुष–बाण है। वे सूर्यवंश के नायक और अपने भक्तों के सुखदाता हैं। श्रीगणेश भी उनके चरणों में झुक रहे हैं और भगवान राम अपनी सात्विक धृति नहीं छोड़ रहे हैं। शीतल–मंद–सुगंध वायु का सेवन करते हुये श्रीराम मार्ग में थके हुये विश्वामित्र जी की सेवा करते हैं और लोगों के नेत्रों को चुरा–चुराकर वनपथ में चले जा रहे हैं। पक्षी–हिरन–नदी–तालाब आदि प्राकृतिक वस्तुएँ लक्ष्मण जी को दिखाते हुये अपनी मीठी–मीठी बातों से विश्वामित्र को प्रसन्न करते हुये प्रभु श्रीराम चक्रवर्ती महाराज के पुत्र होकर भी शयन के लिए कुश शैय्या पर सुशोभित हो रहे हैं। कहीं पर सिंह के बच्चों के दाँत गिनते हुए कहीं हिंसक जंतुओं को अपने बाणों से बेधते हुए **गिरिधर** कवि के प्रभु श्रीराम को निहार–निहारकर महर्षि विश्वामित्र का सुख नहीं समा रहा है।

विशेष–यहाँ कर्म में शेषत्व विवक्षया षष्ठी हुई है।

गीत संख्या-१२

शीतलपवन मञ्जुमङ्गलभवन स्वेदविन्दून् विशोषय हे।
स्यन्दनगमन कोमलं भानुमन् भानुवंश्यं प्रपोषय हे।।१।।
मृद्वी भव पावनवसुन्धरे दूरय शैलान् पुण्यनिर्भरे।
कण्टकविपिनलतातरुगणगहनमार्गखेदं विनोदय हे।।२।।

सरसिजशिरिषकुसुमसुकुमारौ व्रजत इतो द्वौ राजकुमारौ।
नवनीलघन आतपत्रितगगन राजपुत्रौ प्रमोदय हे।।३।।
प्रकृते कुरु स्वागतमविलम्बं गापय मृदुपिकमधुपकदम्बम्।
गिरिधरनयननीलसम्पुटसुधन कोसलेन्दुं विलोकय हे।।४।।

भौमी–हे शीतलपवन! सुन्दर एवं मंगलभवन श्रीराम के स्वेद–बिन्दुओं को सुखा दो। हे रथगामी सूर्यदेव! सूर्यवंशोद्भव कोमल राम का पोषण करें। हे पुण्यशालिनी पवित्र वसुधे! श्रीराम लक्ष्मण के लिये कोमल बन जाओ और उनके मार्ग से पर्वतों को दूर कर दो। हे कण्टक, वन, लता, वृक्षसमूह तुम श्रीराम के मार्ग में होने वाले खेद को समाप्त कर दो। कमल और शिरीषपुष्प सदृश कोमल एवं सुकुमार दो राजकुमार इधर से जा रहे हैं। हे नवीन नीलमेघ! आकाश में छाया करके दोनों राजकुमारों को आनन्दित करो। हे प्रकृति! तुम श्रीराम लक्ष्मण का अविलम्ब स्वागत करो तथा कोयल और भ्रमरों के समूह द्वारा मंगलगान कराओ तथा **गिरिधर** कवि के नेत्ररूप नीलसम्पुट के रत्न कोसलेन्द्र श्रीराम को निहारो।

गीत संख्या–१३

कविर्गायति–

जयति मुनियज्ञरक्षारतो राघव जयति श्रुतिविहितधर्मव्रतो राघवः।
ब्रह्म परमेश्वरो व्यापको भास्वरो निर्गुणः सगुण एकोऽजितो राघवः।।१।।
राम आजानुभुजदण्डकोदण्डशरचण्डवरवन्द्यविरुदैर्वृतो राघवः।
याचितस्तातमृषिणा समं धर्मभृद् भ्रातृसौमित्रसध्र्यङ्गतो राघवः।।२।।
एक वाणेन हतताडकः कानने बलातिबलाख्यविद्यान्वितो राघवः।
लब्धदिव्यायुधः सर्वमायाबुधः प्राप्तसिद्धाश्रमस्वागतो राघवः।।३।।
नीचमारीचमुत्क्षिप्य पारेजलधि सुभुजमदमर्दनो वन्दितो राघवः।
विहितमखरक्षणो धनुर्मखदर्शने सम्प्रतिष्ठासुरध्वार्चितो राघवः।।४।।
चरणपङ्कजपरागेण गौतमवधूशापहृद्विप्रदम्पतिनुतो राघवः।
सीतामुखचारुचन्दिरचकोरो भवन् मुदित गिरिधरप्रभुः प्रस्तुतो राघवः।।५।।

भौमी–महाकवि स्वयं गा रहे हैं–विश्वामित्र की यज्ञ रक्षा में तत्पर श्रीराघव की जय हो। वेदविहित धर्मव्रती श्रीराघव की जय हो। ब्रह्म परमेश्वर, व्यापक, दीप्तिमान, निर्गुण, सगुण; किसी से भी न जीते जाने वाले राघव सरकार की जय हो। घुटने तक लटकने वाली भुजा में धनुष–बाण धारण करने वाले श्रेष्ठ विरुदावली से युक्त रामराघव की जय हो। विश्वामित्र के द्वारा पिताश्री से स्वयं के माँगे जाने पर भाई लक्ष्मण के साथ विश्वामित्र के संरक्षण में प्रयाण करने वाले राघव सरकार की जय हो। वन में एक ही बाण से ताड़का का वध करके बला–अतिबला विद्या से युक्त राघव की जय हो। विश्वामित्र से दिव्यास्त्र प्राप्त करने वाले और सम्पूर्ण मायाओं के वेत्ता एवं सिद्धाश्रम का स्वागत प्राप्त करने वाले श्रीराघव सरकार की जय हो। नीच मारीच को समुद्र के पार फेंककर सुबाहु का मद नष्ट करने वाले ऋषियों द्वारा वंदित राघव की जय हो। विश्वामित्र की यज्ञ रक्षा करके मिथिला में धनुर्यज्ञ के दर्शन के लिए सिद्धाश्रम से प्रस्थान करने के इच्छुक मिथिला मार्ग में सम्मानित श्रीराघव की जय हो। अपने चरणकमल की धूलि से अहल्या का शाप नष्ट करने वाले ब्राह्मण–

दम्पत्ति द्वारा सम्मानित होकर भी द्विज दम्पति को प्रणाम करने वाले राघव जी की जय हो। सीतामुख चन्द्र के चकोर होते हुए अत्यन्त प्रसन्न **गिरिधर** कवि के स्वामी धनुष तोड़ने के लिए प्रस्तुत श्रीराम-राघव की जय हो।

विशेष- यह गीत राग-बागेश्वरी और झपताल दस मात्रा में निबद्ध है।

सन्दर्भश्लोकः

हत्वा रक्षोनिकरमिषुभिर्यज्ञरक्षां विधाय
प्रोद्यद्धर्षैर्विबुधनिचयैः कीर्यमानः प्रसूनैः।
द्रष्टुं यज्ञं महितमिथिलं सम्प्रतिष्ठासुराराद्
मार्गेऽहल्यां शिलितवपुषं चीत्कृता सन्ददर्श।।१।।

भौमी-बाणों से यज्ञ-द्रोही राक्षसों को मारकर विश्वामित्र की यज्ञ-रक्षा करके प्रसन्न देवताओं द्वारा पुष्पवृष्टि से सम्मानित होकर मिथिलानरेश का धनुर्यज्ञ देखने के लिये प्रस्थान करने के इच्छुक प्रभु ने मार्ग में शिला बनी हुई चित्र के समान निश्चेष्ट अहल्या को देखा।

गीत संख्या-१४

अहल्या गायति-

राघव! न जायते मयि यावत् कृपा त्वदीया।
तावत् समा समस्या शाम्येत् कथं मदीया।।
पतिशापहुतभुजा वै भस्मीकृताऽखिलाऽहम्।
जातास्मि देव भूयो भूत्वा महाशिलाऽहम्।।
क्रियतेऽधुना प्रतीक्षा मया भूरि भगवदीया।।१।।
अयुताब्दकानि राघव विसहामि क्षुत्पिपासे।
दूरं गते च मत्तः सुमनोविलासहासे।।
परिवृष्यतामिदानीं करुणासुधा स्वकीया।।२।।
कार्यो न वै विलम्बो हे कोसलाविहारिन्।
देयो ममावलम्बो जनपापतापहारिन्।।
शीघ्रं नु सन्निधेया कीर्तिश्च शाश्वतीया।।३।।
श्रान्तास्मि नाथ षोढ्वा नृणां पदे प्रहारम्।
क्लान्तास्मि देव वोढ्वा देहञ्च निराहारम्।
गिरिधरप्रभो विधेया सुदयैव युष्मदीया।।४।।

भौमी- अहल्या जी गा रही हैं-हे राघव! जब तक आपकी कृपा मुझ पर नहीं होगी, तब तक मेरी सभी समस्याओं का समाधान कैसे होगा? हे देव! अपने पति गौतम के शापाग्नि से प्रथम तो मैं भस्म कर दी गई फिर विशाल-शिला होकर जन्म ली। इस समय मैं आपश्री भगवान की प्रतीक्षा कर रही हूँ। हे राघव! मैं दस

हजार वर्षों से भूख-प्यास सह रही हूँ और प्रसन्न मन के हास और विलास मुझसे बहुत दूर चले गये हैं। इस समय आप अपनी करुणा सुधा की वर्षा कर दीजिये। हे अवधबिहारी! अब विलम्ब मत कीजिये। हे भक्तों के पाप-ताप नष्ट करने वाले प्रभु! मुझको अपने श्रीहस्त का अवलम्ब दीजिये और अपनी शाश्वतकीर्ति को मेरे निकट अत्यन्त शीघ्र ले आइये। हे प्रभो! मैं लोगों के लातों का प्रहार सह-सहकर थक गई हूँ और आहारहीन इस शरीर को ढो-ढोकर मैं बहुत व्याकुल हो रही हूँ। हे **गिरिधर** कवि के स्वामी! अब आपकी दया मुझ पर होनी चाहिये।

गीत संख्या-१५

विश्वामित्रो गायति-

राघव विप्रवधूमुद्धारय।।
दयितशापतस्त्रिविधतापतस्पतितां प्रभो निवारय।।१।।
दशसहस्रवर्षाणि कृपालो तप्यन्तीं किल तारय।।२।।
साधनहीनां दीनदयालो वीक्ष्य दयां विस्तारय।।३।।
निजपदपद्मपरागरागतो ह्यस्या रागं दारय।।४।।
कृत्वा स्त्रियं नीरजस्कां विप्रर्षेर्विपदं वारय।।५।।
रौरवयोग्यां निजगौरवतो गुरुवचनान् विस्तारय।।६।।
मज्जन्तं भवनिधौ गिरिधरं नीरजनयन निहारय।।७।।

भौमी- अब महर्षि विश्वामित्र गा रहे हैं—हे राघव! ब्राह्मण पत्नी का उद्धार कीजिये। हे प्रभो! पति के श्राप और तीनों तापों से इस पतित अहल्या का निवारण कर दीजिये। हे दीनदयालु! परमकृपालु प्रभु! दस हजार वर्षों से तप रही, इस अहल्या को तार दीजिये। इस अहल्या को साधनहीन देखकर इसपर अपनी दया को विस्तार कीजिये। अपने चरणकमल के पराग-राग से इसका सांसारिक राग नष्ट कर दीजिए और इस स्त्री को रजोगुण से रहित करके महर्षि गौतम की विपत्ति दूर कीजिए। रौरव नरक योग्य इस अहल्या को मुझ विश्वामित्र के वचन से गौरवान्वित कर दीजिए और हे कमलनेत्र! संसार-सागर में डूबते हुये कवि **गिरिधर** को एक बार निहार लीजिए।

सन्दर्भश्लोकः

विश्वामित्रवचो निशम्य भगवान् रामो रमावल्लभः
पस्पर्शाशु पदाम्बुजेन कृपयाऽहल्या नमन् मूर्धनि।
सा हित्वा हि शिलातनुं स्वमहसा संरोचयन्ती दिशः
भूत्वा नारिवरा कृताञ्जलिपुटा तुष्टाव सीतावरम्।।१।।

भौमी- इस प्रकार विश्वामित्र की वाणी सुनकर सीतापति भगवान श्रीराम ने कृपा करके झुकी हुई अहल्या के मस्तक पर अपने चरणकमल से स्पर्श किया। अहल्या भी अपना शिलामय शरीर छोड़कर श्रेष्ठ नारी बनकर अपने प्रकाश से सम्पूर्ण दिशाओं को भी ज्योतिर्मय करती हुई भगवान श्रीराम की स्तुति करने लगी।

गीत संख्या-१६

हे कृपामय राम भवता मय्यपारकृपा कृता।
धर्मचारिन् धर्ममवता मय्युदारदया धृता।।
धर्मतः पतिता विपदिता भर्तृशापात् पापिनी।
साहमब्जदृशाभवाब्धेः पत्प्लवेन समुद्धृता।।१।।
क्वाहमज्ञा क्रूरकुलटा सम्पतिष्णू रौरवे।
साऽपि गौरवदानतो गुरुवत्सलेन गुरूकृता।।२।।
मघवताऽघवता तपस्तो धर्षिता निजदोषतः।
दूषणारे सैव भो निर्दूषणा भवता कृता।।३।।
एकमुखतः किं ब्रुवे भवतः कृतानि कृपानिधे।
सुकविगिरिधरगीतगीता भारती सफला कृता।।४।।

भौमी- हे कृपालु प्रभु श्रीराम! आपने मुझ पर अपार कृपा की। हे धर्माचरणशील प्रभु! धर्म की रक्षा करते हुये आपने मुझ पर अपार दया की। हे कमलनेत्र! मैं धर्म से पतित हुई और पति के शाप के कारण बहुत बड़ी विपत्ति में पड़ी। वही मैं आपके द्वारा आपके श्रीचरणरूप जहाज की सहायता से संसार-सागर से ही तार दी गई। कहाँ मैं अज्ञानी, दुष्ट, व्यभिचारिणी महिला जो कि रौरव-नरक में पड़ रही थी वही आज गुरुवत्सल आपश्री राघव के द्वारा गौरव प्रदान करके सर्वश्रेष्ठ कर दी गई। हे दूषणराक्षस के शत्रु श्रीराम! पापी इन्द्र के द्वारा अपने ही दोष के कारण मैं तपस्या से पतित कर दी गई, वही मैं आपके द्वारा निर्दोष की गई। हे कृपानिधे! मैं एक मुख से आपके अनन्त उपकारों को कैसे कह सकती हूँ? आपने तो **गिरिधर** कवि की गीतबद्ध सरस्वती को भी सफल कर दिया।

सन्दर्भश्लोकः

अथ मरुत्पतिपूज्यपदाम्बुजो निखिलनिर्जरलोकशिखामणिः।
जनकजाननदर्शनकाङ्क्षया न शिथिलो मिथिलामगमद्धरिः।।१।।

भौमी-इसके अनन्तर देवता जिनके चरणकमल की पूजा करते हैं, ऐसे सम्पूर्ण देवों के शिरोमणि भगवान श्रीराम सीताजी के मुख के दर्शनों की आकांक्षा से शिथिल न होते हुये मिथिलापुरी पधारे।

गीत संख्या-१७

लोका गायन्ति

एतौ दशरथराजकिशोरौ।
नीलपीतजलजातसुन्दरौ विश्वविलोचनमानसचोरौ।।१।।
यज्ञार्थं याचितौ च मुनिना रुदता पित्रा समनुज्ञातौ।
काकपक्षचन्द्रकशिखण्डकौ सार्धं कौशिकमुनिना यातौ।।२।।
एकविशिखघातिता ताटका विद्ये समधिगते रमणीये।

दिव्यास्त्राण्यनेकशोऽधिगतौ निरुपमशक्तिबले कमनीये।।३।।
परमनीचमारीचनीचता इषुणा पारेसिंधु प्रणिहिता।
यज्ञघ्नीसुबाहुप्रमुखा किल निखिला निशिचरचमू विनिहता।।४।।
पदपङ्कजरजसा विरजस्का विहिता शिलामयी ऋषिनारी।
लक्ष्मणाग्रजन्मा साम्प्रतमायातो मिथिलां कार्मुकधारी।।५।।
इति जननिगदितमाश्रृण्वानो रामो विप्रवर्यनिर्दिष्टः।
गिरिधरप्रभुर्जनदृशः पूर्वं पश्चान् मिथिलापुरीं प्रदिष्टः।।६।।

भौमी–लोग गा रहे हैं–ये दोनों महाराज दशरथ के राजकुमार हैं, जो नीले पीले कमल के समान सुन्दर तथा विश्व के नेत्र और मनों को चुराने वाले हैं। ये काक–पक्ष, अर्धचन्द्राकार, मोरमुकुटधारण करने वाले दोनों राजकुमार यज्ञ की रक्षा के लिये विश्वामित्र जी के द्वारा चक्रवर्ती जी से माँगे गये और रोते–रोते महाराज दशरथ ने अनुमति दी तथा ये विश्वामित्र जी के साथ सिद्धाश्रम पधारे। एक बाण से इनके द्वारा ताड़का मारी गई और इन्होंने उपमारहित शक्ति और बल से युक्त लोगों की आकांक्षा का विषय बनी हुई बला–अतिबला नामक वीरों को रमाने वाली दो विद्याएँ तथा अनेक दिव्यास्त्र विश्वामित्र जी से ही प्राप्त किये और इन्हीं के द्वारा एक ही बाण से अत्यन्त नीच मारीच की नीचता भी समुद्र के पार फेंक दी गई तथा यज्ञ–विरोधिनी सुबाहु के नेतृत्व वाली विशाल राक्षस सेना इनके द्वारा मार डाली गयीं। लक्ष्मण जी के बड़े भाई श्रीराम द्वारा अपने चरणकमल की धूल से शिला बनी हुई गौतमजी की पत्नी अहल्या निर्मल करके तारी गई और इस समय वे धनुर्धर श्रीराम मिथिला पधार आये हैं। इस प्रकार लोगों का कथन सुनते हुए ब्राह्मणवर्य विश्वामित्र के निर्देशन के अनुसार **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम पहले लोगों के नेत्रों में प्रवेश किये, फिर जनकपुरी में।

विशेष- यह गीत हवेली पद्धति की ढाल में त्रिताल में निबद्ध है।

गीत संख्या-१८

राघवो जामाता यातो मिथिला नगर्यां हे।।
श्रावं श्रावं धावं धावं ददृशुर्लोका भावं भावम्।
भावतो निमग्नाः सर्वे प्रेमरसलहर्य्यां हे।।१।।
काश्चित् पानं काश्चित् स्नानं काश्चित् वै भोजनविधानम्।
तत्त्यजुर्महोत्सवो जातो जनकपुरनागर्यां हे।।२।।
अहं पूर्वं अहं पूर्वं पश्येयं स्वरूपमपूर्वम्।
एवं प्रतिस्पर्धा जाता मैथिलीमुखर्या हे।।३।।
वीथ्यां वीथ्यां लोकाबाधो प्रतिरथ्यं जनाबाधो।
भावपर्जन्योऽप्यवर्षीत् भावनासागर्यां हे।।४।।
गिरिधरप्रभुं दृष्ट्वा स्नेहमयीं स्त्रजं सृष्ट्वा।
पप्रू रामरूपसुधां लोचनगर्गर्यां हे।।५।।

भौमी- आज मिथिला नगरी में श्रीराघव पाहुना पधार आये हैं। यह समाचार सुन सुनकर, दौड़–दौड़कर

प्रसन्न हो-होकर लोग दर्शन करने लगे और सभी स्त्री-पुरुष प्रेमरस की लहर में मग्न हो गये। किन्हीं महिलाओं ने जलपान, तो किन्हीं ने स्नान छोड़ा, किन्हीं ने भोजन ही छोड़ दिया। इस प्रकार जनक की नगरी में महान उत्सव उपस्थित हो गया। यह अपूर्वस्वरूप पहले मैं देखूँ-पहले मैं देखूँ, इस प्रकार मुखरित नारी वर्ग में प्रतिस्पर्धा होने लगी। गली-गली में लोगों की भीड़ प्रत्येक चौराहे में जनसंकुल उमड़ पड़ा और भावना की बावली में सख्यमिश्रित माधुर्य का बादल बरसने लगा। **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराघव के दर्शन करके स्नेहमयी माला का निर्माण करके मैथिलानियों ने अपने नेत्र की गागर में श्रीरामरूप अमृत को भर लिया।

विशेष- यह गीत एक भोजपुरी की आँचलिक ढाल में निबद्ध है- उसका बोल है- 'रामजी पहुनवाँ अइलन मिथिला नगरिया हे।'

सन्दर्भश्लोकः

अथ विलोक्य रघूत्तमसौभगं भगवताहृतनिर्मलमानसः।
सजललोचनसत्पुलकावलिः स जनको जनकं तपसां जगौ।।१।।

भौमी- श्रीराम ने ही जिनके निर्मल मन को चुरा लिया था, ऐसे योगिराज जनक रघुकुल श्रेष्ठ प्रभु का सौन्दर्य देखकर सजल नेत्र और पुलकपूर्ण शरीर होकर तपस्याओं के जन्मदाता विश्वामित्र को सम्बोधित करके प्रश्न के स्वरों में इस प्रकार गाने लगे।

गीत संख्या-१९

महर्षे सूच्यतामेतत् कुतस्त्यौ बालकावेतौ।
मखर्षे सूच्यतामेतत् कुतस्त्यौ बालकावेतौ।।१।।
किशोरौ कन्दकनकाभौ विलोचनमूर्तिमल्लाभौ।
नृपर्षेऽनूच्यतामेतत् कुतस्त्यौ बालकावेतौ।।२।।
शुभाङ्गौ धन्विनौ धीरौ वरौ वरवर्णिनौ वीरौ।
नरर्षेऽभ्यूच्यतामेतत् कुतस्त्यौ बालकावेतौ।।३।।
किमीया गर्भसम्पत्तिः प्रहन्त्या सुरमहापत्तीः।
सुरर्षे ओच्यतामेतत् कुतस्त्यौ बालकावेतौ।।४।।
कथं पद्भ्यामिह प्राप्तौ शिशू गिरिधरप्रभू आप्तौ।
द्विजर्षे प्रोच्यतामेतत् कुतस्त्यौ बालकावेतौ।।५।।

भौमी- हे महर्षे! आप सूचित करें कि ये दोनों बालक कहाँ से आये हैं? हे यज्ञ के ऋषि! आप सुखपूर्वक बतायें कि ये दोनों कृपापूर्ण बालक कहाँ से पधारे हैं? हे राजर्षि! आप अनुकूलता से बतायें कि किशोरावस्था सम्पन्न बादल और स्वर्ण के समान श्याम-गौर नेत्रों के मूर्तिमान लाभस्वरूप ये दोनों बालक कहाँ से आये हैं? हे मनुष्यों में ऋषि! सुन्दर अंगोंवाले धैर्यशाली, धनुर्धर, श्रेष्ठ ब्रह्मचारी वीर! ये दोनों बालक किस देश से पधारे हैं? हे देवतुल्य ऋषि! आप निश्चय करके कहें कि यह किस गौरवमयी माँ की गर्भसम्पत्ति है, जो राक्षसों की आक्रमण रूप भयंकर विपत्ति को नष्ट कर रही है? अर्थात् इन दोनों बालकों का किन माताओं से जन्म हुआ है? ये दोनों बालक किस भू-भाग से यहाँ पधारे हैं? **गिरिधर** कवि के स्वामी

अल्पवयस्क विश्वस्त ये दोनों बालक किस देश से और किस निमित्त से यहाँ पैदल पधारे हैं? हे ब्रह्मर्षे! आप कृपा करके हमें यह सब रहस्य बतायें।

गीत संख्या-२०

अपि च-

कौशिक काविमौ कुतश्चायातौ।
तनुसुषमानिन्दितघनकाञ्चननीलपीतजलजातौ ।।१।।
खड्गतूणशरचापधारिणौ कोटिकामकमनीयौ।
सज्जनमृदुमानसविहारिणौ मुनिजनहृद्भजनीयौ।।२।।
शिरसि शिखण्डधरौ धाराधरकनकसमानशरीरौ।
तुहिनकिरणकरसुमधुरहासौ सुविलासौ रणधीरौ।।३।।
किमु राजन्यकुलाब्धिनिशेषौ किं वा मुनिवरबालौ।
कोटिकोटिपुरुहूतविक्रमौ कृपामयौ खलकालौ।।४।।
किमु हरिहरौ ब्रह्मजीवौ वा किं वा मदनवसन्तौ।
साधु विवेचय कृपया साधो गिरिधरमनसि लसन्तौ।।५।।

भौमी- और भी-हे विश्वामित्र जी! अपने शरीर की शोभा से बादल, सुवर्ण तथा नीले-पीले कमलों को भी निन्दित करने वाले ये दोनों बालक कौन हैं और कहाँ से आये हैं? खड्ग, तरकश, धनुषबाण धारण किये हुये, कोटिकाम, सुन्दर, सज्जनों के मन में विहार करने वाले, मुनिजनों के हृदय द्वारा भजनीय, ये बालक कौन हैं? शिर पर मोरपंख धारण किये हुये बादल और सुवर्ण जैसे शरीर वाले चंद्रमा की किरण के समान मुस्कान वाले, अत्यन्त सुन्दर युद्ध में कुशल ये दोनों बालक कौन हैं? करोड़ों-करोड़ों इन्द्र के समान पराक्रमी, कृपास्वरूप दुष्टों के काल, ये दोनों बालक क्या राजकुमार हैं? या कोई ऋषिकुमार? हे सन्तशिरोमणि! **गिरिधर** कवि के हृदय में विराजमान ये दोनों किशोर क्या विष्णु और **शिव** हैं? क्या ब्रह्म और जीवाचार्य हैं? क्या कामदेव और बसन्त हैं? कृपा करके विवेचन के साथ इन प्रश्नों का उत्तर समझायें।

गीत संख्या-२१

कौशिको जगौ-

इमौ द्वौ दशरथराजकुमारौ।
ब्रह्मजीवदेशिकौ नरपते क्षपितमहामहिभारौ।।१।।
मया याचितौ चक्रवर्तिनं त्रातुं यज्ञमुदारौ।
केलिचापशरधरौ प्रचलितौ शिरिषकुसुमसुकुमारौ।।२।।
एकशरेण निपात्य ताटकां मल्लब्धायुधविद्यौ।
अरक्षतां यज्ञं हतकौणपकुलौ सदा निरवद्यौ।।३।।
मार्गेऽहल्यां समुद्धृत्य सम्प्रति प्राप्तौ तव देशम्।

द्रष्टारौ सीतास्वयम्वरं कर्तारौ सोद्देशम्।।४।।
नाम रामलक्ष्मणौ रविमतीमागधीगर्भविहारौ।
विजानीहि परमेश्वररूपौ गिरिधरप्राणाधारौ।।५।।

भौमी–विश्वामित्र गाकर उत्तर देने लगे–हे महाराज जनक! पृथ्वी का बहुत बड़ा भार हरने वाले ये दोनों बालक महाराज दशरथ के राजकुमार एवं साक्षात् ब्रह्म और जीवाचार्य ही हैं। शिरीष पुष्प के समान सुकुमार, अत्यन्त उदार, ये दोनों बालक यज्ञ की रक्षा के लिये मेरे द्वारा चक्रवर्ती महाराज दशरथ से माँगे गये और तुरन्त ही खिलौने के धनुषबाण लेकर चल पड़े। निरन्तर निर्दोष स्वभाव वाले राजकुमारों ने एक ही बाण से ताड़का को मारकर, मेरे शस्त्रास्त्रों को प्राप्त करके, राक्षसकुलों का संहार करके, मेरे यज्ञ की रक्षा की। मार्ग में अहल्या का उद्धार करके इस समय ये आपके देश मिथिला में आये हैं। ये सीता स्वयंवर देखेंगे और अपने उद्देश्य की पूर्ति करेंगे। इनका नाम राम–लक्ष्मण है। ये भानुमती कौसल्या और सुमित्रा के गर्भ से प्रकट हुये हैं। ये **गिरिधर** कवि के प्राणों के आधार हैं, इन्हें परमेश्वर रूप ही जानो।

विशेष– यह गीत हवेली पद्धति में निबद्ध है।

गीत संख्या–२२

सभासदाः गायन्ति–

जयतां कोसल राजकुमारौ।
श्यामगौरतनुरामलक्ष्मणौ खलकुलकमलतुषारौ।।१।।
रविकरवसननिषङ्गकलितकटिकरतलसायकचापौ।
करिकरसमभुजदण्डविपुलवलवीर्यविहितपरितापौ।।२।।
कम्बुकण्ठचिबुकाधरसुन्दरवदनविजितविधुशोभौ।
नलिननयनसितहाससमर्पितमुनिजनमानसलोभौ।।३।।
पल्लवकुसुमशिखण्डशेखरौ निशिचरकदनकरालौ।
विप्रधेनुसुरसाधुपालकौ मञ्जुलबालमरालौ।।४।।
त्रायेतां भारतवसुन्धरां हरतां भूतलभारम्।
शरणागतगिरिधरं रक्षतां विलसितविषयविकारम्।।५।।

भौमी– अब सभासद गा रहे हैं–हे कोसलराजकुमार राम–लक्ष्मण! आपकी जय हो। हे श्यामल गौर–शरीरधारी, दुष्टों के वंशरूप कमल के लिए तुषार राम–लक्ष्मण! आपकी जय हो! सूर्य की किरणों के समान पीतवस्त्र सुन्दर कटि पर तरकश एवं करतल में धनुषबाण धारण किये हुए, हाथी के सूँड के समान भुजदण्ड वाले, अपार बलवीर्य से शत्रुओं को कष्ट देने वाले आप दोनों की जय हो। शंख के समान कंठ, ठोढ़ी एवं अधर से युक्त सुन्दर मुख से चन्द्रमा की शोभा को जीतने वाले कमलनयन, सुन्दर–हास्य से मुनिजनमानस को लुभाने वाले आपकी जय हो। पत्रपुष्प एवं मयूरपिच्छ को आभूषण बनाने वाले राक्षसों के वध हेतु भयंकर विप्र, धेनु, देवता, और सज्जनों के पालक, सुन्दर बालहंस, आप दोनों की जय हो। आप दोनों भारतभूमि की रक्षा करें और पृथ्वी के भार को दूर करें तथा शरणागत विषय–विकारग्रस्त **गिरिधर** कवि की रक्षा करें।

सन्दर्भश्लोकः

कृतभोजनविश्रमादिकं समुपासीनमतश्च कौशिकम्।
रघुनन्दनमब्दसौभगं कुतुकादेव जगाद लक्ष्मणः।।१।।

भौमी- भोजन विश्राम करने के अनन्तर विश्वामित्र जी की सेवा करते हुये नील-बादल के समान सुन्दर रघुनन्दन श्रीराम से खेल-खेल में लक्ष्मण जी ने निवेदन किया।

गीत संख्या-२३

राघव त्वदाज्ञामपेक्षे जनकपुरं नितरां दिदृक्षे।
भक्तिभगवतीजन्ममहीयं स्वकीयं सौभाग्यं समीक्षे।।१।।
सार्धं भवता संयममवता जगतीविषयमुपेक्षे।।२।।
सीताचरणसरोजचिह्नितां वन्दं वन्दमीष्टमभीक्षे।।३।।
एतन्मिषेणापि हरिनिष्ठं निजमानसं परीक्षे।।४।।
मिथिलायां गिरिधरस्वामिनीकृपाकादम्बिनीं प्रतीक्षे।।५।।

भौमी- हे राघव! मैं आपकी आज्ञा की अपेक्षा कर रहा हूँ। मुझे जनकपुर के दर्शनों की बहुत इच्छा है। क्योंकि यह भगवती-भक्ति की जन्मभूमि है। मैं अपने सौभाग्य की समीक्षा कर रहा हूँ। संयम की रक्षा करने वाले आपश्री के साथ रहकर मैं संसार के विषयों की उपेक्षा कर सकूँगा। सीता जी के चरणकमल से चिन्हित मिथिलाभूमि को प्रणाम कर-करके मैं अपने ईष्ट-श्रीराम प्रेम के दर्शन करूँगा। इसी बहाने मैं भगवन्निष्ठ अपने मन की परीक्षा करूँगा। इसी मिथिला में **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम के प्रेम की मेघमाला की प्रतीक्षा करूँगा।

सन्दर्भश्लोकौ

अनुज्ञातोऽथ रामेण मुनिना दीर्घदर्शिना।
जगाम मिथिलां रामसध्य्रङ् स्नेहेन लक्ष्मणः।।१।।
तत्र बाला समाजग्मुः मैथिला रामलक्ष्मणौ।
दृष्ट्वा प्राञ्जलयः प्राहुः प्रेमगद्गदया गिरा।।२।।

भौमी- इस प्रकार भगवान राम और विश्वामित्र की आज्ञा पाकर कुमार लक्ष्मण श्रीराम के साथ मिथिला दर्शनों के लिये चल पड़े। वहाँ पर मिथिला के बालक आ गये। वे श्रीराम-लक्ष्मण को देखकर हाथ जोड़कर प्रेम से गद्गद वाणी में बोले।

गीत संख्या-२४

मिथिलानगर्यां भवत्स्वागतं ब्रवाम एतां पुरं दर्शयाम।।
इत इतो दशरथराजकुमारौ खलकुलकञ्जसमूहतुषारौ।
भवत्पादपद्मेषु नित्यं प्रणमाम एतां पुरं दर्शयाम।।१।।

गङ्गागण्डक्योर्मध्ये पुरीयं यत्र जना ध्यायन्ति नित्यं तुरीयम्।
आदिशक्तिजन्ममही परमपावनधाम एतां पुरं दर्शयाम।।२।।
यस्यां राजते राजा योगिराजजनकः ज्ञानहुताशने परीक्षिततनूकनकः।
याज्ञवल्क्यशिष्यकथां किं नु वर्णयाम एतां पुरं दर्शयाम।।३।।
इयं दुग्धमती नदी यामुवाह धरणी सुतां पयः पाययितुं वत्सलेन जननी।
दुग्धधारां सूते सा सत्यापयन्ती नाम एतां पुरं दर्शयाम।।४।।
अट्टालिकाः प्राकारा दिव्यपुष्पवाटिका सुधापूर्णतोया सरित्सरांसि वापिका।।
सानुजो रमस्व गीतसीताभिराम एतां पुरं दर्शयाम।।५।।
यत्र शुका सारिका वेदान्तं चर्चयन्ते यत्र नार्यो नरा युगलरूपमर्चयन्ते।।
गिरिधरप्रभु भवन्तौ नयनं नयाम एतां पुरं दर्शयाम।।६।।

भौमी– मिथिलानगरी में हम आप दोनों राजकुमारों का स्वागत करते हैं और इस नगरी के दर्शन कराते हैं। राक्षसरूप कमलवन के लिए हिमपात स्वरूप हे दशरथ राजकुमारों! इधर से आइये–इधर से आइये। हम आपके चरण कमलों में नित्य प्रणाम कर रहे हैं। भगवन् जहाँ के लोग निरन्तर परब्रह्म का ही ध्यान करते रहते हैं, ऐसी यह मिथिलापुरी गंगा जी और गंडकी जी के मध्य में बसी हुई है। यह आदिशक्ति सीता जी की जन्मभूमि और परमपवित्र धाम है जिस पुरी में राजा जनक विराजमान हैं, जिन्होंने ज्ञान की अग्नि में अपने स्वर्ण शरीर को परीक्षित किया है। याज्ञवल्क्य जी के शिष्य योगिराज जी की कथा क्या कहें? यह देखिये, दूधमती नदी अपनी पुत्री सीता को दूध पिलाने के लिए जिसे पुत्रीवत्सला पृथ्वी ने स्वयं प्रकट किया। जो अपना नाम सत्य करती हुई आज भी दुग्धधारा उत्पन्न करती रहती है। इसकी अट्टालिकाएँ, परकोटि और दिव्य पुष्पवाटिकाएँ, अमृतमय जलवाली नदियाँ, तालाब, बावलियाँ, ये सब कुछ बहुत सुन्दर हैं। हे वेदों में गायी हुई सीता जी को आनन्द देने वाले प्रभु! छोटे भाई लक्ष्मण सहित आप यहीं रम जाइये। जिस मिथिला में तोता एवं मैना वेदान्त की चर्चा करते हैं, जहाँ नर–नारी आपश्री सीताराम युगलरूप की पूजा करते हैं, हे **गिरिधर** कवि के स्वामी! हम आप दोनों को अपने नेत्रों में बसायेंगे और मिथिलापुरी दिखायेंगे।

गीत संख्या–२५

रामः प्राह लक्ष्मणं प्रति–

जनकनगरीं पश्य लक्ष्मण।।
हसितसुरपतिराजधानीं कलितवैष्णवजीवधानीम्।
प्रथितमङ्गलमैथिलानीं मोहमत्र निरस्य लक्ष्मण।।१।।
ब्रह्मविद्याहतक्षोभां विचितमच्चरणाब्जलोभाम्।
विहित सीतासरसशोभां चित्तमत्र समस्य लक्ष्मण।।२।।
पश्य भो वापीतडागान् लसितमच्चरणानुरागान्।
धरणिजाश्रितभूरिभागान् भक्तिमेवाभ्यस्य लक्ष्मण।।३।।

आदिशक्तिनिवासभूमिं प्रेमभक्तिविलासभूमिम्।
गिरिधराक्षिविकासभूमिं पश्य नित्यमुपास्य लक्ष्मण।।४।।

भौमी- श्रीराम लक्ष्मण के प्रति कह रहे हैं-हे लक्ष्मण! इन्द्र की राजधानी अमरावती की भी हँसी उड़ाने वाली वैष्णवों की सुन्दर जीवनदात्री, श्रेष्ठ मंगलोंवाली मैथिलानियों से युक्त इस जनकनगरी को निहारो। यहाँ अपना मोह समाप्त करो। हे लक्ष्मण! उस मिथिलापुरी को देखो, जहाँ ब्रह्म-विद्या से संसार का क्षोभ नष्ट हो जाता है। जहाँ मेरे चरणकमलों का लोभ विस्तृत हो रहा है। जहाँ सीताजी की रसमयी शोभा की भी रचना हुई, लक्ष्मण यहाँ अपने चित्त को समेट लो। सीता जी के आश्रय से जिनका सौभाग्य बहुत बढ़ गया है, जिनमें मेरे चरणकमल का प्रेम लबालब भरा है, ऐसे यहाँ के बावलियों और तालाबों को निहारो तथा यहाँ भक्ति का ही अभ्यास करो। हे लक्ष्मण! यह आदिशक्ति की निवास स्थली है। यह प्रेमभक्ति की विलासभूमि है। यहीं पर **गिरिधर** कवि के आध्यात्मिक नेत्र का विकास हुआ, इस भूमि की उपासना करते हुए इसके निरन्तर दर्शन करो।

विशेष- यह गीत सात मात्रा रूपक ताल में निबद्ध है।

सन्दर्भश्लोकौ

मिथिलासखिभिः समीयमानेरे रघुवर्यौ नगरं निरीक्ष्यमाणौ।
नवनीरदजातरूपकान्ती ददृशाते ननु जानकीसखीभिः।।१।।
अथ ता रघुचन्द्रचन्द्रवक्त्रप्रसरत्सौभगसोममापिबन्त्यः।
जनकात्मजया समानयन्त्यो हरिमागासुरथाष्टगीतमष्टौ।।२।।

भौमी- मिथिला के बालमित्रों से मिलकर नगर को निहारते हुए नवीन मेघ और सुवर्ण के समान शोभा वाले श्रीराम-लक्ष्मण, जानकी जी की सखियों के दर्शन के विषय बन गये। इसके अनन्तर सीता जी की आठ सखियों ने श्रीरामचंद्र मुखचंद्र की शोभासुधा का पान करती हुई सीता जी से श्रीराम की तुलना करती हुई प्रभु राम को उद्देश्य करके आठ गीत गाये।

गीत संख्या-२६

प्रथमा जगौ-

जलधरकनकसमानशरीरौ। पुरतः पश्यत सख्यो रघुवीरौ।।१।।
कटितटतूणीरकरशरचापौ। कोटिकोटिरविसदृशप्रतापौ।।२।।
पार्वणहिमकरकरकरहासौ। शिवमनोमानससततनिवासौ।।३।।
धनुर्यज्ञमिह द्रष्टुमायातौ। मुनिवधूपापहरौ जनपारिजातौ।।४।।
कारुणिकौ विनयिनौ सुशीलौ। वेदपुराणविदितशुचिलीलौ।।५।।
रूपशीलसुषमासुखसिन्धू। प्रत्यगात्मपरात्मानाविव दीनबन्धू।।६।।
सख्यः सुकुमाराविमौ राजसुताभोग्यौ। गिरिधरप्रभू सीतोर्मिलयोश्च योग्यौ।।७।।

भौमी- प्रथम सखी गा उठी-हे सखियों! बादल और सुवर्ण के समान शरीर वाले रघुकुल के इन दो वीरों

को सामने देखो। ये कटितट में तरकस और हाथ में धनुष-बाण लिये हैं। इनका प्रताप करोड़ों सूर्यों के समान है। इनकी मुस्कान पूर्ण चन्द्रमा के किरण के समान है। ये शंकर जी के मनमानस सरोवर में निवास करते हैं। ये अहल्या के पाप को हरने वाले, भक्तों के कल्पवृक्षस्वरूप श्रीराम-लक्ष्मण धनुर्यज्ञ देखने के लिए यहाँ पधारे हैं। ये बड़े कारुणिक, विनम्र और सुन्दर शोभा वाले हैं। इनकी पवित्र लीला वेदों और पुराणों में विदित है। ये रूप-शील-शोभा और सुख के सागर हैं ये प्रत्यगात्मा और परमात्मा के समान दीनों के बन्धु हैं। हे सखियों! ये दोनों सुकुमार राजपुत्रियों के लिए भोग्य हैं और **गिरिधर** कवि के स्वामी राम-लक्ष्मण, श्रीसीता और उर्मिला के लिए योग्य हैं।

गीत संख्या-२७

अथ द्वितीया जगौ-

इमौ महाराजदशरथकुमारौ शुभे।
श्यामगौरौ किशोरौ उदारौ शुभे।।
काकपक्षधरौ कलिततूणवाणचापौ।
दनुजवंशपङ्कजतुषारौ शुभे।।१।।
इमौ कौसल्यासुमित्रे धृतवत्यौ गर्भे।
देहप्रभाजितकोटिमारौ शुभे।।२।।
श्यामो नाम रामोऽस्ति गौरश्चलक्ष्मणः।
उभौ दिव्यवैभवपारावारौ शुभे।।३।।
विश्वामित्रयज्ञं त्रातुं पितृभ्यां वियुक्तौ।
विहतमेदिनीमहिष्ठभारौ शुभे।।४।।
शोभाशृङ्गारौ सुकृतसुखसारौ।
विभाव्रीडिताश्विनीकुमारौ शुभे।।५।।
इमौ वरौ सीतोर्मिलयोश्चापि योग्यौ।
गिरिधरमनोविपिनविहारौ शुभे।।६।।

भौमी- द्वितीय सखी मिथिला धुन में गा उठी-हे कल्याणी! ये दोनों महाराज दशरथ के कुमार हैं। ये श्याम गौर, किशोर, एवं अत्यन्त उदार हैं। ये स्कन्ध तक लटकने वाले केश तथा तरकश और धनुष बाण धारण करने वाले हैं। ये राक्षसवंश रूप कमलकुल को नष्ट करने के लिये बर्फ के समान हैं। अपनी शरीर शोभा से काम को जीतने वाले इन दो बालकों को क्रमशः कौसल्या और सुमित्रा जी ने गर्भ में धारण किया है। श्यामल राजकुमार का नाम राम है और गौर वर्ण वाले राजकुमार का नाम लक्ष्मण है। ये दोनों अलौकिक वैभव के महासागर हैं। भूमिभार हारी दोनों बालकों को इनके माता पिता ने विश्वामित्र के यज्ञरक्षा के लिये नियुक्त किया है। ये शोभा के शृंगार पुण्यों के तत्त्वस्वरूप तथा अपनी शोभा से अश्विनी कुमारों को भी लज्जित करने वाले हैं। **गिरिधर** कवि के मनरूप वन में विहार करने वाले ये दोनों राजकुमार राम-लक्ष्मण क्रमशः सीता एवं उर्मिला के लिए योग्य हैं।

गीत संख्या-२८

तृतीया जगौ-

सर्षपसमाना सीता जनककुमारी हे।
अतसिसमानो रामो भक्तभयहारी हे।।१।।
नलिनीसमाना सीता राजकुमारी हे।
भ्रमरसमानो रामो जनसुखकारी हे।।२।।
चपलासमाना सीता धरणिकुमारी हे।
नीरदसमानो रामो वासनापहारी हे।।३।।
मिथिलासुकृतभूता सीता सुकुमारी हे।
अवधसुकृत रामः पापहारी हे।।४।।
राघवानुरूपा सीता जितकामनारी हे।
भूमिजानुरूपो रामो गिरिधरहृद्विहारी हे।।५।।

भौमी- पुनः मिथिला के आंचलिक धुन में तीसरी सखी गा पड़ी–जनककुमारी सीताजी सरसों के फूल के समान हैं और भक्तभयहारी श्रीराम तीसी के फूल के समान नीले हैं। हमारी सीताजी कमलिनी के समान हैं और इधर भक्तों को सुख देने वाले श्रीराम भौरे के समान हैं। भूमिनन्दिनी सीताजी बिजली के समान हैं और वासना को हरने वाले श्रीराम बादल के समान हैं। इसी प्रकार हमारी सुकुमारी सीताजी मिथिला की पुण्यरूपा हैं इधर श्रीराम अयोध्या के सुकृत रूप हैं। इसी प्रकार **गिरिधर** कवि के हृदय में विहार करने वाले श्रीराम सीता जी के अनुरूप हैं।

गीत संख्या-२९

चतुर्थी प्राह-

सखि हे रामो जानकीयोग्यः।
रूपशीलगुणविभवसम्पदा तस्या नूनं भोग्यः।।१।।
त्यक्त्वा यदि प्रतिज्ञां क्रूरां उभौ परिणयति भूपः।
श्रीराघवमर्हति वैदेही स च तस्या अनुरूपः।।२।।
उभौ रूपसम्पदागरिम्णा वंशेनापि समानौ।
उभौ कार्यकारणब्रह्मणी ईशौ गलदभिमानौ।।३।।
सङ्गच्छतां विद्युता जलदः स्वर्थे नापि च वाणी।
गायतु गिरिधरगीर्निरन्तरं कलिमलकलुषकृपाणी।।४।।

भौमी- चतुर्थ सखी गा रही है–हे सखी! श्रीराम जानकीजी के योग्य हैं। ये रूप, चरित्र, गुण और वैभव–सम्पत्ति से श्रीसीता जी के ही भोग्य हैं। अर्थात् इनके रूप–चरित–गुण और वैभवों का श्री सीताजी ही आनन्द

ले सकती हैं। यदि महाराज जनक अपनी कठोर प्रतिज्ञा छोड़कर श्रीसीताराम जी का विवाह कर देते तो कितना अच्छा होता क्योंकि श्रीराम सीताजी के योग्य हैं और श्रीसीता रामजी के अनुरूप हैं। दोनों ही स्वरूप सम्पत्ति, गरिमा और वंश से एक दूसरे के समान हैं। दोनों ही कार्य-कारण ब्रह्म हैं अर्थात् सीता जी कार्यब्रह्म हैं और श्रीराम कारणब्रह्म। दोनों ही अभिमानरहित ईश्वर हैं। सखी! अब तो बिजली से बादल मिल जाय और सुन्दर अर्थ से वाणी संगत हो जाय अर्थात् श्रीराम सीताजी से मिल जायँ और श्रीसीता जी रामजी से। इसी महोत्सव को कलियुग के मलों और पापों को काटने के लिए कटार बनकर **गिरिधर** कवि की वाणी भी निरन्तर गाती रहे।

विशेष- यह गीत हवेली पद्धति में ही निबद्ध है।

गीत संख्या-३०

पञ्चमी प्राह-

अस्माभिश्चिन्ता न कार्या रामः सीतापाणिं ग्रहीता।।
आयातो मिथिलां सहानुजः स्थितिः सखि चित्ते विचार्या।।१।।
भङ्क्ता शम्भुकार्मुकं कुतुकाद् बाधा समा निवार्या।।२।।
स्वयम्वरे जेता भूपालान् शङ्का किल परिहार्या।।३।।
नीराजनां विदधतां देव्यो रङ्गालिः किल धार्या।।४।।
सीतारामविवाहं गायतु गिरिधरगीरनिवार्या।।५।।

भौमी- पाँचवीं सखी गाने लगी- हे सखी! हमें चिन्ता नहीं करनी चाहिये। श्रीराम श्रीसीता का पाणिग्रहण अवश्य करेंगे। सखि! श्रीराम, छोटे भाई लक्ष्मण सहित मिथिला में पधारे हैं चित्त में इस परिस्थिति का विचार कर लेना चाहिए अर्थात् स्वयंवर में जानकी जी का जय श्रीराम की पूर्व योजना में है। श्रीराघव खेल खेल में ही शंकर भगवान का धनुष तोड़ेंगे। सभी बाधाओं का निवारण हो जायेगा। ये स्वयंवर में सभी राजाओं को जीत लेंगे। सखी शंका मत करो। देववधुएँ आरती सजाएँ और हम सब रंगोली बनायें और किसी के भी द्वारा न रुक सकने वाली **गिरिधर** कवि की वाणी भी सीताराम जी का विवाहोत्सव गाती रहे।

विशेष- यह गीत अवध प्रान्त के नचारी धुन में निबद्ध है। जिसके बोल हैं-

चिन्ता करौ जिनि मन में सिया के राम अवसै बियहिहैं।।

गीत संख्या-३१

षष्ठी जगौ-

आलि यदि भवेदयं संयोगः।
तदा भवेन्मिथिला सुखिनी चेद् दैवादेशसुयोगः।।१।।
उभौ समौ समधियौ च दशरथजनकनाम नरराजौ।
रूपशीलगुणसौम्यसम्पदा द्वावपि समौ समाजौ।।२।।
भूमिशिरोऽयोध्या किल मिथिला तस्याः तिलकस्वरूपा।

मिथिलाधारोऽयोध्या मिथिलाऽयोध्यालङ्कृतिरूपा।।३।।
परब्रह्म कोसलाकुमारो मिथिलायां च कुमारी।
सर्वेश्वरो नरोऽयोध्यायां मिथिलायां किल नारी।।४।।
तत्र रघुः किल कुलप्रवर्तको ह्यत्र निमिः कुलश्रेष्ठः।
दशरथसीरध्वजयोर्मध्ये रामप्रेमा ज्येष्ठः।।५।।
श्रीकोसला शुभा मिथिला रमणीया शुभा पुरीयम्।
तयोर्बालिकाबालकरूपं खेलति ब्रह्म तुरीयम्।।६।।
मिथिलायोध्यामहं मङ्गलं सीतारामपुनीतम्।
सानन्दं गिरिधरोऽपि गायतु मञ्जुलमङ्गलगीतम्।।७।।

भौमी– छठवीं सखी हवेली पद्धति में गा रही है–हे सखी! यदि यह संयोग बन जाय, तब तो यह मिथिला सुखमयी बन जाय। यदि ईश्वर की कृपा से यह सुयोग बन सके। वस्तुतः दोनों ही समधी दशरथ–जनक समान हैं एवं उनकी धी अर्थात् बुद्धि भी समान है। "समाधीः ययोः तौ समधियौ"। रूप, शील, गुणगणों की सौम्य–सम्पत्ति से दोनों ही अवधमिथिला समाज समान ही हैं। श्रीअयोध्या पृथ्वी का मस्तक है और श्रीमिथिला पृथ्वी का तिलक। फलतः श्रीअयोध्या श्रीमिथिला का आधार है और श्रीमिथिला श्रीअयोध्या का शृंगार है। क्योंकि तिलक मस्तक का शृंगार होता है और मस्तक तिलक का आधार होता है। एक ही परब्रह्म श्रीअवध में कुमार बनकर श्रीराम नाम से प्रकट हुआ और श्रीमिथिला में कुमारी बनकर श्रीसीता नाम से आविर्भूत हुआ। वही परमेश्वर श्रीअवध में नर और श्रीमिथिला में नारी बनकर विख्यात हुआ। अयोध्या में कुल प्रवर्तक हैं महाराज रघु और मिथिला में कुलश्रेष्ठ हैं महाराज निमि। दशरथ और जनक जी के बीच में मध्यस्थता निभा रहा है सभी साधनों का शिरोमणि श्रीराम–प्रेम। इस प्रकार श्रीअयोध्या और श्रीमिथिला ये दोनों पुरियाँ कल्याणकारिणी और रमणीय हैं क्योंकि इन दोनों में तुरीयतत्व परब्रह्म परमात्मा ही बालक और बालिका बनकर खेल रहे हैं। इस प्रकार श्रीसीताराम जी के कारण पवित्र इस मिथिला–अवध महोत्सव को मधुर मंगलमय गीतों के माध्यम से **गिरिधर** कवि भी आनन्दपूर्वक गाता रहे।

गीत संख्या–३२

सप्तमी जगौ–

सखि हे रामभद्र ऊनद्वादशवर्षः पुरारिचापं कथं त्रोटयेत्।।
आलि पश्य रामं घनश्यामं कोमलराजकिशोरम्।
क्वेदं धनुःकठिनसर्वाङ्गं शतशतकुलिशकठोरम्।।
सखि हे! नितरामसम्भवोऽनेन धनुष्कर्षः पुरारि चापं कथं त्रोटयेत्।।१।।
क्वेदं कच्छपपृष्ठनिष्ठुरं शङ्करधनुर्विशालम्।
क्वेमं पश्यसि शिरिषकोमलं दशरथबालमरालम्।।
आलि! कथं शक्यः शिवकार्मुकविकर्षः पुरारिचापं कथं त्रोटयेत्।।२।।
नाशक्नुवन् दानवा देवा तिलमपि यच्चालयितुम्।

कथमलमहो मानवो रामो जनकपणं पालयितुम्।।
दृष्ट्वा जायते प्रसन्नतापकर्षः पुरारिचापं कथं त्रोटयेत्।।३।।
प्रसीदतां पार्वतीगणपती मृडयतु मृडो गवीशः।
तृणभञ्जं विभनक्तु शिवधनुः श्रीरामो वागीशः।।
द्रष्टा गिरिधरेण निजप्रभुपराक्रमोत्कर्षः पुरारिचापं कथं त्रोटयेत्।।४।।

भौमी- सप्तम सखी गाने लगी–हे सखी! श्रीरामभद्र अभी १२ वर्ष से भी अल्प अवस्था के हैं। ये शंकर जी का धनुष कैसे तोड़ सकेंगे? हे सखी! नीले बादल के समान श्यामल, कोमल राजकिशोर श्रीराम को देखो कहाँ ये इतने कोमल और कहाँ सर्वांग कठिन करोड़ों वज्रों से भी कठोर यह पिनाक इनके द्वारा इसका चढ़ाया जाना अत्यन्त असम्भव है। सखी! देख रही हो– कहाँ कछुए की पीठ के समान कठोर, विशाल शिवधनुष और कहाँ शिरीष पुष्प के समान सुकुमार दशरथ जी के बालहंस श्रीराम को देख रही हो। इनके द्वारा इस धनुष का आरोपण कैसे सम्भव है? अरी सखी! जिस धनुष को देवता और दानव तिलभर भी नहीं खिसका सके, वही धनुष खिसकाकर मनुष्याकृति श्रीराम जनक की प्रतिज्ञा को कैसे पूर्ण कर पायेंगे? यह विसंगति देखकर मेरी प्रसन्नता समाप्त होती जा रही है। गौरी–गणपति प्रसन्न हों और नन्दी बैल पर सवारी करने वाले शिवजी और ब्रह्मा जी अनुकूल हों, जिससे श्रीराम पिनाक को तिनके के समान तोड़ दें और **गिरिधर** कवि भी अपने प्रभु श्रीराम का पराक्रम देखे।

विशेष- यह गीत अवधी के कहरवा लोकधुन में निबद्ध है जिसके बोल हैं–

'बाटै राम कइ बयसिया बारह वर्ष की धनुहियाँ नाहीं इनके बस की।'

गीत संख्या-३३

अष्टमी जगौ-

सख्यः संशयः समस्तोऽपि त्यज्यताम्।
वदनैर्वदन्तां जय श्रीराम।।
रामो लोकाभिरामो बलशाली शुभे।
स तु विप्रकञ्जवनरश्मिमाली शुभे।।
साम्प्रतं तु स्वसन्देहो विभज्यताम्।
वदनैर्वदन्तां जय श्रीराम।।१।।
एष गुरुरपि जनानां लघुर्दृश्यते।
सूर्यमण्डलमिवासौ रघुस्पृश्यते।।
सखिमोहतमः सम्प्रति विसृज्यताम्।
वदनैर्वदन्तां जय श्रीराम।।२।।
तेन नलिननालभञ्जं धनुर्भङ्क्ष्यते।
सीता परिणेष्यते सङ्कटं नङ्क्ष्यते।

गिरिधरेणापि प्रभुर्नित्यं भज्यताम्।
वदनैर्वदन्तां जय श्रीराम।।३।।

भौमी– अष्टम सखी गा रही है–हे सखी सम्पूर्ण संशय छोड़ दो और सब लोग मुखों से जय श्रीराम बोलो। हे कल्याणी! श्रीराम लोकों को आनन्द देने वाले, बलवान तथा ब्राह्मण कमलसमूह के लिए सूर्यस्वरूप हैं। इस समय अपना संदेह नष्टकर दो और जय श्रीराम बोलो। ये प्राणियों के गुरु होकर भी छोटे दिख रहे हैं। सूर्यमण्डल के समान ये बालरूप में हमारे स्पर्श का विषय बन रहे हैं। हे सखियों! इस समय मोह–अन्धकार का विसर्जन कर दो। इनके द्वारा कमलदण्ड के समान शिवधनुष तोड़ा जायेगा। सीताजी का पाणिग्रहण किया जायेगा। समस्त संकट नष्ट कर दिये जायेंगे। अतः **गिरिधर** कवि भी इन्हीं प्रभु श्रीराम का निरन्तर भजन करे।

विशेष– यह गीत गुजराती लोकधुन के बालगीत की ढाल में निबद्ध किया गया है– इसका बोल है–

'अमे चित्रकूट फरवा जाशूँ मुखेथि कहीशूं राम-राम-राम।'

सन्दर्भश्लोकः

इति ता मिथिलापुरीपुरन्ध्र्यः
पुरतः प्रेक्ष्य पुरन्दरं शिशूनाम्।
सुमनः परिवर्षणच्छलेन
तमथोचू रुचिरं रुचिब्दकल्पम्।।१।।

भौमी– इस प्रकार आठ गीत गाकर मिथिलापुर की नागरियों ने अपने समक्ष शोभा में बादल के समान सुन्दर बालश्रेष्ठ श्रीराम को निहारकर पुष्पवर्षा के बहाने उन प्रभु से कुछ गोपनीय निवेदन किया।

गीत संख्या-३४

राघव प्रातः पुष्पवाटिकामायाहि हे हरे!।।१।।
तत्र सीतया स्वपत्न्या समायाहि हे हरे।।२।।
सीतावदनसरोजमधुव्रत एकपत्नीव्रतं परिपाहि हे हरे।।३।।
नखशिखरूपमवेक्ष्य प्रियायाः लोचनतृप्तिमुपयाहि हे हरे।।४।।
युगलविभां पश्येम वयं किल रसिकेभ्य आनन्दं राहि हे हरे।।५।।
गिरिधरहृदयमनोहरकुञ्जे नित्यं सीतासहितो विभाहि हे हरे।६।।

भौमी– हे राघव! आप प्रातःकाल पुष्पवाटिका में पधारें। वहाँ अपनी नित्य पत्नी सीताजी से मिलें। हे सीता जी के मुखकमल के भ्रमर! आप अपने एक पत्नीव्रत की रक्षा करें। अपनी प्रियाजी के नख–शिख सौन्दर्य को निहारकर अपने प्यासे नेत्रों को तृप्त कर लें। उसी पुष्पवाटिका में हम लोग भी युगलरूपमाधुरी के दर्शन करें और आपश्री हम युगलोपासनारसिकों को आनन्द प्रदान करें और **गिरिधर** कवि के हृदयरूप सुन्दरकुंज में आप श्रीराघव सरकार सीताजी के सहित विराजमान होकर निरन्तर सुशोभित रहें।

सन्दर्भश्लोकौ

अथाव्रजत् कार्मुकयज्ञशालां
सदर्त्विजं वह्निविभां विशालाम्।
रामो रमालालितपादपद्मः
स लक्ष्मणो लक्ष्मणपूर्वजन्मा।।१।।
तत्रर्त्विजः साधुसभासदश्च
निरीक्ष्य दृक्स्वस्तयनं नराणाम्।
पुण्याह वाग्भिः श्रुतिसूक्तमन्त्रैः
श्रीराघवं स्वागतयाम्बभूवुः।।२।।

भौमी- इसके अनन्तर लक्ष्मण जी के बड़े भ्राता साकेतलक्ष्मी द्वारा जिनके चरणकमल लालित हैं ऐसे भगवान श्रीराम छोटे भाई लक्ष्मण के साथ सदैव ऋत्विजों से युक्त, अग्नि से सुशोभित, विशाल धनुष की यज्ञशाला में पधारे। वहाँ ऋत्विजों और सभासदों ने प्राणियों के नेत्रों के स्वास्त्यनस्वरूप श्रीराम को निहारकर पुण्याहवाचन और वेद के सिद्धमन्त्रों से स्वागत किया।

गीत संख्या-३५

स्वागतं राघव धनुर्धर स्वागतं राघव।
स्वागतं सुस्वागतं सुस्वागतं राघव।।
धन्या कृता स्वीयजनुषा मनुजनुषा वै कौसल्या।
पादपद्मरजसा रजसा तारिता सलीलमहल्या।।
त्रायतां शन्त्रायतां परित्रायतां राघव।।१।।
अद्य सनाथा जनकपुरीयं त्वत्पदाम्बुजं स्पृष्ट्वा।
परब्रह्म निर्गुणं तुरीयं सगुणं त्वामथ दृष्ट्वा।।
आस्यतामध्यास्यतां शमुपास्यतां राघव।।२।।
शत्रून् जय जानकीं च रञ्जय भञ्जय धनुः कृपालो।
शरणागतं गिरिधरं विप्रं पालय दीनदयालो।।
स्थीयतामुपस्थीयतां प्रतिष्ठीयतां राघव।।३।।

भौमी- हे धनुर्धर राघव! आपका स्वागत है, स्वागत है, सुस्वागत है। हे मनुवंश में आविर्भूत प्रभु! आपने अपने अवतार से कौसल्याजी को धन्य कर दिया और स्वयं रजोगुण से रहित होकर भी आपश्री ने खेल खेल में अपने चरणकमल की धूलि से अहल्या का उद्धार कर दिया। हे प्रभु! आप हमारे आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक कल्याण की रक्षा करें, रक्षा करें, रक्षा करें। आपका स्वागत है। आज आपके चरणकमल का स्पर्श करके तथा प्राकृतगुणों से रहित तुरीयतत्व, सगुण-साकार आपश्री परब्रह्म परमेश्वर के

दर्शन करके यह जनकपुरी सनाथ हो गई है। हे राघव! आइये, आसन पर विराजिए, भक्तों का कल्याण कीजिए। आपका स्वागत है। हे कृपालो! आप शत्रुओं को जीतें। जनकनन्दिनीजी को प्रसन्न करें। शिवधनुष तोड़ें। हे दीनों पर दया करने वाले शरणागत वत्सल! **गिरिधर** का भी पालन कीजिए। विराजिये, व्यवस्थित होइये, प्रतिष्ठा प्राप्त कीजिए।

सन्दर्भश्लोकः

दृष्ट्वा नगरमशेषं सहशेषं गन्तुकाममाचार्यम्।
रामं जलदश्यामं मिथिलाशिशवः कृपणमूचुः।।१।।

भौमी- इस प्रकार सम्पूर्ण नगर देखकर लक्ष्मण जी के साथ आचार्य चरणों में जाते हुए, मेघश्याम श्रीराम से मिथिला के बालक विनम्र भाषा में बोले-

गीत संख्या-३६

कोटिकोटियत्नकारं यं पश्यन्ति योगीजनास्तं भवन्तं कथमात्यजेम।
करगतं सुरदुर्लभं चारुचिन्तामणिं तृणस्त्रजमिव विसृजेम।।१।।
सार्धं तत्र भवद्भिश्च क्रीडितं सुखाब्धिमग्नैः कथं त्वद्वियोगं विसहेम।
तव मुखचन्द्रानालोकनजं विषादवह्निं कथं राम हृदये वहेम।।२।।
प्राणा गन्तुमिच्छन्ति वियोगे तव राघवेन्द्र तांश्च धर्तुं नैव पारयेम।
भवतो विवाहस्य दिदृक्षया जिजीविषामो यत्नादत एव धारयेम।।३।।
बालाश्च निर्दोषा वयं भवन्तं शरणं भावभक्तिस्त्रजमासृजेम।
सम्बन्धिनमावुत्तमविदित्वा मनसा वचसा भवत्पदकमलं भजेम।।४।।
क्षम्यतां च धृष्टता कनिष्ठा कृता देवदेव अश्रुमालां दृशश्चोत्सृजेम।
गिरिधरप्रभुमनुमन्यगन्तुं गुरुपार्श्वे स्मारं स्मारं विकला ब्रजेम।।५।।

भौमी- हे प्रभु! जिन आपश्री को करोड़ों-करोड़ों यत्न करके योगीजन निहारते हैं, उन्हीं आप श्रीराम को आज हम कैसे छोड़ दें? अपने हाथ में प्राप्त देवदुर्लभ चिन्तामणि को हम तृणों की माला की भांति कैसे विसर्जित कर दें। आपके साथ हम इतने देर तक खेलते रहे और सुख के सागर में मग्न होते रहे। अब आपका वियोग कैसे सहें। हे श्रीराम! आपके मुखचन्द्र के अदर्शन से उत्पन्न इस वियोगाग्नि को हम अपने हृदय में कैसे धारण करें? हे राघवेन्द्र सरकार! आपके वियोग में हमारे प्राण निकलना चाहते हैं उनको हम धारण नहीं कर पा रहे हैं। हाँ आपके विवाह के दर्शनों की इच्छा से हम जीना चाह रहे हैं। इसीलिए यत्नपूर्वक रख रहे हैं। हम निर्दोष बालक आपकी शरण में आये हैं और आपके लिए भावभक्ति की माला बनाना चाह रहे हैं। आपको अपना सम्बन्धी जीजा मानकर मन-वाणी से हम आपके श्रीचरणकमल का भजन करेंगे। हे देव-देव! हमारी धृष्टता क्षमा करें। हमने आपको बहुत छोटा समझ लिया। हम आपको अपनी आँखों की अश्रुमाला ही अर्पित कर सकते हैं। हे **गिरिधर** कवि के स्वामी आपको गुरुदेव के पास जाने की अनुमति देकर आपको स्मरण कर-करके हम भी व्याकुल मन से अपने घर लौट जायेंगे।

विशेष– यह गीत मिथिला के समदन धुन में बद्ध है। इसका बोल है–

'बड़ बड़ जतन कै कै सीया जी के पोसलौं से हों रघुवंशी ने ने जाइ।।'

सन्दर्भश्लोकः

इति बालान् निजप्रेमविह्वलान् वीक्ष्य राघवः।
गीतसीताभिरामस्तान् विसर्ज्याथ गुरुं गतः।।१।।
विश्रम्यतां निशां रामः सानुजः नित्यकृद्धरिः।
अनुज्ञातोऽथ पुष्पार्थं प्रस्थितो पुष्पवाटिकाम्।।२।।

भौमी– इस प्रकार अपने प्रेम में विह्वल बालकों को प्रेम से विदा करके गीतसीताभिराम भवगान श्रीराम गुरुदेव के पास पधार आये। उस रात में विश्राम करके गुरुदेव की आज्ञा पाकर पुष्प लेने के लिए छोटे भाई लक्ष्मण के साथ पुष्प वाटिका पधारे।

इति
श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरमहाकविजगद्गुरुरामानन्दाचार्यस्वामिरामभद्राचार्यगिरिधरकविप्रणीते
गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये बालकाण्डे
गीतसीतास्वयम्वरोपक्रमो नाम सप्तमः सर्गः।

इस प्रकार श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर महाकवि जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य गिरिधरकवि द्वारा विरचित गीतरामायण 'गीतसीताभिराम' नामक संस्कृत गीतमहाकाव्य के बालकाण्ड में गीत सीता स्वयंवरोपक्रम नामक सप्तम सर्ग सम्पन्न हुआ।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

।।श्रीः।।

।।नमो राघवाय।।

गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये

बालकाण्डे

गीतसीतानिकेतको नाम

अष्टमः सर्गः

गीत संख्या-१

कविर्गायति-

रामचन्द्रो लक्ष्मणसमेतो जनकपुरवाटिकामुपेतः।
कुसुमं चेतुं कुसुमकोमलः कुशिकसुते श्रद्धाभ्युपेतो जनकपुरवाटिकामुपेतः।।१।।
किसलय पुट विलसित करकिसलः कलितकुसलकोसलासुकेतो जनकपुरवाटिकामुपेतः।
गुरुसेवाव्रतरतो मनस्वी निरवधिकल्याणगुणोपेतो जनकपुरवाटिकामुपेतः।।२।।
शिवमानसमानसकलहंसो हंसवंशमञ्जुलकेतो जनकपुरवाटिकामुपेतः।
गिरिधरप्रभुरिह शीघ्रं भविता नित्यप्रियासीतानिकेतो जनकपुरवाटिकामुपेतः।।

भौमी- कवि स्वयं गा रहे हैं–भगवान श्रीरामचन्द्र छोटे भाई श्रीलक्ष्मण के साथ जनकपुर की वाटिका में पधार आये। स्वयं पुष्प के समान कोमल होने पर भी कुशिकपुत्र विश्वामित्र के प्रति अधिक श्रद्धावान् होने से पुष्पों का चयन करने प्रभु वाटिका में आये हैं। प्रभु के पल्लव जैसे श्रीहस्त में पल्लव निर्मित दोना विराज रहा है तथा श्रीराम श्रीअवध के प्रत्येक भवन का कुशल सम्पन्न कर चुके हैं। श्रीरघुनाथ जी सीमारहित सभी कल्याणगुणों से युक्त हैं। उनका निर्मल मन उन्हीं के वश में है। सर्वसमर्थ होकर भी प्रभु, गुरुदेव की सेवा में तत्पर हैं। उनके स्कन्ध पर पीला यज्ञोपवीत है और प्रभु सभी दोषों और दुर्गुणों से दूर हैं। श्रीराम शिवजी के मनमानस सरोवर के राजहंस हैं तथा वे सूर्यवंश के सुन्दर ध्वजस्वरूप हैं। **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराघव जी शीघ्र ही सीता निकेत होंगे अर्थात् सीता जी के हृदय में निवास करेंगे।

सन्दर्भश्लोकः

परिपृच्छ्य ततः सोमालिवर्गं प्रियवर्गाङ्घ्रिनताखिलापवर्गः।
गुरवे गुरुरप्यशेषनृणां सुमनोभिः सुमनो बभौ विचिन्वन्।।१।।

भौमी- इसके अनन्तर जिन्होंने अपने प्रियजनों के चरणों में चारों प्रकार के मोक्षों को झुका दिया है, ऐसे सम्पूर्ण प्राणियों के पिता और गुरु भगवान श्रीराम अपनी प्राणप्रिया सीता जी की सखियों से पूछकर गुरुदेव विश्वामित्र के लिए पुष्प चयन करते हुये चयनित और दोनों में रखे जा रहे पुष्पों से सुशोभित हुये।

गीत संख्या-२

वनस्पतिदेवता जगौ-

ललितलताधनतरो! कण्टकसघन स्वां कठोरतां निवारय हे।
परिमलपवन मञ्जुमङ्गलभवन घर्मघोरतां च वारय हे।।१।।
अद्य राघवः कुसुमं चिनुते करकमलाभ्यां मुदं वितनुते।
फलपुष्पघन चण्डमातपवहनमद्यपत्रैः प्रवारय हे।।२।।
कोमलकोसलराजकिशोरं श्रीमुखचन्दिरचारुचकोरम्।
मोदितसुजन सर्वदानवदमन मुग्धमाधव मा वारय हे।।३।।
दिशि दिशि पश्यन् कां प्रतीक्षते निष्प्रत्यूहं काञ्चिदीक्षते।
कोकिलकूजन मधुरमधुकरगुञ्जनमब्जनेत्रं निहारय हे।।४।।
गापय चातककोकिलभृङ्गं कुरु स्वागतं विगतविसङ्गम्।
पल्लवसघन विभाव्रीडितगगन भाववश्यं विधारय हे।।५।।
तुदतु न तत् कष्टं करकञ्जं सुरगणगीतनिखिलगुणपुञ्जम्।
गिरिधरनयनचारुचातकसुघनरामभद्रं सम्भारय हे।।६।।

भौमी- वृक्ष की देवी गाने लगी। हे सुन्दर लतारूप सम्पत्तिवाले, कांटों से भरे हुए गुलाब पुष्प के वृक्ष! अपनी कठोरता छोड़ दो कोमल मंगल के आश्रय स्वरूप! हे सुगन्धित वायु! धूप की भयंकरता समाप्त कर दो। आज श्रीराम अपने करकमलों से पुष्प चयन कर रहे हैं और प्रसन्नता का विस्तार कर रहे हैं। हे फलों और पुष्पों से धनाढ्य वृक्ष! आज तीक्ष्ण ऊष्मा को धारण करने वाले सूर्यनारायण को पत्रों से रोक लो। हे प्यारे वनस्पति! सज्जनों को आनन्द देने वाले, सभी दानवों का दमन करने वाले, साकेतविहारिणी सीता जी के मुखचन्द्र के चकोर, मधुमास में प्रकट हुये अत्यन्त कोमल कोसलराज-दशरथ के किशोर श्रीराम को आज अपनी टहनियों से लपेट लो। ये प्रत्येक दिशा में दृष्टि डालते हुए किसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। निश्चित ही निर्विघ्न-भाव से किसी प्रेयसी को देखना चाह रहे हैं। हे तरुवर! जिनके स्वागत में कोयल कूक रही है और भ्रमर गुंजार कर रहा है उन कमल नेत्र श्रीराम को निहारो तो। हे सघन पल्लवों वाले! अपनी नीली-प्रभा से आकाश को भी लज्जित करने वाले बड़े वनस्पति! तुम चातक, कोयल और भ्रमरों से गीत गवाओ और संसार की आसक्ति छोड़कर प्रभु का स्वागत करो। ये तो भाव के वश में हैं। इतना निश्चित कर लो। देखो, देवताओं के द्वारा जिनके विमलगुणों का गान किया गया है, ऐसे प्रभु श्रीराम के करकमल में कहीं गुलाब के काँटे न चुभ जायँ। हे वृक्षगण! **गिरिधर** कवि के नेत्ररूप चातक के बादल श्रीरामभद्र को सम्हाल लो।

गीत संख्या-३

सख्यः प्राहुः श्रीरामं प्रति-

मिथिलाधिराजस्य ज्येष्ठा कुमारी या दूरतोऽपि दुरितं लुनाति हे।।
राघव सैवेह सीता समायाति हे।

अष्टाभिरीड्याभिः सखीभिः परीता गौरीं पूजयितुमायाति हे।।१।।
वाहनं विनाऽपि पद्मपद्भ्यां चलन्ती गत्या गजेन्द्रसुतां हंसिनीं ललन्ती।
भूमानं भूयिष्ठं भावे वहन्ती भूमिसुता भूमिं पुनाति हे।।२।।
नखशिखसुन्दरी जनककिशोरी रामचन्द्रमुखचारुचन्दिरचकोरी।
छविमयललिततनुललना सुदेवी महाछविरिव प्रतिभाति हे।।३।।
तनुविभाविगणितकोटिमारनारी मन्दमन्दमायाति जनककुमारी।
गत्या मराल्या गिरा कलकोकिलाया गूढमहङ्कारं प्रलुनाति हे।।४।।
लज्जते चम्पकलता वीक्ष्य तनुसौभगं पाटलमवेक्ष्य तस्या मृदुतां च दुर्भगम्।
इमां दृष्ट्वा जिह्रेति ह्रदिनी कमलिनी शम्पाऽपि गर्वं विजहाति हे।।५।।
रूपदीपिकेव दीपयन्ती दिगन्तं प्रेमभक्तिरिव भावयन्ती भवन्तम्।
गिरिधरसुमञ्जुमतिकैरविणीकौमुदी कौ काप्यभिख्या प्रविभाति हे।।६।।

भौमी- सखियाँ श्रीराम को सूचना दे रही हैं-हे राघव! जो मिथिलाधिराज की ज्येष्ठ राजकुमारी हैं, वे ही दूर से ही पापों को नष्ट कर रही हैं और इस समय स्वयंवर के पूर्व प्रातःकाल गौरी-पूजन के लिए यहाँ पधार रही हैं। आठ श्रेष्ठ सखियों से घिरी हुई जनक नन्दिनी जी इसी पुष्प-वाटिका में स्थापित गिरिजा का पूजन करने उपस्थित हो रही हैं। हे राघवेन्द्र! देखिये, वाहन के बिना भी श्रीचरणकमलों से चलती हुई अपनी गति से गजेन्द्र बालिका एवं हंसिनी को सुशोभित करती हुई अपनी भावना में आपश्री परब्रह्म-भूमा को निरन्तर धारण करती हुई, भूमि-कन्या सीताजी पृथ्वी को पवित्र कर रही हैं। आप श्रीरामचन्द्र के मुखचन्द्र की चकोरी बनी हुई जनकनन्दिनी सीताजी छविरूप सुन्दर महिलाओं की भी देवी बनी हुई, इस समय महाछवि जैसी विराज रही हैं। हे राघव सरकार! देखिये! अपने शरीर की शोभा से रति को भी तिरस्कृत करती हुई जनकनन्दिनी जी धीरे-धीरे पुष्पवाटिका की ओर आ रही हैं। वे अपनी गति से हंसिनी का तथा अपनी वाणी से कोयल का भी छिपा हुआ अहंकार नष्ट कर रही हैं। शरीर की शोभा देखकर चम्पा की लता भी लज्जित हो रही है और सीता जी की कोमलता देखकर गुलाब का पुष्प भी अपने को दुर्भाग्यशाली मान रहा है। इन्हें देखकर तलैया की कमलिनी भी सकुचा रही है और बिजली भी अपना गर्व छोड़ रही है। रूप की दीपिका के समान दिग्दिगन्त को प्रकाशित करती हुई और प्रेमा-भक्ति के समान आपश्री को ही प्रसन्न करती हुई **गिरिधर** कवि की सुन्दर बुद्धिरूप कुमुदिनी को विकसित करने के लिए चंद्रिकास्वरूप सीता जी इस पृथ्वी पर एक अनिर्वचनीय शोभा-सी प्रतीत हो रही हैं।

गीत संख्या-४

कविर्गायति -

मिथिलाधिपसुता गिरिजां पुरः पूजयितुमागता।।
मङ्गलं गायद्भिर्वाद्यञ्च वादयद्भिः।
प्रीतये तुरीयायाश्तूर्यं नादयद्भिः।।
सखीवृन्दैर्वृता गिरिजां पुरः पूजयितुमागता।।१।।

पद्भ्यां चलन्तीव हंसी हसन्ती।
रूपदीपिकेव पथि परमा लसन्ती।।
भक्तिभावान्विता गिरिजां पुरः पूजयितुमागता।।२।।
प्रकृत्या विशुद्धाऽपि सरोवरे स्नाता।
पीतपटं परिदधाना नियमे निष्णाता।।
गौरीमन्दिरमिता गिरिजां पुरः पूजयितुमागता।।३।।
प्रीतिपूर्वं पूर्वेद्युः स्वयम्बरा सुस्त्रग्धरा।
अपूपुजत् प्रीत्या पार्वतीं सा पतिम्बरा।।
विश्वविश्ववन्दिता गिरिजां पुरः पूजयितुमागता।।४।।
षोडशोपचारैः पूजयित्वा भवानीम्।
वरं बव्रे रघुवरं सीता मृडानीम्।।
गिरिधराभिनन्दिता गिरिजां पुरः पूजयितुमागता।।५।।

भौमी- अब कवि स्वयं गा रहे हैं-मिथिलाधिप राजकुमारी सीताजी गिरिजा-पूजन के लिये पधार आई हैं। मंगलगान करती तथा बाजे-बजाती एवं तुरीयावस्थारूपिणी सीता जी की प्रसन्नता के लिये तूर्य अर्थात् तुरुही-वाद्य का उद्घोष करती हुई सखी-समूहों से घिरी जनकनन्दिनीजी गिरिजा-पूजन को पधार आई हैं। श्रीचरणों से चलती हुई (अर्थात् पैदल चलती हुई) हंसिनी का परिहास करती हुई-सी मार्ग में श्रेष्ठरूप दीपमालिका की भाँति भक्तिभाव से युक्त हैं। स्वभावतः पवित्र होकर भी जानकीजी ने सरोवर में स्नान किया नियम से निपुण मैथिलीजी ने पीला वस्त्र धारण किया और पार्वती जी के मन्दिर में आईं। सम्पूर्ण विश्व की वन्दनीया अगले दिन स्वयम्वर में उपस्थित होने वाली सुन्दरमालिका धारण की हुई जनकनन्दिनीजी ने अनुरूप वर के वरण की इच्छा से प्रेमपूर्वक पार्वती जी की पूजा की। **गिरिधर** कवि के द्वारा अभिनन्दित भगवती सीताजी ने षोडशोपचार से पार्वतीजी की पूजा करके उनसे रघुवर श्रीराम को ही वररूप में वरदान माँगा।

विशेष- यह गीत एक ब्रजगीत की ढाल में निबद्ध है, उसका बोल इस प्रकार है-

'बरसाने की गली कान्हा के दरसन को राधिका चली।'

गीत संख्या-५

सीता जगौ-

हे त्र्यम्बके त्र्यम्बककरं रामं वरं वै देहि मे।
हे रम्बके किसलाधरं रामं वरं वै देहि मे।।१।।
शतशतमनोजमनोहरं तूणीरबाणधनुर्धरम्।
जगदम्बिके जगदघहरं रामं वरं वै देहि मे।।२।।
अनवद्यमेकमगोचरं निजभक्तलोचनगोचरम्।

वरदेऽम्बिके ननु रघुवरं रामं वरं वै देहि मे।।३।।
नीलोत्पलाम्बुदसुन्दरं भवभीमवारिधिमन्दरम्।
हे अम्बिके गिरिधरधरं रामं वरं वै देहि मे।।४।।

भौमी- अब सीताजी गा रही हैं–हे त्र्यम्बके तीन नेत्रों वाली पार्वती जी! त्र्यम्बक शिव जी को भी आनन्द देने वाले श्रीराम को ही मुझे पति रूप में दे दीजिये। हेरम्ब! गणेश जी को आनन्द देने वाली पार्वती जी! पल्लव के समान अधर वाले श्रीराम को मुझे पतिरूप में प्राप्त करा दीजिये। हे जगदम्बिके! करोड़ों कामदेवों के समान सुन्दर तरकश धनुष–बाण धारण करने वाले, संसार का पाप हरने वाले, श्रीराम को ही मेरा वर बना दीजिए। हे वर देने वाली माँ। निन्दा– रहित अद्वितीय इन्द्रियों के विषयों से परे अपने भक्तों के नेत्रों के विषय बने हुए रघुवर श्रीराम को ही मेरा पति बना दीजिए। हे अम्बिके! नीले कमल और बादल के समान सुन्दर भयंकर संसार–सागर के मंदराचल स्वरूप **गिरिधर** कवि को धारण करने वाले श्रीराम को ही मुझे पतिरूप में उपलब्ध करा दीजिए।

सन्दर्भश्लोकः

तासामेकसखी विदेहतनयां त्यक्त्वा शिवामन्दिरे
गत्वा पुष्पफलैर्युतां नरपतेः स्फीतां गुणैर्वाटिकाम्।
तत्राप्यद्भुतरूपसौभगमयौ दृष्ट्वा किशोरावुभौ
सानन्दं पुनरेत्य गद्गद्गिरा सीतां विनीता जगौ।।१।।

भौमी- उन आठ सखियों में एक सखी अर्थात् पार्वती गिरिजा मंदिर में सीताजी को छोड़कर पुष्प–फलों से युक्त अपने श्रेष्ठगुणों से सुशोभित महाराज जनक की वाटिका में जाकर वहाँ पर अद्भुत रूप और सौन्दर्य से सम्पन्न दो राजकिशोरों को देखकर पुनः सीता जी के पास आकर गद्गद वाणी में विनम्रता पूर्वक सीताजी को संबोधित करके आनन्दपूर्वक गाने लगी।

गीत संख्या-६

आगतौ वाटिकायां सुकुमारौ।
श्यामगौरवर्णौ च वर्णिनौ दशरथराजकुमारौ।।१।।
शिरसि शिखण्डधरौ च धन्विनौ खलकुलकमलतुषारौ।
निरुपमेयलावण्यमण्डितौ क्षपितमहीतलभारौ।।२।।
श्रुतिकुण्डलचुम्बितकपोलकौ विधुमुखशोभासारौ।
निखिलशोकशोषकमृदुहासौ तरुणतुलसिकाहारौ।।३।।
पीतमखोपवीतपरिवीतौ गुणगणपारावारौ।
गिरिधरप्रभू पश्य हे मैथिलि विगलितविकृतिविकारौ।।४।।

भौमी- हे सीते! श्रेष्ठ ब्रह्मचारी श्याम और गौरवर्ण के दो दशरथ राजकुमार वाटिका में पधारे हैं जो बहुत सुकुमार हैं। उन्होंने अपने मस्तक पर मोरमुकुट धारण किया है। वे श्रेष्ठ धनुर्धर तथा राक्षससमूहरूप कमल के

लिये हिमपात स्वरूप हैं। उनमें अतुलनीय सौन्दर्य है और वे भू-भार हरने वाले हैं। उनके कानों में विराजमान कुण्डल कपोलों को चूम रहे हैं। वे चन्द्रमुख और शोभा के तत्वस्वरूप हैं। उनका कोमल-हास सम्पूर्ण प्राणियों के शोक को नष्ट कर देता है, उन्होंने नवीन तुलसी का हार धारण किया है, उन्होंने पीला यज्ञोपवीत धारण कर रखा है। वे गुणगणों के महासागर हैं। हे मिथिलाराजपुत्री! संसार के विकारों से रहित तथा **गिरिधर** कवि के दोनों स्वामी श्रीराम-लक्ष्मण को आप अवश्य देखिये।

गीत संख्या-७

दशरथकिशोरौ समायातौ हे
चल चल द्रष्टुं सीते।।१।।
जनचित्तचोराविहायातौ हे
चल चल द्रष्टुं सीते।।२।।
नीलपीतपाथोजसुन्दरौ नीरदकुन्दावदातौ हे
चल चल द्रष्टुं सीते।।३।।
अनाहूतावपि समायातौ कृपया मुनिजनध्यानेऽपि यौ न यातौ हे
चल चल द्रष्टुं सीते।।४।।
नखशिखरूपमाधुरीमधुरौ मधुमनसिजाविव भातौ हे
चल चल द्रष्टुं सीते।।५।।
गुर्वर्थे पुष्पाणि चिनुतो वितनुतो मङ्गलानि विभया विभातौ हे
चल चल द्रष्टुं सीते।।६।।
निर्दोषदर्शनौ वैदेही निहारय कविगिरिधरपारिजातौ हे
चल चल द्रष्टुं सीते।।७।।

भौमी- सखी पुनः मैथिली धुन में गाकर कहती है-महाराज दशरथ के दो राजपुत्र यहाँ आये हैं। हे सीते! उन्हें देखने के लिए चलिये-चलिये। लोगों के चित्तों के दो चोर यहाँ पधारे हैं। हे सीते! उन्हें निहारने के लिए शीघ्र चलिये। ये नीले-पीले कमल के समान सुन्दर तथा बादल और कुन्द के समान छवि वाले हैं। जो मुनियों के ध्यान में भी कभी नहीं आते, वे ही श्रीराम-लक्ष्मण बिना बुलाये ही कृपा करके मिथिला में पधारे हैं। वे नखशिखपर्यन्त रूप-माधुरी से मधुर हैं तथा बसन्त और कामदेव के समान सुशोभित हो रहे हैं। ये गुरु विश्वामित्र के लिये पुष्प चुन रहे हैं और मंगलों का विस्तार कर रहे हैं। ये अपनी ही शोभा से सुशोभित हैं। हे वैदेही! इनका दर्शन निर्दोष है। **गिरिधर** कवि के लिए कल्प-वृक्ष स्वरूप इन दोनों राजकुमारों को आप अवश्य निहारिये और दर्शनों के लिए चलिये-चलिये।

गीत संख्या-८

सीता जगौ-

सखि! किमुत्कण्ठितं विग्नं मन्मनः प्रतिभाति।
न जाने किल तन्निदानं येन धृतिं लुनाति।।

सखि किमु समुत्कण्ठितम्।।१।।
सखि विचिन्त्य सुरर्षिवचनं मनसि नैव विभेमि।
राघवो भविता वरो मम चेतसा प्रत्येमि।।
सखि किमु समुत्कण्ठितम्।।२।।
शकुनमथ गौरीगणेशं नित्यमेव तनोमि।
रामविरहदवाग्निना दवलतेवातिदुनोमि।।
सखि किमु समुत्कण्ठितम्।।३।।
अद्य सर्वं सुकृतफलमिह लब्धमवगच्छामि।
अतः सखि कौतूहलादिह त्वामहम् पृच्छामि।।
सखि किमु समुत्कण्ठितम्।।४।।
नारदीयगिरानुसारं राममाप्तमवैमि।
सुकविगिरिधरप्रभुं गृहिणीभावतः समुपैमि।।
सखि किं समुत्कण्ठितम्।।५।।

भौमी- अब सीता जी दीपचन्दी ताल चौदह मात्रा में गा रही हैं–हे सखी! यह मेरा मन क्यों इतना उत्कण्ठित और उद्विग्न प्रतीत हो रहा है। मैं इसका निदान नहीं समझ पा रही हूँ। जिससे यह मेरे धैर्य को ही काट डाल रहा है। हे सखि! देवर्षि नारद के वचन का स्मरण करके मैं मन में नहीं डर रही हूँ। राघव ही मेरे वर होंगे, इस प्रकार अपने चित्त में विश्वास कर रही हूँ। मैं निरन्तर गौरी–गणेश का शकुन मनाती हूँ और वन की लता की भाँति सदैव श्रीराम विरहाग्नि में जलती रहती हूँ। आज सम्पूर्ण सत्कर्मों का फल मुझे मिल गया है, ऐसा मैं समझ रही हूँ। इसीलिये मैं कौतूहलपूर्वक तुमसे पूछ रही हूँ। नारदजी की वाणी के अनुसार मैं यह मानती हूँ कि श्रीराम ही पुष्प–वाटिका में आज पधारे हैं, क्योंकि नारदजी ने यह कहा था कि जिस पुरुष के गुण–श्रवण से उसे देखने के लिए तुम्हारा मन उत्कण्ठित हो, उसी को तुम श्रीराम समझ लेना। संयोग से आज मेरा मन उत्कण्ठित हो रहा है। इसीलिए मैं पत्नी–भाव से ही **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम के पास चल रही हूँ।

गीत संख्या-९

सखी प्राह-

इमौ निर्दोषलावण्यौ निहारय निर्भयं सीते।
इमौ त्वद्वंशसावर्ण्यौ निहारय निर्भयं सीते।।१।।
अनाहूताविहायातौ न सद्ध्यानेऽपि यौ यातौ।
इमौ निःसीमकारुण्यौ निहारय निर्भयं सीते।।२।।
किशोरौ श्यामगौराभौ परमहंसैकदृग्लाभौ।
इमौ निष्कामतारूण्यौ निहारय निर्भयं सीते।।३।।
पुरीयं धन्यतां याता त्वमपि सम्मानिता ख्याता।

इमौ निरवद्यसौन्दर्यौ निहारय निर्भयं सीते।।४।।
अलौकिकरूपगुणशोभौ सुकविगिरिधरनयनलोभौ।
इमावनवद्यमाधुर्यौ निहारय निर्भयं सीते।।५।।

भौमी- अब सखी कह रही है-हे सीते! इन दोनों राजकुमारों का लावण्य निर्दोष है। इन्हें निर्भयता से देखिये। ये आपके वंश के अनुरूप हैं, अतः इन्हें निर्भय होकर निहारिये देखिये, जो संतों के ध्यान में भी नहीं जाते, वे ही श्रीराम-लक्ष्मण आपकी मिथिला में बिना बुलाये ही पधारे हैं। इनकी करुणा की कोई सीमा नहीं है। अतः इन्हें निर्भयता से निहारिये। श्याम-गौर शोभा वाले परमहंसों के नेत्रों के एकमात्र लाभस्वरूप ये राजकिशोर वासनारहित तरुणाई से युक्त हैं। निर्भयता से इनके दर्शन कीजिये। यह पुरी धन्य हुई और आप भी बहुत सम्मानित हुई हैं। इनका सौन्दर्य पापरहित है। अतः इन्हें निःसंकोच होकर निहारिये। सीते! इनके रूप, गुण और शोभा अलौकिक हैं और इन्हीं पर **गिरिधर** कवि के नेत्रों का लोभ है। इनका माधुर्य निन्दारहित है। अतः इनको निर्भयता से निहारिये।

गीत संख्या-१०

रामे नैव कामो भाति।
रवौ तिष्ठति कथय किमु रजनीतमः प्रतिभाति।।१।।
शरदि नभसि विधौ विराजति किमुत विषं विभाति।
किमुत गङ्गापयसि विमले पङ्कचय आभाति।।२।।
सर्वथा निरवद्यरूपो वाटिकामुपयाति।
पश्य गिरिधरप्रभुं मैथिलि! व्यर्थकालो याति।।३।।

भौमी- श्रीराम में काम स्थिर नहीं रह सकता। क्योंकि जहाँ से काम की संख्या समाप्त होती है, वहीं से राम का प्रारम्भ होता है। कहिये सीता जी! क्या सूर्य के रहते रात्रि का अन्धकार कभी टिक सकता है। प्रभु के विकाररहित शरीर में क्या संसार का विकार स्थिर रह सकता है। शरद्कालीन आकाश में चन्द्रमा के विराजमान होने पर क्या वहाँ विष आ सकता है? क्या निर्मल-गंगा के जल में कभी कीचड़ टिक सकता है। भगवान श्रीराम का स्वरूप सर्वथा निर्दोष है। वे वाटिका में उपस्थित हो रहे हैं। हे मिथिलाधिराजपुत्री सीताजी! **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम के दर्शन कीजिये। समय व्यर्थ चला जा रहा है।

गीत संख्या-११

चल चल निमिकुलचन्दिनि हे मा कुरुष्व विलम्बम्।
चल मिथिलामहिनन्दिनि हे दिश साध्ववलम्बम्।।१।।
शीलय नीलनिचोलं हे श्रुतिकुण्डललोलम्।
लीलय वदनमलोलं हे मसिलसितकपोलम्।।२।।
धारय पदयोर्मञ्जीरं हे मुखरितगम्भीरम्।
वारय कटुसंशयतो हे निजस्वान्तमधीरम्।।३।।

यावद् व्रजति न दूरं हे सानुजः कुमारः।
तावद् याम सुपूरं हे विलसितशुभसारः।।४।।
दृष्ट्वा नीरजनयनं हे सफलय निजनयने।
गिरिधरप्रभुमुपवेशय हे निजमानसशयने।।५।।

भौमी- हे निमिकुल को प्रसन्न करने वाली सीते! चलिये-चलिये, विलम्ब मत कीजिये। हे मिथिला-भूमि को आनन्द देने वाली जानकीजी! चलिये, सज्जनों को अवलम्ब दीजिये। हे सीते! अब नीला परिधान धारण कीजिये तथा कानों में कुण्डल अंगीकार कीजिये। कज्जल से सुशोभित कपोल वाले मुख को स्थिर कीजिये। जिससे नेत्र में हम ठीक-ठीक काजल लगा सकें। मधुर और गम्भीर स्वर वाले नूपुरों को चरणों में धारण कीजिये तथा धैर्यरहित अपने मन को संशय से दूर कीजिये। जब तक भाई लक्ष्मण के सहित श्रीराम वाटिका से दूर न जायँ तब तक हम उनके निकट पहुँच जायँ और कल्याण के तत्व का विलास हो। कमल नयन श्रीराम को देखकर अपने नेत्रों को सफल कीजिये और **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम को अपने मन की सेज पर विराजमान कराइये।

सन्दर्भश्लोकः

सखीवचो निशम्य सा प्रसीददुत्कमानसा।
जगाम पुष्पवाटिकां विदेहवंशवर्धिनी।।१।।

भौमी- सखी की वाणी सुनकर जनक वंश को सम्मान दिलाने वाली सीताजी प्रसन्न और उत्सुक मन से पुष्प वाटिका पधारीं।

गीत संख्या-१२

भारती गायति-

दिशि दिशि पश्यति चकिता सीता।
प्रभुविरहानलदह्यमानतनुव्रततिरतीव सभीता।।१।।
शिशुहरिणीव हरिं हृतचेता दिशि दिशि विदिशि च पश्यति।
समुच्छ्वसिति हृष्यति परिशुच्यति धैर्यं धृतं निरस्यति।।२।।
स्वेदविन्दुभरभरितललाटा कलितदृगञ्चलनीरा।
गद्गद्वचनापुलकशरीरा चिन्त्यमानरघुवीरा।।३।।
वामे वामे पुनर्दक्षिणे नयने प्रेषम् प्रेषम्।
आकाङ्क्षति कमलाकाङ्क्षितपदकञ्जं कञ्जकरेशम्।।४।।
व्याकुलयति विकलितदृगुन्मना प्रभुमुखविधुं दिदृक्षुः।
स्वातिघनं गिरिधरस्वामिनी सारङ्गीव समीक्षुः।।५।।

भौमी- सरस्वती जी हवेली पद्धति में गा रही हैं–श्रीराम के वियोग में जिनकी शरीरलता जल रही है, ऐसी अत्यन्त भयभीत सीताजी प्रत्येक दिशा में चकित होकर देख रही हैं। बालमृगी की भाँति चुराये हुये चित्तवाली सीताजी श्रीहरि को दिशा-दिशा में और दिशाओं के कोनों में देख रही हैं। ऊँची श्वास ले रही हैं, रोमांचित हो रही हैं। पसीने-पसीने हो रही हैं। धारण किये हुये धैर्य को छोड़ रहीं हैं। श्रीराम का चिन्तन करती हुई सीताजी के मस्तक पर पसीने की बूँदें भर गई हैं। नेत्रों में आँसू हैं, उनकी वाणी शिथिल हो गई है और शरीर में रोमांच हो गया है। सुन्दरी सीता जी अपने नेत्रों को कभी बायीं ओर कभी दाहिनी ओर प्रेषित कर-करके उन्हीं कमल के सुखदाता सूर्यनारायण के कुल के ईश्वर श्रीराम की इच्छा कर रही हैं। भगवती लक्ष्मी भी जिनके चरण कमल की इच्छा रखती हैं। **गिरिधर** कवि की स्वामिनी श्रीसीताजी नेत्रों की विकलता और मन की उत्सुकता के साथ प्रभु के मुखकमल को देखने की इच्छुक होती हुई उसी प्रकार व्याकुल हो रही हैं, जैसे-स्वाती के बादल को देखने के लिये चातकी विकल हो उठती है।

गीत संख्या-१३

सीता पृच्छति-

कुसमं विचिन्वानः केनचिन् मम नाथो दृष्टः।
द्रोणिकां विधुन्वानः केनचिद् रघुनाथो दृष्टः।।१।।
गुरुसेवाकारी वीरव्रतधारी क्व नु विलीनोऽस्ति मम मानसविहारी।
लीलासुखं मन्वानः केनचिन् मम नाथो दृष्टः।।२।।
मालति कृपया दर्शय रामं माधवीलते झटिति स्पर्शय श्यामम्।
विकलां विधुन्वानः केनचिन् मम नाथो दृष्टः।।३।।
हंसि सङ्केतय हंसवंशावतंसं मा परिहासय हंसकुलहंसम्।
मङ्गलं वितन्वानः केनचिन् मम नाथो दृष्टः।।४।।
कथयतु रघुचन्द्रं चतुरचकोरी वदतु नीरदनिभं मयूरकिशोरी।
गिरिधरगीतं श्रृण्वानः केनचिन् मम नाथो दृष्टः।।५।।

भौमी- सीताजी पूँछ रही हैं-फूल चुनते हुये मेरे स्वामी को किसी ने देखा है? हाथ में फूल का दोना नचाते हुये रघुनाथ जी को किसी ने देखा है? गुरुसेवापरायण, ब्रह्मचर्यव्रत सम्पन्न, मेरे मन में विहार करने वाले प्रभु कहाँ छिप गये हैं? लीला में सुख का अनुभव करने वाले मेरे स्वामी को किसी ने देखा है? हे मालतीलता! श्रीराम के दर्शन करा दो। हे माधवी! श्यामसुन्दर प्रभु का शीघ्र स्पर्श करा दो। मुझे व्याकुल करते हुये मेरे स्वामी को किसी ने देखा है? हे हंसिनी! हंस अर्थात सूर्यकुल के आभूषण श्रीराम का संकेत कर दो। सूर्यकुल के सूर्य श्रीराम से मेरी हंसी मत उड़वाओ। सारे संसार का मंगल करने वाले मेरे स्वामी को किसी ने देखा है? हे चतुर चकोरी! रघुकुल के चंद्रमा श्रीराम के सम्बन्ध में कुछ तो कहो। हे मयूर कन्ये! बादल के समान श्रीराम का पता बताओ। **गिरिधर** कवि के गीत को सुनते हुये मेरे स्वामी को किसी ने देखा है?

गीत संख्या-१४

किञ्चित् करुणां रुदत्यां मयि यातु तुलसी।
कुत्र गतो रघुनाथः सङ्गृणातु तुलसी।।
विष्णुपदकञ्जमधुव्रता मञ्जुमञ्जरी।
सुसुरभिसरिता पवित्रप्रेमनिर्झरी।।
सखी! मां सखीं विरहवह्नेः पातु तुलसी।।१।।
दृष्टे प्रभावालवालं रत्ने धारयिष्ये।
गण्डकीजतुलसीविवाहं कारयिष्ये।।
मम व्यथावनीं झटिति लुनातु तुलसी।।२।।
गोमयेन लिप्त्वा त्वां सुस्थले रोपयिष्ये।
असतीति हासेऽप्युक्त्वा नैव कोपयिष्ये।।
मम दौर्मनस्यपाकं सुश्रृणातु तुलसी।।३।।
दर्शयतु राघवेन्द्रं तनुतां न विलम्बम्।
हरिप्रिया हरतु विषादनिकुरम्बम्।।
गीतेनैतेनाशु गिरिधरं पुनातु तुलसी।।४।।

भौमी- भगवती सीता सुगम संगीत के ही स्वर में तुलसी माँ से प्रार्थना करती हुई कह रही हैं–हे तुलसी! रोती हुई मुझ सीता पर कुछ तो करुणा कीजिए। मेरे रघुनाथजी कहाँ चले गये? मुझे स्पष्ट बताइये। हे तुलसी सखी! आप महाविष्णु श्रीराम के चरणकमल की भ्रमरी हैं। आपकी मंजरी बहुत कोमल है। आप सुगन्धि की नदी तथा पवित्रप्रेम की झील हैं। हे सखी तुलसी! मुझको विरह अग्नि से बचा लीजिए। यदि मैं प्रभु के दर्शन कर लूँगी तो रत्नों से आपका थाला बनवाऊँगी और शालग्राम के साथ आपका विवाहोत्सव कराऊँगी। हे तुलसी! मेरी व्यथा रूप वन की झाड़ी को शीघ्र काट डालिये। हे तुलसी सखी! गोबर से लीपकर आपको सुन्दर स्थल में लगाऊँगी। इतिहास के असंगत होने पर भी अर्थात् सौतन के रूप में आपका पता लग जाने पर भी मैं आपको कुपित नहीं करूँगी। मेरे मन की विकलता के परिणाम को पका डालिये। हे तुलसी! मुझे राघव के दर्शन करा दीजिए। हे हरिप्रिया! मेरे कष्टसमूह को नष्ट कर दीजिए और इस गीत से **गिरिधर** कवि को पवित्र कर दीजिए।

सन्दर्भश्लोकः

कं मां पृच्छसि नैव कन्दमिति भो स व्योम्नि तत् पृच्छ्यतां
नो व्योमाकृतिमेव शून्यमिति वै तत् सौगतं प्रक्ष्यसि।
तन्निर्वाणदृशं प्रभञ्जनमथो नो तत्सुतस्वामिनं
रामं भो स पुरोदृशीति तुलसी सीतास्मितं वोऽवतु।।१।।

भौमी- यहां कवि सीता जी की एवं तुलसी जी की विनोद झाँकी प्रस्तुत कर रहे हैं। तुलसी जी कहती हैं

मुझसे आप 'कम्' अर्थात् सुखस्वरूप परमात्मा को पूछ रही हैं या किसी अन्य को। सीता जी ने कहा–नहीं। मैं 'कन्द' अर्थात् सुख देने वाले परमात्मा श्रीराम को पूछ रही हूँ। तुलसी ने कहा–कन्द का अर्थ तो बादल होता है। 'कम् जलं ददाति इति कन्दः' जो 'क' अर्थात् जल देता है उस बादल को कन्द कहते हैं। वह आकाश में है, उसी से पूछ लीजिये। सीता जी ने कहा–नहीं; मैं उसे पूछ रही हूँ जिसकी आकृति आकाश के समान (नीली) है। तुलसी ने कहा– आकाश के समान आकृति शून्य की भी होती है। वह बौद्धों के पास है। आप उन्हीं से पूछ लीजियेगा। सीता जी ने कहा–नहीं; बौद्धों द्वारा प्रतिपादित निर्वाण पर जिनकी दृष्टि है, उनके सम्बन्ध में पूछ रही हूँ। तुलसी ने कहा–वे तो वायु देवता हैं। सीता जी ने कहा–नहीं, वायुपुत्र के स्वामी के सम्बन्ध में पूछ रही हूँ। तुलसी ने कहा– श्रीराम को? सीता जी ने कहा–हाँ! तुलसी ने कहा– वे तो आपके नेत्र में भी हैं और सामने भी। इस प्रकार तुलसी और सीता जी का विनोद आप सबकी रक्षा करे।

गीत संख्या-१५

तुलसी गायति-

नैव चिन्ता त्वया कार्या विदेहनन्दिनि।
नैवशङ्का हृदि धार्या जनकनन्दिनि।।१।।
अधुनैव मृगीदृशा रामचन्द्रो द्रक्ष्यते।
परमानन्दस्वरूपो हृदाऽधुनाऽऽश्लिक्ष्यते।।
त्वया प्रीतिः परिचार्या विदेहनन्दिनि।।२।।
दर्शं दर्शं दयितं श्रीजनककिशोरिका।
रामचन्द्रमुखचन्द्रे भविष्यति चकोरिका।।
त्वया भीतिः परिहार्या हे विदेहनन्दिनि।।३।।
लताकुञ्जे पश्यतु साम्प्रतं प्रमुदा मैथिली।
सोऽपि त्वां प्रतीक्षते सलक्ष्मणो महाबली।।
त्वया संसृतिर्निवार्या हे विदेहनन्दिनि।।४।।
भङ्क्त्वा शम्भोः धनुः क्षिप्रं तेन परिणेष्यसे।
गिरिधरप्रभुणाप्ययोध्यां शीघ्रं समानेष्यसे।।
त्वया धृतिर्हृदि धार्या हे विदेहनन्दिनि।।५।।

भौमी- तुलसी जी कह रही हैं–हे जनकराजपुत्री सीता जी! आप चिन्ता न करें। आप शंका छोड़ दें। मृगलोचनि! इसी समय आप श्रीराम के दर्शन करेंगी और परमानन्दस्वरूप परमात्मा श्रीराम का आप आलिंगन प्राप्त करेंगी। हे जानकीजी! आप प्रीति का परिचरण कीजिए। अपने प्रियतम को बार-बार देखकर, आपश्री किशोरी जी श्रीरामचंद्र के मुखचन्द्र की चकोरी बनेंगी। हे जनकनंदिनी! आप भय छोड़ दें। इसी समय आप श्रीराम को लताकुंज में निहारें और महाबली श्रीराम जी भी भाई लक्ष्मण के साथ आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। हे जानकी जी! आप संशय छोड़ दें। शिवजी का धनुष तोड़कर श्रीराम आपका शीघ्र पाणिग्रहण करेंगे, और **गिरिधर** कवि के स्वामी आपको शीघ्र ही अयोध्या ले जायेंगे। हे जनकनन्दिनी जी! आप हृदय में धैर्य धारण करें।

सन्दर्भश्लोकः

कङ्कणकिङ्किणिनूपुररवमथ कृत्वा समाहुतो रामः।
किमपि विमृश्य प्रजगौ सानन्दं लक्ष्मणं बन्धुम्।।१।।

भौमी- इसके अनन्तर सीता जी ने कंकण-किंकिणी और नुपूर की ध्वनि से श्रीराम का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। श्रीराम ने भी कुछ विचारकर आनंदपूर्वक भ्राता लक्ष्मण को सम्बोधित करते हुये एक गीत गाया।

गीत संख्या-१६

वाटिकामायाता सीता।।
कङ्कणकिङ्किणीनूपुरकलरव।
झङ्कृतजगदगमहितमनोभव।।
भवभयहृदुपात्ता सीता।।१।।
दीपशिखेव दीपयन्तीयम्।
मामपि स्वं समीपयन्तीयम्।।
विषमशरशरं मोघीकर्तुं परितः परियाता सीता ।।२।।
नीलनिचोलं वपुषि दधाना।
चपले वाब्जलसितपरिधाना।।
निखिललोकलावण्यमहाश्रीः लोचनजलजाता सीता।।३।।
पश्येमां विग्रहिणीं भक्तिम्।
आदिशक्तिमथविगताशक्तिम्।।
गिरिधरेशदयितामविभक्तिं सम्मुखमायाता सीता।।४।।

भौमी- सीताजी बाटिका में पधार आयी हैं। कंकण-किंकिणी और नूपुर के सुन्दर स्वरों से जड़चेतन के कामभाव को भी महित अर्थात् ईश्वर मनोरथमय करके सम्मानित करती हुई भवभय को हरने वाली सीता जी समीप आ गईं। दीपक की शिखा की भाँति सबको प्रकाश देती हुई, मुझको भी अपने समीप लाती हुई, चारों ओर से काम के बाणों को व्यर्थ करने के लिये ही सीताजी उपस्थित हुई हैं। सीताजी नीली साड़ी धारण की हुई हैं। मानों बिजली ने ही बादल की साड़ी पहन ली है। कमलनयनी सीता जी सम्पूर्ण लोकों की सुन्दरता की भी लक्ष्मी हैं। देखो लक्ष्मण! शरीरधारिणी-भक्ति को आसक्तिरहित आदिशक्ति को एवं **गिरिधर** कवि के ईश्वर मुझ राम की अनन्य सहचारिणी आज सीता जी मेरे सामने उपस्थित हैं।

गीत संख्या-१७

गायति कविः-

राघवो मुदा मैथिलीं पश्यति।
निर्निमेषनयनो मृगनयनीं पश्यन् निजनिमिषाणि निरस्यति।।१।।

निखिललोकलावण्यललितलक्ष्मीललाम निजमनसि समस्यति।
कठिनमेकपत्नीव्रतमपि सीतादर्शनमिषतोऽप्यभ्यस्यति।।२।।
योगिवर्य इव भावसमाधौ मग्नो नेत्रतपांसि तपस्यति।
परकलत्रदर्शनासक्तिमपि सावधानमनसापि व्यपास्यति।।३।।
मनोमन्दिरेऽभीष्टदेवतां सम्प्रधार्य विनतोऽविमनस्यति।
गिरिधरप्रभुः स्वामिनीशोभां वरं वरं वाचं वरिवस्यति।।४।।

भौमी- कवि स्वयं हवेली पद्धति में गा रहे हैं–श्रीराघव प्रसन्नता से मिथिलाधिराजकन्या श्रीसीताजी को निहार रहे हैं, एकटक नेत्र से मृगनयनी सीता जी को देखते हुये प्रभु पलकों का गिराना भी बन्द कर रहे हैं। अपने मन में सम्पूर्ण लोकों की सुन्दरता की शोभारत्न सीताजी को समेट रहे हैं। सीता जी के दर्शनों के बहाने अत्यन्त कठिन एक पत्नीव्रत का भगवान श्रीराम अभ्यास कर रहे हैं। प्रभु श्रेष्ठयोगी की भाँति भाव की समाधि में मग्न होकर नेत्र का तप कर रहे हैं। अर्थात् उनके नेत्र अब सीता जी के अतिरिक्त किसी भी नारी को कभी भी नहीं निहारेंगे। भगवान श्रीराम, सावधान मन से परनारी दर्शन की आसक्ति को भी अपने भक्तों के भावों से दूर हटा रहे हैं। अर्थात् सीता दर्शन प्रसंग का चिन्तन करके श्रीराम भक्त भी परनारी दर्शन से बचेगा। अपने मन मन्दिर में सीता जी को ईष्टदेवी की भाँति पधराकर प्रभु बहुत प्रसन्न हो रहे हैं। **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम स्वामिनी जी की शोभा को (वरं-वरं) बहुत सुन्दर-बहुत सुन्दर कहकर पूज रहे हैं।

गीत संख्या-१८

पिबति श्रीमुखकञ्जसीधुं श्रीमान् मनोमयभ्रमरो भवन् भगवान्।।
विनिमेषितनीरजनयनः सौन्दर्यसुधारसचयनः।
स समाधिमन्वानो मतिमान् मनोमयभ्रमरो भवन् भगवान्।।१।।
वीक्ष्यावनिजामुखकान्तिं स्वञ्चापि हरिर्हृतशान्तिम्।
अनुमातुमुपक्रमते धृतिमान् मनोमयभ्रमरो भवन् भगवान्।।२।।
विधुविम्बं नहि सकलङ्कं सीतामुखमनघमनङ्कम्।
कमलं न करीतद्रिपुर्महान् मनोमयभ्रमरो भवन् भगवान्।।३।।
श्रीवदनमिव श्रीवदनं निरुपमगुणशोभासदपम्।
विभुरूपमामनाप्नुवन् ह्रीमान् मनोमयभ्रमरो भवन् भगवान्।।४।।
गिरिधरस्वामिनीरूपं रामोऽभिभग्नभवकूपम्।
मुदितो ध्यायं ध्यायं धीमान् मनोमयभ्रमरो भवन् भगवान्।।५।।

भौमी- अब कवि स्वयं यमन राग में गा रहे हैं–भगवान श्रीराम, मनोमय भ्रमर बनकर सीताजी के मुखकमल का मकरन्द पान कर रहे हैं। सुन्दर बुद्धिवाले प्रभु अपने कमलनेत्र को निर्निमेष करके सीताजी के सौन्दर्यामृत का चयन करते हुये प्रेम समाधि का अनुभव कर रहे हैं। सीताजी की मुख-शोभा को और भूमितनया के रूप-दर्शन से प्रेम उन्मत्त स्वयं को भी देखकर धैर्यवान श्रीहरि अनुमान का उपक्रम कर रहे हैं। अरे! क्या यह चन्द्रबिम्ब है? नहीं, चन्द्रबिम्ब सकलंक होता है जबकि सीताजी का मुख तो निष्पाप और

अकलंक है। तो क्या यह कमल है? नहीं, कमल का महान शत्रु हाथी है जबकि सीताजी के मुख का कोई शत्रु नहीं है। अनुपम गुण और शोभा का भाण्डागार सीताजी का मुख सीताजी के मुख के समान ही है। सर्वव्यापी होकर भी प्रभु श्रीराम सीताजी के मुख की उपमा न प्राप्त करके लज्जित हो रहे हैं। संसार के कूप को नष्ट करने वाले, **गिरिधर** कवि की स्वामिनी सीताजी के रूप को बार-बार ध्यान का विषय बनाकर प्राशस्त बुद्धिमान श्रीराम अत्यन्त मुदित हैं।

विशेष- यह गीत ब्रजगीत परम्परा में यमन राग का है। इसका बोल है-

'प्रिया जी की मधुर-मधुर मुस्कान कन्हैया जी की मुरली मनोहर तान।।'

गीत संख्या-१९

अपि च- (स्वगतम्) -

अहो श्रीसीतासौन्दर्यं तदीयं न किमपि सोदर्यम्।।
नोपमातुमथशक्या सीता बुधैर्विद्युता क्वापि।
सा क्षणमपि न स्थिरा मैथिली नो चञ्चला कदापि।।१।।
चम्पकलतया चोपमीयतां कविभिस्तदिदमवद्यम्।
मधुपविरहिता शुष्यति सा मदलियुतमिदं निरवद्यम्।।२।।
नेयं तुलयितुमथ शक्या सीतया कदापि कमलिनी।
सीता नक्तं दिवा प्रसन्ना निशि च विषीदति नलिनी।।३।।
नेयं लक्ष्मीसदृशी वक्तुं शक्या भूमिकुमारी।
मथितेयं सा परमयोनिजा विजितमनोभवनारी।।४।।
मन्ये मत्सौभाग्यमहालक्ष्मीश्चकास्ति दृक्पुरतः।
दीपशिखेव गिरिधरस्वामिनी विभा विभाति च परितः।।५।।

भौमी- और भी प्रभु अपने मन में गा रहे हैं-अहो! सीताजी का सौन्दर्य क्या दिव्य है, उसका कोई उपमेय ही नहीं है और नहीं कोई समानान्तर। विद्वानों द्वारा सीताजी की उपमा बिजली से कभी नहीं दी जा सकती, क्योंकि बिजली कभी स्थिर नहीं रहती जबकि सीताजी निरन्तर मेरे मन में स्थिर ही रहती हैं। यदि कदाचित् सीताजी की उपमा चम्पा लता से दी जाय तो ये कवियों के लिये बहुत अनुचित होगा, क्योंकि चम्पा के पास कभी भ्रमर नहीं जाता और वह सूख जाती है, परन्तु सीता जी का स्वरूप सदैव प्रफुल्ल रहता है और वह मुझ रामभ्रमर से कभी बिछुड़ता नहीं। यह कमलिनी भी सीता की समानता नहीं प्राप्त कर सकती, क्योंकि सीताजी दिन-रात प्रसन्न रहती हैं और कमलिनी रात में दुःखी हो जाती है और सीता जी को लक्ष्मी जी के समान भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि लक्ष्मीजी नारायण के द्वारा समुद्र को मथकर प्रकट की गईं, जबकि रति को जीतने वाली हमारी सीताजी अयोनिजा हैं, अर्थात् किसी महिला के शरीर से नहीं उत्पन्न हुईं और नहीं, किसी के गर्भ मे आईं। लगता है मेरी सौभाग्यलक्ष्मी ही मेरे नेत्रों के सामने विराज रही हैं। **गिरिधर** कवि की स्वामिनी सीता जी की शोभा दीपक की शिखा के समान चारों ओर जाज्वल्यमान हो रही है।

गीत संख्या-२०

किञ्चिद् विचार्य-

सीतावपुषि सकलमविरूद्धम्।
धातुः सृष्टेर्बहिर्भूतमिदमत्यद्भुतं विशुद्धम्।।१।।
कमलद्वयं कदलियुगमपि गजवरो न क्वापि विरुन्द्धे।
गजमपि हृतनिसर्गवैरः केशरी सततमनुरुन्द्धे।।२।।
तदभितडागमहो रमणीयं गाधितुमिभो न चेष्टे।
अभ्यर्णं हाटककलशावपि तदुपरि मधुपः स्वीष्टे।।३।।
तदनुमृणालौ द्वौ दृष्ट्वापि कथं न हि करी जिघत्सति।
तदनुकपोतस्तदुपरि दाडिमबीजं नैवादित्स्यति।।४।।
अभ्यर्णं बिम्बं पश्यन्नपि शुको न खादति चित्रम्।
शशिनं विधुन्तुदोऽपि समीपे तुदति न वीक्ष्य विचित्रम्।।५।।
कमलकोकिलावपि कृतमैत्रावहिभिः शशिनः सख्यम्।
मधुपखञ्जरीटकयोरपि सर्वदा लसति सखि सौख्यम्।।६।।
रूपमयी वाटिका वर्धतां जगति जानकी नित्यम्।
गिरिधरप्रभोर्विश्रमं लभतां सुमनोलिः कृतकृत्यम्।।७।।

भौमी- श्रीराम मन में कुछ विचार करके फिर कह रहे हैं–वस्तुतः सीताजी के शरीर में सब कुछ अविरुद्ध है क्योंकि जनकनन्दिनीजी का स्वरूप ब्रह्मा की सृष्टि से सर्वथा बाहर का है। यह अत्यन्त अद्भुत और पवित्र है। अहो! दो कमल और दो केले के खम्भों का हाथी विरोध नहीं कर रहा है। इसी प्रकार अपना स्वाभाविक वैर–भाव छोड़कर सिंह हाथी को मारने के बदले उससे प्रेम कर रहा है। उसके निकट सुन्दर तालाब है, जिसमें हाथी प्रवेश करने की चेष्टा नहीं कर रहा है। उस तालाब के निकट दो सुवर्ण कलश हैं। उन पर भ्रमर प्रसन्नता से रह रहा है जबकि उसको कमल पर रहना चाहिए। अरे! उसके समीप दो कमलदण्डों को देखकर भी हाथी उन्हें क्यों नहीं खाना चाह रहा है। उसी के निकट है एक कबूतर, वह अपने समीप अनार के दाने को देखकर भी उसे लेने के लिए इच्छुक नहीं हो रहा है। यह आश्चर्य है कि निकट बिम्बाफल को देखकर भी उसे तोता नहीं खा रहा है और इससे भी बड़ा आश्चर्य ये है कि चन्द्रमा को निकट देखकर भी राहु उसे ग्रसना नहीं चाहता। कमल और कोकिल ने मित्रता कर ली है। इधर चन्द्रमा की सर्पों से मित्रता हो गई है। इसी प्रकार भ्रमर और खञ्जरीट पक्षी की भी सुखपूर्वक मित्रता निभ रही है। इस प्रकार विरोधरहित रूपमयी सीता स्वरूपिणी वाटिका निरन्तर उन्नति को प्राप्त करती रहे और इसी वाटिका में कृतकृत्यता को प्राप्त करके **गिरिधर** कवि के स्वामी मुझ राम का मनमधुप विश्राम प्राप्त कर ले।

विशेष- यह चित्र काव्य है और उदात्त अलंकार। यहाँ जो सीताजी के अंगों के उपमान कहे गये हैं वे जगत में एक दूसरे के विरोधी होकर भी सीता जी के अंगों की उपमा पाकर विरोधरहित हो गये हैं। जैसे– कमल और केले से हाथी का विरोध है, परन्तु वही हाथी सीता जी की चाल का उपमान बनकर चरणरूप

कमल और जंघेरूप केले का विरोध नहीं कर रहा है। इसी प्रकार सिंह का हाथी से विरोध है परन्तु यहाँ सीताजी की कटि का उपमान सिंह है और चाल का हाथी। इनका कोई विरोध नहीं। सीताजी की नाभि का उपमान तालाब है उसे हाथी क्षति नहीं पहुँचा रहा है। सीताजी के दो वक्षोंरुहों के उपमान है, स्वर्णकलश और उनके ऊपरी भाग का उपमान है—भौंरा। यहाँ दोनों की कालिमा ही साधारण धर्म है। सीताजी की भुजाएँ ही कमलदण्ड हैं, उन्हें हाथी नहीं खा रहा है, उनका कण्ठ ही कबूतर है और दाँत हैं अनार के दाने। सीता जी की होंठ बिम्बाफल के समान है और नासिका तोते की। यहाँ तोता बिम्बा को नहीं खा रहा है। सीता जी का मुख चन्द्रमा और घुँघराली लटों की कालिमा राहु के समान है, अर्थात् राहु चंद्र के पास जाकर भी उसे नहीं ग्रस रहा है और वाणी कोकिला की मित्रता है। इसी प्रकार काजल हैं—भ्रमर और नेत्र हैं खञ्जरीट पक्षी।

गीत संख्या-२०

लक्ष्मणं प्रति-

विलोकय वत्स लक्ष्मण हे पुरो मिथिलेशपुत्रीयम्।
सकलगुणगणविचक्षण हे पुरो जनकेशपुत्रीयम्।।१।।
यदर्थं धनुर्मखमूलं स्वयम्बरमाह्वयद् राजा।
समाहूता महाराजाः सकलशोभासवित्रीयम्।।२।।
कमलपदमञ्जुमञ्जीरा महामायेव गम्भीरा।
विजितसौदामिनीधीरा दुरितकाननलवित्रीयम्।।३।।
नवलघननीलपरिधाना सखीसङ्गीतगुणगाना।
समर्पितभक्तिवरदाना निखिलगुणगणधरित्रीयम्।।४।।
भवानीमर्चितुं सीता सखीभिरिह समानीता।
प्रकाशितलोकगुणगीता विबुधकुलशोकहर्त्रीयम्।।५।।
सदापरदारविमुखं यन्मनो मेऽस्यां समासक्तम्।
अतो गिरिधरप्रभोर्नूनं शुभा भार्या भवित्रीयम्।।६।।

भौमी- लक्ष्मण जी को सम्बोधित करके श्रीराम सुगम संगीत के स्वर में कहते हैं–हे सम्पूर्ण गुणों से युक्त वत्स लक्ष्मण! सामने देखो। यही मिथिलाधिराज जनकजी की पुत्री सीताजी हैं। जिनके लिये धनुर्यज्ञ को कारण मानकर राजा जनक ने स्वयंवर बुलाया और बड़े-बड़े राजे-महाराजे बुलाये गये। वही सम्पूर्ण शोभा की जननी सीता जी यही हैं। अपने चरणकमल में नूपुर धारण की हुई महामाया के समान गम्भीर और धीर तथा अपनी शोभा से बिजली को जीतने वाली एवं पापवन को काट डालने वाली जनकनंदिनी सीताजी यही हैं। नवीन नीलवस्त्र धारण की हुई सखियों द्वारा गाये हुये दिव्य गुणों से युक्त भक्ति का वरदान देने वाली, सभी श्रेष्ठ गुणों की जन्मदायिनी सीताजी यही हैं। गौरी-पूजन के लिए सखियों द्वारा यहाँ लाई हुई दिव्य गुणों को प्रकाशित करने वाली देवताओं की शोकहारिणी सीताजी यही हैं। चूँकि सदैव परनारी से विमुख मेरा मन इनमें आसक्त हो चुका है, अतः यह तथ्य निश्चित है कि यही जनकनंदिनी सीता जी **गिरिधर** कवि के प्रभु मुझ राम की धर्मपत्नी होने वाली हैं।

गीत संख्या-२१

सीताननासवं मे मनोभृङ्गः पीयते।
जाने न किं भवं मे मनोभृङ्गो नीयते।।१।।
पुरो नीरदस्य यद्वत् सौदामिनी लसेत्।
तद्वत् दृशः पुरो मे सीता नु नीयते।।२।।
आजन्मतः पवित्रं चेतो ममेदृशम्।
अस्यां कथं नु रक्तं प्रेम्णा विनीयते।।३।।
क्लीबं मनो विदित्वा प्रहितं प्रियाकृते।
नायाति तत् ततो वै रममाणमीयते।।४।।
सुमतिः समानलिङ्गाद् विहिता सखी तया।
सा नाभ्युपैति हा मां तस्यां विलीयते।।५।।
गिरिधरप्रभोर्विवशतां को वेत्ति भूतले।
वर्तेऽवशो विधात्रा यद्वद् विधीयते।।६।।

भौमी- अहो! मेरा मनमधुप सीताजी के मुख आसव का पान कर रहा है। मैं नहीं समझ पा रहा हूँ कि मेरा मनोभ्रमर कौन कल्याण प्राप्त कर रहा है? जिस प्रकार मेघ के समीप बिजली सुशोभित होती है, उसी प्रकार मेरे समीप सीताजी विराजमान हैं, जो मेरा मन जन्म से ही इस प्रकार पवित्र है, वही इनमें इतना अनुरक्त क्यों हो रहा है और न जाने क्यों इन्हीं में लीन हुआ जा रहा है? लक्ष्मण क्या करूँ? मन को नपुंसक जानकर मैंने उसे प्रियाजी के पास भेजा कि लौट आयेगा, पर यह तो वहीं रम गया, लौट ही नहीं रहा है। मुझे तो मन को नपुंसक कहकर वैयाकरणों ने मार डाला। समलिंगक जानकर मैंने अपनी बुद्धि को सीता जी की सखी बनायी पर वह भी वहीं लीन हो गई। मुझ विषमलिंगी के पास नहीं आ रही है। **गिरिधर** कवि के स्वामी मुझ राम की विवशता को इस संसार में कौन जान रहा है? ब्रह्मा जैसा विधान कर रहे हैं, मैं विवश होकर उसी का अनुवर्तन कर रहा हूँ।

विशेष- यह गीत सुगम-संगीत के आजकल गाये जाने वाले गजल के ढाल पर निबद्ध है इसका बोल है- 'राघव तुम्हारे प्रेम ने पागल बना दिया।'

गीत संख्या-२२

केयं विभाति चाक्ष्णोः सुरसायनी क्रिया।
किमु भाति भक्तिरेषा अनपायनी श्रिया।।१।।
लावण्यदीपिकेयं भान्ती पुरःस्थिता।
सौन्दर्यदेवतेयं धत्ते पदं ह्रिया।।२।।
माधुर्यधूर्यरूपा किमु भाति भामिनी।
भास्वद्भविष्णुता वा दूषणतिरस्क्रिया।।३।।

विधिसृष्टितो विदूरं या सौभगेन्दिरा।
सा नेत्रगोचरा किं सद्गुणपरिस्क्रिया।।४।।
अतिनिर्मलं मनो मे ब्रूते पुनः पुनः।
सीतेयमागता भोः गिरिधरप्रभोः प्रिया।।५।।

भौमी- श्रीराम फिर सुगम-संगीत की गजल धुन में गा रहे हैं—अहो! मेरे नेत्रों की रसायनी-क्रिया जैसी यह कौन सुशोभित हो रही है? क्या यह शोभा से युक्त साक्षात् भक्ति ही है। यह लावण्य की दीपिका के समान समक्ष सुशोभित होती हुई सौन्दर्य की देवी जैसी सकुचाती हुई अपने चरण रख रही है। क्या यह मधुरता की धुरी को धारण करने वाली एक अपूर्व महिला है? अथवा दोषों को तिरस्कृत करने वाली मेरी देदीप्यमान सर्व-सामर्थ्य-शक्ति राजकन्या रूप में प्रस्तुत हुई है। अरे! ब्रह्मा की सृष्टि से दूर जो सौन्दर्य की लक्ष्मी है, जहाँ संतों के गुणों का परिष्कार होता है। क्या वही मेरे नेत्रों का विषय बन रही है? मेरा अत्यन्त निर्मल मन बार-बार कह रहा है कि **गिरिधर** कवि के स्वामी मुझ राम की नित्य सहचारिणी, धर्मपत्नी साकेतविहारिणी सीताजी ही यहाँ जनकराज कन्या के रूप में पधार आई हैं।

गीत संख्या-२३

जानामि जानकीं निजां प्राणप्रियामहम्।
प्रतियामि जानकीं निजां प्राणप्रियामहम्।।१।।
स्फुरतो भुजश्च नेत्रं मम दक्षिणे शुभे।
समवैमि जानकीं निजां प्राणप्रियामहम्।।२।।
जित्वा स्वयम्वरे नृपान् भुजवीर्यशुल्कतः।
क्रीणामि जानकीं निजां प्राणप्रियामहम्।।३।।
नागत्य स्वप्रमादतः स्ववियोगवह्निना।
श्रीणामि जानकीं निजां प्राणप्रियामहम्।।४।।
गिरिधरप्रभुः समर्थो भूत्वा विलम्बितः।
मीनामि जानकीं निजां प्राणप्रियामहम्।।५।।

भौमी- मैं जानता हूँ कि ये सीता मेरी निजी प्राणप्रिया हैं। मैं विश्वास करता हूँ कि जनकनन्दिनी सीताजी ही मेरी निजी धर्मपत्नी साकेतवाली सीताजी ही हैं। लक्ष्मण! मेरी दाहिनी भुजा और दाहिनी आँख फड़क रही है, अतः मैं जान रहा हूँ कि यही जनकनंदिनी जी मेरी पत्नी हैं। मैं स्वयंवर में राजाओं को जीतकर अपने बाहु पराक्रमरूप शुल्क से स्वयं की धर्मपत्नी सीता जी को शीघ्र ही क्रय कर लूँगा। लक्ष्मण! अपने ही प्रमाद से अभी तक मिथिला न आकर अपनी प्राणप्रिया सीताजी को मैं अपने ही वियोगाग्नि से पका रहा हूँ। **गिरिधर** कवि का स्वामी मैं राम सर्वसमर्थ होकर भी अपने आगमन के विलम्ब से अपनी प्राणप्रिया सीता जी की हिंसा कर रहा हूँ अर्थात् मार डाल रहा हूँ।

गीत संख्या-२४

सौमित्रे सीता मदीया।
प्रिया खलु जन्मान्तरीया।।१।।

परदारनिरपेक्षं मनो मेऽस्यां रमते।
अतो नास्ति लक्ष्मण परकीया।।२।।
अस्यां आसक्तिर्मे प्रतिक्षणं वर्धते।
तस्मादियं मे स्वकीया।।३।।
प्रीतिः पुरातनी सनातनी विशिष्टा।
ततो भ्रातः सीता नान्यदीया।।४।।
गिरिधरस्वामिनी विजितकोटिदामिनी।
भाति भ्रातृजाया त्वदीया।।५।।

भौमी– अब श्रीराम नचारी की धुन में कहते हैं– हे सुमित्रापुत्र लक्ष्मण! सीताजी मेरी जन्मान्तरों की भी पत्नी हैं। परनारी से निरपेक्ष मेरा मन इनमें रम रहा है। इसलिये हे लक्ष्मण! ये परकीया हो ही नहीं सकतीं। इनमें प्रतिक्षण मेरी आसक्ति बढ़ रही है, इसलिये ये मेरी स्वकीया हैं। इनके प्रति यह मेरी प्रीति पुरानी एवं नित्य है। इसलिए हे भैया! सीता जी अन्यदीया अर्थात् दूसरे की पत्नी हो ही नहीं सकतीं। करोड़ों बिजलियों को जीतने वाली **गिरिधर** कवि की स्वामिनी यही सीताजी तुम्हारी भौजी हैं।

गीत संख्या–२५

लक्ष्मण तां मुहुः पश्यामि।
पुनः पुनरपि तां विपश्यन् नैव तृप्तिं यामि।।१।।
कञ्चिदत्र विधातृयोगं तात नूनमवैमि।
प्रस्फुरन्ति शुभानि चाङ्गान्यतोऽहं प्रत्येमि।।२।।
शकुनसूचकमङ्गलानि शुभानि वै गणयामि।
स्वयम्वरबाधाः समस्ता तृणवदवगणयामि।।३।।
शम्भुधनुर्मृणालभञ्जं खण्डशो विनयामि।
सपदि गिरिधरस्वामिनीं निजकोसलां प्रणयामि।।४।।

भौमी– हे लक्ष्मण! मैं तुम्हारी भाभी को बार–बार देख रहा हूँ। उन्हें बार–बार निहारता हुआ भी तृप्त नहीं हो पा रहा हूँ। हे तात! इस सम्बन्ध में मैं ब्रह्माजी का एक संयोग ही समझ रहा हूँ। मेरे दाहिने अंग फड़क रहे हैं। इससे और विश्वस्त होता जा रहा हूँ। मैं सुन्दर शकुनों के सूचक मंगलों का आकलन कर रहा हूँ और स्वयंवर की सभी बाधाओं को तिनके के समान समझ रहा हूँ। शिवधनुष को कमलदण्ड के समान तोड़कर शीघ्र ही खण्ड–खण्ड कर डालूँगा और **गिरिधर** कवि की स्वामिनी सीताजी को शीघ्र ही अपनी अयोध्या ले चलूँगा।

विशेष– यह गीत रूपक ताल सात मात्रा में निबद्ध है, इसे आसावरी और जौनपुरी राग में भी गाया जा सकता है।

सन्दर्भश्लोकः

इति निगदति चक्रवर्तिसूनौ
निभृतनिकुञ्जलतागृहे निलीने।

जनकनृपसुतामुपेत्य सख्यो
मनुजपतेः समदर्शयन् किशोरौ।।१।।

भौमी- इस प्रकार घने निकुन्ज वाले लता-भवन में विराजमान चक्रवर्तीनन्दन श्रीराम के लक्ष्मण जी से परिसम्वाद करते समय ही सीताजी की सखियाँ उनके पास जाकर जनकनन्दिनी जी को दशरथ राजकिशोर श्रीरामलक्ष्मण को दिखाई।

गीत संख्या-२६

सीता रामलक्ष्मणौ दृष्ट्वा।
चिन्तयते स्म चिन्मयी बाला नयनाभ्यां च स्पृष्ट्वा।।१।।
मद्भाग्येन प्रेषितौ मिथिलामिमौ विधात्रा सृष्ट्वा।
न खलु बहिर्भूतौ विधिसृष्टेरुभावभिष्टाविष्ट्वा।।२।।
श्यामलवर्णकिशोरं वीक्ष्य प्रबुद्धो मे पतिभावः।
गौरं वीक्ष्य वर्धते हृदये वत्सलरसानुभावः।।३।।
धर्मसङ्कटं महन्मदीयं विधिविधित्सितं किं वा।
एकस्यापि कथं कान्ता स्यामपरस्यापि तथाम्बा।।४।।
भवतु नाम गौरं प्रथमं वात्सल्यभाजनं कुर्वे।
पश्चात् गिरिधरप्रभुं श्यामलं श्लिष्ये भावेऽपूर्वे।।५।।

भौमी- सीताजी श्रीराम-लक्ष्मण को देखकर उन्हें नेत्रों से स्पर्श करके पुनः चेतनामयी भगवती चिन्तन करने लगीं। निश्चित ही विधाता के द्वारा रचना करके ये दोनों राजकुमार मेरे सौभाग्य से ही मिथिलापुरी को भेजे गये हैं। ये दोनों ही हमारे अभीष्ट हैं। ये निरन्तर पंचयज्ञ करके सृष्टि से बहिर्भूत नहीं हैं, अर्थात् सृष्टि की वैदिक मर्यादानुसार सभी नियमों का पालन करते हैं। क्या कहूँ! श्यामल राजकुमार को देखकर मेरे मन में पतिभाव जग रहा है और दूसरी ओर गौर राजकुमार को देखकर मेरे मन में वत्सल-रस का अनुभाव उमड़ रहा है। इस समय मुझे बहुत बड़ा धर्मसंकट है। मैं एक की पत्नी और एक की माँ कैसे बनूँ? क्योंकि दोनों सहोदर-भ्राता हैं। विधाता को क्या करना ईष्ट है? ठीक है। गौर राजकुमार को पहले मैं वात्सल्य का पात्र बना रही हूँ और पुनः **गिरिधर** के प्रभु श्रीरघुनाथ जी को अपूर्व कान्ताभाव से आलिंगन करूँगी।

गीत संख्या-२७

राघवं पश्यति जनककिशोरी।
विनिमिषनयना शरत्पूर्णविधुमित्वा यथा चकोरी।।१।।
नखशिखसुभगसकलसौभगनिधिकोटिकामकमनीयम् ।
अशरणशरणचरणसरसिजकेसरिकटिमतिरमणीयम् ।।२।।
अंसलमंसमखोपवीतमंसाश्रितवरकोदण्डम् ।
दिनकरशिशुकरनिन्दकवसनलसितकरवरशरचण्डम् ।।३।।

वामपाणिपल्लवसुमनःकुटसुस्फुटसुकृतकलापम् ।
पुरुषसारसर्वस्वविग्रहं दिनकरकोटिप्रतापम्।।४।।
पार्वणविधुवदनं श्रीसदनं मदनमनोहरवेषम्।
गिरिधरप्रभुं निरीक्ष्य न तृप्ता दयितं निजहृदयेशम्।।५।।

भौमी- नख-शिख सुन्दर सम्पूर्ण शोभाओं के खजाने, करोड़ों कामदेवों की इच्छा के विषय, अशरणों को शरण देने वाले कमल-चरण, सिंह के समान कटि प्रदेश वाले अत्यन्त रमणीय, स्वस्थ, वामस्कंध में यज्ञोपवीत से सुशोभित और उसी स्कन्ध पर धनुष धारण किये हुये, बालसूर्य के समान पीताम्बर धारण किये हुए तथा दाहिने हाथ में दिव्य बाण लिये हुए, बाँयें हाथ में पुष्पों से सुशोभित पल्लव निर्मित दोना धारण किये हुए, सुस्पष्ट गुण समूहों से युक्त-पौरुष प्रधान शरीर, करोड़ों सूर्यों के समान प्रताप वाले, शोभा के आश्रयपूर्ण चन्द्र के समान मुख वाले, कामदेव से भी मनोहर वेश वाले, अपने हृदय के स्वामी प्राणबल्लभ **गिरिधर** कवि के प्रभु श्रीरामराघव को प्रसन्नता से निर्निमेषनयना जनककिशोरी सीताजी शरद्पूर्णिमा के चन्द्र को प्राप्त कर चकोरी जैसी प्रसन्नतापूर्वक निहार रही हैं, परन्तु प्रभु को पुनः-पुनः देखकर भी तृप्त नहीं हो रही हैं।

गीत संख्या-२८

दृग्वर्त्मना नीयमानसमजसुतमानसकलहंसम्।
पिदधे पक्ष्मकपाटमुदजलोचनमखिलदृगोत्तंसम्।।१।।
अन्तर्हृदि रमते वैदेही।
आत्मारामो रामस्तस्यां रमते परमस्नेही।।२।।
हृत्प्राप्तं प्रियतमं प्रियतमा परिरभ्यावनिजाता।
योगीवास्तसमाधिनिमग्ना सवननयनवनजाता।।३।।
मीलितदृङ्मृगशावाक्षी परिपुलकपल्लवितदेहा।
तस्थौ काष्ठयोषिदिव सीता विस्मृतपरिजनगेहा।।४।।
अन्तर्गतावुभौ न लक्ष्मणः सखीजनो न विपश्यति।
गिरिधरप्रभुदम्पतिरसलीलां पश्यन् कोऽपि न पश्यति।।५।।

भौमी- नेत्र के मार्ग से अज के पुत्र महाराज दशरथ के मनमानस के श्रेष्ठहंस श्रीराम को अपने मन में ले आकर संपूर्ण नेत्रों के आभूषण स्वरूप अपने नेत्र के पलक रूप किवाड़ को भगवती सीताजी ने बन्द कर लिया। सीताजी अपने हृदय के अन्दर प्रभु के साथ रमण कर रही हैं और परमस्नेही आत्माराम श्रीराम भी सीताजी में रमण कर रहे हैं। पृथ्वीपुत्री प्रियतमा सीताजी हृदय में प्राप्त अपने प्रियतम श्रीराम को आलिङ्गन करके कमलनेत्र में आँसू भरकर योगी की भाँति समाधि में मग्न हो गईं। बालमृगनयनी सीताजी की आँखें बन्द हो गईं, उनका शरीर रोमांचित होकर पल्लव की भाँति काँपने लगा, वे परिजनों और घर को भूल गईं, सीताजी कठपुतली की भाँति स्थिर हो गईं। इस प्रकार श्रीसीतारामजी के अन्तर्रमण को न लक्ष्मण और न ही सखियाँ देख पा रही हैं, **गिरिधर** कवि के प्रभु श्रीराम की रसपूर्ण दाम्पत्य-लीला को सामान्य प्राणी देखकर भी नहीं देख पाता।

गीत संख्या-२९

सीता पुनरपि रामं पश्यति।
विमलं विभुं विशालाक्षी विधुविशदाननं विभाव्य विपश्यति।।१।।
दर्शं दर्शं हृष्टहरिं हरिणाक्षी हृदये हृष्टा हृष्यति।
परिश्रान्तपदपद्ममोष्णलोचनपयसा परिषिच्य विमृश्यति।।२।।
भुजविसलता वितानितकान्तं मुदिता कान्ता सुचिरं श्लिष्यति।
दयिता दयया दयितमब्जसुकुमारं नैव गाढमाश्लिष्यति।।३।।
चुम्बति नन्दति चन्दति चतुरा चपला घनमिव जनककिशोरी।
भौमी भाति मुदा गिरिधरप्रभुशरदविमलविधुचतुरचकोरी।।४।।

भौमी- सीताजी पुनः-पुनः प्रभु श्रीराम को देख रही हैं, विशालनेत्रा सीताजी प्रभु को निर्मल-सर्वव्यापक-चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख विचारकर पुनः विवेचना के साथ निहारती हैं। मृगनयनी सीताजी विष्णुजी को भी प्रसन्न करने वाले श्रीराम को निहार-निहारकर रोमांचित होकर प्रसन्न हो रही हैं। मिथिला में पैदल आने के कारण प्रभु के थके हुए चरणकमलों को नेत्र के गर्म जल से धोकर विमर्श कर रही हैं। मुग्धाभावापन्न नायिका श्रीसीताजी अपनी कमलदण्ड जैसी भुजाओं में लपेटे हुए प्रियतम श्रीराम को बहुत देर तक आलिंगन कर रही हैं, परन्तु दयालु-प्रियाजी कमलके समान सुकुमार प्राणधन श्रीराम को दयावश बलपूर्वक गाढ़ आलिंगन नहीं कर रही हैं। बादल को प्राप्तकर बिजली की भाँति श्रीरामचन्द्र के मुखचन्द्र की चतुर चकोरी **गिरिधर** कवि की स्वामिनी सीताजी प्रभु को चूम रही हैं, प्रसन्न हो रही हैं, आह्लादित हो रही हैं और सुशोभित हो रही हैं।

गीत संख्या-३०

विचित्रं सीतारामरहस्यम्।
निरवद्यं निरघं निरुपद्रवमृषिमुनिसुरनरनिकरनमस्यम्।।१।।
एकं द्विधाभूतमिव भातं भक्तभावनानुगमतिविलसति।
श्रीदशरथे विभाति कुमारो जनके पुत्रीभूय परिलसति।।२।।
वैदिकधर्मरक्षणार्थं तत् सम्प्रस्तौति दिव्यदाम्पत्यम्।
सीतात्वे च रामपत्नीत्वं रामत्वे किल सैतापत्यम्।।३।।
रेमे रमते रंस्यते च रामे सीता तदनन्या नित्या।
गिरिधरगिरा जगौ गायति गास्यति गीतं विभुदम्पतिभृत्या।।४।।

भौमी- सीताराम जी का रहस्य बहुत विचित्र है, वह दोषरहित, पापरहित तथा उपद्रवों से रहित है, उसे ऋषि-मुनि देवता और मनुष्यसमूह प्रणाम करते हैं। एक ही ब्रह्म भक्तों की भावना का अनुगमन करता हुआ दो रूपों में सुशोभित हो रहा है, दशरथ जी के यहाँ कुमार बनकर एवं जनकजी के यहाँ कुमारी बनकर विराजमान है। वही परमेश्वर वैदिक धर्म की रक्षा के लिए दिव्य दाम्पत्य प्रस्तुत करता है, सीता बनकर रामनिरूपित पत्नीत्व और राम बनकर सीता निरूपित पतित्व, उसी परमात्मा का लीला विलास है। सीताजी रामजी से अभिन्न एवं नित्य होकर श्रीराम में रमीं, रम रही हैं और रमती रहेंगी और **गिरिधर** कवि की वाणी भी इन्हीं सीताराम दम्पती की दासी बनकर इनके मङ्गलगीत गा रही है और गाती रहेगी।

गीत संख्या-३१

अद्य सीताऽभवत् पूर्णकामा परमप्राणपतिर्मिलितः।।
सीतारामचन्द्रावन्योऽन्यतोऽप्यनन्यौ ।
पयस्तरङ्गाविव परस्परमभिन्नौ।।
अद्य सीताऽभवत् प्राप्तकामा प्रपन्नपरमगतिर्मिलितः।।१।।
चपलाघनाविव निसर्गसौम्यसुन्दरौ।
भक्तवत्सलावुभौ भवाम्बुराशिमन्दरौ।।
अद्य सीताऽभवत् भव्यभामा भवानीपतिपतिर्मिलितः।।२।।
नरीनर्ति शिखिनीव सुभगा शुभाङ्गी।
वरीवर्ति वरटेव वरिणी वराङ्गी।।
अद्य सीताऽभवच्छ्रीललामा लसितमञ्जुमतिर्मिलितः।।३।।
गिरिधरप्रभुं निरीक्ष्य हृद्यं हृदि हृष्यति।
कठिनं पिनाकमिति चिन्तयन्ती क्लिष्यति।।
अद्य सीताऽभवल्लब्धरामा स्वकीयानन्यरतिर्मिलितः।।४।।

भौमी- आज सीताजी पूर्णकाम हो गई हैं, उन्हें परमपूज्य प्राणपति श्रीराम मिल गए हैं। श्रीसीतारामचन्द्र एक दूसरे से अनन्य हैं, वे जल और तरंग की भाँति परस्पर अभिन्न हैं। आज सीताजी प्राप्तकामा अर्थात् संपूर्ण इच्छाएँ प्राप्त कर चुकी हैं, उन्हें शरणागतों के परम आश्रय श्रीराम मिल गये हैं। श्रीसीतारामजी बिजली और मेघ की भाँति स्वभाव से सौम्य और सुन्दर हैं, दोनों ही भक्तवत्सल और भयंकर भवसागर को मथने के लिए मन्दराचल स्वरूप हैं, आज सीताजी श्रेष्ठ महिला बन चुकी हैं, उन्हें भवानी जी के पति शिवजी के भी पति अर्थात् परम आराध्य भगवान श्रीराम मिल गए हैं। सुन्दरी तथा सुन्दर अंगों वाली सीताजी आज मोरनी की भाँति अत्यंत नृत्य कर रही हैं, नवपरिणीता-वधू वैदेही आज हंसिनी की भाँति सुशोभित हो रही हैं, आज सीताजी शोभा की भी रत्न बन चुकी हैं, उन्हें श्रेष्ठ बुद्धि वाले श्रीराम प्रियतम रूप में प्राप्त हो गए हैं। हृदय को भाने वाले **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम को देखकर सीताजी हृदय में प्रसन्न हो रही हैं, शंकर जी का धनुष बहुत कठिन है, ऐसा सोचकर हृदय में दु:खी भी हो रही हैं, आज सीताजी ने श्रीराम को प्राप्त कर लिया है, उन्हें अनन्य प्रेम करने वाले भगवान राम मिल गए हैं।

सन्दर्भगीतम्

वनितां विनतां विधुर्विधिज्ञो भुजवल्या परिकृष्य कर्षिताङ्गीम्।
कुशलं समपृच्छदार्तबन्धुः निजलीलाकृतये विदूरदेशाम्।।१।।

भौमी- आर्तों के बन्धु, विधिवेत्ता सर्वान्तर्यागी प्रभु श्रीराम ने अपनी लीला के संपादनार्थ दूरदेश अर्थात् मिथिला में प्रकटी हुईं, परन्तु अपने ही वियोग से दुर्बल अङ्गों वाली विनम्र पत्नी सीताजी को अपनी भुजारूप लता से अपने पास लाकर कुशल समाचार पूछा।

गीत संख्या-३२

ब्रूहि मैथिलि! कौशलं किमु वर्तसे मिथिलापुरे।।
मद्विना शफरीमिवाद्भ्यो विग्नचित्तां वेद्मि भोः।
ब्रूहि मैथिलि मङ्गलं किमु वर्धसे मिथिलापुरे।।१।।
वारिवीची इवानन्यौ यदप्यावां हे शुभे।
मां विना स्वमनो बलं किमु त्रायसे मिथिलापुरे।।२।।
राष्ट्रनिर्माणार्थमावां क्लेशमत्र सहावहे।
ब्रूहि दधती सद्बलं किमु विद्यसे मिथिलापुरे।।३।।
सुकविगिरिधरप्रभुहृदालयदीपिके गुणदीपिके।
मां विना विरहानले किमिहैधसे मिथिलापुरे।।४।।

भौमी- हे सीते! आप अपना कुशल कहिए, मिथिलापुर में कैसे रह रही हैं? मैं समझ रहा हूँ कि मेरे बिना आप उसी प्रकार तलप रही हैं, जैसे जल के बिना मछली, कहिये जनकनन्दिनीजी आप मिथिलापुर में कैसे स्वस्थ रह रही हैं? यद्यपि हम दोनों जल और तरंग की भाँति परस्पर अभिन्न हैं, फिर भी मेरे बिना आप मिथिलापुर में अपने मनोबल की रक्षा कैसे कर रही हैं? इस राष्ट्र के निर्माण के लिए हम दोनों ही क्लेश सह रहे हैं, आप श्रेष्ठ आत्मबल धारण करती हुई मिथिला पुर में कैसे रह रही हैं? सुकवि **गिरिधर** के हृदयरूप भवन में दीपिका की भाँति प्रकाशित होने वाली श्रेष्ठगुणों को प्रकाशित करने वाली, हे सीते! मेरे बिना विरहाग्नि में भी आप जीवित रहकर संसार का मंगल वर्धापन कैसे कर रही हैं?

गीत संख्या-३३

सीताप्राह-

कुलिशादपि कठिनकठोरमहो पालने विहितनिजकर्तव्यम्।।
कुसुमं त्यक्त्वा कण्टकशयनं शशिनं हित्वा वह्नावयनम्।
शूलादपि निष्ठूरघोरमहो पालने विहितनिजकर्तव्यम्।।१।।
वरदानं त्यक्त्वा बलिदानं आदानमुपेक्ष्य सदा दानम्।
न कदाचिदपीदमघोरमहो पालने विहितनिजकर्तव्यम्।।२।।
पीयूषमुदस्य गरलपानं रोदनमपि मृदुमङ्गलगानम्।
प्रलयानलतोऽप्यतिघोरमहो पालने विहितनिजकर्तव्यम्।।३।।
जीवामि कथञ्चिद् हे स्वामिन् मिथिलायां हे अन्तर्यामिन्।
दधती गिरिधरदृक्चोरमहो पालने विहितनिजकर्तव्यम्।।४।।

भौमी- सीताजी बोलीं- हे प्रभो! अपने विहित कर्तव्यों का पालन वज्र से भी कठोर है। प्रभो! पुष्प को छोड़कर काँटे में शयन और चन्द्रमा को छोड़कर अग्नि में निवास। अहो! विहित कर्तव्य पालन में महादेव के त्रिशूल से कठोर और भयङ्कर है। वरदान को छोड़कर बलिदान स्वीकार करना, ग्रहण की उपेक्ष्या कर सदैव

देते ही रहना, अपने कर्तव्य का पालन कभी भी कोमल होता ही नहीं। अमृत छोड़कर विष पीना, रोदन को भी गीत मानना, अपने कर्तव्य का पालन प्रलयाग्नि से भी भयङ्कर है। हे स्वामिन् ! हे सर्वान्तर्यामी प्रभो! **गिरिधर** कवि के नेत्रों को चुराने वाले आपश्री को हृदय में धारण करती हुई किसी प्रकार मिथिला में जी रही हूँ।

गीत संख्या-३४

विहराव सरयूसुतीरे शीतलमन्दसुरभितसमीरे।।
रूपशीलसम्पदा च भवतास्मि निर्जिता।
विनापि स्वयम्वरं च रघुवरमहं वृता।।
गच्छाव श्रितयोगिधीरे।।१।।
शीघ्रं सम्बुभूषामि भवतस्सुभामिनी।
शोभितुं समीहे घनेन यथा दामिनी।।
भवेवात्र विलसद् वा नीरे।।२।।
भज्यतां न भज्यतां वा पुराणं पिनाकम्।
नानुमन्ये स्वर्गेऽपि क्षणं त्वां विना कम्।।
नय मां झटिति विमलनीरे।।३।।
तव शान्तं स्वान्तं विषिनोति चापि सीता।
सर्वं त्वं विजानासि किं ब्रुवे विनीता।।
रमेवहि गिरिधरहृत्कुटीरे।।४।।

भौमी- हे प्रभो! अब तो हम दोनों शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु वाले सरयू तट पर विहार करें। मैं रूप और शील की संपत्ति से आप द्वारा जीत ली गई हूँ, स्वयंवर के बिना भी आप श्रीरघुवीर को मैं वरण कर चुकी हूँ। अब तो योगिजनों और धीरों के आश्रय सरयू तट पर ही हम चलें। मैं शीघ्र ही आपकी पत्नी बनना चाहती हूँ और बादल के साथ बिजली की भाँति मैं आपके साथ सुशोभित होना चाहती हूँ, अब हम सुन्दर वेत्र लताओं से युक्त सरयू तट पर उपस्थित हों। यह पुराना पिनाक धनुष टूटे या न टूटे, आपके बिना मैं स्वर्ग में भी सुख की अनुमति नहीं देती, मुझे तो आप निर्मल जल वाले सरयू तट पर शीघ्र ले चलिए। आपके निर्मल मन को सीता बाँध लेंगी, आप सब कुछ जानते हैं, मैं विनम्र सीता क्या कहूँ? अब हम दोनों **गिरिधर** कवि के हृदय-कुटीर में ही रमण करें।

सन्दर्भश्लोकः

इति तया गदितं गदितार्थकं गगनगम्यगवीकमिवैत्य सः।
प्रणयवारिविलोलविलोचनो विनिजगाद जगद्भयमोचनः।।१।।

भौमी- इस प्रकार आकाशवाणी के समान गंभीर स्पष्टरूप से अपने प्रयोजन की सूचना देने वाले सीताजी के वचनों को सुनकर प्रेमाश्रु से चंचलनेत्र संसार के भय को दूर करने वाले प्रभु श्रीराम ने निश्चय के स्वर में इस प्रकार कहा।

गीत संख्या-३५

मैथिलि मम मानवमर्यादा।
वैदिकधर्मसम्बलीभूता हृतभवभीतिविषादा।।१।।
आवां यद्यपि प्रभाभानुवन् नितरामेवानन्यौ।
ज्योत्स्नासुधादीधिती इव समभिन्नौ सदैव धन्यौ।।२।।
तथाप्यत्र वैदिकमर्यादा मया त्वया करणीया।
स्वयम्वरे भवचापविभञ्जं त्वं हि मया वरणीया।।३।।
सख्युः प्रभोः सेवकस्यापि च कथं खण्डये चापम्।
व्याकुलतां तव जानन्नपि दूरये कथं परितापम्।।४।।
त्वमनुकूल्य गिरिजां शम्भुं प्रेरय किल मां निर्देष्टुम्।
लब्ध्वा बलं तदा प्रभवेयं शम्भुकार्मुकं द्रेष्टुम्।।५।।
स्मरन् पुष्पवाटिकाप्रसङ्गं गिरिधरगीतमनिन्द्यम्।
एतु गीतसीतानिकेतकं नरो राममनवद्यम्।।६।।

भौमी- हे सीते! मेरी यह मनुष्यावतार की मर्यादा वैदिक धर्म का संबल तथा संसार का कष्ट हरने वाली है। यद्यपि हम दोनों सूर्य और सूर्य की किरण की भाँति तथा चन्द्रमा और चन्द्रकिरण के समान परस्पर अनन्य और अभिन्न हैं। फिर भी हम दोनों को वैदिक मर्यादा का पालन करना होगा, स्वयंवर में शिवधनुष तोड़कर ही मैं आपका वरण करूँगा। शिवजी मेरे मित्र-स्वामी और सेवक भी हैं, अतः उनका धनुष कैसे तोड़ूँ? तुम्हारी व्याकुलता जानता हुआ भी मैं तुम्हारा कष्ट कैसे दूर करूँ? तुम पर्वती जी को अनुकूल करके मुझे निर्देश करने के लिए शिवजी को प्रेरित करो, इस प्रकार तुम्हारा बल पाकर मैं शिव-धनुष तोड़ने का मन बनाऊँ। इस प्रकार पुष्पवाटिका-प्रसंग का और निर्दोष **गिरिधर** कवि के गीत का स्मरण करते हुए श्रीराम भक्त मनुष्य सीताजी को आनन्दित करने वाले मुझ राम को प्राप्त करें, ऐसा मेरा आशीर्वाद है।

सन्दर्भश्लोकौ

इत्यन्तरङ्गवार्ताभिः सम्मन्त्र्य सुमहामती।
भूयः स्वलोकलीलासु प्रवृत्तौ दिव्यदम्पती।।१।।
रामोऽपि पुष्पमाचित्य ययौ सौमित्रिणा गुरुम्।
सीता जगाद वैकल्यान् मोहयन्तीव सत्सखीः।।२।।

भौमी- इस प्रकार अन्तरंग वार्ताओं के माध्यम से परस्पर मन्त्रणा करके दिव्य-दम्पती श्रीसीतारामजी लोकलीला में फिर प्रवृत्त हो गए। श्रीराम पुष्प का चयन करके लक्ष्मणजी के साथ गुरुदेव के पास पधार आये और सीताजी अपनी विकलता से सखियों को मोहित करती हुई-सी बोलीं।

गीत संख्या-३६

सख्यः चलत न कुरुत विलम्बम्।
पश्यन्ती खगमृगलतातरून् कृतवत्यहं विलम्बम्।।१।।
श्रुत्वा सखी जनकतनयायाः अजूगुपत् तद् भावम्।
समर्थयन्ती तद् वाक्यं कलमूचे कोकिलरावम्।।२।।
भवतु नाम समयेऽस्मिन् श्वः पुनरेम महीपकिशोरी।
भूयो भातु तत्र भवती राघवमुखचन्द्रचकोरी।।३।।
श्रुत्वा भ्रुवा वारयन्ती कुपितेव सखीं ननु सीता।
हृदयेऽकृत सीतानिकेतकं गिरिधरप्रभुं विनीता।।४।।

भौमी- सखियों! अब चलो! देर मत करो! मैंने ही पशु-पक्षी-मृग और लताओं को देखती हुई बहुत विलम्ब कर दिया है। चतुर सखी ने जनकनन्दिनी का वचन सुनकर उनके भावों को छिपा लिया और सीताजी के ही वचन का समर्थन करती हुई कोकिल वाणी में बोली! ठीक है। राजकिशोरी जी! कल हम फिर इसी समय यहाँ आयें और एक बार फिर श्रीराम मुखचन्द्र की चकोरी बनकर आप सुशोभित हों। यह सुनकर भौंह से रोकती हुई सीताजी ने सखी पर नाटकीय कोप किया और विनम्र सीताजी ने सीता-निकेतन श्रीराम को अपने हृदय में धारण कर लिया।

सन्दर्भश्लोकौ

स्मरन्ती हृदये सीता गीतसीतानिकेतकम्।
गीतसीताभिरामं स्वं रमणीयं गृहं ययौ।।१।।
गीतरामायणे रामभद्राचार्येण चाष्टमः।
गीतो गिरिधरेणाद्य सीता प्रीत्यै मुदे मया।।२।।

भौमी- इस प्रकार अपने हृदय में सीतानिकेतन श्रीराम का स्मरण करती हुई स्वयं को आनन्द देने वाली सीताजी अपने भवन को पधार गईं और मुझ **गिरिधर** कवि रामभद्राचार्य द्वारा गीत रामायण के बालकाण्ड में गीतसीतानिकेतक नामक अष्टम सर्ग सम्पन्न किया गया।

इति

श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरमहाकविजगद्गुरुरामानन्दाचार्यस्वामिरामभद्राचार्यगिरिधरकविप्रणीते गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये बालकाण्डे गीतसीतानिकेतकोनाम अष्टमः सर्गः।

इस प्रकार श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर महाकवि जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य गिरिधरकवि द्वारा विरचित गीतरामायण 'गीतसीताभिराम' नामक संस्कृत गीतमहाकाव्य के बालकाण्ड में गीतसीतानिकेतक नामक अष्टम सर्ग सम्पन्न हुआ।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

।।श्रीः।।

।।नमो राघवाय।।

गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये बालकाण्डे

गीतसीतास्वयंवरो नाम

नवमः सर्गः

सन्दर्भश्लोकः

अथाभेत्योद्विग्ना रघुतिलकलग्ना सुवदना
निमग्ना प्रेमाब्धौ हृदि कलितलग्नोत्सवमुदा।
प्लुता सीता प्रीता गिरिशदयिता मन्दिरमथो-
गता गायद् गीतं गिरिधरप्रभुप्राप्तिफलकम्।।१।।

भौमी- इसके अनन्तर श्रीराम के लिये उद्विग्न तथा रघुनाथ जी में आसक्त, प्रेम सागर में मग्न हृदय में उमड़ती हुयी विवाहोत्सव की प्रसन्नता से भरी हुई प्रसन्न मन वाली सुमुखी सीता जी शिव जी की पत्नी पार्वती जी के मंदिर में पधारकर गिरिधर कवि के स्वामी श्रीराम की प्राप्ति ही जिसका फल है, ऐसा गीत गाने लगीं।

गीत संख्या-१

जय गिरिजे! जय मेनानन्दिनि! परमशक्तिमयि! माये!
जय रघुपतिपदपङ्कजमधुकरि! शङ्करि! शङ्करजाये।।१।।
जय गणपतिगुहजननि! जनावनि! त्रिभुवनकीर्तितकीर्ते!
जय शिवमुखचन्दिरचकोरिके मधुरमनोरथपूर्ते।।२।।
जय जगदुद्भवपालनविलयविधायिनि! देवि! विधिज्ञे!
वेत्सि मदीयं हार्दं भगवति शर्वप्रिये! सर्वज्ञे।।३।।
यमधिपुष्पवाटिकं वृतवती मनसि मरकतश्यामम्।
तं तमालसुन्दरं वरं दिश गिरिधरमनोऽभिरामम्।।४।।

भौमी- सीता जी गाती हुई कहती हैं- हे हिमालय-पुत्री! आपकी जय हो! हे मेनानन्दिनी! आपकी जय हो। हे परमशक्तिमयि महामाया! आपकी जय हो। हे श्रीरामचन्द्र के चरणकमल की भ्रमरी! सबका कल्याण करने वाली शंकर जी की धर्मपत्नी पार्वती जी! आपकी जय हो। हे गणपति और कार्तिकेय की माँ! आपकी जय हो। हे भक्तों की रक्षा करने वाली! जिनकी कीर्ति तीनों लोकों में गायी गई है ऐसी हे पार्वती माँ! आपकी जय हो। मधुर मनोरथों की पूर्ति करने वाली शिवमुख चंद्र की चकोरी! आपकी जय हो। हे संसार की उत्पत्ति और पालन तथा प्रलय करने वाली, विधि को जानने वाली सर्वज्ञा, शर्व अर्थात् शिव जी की प्रिया भगवती

पार्वती! आपकी जय हो। आप मेरे हृदय का भाव जानती हैं। जिन मरकत के समान श्यामल दशरथ राजकिशोर को पुष्पवाटिका में मैंने मन ही मन वर लिया है उन्हीं तमाल के समान सुन्दर तथा **गिरिधर** कवि के मन को आनन्द देने वाले श्रीराम को ही मेरा वर बना दीजिए।

विशेष– यह गीत विद्यापति द्वारा रचित शक्तिवन्दना के ढाल पर निबद्ध है।

गीत संख्या-२

भगवति! पार्वति! विबुधमहितकृति! रामं वरं मह्यं देहि हे।
गणपतिजननि! जगत्रयभाविनि! शीघ्रं च मम सन्निधेहि हे।।१।।
महिषविमर्दिनि! खलकुलमर्दिनि! मनोरथं मम प्रजानासि हे।
अये केन सङ्कोचेन श्रीफलपयोदे! मम व्यथालतां न लुनासि हे।।२।।
प्रेरय भवानि! भवं राघवं कथयितुं त्रोटयतु शीघ्रं शिवचापं हे।
गमयतु दमयतु ललाटं तपन्तं विरहजनितपरितापं हे।।३।।
भवतु दशास्यादीनां मुखे कटुकालिमा हे देवि मम सङ्कटं श्रिणातु हे।
सीताराममङ्गलविवाहमहोत्सवगीतं गिरिधरोऽपि सुरगिरा गृणातु हे।।४।।

भौमी– हे भगवती पार्वती! हे देवताओं से पूजित कीर्तिवाली माँ! आप मुझे श्रीराम को ही पति रूप में प्रदान कर दीजिये। हे गणपति की माँ! तीनों लोकों को जन्म देने वाली पार्वती जी! आप शीघ्र मेरे सम्मुख आ जाइये। हे महिषासुर मर्दिनी! दुष्टों को नष्ट करने वाली माँ! आप मेरा मनोरथ जानती हैं। हे श्रीफल अर्थात् विल्वफल के समान वक्षोरुह वाली! पार्वती जी! आप किस कारण मेरी व्यथालता को नहीं काट रही हैं। हे भवानी! श्रीरघुनाथ जी को निर्देश करने के लिये शिवजी को प्रेरणा दीजिए जिससे श्रीराम शिवधनुष तोड़ दें और मेरे सूर्य के समान कठोर विरहताप को दूर कर दें और नष्ट कर दें। हे देवी! रावणादि असुरों के मुख में कालिख लगे और आप मेरा संकट दूर कर दें और **गिरिधर** कवि भी संस्कृत भाषा में श्रीसीताराम विवाहोत्सव के मंगल गीत गाये, क्योंकि अब तक किसी भी कवि ने संस्कृत में श्रीरामविवाह के गीत नहीं गाये।

विशेष– यह गीत मिथिला के विवाह लोकगीत की ढाल में निबद्ध है।

सन्दर्भश्लोकौ

निशम्य सीतामुखगीतगीतं
प्रसन्नतापूरितवारिजाक्षी ।
गृहीतमाला सुमुखी रसाला
सा पार्वती वै प्रकटा वभूव।।१।।
नीरन्ध्रनीरजाक्षिभ्यां पिबन्ती श्रीमुखाम्बुजम्।
प्रसादमालिकां दत्वा स्वाशिषो पार्वती जगौ।।२।।

भौमी– अब कवि दो सन्दर्भश्लोकों में कथा को क्रमबद्ध करके कह रहे हैं। इस प्रकार सीताजी के मुख से गाये हुए दो गीत सुनकर प्रसन्नता से पूर्ण कमलनेत्र वाली सुमुखी रसस्वरूपिणी पार्वती जी हाथ में माला

लेकर प्रकट हो गईं। अपने बाधा रहित कमलनेत्रों से सीताजी के मुख सौन्दर्य का पान करती हुई पार्वती जी सीताजी को प्रसादमाला देकर आशीर्वादमय गीत गाने लगीं।

गीत संख्या-३

श्रृणु सीते! शुभाशिषः सत्या मदीयाः।
फलिष्यन्ति काम्यलताः सत्वरं त्वदीया।।१।।
यत्र ते रमते मनो मनोरमे रामे।
यत्र त्वं समर्पिताऽसि नीरधरश्यामे।।२।।
मिलिता वरेण्यो वरः सैव कृपासिन्धुः।
प्रजानाति भवतीं यः प्रणतार्तबन्धुः।।३।।
सर्वगुणसम्पन्नो वै धन्विनां धुरीणः।
मङ्गलायतनयशाः प्रेमणि प्रवीणः।।४।।
न चिरादिव द्रष्टासि तं विभुं विनीतम्।
गिरिधरोऽपि गाता सुमङ्गलगीतम्।।५।।

भौमी- हे सीते! मेरी सत्य आशिषा सुनिये। आपकी मनोरथ लताएँ शीघ्र ही फलवती होंगी। जिन सुन्दर श्रीराम में आपका मन रम रहा है और जिन मेघवर्णी श्यामसुन्दर पर आपने सब कुछ समर्पित कर दिया है और जो शरणागतों के बन्धु प्रभु श्रीराम आपको भलीभाँति जानते हैं वे ही कृपासिन्धु श्रीराम तुम्हारे वर होकर मिलेंगे। वे सर्वगुणों से सम्पन्न, धनुर्धरों में श्रेष्ठ, मंगलों के मंदिर स्वरूप यश वाले तथा प्रेम पथ में भी बहुत प्रवीण हैं। उन्हीं विनम्र सर्वव्यापी प्रभुश्रीराम को आप शीघ्र ही वर रूप में दर्शन करेंगी और **गिरिधर** कवि भी विवाह के मंगल गीत गायेंगे।

विशेष- यह गीत मध्य लय त्रिताल में व राग-भूपाली में गेय है।

सन्दर्भश्लोकौ

श्रुत्वाऽऽशिषो गिरिसुतामुखचन्द्रराजत्
पीयूषयूषपृषतः परिपूर्णकामा।
रामा ययौ हृदयमन्दिररामचन्द्रा
चन्द्रानना सुनयनासविधेऽथ सीता।।१।।
रामोऽपि च समागम्य सानुजः किल कौशिकम्।
हर्षगद्गदया वाचा निर्दोषं समचिख्यपत्।।२।।

भौमी- इसके पश्चात् पार्वती जी के मुखचन्द्र में सुशोभित, अमृत-बिन्दुओं से पूर्ण, सुन्दर आशिषाएँ सुनकर सीता जी की सभी कामनाएँ पूर्ण हो गईं। अनन्तर वे चन्द्रमुखी हृदय में श्रीरामचन्द्र को धारण करके माता सुनयना के पास पधार गईं। इधर श्रीराम भी भाई लक्ष्मण के साथ गुरु विश्वामित्र के पास जाकर हर्ष से गद्गद वाणी में, निर्दोष भाव से पुष्पवाटिका की घटना कह दिये।

गीत संख्या-४

अद्य पुष्पवाटिकायां सीता नारी मिलिता सुकुमारी मिलिता।।
यातः पुष्पचयनाय स्वाज्ञयया त्वदीयया।
बद्धो मर्यादया देव ननु भवदीयया।।
सहसैव धरणीकुमारी मिलिता।।१।।
यदाहमद्राक्षं तस्याः निरुपमं सौन्दर्यम्।
कोटिकोटिकामवामासौभगसोदर्यम् ।।
हृतवती मनो निमिकुमारी मिलिता।।२।।
परदारतो विरक्तं स्वान्तमस्यां रमितम्।
न परावर्ततेऽधुना तत्रैव संयमितम्।।
गुरुदेव जनककुमारी मिलिता।।३।।
क्व ब्रजामि किं वदामि मनसः परिस्थितिम्।
करुणानिधान गुरो चिन्तय मम स्थितिम्।।
गिरिधरप्रभवे नित्यनारी मिलिता।।४।।

भौमी– हे गुरुदेव! आज पुष्पवाटिका में मुझे सुकुमारी सीता नामक एक किशोरी नारी मिली। आपकी सुन्दर आज्ञा से और आपकी ही मर्यादा में बँधा हुआ मैं आप श्री की पूजा के लिये पुष्प लेने फुलवारी में गया था। उसी समय सहसा मुझे पृथ्वीपुत्री सीता जी मिल गईं। प्रभु! जिस समय मैंने करोड़ों-करोड़ों रतियों के सौन्दर्य के समान उन सीताजी का सौन्दर्य देखा उसी समय निमिराजकुमारी ने मुझे मिलकर मेरा मन चुरा लिया। हे गुरुदेव! परनारी से विरक्त मेरा मन उन्हीं सीता में रम रहा है। वहीं बँध गया है। अभी भी वहाँ से नहीं लौट रहा है। हे गुरुवर्य! आज मुझे जनकराज पुत्री मिलीं। हे करुणानिधान! मैं कहाँ जाऊँ? अपने मन की परिस्थिति किससे कहूँ? आप मेरे मन की स्थिति का चिन्तन तो कीजिए। **गिरिधर** कवि के स्वामी मुझ राम को मेरी नित्य पत्नी अर्थात् साकेतविहारिणी सीता जी मिल गईं।

विशेष– यह गीत भोजपुरी की लोकधुन में निबद्ध है। इसका बोल है–

गुरुवर फूल बगिया में सीता नारी मिललीं सुकुमारी मिललीं।।

सन्दर्भश्लोकः

रामं निर्दूषणं दृष्ट्वा दूषणारिं प्रमोदवान्।
वाष्पपूरितनेत्राब्जः प्रजगौ तत्र कौशिकः।।१।।

भौमी– इस प्रकार दूषण नामक राक्षस के शत्रु श्रीराम को निर्दोष देखकर विश्वामित्र के नेत्रकमल में आँसू भर आये और वे गाने लगे।

गीत संख्या-५

युष्मत्सु मनोरथविबुधवरकल्पलता सफला भवतु श्रीराम हे।
शिवचापं विसभञ्जं भज्यतां तव करेण वयं शम्भुमिति प्रार्थयामहे।।१।।
उभयोः समानरूपगुणसम्पदाभिर्विवाहमिमं समर्थयामहे।
सीता नाम चपलया नित्यमचलया वत्स सङ्गच्छस्व नीरधरश्याम हे।।२।।
तव भुजबलवार्धौ मज्जतु नृपालवलपोतं क्षणं तं च प्रतीक्षामहे।
युवयोर्विवाहमहामङ्गलस्य गीतं नित्यं गिरिधरस्य गिरैव गायाम हे।।३।।

भौमी- हे श्रीराम! आप दोनों की मनोरथरूप कल्पलता फलवती हो, यही मेरा आशीर्वाद है। आपके ही हाथ से कमलनाल की ही भाँति शिवधनुष तोड़ा जाय। हम शंकर जी से यही प्रार्थना करते हैं। दोनों कुल रूप गुण, शील और संपत्ति से समान हैं इसलिये हम इस विवाह का समर्थन करते हैं। हे वत्स! हे घनश्याम! नित्य स्थित रहने वाली सीता नामक बिजली से शीघ्र संगत हो जाओ अर्थात् जैसे बिजली से जुड़कर बादल सुन्दर लगता है उसी प्रकार सीता जी से समागम करके तुम सुशोभित होवो। आपके भुजबल रूप महासागर में राजाओं का बलरूप जहाज डूब जाय हम उसी क्षण की प्रतीक्षा कर रहे हैं और आप श्रीसीताराम के विवाह मंगलगीत को हम **गिरिधर** कवि के वाणी में ही गाते रहें।

विशेष- यह गीत भी मिथिला के वैवाहिक लोकधुन के ढाल में निबद्ध है।

सन्दर्भश्लोकः

अथ जनकनृपेण कौशिकोऽयं सहरघुनायकलक्ष्मणोऽभ्यवन्दि।
मुनिगणसहितो व्रजन् महात्मा द्विजप्रवरैः गदितो निगूढमर्थम्।।१।।

भौमी- इसके अनन्तर राजा जनक जी के द्वारा राम-लक्ष्मण के सहित विश्वामित्र को प्रणाम किया गया तथा मुनिगणों के साथ सीतास्वयम्वर देखने जाते हुये महात्मा विश्वामित्र के प्रति ब्राह्मणों द्वारा गम्भीर अर्थों से युक्त यह वाक्य कहा गया।

गीत संख्या-६

अद्य सीतास्वयम्वरमभीक्षामहे।।
कस्मै ददाति गवि गौरवं गवीशः परिणाममेतं सुभीक्षामहे।
रावणशरासुरप्रभृतिदुर्मदानां विरुदबलं तृणमिवोपेक्षामहे।।१।।
रामबाहुवारिधौ निराधारतरय इव सर्वे निमक्ष्यन्तीत्यपेक्षामहे।
रघुकुलसुकृतं निजाशिषां च प्रमितं तटस्थेन मनसा समीक्षामहे।।२।।
सीतासतीत्वं कृतित्वं सुभुजारेः उभयमद्य प्रीत्या परीक्षामहे।
गिरिधरप्रभुशिशुसप्तहयसमुदयं मिथिलासुप्राच्यां प्रतीक्षामहे।।३।।

भौमी- आज हम सीता जी का स्वयंवर देखेंगे। शिवजी इस पृथ्वी पर किसे गौरव दे रहे हैं यह परिणाम भी आज हम निहारेंगे। रावण-बाणासुर आदि असुर राजाओं के यश और बल की हम तृण के समान उपेक्षा

करेंगे। ये सभी निराधार नौकाओं की भाँति श्रीराम के बाहुबल महासागर में डूब जायेंगे, हम यही अपेक्षा करते हैं। आज हम तटस्थ मन से रघुकुल के पुण्य की ओर अपने आशीर्वादों की सीमा की समीक्षा करेंगे। सीताजी के सतीत्व तथा सुबाहु शत्रु श्रीराम के कृतित्व इन दोनों की आज हम प्रीतिपूर्वक परीक्षा करेंगे और आज हम मिथिलारूप पूर्व दिशा में **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीरामरूप बाल सूर्य के उदय की प्रतीक्षा करेंगे।

विशेष- यह गीत सुगम संगीत की ढाल में निबद्ध है। इसका बोल है-

आज मण्डप लसे देखो सिया के पिया।

गीत संख्या-७

गायति कविः-

रङ्गभूमिं समायातौ दशरथकुमारौ।
नीलपीतपाथोजमञ्जुलशरीरौ रणधीरौ तारुण्यकरुणाकूपारौ।।१।।
रूपशीलसम्पदा विजितभानुसूनू भानुभानू भानुवंशे विहितावतारौ।
काञ्चनकिरीटकाकपक्षधरौ वीरवरौ मन्दमन्दहासविजितकोटिसुधासारौ।।२।।
मधुरकिसलयाधरौ नलिननवनयनौ पाणिधनुर्बाणकटिकलितसरागारौ।
पीतमुपवीतमर्कशिशुवासोवसानौ शोभासुकृतगुणस्वरूपपारावारौ।।३।।
परस्परं वदन्तौ हसन्तौ च बन्धू वात्सल्यसिन्धू क्षपितभूमिभारौ।
गिरिधरप्रभू विलोकयन्त्यो मैथिलान्यो मोदमाना दनुजवंशवनरुहतुषारौ।।४।।

भौमी- कवि गा रहे हैं-आज दशरथ जी के दो राजकुमार रंगभूमि में पधारे हैं। उनके शरीर नीले-पीले कमल के समान सुन्दर और कोमल हैं। ये रणधीर तथा यौवन और करुणा के सागर हैं। इन्होंने अपनी रूपशील सम्पदा से अश्विनीकुमारों को भी जीत लिया है। ये सूर्यनारायण के भी सूर्य हैं और सूर्यवंश में अवतार लिये है। स्वर्णकिरीट और काकपक्षधारी इन दोनों राजकुमारों ने अपनी मंद-मुस्कान से करोड़ों कामदेवों को जीत रखा है। इनके अधर कोमल पल्लव के समान तथा नेत्र नवीन कमल के जैसे हैं। इन्होंने अपने हाथों में धनुष-बाण तथा कटिप्रदेश में तरकश धारण कर रखा है। इन्होंने पीला उपवीत और बालसूर्य के समान पीताम्बर धारण किया है और ये शोभा-पुण्य और गुण के महासमुद्र हैं। भूमिभारहारी वात्सल्य के समुद्र दोनों भाई श्रीराम-लक्ष्मण परस्पर में वार्तालाप करते हुये हँस रहे हैं। इस प्रकार राक्षसवंश रूप कमल वन के लिए हिमपात स्वरूप **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम-लक्ष्मण के दर्शन करके मिथिलानियाँ बहुत प्रसन्न हो रही हैं।

विशेष- यह गीत पश्चिमी उत्तर प्रदेश की लोकधुन में निबद्ध है। इसका बोल है-

राघव हमारे हैं नैनों के तारे।।

सन्दर्भश्लोकः

विलोक्य तौ कोटिरविप्रतापौ विराजमानेषुधिबाणचापौ।
सोढुं क्षमा नैव किशोरवर्यौ श्रीकोसलेन्द्रस्य नृपास्तथोचुः।।१।।

भौमी- इस प्रकार करोड़ों सूर्यों के समान प्रताप वाले तरकश, बाण और धनुष धारण किये हुए महाराज दशरथ के राजकिशोरों को देखकर उनका उत्कर्ष न सहते हुए स्वयम्वरस्थ राजागण बोले–

गीत संख्या-८

ब्रजेम सर्वे निजनिजगृहं नृपालाः।
वीर्यं बलं पौरुषं हित्वा रिक्तकरा भूपालाः।।१।।
धनुर्भङ्गमन्तरेणापि सीता रामं हि वरिष्यति।
यद्यपि रामस्तृणभञ्जं कार्मुकभञ्जनं करिष्यति।।२।।
कुटिलास्तदा निषेधन्तः प्रोचुर्नैवेत्थं वाच्यम्।
वयं स्वयम्वरमिता मानिनो भैक्ष्यं नैव हि याच्यम्।।३।।
तिष्ठन्तः स्वयम्वरे भूपाः परिणामं पश्येम।
सीताकृते कालमागतमपि युद्धे भुवि न्यस्सेम।।४।।
साधुनृपा प्रोचुः भो मूर्खाः श्रियं हरिः परिणेष्यति।
गिरिधरगीरपि मङ्गलगीतं गीत्वा कालं नेष्यति।।५।।

भौमी- हे राजाओं! अब हम लोग पराक्रम, बल और पौरुष यहीं छोड़कर अपने-अपने घर लौट चलें। क्योंकि धनुष-भंग के बिना भी अन्ततोगत्वा सीता जी रामजी का ही वरण करेंगी जबकि श्रीराम, शिवधनुष को छोटे से तिनके की भाँति तोड़ डालेंगे। वहाँ आये हुये कुटिल राजा शिष्ट राजाओं को निषेध करते हुये बोले- नहीं, नहीं। आप लोगों को ऐसा नहीं कहना चाहिये। हम मानी राजागण स्वयम्वर में आये हैं हमें भीख नहीं माँगनी है। स्वयम्वर में बैठे-बैठे पहले हम परिणाम की प्रतीक्षा करें और सीताजी के लिए यदि काल भी आया हो तो उसे युद्ध में जीतकर भूमि पर पटक दें। साधु राजाओं ने कहा-अरे मूर्खों! सीता जी को तो श्रीराम जी ही वरण करेंगे और **गिरिधर** कवि की वाणी भी यह विवाह मंगल गाकर कालक्षेप करती रहेगी।

गीत संख्या-९

श्रृण्वन्तु समे महीक्षितो रामो न ना साधारणः।
हरिरप्रमेयबलोऽजितो ह्यनुजस्तु धरणीधारणः।।१।।
भवहेतुकेशनिमित्तकोपादानकं ह्युभयं नृपाः।
जगदेककारणकारणः संसारसागरतारणः।।२।।
षडयुतबलां सहसुतबलां न्यवधीद्रणे यस्ताटकाम् ।
मुनिमखमवन् कौतुकधनुः कथयत स किं साधारणः।।३।।
सीता महालक्ष्मीरमुष्याह्लादिनी शक्तिर्हरेः।
रामोऽयमीश्वर ईश्वराणां गिरिधरापद्दारणः।।४।।

भौमी- हे राजाओं सुनो! श्रीराम साधारण मनुष्य नहीं हैं। इनके बल का कोई प्रमाण नहीं है। ये किसी से

भी न जीते जाने वाले श्रीहरि हैं। इनके छोटे भाई लक्ष्मण पृथ्वी को धारण करने वाले विष्णु हैं। हे राजाओं! श्रीराम ही संसार के मूल कारण और निमित्त तथा उपादान के दोनों कारण श्रीराम ही हैं। इस संसार के कारणभूत ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी के भी कारण भगवान श्रीराम ही हैं। ये संसार-सागर से तारने वाले हैं। जिन्होंने खिलौने के धनुष से साठ हजार हाथियों के बल वाली ताड़का को उसे दो पुत्रों और सेना के सहित विश्वामित्र जी की यज्ञरक्षा करते हुये युद्ध में मार डाला। बोलो, क्या वे साधारण पुरुष हैं? अरे राजाओं! सीता जी इन्हीं श्रीहरि रघुनाथ जी की आह्लादिनीशक्ति महालक्ष्मी हैं। **गिरिधर** कवि की विपत्ति को नष्ट करने वाले भगवान श्रीराम ईश्वरों के भी ईश्वर हैं।

विशेष- यह गीत राग-दरबारी कान्हरा रूपकताल में निबद्ध है।

सन्दर्भश्लोकः

अथ राजा प्रहृष्टात्मा सखी सर्वाः समादिशत्।
स्वयम्वरे समानेतुं सीता देवीं पतिम्वराम्।।१।।

भौमी- इसके अनन्तर प्रसन्न महाराज जनक जी ने पति वरण के लिए अर्ह भगवती सीता जी को स्वयम्वर में लाने के लिए सखियों को आदेश दिया।

गीत संख्या-१०

जनकनृपतिसुता सीता रङ्गभूमिमागता।
विमलविरुदयुता सीता रङ्गभूमिमागता।।
देहविभाविजितकोटिकोटिकनकदामिनी।
भाविता भविष्णुर्भवे रामभद्रभामिनी।।
नखशिखमद्भुता सीता रङ्गभूमिमागता।।१।।
सखीभिः परीता प्रीता मन्दं चलन्ती।
अबलाशब्दं मोघयन्ती सबलं बलन्ती।।
भव्या करुणान्विता सीता रङ्गभूमिमागता।।२।।
पाणिपद्मलसितमञ्जुनवकञ्जमालिका।
महालक्ष्मीलक्ष्मीर्यथा बाभाति बालिका।।
शौभसौभगयुता सीता रङ्गभूमिमागता।।३।।
चारुशिलाप्रमुखाभिर्जेगीयमाना।
राघवमुखाब्जरसं पेपीयमाना।।
गिरिधरवन्दिता सीता रङ्गभूमिमागता।।४।।

भौमी- राजा जनक की पुत्री सीता जी स्वयम्वर के रंगभूमि में पधार आई हैं। निर्मल यश से युक्त जानकी जी रंगभूमि में उपस्थित हो गई हैं। अपने शरीर की कान्ति से करोड़ों स्वर्ण बिजलियों को जीतने वाली

संसार में सम्मानित श्रीरामभद्र की होने वाली धर्मपत्नी नख से शिखापर्यन्त आश्चर्यमयी सीता जी रंगभूमि में उपस्थित हो गई हैं। सखियों से घिरी हुई अत्यन्त प्रसन्न धीरे-धीरे चलती हुई नारी के अबला नाम को झूँठ करती हुई सबल श्रीराम का ही बल बढ़ाती हुई, भव्य स्वरूप वाली करुणा से युक्त सीता जी रंगभूमि में पधार आयी हैं। सीताजी के करकमल में सुन्दर कमल की माला है। जनकराज की बालिका सीता जी महालक्ष्मी की भी लक्ष्मी के समान अत्यन्त सुशोभित हो रही हैं। कल्याण के समूह और सौन्दर्य से युक्त सीता जी रंगभूमि में आ गईं। चारुशीला आदि सखियों द्वारा सुरुचिपूर्ण गीतों में गाई जाती हुई श्रीराघव के मुखकमल रस को पान करती हुई **गिरिधर** कवि के द्वारा वन्दित सीता जी रंगभूमि में पधार आई हैं।

विशेष- यह गीत द्रुत एकताल बारह मात्रा में निबद्ध है। इसे राग बागेश्री में गाना चाहिए।

सन्दर्भश्लोकः

मैथिला ददृशुश्चोभौ सतृष्णैश्चारुलोचनैः।
जगुश्च मैथिलान्योऽपि तद्दर्शनमहोत्सवाः।।१।।

भौमी- श्रीसीताराम जी के युगलसौन्दर्य को मिथिला-निवासियों ने प्यासे सुन्दर नेत्रों से निहारा और मिथिलानियाँ भी श्रीसीताराम दर्शन से उत्पन्न महोत्सव से सम्पन्न होकर मधुर गीत गाने लगीं।

गीत संख्या-११

सीतारामरूपं सख्यः पश्यत निरुपमं हे
एकं तत्त्वं द्विधाभूतं भाति हे।
कार्यतः कारणतश्च भिन्नमिव दृश्यते हे
परस्पराभिन्नमेवाभाति हे।।१।।
अयोध्यायां विलसति रामाख्यं कारणब्रह्म
दृष्ट्वा नैव नेत्रं तृप्तिं याति हे।
मिथिलायां सीता नाम कार्यब्रह्म विजयते
जनो मोहं वीक्ष्य विजहाति हे।।२।।
अवधे कुमारो रामो त्रिहुतौ कुमारी सीता
एकैवेह लीला प्रतिभाति हे।
स एव कुमारः सैव कुमारीति विजृम्भते
सखी श्वेतोपनिषद् गृणाति हे।।३।।
नीलघनश्यामो रामो चपलेव गौरी सीता
मैथिलानां दुरितं दुनोति हे।
युगलस्वरूपं सखि! रसिकजनानां किल
चेतांसि नितरां धुनोति हे।।४।।

त्यजति न जाड्यं जनको धनुर्भङ्गपणं कृत्वा
विधिर्नापि सुमतिं ददाति हे।
कुलिशकठोरं धनुः शिरिषकिशोरो रामो
हृदि पदं संशयो दधाति हे।।५।।
विभनक्तु विसलताभञ्जं हि पिनाकं रामो
विधिरेतं संयोगं तनोतु हे।
सीतारामपरिणये गिरिधरो गायतु गीतं
मङ्गलानि हेरम्बस्तनोतु हे।।६।।

भौमी– हे सखियों! सीतारामजी का निरुपम रूप देखो। एक ही तत्त्व दो रूपों में परिणत होकर सुशोभित हो रहा है। यह एक ब्रह्म कार्य और कारण भेद से यह भिन्न जैसा दिख रहा है वस्तुतः युगल रूप परस्पर अभिन्न हैं। अयोध्या में श्रीरामनाम से प्रसिद्ध कारण ब्रह्म सुशोभित हो रहा है। इसे देखकर नेत्रों को तृप्ति नहीं हो रही है। उसी प्रकार मिथिला में भी सीतानाम से कार्यब्रह्म सुशोभित हो रहा है जिसे देखकर भावुकजन मोह का त्याग कर देते हैं। अवध में कुमार बनकर श्रीराम रूप में और मिथिला में कुमारी बनकर श्रीसीतारूप में परमेश्वर सुशोभित हैं। हमें तो ब्रह्म की एक ही लीला प्रतीत हो रही है। हे सखी! श्वेताश्वतरोपनिषद भी कहती है कि एक ही परमात्मा कुमार और कुमारी दोनों रूपों में विराजमान हो रहे हैं। नीलघन के समान श्रीराम और बिजली की भाँति श्रीसीता जी ये दोनों मिथिलावासियों के पाप को नष्ट कर रहे हैं। हे सखियों! प्रभु का यही युगलस्वरूप रसिकजनों के चित्तों को बहुत प्रसन्न कर रहा है। धनुर्भंग की प्रतिज्ञा करके महाराज जनक अपनी जड़ता नहीं छोड़ रहे हैं और विधाता भी उनको सद्बुद्धि नहीं दे रहे हैं। परन्तु सखि! धनुष बज्र से भी अधिक कठोर है और श्रीरामभद्र शिरीष पुष्प के समान कोमल हैं। यही संशय हृदय में हो रहा है। भगवान श्रीराम शिवधनुष लता की भाँति तोड़ दें, विधाता यह संयोग उपस्थित करें। इस सीताराम विवाह में **गिरिधर** भी गीत गायें और श्रीगणपति मंगल करें।

विशेष– यह गीत मैथिल अंचल के वैवाहिक लोकधुन में है।

गीत संख्या-१२

पश्य पश्य पश्य सखि सीतारामरूपं हे।
एकं ब्रह्म द्विधा भाति युगलस्वरूपं हे।।१।।
कोटिरतिरमणीया सीतासुकुमारी हे।
कोटिकामकमनीयो रामो भयहारी हे।।२।।
सीतया निन्दितं सखि चम्पकसुवर्णं हे।
रामेणापि नवकन्दं इन्दीवरवर्णं हे।।३।।
सीतायाः सीमन्तं सखि पुष्पगुच्छवेणी हे।
रामस्य कुञ्चिताः केशास्तिलकत्रिवेणी हे।।४।।

सीतायाः कर्णयोर्भाति स्वर्णकर्णपूरं हे।
रामस्य कुण्डलं सखि जितकोटिसूरं हे।।५।।
सीतायाः वदनविधुः शशिकरहासो हे।
रामस्यापि मुखचन्द्रः स्मितशशिलासो हे।।६।।
सीतायाः करे कटकमाणिक्यकलापो हे।
रामस्य विभाति सखि करः शरचापो हे।।७।।
सीतायाश्च रामवर्णं नीलपरिधानं हे।
रामस्यापि सीतासमं पीताम्बरविधानं हे।।८।।
उभावपि चारुचन्द्रौ उभावपि चकोरौ हे।
उभावपि गिरिधरकविचित्तवित्तचोरौ हे।।९।।

भौमी– पुनः मिथिलानियाँ विवाह के लोकधुन में गाती हुई कहती हैं–सखि! देखो–देखो श्रीसीताराम का रूप देखो। एक ही ब्रह्म श्रीसीताराम के युगलस्वरूप में सुशोभित हो रहा है। हमारी सुकुमारी सीताजी करोड़ों रतियों से भी सुन्दर हैं और इधर भक्तभयहारी श्रीराम कोटि–कोटि कामदेवों से भी मनोहर हैं। सखि! जैसे सीताजी ने अपनी शोभा से चम्पा और सुवर्ण को निन्दित किया है उसी प्रकार श्रीराम ने भी अपनी कान्ति से नवीन बादल और नीले कमल को भी लज्जित किया है। सखि! इधर सीता जी का सुन्दर जूड़ा और उसमें फूलों के गुच्छ की वेणी है। इसी प्रकार श्रीराम के भी घुँघराले केश और मस्तक पर तिलक की त्रिवेणी सुशोभित हो रही है। इधर सीता जी के कानों में सुवर्ण का कनफूल सुशोभित है। उधर श्रीराम का भी कुण्डल करोड़ों सूर्यों को जीत रहा है। सखि! जैसे सीता जी का मुख चन्द्र के समान और उनका हास चन्द्रकिरण के समान है, उसी प्रकार श्रीराम का भी मुखचन्द्र और उनका स्मित चन्द्रकिरण का विलास ही है। जैसे सीताजी के हाथ में मणियों से जटित कंकण विराज रहा है, उसी प्रकार श्रीराम का भी श्रीहस्त धनुर्बाण से सुशोभित है। सखि! सीता जी का नीला वस्त्र श्रीराम वर्णी है उसी प्रकार रामजी का भी पीतांबर सीता जी के ही समान पीतवर्णी है। हे सखि! दोनों ही पूर्णचन्द्र हैं और दोनों ही चकोर और दोनों ही श्रीसीताराम दम्पत्ति **गिरिधर** कवि के चित्त वित्त के चोर भी हैं।

सन्दर्भश्लोकः

अथ जनकनिदिष्टा वन्दिनो वन्दनीया
विपुलधरणिगुर्वी सञ्चलद्धारणोर्वीम्।
जनकनृपकृतां तां साभ्यनुज्ञां प्रतिज्ञां
जगदुरभिसभं ते प्रोत्थितोद्यत्भुजा वै।।१।।

भौमी– इसके अनन्तर महाराज जनक के निर्देश से पूज्य वन्दियों ने राजसभा के मध्य उद्यमयुक्त अपनी भुजाएँ उठाकर धारणारूप पृथ्वी को हिलाने वाली धरणी जैसी विशाल महाराज जनक द्वारा की हुई प्रतिज्ञा की घोषणा की।

गीत संख्या-१३

श्रृण्वन्तु वसुमतीभृतो मिथिलापतिप्रतिज्ञाम्।
श्रृण्वन्तु वै महीक्षितोऽशिथिलापतिप्रतिज्ञाम्।।१।।
रामे यथैव सन्मतिं केनाप्यवारिताम्।
श्रृण्वन्तु भो धनुर्भृतो धरणीपतिप्रतिज्ञाम्।।२।।
त्रिपुराम्बुराशिकुम्भजं भूतेशकार्मुकम्।
पश्यन्तु पुण्यसञ्चितो वसुधापतिप्रतिज्ञाम्।।३।।
यः खण्डयेद्धनुष्तं वृणुतां हि मैथिली।
धिन्वन्तु धाम धूर्भृतो धिषणापतिप्रतिज्ञाम् ।।४।।
त्रैलोक्यजयश्रीरिमं वृणुतां समवलिका।
अथ दर्शयन्तु सत्कृतः शक्तेश्च प्रत्यभिज्ञाम्।।५।।
गिरिधरप्रभुर्भनक्तु तच्छिवमेव ब्रूमहे।
अर्चन्तु भूरिभूभृतो जनतापतिप्रतिज्ञाम्।।६।।

भौमी- हे वसुमती! अर्थात् पृथ्वी का पालन करने वाले राजे–महाराजे जनकराज की प्रतिज्ञा सुनिये। हे मही अर्थात् पृथ्वी में निवास करने वाले राजाओं! कभी भी शिथिल न होने वाली मिथिला के स्वामी जनक की प्रतिज्ञा सुनिये। जिस प्रकार श्रीराम में समर्पित सन्तों की बुद्धि को कोई नहीं डिगा सकता, उसी प्रकार किसी के भी द्वारा न डिगायी जाने वाली पृथ्वी पर जनक की प्रतिज्ञा को धनुर्धारी राजाओं एक ओर देखिये वह शिव धनुष जो त्रिपुरासुर रूप महासागर को सोखने वाले अगस्त्य के समान है और दूसरी ओर देखिये पृथ्वीपति जनक की उस प्रतिज्ञा को जिसमें यह संकेत है कि शिवधनुष तोड़ने वाला ही सीता जी को प्राप्त कर सकता है। जो शिव जी का धनुष तोड़ देगा, सीताजी उसी का वरण करेंगी। हे तेज की धुरी धारण करने वाले राजाओं! बुद्धि के स्वामी जनक जी की इस प्रतिज्ञा को प्रसन्न कीजिए। अर्थात् पूर्ण कीजिए। **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम ही धुनष को तोड़ें, इस प्रकार हम शिवजी से प्रार्थना करते हैं। हे पृथ्वीपाल राजाओं! जनता के स्वामी जनकजी की इस प्रतिज्ञा का बहुत सम्मान कीजिए। अर्थात् शिष्टता से धनुष उठाने का प्रयत्न कीजिए, न उठने पर चुपचाप लौट जाइए। क्योकि **गिरिधर** कवि के प्रभु श्रीराम ही इस धनुष को तोड़ सकेंगे, हम यही मंगलाशंसन करते हैं।

विशेष- यह गीत सुगम संगीत गजल धुन में निबद्ध है।

सन्दर्भश्लोकाः

ब्रजन्ति धावन्ति धरन्ति यान्ति
गर्जन्ति तर्जन्ति नमन्ति यन्ति।
तिलं च नोत्तोलयितुं पिनाकं
क्षमन्त ये ते क्षमताविहीनाः।।१।।

हाहाकारो महानासीत् स्वाहाकारविवर्जितः।
नृपेषु भग्नवीर्येषु पिनाकेन कृतेष्वथ।।२।।
जनकः क्रोधतीव्राग्निसद्वपुःकनकस्तदा।
जगाद भर्त्सयन् भूपान् निर्वीर्यान् वीरमानिनः।।३।।

भौमी- राजा जा रहे हैं, दौड़ रहे हैं, धनुष को पकड़ रहे हैं, पुनः लौट रहे हैं, गर्जना कर रहे हैं, धनुष को फटकार रहे हैं, न उठने पर उसे प्रणाम कर रहे हैं और अपने स्थान पर लौट रहे हैं। सामर्थ्य से विहीन राजा पिनाक को तिलभर भी डिगाने में समर्थ नहीं हो रहे हैं। जब पिनाक ने स्वयंवर में आये सभी राजाओं को पराक्रम से हीन करके मसल दिया, तब रंगभूमि में सहसा अग्निहोत्र का स्वाहाकार स्थगित हो गया और हाहाकार मच गया। इसके पश्चात् स्वर्ण जैसे शरीर में उपस्थित क्रोधरूप तीव्र अग्नि से तिलमिलाये हुए महाराज जनक स्वयं को वीर समझने वाले पराक्रमहीन राजाओं की भर्त्सना करते हुये बोले।

गीत संख्या-१४

हरे हरे! दुर्दशा युष्माकम्।
वृथा वीरमानिनो विकत्थथ खादित्वा किं शाकम्।।१।।
द्वीपद्वीपतो देशदेशतः सुरनरदनुजसमेताः।
विहितराजवेशाः स्वयम्वरं प्राप्ता वीर्योपेताः।।२।।
जननीर्निजजनुषा कदर्थयथ चेतसि नो लज्जध्वे।
भ्रुकुंसका यथैव परिनटथ वृथा भुजं सज्जध्वे।।३।।
कीर्तिं श्रियं जानकीं जयमथ किं प्राप्तुं प्रयतध्वे।
श्रीसाकेतपदं च निरयिणो यथावितुं हि यतध्वे।।४।।
गच्छत स्वस्वगृहाणि कातरा राजतगेहेशूराः।
सीता दुरवापा युष्माभिः ब्रजत रङ्गतः क्रूराः।।५।।
जनको नैव प्रतिज्ञां हास्यति सीता वसतु कुमारी।
गिरिधरप्रभुः समाधाता सङ्कटं भक्तभयहारी।।६।।

भौमी- हरे हरे! राजाओं तुम्हारी यह दुर्दशा। अरे! शाक-पात खाकर तुम अपनी व्यर्थ प्रशंसा क्यों करते हो? सभी द्वीपों से सभी देशों से राजवेश धारण करके पराक्रम से युक्त होकर देवता-दानव मानव रूप में तुम लोग इस स्वयम्बर में आये। अपने जन्म से तुम लोग अपनी माताओं को लज्जित कर रहे हो। तुम अपने मन में लज्जित नहीं हो रहे हो। स्त्री-वेशधारी भण्डों की भाँति व्यर्थ नाच रहे हो और व्यर्थ ही अपनी बलहीन भुजाओं को सजा रहे हो। अरे! राजाओं तुम लोग कीर्ति, लक्ष्मी, जानकी एवं विजय को प्राप्त करने का क्यों प्रयास कर रहे हो? साकेत पद को प्राप्त करने के लिये नरकगामी पापियों की भाँति तुम अर्थहीन प्रयत्न कर रहे हो। अरे कायरों! अपने-अपने घर लौट जाओ। घर में ही वीर बनकर पुजवावो! तुम्हें सीताजी कभी भी नहीं मिल सकतीं। दुष्टों! रंगभूमि से बाहर हो जाओ। जनक अपनी प्रतिज्ञा नहीं छोड़ेगा। सीताजी कुमारी ही मेरे घर में रह लेंगी। वस्तुतः भक्तभयहारी **गिरिधर** कवि के स्वामी भगवान श्रीराम ही इस संकट का समाधान करेंगे।

गीत संख्या-१५

हे विधातः साम्प्रतं ननु किं मया प्रविधीयताम्।
लोकधातः स्वव्रतं किल किं मया परिहीयताम्।।१।।
यदि च जानीयां महीयं वीरहीना वर्तते।
तर्हि कृत्वेमां प्रतिज्ञां स्वं न हासं नीयताम्।।२।।
हा धनुस्तिलमात्रमपि नोच्चालयन्ति महीक्षितः।
किमु मया क्षितिजा खलानां पौरुषे विक्रीयताम्।।३।।
नो विधास्येऽहं तथा जनकोऽस्मि सीताया यतः।
सीतयैवाजन्म तापस्या गृहे मे स्थीयताम्।।४।।
किं करोमि क्व यामि भगवन् नैव वर्त्म विलोक्यते।
सपदि मे वीर्यावलम्बं गिरिधरेश्वर दीयताम्।।५।।

भौमी- जनकजी तोड़ी राग में निराशा भरे स्वर में गा रहे हैं। हे विधाता! इस समय मुझे क्या करना चाहिए? हे लोकस्वामी! क्या मुझे निश्चित ही अपना व्रत छोड़ देना पड़ेगा। यदि मैं जानता कि यह पृथ्वी वीरों से विहीन है तो यह प्रतिज्ञा करके स्वयं को क्यों परिहास का पात्र बनाता? हाय! हाय! ये राजालोग शिवधनुष को तिलभर भी नहीं खिसका पा रहे हैं। क्या मैं भूमिकन्या को दुष्टों के पौरुष शुल्क में बेंच दूँ? मैं ऐसा नहीं करूँगा क्योंकि सीताजी का मैं पिता हूँ। भले ही सीता जी जीवनभर तपस्विनी बनकर मेरे ही घर में रह लें। हे भगवन् ! मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? कोई मार्ग नहीं सूझ रहा है। हे **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम अब तो आप ही शीघ्र मुझे अपने पराक्रम का अवलंब दीजिए।

सन्दर्भश्लोकौ

अथ लक्ष्मणकोपपावकः परिजज्वाल जगद्दहन्निव।
जनके रणसर्पिषोद्धतो निदिधक्षुः कुटिलान् महीक्षितः।।१।।
भृकुटीविकटाननो बभौ स तदानीं ननु राघवानुजः।
विकराल इवान्तको जगौ जनकं भूमिभृतश्च भर्त्सयन्।।२।।

भौमी- इसके पश्चात् जनकजी के कथनरूप घी से भड़का हुआ सारे संसार को भस्म करता हुआ-सा, कुटिल राजाओं को जलाने का इच्छुक श्रीलक्ष्मण का क्रोधाग्नि प्रज्ज्वलित हो उठा। उस समय श्रीराम के छोटे भैया लक्ष्मण टेढी-भौहों से भयंकर मुख कांति सम्पन्न होकर संसार का प्रलय करने वाले यमराज की भाँति सुशोभित हुये और जनक एवं स्वयम्वर में आये राजाओं को भर्त्सित करते हुए मारुराग में गीत गा उठे।

गीत संख्या-१६

क्षन्तुं च नोत्सहेऽहं जनकेन यद् दुरुक्तम्।
स्मर्तुं च नोत्सहेऽहं जनकेन यत् कटूक्तम्।।१।।

अनुचितमसाधुगर्ह्यं साध्वसमसभ्यदह्यम्।
मन्तुं च नोत्सहेऽहं जनकेन यद्रुषोक्तम् ।।२।।
दृष्ट्वा सदस्यथार्यं रामं प्रवीरर्यम्।
श्रोतुं च नोत्सहेऽहं जनकेन यद्रुषोक्तम्।।३।।
हे नाथ देह्यनुज्ञां स्यतु भूपतिः प्रतिज्ञाम्।
वोढुं च नोत्सहेऽहं जनकेन यन्मृषोक्तम्।।३।।
गिरिधरप्रभोः प्रतापं धनुर्भङ्क्त्वा दर्शयेऽहम्।
सोढुं च नोत्सहेऽहं जनकेन यत् द्विषोक्तम्।।४।।

भौमी- जनक ने जो दुर्भाग्यपूर्ण वचन कहा, उसे मैं नहीं क्षमा कर सकता। जनक ने चंचलतापूर्ण जो वचन कहा, उसे मैं स्मरण भी नहीं कर सकता। जनक ने जो कटु कहा वह अनुचित है, अपवित्र है और निन्दित है, भयपूर्ण है, असभ्य है और तापक है। इसे मैं नहीं स्वीकार सकता। इस सभा में वीर शिरोमणि बड़े भैया श्रीराम को देखकर मैं वह वाक्य सुन भी नहीं सकता, जिसे जनक ने क्रोध में कहा। हे नाथ! मुझे आज्ञा दीजिए। जनक अपनी प्रतिज्ञा शिथिल करें, क्योंकि जनक ने जो झूठ कहा कि पृथ्वी वीरों से विहीन हो गई है, उस वाक्य को मैं वहन नहीं कर सकता। मैं शिवधनुष तोड़कर **गिरिधर** कवि के स्वामी आप श्रीराम का प्रताप दिखा दे रहा हूँ क्योंकि जनक ने जो द्वेषपूर्ण भाव से कहा उसे मैं सहन नहीं कर पा रहा हूँ।

गीत संख्या-१७

परमहं तत्र भयं पश्यामि उभयदिशि नापभयं पश्यामि।।
सीता मया प्रथमदृशि माता साक्षिणि हरौ स्वीकृता ख्याता।
तदा प्रभृति तद् भावभावितस्तां जानामि नमामि।।१।।
धनुर्भङ्गकृत्सीताभर्ता जनकपणोऽसौ मम सुखहर्ता।
धनुर्भञ्जने पापमितरथा बन्ध्वपमितिं ब्रजामि।।२।।
जनकदुर्वचः श्रावं श्रावं हृदयं द्रवति रुषा जतुद्रावम् ।
अपमानं रघुवंशमणेरिह धातः कथं सहामि।।३।।
धृतधनुश्च योजनशतधावं त्रोटयेय चापं हरिभावम्।
परं विभेमि पापसंस्मारं चेतसि वै ग्लायामि।।४।।
संशोधयतु नृपो निजपणकं रामो द्यतु वा कार्मुकतृणकम्।
गिरिधरप्रभुः धर्मसङ्कटतो मामुद्धरतु लपामि।।५।।

भौमी- लक्ष्मण जी फिर कहते हैं–किन्तु मैं धनुर्भंग में भय देख रहा हूँ। दोनों ही दिशाओं में निर्भयता नहीं देख रहा हूँ। अर्थात् धनुष तोड़ने में पाप और न तोड़ने में प्रभु श्रीराम का अपमान। प्रथम दर्शन में ही श्रीराम की साक्षी मानकर मैंने सीताजी को अपनी माँ मान लिया है। तभी से मैं उसी भाव से भावित होकर सीताजी को माता ही जानता हूँ और माता मानकर प्रणाम करता हूँ। धनुर्भंग करने वाला ही सीताजी का पति बनेगा,

यही जनक का प्रण मेरे सुख को चुरा रहा है, अर्थात् सीता जी का पुत्र होकर मैं धनुष कैसे तोड़ूँ? एक ओर धनुष तोड़ने का पाप और न तोड़ने में बड़े भ्राता का अपमान अनुभव कर रहा हूँ। जनक का दुर्वचन सुन–सुनकर मेरा ह्रदय लाह की भाँति क्रोध से पिघल रहा है। हे विधाता! आज मैं रघुकुल के मणि श्रीराम का अपमान कैसे सह रहा हूँ? मैं धनुष को हाथ में लेकर भगवान् श्रीराम का चिन्तन करके सौ योजनपर्यन्त दौड़कर धनुष को तोड़ सकता हूँ परन्तु पाप का स्मरण करके डर रहा हूँ और चित्त में ग्लानि कर रहा हूँ। या तो जनक अपनी प्रतिज्ञा में संशोधन करें कि लक्ष्मण के द्वारा धनुष तोड़ने पर भी सीता जी का विवाह श्रीराम से ही होगा अथवा श्रीराम ही इस धनुष रूप तिनके को तोड़ डालें। **गिरिधर** कवि के स्वामी भगवान राघव ही मुझे इस धर्मसंकट से बचायें। मैं चिल्ला–चिल्लाकर उनसे प्रार्थना कर रहा हूँ।

सन्दर्भश्लोकः

श्रुत्वेदं मैथिली हृष्टा प्रेमविह्वलमानसा।
मृद्व्या गद्गदया वाचा सूक्ष्मयेदं च सञ्जगौ।।१।।

भौमी– लक्ष्मण का यह वाक्य सुनकर सीता जी बहुत प्रसन्न हुईं। उनका मन प्रेम से विह्वल हो उठा और वे अत्यन्त–सूक्ष्म केवल लक्ष्मण जी के सुनने योग्य प्रेमाश्रु से गद्गद वाणी में इस प्रकार गाने लगीं।

गीत संख्या–१८

त्रातं त्वया चरित्रं हे मागधेय धीमन्।
ख्यातं त्वया चरित्रं राघवविधेय ह्रीमन्।।१।।
निजसन्तुलनमनर्घ्यं रोषेऽपि नो व्यहासीः।
पातं कुलं पवित्रं सुखसेवधे सुधीमन्।।२।।
ज्येष्ठानुवृत्तिरेषा स्ताद् भग्नविघ्नलेषा।
आत्तं यशो यवित्रं यमवारिधे यवीयन्।।३।।
रघुनाथकीर्तिकेतो! रणसिन्धुबाहुसेतो।
लातं शुभं लवित्रं विगतोपधे स्वसीमन्।।४।।
नहि लवकुशौ तथास्तां यथा त्वं मदीयसूनुः।
रातं त्वया वहित्रं गिरिधरकृते प्रधीमन्।।५।।

भौमी– सीताजी गजल की धुन में गाती हुई कहती हैं–हे मागधेय! अर्थात् मगध वंशजा सुमित्रा पुत्र लक्ष्मण! हे बुद्धिमान! तुमने चरित्र की रक्षा कर ली। हे श्रीराघव के अनन्य सेवक! लज्जाशीलकुमार! तुमने चरित्र को प्रसिद्ध कर दिया। क्रोध में भी तुमने अपना सन्तुलन नहीं छोड़ा। हे गुणों की सीमा! हे सुन्दर बुद्धि से सम्पन्न कुमार लक्ष्मण! तुमने आज पवित्र कुल को पाप से बचा लिया। हे संयम के सागर! मझले देवर! बड़े भ्राता के प्रति सेवक–भावना तुम्हारी निर्विघ्न निरन्तर बनी रहे। तुमने प्रवाह शाली यश को प्राप्त कर लिया है। हे श्रीराम की कीर्ति के ध्वज! एवं संग्राम सागर में रघुनाथ जी के लिए अपनी भुजाओं को ही सेतु बनाने वाले निष्कपट भक्तिरूप परमधन की सीमा कुमार लक्ष्मण! तुमने विषय वन को काटने के लिए लवित्र (हँसिया)

रूप कल्याण को प्राप्त कर लिया है। हे प्रकृष्ट बुद्धिमान लक्ष्मण! जिस प्रकार तुम मेरे पुत्र बनकर मेरा वात्सल्य प्राप्त करोगे, ऐसे लवकुश भी नहीं होंगे। तुमने तो **गिरिधर** कवि के लिए संसार सागर के पार तरणार्थ अपना चरित्र रूप जहाज ही दे दिया।

सन्दर्भश्लोकः

तं तथा कुपितं दृष्ट्वा राघवो राघवानुजम्।
शान्त्वयन् शुभया वाचा गीतमेतत् समुज्जगौ।।१।।

भौमी– इस प्रकार छोटे भाई लक्ष्मण को कुपित देखकर श्रीराम उन्हें शान्त करते हुये मधुरवाणी में गीत गाने लगे।

गीत संख्या-१९

न दोषो वत्स भूजानेस्ततस्ते मर्षणीयोऽयम्।
न दोषोऽबुध्यसीपाणेस्ततस्ते मर्षणीयोऽयम्।।१।।
निसर्गाद् ज्ञानसंसर्गाद् परस्तान् मां चतुर्वर्गात्।
न बुद्धो तात संक्रुद्धस्ततस्ते मर्षणीयोऽयम्।।२।।
न सर्वे त्वादृशा बन्धो मदिच्छा हे कृपासिन्धो।
नृसामान्ये कृपा कार्या ततस्ते मर्षणीयोऽयम्।।३।।
बहिष्टो भात्यसौ भोगी हृदा राजा महायोगी।
असौ प्रेम्णश्च प्रारम्भे ततस्ते मर्षणीयोऽयम्।।४।।
त्वमाचार्यो हि जीवानां क्षमा कार्या त्वया भ्रातः।
न गिरिधरदृग्जने रोषस्ततस्ते मर्षणीयोऽयम्।।५।।

भौमी– हे वत्स लक्ष्मण! पृथ्वीपति जनकजी का कोई दोष नहीं है। इसलिये इन्हें क्षमा कर दो। आज इन्होंने अज्ञान को ही तलवार बनाकर हाथ में ले लिया था, अतः इनका दोष नहीं अपितु इनके अज्ञान का दोष है। इसलिये इन्हें क्षमा कर दो। हे तात! स्वभाव से ही धर्म–अर्थ–काम और मोक्ष से तथा ज्ञान के संसर्ग से भी मैं बहुत दूर हूँ। इसीलिये क्रोधावेश में जनक जी मुझे नहीं पहचान पाये। अतः उन्हें क्षमा करो। हे करुणा के सागर छोटे भैया! सभी लोग तो तुम्हारे जैसे नहीं हो सकते। जो मेरी ही इच्छा के अनुसार अपना जीवन चला रहे हों। इन्हें क्षमा कर दो और सामान्य मनुष्य अर्थात् प्राणी पर कृपा कर दो। लक्ष्मण! ये राजा जनक बाहर से भोगी और भीतर से योगी हैं। अभी ये मेरे प्रेम की प्रारम्भिक दशा में हैं। अतः इन्हें क्षमा कर दो। हे भैया लक्ष्मण! तुम सम्पूर्ण जीवों के आचार्य हो। तुम्हें क्षमा करनी ही चाहिये। **गिरिधर** कवि जैसे सामान्य जीव पर तुम्हें क्रोध नहीं करनी चाहिये। अतः तुम जनक जी को क्षमा कर दो।

सन्दर्भश्लोकः

अथ कौशिक एत्य राघवं सुदिदृक्षू रघुभास्करोदयम्।
मिथिला हरिदृश्यमोघदृक् धनुराभङ्क्तुमुपादिशद् हरिम्।।

भौमी- इसके पश्चात् श्रीराघवरूप सूर्य का मिथिला रूप पूर्वदिशा में उदय देखने के इच्छुक विश्वामित्र जी ने श्रीराम के पास आकर उन्हें शिवधनुष तोड़ने का आदेश दिया।

गीत संख्या-२०

उत्तिष्ठ वत्स राघव शं तिष्ठ हस्तलाघव।
खण्डय प्रभो पिनाकं मण्डय शुभेन नाकम्।।
वीता रजनी कुतिमिरजननी सुखं प्रभातं भाति
निर्नक्षत्रं नभश्शुभत्रं समरुणविभा विभाति।
कुमुदावली विलीना कोकी विषादहीना।
खण्डय प्रभो पिनाकं मण्डय शुभेन नाकम्।।१।।
विकसति नलिनी विहसत्यलिनी वियति विहङ्गो रौति
सन्तो मुदिता दुष्टा रुदिता रविं मुनिगणःस्तौति।
हे भानुवंशभानो समुदय द्विषद्कृशानो
खण्डय प्रभो पिनाकं मण्डय शुभेन नाकम्।।२।।
तमस्तोमनीहारहर धनुर्भञ्जय शीघ्रं देव
जय मन्देहान् रञ्जय जनकं उदितो भव स्वयमेव।
न कुरुष्व भो विलम्बं हरलोकभीकदम्बं
खण्डय प्रभो पिनाकं मण्डय शुभेन नाकम्।।३।।
अस्तङ्गतः शशी सहभार्यः प्राच्यामरुणं पश्य
आलोकं गिरिधराय दिश हरकार्मुक तमो निरस्य।
हे राम रश्मिमालिन् समुदेहि सौख्यशालिन्
खण्डय प्रभो पिनाकं मण्डय शुभेन नाकम्।।४।।

भौमी- हे वत्स राघव! उठो। हे हस्तलाघव सम्पन्न श्रीराम! कल्याण करो। हे प्रभो! पिनाक तोड़ दो और स्वर्ग को भी शुभ से अलंकृत कर दो। देखो प्रभो! अब राजाओं की आशारूप रात्रि बीत गई है जो नैराश्यरूप अन्धकार को जन्म दे रही थी। विज्ञान का प्रभातकाल सुखपूर्वक सुशोभित हो रहा है। मंगलों का रक्षक आकाश तारागणों से हीन हो चुका है। सूर्य के सारथी अरुण की कान्ति पूर्णरूपेण चमकने लगी है। कुमुदों का समूह छिप गया है। चक्रवाकी प्रसन्न हो उठी है। अर्थात् सूर्योदय का पूर्ण वातावरण उपस्थित है। कमलिनी विकसित हो रही है, भ्रमरी मुस्कुरा रही है, आकाश में पक्षी कलरव कर रहे हैं, सन्त प्रसन्न हो रहे हैं, दुष्ट रो रहे हैं और मुनिगण सूर्य नारायण की स्तुति कर रहे हैं। हे शत्रुओं को भस्म करने वाले अग्नि! हे सूर्यकुलकमल के सूर्य श्रीराम अब आप उदित हो जाइये। तोड़ दीजिये शिवधनुष। हे देव! अब अन्धकार और कुहरे रूप शिवधनुष को स्वयं तोड़ दीजिए। मन्द चेष्टा वाले मन्देह नामक असुरों को जीत लीजिए। जनकरूप कश्यप को प्रसन्न कीजिए। स्वयं उदित हो जाइये। विलम्ब मत कीजिए। प्राणियों का भय समूह नष्ट कर दीजिए। पिनाक

तोड़िए और स्वर्ग में सुख वितरण कीजिए। हे प्रभो! पत्नी सहित चन्द्रमा अस्ताचल को जा चुके हैं। देखिये! पूर्व दिशा में अपने सारथी अरुण को। **गिरिधर** कवि को भी प्रकाश दीजिए। शिवधनुष रूप अन्धकार को नष्ट कीजिए हे सुखस्वरूप श्रीराम रूपसूर्य! अब उदित हो जाइये। पिनाक तोड़ दीजिए। कल्याण से स्वर्ग को भर दीजिए।

विशेष– यह गीत सुगम संगीत की ढाल में है। इसमें रूपकातिशयोक्ति अलंकार का बहुशः प्रयोग हुआ है।

सन्दर्भश्लोकः

जनक एत्य निरीक्ष्य रघूत्तमं प्रभुमुखोडुपचारुचकोरकः।
नयननीरजनीरनिमीलितः प्रणिजगौ कुशिकात्मजमादरात्।।१।।

भौमी– श्रीराम मुखचंद्र के सुन्दर चकोर महाराज जनक धनुष तोड़ने के लिये उद्यत रघुनाथ जी को निहारकर अपने कमल नेत्रों को अश्रुपूर्ण करके विश्वामित्र के पास आकर आदरपूर्वक गाने लगे।

गीत संख्या–२१

आदिष्टो रघुराजकुमारो रामः शिरिषकुसुमसुकुमारः।।
गौरीपतिचापं त्रुटतु वा न वा राममुखचन्द्रशोभा न यातु।
भवनं भवापं भवतु वा न वा रामभद्रो न भद्रं जहातु।।१।।
क्वेदं धनुः कमठपृष्ठपविकठोरं क्वेमं प्रभो पश्य पङ्कजकिशोरम्।
कुशलं सुखापं लसतु वा न वा लक्ष्मणाग्रजो न लक्ष्यं लुनातु।।२।।
भवद् वचस्तो याति तरसा तरस्वी जिघृक्षते बालहंशो मन्दरं मनस्वी।
जनाः स्वसन्तापं जहतु वा न वा रामचन्द्रो न धृतिं विजहातु।।३।।
नो शोचामि प्रतिज्ञां नीतां न चिन्तयामि कुमारीं सीताम्।
इतरं परितापो दहतु वा न वा रामो गिरिधरमनसि नित्यं भातु।।४।।

भौमी– हे गुरुवर्य! आपने शिवधनुष तोड़ने के लिये शिरीष पुष्प के समान सुकुमार रघुराज कुमार श्रीराम को आदेश दे दिया है। भगवन्! शिवजी का धनुष टूटे चाहे न टूटे, परन्तु रामचंद्र के मुखचंद्र की शोभा समाप्त न हो अर्थात् श्रीराम मुस्कुराते रहें। महर्षे! मेरा भवन कल्याण से युक्त हो या न हो परन्तु रामभद्र भद्र न छोड़ें अर्थात् कल्याण से दूर न हों। प्रभु देखिये! कहाँ यह कछुए की पीठ और वज्र से भी कठिन यह शिवधनुष और कहाँ कमल के समान कोमल श्रीराम! मेरा मंगल सुख से सुशोभित हो या न हो पर लक्ष्मण के बड़े भैया श्रीराम हमारे भाव लक्ष्य को दूर न कर दें। आपकी आज्ञा मानकर श्रीराम बड़े वेग से धनुष की ओर बढ़ रहे हैं। आज साहसी बालहंस मन्दराचल को उठाना चाहता है। लोग अपना दुःख छोड़ें या न छोड़ें परन्तु श्रीराम अपना धैर्य न छोड़ें। मैं अपनी की हुई प्रतिज्ञा का शोक नहीं कर रहा हूँ और न ही सीता जी के कौमार्य की चिन्ता कर रहा हूँ। मेरा यह पश्चाताप किसी को दुःखी करे या न करे परन्तु श्रीराम **गिरिधर** कवि के हृदय में नित्य सुशोभित होते रहें।

विशेष- यह धुन कवि की स्वयं की उपज है और यहाँ क्रियाओं का प्रयोग बहुत चामत्कारिक रूप से प्रस्तुत हुआ है।

गीत संख्या-२२

भारती गायति-

राघवो रङ्गमञ्चादुत्तिष्ठति।
मन्ये प्रातरध्युदयगिरिहरि दिशिशिशुरविरुत्तिष्ठति।।१।।
कुपितलक्ष्मणारुणसम्प्रेरितरघुकुलकुबलयभानुः।
उदयति मिथिलाप्राच्यां पश्यत खलकुलकदनकृशानुः।।२।।
विबुधसत्सरोरुहनिकुरम्बं मोदयतीह स्वकिरणैः।
लोचनभृङ्गवरूथं पश्यत मृडयति मोदवितरणैः।।३।।
परमहंसहंसादिविहगरोरूयमाणगुणगाथः।
शनैः शनैः श्रेणीतोऽवतरति भुवं भूमिपतिनाथः।।४।।
दानिमणिः किल दानीश्वरगतिरस्तहेयदौर्गुण्यः।
मन्दं मन्दं चलति चालयति सुमनांस्यधिसाद्गुण्यः।।५।।
कण्ठीरवो द्युरदयूथादिव नृपवरूथतो रामः।
निर्भीको निर्याति निरतिशयसौभगविगणितकामः।।६।।
मुदितमैथिलानीनेत्रैर्नीराजितनीरजनयनः।
ययौ गरुड इव धनुरहिमथ कविगिरिधरनुतगुणचयनः।।७।।

भौमी- अब सरस्वती जी गा रही हैं-श्रीराघव धनुष तोड़ने के लिए रंगमंच से उठकर नीचे आ रहे हैं। मुझे लगता है प्रातःकाल पूर्व दिशा में उदयाचल पर्वत पर बालसूर्य ही उदित हो रहे हैं। देखो! मिथिलारूप पूर्व दिशा में राक्षस कुल को नष्ट करने के लिए अग्निस्वरूप क्रुद्ध लक्ष्मणरूप अरुण से प्रोत्साहित होकर रघुकुल कमल के सूर्य उदित हो रहे हैं ये अपने किरणों से अनेक संत रूप कमल समूहों को प्रसन्न कर रहे हैं। देखो! अपने आनन्द दान से नेत्ररूप भ्रमरों को भी सुख दे रहे हैं। कोटि-कोटि परमहंस रूप, हंस आदि पक्षियों द्वारा जिनकी दिव्यगुण गाथाएँ गाई जा रही हैं, ऐसे राजाओं के भी राजा श्रीराम सीढ़ियों से धीरे-धीरे नीचे उतर रहे हैं। हेय दुर्गुणों से रहित! सभी श्रेष्ठ गुणों से युक्त! प्रभु श्रीराम स्वयं दानियों में शिरोमणि होकर भी मतवाले हाथी की भाँति धीरे-धीरे चल रहे हैं और सज्जनों के श्रेष्ठ मनों को भी चला रहे हैं। अपने निरतिशय सौन्दर्य से कामदेव को भी अपमानित करने वाले श्रीराम हाथी समूहों के बीच से सिंह की भाँति धीरे-धीरे राजाओं के बीच से निर्भीकतापूर्वक निकलकर धनुष की ओर बढ़ रहे हैं। **गिरिधर** कवि के द्वारा जिनके गुणसमूहों को नमन किया गया है, ऐसे कमलनेत्र प्रभु श्रीराम प्रसन्न मैथिलानियों द्वारा नेत्रों से नीराजित होते हुए धनुष के पास उसी प्रकार उपस्थित हुये जैसे सर्प के पास गरुड जाते हैं।

गीत संख्या-२३

विश्वामित्रः राघवं प्रति-

राघव निजो मिथिलापतेः प्रेमा विलोक्यताम्।
निजपादपद्मसन्मतेः स्थेमा विलोक्यताम्।।१।।
यो योगभोगसम्पुटे मणिवत्सुगोपितः।
त्वयि तस्य प्रकटितस्थितेर्गरिमा विलोक्यताम्।।२।।
गेहेऽपि यो विदेहतां यत्नं विना गतः।
त्वयि तस्य सौम्यकृतरतेः प्रथिमा विलोक्यताम्।।३।।
यो याज्ञवल्क्यसेवया योगीन्द्रतामितः।
त्वयि तस्य तातधृतधृतेर्लघिमा विलोक्यताम्।।४।।
यो न दग्धः कालहुतभुजा न क्लिन्नो हि मान्या।
गिरिधरप्रभौ सन्द्रुतगतेर्महिमा विलोक्यताम्।।५।।

भौमी- श्रीविश्वामित्र जी राघव जी को सम्बोधित करते हुए गा रहे हैं। हे राघव! आप अपने प्रति मिथिलापति जनक जी का प्रेम तो देखिये। अपने चरणों में समर्पित बुद्धि वाले जनकजी की स्थिरता तो देखिए। आपश्री का जो प्रेमरत्न जनकजी द्वारा योग-भोग के संपुट में छिपाकर रखा गया था, आपको देखते ही प्रकट की हुई स्थिति वाले उस प्रेम की गरिमा तो देखिये। जो प्रयास के बिना घर में रहकर भी विदेहता को प्राप्त हो गये। हे सौम्य! आपमें अनुराग करने वाले उन जनक की प्रतिष्ठा तो देखिये। हे तात! जो याज्ञवल्क्य जी की सेवा करके योगीन्द्र बन गये, उन्हीं आपश्री में सात्विक धारणा धारण किये हुये जनकजी की लघिमा अर्थात् माधुर्य भाव से प्रस्तुत सहजता तो देखिये। राघवेन्द्र! जो जनक प्रलयकाल की अग्नि से भी नहीं जले और हिमालय की बर्फ राशि में भी नहीं गले, **गिरिधर** कवि के स्वामी आपश्री में वेगयुक्त गति वाले उन जनकजी वेदान्त के नीरस पक्ष को छोड़कर अब आपका उसी प्रकार तीव्रगति से आश्रय ले रहे हैं। जैसे प्यासा हाथी दौड़कर सरोवर में कूद पड़ता है।

गीत संख्या-२४

कौशिको जनकं प्रति-

राजन् ! राम चरणनखचन्द्रो भज्यतां संशयः समस्तस्त्यज्यताम्।
एष कृपामयकरुणासिन्धुः परमेश्वरो जगत्त्रयबन्धुः दीनानाथो विभुविवन्धुः
अस्मिन् मनुजमतिर्मनुजेन्द्र भज्यताम्।।१।।
एष ब्रह्म भक्तभयहारी रामो दशरथभवनविहारी स्वेच्छामयमङ्गलतनुधारी
अस्मात् सन्देहदोहः समुत्सृज्यताम्।।२।।
रघुनाथो बलिविक्रमसीमा वेदान्तैर्वेद्यः सुस्थेमा भूजानिभूयिष्ठो भूमा
धनुःकरिणे रघुसिंहो विसृज्यताम्।।३।।

भङ्क्ष्यत्ययं द्रुतं शिवचापं सीताजयमालया सुखापं लप्स्यत एनं कीर्तिकलापम्
सुकविगिरिधरेण शरणं स व्रज्यताम्।।४।।

भौमी- विश्वामित्र जी राजाजनक को सम्बोधित करके गा रहे हैं। हे राजन! श्रीराम के चरण के नखचन्द्र का भजन करिये। सम्पूर्ण संशय छोड़ दीजिए। ये कृपामूर्ति, करुणा के सागर, परमेश्वर, तीनों लोकों के बन्धु, दीनों के दीन, अहल्या, सबरी, तारा के भी नाथ, सर्वव्यापक और विपत्ति के सहायक हैं। हे राजन! इनके विषय में आप अपनी मानव बुद्धि छोड़ दीजिए। ये श्रीराम! दशरथ जी के भवन में विहार करते हुये भी भक्तभयहारी परब्रह्म परमेश्वर हैं। इन्होंने अपने भक्तों की इच्छा से लीला में बालस्वरूप धारण किया है जबकि हैं पुराण पुरुष। इनसे सम्पूर्ण संदेहों का समूह दूर कर दीजिए। श्रीरघुनाथ जी बल और पराक्रम की सीमा हैं। इन्हें वेदान्त वाक्यों से जाना जा सकता है। इनकी स्थिति सुन्दर है। ये पृथ्वी के स्वामी, सबसे श्रेष्ठ, भूमा, परब्रह्म हैं। अतः धनुषरूप हाथी को मसलने के लिये इन रघुकुल के सिंह श्रीराम को अनुमति दी जाय। ये श्रीराम शीघ्र ही शिवधनुष तोड़ेंगे और सीता जी भी जयमाला के माध्यम से सुखपूर्वक प्राप्त किये जाने वाले यशः समूहों से युक्त इन श्रीराम को प्राप्त करेंगी और अब सुकवि **गिरिधर** के द्वारा भी इन्हीं श्रीराम की शरणागति स्वीकार कर ली जाय। महाराज जनक आप संदेह छोड़ दीजिए।

गीत संख्या-२५

कविर्गायति-

समुदितो मिथिलाम्बरे राघवभानुः।
नत्वा गुरून् सुमञ्चमुदयगिरिमभिकरलम्बितजानुः।।१।।
मनसिजनीरदसदृशशरीरः कुण्डलचुम्बितगण्डः।
शरच्छर्वरीपतिसमाननः कामकलभभुजदण्डः।।२।।
श्रीवत्साङ्कवक्षसा सुतरुणतुलसीस्त्रजं दधानः।
बालदिवाकरदीधितिनिन्दकपीताम्बरं वसानः।।३।।
मन्दं मन्दं चलंश्चपलयत् पदरुचिपारमहंसः।
पारिजात इह योगिजनानां पुरहरमानसहंसः।।४।।
मञ्चादवतीर्णं निरीक्ष्य गच्छन्तं चापसमीपम्।
वर्धयते गिरिधरो मङ्गलैर्रामं रघुकुलदीपम्।।५।।

भौमी- अब कवि गा रहे हैं। आज मिथिला के आकाश में श्रीराघवरूप सूर्यनारायण उदित हो गये हैं। गुरुजनों को प्रणाम करके आजानुबाहु प्रभु मंचरूप उदयाचल पर बालसूर्य जैसे देदीप्यमान हैं। श्रीराम का श्रीविग्रह कामदेव के बादल के समान है। उनके कपोलों को कुण्डल स्पर्श कर रहे हैं और प्रभु का मुख शरत्पूर्णिमा के चन्द्र के समान है और उनकी भुजाएँ कामदेव के हस्थिशावक के सूँड़ के समान हैं। अपने श्रीवत्सांकचिन्हित वक्षस्थल पर प्रभु ने नवीन तुलसी माला को धारण किया है और बालसूर्य की किरणों को निन्दित करने वाला पीताम्बर भी धारण कर रखा है। प्रभु धीरे-धीरे चलते हुये अपने श्रीचरण की शोभा से

परमहंस समूहों को भी आकर्षित कर रहे हैं। प्रभु योगियों के लिये कल्पवृक्ष एवं शिव जी के मनमानस सरोवर के राजहंस हैं। इस प्रकार मंच से उतरकर धनुष के समीप गये हुये रघुकुल के दीप श्रीराम को **गिरिधर** कवि अपने मङ्गलों से वर्धापित कर रहे हैं।

सन्दर्भश्लोकः

सीता निरीक्ष्य रघुनन्दनमभ्यसूनु -
वैर्यायुधं शिरिषकौसुमसौकुमार्यम्।
अस्तौद् वृषध्वजमथो गिरिजागिरीशा-
विच्छारघूत्तमकरेण पिनाकभङ्गम्।।१।।

भौमी- भगवती सीता जी शिरीष पुष्प के समान सुकुमार श्रीराम को 'अ' अर्थात् विष्णु के 'सूनु' अर्थात् पुत्र कामदेव के 'वैरी' अर्थात् शत्रु शिव जी के आयुध पिनाक धनुष के समीप उपस्थित देखकर श्रीराम के ही हाथ से धनुर्भंग की इच्छा करती हुई वृषध्वज अर्थात् जिनका ध्वज चूहे के चिन्ह से युक्त है, ऐसे गणपति-पार्वती एवं शिवजी की स्तुति करने लगीं।

विशेष- संस्कृत में 'वृष' शब्द का बैल और चूहा ये दो अर्थ होते हैं। अतः वृषध्वज गणपति और शिव इन दोनों का नाम है।

गीत संख्या-२६

अद्य प्रसीदतु मयि हेरम्बः।
त्रैयम्बकस्त्र्यम्बकं शङ्करमनकूलयतु मयि सपदि साम्बः।।१।।
क्व धनुःपविकठिनं क्व च रामः श्यामः शिरिषमृदुरधरबिम्बः।
भुवनगुरुः कुरुतां लघुतां धनुषो मम यातु विपत्तिकदम्बः।।२।।
मृत्युञ्जय मम मृत्युर्निश्चितः क्रियते यदि किल कोऽपि विलम्बः।।
पुरहर कुरु यथा धनुर्द्यतु गिरिधरमनोनलिनललितरोलम्बः।।३।।

भौमी- आज गणपति मुझ पर प्रसन्न हो जायँ। अम्बा पार्वती के सहित आप त्रैयम्बक अर्थात् त्र्यंबक शिव जी के पुत्र गणेश जी तीन नेत्रों वाले शिव जी को अनुकूल कर लें। जिससे पिनाक टूटने पर उन्हें कोई आपत्ति न हो। कहाँ वज्र से भी कठिन धनुष और कहाँ बिम्ब के समान अधर वाले शिरीष जैसे कोमल श्यामांग श्रीराम अब तो सम्पूर्ण भुवनों के गुरु शिवजी ही इस धनुष को हल्का कर दें जिससे मेरी विपत्तियों का समूह समाप्त हो जाय। हे मृत्युंजय! यदि आपने किसी प्रकार का विलम्ब किया तो मेरी मृत्यु निश्चित मानिये। हे त्रिपुरासुर के शत्रु! अब आप वही करिये जिससे **गिरिधर** कवि के मनरूप कमल के सुन्दर भ्रमर श्रीराम आपका पिनाक धनुष तोड़ सकें।

विशेष- यह गीत तीन ताल सोलह मात्रा में निबद्ध है। यह यमन कल्याण राग में गाया जा सकता है।

सन्दर्भश्लोकः

अथ शिवः प्रकटीकृतविग्रहः प्रभुपदाम्बुजमञ्जुमधुव्रतः।
त्रिनयनाश्रुजलैः प्रमुदार्द्रयन् रघुपतिं सुमतिः किल सञ्जगौ।।१।।

भौमी– इसके अनन्तर श्रेष्ठ बुद्धि वाले श्रीरामचंद्र के चरण कमल के भ्रमर भगवान शिव अपने स्वरूप को प्रकट करके तीनों नेत्रों की अश्रुधारा से राघव जी को स्नान कराते हुए इस प्रकार गाने लगे।

गीत संख्या–२७

राघव पिनाकमभिभञ्जय जनकजनतामभिरञ्जय।
विराडहङ्कारभूतं मम धनुःपोतं बाहुवीर्यवारिधौ निमज्जय।।१।।
महामत्तमहीजानिदानिदानदानं रघुसिंहगर्जनैर्विगुञ्जय।
भानुकुलभानो स्वप्रतापरश्मिरोचिषा सन्देहतिमिरं विभञ्जय।।२।।
स्वयम्वरनृपान् जित्वा भुवनविजयलक्ष्मीं विश्वकलकीर्तिं जानकीं जय।
गिरिधरप्रभो धनुर्भङ्क्त्वा स्वकण्ठ सीताजयमालामासञ्जय।।३।।

भौमी– हे राघव! मेरा पिनाक धनुष तोड़ दीजिए और जनक की जनता को प्रसन्न कर दीजिए। विराट् के अहंकार स्वरूप मेरे धनुष रूप जहाज को अपने बाहुपराक्रम समुद्र में डुबो दीजिए। मतवाले राजवंशरूप गजेन्द्रों के गर्वरूप मद को अपने सिंह गर्जन से समाप्त कर दीजिए। हे सूर्यकुल के सूर्य! अपने प्रताप सूर्य की किरणों की शोभा से सन्देह रूप अन्धकार को नष्ट कर दीजिए। स्वयंवर में आये राजाओं को जीतकर संसार की विजयलक्ष्मी श्रेष्ठ–कीर्ति और जानकीजी को भी जीत लीजिए। हे **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम धनुष तोड़कर सीता जी द्वारा समर्पित जयमाला को अपने गले में स्वीकारिये।

विशेष– यह गीत अवधी के नचारी धुन में निबद्ध है।

गीत संख्या–२८

कविर्गायति–

हरिर्धनुर्वामकरे धृतवान्।
सीतापुलकसमेतमथो मौर्वीं सज्जां कृतवान्।।१।।
गरुडो लघुं सर्पशावकमिव धनुरङ्गीकृतवान्।
वलान्मण्डलीकृतं गगनमिव क्षणाद् द्विधा कृतवान्।।२।।
मध्ये भङ्क्त्वा पश्यति लोके जनशोकं हृतवान्।
सिंहो यथाक्षिपत् खण्डौ द्वौ मोहं परिहृतवान्।।३।।
जयजयकारं जल्पति सुजने भयमपि संहृतवान्।
गिरिधरप्रभुर्वीर्यकुसुमैर्भूमिजामलङ्कृतवान् ।।४।।

भौमी– कवि स्वयं गा रहे हैं। श्रीहरि ने अपने वाम हाथ से धनुष पकड़ा और सीता जी की पुलकावली

के साथ धनुष को उसी प्रकार दबोचा जैसे गरुड छोटे से साँप के बच्चे को मसल देता है। बलपूर्वक धनुष को आकाश की भाँति मण्डलीकृत करके प्रभु ने उसे एक क्षण में दो टूक कर दिया। लोगों के देखते-देखते धनुष को मध्य से तोड़कर प्रभु ने भक्तों का शोक हर लिया। सिंह की भाँति राम ने धनुष के दोनों टुकड़ों को फेंक दिया और मोह दूर कर दिया। लोगों के जय-जयकार करते-करते प्रभु ने संसार का सारा भय हर लिया। **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम ने अपने पराक्रम के पुष्पों से भूमिनन्दिनी सीताजी को सजा दिया।

गीत संख्या-२९

कविर्गायति-

भञ्जितं भञ्जितं भञ्जितं हे राघवेन्द्रेण शम्भुधनुर्भञ्जितम्।।१।।
राज्ञो विदेहस्य रक्षिता प्रतिज्ञा स्वयम्वरे राजकुलं निर्जितम्।।२।।
बाहुबलवारिनिधौ महामत्तनृपाणां प्लवोपमं वैभवं निमज्जितम्। ।३।।
भानुवंशहरिणा दशाननादिगजानां गर्जतैव मदगण्डं गञ्जितम्। ।४।।
सुमनांसि वर्षतां सुमनसां सुमनसां सुमनो विलोकनैः सभाजितम्।।५।।
जानकीजयेन सह त्रिलोकविजयलक्ष्म्या राजकुलं श्रीहतं पराजितम्।।६।।
सुकविगिरिधरेण गीतं गायता मनो दृशाऽपि रामभद्र भुजबलं नीराजितम्।।७।।

भौमी- कवि स्वयं भोजपुरी लोकधुन की झमक तरंग में गा रहे हैं। अहो! तोड़ दिया गया, तोड़ दिया गया, तोड़ दिया गया। राघवेन्द्र जी के द्वारा शिवधनुष तोड़ दिया गया। महाराज जनक की प्रतिज्ञा की भी श्रीराम ने रक्षा कर ली और स्वयम्वर में भी राजकुल को जीत लिया। प्रभु ने अपने बाहुबलरूप समुद्र में अत्यन्त मतवाले राजाओं के वैभव को जहाज के समान डुबो दिया। सूर्यवंश के श्रीरामरूपसिंह ने गरज कर रावणादि मतवाले हाथियों का मद चूर कर दिया। पुष्पवर्षा करते हुए सुन्दर मन वाले देवताओं के सुन्दर मन को अपनी चितवन से सम्मानित कर दिया। जानकी जय के साथ तीनों लोकों की विजय लक्ष्मी के द्वारा श्रीहत् राजवंश को पराजित कर दिया। इसी प्रकार गीत गाते हुए सुकवि **गिरिधर** के द्वारा भी अपने मानसिक नेत्रों की नीराजना से श्रीरामभद्र के भुजबल की आरती उतार ली गई।

गीत संख्या-३०

गायति कविः

देवा दिवि सुमनांसि वर्षन्ति सुरवध्वो गायन्ति हे।
राघवभुजयुगमभितो निरीक्ष्य सुमनोगणाः कायन्ति हे।।१।।
नृत्यन्ति मैथिलनार्यो वसनमणिं वारयन्ति हे।
बारम्बारं रघुवीरं दर्शं दर्शं निमिषाणि निवारयन्ति हे।।२।।
सीताधृतपुलकशरीरा नयननीरा राजमाना हे।
गोपयन्ती मनसि निजभावं चपलाछविर्भ्राजमाना हे।।३।।
सुरनरमुनयस्तु बधिरा धर्नुध्वनिं विचारयन्ति हे।
गिरिधरप्रभुरतूत्रुटत् भवचापं जय जय समुच्चारयन्ति हे।।४।।

भौमी- कवि स्वयं मिथिला की लोकधुन में गा रहे हैं-देवता आकाश से पुष्पों की वृष्टि कर रहे हैं। देवबधुएँ गा रही हैं। श्रीराम के दोनों भुजाओं के दर्शन करके देवताओं के समूह हर्षध्वनि कर रहे हैं। मिथिला की नारियाँ नाच रही हैं। वस्त्र और मणि निछावर कर रही हैं। बार-बार श्री रघुवीर को देख-देखकर अपनी पलकें नहीं गिरा रही हैं। बिजली के समान चमक रही सीताजी अपने मनोभावों को छिपाती हुई शरीर में रोमाञ्च और नेत्रों में अश्रुपूरित होकर प्रकाशमान हो रही हैं। देवता, मनुष्य, मुनि धनुर्भंग ध्वनि से बहरे होकर उस पर विचार कर रहे हैं। **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम ने शिव-धनुष तोड़ दिया है, यह निश्चय करके जय-जयकार कर रहे हैं।

सन्दर्भश्लोकः

अथो शतानन्दनिदेशतः सती जगाम सीता जयमालया मुदा।
रघूत्तमं भग्नभवेशकार्मुकं पुरश्चिकीर्षुस्तनुमल्लिमालया।।१।।

भौमी- इसके अनन्तर ब्रह्मर्षि शतानन्द के निर्देश से साध्वी सीताजी शिव धनुष तोड़ने वाले प्रभु राम को सूक्ष्म चमेली की माला से मंडित जयमाला से पुरस्कृत करने की इच्छा करती हुई श्रीरघुनाथ जी के समीप प्रसन्नतापूर्वक पधारीं।

गीत संख्या-३१

सीता राघवसमीपमभियाति करकञ्जजयमालिका।।
सखीभिः परीता स्वभावतः पुनीता।
पीतपरिवीता विशारदा विनीता।।
सीता निरुपमां शोभामादधाति करकञ्जजयमालिका।।१।।
ससङ्कोचं शनैः शनैः चतुरा चलन्ती।
गत्या स्वया गर्जीं बालहंसीं हसन्ती।।
सीता मूर्तिमती सुषमेव भाति करकञ्जजयमालिका।।२।।
करसरोजजयमाला विश्वविजयशोभा।
लावण्यलक्ष्मीरामचन्द्रमनोलोभा ।।
सीता प्रत्यङ्गं कान्तिं कुष्णाति करकञ्जजयमालिका।।३।।
अद्य मधुरमङ्गल्या मधुमयी बेला।
धन्यतां प्रयाति चाद्य जीवनसुवेला।।
सीता परमानन्दवारिधौ स्नाति करकञ्जजयमालिका।।४।।
कङ्कणसुकिङ्किणीनूपुरध्वनिद्वारा ।
महाछविलसलनेव रूपपारावारा।।
सीता रामभद्रमानसं क्रीणाति करकञ्जजयमालिका।।५।।
धनुर्भङ्गे निनदति दुन्दुभीपणवतूर्ये।

अधिमञ्चं तिष्ठति दिनेशवंशधूर्ये।।
सीता गिरिधरस्य भवभयं शृणाति करकञ्जजयमालिका।।६।।

भौमी- कमलकर में जयमाला लेकर सीताजी श्रीराघव के समीप जा रही हैं। सखियों से घिरी हुई स्वभावतः पवित्र, वैदिक, गीतों में गाई हुई, परम चतुर विनम्र सीता जी निरुपम शोभा धारण कर रही हैं। संकोच के साथ धीरे-धीरे चलती हुई अपनी गति से हथिनी और राजहंसी की भी हँसी उड़ाती हुई चतुर सीता जी शरीर धारण की हुई परमशोभा जैसे प्रतीत हो रही हैं। कमलकर में वर्तमान जयमाला में विश्वविजय की शोभा धारण करती हुई अपनी रूपमाधुरी की लक्ष्मी से श्रीराम के मन को लुभाती हुई सीता जी अपने प्रत्येक अंग में कमनीयता का पोषण कर रही हैं। आज मधुर मंगल प्रयोजन वाली मधुमई बेला है। आज जीवन की ऊषा भी धन्यता को प्राप्त कर रही है। सीता जी परमानन्द सागर में स्नान कर रही हैं। महाछविमयी देवी जैसी रूप की नदी जैसी सीताजी कंकण-किंकिणी और नूपुर के कलरव द्वारा भगवान रामचन्द्र के मन को भी क्रय कर रही हैं। धनुर्भंग के महोत्सव में नगारे, ढोल और तुरही बाजे बज रहे हैं और मंच के मध्य सूर्यवंश की धुरी वहन करने वाले प्रभु श्रीराम विराजमान हो रहे हैं और सीताजी हाथ में जयमाला लेकर **गिरिधर** कवि के भवभय को समाप्त कर रही हैं।

विशेष- यह गीत सुगम संगीत की ढाल में निबद्ध है। इसका बोल है-

सीता राघव समीप अब जाय
हाथ जयमाला लिये।।

गीत संख्या-३२

कविः पुनर्गायति-

जयमालां जानकी कमलकरे विभ्रती।।
विविधविबुधवनकुसुमकिसलमयीम् ।
शकुनसुमङ्गलसुमूर्तिमिवाविभ्रती ।।१।।
चलिता सखीभिः सह रघुनाथमभिसीता।
परिमलैः राममनोभृङ्गमिवाजुह्वती।।२।।
अभिनीरधरं यान्ती सौदामिनी भामिनी सा।
शक्रधनूरेखां दधाना हृदीव विभ्यती।।३।।
गायन्तीषु मङ्गलं सखीषु दिशो दीव्यन्तीषु।
जगन्मङ्गलस्वरूपं स्त्रजि समाविभ्रती।।४।।
कविगिरिधरमनःकलशं प्राणपति।
पादपद्मभक्तिभावपीयूषेण पिप्रती।।५।।

भौमी- कवि पुनः 'गीतावली' की पद्धति में गा रहे हैं-सीता जी अनेक नन्दनवन के पुष्पों और पल्लवों से निर्मित, शकुन और सुमंगलों की मूर्ति जैसी जयमाला को अपने कमल कर में आदरपूर्वक धारण करती हुई

उसका पोषण भी कर रही है। सखियों के साथ श्रीराम के समीप जाती हुई सीता जी अपनी सुरभियों से श्रीराम के मन को भी चुरा रही हैं। मानों बादल के समीप जाती हुई सखियों के गीत गाते रहने पर अपनी माला में सीता जी जगत के मंगल का स्वरूप धारण कर रही हैं और **गिरिधर** कवि के मनरूप कलश को भी अपने प्राणपति श्रीराम के प्रेमामृत से भरती हुई सीता जी जयमाला धारण करती हुई प्रभु के पास आ रही हैं।

गीत संख्या-३३

गायति कविः-

रामचन्द्रवक्षो वीक्ष्य धरणीकुमारी।
वभूव चकिता क्षणं यथा दारुनारी।।
हृदये व्यचारयत सीता सुकुमारी।
कां धत्ते हृदि रघुनाथोऽविकारी।।१।।
केयं मया सदृशी समाना वयोरूपा।
बाभाति वक्षसि वशितरघुभूपा।।
केयं स्पर्धमानास्ति सीतया कुनारी।।२।।
किमसौ रतिः किं वा रमा रूपशीला।
किं वा शर्वाणी सती शारदा सुशीला।।
मदन्यां च कां भजते रामोऽभयहारी।।३।।
क्षणं सा विभाव्य निजप्रतिबिम्बं ज्ञात्वा।
मोमुद्यमाना रामं दृढव्रतं ध्यात्वा।।
गिरिधरप्रभुहृदि सीता बिम्बोऽधिकारी।
बभूव मुदिता क्षणं जनककुमारी।।४।।

भौमी- कवि स्वयं गा रहे हैं- श्रीरामचन्द्र का वक्षस्थल निहारकर जनकनन्दिनी सीता जी क्षण भर कठपुतली जैसी चकित रह गईं। हृदय में सुकुमारी सीता जी ने विचार किया कि अविकारी श्रीरघुनाथ जी हृदय में किसको धारण कर रहे हैं। अरे! मेरे ही समान अवस्था और रूपवाली श्रीराम को वश में करके यह कौन महिला इनके हृदय में विराजमान हो रही है। यह कौन दुष्ट महिला मुझ सीता के साथ स्पर्धा कर रही है। क्या यह रति है? या रूपवती लक्ष्मी? क्या यह पार्वती है? या शीलवती सरस्वती? भय को हरने वाले श्रीराम मुझसे अतिरिक्त किस महिला को स्वीकार कर रहे हैं? एक क्षण विचार करके सीता जी प्रभु के हृदय में वर्तमान अपना ही प्रतिबिम्ब जानकर श्रीराम को दृढ़व्रत समझकर बहुत प्रसन्न हुईं। **गिरिधर** के प्रभु श्रीराम के हृदय में सीता जी का प्रतिबिम्ब ही निवास का अधिकारी है, ऐसा निश्चय करके सीता जी बहुत हर्षित हुईं।

सन्दर्भश्लोकः

मनसाऽमनसं विभावयन्तीं मितितां वीक्ष्य विषण्णचित्तवृत्तिम्।
विलसज्जयमालिकाकराग्रां चतुरालिश्चतुरां जगौ च सीताम्।।१।।

भौमी– इस प्रकार हाथ में जयमाला लेकर मन से कुछ सोचती हुई अन्यमनस्क, खिन्न चित्त वाली सीता जी को देखकर चतुर सखी ने चतुर सीता जी को सम्बोधित करके इस प्रकार गाया।

गीत संख्या–३४

सीते सन्देहं वृथा त्यज हे! धेहि जये जयमालाम्।
राघवस्य कण्ठे स्त्रजं सृज हे जहि भ्रान्तिं विशालाम्।।
वीच्या जलं यथा त्वया रामोऽनन्यः।
प्रभया च भानुरिव त्वया रामोऽभिन्नः।।
मोहमिमं दुष्त्यजं परित्यज हे! स्त्रय प्रीतिं रसालाम्।।१।।
वस्तुतस्तु जनकसुते युवयोरभेदः।
त्वं रामो रामस्त्वमित्थं वदति वेदः।।
निश्चयमेतं चेतसि संसृज हे! त्यज भीतिं करालाम्।।२।।
एकं ब्रह्म द्विधाभूतं जानात्यधिकारी।
कोसले कुमारोऽधिमिथिलं कुमारी।।
भावमेतं मनसा सदा भज हे! क्षिप भुजलतामृणालम्।।३।।
परिधापय जयमालां राघवं पुनीतम्।
सख्योऽपि गायन्ति माङ्गलिकगीतम्।।
रामेण शीघ्रं समाव्रज हे! गिरिधरमति स्वर्णशालाम्।।४।।

भौमी– हे सीते! इस व्यर्थ संदेह को छोड़ दीजिए। विजयी श्रीराम को जयमाला अर्पित कीजिए। राघव जी के कण्ठ में जयमाला डालिये। इस विशाल भ्रान्ति को मार डालिए। जल से तरंग की भाँति श्रीराम आपसे अनन्य हैं। प्रभा से सूर्य के समान श्रीराम आपसे अभिन्न हैं। इसलिए न छूटने वाले इस मोह को छोड़ दीजिए। प्रभु के प्रति रसीली प्रीति का आश्रय कीजिए। वस्तुतस्तु हे जानकी! आप दोनों में अभेद हैं। आप सीता ही श्रीराम हैं और श्रीराम ही आप श्रीसीता हैं। इस प्रकार वेद कहते हैं–

रामो सीता जानकी रामचन्द्रः

चित्त में इसी निश्चय का निर्माण कीजिए। भयंकर डर छोड़ दीजिए। एक ही ब्रह्म श्रीसीताराम इन दो रूपों में विराज रहा है। यह तथ्य अधिकारीजन ही जानते हैं। वही परमात्मा, अयोध्या में कुमार बनकर श्रीराम रूप में तथा मिथिला में कुमारी बनकर श्रीसीता रूप में विराजमान है। इसी भाव का निरन्तर भजन कीजिए और अपनी कमलनाल जैसी भुजा फैलाइये अब पवित्र श्रीराघव को जयमाला पहनाइये देखिये! सखियाँ भी मांगलिक गीत गा रही हैं। गिरिधर कवि की बुद्धिरूप सुवर्णशाला में श्रीराम के साथ शीघ्र पधारिये।

गीत संख्या–३५

जयमालां करे धृत्वा सङ्कुचति सीता देवी
किञ्चिदिह मनसा जिह्रेति हे।

चलति न भुजवल्ली विभाजितनवमल्ली
भावं भावं भावना विभेति हे।।१।।
हृदये विचारयति शिरिषकुसुमतन्वी
स्वचेतसि चिन्तां प्रतनोति हे।
जयमालामधुपा दशेयुर्दशाननशत्रुं
इति व्यथा हृदयं दुनोति हे।।२।।
नहि परिधापयेयं सख्यो हसिष्यन्ति तदा
विधिव्यतिक्रमः प्रतिभाति हे।
भ्रमरेभ्यः कथं रक्ष्यं राघवस्य मृदुवपु
इति मम सङ्कटं न याति हे।।३।।
भवतु सखीभिर्भृङ्गान् वारयिष्ये बलादपि
जयमालां कण्ठे चार्पयामि हे।
इति कृत्वा परिधाप्य चरणे निपतिता सा
गिरिधरो मङ्गलं गायामि हे।।४।।

भौमी– हाथ में जयमाला लेकर देवी, सीता जी कुछ संकोच कर रही हैं और मन में लज्जित हो रही हैं। शोभा से नवीन चमेली को जीतने वाली सीताजी की भुजारूप लता थोड़ी भी नहीं हिल रही है। भावनामयी सीता जी चिन्ता कर करके डर रही हैं। शिरीष फूल के समान सुकुमारी सीतादेवी हृदय में विचार कर रही हैं और अपने चित्त में चिन्ता बढ़ाती जा रही हैं। अरे! कही जयमाला पर मँडराते हुये भौंरे रावण के शत्रु रघुनाथ जी को डँस न लें। यही व्यथा सीताजी के हृदय को दुःखी कर रही है। यदि माला (जयमाला) नहीं पहनाती हूँ तो सखियाँ मेरी हँसी करेंगी। ऐसा करने पर विधि का व्यतिक्रम हो जायेगा। परन्तु राघव जी के शिरीष के समान कोमल शरीर की भौंरों से कैसे रक्षा करूँ? मेरा यह संकट नहीं दूर हो रहा है। ठीक है। भौंरों को सखियों द्वारा दूर भगा दूँगी। अब प्रभु के गले में जयमाला अर्पित कर रही हूँ। इस प्रकार निश्चय करके प्रभु को जयमाला पहनाकर सीताजी श्रीराम के चरणों में प्रणाम कर रही हैं और मैं कवि **गिरिधर** भी मंगल गीत गा रहा हूँ।

गीत संख्या-३६

मङ्गलं मङ्गलं मङ्गलं हे मिथिलायां त्रिलोक्याम्।
दिनकरसमुदयसमये हे यथा हर्षस्तु कोक्याम्।।१।।
नृत्यति गायति प्रवदति हे प्रमुदितपुरलोकः।
दुन्दुभिर्वादयन् मोदते हे सुरलोको विशोकः।।२।।
पत्नीभिर्युक्तः चतसृभिर्हे प्रेममग्नो नृपजनकः।
जन्मदरिद्रःसंयोगवशो हे यथा लब्धमणिकनकः।।३।।
लक्ष्मणो लसति विलक्षणो हे यथा केसरिकिशोरः।

मुहुर्मुहुर्हरिमभिपश्यति हे यथा चन्द्रं चकोरः।।४।।
सुमनांसि दृशश्च समेषां हे गीतसीताभिरामे।
कविगिरिधरकृतनवमे हे सर्गे शुभ परिणामे।।५।।

भौमी- आज मिथिला में और तीनों लोकों में मंगल-मंगल और मंगल ही है। जिस प्रकार सूर्योदय के समय चकवे में गा रहे हैं, परस्पर बातें कर रहे हैं और शोक रहित देवलोक नगारे बजाता हुआ प्रसन्न हो रहा है। चारों पत्नियों के सहित जनकजी उसी प्रकार प्रेममग्न हैं, जैसे जन्म का दरिद्र संयोगवश मणि और सुवर्ण पाकर प्रसन्न होता है। सिंह शावक की भाँति विलक्षण लक्ष्मण जी सुशोभित हो रहे हैं। जैसे चन्द्रमा को चकोर निहारा करता है उसी प्रकार लक्ष्मण जी प्रभु श्रीराम को बार-बार निहार रहे हैं। **गिरिधर** कवि के द्वारा वर्णित नवम सर्ग के प्रतिपाद्य कल्याणकारी शुभपरिणाम वाले गीत सीताभिराम प्रभु श्रीराम में सभी मिथिलावासियों के नेत्र और मन लग गये।

इति

श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरमहाकविजगद्गुरुरामानन्दाचार्यस्वामिरामभद्राचार्यगिरिधरकविप्रणीते गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये बालकाण्डे गीतसीतास्वयंवरो नाम नवमः सर्गः।

इस प्रकार श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर महाकवि जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य गिरिधरकवि द्वारा विरचित गीतरामायण 'गीतसीताभिराम' नामक संस्कृत गीतमहाकाव्य के बालकाण्ड में गीतसीतास्वयंवर नामक नवम सर्ग सम्पन्न हुआ।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

।।श्रीः।।

।।नमो राघवाय।।

गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये बालकाण्डे

गीतसीतारामपरिणयो नाम

दशमः सर्गः

सन्दर्भश्लोकाः

वक्षश्रीजयमालिके रघुपतौ याते समीपं गुरोः
आयाते भृगुनायकेऽभिमिथिलं ज्वालावलीढे रुषः।
श्रीरामाय समर्प्य सायकधनुः याते महेन्द्राचलं
राज्ञा वै जनकेन पत्रमनघं श्रीकोसलान् प्रेषितम्।।१।।
श्रुत्वा श्रीरघुनाथसिंहशिशुना भग्नं पुरारेर्धनुः
श्रीसीताजयमालया विलसितं रामं च कीर्त्या श्रिया।
आनन्देन युतो नृपो दशरथः श्रीरामलोकाकुलः
प्रस्थातुं वरयात्रया च मिथिलां सज्जां समाकल्पयत्।।२।।
कौसल्या ननु कैकयेन्द्रदुहिता साध्वी सुमित्रा मुदा
सीतारामविवाहमङ्गलमहे वेदीः समाकल्पयन्।
लोकाचारविधानमङ्गलचणाश्चार्वङ्गचर्चार्चिताः
गायन्ति स्म विवाहगीतमनघं लोकध्वनिस्वादरात्।।३।।

भौमी- कवि तीन सन्दर्भश्लोकों से कथा को क्रमबद्ध कर रहे हैं। सीता जी की जयमाला वक्षस्थल पर धारण करके जब श्रीराम गुरुदेव विश्वामित्र के पास पधार आये, उसी समय क्रोध की ज्वाला से परिपूर्ण परशुराम जी मिथिला में आये। वे भी श्रीराम को धनुष-बाण सौंपकर तपस्या करने महेन्द्राचल चले गये। इसके पश्चात् जनक जी ने लग्न-पत्रिका अयोध्या भेजी। लग्न-पत्रिका से यह सुनकर कि श्रीरामरूप बालसिंह ने शिवधनुष तोड़ दिया और वे जयमाला, कीर्ति, तथा शोभा से युक्त हो गये हैं। आनन्द से युक्त श्रीराम जी के दर्शनों के लिए उत्सुक चक्रवर्ती महाराज दशरथ बारात के साथ मिथिला प्रस्थान के लिये साज-सज्जा की तैयारी करने लगे। कौसल्याजी, कैकेयीजी एवं साध्वी सुमित्राजी श्रीसीतारामजी के विवाह के मंगलोत्सव के लिये वेदिका बनाई और सुन्दर अंगों में लेप की हुई लोकाचार के विधान में निपुण तीनों माताएँ अवधी के प्रचलित लोकध्वनियों में श्रीसीताराम जी के विवाह के गीत गाने लगीं।

गीत संख्या-१

गायाम गणपतिं गायाम भवानीं गृणीमश्च सिद्धिबुद्धीनाम।
युष्मत्कृपातो यज्ञोऽस्माकं सफलोऽस्तु श्रेयः सकलसुखधाम।।१।।
शीघ्रं समायातं रामं सीतादेव्या नेत्रैः कदा नु पश्येम।
नववरवध्वौ मञ्जुमङ्गलमूर्ती कदा निजकरैः संस्पृशेम।।२।।
चतुष्काणि पूरय सपदि सुमित्रादेवि! कैकयि रचय तोरणानि।
कौसल्या निशल्या हन्तु रघुवर्यमङ्गलाय गणपगौरीपूजां करवाणि।।३।।
आगच्छत नापितानी मालिनी भगिन्यो गोमयेन लिप्यताञ्च द्वारि।
मञ्जुमणिमौलिं सर्वलोकनरमौलये तु रचय तदीयशोभाधारि।।४।।
आगच्छ भरतभद्रशत्रुघ्नेन समं शीघ्रं वरयात्रा सज्जां संविधेहि।
व्रज मिथिलायां गिरिधरकविनापि सार्धं मङ्गलानि हृदि संन्निधेहि।।५।।

भौमी- हम गणपति को गायें, गौरी को गायें और सिद्धि-बुद्धि का नाम लें। आपकी कृपा से हमारा यह यज्ञ सफल हो और सम्पूर्ण सुखों के साथ हमारा कल्याण हो। सीतादेवी के साथ शीघ्र अवध पधारे हुये श्रीराम को हम अपने नेत्रों से कब देखेंगी? मधुर मंगलों की मूर्ति नवीन वर-वधू श्रीराम सीताजी को अपने हाथों से कब स्पर्श करेंगी? सुमित्रादेवी! शीघ्र चौके पूरो। कैकेयि! तोरणद्वार सजाओ और प्रसन्न हुयी, मैं कौसल्या रघुवर के मंगल के लिये गणपति-गौरी की पूजा करूँ। हे नाइन बहन! हे मालिनी बहना! आओ द्वार को गोबर से लीप दो और सम्पूर्ण लोकों के मुकुटमणि श्रीराम के लिये उन्हीं के शोभा के अनुरूप सुन्दर मौर का निर्माण करो। हे भरतभद्र! शत्रुघ्न के साथ शीघ्र आओ और बारात सजाओ। गिरिधर कवि के साथ शीघ्र मिथिला जाओ और अपने हृदय में सभी मंगलों को अनुभव करो।

सन्दर्भश्लोकाः

सनातनं ब्रह्मसनातनाय धर्माय बिभ्रद् युगपद् द्विरूपम्।
आयोध्यकानां ननु मैथिलानां प्रमोदबल्लीं स विभुर्व्यतानीत्।।१।।
संसेवमानो गुरुमेकरूपे सलक्ष्मणो मैथिलमोदकारी।
आयोध्यकानाञ्च पुनर्द्वितीये वैवाहिकं लोकविधिं व्यधत्त।।२।।
अथ सीतानुरूपायाः मौलेः संविधित्सया।
स्वप्नः सन्दर्शयामासे मालिन्यै पद्ममालिना।।३।।

भौमी- सर्वव्यापक सनातन परब्रह्म भगवान श्रीराम ने सनातन धर्म की रक्षा के लिये एक साथ दो रूप धारण करके अयोध्यावासियों और मिथिलावासियों की आनन्द लता का विस्तार किया। एक रूप में लक्ष्मणजी के सहित मिथिला में विराजमान गुरुदेव विश्वामित्र की सेवा करते हुये मैथिलों को आनन्द दिया और दूसरे रूप में अयोध्या में विराजमान होकर विवाह के पूर्व दूल्हे के लिये होने वाली सभी विधियों को सम्पन्न किया। इसके पश्चात् सीता जी के अनुरूप मौरिया बनवाने की इच्छा से कमलमाली भगवान श्रीराम ने मालिनी को सपना दिया।

गीत संख्या-२

माली प्रसुप्तो ननु महोच्चे प्रासादे मुदा
वाटिकायां मालिनी निद्राति हे।
जागृहि जागृहि मालिनि! माली प्रबोधयति
जागृहि प्रभातं पश्य भाति हे।।१।।
नेत्रे उन्मील्य मालिनी पुरतस्तु पश्यति
वरो रामचन्द्रस्तु विभाति हे।
कामकोटिकमनीयः ऋतुपतिरमणीयः
सौन्दर्यसुधया सुस्नाति हे।।२।।
विस्मिता सा पृच्छति रामं नवनीरधरश्यामं
किमर्थमयोध्यायामायासि हे।
श्रुतं मया शिवधनुर्भङ्क्त्वा जयमालाधारी
मिथिलायामधुना विभासि हे।।३।।
राघवः प्रणम्य प्राह शृणु मातर्मालिनि हे
तुभ्यमेतद् रहस्यं गदामि हे।
राजगेहे मद्विवाहशकुनसुमङ्गलं हे
ततस्त्वां किमपि प्रवदामि हे।।४।।
आर्षीं च मौलिं मालिनि! रचयाशु मम कृते
विवाहे तामेव धारयामि हे।
तया किल जेतुं श्यालीः श्यालपत्नीं सखीश्चापि
रामः सुषमया पारयामि हे।।५।।
मालिनी पप्रच्छ भूयो भक्त्या वरं रामचन्द्रं
नान्यथा मन्यस्व कुमार हे।
न पश्यामि नैव जाने आर्षीं च मौलिं राघव
कीदृक् सा वद सुकुमार हे।।६।।
ऋषिभिश्च दृष्टा मौलिर्वाल्मीकिप्रभृतिभिश्च
आर्षी च मौलिस्तस्मात् ख्यामि हे।
त्वामेव प्रपन्नां खलुमालिनीमहं च भक्त्या
गुप्तमपि रहस्यं समाख्यामि हे।।७।।
मौलिं च परितो मालिनी मणिमुक्तामाणिक्यानि

मध्ये च सीतादेवीं चित्रय हे।
तां दधानो मोहयेयं सर्वं जगन्मालिनि हे
गिरिधरस्य गीतं च विचित्रय हे।।८।।

भौमी- माली ऊँची अट्टालिका पर प्रसन्नता से सो रहा है और मालिनी पुष्पवाटिका में शयन कर रही है। सहसा ऐसा लगा जैसे माली–मालिनी को जगा रहा है। मालिन जग जा जग जा। देख! प्रभात सुन्दर लग रहा है। नेत्र खोलकर मालिनी सामने देख रही है तो उसे श्रीरामजी दुलहारूप में दिखाई पड़ रहे हैं। वे करोड़ों कामदेवों के समान सुन्दर, वसन्त के समान रमणीय तथा सौन्दर्यामृत से स्नान किये हुये से लग रहे हैं। मालिनी ने विस्मय भरे स्वर में मेघवर्णी श्रीराम से पूछा–राजकुमार आप अभी अयोध्या में कैसे पधारे। मैंनें तो सुना कि शिव धनुष तोड़कर सीता जी की जयमाला धारण करके आप मिथिला में विराज रहे हैं। श्रीराम ने मालिनी माँ को प्रणाम करके कहा! मालिनी माँ! आपको यह रहस्य सुना रहा हूँ। अयोध्या राजमहल में मेरा वैवाहिक शकुन मंगल सम्पन्न हो रहा है। इसीलिये आपसे कुछ प्रार्थना करने आया हूँ। हे मालिनि माँ! मेरे लिये आप आर्षी मौरिया की रचना कर दीजिये। विवाह में मैं उसी को धारण करूँगा एवं उसी से सालियों, सलहजों और सखियों को मोहित कर सकूँगा। मालिनी ने भक्तिपूर्वक दुलहा श्रीरामचन्द्र जी से पूछा– हे राजकुमार! आप अन्यथा न लें। आर्षी मौरिया न तो मैंने सुनी ही और न ही देखी ही है। वो होती कैसी है? सुकुमार आप बतायें। भगवान राम ने उत्तर दिया। इसे वाल्मीकि आदि ऋषियों द्वारा देखा गया है, इसलिए मैं इसे आर्षी मौरी कह रहा हूँ। चूँकि आप मेरी शरणागत भक्ता हैं इसीलिए गोपनीय रहस्य भी आपसे कह रहा हूँ। मालिनी! मौरिया के चारों ओर मणि–मुक्ता और माणिक्य लगाइये और मौरिया के मध्य में सीतादेवी का चित्र बना दीजिए उसी को धारण करके मैं सम्पूर्ण जगत को मोहित कर लूँगा और आप **गिरिधर** कवि द्वारा गाये गये मुझ परमेश्वर श्रीराम को अपने हृदय में आश्चर्य के साथ धारण कर लीजियेगा।

गीत संख्या-३

शान्ता गायति–

अद्य हरिद्रातैललेपनं रघुनाथस्य कार्यम्।
गायत मङ्गलगीतकं सुमुहूर्तं विचार्यम्।।१।।
कनकपात्रश्रितमङ्गला भगिनी किल शान्ता।
विहसन्ती समुपेत्य सा लिम्पत्यक्लान्ता।।२।।
लेपं लेपं राघवं परिचुम्बति साध्वी।
ह्लेपं ह्लेपं माधवं मृडयति शुचि माध्वी।।३।।
षष्टितण्डुलं दूर्वया सहरिद्रं सिञ्चति।
स्वाङ्के कृत्वा भ्रातरं दुरितानि विमुञ्चयति।।४।।
ऋषिपत्नी भगिनी प्रभोः सुप्रशंसति भाग्यम्।
गिरिधरप्रभोः सुमङ्गले कलयति सौभाग्यम्।।५।।

भौमी– श्रीराम की बड़ी बहन शान्ता जी गा रही हैं–आज रघुनाथ जी को तेल, हल्दी का लेप करना चाहिये। सुन्दर मुहूर्त का विचार कर लेना चाहिये। सभी सुवासिनियों मंगल गीत गाओ। ऐसा कहकर मंगल सम्पन्न शान्ता बहन मांगलिक द्रव्यों से भरे स्वर्ण का थाल लेकर प्रभु के पास आईं और थकावट के बिना प्रभु को तेल–हल्दी लगाने लगीं। लज्जित हो–होकर, तेल–हल्दी का लेप लगा–लगाकर पवित्र प्रेमरस में मतवाली सती शान्ता बहन मधुमास में प्रकटे श्रीराघव को चूम रही हैं। साठी के चावल और हल्दी में हरी–हरी दूब–डुबोकर प्रभु के शरीर पर छिड़क रही हैं और भाई श्रीराम को अपनी गोद में लेकर सभी कष्टों को समाप्त कर रही हैं। ऋष्य श्रृंग की धर्मपत्नी प्रभु श्रीराम की बड़ी बहन शान्ता जी अपने भाग्य की प्रशंसा कर रही हैं और **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम के विवाह मंडल में सम्मिलित होकर अपना सौभाग्य मान रही हैं।

विशेष– यह गीत गीतावली बालकाण्ड ६ के ढाल में निबद्ध है। आज भी वर को तेल हल्दी लगाकर अवध क्षेत्र की बहनें भाई को चूमती हैं और आशीर्वाद गाती हैं। जिसके बोल हैं–

साठीक चाउर हालर दूबरे चूमइ आईं राजा दशरथ की धेरि रे।
चूमइँ चाटई बहिनी देइँ अशीष रे जियइ रामचन्द्र दुलहा कोटि बरिस रे।।

गीत संख्या–४

शान्ता नृत्यति गायति हे दृगमलजलजाता।
लब्धो ननु तया भ्राता हे त्रिभुवनजनत्राता।।१।।
लिम्पति चुम्बति गायति हे मङ्गलाशिषं दत्ते।
चिरञ्जीवतु राजीवाक्षो हे इति वचो विधत्ते।।२।।
पारितोषिकार्थं कैकयी माता हे शान्तामनुरुन्धे।
गिरिधरप्रभुमेव याचते हे नयननीरं निरुन्धे।।३।।

भौमी– आज शान्ता जी प्रसन्न हो रही हैं, गा रही हैं। उनके कमलनेत्र में हर्ष के आँसू हैं क्योंकि शान्ता जी ने तीनों लोकों के प्राणियों के रक्षक भगवान श्रीराम को ही भाई रूप में पाया है। शान्ता जी प्रभु को तेल–हल्दी लगा रही हैं, चूम रही हैं, मंगल गा रही हैं और मंगल आशीर्वाद दे रही हैं। राजीवनयन श्रीराम चिरंजीवी हों। इस प्रकार कामनापूर्ण वाणी का व्याहरण कर रही हैं अर्थात् बोल रही हैं। माता कैकेयी तेल–हल्दी लगाने का नेग माँगने के लिये शान्ता जी से अनुरोध कर रही हैं और शान्ता जी भी **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम को ही नेग में मांग रही हैं और नेत्र में उमड़े हुये आँसुओं को अमंगल के भय से रोक रही हैं।

विशेष– यह गीत विद्यापति की गीत के ढाल में लिखा गया है।

सन्दर्भश्लोकः

अथ मातृगणः सर्वो रामवैवाहिकं शुभम्।
गीतं सङ्गापयाञ्चक्रे वरयात्रामहोत्सवम्।।१।।

भौमी– इसके पश्चात् सभी माताएँ वरयात्रा महोत्सव सम्बन्धी श्रीराम का वैवाहिक मंगल गीत गवानें लगीं।

गीत संख्या-५

कथं पारिजात तव शीतला छाया हे शीतला छाया हे
कथं त्वयि शीतो वातो वाति हे।
कथं तव लते शाखा हरिता विराजन्ते हरिता विराजन्ते
कथं त्वयि फलपूगं भाति हे।।१।।
लता हेतोर्नूनं मम शीतला छाया हे शीतला छाया हे
तस्या हेतोः शीतो वातो वाति हे।
वृक्षस्य गुणेन मम शाखा हरिताश्च सन्ति शाखा हरिताश्च सन्ति
तस्य हेतोः फलपूगं भाति हे।।२।।
कथं रघुचन्द्र तव शीतलस्वभावः किल शीतलस्वभावः किल
कथं तव रूपं सौम्यं भाति हे।
सीताकारणेन मम शीतलस्वभावः किल शीतलस्वभावः किल
तस्या हेतोर्रूपं सौम्यं भाति हे।।३।।

सीता प्राह–

राघवकारणेनास्मि सततं प्रसन्ना हे सततं प्रसन्ना हे
तस्याधारे सकलं विभाति हे।
सीतारामयुगलमन्योन्यं नित्यमिलितं हे
उभयोर्दाम्पत्यं नित्यं भाति हे।।४।।
कविगिरिधरोऽपि सदैव कोऽपि पान्थ इव सदैव कोऽपि पान्थ इव
छायायुगं संस्थितश्च भाति हे।।५।।

भौमी– माताएँ वृक्ष और लता के व्याज से श्रीसीता–राम जी की प्रशंसा करती हुई गा रही हैं–हे पारिजात वृक्ष! तुम्हारी छाया इतनी शीतल क्यों है और तुम्हारी छाया में शीतल वायु क्यों चलता रहता है। हे लता! तुम्हारी शाखाएँ हरी–हरी क्यों हैं और तुम फल और पुष्पों से क्यों सुशोभित रहती हो। पारिजात उत्तर दे रहा है–लता के कारण मेरी छाया शीतल है अैर उसी के कारण मेरे तले शीतल वायु चलता रहता है। लता ने उत्तर दिया–वृक्ष के गुण से मेरी शाखाएँ हरी–भरी रहती हैं और वृक्ष के कारण ही मुझमें फल और पुष्प भी सुशोभित रहते हैं। हे श्रीराम! आपका स्वभाव शीतल क्यों है? और आपका रूप इतना सौम्य क्यों है? सीता जी के कारण मेरा स्वभाव शीतल है और मेरा रूप इतना सौम्य है।

अब सीता जी उत्तर दे रही हैं–श्रीराघव के कारण मैं निरन्तर प्रसन्न रहती हूँ और उन्हीं के आधार पर यह जड़चेतनात्मक संसार सुशोभित है। श्रीसीता–राम का दाम्पत्य एक–दूसरे से अभिन्न है और लीला में दोनों का दाम्पत्य नित्य सुशोभित हो रहा है और गिरिधर कवि भी एक बटोही की भाँति छाया का सेवन करता हुआ सुशोभित हो रहा है।

गीत संख्या-६

विलसति मण्डपे चक्रवर्ती राजा यस्य पुत्रो विवाहयितुं याति हे।।१।।
विलसति मण्डपे सुमन्त्रः सचिवो यस्य स्वामी विवाहयितुं याति हे।।२।।
विलसति मण्डपे श्रीभरतो भ्राता यस्य ज्यायान् विवाहयितुं याति हे।३।।
विलसति मण्डपे शत्रुघ्नलालो यस्य भ्राता विवाहयितुं याति हे।।४।।
विलसति मण्डपे गिरिधरगुरुः यस्य शिष्यो विवाहयितुं याति हे।।५।।

भौमी- मण्डप में चक्रवर्ती जी विराज रहे हैं। जिनके पुत्र श्रीराम विवाह के लिये उद्यत हैं। इसी मण्डप में मंत्री सुमन्त्र जी सुशोभित हो रहे हैं। जिनके स्वामी श्रीराम विवाह के लिये प्रस्तुत हो रहे हैं। इसी मण्डप में भैया भरत सुशोभित हैं, जिनके बड़े भाई श्रीराम विवाह के लिये सन्त्वरित हैं। इसी मण्डप में शत्रुघ्नलाल जी शोभा पा रहे हैं जिनके बड़े भ्राता श्रीराम विवाह के लिये उपस्थित हैं। इसी मण्डप में **गिरिधर** कवि भी गुरु रूप में विद्यमान हैं जिनके शिष्य श्रीराम आज पाणिग्रहण के लिये उपस्थित हो रहे हैं।

विशेष- यह गीत अवध के आँचलिक लोकधुन में निबद्ध है, जिसका बोल है-

''मड़येमेराजैं चक्रवर्ति राजा जेकर पुतवा विवाहन जाय हे।''

सन्दर्भश्लोकाः

अथ रघूत्तमपाददिदृक्षया स गुरुभूमिभृता वरयात्रया।
सुखमिता मिथिलाऽशिथिलालसल्ललितलक्ष्मणं लक्षलघुष्मिता।।१।।
रघुपतिः पतितैकगतिः पितुः प्रणिपपात पदाम्बुजयोर्द्वयोः।
सदनुजं तनुजं परिषस्वजे दशरथः परिपूर्णमनोरथः।।२।।
अथ वसिष्ठमुखान् द्विजपुङ्गवान् सह मुदा सममन्दत राघवः।
तमनुवीक्ष्य समे वरयात्रिकाः मुमुदिरे मुमुदे न दशाननः।।३।।
अथ विवाहतिथिर्मुदितातिथिर्दशरथे ससुते मुदितेऽभ्यगात्।
मृगशिरश्रितमासि मलापहा धृतपुमर्थसुपञ्चमपञ्चमी।।४।।
दिवि ददुर्ननृतुर्ववृषुः स्त्रियः समनुजग्मुरुदञ्चितयानकाः।
नगरनारिवरैः सहिता हिता परिजगुर्गुणगौरवगुम्फिताः।।५।।

भौमी- अब कवि कथा को क्रमबद्ध करने के लिये पाँच संदर्भश्लोक प्रस्तुत करते हैं। इसके अनन्तर श्रीराम के चरण कमलों के दर्शनों की इच्छुक अवध की बारात गुरुदेव और महाराज दशरथ के साथ उस सक्रिय मिथिलापुर में पधारीं, जहाँ लक्ष्मण जी के लक्ष्यरूप श्रीराम की मन्द-मुस्कान विराज रही थी। पतितों के एक मात्र आश्रय रघुकुल के स्वामी भगवान राम ने पिता श्रीदशरथ जी के दोनों चरणों में प्रणाम किया। महाराज दशरथ ने भी अपने मनोरथों को पूर्ण करके श्रेष्ठ अनुज सहित श्रीराम को हृदय से लगा लिया। इसके पश्चात् रघुकुल के स्वामी श्रीराम ने वसिष्ठ आदि ब्राह्मणों को प्रसन्नतापूर्वक प्रणाम किया। प्रभु को निहारकर सभी बाराती प्रसन्न हुये केवल रावण प्रसन्न नहीं हुआ। इस प्रकार पुत्रों के सहित महाराज दशरथ के प्रसन्नतापूर्वक

मिथिला में निवास करते रहने पर अतिथियों को आनन्द देने वाली मार्गशीर्ष, शुक्लपक्ष पंचमी श्रीराम विवाह तिथि आ गई। जो पंचम पुरुषार्थ प्रेमभक्ति के समान सुखदायिनी थी। देववधुओं ने स्वर्ग में दान दिया, नृत्य किया, पुष्पों की वर्षा की और नगर की श्रेष्ठ नारियों के साथ उन्हीं का वेश धारण करके मिल गईं तथा सीताराम जी के गुण–गौरव से युक्त गीत गाने लगीं।

गीत संख्या-७

अद्य सीतारामङ्गलविवाहपञ्चमी।
अद्य मार्गशीर्षशुक्लसुदिनाहपञ्चमी।।
उत्तराफाल्गुनीमङ्गलमुहूर्तगोधूलियुता
शुभलग्नपूजितपुण्याहपञ्चमी ।।१।।
नारदनिदिष्टा स्वयं विधिना विदिष्टा शुभा
रघुनिमिवंशसुखसाहपञ्चमी ।।२।।
वरयात्रिसहितो मुदितराजा दशरथो
ब्रह्मानन्दपयोधिप्रवाहपञ्चमी ।।३।।
अयोध्यामिथिलानन्दसुरवीथीसुधासमा
मधुरमङ्गलपरिणाहपञ्चमी ।।४।।
विवुधवधूट्यो मैथिलानीभिश्च गायन्ती वै
लसितभुवनशमुत्साहपञ्चमी ।।५।।
मुदिता वसिष्ठमुखा स्वस्तिवाकं वाचयन्ती
गिरिधरमोदवारिवाहपञ्चमी ।।६।।

भौमी- देववधुएँ मैथिल लोकधुन में गा रही हैं। आज सीतारामजी की मंगल से युक्त विवाह पंचमी है। और आज मार्गशीर्ष शुक्ल पंचमी है। आज ही उत्तरा फाल्गुनी मंगलमय गोधूलिमुहूर्त तथा शुभ लग्न से सम्मानित पुण्यदिन वाली पंचमी है। इस मुहूर्त का नारद जी ने निर्देश किया था। यह रघुवंश और निमिवंश के सुख को बढ़ाने वाली पंचमी है यह विवाहपंचमी अयोध्या और मिथिला के आनन्द आकाश गंगा की अमृत लहरी के समान है। इसका विस्तार मधुर मंगलमय है। आज देवियों के साथ मिलकर मिथिलानियाँ गीत गा रही हैं। यह विवाह पंचमी सभी भुवनों के उत्साह को सजा रही है। वसिष्ठ आदि ब्राह्मण प्रसन्न होकर स्वस्तिवाचन कर रहे हैं और यह विवाह पंचमी गिरिधर कवि की प्रसन्नता का बादल बन गई है।

गीत संख्या-८

मातः सीतावरः कौसल्याकुमारो भाति शुचिसुकुमारो भाति हे।
मातर्नैव जाने कौसल्यायाः कुक्षेर्गुणः किं वा रामरूपे गुणो हे।।१।।
मातः वरभाले तिलकः उदारो भाति रामः सुकुमारो भाति हे।
मातर्नैव जाने वसिष्ठस्य हस्ते गुणः किं वा रामभाले गुणो हे।।२।।

मातः रामनेत्रे कज्जलं शृङ्गारं भाति परममुदारं भाति हे।
मातर्नैव जाने पितृस्वसुर्हस्ते गुणो किं वा रामनेत्रे गुणो हे।।३।।
मातर्वैवाहिकं वसनं शृङ्गारं भाति सुखदमुदारं भाति हे।
मातर्नैव जाने तन्तुवायहस्ते गुणः किं वा रामदेहे गुणो हे।।४।।
मातश्चरणे आलक्तं सुखसारं भाति विशदमुदारं भाति हे।
मातर्नैव जाने नापितानीहस्ते गुणो किं वा रामचरणे गुणो हे।।५।।
मातर्वैवाहिकं गीतं सुधासारं भाति भक्तप्राणाधारं भाति हे।
मातर्नैव जाने गिरिधरवाणीकौसलगुणः किं वा राममङ्गलगुणो हे।।६।।

भौमी- पुनः मिथिलानियाँ और देववधुएँ गा रही हैं। माँ! कौसल्यानन्दन सुकुमार श्रीराम बहुत सुन्दर लग रहे हैं। मां! मैं नहीं समझ पा रही हूँ कि यह गुण कौसल्या जी की कोख का है अथवा श्रीराम जी के रूप का। माँ! श्रीराम के मस्तक पर तिलक बहुत सुन्दर लग रहा है। मैं नहीं जानती, यह गुण वसिष्ठ जी के हाथ का है या श्रीराम जी के मस्तक का। माँ! श्रीराम के नेत्र में काजल का शृंगार देदीप्यमान होता हुआ बहुत अनुपम लग रहा है। मैं नहीं जानती, यह इनके बुआ के हाथ का गुण है अथवा प्रभु के नेत्र का। माँ! प्रभु का वैवाहिक वस्त्र बहुत सुन्दर लग रहा है। मैं नहीं जानती कि यह दर्जी के हाथ का गुण है अथवा भगवान राम के श्रीविग्रह का। माँ! श्रीराम के चरणों में महावर बहुत सुन्दर लग रहा है। मैं नहीं जान पा रही हूँ कि यह नाइन के हाथ का गुण है या भगवान राम के श्रीचरणों का। हे माँ! श्रीसीता-राम जी का यह वैवाहिक गीत भी सुख का सारभूत और भक्तों का प्राणाधार बनकर सुशोभित हो रहा है। माँ! मैं यह नहीं जान पा रही हूँ कि इस वैवाहिक गीत में **गिरिधर** कवि की वाणी के कौशल का गुण है अथवा श्रीराम के मंगल का।

सन्दर्भश्लोकः

अथ जनकनिदिष्टश्श्रीसतानन्दनामा
निमिकुलसुपुरोधाः प्रार्थयद् राजवर्यम्।
दशरथनरपालः सूनुभिर्वै चतुर्भिः
सहपणवनिनादैः प्रागमद् द्वारपूजाम्।।१।।

भौमी- इसके पश्चात् राजा जनक का आदेश पाकर शतानन्द पुरोहित ने महाराज दशरथ से विवाह मण्डप में पधारने की प्रार्थना की और महाराज दशरथ चारों पुत्रों और पणव आदि बाजों के साथ द्वार-पूजा के लिये पधारे।

गीत संख्या-९

सख्यो जगुः-

पश्य सीतास्वजनं पश्य सीतास्वजनम् ।
हयपृष्ठे राजमानं पश्य सीतास्वजनम्।।
बर्हिणश्च पृष्ठे सखि सशिशुरविभगणम्।

व्योमनीव भ्राजमानं घनं सवनं पश्य।।१।।
भ्रातृसखिभिः परीतं विमलं विद्याविनीतम्
मोक्षसाधनैः संयुतमानन्दघनं पश्य।।२।।
अर्वन्तमारूढं गूढं मानवमहीमव्यूढम्
भूषणैर्विभूष्यमाणं कञ्जनयनं पश्य।।३।।
हारं हारं मनोऽस्माकं व्रजन्तं च पित्रा साकम्
पश्य ब्रह्मवरं सैरध्वजीजीवनं पश्य।।४।।
पुञ्जीभूतं दशरथपुण्यं निमिजामातारम्
रामं पश्य गिरिधरकविसाधनाधनं पश्य।।५।।

भौमी– सखियाँ गीत गाने लगीं। हे सखी! इन सीता जी के साजन को देखो। घोड़े पर आरूढ़ सीताजी के दूल्हा भगवान श्रीराम को देखो। हे सखी! ऐसा लग रहा है मानों मोर के पीठ पर नक्षत्रों के साथ सूर्य हों अथवा आकाश के मध्य जल-वृष्टि करने वाला बादल। सखी! देखो, श्रीराम स्वभाव से निर्मल तथा विद्याओं से प्रशिक्षित हैं। मानों मोक्ष के साधनों से युक्त साक्षात् आनन्द के बादल ही हों। घोड़े पर विराजमान मानव की महिमा से युक्त आभूषणों से सुशोभित कमलनयन श्रीराम को देखो। हमारे मनों को चुरा-चुराकर पिताश्री के साथ जाते हुये विदेहनन्दिनी सीताजी के जीवनसर्वस्व ब्रह्म दूल्हे को देखो। हे सखी! इकट्ठे हुये दशरथ के पुण्य को निमिकुल के जमाई राजा को और **गिरिधर** कवि के साधना-धन को देखो।

गीत संख्या-१०

ईदृशी न दृष्टा क्वापि वरयात्रिका सखि हृदयेऽस्ति कौतूहलम् मे।।
पूर्वजस्तु भगीरथः पिता नृपो दशरथः रथानां कोलाहलं मे।।१।।
दशरथस्य दारास्तु सप्तशतं ख्याता तत्र यातं वै कश्मलं मे।।२।।
एकैकरथे सखि सप्ततिसप्ततिरथिनः दृष्ट्वास्ति क्षीणो बलं मे।।३।।
सरय्वाः श्वसुश्चापि स्नाति नित्यं सलिले कथं स्यान् मनो निर्मलं मे।।४।।
गिरिधरप्रभुः सर्वलक्षणविलक्षणो मैथिलीवरस्तु सद्बलं मे।।५।।

भौमी– मिथिलानियाँ विनोद के स्वर में गा रही हैं। सखि! ऐसी बारात हमने कभी नहीं देखी। मेरे हृदय में कौतूहल हो रहा है। देखो, इनके पूर्वज तो हैं भगीरथ और पिता हैं दशरथ, यहाँ तो रथियों का ही कोलाहल है। महाराज दशरथ की सात सौ पत्नियाँ प्रसिद्ध हैं। इस पर भी मुझे डर लग रहा है। क्योंकि सात सौ में जब दस का भाग दिया जाता है तो सत्तर का बार जाता है। एक-एक रथ पर सत्तर-सत्तर रथी यह सोच कर मेरा बल क्षीण हो रहा है। श्रीराम अपनी गुरुबहन सरयू के ही जल में ही स्नान करते हैं। इस परिस्थिति में मेरा मन निर्मल कैसे रह सकता है? वस्तुतः बाहर से जो भी हो **गिरिधर** कवि के स्वामी सीतापति श्रीराम सर्वलक्षण-विलक्षण हैं और वही हमारे वास्तविक बल हैं।

विशेष– यह गीत कवि की उपजी ध्वनि में निबद्ध है। इसका बोल हैं–

''ऐसी न देखी बरात सखि कबहूँ जैसी बरात रघुवर की।।''

गीत संख्या-११

जनकस्य द्वारे भाति भामः सीतावरराम:।।
कृतमङ्गलाचारे द्वारे वेदमन्त्रोच्चारे द्वारे।
सुखाकारे द्वारे भाति भामः सीतावरराम:।।१।।
श्रितकाष्ठाधोरणद्वारे नव किसलयतोरणद्वारे।
घटपूरणद्वारे भाति भामः सीतावरराम:।।२।।
हर्षपारावारे द्वारे सुमनः प्रावारे द्वारे।
गुणागारे द्वारे भाति भामः सीतावरराम: ।।३।।
शक्रमणिश्यामो भूरिनीरधरश्यामो द्वारे।
तामरसश्यामो द्वारे भामः सीतावरराम:।।४।।
शुचिसुकुमारे द्वारे जितकोटिमारो द्वारे।
मैथिलीश्रृङ्गारो द्वारे भामः सीतावरराम:।।५।।
लोचनाभिरामो द्वारे सुजनाभिरामो द्वारे।
गिरिधराभिरामो द्वारे भामः सीतावरराम:।।६।।

भौमी- अब कवि स्वयं गा रहे हैं–आज महाराज जनक के द्वार पर सीतावर राम दूल्हा रूप में विराजमान हैं। मंगलाचार से युक्त द्वार पर, वेदमन्त्रोच्चार सम्पन्न द्वार पर दूलह सरकार विराज रहे हैं, जहाँ नवीन पल्लवों के तोरण लगे हैं, जहाँ जलपूर्ण स्वर्ण घट सजाये गये हैं। ऐसे द्वार पर दूलह सरकार विराज रहे हैं। जहाँ हर्ष का सागर लहरा रहा है, जहाँ पुष्पों की चादरें बिछी हैं ऐसे गुणों के सदन द्वार पर श्रीराम जी दूल्हे के रूप में विराज रहे हैं। उस जनक के राजद्वार पर इन्द्रमणि के समान श्यामल, नीले बादल के समान श्यामल और नीले कमल के समान श्यामल जमाई श्रीराम सुशोभित हो रहे हैं। उस जनकराज द्वार पर पवित्र तथा सुकुमार करोड़ों कामों के विजेता सीताजी के शृंगारस्वरूप भगवान श्रीराम जामाता बनकर सुशोभित हो रहे हैं। जनकद्वार पर सबके नेत्रों को आनन्द देने वाले सज्जनों को सुख देने वाले और **गिरिधर** कवि के मन को रमाने वाले श्रीराम दूल्हा बनकर विराज रहे हैं।

विशेष- यह गीत मैथिल लोकधुन की ढाल में निबद्ध है। इसका बोल है–

कौसिला के गोद आज सोहे रघुनन्दन लाला।
मुनिजन के मोद सोहे साधक प्रमोद सोहे
गिरिधर के विनोद गोद सोहे रघुनन्दन लाला।

गीत संख्या-१२

रामं निसर्गादपरीच्छिन्नं परीच्छेत्तुं सुनयना याति।
बहिर्भूतं सर्गात् श्रिया भिन्नं गुणैः क्रेतुं सुनयना याति।।१।।

करकञ्जविलसन्मङ्गलस्थाली दिव्यगतिव्रीडितराजमराली।
सखीभिः परीता विनीता सती रामचन्द्रप्रेमसरिति स्नाति।।२।।
दर्शं दर्शं जामातृशोभाप्रकर्षं पाषाणशकलैः कपोले स्पर्शं स्पर्शम्।
हर्शं हर्शं हृष्टाङ्गी तृषं कर्षं कर्षं दृशो राज्ञी निमिषं न राति।।३।।
नीराजयन्ती नीरजनयनं विभ्राजयन्ती मङ्गलचयनम्।
अर्घ्यं ह्यनर्घ्याय प्रेम्णा दिशन्ती दिशां दुरितविपिनं लुनाति।।४।।
श्वश्रूः स्रवन्ती दृशोवारिधारां रामं परिच्छिद्यन्ती भवकाराम्।
गिरिधरप्रभुं मनोमण्डपं नयन्ती जनकराजमहिषी विभाति।।५।।

भौमी– प्रकृति जिनको परिच्छिन्न नहीं कर पाई अर्थात् सीमा में नहीं बाँध पायी, उन्हीं श्रीराम की परिछन करने सुनयना जी पधार रही हैं। जो सृष्टि से बहिर्भूत तथा श्रीजी से अनन्य हैं उन्हीं प्रभु को अपने गुणों से क्रय करने के लिये सुनयना जी पधार रही हैं। उनके हाथ में मंगलमयी थाली सुशोभित हो रही है। उन्होंने अपनी गति से राजहंसिनी को लज्जित किया है। अपनी सखियों से घिरी हुई विनम्र साध्वी सुनयनाजी श्रीराम–प्रेम की सरिता में स्नान कर रही हैं। अपने जमाई श्रीराम की शोभा का प्रकर्ष देख–देखकर पत्थर के खण्ड अर्थात् लोढ़े से प्रभु के कपोल पर सेंक–करके रोमांचित अंग वाली सुनयना जी प्रसन्न हो–होकर अपने नेत्र की प्यास बुझा–बुझाकर पलक नहीं दे रही हैं। कमल नयन भगवान श्रीराम की आरती करती हुई और मंगल के पुंज प्रभु को अपने भावों से सजाती हुई अमूल्य प्रभु को अर्घ्य देती हुई सुनयना जी सम्पूर्ण दिशाओं के पापवन को काट रही हैं। सासू सुनयना जी नेत्रों से प्रेमाश्रु धारा बहाती हुई श्रीराम की परिछन करके संसार की कारा अर्थात् बन्धन को काटती हुई **गिरिधर** कवि के स्वामी प्रभु श्रीराम को अपने मन मण्डप में ले जाती हुई पट्टमहिषी सुनयना जी बहुत ही सुन्दर लग रही हैं।

गीत संख्या–१३

सख्यो जगुः–

एतादृशो वरो नैव दृष्टः सखि क्वापि हे।
बहिर्भूतो धातुः सृष्टेर्जातो न कदापि हे।।१।।
सुषमासीमानमेनं धाता विदधे विभुम्।
नेत्थं वाच्यं मया सखि स्वं हि निदधे प्रभुम्।।२।।
नीलवर्णमूर्तिः क्वापि दृष्टा केनचन शुभे।
कोटिचन्द्रमाधुरी किं मुखे वारिरुन्निभे।।३।।
करिसिंहयोः कदापि दृष्टा सखि मित्रता।
गिरिधरप्रभौ भाति सकला विचित्रता।।४।।
मिथिलाया जना धन्या यैरयं हि दृश्यते।
सीताभुजलता धन्या यया सुखं श्लिष्यते।।५।।

भौमी- सखियाँ गीत गाने लगीं। हे सखि! इस प्रकार का दूल्हा कहीं नहीं देखा गया। श्रीराम विधाता की सृष्टि से बाहर के हैं। ये अजन्मा हैं, इनका कभी जन्म नहीं हुआ। सखी! विधाता ने इनको परम शोभा की सीमा बनाकर ही रचा है? नहीं-नहीं, सखी! मुझे ऐसा नहीं कहना चाहिये। इन्होंने स्वयं ही स्वयं को रच लिया है। सखि! क्या किसी ने इनके अतिरिक्त कहीं नीलवर्णीय मूर्ति देखी है? क्या कमल जैसे मुख पर करोड़ों चन्द्रमा की माधुरी सम्भव है? क्योंकि चन्द्र को देखकर कमल सिकुड़ जाता है जबकि श्रीराम के मुख में कमल और चन्द्रमा इन दोनों का निर्विरोध सौन्दर्य दिखता है। सखी! क्या किसी ने हाथी और सिंह की मित्रता देखी है? पर **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम में प्रकृति के सभी विरुद्ध उपादान निर्विरोध रूप में ही दिखते हैं। धन्य हैं मिथिला के लोग जो इन प्रभु को निहार रहे हैं और सीता जी की भुजारूपी लता भी धन्य है जो इनका आलिंगन के क्रम में स्पर्श करेगी।।

गीत संख्या-१४

गायति कविः-

मिथिलामण्डपे विभान्तं पश्य मैथिलीवरम्।
पश्य मैथिलीवरं पश्य जानकीवरम्।।
दिव्यप्रभया प्रभान्तं पश्य पार्थिवीवरम्।
मिथिला मण्डपे विभान्तं पश्य मैथिलीवरम्।।१।।
भानुवंशभूषणं विभूषणैर्विभूष्यमाणम्।
वैवाहिकैर्नखशिखसुषमाधरम् ।।
मिथिलामण्डपे विभान्तं पश्य मैथिलीवरम्।।२।।
शिरसि कलितसुललाममञ्जुमौलिधरम्।
मन्ये नवग्रहयुतं धाराधरम्।।
मिथिला मण्डपे विभान्तं पश्य मैथिलीवरम्।।३।।
चिकुरभ्रमरलोलं कुण्डलकनत्कपोलम्।
विधुमुखकञ्जनेत्रपल्लवाधरम् ।।
मिथिलामण्डपे विभान्तं पश्य मैथिलीवरम्।।४।।
मन्दमन्दहासजितकोटिकोटिसुधाकरम् ।
वृषस्कन्धकण्ठकलमौक्तिकशरम् ।।
मिथिलामण्डपे विभान्तं पश्य मैथिलीवरम्।।५।।
सुतिलकलसल्ललाटं सुदृढवक्षःकपाटम्।
पीतयज्ञसूत्रविद्युत्पीताम्बरम् ।।
मिथिलामण्डपे विभान्तं पश्य मैथिलीवरम्।।६।।

मिथिलाया नरनारीमोहनं वरमविकारम्।
ब्रह्मचारिवरं शीलसुखसागरम्।।
मिथिलामण्डपे विभान्तं पश्य मैथिलीवरम्।।७।।
गिरिधरकविवाणी सिन्धुतनयाशर्वाणी।
वेदा नित्यं गायन्ति वरेण्यनागरम्।।
मिथिलामण्डपे विभान्तं पश्य जानकीवरम्।।८।।

भौमी– कवि स्वयं गा रहे हैं–हे सखि! मिथिला के मण्डप में सुशोभित होते हुये सीता जी का दूल्हा देखो। पृथ्वीपुत्री जानकीजी का वर देखो। दिव्यप्रभा से सुशोभित होते हुये जानकी जी के दूल्हे को देखो। सूर्यवंश के अलंकार वैवाहिक आभूषणों से सुशोभित, नख–शिखपर्यन्त, दिव्यशोभा धारण किये हुये, सिर पर रत्नजटित मौर धारण किये हुये, मुझको नव ग्रहों से युक्त, मेघ जैसे प्रतीत हो रहे, भ्रमर जैसे घुँघराले बाल, कुण्डल से सुशोभित कपोल, चन्द्रमुख कमलनेत्र, पल्लव के समान ओष्ठ, मन्द मुस्कान से करोड़ों चन्द्रमाओं को जीतने वाले, बैल के समान स्कन्ध, गले में मोती की लड़ी धारण करने वाले, तिलक से मण्डित मस्तक, किवाड़ के समान वक्षस्थल, पीला यज्ञोपवीत, विद्युत के समान पीताम्बर, मिथिला के नर–नारियों को मोहने वाले, विकाररहित, बह्मचारियों में श्रेष्ठ, शील और सुख के सागर, ऐसे श्रेष्ठवर्णीय परमचतुर श्रीराम को लक्ष्मी, पार्वती, चारों वेद और गिरिधर कवि की वाणी ये सभी नित्य ही गाते हैं।

गीत संख्या–१५

सख्यो गायन्ति–

राघव मन्दं मन्दं चल मिथिलामण्डपे।
राघव शनैः शनैश्चल मिथिलामण्डपे।।
त्वदीयपाथोरुहपदरजःस्पर्शम् ।
भविष्यन्ति नरा नार्यो लब्धसमुत्कर्षम्।।
राघव मा नः प्रहर मिथिलामण्डपे।।१।।
महता सौभाग्येन मिथिलामायातः।
पुनानो जगत् सर्वं पदजलजातः।।
राघव सरसं संचर मिथिलामण्डपे।।२।।
शिरिषकुसुमसमौ मृदू तव चरणौ।
तुद्येतां न रत्नैःकठोरैरघहरणौ।।
राघव त्वरां संहर मिथिलामण्डपे।।३।।
हे जानकीजीवन निजजनसारङ्गघन।
राजीवनयन राम निष्किञ्चनपरमधन।।
राघव गिरिधरमनो हर मिथिलामण्डपे।।४।।

भौमी- सखियाँ गा रही हैं- हे राघव! मिथिला के मण्डप में धीर-धीरे चलिये। हे राघव सरकार! मिथिला के मण्डप में धीरे-धीरे पग रखिये। आपके चरणकमल का स्पर्श करके दिव्य उत्कर्ष पाकर मिथिला के सभी नर, नारी बन जायेंगे। हे राघव! आप हमारी जीविका पर प्रहार मत कीजिए अर्थात् जब सभी पुरुष नारी बन जायेंगे तब मिथिलानियाँ कहाँ जायेंगी? हे प्रभु! आप बहुत बड़े सौभाग्य से अपने कोमल चरणों से जगत को पवित्र करते हुये पैदल ही मिथिला पधारे हैं। हे राघव! मिथिला के मण्डप में रसीली चाल से चलिये। आपके चरण शिरीष पुष्प के समान कोमल और पापहारी हैं। कहीं मिथिला-भूमि के रत्नों से ये घायल न हो जायँ। हे राघव! मिथिला मण्डप में त्वरा समेट लीजिए अर्थात् उतावलापन मत कीजिए। सम्हाल-सम्हाल कर पग धरिये। हे सीता जी के जीवन भक्त चातकों के स्वातीघन, राजीवलोचन व निश्किंचनों के परमधन श्रीराम! मिथिला के मण्डप में पधारकर **गिरिधर** कवि के मन को भी हर लीजिए।

विशेष- यह गीत सुगम संगीत की एक झमक धुन में निबद्ध है। इसका बोल है-

राघव धीरे चलो ससुराल गलियाँ

गीत संख्या-१६

कविर्गायति-

मध्ये मण्डपं विभाति रामचन्द्रो विवाहे सीतावरः।
दिव्यशोभां दधाति रामचन्द्रो विजितकोटिशिवमुखशरः।।१।।
आयोध्यकाः वरयात्रिणश्च परितः वैश्वानरो भास्वरो भाति पुरतः।
शक्रमणिभां लुनाति रामचन्द्रो विहतभूरिभूतलभरः।।२।।
देदीप्यमानो दिव्यदीपप्रभाभिः परिहसित्सौत्रामसुललामभाभिः।
सतां मुष्णाति धैर्यं रामचन्द्रो व्रीडितविपुलधाराधरः।।३।।
मिथिलानिवासिनरनारीणां समक्षं भाति वरः परब्रह्म वृहत् सुप्रत्यक्षम्।
विश्वविश्वं पुनाति रामचन्द्रो निखिलगुणरत्नाकरः।।४।।
सीतामुखेन्दुचारुचक्षुश्चकोरः मैथिलानां भामवरो दशरथकिशोरः।
सद्भ्यः शान्तिं ददाति रामचन्द्रो गिरा गीतकविगिरिधरः।।५।।

भौमी- कवि स्वयं सुगम संगीत की लोकधुन में गा रहे हैं। विवाह मण्डप में सीता जी के वरण के लिये उद्यत श्रीरामचंद्र जी सुशोभित हो रहे हैं। अपनी शोभा से करोड़ों-करोड़ों कामदेवों को जीतने वाले प्रभु दिव्य शोभा को धारण कर रहे हैं। अयोध्यावासी बाराती प्रभु के चारों ओर विराज रहे हैं और विवाह विधि के साक्षी अग्नि देवता, प्रभु के सामने जाज्वल्यमान हो रहे हैं। भूभारहारी प्रभु आज इन्द्रनीलमणि शोभा को भी दूर कर रहे हैं। आज इन्द्रमणि की शोभा की हँसी उड़ाने वाले नीले दीपदान में प्रज्ज्वलित दीपक की कान्ति से सुशोभित होते हुये करोड़ों मेघों को जीतने वाले प्रभु श्रीराम संतों का धैर्य भी चुरा रहे हैं। मिथिला के नर नारियों के समक्ष सबसे बड़े परब्रह्म परमात्मा दूलह बनकर सुशोभित हो रहे हैं। सम्पूर्ण गुणों के सागर श्रीरामचन्द्र सम्पूर्ण विश्व को पवित्र कर रहे हैं। सीता मुखचन्द्र के नेत्र-चकोर, मिथिलावालों के जीजा, दशरथ

जी के राजकिशोर प्रभु श्रीरामचन्द्र सन्तों को शान्ति प्रदान कर रहे हैं और **गिरिधर** कवि अपनी वाणी से उन्हीं को गा रहा है।

विशेष– इस गीत का बोल है –

आज राघव को जीभर निहारे नयनवाँ माने नहीं।।

गीत संख्या–१७

राजति वरो रामचन्द्रो हे वरणी जाता सीता।
शुभगुणशोभासमुद्रो हे भूमिकन्या विनीता।।१।।
रामः स्ववपुषा त्रपयते हे कोटिकोटिकन्दर्पम् ।
सीता भनक्ति कोटिरतीनां हे हृदिरूढं कुदर्पम् ।।२।।
जिह्रेति रामं च पश्यन्ती नवनीरदमाला।
सीदति वीक्ष्य महीजां हे सौम्या शम्पा रसाला।।३।।
युग्मं निरीक्ष्य प्रशंसति हे मुदिता मैथिलानी।
गायति विभू अनवद्यौ हे कविगिरिधरवाणी।।४।।

भौमी– आज मण्डप में दूलह बनकर श्रीराम और दुलहिन बनकर सीता जी सुशोभित हो रही हैं। इधर श्रीराम कल्याण गुणों और शोभा के सागर हैं तो उसी प्रकार विनम्र पृथ्वी कन्या सीताजी भी। श्रीराम अपनी शरीर की शोभा से करोड़ों कामदेवों को लज्जित करते हैं तो सीताजी भी करोड़ों–करोड़ों रतियों के हृदय में छिपे हुए गर्व को समाप्त कर देती है। श्रीराम जी को देखकर नवीन मेघमाला लज्जित होती है तो सीताजी को निहारकर मधुर सुन्दर बिजली भी दुःखी हो जाती है। युगल सरकार को निहारकर प्रसन्न मैथिलानी प्रशंसा करती हैं और **गिरिधर** कवि की निर्दोष वाणी गाती रहती हैं।

विशेष– यह गीत विद्यापति के लोक गीत की ढाल में निबद्ध है, उसका बोल है–

कुंज गलिन में रोकल हे पकरल मोरी सारी।।

गीत संख्या–१८

गायति कविः–

वरयात्रिणः प्रेक्ष्य सीतां मनसि परमं हर्षमायुः।।
सौभगजितशतकोटिविद्युतं शोभाशीलविनीताम्
मनसि परमं हर्षमायुः।।१।।
वैवाहिकभूषणैर्भूषितां सीमन्तिनीं पुनीताम्
मनसि परमं हर्षमायुः।।२।।
सुषमामूर्तिं मनोरथपूर्तिं पतिदेवतां प्रतीताम्
मनसि परमं हर्षमायुः।।३।।

विग्रहीणीमिव कृपां खरारेर्विमलविवेकपरीताम्
मनसि परमं हर्षमायुः।।४।।
श्रीरघुवरमुखचन्द्रचकोरीं जनककिशोरीं शमीताम्
मनसि परमं हर्षमायुः।।५।।
सर्वे त्रिभुवनजननीं प्रणेमुः श्रुतिकविगिरिधरगीताम्
मनसि परमं हर्षमायुः।।६।।

भौमी- कवि स्वयं नचारी की धुन में गा रहे हैं– बाराती लोग अपनी शोभा से करोड़ों बिजलियों को जीतने वाली शोभा और स्वभाव से पवित्र सीताजी के दर्शन करके बहुत प्रसन्न हुये। सीताजी वैवाहिक आभूषणों से सजी हुई थीं। वे पवित्र कुलवती महिला के रूप में विराज रही थीं। वे सुषमा की मूर्ति, सभी मनोरथों को पूर्ण करने वाली एक अपने प्रियतम की विश्वास पात्र पतिव्रता थीं। जिन्हें देखकर बाराती प्रसन्न हुये। भगवान श्रीराम की मूर्तिमति कृपा, निर्मलविवेक से युक्त, श्रीराघव मुखचन्द्र की चकोरी, जनकराज पुत्री, कल्याण से युक्त, तीनों लोकों की माता, वेदों एवं **गिरिधर** कवि द्वारा गाई हुई जनकनन्दिनी सीताजी को सभी बारातियों ने प्रणाम किया और परम प्रसन्नता को प्राप्त हुये।

गीत संख्या-१९

भारती गायति-

मण्डपे विराजेते सीतारघुवरौ
गायन्ति नार्यो मङ्गलानि हे।
वाद्यन्ते वाद्यानि दिवि भुवि मिथिलायाम्
विप्राः पठन्ति कुशलानि हे।।१।।
गणपतिमर्चतो ब्रह्मदम्पती मुदा
तन्मातरं च गौरीमादरात्।
रक्षोघ्नमन्त्रैश्च रक्षांसि वसिष्ठो गुरुः
प्रत्यादिशति स निरादरात्।।२।।
निजकुलरीतिमथ ब्रूते दिनेशः स्वयं
कुर्वाते द्वौ च दिव्यदम्पती।
सूर्यस्यापि सूर्योऽप्यद्य सूर्यं प्रशंसति
मङ्गलानि शंसति मुदा पार्वती।।३।।
पावकोऽपि देहं धृत्त्वा घृताहुतिं संगृहिणीते
तस्य हृदि प्रीतिर्न सम्माति हे।

सीताराममङ्गलानि हर्षपूर्वं गायं गायम्
भारती च गिरिधरस्य भाति हे।।४।।

भौमी- अब सरस्वतीजी गा रही हैं- आज श्रीसीतारामजी मण्डप में विराज रहे हैं, महिलाएँ मंगल गा रही हैं। स्वर्ग में पृथ्वी पर तथा मिथिला में वाद्य बज रहे हैं। ब्राह्मण कुशलवर्धक वैदिक मंत्र पढ़ रहे हैं। आज ब्रह्मदम्पति सीतारामजी आदरपूर्वक गणपति और उनकी माता गौरीजी का पूजन कर रहे हैं। गुरु वसिष्ठजी रक्षोहन इत्यादि मंत्रों से राक्षसों को विवाह मण्डप से निरादरपूर्वक भगा रहे हैं। सूर्यनारायण प्रकट होकर अपने कुल की परम्परा कह रहे हैं और दिव्य-दम्पति सीतारामजी उनके निर्देशों का अक्षरशः पालन कर रहे हैं। सूर्य के भी सूर्य भगवान राम आज सूर्यनारायण की प्रशंसा कर रहे हैं। और पार्वती जी मंगलानुशंसा कर रही हैं। अग्निदेव भी शरीर धारण करके सीताराम जी की घृताहुति स्वीकार कर रहे हैं। उनके हृदय में प्रीति समा नहीं रही है। सीतारामजी का विवाह मंगल-हर्षपूर्वक गा-गाकर **गिरिधर** कवि की सरस्वती भी सुशोभित हो रही हैं।

विशेष- यह गीत भी मिथिला की लोकधुन में निबद्ध है- जिसका बोल है-

मड़ये में बेसल दुलहा दुलहिनि हे
बाबा करूँ न बेटी दान हे।।

गीत संख्या-२०

जनकस्य वामदिशि भाति सुनयना।।
आहूता कन्या दानाय मुनिभिः
हिमगिरिसङ्गे चकास्तीव मेना।।१।।
मणिगणकलितकनकजलकलशम्
राघवसम्मुखं लाति सुनयना।।२।।
निरुपमसौभगयुतं रघुवरं
पश्यन्ती निमिषं न राति सुनयना।।३।।
प्रक्षालयति प्रभुपदपद्मं प्रेम्णा
सह सङ्कोचं प्रयाति सुनयना।।४।।
क्षालं क्षालं सीतावरसरसिजचरणौ
मनसि न तृप्तिं याति सुनयना।।५।।
गिरिधरप्रभवे राघवाय सीतां
कन्यां वदान्यां ददाति सुनयना।।६।।

भौमी- सरस्वती जी पुनः गा रही हैं-जनकजी के ईशान कोण में सुनयना जी सुशोभित हो रही हैं। कन्यादान के लिये मुनियों के द्वारा बुलाई हुई सुनयना जनकजी के साथ उसी प्रकार सुशोभित हो रही हैं, जैसे

हिमालयराज के साथ मैना सुशोभित हुईं थीं। सुनयनाजी मणिगणों से युक्त स्वर्ण कलश को श्रीराम के सामने ला रही हैं। अनुपम सुन्दरता से युक्त श्रीराम को निहारती हुई सुनयना अपनी पलक नहीं लगा रही हैं। सुनयनाजी प्रेमपूर्वक प्रभु के चरणकमल पखार रही हैं और संकुचित हो रही हैं। सीतावर श्रीराम के कमलचरण को पखार-पखारकर सुनयनाजी मन में तृप्त नहीं हो रही हैं। आज सुनयना जी **गिरिधर** के प्रभु श्रीराम का भगवती सीताजी को समर्पित कर रही है।

विशेष-यह गीत स्वयं अनुभूत धुन में दीपचन्दी ताल १४ मात्रा में निबद्ध है। इसे भूपाली मंगल आदि रागों में गाया जा सकता है। वामदिशि का अर्थ वामदेव की दिशा। अर्थात् जनक जी के ईशान कोण में सुनैना जी विराज रही हैं।

गीत संख्या-२१

कम्पन्ते पात्राणि कम्पन्ते गात्राणि
कम्पन्ते कुशानां बर्हींषि।
मण्डपे च कम्पते पिता श्रीजनको राजा
पुत्रीं रामचन्द्राय राति।।१।।
कम्पन्ते अस्त्राणि कम्पन्ते शस्त्राणि
कम्पन्ते विशिखाधनूंषि।
मण्डपे कम्पते पिता श्रीविदेहो राजा
दुहितरं रामाय ददाति।।२।।
कम्पते वसुधा च कम्पते स्वर्गम्
कम्पन्ते चतुर्दशभुवनानि।
मण्डपे कम्पते पिता सीरध्वजो राजा
सुतां राघवेन्द्राय राति।।३।।
एतावन्ति वर्षाणि मदीये गेहे सीताऽभवत्
अद्य श्वसुरगेहं प्रयाति।
यामहं सदैव निजप्राणपणैरपालयम्
सैव सीता साम्प्रतं हि याति।।४।।
मङ्गलं निरीक्ष्य नृपो नेत्रनीरं निरुणद्धि
प्रीतिरपि हृदये न माति।
गिरिधरभारती प्रगाय कन्यादानविधिम्
स्वयं कृतकृत्यतां संयाति।।५।।

भौमी- सरस्वती जी पुनः गा रही हैं-आज कन्यादान के पात्र काँप रहे हैं। सभी के अंग काँप रहे हैं, कुशों

के मूलभाग काँप रहे हैं और मण्डप में पिताश्री जनकराजा काँप रहे हैं। वे आज अपनी बेटी श्रीरामचन्द्र जी को सौंप रहे हैं। आज अस्त्र कंप रहे हैं, शस्त्र कँप रहे हैं, बाण कंप रहे हैं और धनुष कंप रहे हैं एवं मण्डप में सीता जी के पिता महाराज विदेह कंप रहे हैं। वे श्रीराम जी के लिए अपनी बेटी का दान कर रहे हैं। आज पृथ्वी काँप रही है, स्वर्ग काँप रहा है एवं चौदह भुवन काँप रहे हैं और मण्डप में सीता जी के पिता श्रीराजा सीरध्वज काँप रहे हैं। वे अपनी बेटी सीताजी को श्रीराघव सरकार के हाथों में सौंप रहे हैं। जनकजी सोच रहे हैं कि इतने वर्षपर्यन्त सीताजी मेरे घर में थीं, आज ससुराल जा रही हैं जिन बेटी सीता को मैंने प्राण-पण से पाला; आज वही हमसे दूर हो जायेंगी। महाराज जनक मंगल समझकर नेत्रों में आँसू रोक रहे हैं। उनके हृदय में प्रीति समा नहीं रही है। इस प्रकार श्रीसीता राम जी का कन्यादान विधि प्रसंग गाकर **गिरिधर** कवि की सरस्वती भी कृतकृत्य हो रही हैं।

विशेष- यह गीत अवध के वैवाहिक लोकधुन की ढाल में निबद्ध है- इसका बोल है-

काँपइ लोटा ओ काँपइ थाली काँपइ कुशे कइ डाभ।
मड़ये में काँपइ राजा जनक जी देइ जानकी जीक दान।।

गीत संख्या-२२

राजा जनको भूरिभागो हे क्षालयति तत् पदाब्जम्।।
जाह्नवी विभाति यस्य मकरन्दभूता।
यत्सौरभचिन्तनेन गणिकाऽपि पूता।।
शिलामपि पुनाति यत् परागो हे क्षालयति तत् पदाब्जम्।।१।।
भक्तकृते भीमभवसागरप्लवो यः।
सुजनवाञ्छाकृते तरुः सिन्धुसम्भवो यः।।
लसत्पुरारातिहृत्तटागो हे क्षालयति तत् पदाब्जम्।।२।।
कोटिकोटिकल्पसुकृतनिचयैर्यन्न गम्यम्।
निखिललेखाधीशमुकुटवरललामनम्यम् ।।
यस्मिन् परमहंसयोगिरागो हे क्षालयति तत् पदाब्जम्।।३।।
यत्कृते तपन्ति सञ्जपन्ति योगिसिद्धाः।
यद् विचारयन्ति चारुधिया धीरवृद्धाः।।
येन सुफल्यते त्यागयागो हे क्षालयति तत् पदाब्जम्।।४।।
निष्किञ्चनानां यच्च धनं धिष्णां धेयम्।
वेदान्तवेद्यं यच्च सामगानगेयम्।।
यदर्थं विरागिणां विरागो हे क्षालयति तत् पदाब्जम्।।५।।
जह्नुजाकीलालकलितकमनकनकपात्रे ।

क्षालयति विदेहराजः प्रेमपूर्णगात्रे।।
गिरिधरोऽपि वीक्ष्य सानुरागो हे क्षालयति तत् पदाब्जम्।।६।।

भौमी- आज बड़भागी महाराज जनक प्रभु के अपूर्व चरण कमल को पखार रहे हैं। जिन चरण कमलों की रसभूता गंगाजी सुशोभित हो रही हैं और जिनके सुगन्ध के चिन्तन से गणिका भी पवित्र हो गई, जिनके धूलिरूप पराग ने शिला बनी गौतम पत्नी अहल्या को पवित्र कर दिया, उन्हीं श्रीचरणकमलों को महाराज जनक जी पखार रहे हैं। जो भक्तों के लिए भवसागर से पार होने के लिये जलयान (समुद्री जहाज) हैं तथा जो वैष्णवों की इच्छा-पूर्ति के लिये समुद्र से उत्पन्न पारिजात कल्पवृक्ष हैं, जिनसे शंकर भगवान का हृदयरूप तालाब सुशोभित हुआ, उन्हीं श्रीचरणकमलों को महाराज जनक पखार रहे हैं। जो करोड़ों-करोड़ों कल्पपर्यन्त अर्जित पुण्यों से भी नहीं प्राप्त होते और सम्पूर्ण देवतागणों के मुकुट रत्नों से जिनको प्रणाम किया जाता है जिनमें परमहंसों और योगियों का राग है; उन्हीं श्रीचरणकमलों को जनकजी पखार रहे हैं। जिनको प्राप्त करने के लिये योगिजन और सिद्धजन तपस्या तथा जप करते हैं और अपनी सुन्दर बुद्धि से धीर पुरुष एवं ज्ञानवृद्धजन जिन चरणकमलों को विचार का विषय बनाते हैं, जिनके कारण त्याग और यज्ञ सुफल होते हैं, उन्हीं श्रीचरणकमलों को महाराज जनक पखार रहे हैं। जो निष्किंचनों के धन एवं बुद्धि के ध्यान के विषय हैं, जो वेदान्त द्वारा जानने योग्य तथा सामवेद के गेय हैं और जिनके लिये विरागियों का विराग है, उन्हीं श्रीचरणकमलों को महाराज जनक पखार रहे हैं। महाराज जनक प्रेम-पुलकित शरीर होकर गंगाजी के दिव्य जल से पूर्ण स्वर्ण की परात में भगवान श्रीराम के श्रीचरणकमल पखार रहे हैं। यह देखकर **गिरिधर** कवि भी अनुराग से पूर्ण हो रहा है।

गीत संख्या-२३

गायति कविः-

पठति वसिष्ठो मुनिः सुस्वरं च वेदमन्त्रान्
शतानन्दो गायति च साम हे।
गालीः सुमङ्गलस्थालीमैथिलान्यो गायन्ति
चेतः सुखं ललितललाम हे।।१।।
दम्पती च दम्पत्योः पदाम्बुजानि क्षालयतः
नेत्रजलं रुद्धं च प्रोद्दाम हे।
मङ्गलानि दशसु दिक्षु क्षुभितानि रक्षांसि वै
हृदयं विदीर्णं च व्युद्दाम हे।।२।।
वाद्यन्ते वादित्राणि दिवि भुवि च मिथिलायाम्
मङ्गलैश्च पूर्णं नृपधाम हे।
जयजयजयकारं वदन्तो विबुधाः प्रोचुः
अद्य वै ससुखं रंस्याम हे।।३।।

सन्तो लसन्तः पुलकन्तो भवन्तश्चापि
प्रोचुर्युगलरूपं ध्यायाम हे।
गिरिधरकविमनोरथलताः सुफलाश्च
सुरगिरि गीतानि गायाम हे।।४।।

भौमी- अब कवि स्वयं मिथिला की ही ध्वनि में गा रहे हैं–वसिष्ठ जी सस्वर वेदमन्त्र पढ़ रहे हैं और शतानन्द जी सामगान कर रहे हैं और मिथिलानियाँ सुमंगल की थाली बनी हुई चित्त को रत्न के समान सुख देने वाली सुन्दर गारी गा रही हैं। आज राज दम्पति सुनयना जनक, ब्रह्म दम्पति सीताराम जी के चरण कमल को पखार रहे हैं। उनके नेत्र अश्रु से भरे पूरित हैं। दसों दिशाओं में मंगल हो रहे हैं, राक्षस क्षुभित हैं, उनका हृदय फट रहा है, मन के बन्धन टूट रहे हैं। स्वर्ग, पृथ्वी और मिथिला में वाद्य बज रहे हैं और महाराज जनक का भवन मंगल से पूर्ण है। जय-जयकार करके देवता कहने लगे, आज हम सुखपूर्वक श्रीराम में ही रमण करेंगे। सन्त सुशोभित होते हुये पुलकित होते हुये बोले–आज **गिरिधर** कवि की मनोरथ-लताएँ फलवती हो गईं। अब तो हम युगलरूप का ध्यान करें और संस्कृत भाषा में निबद्ध **गीतरामायणं** के वैवाहिक गीत गाते रहें।

गीत संख्या-२४

सख्यो गायन्ति-

सख्यो! दृष्ट्वा विवाहे सीतारामौ सफलयेम नेत्रं वयम्।।
मिथिलाया मण्डपे विराजमानौ चैतौ।
भक्तवाञ्छाकल्पतरू करुणानिकेतौ।।
सख्यो दृष्ट्वा त्रिभुवनाभिरामौ सफलयेम नेत्रं वयम्।।१।।
पश्यत विदेहः कन्यादानं विधत्ते।
वरं वर्णिनीं च मनोगृहे सन्निधत्ते।।
सख्यो दृष्ट्वा लोकलोचनाभिरामौ सफलयेम नेत्रं वयम्।।२।।
चपलाघनाविव प्रकृतिरमणीयौ।
दिव्यदम्पती च रतिकामकमनीयौ।।
सख्यो दृष्ट्वा मण्डपे च गौरश्यामौ सफलयेम नेत्रं वयम्।।३।।
अहो नृपः सीताहस्तं रामहस्ते दत्वा।
जीवनं सफलयति कन्यादानं कृत्वा।।
सख्यो दृष्ट्वा कविगिरिधराभिरामौ सफलयेम नेत्रं वयम्।।४।।

भौमी- सखियाँ गा रही हैं– हे सखियों! इस विवाहोत्सव में श्रीसीतारामजी को निहारकर हम अपने नेत्र सफल करें। मिथिला के मण्डप में विराजमान, भक्तों की इच्छापूर्ति के लिए कल्पवृक्ष स्वरूप, करुणा के भवन, तीनों लोकों के आनन्ददाता श्रीसीताराम जी के दर्शन करके हम अपने नेत्र सफल करें। देखो आज

जनकराज कन्यादान कर रहे हैं और वरण करने योग्य वर श्रीराम को अपने मनभवन में पधरा रहे हैं। आज लोक लोचनाभिराम सीतारामजी को देखकर हम अपने नेत्र सफल करें। बिजली और मेघ की भाँति स्वभाव से सुन्दर करोड़ों रतियों और कामदेवों की इच्छा के विषय अलौकिक-दम्पत्ति गौरश्याम सीतारामजी को निहारकर हम अपने नेत्र सफल करें। अहो सीता जी का श्रीहस्त श्रीराम के श्रीहस्त में देकर महाराज कन्यादान करके अपना जीवन धन्य कर रहे हैं। सखियों! **गिरिधर** कवि को आनन्द देने वाले सीतारामजी के दर्शन करके हम अपना नेत्र सफल कर लें।

गीत संख्या-२५

गायति कविः-

सीतारामौ भवौ भ्राम्यतो भ्रामरिकां हे।।
ययोः स्मृत्या भवभ्रमो भर्ज्यते तौ दम्पती
भ्रामं भ्रामं भ्राम्यतो भ्रामरिकां हे।।१।।
कनककलशमभिकुरुतः प्रदक्षिणां
भावं भावं भ्राम्यतो भ्रामरिकां हे।२।।
आयोध्यकमैथिलैरनिमिषैर्विलोक्यमानं
मानं मानं भ्राम्यतो भ्रामरिकां हे।।३।।
चपलानीरदाविव दिनकरं परितः
क्रामं क्रामं भ्राम्यतो भ्रामरिकां हे।।४।।
वेदध्वनिजयध्वनिमाङ्गलिकगीतध्वनिम्
श्रावं श्रावं भ्राम्यतो भ्रामरिकां हे।।५।।
रतिमनसिजाविव जानकीरघुवरौ
शोभं शोभं भ्राम्यतो भ्रामरिकां हे।।६।।
रूपसम्पदा च वरयात्रिगृहयात्रिणो
लोभं लोभं भ्राम्यतो भ्रामरिकां हे।।७।।
कविगिरिधरगिरि गदितचपलतां
क्षामं क्षामं भ्राम्यतो भ्रामरिकां हे।।८।।

भौमी- पुनः कवि मैथिल वैवाहिक लोकधुन में गा रहे हैं-सबका कल्याण करने वाले श्रीसीतारामजी ग्रन्थि बन्धन करके अग्नि की परिक्रमा करते हुये भाँवरी दे रहे हैं। जिनकी स्मृति से संसार का भ्रम ही भुन जाता है, वे ही ब्रह्म दम्पत्ति सीतारामजी घूम-घूमकर भाँवरी दे रहे हैं। वे स्वर्णकलश की परिक्रमा कर रहे हैं और वैदिक-विधि का विचार कर-करके भाँवरी दे रहे हैं। निर्निमेष अयोध्यावासियों एवं मिथिलावासियों के चितवन का सम्मान कर-करके श्रीसीताराम जी भाँवरी दे रहे हैं। सूर्यनारायण के चारों ओर बिजली और

बादल की भाँति सुवर्ण कलश के चारों ओर घूम-घूमकर श्रीसीताराम जी भाँवरी दे रहे हैं। वेदध्वनि, जयध्वनि, मंगल के गीत ध्वनि सुन-सुनकर किशोर-दम्पत्ति भाँवरी दे रहे हैं। रति और कामदेव की भाँति बार-बार शोभित होकर जनकनन्दिनी एवं रघुनाथजी फेरा-फेरते हुये भाँवरी दे रहे हैं। अपनी रूप सम्पत्ति से बारातियों एवं घरातियों को बार-बार लुभाते हुये सीताराम जी भाँवरी दे रहे हैं। **गिरिधर** कवि की वाणी से प्रकट की हुई चपलता को क्षमा कर-करके श्रीसीताराम जी विवाह की भ्रामरी (फेरा) विधि सम्पन्न कर रहे हैं।

विशेष- इसका बोल है-सीता रघुवर देत भँवरिया हे।।

गीत संख्या-२६

यावत् प्रथमा भ्रामरिका हे तावत् सीता जानकी।
भाति रघुवरसविधे हे चपलेव जानकी।।१।।
यावद् द्वितीया भ्रामरिका हे तावत् सीता जानकी।
भाति भगवता समन्विता हे यथा माया जानकी।।२।।
यावत् तृतीया भ्रामरिका हे तावत् सीता जानकी।
भाति भगवती आह्लादिनी हे आदिशक्तिजानकी।।३।।
यावत् चतुर्थी भ्रामरिका हे तावत् सीता जानकी।
भाति भूषणैर्विभूषिता हे महालक्ष्मीर्जानकी।।४।।
यावत् पञ्चमी भ्रामरिका हे तावत् सीता जानकी।
भाति अहैतुकी भगवतो हे कृपा साक्षात् जानकी।।५।।
यावत् षष्ठी भ्रामरिका हे तावत् सीता जानकी।
भाति सौभगसुगेहे हे दीपशिखा जानकी।।६।।
यदा सप्तमी भ्रामरिका हे तदा सीता राघवी।
भाति गिरिधरस्वामिनी हे नित्या सीता राघवी।।७।।

भौमी- जब तक पहली भाँवरी है तब तक सीताजी जनकनंदिनी हैं और वे श्रीराम के समीप बिजली की भाँति सुशोभित हो रही हैं। जब तक दूसरी भाँवरी सम्पन्न हो रही है तब तक सीताजी जनक जी की बेटी हैं। वे भगवान श्रीराम से समन्वित होकर योगमाया जैसी सुशोभित हो रही हैं। जब तक तीसरी भाँवरी सम्पन्न हो रही है तब तक सीताजी जनकनन्दिनी हैं। वे पार्वतीजी की भी जन्मदात्री होकर परमेश्वर की आह्लादिनी-शक्ति आदिशक्ति के रूप में सुशोभित हो रही हैं। जब तक चौथी भाँवरी सम्पन्न हो रही है तब तक सीताजी जनकजी की पुत्री हैं जो आभूषणों से विभूषित होकर महालक्ष्मी स्वरूप में सुशोभित हो रही हैं। जब तक पाँचवीं भाँवरी सम्पन्न हो रही है तब तक सीताजी जनकराज कन्या हैं जो परमेश्वर की अहैतुकी कृपास्वरूप में सुशोभित हो रही हैं। जब तक छठीं भाँवरी पड़ रही है तब तक सीता जी जनक जी की लाडली बेटी हैं। जो सौन्दर्य के भवन में दीपशिखा जैसी देदीप्यमान हो रही हैं। पर जब सातवीं भाँवरी सम्पन्न हो गई, तब सीताजी श्रीराघवेन्द्र सरकार की धर्म-पत्नी हो गईं। अब **गिरिधर** कवि की स्वामिनी सीताजी राघव सरकार प्रभु रामचन्द्र की नित्य धर्म-पत्नी स्वरूप में सुशोभित हो रही हैं।

विशेष- यह गीत उत्तर भारत की सुप्रसिद्ध लोकधुन में निबद्ध है, इसके बोल का संक्षेप इस प्रकार है-

जब तक पहिली भंवरिया हे तब तक बेटी बाप की।
दूसरी....तीसरी...
जब सतई भंवरिया हे तब सीता राम की।।

गीत संख्या-२७

गायति कविः-

कस्या नगर्याः सिन्धूरं कस्यां पुरि विक्रीयते हे।
हरे हरे कस्य कुमारी सुकुमारी वै सिन्धूरं सङ्क्रीणीते हे।।१।।
अवधनगर्याः सिन्धूरं जनकपुरि विक्रीयते हे।
हरे हरे जनककुमारी सुकुमारी वै सिन्धूरं सङ्क्रीणीते हे।।२।।
कस्य करे भाति सिन्धूरं सीमन्ते कस्या भास्यति हे।
हरे हरे किं रूपं राजत् सिन्धूरं कस्यैचित् किञ्चिद् दास्यति हे।।३।।
रामकरे भाति सिन्धूरं सीतासीमन्ते भास्यति हे।
हरे हरे अनुरागवर्णं सिन्धूरं श्रियै सौभाग्यं दास्यति हे।।४।।
भारतीयसंस्कृतिश्रीसीता सिन्धूरेण विभास्यति हे।
हरे हरे दृष्ट्वा रामसहितां वैदेहीं गिरिधरो गीतं गास्यति हे।।५।।

भौमी- अब सिन्दूरदान गीत कवि स्वयं गा रहे हैं, जो भोजपुरी लोकधुन की ढाल में निबद्ध है। किस नगर का सिन्दूर किस पुरी में बिक रहा है? और किस नगर की कुमारी सिन्दूर का क्रय कर रही हैं? अवध नगर का सिन्दूर जनकपुर में बिक रहा है और जनकजी की कुमारी सीता जी सिन्दूर को क्रय कर रही हैं। सिन्दूर किसके हाथ में सुशोभित हो रहा है और किसके माँग में सुशोभित होगा? सिन्दूर किस वर्ण का है? यह किस महिला को क्या उपहार देगा? सिन्दूर श्रीराम के कर में सुशोभित हो रहा है और श्रीसीता के माँग में सुशोभित होगा। अनुराग ही इसका वर्ण है। यह श्रीसीताजी को सौभाग्य प्रदान करेगा। श्रीसीताजी साक्षात् भारतीय संस्कृति हैं जो शीघ्र ही श्रीराम द्वारा समर्पित सिन्दूर से सुशोभित होंगी। इस प्रकार वैदिक विवाह विधि से परिणीता श्रीराम के सहित सीताजी को निहारकर **गिरिधर** कवि भी मांगलिक गीत गाता रहेगा।

सन्दर्भश्लोकः

अथ वसिष्ठमुनिर्मनुजर्षभम्
नवलनीरदकान्तमरिन्दमम् ।
पुलकपूर्णशरीर उदारधी
रघुवरं स मुदा समुपादिशत्।।१।।

भौमी- इसके पश्चात् शत्रुओं के नाशक नवीन मेघ के समान सुन्दर मनुष्यों में श्रेष्ठ अथवा जिनकी कृपा

से मनुष्य श्रेष्ठ हो जाता है ऐसे रघुवर श्रीराम को उदार बुद्धि वाले उन महर्षि वसिष्ठ जी ने शरीर में रोमाञ्च से युक्त होकर इस प्रकार आदेश दिया।

गीत संख्या-२८

सिन्धूरं समर्पय राघव सीतासीमन्ते
किञ्चिद् विलम्बो न विधीयताम्।
जगदम्बा जानकी जगद्धिताय जगत्पित्रा
जगति पश्यति परिणीयताम्।।१।।
अरुणपरागपूर्णः पद्मिनीपाद्मजस्त्रजा
सुधायै सुधांशुर्भूषां नीयताम्।
तव चक्षुश्चकोराभ्यां सैरध्वजीमुखचन्द्र
पीयूषं मुदैव मुहुः पीयताम्।।२।।
स्वयम्वरे जिता त्वया सीमन्तिनी सीतावधूः
वन्दनीयामयोध्यां च नीयताम्।
रावणं निहत्य चैतद् व्याजतो दयालुनाथ
भूमेरपि भारोऽप्यपनीयताम्।।३।।
रामराज्यसम्पत्या वै प्रणतप्रपत्या प्रभो
त्रिलोक्यद्य सुखं संविधीयताम्।
गिरिधरभारत्यापि दिवानिशमनारतम्
माङ्गलिकगीतमभिगीयताम् ।।४।।

भौमी- हे राघव! सीताजी की माँग में सिन्दूर दान कीजिये। किसी प्रकार का विलम्ब मत कीजिए। जगत के हित के लिये जगत के देखते-देखते जगत के पिता आपश्री द्वारा जगदम्बा जानकी का परिणय कर लिया जाय। अमृतपान के लिये कमल माला द्वारा चंद्रमा लाल पराग से पूर्ण करके सुशोभित किया जाय और आपके नेत्र चकोरों के द्वारा सीताजी की मुखचन्द्र सुधा बार-बार पान की जाय। आपके द्वारा स्वयंवर में जीती हुई सौभाग्यवती सीताजी अब वन्दनीया अयोध्या में पधराई जायँ। इसी बहाने रावण का वध करके आपश्री के द्वारा दया करके पृथ्वी का भार हर लिया जाय। श्रीरामराज्य की सम्पत्ति और शरणागत की प्रपत्ति के साथ आज तीनों लोक सुखी कर दिये जायँ। और **गिरिधर** कवि की सरस्वती के द्वारा भी बिना विश्राम किये रात-दिन आपश्री का मांगलिक गीत गाया जाय।

गीत संख्या-२९

रामो राति श्रियै सिन्धूरम्।।
सीतासीमन्ते कचकान्ते कुसुमगुच्छजितकोटिवसन्ते।
निजसुषमासन्दीप्तदिगन्ते सरसमनघमक्रूरम्।।१।।

दक्षिणकरजनिकरभररम्यं जगदघशमनमशेषप्रणम्यम्।
कलितकञ्जकिञ्जल्ककान्तिहरप्रथितपयोजमदूरम् ।।२।।
सुरदेशिककविकुजबुधजुष्टं परमप्रेममकरन्दसुपुष्टम्।
विधुमभिलसदम्भोजमनुपमं कल्पितशतशिशुसूरम्।।३।।
मङ्गलमथ गायति मिथिलानी हैमवतीपरिकलितहिमानी।
भवति कृतार्था गिरिधरवाणी क्षपितदुरितमधरितकलिशूरम्।।४।।

भौमी- कवि स्वयं हवेली पद्धति में गा रहे हैं- श्रीराम सीताजी को सिन्दूरदान कर रहे हैं, पुष्प के गुच्छों से करोड़ों बसन्तों को जीतने वाले अपनी परमशोभा से दिगन्त को प्रकाशित करने वाले घुँघराले बालों से सुन्दर सीताजी के भाल प्रदेश (माँग) में श्रीराम रसयुक्त, निष्पाप, कोमल सिन्दूर समर्पित कर रहे हैं। दक्षिण हाथ के ऊंगलियों के समूह से सुन्दर संसार के पाप को नष्ट करने वाला, सभी प्राणियों के लिए प्रणम्य, सुन्दर कमल के पराग की शोभा को चुराने वाला और कमल की ख्याति को बढ़ाने वाला, दम्पत्ति की दूरी को दूर करने वाला, दिव्य सिन्दूर सीताजी को समर्पित कर रहे हैं–बृहस्पति, शुक्र, मंगल और बुध की शोभा से युक्त, सुन्दर, परमप्रेम, मकरन्द से पूर्ण, चन्द्रमा की इच्छा करने वाले उपमारहित कमल जैसा जिसने अनंत सूर्यों के तेज को इकट्ठा कर लिया हो ऐसा दिव्य सिन्दूर भगवान श्रीराम सीताजी को अर्पित कर रहे हैं। मिथिलानी मंगल गीत गा रही हैं, गंगाजी स्नेह की शीतलता से युक्त हैं। गिरिधर कवि की वाणी कृतार्थ हो रही है और श्रीराम पाप के नाशक कलियुग रूप वीर को भी तिरस्कृत करने वाला दिव्य सिन्दूर सीताजी की माँग में भर रहे हैं।

गीत संख्या-३०

श्रीरामसीतायुगलं विजयते
अभिरामप्रीतायुगलं विजयते।
श्रीरामजानकीयुगलं विजयते।।१।।
वसिष्ठानुशासने नैकासनस्थं
दिव्यवरवर्णिनीयुगलं विजयते।
श्रीरामजानकी युगलं विजयते।।२।।
परस्परमवलोकयन्मञ्जुप्रीत्या
नलिननयनरसिकयुगलं विजयते।
श्रीरामजानकी युगलं विजयते ।।३।।
गुप्तमपि प्रकटिभवन्मधुतरङ्गं
प्रेमपूर्णमन्तरङ्गयुगलं विजयते।
श्रीरामजानकी युगलं विजयते।।४।।
एकस्थयोर्वारिदविद्युतो सुसमन्वयं

कल्पतरुलताश्लेषयुगलं विजयते।
श्रीरामजानकी युगलं विजयते।।५।।
सुषमाश्रृङ्गारयोरेकीभवद्रूपम्
रघुनिमिकुलपुण्ययुगलं विजयते।
श्रीरामजानकी युगलं विजयते।।६।।
कविगिरिधरमनोमण्डपे विराजमानं
साध्यसाधनसुफलयुगलं विजयते।
श्रीरामजानकी युगलं विजयते।।७।।

भौमी– श्रीराम सीता युगल सरकार की जय हो। सबको आनन्द देने वाले श्रीराम और परम प्रसन्न सीता जी इन दोनों दिव्य–विभूतियों की जय हो। वसिष्ठजी के अनुशासन से एक आसन पर बैठे हुये दिव्य वर–वधू युगल की जय हो। प्रेम से अन्योन्य को निहारते हुये कमलनयन युगल रसिक की जय हो। गोपनीय होकर भी जिनके मधुर–भाव तरंग प्रकट हो रहे हैं, ऐसे प्रेमपूर्ण युगल अन्तरंगों की जय हो। एक सिंहासन पर बैठे हुये श्रीसीतारामजी के बादल और बिजली के समान समन्वय की तथा पारिजात और कल्पलता के युगल संश्लेषण की जय हो। सुषमा और शृंगार का एकी–भावरूप रघुराज और निमिराज के पुण्य–युगल श्रीसीतारामजी की जय हो। **गिरिधर** कवि के मनोमण्डप में विराजमान साध्यसाधन के युगल–फलस्वरूप श्रीसीतारामयुगल सरकार की जय हो।

सन्दर्भश्लोकौ

राजा श्रीभरताय सादरमदात् कौशध्वजीं माण्डवीं
पुत्रीरत्नमथोर्मिलां निजभवां श्रीलक्ष्मणायार्पयत्।
शत्रुघ्नं श्रुतिकीर्तिवल्लभमथो कृत्वा विदेहो मुदं
विद्यानां च चतुष्टयीमिव बुधो दत्त्वा चतुर्भ्योभ्यगात्।।१।।
चत्वारः किलकोसलाधिपसुता राजान्तिके रेजिरे
पत्नीभिः सहिताः क्रियाभिरनघाः पूर्णा पुमर्था यथा।
भूयो मङ्गलगानवाद्यविलसद् माधुर्यमञ्जूत्सवं
नीताः कौतुकगेहमद्भुतवधूभाजः सखीभिर्मुदा।।२।।

भौमी– महाराज जनक के आदरपूर्वक कुशध्वज की ज्येष्ठपुत्री माण्डवी को भरतजी को दिया और स्वयं की उत्पन्न हुई पुत्रीरत्न उर्मिला को श्रीलक्ष्मण को समर्पित किया। इसी प्रकार शत्रुघ्नलालाजी को कुशध्वज की छोटी बेटी श्रुतिकीर्ति का पति बनाकर जनकजी उतने ही प्रसन्न हुये जैसे विद्वान आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता तथा दण्डनीति नामक चारों विद्याएँ अधिकारानुरूप मुमुक्षु, जिज्ञासु, जिघृक्षु और वुभुक्षु नामक चार अधिकारियों को देकर प्रसन्न होता है। कोसलाधिपति के चार राजकुमार राम–भरत–लक्ष्मण–शत्रुघ्न महाराज दशरथ के पास पत्नियों सहित उसी प्रकार सुशोभित हो रहे थे। जैसे–सेवा, श्रद्धा, तपस्या और भक्ति के साथ क्रमशः चार

अर्थ-धर्म-काम-मोक्ष पुरुषार्थ सुशोभित होते हैं। फिर अद्‌भुत बहुओं वाले चारों भाई मंगलगान और वाद्य से मधुर सम्पन्न कोहबर भवन में सखियों द्वारा ले जाये गये।

सख्यो जगुः-

गीत संख्या-३१

सख्यो धावं धावं वरोऽयं चलति कीदृशः।
अजो बन्धनाद्विमुक्तः पलायते यादृशः।।१।।
एतादृशं वरं किमजं वदथ सुदृशः।
अजपौत्रीभूय ख्यातोऽयं यतस्तादृशः।।२।।
सख्यो मन्दं मन्दं वरोऽयं चलति कीदृशः।
तैलयन्त्रे बद्धो वृषभो भ्रमति यादृशः।।३।।
ईदृक् वरं कथं वृषभं वदथ सुदृशः।
कर्मयन्त्रे यतो जीवान् पिनष्टि तादृशः।।४।।
सख्यस्तिष्ठन्वरः सम्प्रति लगति कीदृशः।
खातो मरकतस्तम्भो विभाति यादृशः।।५।।
ईदृग्वरं कथं स्तम्भं वदथ सुदृशः।
प्रह्लादार्थे स्तम्भं भीत्वा प्रकटस्तादृशः।।६।।
सख्यः प्लावं प्लावं वरोऽयं चलति कीदृशः।
जालान्मुक्तो वनहरिणो विभाति यादृशः।।७।।
ईदृक् वरं कथं हरिणं वदथ सुदृशः।
गजोद्धारे हरिणीगर्भात्सञ्जातस्तादृशः।।८।।
सीतारामगुणवर्णनापवित्रहृद्दृशः।
सीतारामे मनो रमतां गिरिधरस्येदृशः।।९।।

भौमी- सखियाँ मिथिला की पद्धति में गाने लगीं। सखियों! ये दौड़-दौड़कर दूल्हे राजा कैसे चल रहे हैं, जैसे-बन्धन से छूटा हुआ बकरा भागता है। दूसरी सखी ने पूछा- अरी सखी! इस प्रकार सुन्दर वर को अज अर्थात् बकरा क्यों कह रही हो? सखी ने उत्तर दिया-क्योंकि ये अज के पौत्र हैं। यदि दादा अज है तो पोता भी तो अज ही होगा। वस्तुतः अज का अर्थ ब्रह्मा है और ब्रह्मा के अंश होने से दशरथ जी के पिताश्री का नाम भी अज ही हुआ। चूँकि अज का अर्थ बकरा भी होता है, अतः मिथिलानियों ने विनोद में वही अर्थ ले लिया। तब भगवान श्रीराम धीरे-धीरे चलने लगे। सखि ने पुनः कहा- सखियों! देख रही हो-धीरे-धीरे चलते हुये दूलह सरकार कैसे लग रहे हैं? जैसे तेल निकालने वाले कोल्हू में बँधा हुआ बैल चलता है। सखि ने फिर कहा अरे! सुन्दर नेत्र वाली इस प्रकार के वर को कोल्हू का बैल क्यों कह रही हो? सखि ने उत्तर दिया-क्योंकि ये चौरासी लाख योनियों में भटकने वाले जीव को कर्म के कोल्हू अर्थात् तैल-यन्त्र में पीसते रहते हैं। इसलिये इन्हें

कोल्हू का बैल कह दिया। तब भगवान श्रीराम खड़े हो गये क्योंकि जल्दी चलें तो बकरा कहा और धीरे चले तो बैल कह दिया। अतः तीसरा विकल्प सोचकर प्रभु वहीं स्थिर खड़े हो गये। फिर सखि ने कहा–सखियों! देख रही हो। स्थिर खड़े हुये दूल्हे राजा कैसे लग रहे हैं? जैसे–आँगन के मध्य गड़ा हुआ मरकतमणि का खम्भा। सखि ने कहा–अरे! सखि इस प्रकार सुन्दर वर श्रीराम को तुम खम्भा क्यों कह रही हो? सखि ने उत्तर दिया–क्योंकि यही प्रह्लाद के लिये खम्भे को फाड़कर नरसिंह रूप में प्रकट हुये थे। खम्भे से प्रकट होने वाला खम्भा ही तो होगा। फिर श्रीराम उछल–उछल कर चलने लगे। तब सखि ने कहा– सखियों! देख रही हो। आज दूल्हेराजा उछल–उछल कर कैसे चल रहे हैं? जैसे जाल से मुक्त हुआ वन का हरिण कूद–कूद कर भागता है। पुनः सखी ने पूछा–अरी सुन्दर नेत्रवाली सखियों! इस प्रकार सुन्दर वर को वन का हरिण क्यों कह रही हो? सखि ने उत्तर दिया– क्योंकि गजेन्द्र के उद्धार के समय ये हरि मेधा ऋषि की हरिणी के गर्भ से उत्पन्न हुये थे तो हरिणी का बेटा हरिण ही तो होगा। भागवत् में कहा भी गया है–"हरिण्यां हरिमेधसः" सीताराम जी के गुण–वर्णन से जिसके हृदय के नेत्र पवित्र हो गये हैं, ऐसे **गिरिधर** कवि का मन सीताराम जी में ही रमता रहे।

विशेष– यह गीत मिथिला रसिक परम्परा की गारी लोकधुन में बद्ध है– इसका बोल कुछ इस प्रकार का है– 'सखि हे हलबल दुलहा चलै छी कोना बन्धन छूटल बकरा भगै ही जेना।।'

सन्दर्भश्लोकः

अथो समानीय च कौतुकालयं वधूभिरेतांश्चतुरः कुमारकान् ।
विधापयामासुरमोघदर्शनाः सुचारुसख्यः किल लौकिकान् विधीन्।।१।।

भौमी– इसके पश्चात् अमोघ दर्शन वाली सुन्दर सखियाँ चारों राजकुमारों को बधुओं के सहित कोहबर में लाकर उनसे सभी लौकिक विधि सम्पन्न करायीं।

गीत संख्या–३२

गारीर्भवद्भ्यो नार्पयामो हे काञ्च कथां कथयामः।
तथ्यानि यानि भुवि ख्यातानि हे दृष्टिपथे पथयामः।।
गुरुपुत्रीसरय्वां निमज्जन्ति सर्वे
श्रुत्वा तच्च मनो व्यथयामो हे काञ्च कथां कथयामः।।१।।
शान्तया भगिन्या सुमूर्त्या समेतः
सन्देहं स्वचित्ते ग्रथयामो हे काञ्च कथां कथयामः।।२।।
एकनिशि कौसल्या हयेन संविष्टा
तव मातृमैत्रीं प्रथयामो हे काञ्च कथां कथयामः।।३।।
दशरथनियुक्ते सुमित्रास्वमित्रे
जननीं न ते कदर्थयामो हे काञ्च कथां कथयामः।।४।।

गिरिधरप्रभो द्वय र्थश्लिष्टपरिहासेन
श्रीचरणरतिं प्रार्थयामो हे काञ्च कथां कथयामः।।५।।

भौमी– सखियाँ कहती हैं– हे राघव सरकार! हम आपको गारी नहीं दे रही हैं, पर जो तथ्य संसार में प्रसिद्ध हैं, उन्हीं को आपके संज्ञान में ला रही हैं। सरयू आपकी गुरुपुत्री अर्थात् बहन हैं उन्हीं की धारा में आप लोग नहाते हैं, यह सुनकर हमारा मन थोड़ा–सा व्यथित हो जाता है। आपकी शान्ता जी बहन हैं और आपकी मूर्ति भी शान्ता है। 'श्यामलं शान्तमूर्तिम्' अतः आप अपनी मूर्ति में ही शान्ता बहन को चिपकाये हुये हैं। इससे हम अपने चित्त में सन्देह के गुच्छों को ही गूँथ रही हैं। अर्थात् हमें आप बहन–भाई के ही सम्बन्ध में सन्देह हो रहा है। राघव! आपके जन्म के पूर्व महारानी कौसल्या एक रात अश्वमेधीय घोड़े के साथ रहीं थीं, अतः आपकी माताश्री की अश्वमित्रता की ख्याति बता रही है। यद्यपि उस अश्वमित्र को आपके पिता दशरथजी ने ही कौसल्याजी के लिए नियुक्त किया था। इसलिए हम आपकी माँ को नहीं गरिया रहे हैं। हे **गिरिधर** कवि के स्वामी! इस प्रकार श्लेष से युक्त दो अर्थों वाले परिहास के माध्यम से हम आपश्री के चरणकमल के अनुराग की प्रार्थना करती हैं। आपकी निन्दा में हमारा तात्पर्य नहीं है। यह केवल विनोद भर ही है।

गीत संख्या–३३

पिब कोसलराजकुमार मिथिलागारिरसम्।।
षट् पञ्चाशद् भोगं जीमन् यथारुचि शृणु सुकुमार।।१।।
दत्ता स्वसा शृङ्गिणे ऋषये ऋषिकुलकृते उदार।।२।।
दिश मातॄर्जनकाय राजर्षये हे करुणाकूपार।।३।।
पायसमथ तव गर्भनिमित्तं मा स्पृश तज्जितमार।।४।।
मा भूत् ते युवनाश्वदुर्दशा हे सीताशृङ्गार।।५।।
पितरौ तव निसर्गतो गौरौ श्यामस्त्वं हृतभार।।६।।
योऽसि सोऽसि मिथिलामावस लस गिरिधरप्राणाधार।।७।।

भौमी– हे कोसल राजकुमार! मिथिला का गारीरस पीजिए। छप्पन भोग अपनी रुचि के अनुसार जेंवते हुये आप सुनिये। आपने अपनी बहन सींग वाले ऋषि को दे दी। लगता है आप ऋषिकुल के लिए बहुत उदार हैं। यदि बहन ब्रह्मर्षि को दी तो अपनी माताओं को भी राजर्षि जनक को दे दीजिए। क्योंकि आप करुणा के सागर हैं ही। खीर ही आपके गर्भ का निमित्त है। इसलिए हे काम के विजेता श्रीराम! इसे मत स्पर्श कीजिएगा। हे सीताजी के शृंगार! कहीं आपकी युवनाश्व जैसी दुर्दशा न हो जाय। आपके माता–पिता तो गोरे हैं और आप श्यामल हैं। हे **गिरिधर** कवि के प्राणाधार आप जो हैं सो हैं, कृपा करके आप मिथिला में यहीं बस जाइए और यहीं सुशोभित होइये।

विशेष– यह गीत भी मिथिला की मंगल गारी परम्परा में ही निबद्ध है।

सन्दर्भश्लोकाः

विधाप्य पाणिग्रहणं यथाश्रुतं

सुबाहुशत्रोर्मिथिलाधिपो नृपः।
मुमोच नो नीरमुचोपमप्रभं
स राघवं तत् पितरं सहानुगम्।।१।।
अथो निकुञ्जेषु लतागृहेषु च
श्रिया समाब्रीडितवैद्युतत्विषा।
समं च रामे रममाण आदरात्
समागता वल्गुवसन्तपञ्चमी।।२।।
महोत्सवोऽभूदुभयोश्च पक्षयोः
दिनेशवंश्ये निमिवंशवर्धने।
प्रमोदमाना वरयात्रिणो मिथः
सुरागकेलिं विदधुश्च मैथिलैः।।३।।

भौमी- इस प्रकार वैदिक विधि से सुबाहु राक्षस के शत्रु भगवान श्रीराम का विवाह संस्कार सम्पन्न करके भी महाराज जनक ने मेघवर्णी श्रीराम को उनके पिता महाराज दशरथ और बारातियों को भी अयोध्या जाने की अनुमति न देकर मिथिला में ही रख लिया। इसके पश्चात् अपनी शोभा से विद्युत की भी शोभा को लज्जित करने वाली सीता जी के साथ निकुंजों में, लता भवनों में रमते हुये श्रीराम के समीप सुन्दर बसन्त पंचमी आ गई। अब दोनों पक्षों में जनकजी और दशरथजी के यहाँ होली महोत्सव प्रारम्भ हो गया और प्रसन्न बाराती मैथिलों के साथ रंग खेलने लगे।

गीत संख्या-३४

होलीं क्रीडति रघुवीरो जनकपुरे होलीं क्रीडति रघुवीरः।
तत्र जनकसुतया सह सख्याः अत्र श्रीलक्ष्मणो वीरः।।१।।
सीतायाः हस्ते कनकनिर्झरणी रामः करे परिलसदवीरः।।२।।
सीताशरीरे नीली भाति शाटी रामः पीताम्बरचीरः।।३।।
सीताऽपि क्लिन्ना रामनवरागैः रामो बभौ समरुणशरीरः।।४।।
अन्योन्यं क्लेदयतो हसतो सुरागैः शीलयति मलयसमीरः।।५।।
शोभां वीक्ष्य गिरिधरो मुदितो जयति सीतावरो धीरः।।६।।

भौमी- जनकपुर में रघुवीर श्रीराम जी होली खेल रहे हैं। इधर सीता जी के साथ सखियाँ हैं, उधर श्रीराम के साथ वीर लक्ष्मण। सीता जी के हाथ में सोने की पिचकारी है। श्रीराम का हाथ अबीर से सुशोभित है। सीताजी के शरीर पर नीली साड़ी सुशोभित है और श्रीराम पीताम्बर धारण किये हैं। सीताजी रामजी के रंग से भींग गई हैं और श्रीराम सीताजी के रंग से लाल-लाल हो गये हैं। दोनों पक्षों के लोग एक दूसरे को रंग से भिगो रहे हैं और मलय वायु सबकी सेवा कर रहा है। इस शोभा को देखकर **गिरिधर** कवि प्रसन्न हैं। सीतावर श्रीराम की जय हो।

विशेष- यह गीत अवधी भाषा के होली लोकधुन की ढाल में निबद्ध है- इसके बोल हैं।-

होली खेलैं रघुवीरा अवध में,
होली खेलैं रघुवीरा..........।।

गीत संख्या-३५

मिथिलायां शुभमञ्चति होली मिथिलायाम्।।१।।
उड्डीयते गुलालमबीरं नवदम्पती अर्चति होली मिथिलायाम्।।२।।
वाद्यन्ते पणवानकभेर्यः मङ्गलमनुवर्षति होली मिथिलायाम्।।३।।
आली प्रभुमुखमरुणैर्लिम्पति हसति वदति होली होली मिथिलायाम्।।४।।
प्रहसन्ती वारयति सुनयना मानसमनुकर्षति होली मिथिलायाम्।।५।।
गिरिधरप्रभुर्लसति नतनयनः सदा लसतु मङ्गलहोली मिथिलायाम्।।६।।

भौमी- आज मिथिला में होली मच रही है। गुलाल-अबीर उड़ रहा है। होली नव दम्पत्ति श्रीसीताराम जी की पूजा कर रही है। ढोल, आनक (तुरही) और भेरियाँ बज रही हैं। होली मंगल की वर्षा कर रही है। सीताजी की सखी प्रभु श्रीराम जी के मुख पर गुलाल मल रही हैं, हँसते हुए कहती हैं, होली है होली है। हँसती हुई सुनयना जी सखि को रोक रही हैं कि श्रीराघव को अधिक मत सता और होली भावुकों को मनों को आकर्षित कर रही है। **गिरिधर** कवि के प्रभु श्रीराम नेत्रों को झुकाकर संकोच की मुद्रा में सुशोभित हो रहे हैं और यह मंगल होली निरन्तर सुशोभित रहे।

विशेष- यह गीत भी होली की लोकधुन में बद्ध है, इसका बोल है-

मिथिला में आज मची होली मिथिला में .....

गीत संख्या-३६

क्रीडति वसन्तमिह रामब्रह्म जगता प्रशस्यते होलिकर्म।।१।।
सीतासख्यो मिथिलासुधाम्नि रागं क्षिपन्ति नरवरललाम्नि।।२।।
प्रहसन्ति मुहुर्गारीर्वदन्ति नाना विनोदवचनं गदन्ति।।३।।
शेषावतारलक्ष्मणमथेत्य धावन्ति धरन्ति समाः समेत्य।।४।।
नेत्रे अञ्जन्ति बलात् क्षिपन्ति लक्ष्मणमभिरागं निक्षिपन्ति।।५।।
परिधापयन्ति नारीवसनं ललना लालित्यस्मितदशनम्।।६।।
अवगुण्ठयन्ति वदनं विहस्य कथयन्ति लक्ष्मणामिति प्रशस्य।।७।।
राघवो हसति तां दशां वीक्ष्य गिरिधरो मोदते सुखमभीक्ष्य।।८।।

भौमी- इस मिथिलापुरी में परब्रह्म श्रीराम बसन्त खेल रहे हैं। सम्पूर्ण संसार प्रभु के होली कर्म की प्रशंसा कर रहा है। मिथिला धाम में सीता जी की सखियाँ नररत्न श्रीराम जी पर रंग डाल रही हैं। सखियाँ हँस रही हैं, गारी सुना रही हैं, नाना प्रकार के विनोद वचन कह रही हैं पश्चात् सभी सखियाँ एक होकर शेषजी के अवतारी लक्ष्मणजी के पास जाकर दौड़ती हैं और उन्हें पकड़ लेती हैं। उन्हें बलपूर्वक रंग के बर्तन में फेंक देती

हैं। उनकी आखों में काजल लगा देती हैं। महिलाओं की भाँति मुस्कुराते हुये लक्ष्मण जी को महिला का वस्त्र पहना देती हैं। उनका मुख घूँघट से ढँक देती हैं। हँसकर कहती हैं–लक्ष्मणा! आप बहुत सुन्दर हो। लक्ष्मण की यह दशा देख श्रीरामजी हँस रहे हैं और इस सुख का चिन्तन करके **गिरिधर** कवि भी बहुत प्रसन्न हो रहा है।

सन्दर्भश्लोकः

इत्थं रमालालितपादपद्मो रामस्तु रेमे ननु होलिकायाम्।
वसन्तवासन्तिकताविभूषः सीतासमेतो दशमे सुसर्गे।।१।।

भौमी– इस प्रकार लक्ष्मी द्वारा जिनके चरणकमल का परिलालन किया गया है ऐसे भगवान श्रीराम गीत रामायणम् के दशम सर्ग में सीता जी के समेत वसन्त की वासन्तिकता की शोभा से युक्त होकर होलिका में आनन्द लिये।

इति
श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरमहाकविजगद्गुरुरामानन्दाचार्यस्वामिरामभद्राचार्यगिरिधरकविप्रणीते गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये बालकाण्डे
गीतसीतारामपरिणयो नाम दशमः सर्गः।

इस प्रकार श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर महाकवि जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य गिरिधरकवि द्वारा विरचित गीतरामायण 'गीतसीताभिराम' नामक संस्कृत गीतमहाकाव्य के बालकाण्ड में गीतसीतारामपरिणय नामक दशम सर्ग सम्पन्न हुआ।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

।।श्रीः।।

।।नमो राघवाय।।

गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये

बालकाण्डे

गीतप्रत्युद्गमोत्सवो नाम

एकादशः सर्गः

सन्दर्भश्लोकः

एवं विधानेकमहोत्सवेषु प्रमोदमानो मिथिलानगर्याम्।
व्यतीत्य राजा बहुवासराणि प्रस्थानमैच्छत् किल कोसलायै।।१।।

भौमी- इस प्रकार अनेक महोत्सवों में भाग लेकर मिथिला नगरी में प्रसन्न हुये महाराज दशरथ बहुत दिनों के पश्चात् अयोध्या जाने के लिये इच्छुक हुये।

गीत संख्या-१

गायति कविः-

आयन् पञ्चकुमार्यो रघुवरवरणे।।
त्रोटिते पिनाके नाकेऽनाके खलकुले साके
पञ्चापि समुत्का राघवानुसरणे।।१।।
लज्जाकीर्तिप्रीतिर्दीनता
पञ्चमीविदेहसुतासंस्करणे ।।२।।
एकनारीव्रतोऽवाप्तकामो लोकरामो रामो
मनो मञ्जु चक्रे सीतास्वीकरणे।।३।।
कुपितेव लज्जा याता स्वयंवरभूपैर्सार्धं
कीर्तिश्चाभवद्दिगन्ते रामसंस्मरणे।।४।।
दीनताऽपिदीना लीना बालब्रह्मचारिणी
परशुधरे भृगुणामलङ्करणे।।५।।
प्रीतिश्चाप्यनूढाभवन् मिथिलापुरे सदैव
लग्ना सीता रामयशोव्याहरणे।।६।।
गिरिधरो मोदमानो वीक्ष्य दृश्यमीदृग्दधे
मतिं रामे जगन्मङ्गलाभरणे।।७।।

भौमी- कवि स्वयं एक अपूर्व कल्पनामय गीत गा रहे हैं- श्रीराम का वरण करने के लिये पाँच अल्पवयस्क कुमारी कन्याएँ उपस्थित हुईं। जब भगवान राम ने पिनाक धनुष तोड़ दिया और नाक अर्थात् स्वर्ग, अनाक अर्थात् दुःख से रहित हो गया, राक्षसों का कुटुम्ब साक अर्थात् दुःखी हो गया उस समय पाँच अविवाहित कन्याएँ श्रीराम का अनुसरण करने के लिए उत्सुक हुईं। उस संस्करण में लज्जा, कीर्ति, प्रीति, दीनता और पाँचवीं जनकतनया सीता जी उपस्थित हुईं। परन्तु समस्त कामनाओं को प्राप्त किये हुये संसार के आनन्ददाता भगवान श्रीराम ने एक नारी व्रत होने के कारण सीताजी के स्वीकार में ही मन का निश्चय किया। लज्जा कुपित हुई-सी स्वयम्वर में आये हुये राजाओं के साथ चली गई और कीर्ति प्रभु के संस्मरण के लिए दिगन्तों में फैल गई और दीनता बाल-ब्रह्मचारी भृगुवंशियों के अलंकार परशुराम में ही लीन हो गई। प्रीति ने किसी से भी विवाह नहीं किया। वह कुमारी बनकर मिथिलापुरी में ही विराजी और स्वयं को श्रीसीतारामजी के यशः कथन में लगा दिया। इस प्रकार का दृश्य देखकर प्रसन्न हो रहे **गिरिधर** कवि ने भी जगन्मंगल के अलंकार स्वरूप प्रभु राम में ही अपनी मति लगा दी।

सन्दर्भश्लोकौ

इत्येवं बहुसूत्सवेषु मिथिलालोकैर्मुदैवादृतः
मासान् पञ्च निनाय वै दशरथोऽयोध्येव वै विस्मृता।
पश्चाच्छ्रीजनकं निवेद्य करुणाक्लिन्नं स गन्तुं यदा
ऐच्छच्छोकमहोदधौ च मिथिलामग्नेव जाता तदा।।१।।
श्रुत्वा स्वं गमनं च कोसलपुरे सीता च बाष्पं दृशो
मुञ्चन्ती जनकेन पृष्टनिगमा तातं जगादातुरा।
एकस्माज्जठरादुभौ प्रजनितौ पुत्रस्तथा कन्यका
पुत्रस्तिष्ठति तातसद्मनि कथं दूरं सुता प्रेष्यते।।२।।
प्रेमपयोनिधितीव्रप्रवाहेषु ज्ञानविवेकमुदूहमरोदीत्।
भूयो निरीक्ष्य सुतां रुदतीं नयनाश्रु विमुच्य समोहमरोदीत्।।३।।
धीरधुरन्धरो धैर्यं विहाय धृतिं परिहाय वराकमरोदीत्।
जानकि जानकि जानकि जानकि सम्प्रविलप्य सुवाकमरोदीत्।।४।।

भौमी- इस प्रकार बहुत से महोत्सवों में मिथिला के लोगों से सम्मानित होकर महाराज दशरथजी ने विवाह के पश्चात् भी प्रसन्नता से पाँच महीने व्यतीत कर दिये। जब करुणापूर्ण हृदय जनकजी से अयोध्यागमन की अनुमति माँगी तब तो सम्पूर्ण मिथिला ही शोक सागर में डूब गई। अयोध्या में अपने जाने का समाचार सुनकर नेत्रों से आँसू गिराती हुई सीताजी महाराज जनक द्वारा रोने का कारण पूछे जाने पर पिताजी से आतुर स्वर में बोलीं–एक ही कोख से बेटा और बेटी दोनों जन्म लेते हैं, परन्तु बेटे को माता-पिता क्यों अपने घर में रख लेते हैं और बेटी दूर क्यों भेज दी जाती है? जनकजी प्रेमसागर के तीव्र प्रवाहों में ज्ञान-विवेक को बहाते हुए रो पड़े। फिर बेटी सीता को रोती देख महाराज आँसू बहाकर फूट-फूट कर रो पड़े। धीर-धुरन्धर जनकजी अपना धैर्य त्यागकर वेदान्त की धारणा छोड़कर निरीह की भाँति रोने लगे। जानकी-जानकी-जानकी-जानकी! इस प्रकार सुन्दर वाक्यों में विलाप करके महाराज जनक रो पड़े।

गीत संख्या-२

सुरतरुवल्लीरिव सीता मया पालितास्ति सीता मया पालितास्ति
तां च रामचन्द्रो नयन् याति।।
नयनपुत्तलिकेव सीता मया लालितास्ति सीता मया लालितास्ति
तां च रामभद्रो नयन् याति।।१।।
कथं सा श्वश्रूशुश्रूषणजागरं करिष्यति जागरं करिष्यति
या सायं नलिनीव निद्राति।।२।।
निज गोप्य रुचिमपि कमियं वदिष्यति कमियं वदिष्यति
या च स्वल्पगिरि दरिद्राति।।३।।
पुष्पकलिकेव मया नक्तं दिवं पोषिता या नक्तं दिवं पोषिता या
सैव पिपासया परियाति।।४।।
कामधेनुपयसा शुभौदनं समसिता या शुभौदनं समसिता या
सैव क्षुधार्तेव प्रतिभाति।।५।।
मा ब्रजत मा ब्रजत स्कन्धवाहास्तिष्ठत स्कन्धवाहास्तिष्ठत
सुता मम दूरं किमु याति।।६।।
रोधयत सख्यः समा सीतां बहिर्गमनाद् भोः सीतां बहिर्गमनाद् भोः
पितुः किन्नु प्राणान् नैव पाति।।७।।
गिरिधरस्वामिनीं स्वाभाविकीं मृदुलतां स्वाभाविकीं मृदुलतां
केन कारणेन विजहाति।।८।।

भौमी- अब जनकजी समदन गीत गा रहे हैं-अहो! कल्पवृक्ष की लता के समान जिन सीता का मैंने पोषण किया, उन्हीं को आज श्रीरामचन्द्र लिए जा रहे हैं। अहो! आँख की पुतली के समान जिन सीता को मैंने दुलार के रखा, उन्हीं को आज रामभद्र लिए जा रहे हैं। हमारी सीताजी सासुओं की सेवा में जागरण कैसे कर पायेंगी? जो कमलिनी की भाँति सायंकाल ही नींद में आ जाती हैं। ये लाडली जी अपनी गोपनीय रुचि किससे कहेंगी? जो थोड़ी वाणी में भी शब्द की दरिद्रता का अनुभव करती हैं अर्थात् बहुत ही अल्प बोलने का प्रयास करती हैं। फूल की कली की भाँति जिनका मैंने दिन-रात पोषण किया है, वे ही आज प्यासी-सी दिख रही हैं। कामधेनु के दूध से जिसको मैंने भात खिलाया, वही आज भूखी-भूखी प्रतीत हो रही हैं। हे कहारों! सीता की पालकी लेकर मत जाओ, रुक जाओ, मेरी बेटी मुझसे दूर क्यों जा रही है? हे सखियों! सीताजी को बाहर जाने से रोक लो, बेटी पिता के प्राणों की रक्षा क्यों नहीं कर रही है? **गिरिधर** कवि की स्वामिनी सीता अपनी स्वाभाविक कोमलता को किस कारण से छोड़ रही हैं।

विशेष- यह गीत मिथिला के समदन लोक धुन की ढाल में निबद्ध है, जो बेटी की विदाई के समय गाया जाता है, इसमें करुणा की पराकाष्ठा होती है, इसका बोल है ''बड़-बड़ जतन क-क, सिया जी के पोषलौं से हो रघुवंशी ने-ने जाये''

गीत संख्या-३

सीता रुदती गायति-

गतो गिरिमस्तं प्रातश्चन्द्रमा उदेति सूर्यो व्योमनि
मातरनुज्ञातुमर्हसि सुखेन मां श्वसुरगृहं यातुमयोध्यापुरं यातुम्।।१।।
अरे अरे मिथिलायाः दूर्वे सकरूणा न श्रुष्याः दूर्वे
अहमस्मि कन्यापरद्रव्यं श्वसुरगृहं यायामयोध्यापुरं यायाम्।।२।।
अरे अरे सखि मम सारिके पिञ्जरशुकबान्धव युवां त्यक्त्वा यामि
विवशाप्ययोध्यां विलप्य मा स्म रुदतं प्रलप्य मा स्म रूदतम्।।३।।
अरे अरे मिथिलायाः कोकिले जनन्यै धैर्यं दद्याः कोकिले
भारतीय संस्कृतेः प्रबन्धात् श्वसुरगृहे कन्या याति।।४।।
अरे अरे मृगि भ्रातृजाये मनसि मा स्म खिद्यथाः विलप्य मा स्म रोदीः
हरिणी तव प्रसव समाचारमेत्य सुखेन वर्धयिष्ये सोहरं कीर्तयिष्ये।।५।।
अरे अरे क्रूरा स्कन्धवाहा द्रुतं न शिविका नेया एषा मिथिला
विलोक्यतां क्षणेन पुनस्तु स्वप्ने यास्यति।।६।।
एवं विधं करुणं लपन्ती दृगश्रूणि विमुञ्चन्ती
गिरिधरस्वामिनी मिथिलां विषण्णां विधाय श्वसुरगृहमेति।।७।।

भौमी- सीताजी रोती-रोती गा रही हैं-अहो! आज प्रातःकाल हो गया, चन्द्रमा अस्ताचल को जा चुके हैं, सूर्यनारायण आकाश में उदित हो रहे हैं। माँ! अब मुझे ससुराल जाने की अनुज्ञा दीजिये, अयोध्यापुर जाने की अनुमति दीजिए। अब मिथिला की दूब को सम्बोधित करती हुई सीताजी कहती हैं- अरे मिथिला की दूर्बा! तुम करुण मत होओ और कभी सूखो नहीं। मैं तो कन्या हूँ, दूसरे का धन हूँ। अतः ससुराल जाना ही पड़ेगा। अयोध्यापुर जाना ही होगा। अरी मेरी मित्र मैना! पिंजरे में रहने वाले मेरे भाई तोता! विवशता में तुम दोनों को छोड़कर अयोध्या जा रही हूँ। तुम विलाप करके मत रोना, प्रलाप करके रूदन मत करना। हे मिथिला की कोयल! मेरी माँ को धैर्य देती रहना। कोकिले! भारतीय संस्कृति की व्यवस्था के कारण ही कन्या ससुराल जाती है। हे मृगी भाभी! तुम मेरे वियोग में दुःखी मत होना और रोना नहीं। हरिणी! तुम्हारे प्रसव का समाचार सुनकर मैं अयोध्या से तुम्हें बधाई भेजूँगी और सोहर गवाऊँगी। अरे! अरे! निष्ठुर कहारों! पालकी जल्दी मत ले चलो। क्षण भर तो मिथिला को देख लेने दो फिर तो यह सपना हो जायेगी। इस प्रकार रोती हुई, नेत्रों से अश्रुपात करती हुई **गिरिधर** कवि की स्वामिनी सीताजी मिथिला को दुःखी बनाकर अयोध्या पधार आईं।

विशेष- यह गीत अवधी की उस लोक धुन में निबद्ध है जो बेटी की विदाई के समय गाया जाता है। इसका बोल है- पुरबू से उगलीं अजोरिया औ पच्छिम बिसवलीं, माई साजहु कूंड़ा दउरिया हम दूरि अजोध्या जाबै दूरि गवन जावै।।

गीत संख्या-४

श्वसुरगृहं याति सम्प्रति सीता।।
अनुजानन्तु तां तरुवरवल्यः
जातिमाधवीमालतीमञ्जुमल्यः ।
विलसतु श्वसुरगृहे सुखमेषा
न वो हृदा विजहाति सम्प्रति सीता।।१।।
मातेव स्वकरेण या वः सदा सिञ्चति
न कदापि युष्मत् प्रवालानि लुञ्चति।
मुञ्चन्ती वाष्पाणि नलिननयनतो
युष्मद्विदूरं याति सम्प्रति सीता।।२।।
धैर्यं धरत हृदि हरिणा हरिण्यः
मा मैव क्रन्दत करिणः करिण्यः।
सर्वेऽनुजानीत सीतां सनातन-
संस्कृतिमिह पाति सम्प्रति सीता।।३।।
गिरिधरस्वामिमनोरथारूढा
कोसलपतिवरवधू नवोढा।
मिथिलां विरहवारिधौ सम्मज्जयन्ती
कोसलाकुशलं लाति सम्प्रति सीता।।४।।

भौमी- इस समय सीता ससुराल जा रही हैं। हे वृक्ष की लताओं! जाति! मालती! सुन्दर चमेली! सब लोग उन्हें अनुमति दीजिए। सीता आपको हृदय से नहीं छोड़ रही हैं। जो माँ की भाँति आप लोगों को निरन्तर सींचती हैं, जो आपके पल्लवों को कभी नहीं तोड़तीं, आज वही सीता आँसू बहाती हुई आप लोगों से दूर चली जा रही हैं। हे हरिण और हरिणियों! धैर्य धारण करो। हे हाथियों और हथिनियों! मत रोओ। सभी लोग सीता को अनुमति दो। जो इस समय सनातन वैदिक संस्कृति की रक्षा कर रही हैं। इस समय **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम के मन रूप रथ पर आरूढ़ नव-विवाहिता कोसलेश्वर दशरथ की श्रेष्ठ बहूरानी मिथिला को बिरह सागर में डुबोती हुई अयोध्या में कुशल मंगल का उपहार ला रही हैं।

सन्दर्भश्लोकः

सुनयना वनरुणनयनं हरिं नयननीरजनीरनिषेचितम्।
समगदद् गदितं श्रुतिभिर्गदत् सुनिगदं गदनाशिनमागदम्।।१।।

भौमी- सासु सुनयनाजी कमल के समान नेत्र वाले, भावुकों के कमल नेत्र के जलों से स्नात, श्रुतियों में प्रसिद्ध निगद से युक्त भवरोगनासक, अमृतस्वरूप भगवान श्री राम को संबोधित करके गद्‌गद वाणी में कुछ कहने लगीं।

गीत संख्या-५

अये राम! सीतामधीतां मया मातृकं प्रेषयेथाः कदाचित् कदाचित्।
मुखेन्दुत्विषा स्वीयकैरवकुलं त्वं समुन्मेषयेथाः कदाचित् कदाचित्।।१।।
मया भूभृता प्राणतोऽपाल्यभिज्ञा कृता नो कदाप्येतदीयाह्यवज्ञा।
कठोरं न वाच्या किशोरी त्वया मे विनिर्देशयेथाः कदाचित् कदाचित्।। २।।
समुद्विग्नचित्तां स्मरन्तीं कुटुम्बं जनं परिजनं वृद्धं तातं सहाम्बम्।
गिराशीलमङ्गल्यया वत्स राघव! समुपदेशयेथाः कदाचित् कदाचित्।।३।।
सुतां नेतुकामेन रामेण भूम्ना निरीक्ष्या पुरीयं चिदानन्दसीम्ना।
तुरीयोऽतुरीयां कुटुम्बावलीं स्वां सुखं श्लेषयेथाः कदाचित् कदाचित्।।४।।
प्रिया तावकीयं सदा मर्शनीया परामर्षणीया शुभं दर्शनीया।
गिरा गिरिधरेश्वर निराकृत्य रोषं समादेशयेथाः कदाचित् कदाचित्।।५।।

भौमी- हे रामचन्द्र! जब भी मैं बेटी सीता का स्मरण करूँ तो सतत नहीं तो कभी-कभी मैके भेज दिया करियेगा। अपने मुखचन्द्र की कान्ति से आप आत्मीयजन रूप कुमुद समूहों को कभी-कभी विकसित कर दिया करियेगा। मैंने और महाराज ने इन अभिज्ञा सीता को प्राण से पाला है। हम दोनों ने इनका कभी अपमान नहीं किया। आप मेरी किशोरीजी को कभी कठोर वचन नहीं कहेंगे। कभी-कभी इन्हें निर्देश देते रहेंगे। जब मेरी बेटी उद्विग्न चित्त होकर कुटुम्ब का, सेवकों का, परिवार का, बूढ़े पिता का और मेरा स्मरण करके उद्विग्न हो जाय, तब हे वत्स राघव! आप शील-मंगल्य अर्थात् अनुनय की कला से पूर्ण वाणी द्वारा उन्हें कभी-कभी धीरज धरा दीजियेगा। हे प्रभु! आप भूमा और सच्चिदानन्द की सीमा हैं, अतः मेरी बेटी को लिवा जाते समय इस मिथिलापुरी को निहार लीजिए। हे तुरीय ब्रह्म! तुरीया सीताजी से रहित इस मिथिला परिवार को भी कभी-कभी सुख से युक्त कर दिया करियेगा। हे प्रभो! ये सीताजी अब आपकी प्रिया हैं। इनको क्षमा करते रहियेगा। समय-समय पर इनसे परामर्श भी लेते रहियेगा। इन्हें कल्याण के दर्शन कराते रहियेगा। हे **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम! क्रोध को छोड़कर कभी-कभी इनको आप आदेश भी देते रहिएगा।

सन्दर्भश्लोकौ

दयितामधिगम्य धारणेयीं
रघुचन्द्रो ननु रोहिणीं शशीव।
चकमे किल कोसलां प्रगन्तुं
सहभार्यो भगवान् सहानुयात्रः।।१।।
ननृतुर्नाकनर्तक्यस्तुष्टुवुः सिद्धचारणाः।
सुमनांस्यपि सुमनसो ववृषुर्योषितो जगुः।।२।।

भौमी- रोहिणी को प्राप्त किये हुये चंद्र की भाँति रघुकुल के चंद्रमा भगवान श्रीराम, धर्मपत्नी सीताजी और बारातियों के साथ श्रीअवध को प्रस्थान के लिये इच्छुक हो उठे। अप्सराएँ नाचनें लगीं। सिद्ध और चारण स्तुति करने लगे। देवता फूल बरसाने लगे और देवबधुएँ गाने लगीं।

गीत संख्या-६

आयात्ययोध्यां पुनीता हे अद्य सीता वधूराज्ञी।।
श्रीमिथिलाधिपराजकिशोरी रामचन्द्रमुखचन्द्रचकोरी
आयात्ययोध्यामभीता हे अद्य सीता वधूराज्ञी।।१।।
छविविगणितशतशतशर्वाणी विभवविजितवनजाब्रह्माणी
आयात्ययोध्यां प्रतीता हे अद्य सीता वधूराज्ञी।।२।।
भारतीयसंस्कृत्यनुरूपा आदिशक्तिरथ हतभवकूपा
आयात्ययोध्यां श्रुतिगीता हे अद्य सीता वधूराज्ञी।।३।।
तनुसुषमाजितचम्पकवर्णा गिरिधरगीतसरोरुहचरणा
आयात्ययोध्यां विनीता हे अद्य वधूराज्ञी।।४।।

भौमी- आज पवित्र, सीता बहूरानी जी श्रीअवध पधार रही हैं। आज मिथिला नरेश जनकजी की राजकिशोरी श्रीरामचंद्र के मुखचन्द्र की चकोरी भयरहित सीता बहूरानी जी श्रीअवध को पधार रही हैं। अपनी छवि से कोटि-कोटि पार्वतियों को भी तिरस्कृत करने वाली, अपने वैभव से लक्ष्मीजी और ब्रह्माणीजी को भी जीतने वाली, प्रभु के प्रति अत्यन्त विश्वस्त सीताजी श्रीअवध को पधार रही हैं। भारतीय संस्कृति के अनुरूप व्यक्तित्व वाली आदिशक्ति, संसार कूप को नष्ट करने वाली, वेदों में गायी हुई सीता बहूरानीजी आज श्रीअवध पधार रही हैं। अपनी शोभा से जिन्होंने चम्पा के वर्ण को जीत लिया है, **गिरिधर** कवि के द्वारा जिनके कमलचरण का गान किया गया है ऐसी अत्यन्त विनीत सीता बहूरानीजी आज श्रीअवध को पधार रही हैं।

गीत संख्या-७

सीता लोकललनाललाम हो
नृपतिगृहं वधूरागच्छति।
अद्य वयं मैथिलीं पश्याम हो
नृपतिगृहं वधूरागच्छति।।१।।
पूरय देवि सुमित्रे चतुष्कं
कैकयि सिञ्च प्राङ्गणं शुष्कम्।
अथ मङ्गलानि करवाम हो
नृपतिगृहं वधूरागच्छति।।३।।
गुरुमातरमाह्वयारुन्धतीं
पूजय गणपतिमथो पार्वतीम्।
अथ तोरणानि रचयाम हो
नृपतिगृहं वधूरागच्छति।।३।।

दोहय दिव्यसुरगवीदुग्धं
कुरु लौकिकं वैदिकं शुद्धम्।
गोमयेन द्वाराणि लिम्पाम हो
नृपतिगृहं वधूरागच्छति।।४।।
रोपय परितः पुरीं रसालं
बकुलकदम्बपलासतमालम्
गिरिधरगीतं गापयाम हो
नृपतिगृहं वधूरागच्छति।।५।।

भौमी– देववधुएं कह रही हैं आज सम्पूर्ण नारियों की रत्नभूत सीताजी महाराज के घर में वधू बनकर आ रही हैं। आज हम मिथिलाधिराज कन्या सीताजी के दर्शन करेंगी। हे देवी सुमित्रा! चौके पूरो। कैकेयी! सूखा प्रांगण सुगन्ध जल से सींचो। आज हम सब मंगलाचार करें। दशरथ महाराज के घर में नवीन बहू आ रही हैं। आज कामधेनु का दूध दुहाओ। लौकिक और वैदिक सभी विधानों को शुद्ध रूप से सम्पन्न करो। हम द्वारों को गोबर से लीपें, क्योंकि महाराज के घर सीता दुलहिन पधार रही हैं। नगर के चारों ओर आम्र वृक्ष, बकुल, कदम्ब, टेसू और तमाल के वृक्ष लगाओ और **गिरिधर** कवि के द्वारा रचित गीत गवाओ और गाओ, क्योंकि चक्रवर्ती दशरथजी के राजभवन में बड़ी बहूरानी सीताजी पधार रही हैं।

विशेष– यह गीत अवधी के आँचलिक लोकधुन में बद्ध है जो नई बहू के आने के समय गाया जाता है– इसका बोल इस प्रकार है–नया खपड़इलवा छवाउ रे नये घर दुलहिनि आवै।।

गीत संख्या-८

अद्य अयोध्या परममोदमीता हे शुभे
चतुर्वधूसु सुभगतमा सीता हे शुभे।।
विहिता विधात्रा किं वा छविमयी भामिनी
राम सहितेव भाति सघना सौदामिनी।
अनया रतिकोटिकोटिव्रीडां नीता हे शुभे
चतुर्वधूसु सुभगतमा सीता हे शुभे।।१।।
चम्पककनकवर्णा दिव्यभव्याभरणा
अशरणशरणा नवनलिनचरणा।
शरद्विधुमुखी सुषमापरीता हे शुभे
चतुर्वधूसु सुभगतमा सीता हे शुभे।।२।।
नीलनीलपरिधाना विश्वविश्ववन्दिता
त्रिलोकीलावण्यलक्ष्मीः सन्ततमनिन्दिता।
मूर्तिमती भारतसंस्कृतिः प्रतीता हे शुभे

चतुर्वधूसु सुभगतमा सीता हे शुभे।।३।।
अयोनिजा मिथिलेशनृपतिकिशोरी
रामचन्द्रमुखचन्द्रचतुरचकोरी ।
रघुकीर्तिवैजयन्ती विनीता हे शुभे
चतुर्वधूसु सुभगतमा सीता हे शुभे।।४।।
शिविकामारूढा भाति वर्णिनी नवोढा
वीर्यशुल्का राघवेण नित्यश्रीरिवोढा।
सुरनरगीर्भ्यां कविगिरिधरगीता हे शुभे
चतुर्वधूसु सुभगतमा सीता हे शुभे।।५।।

भौमी- आज अयोध्या परम प्रसन्नता को प्राप्त हो गई है। हे कल्याणी! चारों बहुओं में सीताजी सबसे सुन्दर हैं। हे कल्याणी! क्या विधाता ने छवि से ही इस महिला की रचना की है? बादल के साथ बिजुली की भाँति श्रीराम के साथ सीताजी शोभित हो रही हैं। इन्होंने करोड़ों-करोड़ों रतियों को लज्जित कर दिया है। चार बहुओं में सीताजी सबसे रमणीय हैं। हे कल्याणी! चम्पा के समान वर्ण वाली सीताजी दिव्य वस्त्रों और आभूषणों से अलंकृत हैं। ये अशरणों को शरण देने वाली हैं। इनके चरण नवीन कमल के समान हैं। ये शरदकालीन चन्द्र के समान मुखवाली और दिव्य शोभा से सम्पन्न हैं। चारों बहुओं में सीताजी सबसे सुन्दर हैं। हे सखी! नीला वस्त्र धारण करने वाली, समस्त विश्व की वन्दनीया, त्रिलोक की लावण्य लक्ष्मी, निरन्तर निन्दारहित, अत्यन्त विश्वश्त, साकार भारतीय संस्कृति स्वरूपा सीताजी चारों बहुओं में सबसे अधिक आकर्षक हैं। हे सखी! सीताजी अयोनिजा अर्थात् स्वयं पृथ्वी से प्रकट होकर भी महाराज जनक की राजपुत्री हैं। ये श्रीरामचन्द्र मुखचन्द्र की चतुर चकोरी हैं। ये रघुवंश की कीर्तिपताका अत्यन्त विनीत सीताजी चारों बहुओं में सबसे अधिक मनोहरा हैं। ये नवविवाहिता सुन्दर दुलहिन लक्ष्मी की भाँति श्रीराम द्वारा पराक्रम शुल्क से विवाह करके लाई हुई, कवि **गिरिधर** के द्वारा देवभाषा संस्कृत और नरभाषा हिन्दी में गाई हुई सीताजी नित्य साकेतविहारिणी होकर भी सम्प्रति चारों बहुओं में सर्वाधिक सुन्दरी हैं।

गीत संख्या-९

निमिराजतनया जनकराजतनया भाति सीता सुखं राति सीता।।
श्रीमिथिलाधीशकिशोरी रामचन्द्रमुखचन्दिरचकोरी।
विबुधवधूभाविता सखीसहजसेविता भाति सीता सुखं राति सीता।।१।।
देहविभाविजितश्वेतवनजशोभा मानवेन्द्रसूनुमनोमहितलोभा।
रामभद्रभामिनी मत्तगजगामिनी भाति सुखं राति सीता।।२।।
मण्डयन्ती भूरिभागामयोध्यां रञ्जयन्ती रुचिररुचावेदबोध्याम्।
रामवरवर्णिनी स्वपतिगुणकर्णिनी भाति सुखं राति सीता।।३।।
शिवाशिवाशिवा शिविकामारूढा प्राणवल्लभेन सहिता नवोढा।
गिरिधरस्य स्वामिनी कान्तिसौदामिनी भाति सुखं राति सीता।।४।।

भौमी- निमिवंश की राजकन्या जनकमहाराज की पुत्री सीताजी सुशोभित हो रही हैं, सबको आनन्द दे रही हैं। मिथिलाधिराज जनकजी की किशोरी श्रीरामचन्द्र के मुखचन्द्र की चकोरी देववधुओं से सम्मानित, सखियों द्वारा स्वभाव से सेवित सीताजी सुशोभित होती हुई सबको सुख दे रही हैं। अपने शरीर की कान्ति से श्वेतकमल की शोभा को जीतने वाली महाराज दशरथ के ज्येष्ठपुत्र श्रीराम के मन के पूजनीय लोभ की आश्रय स्वरूप भगवान रामभद्र की धर्मपत्नी, मत्त गजगामिनी सीताजी शोभित होती हुई, सबको आनन्द दे रही हैं। भूरि भाग्यशालिनी, वेदों में प्रसिद्ध श्रीअयोध्या को अपनी सुन्दरकान्ति से शोभित तथा आह्लादित करती हुई श्रीराम की नवीन दुल्हन अपने पति रघुनाथजी के गुणों का निरन्तर श्रवण करने वाली सीताजी सुशोभित होती हुई सबको परमानन्द दे रहीं हैं। अपने प्राण प्रियतम श्रीराम के साथ पालकी में विराजमान नवविवाहिता **गिरिधर** कवि की स्वामिनी शोभामयी विद्युत स्वरूप पार्वती की भी पार्वती अर्थात् कल्याणदायिनी सीताजी सुशोभित हो रही हैं और सभी को आनन्द दे रही हैं।

सन्दर्भश्लोकः

विश्वे वीक्ष्य वधूं विज्ञा विश्वविश्वविमोहिनीम्।
सीतां स्वागतसद्वाक्यैर्मानयन्तो मुदा जगुः।।१।।

भौमी- सभी विज्ञजन सम्पूर्ण संसार को मोहित करने वाली बड़ी बहूरानी सीताजी को देखकर स्वागत वाक्यों से उनका सम्मान करते हुए इस प्रकार गाने लगे।

गीत संख्या-१०

पुरमेहि सुखं सीते स्वागतमिह ते कुर्मः।
प्रणिधेहि सुखं सीते स्वागतमिह ते तन्मः।।
तव पदपङ्कजरजसा पूयेत सदायोध्या।
शतशतशम्पा महसा स्तूयेत मुदायोध्या।।
पुरमेहि परमप्रीते स्वागतमिह ते कुर्मः।।१।।
हरिहृद्गृहदीपशिखे सम्भासय नृपसदनम्।
हृत्पुरितपुरारिसखे सुविलासय विधुवदनम्।।
पुरमेहि पुरटपीते स्वागतमिह ते कुर्मः।।२।।
दुर्गादर्शादर्शं दूरिता दुरीक्षा नः।
पद्मास्पर्शास्पर्शं पूरिता प्रतीक्षा नः।।
पुरमेहि निगमनीते स्वागतमिह ते कुर्मः।।३।।
श्रीरामपरा प्रेमा अनपायिनिभक्तिस्त्वम्।
संसृतियोगक्षेमा रघुवरपरशक्तिस्त्वम्।।
पुरमेहि हरिणिह्रीते स्वागतमिह ते कुर्मः।।४।।
रघुचन्द्रसुधाधाम्नो मुखचन्द्रचकोरी त्वम्।

गिरिधरप्रभुसुखसीम्नो गृहिणी सुकिशोरी त्वम्।।
पुरमेहि गिरिरागीते स्वागतमिह ते कुर्मः।।५।।

भौमी- हे सीते! आप सुखपूर्वक अयोध्या पधारें। हम आपका स्वागत करते हैं। हे सीते! आप अयोध्यापुर में सुख की स्थापना करें, हम आपके स्वागत का विस्तार करते हैं। आपके चरणकमल की धूलि से अयोध्या सदैव पवित्र बने और सैकड़ों बिजलियों के समान आपके तेज से श्रीअयोध्या की सदैव स्तुति हो। हे परमप्रसन्न सीते! आप अयोध्या में पधारें, हम यहाँ आपका स्वागत करते हैं। हे श्रीहरि के हृदयभवन की दीपशिखे! आप राजगृह को प्रकाशित कीजिए। हे शंकरजी के सखा श्रीराम को अपने हृदयपुर में निवास कराने वाली सीताजी! चन्द्रमुख श्रीराम को सुशोभित कीजिए। स्वर्ण के समान पीलेवर्ण वाली सीते! आप अयोध्या में पधारें, हम यहाँ आपका स्वागत करते हैं। दुर्गाजी के लिये भी अदृश्य आप श्री के दर्शन करके हमारी संसार दर्शन की वासना दूर हो गई। लक्ष्मी भी जिनका स्पर्श नहीं कर सकतीं ऐसी आपश्री के चरण का स्पर्श करके हमारी प्रतीक्षा पूर्ण हो गई। हे वैदिक मंत्रों में विराजमान सीते! आप अयोध्यानगर में पधारें, हम आपका यहाँ स्वागत करते हैं। आप श्रीरामपरायण और अनपायनी प्रेमाभक्ति हैं। आपही संसार का योगक्षेम करने वाली हैं तथा आप ही रघुवर श्रीराम की पराशक्ति हैं। अपने नेत्रों से हरिणी को भी लजाने वाली सीते आप अयोध्यानगर में पधारें, हम आपका स्वागत करते हैं। आप श्रीरामरूप चंद्रमा के मुखचंद्र की चकोरी हैं और आपही सुख की सीमा **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम की गृहलक्ष्मी जनककिशोरी हैं। हे शिवजी द्वारा गायी हुई सीताजी! आप श्रीअवधपुर पधारें, हम आपका स्वागत करते हैं।

गीत संख्या-११

अद्यायोध्यां समुपेता सीता भाति जानकी
शोभां लाति जानकी लोकान् पाति जानकी।।
कोटिकञ्जसमसमरुणचरणा
अशरणशरणविनतभयहरणा ।
दिव्यसद्गुणैः परीता सीता भाति जानकी
शोभां लाति जानकी लोकान् पाति जानकी।।१।।
स्फुरन्नीलशाटी चारुस्वर्णमणिरशना
दामिनीदाडिमीबीजराजिद्युतिदशना ।
कम्रकरुणानिकेतप्रीता भाति जानकी
शोभां लाति जानकी लोकान् पाति जानकी।।२।।
मिथिलाधिराजकीर्तिमालाश्रीकिशोरी
रामचन्द्र मुखचन्द्रचतुरचकोरी।
शोभितसाकेतनिकेता सीता भाति जानकी
शोभां लाति जानकी लोकान् पाति जानकी ।।३।।
श्यामसरसीरुहाक्षी श्यामा रामरामा

गिरिधरस्वामिनी विजितकामवामा।
श्रीमद्राघवसमेता सीता भाति जानकी
शोभां लाति जानकी लोकान् पाति जानकी।।४।।

भौमी- आज अयोध्या में पधारी हुईं सीताजी देदीप्यमान हो रही हैं। वे अपूर्व शोभा प्रस्तुत कर रहीं और सम्पूर्ण लोकों की रक्षा कर रही हैं। करोड़ों कमलों के समान लालचरण वाली अशरणों को शरण देने वाली तथा प्रणतों का भय हरण करने वाली, दिव्य सद्गुणों से युक्त सीताजी सुशोभित हो रही हैं। चमकती हुई नीली साड़ी धारण करने वाली मणि जटित किंकिणी धारण की हुई, अनार के समान दाँत वाली सुन्दर करुणानिकेत श्रीराम को प्रसन्न करने वाली सीताजी सुशोभित हो रही हैं। जनकराज की कीर्ति की पताका श्रीरामचन्द्र के मुखचन्द्र की चतुर चकोरी, साकेतलोक को सुशोभित करने वाली सीताजी सुशोभित हो रही हैं। नीलेकमल के समान नेत्रवाली मुग्धानायिका, श्रीराम को रमाने वाली **गिरिधर** कवि की स्वामिनी रति को जीतने वाली श्रीराघव के सहित सीताजी सुशोभित हो रही हैं और सारे संसार की रक्षा कर रही हैं।

गीत संख्या-१२

सखि हे जानकीमभिपश्य।।
कलितललनाललितवेषां
महाछविं प्रपश्य सखि हे जानकीमभिपश्य।।१।।
सकलसौभगसाररचितां
मूर्तिमिमां व्यवस्य।
अध्यवस्यामुं निरुपमां
निमिषमहो निरस्य सखि हे जानकीमभिपश्य।।२।।
दृगपि नो तर्षं विमुञ्चति
मुहुरिमां सन्दृश्य।
समसुखंसङ्कुचति सर-
सरसीरुहं संस्पृश्य सखि हे जानकीमभिपश्य।।३।।
जानकीशुभचरितसूत्रै
र्भणितिसुपटीं सीव्य।
रामरमणीं गाय गिरिधर-
गिरा दिव्यां दीव्य सखि हे जानकीमभिपश्य।।४।।

भौमी- अब अयोध्या की सखी रूपक ताल में गा रही हैं–हे सखी! जानकीजी को सामने से देखो। सुन्दर महिला के वेश में विराजमान महाछवि को आदर बुद्धि से निहारो। हे सखी! इस मूर्ति को तुम सम्पूर्ण सुन्दरता के तत्व से ही रचित समझो। इनको उपमारहित मानों और पलकों का गिराना बन्द कर दो। सखी! इनको देखकर भी नेत्र अपनी प्यास नहीं छोड़ रहे हैं। समान आनन्द होने के कारण इनको स्पर्श करके कमल

भी संकुचित हो रहा है। सीताजी के सुन्दर चरित्र रूपी तागों से अपनी भणिति अर्थात् कविता रूपसुन्दर वस्त्र को गूँथ लो और **गिरिधर** कवि की वाणी से श्रीराम की रमणी सीताजी को गाओ तथा दिव्य जनकनन्दिनीजी की स्तुति करो।

विशेष- यह गीत रूपकताल में निबद्ध है इसे आसावरी, जौनपुरी इत्यादि रागों में गाया जा सकता है।

सन्दर्भश्लोकः

इयं किं वा विद्युन्नहि नहि चला सेयमचला
शशि ज्योत्स्ना किं वा नहि लसदघा सेयमनघा।
रमा किं नो सिन्धोरलभतजनिं सेयमजनि-
र्ध्रुवं सीता सीता भरतजनुषा सेत्यनुमिता।।१।।

भौमी- कैकेयी जी ने प्रथम बार जब सीताजी को देखा तब उनके मन में सीताजी के समानान्तर अनेक-अनेक बिम्ब उपस्थित होने लगे। अरे! ये विद्युत हैं क्या? नहीं-नहीं बिजली चंचल होती है जबकि ये निश्चल और स्थिर हैं। तो क्या ये चन्द्रमा की ज्योत्स्ना हैं? नहीं! चन्द्रमा की ज्योत्स्ना में पाप और कलंक है जबकि ये दूल्हन तो पाप और कलंक से सर्वथा दूर हैं। तो क्या ये लक्ष्मी हैं? नहीं, वह लक्ष्मी तो समुद्र से जन्मीं जबकि ये तो अयोनिजा है, इन्होंने कहीं से जन्म नहीं लिया निश्चय ही सीताजी तो सीताजी ही हैं। इस प्रकार श्री भरत की माँ कैकेयी जी ने अपने ही द्वारा उठाये हुये पक्षों को अपने ही तर्कों से काटकर निर्णय कर लिया।

गीत संख्या-१३

कैकयी दृशि निमिषं नो लाति।।
पश्यन्ती पार्थिवीं पुलकिता प्रेम मनसि नो माति।।१।।
आरार्तिक्यकलितकरकमला निस्पन्दं न जहाति।।२।।
पनसायितपल्लवितशरीरा दारुवधूरिव भाति।।३।।
दर्शं दर्शं रूपमाधुरीं मोदमनुपमं याति।।४।।
स्रंशमानमञ्चलं न वोढुं सालं स्त्रजं न पाति।।५।।
आलिभिरभिहितापि हृतचेता-श्चिरं विधिं विदधाति।।६।।
गिरिधरेश्वरीदीपशिखादृङ्-मृगी मृगीदृग् भाति।।७।।

भौमी- कैकेयीजी अपने नेत्र में पलक नहीं लगा रही हैं। पृथ्वीपुत्री सीताजी को निहारती हुई मझली माँ रोमांचित हो रही हैं। उनके मन में प्रेम नहीं समा रहा है। उनके कमल-कर में आरती है, परन्तु कैकेयीजी स्थिरता को नहीं छोड़ पा रही हैं अर्थात् आरती नहीं घुमा रही हैं। उनका शरीर कटहल और पल्लव के समान हो गया है। आशय यह है कि जैसे कटहल के फल में खड़े-खड़े काँटे दिखते हैं उसी प्रकार कैकेयीजी के शरीर में रोंगटे खड़े हो गये हैं और उनका शरीर पल्लव की भाँति काँप रहा है। वे कठपुतली की भाँति स्थिर हो गई हैं। सीताजी की रूपमाधुरी को देख-देखकर कैकेयी अनुपम प्रसन्नता को प्राप्त कर रही हैं। वे खिसकते हुये आँचल को भी नहीं सम्हाल पा रही हैं और अपनी माला भी नहीं बचा पा रही हैं। सखियों के द्वारा संकेत किये

जाने पर बहुत देर तक आरती करती जा रही हैं। मृगनयनी कैकेयीजी **गिरिधर** कवि की ईश्वरी सीताजी रूप दीपशिखा के समक्ष मृगी जैसी हक्की-बक्की हो गई हैं।

गीत संख्या-१४

कैकयी गायति-

सुस्वागतं ते नमस्ते अयोध्यापुरीमागच्छ सीते।।
श्रीनिमिवंशजवैजयन्तिके विद्याविनयविनीते।
अयोध्यापुरीमागच्छ सीते।।१।।
रुचिरमिहिरकुलकैरवकौमुदि शुभगुणचरितपरीते।
अयोध्यापुरीमागच्छ सीते।।२।।
रामसवनघनसुचतुरचातकि पतिदेवते प्रतीते।
अयोध्यापुरीमागच्छ सीते।।३।।
स्वश्रूशस्यकमनकादम्बिनि, मृदुताजितनवनीते।
अयोध्यापुरीमागच्छ सीते।।४।।
आचार्ये सज्जनसञ्जीवनि, गिरिधरगीतसुगीते।
अयोध्यापुरीमागच्छ सीते।।५।।

भौमी- कैकेयीजी गा रही हैं- आपका स्वागत है। हे सीते! सभी अयोध्यावासियों का आपको नमन है। आप अयोध्यापुरी में पधारें। निमिकुल की वैजयन्ती, विद्या और विशिष्ट नीति से विनम्र, सुन्दर सूर्यकुलरूप कुमुद के लिये चन्द्रिका स्वरूपा, कल्याणमय गुणों और चरित्रों से युक्त सीते! आपका सुस्वागत है। श्रीरामरूप सजल स्वाती मेघ की चातकी, विश्वस्त पतिव्रता, सासूजनरूप सुन्दर खेती के लिए मेघमाला स्वरूपा, कोमलता से मक्खन को जीतने वाली, जगत की आचार्या, वैष्णवों की संजीवनी और **गिरिधर** कवि के द्वारा जिनके लिए सुन्दर गीत गाये गये हैं, ऐसी हे सीताजी! आपका सुस्वागत है। आपश्री अवधपुर में पधारें।

गीत संख्या-१५

अद्य सर्वैरायोध्यकैर्देवी सीता दृश्यताम्।
इमां दर्शं दर्शं तर्षं मनः कर्ष्यं कृश्यताम्।।
चम्पककनकवर्णा बालावरवर्णिनी
गतिजितललितमराली शुभकर्णिनी।
अद्य सोपनेत्रनेत्रैः सुपुनीता दृश्यताम्।।१।।
यावककलितकमलकलचरणा
अशरणशरणा लसितशुभाभरणा।
अद्य विद्याव्रतविनयविनीता दृश्यताम्।।२।।

चित्रितमिहिरशिशुवासा मञ्जुमालिनी
विधुमुखी शशिसौम्यहासा शोभाशालिनी।
अद्य विविधविभूषणैः परीता दृश्यताम्।।३।।
सुभगा सौभाग्यवती जनककिशोरिका
रामचन्द्रमुखचन्द्रचतुरचकोरिका ।
अद्य श्रुतितती कविगिरिधरगीता दृश्यताम्।।४।।

भौमी- आज सभी अयोध्यावासी देवी सीताजी के दर्शन करें, इन्हें देखकर नेत्रों की प्यास और मन की दुर्बलता मिटा दें। चम्पा और स्वर्ण के समान शरीर वाली सुन्दर दुल्हन, मुग्धा नायिका, गति के द्वारा राजहंसिनी को जीतने वाली शुभ श्रीरामनाम को ही सुनने वाली, ऐसी परम पवित्र सीताजी को स्नेह का चश्मा लगाये हुये नेत्रों से देखिये। जिनके कमलचरण में महावर लगा है जो अशरणों को शरण प्रदान करती हैं तथा सुन्दर आभूषण भी जिनसे सुशोभित होते हैं ऐसी विद्या और विनय से विनम्र सीताजी के आज दर्शन कीजिए। रंग-बिरंगें बाल-सूर्य जैसा वस्त्र धारण की हुई, सुन्दरमाला से विभूषित, चंद्रमुखी, चंद्रकिरण के समान सौम्य-हास वाली अनेक आभूषणों से अलंकृत भगवती सीताजी के दर्शन कीजिए। सुन्दरी, सौभाग्यवती जनककिशोरी, श्रीरामचंद्र के मुखचन्द्र की चतुर चकोरी वेद ऋचाओं और गिरिधर कवि के द्वारा गाई गई सीताजी के आज दर्शन कीजिए।

सन्दर्भश्लोकः

अथावतीर्णा शिविकात ईड्या सखीजनालम्बितपाणिपद्मा।
मन्ये नभस्तः किलतारिकाभिश्चाकाश्यमाना चपला चकास्ति।।१।।

भौमी- इसके पश्चात् सखीजनों का करकमल से अवलम्बन करके सीताजी पालकी से नीचे उतरीं। मुझे लगता है कि तारागणों से सुशोभित हुई महाविद्युत ही आकाश से उतरकर पृथ्वी पर सुशोभित हो रही है।

गीत संख्या-१६

पश्यत पश्यत सख्यो जनककिशोरी सीता
शिबिकारूढा नवोढा भाति हे।
सखीभिर्निदिष्टा हृष्टा समवतीर्णा प्रवीणा
भूमौ शनैश्चरणं दधाति हे।।१।।
भौमीभूमिमभिपादपङ्कजं दधाना शनैः
बर्हा वरार्हा नवा भाति हे।
पुत्री निजमातुः किमु हृदयजलजमभि-
विष्टरायमाणं विदधाति हे।।२।।
पीतवसनाञ्चलावगुण्ठितमुखाम्बुरुहा

सुमुखि कामाऽभिख्यां लाति हे।
शङ्के चारुचपला मिहिरशिशुकरकरै-
रावृण्वाना शशिनं विभाति हे।।३।।
सखिभिः समनुगता राघवेण समन्विता
भूषणपरीता प्रतिभाति हे।
मन्ये मानवती विभुः विधुनानुनीता प्रीता
रोहिणीव सुषमा दधाति हे।।४।।
उर्मिलामाण्डवीश्रुतकीर्तिभिः समीहमाना
मानमदपादपं लुनाति हे।
तिसृभिरवस्थाभिश्च तुरीया गिरिधराय
रामभद्रपादरतिं राति हे।।५।।

भौमी- हे सखियों! देखो! देखो! नवविवाहिता जनकनंदिनी सीताजी पालकी पर आरूढ़ होकर बहुत सुन्दर लग रही हैं। सखियों के द्वारा निर्दिष्ट प्रसन्न सीताजी पृथ्वी पर धीरे-धीरे पग रख रही हैं। पृथ्वीपुत्री सीताजी पृथ्वी पर चरणकमल रखती हुई सुन्दर वर के योग्य श्रेष्ठ मयूरिणी-जैसी लग रही हैं। क्या पुत्री अपनी माता के हृदयकमल को अपने चरण का आसन बना रही है? सीताजी पीली साड़ी के आँचल से अपना मुख ढँककर किसी अपूर्व शोभा को प्रकट कर रही हैं। मुझे लगता है कि सुन्दर बिजली ही बालसूर्य की किरणों से चंद्रमा को ढँककर सुशोभित हो रही है। सखियों से घिरी हुई श्रीराघव के समेत आभूषणों से सजी हुई सीताजी बहुत सुन्दर लग रही हैं। मुझे लगता है कि मानिनी रूठी हुई रोहिणी चन्द्रमा के द्वारा मनाये जाने पर प्रसन्न हुई सुशोभित हो रही है। उर्मिला, माण्डवी और श्रुतिकीर्ति के साथ सुन्दर चेष्टा करती हुई सीताजी अभिमान और मद के वृक्ष को काट रही हैं। ऐसा लगता है कि जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं के साथ तुरीयावस्था ही **गिरिधर** कवि को श्रीराम के चरणकमल की भक्ति ही प्रदान कर रही है।

गीत संख्या-१७

पश्यत पश्यत सख्यो रामं रमणीयं हे।
सीतयानुगम्यमानं कामकमनीयं हे।।१।।
सान्द्रानन्दकन्दकञ्जश्यामलशरीरं हे।
चरणसरोजभृङ्गयोगिमुनिधीरं हे।।२।।
कटिपीतपटतूणकरशरचापं हे।
वक्षोवैजयन्तीमालं हृतजनतापं हे।।३।।
दाडिमदशनशुचिशरदिन्दुवक्त्रं हे।
कमलकपोलनेत्रं मैथिलीकलत्रं हे।।४।।
कुण्डलकनत्कपोलं वैवाहिकवेशं हे।

तिलककलितभालं मधुकरकेशं हे।।५।।
सीतामुखचन्द्रचारुचतुरचकोरं हे।
विश्वविलोचनचोरं कोसलकिशोरं हे ।।६।।
वधूक्षिप्तपिष्टगुटिका परितश्चिन्वानं हे।
कविगिरिधरहृदि प्रीतिमातन्वानं हे।।७।।

भौमी- हे सखी! सीताजी के द्वारा अनुगम्यमान, कोटिकाम कमनीय, रमणीय श्रीराम को देखो। घनीभूत आनन्द के बादल एवं नीलेकमल के समान श्यामल शरीर वाले और जिनके चरणकमल के योगीमुनि और धीरजन भ्रमर बन गये हैं। कटि में निषंग, हाथ में धनुषबाण धारण किये हुये, वक्षस्थल पर वैजयन्तीमाला पहने हुये, भक्तों के ताप नष्ट करने वाले श्रीराम को देखो। अनार के समान दन्तावली शरद् चन्द्रमा के समान मुख और सुन्दर कपोल एवं नेत्र वाले सीतापति श्रीराम को देखो। कुण्डल से सुन्दर कपोल, वैवाहिक वेश और तिलक से युक्त मस्तक तथा भ्रमर के समान केश, सीता मुखचन्द्र के चतुर चकोर, विश्व के नेत्रों को चुराने वाले कोसलराजकिशोर श्रीराम को देखो। सीताजी के द्वारा फेंकी जाती हुई आटा की गोलियों को चारों ओर दौड़-दौड़ के उठाते हुए और गिरिधर कवि के हृदय में प्रेम का विस्तार करते हुए श्रीराम को देखो।

सन्दर्भश्लोकः

अथावरुन्धे स्म महर्षिमान्यां मनस्विनीं मान्यमहीसुतां ताम्।
अरुन्धतीरुद्धदृगश्रुविन्दुर्मुदावतर्तुं शिविकात ईड्याम्।।१।।

भौमी- इसके पश्चात् नेत्रों में उमड़ते हुये आँसुओं के बिन्दुओं को रोककर अरुन्धतीजी ने महर्षियों द्वारा सम्मानित सबके लिए स्तुतियोग्य मनस्विनी माननीय पृथ्वीपुत्री सीताजी से पालकी से उतरने का अनुरोध किया।

गीत संख्या-१८

अवतरतु सुखं सीता साकेतपुरद्वारम्।
अनुसरतु सुखं सीता रघुचन्द्रं सुकुमारम्।।
व्रीडयतु युगलकान्तिर्घनचलितचलाशोभाम्।
क्रीडयतु गतभ्रान्तिर्भक्तिं मुनिजनलोभाम्।।
परिसरतु सुखं सीता रघुपतिमथसुखसारम्।।१।।
पश्यतु जगतीपश्यो निरुपमं युगलरूपम्।
नश्यतु ममताशस्यो ननु शुष्यतु भवकूपम्।।
संसरतु सुखं सीता रामं जितशतमारम्।।२।।
अनुभवतु रसारस्यं तव कमलपदस्पर्शम्।
परिभवतु वशावश्यं मदमोहमहोत्कर्षम्।।
परिहरतु सुखं सीता लज्जाजनितोद्गारम्।।३।।

भवती रघुकुलकेतोर्भुजवरशुल्का जाया।
भवती वैदिकसेतोर्भार्या मायामाया।।
अपहरतु सुखं सीता कविगिरिधरभवभारम्।।४।।

भौमी- हे सीताजी! अब आप सुखपूर्वक श्रीअयोध्या के सिंहद्वार पर पालकी से उतरें और सुकुमार श्रीरामजी का अनुसरण करती हुई उनके पीछे-पीछे राजभवन में पधारें। युगल सरकार की कान्ति, बादल से मण्डित, बिजली की शोभा को लज्जित करें और भ्रान्तिरहित होकर मुनियों के मन को लुभाने वाली भक्ति को क्रीड़ा की अनुमति दें और आप श्रीसीताजी सम्पूर्ण सुखों के तत्वभूत श्रीराम का परिशरण करें। इस संसार में जन्म लेने वाला जीव उपमारहित युगलरूप के दर्शन करे। ममता की खेती नष्ट हो और संसार का कूप सूख जाय। और अनेक कामदेवों को जीतने वाले श्रीराम का आपश्री सीताजी सुखपूर्वक संसरण करें अर्थात् सुखपूर्वक प्रभु का सामीप्य लाभ करें। भगवती पृथ्वी आपके रसीले चरणकमल के स्पर्श का अनुभव करें और चर्बी के वशीभूत मदमोह के उत्कर्ष को आप समाप्त कर दें। हे सीताजी! आपश्री लज्जा का उद्‌गार छोड़ दें। आप सूर्यकुल के केतु श्रीराम की पराक्रम शुल्क से जीती हुई पत्नी हैं। आप सनातन धर्म के सेतु श्रीराम की धर्मपत्नी और माया की भी माया हैं। आपश्री सीताजी **गिरिधर** कवि के भवभार को दूर करें।

सन्दर्भश्लोकौ

अथ सखीजनसंस्तुतसंस्तवां सततजापचलाधरपल्लवाम्।
नयननिर्गतवारि न रुन्धतीं जनकजाप्यनमस्यदरुन्धतीम्।।१।।
तां वन्दमानां रघुचन्द्रचन्द्रचकोरकाक्षीं सरसीरुहाक्षीम्।
अरुन्धती दिव्यगुणाशिषाभिः सम्मण्डयन्ती समगायदेतत्।।२।।

भौमी- इसके अनन्तर सखियों द्वारा स्तुति के शब्दों में जिनका परिचय दिया गया है, सतत् श्रीराम-नाम जप से जिनका पल्लव जैसा अधर हिल रहा है ऐसी सीताजी के दर्शनों से उमड़े हुये प्रेमाश्रुओं को जो नहीं रोक पा रही हैं उन देवी अरुन्धतीजी को नववधू जनकतनया सीताजी ने भी प्रणाम किया। जिनके नेत्र रघुकुल के चन्द्रमा श्रीरामचन्द्र के मुखचन्द्र के चकोर बन गये हैं, उन कमलनयनी एवं स्वयं को प्रणाम कर रही जनकनंदिनीजी को अपनी दिव्य आशिषाओं से संयुक्त करती हुई गुरुमाता अरुन्धतीजी इस प्रकार गाने लगीं।

गीत संख्या-१९

ब्रूते स्वाशिषस्ते मातारुन्धती त्वमेधि सौभाग्यवती।।
भूयाद् गङ्गायमुनाधारासमं सौभगम्।
तावकीनमखण्डं लसत्षड्भगम्।।
ब्रूते स्वाशिषस्ते देवि पार्वती त्वमेधि सौभाग्यवती।।१।।
भूया भव्या सुनव्या सदा शोभना।
नित्ययौवना रघूत्तममनोलोभना।।
ब्रूते स्वाशिषस्ते सैन्धवी सती त्वमेधि सौभाग्यवती।।२।।

भूयाः कोसलानां साम्राज्ञी सदा वन्दिता।
रामचन्द्रपट्टमहिषी रामाभिनन्दिता।।
ब्रूते स्वाशिषस्ते सरस्वती त्वमेधि सौभाग्यवती।।३।।
भूयाः पुत्रिणी पौत्रिणी जितसौदामिनी।
रामभद्रभामिनी गिरिधरस्वामिनी।।
ब्रूते स्वाशिषस्ते सदारुन्धती त्वमेधि सौभाग्यवती।।४।।

भौमी– हे सीते! आपके लिये आपकी गुरुमाता अरुन्धती यह आशीर्वाद वाक्य कह रही है– आप सदैव सौभाग्यवती रहें। ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य इन छहों भगों से सुशोभित आपका सौभाग्य गंगा–यमुना की धारा के समान अविरल और अखण्ड रहे। आपके लिये देवी पार्वती आशीर्वाद कह रही हैं कि आप सौभाग्यवती रहें। आप सदैव भव्य, नवीन, सुन्दरी, नित्य–युवावस्था सम्पन्न श्रीराम के मन को लुभाने वाली बनी रहें। आपके लिये समुद्रकन्या साध्वी लक्ष्मीजी आशीर्वाद कह रही हैं, आप सदैव सौभाग्यवती रहें। आप सदैव वन्दित और कोसल जनपद की साम्राज्ञी बनें। आप सबके द्वारा अभिनन्दित होकर शीघ्र ही श्रीरामचन्द्र जी की पट्टाभिषिक्त महिषी बनें। आपके लिये सरस्वती आशीर्वाद वाक्य कह रही हैं, आप सौभाग्यवती हों। आप पुत्रवती हों, आप पौत्रवती हों। अपनी कांति से बिजली को जीतने वाली श्रीरामभद्र की प्रियतमा **गिरिधर** कवि की स्वामिनी सीताजी आपके लिए अरुन्धती सदैव आशीर्वाद दे रही है। आप नित्य सौभाग्यवती रहें।

विशेष– यह गीत गुजराती लोकधुन में निबद्ध है– इसका बोल है–

तमने सांच वशे अरुन्धती अखण्ड सौभाग्यवती।

सन्दर्भश्लोकः

अथावतीर्णां जगतीतलेशसहायतार्थं भुवि चावतीर्णाम्।
सीतां प्रतीतां श्रुतिगीतगीतां नीराजयन्ति स्म मुदा महिष्यः।।१।।

भौमी– इसके पश्चात् वेदों द्वारा जिनके लिये गीत गाये गये हैं, जो जगदीश्वर श्रीराम की सहायता के लिये पृथ्वी पर अवतीर्ण हुई हैं। उन्हीं पालकी से उतरी हुई परम विश्वस्त सीताजी की कोसलराज महिषियाँ आरती उतारने लगीं और मिथिला की ही लोकधुन की ढाल में आरती गीत गाने लगीं।

गीत संख्या–२०

अद्य सीतारामौ दम्पती नीराजयामहे।
परिपूर्णकामौ जम्पती नीराजयामहे।।
सुरवरलतासुतमालवर्णिनी वरौ।
कोटिकोटिरतिरतिनायकमनोहरौ ।।
लोकललामौ जायापती नीराजयामहे।।१।।
जाम्बूनदसिंहासनासीनौ विश्वभूषणौ।

न्यस्तसर्वदूषणौ विभूषणविभूषणौ।।
अद्य गौरश्यामौ सुमती नीराजयामहे।।२।।
जगज्जन्मस्थेमसंयमादिहेतू दम्पती।
भीमभवघोरपारावारसेतू दम्पती।।
जगत्परिणामौ सुकृती नीराजयामहे।।३।।
जन्मलाभावधीभूतौ जगन्मूलकारणौ।
परमकारुणिकौ प्रणतकुलतारणौ।।
गतक्रोधकामौ सन्नती नीराजयामहे।।४।।
हतानङ्गसारङ्गचित्सौदामिनीघनौ ।
गुणलुब्धसज्जनौ सदाभुवनमोहनौ।।
गिरिधराभिरामौ सद्गती नीराजयामहे।।५।।

भौमी- आज हम पत्नी-पति की भूमिका निभा रहे-श्रीसीतारामजी की आरती कर रही हैं। जिनकी सभी कामनाएँ पूर्ण हैं, ऐसे परमेश्वर स्वरूप नित्य दम्पत्ति की हम आरती उतार रही हैं। कल्पलता और तमाल के समान सुन्दर दुलहिन-दुलहा करोड़ों-करोड़ों रतियों और कामों के मानों को चुराने वाले, इस संसार के रत्नरूप पत्नी-पति श्रीसीतारामजी की हम आरती कर रही हैं। स्वर्ण सिंहासन पर विराजमान, संसार के अलंकार, सभी दोषों से रहित, आभूषणों के भी आभूषण, सुन्दर बुद्धि वाले, गौरश्याम, युगल सरकार की आज हम आरती उतार रही हैं। आज हम उन ब्रह्म-दम्पत्ति की आरती कर रही हैं जो जगत के जन्म-स्थिति और प्रलय के अभिन्न निमित्तोपादान कारण हैं। हम उन सुकृती दम्पत्ति को नीराजित कर रही हैं जो भयंकर संसारसागर के सेतु स्वरूप हैं तथा सम्पूर्ण जगत जिनका परिणाम है, विवर्त्त नहीं। जो जन्म-लाभ की अवधि तथा जगत् के मूल कारण हैं, जो परम करुणामय और प्रणतजनों को संसार-सागर से तारने वाले हैं, क्रोध और काम से रहित तथा सन्तों के प्रणाम के भी आश्रय स्वरूप उन्हीं सीताराम जी की हम आरती कर रही हैं। जिनकी कामवासना नष्ट हो चुकी है, ऐसे निष्काम-भक्तचातकों के लिए चेतनामयी विद्युत और मेघ स्वरूप, गुणों से सज्जनों को लुब्ध करने वाले, सदैव संसार को मोहित करने वाले ऐसे संतों के एकमात्र आश्रय तथा **गिरिधर** कवि के आनन्ददाता सीतारामजी की हम नीराजना कर रही हैं।

गीत संख्या-२१

नखशिखसुषमाधरं नीराजय सखि सीतावरम्।।
जलजजलदघनगगनशरीरं कोटिपयोधिसदृशगम्भीरम्।
धृतकरचापशरं नीराजय सखि सीतावरम्।।१।।
मनसिजमधुपविनिन्दककेशम् विपुलमदनमदहरवरवेषम्।
मुखजितसुधाकरं नीराजय सखि सीतावरम्।।२।।
उरसि तुलसिविलसितवनमालं तनुरुचिविगणिततरुणतमालम्।
कटिधृतपीताम्बरं नीराजय सखि सीतावरम्।।३।।

रामं कोसलराजकिशोरं जनकसुतामुखचन्द्रचकोरं।
निजजनतोषकरं नीराजय सखि सीतावरम्।।४।।
कोटिदिवाकरसदृशप्रतापं भुजबलदलितवृषाकपिचापम्।
गिरिधरदुरितहरं नीराजय सखि सीतावरम्।।५।।

भौमी- माताएँ गा रही हैं- हे सखी! नख से शिखापर्यन्त सुषमा को धारण करने वाले सीताजी के वर श्रीराम की नीराजना करो। इनका शरीर कमल एवं जल देने वाले बादल तथा आकाश के समान है जो करोड़ों सागरों के समान गम्भीर है, जो हाथ में धनुष-बाण धारण किये हैं, ऐसे सीतावर रामजी की नीराजना करो। जिनके केश कामदेव के भ्रमरों की भी निन्दा करते हैं, जिनका वेश अनेक कामों के मदों को हर लेता है, जिनके मुख ने चन्द्रमा को भी जीत रखा है, ऐसे सीता-पति प्रभु श्रीराम की आरती करो। जिनके हृदय पर तुलसी की वनमाला सुशोभित है, जिन्होंने अपनी शोभा से नवीन तमाल को जीत रखा है, ऐसे कटिप्रदेश में पीताम्बर धारण करने वाले सीतापति श्रीराम की नीराजना करो। हे सखी! कोसलराज दशरथ के किशोर, जनकनंदिनी सीताजी के मुखचन्द्र के चकोर, अपने भक्तों को सन्तुष्ट करने वाले सीतावर श्रीराम की आरती उतारो। हे सखि! करोड़ों सूर्यों के समान प्रताप वाले अपने भुजबल से शिवजी का धनुष तोड़ने वाले तथा **गिरिधर** कवि के सम्पूर्ण पापों को हरने वाले सीतावर श्रीराम की आरती उतारो।

विशेष- यह गीत एक प्राचीन आरती धुन की ढाल में निबद्ध है- इसका बोल है-

नख शिख छविधर की आरती कीजै सियावर की।।

गीत संख्या-२२

कनकसिंहासने रामेण साकं सीता रतिकोटिसदृशी विभाति हे।
रूपलक्ष्मीर्हरिणदृशीव भाति हे।।१।।
अङ्गना कुलाङ्गना वीराङ्गनैषा देवाङ्गनागणगौरवं गृणाति हे।
स्वीयतनुत्विषा स्वप्रियं पृणाति हे।।२।।
भूषणैर्विभूषिता भुवनभूषा पूषान्वयं विगतान्वयं दधाति हे।
विश्वविश्रुतविरुदं विदधाति हे।।३।।
काञ्चनकपिशपीतपटधरा धरासुताधरा धर्षणं मीनाति हे।
पापपादपानि पश्यतां लुनाति हे।।४।।
दर्शं दर्शं तर्षेण सुबाहुरिपुं सीतानेत्रयोश्च निमिषं जहाति हे।
निजधृतेरपि धुरं विजहाति हे।।५।।
स्मयमाने गतमाने सखीगणे वधूर्बलाद्रणरणकं जहाति हे।
गिरिधराय निजपतिरतिं राति हे।।६।।

भौमी- सुवर्ण के सिंहासन पर श्रीराम के साथ विराजमान सीताजी करोड़ों-रतियों के समान सुशोभित हो रही हैं और हरिण-नेत्रों के समान मैथिलीरूप की भी लक्ष्मी अर्थात् शोभा-सी लग रही हैं। यह कल्याणी, श्रेष्ठ महिला, वीरांगना, देवांगनागणों के गरिमा की भी सूचना दे रही हैं और अपने शरीर की कांति से अपने

प्रियतम श्रीराम को भी प्रसन्न कर रही हैं। आभूषणों से विभूषित, सारे संसार की अलंकार स्वरूपा सीताजी सूर्यवंश को भी अद्वितीय बना रही हैं और विश्व प्रसिद्ध कीर्तिमान स्थापित कर रही हैं। पृथ्वीनन्दिनी सीताजी, सुवर्ण को भी चितकबरा बनाने वाला पीत–परिधान धारण करके पृथ्वी का अपमान समाप्त कर रही हैं और दर्शन करने वालों के पाप–वृक्षों को भी काट डाल रही हैं। रूप की प्यास के साथ सुबाहु–शत्रु श्रीराम को देख–देखकर सीताजी अपने नेत्रों का निमिष छोड़ रही हैं अर्थात् पलक गिराना बन्द कर रही हैं और धैर्य की धुरी को भी छोड़ रही हैं। सीताजी की यह अवस्था देखकर जब मानरहित सखीवर्ग मुस्कुराने लगा तब नववधू सीताजी ने बलपूर्वक अपनी व्याकुलता छोड़ी और गिरिधर कवि को भी अपने प्रियतम श्रीराम की भक्ति प्रदान कर दी।

गीत संख्या-२३

सीतां दृष्ट्वा रामचन्द्रेण समेतां मुदा कौसल्यामाता प्लाविता।।
दर्शं दर्शं वधूमुखाब्जं विस्मितचित्ता राज्ञी।
प्रेमपयोनिधिमग्नमानसा मुदिताभूत् साम्राज्ञी।।
सीतां दृष्ट्वा दिव्यसद्गुणैरुपेतां मुदा कौसल्यामाता प्लाविता।।१।।
उत्प्रेक्षते स्म बालमृगाक्षी किमियं दैवी माया।
अथवा साक्षाद्रतिः सपतिका किमु रघुनन्दनजाया।।
सीतां दृष्ट्वा शोभासम्पदासमेतां मुदा कौसल्यामाता प्लाविता।।२।।
कोटिकोटिमोहिनीमोहिनी नूनं जनककुमारी।
नारायणीकोटितोऽप्येषा रम्या राघवनारी।।
सीतां दृष्ट्वा सर्वदूषणादपेतां मुदा कौसल्यामाता प्लाविता।।३।।
एतदंशतः कोटिकोटिश्रीसरस्वतीगिरिकन्याः।
सदा भवन्ति भान्ति भगवत्यः सीताकृपया धन्याः।।
सीतां दृष्ट्वा दिव्यचरितैः परीतां मुदा कौसल्यामाता प्लाविता।।४।।
चक्रवर्तिनः पट्टराजमहिषी सीतां पश्यन्ती।
पुलकगात्रयष्टिर्हृष्यन्ती बाष्पस्त्रजं सृजन्ती।।
सीतां दृष्ट्वा कविगिरिधरगिरा गीतां मुदा कौसल्यामाता प्लाविता।।५।।

भौमी– श्रीरामचन्द्र के सहित सीताजी को देखकर कौसल्या माता प्रसन्नता से आप्लावित हो गईं। बड़ी बहूरानी के मुखकमल को देख–देखकर महारानी कौसल्या का चित्त विस्मित हो उठा। उनका मन प्रेमसागर में मग्न हो गया। सीताजी को श्रेष्ठगुणों से युक्त देखकर साम्राज्ञी प्रसन्न हुयीं और उनका मन हर्ष से भर गया। बालमृगनयनी कौसल्याजी उत्प्रेक्षा करने लगीं, क्या यह दैवी माया है? अथवा अपने पति काम के सहित यहाँ रति ही आ गई है? अथवा यह श्रीराम की पत्नी सीताजी हैं? सीताजी को शोभा की सम्पत्ति से युक्त देखकर कौसल्याजी का मन प्रसन्नता से भर गया। निश्चित ही जनकनंदिनी सीता करोड़ों–करोड़ों मोहिनियों को भी मोहित करने वाली हैं। श्रीराघव की धर्मपत्नी सीताजी करोड़ों–लक्ष्मियों से भी श्रेष्ठ हैं, इस प्रकार सीताजी को

सभी दोषों से रहित देखकर माता कौसल्याजी प्रसन्नता से आप्लावित हो उठीं। इन्हीं सीताजी के अंश से करोड़ों लक्ष्मी, सरस्वती, पार्वतियाँ उत्पन्न होती जा रही हैं। सीताजी की ही कृपा से सभी भगवतियाँ सत्ता में आ रही हैं। इस प्रकार दिव्य–चरितों से युक्त सीताजी को देखकर कौसल्या माता प्रसन्नता से ओत–प्रोत हो गईं। इस प्रकार चक्रवर्ती दशरथजी की पट्टमहिषी कौसल्याजी सीताजी को देखते–देखते रोमांचित हो गईं नेत्रों से अश्रुमाला प्रवाहित हो उठी। **गिरिधर** कवि की वाणी से गायी हुई सीताजी को देखकर माता कौसल्या आनन्द से आप्लावित हो उठीं।

सन्दर्भश्लोकः

अथ विलोक्य वधूं वनितां नतां जनकजामकजामकजामजाम्।
परिनिरीक्ष्य सुवाचमरुन्धतीं सरवती निजगाद सरस्वती।।१।।

भौमी– इसके अनन्तर 'अ' अर्थात् श्रीराम के 'कजाम्' अर्थात् सुख को जन्म देने वाली पुनः 'अकजाम्' अर्थात् रावण के दुःख को प्रकट करने वाली 'अजाम्' अर्थात् भगवान श्रीराम के लिये अवतार लेने वाली 'जनकजाम्' अर्थात् सीताजी को विनम्र नववधू रूप में देखकर पुनः सम्मुख उपस्थित अरुन्धतीजी को निहारकर ज्ञान के सरोवर से युक्त सरस्वती जी सुन्दर वाणी में बोलीं।

गीत संख्या–२४

पश्य पश्य पङ्कजाक्षि! जनककिशोरी सीता
राजगृहं शनैरुपयाति हे।
रामचन्दमुखचन्द्रचतुरचकोरी सीता
कोटिरतिमदं विलुनाति हे।।१।।
पश्य सखि खेलन्तीव प्रथितपदाम्बुरुहं
भूमाविह भौमी निदधाति हे।
शङ्के सुतावत्सला ललितवक्षसि दिव्यं
विष्टरं विनम्रा विदधाति हे।।२।।
चालं चालं चतुरा चकितचकितेन हृदा
हारहंसवधूविभ्रां लाति हे।
भावं भावं भवभव्याभवभामिनीव भव्या
भावुकेभ्यो भावनीया भाति हे।।३।।
नूपुररवेण सखी मुनिमनो मोहयन्ती
व्यपोहन्ती बुद्धिभेदं याति हे।
गिरिधरकविहृदि भक्तितरुप्ररोहकं
रोहयन्ती सतोऽसतः पाति हे।।४।।

भौमी- हे कमलनयनी अरुन्धती! देखिये-देखिये जनकनन्दिनी सीताजी धीरे-धीरे राजभवन की ओर पधार रही हैं। श्रीरामचन्द्र के मुखचन्द्र की चतुर चकोरी सीताजी करोड़ों-करोड़ों रतियों के भी अहंकार को दूर कर रही हैं। अरुन्धतीजी! देखिये, भूमिकन्या सीताजी खेलती हुई जैसी पृथ्वी पर अपने कोमलचरण रख रही हैं। मुझे तो शंका हो रही है मानों पुत्रीवत्सलापृथ्वी सीताजी के चरणों के प्रतिबिम्ब के व्याज से अपने सुन्दर वक्षस्थल पर विनम्रभाव से कमल का आसन बिछा रही हैं। चतुर सीताजी चल-चलकर अपने चकित हृदय से सुन्दर राजहंसिनी की शोभा को उपस्थित कर रही हैं। पार्वती के ही समान पूजनीय संसार को भी भव्य बनाने वाली बार-बार सम्मानित होती हुई भावुकों के लिए पूजनीय प्रतीत हो रही हैं। देख रही हैं। सखी अरुन्धती! नूपुर के कलरव से मुनियों के भी मन को मोहित करती हुई बुद्धिभेद को नष्ट करती हुई सीताजी राजभवन में प्रवेश कर रही हैं। **गिरिधर** कवि के हृदय में भक्तिवृक्ष का पौधा लगाती हुई सीताजी सन्तों की असत् संसार से रक्षा कर रही हैं।

गीत संख्या-२५

किमुत रतिर्निरवद्या हे निरुपमतनुयोषा।
लसति सततमनवद्या हे रघुपतिधृततोषा।।१।।
परिहृतमधुपातङ्का हे किमु नन्दनचम्पा।
गतभङ्गुरताशङ्का हे किमु वनघनशम्पा।।२।।
किमु गतधनकुकलङ्का हे क्षीराब्धिकुमारी।
किमु धृतविरतिकरङ्का हे प्रेमाकृतिनारी।।३।।
किमुताजनपरिचर्या हे विमला निश्छलना।
किमु शरणागतिरार्या हे विलसति वरललना।।४।।
किमु हतराहुभयाशा हे बोधार्कसुरश्मिः।
किमु विभया विदिताशा हे लावण्यसुलक्ष्मीः।।५।।
इत्थमनेकोत्प्रेक्षितया भारत्या गीता।
गिरिधरप्रभुगृहिणीता हे स्वपवर्गं सीता।।६।।

भौमी- श्रीराम को संतुष्ट करने वाली यह निष्पाप महिला कौन है? क्या उपमारहित शरीर वाली निर्दोष यह ललना रति ही तो नहीं है। भ्रमरों के आतंक से रहित क्या यह नंदनवन की चम्पा है? अथवा नाश की शंका से रहित क्या यह चिन्मयी विद्युत है? क्या ये धन के कुत्सित कलंक से रहित क्षीरसागर कन्या लक्ष्मीजी हैं? अथवा क्या यह वैराग्य का पिटारा लिये हुये महिला की आकृति में प्रेम भक्ति है? क्या समस्त छल-प्रपन्चों से रहित श्रीराम की सेवा ने ही महिला का रूप ले लिया है? अथवा स्वयं शरणागति ही यहाँ सीताजी के रूप में उपस्थित हो गई है? क्या राहु के भय से रहित यह ज्ञानमय सूर्यनारायण की किरण है? अथवा क्या अपने प्रकाश से दिग्दिगन्त को देदीप्यमान करने वाली यह शोभा की महालक्ष्मी है? इस प्रकार अनेक उत्प्रेक्षाओं से युक्त सरस्वतीजी द्वारा गीत का विषय बनायी हुयी अर्थात् गायी हुई **गिरिधर** कवि के प्रभु श्रीराम की गृहिणी सीताजी पालकी से उतरकर राजभवन के मुख्य द्वार पर पधार आयीं।

विशेष- यह गीत विद्यापति की लोकधुन की ढाल पर निबद्ध है-

इसका बोल है-

रघुवर भेल सुभगवर हे दुलहिनि भेलि सीता।

गीत संख्या-२६

लसति नृपद्वारे श्रीरामः प्रियासहितो जलदश्यामः।।
शिरसि वरमणिमौलिं विभ्रत् सुजनसुमनोभवनंपिप्रत्।
किमपि व्रीडाविनतोऽबिभ्यत् वपुर्जितकोटिकोटिकामः।।१।।
मदनमकराभशुभोत्तंसो दृढांसो हंसवंशहंसः।
पदकमलकेलितमुनिहंसस्तरुणतापिच्छतरुश्यामः ।।२।।
लसितवरतूणवाणचापः क्षपितभवभक्तभीमतापः।
समर्जितसौभगकालापो विबुधवन्दितो रामरामः।।३।।
वदनजितशारदराकेशो भुजविजितत्रिभुवनवीरेशः।
भुवनमङ्गलो गिरिधरेशो हरिर्निजदासदृगभिरामः।।४।।

भौमी- मेघवर्णी श्रीराम अपनी प्रियतमा सीताजी के सहित श्रीअयोध्या के राजद्वार पर सुशोभित हो रहे हैं। सिर पर सुन्दर मणि मौर धारण करते हुये अपनी उपस्थिति से भक्तों के मनभवन को पूर्ण करते हुये, निर्भय होकर भी लज्जा से कुछ झुके हुये, प्रभु श्रीराम अपने शरीर शोभा से करोड़ों-कामों पर विजय प्राप्त करके राजद्वार पर विराज रहे हैं। कानों में मकराकृत कुण्डल धारण किये हुये दृढ़-स्कन्ध, सूर्यवंश के सूर्य श्रीचरणकमल में मुनिजन रूप हंसों को क्रीड़ा की अनुमति देने वाले, सुन्दर नवीन तमाल के समान श्यामल श्रीराम राजद्वार पर विराज रहे हैं। सुन्दर तरकश-धनुष-बाण धारण किये हुये भक्तों के भवताप को नष्ट करने वाले, सौन्दर्य समूह को इकट्ठा किये हुये देवताओं द्वारा वन्दित, परशुरामजी को भी रमाने वाले भगवान श्रीराम राजद्वार पर विराज रहे हैं। अपने मुख से चन्द्र को जीतने वाले और भुजाओं से तीनों लोकों के वीरों पर विजय प्राप्त करने वाले सम्पूर्ण लोकों का मंगल विधान करने वाले **गिरिधर** कवि के ईश्वर अपने भक्तों के नेत्रों को आनन्द देने वाले श्रीहरि प्रभुराम सीताजी के सहित आज राजद्वार पर विराज रहे हैं।

गीत संख्या-२७

राजद्वारे राजमानान् स्वभाभिः समाभिः सूनूंश्चतुरो विलोक्य तिस्रो मातरः।
अन्वभवन् भवने चतसृभिरवस्थाभिर्वै चत्वारो विभवो भान्ति भ्रातरः।।१।।
धन्या धन्या वयं धन्या धन्यानि नो लोचनानि धन्यं सुप्रभातं धन्यो वासरः।
धन्यं जन्म धन्यं कुलं धन्यो महाराजराजो धन्यो दिवि दीव्यति दिवाकरः।।२।।
पश्यत सीताभिरामो भाति रामो रमणीयो, विद्युतेव परीतो धराधरः।
माण्डव्या मण्डितो भाति भरतो यथैव हेमव्रतत्या तमालद्रुः शुभाकरः।।३।।
उर्मिल उर्मिल एव क्षीराब्धिर्यथा लक्ष्मणो निश एव निशीथे निशाकरः।

श्रुतिकीर्त्या श्यामया विभाति यथा शत्रुघ्नोऽपि कुवलयवत्येव विभाकरः।।४।।
अद्य जातश्चक्रवर्ती सर्वसौभगाग्रवर्ती सकलसुकृतसुखसागरः।
जीवको जीवातुश्चिरं गीतगिरो गिरिधरस्य सत्रियुग्मो रामः सीतानागरः।।५।।

भौमी- समान स्वभाववाली अपनी अपनी पत्नियों के साथ राजद्वार पर विराजमान चारों पुत्रों को देखकर तीनों माताओं ने ऐसा अनुभव किया कि चारों अवस्थाओं के साथ, चारों विभुओं के जैसे ही चारों भ्राता विराजमान हो रहे हैं। आज हम लोग धन्य हैं-धन्य हैं-धन्य हैं। आज हमारे नेत्र धन्य हैं। आज हमारा प्रातःकाल धन्य है और आज का दिन धन्य है। धन्य है हमारा जन्म, धन्य है यह रघुकुल, धन्य हैं महाराज दशरथ और धन्य हैं सूर्य- नारायण जो आकाश में प्रकाशमान होकर अपने वंशधर श्रीसीतारामजी को निहार रहे हैं। देखो! सीताजी से सुन्दर लगने वाले श्रीराम उसी प्रकार रमणीय लग रहे हैं जैसे विद्युत से युक्त नीलमेघ, उसी प्रकार माण्डवी से युक्त भरत बहुत ही सुशोभित हो रहे हैं, मानों सुवर्ण की लता से आलिंगित सुन्दर तमाल वृक्ष ही हो। उर्मिला रूप नदी से तरंगायित क्षीरसागर की भाँति लक्ष्मणजी उर्मिला के साथ उसी प्रकार सुन्दर लग रहे हैं, जैसे मध्यरात्रि में उजेली रात्रि से युक्त चन्द्रमा सुशोभित होते हैं और श्यामलांगी श्रुतिकीर्ति के साथ शत्रुघ्न भी उसी प्रकार शोभित हो रहे हैं, जैसे नीलवर्णी कमलिनी से युक्त नारायण। आज चक्रवर्तीजी महाराज दशरथ सभी सौभाग्यवानों में श्रेष्ठ तथा सम्पूर्ण पुण्यों और सुखों के सागर बन गये हैं। **गिरिधर** कवि के जीवन की औषधिरूप सीतापति श्रीराम तीनों जोड़ी माण्डवी-भरत, उर्मिला-लक्ष्मण, श्रुतिकीर्ति-शत्रुघ्न इन तीन जोड़ियों के सहित युगल सरकार चिरजीवी रहें।

विशेष- यहाँ सीताजी तुरीयावस्था, माण्डवीजी सुषुप्ति अवस्था, श्रुतिकीर्ति जी स्वप्नावस्था एवं उर्मिला जी जागृतावस्था हैं। इसी प्रकार श्रीराम परमेश्वर तुरीयावस्था के विभु, श्रीभरत प्राज्ञसुषुप्ति अवस्था के विभु, श्रीशत्रुघ्न हिरण्यगर्भ स्वप्नावस्था के विभु और श्रीलक्ष्मण विराट जागृतावस्था के विभु हैं।

सन्दर्भश्लोकः

अपरिच्छिन्नमप्येनं रामं रामासमन्वितम्।
आरभन्त परिच्छेत्तुं मातरो लोकभावनाः।।१।।

भौमी- देशकाल और वस्तु से अपरिछिन्न होने पर भी श्रीसीताजी के सहित श्रीराम की माताएँ लौकिक विधान के अनुसार परिछन करने लगीं।

गीत संख्या-२८

कलितकमलकरमङ्गलभाजना मोदते हे।
माता कुर्वती परिच्छिन्नमपरिच्छिन्नं, हृदये प्रमोदते हे।।१।।
नीराजयमाना विराजमानौ, सीतारामौ दम्पती हे।
माता परिच्छिन्नं कुर्वाणालङ्कुर्वाणापि, सीदति सतां गती हे।।२।।
अनुनयन्तीध्मभुजं मातापि स्वमनसि शङ्कते हे।
मैव तापयेदग्निर्मदीयं बालं च राममाशङ्कते हे।।३।।

कथयति शृणु शृणु पावक शीतलतां ब्रज हे।
मम रामोऽधुना परिच्छिद्यमानोऽस्ति शोष्माणमुत्सृज हे।।४।।
अपरिच्छेद्यं सा परिच्छिद्य, मङ्गलं गायति हे।
माता गिरिधरध्येय युगलछविं ध्यातमपि ध्यायति हे।।५।।

भौमी- कमलकर में मंगलपात्र ली हुई माता कौसल्या मुदित हो रही हैं। आज अपरिच्छिन्न अर्थात् सीमा रहित प्रभु की परिछन करती हुई माँ हृदय में बहुत प्रसन्न हो रही हैं। विराजमान सीताराम दिव्य-दम्पत्ति की आरती उतारती हुई परिछन करती हुई, सज्जनों के आश्रय युगल सरकार को सजाती हुई माँ हृदय में दुःखी हो रही हैं। ईंधन को भस्म करने वाले अग्निदेव से अनुनय करती हुई माता कौसल्या अपने मन में शंका कर रही हैं कि अग्निदेव मेरे बालक रामजी को तपा न दें। इस प्रकार अनिष्ट की आशंका कर रही हैं। प्रार्थना करके कह रही हैं–हे अग्निदेव! सुनिये! सुनिये! शीतल हो जाइए। मेरे राघव की आज परिछन हो रही है। अपनी ऊष्मा त्याग दीजिए। इस प्रकार अपरिछेद्य परमात्मा सीतारामजी की परिछन करके माताजी मंगल गान कर रही हैं। **गिरिधर** कवि के ध्येय और साधकों के ध्यान के विषय बने हुये श्रीसीतारामजी को ध्यान का विषय बनाकर प्रेम से ध्यान कर रही हैं।

विशेष- यह गीत अवध मिथिला के मांगलिक सोहर गीत की ढाल में निबद्ध है।

गीत संख्या-२९

मातरो गायन्ति

वयं भक्त्या मनोनाथं श्रियो नाथं परिच्छिद्मः।
रघूणामप्यनाथानां सदानाथं परिच्छिद्मः।।१।।
परिच्छेत्तुं न यं शेकुः सुरा दैत्या मनुष्या वै।
तमेवाहो रमानाथं नृणां नाथं परिच्छिद्मः।।२।।
श्रुतिर्यं प्राह चाभेद्यं कदाचिन्नो परिच्छेद्यम्।
तमेवैता भुवो नाथं कृपानाथं परिच्छिद्मः।।३।।
न जग्मुर्यस्य वै पारं विरिञ्चो विष्णुरीशानः।
सुसद्गुणपाथसां नाथं सतां नाथं परिच्छिद्मः।।४।।
सदा यं नेति नेतीत्थं जगुर्गिरिधरप्रभुं वेदाः।
तमेतं जानकीनाथं जगन्नाथं परिच्छिद्मः।।५।।

भौमी- अब माताएँ गा रही हैं- हम सात सौ माताएँ भक्तिपूर्वक मन के नाथ और श्रीजी के नाथ श्रीराम की परिछन कर रही हैं। रघुवंश के तथा अनाथों के सदैव नाथ श्रीराघव की हम माताएँ परिछन कर रही हैं। जिन प्रभु को देव-दानव-मानव भी परिछिन्न अर्थात् सीमाबद्ध नहीं कर सके उन्हीं सम्पूर्ण प्राणियों के नाथ सीता के नाथ रघुनाथजी की हम परिछन कर रही हैं। जिनको श्रुति अभेद्य कहती है और कभी भी परिच्छेद्य नहीं स्वीकार करती, उन्हीं पृथ्वी के नाथ तथा कृपा के नाथ श्रीरघुनाथजी की हम परिछन कर रही हैं। ब्रह्मा-विष्णु और शिव भी जिसका पार नहीं पा सके, श्रेष्ठ सद्गुणों के सागर, संतों के स्वामी उन्हीं श्रीराम की हम

परिछन कर रही हैं। जिन **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम को वेदों ने सदैव नेति-नेति कहकर गाया, उन्हीं जानकीनाथ जगन्नाथ रघुनाथजी की हम परिछन कर रही हैं।

गीत संख्या-३०

अद्य सीतारामौ दम्पती परिच्छिद्महे।
योगिमनोरामौ जम्पती परिच्छिद्महे।।
जितकोटिभास्करार्चिर्मङ्गलनीराजनाः ।
कलितकमलकरकनकसुभाजनाः ।।
अद्य पूर्णकामौ दम्पती परिच्छिद्महे।।१।।
हेमलतातरुणतमालवर्णिनी वरौ।
चिन्मयक्षणप्रभापयोधरमनोहरौ ।।
अद्य गौरश्यामौ दम्पती परिच्छिद्महे।।२।।
परस्परं पश्यन्तौ परस्पररतिप्रियौ।
परस्परहृदयौ परस्परनतिप्रियौ।।
जितरतिकामौ दम्पती परिच्छिद्महे।।३।।
कार्यकारणब्रह्मणी भगवन्तौ चिन्मयौ।
चिदचिद्विशिष्टावद्वैतमयौ च तन्मयौ।।
लोकसल्ललामौ दम्पती परिच्छिद्महे।।४।।
कारुणिकौ परमकृपालुजगतां पती।
धर्मसेतू जगद्धेतू परमेशौ सन्मती।।
गिरिधराभिरामौ दम्पती परिच्छिद्महे।।५।।

भौमी- आज श्रीसीताराम युगलदम्पत्ति की हम परिछन कर रही हैं। योगिजनों के मन को आनन्दित करने वाले दिव्य-दम्पत्ति की हम परिछन कर रही हैं। हम करोड़ों-सूर्यों की ज्योति के समान मंगल आरती लेकर सुन्दर हस्तकमल में मांगलिक पात्र ली हुई हम सभी माताएँ पूर्णकाम सीताराम की परिछन कर रही हैं। हम उन गौरश्याम नव-दम्पत्ति की परिछन कर रही हैं जो दुलहिन-दुलहा, सुवर्ण-लता और तमाल के समान सुन्दर हैं तथा जो चिन्मय विद्युत बादल के समान मनोहर हैं। हम उन रतिकाम को जीतने वाले सुन्दर दम्पत्ति की परिछन कर रही हैं जो एक दूसरे को देखते हुये अन्योन्य के आनन्द को भी प्रिय मानते हैं। जो परस्पर के हृदय और जो परस्पर के प्रति नम्रता को ही प्रीति का साधन समझते हैं। जो कार्य-कारण ब्रह्म हैं, जो चिदचिद् विशिष्टाद्वैतमय हैं, जो परमतत्व स्वरूप चिन्मय हैं, उन्हीं मानव लोक के श्रेष्ठरत्न श्रीयुगल सरकार की हम परिछन कर रही हैं। करुणा के निधान, परमकृपालु, जगत के पालक और इस जगत के अभिन्न निमित्तोपादान कारण धर्म के सेतु, श्रेष्ठबुद्धि सम्पन्न, परमेश्वर, **गिरिधर** कवि के मन को आनन्द देनेवाले श्रीसीताराम युगलसरकार की हम कौसल्यादि माताएँ परिछन कर रही हैं।

सन्दर्भश्लोकः

कैकेय्यस्यै कनकभवनं वक्त्रलोकोत्सवेऽदात्
भौम्यै प्रादान्मणिवरगिरिं ह्याननेक्षा सुमित्रा।
कौसल्या तु प्रणतशिरसं दित्सुरेवाब्जनाभं
रामं सीताकरसरसिजे पाणिमाच्र्छत् खरारेः।।१।।

भौमी– कैकेयी जी ने मुँह दिखाई के नेग में सीताजी को कनक भवन दिया और सुमित्रा जी ने सीताजी का मुख देखकर उन्हें मणिपर्वत दे दिया। अब आई कौसल्या की बारी फिर तो प्रणाम करके सिर झुकाये हुये कमलनाथ श्रीराम को ही मुँह दिखाई के नेग में मैथिलीजी को देने की इच्छा करती हुई माता कौसल्या ने सीताजी के कर कमल में खलों के शत्रु श्रीराम का श्रीहस्त ही दे दिया। अर्थात् अभी तक श्रीराम मेरे थे, आज से ये तुम सीता के हो गये, अतः अब इन्हें सीताराम कहा जायेगा।

गीत संख्या-३१

माता कौसल्या गायतिः-

दिशेयं तुभ्यं किं सीते।
कौसल्या सञ्जगौ गद्गदं शृणु शुभचरितपरीते।।१।।
अणिमाद्या सिद्धयः समस्ता नित्यं तव किङ्कर्यः।
नवनिधयो निरन्तरं निपुणा नम्रास्तव विधिकर्यः।।२।।
श्रीरामः पुरुषस्त्वं प्रकृतिः सो भगवांस्त्वं भक्तिः।
रामः परमेशस्त्वं माया स शक्तिमांस्त्वं शक्तिः।।३।।
मम सुकृतं मद्धनं समस्तं रामो मम सर्वस्वम्।
तं ददामि तुभ्यं सीतायै अधुनाऽभूत् स तव स्वम्।।४।।
इतः पूर्वमासीत्कौसल्यायाः स्वं जलदश्यामः।
गिरिधरप्रभुस्त्वद्यतस्तेऽभूत् ख्यातः सीतारामः।।५।।

भौमी– माता कौसल्या गा रही हैं– हे सीते! आज मैं मुँह दिखाई के नेग में क्या दूँ? कौसल्याजी ने गद्गद स्वर में गाकर कहा। हे श्रेष्ठचरित्रों से युक्त सीते! आज मैं तुम्हें क्या दूँ? क्योंकि अणिमादि सभी सिद्धियाँ तुम्हारी विनम्र, कुशल, आज्ञाकारिणी अनुचरियाँ हैं। श्रीराम परमपुरुष हैं और तुम प्रकृति हो। श्रीराम भगवान हैं तुम भक्ति हो। श्रीराम परमेश्वर हैं तुम माया हो। श्रीराम सर्वशक्तिमान हैं तुम उनकी आह्लादिनी शक्ति हो। हे सीते! मेरे सत्कर्म के फल और मेरे सम्पूर्ण धन तथा मेरे आत्मा–आत्मीय–ज्ञाती और सम्पत्ति सब कुछ श्रीराम ही हैं। आज मैं उन्हीं को मुँह दिखाई के नेग में तुम्हें दे रही हूँ। अब वे तुम्हारे धन हो गये। इससे पहले मेघवर्णी श्रीराम मुझ कौसल्या के धन थे, आज से गिरिधर कवि के प्रभु श्रीराम तुम्हारे धन हो गये और अब वे सीताराम नाम से ख्यात होंगे।

गीत संख्या-३२

ममायं धनं राघवः सीते।
विविधव्रतैरुपवासतपोभिर्लब्धो मया विनीते। ।१।।
यत्स्विष्टं यत्प्रहुतं दत्तं यदपि कृतं शुभकर्म।
यच्चेष्टापूर्तं तत्फलमिह लब्धं यच्छ्रुतिमर्म।।२।।
नेति नेति यं वेदा जगदुः शिवमपि योऽकृत धन्यम्।
सैव शिर्शुभूत्वा हरिरपिबत् बत मामकसुस्तन्यम्।।३।।
यो नर्तयति सदा लेखेशान् मायामपि त्र्यधीशः।
सैव मया नर्तितोऽनेकशः शिशुः कोसलाधीशः।।४।।
तन्निजधनं ददेहं तुभ्यं मुखदर्शनपरितोषे।
स्वीकुरु सीते रक्ष यत्नतो गोपायोरःकोषे।।५।।
कौसल्याया राम इतः प्रागासीत्कन्दश्यामः।
सीताया अधुना रामोऽभूत् गिरिधरगिराभिरामः।।६।।

भौमी- हे सीते! ये राघव ही मेरे धन हैं। हे विनम्र स्वभाव वाली बहूरानी! मैंने अनेक व्रतों, उपवासों और तपस्याओं के फलरूप में श्रीराम को प्राप्त किया है। जो मैंने यज्ञ किया, जो हवन किया, जो दान दिये और जो भी शुभ कर्म किये हैं, जो ईष्टापूर्तादि नैमित्तिक कर्म किये, सभी के फलस्वरूप वैदिक सिद्धांत के मर्म परब्रह्म श्रीराम को प्राप्त कर लिया। जिनको वेद नेति-नेति कहकर गाये-शिव जी को भी जिन्होंने धन्य बना दिया, उन्हीं श्रीहरि ने शिशुरूप में आकर मेरा स्तन्यपान किया। जो तीनों लोकों के ईश्वर प्रभु सदैव देवताओं को और माया को भी नचाते रहते हैं, वही कोसलाधिपति श्रीराम बाल्यावस्था में मेरे द्वारा अनेक बार नचाये गये। उन्हीं अपने धन श्रीराम को आज मैं मुँह दिखाई के नेग में तुम्हें दे रही हूँ। हे सीते! इन्हें स्वीकार कीजिए, यत्नपूर्वक इनकी रक्षा कीजिए एवं इन मेरे परमधन श्रीराम को अपने हृदय के कोष में छिपाकर रखिये। इसके पहले तक मेघवर्णी श्रीराम मुझ कौसल्या के धन थे। इस समय गिरिधर कवि की वाणी को आनन्द देने वाले श्रीराम अब तुम्हारे हो गये हैं।

गीत संख्या-३३

त्रिजगति जयति सीतारामः।
कोटिकोटिकन्दर्पदर्पहरत्रिभुवनललितललामः।।१।।
वैवाहिकभूषणैर्भूषितः कण्ठीरवसुदृढांशः।
सुरनरमुनिवरकृतप्रशंसः कमलपकुलावतंसः।।२।।
भग्नमहेशकार्मुकः कामः केशरितरुणप्रतापः।
समुपस्थितयौवनो नाकिरिपुसूदनधृतशरचापः।।३।।

निजपदपङ्कजप्रणतपालकः कश्चित् खलकुलकालः।
कालिन्दीकीलालसौभगश्यामः सुरकुलपालः।।४।।
सीतामुखविधुचारुचकोरः कोसलराजकिशोरः।
गिरिधरगीतः सदा विजयते विश्वविलोचनचोरः।।५।।

भौमी- करोड़ों कामदेवों के अहंकार को नष्ट करने वाले, तीनों लोकों के सुन्दररत्न श्रीसीतारामजी आज तीनों लोकों में जयशील हो रहे हैं। विवाहोचित आभूषणों से सुशोभित सिंह के समान दृढ़-स्कन्ध वाले, देवता-मनुष्य और मुनियों द्वारा प्रशंसित सूर्यकुलाभूषण, शिव धनुष तोड़ने वाले 'क' अर्थात् ब्रह्मा, 'अ' अर्थात् विष्णु 'म' अर्थात् शिव, इन तीनों के निवास स्थान युवक सिंह के समान प्रतापी, नवीन युवावस्था में प्रविष्ट, देव-शत्रुओं के नाशकर्ता, धनुर्बाणधारी अपने चरणकमलों में प्रणत भक्तजनों के पालक एक अपूर्व दुष्टकुल के कालस्वरूप यमुना जल के समान श्यामल, देवताओं के पालक, सीता मुखचन्द्र के सुन्दर चकोर, कोसलराज दशरथ के किशोर पुत्र, संसार के नेत्रों को चुराने वाले '**गिरिधर** कवि के गीतों के विषय श्रीराम निरन्तर विजयी हो रहे हैं।

गीत संख्या-३४

कविर्गायति

माता राघवबाहू पश्यति ।
मदनकलभकरकमलमञ्जुलौ पीनौ दृढौ प्रपश्यति।।१।।
चिन्तयते जननी सजलाक्षी मार्दवमर्भकदोसः।
वेपमानपुलकाङ्गयष्टिका शुष्यति समधरकोषः।।२।।
किमुत मृणालकोमलाभ्यां दोर्भ्यां युधि हताः पिशाचाः।
क्षिप्ता किमु कोमलकरजैः यक्षी वक्षसि नाराचाः।।३।।
किमुराजीव दृशोर्नायाता मम सुपुत्रयोर्निद्रा।
षड्रात्रं जाग्रतावपातां गुर्वध्वरं न तन्द्रा।।४।।
शुश्रूषया तुष्टकौशिकतः समधिगताखिलविद्यौ।
त्रात्वा गौतमवधूमुपेतौ मिथिलापुरीमनिन्द्यौ।।५।।
धन्यं जन्म वयं किल धन्या पूरितसज्जनकामम्।
पश्यामो राघवं कुशलिनं कविगिरिधराभिरामम्।।६।।

भौमी- कवि हवेली पद्धति में गा रहे हैं– आज माँ श्रीराघव सरकार की भुजाएँ देख रही हैं। स्थूल, सुदृढ़, कामदेव के हस्तिशावक के सूँड़ के समान, कमल के समान कोमल श्रीराम की भुजाओं को माँ कौसल्या प्रेम से निहार रही हैं। माँ कौसल्या का शरीर रोमांचित होकर काँप रहा है। उनका अधर-कोष सूख रहा है। माँ के नेत्र में आँसू आ गये हैं। वे प्रभु के बाहुओं की कोमलता का चिन्तन कर रही हैं। माँ कहती हैं। हाय! युद्ध में मेरे राघव द्वारा कमलनाल के समान कोमल बाहुओं से राक्षस कैसे मारे गये? और इन्होंने अपनी कोमल,

अँगुलियों से ताड़का की छाती पर बाणों का प्रहार कैसे किया? अरे! लालकमल के समान नेत्रवाले मेरे पुत्रों को छः रात जागरण करने पर भी नींद क्यों नहीं आयी? और छः दिन, छः रात जागरण करके इन बालकों ने गुरु विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा की इनको जमुहाई तक नहीं आई। सेवा से संतुष्ट विश्वामित्र ने इन्हें सम्पूर्ण विद्याएँ दीं। निन्दारहित श्रीरामलक्ष्मण अहल्या का उद्धार करके श्रीमिथिला पधारे। हम धन्य हैं, हमारा जन्म धन्य है जो आज सज्जनों की इच्छा पूर्ण करने वाले कवि **गिरिधर** को आनन्द देने वाले श्रीराघव को सकुशल निहार रही हैं।

सन्दर्भश्लोकः

विहितलौकिकवैदिकमङ्गलो भुवनमङ्गलमङ्गलमङ्गलः।
कनकधाम्नि धरावरनन्दिनीं स रघुराम इमां समरीरमत्।।१।।

भौमी- इस प्रकार भुवनों का मंगल करने वाले देवताओं के भी मंगलस्वरूप विष्णु को भी मंगल देने वाले रघु अर्थात् सम्पूर्ण जीवों को रमाने वाले श्रीराम ने जनकनन्दिनी जानकीजी को कनक भवन में रमण कराया।

गीत संख्या-३५

मुदा रमते श्रीरामो मुहुः सीतया।
प्रीतया पीतया दोर्लतानीतया।।
मुक्तकरकङ्कणो विजितनवनवघनो
नित्यनवनूतनो लब्धमङ्गलधनः।
वल्लभाभावितो वल्लभस्फीतया
मुदा रमते श्रीरामो मुहुः सीतया।।१।।
कनकभवने भवानीभवाभीडितः
सुरभिशीतलमलयमारुतप्रीणितः ।
नित्यसंतुष्टया पुष्टया क्रीडितः
मोदमामोदितो मुग्धया नीतया।
मुदा रमते श्रीरामो मुहुः सीतया।।२।।
कनककलकान्तया विलसदलकान्तया
शान्तया श्रान्तया नित्यमुद्भ्रान्तया।
स्निग्धमालिङ्गितो वेदसङ्गीतया
मुदा रमते श्रीरामो मुहुः सीतया।।३।।
भूमिजास्वातिकादम्बिनीचातकः
बाहुबलवीर्यतो दनुजकुलघातकः।

क्षपितपदपद्ममकरन्दलिट्पातकः
ललितगीतैश्च गिरिधरगिरागीतया।।४।।

भौमी- परम प्रसन्न पीतवर्णी, बाहुलता में बद्ध, सीताजी के साथ भगवान श्रीराम, प्रसन्नतापूर्वक रमण कर रहे हैं। वैवाहिक विधि के अनुसार उनके श्रीहस्त का कंकण छोड़ दिया गया है। अपनी कांति से नवीन बादलों को जीतने वाले, निरन्तर नूतन दिखने वाले मंगल-धन को प्राप्त, प्राणप्रिया से सम्मानित श्रीराम वल्लभी-श्रीसीता के साथ रमण कर रहे हैं। पार्वतीजी एवं शिवजी द्वारा स्तुति विषय बने हुये, शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु से प्रसन्न, नित्य संतुष्ट और भावपुष्ट सीताजी द्वारा क्रीड़ा में नियुक्त किये हुए मुग्धा नायिका जानकीजी द्वारा कनक भवन में आनन्द को प्राप्त श्रीराम प्रियाजी के साथ रमण कर रहे हैं। स्वर्ण के समान सुन्दर शोभित अलकों वाली शान्त स्वभाव वाली, थकावट से रहित, परन्तु प्रभु के स्नेह में उद्भ्रान्त, ऐसी वेद द्वारा मन्त्रों के माध्यम से गाई हुई सीताजी से स्नेहपूर्ण भावना में आलिंगित श्रीराम रमण कर रहे हैं। भूमिनन्दिनी सीतारूप स्वाती मेघमाला के चातक अपने भुजबल पराक्रम से राक्षसों का संहार करने वाले एवं चरणकमल के प्रेम-मकरंद का पान करने वाले भक्तजनों के सभी पापों के नाशक श्रीराम ललित गीतों के माध्यम से **गिरिधर** कवि की वाणी द्वारा गायी गई सीताजी के साथ भगवान श्रीराम रमण कर रहे हैं।

विशेष- यह गीत झपताल १० मात्रे में निबद्ध है।

गीत संख्या-३६

कविः गायति

सीता रामसङ्गता विहरति।
हरिसुततनयदुहितृवरपुलिने विहरन्ती रतिदर्पमपहरति।
क्रीडति निभृतनिकुञ्जे स्निग्धा क्षणमपि पतिहृदयं न परिहरति।।१।।
नृत्यति नर्तयते स्वपरिकरीः चरणसरोजनूपुरं मुखरति।
मन्ये सुरतापिच्छसङ्गता विलसन्ती सुरलता परिसरति।।२।।
विबुधवधूसंसृष्टसुमाञ्जलिमालिकया निजदयितमाकिरति।
दर्शं दर्शं युगलमाधुरी सुकविगिरिधरो गिरः सङ्गिरति।।३।।

भौमी- अब कवि हवेली पद्धति में गा रहे हैं। अब सीताजी श्रीराम के साथ विहार कर रही हैं। हरिसुत अर्थात् विष्णुपुत्र ब्रह्मा के तनय वसिष्ठजी की दुहित्रि अर्थात् पुत्री सरयू के तट पर विहार करती हुई सीताजी कामपत्नी रति के दर्प को भी नष्ट कर रही हैं। प्रसन्न हुई सीताजी निभृत निकुंज में क्रीड़ा कर रही हैं। एक क्षण भी प्राण पति श्रीराम के हृदय को नहीं छोड़ रही हैं। स्वयं नृत्य कर रही हैं, सखियों से नृत्य करा रही हैं, चरणकमल में पहने नूपुरों को मुखरित कर रही हैं, मुझे लगता है कि देवताओं के तमाल-वृक्ष से चिपकी हुई सुशोभित कल्पलता ही चारों ओर भ्रमण कर रही है और तमाल वृक्ष को घेर रही है। देववधुओं द्वारा अर्पित पुष्पमालिका के पुष्पों से अपने प्राण धन श्रीराम को ढक देती हैं। इस प्रकार युगलमाधुरी के दर्शन कर-करके श्रेष्ठकवि **गिरिधर** भी अपनी वाणी का उद्‌गार प्रस्तुत कर रहा है।

सन्दर्भश्लोकः

इत्थं सीताचरितभरिते गीतसीताभिरामे
लोकेष्टानां ध्वनितवचसां गीतरामायणे च।
सङ्घैर्बद्धे सुरगिरिमहाकाव्य एतर्हि दिव्ये
जीयान्नित्यं गिधरगिरा बालकाण्डं सुगीतम्।।१।।

भौमी- इस प्रकार **गिरिधर** कवि की वाणी द्वारा संस्कृत में गाये हुये सीताजी के चरित्र से ओतप्रोत गीतसीताभिराम संस्कृत महाकाव्य 'गीतरामायण' जो कि प्रायशः भारत की आँचलिक लोक-ध्वनियों में बद्ध है बालकाण्ड निरन्तर विजयी रहे।

इति
श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरमहाकविजगद्गुरुरामानन्दाचार्यस्वामिरामभद्राचार्यगिरिधरकविप्रणीते गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये बालकाण्डे गीतप्रत्युद्गमोत्सवो नामैकादशः सर्गः।

।।बालकाण्डं सम्पूर्णम् ।।

इस प्रकार श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर महाकवि जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य गिरिधरकवि द्वारा विरचित गीतरामायण 'गीतसीताभिराम' नामक संस्कृत गीतमहाकाव्य के बालकाण्ड में गीत सीताप्रत्युद्गम नामक एकादश सर्ग सम्पन्न हुआ और बालकाण्ड भी सम्पूर्ण हुआ।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

।।श्रीः।।
।।नमो राघवाय।।
।।श्रीमद्राघवो विजयते। श्रीसीतारामौ विजयेते।।

अथ अयोध्याकाण्डम्

गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये

अयोध्याकाण्डे

गीतनवदम्पतिविहारो नाम

प्रथमः सर्गः

मङ्गलाचरणम्

राजन् राजीवनेत्रः कनकमणिमये मन्दिरेऽमन्दशौर्यः
सूर्येन्द्वग्न्यक्षिवर्ति त्रिपुरहुतभुजा नित्यनीराजिताङ्घ्रिः।
विभ्राणः प्रीयमाणः शुभमवनिजया काण्डकोदण्डतूणी
रामो नः पूर्णकामो नववनदरुची रातु सीताभिरामः।।१।।

भौमी- अब कवि अयोध्याकाण्ड का मंगलाचरण करते हुये श्रीराम से शुभ की याचना कर रहे हैं। स्वर्ण से निर्मित एवं मणि से जटित कनक भवन में भूमिपुत्री सीताजी के साथ विराजमान, लालकमल के समान नेत्र वाले, अत्यन्त पराक्रमी, सूर्य, चन्द्र और अग्नि, धूप-वर्तिका से युक्त नेत्र वाले, त्रिपुरासुर को भस्म करने के लिये अग्निस्वरूप शिवजी के द्वारा जिनके चरणों की नित्य नीराजना की गई है, ऐसे बाण-धनुष तथा तरकश धारण किये हुए, अत्यन्त प्रसन्न, नवीन मेघ के समान कान्ति वाले, सीताजी को आनंदित कर रहे पूर्ण काम भगवान राम हमें कल्याण प्रदान करें।

सन्दर्भश्लोकः

वसन्ते वासन्ते स्वरतिरतिकान्ते मुखरिते
वयोव्राते वाते वहति मलयामोदमधुरे।
सरः कन्याकुञ्जे मदि मधुपपुञ्जे रघुवरं
प्रियाजुष्टं जुष्टं जगुरिदमभीष्टं सुवदनाः।।१।।

भौमी- बसन्त ऋतु में जब अपनों से प्रेम करने वाला रतिपति कामदेव वसन्त के मित्र की भूमिका निभा रहा था, पक्षी-समूह मुखरित हो रहे थे, मलय के सुगन्ध से मधुर वायु चल रहा था उसी समय मतवाले

भौरों के समूह से युक्त सरयू के तट पर स्थित निभृत निकुंज में प्राण प्रियतमा सीताजी के सहित विराजमान, अतिप्रसन्न रघुश्रेष्ठ श्रीराम को सम्बोधित करके सुन्दर मुखवाली सीताजी की सखियाँ यह अभीष्ट गीत गाईं।

गीत संख्या-१

विभाव्यो भव्यः सीतावरः श्रीरामः।।
कोटिकोटिकन्दर्पदर्पहरहरहृल्ललितललामः ।
मुनिजननमनीयः कमनीयः कमनकदर्थितकामः।।१।।
नवराजीवविमलदललोचनमोचनभवभयवामः ।
जाह्नविजनकचरणसरसिजरजसार्चितमुनिभवभामः।।२।।
सीताधिष्ठितवामविभागो गौरीवराभिरामः ।
करतलकल्पितकार्मुकबाणो मोदावहपरिणामः।।३।।
तरुणारुणसारथिकरवसनो नीलजलधरश्यामः।
मुनिमानसमानसकलहंसो गिरिधरकृतप्रणामः।।४।।

भौमी- हमें अत्यन्त भव्य सीताजी के वर श्रीराम की भावना करनी चाहिये। जो कोटि-कोटि कामदेवों के अहंकार को नष्ट करने वाले तथा शिवजी के हृदय के ललितरत्न हैं। जो मुनिजनों के नमन और कामना के विषय हैं। जिन्होंने अपनी सुन्दरता से कामदेव को भी अपमानित किया है। जो नवीन कमलदल के समान नेत्र तथा संसार के दुष्ट-भय को नष्ट करने वाले हैं और जो गंगाजी के उत्पत्ति स्थान, श्रीचरण के धूलिपराग से मुनिपत्नी अहल्या का सम्मान बढ़ा रहे हैं। सीताजी जिनके वामभाग में विराजमान हैं और जो गौरीपति शिवजी को आनन्द देते हैं, जिनके कर- कमल में धनुष-बाण सुशोभित हैं और जिनका परिणाम संसार के लिए मोदावह अर्थात् प्रसन्नताओं से भरा पड़ा है। जो तरुण अर्थात् नवीन, अरुण सारथी अर्थात् सूर्य के समान पीत वस्त्र धारण करते हैं और जो नीले बादल के समान श्यामल हैं और जो मुनियों के मनरूप मानस सरोवर के सुन्दर हंस हैं और जिनको कवि **गिरिधर** ने प्रणाम किया है ऐसे प्रभु श्रीराम निरन्तर हमारे विचारों के विषय बने रहें।

गीत संख्या-२

विहरति जितरतिपतिरिहकुञ्जे।
विपुलबकुलकुलकुमुदकदम्बितमुखरितमधुकरपुञ्जे।।१।।
कलरवकलितकाकलीकूजितपूजितसरससमीरे ।
मलयनिलयपरिमलपरिरम्भितशिशिरितसरयूनीरे।।२।।
गापितकिन्नरवधूवरूथे नर्तितनटीसहस्त्रे।
वादितविबुधदुन्दुभीनिकरे मङ्गलमयचतुरस्त्रे।।३।।
नीलकण्ठकलकण्ठकण्ठरवकुण्ठितमनोगभीरे ।
हरिभवभवविशिखार्पितविग्रहसरिन्मनोहरतीरे ।।४।।

सैरध्वजीनयनचातकजलधरो विजितशतमारः ।
कविगिरिधरमतिनवनलिनीरविरविकुलरविः कुमारः।।५।।

भौमी- अनेक बकुल वृक्ष तथा कुमुदों के समूह पर जहाँ भ्रमर गुंजार कर रहे हैं ऐसे निभृत निकुंज में काम विजेता भगवान प्रभु श्रीराम विहार कर रहे हैं। जहाँ सुन्दर स्वर वाली कोकिला के वाणी की कूक और जहाँ सम्माननीय रसमय वायु बह रहा है। जहाँ मलयाचल के सुगन्धी से समन्वित शीतल सरयू जल उपलब्ध है, ऐसे निभृत निकुंज में भगवान श्रीराम विहार कर रहे हैं। जहाँ किन्नरों की बधुओं के समूहों द्वारा गीत गाने की प्रेरणा दी जा रही है जहाँ सहस्रों नृत्यांगनाएँ नृत्य कर रही हैं जहाँ देवता दुन्दुभी बजा रहे हैं जहाँ समग्र वातावरण मंगलमय है ऐसे निभृत निकुंज में श्रीराम विहार कर रहे हैं। जहाँ मयूर और कोयल के कण्ठ से निर्झरित स्वर द्वारा साधकों का गम्भीर मन भी कुंठित हो रहा है। जहाँ भगवान विष्णु के पुत्र काम ने भी प्रभु के चरणों में अपने बाणों को समर्पित करके विग्रह समाप्त कर दिया है ऐसे मनोहारी सरयू तट पर निर्मित निकुंज में प्रभु विहार कर रहे हैं। सीरध्वज जनक की राजपुत्री सैरध्वजी सीताजी के नेत्र चातकों के लिए नवीन मेघस्वरूप अनेक कामों के विजेता कवि **गिरिधर** की बुद्धि रूप कमलिनी को विकसित करने के लिये सूर्यस्वरूप, सूर्यकुल के सूर्य कुमार अर्थात् कामदेव को भी कुत्सित करने वाले श्रीराम निभृत निकुंज में विहार कर रहे हैं।

विशेष- यह गीत-राग-शुद्ध कल्याण ताल त्रिताल में निबद्ध है।

गीत संख्या-३

रमारामो रमते रामः सततसीताहृदयारामः।।
सुहृदसमसायक ऋतुराजे मधुपपिकगायकसुसमाजे।
रसं रास्यन् रससंराजे वलितवरवामवामवामः
सततसीताहृदयारामः।।१।।
मलयरसलसति वाति वाते सुरसनवपल्लवभाभाते।
निकुञ्जे कुसुममये याते प्रसीदन्प्रभुःपूर्णकामः
सततसीताहृदयारामः।।२।।
प्रथितपार्थिवीपरिष्वङ्गो विहितविद्युद्घनमदभङ्गो।
महितमधुमाधवरसरङ्गो द्युतिविजितशतशतरतिकामः
सततसीताहृदयारामः।।३।।
मधुमथनलोचनजातीरे सनाथितसुधासदृशनीरे।
मिहिरकररञ्जनवानीरे सुकविगिरिधरसुदृगभिरामः
सततसीताहृदयारामः।।४।।

भौमी- निरन्तर सीताजी के हृदय को उद्यान बनाने वाले एवं अपनी शक्ति सीताजी को भी रमाने वाले प्रभु राम आज स्वयं रम रहे हैं। जहाँ पंचबाण काम ही मित्र है, ऐसे वसन्त के वातावरण में तथा भ्रमर और कोकिला जैसे कुशल गायकों के समाज की उपस्थिति में रस के सम्राट शृंगार को भी आनन्द देते हुये अपने

वामांग में सुन्दरी धर्म-पत्नी सीताजी से समालिंगित श्रीराम आज रम रहे हैं। मलय रस से सुशोभित वायु के धीरे-धीरे चलते समय आम्र के नवीन पल्लवों की प्रभा से वन प्रदेश के प्रकाशित हो जाने पर और निभृत निकुंज के पुष्पमय हो जाने पर प्रसन्न हुये पूर्णकाम श्रीराम सीताजी के साथ विहार करने का उपक्रम कर रहे हैं। पृथ्वीकन्या सीताजी का समाश्लेष जिनके लिये प्रसिद्ध उपलब्धि है जिन्होंने इस परिष्वङ्ग से बिजली और बादल के मद को नष्ट किया है और जिन्होंने वसन्त की मधु और माधव (चैत्र और वैशाख) की रसरंग भूमि को सम्मानित किया है ऐसे अपनी कान्ति से करोड़ों रतिपति काम को जीतने वाले प्रभु सरयू तट के निभृत निकुंज में रम रहे हैं। अमृतमय जल से सनाथित और सूर्य की किरणों को भी सुशोभित करने वाली वेत्र लता से युक्त ऐसी मधुमथन अर्थात् मधु के शत्रु नारायण के नेत्र से उत्पन्न सरयू नदी के तट पर श्रेष्ठ कवि **गिरिधर** के विशिष्ट नेत्रों को आनंद देने वाले श्रीराम निभृत निकुंज में विहार कर रहे हैं।

सन्दर्भश्लोकः

धम्मिल्लं धरणीभुवः सुकुसुमैः प्रोल्लासयन् भासयन्
भौमीभव्यललाटपट्टसचिवं सिन्दूरविन्दूं विदन्।
विद्यां रासरहस्यकौशलकलां सीतामुखाम्भोरुहा
मोदं घ्राणपथं नयन् नतनरो रामोऽवतात् सज्जनान्।।१।।

भौमी- सुन्दर पुष्पों से पृथ्वी कन्या सीताजी का जूड़ा बनाते हुए तथा सीताजी के भव्य मस्तकफलक के मित्र सिन्दूर बिन्दुओं को सुशोभित करते हुए और सीताजी से ही रास रहस्य की कौशल-कला पूर्ण विद्या को प्राप्त करते हुये अथवा संज्ञान में लाते हुये और सीताजी की मुखकमल की सुगन्ध सूँघते हुये अलौकिक सुख का अनुभव करते हुये प्रभु श्रीराम सन्तों की रक्षा करें।

गीत संख्या-४

विहरति हरिः सहितो निकुञ्जे सीतया सीतावरः।
छविविजितशतधाराधरः सुभगः सुखीमधुराधरः।।
शतकोटिकाममनोहरः सुमनोहरः सुमनोहरः।
विश्वम्भरो विश्वम्भरातनयापयोधरस्त्रग्धरः।।
दयिताधराप्तसुधाधरो मुखकान्तिलुब्धसुधाधरः।।१।।
काञ्चनकिरीटविभाकरः कुण्डलकपोलकलाकरः।
रदकान्तिजितकुन्दाकरः स्मितविजितशततुहिनाकरः।।
भूषणविमदकुसुमाकरः श्रितसकलसौम्यगुणाकरः।।२।।
श्यामोऽभिरामः श्रीवरः श्रीभास्वरः सीतेश्वरः।
नवनयननीरजजित्वरः सज्जनमनःसु समित्वरः।।
पदकमलमङ्गलसत्वरः करुणोऽगदोऽगदगत्वरः।।३।।
धन्वी स्वधर्मधुरन्धरः प्रांशुः प्रवीरपुरन्दरः।

नवनीलजलधरसुन्दरः संसारसागरमन्दरः।।
जगतीधरः श्रुतिधीधरः कलगीतगापितगिरिधरः।।४।।

भौमी- अपनी छवि से अनेक मेघों को जीतने वाले सुन्दर, नित्य सुख स्वरूप, मधुर अधर वाले सीता वर श्रीराम निभृत निकुंज में विहार कर रहे हैं। करोड़ों कामदेवों के मनों को हरने वाले सुमनोहर अर्थात् सुन्दर मनों को वश में करने वाले, विश्व का भरण–पोषण करने वाले और विश्वम्भरा पृथ्वी की पुत्री सीताजी के वक्षोरुह पर माल्यार्पण करने वाले और प्रियतमा सीताजी के अधर से प्राप्त प्रेमामृत से युक्त अधर वाले, अपनी मुख कान्ति पर चन्द्रमा को भी लुब्ध करने वाले प्रभु श्रीराम निकुंज में विहार कर रहे हैं। स्वर्ण मुकुट रूप सूर्य को धारण करने वाले और कपोल लम्बी कुण्डलों की कला से युक्त और दन्तावली की कान्ति से कुन्द समूहों को जीतने वाले और मुस्कान से करोड़ों चन्द्रमाओं को जीतने वाले प्रभु निकुंज में विहार कर रहे हैं और अपने आभूषणों से श्रीराम बसन्त को भी मदरहित कर रहे हैं तथा प्रभु सम्पूर्ण सौम्य गुणों के भाण्डागार हैं। श्यामल शरीर सभी को आनन्दित करने वाले, श्रीजी के प्राण वल्लभ, श्री से सुशोभित सीतापति और अपने नेत्र से कमल को जीतने वाले, सज्जनों के मन में शीघ्र प्रवेश करने वाले और चरण कमलों से मंगल का विधान करने वाले, करुण, अरोग और आतुरों के पास शीघ्र पधारने वाले श्रीराम निभृत निकुंज में विहार कर रहे हैं। श्रेष्ठ धनुर्धर अपने धर्म की धुरी को धारण करने वाले, विशाल व्यक्तित्व वाले, वीरों में इन्द्र के समान, नवीन मेघ के समान सुन्दर, संसार सागर के लिए मन्दराचल स्वरूप, संसार को धारण करने वाले, वैदिक बुद्धि के आश्रय एवं **गिरिधर** कवि को भी गीत गाने की प्रेरणा देने वाले श्रीराम निकुंज में विहार कर रहे हैं।

गीत संख्या-५

सरससमीरे सरयूतीरे विलसति विपिनविहारी।।
सीताननसरसीरुहमधुपः शतमन्मथमदहारी।
विहरति रघुपतिरिहकुञ्जे विगुञ्जन् मधुरमधुपपुञ्जे।।१।।
यमुनाजलदूर्वादलशिखिगलश्यामलनवलशरीरः।
शतनवनलिननमितमुनिधीरो धीरो रघुकुलवीरः।।२।।
मनसिजमधुकरमदहररुचिकरमेचककुञ्चितकेशः।
पुरटमुकुटमकराकृतमञ्जुलकुण्डलविजितविशेषः।।३।।
दाडिमदशनतुहिनकरमदहरहरहरसुन्दरहासः।
अरुणाधरनवकेशरिकन्धरविधुविधुविजितविलासः।।४।।
मधुरिपुसुतकरिकरकरसरसिजशरवरसुरुचिरचापः।
शिशुदिनकरकरवसनमनोहरसुमधुरकेलिकलापः।।५।।
पश्यति दिशि दिशि पद्मदलाक्षःसैरध्वजीं विनीतम्।
निर्विकारहृदये सन्ध्यायत गायत गिरिधरगीतम्।।६।।

भौमी- सुन्दर वायु से युक्त सरयू तट पर विपिनविहारी श्रीराम सुशोभित हो रहे हैं। श्रीसीताजी के

मुखकमल के भ्रमर अनेक कामदेवों के मन को हरने वाले रघुकुल के पति श्रीराम भ्रमर-पुंजों के गुंजार से युक्त कुंज में विहार कर रहे हैं। यमुना जल, दूर्वादल और मोर के कंठ के समान श्यामल शरीर वाले अपने कमल चरणों में मुनियों और धीरों को नमित किये हुये बुद्धि के प्रेरक रघुकुल के वीर श्रीराम निकुंज में विहार कर रहे हैं। कामदेव के भ्रमरों के मद को हरने वाले रुचिवर्धक काले घुँघराले केशों से युक्त, स्वर्णमुकुट एवं मकराकृत कुण्डल की मधुरता से मत्स्यावतार भगवान को भी जीतने वाले श्रीराम निकुंज में विहार कर रहे हैं। अनार के समान दाँत और चन्द्रमा के मद को हरने वाला और हर हर अर्थात् शिव जी को भी आकर्षित करने वाले शुक्ल वर्ण विष्णु के समान सुन्दर मुस्कान से युक्त लाल अधर बाल सिंह के समान स्कन्ध, चंद्रमा और विधु अर्थात् विष्णु को भी अपने विलास वैभव से जीतने वाले प्रभु श्रीराम निकुंज में विहार कर रहे हैं। मधु दानव के शत्रु विष्णु के पुत्र कामदेव को हाथी के सूँड के समान सुन्दर कर कमल में धनुष बाण धारण किये हुये, बालसूर्य के किरणों के समान सुन्दर पीताम्बर तथा अत्यन्त मधुर रसकेलि वाले प्रभु निकुंज में विहार कर रहे हैं। प्रत्येक दिशा में विनम्रभाव से और चितवन की शिक्षण कला से भगवान श्रीराम जनकतनया सीताजी को निहार रहे हैं। इस लीला को तुम सभी अध्येता और श्रोताओं अपने विकारशून्य हृदय में सम्यक्रूपेण ध्यान करो और **गिरिधर** कवि द्वारा रचित गीतरामायण गाओ।

सन्दर्भश्लोकः

कुसुमिते कुसुमाकरसङ्गमे, विलसिते विपिने विहगैर्वृते।
जनकजां वनितां वनितानतां, रहसि राघव आह हसन् हरिः।।१।।

भौमी- वसन्त के आगमन से कुसुमित सब प्रकार से सुशोभित पक्षियों से घिरे हुये, ऐसे प्रमोदवन में ऐकान्तिक निभृत निकुंज में उपस्थित रूढ़ यौवना, अत्यन्त अनुरागवती, विनम्र जनकनन्दिनी सीताजी से, रघुकुल में श्रीराम रूप से प्रकट श्रीहरि ने हँसते हुये इस प्रकार कहा।

गीत संख्या-६

अद्य देवि विपिने च रहसि रंस्यावहे।।
हरिसूनुसूनुसुतापुलिने नलिननयने।
निभृतनिकुञ्जनिलये च सङ्गंस्यावहे।।१।।
अन्योन्यनिबद्धबाहुलतौ नवभावरतौ।
मुदितौ मुदैव सुरोचिषौ सुरंस्यावहे।।२।।
परस्परं चन्द्रमसौ परस्परं चकोरकौ।
किशोरकौ परस्परं भिदं नो मंस्यावहे।।३।।
परमपावनप्रेममन्दाकिनीनीरमध्ये।
धीरावपिससुखं नितरां निमंक्ष्यावहे।।४।।
भावुकहृदयनवनिलयात्कदापि नैव।
क्वचिदपि च दम्पती दूरं नंक्ष्यावहे।।५।।

अयोध्योपवने नवयौवने निधुवने वै।
विविधा रहस्यरासकेलीरातंस्यावहे।।६।।
कविगिरिधरगिरोनित्यमाविला अपीमा।
निजगुणसेविनि क्षमया संक्षंस्यावहे।।७।।

भौमी- हे देवी! आज इस प्रमोदवन में हम दोनों एकांत में रम जायेंगे। हे कमलनयनी जानकी जी! विष्णु के पुत्र ब्रह्माजी के अष्टम पुत्र ब्रह्मर्षि वसिष्ठजी की पुत्री सरयू के तट पर निभृत निकुंज भवन में हम मिलेंगे। सुन्दर प्रकाश वाले हम दोनों नवीन भाव से सम्पन्न होकर एक दूसरे को गल-बहियाँ डालकर शोभन प्रकार से रमेंगे। हम दोनों परस्पर चंद्रमा और परस्पर चकोर भी हैं अर्थात् जब तुम चंद्रमा तब मैं चकोर और जब मैं चन्द्रमा तब तुम चकोरी। इस प्रकार हम किशोर-दम्पती परस्पर में भेद की कल्पना भी नहीं करेंगे। हम दोनों धीर होकर भी परमपावन दाम्पत्य-प्रेम की मंदाकिनी में सुखपूर्वक बहुत गोते लगायेंगे। हम ब्रह्म-दम्पती भावुकों के हृदयरूप नवीन भवन से कभी भी, कहीं भी दूर नहीं जायेंगे-नहीं जायेंगे। अयोध्या के उपवन में नवीन यौवन सम्पन्न निधुवन में हम दोनों अनेक रहस्यमयी रासकेलियों का विस्तार करेंगे। इस प्रकार हम दोनों के गुणों का निरन्तर सेवन करने वाली दूषित भी **गिरिधर** कवि की वाणियों को अपनी नित्य क्षमा से हम दोनों क्षमा करते रहेंगे। अर्थात् उसके किसी अनुचित प्रयोग पर ध्यान नहीं देंगे।

गीत संख्या-७

गायति कविः नचारी धुनौ-

विलसति विरुदविनीता वसिष्ठमुनिसुतातटे सीता।।
मलयसमीरणसरसदिगन्ते कुसुमिततरुवति वसति वसन्ते
शुभगुणचरितपरीता वसिष्ठमुनिसुतातटे सीता।।१।।
चम्पकगौरी जनककिशोरी रामचन्द्रमुखचन्द्रचकोरी
रघुवरचरणसुनीता वसिष्ठमुनिसुतातटे सीता।।२।।
विहरति हरिर्हरिणदृगभीता स्मरशरशरहरहरपरिणीता
रतिशतमदं पुनीता वसिष्ठमुनिसुतातटे सीता।।३।।
राघवभुजलताकृतवरहारा विरचितविविधविशुद्धविहारा
कविवरगिरिधरगीता वसिष्ठमुनिसुतातटे सीता।।४।।

भौमी- अब कवि नचारी धुन में गा रहे हैं। आज वसिष्ठतनया सरयू के तट पर दिव्य विरुदावली से प्रशिक्षित सीताजी सुशोभित हो रही हैं। सभी कल्याण गुण-गणों और निर्मल चरित्रों से सम्पन्न सीताजी उस वसन्त के निवासकाल में विराज रही हैं। जिसमें मलयाचल के वायु से सम्पूर्ण दिगंत रसमय हो गया है और वन के सभी वृक्ष पुष्पित और पल्लवित हो गये हैं। चम्पा के समान गौरवर्णा श्रीरामचन्द्र के मुखचन्द्र की चकोरी, रघुश्रेष्ठ श्रीराम के श्रीचरणों में पूर्णरूपेण समर्पित सीताजी सरयू तट पर सुशोभित हो रही हैं। कामदेव के बाण समूहों को सफल करने वाले शिवजी को भी हर अर्थात् हरण करके हनुमान रूप में अपने पास बुला लेने वाले प्रभु श्रीराम की पाणिगृहीता-पत्नी मृगनयनी, पवित्र आचरणों वाली सीताजी प्रमोदवन में प्रभु के

साथ विहार कर रही हैं और निर्भीकता से करोड़ों–रतियों का अहंकार हर रही हैं। श्री राघव की भुजा लता को गले का हार बनाकर गल–बहियाँ डाली हुईं, अनेक प्रकार के विहारों की रचना करती हुई, **गिरिधर** कवि के द्वारा गाई गई सीताजी सरयू तट पर शोभायमान हैं।

गीत संख्या–८

विहरति हरिरिह सरयूतीरे कोमलकुञ्जकुटीरे हे।।
मलयनिलयमहमहितदिगन्ते कुसुमितवनवति वसति वसन्ते
मदिरयति जगति सति रतिकान्ते सुरभितशिशिरसुनीरे हे।।१।।
सीतासङ्गे विलसदनङ्गे रतिरसरङ्गे तरलतरङ्गे
प्रणयपयोनिधिभरान्तरङ्गे रञ्जितरसरणधीरे हे।।२।।
दिशि दिशि दिशति समिति सन्देशं निदिशति निभृतनिचोलनिदेशं
मनसिजनुषि जनजनितावेषं वलयितवरवानीरे हे।।३।।
वल्गितवयसि वयसि रससारे विहितविविधविधविमलविहारे
कलरुति मरुति वितरदुपहारे गापितगिरिधरकीरे हे।।४।।

भौमी– कवि स्वयं श्रीसीतारामजी का विहार वर्णन करते हुये गा रहे हैं। सरयू के तट पर विराजमान कोमल कुंज कुटीर में श्रीहरि विहार कर रहे हैं। मलयानिल के महोत्सव से सम्पूर्ण दिगन्त में सम्मानित हो रहा है। वनों को पुष्पों से युक्त करने वाला वसन्त विराजमान हो रहा है और रतिपति काम सम्पूर्ण जगत को उन्मत्त बना रहा है। ऐसे वातावरण में सुगन्धित सरयू जल से सम्पन्न कुंज कुटीर में श्रीराम विहार कर रहे हैं। अलौकिक काम से युक्त, तरलित तरंगों वाले, प्रेमसागर के प्रवाह से जहाँ अन्तरंग पूर्ण हो चुका है ऐसी विशुद्ध शृंगार की रंगभूमि पर उज्ज्वल रस रूप योद्धा का भी मनोरंजन करने वाले कुंज–कुटीर में सीताजी के साथ भगवान राम विहार कर रहे हैं। प्रत्येक दिशा में युद्ध का संदेश दे रहे और अविरल वस्त्र का निर्देश कर रहे, प्राणियों में भावनात्मक आवेश उत्पन्न कर रहे, काम की उपस्थिति में, वेत्र लता के वलयाकार मण्डप से युक्त कुंज–कुटीर में श्रीराम विहार कर रहे हैं। जहाँ पक्षी उन्मत्त होकर कूँजन कर रहे हैं। जहाँ रससार सर्वस्व यौवन अपने उत्कर्ष पर है, जहाँ प्रभु के द्वारा अनेक प्रकार के निर्मल विहार सम्पन्न किये गये हैं, जहाँ सुन्दर मर्मर स्वर करता हुआ वायु आनन्द का उपहार दे रहा है, जहाँ **गिरिधर** कवि और तोते सुन्दर गीत गा रहे हैं ऐसे कुंज कुटीर में सीताभिराम श्रीराम विहार कर रहे हैं।

विशेष– यह गीत उत्तरप्रदेश की जौनपुरी कजली की धुन में निबद्ध है– इसका बोल है– 'झूला झूलत अवध बिहारी संग में जनककुमारी ना।'

सन्दर्भश्लोकः

अथोपतस्थे रघुराजदम्पती
रहस्यरस्योरसिकैकरञ्जनः ।
वसन्तवश्यो वशिनांकृतस्पृहो
नवानुभावो नवसङ्गमोत्सवः।।१।।

भौमी- इसके अनन्तर एकान्त में रसवर्धन करने वाला रसिकों को एकमात्र आनन्द देने वाला वसन्त ऋतु का वशवर्ती संयमियों के भी हृदय में स्पृहा उत्पन्न कर देने वाला नवीन प्रभाव से युक्त ऐसा नवविवाहित वर-वधू का नव समागम महोत्सव रघुराज दम्पती श्रीसीतारामजी की सेवा में उपस्थित हुआ।

गीत संख्या-९

त्रिताले निबद्धम्

श्रीसीतारघुवरौ विहरतः।।
सरससमीरे सरयूतीरे कुसुमितकोमलकुञ्जकुटीरे
शतरतिरतिपतिरुचिमनुहरतः ।।१।।
नवलदनङ्गतरङ्गितरङ्गौ रहसि रसेशरभसरससङ्गौ
क्षणमपि नैव रतिं परिहरतः।।२।।
उभौ विनिमयितचन्द्रचकोरौ एकशेषितौ रसिककिशोरौ
निरवधिनिरुपमसुखमुपहरतः ।।३।।
रतिपतिवसतिविमुग्धदिगन्ते दिशि दिशि विलसति सरसवसन्ते
कविवरगिरिधरशुचमपहरतः ।।४।।

भौमी- श्रीसीतारामजी विहार कर रहे हैं। रसीले वायु से युक्त पुष्पों से लदे हुये कोमल कुंज-कुटीरों से शोभित सरयू तट पर विहरते हुये नव-दम्पती, अनंतरति-कामों की शोभा का अनुसरण कर रहे हैं। युगल सरकार की मनोरंगभूमि नवीन हो रहे अलौकिक काम के तरंगों से तरंगित है। एकान्त में कुमार दम्पती रसनायक श्रृंगार के उद्वेग से उत्पन्न आनन्द में आसक्त हैं। एक क्षण भी वे एक दूसरे के स्नेह से अलग नहीं हो रहे हैं। दोनों ही चंद्रचकोर की भावना में क्षण-क्षण अदल-बदल कर रहे हैं। दोनों ही रसिक किशोर एकीकृत हो गये हैं और दोनों ही एक दूसरे को असीम उपमारहित सुख ही उपहार रूप में अर्पित कर रहे हैं। दिगन्तों को मत्त करने वाले, कामदेव के निवास करते रहने पर और सुन्दर वसन्त ऋतु के प्रत्येक दिशा में सुशोभित होते रहने पर युगल दम्पती श्रीसीतारामजी कविश्रेष्ठ **गिरिधर** के शोक का हरण कर रहे हैं।

विशेष- यह गीत त्रिताल १६ मात्रे में निबद्ध है।

गीत संख्या-१०

एकताले निबद्धम्

विहरति हरिरवनिजया समं सरयूतीरे।।
भ्रमरमधुरमुखरगुञ्जे पनसपरपलाशपुञ्जे।
कलितललितलघुनिकुञ्जे सुधासरसनीरे।।१।।
विकसितविदलदरविन्दे मधुमरन्दमदिमिलिन्दे।
मन्दमन्दमलयमदिरशिशिरसमसमीरे ।।२।।

कलरवकलरवरसालनवरसालभवप्रवाल-
रसपरङ्गरसदनङ्गमनोभवदधीरे ।।३।।
नन्दनवनपारिजातचारिवातवारिजात-
व्रततिवृन्दवलितललितबकुलकुलकुटीरे ।।४।।
दशरथसुकृताब्धिचन्द्रो रुचिसमुद्रो रामचन्द्रो
मुखरितगिरिधरमरालनवलकेकिकीरे ।।५।।

भौमी- पृथ्वीपुत्री सीताजी के साथ श्रीहरि भगवान राम सरयू तट पर विहार कर रहे हैं। सुन्दर भ्रमर गुंजार से युक्त, कटहल, श्रेष्ठ ढाक (टेसू) जैसे वृक्षों से सुशोभित सुन्दर छोटे-छोटे झुरमुटों से घिरे हुये, अमृत जैसे स्वादयुक्त जल से समन्वित श्रीसरयू तट पर श्रीहरि विहार कर रहे हैं। खिले और खिलते हुये कमलों से युक्त, मधुर मकरंद से भ्रमरों को मदयुक्त करने वाले मन्द-मन्द चल रहे मतवाले मलयानिल से शीतल समीरण वाले सरयू तट पर श्रीहरि विहार कर रहे हैं। सुन्दर स्वर वाली कोकिलाओं से युक्त आम के नये-नये पल्लवों से सुशोभित, शृंगार रस की रंगभूमि स्वरूप, दिव्य स्मरणात्मक काम को रसिक करने वाले और एक दूसरे से मिलने के लिए युगल सरकार के मन को भी व्याकुल कर देने वाले सरयू तट पर श्रीराम विहार कर रहे हैं। नन्दनवन के कमल, वायु के संचरण स्थल, कल्पवृक्ष पारिजात की, लताओं के समूह से आलिंगित और बकुल जैसे श्वेतवृक्षों से युक्त सुरम्य कुटीरों वाले सरयू तट पर श्रीराम विहार कर रहे हैं। जहाँ **गिरिधर** कवि राजहंस, नवीनमयूर और तोते मुखरित हो रहे हैं ऐसे श्रीसरयू तट पर दशरथजी के पुण्य, क्षीरसागर के चन्द्रमा, शोभा के महासागर, श्रीहरि भगवान रामचन्द्र, भूमिनन्दिनी सीताजी के साथ विहार कर रहे हैं।

विशेष- यह गीत एक ताल-१२ मात्रा के मध्य लय में निबद्ध है। इसे 'शंकरा' राग में गाना चाहिए।

गीत संख्या-११

विलसति शुचि सरयूतटे नवनिकुञ्जे रामः।।
वामभागकृतविभागभूरिभागकलितराग ।
शरदुडुपतिवदनवधूजितशतरतिकामः ।।१।।
सुविनतवनिताविनीतो विभूषणवसनपरीतो।
नखशिखशोभाप्रणीतो नीतलघुललामः।।२।।
सीताबाहुकलितकण्ठो विगतकुण्ठः कम्बुकण्ठ-
श्चारुचलाचलाधनुर्घनो यथा श्यामः।।३।।
कोटिमन्मथाभिरामः सदावाप्तसर्वकामः।
विगतशोकमनुजलोकलोचनाभिरामः ।।४।।
कामवैरिमनो रामो मैथिलीमनोऽभिरामो
रामोऽवतु सतः सुकविगिरिधरप्रणामः।।५।।

भौमी- पवित्र सरयू तट पर वर्तमान नवीन निभृत निकुंज में भगवान राम सुशोभित हो रहे हैं। प्रभु के

वामभाग में सुन्दर अवयवों वाली बड़भागिनी, प्रभु पर रागानुगा-भक्ति करने वाली, शरदचन्द्र- वदनी, नववधू सीताजी विराज रही हैं। इस युगल माधुरी से रति सहित करोड़ों कामों को जीतने वाले प्रभु निकुंज में सुशोभित हैं। अत्यन्त विनम्र, अनुरागवती पत्नी से युक्त, अलंकार और वस्त्रों से घिरे हुये, नख से शिखापर्यन्त शोभामय रत्नों को भी हल्का बनाने वाले श्रीराम नव-निकुंज में सुशोभित हैं। सीताजी की बाहुलता से जिनका कंठ सुशोभित है, जो कुंठा से रहित और शंख जैसे कंठ वाले हैं, ऐसे प्रभु बिजली और इन्द्रधनुष से युक्त नीले मेघ के समान नव निकुन्ज में सुशोभित हैं। करोड़ों कामदेवों के समान सुन्दर, सदा समस्त कामनाओं को प्राप्त किये हुये मनुष्य लोक के नेत्रों को आनन्द देने वाले शोकरहित श्रीराम नव-निकुंज में शोभा पा रहे हैं। कामशत्रु शंकरजी के मन को रमाने वाले, मैथिलीजी के हृदय को आनन्द देने वाले, कविश्रेष्ठ **गिरिधर** के प्रणाम के आश्रय श्रीराम सन्तों की रक्षा करें।

विशेष- इस गीत की चलन पूर्व के गीत की भाँति है।

गीत संख्या-१२

वसति वसन्ते मदिरदिगन्ते विहरति अवधविहारी।
सीतावदनवनजचुम्बनचणभ्रमराधर इहहारी।।
विलसति सरयूतटे श्रीरामः।
जनकसुताशम्पासमलङ्कृतसुखजलधरोऽभिरामः ।।१।।
पनसपलाशबकुलकुलकुटजकदम्बप्रियालरसाले ।
प्रसृमरमिहिररुचिरप्रवालनवसौरभतरुणतमाले ।।२।।
सरसरसरतिमरुतिमलयाञ्चति चलति चलदलेऽधीरे।
पतति पतत्रिपपत्रप्रतिमे पल्लवकुसुमकुटीरे।।३।।
अङ्कमनङ्कममूं मदिराक्षीं समधिरोप्य रघुवीरः।
रचयति रुचिरमुरोरुहयुगले पाटीरं रसधीरः।।४।।
क्षणमथ पश्यति वनिताननवनरुहमुज्झन्स्वनिमेषम्।
कलितसमाधिरनाधिरसंवृतनयनयुगं प्रोन्मेषम्।।५।।
प्रथमसमागम आगतया लज्जया किमपि नमितांसाम्।
उत्तम्भयन्स्तम्भयन् दयितां कलितकपोलोत्तंसाम्।।६।।
अवगुण्ठयन् लुण्ठयन् ब्रीडां विरचितविविधविनोदम्।
कविगिरिधरगिरमलममलयति कलयति कमप्यामोदम्।।७।।

भौमी- सम्पूर्ण दिगन्त को भावोन्मत्त करने वाले वसन्त के प्रकृति में निवास करते समय अर्थात् वसन्त ऋतु में सीताजी के मुखकमल के चुम्बन में निपुण भ्रमर जैसे अधर वाले काम के शत्रु शिवजी को भी आकर्षित करने वाले अवधबिहारी भगवान राम विहार कर रहे हैं। सीताजी रूप विद्युत से सुशोभित आनन्द के मेघस्वरूप चराचर को अभीष्ट रमण कराने वाले श्रीराम सरयू तट पर सुशोभित हो रहे हैं। कटहल, टेसू, बकुल समूह, श्रेष्ठ कुटज, कदम्ब, प्रियाल, आम्र के वृक्षों से युक्त, कोमल बाल सूर्य के समान सुन्दर पल्लव

वाले, नवीन सुगन्ध से युक्त नूतन तमाल से समलंकृत सरयू तट पर श्रीराम सुशोभित हो रहे हैं। मलय से सुशोभित वायु के सरसर स्वर के साथ धीरे-धीरे बहते रहने पर एवं धीर पीपल के पत्र-समूह के मलय वायु से हिलते रहने पर तथा गरुड़ देव के झड़ते हुये पंखे के समान पल्लव युक्त पुष्पों के कुटीर में श्रीराम सुशोभित हो रहे हैं। प्रेम से मदिर नत्र वाली सीताजी को निष्कलंक गोद में बिठाकर शृंगार रस में धीर रघुवीर श्रीराम सीताजी के दोनों वक्षों पर चन्दन की पाटीर रचना (चित्रावली) कर रहे हैं। एक क्षण प्रेम की समाधि में आकर परन्तु वासनारहित मन से नेत्रयुगल को खोलकर निर्निमेष होकर प्रभु सीताजी के मुखकमल को बड़ी भावुकता से निहारते हैं। प्रथम मिलन में उपस्थित लज्जा के कारण थोड़ा-सा स्कन्ध झुकायी हुई और कुण्डलों से कपोलों को स्पर्श कराती हुई प्रियतमा सीताजी को प्रेम से उठाकर स्थिर करते हुये श्रीराम सरयू तट पर सुशोभित हो रहे हैं। सीताजी का घूँघट उठाते हुये, उनका संकोच समाप्त करते हुये श्रीराम अनेक विनोद प्रस्तुत कर रहे हैं और एक अनिर्वचनीय रस की सुरभि प्रस्तुत करते हुये **गिरिधर** कवि की वाणी को भी अत्यन्त निर्मल बना रहे हैं।

गीत संख्या-१३

विहरति कोसलधाम्नि जनकसुतया रामः।
जितशतदिनकरधाम्नि विडम्बितशतकामः।।१।।
मलयसुरभिमहमहितसमीरे सततसनाथितसरयूनीरे।
कलिमलहरहरिनाम्नि भवितभौमीभामः।।२।।
मुखरितमधुकरमधुरकदम्बे कूजितकलकलरवनिकुरम्बे।
कलितकनकवरदाम्नि नवलकन्दश्यामः।।३।।
विमलगुणान् गायति गान्धर्वे चरणसरोरुहमर्चति शर्वे।
रघुवरपुरीललाम्नि दमितभवभयकामः।।४।।
दीपितमणिमयमङ्गलदीपे वियति विराजति निशामहीपे।
मुखरितगिरिधरसाम्नि वामदृग् वरवामः।।५।।

भौमी- करोड़ों सूर्यों के प्रकाश को जीतने वाले श्री कोसलधाम में कोटि-कोटि कामों को भी परिहास का पात्र बना रहे श्रीराम जनकनंदिनी सीताजी के साथ विहार कर रहे हैं। जहाँ मलय के महोत्सव से सम्मानित हो रहा है, सुगन्धित वायु, जो माता सरयू के जल से निरन्तर सनाथित है, जहाँ कलिमलहारी श्रीसीताराम नाम का संकीर्तन निरन्तर होता रहता है ऐसे श्रीअवधधाम में अपनी प्रियतमा भूमिकन्या सीताजी का सम्मान करते हुये श्रीराम विहार कर रहे हैं। जहाँ भ्रमर समूह मुखरित हो रहा है, जहाँ कोकिलाओं का समूह कुहू-कुहू करके गा रहा है, जहाँ स्वर्णमय बन्दनवार लगे हैं ऐसे श्रीअवधधाम में नवीन मेघश्याम श्रीराम विहार कर रहे हैं। जहाँ गन्धर्वों का समूह प्रभु के विमल गुण-गण गा रहा है, जहाँ स्वयं शिवजी प्रभु के चरणकमल की पूजा कर रहे हैं ऐसी प्रभु की सात पुरियों में रत्नभूत श्रीअयोध्या में भवभय और काम-वासना का दमन करने वाले प्रभु श्रीराम विहार कर रहे हैं। जहाँ मणिमय मंगलदीपक प्रकाशित हो रहे हैं और जहाँ आकाश में विराजमान चन्द्रमा स्वयं प्रान्तर को धवलित कर रहे हैं, जहां **गिरिधर** कवि के सामवेद सिद्धान्तानुकूल गीत मुखरित हो रहे हैं ऐसे श्रीअवधधाम में सुन्दर नेत्रों वाली श्रेष्ठ धर्मपत्नी सीताजी के साथ भगवान राम विहार कर रहे हैं।

विशेष- यह गीत बुन्देलखंड की एक लोकधुन के आधार पर निबद्ध है- इसका बोल है- विहरत सीताराम पुलिन वर सरयू के।।

गीत संख्या-१४

विलसति रामललाम सरससरयूतीरे
मुखरितमुनिमुखसाम सरससरयूतीरे।।
कोसलपुरपयोधिसंभूतं कौसल्याशुचिसुक्तिप्रसूतम्।
लषदजसुतसूत्राम सरससरयूतीरे।।१।।
अनघमनर्घ्यमजननतशीलं मरकतमूज्वलमुत्पलनीलं।
जानकीकण्ठसुदाम सरससरयूतीरे।।२।।
विरतविमुक्तभजनधनशोभं मनसिजमनसिजरिपुकृतलोभम्।
सकलविमलगुणधाम सरससरयूतीरे।।३।।
निरुपधिनिरवधिचरितपरीतं श्रुतिकरकविवरगिरिधरगीतम्।
सेवकसुरतरुनाम सरससरयूतीरे।।४।।

भौमी- सुन्दर सरयू तट पर श्रीराम रूपरत्न सुशोभित हो रहे हैं। जिन्हें देखकर मुनिजनों के मुख से सामवेद मुखरित हो रहा है। जो अयोध्यारूप क्षीरसागर में प्रकट हुये जिनका कौसल्यारूप पवित्र सुन्दर सीपी में आविर्भाव हुआ जिन्होंने अजनन्दन दशरथ रूप इन्द्र को विश्व में विख्यात कर दिया ऐसे रामरत्न की सरयू तट पर शोभा हो रही है। जो निष्पाप तथा बहुमूल्य हैं, जिन्हें विष्णु भी नमन करते हैं, जो मरकत के समान स्वच्छ और नीले कमल के समान श्याम हैं, जिन्हें जानकीजी ने अपने कण्ठ में हार के समान धारण किया ऐसे श्रीरामरत्न स्निग्ध सरयू तट पर विराज रहे हैं। विरक्त, विमुक्त और भगवद्‌भजन को धन मानने वाले अनुरक्त महानुभावों की जिनसे शोभा है, जिन पर काम और काम के शत्रु शिव इन दोनों का लोभ है, जो सभी निर्मल गुणों के धाम हैं ऐसे श्रीरामरत्न का श्रीसरयू तट पर विलास हो रहा है। निष्कपट निःसीम चरित्र से युक्त वेदमंत्र समूह और कविश्रेष्ठ **गिरिधर** के द्वारा गाये गये सेवकों के लिए कल्पवृक्ष स्वरूप श्रीरामरत्न प्रेमामृत पूर्ण सरयू तट पर विलसित हो रहे हैं।

गीत संख्या-१५

रामेन्दीवरमभितटि विलसति
हरगिरिशेखरसरस्सुतायां सरयूसरिति सुसुधायुतायाम्।
दिनकरकुलदिनकरमहमहसा महितं सहितं विभया विकसति।।१।।
भानुमतीमालिनीलालितं पितृवत्सलरसपयसि पालितम्।
अरिकरिमादकललितचरितपरिमलशालितं कदापि न विरसति।।२।।
नैनद् द्वेष्टि शरद्राकेशो वष्टि सदैतत् कुमुदकुलेशो।
मदिरचकोरयुगं प्रपीयते मधुरमरन्दमधिनिशंविहसति।।३।।

शिशिरितसीताप्रतपदुरोजं लसितभक्तिवरवधूशिरोजम्।
एतदीयगुणगणचरणात् क्षणमपि गिरिधरमधुकरो न निवसति।।४।।

भौमी- सरयू नदी के समीप श्रीरामरूप नीला कमल सुशोभित हो रहा है। शिवजी के पर्वत कैलाश के मस्तक के आभूषण स्वरूप मानस सरोवर की पुत्री अमृतमय जल से युक्त श्रीसरयू नदी के समीप सूर्यकुल के सूर्य दशरथजी के यज्ञोत्सव के विमल तेज से सम्मानित शोभायुक्त यह नीलाकमल विकसित हो रहा है। जो कौसल्यारूप मालिनी से दुलराया गया है तथा पिता दशरथ के वत्सलरूप जल में पाला गया है एवं जिसका ललित चरित्र रूप सुगन्ध रावण जैसे शत्रुरूप हाथियों को भी मतवाला बना देता है और जो कभी भी रसहीन होकर अशोभनीय नहीं लगता, ऐसा श्रीराम रूप नीलकमल सरयूजी के समीप विराजमान है। इस नीलकमल से शरद् चन्द्रमा भी द्वेष नहीं करता, प्रत्युत् कुमुदकुल के स्वामी चन्द्र सदैव इसे पाने की इच्छा करता ही रहता है और इसके मधुर मकरन्द को दो प्रकार के वुभुक्षु और मुमुक्षु चकोर सदैव पीते रहते हैं। यह रात में भी हँसता रहता है अर्थात् विकसित रहता है। इस नीले कमल से सीताजी के संतप्त वक्षोरुह युगल शीतल होते रहते हैं और यह भक्तिरूपिणी श्रेष्ठ वधू के जूड़ों को सुशोभित करता रहता है और इसके गुण-गणों के गान से एक क्षण के लिये भी **गिरिधर** कवि रूप भ्रमर विश्राम नहीं लेता।

विशेष- यह गीत तीन ताल सोलहमात्रा में बद्ध है। इसे राग-यमनकल्यण में मध्यलय एवं विलम्बित लय में भी गाया जा सकता है।

गीत संख्या-१६

विहरतः श्रीसीतारामौ हे सरयूचारुकूले
चपलाम्बुदगौरश्यामौ हे सरयूचारुकूले।।१।।
रसपतिपुञ्जे निकुञ्जे विलसतः परस्परं लपतो विकशतो विहरतः।
जितकोटिकोटिरतिकामौ हे सरयूचारुकूले।।२।।
अन्योन्यमर्पयतो मञ्जुलताम्बूलं अधरासवं धयतो धर्षितदुकूलम्।
रसरङ्गलब्धविश्रामौ हे सरयूचारुकूले।।३।।
सेव्यमानशीतलसपरिमलसमीरौ मोदमानौ माध्वीकामण्डितशरीरौ।
कविगिरिधरनयनाभिरामौ हे सरयूचारुकूले।।४।।

भौमी- श्रीसीतारामजी सरयूतटजी के सुंदर तट पर विहार कर रहे हैं। विद्युत और बादल के समान गौर-श्याम श्रीसीतारामजी सरयूजी के तट पर विहार कर रहे हैं। पुंजीभूत श्रृंगार रस से युक्त निभृत निकुंज में नव-दम्पती विलास कर रहे हैं, प्रसन्न हो रहे हैं, हास-परिहास कर रहे हैं। इन्होंने अपनी शोभा से करोड़ों-रतियों और करोड़ों रति-कामदेवों को जीत लिया है। दिव्य दम्पती करोड़ों-करोड़ों रस की लीला कर रहे हैं। अपनी बाहुलताओं से एक दूसरे के कंठ को बाँध रहे हैं अर्थात् गलबहियाँ डाल रहे हैं। आप्तकाम होकर भी अनेक-अनेक विनोद कर रहे हैं। एक दूसरे को पान की बीड़ा खिला रहे हैं और अन्योन्य का अधर सुधापान कर रहे हैं। रसरंग भूमि में विश्राम करते हुये सीतारामजी सरयू तट पर विहार कर रहे हैं। शीतल, मन्द, सुगन्ध समीर का सेवन करते हुये प्रेमरस की मदिरा से पूर्ण शरीर वाले **गिरिधर** कवि के नेत्रों के आनन्ददाता श्रीसीतारामजी सरयू तट पर विहार कर रहे हैं।

सन्दर्भश्लोकौ

विनोदमीलन्नयनाम्बुजाभ्यां
श्रीवत्सलक्ष्माभिनिरीक्ष्य भर्तुः।
आशङ्कमाना ललनां स्वतोऽन्यां
जगाम मानं मिथिलेशपुत्री।।१।।
संरम्भदष्टाधरपल्लवा सा
घ्नती भ्रुवेव प्रणयप्रकोपा।
विकीर्यहारं भुवि सन्निषण्णा
वाचं विषण्णा दयितं बभाषे।।२।।

भौमी– सहसा विनोद से आधेबन्द नेत्र कमलों द्वारा प्रभु श्रीराम के वक्ष पर श्रीवत्सलांच्छन देखकर अपने से अतिरिक्त प्रभु के हृदय में वर्तमान अन्य महिला की आशंका करती हुई जनकनन्दिनी सीताजी मान कर बैठीं अर्थात् रूठ गयीं। क्रोधावेश में सीताजी ने पल्लव जैसे अधर को चबा लिया और अपनी भौहों से प्रभु पर प्रहार करती हुई प्रणय–कोप से अपना हार फेंककर पृथ्वी पर बैठी हुई खिन्न सीताजी प्राणधन प्रभु श्रीराम से यह वाक्य बोलीं–

गीत संख्या–१७

राघव परिहर कैतवमेतम्।
तामभिगच्छ गगनगभीर या रमयतु रमानिकेतम्।१।।
मिथ्याख्यातमेकपत्नीव्रतमुज्झत इयं न लज्जा।
कोटिकोटिशतचाटुचटुलचुञ्चुना व्यधीयत सज्जा।।२।।
न श्यामलः पूर्वमेतावत् त्वं लोचनाभिरामः।
शङ्के त्वा नयनाञ्जनमञ्जुर्भासि समधिकं श्यामः।।३।।
शिथिलवसनभूषणो विराजसि त्वं दिनकरकुलकेतुः।
शङ्के त्वया समधिकमरंस्था गज इव सातितसेतुः।।४।।
शुच्यसि समुच्छ्वशिषि सीतांशुवदनभयवेपितदेहः।
संभ्रमलुलितचिकुरनिकुरम्बकदर्थितसुसलिलगेहः।।५।।
त्वया पीतसेधुःसुखसिन्धुः कुरुषे मुधावहित्थाम्।
गिरिधरहृदयनिलयमावादीस्तामनुसर हृदयस्थाम्।।६।।

भौमी– हे राघव! यह कपट छोड़ दीजिए। हे आकाश के समान गँभीर! अर्थात् मिथ्या शब्दाडंबर करने वाले! अब तो आप उसी महिला का अनुसरण कीजिये जो आप लक्ष्मीपति को रमा सके। झूठ–झूठ, प्रसिद्ध एक पत्नीव्रत छोड़ते हुये आपको लज्जा नहीं आयी? करोड़ों–करोड़ों चंचल चाटुकारी वाक्यों में कुशल

आपने यह व्यर्थ की सज्जा उपस्थित की। हे नेत्रों को आनन्द देने वाले रघुवर! पहले आप इतने श्यामल नहीं थे, जितने अब हैं। मुझे शंका ये है कि जिस महिला को आपने अपने हृदय में निवास दिया है उसी के नेत्रों के काजल से आप अधिक श्याम हो गये हैं। हे सूर्यकुल के केतु! आज आपके वस्त्र और आभूषण शिथिल हो गये हैं। मुझे शंका हो रही है कि मतवाले हाथी की भाँति प्रतिबन्ध रूप सेतु को तोड़कर आप मुझसे अन्य किसी महिला के साथ बहुत अधिक रमे। हे चन्द्रमुख! आपका शरीर भय से काँप रहा है। आप पसीने-पसीने हो रहे हैं, आप ऊँचा श्वाँस ले रहे हैं। उतावलेपन के कारण बादलों को भी लज्जित करने वाले आपके केश बिखर गये हैं। हे सुख के सागर! उस अन्य महिला द्वारा आपके अधरासव का पान किया गया है। फिर भी आप झूठी अवहित्था कर रहे हैं। अर्थात् मुझसे सत्य छिपा रहे हैं। हे **गिरिधर** कवि के हृदय में निवास करने वाले राघव! अब मुझसे मत बात कीजिये। जो आपके हृदय में स्थित है, उसी महिला के पास जाइये।

विशेष- यह गीत त्रिताल में निबद्ध है। इसे राग-शिवरंजनी तथा भैरवी में भी गाया जा सकता है।

गीत संख्या-१८

याहि रघुवर याहि रघुवर याहि श्रीवर याहि
तां रमय रमयत्प्रकाण्डहृदीश्वरी तव याहि।।
रघुवर याहि श्रीवर याहि।।१।।
धनं मे परिमुष्य भो त्वदुरसि विराजति का हि
चलेवाब्द इवातिसौ किल कली सर्षपिका हि।।
रघुवर याहि श्रीवर याहि।।२।।
क्षमाभूरपि न क्षमे तां मम सपत्नी सा हि।
सेव सीतां नवलनलिनीं तुदति तुहिननिशा हि।।
रघुवर याहि श्रीवर याहि।।३।।
मानिनीकुलमुकुटमणि मान्यास्मि पतिव्रता हि।
किमु सहे त्वान्या रमणकं त्वदभिचरणरता हि।।
रघुवर याहि श्रीवर याहि।।४।।
यदि शमिच्छसि तदामुष्यै सद्मदूरं राहि।
मैथिलीगृहहृदयविरुदं गिरिधरेश्वर पाहि।।
रघुवर याहि श्रीवर याहि।।५।।

भौमी- हे रघुवर! जाइये, जाइये। हे श्रीवर! जाइये, जाइये। हे रमण कराने वालों में श्रेष्ठ। श्रीराघव! अब तो आप उसी को रमाइये जो आपके हृदय की ईश्वरी है। अरे! मेरा धन लूटकर यह कौन बादल में बिजली की भाँति, तीसी के फूल में सरसों की कली के समान आपके हृदय में सुशोभित हो रही है? मैं क्षमा (पृथ्वी) की पुत्री होकर भी उसे नहीं क्षमा करूँगी। क्योंकि वह मेरी सौतन है। वह मुझे उसी प्रकार दुःखी कर रही है जिस प्रकार हेमन्तऋतु की रात्रि कमलिनी को दुःखी करती है। मैं मानिनियों की शिरोमणि महिलाओं की भी सम्मान्या पविव्रता हूँ। मैं अन्य महिला के साथ रमण करने वाले आपको कैसे सहन करूँ? क्योंकि मैं आपकी

सेवा में निरत रहती हूँ और आपका अभीष्ट चाहती हूँ। हे **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराघव यदि आप कल्याण चाहते हैं तो इसको अपने हृदय से दूर स्थान दीजिए और आपका मैथिली गृह-हृदयरूप जो विरुद है उसका पालन कीजिए।

विशेष- यह गीत रूपक ताल में निबद्ध है। इसे राग-गुर्जरी अथवा तोड़ी में गाना अधिक श्रेयस्कर है।

गीत संख्या-१९

सीता पुनर्गायति-

रघुवर वरविरुदं मा परिहर।।
हे हरहृदयसरोरुहमधुकर सरसिजचरणशरणभवभयहर।
त्रिभुवनमहितमेकपत्नीव्रतमभिनवजलदसुभगशुभमनुहर।।१।।
निखिलहेयपरिपन्थिगुणार्णव मा साधारणगुणान् समभिहर।
भूमिभारहर भौमीवेणीं विनैवान्यसीमन्तं संहर।।२।।
वक्षसि वहसि दहसि मम चेतो वामामस्यै विषं समुपहर।
सौरभपल्लवदधरसीधुना सुखसिन्धो मे व्यथां समपहर।।३।।
अलमनुनीय मामनघदयितां धीरोदात्तसुगुणान् समाहर।
गिरिधरहृदयनिकुञ्जे विहरन् स्वजनमनः सीतया सदाहर।।४।।

भौमी- सीता जी पुनः गा रही हैं-हे रघुवर! आप अपना श्रेष्ठ विरुद मत छोड़िये। हे शंकरजी के हृदय-कमल के भ्रमर! हे श्रीचरण कमल शरणागतों के भवभय हरने वाले! नीलमेघ के समान सुन्दर श्रीराघव! तीनों लोकों में ख्यात् कल्याणकारी! अपने एक पत्नीव्रत का अनुसरण कीजिये। हे समस्त हेयप्रत्यनीक गुणों के महासागर! आप इनसे जनसाधारण के गुण मत मिलाइये। हे भूमिभारहारी! अन्य जूड़ों के बिना ही मुझ सीता की वेणी गूँथिये और किसी की नहीं। इस ललना को आप अपने वक्ष में धारण कर रहे हैं और मेरा चित्त दुःखा रहे हैं। इसे दूर कीजिये। इसको विष दे दीजिये । आम्रपल्ल्व के समान अधर के आसव द्वारा मेरी व्यथा हर लीजिये। हे सुख-सिन्धो! तभी आपका नाम चरितार्थ होगा। हे निष्पाप! मेरा अनुनय करने से कोई लाभ नहीं, मैं तो अपकी प्रियतमा हूँ परन्तु आप अपने धीरोदात्त गुणों को प्रयोग में ले आयें। **गिरिधर** कवि के हृदय निकुंज में विहार करते हुये मुझ सीता के साथ सज्जनों के मन को हरें।

गीत संख्या-२०

रघुवर खलु छलयित्वा सीताम्।
जानेऽहं त्वत् क्रियाकलापं मा वञ्चय प्रतीताम्।।१।।
रतिरसरभसलुलितपटभूषणमृदितकुसुमकरलोलम्।
विघटितपीतनिचोलरदव्रणकल्पितकमलकपोलम्।।२।।
पीतसेधुनवपल्लवाधरं तिलकविलुण्ठितभालम्।
शंके तत्र भवन्तमिवार्चितलतं नवीनतमालम्।३।।

उपरतशकलकलापमुदञ्चित नयनयुगं सुश्रान्तम्।
गिरिधरहृदयकुटीरे मन्ये त्वामधुना विश्रान्तम्।।४।।

भौमी- हे रघुवर! अब मुझ सीता को मत छलें। मैं आपका क्रियाकलाप जानती हूँ। मुझ विश्वस्त-गृहिणी को मत ठगें। रमणरस के वेग से आपके वस्त्राभूषण तितर-बितर हो गये हैं और पुष्पों के समूह भी मसल उठे हैं और अस्त-व्यस्त हो गये हैं और आपका पीला उत्तरीय भी तितर-बितर हो गया है। आपके सुन्दर कपोलों पर दाँतों के व्रण दिख रहे हैं। आपके अधर-पल्लव का आसव किसी के द्वारा पिया गया है। आपके मस्तक का तिलक भी मिट गया है। मैं आपको उसी प्रकार देख रही हूँ जैसे सुन्दर तमाल लता से आलिंगित है। रसों के नायक, शृंगार के संग्राम से सनाथित, शरीर के श्रम से आप पसीने-पसीने हो चुके हैं। मुझे आशंका है कि निर्भीक उस महिला के साथ आप अनेक विहार सम्पन्न कर चुके हैं। सम्पूर्ण कलापों से विरत, थके हुये, खुले हुये दो नेत्रों वाले आपको मैं **गिरिधर** कवि के हृदयकुटीर में विश्राम किये हुये समझ रही हूँ।

विशेष- यह गीत राग-हमीर एवं त्रिताल में निबद्ध है।

सन्दर्भश्लोकौ

अथ प्रियां प्रियपरिवादवादिनीं रुषा स्फुरत् किसलयबन्धुराधराम्।
महीसुतामनुनयति स्म राघवो वरावरे ह्यनुनयचाटुचुञ्चुता।।१।।
समुन्नयन्नयननिसृष्टनीरजस्त्रजावलीप्रतिमसदश्रुशालिनीम् ।
विमार्जयन्मुखसरसीरुहं शनैः करोद्भवैर्भवभव आह भामिनीम्।।२।।

भौमी- इस प्रकार प्रियतम श्रीराम के प्रति मिथ्या आरोप से अपवादमय वचन करने वाली क्रोध से काँपते हुये अधरपल्लव से युक्त पृथ्वीनन्दिनी प्रियतमा सीताजी का श्रीराघव अनुनय करने लगे, क्योंकि वर की अनुनय, चाटुकारिता की कुशलता रसवृद्धि की दृष्टि से श्रेष्ठ होती है। भवभव अर्थात् शिवजी का भी कल्याण करने वाले भगवान राम नेत्र से बहती हुई कमलमाला जैसी अश्रुमुक्ता से युक्त प्राणप्रिया सीताजी को भूमि पर से उठाते हुये अपने करकमल की ऊँगुलियों से सीताजी का मुखकमल पोंछते हुये इस प्रकार बोले-

गीत संख्या-२१

मनस्विनि मैथिलि मयि प्रसीद।।
परिहर शङ्कां कलितकलङ्काम् परिसरकाङ्कां मृडितमृगाङ्काम्।
मा मा प्रहर कटाक्षशरैर्मां निकटे निजं निषीद।।१।।
सज्जय सुमुखि सरसशृङ्गारं लज्जय रतिमथ रचय विहारम् ।
मज्जय रमा कोटिमदसारं शोभाब्धौ परिषीद।।२।।
मा कुरु कोपं मिथ्यारोपं रमय रहसि मां कलिताटोपम्।
प्रणयिनि शमय विषमशरबाधां सस्मितमुखमासीद।।३।।
विहर मया सह शिशिरसमीरे गिरिधरमानसकुञ्जकुटीरे।
परमात्मानं कलितगुणं मां श्रुतिरिव समुपनिषीद।।४।।

भौमी- हे मनस्विनी मैथिली! मुझ पर प्रसन्न हो जाइये। कलंक से युक्त शंका छोड़ दीजिये और शिवजी को प्रसन्न करने वाली भक्ति का परिशरण कीजिये। मुझको कटाक्ष के बाणों से घायल मत कीजिये। मेरे निकट बैठिये। हे सुमुखि! सुन्दर शृंगार से सज्जित होइये। रति को भी लज्जित कीजिये। विहार की रचना कीजिये। अपने शोभा सागर में कोटि-कोटि लक्ष्मियों के मदसार-सर्वस्व को डुबो दीजिये, विराजिये। हे प्रणयिनी! मुझ पर कोप और मिथ्या-आरोप मत कीजिये। उत्साहित मुझ राम को एकान्त में रमण कराइये और मेरे मन की स्मरणात्मक कामबाधा को समाप्त कीजिए एवं मुस्कुराती हुई मेरे वामभाग में विराजिये। हे सीते! मुझ राम के साथ शीतल वायु से युक्त **गिरिधर** कवि के मनरूप कुंज कुटीर में विहार कीजिए। सम्पूर्ण गुणों से युक्त मुझ परमात्मा के पास उपनिषद् की भाँति सटकर बैठिए।

विशेष- यह गीत मध्यलय त्रिताल में बद्ध है। इसे जोग राग में गाना अधिक समुचित होगा।

गीत संख्या-२२

अद्य दृष्टं ते सुमुखि कुपिताननं सुखकारि।
प्रातररुणलसद्द्विरेफमिवाम्बुरुहमतिहारि ।।
पतत्पक्ष्मनयनयुगलमथ नवनलिनमिव भाति।
मिलन्मधुकरपवनचलितसुकोषमिव प्रतिभाति।।१।।
रोषभरविस्फुरितमधुररदच्छदं विचकास्ति।
शिशुमिहिरकरकलितसुबिम्बमिव प्रचकास्ति।।२।।
भ्रूविजृम्भं ससंरम्भकमेणिलोचनि भाति।
मदनधनुरपि यन्निरीक्ष्य निजं मदं विजहाति।।३।।
किमुत कविगिरिधरस्वामिनि मृषा रुषं तनोषि।
वृथा शङ्काशङ्कुभिर्वरकमलमलं दुनोषि।।४।।

भौमी- हे सुमुखि! अरुण और भ्रमर से सुशोभित प्रातःकालीन सुन्दर कमल के समान तुम्हारा सुखद मुख मैंने आज देखा। पलक गिरा रहे तुम्हारे दोनों नेत्र कमल के समान शोभित हो रहे हैं मानों वे कमल युगलभ्रमर से मिलकर वायु के द्वारा कम्पित हुये सुन्दर कोषयुक्त हैं। क्रोध के कारण कँपता हुआ तुम्हारा मधुर अधर बहुत सुन्दर लग रहा है जो बालसूर्य की किरणों से युक्त बिम्बाफल के समान प्रतीत हो रहा है। हे मृगनयनी! तुम्हारा क्रोधपूर्ण भौंहों का तानना भी बहुत सुन्दर लग रहा है। इसे देखकर कामदेव का धनुष भी अपना अहंकार छोड़ रहा है। हे **गिरिधर** कवि की स्वामिनी आप व्यर्थ का क्रोध क्यों कर रही हैं और अपने प्राणधन मुझ राम रूप कमल को व्यर्थ की आशंकारूपी कीलों से क्यों घायल कर रही हैं?

गीत संख्या-२३

न कुरु क्रोधं मुधाबोधं सुमुखि सीते प्रसन्ना स्याः।
विसृज रोषं सुसृज तोषं सुमुखि सीते प्रसन्ना स्याः।।

त्यजाशङ्कां मुधातङ्कां कलितभवभीतिमलपङ्काम्।
विभज दीने दयाकोषं विगतभीते प्रसन्ना स्याः।।१।।
अलं परितप्य तापघ्ने अलं परिलप्य मामग्ने।
समाव्रज देवि परितोषं सदा प्रीते प्रसन्ना स्याः।।२।।
सदा विश्वसिहि मयि रामे समाश्वसिहि प्रणतकामे।
परित्यज सन्मनःशोषं प्रणयनीते प्रसन्ना स्याः।।३।।
सदाऽहं ते सदा त्वं मे न भेदो ह्यावयोः परमे।
वितर गिरिधरमनसि पोषं निगमगीते प्रसन्ना स्याः।।४।।

भौमी- हे सुमुखि सीते! निराधार संज्ञान से युक्त क्रोध मत करो। प्रसन्न हो जाओ। रोष छोड़ दो। सन्तोष की सर्जना करो। प्रसन्न होओ। हे भयरहित सीते! झूठे आतंकवाली कल्पित भय के मल से युक्त आशंका छोड़ दो। मुझ दीन पर दया का कोष बाँट दो। प्रसन्न हो जाओ। हे ताप को नष्ट करने वाली! व्यर्थ का परिताप मत करो। हे अपने में लक्ष्मी को समाहित करने वाली! व्यर्थ का प्रलाप मत करो। हे देवी! हे प्रियतमे! अब परितोष को प्राप्त करो। प्रसन्न हो जाओ। हे प्रणय से प्राप्त की गई सीते! मुझ राम पर निरन्तर विश्वास करो। आश्वस्त हो जाओ। हे प्रणतों की कामना पूर्ण करने वाली! अपने मन को सुखाना छोड़ दो तथा प्रसन्न हो जाओ। वेदों द्वारा गान का विषय बनाई गई हे सीते! हे परमशक्ति! मैं सदैव तुम्हारा हूँ तुम सदैव मेरी हो। हम दोनों में कोई भेद नहीं है। अब गिरिधर कवि के मन में अनुग्रहरूप पोष प्रदान करो एवं प्रसन्न हो जाओ।

गीत संख्या-२४

भामिनि ते शङ्का निर्मूला।
गृहलक्ष्मि मा मा विषीद मयि प्रसीद भवानुकूला।।
मा प्रमाद्य सम्माद्य मदालसदृग् भव मा प्रतिकूला।
मा भूः मयि प्रतीपसुचरिता मिथ्या संशयशूला।।१।।
जानानापि सदा स्वानन्यां मम निरुपधिकां प्रीतिम्।
केन हेतुना कलयसि कमलविलोचनि मिथ्याभीतिम्।।२।।
नान्या गतिर्यथा मुनिसप्तेः काचित् स्वकप्रभातः।
यथा नास्ति गतिरथानवद्या काचित् विधोर्विभातः।।३।।
तथा नास्ति रामस्य गतिरहो सीतातः काप्यन्या।
रामो नित्यं त्वयास्म्यनन्यो रामेण त्वमनन्या।।४।।
सीतारामाभेदमविद्वान् विन्दति सततं कष्टम्।
लभते शं गिरिधराराध्ययोरैक्यं विदन्न नष्टम्।।५।।

भौमी- हे सुलक्षणे! आपकी शंका निर्मूल है। हे गृहलक्ष्मी! मन में दुःखी मत होओ, मुझ पर प्रसन्न हो जाओ और मुझ प्राणपति के लिए अनुकूल हो जाओ। हे प्रेममद से अलसाये नेत्र वाली सीते! मुझ पर प्रमाद

मत करो, प्रसन्न होओ। मेरे विषय में प्रतिकूल मत बनो और मेरे प्रति विरुद्ध विचार मत लाओ। तुम्हारा संशयात्मक कष्ट मिथ्या है। हे कमलनयनी! अपने प्रति मेरी अनन्य निष्कपट प्रीति जागती हुई भी तुम किस कारण से यह झूठा भय धारण कर रही हो? हे मुनियों द्वारा प्रशंसित सीते! जिस प्रकार सात घोड़ों वाले सूर्यनारायण की प्रभा से अतिरिक्त कोई गति नहीं है और जिस प्रकार चन्द्रमा की चन्द्रिका से अतिरिक्त कोई सत्ता नहीं है। उसी प्रकार मुझ राम की भी तुमसे अतिरिक्त कोई गति नहीं है। मैं राम तुमसे अनन्य हूँ, तुम सीता मुझसे अनन्य हो। इस प्रकार सीताराम का अभेद न जानता हुआ व्यक्ति कष्ट पाता है। **गिरिधर** कवि के आराध्य हम दोनों सीताराम का ऐक्य समझकर भक्त कभी न नष्ट होने वाला कल्याण प्राप्त कर लेता है।

गीत संख्या-२५

जहि जहि रोषमलीकं हे मा व्रज प्रतीपम्।
नहि नहि ब्रूहि व्यलीकं हे समागच्छ समीपम्।।
संहर चिकुरकरम्बं हे संहर निजरोषम्।
वितरममाप्यवलम्बं हे अनुहर परितोषम्।।१।।
निगडय बाहुव्रतत्या हे मामरसमरसालम्।
प्रकटय स्वर्लताललितं हे लास्यं तामालम्।।२।।
परिरभस्व मामनघं हे मा वितनु विलम्बम्।
संरभस्व मा निरघं हे कुरु सुखकादम्बम्।।३।।
भावय वरमकलङ्कं हे मां निर्मलमत्या।
गिरिधरहृदयनिकुञ्जे हे विहर मया पत्या।।४।।

भौमी- श्रीराम पुनः सीताजी से कहते हैं–हे सीते! आप व्यर्थ का रोष छोड़ दीजिए और विपरीत भाव को मत प्राप्त कीजिए और निराधार मत बोलिए मेरे समीप आइये। हे सीते! अपने बिखरे केशों को समेट लो और अपने क्रोध को भी, मुझे भी अवलम्बन दो और परितोष का अनुसरण करो। मुझ नीरस व्यक्ति को रसमय रीति से अपनी बाहुलता में बाँध लो। और कल्पलता से अलंकृत, तमाल वृक्ष का आनन्द प्रकट कर दो। मुझ निष्पाप को हृदय से लगा लो, विलम्ब मत करो। मुझ निर्दोष पर क्रोध मत करो और सुखसमूह का संचार करो। अपने निर्मल बुद्धि से मुझ निष्कलंक वर का सम्मान करो और **गिरिधर** कवि के हृदय निकुंज में मुझ प्राणपति राम के साथ विहार करो।

गीत संख्या-२६

सीते मिथ्या मानं परिहर।।
मयि विश्वसिहि समाश्वसिहि त्वमुदञ्चितकोपमिमं किल संहर।
भव सहिष्णुरथ हे क्षामेयि सपदि मुग्धा निसर्गमुपसंहर।।१।।
क्ष्मापय मा ग्लापय मामनघं दक्षे दाक्षिं मुदा समनुसर।
मुहुर्याचमानाय सुमुखि मे मधुराधरशुचिसुधां त्वमुपहर।।२।।

त्यज वैक्लवमकारणं सुभ्रूर्मन्मनसा निजमनः समभिहर।
गिरिधरहृदयनिभृतनिकुञ्ज इह मया रामचन्द्रेण सह विहर।।३।।

भौमी- हे सीते! यह मिथ्या मान छोड़ दो। मुझ पर विश्वास करो। आश्वस्त हो जाओ और अपने उठ रहे कोप को समेट लो। हे क्षमापुत्री! तुम सहिष्णु बनो। मुग्धानायिका के स्वभाव को छोड़ दो। मुझे क्षमा करो। कष्ट मत दो। हे चतुरे! चतुरता का अनुसरण करो। बार-बार याचना करते हुए मुझे अपने अधरामृत का उपहार दो। हे सुन्दर भौंहों वाली सीते! बिना कारण के विकलता छोड़ दो। अपने मन को मेरे मन के साथ मिला लो और **गिरिधर** कवि के हृदयरूप निभृत निकुंज में मुझ रामचन्द्र के साथ विहार करो।

गीत संख्या-२७

सत्यमेतद् ब्रुवे त्वां विना भूमिजे देववर्गोऽपि स्वर्गो न मे रोचते।
मन्मनो मन्दिरस्येष्टतमदेवते त्वां विना बन्धुवर्गो न मे रोचते।।१।।
त्वां विना सर्वमेतद्धि शून्यायितं सार्वभौमं त्रिलोकीसुखं वैभवम्।
त्वां विना विश्वमेतत्तमिस्त्रावृतं प्राज्य साम्राज्यसर्गो न मे रोचते।।२।।
न्यस्तनैजप्रभो भास्करोऽयं यथा अस्तज्योत्स्नो यथा निट्करोऽयं वृथा।
तद्विधोऽहं त्वया वर्जितो हे शुभे त्वां विनायं निसर्गो न मे रोचते।।३।।
आत्मना प्रोज्झितं वै शरीरं यथा माधुरीवर्जितं नीचनीरं यथा।
तद्वदेष त्वया त्याजितोऽहं प्रिये त्वां विनासौ नृसर्गो न मे रोचते।।४।।
पातु मां पापतो गिरिधरस्वामिनी रातु मे स्वां क्षमायाचिने भामिनी।
त्वां विनाऽहं निरर्थो गतोत्साहकः त्वां विनैषोपवर्गो न मे रोचते।।५।।

भौमी- श्रीराम कहते हैं- हे भूमिनन्दिनी! मैं यह सत्य कह रहा हूँ कि तुम्हारे बिना देववर्गों वाला स्वर्ग भी मुझे नहीं अच्छा लगता। हे मेरे मनमन्दिर की ईष्टदेवी! तुम्हारे बिना बन्धुवर्ग भी मुझे अच्छा नहीं लगता। आपके बिना यह सब कुछ मेरे लिये शून्य हो गया है। यहाँ तक कि सम्पूर्ण पृथ्वी का राज्य, त्रिलोकी का सुख और वैभव, सुवर्णादि सम्पत्ति से युक्त साम्राज्य का सर्ग मुझे तुम्हारे बिना नहीं भाता। हे कल्याणी! जिस प्रकार प्रभा के बिना सूर्यनारायण और जिस प्रकार चन्द्रिका के बिना चन्द्रमा व्यर्थ है, उसी प्रकार तुम्हारे बिना मेरी कोई सत्ता नहीं आपके बिना यह प्रकृति भी मुझे नहीं भाती। जिस प्रकार आत्मा से रहित शरीर और जिस प्रकार माधुर्य के बिना जल निरर्थक है उसी प्रकार आपके बिना मैं निरर्थक हूँ और तुम्हारे बिना यह मनुष्य-सृष्टि भी मुझे नहीं भाती। हे **गिरिधर** कवि की स्वामिनी! आप मेरी पाप से रक्षा करें। मुझ भिक्षुक को क्षमादान दे दें। आपके बिना मैं निरर्थक उत्साहहीन हूँ और आपके बिना यह मोक्ष भी मुझे नहीं भाता।

गीत संख्या-२८

सीते शृणु शृणु मम प्रतिज्ञाम्।
समाश्वसिहि विश्वसिहि विदित्वा विदितां विगतावज्ञाम्।।१।।

स्वभां जातु जहातु चन्द्रमा हिमवांस्त्यजतु हिमानीम्।
जह्यां नो विहितां प्रतिश्रुतिं रामोऽहमपि तदानीम्।।२।।
त्यजतु कदाचित् प्रभां भास्करो वेलां वा कूपारः।
सन्धां नो त्यक्ष्यामि तथापि सुमुखि रामो धृतसारः।।३।।
रामो द्विर्न भाषते मैथिलि द्विर्न शरं सन्धत्ते।
द्विर्न ददाति सेवकावासं कथमपि द्विर्न विधत्ते।।४।।
त्वदधरसुधया शपे सुवदनेऽहं नैवावज्ञेयः।
गिरिधरप्रभुस्त्वेकपत्नीव्रतधरस्सदा विज्ञेयः।।५।।

भौमी- भगवान राम हवेली पद्धति में गाते हुए पुनः कहते हैं–हे सीते! आप मेरी प्रतिज्ञा सुनिये। आप आश्वस्त होइये और अपमान से रहित इस मेरी प्रतिज्ञा को जानकर मुझ पर विश्वास कीजिये। हे सीते! भले ही चन्द्रमा अपनी शोभा छोड़ दें कदाचित् हिमाचल अपनी बर्फ की राशि का त्याग कर दें, उस समय भी मैं राम अपनी प्रतिज्ञा नहीं छोड़ सकता। हे सुमुखी सीते! भले ही सूर्यनारायण अपनी प्रभा छोड़ दें, चाहे समुद्र अपनी तट की मर्यादा से हट जाये फिर भी दृढ़ निश्चय वाला मैं राम अपनी प्रतिज्ञा नहीं छोड़ सकता। हे मैथिलि! यह राम दो बार बात नहीं करता अर्थात् जो कहता है उस पर दृढ़ रहता है। वह दो बार बाण का सन्धान नहीं करता। दो बार याचक को दान नहीं देता और अपने सेवक को दो बार स्थापित नहीं करता। अर्थात् इन चार विषयों में मैं पूर्णदृढ़ रहता हूँ। हे सुमुखि! मैं आपके अधरामृत की शपथ करके कहता हूँ कि आप अन्यथा न लें और मेरा अपमान न करें। गिरिधर कवि का स्वामी मैं राम एक पत्नीव्रत धारण करने वाला हूँ। इस प्रकार आप निश्चय कर लें।

गीत संख्या-२९

तवाहं मुखविधुरुचा शपामि।
सत्यसन्ध इह सत्यं भाषे मिथ्या न प्रलपामि।।१।।
नो स्वप्नेऽपि मया किल दृष्टा योषा शुभे त्वदन्या।
विस्मृत्यापि मया न स्पृष्टा त्वदृते काचिदधन्या।।२।।
किमुत विहाय पद्मिनीं चुम्बति कामप्यपरां भानुः।
स्वाहां विना कथय कां श्लिष्यति कच्चित्क्षणं कृशानुः।।३।।
इदं त्रिकालसत्यमिह सीते प्रतिश्रुत्य कथयामि।
त्वदृते काञ्चन श‍ृण्वन्नपि मनसा विग्नो व्यथयामि।।४।।
नित्यं मनोमन्दिरे दीव्यसि देवीव त्वं सीते।
नैव जिहासति भवतीं रामः क्षणमपि गिरिधरगीते।।५।।

भौमी- भगवान राम पुनः हवेली पद्धति में ही गा रहे हैं। हे सीते! मैं आपके चन्द्रमुख की शोभा की शपथ करता हूँ मैं सत्य-प्रतिज्ञ हूँ अतः सत्य ही बोल रहा हूँ, झूठ नहीं कह रहा हूँ। हे सीते! मैंने स्वप्न में भी

आपके अतिरिक्त किसी नारी का दर्शन नहीं किया और भूलकर भी मैंने आपके अतिरिक्त किसी असभ्य महिला का स्पर्श नहीं किया। सीते! बताओ, क्या सूर्यनारायण कमलिनी को छोड़कर किसी अन्य का चुम्बन करते हैं? क्या स्वाहा को छोड़कर अग्नि क्षण भर भी किसी का आलिंगन कर सकते हैं? हे सीते! यह त्रिकाल सत्य है जिसे मैं प्रतिज्ञापूर्वक कह रहा हूँ कि तुम्हारे अतिरिक्त किसी महिला की चर्चा सुनता हुआ भी मैं मन से व्याकुल होकर व्यथित हो जाता हूँ। हे सीते! आप देवी की भाँति मेरे मन मन्दिर में निरन्तर बिराजती रहती हैं। हे **गिरिधर** कवि के द्वारा गायी हुई सीते! आपको मैं राम क्षणभर के लिये भी अपने से दूर नहीं करना चाहता।

गीत संख्या-३०

अवनिजे मयि नित्यं प्रत्येहि।
त्वां प्रार्थयेऽभ्यर्थये क्षणमपि मत्तो नैवाप्येहि।।१।।
किमुत माधुरीवर्जं क्षणमपि तिष्ठति सलिलं शान्तम्।
किमात्मानमतिहाय विराजति क्षणं शरीरं क्लान्तम्।।२।।
किमर्चिषा विरहितो निमिषमपि त्रिशिखो न भवति दीनः।
क्षणमपि जातु कथं तिष्ठति विभया विभाकरो हीनः।।३।।
सीते त्वामतिरिच्य विभाव्या क्षणमपि मम नो सत्ता।
कथय गुणं परिहृत्य कथं स्यान्ननु गुणिनो गुणवत्ता।।४।।
या सीता स एव किल रामो यो रामः सा सीता।
सीतारामाभिधानवद्या श्रुतिकविगिरिधरगीता।।५।।

भौमी– हे अवनिपुत्री सीते! मुझ पर आप नित्य विश्वास कीजिये। मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ, अभ्यर्थना करता हूँ कि आप एक क्षण के लिये भी मुझसे दूर मत जाइये। क्या मधुरता को छोड़कर जल एक क्षण भी शान्त रह सकता है? क्या जीवात्मा के बिना क्षणभर के लिये भी शरीर की स्थिति सुन्दर रह सकती है? क्या ज्वाला के रहित होकर अग्नि एक क्षण भी स्थिर रह सकता है? क्या सूर्यनारायण अपनी प्रभा के बिना एक क्षण भी टिक सकते हैं? हे सीते! आपके बिना एक क्षण के लिये भी मेरी सत्ता की कल्पना नहीं की जा सकती। भला बताओ, कहीं गुण के बिना गुणवान की गुणवत्ता निश्चित की जा सकती है? जो सीता हैं, वही राम हैं और जो राम हैं वही सीता हैं। इस प्रकार यह सीताराम नाम निष्पाप निष्कलंक और निर्दोष है। इसे श्रुतियों (वाल्मीकि आदि) कवियों और **गिरिधर** कवि ने भी गाया है।

सन्दर्भश्लोकः

इति निगदितवन्तं भानुमद्भानुमन्तं
रुचिरुचितदिगन्तं भाविभान्तं स्वकान्तम्।
परममुदितचेता जानकीकं समेता
रघुपतिमतिगाढं श्लिष्यमाना चुचुम्ब।।१।।

भौमी–अब कवि सन्दर्भश्लोक के द्वारा कथा को क्रमबद्ध कर रहे हैं। सीताजी के समक्ष इस प्रकार

अपनी स्पष्टता किये हुए सूर्य के भी सूर्य, अपनी शोभा से सभी दिगन्तों को प्रकाशित करते हुए और अपने प्रकाश से प्रकाशित होते हुए अपने प्राणधन रघुपति श्रीराम को परम प्रसन्न मन वाली सुख से युक्त होती हुई जनकनन्दिनी सीताजी ने अत्यन्त मधुरभाव से उन्हें गाढ़ आलिंगन करते हुए चूम लिया।

गीत संख्या-३१

सीता रामसमेता विहरति।
मानससुता मनोहरपुलिनेरतिशतकोटिसौभगं निहरति।।१।।
परमप्रेमरभसारसविवशा स्ववशवरं भुजान्तरे गूहति।
स्मेरशरद्राकेशवदनमथ चुम्बति हृदिजपटेऽथ समूहति।।२।।
अञ्चलसंवृतनयनकोणतो मुहुरथ रहसि रसेशं पश्यति।
लुम्पति निखिलनिलिम्पपूजितं पुनरपि निमिषमिषेण विपश्यति।।३।।
मुहुरथ ललितपयोधरमण्डनकुङ्कुमतो वरवदनं लिम्पति।
मुहुरपि कुम्बति मुहुरपि चुम्बति मुहुरपि हृन्मन्दिरे निलिम्पति।।४।।
नीरजनयननिलीनमलिनमिव नीलकुन्तलाहरिं समस्यति।
निर्द्वन्दं हृदिजद्वन्द्वस्थं गिरिधरेश्वरं कमिवाभ्यस्यति।।५।।

भौमी- सीताजी सरयूजी के सुन्दर तट पर श्रीराम के साथ विहार कर रही हैं। वे करोड़ों-करोड़ों रतियों के सौन्दर्य को भी चुरा रही हैं। परम दाम्पत्य-प्रेम के वेग और आनन्द के वश में हुई सीताजी अपने वश में हुए प्रियतम को हृदय से लगा लेती हैं। शरदकालीन चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख वाले मुस्करा रहे प्रभु को अपने वक्ष के वस्त्र में छिपा लेती हैं। अपने रसिक प्रियतम को एकान्त में आँचल से ढके नेत्र के कोने से बार-बार निहार रही हैं। सम्पूर्ण देवताओं से पूजित प्रभु को अपने ही आँचल में छिपा लेती हैं फिर पलक गिराने के बहाने से विवेचनापूर्वक देखती हैं। पुनः अपने वक्षोरुह को सुशोभित करने वाले कुमकुम से अपने वर श्रीराम के मुख को रंग देती हैं और कभी वस्त्र से उन्हें ढँकती हैं तो कभी चूमती है तो कभी अपने मन मन्दिर का देवता बना कर हृदय में रख लेती हैं। नीलकमल में छिपे हुए भ्रमर की भाँति श्रीहरि को नीले केशों वाली सीताजी बार-बार छिपा लेती हैं और निर्विघ्न रूप से अपने दोनों वक्षोरुहों के मध्य प्रभु को विराजमान करके **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम को उसी प्रकार सँजो रही हैं, मानों प्रयत्न से प्राप्त ब्रह्मानन्द को समेट रही हों।

विशेष- यह गीत सोलह मात्रा त्रिताल में निबद्ध है। इसे यमन आदि आनन्द के रागों में गाया जा सकता है।

गीत संख्या-३२

मैथिली विहरति सरयूतटे।।
स्ववरमानीय निजे निकटे।।१।।
निगडमालिङ्ग्य निजं कान्तं विजितशतकोटिचलाकान्तम्।
परमरमणीयकलाकान्तं मदनसखमञ्जुप्रभाप्रकटे।।२।।

निर्निमेषदृक् पश्यति रामं सुरपमणिनीलघनश्यामम्।
तनुविभाविजितविपुलकामं निगूहन्ती कुचविमलपटे।।३।।
उदञ्चन्मञ्जुलभ्रूलतिका विराजति सती स्ववशपतिका।
रामपदपद्ममधुपमतिका मनोभवमन्दिरमधूत्कटे।।४।।
हसति गायति नृत्यति प्रीता लसति रघुचन्द्रमनो नीता।
निधुवने लसति सुखं सीता विहितकविगिरिधरगीतघटे।।५।।

भौमी– अपने वर श्रीराम को अत्यन्त निकट ले आकर मिथिलाधिराजकन्या सीताजी सरयू तट पर विहार कर रही हैं। करोड़ों-करोड़ों मेघों को जीतने वाले अत्यन्त रमणीय शृंगाररस की कला में निपुण अपने प्राणधन श्रीराम का प्रगाढ़ आलिंगन करके काम के मित्र वसन्त की सुंदर और प्रकट शोभा से युक्त सरयूतट पर श्रीसीताजी विहार कर रही हैं। अपने वक्ष के निर्मल वस्त्र में श्रीराम को छिपाती हुई इन्द्रनीलमणि और मेघ के समान श्यामल अपनी शोभा से कोटिकामों को जीतने वाले प्रभु श्रीराम को सीताजी अपलक नयनों से निहार रही हैं। वसन्त से उद्दीप्त काम के मन्दिर में सुन्दर भृकुटि लता को ऊपर करती हुई श्रीराम के चरणकमल में अपनी बुद्धि को भ्रमरी के समान तन्मय की हुई तथा अपने अलौकिक माधुर्य से प्राणधन श्रीराम को भी अपने वश में करके आज सती शिरोमणि सीताजी बहुत सुन्दर लग रही हैं। श्रीरामचन्द्र के हृदय में विराजमान सीताजी प्रसन्न हो रही हैं। हँस रही हैं, गा रही हैं, नाच रही हैं और **गिरिधर** कवि के गीतों की छटा से युक्त रहस्य विहार की बार-बार इच्छा कर रही हैं।

विशेष– यह गीत ब्रज के आँचलिक लोकधुन में निबद्ध है इसका बोल है–"आरती कुंजविहारी की श्री गिरिधर कृष्ण मुरारी की"

गीत संख्या-३३

राघवपरिष्वङ्गप्रीता विराजति निधुवने सीता।।
श्रीमद्वसिष्ठमुनितनयातीरे प्रवहति शीतलसुरभितसमीरे
परमप्रेमपयसा प्रणीता विराजति निधुवने सीता।।१।।
चलाचारुचम्पकचामीकरवर्णा मकरकेतुकुन्डलकलितकम्रकर्णा।
पतिव्रतापावनी पुनीता।।२।।
कन्दावदातनीलवारिजातवसना रामनाममञ्जुसुधापानरसिकरसना
विश्वविरुदविश्रुतिविनीता ।।३।।
सुरपुरपुरन्ध्रिप्रणतनलिनचरणा रमणी शिरोमणिर्महितशुभाचरणा।
गिरिधरगदितगाथागीता विराजति निधुवने सीता।।४।।

भौमी– श्रीराघव के समालिंगन से प्रसन्न हुई सीताजी आज रहस्यविहारस्थल में बिराज रही हैं। शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु से युक्त वसिष्ठ मुनि की कन्या सरयू के तट पर जनकनन्दिनी सीता ऐसी प्रतीत हो रही हैं मानों उनका दाम्पत्यप्रेम के दुग्ध से ही निर्माण हुआ है। सीताजी वर्ण विद्युत, सुवर्ण और चम्पा के समान हैं।

सीताजी के सुन्दर कानों में काम के ध्वज, मछली के आकार के कुण्डल विराज रहे हैं। ऐसी स्वयं पवित्र और पतिव्रताओं को भी पावन कर रही जानकीजी निधुवन में विराज रही हैं। सीताजी ने मेघ और नीले कमल के समान नीली साड़ी धारण कर रखी हैं और मैथिलीजी की रसना श्रीरामनामरूप मधुरामृत के पान में रस की अनुभूति कर रही है, ऐसी सम्पूर्ण सतियों के निर्मल यश की ख्याति से युक्त सीताजी निधुवन में सुशोभित हो रही हैं। देववधुओं के द्वारा जिनके चरणकमलों को प्रणाम किया जा रहा है। जिनके कल्याणमय आचरणों की आज भी पूजा हो रही है जिनकी यशोगाथाओं को **गिरिधर** कवि ने अपने विविध गीतों में गाया है, ऐसी सती–शिरोमणि सीताजी प्रभु श्रीराम के साथ निधुवन में विराज रही हैं।

गीत संख्या–३४

रघुवररसरङ्गमही संविभाति जानकी।।
सरयूवरसरसतीरे मलयितशीतलसमीरे।
विलसितरघुवंशवीरे रसं राति जानकी।।१।।
विहरति हरिणासमेता मनसि महितमानिकेता।
शीलरूपगुणोपेताऽघं लुनाति जानकी।।२।।
दर्शं दर्शं रामघनं निजजनसारङ्गधनम्।
नटन्ती मयूरवधूर्यथा भाति जानकी।।३।।
ललिता ललना लसन्ती पुरटनूपुरं रणन्ती।
क्वणन्ती कुमुद्वतीव कुम्पुनाति जानकी।।४।।
कविवरगिरिधरस्वामिनी देहविजितसौदामिनी।
रामभद्रभामिनी भयाभिभाति जानकी।।५।।

भौमी– रघुश्रेष्ठ श्रीराम के शृंगाररस की रंगभूमि स्वरूप श्रीजानकीजी सुशोभित हो रही हैं। मलय शीतल वायु से युक्त रघुवंश के वीर्य श्रीराम से सुशोभित सुन्दर सरयू के तट पर विराजमान होकर सीताजी प्रभु को आनन्द दे रही हैं। मन में अपने प्राणधन श्रीराम का सम्मान करतीं हुई रूप, चरित्र और गुणों से युक्त सीताजी श्रीहरि के साथ विहार कर रही हैं और भक्तों के पापों को नष्ट कर रही हैं। अपने भक्त रूप चातकों के जीवन–धनस्वरूप श्रीराम मेघ को निहार–निहार कर मयूरिणी की भाँति नर्तन करती हुई सीताजी बहुत सुशोभित हो रही हैं। स्वर्णनूपुर में वीणा का निनाद प्रस्तुत करती हुई सुशोभित हो रही श्रेष्ठ महिलाशिरोमणि सीताजी शरत्पूर्णिमा की भाँति पृथ्वी को पवित्र कर रही हैं। अपने शरीर से विद्युत को जीतने वाली कविश्रेष्ठ **गिरिधर** की स्वामिनी, श्रीरामभद्र की प्राणप्रिया सीताजी अपनी प्रभा से अनुकूलतापूर्वक शोभा पा रही हैं।

विशेष– यह गीत एक ताल में निबद्ध है। इसे वागेश्वरी ललित और यमन आदि रागों में सानन्द गाया जा सकता है।

गीत संख्या–३५

सरयूतटे विलसति जानकी।।
तरुघननिविडितनिभृतनिकुञ्जे कलितसुकोमलकिसलयपुञ्जे।

रसमयमदिरमधुव्रतगुञ्जे सुखमथ विहसति जानकी।।१।।
अशरणशरणनवनलिनचरणा परिहितसुमहितवसनाभरणा।
निजतनुविभया रतिशतशतमथ विदिता विरसति जानकी।।२।।
चुम्बति हरिविधुमुखमालिङ्गति भुजलतया रघुवरमथ रिङ्गति।
नवनलिनीव रामनवमिहिरं दृष्ट्वा विकसति जानकी।।३।।
तनुते तन्वी विविधविहारं रचयति नवनवमथ रससारम्।
गिरिधरप्रभुमपि हृतभवभारं रभसा विवशति जानकी।।४।।

भौमी– श्रीसीताजी सरयू तट पर सुशोभित हो रही हैं। जिसमें सुन्दर पल्लवों के समूह विद्यमान हैं। जहाँ आनन्द से मतवाले भ्रमर गुंजार कर रहे हैं। ऐसे घने वृक्षों से घिरे निभृत निकुंज में सीताजी सुखपूर्वक प्रभु से हास–परिहास कर रही हैं। जिनके नवीन चरणकमल निराश्रितों को भी आश्रय देने वाले हैं। जिन्होंने सुन्दर वस्त्र और अलंकार धारण किए हैं। ऐसी सर्वप्रसिद्ध सीताजी अपने शरीर शोभा से करोड़ों–करोड़ों रतियों को भी नीरस बना रही हैं। सीताजी प्रभु का चन्द्रमुख चूमती हैं और उन्हें अपनी भुजालता में जकड़कर गले लगाती हैं, नाचती हैं तथा श्रीरामरूप नवीन सूर्य को देखकर नवीन कमलिनी की भाँति विकसित हो उठती हैं। तन्वंगी सीताजी अनेक विहार प्रस्तुत करती हैं और नवीन–नवीन रससार स्वरूप शृंगारों की रचना करती हैं। किंबहुना भवभार दूर करने वाले **गिरिधर** कवि के स्वामी प्रभु राम को भी सीताजी अपने आनन्दोद्रेक से विवश कर लेती हैं।

गीत संख्या–३६

रामो रमते सह रामया।
सरयूतटे परिलसति निधुवने कमनकदम्बितबकुलकुलघने।
ऋतुपतिपरिरञ्जितसखीजने रघुवरमनोऽभिरामया।।१।।
विहरति हरिरिह जनककिशोर्या रामचन्द्रमुखचन्द्रचकोर्या।
रतिरभसापतिचेतश्चोर्या महितो मध्यक्षामया।।२।।
क्रीडति कुबलयकमनकदम्बे मुखरितवरमधुकरनिकुरम्बे।
विकसितबकुलकदम्बकरम्बे दूरितभवभवकामया।।३।।
शशिनो द्वादश्येव निसर्गे कलयान्वितो द्वादशे सर्गे।
गिरिधरगीते लसदपवर्गे हरिहृतहृदयारामया।।४।।

भौमी– सुन्दर बकुल वृक्षों के समूह से युक्त वसन्त की वासन्तिकता से प्रसन्न हुए सखीजनों से विभूषित श्रीसरयू तट पर एकान्तिक विहार के वातावरण में श्रीराम के मन को आनन्द देने वाली प्राणप्रिया सीताजी के साथ भगवान् श्रीराम रम रहे हैं। श्रीरामचन्द्र के मुखचन्द्र की चकोरी शृंगार रस के स्थायी भाव रति के उद्रेक से प्राणपति श्रीराम के चित्त को चुराने वाली मध्यक्षामा जनकनन्दिनी सीताजी के साथ श्रीहरि विहार करते हुए

सुशोभित हो रहे हैं। श्रेष्ठ भ्रमरसमूहों के गुंजार से युक्त वकुल वृक्षों के सुन्दर विकास से शोभायमान नीलकमल वन के समूह में भक्तों के भवभय और काम को दूर करने वाली श्रीसीताजी के साथ प्रभु क्रीड़ा कर रहे हैं। इस प्रकार **गिरिधर** कवि के द्वारा गाये हुए मोक्ष के उपायों से सुशोभित गीतरामायणम् के बारहवें सर्ग में श्रीराम को अपने हृदय उद्यान में चुरा लेने वाली चन्द्रमा की बारहवीं कला जैसी श्रीसीताजी के साथ श्रीराम सानन्द विहार करते हुए विहार कर रहे हैं।

इति

श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरमहाकविजगद्गुरुरामानन्दाचार्यस्वामिरामभद्राचार्यगिरिधरकविप्रणीते गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये अयोध्याकाण्डे गीतनवदम्पतिविहारो नाम प्रथमः सर्गः।

इस प्रकार श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर महाकवि जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य गिरिधरकवि द्वारा विरचित गीतरामायण 'गीतसीताभिराम' नामक संस्कृत गीतमहाकाव्य के अयोध्याकाण्ड में गीतनवदम्पतिविहार नामक प्रथम सर्ग सम्पन्न हुआ।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

।।श्रीः।।

।।नमो राघवाय।।

गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये

अयोध्याकाण्डे

गीतसीतारामहोलीविहारो नाम

द्वितीयः सर्गः

सन्दर्भश्लोकौ

श्रीवासिष्ठीविमलपुलिने कामकान्ते वसन्ते
विभ्रत्प्रातर्मिहिरवसनं कम्रकन्दावदातः।
होलीं खेलन् विलसतितरां मानयन् माननीयो
भौमी भव्यो रविकुलरविर्गीतसीताभिरामः।।१।।
पाटीरं प्रथयन् पयोदपटले श्रीखण्डमाखण्डलो
धीरोदात्तनृणां विदेहदुहितुर्लिम्पन् कपोले कलम्।
आवीरं च गुलालकं विलसयन् सिञ्चन् दृती रागकैः
सीतां खेलति होलिकां रसिकराड् रामो रसेशं श्रयन्।।२।।

भौमी- अब कवि कथा को क्रमबद्ध करते हुए सन्दर्भश्लोक प्रस्तुत करते हैं– वसिष्ठपुत्री सरयू के निर्मल तट पर काम की उपस्थिति के कारण कमनीय वसन्त ऋतु में बालसूर्य के समान सुन्दर पीताम्बर धारण किये हुए सभी के लिए माननीय सूर्यकुल के सूर्य सीताजी के साहचर्य से सुन्दर लग रहे गीतसीताभिराम महाकाव्य के प्रतिपाद्य प्रभु श्रीराम सम्मानपूर्वक होली खेलते हुए बहुत शोभा पा रहे हैं। रसराज शृंगार का आश्रय करते हुए धीरोदात्त नायकों के शिरोमणि रसिकराज भगवान् श्रीराम जनकराजतनया सीताजी के वक्षोरुहों पर चन्दन से पाटीर की रचना करते हुए तथा उनके कपोलों पर अबीर का लिम्पन करते हुए और गुलाल को सुशोभित करते हुए पिचकारी के रंगों से सीताजी का अभिषेक करते हुए होली खेल रहे हैं।

गीत संख्या-१

होलीं खेलति रघुवीरः सरयूतटे होलीं खेलति रघुवीरः।।
श्रीमिथिलेशकिशोरीसहितः जलदश्यामशरीरः सरयूतटे।
होलीं खेलति रघुवीरः।।१।।
एकतः सीतासखीगणो धावति अपरतो लक्ष्मणवीरः सरयूतटे।
होलीं खेलति रघुवीरः।। २।।

लिम्पति कोऽपि कोऽपि परिसिञ्चति रामो रसति रसधीरः सरयूतटे।
होलीं खेलति रघुवीरः।।३।।
सीताकरे भाति कनकदृतीरङ्गः भाति रामहस्ते अबीरः सरयूतटे।
होलीं खेलति रघुवीरः।।४।।
होलीरमणीयो जयति श्रीरामः श्रितगिरिधरहृत्कुटीरः सरयूतटे।
होलीं खेलति रघुवीरः।।५।।

भौमी– सरयू के तट पर श्रीराम होली खेल रहे हैं। मेघवर्णी श्रीराम मिथिलेशनन्दिनी श्रीजानकी के साथ होली खेल रहे हैं। एक ओर से सीताजी की सखीगण दौड़ रही हैं, और दूसरी ओर से वीर लक्ष्मणजी दौड़ रहे हैं। कोई सखी किसी सखा के कपोल पर गुलाल लगा रही है तो कोई सखा किसी सखी को रंग से भिगो रहा है और आनन्द में सुस्थिर रहने वाले श्रीराम प्रसन्न हो रहे हैं। सीताजी के हाथ में स्वर्ण पिचकारी में रंग सुशोभित हो रहा है तथा श्रीराम के हाथ में अबीर। इस प्रकार **गिरिधर** कवि के हृदय की कुटी में विराजमान होली महोत्सव में रमणीय लगने वाले श्रीराम सर्वश्रेष्ठ हो रहे हैं।

विशेष– यह गीत अवधी लोक धुन की ढाल में निबद्ध है। इसका बोल है–''होली खेलत रघुवीरा अवध में''।

गीत संख्या–२

अद्य सरयूतीरे रामो रमते।।
होलीं रामो रमते सुहोलीं रामो रमते।।१।।
वसति वसन्ते लसति दिगन्ते सुषमाविजितशतकामो रामो रमते।।२।।
सुरभिसमीरे कुटजकुटीरे सुधितसुनीरे घनश्यामो रामो रमते।।३।।
सीताकपोले गुलालमबीरं निलिम्पन्निलिम्पललामो रामो रमते।।४।।
प्रियादृतीरागरञ्जितवसनाङ्गो भवभयविषयविरामो रामो रमते।।५।।
वशन् वसन्तमहोत्सवमानं गिरिधरनयनाभिरामो रामो रमते।।६।।

भौमी– आज श्रीराम सरयू तट पर होली खेल रहे हैं। सुन्दर होली खेल रहे हैं। वसन्त ऋतु के विराजमान रहने पर सम्पूर्ण दिग्दिगन्तों के सुशोभित होते समय अपनी परम शोभा से करोड़ों कामदेवों की शोभा को जीतने वाले भगवान् श्रीराम होली खेल रहे हैं। सुगन्ध वायु से युक्त अमृत के समान जल से सींचे हुए कुटज पुष्प की कुटी में घनश्याम श्रीराम होली खेल रहे हैं। सीता जी के कपोल पर गुलाल और अबीर लगाते हुए देवताओं के रत्न श्रीराम होली खेल रहे हैं। सीताजी की पिचकारी के रंग से प्रभु के अंग और वस्त्र लाल हो गये हैं, ऐसे संसार के भय और विषयों को नष्ट करने वाले श्रीराम होली खेल रहे हैं। वसन्त महोत्सव के सम्मान की इच्छा करते हुए **गिरिधर** कवि के नेत्रों को आनन्द देने वाले श्रीराम होली खेल रहे हैं।

विशेष– यह गीत ब्रजभाषा के होली गीत की ढाल में निबद्ध है। इसका बोल है– ''आज विरज में होली रे रसिया''।

सन्दर्भश्लोकः

सैरध्वजीदर्शमपारहर्षं सोत्कर्षमाविष्कृतभावतर्षम्।
चिक्रीडिषुर्मञ्जुलरागकेलिं रामः प्रियां प्राह रसाभिरामाम्।।१।।

भौमी- सीताजी को निहार कर उत्कर्ष के साथ अपार हर्ष तथा भावतृष्णा को प्रकट करते हुए रंग खेलने की इच्छुक श्रीराम आनन्दमग्न प्राणप्रिया सीताजी से बोले–

गीत संख्या-३

होलीकेलौ मा कुरु विलम्बं सीते रसिके।।
प्रीते सीते रसिके विनीते सीते रसिके।।१।।
दिशि दिशि विलसति सरसवसन्तो विरमय ब्रीडाकदम्बं सीते रसिके।।२।।
नृत्यति गायति विबुधवरूथो ऋतुपतिरागकरम्बं सीते रसिके।।३।।
सज्जय सुमुखि सुभगशृङ्गारं रचय चिकुरनिकुरम्बं सीते रसिके।।४।।
गिरिधरहृदयनिकुञ्जे लसन्ती मया सह वितरावलम्बं सीते रसिके।।५।।

भौमी- हे प्रसन्नरसिक सीते! होली खेलने में विलम्ब मत कीजिये। देख रही है–यह रसीला बसन्त प्रत्येक दिशा में सुशोभित हो रहा है। आज आप अपनी लज्जा का समूह छोड़ दीजिये। देखिये, देवताओं का समूह नाच रहा है और वसन्त सम्बन्धी अनेक राग गा रहा है। हे सुमुखि! सुन्दर शृंगार सजाइये और अपनी चोटी बाँध लीजिये और **गिरिधर** कवि के हृदय निकुञ्ज में मेरे साथ विराजमान होती हुई आप सज्जनों को अवलम्ब दीजिये।

गीत संख्या-४

सरयूतटे लसति मधुरहोली सरयूतटे।।
एकतो राजति रसिकराघवः एकतो विराजति सीतागौरी सरयूतटे।।१।।
उड्डीयते गुलालमवीरं मवति परस्परनयनचोरी सरयूतटे।।२।।
सिञ्चत उभौ परस्परमद्भिः सुभगरसेश्वररसमौली सरयूतटे।।३।।
उत्सवमिमं गिरिधरो गायति जयति दिव्यदम्पतीहोली सरयूतटे।।४।।

भौमी- आज सरयूजी के तट पर मधुर होली सुशोभित हो रही है। एक ओर रसिक राम सुशोभित हो रहे हैं और एक ओर गौरवर्णा सीताजी विराज रही है। गुलाल और अबीर उड़ रहा है। दोनों एक दूसरे से आँख–मिचौनी कर रहे हैं। नव–दम्पती परस्पर रंग से भिगो रहे हैं। दोनों ही रसिकेश्वर श्रीराम और रसराज शृंगार अद्भुत शोभा प्राप्त कर रहे हैं। इस उत्सव को **गिरिधर** कवि गीत में गा रहे हैं। दिव्य दम्पती की यह होली निरन्तर विराजमान रहे। होली महोत्सव की जय।

विशेष- यह गीत बहुप्रचलित होली–गीत के ढाल में बद्ध है। इसका बोल है–

''मिथिला में आज मची होली''

गीत संख्या-५

होल्यां नहि मर्यादा बन्धो होल्यां नहि।।
सीते पश्य लक्ष्मणश्चपलः सङ्कोचस्य न सम्बन्धो होल्यां नहि।।१।।
दीव्यति तव देवरस्त्वया सह हसति त्यक्तलज्जाबन्धो होल्यां नहि।।२।।
क्षिपति मुखं निरीक्ष्य दृतीरागं लसति विषमरसमनोबन्धो होल्यां नहि।।३।।
प्रजावतीमभिषिञ्चति रागैर्गिरिधरगिरिश्रुतनिर्बन्धो होल्यां नहि।।४।।

भौमी–भगवान् श्रीराम सीताजी से कह रहे हैं– देख रही हैं, होली में मर्यादा का कोई बन्धन नहीं रहता। सीते! देखिये। आज लक्ष्मण कितने चञ्चल हो गये हैं। इनके मन में संकोच का कोई सम्बन्ध ही नहीं रहा। आज आपके देवर लक्ष्मण लज्जा का बन्धन छोड़कर आपके साथ होली खेल रहे हैं और हँस रहे हैं। आपके मुख को ही निशाना बनाकर लक्ष्मण पिचकारी से रंग फेंक रहे हैं। आज विषम रस में लक्ष्मण के मन का लगना बहुत अच्छा लग रहा है। **गिरिधर** कवि की वाणी सुनने का ही जिनका हठ है ऐसे कुमार लक्ष्मण अपनी भाभी माँ को रंग से भिगो रहे हैं।

विशेष– यह गीत भी हिन्दी में प्रचलित होली गीत के ढाल पर निबद्ध है। इसका बोल है–

''होली में लाज न कर सीते''

गीत संख्या-६

दृशि मा क्षिप गुलालं राम विजयतां रसहोली।
वदति जनकजासखी किशोरी श्रीराघवमुखचन्द्रचकोरी।।
मानय मनोऽभिराम विजयतां रसहोली।।१।।
दिशि दिशि विलसति होलीरागः भवति विलोक्य विरागविरागः।
विलस सुखं श्रीराम विजयतां रसहोली।।२।।
अधिनयनं मे क्षिपसि गुलालं रसिक वितनुषे रसालवालम्।
हे नवनीरदश्याम विजयतां रसहोली।।३।।
सिञ्चति मां लक्ष्मणोऽप्यभीतः सङ्केतात्तव हासपरीतः।
विरमति नहि सुखधाम विजयतां रसहोली।।४।।
भ्रुवा निवारय बन्धुमनन्तं होलीमहं विस्तारय सन्तम्।
गिरिधरहृदयाराम विजयतां रसहोली।।५।।

भौमी– हे श्रीराम! मेरी आँख में गुलाल मत डालिये। रसमयी होली की जय हो। श्रीराम के मुखचन्द्र की चकोरी श्रीसीताजी की सखी प्रार्थना करके कहती हैं। हे मन को रमाने वाले श्रीराम! मान जाइये। रसमय होली की जय हो। हे सीताजी को रमाने वाले प्रभु! यह होली महोत्सव दिशा-दिशा में सुशोभित हो रहा है। उसे देखकर वैराग्य को भी वैराग्य हो रहा है। आप इस उत्सव में सुखपूर्वक विराजिये। हे मेघवर्णी प्रभु राम! आप मेरे आँखों के बीच गुलाल फेंक रहे हैं। हे रसिकशेखर! आप आनन्द के जन्म स्थल की रचना कर रहे हैं। हे

सुख के मंदिर श्रीराम! देखिये, आपका ही संकेत पाकर परिहास में निपुण लक्ष्मण मुझे रंग से भिगोये जा रहे हैं। शान्त ही नहीं हो रहे हैं। हे **गिरिधर** कवि के हृदय रूप उद्यान में निवास करने वाले प्रभु! आप भौंहों के संकेत से परम सन्त शेषावतार लक्ष्मणजी को मना कर दीजिये और होली महोत्सव का विस्तार कीजिये। रसमयी होली की जय हो।

गीत संख्या-७

होल्यामिह नो रोषः कार्यो होल्यामिह।।
दिशि दिशि विलसति वशी वसन्तो मधुर विनोदोऽप्यनिवार्यो होल्यामिह।।१।।
सङ्क्रीडन्तां कलं देवराः सङ्कोचो न त्वया धार्यो होल्यामिह।।२।।
वर्षतु रसो होलिकारूप्यः स किल भवत्या नो वार्यो होल्यामिह।।३।।
गिरिधरप्रभ्वनुनीतसीतया होलिकोत्सवः शृङ्गार्यो होल्यामिह।।४।।

भौमी- श्रीराम सीताजी का अनुनय करते हुए कहते हैं– सीते! इस होली में आपको क्रोध नहीं करना चाहिये। देखिये सबको वश में करने वाला यह वसन्त इस समय सभी दिशाओं में सुशोभित हो रहा है। अतः मधुर विनोद भी तो अनिवार्य है। आपके देवर आपके साथ प्रेम से होली खेलें तो आपको संकोच धारण नहीं करना चाहिये। होलिका के कारण प्रशान्त सुन्दर आनंद बरसे। आपको उसे नहीं मना करना चाहिये। इस प्रकार **गिरिधर** कवि के स्वामी मुझ राम द्वारा मनायी हुई सीताजी को भी होली महोत्सव का श्रृंगार करना चाहिये।

गीत संख्या-८

होल्यामिह नो लज्जा कार्या होल्यामिह।।
सङ्क्रीडेवहि सरयूपुलिने चेतसि नो व्रीडा धार्या होल्यामिह।।१।।
स्वच्छन्दं क्रीडन्तु सखायस्त्वया न रसकेलिर्वार्या होल्यामिह।।२।।
दिशि दिशि लसतु रसिकसङ्गीतं हृदि प्रीतिस्ते सन्धार्या होल्यामिह।।३।।
रञ्जय मामपि दृतीपयोभिः दुस्त्यज भीतिः संवार्या होल्यामिह।।४।।
श्रुत्वा मोदं ययौ जानकी स्मिता गिरिधरप्रभुभार्या होल्यामिह।।५।।

भौमी- हे सीते! आपको होली में लज्जा नहीं करनी चाहिये। हम दोनों सरयू के तट पर होली खेलें। हमें किसी प्रकार की संकोच भावना नहीं धारण करनी चाहिए। हमारे मित्र भी स्वच्छन्द होली खेलें। आप इस सरस क्रीड़ा को न रोकें। सभी दिशाओं में रसिक संगीत सुशोभित हो और आप मन में प्रसन्न हों और मुझे भी पिचकारी के रंग भरे जल से भिगो दें। अपने मन का दुस्त्यज भय छोड़ दें। इस प्रकार प्रभु की वाणी सुनकर **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम की धर्मपत्नी सीताजी प्रसन्न हुईं और मुस्कुराईं।

गीत संख्या-९

विहरतः सीतारामौ सरयूतटे।।
अन्योन्यं सिञ्चतो दृतीभिश्चपलाधनगौरश्यामौ।।१।।

हसतो गायतः क्षिपतो रागं नरवरलोकललामौ।।२।।
अन्योन्यं लिम्पतो गुलालैर्पूरितपरस्परकामौ।।३।।
होलीमहं मानयन्तौ तौ निजजनविबुधारामौ।।४।।
क्रममाणौ रममाणौ रामौ गिरिधरमनोऽभिरामौ।।५।।

भौमी- आज सरयू तट पर श्रीसीतारामजी होली खेल रहे हैं। बिजली और मेघ के समान गौर और श्याम श्रीसीताराम एक दूसरे को पिचकारी के रंगों से भिगो रहे हैं। मनुष्य लोक के रत्न श्रीसीताराम हँस रहे हैं, गा रहे हैं और एक दूसरे के ऊपर रंग डाल रहे हैं। एक दूसरे की इच्छा का सम्मान करते हुए दम्पती एक दूसरे को गुलाल लगा रहे हैं। अपने भक्तों के लिए कल्पवृक्षों के वन स्वरूप श्रीसीतारामजी होली महोत्सव का सम्मान कर रहे हैं। इस प्रकार **गिरिधर** कवि के मन को आनंद देने वाले सीतारामजी होली खेलते हुए भ्रमण कर रहे हैं और सरयू तट पर रम रहे हैं।

सन्दर्भश्लोकौ

गृहीत्वाऽजगृह्यो विदेहात्मजाया, दृतीं सद्रुतिं सन्द्रुतो धावमानः।
प्रवीणो निकुञ्जे निलीनो विहीनः, छलैराबभौ मृग्यमाणो मृगाक्ष्या।।१।।
ददर्शावनेयी समन्वेषमाणा, तमालाभमाभाजिताम्भोधराभम् ।
पतिं पद्मनाभं मुनीन्द्रैकलाभं, भवानीभवाभ्यर्चितं कुञ्जधाम्नि।।२।।

भौमी-अब कवि कथा को क्रमबद्ध करते हुए दो सन्दर्भ-श्लोक प्रस्तुत करते हैं। ब्रह्माजी पर पक्षपात करने वाले भगवान राम रंग की वर्षा कर रही जनकनन्दिनी सीताजी की पिचकारी छीनकर वेग से दौड़ते हुए छल से हीन होते हुए भी निकुंज में छिप गये और प्रभु श्रीराम को मृगनयनी सीताजी ढूँढती रहीं। अनन्तर ढूँढ़ती हुई पृथ्वीनन्दिनी सीताजी ने उनकी पिचकारी लेकर निकुंज में छिपे हुए तमाल के समान सुन्दर अपनी आभा से मेघ को भी जीतने वाले मुनियों के एकमात्र लाभ स्वरूप शिव और पार्वती के द्वारा भी पूजित कमलनाभ अपने प्राण-प्रियतम श्रीराम को देख लिया।

गीत संख्या-१०

वरवदने सीता लिम्पति रागं वरवदने।।
पृष्ठतो गृहीत्वा भुजाभ्यां प्रगाढं कराभ्यां विमर्द्य मृदुकपोलयोर्बाढम्।
करजैश्च कज्जलं लुम्पति सीतावरवदने।।१।।
समालिङ्ग्य च प्राणपतिं सा स्तनोपपीडं हासं हासं समाश्लिष्य वरं श्लथद्व्रीडम्।
रागस्त्रजं प्रेम्णा गुम्फति सीतावरवदने।।२।।
नारीयमाणं विधाय नररत्नं हृदये निगूह्य गिरिधरप्रभुं सयत्नम्।
नवं घनं रुच्या शम्पति सीतावरवदने।।३।।

भौमी- ज्यों सीताजी ने श्रीराम को पकड़ा, त्यों विनोद में ही बहुत तीखी प्रतिक्रिया की। आज सीताजी अपने प्रियतम श्रीराम के मुख पर गुलाल मल रही हैं। प्रभु के पीछे से जाकर दोनों भुजाओं से बलपूर्वक

पकड़कर और दोनों हाथों से प्रभु के कपोलों पर गुलाल मसलकर अपनी अंगुलियों से प्रभु के नेत्रों का काजल मिटा रही हैं। अपने प्राणपति श्रीराम को अपने स्तनों से दबाकर आलिंगन करके बार-बार हँसती हुई नि:संकोच होकर प्रभु को गले से लगाकर सीताजी अनुराग की माला ही गूँथ रही हैं। मनुष्यों में श्रेष्ठ श्रीराम को महिला के वस्त्र आभूषण पहनाकर उन्हें नारी जैसा बनाकर प्रयासपूर्वक **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम को अपने हृदय में छिपाकर सीताजी ऐसी प्रतीत हो रही हैं, मानो बिजली नवीन बादल को अपने से ढक रही है।

विशेष- यह गीत भी होली की लोकधुन में ही निबद्ध है। इसका बोल है-'रसिया को नारि बनाओ री रसिया को'।

गीत संख्या-११

राघव कुरु मा विवादं वरद देहि दृतीं वै मदीयाम्।।
होलीरभसवशरसिकेन्द्रशेखर रचयसि कपटकदम्बम्।
दृतीहारं गहने निलीयसे तनुषे मुधा विलम्बम्।।
स्वजन देहि भक्तिं स्वकीयाम्।।१।।
सिञ्चसि रागरसैर्मम गात्रं श्लथयसि मौक्तिकहारम्।
वितुदसि सखिभिः सममतिमात्रं कलयसि केलिप्रचम्।।
ऋजुमुपैहि मतिं भवदीयाम्।।२।।
सम्प्रेरयसि सुमित्रासूनुं क्षेपयसे बहुरागम्।
लेपयसे वदने सुसखीनां कुङ्कुमरसमभिभागम्।।
क्रमं समेहि कीर्तिं त्वदीयाम्।।३।।
त्यज चापलमथ भज भवदीयां मामनुचरीं दयालो।
देहि दृतीं होलीमनुकम्प्य गिरिधरप्रभो कृपालो।।
नमतिमेहि मय्यन्यदीयां राघव कुरु मा विवादं
सुखमवेहि दासीं त्वदीयां राघव कुरु मा विवादम्।।४।।

भौमी- अब सीताजी अनुनय के स्वर में कह रही हैं- हे राघवजी! आप विवाद मत कीजिए। हे साजन! मेरी पिचकारी दे दीजिए। हे रसिकों के शिरोमणि! आप होली के आनन्द के वश में होकर बड़ी ही कपटों का निर्माण कर रहे हैं। मेरी पिचकारी चुराकर आप कुंज में छिप गये हैं, इससे आप व्यर्थ का विलम्ब कर रहे हैं। हे वरदानी! मुझे अपनी भक्ति दे दीजिए। आप पिचकारी से मेरा शरीर भिगो रहे हैं और मेरा मोती का हार शिथिल कर रहे हैं, मित्रों के साथ मुझे बहुत सता रहे हैं। उल्टे खेल का प्रचार कर रहे हैं। हे प्रभु! आप अपनी सरल बुद्धि फिर स्वीकारिये। आप लक्ष्मण जी को उकसाते हैं और मुझ पर बहुत रंग डलवाते हैं। मेरी सखियों के अङ्गों में कुमकुम मलवाते हैं। आप अपनी कीर्ति को प्राप्त करें, अर्थात् सौम्यता बरतें। हे **गिरिधर** कवि के स्वामी! आप अपनी चंचलता छोड़िए और मुझ सेविका को स्नेह दीजिए। मुझे मेरी पिचकारी दे दीजिए। मेरे प्रति अन्यथा बुद्धि मत कीजिए।

विशेष- यह गीत होली की पारम्परिक धुन में काफी राग में निबद्ध है। इसके बोल हैं- 'काहे करत मोसे

रार कन्हैया दे दो पिचकन मोरी’।

गीत संख्या-१२

होली महोत्सवे प्रीता सरयूतीरे विलसति सीता।।
शीतलमन्दसुगन्धसमीरे भूषणवसनपरीता।
राजति सखीजनेन समेता प्रियतमप्रेमप्रतीता।।
हृदयेऽभृतरघुपमभीता ।।१।।
रघुपतिलोकनवञ्चमञ्चिता सहसा स्वजनमभीता।
कुङ्कुमरागरसैः कपोलयोः लिम्पन्ति स्म हरीता।।
रसिकरसरङ्गप्रणीता ।।२।।
मर्दं मर्दं मृदुरतिमृदुभिः करजाम्बुजैः सभीता।
रघुवरविधुवदनं चुम्बन्ती रसपतिरभसं नीता।।
मधुरतमभावमभीता ।।३।।
दृती निहितसमरुणतमपयसा सिक्त्वा हरिं विनीता।
अञ्जनमसिमयनखैः कपोले नाम लिखित्वा भीता।।
सखीं गता गिरिधरगीता।।४।।

भौमी– होली के महोत्सव में प्रसन्न हुई सीताजी सरयू तट पर विराज रही हैं। शीतल, मन्द और सुगन्धित वायु से युक्त सरयू तट पर भूषण और वस्त्रों से ढकी हुई अपने प्राण–प्रियतम के प्रेम से विश्वस्त सीताजी सखी जनों के साथ विराज रही हैं, उन्होंने अभीष्ट रूप से अपने हृदय में श्रीराम को धारण किया है। रसिकराज प्रभु की रस रंगभूमि में प्रणीत सीताजी श्रीराम की दृष्टि बचाकर प्रसन्न होती हुई सहसा उनके पास आ गयीं और श्रीहरि के समीप आकर उनको कुमकुम के रंग के रस से नहला दिया। मधुरतम कान्ता– भाव को प्राप्त हुई सीताजी श्रृंगार रस से परम आवेश को स्वीकार करके थोड़ी–सी भयभीत होकर अपनी कोमल हाथ की उंगलियों से प्रभु के कपोल को मसल–मसल कर अपने प्राणधन श्रीराम को चूमने लगीं। **गिरिधर** कवि के द्वारा गायी हुई सीताजी विनम्रतापूर्वक श्रीहरि को पिचकारी में भरे हुए लाल जल से सराबोर करके अपनी काजल की स्याही से युक्त नखों से प्रभु श्रीराम के कपोल पर अपना ‘सीता’ नाम लिखकर निर्भीकता के साथ सखियों के पास चली गयीं।

गीत संख्या-१३

खेलति रामः प्रियया समेत्य होलीमह उपसरयूमथैत्य।
परिधाय पीतवसनं निधाय कोदण्डशरं कवचं विहाय।।१।।
क्रीडानुकूलवेषं विधाय ऋतुराजसखं सार्थं प्रधाय।
लक्ष्मणं भरतशत्रुघ्नमेत्य होलीरङ्गं सादरमुपेत्य।।२।।

निजमित्रवर्गमपि समाहूय सङ्कोचलेषमपि समाधूय।
अवहित्थाव्रीडामपि विधूय रमते रामः पापं विपूय।।३।।
सिञ्चन्ति सखायः श्रियः सखीः लिम्पन्ति कुङ्कुमैश्चन्द्रमुखीः।
सीतासख्योऽपि सखीन्निगृह्य रामस्य योषयन्ति प्रगृह्य।।४।।
मुञ्चन्ति मुहुर्हा हा विधाप्य वारम्वारं सीतां प्रगाप्य।
दर्शं दर्शं रामो विहसति गायन्ती गिरिधरगीर्विलसति।।५।।

भौमी– श्रीराम होलिका के महोत्सव में सरयू के तट पर आकर प्राणप्रिया सीताजी के साथ होली खेल रहे हैं। पीताम्बर धारण करके धनुष–बाण नीचे रखकर, कवच छोड़कर होली खेल के अनुकूल वेश बनाकर वसन्त के मित्र काम को अपना साथी बनाकर प्रभु होली खेल रहे हैं। लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न को साथ लेकर और आदरपूर्वक होली क्रीड़ास्थल पर पधारकर अपने मित्रवर को आदर से पास बुलाकर और संकोच के लेश को भी छोड़कर अवहित्था और व्रीडादि भावों को भी दूर से ही त्यागकर जीवों का पाप नष्ट करके श्रीराम होली के रंग में रम गये हैं। श्रीराम के मित्रगण सीताजी की सखियों को रंग से सराबोर कर रहे हैं और उन चन्द्रमुखियों के मुखों पर कुंकुम लगा रहे हैं और सीताजी की सखियाँ भी श्रीराम के सखाओं को दबोच कर पकड़कर उन्हें नारी बना देती हैं। उनके मुख से हाहा कराकर और बारम्बार सीताजी का यश गवाकर फिर छोड़ती हैं। यह दृश्य देखकर श्रीराम बारम्बार हँस रहे हैं और **गिरिधर** कवि की वाणी भी प्रभु का होली महोत्सव गा–गाकर सुशोभित हो रही है।

विशेष– यह गीत शास्त्रीय है। इसे मालकौश, बसन्त, नट आदि रागों में गाया जा सकता है।

यह गीत त्रिताल में निबद्ध है।

गीत संख्या–१४

लक्ष्मणमुपेत्य जानकीसखी निक्षिप्य रागपात्रे सुमुखी।
नखशिखमथार्द्रगात्रं विधाय द्वैमातुरमधिरागं निधाय।।१।।
ललनावेषं तस्मै प्रदाय भाले सिन्दूरं प्रनिर्माय।
गायन्ति हसन्ति वपुर्निरीक्ष्य सीतापि मोदते स्त्रियं वीक्ष्य।।२।।
कथयति प्रजावति समायाहि इह तिष्ठ जलं पिब मा प्रयाहि।
भ्रातरं क्षामये त्वां निगद्य राघवं दर्शये समासाद्य।।३।।
हे आर्यपुत्र किल पश्य पश्य श्यालकपत्नीं निपुणं प्रपश्य।
रामोऽपि हसति लक्ष्मणमवेक्ष्य लक्ष्मणो लज्जते निजमपेक्ष्य।।४।।
वर्षन्ति सुरवराः सुसुमनांसि हृष्यन्ति वैष्णवानां मनांसि।
गिरिधरो वदति जय राम राम, जय राम गीतसीताभिराम।।५।।

भौमी– इसके पश्चात् सुन्दर मुखवाली सीताजी की एक सखी श्रीलक्ष्मण के पास जाकर उन्हें रंग के विशाल पात्र में डालकर नख से शिख तक कुमार लक्ष्मण को रंग में डुबोकर और द्वैमातुर अर्थात् कौसल्या जी

एवं सुमित्राजी के संकल्प से प्रकट हुए श्रीलक्ष्मण को होली के रंग में सराबोर करके उन्हें नारी का वेश धारण कराकर उनके मस्तक पर सिन्दूर की बिन्दिया लगा देती है, लक्ष्मणजी का नारी स्वरूप देखकर सखियाँ गा रही हैं और हँस रही हैं। सीताजी भी इस अपूर्व महिला को देखकर प्रसन्न हो रही हैं और सीताजी कह रही हैं–भाभी! यहाँ आओ। यहाँ बैठो। जल पिओ। दूर मत जाओ। मैं अपने भैया से कहकर तुम्हें क्षमा करा देती हूँ और तुम्हे तुम्हारे नन्दोई राघवजी को दिखाती हूँ। फिर सीताजी! श्रीराम को सम्बोधित करके कहती हैं–आर्यपुत्र! देखिये! देखिये! अपनी यह नई सरहज देखिये। श्रीराम भी लक्ष्मणजी को इस वेश में देखकर हँस रहे हैं और लक्ष्मणजी अपनी यह दशा देखकर लज्जित हो रहे हैं। देवता प्रसन्न होकर पुष्पवर्षा कर रहे हैं। वैष्णव के मन भी प्रसन्न हो रहे हैं। **गिरिधर** कवि भी प्रसन्नता से कह रहे हैं–श्रीराम की जय हो! गीत सीताभिराम की जय हो।

सन्दर्भश्लोकः

विलोक्य ललनावेषं लक्ष्मणं शुभलक्ष्मणम्।
विनोदरससंपृक्तं जगौ सीतासखी कलम्।।१।।

भौमी– श्रेष्ठ लक्षणों वाले लक्ष्मणजी को नारी वेश में परिणत देखकर भगवती सीताजी की सखी विनोद रसपूर्ण यह गीत गाने लगीं।

गीत संख्या-१५

जय जय जय दशरथनृपकन्ये जय जय जय।।
समागच्छ लक्ष्मणे सुलोचनि वृणे वरैस्त्वां अतिधन्ये।।१।।
मा भूर्मनसि मनागपि विग्ना जाने त्वामथशुभकन्ये।।२।।
सीतायाः प्रजावती भूत्वा भुङ्क्ष्व सुकीर्तिं सुवदान्ये।।३।।
रूपवतीं लक्ष्मीनिधिभार्यां वरयामस्त्वां समनन्ये।।४।।
गिरिधरप्रभो मा गमो रोषं होलीहासमिमं मन्ये।।५।।

भौमी– दशरथ महाराज की कन्ये! (पुत्रि) तुम्हारी जय हो, जय हो, जय हो। सुन्दर नेत्रों वाली लक्ष्मण आओ आओ। धन्यवाद, यहाँ तुम्हारा सुन्दर दूल्हों से ब्याह कराऊँगी। मन में थोड़ा-सा भी उद्विग्न मत होओ। मैं तुम्हें श्रेष्ठ कन्या के रूप में जानती हूँ। श्रेष्ठदानशीले! सीताजी की भाभी बनकर मिथिला में आनन्द का अनुभव करो। हम तुम जैसी रूपवती को लक्ष्मीनिधि की पत्नी के रूप में वरण करती है। पुनः मिथिला की सखियाँ कहती हैं– हे **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम! हमारे व्यवहार से आप रुष्ट न हों। इसको तो मैं होली का विनोद मानती हूँ– 'बुरा न मानो होली है।'

गीत संख्या-१६

अनुजसुहृद्भिः कामोऽभिरामो रामो रमते वसन्ते।।
सरयूतीरे निर्मलनीरे शीतलमन्दसुगन्धसमीरे।
मरकतकन्दश्यामोऽभिरामो रामो रमते वसन्ते।।१।।

करतलविलसदवीरगुलालो वपुषा विगणितनवलतमालो।
भवभयविषयविरामो रामो रमते वसन्ते।।२।।
राजन्ते सह समे सखायः लसति लक्ष्मणो ललितसहायः।
भजकहृदयविश्रामोऽभिरामो रामो रमते वसन्ते।।३।।
दृतीपयोभिरार्द्रयति सीतां लिम्पति कुङ्कुमरसैरनीताम्।
गिरिधरगीताऽरामोऽभिरामो रामो रमते वसन्ते।।४।।

भौमी- अपने छोटे भ्राताओं और मित्रों के सहित काम अर्थात् अत्यन्त कमनीय तथा 'क' अर्थात् ब्रह्मा 'अ' अर्थात् विष्णु 'म' अर्थात् महेश; शिव के भी नियन्त्रक सबको आनन्द देने वाले श्रीराम वसन्तोत्सव में होली खेल रहे हैं। शीतल-मन्द, सुगन्ध की वायु से युक्त निर्मल जल वाले सरयू तट पर मरकत और बादल के समान सुन्दर श्रीराम बसन्त में होली खेल रहे हैं। श्रीराम के श्रीहस्तकमल में अबीर और गुलाल सुशोभित हो रहा है। उन्होंने अपने इष्ट-विग्रह से नवीन तमाल को भी लज्जित किया है। ऐसे संसार के भय और विषयों के अभाव स्थान श्रीराम वसन्त में होली खेल रहे हैं। श्रीराम के साथ सभी मित्र विराज रहे हैं और सुन्दर सहायक के रूप में श्रीलक्ष्मणजी सुशोभित हो रहे हैं। अपने भजन करने वालों के हृदय में विश्राम करने वाले श्रीराम वसन्त में होली खेल रहे हैं। **गिरिधर** कवि के द्वारा गाये हुए उद्यान गीतों में निवास करने वाले अत्यन्त सुन्दर भगवान् श्रीराम स्वयं से अतिरिक्त किसी से न प्राप्त होने वाली सीताजी को पिचकारी के रंग में डुबो रहे हैं, भिगो रहे हैं और उनके मुख पर कुंकुम लगा रहे हैं तथा वसन्तोत्सव में होली खेल रहे हैं।

विशेष- यह गीत अवधी की आँचलिक होली धुन के ढाल में निबद्ध है। इसका बोल है-

''सदा अनन्द रहे इह द्वारे मोहन खेलें होली''।

गीत संख्या-१७

सरयूनिकुञ्जे सीताभिरामो रामः खेलति होलीम्।।
दिशि दिशि विलसति वशी वसन्तः कुसुमिततरुवरमदिरदिगन्तः।
सखिवरबन्धुविनीताभिरामो रामः खेलति होलीम्।।१।।
नवलकरकमलविलसदवीरः भ्रातृसुहृद्भिः सह रघुवीरः।
बहुविधिकेलिपुनीताभिरामो रामः खेलति होलीम्।।२।।
सुगाः कलं गायन्ति वसन्तं परिचरन्ति भावैर्भगवन्तम्।
वाद्यलसितसङ्गीताभिरामो रामः खेलति होलीम्।।३।।
सिञ्चति दयितो दयितां रागैः स्वयं सिच्यते लसदनुरागैः।
कविवरगिरिधरगीताभिरामो रामः खेलति होलीम्।।४।।

भौमी- सरयू के तट पर निर्मित निकुञ्ज में सीताजी को आनन्द देने वाले श्रीराम होली खेल रहे हैं। वृक्षों को पुष्पित करने वाला और दिशाओं को मादक बनाने वाला सबको वश में करने वाला वसन्त प्रत्येक दिशा में सुशोभित हो रहा है। सखीजनों से वन्दित विनम्र सीताजी को सुख देने वाले श्रीराम होली खेल रहे हैं। नवीन

करकमल में अबीर लिए हुए भाइयों और मित्रों के सहित विराजमान रघुवीर श्रीराम अनेक रसकेलियों में कुशल पवित्र सीताजी के सुखद श्रीराम होली खेल रहे हैं। गन्धर्व वसन्त के गीत गा रहे हैं और भावनाओं से भगवान् की सेवा कर रहे हैं। इस प्रकार बाद्यों से सुशोभित संगीत वाली सीताजी के सुखदाता श्रीराम होली खेल रहे हैं। स्वयं भगवान श्रीराम सीताजी को रंगों से भिगो रहे हैं और अनुराग पूर्ण रंगों से स्वयं भी सींचे जा रहे हैं। इस प्रकार **गिरिधर** कवि के गीतों का विषय बनी हुई सीताजी के आनन्ददाता प्रभु श्रीराम होली खेल रहे हैं।

सन्दर्भश्लोकौ

सिञ्चन् भूमिसुतापयोदपटलीपाटीरपत्रावलीं
लिम्पन् कुङ्कुममञ्जुरागरसभृत्कान्ताकपोलं कलम्।
लुम्पन् लोपितकैतवां मृगदृशो ब्रीडां विनोदैरलं
होलीरङ्गरसे रतो रमयते रामो रमां वल्लभाम्।।१।।

भौमी- पृथिवीनन्दिनी सीताजी के वक्षोरुहों पर लगी हुई चन्दन से निर्मित पत्रावली को धोते हुए एवं सीताजी के सुन्दर कपोल को कुंकुम के सुन्दर द्रव से लिप्त करते हुए अनेक प्रकार के विनोदों से सीताजी की कपटनाशिनी लज्जा को दूर करते हुए होली के रसरंग में तल्लीन श्रीराम अपनी प्राणप्रिया सीताजी को रमा रहे हैं।

सीता प्राह हसन्तीशं प्रेमसङ्कोचितभ्रुवा।
घ्नतीव स्वं घनश्यामं वल्लभं वल्लभानना।।२।।

भौमी–अपने प्रेम से मुड़ी हुई भौंहों द्वारा प्राणवल्लभ श्रीराम पर प्रहार करती–सी अत्यन्त प्रिय मुखमण्डल वाली सीताजी हँसती हुई घनश्याम श्रीराम से बोलीं।

गीत संख्या-१८

मा क्षिप मम नयने गुलालं हे
श्रृणु राघव विनयं मदीयम्।।
प्रहरसि दृती रसैर्मम वदने,
लिम्पसि कुङ्कुमकैर्रससदने।
हरे हरसेऽङ्गरागं रसालं हे,
श्रृणु राघव विनयं मदीयम्।।१।।
नो मानयसि मधुरमनुरोधम्,
कर्तुं न शक्ये कठोरं विरोधम्।
पुनरनुरुन्धे तनुजिततमालं हे,
श्रृणु राघव विनयं मदीयम्।।२।।

बहु चापलं कुर्वते ते सखायः,
नो लाति लाघवं लक्ष्मणः सहायः।
स मे विनोदं वृण्वते विशालं हे,
शृणु राघव विनयं मदीयम्।।३।।
अधुना ननान्द्रा शान्तया शपे ते,
आदरात्तामार्द्रयितुं लपेते।
किमु प्रेक्षसे प्रियतमप्रियालं हे,
श्रुणु राघव विनयं मदीयम्।।४।।
रमयस्व मां रामां सीताभिरामः,
गिरिधरभयं दमय द्युतिजितकामः।
होल्यां सतां जहि जगज्जालं हे,
श्रुणु राघव विनयं मदीयम्।।५।।

भौमी- हे राघव! मेरी आँख में गुलाल मत डालिये। हे राघव! मेरी प्रार्थना सुन लीजिये। हे श्रीहरे! आप पिचकारी के जल से मेरे मुख पर प्रहार कर रहे हैं तथा मेरे सुन्दर अंगराग को नष्ट कर रहे हैं और मैं आपका कठोर विरोध भी नहीं कर पा रहीं हूँ। अतः अपने श्रीविग्रह से तमाल को जीतने वाले आपसे मैं केवल अनुरोध कर रही हूँ कि मेरी आँख में गुलाल मत डालिये। आपके मित्रगण बहुत चपलता कर रहे हैं और भैया लक्ष्मण भी लघुता को नहीं स्वीकार कर रहे हैं। सभी लोग मुझसे बहुत विनोद कर रहे हैं। इस समय मैं आपको अपनी ननद शान्ता की शपथ दे रही हूँ और उन्हीं को रंग से भिगोने के लिए मैं आपको संकेत कर रही हूँ। अर्थात् अपनी बहन से रंग खेलिये। आप प्रसन्न होकर प्रियाल वृक्ष को क्यों देख रहे हैं? अपनी शोभा से काम को जीतने वाले मुझ सीता को आनन्द देने वाले आप श्रीराम मुझे रमण कराइये और **गिरिधर** कवि के भय को नष्ट कीजिये तथा इस होली महोत्सव में सन्तों के जगज्जाल को नष्ट कर दीजिये। हे राघव! मेरी प्रार्थना सुनिये।

विशेष- यह गीत भी ''सदा अनन्द रहे द्वारे मोहन खेलें होली'' इस ढाल में ही निबद्ध है।

गीत संख्या-१९

मम त्रुटितो मुक्तामयो हारो हे।
हरे विहिता त्वयेत्थं होली।।
आर्द्रा मम कौशुम्भी शाटी,
क्लिन्नबिन्दुरभवन् मे ललाटी।
मम विशिथिलः कवरीभारो हे,
हरे विहिता त्वयेत्थं होली।।१।।
अञ्जनमशिरञ्जिते कपोले,
मकराकृतकुण्डले विलोले।

मम व्यर्थोऽभवत् पाटीरसारो हे,
हरे विहिता त्वयेत्थं होली।।२।।
जातं व्यस्तभूशणमङ्गमङ्गम्,
दूषणदूषणं राजितानङ्गम्।
मम शोषितो न कश्चिदलङ्कारो हे,
हरे विहिता त्वयेत्थं होली।।३।।
एवंविधा होलीकेली रोचते न मह्यम्,
गिरिधरप्रभोर्न चापलं बहु विसह्यम्।
सोढा सोढव्यः षोडशशृङ्गारो हे,
हरे विहिता त्वयेत्थं होली।।४।।

भौमी– हे श्रीहरे! आपने ऐसी होली खेली जिसमें मेरा मोतियों का हार टुट गया, मेरी कुशुम्भ रंगी साड़ी गीली हो गयी। मेरे मस्तक की बिन्दिया भी आर्द्र हो गयी और मेंरा जूड़ा भी तितर–बितर हो गया, आपने ऐसी होली खेली। मेरे कपोल काजल की कालिमा और रंग की लालिमा से रंग गये हैं और मेरे मकराकृत कुण्डल भी अस्त–व्यस्त हो गये हैं। आपकी रंग पिचकारी से मेरे वंक्षोरुहों पर लगा हुआ चन्दन का पाटीर मिट गया है। आपने इस प्रकार होली खेली। हे दूषणनामक राक्षस के शत्रु श्रीराघव! आपकी मिलन के काम से सुशोभित मेरे अंग–अंग के आभूषण व्यस्त हो गये हैं और मेरा कोई भी अलंकार रंग से अछूता नहीं रहा, आपने ऐसी होली खेली। हे श्रीहरे! इस प्रकार की होली की क्रीड़ा मुझे नहीं भाती। **गिरिधर** कवि के स्वामी! आप श्रीराघव की चन्चलता मुझे बहुत नहीं सहन होती। आप मेरे सोलहों शृंगारों की छः प्रकारों से रक्षा कीजिये।

विशेष– यह गीत ब्रज की एक प्रसिद्ध होली गीत की ढाल में निबद्ध है। इसका बोल है–

मेरो टूट गयो मोतियन को हार, हे याने ऐसो चटक रंग डायो।।

सन्दर्भश्लोकः

अथ प्रियां शान्तयति स्म राघवो
विमार्जयन् पङ्कजपाणिना मुखम्।
प्रफुल्लपाथोरुहसम्मितं हसन्
समुह्य सीमन्तमसौ रहस्यवित्।।१।।

भौमी– इसके अनन्तर रहस्य रस के वेत्ता श्रीराघव विकसित कमल के समान सुन्दर श्रीसीताजी के मुख को अपने कमलकर से सहलाते हुए प्राणप्रिया सीताजी को सान्त्वना देने लगे।

गीत संख्या–२०

होल्यामधि नो रोषः कार्यः होल्यामधि।
हूयन्ते कुभावना होल्यामेषोऽर्थो हृदि निर्धार्यः।।१।।

फाल्गुन इह वृद्धोऽपि देवरो लगति कथं युवको वार्यः।।२।।
दीव्यति ते देवरो लक्ष्मणः स भवत्या न विप्रकार्यः।।३।।
स्वच्छन्दं रमते त्वयि रामो न मे निसर्गः संवार्यः।।४।।
गिरिधरगिरि सीताभिरामगुणगीतकदम्बो विस्तार्यः।।५।।

भौमी- श्रीराम कहने लगे। सीते! होली में आपको रोष नहीं करना चाहिये। होली के द्वारा कुभावनाओं को जला दिया जाता है। आपको होली शब्द का यही अर्थ हृदय में निश्चित कर लेना चाहिये। इस फाल्गुन में तो वृद्ध भी देवर लगता है तो फिर युवक लक्ष्मण को कैसे रोका जाय? आपके देवर लक्ष्मण आपके साथ होली खेल रहे हैं! आपको इनका अपमान नहीं करना चाहिये। मैं श्रीराम आपमें ही रमता हूँ। अतः मेरे स्वभाव को भी रोका नहीं जा सकता। इस प्रकार मुझ सीताभिराम श्रीराम के गुणों से गुम्फित गीतसमूहों का **गिरिधर** कवि की वाणी में ही विस्तार करना चाहिये।

गीत संख्या-२१

समागत्य त्वया सह सीते! सुखं रमे होल्यामहम् ।।
फाल्गुन इह मासे स्वच्छन्दम् ।
वहति समीरे मन्दं मन्दम् ।।
समाहत्य त्वया समं सीते! सुखं रमे होल्यामहम् ।।१।।
त्वां रञ्जयन् कलितरसरागैः।
दृतीनिर्झरैर्लसदनुरागैः ।।
समामत्य त्वया सार्धं सीते! सुखं रमे होल्यामहम् ।।२।।
गूढो भवत्यञ्चलच्छाये।
गिरिधरविरचितगीतनिकाये ।।
समावृत्य त्वया साकं सीते! सुखं रमे होल्यामहम् ।।३।।

भौमी- हे सीते! आपके साथ मिलकर मैं सुखपूर्वक होली खेलूँगा। मन्द-मन्द वायु के चलते समय इस फाल्गुन महीने में मैं आपके साथ समागत होकर होली में सुखपूर्वक रमण करूँगा। अनुराग से युक्त सुन्दर रंगों से भरे हुए पिचकारियों के रंगों के प्रवाह से आपको रंगता हुआ मैं आपके साथ ही होली महोत्सव में आनन्द लूँगा। आपके आँचल की छाया में छिपा हुआ मैं आपके साथ एकीकृत होकर **गिरिधर** कवि द्वारा रचित गीत समूहों के माध्यम से होली में सुख का अनुभव करूँगा।

गीत संख्या-२२

बिलवैय्यालोकधुनौ-

मङ्गलगुणधामरामो रमते वसन्ते।
मैथिलीललामरामो रमते वसन्ते।।

सीतालतापरीतो हे
सुरवरतरुनामपारिजातगुणधर्मा ।
पूरितजनकामभुवनविदितशुभकर्मा ।।
सेवितसुत्रामनिगमनिगूहितमर्मा ।
हृतनिजजनदाम रामो रमते वसन्ते।।१।।
भौमीचलाविनीतो हे
शुभसुन्दरश्याममधुरचरितपर्जन्यो ।
विद्यासुखधामक्षपितमनोभवमान्यो ।।
जनहृदयाराम सेचनसुधासुधन्यो।
भवविपद्विराम रामो रमते वसन्ते।।२।।
पार्थिविकण्ठगृहीतो हे
मरकतमणिनामनवलसरोरुहनीलो ।
लोचनाभिरामरमणीजननतशीलो ।।
लोकपपरिणामपरममनोहरलीलो ।
लोकेशप्रणाम रामो रमते वसन्ते।।३।।
निगमनिरूपितगीतो हे
नीलोत्पलश्याममधुरमनोहरचरितः ।
शुचिपुण्यप्रणामचरणजनितसुरसरितः ।।
प्रणतेप्सितकामगिरिधरगिरामुखरितः ।
करुणागुणधाम रामो रमते वसन्ते।।४।।

भौमी– मंगलमय गुणों के धाम श्रीराम वसन्त में होली खेल रहे हैं। सीताजी के हृदयरत्न श्रीराघव होली खेल रहे हैं। सीतारूपिणी लता से आलिङ्गित, पारिजात के समान गुणों और धर्मों वाले, देववृक्षस्वरूप सज्जनों की कामना पूर्ण करने वाले तथा अपने शुभ कर्मों के कारण सम्पूर्ण लोकों में प्रसिद्ध, इन्द्र के द्वारा सेवित तथा वेदों में छिपे हुए मर्म वाले, अपने भक्तों के बन्धनों को नष्ट करने वाले भगवान श्रीराम वसन्त में होली खेल रहे हैं। पृथ्वीनन्दिनी सीताजी रूप बिजली से युक्त, मेघस्वरूप विद्या और सुखों के धाम , कामदेव के शत्रु शिवजी के भी माननीय, भक्तों के हृदयरूप उद्यान को नष्ट करने वाले श्रीराम वसन्त में रम रहे हैं। सीताजी के कण्ठ में विराजमान इन्द्रनीलमणि स्वरूप नवीन नीले कमल के समान नीलवर्णी नेत्रों को आनन्द देने वाले तथा सभी महिलाओं के द्वारा प्रणम्य स्वभाव वाले और लोकपालों के सुख परिणामस्वरूप परम सुन्दर लीलाओं वाले और लोकपालों के भी प्रणामों के आश्रय श्रीराम वसन्त में रमण कर रहे हैं। जिनके लिए वेदों में दिव्य गीत गाए गए जो नीलकमल के समान श्यामल तथा मधुर और सुन्दर चरित्र वाले हैं जिनका प्रणाम पवित्र और पुण्यमय है जिनके चरणों से गंगाजी प्रकट हुयीं और जिन्होंने प्रणतजनों की इच्छाओं का सम्मान किया, ऐसे

गिरिधर कवि की वाणी से मुखर स्वर में गाए हुए करुणागुणों के धाम भगवान श्रीराम वसन्त में होली खेल रहे हैं।

विशेष– यह गीत अवधाञ्चल में बहुचर्चित बिलवैया लोकधुन में निबद्ध है। इसका बोल है– वृन्दावन धाम मोहन खेलै होली।

गीत संख्या–२३

अधिकोसलधाम सीतारामौ रमेते।
सदयोध्याधाम सीतारामौ रमेते।।
शीतलनिर्मलनीरे हे
भावितभवभामभवनिधितरणिततीरे ।
श्रृतमलयाराममदिरसरोजसमीरे ।।
पावनपरिणामध्यानमहितमुनिधीरे ।
नरलोकललामसीतारामौ रमेते।।१।।
होलीमहमहनीयौ हे
द्युतिजितरतिकामकामकोटिकमनीयौ ।
पूरितजनकामरमणीमणिरमणीयौ ।।
विगलितमदकाममुनिमानसनमनीयौ ।
शुचिगौरश्यामसीतारामौ रमेते।।२।।
चलापयोदशरीरौ हे
शुभसद्गुणधाममदनमनोहरमूर्ती ।
शतभास्करधामस्वजनमनोरथपूर्ती ।।
जनरञ्जनधामश्रुतिकुलकीर्तितकीर्ती ।
भवभञ्जननामसीतारामौ रमेते।।३।।
नीलपीतपरिधानौ हे
जनमनोऽभिरामविद्याविनयविनीतौ ।
सज्जनाभिरामसद्गुणचरितपरीतौ ।।
मन्मथाभिरामकविवरगिरिधरगीतौ ।
लोचनाभिरामसीतारामौ रमेते।।४।।

भौमी– कोसल जनपद के धाम में श्रीसीतारामजी होली खेल रहे हैं। सुन्दर अयोध्याधाम में श्रीसीताराम होली खेल रहे हैं। शीतल और निर्मल जल से युक्त, चन्दन के उद्यान से सुशोभित, मादक कमल की सुरभि से युक्त वायु वाले, पवित्र परिणाम वाले, मुनियों और धीरजनों के ध्यान–क्रिया से पूजित, पार्वतीजी की भी

शोभा बढ़ाने वाले, भवसागर के लिए नाव स्वरूप सरयू माँ के तट पर मनुष्य लोक के रत्न स्वरूप श्रीसीतारामजी रम रहे हैं। होली के महोत्सव से सम्मानित अपनी शोभा से रति और काम को जीतने वाले, करोड़ों कामदेवों के भी इच्छा के विषय, भक्तों की कामनाओं की पूर्ति करने वाले, श्रेष्ठ महिलाओं के भी रमण के केन्द्र, मद तथा काम विचार को नष्ट करने वाले, मुनियों के भी मानसों के नमस्कार के आश्रय गौर–श्याम श्रीसीताराम होली खेल रहे हैं। बिजली और बादल के समान शरीर वाले, श्रेष्ठ–सद्‌गुणों के भवन कामदेव के भी मन को हरने वाले अपने भक्तों के मनोरथों को पूर्ण करने वाले, सज्जनों के आनन्ददाता, दिव्यप्रकाशयुक्त तथा वेदों में जिनकी कीर्ति गायी गई है, ऐसे भवबाधा को नष्ट करने वाले श्रीसीताराम होली खेल रहे हैं। नीले और पीले वस्त्र को धारण किए हुए, भक्तों के मन को आनन्द देने वाले, विद्या और विनम्रता से युक्त, सज्जनों के आनन्ददाता, श्रेष्ठ गुणों एवं चरित्रों से सम्पन्न, काम को भी सुख देने वाले, श्रेष्ठ कवि **गिरिधर** द्वारा गाए हुए नेत्रों के सुखराशि श्रीसीताराम होली खेल रहे हैं।

विशेष– यह गीत भी बिलवैया लोकधुन में निबद्ध है।

गीत संख्या–२४

चौतालध्वनौ

रघुवीरो रुचिर रूपधारी वसन्तविहारी।।
सजलपयोदतमालमनोहरशतमनसिजमदहारी ।
सकललोकलावण्यललितलक्ष्मीलालितपदपङ्कजचारी ।।१।।
पुरटकिरीटखचितमणिव्रीडितसममितवासरकारी ।
ललिततिलकसौभगहरिजायुगशारदादर्पप्रहारी ।।२।।
नवराजीवनयनशुकनासिकमुखजितरजनीविचारी ।
शशिकरहासबन्धुजीवाधरगलमुक्तामालिकाधारी ।।३।।
रविशिशुवसनविचित्रविभूषणसहमिथिलेशकुमारी
रामो रमयन् लसति त्रिलोकीम् कविगिरिधरमनःकुञ्जचारी।।४।।

भौमी– वसन्तोत्सव में विहार करने वाले श्रीराम सुन्दर रूप धारण कर रहे हैं। नीले बादल एवं तमाल के समान सुन्दर, अनेक कामों के मद को हरने वाले सम्पूर्ण लोकों की सुन्दरता की शोभा के द्वारा दुलराये हुए चरणकमलों से विचरण करने वाले प्रभु श्रीराम वसन्त में विहार कर रहे हैं। सिर पर स्वर्ण मुकुट में जटित मणियों द्वारा करोड़ों–करोड़ों सूर्यों को लज्जित करने वाले अपने सुन्दर तिलक की शोभा से दो गंगा एवं एक सरस्वती के अहंकार को दूर कर रहे प्रभु श्रीराम वसन्त में विहार कर रहे हैं। नवीन लाल कमल के समान नेत्र, तोते के चोंच के समान नासिका, मुख से चन्द्रमा को जीतने वाले चन्द्रकिरण के समान मुस्कान एवं बन्धुजीव पुष्प के समान अरुण–अधर तथा गले में मौक्तिक माला धारण किए हुए प्रभु वसन्त में विहार कर रहे हैं। बालसूर्य के समान सुन्दर पीताम्बर धारण किए हुए, सीताजी के साथ विराजमान **गिरिधर** कवि के मनरूप कुञ्ज में विचरण कर रहे भगवान श्रीराम त्रिलोकी को रमाते हुए होलिका महोत्सव में विहार परायण होकर सुशोभित हो रहे हैं।

विशेष– यह गीत अवध की आँचलिक होली लोकधुन चौताल में निबद्ध है।

गीत संख्या-२५

रघुनन्दनपाणिगृहीती लसति सीता प्रीती।।
होलीरसरसिकाश्रितवरवशिका, मुखशशिकाधृतभीती ।
वामकरेधृतरागभाजना कृतदक्षकरेदृतिरसरीती।।१।।
भरतं धर्तुमीरयित्वा माण्डवीं प्रतीतमभीती।
कुङ्कुममयकपोलकं कृत्वा योषयित्वा प्रणामप्रतीती।।२।।
नखशिखमार्द्रगात्रमतिमात्रम्, तमथविधाय विनीती।
हा हा वचो वाचयन्ती तम् परिनर्तयन्ते स्मानीती।।३।।
सखीजनं हासयति हसन्ती संस्कुर्वती सुनीती।
गिरिधरप्रभुं दर्शयन्ती किल भरतं भावप्रणीती ।।४।।

भौमी- श्रीरघुनन्दन की पाणिग्रहण द्वारा प्राप्त धर्मपत्नी प्रसन्न सीताजी बहुत सुशोभित हो रही हैं। सीताजी स्वयं होली रस की रसिक हैं। उन्होंने अपने संयमी पति श्रीराम को अपने वश में कर रखा है और उनके चन्द्रमुख पर भारतीय मर्यादा की नीति विराज रही है। उन्होंने अपने वाम श्रीहस्त में रंग का पात्र धारण कर रखा है और दाहिने श्रीहस्त में रसरीति का निर्झरण करने वाली पिचकारी धारण कर रखी है। प्रणाम करने वालों के विश्वास से सम्पन्न निर्भीक सीताजी विश्वासपात्र भरतजी को पकड़ने के लिए माण्डवीजी को प्रेरित करके उन्हें महिला का वस्त्र धारण कराकर भरतजी के कपोलों पर कुंकुम का लेप करके सुशोभित हो रही है। भरतजी को नखशिखपर्यन्त रंग से भिगोकर परम विनम्र श्रीराम की समीपता को प्राप्त सीताजी माण्डवी पति से हा-हा करवाकर नचाने लगीं। भावों का निर्माण करने वाली सीताजी सखीजनों को हँसाती हुई स्वयं हँस रही हैं। सुन्दर नीतिनिपुण जनकनन्दिनीजी भरतजी में भक्ति-संस्कारों का सृजन करती हुई उनकी यह दशा **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम को दिखा रही हैं।

विशेष- यह गीत भी चौताल धुन में निबद्ध है।

गीत संख्या-२६

अद्य होलीरसे शुभरतो भरतः
सखीभिः कुमारीयताम्।।
सख्यः न मुञ्चत स्वकरतः
न पलायतामसौ शुचिबन्धुपुरतः।
अद्य जगतो विषयरस विरतः
सुखेन सुनारीयताम्।।१।।
लक्ष्मणोऽपि समागत्य किं नः करिष्यते
बलादेनमागत्य हरिर्नो हरिष्यते।

अद्य नखशिखं रञ्जयित्वा सुरतः
सखीभिः सुचारीयताम्।।२।।
सख्यः कुरुत चारुकमलकरे कङ्कणं
दत्त चरणयोः सुनूपुरं कलत्कणम्।
अद्य सर्वथा विनोदरसोपरतो
विदेहकुमारीयताम् ।।३।।
हासं सहासं सीता कलं कथयन्ती
चन्दं चन्दं रघुचन्द्रं बन्धुं दर्शयन्ती।
अद्य गिरिधरप्रभुस्नेहनिरतो
निजेन शृङ्गारीयताम्।।४।।

भौमी– सीताजी कहने लगीं–आओ, कल्याण में निरत भरतजी को इस होली रस में सखियों द्वारा कुमारी बना दिया जाय। सखियों! सावधानीपूर्वक देखो, भरत को अपने हाथों से मत छोड़ो, कहीं ये अपने भाई श्रीराघव के पास भाग न जायें। आज संसार के विषय रस के वैरागी भरत को सुखपूर्वक सुन्दर नारी बना दिया जाय। लक्ष्मण भी आकर हमारा क्या कर लेंगे और श्रीहरि राघव सरकार बलपूर्वक भी भरत को हमसे नहीं छुड़ा सकेंगे। आज संसार की वासना से रहित भरत को नखशिखपर्यन्त रंगकर शालीन महिला बना दिया जाय। सखियों! इनके कमल जैसे हाथों में कंकण पहना दिया जाय और इनके कमल चरणों में सुन्दर स्वर वाला नूपुर धारण करा दो। आज सर्वथा विनोद रस से उपरत भरतजी को माण्डवी के रूप में परिणत किया जाय। इस प्रकार हँस-हँस कर सीताजी माण्डवीजी को निर्देश करती हैं और प्रसन्न हो हो कर रघुकुल के चन्द्रमा श्रीराम को उनके छोटे भाई भरत की दशा दिखा रही हैं और कहती हैं; आज **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराघव के प्रेम में निरत भरतजी का मैं भक्ति के गुणों से शृंगारित करूँगी।

विशेष– यह गीत ब्रजभाषा की लोकधुन की ढाल में निबद्ध है। इसका बोल है– बाबा नन्द औ यशोदा के छैया, बजा दे जरा बाँसुरी।

गीत संख्या-२७

अद्य नारीभूतो दृश्यो भवता भ्राता भरतः।।
विलसद्भालपटलसिन्दूरः ।
लसत्कर्णयुगकलकर्णपूरः ।।
कुमारीभूतो दृश्यो गुणवतो भ्राता भरतः।।१।।
अञ्जनरञ्जितमृगनयनः ।
कस्तूरितिलकगुणचयनः ।।
सुकुमारीभूतो दृश्यो यमवता भ्राता भरतः।।२।।
तनुलसितपीतवरसाटी ।

मुनिजनमोहनपरिपाटी ।।
वरनारीभूतो दृश्यो नयवता भ्राता भरतः।।३।।
गिरिधरप्रभो पश्यैनाम्।
परिणेतुमध्यवस्यैनाम् ।।
सदाचारीभूतो दृश्यो बलवता भ्राता भरतः।।४।।

भौमी- भगवती सीता श्रीराम से कहती हैं–आर्यपुत्र! आज आप अपने भाई भरत को महिला के वेश में देखिए। इनके मस्तक पर सुन्दर सिन्दूर के दर्शन कीजिए। इनके कानों में कर्णफूल देखिए, हे सगुण ब्रह्म! देखिए, आज आपके भाई भरतकुमारी बन गए हैं। इनके मृग जैसे नेत्र में अञ्जन और महिलागुण का चयन करने वाला कस्तूरी की टीका आदि आप सुकुमारी महिला बने हुए अपने भाई का दर्शन करें। इनके शरीर पर पीली साड़ी सुशोभित हो रही है और इनकी परिपाटी मुनिजनों को भी मोहित कर रही है। हे नीतिमान! आज अपने भाई भरत को श्रेष्ठ महिला के रूप में देखिए। हे **गिरिधर** कवि के स्वामी रघुनाथजी! इन अपनी बहना को देखिए और इनके विवाह की व्यवस्था कीजिए। भगवन्! आज अपने भ्राता भरत को सदाचारिणी महिला के रूप में निहारिए।

गीत संख्या-२८

रामः प्राहः-

भद्रे भद्रे अलं होलीपरिहासै-
र्भरतो मम त्यज्यताम्।।
मम भ्राता निसर्गात् तरलः।
प्रेमपयोनिधिरासर्गात् सरलः।।
अलं होलीकृतचापलप्रकाशै-
र्भरतो मम त्यज्यताम्।।१।।
अयं श्रद्धया भवत्त्या भक्तः।
भूरिभोगात् प्रकृत्त्या विरक्तः।।
अलं विषमैर्विनोदैर्विलासै-
र्भरतो मम त्यज्यताम्।।२।।
लक्ष्मणे यथा न रोषोऽत्रकार्यः।
स्वीयकिङ्करे यथा तोषो धार्यः।।
अलं होलीकृतचातुरी विकासै-
र्भरतो मम त्यज्यताम्।।३।।
न प्रजानीते भरतो विनोदम्।
गिरिधरप्रभौ प्रथयन् प्रमोदम्।।

अलं विमले प्रगल्भप्रहासै-
र्भरतो मम त्यज्यताम्।।४।।

भौमी- श्रीराम ने सीताजी से कहा–भद्रे! हे कल्याणि! यहाँ होली परिहास करना उचित नहीं है। मेरे भरत को छोड़ दिया जाय। मेरे भ्राता भरत बहुत ही मृदु प्रेम के सागर और प्रकृति से सरल हैं। इसलिए होली के द्वारा किये गये परिहास प्रकाशों का यहाँ कोई प्रयोजन नहीं है। मेरे भरत को छोड़ दिया जाय। ये आपके श्रद्धालु भक्त हैं और स्वभाव से विषयों से विरक्त हैं। इसलिए इनके प्रति विषम विनोद ठीक नहीं है। मेरे भरत को छोड़ दिया जाय। लक्ष्मण के ही समान समझकर आप भरत पर क्रोध न करें और अपना दास जानकर इन पर संतोष धारण करें। इनके सामने होली की चतुरता का विकास उचित नहीं है। मेरे भरत को छोड़ दिया जाय। मेरे भरत विनोद करना नहीं जानते, ये तो **गिरिधर** प्रभु के स्वामी मुझ राम में सन्तोष का ही अनुभव करते हैं। निर्मल भरतजी के विषय में प्रगल्भ–परिहास उचित नहीं है। मेरे भरत को छोड़ दिया जाय।

सन्दर्भश्लोकः

सम्मोचितो मुग्धतयाथ भौम्या
गतः प्रयत्नेन हरेः समीपम्।
प्रेमाश्रुनीरन्ध्रितनीरजाक्षो
विभुं विनीतो भरतो ववन्दे।।१।।

भौमी-इसके पश्चात् भरतजी को भोला जानकर भूमिनन्दिनी सीताजी ने सखियों से छुड़ा दिया और वे प्रयास से श्रीराम के समीप आये। उनके नेत्र कमल निर्गलित प्रेमाश्रु से पूर्ण थे। विनम्र एवं सुषुप्ति अवस्था के विभु–प्राज्ञ भरतजी ने तुरीयावस्था के विभु परमेश्वर श्रीराम को वन्दन किया।

गीत संख्या-२९

सरयूतटे लसिता ललितहोली सरयूतटे।।
राघवसखानां सीतासखीभिः,
सह सानुरागा कलितहोली सरयूतटे।।१।।
परस्परं धावतां धरतां स्वरभसा,
परस्परं रागोच्छ्वलित होली सरयूतटे।।२।।
दृतिभिः समार्दयतां परस्परशरीरम्,
प्रेमपरिहासोहलितहोली सरयूतटे।।३।।
नर्मभिः प्रहसतां गृणतां हासयताम् ,
आनने तरङ्गोत्कलितहोली सरयूतटे।।४।।
गिरिधरप्रभुं तोषयतां विनोदै-
र्मङ्गलप्रमोदैर्वलितहोली सरयूतटे।।५।।

भौमी- आज सरयू तट पर सुन्दर होली सुशोभित हो रही है। श्रीसीताजी की सखियों के साथ श्रीरामजी के सखाओं की प्रेमपूर्ण होली जम गई है। एक-दूसरे को पकड़ते हुए एक-दूसरे की ओर दौड़ते हुए उभय मित्रवर्ग के स्नेह के आवेश से होली उछल रही है। एक दूसरे अन्योन्य को पिचकारियों के रंग से गीला कर रहे हैं। इस प्रकार प्रेमपूर्ण परिहासों से यह होली भी मिश्रित हो रही है। विनोदों के माध्यम से हँसते हुए, हँसाते हुए वार्तालाप करते हुए पुरजनों के आनन्द से उमड़ी हुई तरंगों से यह होली संयुक्त हो रही है। इस प्रकार **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम को अपने विनोदों से प्रसन्न कर रहे अवधवासियों के मंगलों और आनंदों से यह होली संयुक्त संवलित हो रही है।

गीत संख्या-३०

होल्यां नो सङ्कोचः करणीयो होल्यां नो।।
धावत धरत लाघवाल्लक्ष्मणम्,
बलान्नैव परिहरणीयो होल्यां नो।।१।।
अञ्जत परिधापयत शाटिका,
नारिवेषे संस्करणीयो होल्यां नो।।२।।
लिम्पत कुङ्कुमरसैः कपोलम्,
आभरणैः संभरणीयो होल्यां नो।।३।।
दासीकृत्य कृत्यविन्मणिना
गिरिधरप्रभुणा वरणीयो होल्यां नो।।४।।

भौमी- होली में संकोच नहीं करना चाहिये। सीताजी कहती हैं सखियों! दौड़ो। शीघ्रता से लक्ष्मण को बलपूर्वक पकड़ लो। इन्हें मत छोड़ो। इनकी आँख में काजल लगाओ, इन्हें साड़ी पहनाओ। इन्हें नारी वेश से संस्कारित करो। इनके कपोलों पर कुंकुम रस का लेप करो। इन्हें महिला के गहने पहनाओ। इनको दासी बनाकर कृतज्ञ शिरोमणि श्रीराम से इनका वरण कराओ।

सन्दर्भश्लोकः

मोघोद्योगा खलु युवतयो मैथिलीप्रेरितास्ताः
धर्तुं यत्नादपि फणिपतिं प्राभवन् लक्ष्मणं नो।
भग्नोत्साहा विशिथिलपटाः प्रोच्चलद् दन्तवस्त्राः
सीतां प्रोचुश्चिकुरविगलन् मालिका मञ्जुमुख्यः।।१।।

भौमी- सीताजी से प्रेरित होकर भी जब उनकी सखियाँ निरर्थक उद्योग वाली हो गयीं और प्रयत्न करके भी शेषावतार लक्ष्मण जी को नहीं पकड़ पाईं। तब उनका उत्साह समाप्त हो गया। उनके वस्त्र शिथिल हो गये और क्रोध से सखियों के होंठ फड़कने लगे। उनके जूड़े से पुष्पमाला गिरने लगी, ऐसी सुन्दर मुखों वाली मैथिली सखियाँ सीताजी से बोलीं।

गीत संख्या-३१

सीते पश्य पश्य देवरं तेऽवशम्।।
पौरुषं परुषं होली क्रीड्या
होली क्रीड्या कथम्।।१।।
धावन्त्यो गच्छाम एतत्समीपं
मृदुत्वात् प्रकोष्ठं प्रकुरुते प्रत्यनीकम्।
तन्वन् प्रहासं स होलीस्पृशं
देहं कुरुते कृशं होली क्रीड्या कथम्।।२।।
आह्वयते स ब्रुवन् भ्रातृजाया
दृतिभिर्वितनुते नो रागक्लिन्नकायाः।
नयनेषु क्षिपत्त्यसौ कुङ्कुमकं
वपुर्धत्ते नीरसं होली क्रीड्या कथम्।।३।।
नानुनयं मनुतेऽसौ गौरः
रामचरणनखचन्द्रचकोरः
वारय सुमुखि गिरिधरेशसाहसं
लक्ष्मणं ससाध्वसं होली क्रीड्या कथम्।।४।।

भौमी- हे सीते! देखिये! देखिये। आप अपने स्वतंत्र देवर को देखिये। इस कठोर पुरुष को देखिये। मैं कैसे होली खेलूँ? जब हम लोग दौड़कर इनके समीप जाती हैं तब हमारी कोमल कलाइयों को ये मोड़ देते हैं और होली का विनोद करते हुए हमें सताते हैं होली कैसे खेली जाय और हमको भाभी कहकर बुलाते हैं। पिचकारी ले हमारे शरीर को भिगो देते हैं। हमारी आँखों में कुंकुम का द्रव डाल देते हैं और शरीर नीरस अर्थात् सांसारिक वासना से हीन बना देते हैं। फिर होली कैसे खेली जाय। श्रीराम के चरण नखचन्द्र के चकोर गौर राजकुमार अनुनय नहीं मानते हैं। हे सीते! **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम के साहस श्रीलक्ष्मण को भय दिखाकर रोक दीजिये। अन्यथा होली खेलना सम्भव नहीं होगा।

गीत संख्या-३२

सीता प्राह-

होलीमहे सख्यः सुखं स्थीयतां नैव रोषो धीयताम्।।
होली विनोदसुखपर्व सर्वविश्रुतम्,
आस्तिकविजयपर्व गलद्गर्वमद्भुतम्,
रागैः सानुरागं जगत् सम्प्रणीयताम्।
नैव रोषो धीयताम्।।१।।

यूयं लगथ ललितलक्ष्मणस्य श्याल्यः,
ततस्तद् विनोदान् मा कुप्यथ प्रियाल्यः,
हासो देवरेण श्यालीभिर्विधीयताम्।
नैव रोषो धीयताम्।।२।।
लक्ष्मणः कदापि नो मयाथ तर्जनीयः,
युष्माभिः क्रीडतु चिरं नैव वर्जनीयः,
सखीभिः सौमित्रये न दोषो दीयताम्।
नैव रोषो धीयताम्।।३।।
होली रागतो न युष्माभिश्च कोपनीयम्,
हिन्दुभारतीयप्रेम नैव लोपनीयम्,
गिरिधरेशपादपद्मं मनो नीयताम्।
नैव रोषो धीयताम्।।४।।

भौमी– सीताजी बोलीं– सखियों! होली महोत्सव में सुखपूर्वक स्थिर रहो। क्रोध मत धारण करो। यह होली–पर्व विनोद का पर्व है। यह आस्तिकों का विजय–पर्व और अहंकार का नाशक परमपावन–पर्व है। अर्थात् इसी दिन प्रह्लाद ने श्रीराम नाम के प्रभाव से अग्नि पर विजय पाई थी। आप लोग लक्ष्मणजी की साली लगती हैं। इसलिये हे प्रिय सखियों! उनके विनोद से कुपित न हो। देवर को तो सालियों के साथ विनोद करना ही चाहिये। आप क्रोध न करें। मैं कभी लक्ष्मण को डाँटूगी नहीं, वे आपके साथ प्रेम से होली खेलें। मैं रोकूँगी भी नहीं। आप लोग भी सुमित्रानन्दन को दोष न दें और रोष न करें। होली के रंग से आप लोगों को भी क्रुद्ध नहीं होना चाहिये। हिन्दू भारतीय प्रेम का लोप नहीं करना चाहिये और **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम प्रभु के चरणकमल में अपना मन लगाना चाहिये।

गीत संख्या–३३

सीतारामौ सुखं रमेते होल्यां सरयूतटमुपयाय।
वसिष्ठात्मजापुलिनमुपसृत्य भरतलक्ष्मणरिपुघ्नमाहूत्य
सुहृद्वर्गं ससर्गमाश्रित्य रुचिररूपलक्ष्म्या गतशोभौ।
रतिरतिपती विधाय राघव रतिरतिपती विधाय
सीतारामौ सुखं रमेते।।१।।
बहुलप्रतिपदं मधुमयीमेत्य होलिकारङ्गमहीमभ्येत्य
सुहृदमिव ऋतुपतिसखं समेत्य जितशम्पाधर–
शम्पारुचिशुचिवरवसने परिधाय राघव वरवसने परिधाय
सीतारामौ सुखं रमेते।।२।।

दिनस्य तुरीयं प्रहरमभीक्ष्य पद्मिनीं स्वपतिवियुक्तां वीक्ष्य
समरुणितरोचिर्नभो निरीक्ष्य जरठमिवार्कं तिरोभवन्तम्।
प्रोक्षसुमन आधाय राघव प्रोक्षसुमन आधाय
सीतारामौ सुखं रमेते।।३।।
सिञ्चितोऽन्योन्यं रञ्जितवारि सुधासीकरं दृतीझरझारि
वसन्तोचितं गीतसञ्चारि गिरिधरमनः कुञ्जभवनम्।
विहरतां सदानिर्माय राघव विहरतां सदा निर्माय
सीतारामौ सुखं रमेते।।४।।

भौमी– सरयू तट पर जाकर श्रीसीतारामजी सुखपूर्वक होली खेल रहे हैं। वसिष्ठनन्दिनी सरयू के तट के समीप आकर भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न को बुलाकर दृढ़–निश्चयी अपने मित्रवर्ग का आश्रय लेकर अपनी सुन्दर रूप संपत्ति से रति और काम को शोभाहीन बनाकर सीताराम जी होली खेल रहे हैं। चैत्र कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा को प्राप्त कर होली क्रीड़ास्थल में पधारकर मित्र की भाँति वसन्त को स्वीकार करके मेघ और बिजली की कान्ति को जीतने वाले नीले–पीले वस्त्र को धारण करके अर्थात् सीताजी नीलवस्त्र तथा श्रीरामजी पीतवस्त्र धारण करके होली खेल रहे हैं। दिन का चतुर्थ प्रहर देखकर कमलिनी को पति सूर्य से बिछुड़ी हुई जानकर, आकाश को अरुण प्रकाश से युक्त निहारकर, वृद्ध पूर्वज की भाँति सूर्यनारायण को अपनी आँखों से ओझल देखकर, प्रसन्न होकर सीतारामजी होली खेल रहे हैं। दिव्यदम्पती एक–दूसरे पर अमृतमय पिचकारी का रंग डाल रहे हैं। इस प्रकार वसन्तीरूप धारण करके प्रभु सीताराम मुझ **गिरिधर** कवि के मन को कुंजभवन बनाकर उसी में विहार करते रहें। यही मैं निछावर माँग रहा हूँ ब्रह्म–दम्पती से।

विशेष– यह गीत वृन्दावन के रसिया धुन में निबद्ध है।

गीत संख्या–३४

नयने मा क्षिप गुलालं रसिकवर।।
वसति वसन्ते दीव्यति दिगन्ते।
जितशिशुरविकरभालं, रसिकवर।।१।।
कुरुषे किमु खञ्जनविलोचनम्।
किंशुकरागरसालं रसिकवर।।२।।
हरसे रागरभसवश राघव।
मुक्ताहारं विशालं रसिकवर।।३।।
होल्यां रममाणो गिरिधरप्रभो।
जहि जहि सज्जनजालं रसिकवर।।४।।

भौमी– भगवती सीता श्रीराम से कहती हैं– हे रसिक प्राणप्रियतम! वसन्त के वास करते रहने पर दिग्–दिगन्त के सुशोभित होते रहने पर अपनी कान्ति से बाल समूहरूप सूर्य को जीतने वाला गुलाल मेरे नेत्रों में मत

डालो। हे रसिक प्रियतम! मेरे खंजन जैसे श्यामनेत्र को टीसू के रंग से लाल क्यों बना रहे हैं? आप तो स्नेहावेश के वश में होकर मेरे विशाल मोती के हार को भी तितर-बितर कर रहे हैं। हे **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराघव! होली खेलते हुए आप सज्जनों के जगज्जाल को भी नष्ट कर दें।

गीत संख्या-३५

होलीरङ्गे राजति रघुवीरो जनकसुतया धीरः।।
यथा स्वयंभुवा ज्योतिश्चलया समेतः सान्द्रानन्दकन्दो गभीरः।।१।।
नखशिखरागैः सिक्तः कुङ्कुमैः प्रलिप्तो जायया विभाति रङ्गधीरः।।२।।
यथा कनकलतया कृताभिषेको भ्राजते तमालः ससरस्वतीनीरः।।३।।
कृतकरकमलकनकनिर्झरणी, मुनिजनमानसहीरः।।४।।
सीतां लसति रञ्जयन् रामो, गिरिधरनयनकुटीरः।।५।।

भौमी- होली महोत्सव में धीर श्रीराम जनकनन्दिनी श्रीसीताजी के साथ विराज रहे हैं। ठीक उसी प्रकार जैसे स्वयं प्रकट ज्योतिष्मती विद्युत् के साथ गम्भीर घनीभूत आनंद का ही बादल हो। नख से शिखपर्यन्त रंगों से सराबोर कुंकुम द्रव से लिप्त रंगभूमि में स्थित श्रीराम धर्मपत्नी सीताजी के साथ विभूषित हो रहे हैं। जिस प्रकार सरस्वती के जल से स्नान किया हुआ तमाल वृक्ष स्वर्ण की लता के साथ सुशोभित होता है। मुनिजनों के मन के हीररत्न करकमल में पिचकारी लिये हुए सीताजी को रंगों से भिगोते हुए **गिरिधर** कवि के नेत्ररूप कुटी में निवास करने वाले रघुवीर श्रीराम जानकीजी के साथ अत्यन्त शोभायमान हो रहे हैं।

गीत संख्या-३६

होलीरसं सद्धयो रातु रामः
सदागीतसीताभिरामः ।।
नित्त्यं प्रवर्षतु प्रेमरसरागं
कर्षतु जनमनः कलितानुरागम्।
पातु दत्तबुधविश्रामः
सदा गीतसीताभिरामः।।१।।
लिम्पतु स्मरणकुङ्कुमेन धीकपोलं
विदधातु निजध्याने मानसमलोलम्।
पुरोदृशोर्भातु भयविरामः
सदा गीतसीताभिरामः।।२।।
हरिर्हरतु भजनरसैर्भजतां त्रितापं
क्षपयतु क्षपाटरिपुः प्रणमतां च पापम्।

प्रसीदतु नवकन्दश्यामः
सदागीतसीताभिरामः ।।३।।
गिरिधरमनोऽजिरे लसतु श्रीनिकेतः
दशरथस्य युवराजो मैथिलीसमेतः।
जयतु जयतु जानकीललामः
सदागीतसीताभिरामः ।।४।।

भौमी– गीतसीताभिराम संस्कृत गीत महाकाव्य के प्रतिपाद्य श्रीराम सन्तों को सदैव होली का आनंद देते रहें। विद्वानों को विश्राम देने वाले प्रभु श्रीराम निरन्तर प्रेमरस रंग की वर्षा करते रहें और अनुरागपूर्ण सज्जनों को अपनी ओर खींचते रहें तथा हम सबकी रक्षा करतें रहें। भयों के अभावस्थान प्रभु श्रीराम निरन्तर बुद्धिरूप महिला के कपोल को स्मरण रूप कुंकुम से लिप्त करते रहें और अपने ध्यान में मन को स्थिर बनाते रहें तथा हमारे नेत्रों के सामने श्रीसीताजी के सहित सुशोभित होते रहें। श्रीहरि अपने भजन के आनंदों से भजन करने वालों के तीनों तापों को दूर करते रहें। राक्षसों के शत्रु श्रीराघव प्रणाम करने वालों के पाप भी नष्ट करते रहें और नवीन मेघ के समान श्यामल श्रीराम मुझ पर सदैव प्रसन्न बने रहें। **गिरिधर** कवि के मनरूप आँगन में श्रीजी के निवासस्थान महाराज दशरथ के युवराज श्रीराम सीताजी के सहित विराजमान हों। जानकीजी के हृदय के रत्न श्रीराम की जय हो, जय हो, जय हो।

इति
श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरमहाकविजगद्गुरुरामानन्दाचार्यस्वामिरामभद्राचार्यगिरिधरकविप्रणीते गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये अयोध्याकाण्डे गीतसीतारामहोलीविहारो नाम द्वितीयः सर्गः।

इस प्रकार श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर महाकवि जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य गिरिधरकवि द्वारा विरचित गीतरामायण 'गीतसीताभिराम' नामक संस्कृत गीतमहाकाव्य के अयोध्याकाण्ड में गीतसीतारामहोलीविहार नामक द्वितीय सर्ग सम्पन्न हुआ।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

।।श्रीः।।

।।नमो राघवाय।।

गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये अयोध्याकाण्डे

गीतसीतारामदोलोत्सवो नाम

तृतीयः सर्गः

सन्दर्भश्लोकः

श्रीसज्ज्योतिरखण्डिताप्रतिमितानन्दैकसान्द्रात्मभृ-
च्छम्पाम्भोधरसुन्दरौ शुचिमती वात्सल्यवारान्निधी।
वर्षन्तौ नभसि प्ररूढजलदे शुक्ले तृतीयातिथौ
क्रीडन्तौ मणिपर्वतेऽत्र जयतः सैरध्वजीराघवौ।।१।।

भौमी– महाकवि अयोध्याकाण्ड के तृतीय सर्ग का मंगलाचरण प्रस्तुत करते हुए कहते हैं– शोभा एवं सत्ता ज्योति तथा अखण्ड, असीम, आनन्द के घनीभूत विग्रह–विद्युत एवं मेघ के समान सुंदर, पवित्र वृद्धिसंपन्न, वात्सल्य के महासागर भगवान श्रीसीताराम वर्षा ऋतु में उमड़ते हुए बादल से युक्त श्रावणमास में शुक्ल पक्ष की तृतीया के पावन पर्व पर मणिपर्वत पर झूला झूलते हुए सबसे उत्कृष्ट रूप में विराजमान हो रहे हैं।

गीत संख्या–१

दोलानीतौ सीतारामौ दोलेते अभिरामौ हे।
विलसति नभसि कलितघनमाले,
वर्षावारिदबिन्दुरसाले ।
दोलाप्रीतौ सीतारामौ दोलेते अभिरामौ हे।।१।।
शीतलमन्दसुगन्धसमीरे,
स्वैरं प्रचलति वरवानीरे।
दोलास्फीतौ सीतारामौ दोलेते अभिरामौ हे।।२।।
नृत्यति माद्यन्मनसि मयूरे,
रटति चातके मधुरमदूरे।
दोलाऽभीतौ सीतारामौ दोलेते अभिरामौ हे।।३।।

परिहितनीलपीतपरिधानौ ,
सुरगन्धर्वविहितगुणगानौ ।
गिरिधरगीतौ सीतारामौ दोलेते अभिरामौ हे।।४।।

भौमी- आज झूले पर विराजमान सुन्दर सीतारामजी झूला झूल रहे हैं। मेघमाला से युक्त श्रावण महीने के सुशोभित होते समय और वर्षाकालीन मेघों की मधुर फुहार के पड़ते समय जगत को आनंद देने वाले सीतारामजी प्रसन्न होकर झूला झूल रहे हैं। शीतल, मंद और सुगंधित वायु के झकोरों से बिना रोक-टोक बेतों का समूह हिल रहा है तथा झूले की संपत्ति से युक्त मनोहर सीतारामजी झूल रहे हैं। इधर मतवाले मनवाला मयूर नाच रहा है और मणि पर्वत के निकट ही चातक बहुत मधुर स्वर में पिऊ-पिऊ की रटन लगा रहा है। झूले पर निर्भीक मुद्रा में बैठे श्रीसीतारामजी सुन्दर रीति से झूल रहे हैं। नीला और पीला वस्त्र धारण किए हुए देवता और गन्धर्वों के द्वारा जिनका गुणगान किया गया है ऐसे **गिरिधर** कवि के भी गीतों के प्रतिपाद्य बने हुए श्रीसीतारामजी बहुत ही सुन्दर रीति से झूला झूल रहे हैं।

गीत संख्या-२

अद्य दोलास्थितौ सीतारामौ सुखं दोलेते सुखं दोलेते।।
भाति राज्ञी ॠतूनां वर्षा।
ख्याति शमितजगज्जीवजीवतर्षा।
अद्य दोलास्थितौ पूर्णकामौ सुखं दोलेते।।१।।
कलं कूजन्ति वियति विहङ्गाः।
पी पी रटन्ति सरससारङ्गाः।
अद्य दोलास्थितौ भयविरामौ सुखं दोलेते।।२।।
मन्दं मन्दं मलयो वाति वातः।
श्रितवारिदसलिलकणजातः ।
अद्य दोलास्थितौ गौरश्यामौ सुखं दोलेते।।३।।
मुदा गायन्ति गुणान् गन्धर्वाः।
छविं पश्यन्ति विधिहरिशर्वाः।
अद्य दोलास्थितौ गिरिधराभिरामौ सुखं दोलेते।।४।।

भौमी- आज झूले पर विराजमान श्रीसीतारामजी सुखपूर्वक झूल रहे हैं। ॠतुओं की रानी वर्षा सुशोभित हो रही है और वह जीवों के जीवन की प्यास बुझाती हुई ख्याति प्राप्त कर रही है और आज झूले पर विराजमान पूर्णकाम श्रीसीतारामजी झूल रहे हैं। इधर आकाश में पक्षी मधुर ध्वनि में बोल रहे हैं और चातक रसीले सुर में पी-पी की रटन लगा रहे हैं तथा संसार के भयों के अभाव स्थान श्रीसीतारामजी प्रसन्नता से झूला झूल रहे हैं। समुद्र के जलकणों को लेकर आया हुआ मलय वायु धीरे-धीरे चल रहा है और गौर-श्याम दम्पती झूला धीरे-धीरे झूल रहे हैं। गन्धर्व प्रसन्नता से गा रहे हैं और ब्रह्मा, विष्णु, शिव प्रभु की छवि निहार रहे हैं। आज **गिरिधर** कवि को आनंद देने वाले श्रीसीतारामजी झूला झूल रहे हैं।

सन्दर्भश्लोकः

सञ्चाल्यमानां लघुलक्ष्मणेन
लोलन्निचोलां प्रसमीक्ष्य लोलाम्।
सीतामभीतां परिभाव्य भीतां
सखी प्रचक्ष्यौ विनिवार्य रामम्।।१।।

भौमी–लक्ष्मण जी द्वारा शीघ्रता से झुलाई जाती हुई हिलते हुए वस्त्रों वाली स्वयं ही चंचलता को प्राप्त हिण्डोला और निर्भीक सीताजी को भी भयभीत देखकर श्रीराम को रोकती हुई सखी कहने लगी।

गीत संख्या–३

दोलां शनैः शनैः परिचालय सखीं सम्भालय हे हरे।।
कमनकदम्बसुतरुवरशाखा लम्बितदोलालोलां राघव।
भौमिं भुजलतया विनिभालय सखीं सम्भालय हे हरे।।१।।
गर्जं गर्जं घना गभीराः सूर्यच्छदाः सनीरा राघव।
विज्ञां वरदवपुर्मनुमालय सखीं सम्भालय हे हरे।।२।।
प्रवहति सरससमीरो धीरो वल्गितवनवानीरो राघव।
दयया निजदयितां प्रतिपालय सखीं सम्भालय हे हरे।।३।।
रघुवरललितलक्ष्मणं वारय दोलाभयं निवारय राघव।
गिरिधर गीतां सीतां पालय सखीं सम्भालय हे हरे।।४।।

भौमी– हे राघव! झूला धीरे–धीरे चलाइए और मेरी सखी सीताजी को संभाल लीजिए। सुन्दर–सुन्दर कदंब वृक्ष की डाल पर लटक रही हिंडोले पर बैठी हुई पृथ्वीनंदिनी सीताजी को अपनी भुजा की लता से टेक दीजिए। सूर्य को ढकने वाले, गंभीर बादल बार–बार गर्जन कर रहे हैं। वरदानी विग्रह वाले मन्त्र ही जिनका शरीर है, ऐसी ब्रह्मविद्या की भाँति सीताजी को आश्रय दीजिए। हे राघव! बेतों को झकझोरने वाला यह गंभीर वायु चल रहा है, अतः कृपा करके अपनी प्रियतमा सीताजी की प्रतीक्षा कीजिए और उन्हें संभालिए। हे रघुवर! प्यारे लक्ष्मण को शीघ्रतापूर्वक झुलाने से मना कीजिए। हे राघव! झूले के भय को दूर कीजिए और **गिरिधर** कवि के द्वारा गाई गई सीताजी की रक्षा कीजिए, उन्हें संभाल लीजिए।

विशेष– यह गीत पूर्वी उत्तर प्रदेश की कजरी (कञ्जली) की ढाल में निबद्ध है। इसके बोल हैं– अरे रामा! मन्दाकिनि के तीरे, राघव झूले हे हरे।

सन्दर्भश्लोकः

सङ्केतैः वारितं दोलां मन्दयन्तं च लक्ष्मणम् ।
रामेण वीक्ष्य वीताभीः सीता प्रीता बभूव ह।।१।।

भौमी–श्रीराम के द्वारा संकेत से ही रोके गए लक्ष्मणजी को हिंडोला धीरे-धीरे चलाते देख भय से मुक्त सीताजी बहुत प्रसन्न हुईं।

गीत संख्या-४

दोलति दोलामवधविहारी
सह सीतासुकुमारी हे।।
वर्षां ऋतुं परमरमणीयां
रामो वीक्ष्य कामकमनीयाम् ।
दोलति दोलां जनसुखकारी
सह सीतासुकुमारी हे।।१।।
सुखदः शुभः श्रावणो मासः
विहितवारिधरवारिविलासः
दोलां दोलति नरतनुधारी
सह सीतासुकुमारी हे।।२।।
समुड्डीयते वियति विहङ्गः
पी पी रटति चतुरसारङ्गः।
दोलां दोलति भवभयहारी
सह सीतासुकुमारी हे।।३।।
शिशुरविकिरणवसनपरिवीतः
कविवरगिरिधरसुगिरागीतः ।
दोलां दोलति विपद्विदारी
सह सीतासुकुमारी हे।।४।।

भौमी– अवधबिहारी श्रीराम झूला झूल रहे हैं और उनके साथ सुकुमारी सीताजी भी विराजमान हैं। परमरमणीय और काम की भी इच्छा का आश्रय बनी हुई वर्षा ऋतु को देखकर भक्त सुखकारी श्रीराम झूला झूल रहे हैं। मेघों के जल-विलास को प्रस्तुत करने वाला सुंदर श्रावण महीना सुख दे रहा है और मनुष्य तनुधारी श्रीराम सीताजी के साथ झूला झूल रहे हैं। आकाश में पक्षी उड़ रहे हैं, चतुर चातक पी-पी रट रहा है। भवसागर का भय हरने वाले श्रीराम सीताजी के सहित झूला झूल रहे हैं। बालसूर्य के समान वस्त्र धारण किये हुए, श्रेष्ठ कवि **गिरिधर** की सुगिरा अर्थात् देववाणी में गाये गए विपत्तियों को नष्ट करने वाले भगवान राम श्रीसीताजी के साथ झूला झूल रहे हैं।

गीत संख्या-५

रामो गायति :-

सीते दोलायामावाभ्यां सुखं रम्यताम् ।
भिया विश्वतो विरम्यताम्।।१।।
स्वयं दोल्यमाना दोला मञ्जुमारुतेन लोला।
कण्ठबद्धबाहुलतं समागम्यतां भिया विश्वतो विरम्यताम् ।।२।।
पश्य नभसि मेघमालां बलाकावलीं रसालाम्।
मनोवने रसेशेन मुदाऽऽरम्यतां भिया विश्वतो विरम्यताम् ।।३।।
पी पी चातको ब्रवीति शिखी नटन्नो नवीति।
नाकिभिश्च नाकनायकेन नम्यतां भिया विश्वतो विरम्यताम्।।४।।
गीयमानाभ्यां सुरेन्द्रैः सीतारामाभ्यां मुनीन्द्रैः।
गिरिधरस्य कवेरागश्चयः शम्यतां भिया विश्वतो विरम्यताम्।।५।।

भौमी–श्रीराम गा रहे हैं–हे सीते! अब हम दोनों इस झूले पर सुखपूर्वक रम जाएँ और सब ओर से भय समाप्त हो जाय। देखो, मंद-मंद चल रहे वायु के द्वारा यह हिंडोला अपने आप चल रहा है। अतः हम दोनों गलबहियाँ करके, मिलकर झूला झूलें। देखो, आकाश में उमड़ रही मेघमाला को तथा सुन्दर पंक्ति को हम दोनों के मन वन में शृंगार रस अपना उद्यान बना ले। चातक पी-पी बोल रहा है और मोर नाचता हुआ हम दोनों को प्रणाम कर रहा है। आज तो स्वर्ग के देवता और इन्द्र भी हमारे झूला महोत्सव को नमन करें। इस प्रकार श्रेष्ठ देवताओं एवं मुनीन्द्रों द्वारा गाये जा रहे श्रीसीतारामजी के द्वारा **गिरिधर** कवि के पापों का समूह नष्ट कर दिया जाय।

विशेष- यह गीत मिर्जापुरी के कजरी ढाल पर निबद्ध है। इसके बोल हैं-

मीरा मगन भई हरिगुण गाइकै, नयन जल गिराइकै न।

सन्दर्भश्लोकः

पर्जन्यं स्वरुचा चलां दयितया शार्ङ्गेण शाक्रं धनुः
ज्याघोषैः स्तनितं महीजनिमनस्सद्रागतो व्रीडयन्।
केशैः खं सुमनः स्मितेन शिखिनं प्रेम्णा कृपावृष्टितः
सद्वृष्टिं मणिपर्वते विजयते दोलाविहारी हरिः।।१।।

भौमी–कवि वर्षा के उपकरणों को भगवान श्रीराम के शारीरिक उपादानों से उपमित करते हुए कहते हैं– मेघ को अपनी कांति से, बिजली को अपनी प्रियतमा सीताजी से, इन्द्रधनुष को शार्ङ्ग धनुष से, मेघ गर्जन को अपने धनुष टंकार से, जीवों के मन को सत् संकल्प से, आकाश को केशों से, पुष्पों को मुस्कान से, मयूर को प्रेम से, वर्षा को कृपावृष्टि से लज्जित करते हुए, मणिपर्वत पर विराजमान झूला झूल रहे भगवान श्रीराम की जय हो।

गीत संख्या-६

दोलां दोलायेते मोदमानौ ब्रह्मदम्पती।।
चलाकन्दगौरश्यामकोटिकामकमनीयौ ।
लोकलोचनाभिरामस्वाभिरामरमणीयौ ।
दोलां लीलायेते एधमानौ ब्रह्मदम्पती।।१।।
शुभं श्रावणं सुमासं हरितभूमिवनविलासम्।
दर्शं दर्शं हर्षं हर्षं हासं हासं मन्दहासम्।
दोलां खेलायेते वर्धमानौ ब्रह्मदम्पती।।२।।
वीज्यमानौ सप्रसूनदेवलोकपारिजातैः।
प्रेज्यमानौ मन्दमन्दमलयमञ्जुशीतवातैः।
दोलां मालायेते स्पृश्यमानौ ब्रह्मदम्पती।।३।।
सुरैः नृत्यवादगीतकलितपावनसङ्गीतैः।
सुकविगिरिधराभिगीतदेववाक्पुनीतगीतैः ।
दोलां लोलायेते दृश्यमानौ ब्रह्मदम्पती।।४।।

भौमी- आज मणिपर्वत पर परब्रह्म दम्पती सीतारामजी झूला झूल रहे हैं। बिजली और बादल के समान गौर-श्याम करोड़ों कामों की इच्छा के विषय बने हुए समस्त लोकों के नेत्रों को आनन्द देने वाले तथा स्वयं में रमने वाले योगियों के लिए भी रमणीय परमेश्वर दम्पती सीतारामजी धीरे-धीरे झूला झूल रहे हैं। सुंदर श्रावण मास को तथा हरी-भरी पृथ्वी के सौंदर्य को देख-देखकर प्रसन्न हो-होकर मंद मुस्कान से हँस-हँसकर भगवान श्रीसीताराम हिंडोले को खिलौना बनाकर झूल रहे हैं। पुष्पों से युक्त देवलोक के कल्पवृक्षों के द्वारा पंखे झले जाते हुए, मंद-मंद मलय वायु द्वारा धीरे-धीरे हिलाए जाते हुए, अन्योन्य का स्पर्शसुख अनुभव करते हुए, परमेश्वर दम्पती झूले को माला का आकार प्रदान कर रहे हैं। नृत्य, वाद्य और गीत से युक्त दिव्य संगीत वाले देवताओं द्वारा तथा श्रेष्ठकवि **गिरिधर** के द्वारा गाए हुए संस्कृत भाषा में पवित्र गीतों से प्रसन्न होकर भक्तों के नेत्र के विषय बने हुए श्रीसीतारामजी झूले को स्वयं झुला रहे हैं।

गीत संख्या-७

अधिमणिमयगिरि रामो विजयते दोलाविहारी श्रीहरिः।
सीताहृदयललामो विजयते दोलाविहारी श्रीहरिः।।१।।
श्रावणमासिसकलसुखदायिनि जनसुखकारी श्रीहरिः।
अभिनवजलधरश्यामो विजयते दोलाविहारी श्रीहरिः।।२।।
वर्षति मधुरमधुरमथगर्जति घने भवहारी श्रीहरिः।
पूरितसखीजनकामो विजयते दोलाविहारी श्रीहरिः।।३।।

दशरथसुतगजो मैथिलिहृद्भवमण्डलवारी श्रीहरिः।
स्वजननयनविश्रामो विजयते दोलाविहारी श्रीहरिः।।४।।
दीव्यन्त्यां दिवि दीव्यति लोके देवभयहारी श्रीहरिः।
गिरिधरमनोऽभिरामो विजयते दोलाविहारी श्रीहरिः।।५।।

भौमी– आज मणिपर्वत पर दोला विहारी श्रीराम सबसे अधिक सुशोभित हो रहे हैं। सीताजी के हृदय के रत्न श्रीराम सर्वाधिक सुन्दर लग रहे हैं। सबको सुख देने वाले श्रावण महीने में भक्तों के सुखकर नीलमेघ के समान सुन्दर श्रीराम सर्वाधिक शोभा सम्पन्न हो रहे हैं। मधुर-मधुर गर्जना करते हुए वरसते हुए मेघ की उपस्थिति में भवभयहारी भक्तों की कामना पूर्ण करने वाले श्रीहरि भगवान राम सर्वाधिक सुन्दर लग रहे हैं। सीताजी का वक्षोरुह मण्डल ही जिनका मनोबन्धन है, ऐसे दशरथनन्दन गजेन्द्र और भक्तों के मन में विश्राम करने वाले भूलाविहारी श्रीराम आज सर्वाधिक सुन्दर लग रहे हैं। स्वर्गलोक के प्रकाशमान होते रहने पर एवं देववर्ग के प्रसन्न होते समय, देवताओं के भय का हरण करने वाले, **गिरिधर** कवि के मन को आनन्द देने वाले झूलाविहारी श्रीराम सबसे उत्कृष्ट दिख रहे हैं।

विशेष– यह गीत जौनपुरी कजरी के धुन में निबद्ध है।

गीत संख्या-८

रामो गायति लक्ष्मणं प्रति–

शनैर्दोलां दोलय लक्ष्मणकुमार!
प्रजावती ते भीता।।
दोला भवतु न समधिकलोला
सीता प्रसीदतु नीलनिचोला।
सुखयैनां कलितसुखसार।। प्रजावती ....।।१।।
मङ्गलमयी वर्षा ऋतुरेषा
भौमी भासतां विगतक्लेषा।
अलं कोपयित्वा हृतभवभार।। प्रजावती .....।।२।।
मोदय महीजां सुमित्रानन्दवर्धन
खेदय न चैनां क्षपितभवबन्धन।
सम्प्रसादयैनां सुमसुकुमार।। प्रजावती ....।।३।।
दोलोत्सवं गायन्तु चिरं गन्धर्वा
ध्यायन्तु दृश्यमिदं द्रुहिणहरिशर्वाः।
शृणु गिरिधरजीवनाधार।। प्रजावती ....।।४।।

भौमी– श्रीलक्ष्मण को सम्बोधित करके श्रीराम गा रहे हैं-हे कुमार लक्ष्मण! झूला धीरे-धीरे चलाओं, तुम्हारी भाभी डर रही हैं। यह हिण्डोला बहुत चञ्चल न हो, नील परिधान वाली सीताजी प्रसन्न हो जायँ। हे

जीवों के सुखतत्व के रचयिता लक्ष्मण! तुम सीताजी को प्रसन्न करो। हे भवभारहारी लक्ष्मण! यह वर्षा ऋतु मंगलमयी है। इसमें सीताजी का क्लेश समाप्त होना चाहिए, वे प्रसन्नता से सुशोभित हों, उन्हें रुष्ट करना उचित नहीं है। हे सुमित्रानन्दवर्धन लक्ष्मण! पृथ्वीपुत्री सीताजी को तुम प्रसन्न कर दो। हे संसार का बन्धन काटने वाले लक्ष्मण! तुम सीता जी को दुःखी मत करो। हे पुष्प के समान सुकुमार अनुज! सीताजी को प्रसन्न कर लो। तुम्हारी भाभी डर रही हैं। इस झूला-महोत्सव को गन्धर्व गायें, इस दृश्य का ब्रह्मा, विष्णु, शंकर ध्यान करें; हे **गिरिधर** कवि के जीवन के आधार लक्ष्मण! सुनो, झूला धीरे-धीरे झुलाओ, तुम्हारी भाभी डर रही हैं।

गीत संख्या-९

हिन्दोलायां विराजन्तौ जयेते जानकीरामौ।
सुदोलायां समाजन्तौ जयेते जानकीरामौ।।
महितमणिपर्वते रम्ये प्रणम्ये योगिनां गम्ये।
परमपावनप्रभावन्तौ जयेते जानकीरामौ।।१।।
विराजद्राजपरिवारे सभाजच्चित्रप्रावारे।
विवुधविश्रुतविभावन्तौ जयेते जानकीरामौ।।२।।
प्रवर्षति वारिसुरराजे विहितसेवे स्वसम्राजे।
घनाघनघनघटावन्तौ जयेते जानकीरामौ।।३।।
सुनृत्ये वाद्यसङ्गीते गदितगिरिधरमधुरगीते।
ललितलक्ष्मीच्छटावन्तौ जयेते जानकीरामौ।।४।।

भौमी- श्रीलक्ष्मण को सम्बोधित करके पुनः श्रीराम गा रहे हैं-हिण्डोले में विराजमान श्रीसीतारामजी विजयी हो रहे हैं। सुन्दर झूले में पूर्ण रूप से व्यवस्थित अर्थात् साज-सामाज के साथ बैठे हुए श्रीसीतारामजी विजयी हो रहे हैं। सबके प्रणम्य योगियों के चिन्तन के विषय पूजनीय और रमणीय मणिपर्वत पर अत्यन्त पावन प्रभा से युक्त श्रीसीतारामजी की जय हो रही है। राजपरिवार के विराजमान होते हुए और विचित्र चित्रावली से युक्त परदों की उपस्थिति में अनेक देवताओं में प्रसिद्ध, कान्ति से युक्त श्रीसीतारामजी का उत्कर्ष बढ़ रहा है। इन्द्र अपने सम्राट श्रीराम की सेवा करते हुए दिव्य जल की वर्षा कर रहे हैं और देवतागण अपने समूह के साथ प्रभु का यह दृष्य देख रहे है और श्रीसीतारामजी विजयी हो रहे हैं। सुन्दर नृत्यवाद्यसंगीत के प्रस्तुत होते हुए **गिरिधर** कवि के द्वारा गाए हुए गीतों के प्रस्तुति के समय ही सुन्दर झूले की शोभा से युक्त श्रीजानकी एवं श्रीराम की विजय हो रही है।

गीत संख्या-१०

सखी गायति-

अवधनागरं दोलयेऽद्याधिदोलम्।
रघूणां वरं दोलयेऽद्याधिदोलम्।।
सखि समागतं पश्य श्रावणमासं।

वर्षाविवर्धितवसुमतीविलासम् ।
सौन्दर्यसागरं दोलयेऽद्याधिदोलम्।।१।।
मह्यां रुवन्ति प्रेममत्ता मयूराः।
पी पी ब्रुवन्ति चातकाश्च भावपूराः।
श्रीसीतावरं दोलयेऽद्याधिदोलम्।।२।।
शीतलसुगन्धमन्दवाते विभाते।
समुल्लसत्कृषीवलवारिपारिजाते ।
सुसद्गुणाकरं दोलयेऽद्याधिदोलम्।।३।।
लोल्यमानं पश्य नवनीरधरश्यामम।
दोल्यमानं पश्य सखि सीताभिरामम्।
मुखरगिरिधरं, दोलयेऽद्याधिदोलम्।।४।।

भौमी- आज अवध के चतुर राजकुमार को मैं झूले में झुला रही हूँ। रघुओं में श्रेष्ठ श्रीराम को आज मैं झूले में झुलाऊँगी। वर्षा के द्वारा जिसने पृथ्वी का आनन्द बढ़ाया है, ऐसे श्रावणमास को आया हुआ देखो। आज मैं सौन्दर्य के समुद्र को ही झूले पर झुलाऊँगी। प्रेम से मतवाले मोर पृथ्वी पर आ-आकर बोल रहे हैं– और भाव से परिपूर्ण चातक पी-पी रट रहे हैं। मैं भी सीतावर श्रीराम को झूले पर झुला रही हूँ। जहाँ किसानों के लिए जल ही कल्पवृक्ष बन गया हो ऐसे शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु से युक्त प्रभातीय वातावरण वाले श्रावण महीने में मैं सद्गुणों के भाण्डागार श्रीराम को झूले पर झुलाऊँगी। सखी, नीलमेघवर्णी श्रीराम को आज हिलते हुए देखो। **गिरिधर** कवि जिनके लिए मुखरित हो उठे हैं, उन्हीं श्रीराम को आज मैं झूले पर झुलाऊँगी।

विशेष- यह गीत बुन्देलखण्डी झूला लोकधुन में निबद्ध है। इसके बोल हैं– अवध सैया तोहे झूला झुलाऊँ।

गीत संख्या-११

सखि! दोलायां दोलय सीतास्वजनम्।
जानकीचातकीसान्द्रस्वातिघनम् ।।
आगतोऽयं मधुरश्रावणो मासः।
वर्षावर्धितवसुन्धराविकासः ।
सखिदोलायां दोलय सुमुनिजनधनम्।।१।।
सरति सररसररसरसः समीरः।
शीतलः सहितसरयूसुनीरः।
सखि! दोलायां दोलय भक्तभयभञ्जनम्।।२।।
यशो गायन्ति कलं गन्धर्वाः।
छविं ध्यायन्ति विधिहरिशर्वाः।

सखि! दोलायां दोलय स्वजनरञ्जनम्।।३।।
रत्नपर्वते प्रसूनैः परीते।
गदितगिरिधरविबुधगीः सुगीते।
सखि! दोलायां दोलय राजीवनयनम्।।४।।

भौमी– हे सखी! आज सीताजी के साजन को झूले पर झुलाओ। जनकनन्दिनीरूप चातकी के स्वाती मेघ स्वरूप श्रीराम को झूले पर झुलाओ। देखो, सरर–सरर शब्द करता हुआ जलकणों से युक्त वायु चल रहा है जो शीतल और सरयू के जल से युक्त है। हे सखी! भक्तभयहारी प्रभु को आज झूले पर झुलाओ। गन्धर्व यश गा रहे हैं तथा विष्णु, ब्रह्मा, शिव श्रीराघवेन्द्र की छवि का ध्यान कर रहे हैं। हे सखि! अपने जनों का मनोरंजन करने वाले प्रभु को झूले पर झुलाओ। जिसका ध्यान कर **गिरिधर** कवि ने संस्कृत के सुन्दर गीत गाए, ऐसे रत्नों से युक्त मणिपर्वत पर राजीवलोचन श्रीराम को झूले पर झुलाओ।

गीत संख्या–१२

सीता गायति–

दोलां विरमय सुभुजनिषूदन।
स्वपतनविस्मयभिया बिभेमि।।
दोलाद्रुततरवेपितमनसा
कीटभृङ्गतां याता रभसा।
दोलां प्रशमय कुरुजनिषूदन
निजतनुविनिमयभिया बिभेमि।।१।।
पौरस्त्यो बहु वहति समीरः
समधिकशीतलनीरदनीरः।
दोलां विगमय खलकुलसूदन।
वसनविपर्ययभिया बिभेमि।।२।।
भावुकभरतसपदि सम्भालय
दोलां द्रुततरगतिं न चालय।
दोलां नियमय हे छलसूदन
मालापर्ययभिया बिभेमि।।३।।
लक्ष्मण लघुलघुदोलां चालय
सेवामर्यादां प्रतिपालय।
दोलां विदमय हे बलसूदन
भूषणसंशय भिया बिभेमि।।४।।

गिरिधरप्रभौ रतिं निर्धारय
निर्मलसेवायशो विधारय।
दोलां प्रगमय हे रिपुसूदन
संभ्रमपरिचयभिया विभेमि।।५।।

भौमी- सीताजी कह रही हैं- हे सुबाहु के शत्रु श्रीराम! थोड़ी देर के लिए झूला बन्द कर दीजिए। मैं अपने गिरने के भय से डर रही हूँ। झूला तेज चलने के कारण कम्पित मन वाली मैं इस वेग से कीट-भृंगता को प्राप्त हो रही हूँ अर्थात् आपमय हो गई हूँ। हे पृथ्वी के रोगरूप राक्षसों को नष्ट करने वाले प्रभु! झूले को समाप्त कर दीजिए। मैं अपने शरीर के परिवर्तन के भय से डर रही हूँ। कहीं आपका चिन्तन करते-करते मैं पुरुष न हो जाऊँ। देखिए, बादल के जलकण से युक्त ठण्डी-ठण्डी पुरवैया बयार चल रही है। हे राक्षसों को नष्ट करने वाले श्रीराघव! झूले को विश्राम दे दीजिए, मैं वस्त्रों की अस्त-व्यस्तता के भय से डर रही हूँ। हे भावते भरत! शीघ्र संभालिए, झूला शीघ्रता से मत चलाइए। छल आदि दोषों को नष्ट करने वाले भरतजी! झूला रोक दीजिए। मैं माला के टूटने के भय से डर रही हूँ। लक्ष्मण! हिंडोला धीरे-धीरे चलाओ, सेवा-मर्यादा व्रत का पालन करो। हे राक्षसों की सेना के संहारक! झूला नियंत्रित कर लो। मैं अलंकारों के संशय के भय से भयभीत हूँ। हे शत्रुघ्न! **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम में भक्ति का विस्तार करो, निर्मल सेवा-व्रत को निश्चित करो और थोड़ी देर के लिए झूला बन्द कर दो। मैं सम्भ्रम के परिचय के भय से भयभीत हो रही हूँ अर्थात् कहीं झूले के तरंग में संभ्रम अधिक न हो जाय।

सन्दर्भश्लोकः

वर्षाविलसद्व्योमनि जलदाऽम्बरविलुप्तहरिधाम्नि।
कान्तं जलधरकान्तं सीता प्राह स्मिता कान्ता।।१।।

भौमी-मेघ के आडम्बर से जहाँ सूर्यनारायण की किरणें लुप्त हो गई हैं, ऐसे वर्षा ऋतु से सुन्दर आकाश मण्डल के हो जाने पर मेघवर्णा अपने प्राणधन से मुस्कराती हुई सुन्दरी सीताजी बोलीं-

गीत संख्या-१३

दोलां दोलय प्रिय राघव समायातः श्रावणः।
समायातः श्रावणः सीतामनोद्रावणः,
दोलां दोलय प्रिय राघव समायातः श्रावणः।।
पश्य गगनं विशालं मेघमालया रसालम्
शोभाविगणिततमालं तोषितरविरश्मिजालम्
वर्धमानमन्महोत्सवसुप्रभातः श्रावणः।।१।।
नृत्यन्मयूरः प्रणौति मधुरं चातकोऽभिरौति
गीतं सारङ्गः प्रस्तौति सौम्यः सारसः संस्तौति
भक्तभक्तभीमरौरवसंविभातः श्रावणः।।२।।

भूमिः शस्यश्यामा भाति मह्यं सल्ललामा राति
हर्षं सुप्रणामा लाति भक्तान् स्वाभिरामा पाति
एधमानभाग्यवैभवबल्गुवातः श्रावणः।।३।।
आर्यपुत्र! मा विलम्बय शीघ्रं दोलां समालम्बय
विश्वमङ्गलं कदम्बय काञ्चित् कारुणीं करम्बय
गिरिधरमनोरथमहार्णवपारिजातः श्रावणः।।४।।

भौमी- हे प्यारे राघव! अब झूला झूलिए, सावन आ गया है। यह सावन मुझ सीता के मन को पिघला रहा है। देखिए प्रभु अपनी शोभा से तमाल को लज्जित करने वाला सूर्यनारायण की किरणों को स्वयं में समेटा हुआ यह आकाश मेघमाला से बहुत सुन्दर लग रहा है। मेरे मन के महोत्सव को बढ़ाने वाला सुन्दर प्रभा से युक्त सावन आ गया है। आप झूला झूलिए। नाचता हुआ मयूर आपको नमन कर रहा है और चातक मधुर स्वर में पी-पी की रट लगा रहा है! भ्रमर मधुर गीत गा रहा है और सौम्य सारस आपकी संस्तुति कर रहा है। इस प्रकार भक्तों के भयंकर रौरव को नष्ट करने वाला सावन सुशोभित हो रही है। देखिए, शस्य श्यामला पृथ्वी सुशोभित हो रही है और श्रेष्ठरत्न वाली भूमि मुझे महनीय आनन्द दे रहा है। शोभन प्रणाम वाली पृथ्वी हर्ष ला रही है, सभी को आनन्द देने वाली वसुन्धरा भक्तों की रक्षा कर रही है। इस प्रकार भाग्य-वैभव को बढ़ाने वाला दिव्य वायु से युक्त श्रावण सुशोभित हो रहा है। हे आर्यपुत्र! अब विलम्ब मत कीजिए, झूले पर विराजिए, विश्व के मंगल को समूहबद्ध कर दीजिए और किसी अपूर्व करुणा को इकट्ठी कर लीजिए क्योंकि यह श्रावण मास **गिरिधर** कवि के मनोरथरूप महासागर का कल्पवृक्ष बन गया है।

विशेष- यह गीत ब्रज परम्परा की झूला गीत की ढाल में निबद्ध है। इसका बोल है- झूला झूलो प्यारी राधे फिर आयी बदरी।

गीत संख्या-१४

सखी गायति-

हरे राम! रमय रमणरसरामां,
सुदृशमभिरामां हे हरे।।
अधिरोह तया सह दोलां
श्रितनीपसुतरुमतिलोलाम् ।
हरे राम! रमय रसिकवरवामां,
सुदृशमभिरामां हे हरे।।१।।
बर्भर्तु रसं वरवर्षा
क्लान्तिं जर्हर्तु सहर्षा।
हरे राम! रमय जितस्मरवामां।
सुदृशमभिरामां हे हरे।।२।।

बाभाति भूमिरतिरम्या
राराति रतिं सुरनम्या।
हरे राम! रमय भूमिजां भामां।
सुदृशमभिरामां हे हरे।।३।।
गिरिधरोऽपि गायतु गीतं
श्रावणशुभभावपरीतम् ।
हरे राम! रमय रमामभिकामां
सुदृशमभिरामां हे हरे।।४।।

भौमी- सखी गा रही है–हे श्रीहरे! हे योगियों को रमाने वाले भगवान राम! हे रसिकों को रस देने वाले प्रभु! आप सुन्दर नेत्रों वाली अत्यन्त सुन्दर रमणीय सीताजी को रमण कराइये। कदम्ब के वृक्ष पर लटक रही अत्यन्त चञ्चल हिंडोला पर आप सीताजी सहित विराजें और श्रेष्ठ महिला शिरोमणि सीताजी को रमाएँ। हे भगवन्! वर्षा ऋतु आनन्द को धारण करे और वह प्रसन्न मुद्रा में रहती हुई लोगों की थकावट दूर करे। आपश्री रति को भी जीतने वाली सीताजी को रमाएं। देवताओं की भी प्रणम्य यह रमणीय अयोध्याभूमि बहुत ही शोभित हो रही है। दर्शन करने वालों को आपश्री की भक्ति प्रदान कर रही है। भगवन्! आप श्रेष्ठ लक्षणों वाली पृथ्वीपुत्री जानकी जी को रमाएँ। गिरिधर कवि भी श्रावण के सुन्दर भावों से युक्त गीत गायें। हे हरे! हे सर्वत्र रमने वाले श्रीराघव! आप झूला झूलने के लिए उत्सुक अपनी रमा जानकीजी को प्रसन्न करें।

विशेष- यह गीत पूर्वी उत्तर प्रदेश की कजली की लोकधुन में निबद्ध है। इसका बोल है–

''हरे रामा झूलत अवध बिहारी श्रीजनककुमारी रे हरी।''

गीत संख्या-१५

सखी गायति-

अद्य दोलायां लसति सखि! सीतावरः।।
सद्गुणपरीतया विनीतया सीतयाऽभीतः
स्वर्णशृङ्गे चपलयेव घनः सत्वरः।।१।।
राशं राशं रश्मिं लघुलक्ष्मणो दोलायमानो
दयते दयिताया दयालुदेवरः।।२।।
ध्यायन्ति द्रुहिणहरिशर्वाः गायन्ति गुणान् गन्धर्वाः
सर्वे वर्णयन्ति मिथो धन्योऽवसरः।।३।।
वर्षन्ति प्रसूनं देवाः कुर्वते ह्यनेकाः सेवाः,
मोदमानो गायं गीतं कविर्गिरिधरः।।४।।

भौमी- सखी गाती है-हे सखी! आज सद्‌गुणों से युक्त विनम्र सीताजी के साथ सीतापति भगवान श्रीराम सुमेरु पर्वत पर बिजली से युक्त गतिमान मेघ की भाँति झूले में विराज रहे हैं। मधुर-मधुर वार्ता करके झूले की रस्सी पकड़कर धीरे-धीरे झुलाते हुए दयालु देवर लक्ष्मण जीवमात्र पर दया करने वाली सीताजी पर दया कर रहे हैं। जिससे झूले से उनकी भाभी-माँ को निरर्थक कष्ट न हो। आज ब्रह्मा, विष्णु, शिव इस स्वरूप का ध्यान कर रहे हैं। गन्धर्व गुणों का गान कर रहे हैं सभी परस्पर में कह रहे हैं कि यह अवसर धन्य है। देवता पुष्प-वृष्टि कर रहे हैं और अनेक प्रकार की सेवाएँ प्रस्तुत कर रहे हैं तथा **गिरिधर** कवि भी सीताराम सम्बन्धी झूला गीत गाते हुए बहुत प्रसन्न हो रहे हैं।

गीत संख्या-१६

सीतारामौ सुखं रमेते श्रावणोत्सवे दोलिकामहोत्सवे हे
दृष्ट्वा वर्षां ऋतुं सहर्षां प्रापितकृषीवलप्रोत्कर्षाम्।
नानासरस्सरिद्भिः सङ्गमिते महार्णवे
दोलिकामहोत्सवे हे।।१।।
कूजति वियति विशिष्टविहङ्गे
पी पी रटति कलं सारङ्गे।
विटिते सुखं वर्षया तापत्रितयपराभवे
दोलिकामहोत्सवे हे।।२।।
पश्यति विबुधवरूथे दूरे
नृत्यति मह्यां मुदितमयूरे।
राजति विविधविधाने वैष्णवनृणां वैभवे
दोलिकामहोत्सवे हे।।३।।
गायति कलं गिरिधरे गीतं
सीताराघवयशःपरीतम् ।
ध्यायति विनिर्निमेषं पार्वतीपतौ शम्भवे
दोलिकामहोत्सवे हे।।४।।

भौमी- आज श्रावण मास में प्रकट हुए झूला महोत्सव में भगवान श्रीसीताराम सुखपूर्वक रम रहे हैं। किसानों का उत्कर्ष बढ़ाने वाली प्रशल वर्षा ऋतु को देखकर अनेक तालाबों नदियों के साथ सागर का संगम हो जाने पर झूला महोत्सव में भगवान श्रीसीताराम आनन्द का अनुभव कर रहे हैं। जब आकाश में विशिष्ट पक्षीगण कलरव कर रहे हैं और चातक मधुर पी-पी शब्द को रट रहा है तथा वर्षा ने सुखपूर्वक आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक कष्टों को दूर कर दिया है उस समय झूले में श्रीसीताराम रम रहे हैं! देवसमूहों के दूर से दर्शन करते समय पृथ्वी पर आकर तुमुल मोर के नृत्य करते समय अनेक विधानों के साथ वैष्णव जनों के महोत्सव के शोभायमान रहते समय श्रीसीतारामजी झूलने में विराज रहे हैं। श्रीसीतारामजी के यश से युक्त

दिव्य-गीत का जब **गिरिधर** कवि गान कर रहे हैं और जब इस दृश्य का कल्याणों के जन्मदाता पार्वती पति शिवजी ध्यान कर रहे हैं उसी समय श्रीसीताराम जी हिंडोल पर विराजमान होकर सुख का अनुभव कर रहे हैं।

विशेष- यह गीत पूर्वी उत्तर प्रदेश की कजरी लोकधुन में निबद्ध है। इसका बोल है-कैसे खेलन जाइ सावन में कजरिया बदरिया घिर आई मोहना।

गीत संख्या-१७

सख्यः गायन्ति-

सीतारामौ मनोदोलारामौ भ्रामयामहे हो रामयामहे।।
अलौकिकौ चपलापयोधरसमश्रियौ,
विबुधव्रततिविटपोपमौ समप्रियौ।
प्रतिमनोवृत्तिदोलां भ्रामयामहे हो रामयामहे।।१।।
परस्परं परिष्वजमानौ दिव्यदम्पती,
श्रावणीयसुखं भजमानौ सन्नृणाङ्गती।
प्रेमदामभिस्तौ दामयामहे हो रामयामहे।।२।।
सुमतिचकोरीपीतच्छविसुधामन्दिरौ।
भावनाकैरवीभवचारुचान्द्रीचन्दिरौ।
भक्तिशरद्राकाधाम्नि धामयामहे हो रामयामहे।।३।।
कविगिरिधरगीतगीतगुणगौरवौ।
प्रियधृतरौरवौ विहतधृतरौरवौ।
कोटिकोटिपातकानि सामयामहे हो रामयामहे।।४।।

भौमी- आज अपने मनरूप हिंडोले पर हम सीतारामजी को झुलायेंगी और रमायेंगी। अलौकिक बिजली और बादल के समान शोभा वाले कल्पलता और कल्पवृक्ष के समान सुन्दर सीतारामजी को हम अपने प्रत्येक मनोवृति रूप हिंडोला पर पधरायेंगी और झुलायेंगी। एक दूसरे को आलिंगन करते हुए एवं श्रावणी सुख का अनुभव करते हुए सज्जन जीवों के एकमात्र आश्रय दिव्य दम्पति सीतारामजी को हम प्रेम की रस्सी से बाँध लेंगी और झुलायेंगी। सुमति रूप चकोरी ने जिनकी छविसुधा का पान किया है ऐसे भावनारूप कुमुदिनी को विकसित करने के लिए चन्द्रिका और चन्द्र स्वरूप श्रीसीतारामजी को हम भक्तिरूप शरद पूर्णिमा के दिव्यधाम में निवास करायेंगी और झुलायेंगी। **गिरिधर** कवि के गीतों द्वारा जिनका गुण-गौरव गाया गया है, जिन्होंने मृगचर्म धारण करने वाले विरक्तों को प्रेम दिया है और जिन्होंने शरणागतों के रौरव नरक को नष्ट किया है। ऐसे श्रीसीतारामजी से हम अपने करोड़ों-करोड़ों पापों को क्षमा करायेंगी और उन्हें झूला झुलायेंगी।

विशेष- यह गीत गुजराती गीत के ढाल पर निबद्ध है। इसका बोल है-

''आज अवध मा आनन्द छबाय रे छबाय रे भक्त प्रतिपाल आण्या दीन प्रतिपाल।''

गीत संख्या-१८

सख्यः गायन्ति-

दोलां राजय रघुनन्दन व्योमावृता नीरदाः।
व्योमावृता नीरदाः सोमाप्लुता नीरदाः।।
वर्षा वर्षति मनोज्ञा वारो भूरिभूमिभोग्याः
योग्याः प्रनर्दन्ति युज्या विज्ञालताः क्षीरदाः।।१।।
वातो वाति मन्दं मन्दं विभ्रन् नीरन्ध्रनिस्यन्दम्
श्रद्धाधियानन्दकन्दं त्वामागताश्चीरदाः।।२।।
मह्यां माद्यति मयूरो नृत्यन् भाति नातिदूरो-
ऽक्रूरो रौति स्वातिशूरो नद्यो भृतास्तीरदाः।।३।।
गायन् गिरिधरस्सुगीतं स्फीतं श्रावणीपरीतम्
द्रष्टुं त्वामवत्यभीरां सन्तश्श्रिताश्श्रीरदाः।।४।।

भौमी- सखियाँ गा रही हैं-हे रघुनन्दन! अब झूलना को सुशोभित कीजिए। आकाश में वे बादल घिर आये हैं, जो अमृत रस का वर्षण करेंगे। देखिए, सुन्दर वर्षा पृथ्वी के द्वारा भोग्य विपुल जल की वर्षा कर रही है योग्य बैल गर्जन कर रहे हैं। दिव्य लताएँ दुधारू हो गई हैं। अटूट प्रवाह वाले जल निर्झर को धारण करता हुआ वायु धीरे-धीरे चल रहा है और शरीर पर बल्कल वस्त्र प्रदान करने वाले सन्तजन आस्तिक बुद्धि से आपश्री आनन्दकन्द की शरण में आ रहे हैं। पृथ्वी पर अत्यन्त निकट आकर नाचता हुआ मोर पागल हो रहा है और स्वाति नक्षत्र में वीरता दिखाने वाला सौम्य चातक मधुर पी-पी रट रहा है तटों को तोड़ने वाली नदियाँ उफान पर आ गई हैं। सन्त मुस्कराकर दाँत की शोभा दिखाते हुए आपकी शरण में आ गए हैं और **गिरिधर** कवि भावनाओं से पुष्ट श्रावण गीत गाते हुए भयरहित आपश्री का स्तवन कर रहे हैं।

गीत संख्या-१९

सख्यः गायान्ति-

दोलय सुभगे दोलय सुभगे,
दोलायां सीतारामौ दोलय सुभगे।।
स्थिरचपलाचिन्मयपयोधरसमानौ ।
देवदनुजमनुजनिकरसततसेव्यमानौ ।
शुचिगौरश्यामौ दोलय सुभगे।।१।।
वसितनीलपीतमञ्जुनिर्मलदुकूलौ ।
नवलनलिनचरणशरणसुजनानुकूलौ ।
पावनप्रणामौ दोलय सुभगे।।२।।

अन्योन्यं सस्मितदृशं विलोकयन्तौ।
प्रणतनिकरलोकं सदा विशोकयन्तौ।
भवभयविरामौ दोलय सुभगे।।३।।
गायं गायं गिरिधरगदितगीतिगीतम्।
ध्यायं ध्यायं योगिध्येययुगलरूपनीतम्।
नयनाभिरामौ दोलय सुभगे।।४।।

भौमी- सखियाँ गा रही हैं-हे शुभांगी, सुभगे सखी! अब सीतारामजी को झूला पर झुलाओ। पवित्र बिजली और बादल के समान देवता, दानव और मानव समूह द्वारा निरन्तर सेवा का विषय बनाये गए पवित्र गौर-श्याम दम्पती को झूले पर झुलाओ। हे सौभाग्यवती! नीला और पीला परिधान धारण किए हुए नवीन कमल के समान चरण तथा भक्तों के शरणदाता, सज्जनों के अनुकूल पवित्र प्रणाम वाले सीतारामजी को झूले पर झुलाओ। एक-दूसरे को मुस्कराकर निहारते हुए और प्रणतजनों को निरन्तर शोकरहित करते हुए, भवभय के अभाव के स्थानरूप सीतारामजी को झूले पर झुलाओ। **गिरिधर** कवि के द्वारा स्पष्ट अक्षरों मे गाए हुए श्रीसीताराम सम्बन्धी गीतों को गा-गा कर और योगीजनों के भी ध्येय सौन्दर्यलक्ष्मी सम्पन्न श्रीसीतारामजी के युगलरूप का ध्यान कर करके नयनाभिराम किशोर दम्पती श्रीसीतारामजी को झूले पर झुलाओ।

विशेष- यह गीत दादरा ताल में निबद्ध है।

गीत संख्या-२०

सख्यः गायन्ति-

सीतावदनविधुचकोरं हे राघवं दोलयिष्ये।
वैदेहीमानसमहोरं हे माधवं दोलयिष्ये।।
कोटिकोटिकन्दर्पकमनीयमूर्तिम्।
दशरथमहारथमनोरथसुपूर्तिम्।
कोसलराजकिशोरं हे राघवं दोलयिष्ये।।१।।
तरुणमिहिरकिरणसुभगवसन्तं वसानम्।
निर्मलनिषङ्गकाण्डकार्मुकं दधानम्।
खलकुलकुलिषकठोरं हे राघवं दोलयिष्ये।।२।।
नीलनीरधरश्यामलोचनाभिरामम्।
आप्तकामपूर्णकामपुण्यप्रणामम्।
निटिलनयनकृते शुभमघोरं हे राघवं दोलयिष्ये।।३।।
समागते रसिकरसदश्रावणसुमासे।
मणिगिरिसमर्चितमहोत्सवविलासे।
गिरिधरविलोचनचोरं हे राघवं दोलयिष्ये।।४।।

भौमी- सखियाँ कहती हैं–हे सखियों! सीताजी के मुखचन्द्र के चकोर स्वरूप रघुकुल में प्रकट श्रीराम को मैं झूला झुलाऊँगी। विदेह तनया जानकीजी के मन को महोत्सव प्रदान करने वाले माधव अर्थात् चैत्र महीने में प्रकट मा अर्थात् सीतारूपिणी महालक्ष्मी के 'धव' अर्थात् पति श्रीराम को मैं झूले पर झुलाऊँगी। करोड़ों कामदेवों के समान कमनीय श्रीविग्रह महारथी दशरथजी के मनोरथों के पूर्ति स्थान कौसल राजकिशोर श्रीराम को मैं झूले पर झुलाऊँगी। बालसूर्य के समान सुन्दर पीताम्बर धारण करने वाले निर्दोष तर्कश-बाण और धनुष को स्वीकारे हुए राक्षस कुल के लिए वज्र के समान कठोर श्रीराम को मैं झूले पर झुलाऊँगी। नीले बादल के समान सुन्दर नेत्रों को आनन्द देने वाले स्वयं सम्पूर्ण काम्य वस्तुओं को प्राप्त किये हुए और भक्तों की सम्पूर्ण वासनाओं को पूर्ण करने वाले जिनका प्रणाम भी पवित्र है ऐसे भाल नेत्र शिवजी के लिए कल्याणकारी और कोमल श्रीराघव को मैं झूले पर झुलाऊँगी। मणि पर्वत के द्वारा जिनके महोत्सव समाज का पूजन और सम्मान किया गया है ऐसे रसिकों को आनन्द देने वाले श्रावण महीने के आ जाने पर **गिरिधर** कवि के नेत्रों को चुराने वाले श्रीराम को मैं झूले पर झुलाऊँगी।

विशेष- यह गीत मिथिला की लोकधुन में निबद्ध है।

सन्दर्भश्लोकः

मेघो मेहति मेदुरेऽवनितले पीयूषयूषं शनै-
रर्दत्यम्बुवदान्यमम्बुदमिव स्वातीजलं चातके।
वर्षर्तुं वरबर्हिणिस्वनटनैर्वर्धापयत्यादरात्
सीतेशं समुवाचचारुवदना श्रीचारुशीला सखी।।१।।

भौमी-जब मेघ धीरे-धीरे वरसा कर पृथ्वी तल को रसमय बना रहा था और जब चातक स्वाति के मेघ से अमृत के समान जलबिन्दुओं को माँग रहा था। जब मयूर अपना नृत्य करके वर्षा ऋतु का स्वागत कर रहा था, उसी समय सीतापति भगवान श्रीराम से सुन्दर मुख वाली श्रीचारुशीला सखी बोलीं–

गीत संख्या-२१

अधिरोहतां हिन्दोलनां श्रीसीताराघवौ।
श्रीसीताराघवौ हे नीतालाघवौ।।
समुपागतोऽयं श्रावणो मासो मनोहरः।
व्योमाश्रितः सद्द्रावणो मेघेन मेदुरः।
आरोहतां हिन्दोलनां हे सद्गुणार्णवौ।।१।।
वर्षन्ति वै पयोमुचः पृशतः सुशीतलाः।
कर्षन्ति हृत्सुधासिचः सिकताः सुनिर्मलाः।
संरोहतां हिन्दोलनां हे शम्भुशम्भवौ।।२।।
युवयोर्मुखेन्दुमाधुरीं सख्यो दिदृक्षवः।
श्रीमत्पदाब्जरेणुकाः शिरसा जिघृक्षवः।

परिरोहतां हिन्दोलनां हे भक्तवैभवौ।।३।।
युष्मन्मुखाम्बुजासवं सद्भिः प्रपीयताम्।
गिरिधरगिरा नक्तं दिवं गीतं प्रगीयताम्।
अभिरोहतां हिन्दोलनां हे मङ्गलोत्सवौ।।४।।

भौमी- हे सीताराघव सरकार! अब आप दोनों हिंडोले पर विराज जायें। हे नीता लाघव! अर्थात् गुरुता को प्राप्त किये हुए दिव्य दम्पती अब आप दोनों हिंडोले पर विराजें, देखिये, ये सुन्दर सावन का महीना आ गया। बादलों के कारण मधुर और सन्तों को भी द्रवित कर देने वाला यह मास आकाश को भी प्रभावित कर रहा है। हे श्रेष्ठगुणों के समुद्र श्रीसीतारामजी! अब आप दोनों हिंडोला पर आरूढ हो जाएँ। देखिये, ये बादल शीतल-शीतल बूँदें बरसा रहे हैं और अमृत का शेचन करने वाले मेघ हृदय को भी आकर्षित कर रहे हैं। बालुकाएँ बहुत निर्मल हो चुकी हैं। हे शिव का भी कल्याण करने वाले श्रीसीतारामजी! अब आप दोनों हिंडोला को स्वीकार करें। आप दोनों के श्रीमुखचन्द्र माधुरी के सखियाँ दर्शन करना चाहती हैं और आपश्री की चरणकमल की धूलि को मस्तक पर धारण करना चाहती हैं। हे भक्तों को वैभव प्रदान करने वाले सीतारामजी! आप हिंडोला को अलंकृत कीजिए। सन्तों के द्वारा आपके चरणकमल का मकरन्द पान किया जाए और **गिरिधर** कवि की वाणी के द्वारा दिनरात आपका ही गीत गाया जाए। हे मंगलमय महोत्सव वाले श्रीसीतारामजी! अब आप दोनों अभीष्ट झूले पर विराजें।

गीत संख्या-२२

सखि मन्दं मन्दं दोलय रसिकस्वजनम्,
सैरध्वजीसौम्यसारङ्गीस्वातीघनम् ।।
मणिपर्वते मञ्जुदोला सुलसिता।
चञ्चलसमीरणविलोला विलसिता।
तस्यां विभान्तं भुवनमोहनम्।।१।।
रश्मिं नियच्छ सखि! द्रुतमुच्छलन्तीम्।
दोलां संयच्छ सौम्ये दृढमुच्चलन्तीम्।
मा गाः प्रतीपं प्रतीपभञ्जनम्।।२।।
धौति तिलकलेखां लक्ष्मणाग्रजललाटीम्।
आर्द्रां पयोभिः पश्य पार्थिवीसाटीम्।
रञ्जयस्व भक्त्या प्रणतरञ्जनम्।।३।।
ध्यायन्ती युगलस्वरूपं प्रणीतम्।
गायन्ती गिरिधरगदितगेयगीतम्।
हृदये गोपय रामचन्द्राख्यं धनम् ।।४।।

भौमी- हे सखी! रसिक साजन को धीरे-धीरे झुलाओ। सीताजी रूप सौम्य चातकी के स्वाती मेघ-

स्वरूप श्रीराम को धीरे धीरे झुलाओ। मणि पर्वत पर सुन्दर झूला पडा है, जो चंचल वायु के झकोरे से हिलता हुआ बहुत सुन्दर लग रहा है उसी पर विराज रहे सभी भुवनों को मोह लेने वाले श्रीराम को धीरे-धीरे झुलाओ। हे सखी! उछलती हुई डोर को पकड़ लो और बहुत वेग से चलते हुए झूले को नियंत्रित कर लो। विपरीतताओं को नष्ट करने वाले श्रीराम के विपरीत मत चलो। सखी! तिलकरेखा से चमकते हुए लक्ष्मणजी के बड़े भैया श्रीराम के मस्तक को देखो और जल से गीली सीताजी की साड़ी देखो और भक्तों को आनन्द देने वाले प्रभु को अपनी भक्ति से प्रसन्न कर लो। इस समय दृष्टिगोचर हो रहे युगलस्वरूप का ध्यान करती हुई और **गिरिधर** कवि द्वारा रचित गेयगीत का गान करती हुई श्रीराम रूप सुन्दर धन को हृदय में छुपा लो।

गीत संख्या-२३

हिन्दोलायाममुष्यां दोलेते सीतारामौ।।
वर्षेयं समायोग्या बाभाति मनोज्ञाभा।
कृषकाणां मनोभोग्या रराति रसल्लाभा।
हिन्दोलायाममुष्यां दोलेते पूर्णकामौ।।१।।
पृषतैश्च वारिदानां आर्द्रा मैथिलीशाटी।
दूरिताश्रियो रेखा राजते हरिलालाटी।
हिन्दोलायाममुष्यां दोलेते आप्तकामौ।।२।।
गर्जन्ति मुहुर्मेघा त्रस्यति सीताचित्रे
वर्षन्ति मुहुर्बिन्दून् हृष्यत्यभीताचित्ते।
हिन्दोलायाममुष्यां दोलेते गौरश्यामौ।।३।।
लक्ष्मणो मुदितमनसा वेगं च धत्ते
भरतो निवारयन्तं विष्टम्भं समाधत्ते।
हिन्दोलायाममुष्यां दोलेते जनारामौ।।४।।
दर्शं दर्शं रूपं मनोजातं भावनीतम्,
गिरिधरो रागबद्धं गायति दोलागीतम्।
हिन्दोलायाममुष्यां दोलेते दृगभिरामौ।।५।।

भौमी- इस झूले पर आज श्रीसीतारामजी झूल रहे हैं। यह वर्षा अत्यन्त योग्य है जो कृषकों के लिए भले भोग्य पदार्थों को देने वाली, लाभयुक्त अत्यन्त सुशोभित हो रही है। इस झूले पर पूर्णकाम श्रीसीतारामजी झूल रहे हैं। बादलों के जलबिन्दुओं से सीताजी की साड़ी गीली हो रही है और श्रीराम के मस्तक की श्रीतिलक रेखा भी धुल गई है। इस हिंडोले पर आप्तकाम सीतारामजी झूल रहे हैं। बादल गरजते हैं, तो सीताजी चित्त में डरती हैं और जब बादल बरसते हैं तब सीताजी बहुत प्रसन्न होती हैं। आज हिंडोले में गौर-श्याम सीतारामजी झूल रहे हैं। लक्ष्मणजी प्रसन्न मन से तीव्र गति से झूला चलाते हैं परंतु भरतजी उन्हें रोकते हुए झूले की गति धीमी करके समाधान करते हैं। सज्जनों को आनन्द देने वाले श्रीसीताराम, इस झूले में झूल रहे हैं इस प्रकार कामदेव के भी

भाव को आकृष्ट करने वाले प्रभु के रूप को देख-देख कर **गिरिधर** कवि रागों से बद्ध झूला गीत गा रहे हैं। आज नेत्रों को आनन्द देने वाले श्रीसीतारामजी इस झूले पर झूल रहे हैं।

गीत संख्या-२४

रामो विराजति दोलाविहारी।।
शरयूपुलिनवरकलितकदम्बतले ।
निखिललावण्यलोकलक्ष्मीललितफले।
रचनाचकितीकृतजगदगकारी ।।१।।
वियति विपुलवरवारिदे विलसति।
मणिगिरौ विभयामरावतीं विहसति।
तनुसुषमामन्मथमदहारी ।।२।।
घनवनकणश्रितवसनं वसानः।
सुरमुनिमनुजदनुजसेव्यमानः ।
सहकृतश्रीमिथिलेशकुमारी ।।३।।
सखीगणे युगलस्वरूपं ध्यायति।
गिरिधरे सुरगिरि गीतं गायति।
जयति हरिर्जनदुरितविदारी।।४।।

भौमी- सम्पूर्ण लोक के सौन्दर्य लक्ष्मी के श्रेष्ठ फलस्वरूप, श्रीसरयू के सुन्दर तट पर विराजे कदम्ब वृक्ष के नीचे, उस परिसर की रचना से ब्रह्माजी को भी चकित करने वाले श्रीराम झूले पर विराज रहे हैं। आकाश में सुन्दर पक्षीगणों के सुशोभित होने पर और मणि पर्वत द्वारा अमरावती की भी हँसी उड़ाये जाने पर अपनी शोभा से कामदेव के मद को दूर करने वाले झूलाबिहारी श्रीराघव सरकार सुशोभित हो रहे हैं। बादल के जल कण से आर्द्र वस्त्र धारण करते हुए देवता, मुनि, राक्षस और मनुष्य से भी सेव्यमान मिथिलेशकुमारी सीताजी को साथ लिए हुए श्रीराम हिंडोले पर विराज रहे हैं। सखीजनों के युगल स्वरूप का ध्यान करते रहने पर संस्कृतभाषा में **गिरिधर** कवि के सुन्दर गीत गाते रहने पर जगत की विपत्ति नष्ट करनेवाले झूलाबिहारी श्रीरामजी की जय हो रही है।

गीत संख्या-२५

दोलां दोलयतां कृपालू कुशलदम्पती।
सीतारामौ सतां गती हे।
राजत्ययं श्रावणो मासः
वनदेवताशुभाशीःकाशः ।
दोलां दोलयतां श्रद्धालू सरलदम्पती।।१।।

भेकध्वनिर्वाद्यमनुकुरुते
सामस्वरं साधु सत्कुरुते।
दोलां दोलयतां दयालू विमलदम्पती।।२।।
रजनीजागरणादलसदास्यौ
व्रीडितसान्ध्यसरोजविहास्यौ ।
दोलां दोलयतां निद्रालू नवलदम्पती।।३।।
गिरिधरगिरागीतसङ्गीतौ
अन्योन्यार्पितभावपरीतौ ।
दोलां दोलयतां स्पृहयालू तरलदम्पती।।४।।

भौमी- हे कृपालु कुशल-दम्पती, सन्तों के आश्रय, श्रीसीतारामजी! आप झूला झूलें। वनदेवताओं के आशीर्वाद से सुशोभित यह सावन महीना बहुत सुन्दर लग रहा है। हे श्रद्धा में सरल दम्पती श्रीसीतारामजी! आप झूला झूलें। ये देखिये मेढक की ध्वनि बाद्य का अनुकरण कर रही है और यह सामवेद के स्वर का सम्मान कर रही है। हे दयामय निर्मल दम्पती श्रीसीतारामजी! आप झूला झूलें। रात्रि के जागरण से जिनके मुख पर आलस्य आ गया है और जिन्होंने अपने मुख की शोभा से सान्ध्य कमल को भी लज्जित किया है, ऐसे नींद में आने वाले नवविवाहित दम्पती आप कृपया झूला झूलें। एक दूसरे के लिए अर्पित भावों से युक्त और **गिरिधर** कवि की वाणी से गाया हुआ गीत ही जिनका संगीत है, ऐसे अन्योन्य की स्पृहा से युक्त हे तरल दम्पती श्रीसीतारामजी! अब आप झूला झूलिये।

गीत संख्या-२६

सखी गायति-

अवधेश दोलां दोलय मन्दं मन्दम्।।
मणिपर्वते दोला दोलते प्रलम्बे।
शरयूसमीरलोला लोलते कदम्बे।
कोसलेश दोलां दोलय मन्दं मन्दम्।।१।।
दोलामधिष्ठिता सीता सुकुमारी।
त्वद्वेगतो भीता मिथिलाकुमारी।
जानकीश दोलां दोलय मन्दं मन्दम्।।२।।
शीतलानि सीकराणि वर्षन् पर्जन्यः।
उपर्युपरि युवां स्तनति मृदुर्धन्यधन्यः।
राघवेश दोलां दोलय मन्दं मन्दम्।।३।।
घनाघनाघनच्छदा युवां दर्शं दर्शम्।
मोदन्ते कुसुमानि कामं वर्षं वर्षम्।

विबुधेश दोलां दोलय मन्दं मन्दम्।।४।।
गायन्ति चरितानि सुगा गन्धर्वा।
ध्यायन्ति सुकृतानि हरिविरिञ्चिशर्वा।
गिरिधरेश दोलां दोलय मन्दं मन्दम्।।५।।

भौमी– सखियाँ गा रही हैं–हे अवधेश! झूला धीरे–धीरे झूलाइये। मणि पर्वत पर कदम्ब वृक्ष के ऊपर झूला पड़ा है और वह वायु के झकोरे से स्वयं ही चल रहा है। इसलिए हे कोसलेश! आप झूला धीरे–धीरे झुलाइये। इस झूले पर जनकनन्दिनी सुकुमारी सीताजी विराज रही हैं जो आपके वेग से डर रही हैं। हे जानकीपति! झूला धीरे–धीरे झुलाइये। देखिये, अत्यन्त धन्यवाद का पात्र यह बादल शीतल बूँदें बरसाता हुआ, आप दोनों के ऊपर–ऊपर उमड़ता हुआ मधुर गर्जन कर रहा है। हे रघुवंश के ईश्वर! आप झूला धीरे–धीरे झुलाइये। देखिये, बादल की ओर से देवगण आप दोनों को देख–देखकर पुष्प की वर्षा कर करके अत्यन्त प्रसन्न हो रहे हैं। हे देवताओं के ईश्वर श्रीराम! झूला धीरे–धीरे झुलाइये। देखिये, आपके चरित्रों को गन्धर्व गा रहे हैं, आपके सत्कर्मों का ब्रह्मा, विष्णु, शिव ध्यान कर रहे हैं। हे **गिरिधर** कवि के ईश्वर श्रीराम! आप झूला धीरे–धीरे झुलाइये।

विशेष– यह गीत एक बहु चर्चित सुगम गीत की ढ़ाल में निबद्ध है। इसके बोल हैं–

'श्याम तेरी बंशी बजे धीरे-धीरे।'

गीत संख्या-२७

रामोऽभिरामोऽसुरारी रसं रातु दोलाविहारी।।
बालभानुकरपीतं वासो वसानः।
परिसमीक्ष्य दुर्निरीक्ष्य दारुणदशानः।।
दमयतु दनुजदर्पहारी रसं रातु दोलाविहारी।।१।।
सखीजनैः सानुरागं मुदा दोल्यमानः।
शीतलसमीरेण सुखं लोल्यमानः।।
सहमिथिलेशकुमारी रसं रातु दोलाविहारी।।२।।
कलयन् कलं नीरमुचां निस्यन्दम्।
बलयन् वर्धिष्णुर्जनानामानन्दम्।।
रतिपतिदर्पप्रहारी रसं रातु दोलाविहारी।।३।।
भूमिजया वारं वारं मुखं वीक्ष्यमाणः।
रसिकैश्च साम्रेडं सुखं प्रेक्ष्यमाणः।।
गिरिधरमनः कुञ्जचारी रसं रातु दोलाविहारी।।४।।

भौमी– असुरों के शत्रु अत्यन्त सुन्दर झूलाविहारी श्रीराम! हमें आनन्द दें। बालसूर्य के किरणों के समान वस्त्र धारण किये हुए, राक्षसों के अहंकार को नष्ट करने वाले श्रीराम! हमारे दारुण दशा का निरीक्षण करके

उसका दमन कर दें। प्रेम के साथ सखी जनों द्वारा प्रसन्नतापूर्वक झूलाये जाते हुए और सुखपूर्वक शीतल वायु द्वारा थोड़ा-थोड़ा चंचल किये जाते हुये सीतासहित श्रीराम, हमें आनन्द दें। मेघों के सुन्दर द्रव को स्वीकार करते हुये, भक्तों के आनन्द को बल प्रदान करते हुये, स्वभाव से वर्धनशील, काम के अहंकार को नष्ट करने वाले, झूलाविहारी श्रीराम, हमें आनन्द प्रदान करें। पृथ्वीनन्दिनी सीताजी के द्वारा बारम्बार जिनका मुखचन्द्र निहारा जाता है और रसिकों द्वारा जिन्हें बारम्बार नेत्र का विषय बनाया जा रहा है ऐसे **गिरिधर** कवि के मनकुंज में विचरण करने वाले झूलाविहारी श्रीराम, हमें आनन्द प्रदान करें।

विशेष- यह गीत अवध अँचल की नचारी धुन में निबद्ध है। बोल है-

''कैसे धरौं जिय धीरा हमार दूनो हीरा निकल गये।''

गीत संख्या-२८

सीता गायति-

शनैर्दोलां दोलय शान्ताप्रियानुज,
किमधिकवेगो हि दीयते।
उच्चावच्चचालनेन हिन्दोलाया राघव
कटौ मम पीडा प्रदीयते।।१।।
गर्जता वर्षता वारिधरेण मे,
मानसे त्वदाधिराधीयते।
हसता विलसता समवतात्र भवता,
नैषा समस्या समाधीयते।।२।।
एकतस्तु धृष्टतरपौरस्त्यसमीरणेन,
व्यस्तं मम वसनं विधीयते।
अपरतस्तव प्रियचपलाहिन्दोलया,
निघ्नतां नितरां निधीयते।।३।।
मम सुकुमार्या भ्रमविक्षप्तविकलहृदो,
बाहुवल्लिरपि नोपधीयते,
रमणी रभसरसविवशमनसो मम,
कराग्रावलम्बो नैव दीयते।।४।।
अलमतिशयदोला प्रवेगतरलतया,
मया भृशं भवाननुनीयते।
दर्शं दर्शं शोभामिमां कविना गिरिधरेण,
श्रावणीयगीतं शुभं गीयते।।५।।

भौमी- अब सीताजी गा रही हैं–हे शान्ताजी के प्रिय छोटे भाई रघुनाथजी! झूला धीरे-धीरे झुलाइये। अधिक वेग क्यों प्रदान कर रहे हैं? हे राघव! हिंडोलने के ऊँचे-नीचे चलाने के कारण मेरी कटि में बहुत पीड़ा दी जा रही है। गरजते, बरसते हुये मेघ के द्वारा मेरे मन में आपके मिलन की विकलता बढ़ायी जा रही है। हँसते हुये, आनन्द लेते हुए, कान्ति का विस्तार करते हुये भी आदरणीय आपके द्वारा इस समस्या का समाधान नहीं किया जा रहा है। एक ओर तो इस असभ्य पुरवैया वायु के द्वारा मेरा वस्त्र अस्त-व्यस्त कर दिया जा रहा है और दूसरी ओर आपके प्रिय इस चंचल हिंडोलने के द्वारा मेरे लिये निरंतर पराधीनता उपस्थित की जा रही है। भ्रम से विक्षिप्त हृदय होने के कारण मुझ सुकुमारी सीता की भुजा लता तकिया की भूमिका नहीं निभा पा रही है और आपके आनन्द के वेग में विवश मन के कारण मेरे द्वारा स्वयं को हाथ का अवलम्ब भी नहीं दिया जा पा रहा है। इसलिये यहाँ झूला का अत्यन्त सिद्धहार वेग निरर्थक है। मैं आपका बार बार अनुनय कर रही हूँ, प्रिया-प्रियतम की इस अनुनय शोभा को निहार-निहार कर **गिरिधर** कवि के द्वारा भी शुभ श्रावणी गीत गाया जा रहा है।

विशेष- यह गीत एक प्रसिद्ध बुन्देलखण्डी झूला गीत की लोकधुन में निबद्ध है। बोल हैं-

''धीरे धीरे झूला झूलो राघव रसिक प्रिय झुरुकी हैं कमर हमार है।''

गीत संख्या-२९

अद्य दोलायां दोलेते सीतारामौ
दलिततदर्परतिकामौ ।।
परस्परं परस्परे परिलोभमानौ।
स्वर्लतातमालतरू इव शोभमानौ।।
अद्य दोलायां लसेते सीतारामौ।
ललिततनू गौरश्यामौ।।१।।
सुधासलिलसंस्त्रावि श्रावणसुमासे।
सारङ्गवरबर्हिवारिदविलासे ।।
अद्य दोलायां रोचेते सीतारामौ।
रुचिररूपरुचिधामौ ।।२।।
स्पर्शं स्पर्शं युगलतनुनमितनीपशाखा।
मुदिता इवैत्य विधूः चित्रा विशाखा।।
अद्य दोलायां राजेते सीतारामौ।
रसितसुरवरवामौ ।।३।।
गायं गायं गिरिधरो निर्जरगिरागीतम्।
ध्यायं ध्यायं रसति रसं राघवं ससीतम्।।

अद्य दोलायां भ्राजेते सीतारामौ।
भाजितभवभवभामौ ।।४।।

भौमी- आज रति और काम के दर्प को हरने वाले श्रीसीतारामजी झूले पर झूल रहे हैं। परस्पर लुब्ध होते हुए, कल्पलता और तमाल के समान सुशोभित होते हुए, सुन्दर और गौर-श्याम शरीर सीतारामजी आज झूले पर सुशोभित हो रहे हैं। चातक, मयूर और मेघ की शोभा से सम्पन्न अमृतवर्षी श्रावण महीने में आज सुन्दर रूप और कान्ति के निवासस्थान श्रीसीतारामजी झूले पर प्रकाशमान हो रहे हैं। युगल स्वरूप को स्पर्श करके कदम्ब की शाखा झुक गयी है। वह इतनी प्रसन्न हो गयी है कि मानो रोहिणी और चन्द्र को प्राप्त कर आश्चर्ययुक्त विशाखा नक्षत्र ही हो। आज देव-पत्नियों को भी रसमग्न करते हुये सीतारामजी झूले पर विराजमान हो रहे हैं। **गिरिधर** कवि भी देववाणी में गीत गा-गाकर और सीताजी के सहित श्रीराम का ध्यान कर करके आनन्द का अनुभव कर रहे हैं। आज पर्वती और शिवजी का सम्मान करने वाले तथा उनसे सम्मानित होने वाले श्रीसीतारामजी झूले पर शोभायमान हो रहे हैं।

गीत संख्या-३०

सखी गायति

दोलां दोलय मुदा श्रीराम श्रावणं गायेयम्।।
नभायितं मणिपर्वतमित्वा।
घनायस्व सीतां चलयित्वा।
नीलसरोरुहश्याम, श्रावणं गायेयम्।।१।।
मुखरय सारसकलसारङ्गान्।
प्रसरय वर्षावियति विहङ्गान्।
नटय शिखिनमभिराम श्रावणं गायेयम्।।२।।
गापय किन्नरसुरगन्धर्वान्।
स्थापय चरितं विधिहरिशर्वान्।
प्रणतहृदयविश्राम, श्रावणं गायेयम्।।३।।
गायतु गिरा गिरिधरो गीतम्।
ध्यायतु त्वामनिशं सहसीतम्।
निजहृदि आत्माराम, श्रावणं गायेयम्।।४।।

भौमी- सखी गाती हुई कह रही है-हे श्रीराम! आप प्रसन्नता से झूला झूलिये, मैं श्रावण का गीत गाऊँ। हे नीलकमल के समान श्यामल प्रभु! आप मणि पर्वत को आकाश तथा सीताजी को विद्युत बनाकर स्वयं बादल की भूमिका निभाएँ अर्थात् जैसे आकाश में विद्युत के साथ बादल सुशोभित होता है उसी प्रकार आप मणि पर्वत पर सीताजी के साथ सुशोभित हों। हे सहज सुन्दर! आप सारस और सुन्दर चातकों को मुखरित करें और वर्षाकालीन आकाश में पक्षियों को उड़ने का सम्बल दें तथा मयूरों को नाचने का सौभाग्य दीजिये। हे

प्रणतों के हृदय में विश्राम करने वाले प्रभु! आप किन्नर, देवता और गन्धर्वों से अपनी कीर्ति का गान करायें तथा ब्रह्मा, विष्णु, शंकर से अपने उद्‌भव, स्थिति, प्रलय चरित्र का स्थापन करायें। **गिरिधर** कवि भी सुरभारती में आपके गीत गाते रहें और हे सज्जनों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले प्रभु! गीत रचना के माध्यम से **गिरिधर** कवि सीताजी के सहित आपका निरन्तर ध्यान भी करते रहें।

गीत संख्या-३१

दोलां दोलय शान्ताप्रियभ्रातः सकलजगत्त्रातः
सतामस्तु शं श्रावणः।।
राजते ऋतुवरा वर्षा भ्राजते भूरिजनहर्षा।
दोलां दोलय दनुजदर्पदातः सापेलहर्षहातः
सतामस्तु शं श्रावणः।।१।।
कुर्वते चातका गानं, धिन्वते धेनवो ध्यानम्।
दोलां दोलय मुदितमञ्जुमात्रः सुखितसत्प्रमातः
सतामस्तु शं श्रावणः।।२।।
मह्यां माद्यन्ति मयूरा मेहन्ति घना जलशूराः।
दोलां दोलय रसिकरासरातः स्वजनशर्मदातः
सतां शं श्रावणः।।३।।
गिरिधरोऽपि गायतु गीतं सुरवरगिरिभावपरीतम्।
दोलां दोलय राम विधिधातः पार्थिवीप्राणपातः
सतामस्तु शं श्रावणः।।४।।

भौमी– हे शान्ता के प्यारे भैया! सम्पूर्ण जगत के रक्षक श्रीराम आप झूला झूलिए। श्रावण मास सन्तों के लिए कल्याणकारी हो। यह श्रेष्ठऋतु वर्षा सुशोभित हो रही है और लोगों को प्रसन्न करती हुई देदीप्यमान हो रही है। हे राक्षसों का दर्प नष्ट करने वाले, हे शत्रुओं का हर्ष हरने वाले! आप झूला झूलिये। चातक 'पी'–'पी' गीत गा रहे हैं और गौवें तदुपलक्षित इन्द्रियाँ आपका ध्यान कर रही हैं। अपनी माताओं को प्रसन्न करने वाले आपको प्रमाण से सिद्ध करने में लगे हुये सन्तों को सुखी करने वाले प्रभु, आप झूला झूलें। पृथ्वी पर मत्त–होकर मोर नाच रहे हैं और बादल जलवृष्टि कर रहे हैं। हे रसिकों को राससुख देने वाले, सज्जनों को शांति सुख देने वाले श्रीराम! आप झूला झूलें। श्रावण सन्तों के लिए सुखकर हो। **गिरिधर** कवि भी संस्कृत भाषा में भावपूर्ण गीत गायें। हे कल्याणकारी श्रीराम, हे सीताजी के प्राणों के रक्षक! आप झूला झूलें, श्रावण सन्तों का कल्याण करे।

गीत संख्या-३२

मञ्जुलमणिगिरौ दोलायां विभाति जानकी।।
रामचन्द्रचरणचारुचन्द्रचन्द्रिकाचकोरी ,

मलयनिलयमरुति लोलायां विभाति जानकी।।१।।
सकलसखीकैरवीकृते कलाङ्ककौमुदीव,
वियल्लोलायां विलोलायां विभाति जानकी।।२।।
जातरूपपद्मिनीव विबुधवरवीथिकायाम्,
मधुपमयी सत्खगोलायां विभाति जानकी।।३।।
गिरिधरेशस्वातिघनचतुरचातकी किशोरी,
नीलनिचोला हिन्दोलायां विभाति जानकी।।४।।

भौमी- सुन्दर मणि पर्वत पर विराजमान झूले पर सीताजी विराज रही हैं। श्रीरामचन्द्र के चरणरूप सुन्दर चन्द्र की चकोरी सीताजी मलय वायु से हिल रही हिंडोला में सुशोभित हो रही हैं। सम्पूर्ण सखी रूप कुमुदिनियों के लिए चाँदनी स्वरूप सीताजी आकाश में हिल रही चंचल हिंडोलना में सुशोभित हो रही हैं। सन्तों के मनरूप खगोल में विराजमान हिंडोलना पर सीताजी उसी प्रकार सुशोभित हो रही हैं, जैसे आकाशगंगा में भ्रमरों से सुशोभित स्वर्ण की कमलिनी। नीलापरिधान धारण की हुई **गिरिधर** कवि के ईश्वर श्रीरामरूप स्वाति मेघ की चतुर चातकी स्वरूपिणी सीताजी हिंडोला में विराज रही हैं।

विशेष- यह गीत शास्त्रीय एकताल में निबद्ध है, इसे मेघ-मल्हार में गाना चाहिए।

गीत संख्या-३३

श्रावणे श्रीघनो रामो रसं राति राघवः।।
विबुधविबुधमुकुटमुकुटकलकदम्बकाण्डलम्ब
दोलायां चिद्घनो रामो रसं राति राघवः।।१।।
विभवविजितविपुलघनो नर्तितवरबर्हिजनो,
मुदितविनतवनो रामो रसं राति राघवः।।२।।
मैथिलीमुखारविन्दपरमप्रेममधुमरन्द-
सन्मिलिन्दमनो रामो रसं राति राघवः।।३।।
गायति गन्धर्वगणे ध्यायति रतिचर्वचणे,
गिरिधरगीतार्जनो रामो रसं राति राघवः।।४।।

भौमी- श्रावण मास में शोभा से घनेरूप श्रीराम आनन्द प्रदान कर रहे हैं। देवसमूहों के मुकुट, इन्द्र के भी मुकुट, सत्यलोक के कदम्बडाली पर लम्बमान, हिंडोला पर विराजमान होकर चिद्घन श्रीराम आनन्द प्रदान कर रहे हैं। अपने विभव से अनेक मेघों को जीतने वाले तथा सज्जनरूप मयूरों को नचाने वाले, प्रणतजनरूप वनों को आनन्दित करने वाले श्रीराम सभी को सुख प्रदान कर रहे हैं। जिनका मन सीताजी के मुख कमल के परम प्रेम मकरन्द का पान करता हुआ भ्रमर बन गया है, ऐसे श्रीराम भक्तों को परमानन्द दे रहे हैं। गन्धर्वों के गीत गाते समय आनन्द के अनुभव में निपुण भक्तों के ध्यान लगाते समय **गिरिधर** कवि के गीतों का अर्जन करने वाले श्रीराम सभी को आनन्द दे रहे हैं।

गीत संख्या-३४

गायतिकविः-

भूतलकुलशैलविपुलमुकुटमौलिसुमणिमहिल-
मण्डितमणिरुचिरगिरिविचित्रदोलिकोत्सवः ।।१।।
भाति भूमिभामिनीललाटवरायोध्याङ्गण-
गगनरोचिरुदयगिरिसुचित्रदोलिकोत्सवः ।।२।।
कौसल्यादशरथमनोरथपयोधिपूर्ण-
शरन्निशानागरपवित्रदोलिकोत्सवः ।।३।।
विलसति सीताभिरामरामचन्द्रचरितार्चित-
गिरिधरभवसागरवहित्रदोलिकोत्सवः ।।४।।

भौमी- अब ध्रुपद, चारताल में निबद्ध गीत कवि स्वयं गा रहे हैं–अहो! पृथ्वी के श्रेष्ठ पर्वतों के मस्तक के मुकुटस्वरूप, हिमालय पर्वत के मुकुट मणियों से पूजित, शोभामय मणि पर्वत पर विचित्र झूला उत्सव का आयोजन किया गया है जो पृथ्वीरूपिणी महिला के मस्तकरूप श्रीअवध के प्रांगण–आकाश में उदित प्रकाशमान उदयाचल पर्वत के समान सुशोभित हो रहा है। जो कौसल्या–दशरथजी के मनोरथरूप क्षीरसागर से प्रकट शरदकालीन चन्द्रमा के समान पवित्र है तथा वही सीताजी को आनन्द देने वाले श्रीराम के रसमय चरित्रों से सम्मानित होता हुआ **गिरिधर** कवि के भवसागर का जलपोत बनकर सुशोभित हो रहा है।

गीत संख्या-३५

अद्य सुखं दोलय दोलां प्रिय राघव,
श्रावणमासोऽयं प्रयाति हे।
सखीजनकृतपूतहासपरिहासो ,
विमलविलासोऽयं प्रयाति हे।।१।।
उच्चावच्चहिन्दोलाचालने रसावेशेन,
कटूक्तं यदपि मां दृणाति हे।
क्षामये क्षमासुता क्षमाकरं भवन्तं,
साधुरेवासदाऽघं श्रिणाति हे।।२।।
मणिपर्वतीया दोला लीला नित्यमावयोः,
स्मृता सती हृदयं पुनाति हे।
सकृदपि गीयमाना धीयमाना सुधीभिः,
कोटिपापपादपान् लुनाति हे।।३।।
दोलिकामहोत्सवः सदैव समायोज्यमानः

सीतारामभक्तिं ददाति हे।
क्षणमपि दोलिकाक्षणोऽयं विचक्षणो
गिरिधरमनो न जहाति हे।।४।।

भौमी- अब सीताजी बुन्देलखण्ड की झूला समापन गीत धुन में गा रही हैं। हे प्रियराघव! आज सुखपूर्वक झूला झूल लीजिए, अब यह सावन मास जा रहा है। सखीजनों के द्वारा जिनमें पवित्र हास-परिहास किया गया ऐसा निर्मल विलास भी अब चला जा रहा है। ऊँचे-नीचे झूलने के चलाने पर रस के आवेश में जो मैंने कटु कहा, वह मुझे विदीर्ण कर रहा है। मैं पृथ्वीपुत्री क्षमा की खान, आपसे क्षमा माँग रही हूँ। क्योंकि साधुजन ही पाप को समाप्त करते हैं। मणि पर्वत पर सम्पन्न हुई हम दोनों की यह झूला-लीला नित्य स्मरण करने मात्र से हृदयों को पवित्र करती रहेगी और एक बार भी अधिकारियों द्वारा गायी हुई और सुधियों द्वारा ध्यान का विषय बनायी हुई यह लीला करोड़ों पापवृक्षों को काट डालेगी। इस प्रकार प्रतिवर्ष सदैव आयोजित होने वाला यह झूलन-महोत्सव आयोजकों, दर्शकों, गायकों और वादकों को श्रीसीतारामजी की भक्ति देता रहेगा क्योंकि यह झूलन का विचित्र महोत्सव एक क्षण भी **गिरिधर** कवि के मन को न छोड़ रहा है, न छोड़ेगा।

गीत संख्या-३६

गायति कविः

रामो नवलकन्दश्यामो, जयतु गीतसीताभिरामः।।
सततं मनसि मम दोलाविहारी।
सहकृतश्रीमिथिलेशकुमारी ।
नरपतिलोकललामो, लसतु गीतसीताभिरामः।।१।।
अमितदुरितमथ त्रिविधं तापम्।
कायमनोवाग्भिः कृतं किल पापम्।
भवभयविषयमकामो हरतु गीतसीताभिरामः।।२।।
करतलधृतमञ्जुलशरचापः ।
पतितपावनः प्रकटप्रतापः।
सद्भ्यः सुखदपरिणामो, भवतु गीतसीताभिरामः।।३।।
गिरिधरहृदयनिकुञ्जे रामः।
सह सीतया सकलगुणधामः।
निजजनविपद्विरामो, वसतु गीतसीताभिरामः।।४।।

भौमी- अब महाकवि झूला-महोत्सव सर्ग को विश्राम देते हुये आशीर्वाद के शब्दों में नचारी धुन में गीत गा रहे हैं—नवीन मेघ के समान श्यामल गीतसीताभिराम श्रीराम की जय हो। राजसमूह के रत्न झूला-बिहारी श्रीराम सीताजी के सहित मेरे मन में निरन्तर निवास करते रहें। गीतसीताभिराम, कामनारहित भगवान

राम, मेरे असंख्य अपराधों को तीनों तापों को, मन वाणी शरीर द्वारा किये हुये पापों को, संसार के भय और पाँच विषयाशक्तियों को समाप्त कर दें। श्रीहस्तकमल में धनुष बाण लिये हुये, पतितों को पवित्र करने वाले, प्रत्यक्ष प्रतापी, गीतसीताभिराम महाकाव्य के प्रतिपाद्य भगवान राम सज्जनों के लिए सुखद परिणाम वाले हों अर्थात् संतों को परिणाम में सुख दें। इस प्रकार सम्पूर्ण गुणों के आश्रय, अपने भक्तों की विपत्ति के अभाव गीतसीताभिराम महाकाव्य के नायक भगवान राम सीताजी के साथ मुझ **गिरिधर** कवि के हृदय निकुंज में निवास करते रहें।

इति
श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरमहाकविजगद्गुरुरामानन्दाचार्यस्वामिरामभद्राचार्यगिरिधरकविप्रणीते गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये अयोध्याकाण्डे गीतसीतारामदोलोत्सवो नाम तृतीय सर्गः।

इस प्रकार श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर महाकवि जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य गिरिधरकवि द्वारा विरचित गीतरामायण 'गीतसीताभिराम' नामक संस्कृत गीतमहाकाव्य के अयोध्याकाण्ड में गीतसीतारामदोलोत्सव नामक तृतीय सर्ग सम्पन्न हुआ।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

।।श्रीः।।

।।नमो राघवाय।।

गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये
अयोध्याकाण्डे
गीतसीतारामषड्ऋतुविहारो नाम
चतुर्थः सर्गः

मङ्गलाचरणम्

श्रीपीताब्जनवोत्पलाभतनुतो ज्योत्स्नाभदन्तत्विषा
राकेशाभमुखेन तारकनिभाभूषाम्बरैर्नित्यशः।
मालातो गतितो गिरा गुणगणैः सौभाग्यतो भावतो
जीव्यास्तां शरदां शतानि शरदं रामौ प्ररान्तौ ह्रिये।।१।।

भौमी–अब महाकवि व्यतिरेक अलंकार के माध्यम से श्रीसीताराम के शारदीय सौन्दर्य का वर्णन करते हैं। आपकी युगल शरीर की पीले–नीले कमल जैसी कान्ति से एवं चन्द्रकिरण के समान चमकते दाँतों के प्रकाश से, चन्द्रमा के समान सुशोभित मुख से तथा नक्षत्र मण्डल जैसे विभूषण एवं वस्त्रों से, मालिका से, गमन से, वाणी से, गुणगणों से, सौभाग्य से और अपने रसानुकूल भाव से शरद् ऋतु को लज्जा के लिए समर्पित करते हुए अर्थात् अपनी शारीरिक उपकरणों से शारदीय उपकरणों को लज्जित करते हुए भगवान श्रीसीताराम अनन्तवर्षपर्यन्त जीवित रहें।

सन्दर्भश्लोकौ

अथ शरत्प्रथमा प्रथमौ प्रभू
प्रथमशारदिके करधृद्विधेः।
प्रथमपूज्यनुतौ प्रथमौ मया
प्रथमयाऽनुबभौ रससंविदे।।१।।
मधुपमण्डितपद्मततां ततो
तनुतरङ्गविहङ्ग विभूषिताम्।
रघुवरः सरयूं शरदोज्ज्वला
मिदमुदीक्ष्य जगौ जनकात्मजाम्।।२।।

भौमी– इसके पश्चात् रस के अनुभव के लिए जीवों के एकमात्र स्वामी प्रथमपूज्य गणेश जी से भी

पूजित सर्वश्रेष्ठ दम्पती, सर्वश्रेष्ठ शोभा से युक्त श्रीसीतारामजी के समक्ष उनके विवाह के प्रथम वर्ष श्रेष्ठ शरद् ऋतु उपस्थित हुई। इसके अनन्तर भ्रमरों से सुशोभित, कमलों से परिपूर्ण, अनेक तरंगों तथा पक्षियों से मंडित, शरद् की सम्पत्ति से उज्ज्वल, भगवती सरयू को निहारकर श्रीराम भगवती सीताजी को सम्बोधित करके इस प्रकार गाने लगे–

गीत संख्या-१

सीते स्वगुणैश्च जयसि शरदं सीते।।
स्त्रीगणगण्ये गुणगणगुण्ये विलसदरण्ये सतां शरण्ये।
लक्ष्मीललनावरे वरेण्ये नित्यमधरयसि शरदम्।।१।।
मञ्जुलगत्या मधुमरालिनीं तनुतरतन्वा मृदुमृणालिनीम्।
स्मितशुचिकान्त्या कुन्दमालिनीं सदा लज्जयसि शरदम्।।२।।
चिकुररोचिषा सघनाकाशां वदनरुचा राकेन्दुप्रकाशाम्।
भूषणविभया भगणविलासां विधुर्व्रीडयसि शरदम्।।३।।
नयनशोभया खञ्जरीटिकां पद्मवक्त्रतः पुण्डरीकिकाम्।
गिरिधरमतिमपि निर्व्यलीकिकां मुहुः प्रीणयसि शरदम्।।४।।

भौमी– हे सीते! आप अपने गुणों से शरद् को जीत रही हैं। नारीगणों में श्रेष्ठ तथा मुनिगणों से प्रशंसित मुझ शरणदानी राघव को सुशोभित करने वाली, संतों को शरण देने में समर्थ और महालक्ष्मी रूप ललना से भी श्रेष्ठ, निरन्तर वरण के योग्य, हे सीते! आप शरद को निरन्तर तिरस्कृत कर रही हैं। अपनी सुन्दर गति से हंसयुक्त शरद् को अपनी छरहरी शरीर से कमल दण्डयुक्त शरद् को अपनी मुस्कान की पवित्र शोभा से कुन्दमाला युक्त शरद् को आप निरन्तर लज्जित करती रहती हैं। हे श्रीवत्सलांछने बिधु! अथवा विधुरूप मुझ चन्द्र की रोहिणी अपने केशों की शोभा से घन युक्त आकाश वाली शरद को अपने मुख की कान्ति से पूर्णचन्द्रयुक्त शरद् को अपने आभूषणों की कान्ति से नक्षत्रमण्डल युक्त शरद् को आप निरन्तर ब्रीडित कर रही हैं। अपने शोभा से खंजनपक्षियों से युक्त शरद को अपने कमलमुख से कमलिनी को तथा निर्दोष **गिरिधर** कवि की बुद्धि को भी आप निरन्तर प्रसन्न करती रहती हैं।

गीत संख्या-२

शरदियं त्वां च मानयति सीते।
विमलपूर्णविधुना तव वदनं किसलयाधरं सुषमासदनम्।
कमनकुन्दकुड्मलमृदुरदनं मुदा मानयति सीते।।१।।
तव सुगतौ कलहंसगेहिनीं नासिकया किल कीरदेहिनीम्।
सारङ्गीं दृग्रुचा नवषास्नेहिनीं सुप्रमाणयति सीते।।२।।
सरसीं मञ्जुलमध्यदेशतः केसरिणीं च कटिप्रदेशतः।
श्रीफलिकां हृदिरुड्निदेशतः किल विमानयति सीते।।३।।

नवराजीवरुचा श्रीचरणं सततं कविवरगिरिधरशरणम्।
पुष्पचयात्ते वसनाभरणं समामानयति सीते।।४।।

भौमी- हे सीते! यह शरद् आपका सम्मान कर रही है। निर्मलपूर्ण चन्द्र के द्वारा आपके पल्लव सरीखे अधरों से युक्त शोभा के भाण्डागार सुन्दर कुन्द जैसे दाँतों वाली श्रीमुख का यह प्रसन्नता से पूजन कर रही है। हे सीते! आपकी सुन्दर गति द्वारा सुन्दर हंसिनी को अपनी नासिका से शुकी को और आपके नेत्रों से चातकी को यह शरद् ऋतु को प्रमाणित कर रही है। यह शरद ऋतु आपके मध्य भाग से तलैया को, आपके कटिप्रदेश से सिंहिंनी को, आपके वक्षोरुहों से विल्वफल को भी अपमानित कर रही है। हे सीते! यह शरद् ऋतु अपने विकसित नवीन कमल की शोभा से कविश्रेष्ठ **गिरिधर** के सदैव आश्रयस्वरूप आपके श्रीचरण का और अपने ऋतु के विकसित पुष्पों से आपके वस्त्रों और आभरणों का निरन्तर अर्चन कर रही है।

विशेष- ये दोनों ही गीत हवेली पद्धति में निबद्ध हैं।

सन्दर्भश्लोकः

इति प्रशस्य शरन्मिषतो मुहु-
र्जनकजा शुभसौभगमुज्ज्वलम्।
अजनलोचनजापुलिने रहो
रघुवरो विजहार सह श्रिया।।१।।

भौमी–जनकनन्दिनीजी के निर्मल कल्याणमय सौन्दर्य की, रघुकुल में श्रेष्ठ भगवान श्रीराम इस प्रकार शरद् के बहाने प्रशंसा करके विष्णुजी के नेत्रों से प्रकट सरयू के तट पर एकांत में श्रीसीताजी के साथ विहार करने लगे।

गीत संख्या-३

विहरति समं सीतया रामः।
हरिसुतसुततनयातटकुञ्जे नीलोत्पलदलश्यामः।।१।।
शरदं विकसितमधुरमल्लिकां कुसुमितमधुमाधवीवल्लिकाम्।
मुखरितमधुकरपतिमतल्लिकां मानयन् मुहुरकामः।।२।।
मुहुरथचुम्बति मुहुरालिङ्गति नवकुवलयनयनो मुहुरिङ्गति।
मुहुर्दयितया सममथ रिङ्गति विजितकोटिशतकामः।।३।।
क्वचिदथ शरत्सौभगं पश्यति क्वचिदवनीतनयामुत्पश्यति।
भुजलतया क्वचिदपि तां श्लिष्यति भवभयविषयविरामः।।४।।
क्वचिदथ मधुपमुखरमनुगायति क्वचिन्निश्चलं कान्तां ध्यायति।
गिरिधरेश्वरीं क्वचिदाकायति निजजनहृदयललामः।।५।।

भौमी- हरिसुत सुत अर्थात् विष्णु के पुत्र ब्रह्माजी के पुत्र वसिष्ठजी की तनया अर्थात् पुत्री सरयूजी के

तट पर सीताजी के साथ नीलकमल के समान श्यामल श्रीराम विहार कर रहे हैं। अत्यन्त मधुर चमेली को विकसित करने वाली सुन्दर मालती लता को खिलाने वाली और श्रेष्ठ भ्रमर वधू को गुंजायित करने वाली शरद् का सम्मान करते हुए कामवश न होकर भी प्रभु श्रीराम विहार कर रहे हैं। नवीन कमलनयन श्रीराम सीताजी को बार-बार चूमते हैं, बार-बार गले लगाते हैं, बार-बार उन्हें संकेत करके अपने पास बुलाते हैं। करोड़ों कामों को जीतने वाले प्रभु सीताजी के साथ बार-बार संकेत भ्रमण करते हैं। संसार के भय और विषयों के अभावस्थान श्रीराम कभी शरद की शोभा को निहारते हैं और कभी उत्कण्ठापूर्वक भूमिपुत्री सीताजी को देखते हैं। कभी अपनी प्रियतमा को बाहुलता में जकड़ लेते हैं। अपने भक्तों के हृदय रत्नस्वरूप श्रीराम कभी भ्रमर के स्वर का अनुकरण करके गाते हैं, कभी निश्चल होकर अपनी सहचारिणी सीताजी का ध्यान करते हैं। कभी **गिरिधर** कवि की ईश्वरी जानकीजी को बुलाते हैं। इस प्रकार प्रभु श्रीराम सीताजी के साथ सरयूतट पर विहार कर रहे हैं।

सन्दर्भश्लोकः

समीक्ष्य शरदः श्रियं कुसुमकाशकाशद्भुवं
निरीक्ष्य विमलभ्रुवं श्रुतिनतप्रियं स्वप्रियम्।
परीक्ष्य परिनिष्ठितां प्रणयमाधुरीं सत्पते-
र्जगाद जनकात्मजा जनिमतां मता मङ्गलम्।।१।।

भौमी– अब कवि पृथ्वी छंद में पृथ्वीपुत्री सीताजी की मनोदशा को आनुप्रासिक शैली में प्रस्तुत करते हैं–कुसुमितकाश से पृथ्वी की शोभा को बढ़ाने वाली, शरद् ॠतु की शोभा की समीक्षा करके और श्रुति रूप प्रियाएँ जिनको नमन करती हैं। जिनकी भौंहे निर्मल हैं, ऐसे अपने प्रियतम श्रीराम का निरीक्षण करके और अपने श्रेष्ठपति श्रीराघवेन्द्र की अपने में परिनिष्ठित प्रेममाधुरी की परीक्षा करके सभी प्राणियों की पूजनीया जनकनन्दिनी सीताजी यह मंगलगीत गा उठीं।

गीत संख्या-४

सीतापते ननु रतिपतिं विजयसे।
हरदृग्वरवापीवरटेशो हरदृक्सखवरवपुषं जयसे।।१।।
विजिगीषुं शरदं स्वसम्पदा रूपसुधाजलधौ मज्जयसे।
विबुधवधूवन्दीविमोचको वन्दितविपुलवधूं लज्जयसे।।२।।
जनहृच्छयकुतरुं स्वसुरतरोर्विरतिहेतितः किल क्रकचयसे।
त्रिसुरनर्तकं स्मरघस्मरमपि शिखिनं छविनीरद नर्तयसे।।३।।
मदनमहाज्वालां जनवत्सल चरणनलिनघनवनैः शमयसे।
गिरिधरेश्वरीं चतुरचकोरीं मां मुखशारदविधौ रमयसे।।४।।

भौमी– हे सीतापते! आप निश्चित ही आज कामदेव को जीत रहे हैं। हे शंकर भगवान के नेत्ररूप बावली के राजहंस! आप शंकर भगवान के नेत्र चन्द्रमा के मित्र श्रेष्ठ शरीर वाले काम को भी जीत रहे हैं। देववधू रूप

बन्दिनियों को छुड़ाने वाले, आप अनेक देवांगनाओं से वंदित इन्द्र को भी लज्जित कर रहे हैं। हे अपने भक्तों के कल्पवृक्ष श्रीराम! आप अपने भक्तों के हृदय में वर्तमान कामरूप कुत्सित वृक्ष को अपने वैराग्य के कुल्हाड़ों से काट देते हैं। हे सौन्दर्य के महामेघ! तीनों देवों को नचाने वाले! इस दुष्ट काम को भी आप मोर के समान नचा रहे हैं। हे भक्तवत्सल! आप काम की महाज्वाला को भी अपने चरणकमल रूप बादल से उत्पन्न भजन जल से शांत कर रहे हैं। **गिरिधर** कवि की ईश्वरी मुझ सीतारूपी चतुर चकोरी को अपने मुखचन्द्र में आप रमा रहे हैं।

सन्दर्भश्लोकः

अथ शरदमलेन्दौ मञ्जुमाधुर्यसिन्धौ
नमितनयननौकौ दम्पती पावनौ कौ।
कसुतदुहितृतीरे वल्गुवानीरनीरेऽ-
धिरजनि रममाणौ रेजतू राजपुत्रौ।१।।

भौमी– इस प्रकार शरद् के विमल चन्द्ररूप सुन्दर माधुरी के महासागर में अपने नेत्रस्थ नौका को नमित करके पृथ्वी को पावन करने वाले जनक राजपुत्री सीता एवं दशरथपुत्र श्रीरामरूप आदर्श पति–पत्नी युगल सरकार सुन्दर बेंतलता और जल से युक्त ब्रह्माजी के अष्टमपुत्र वसिष्ठजी की पुत्री सरयू के तट पर सम्पूर्ण रात्रि रमण करते हुए सुशोभित हुए।

गीत संख्या–५

विहरति हरिरिह शरदि ससीतः।
गुञ्जति मधुरमधुपनिकुरम्बे सुरनरमुनिवरगीतः।।
शिशिरसमीरे सरयूतीरे विकसितवरवानीरे।
मधुरमनोभवसचिवसमर्चितसरससुधितशुचिनीरे ।।१।।
अमृतमयूखमयूखमहितमहिमण्डलमधुरविभागे।
किसलयशयने श्रितसुखचयने ललनालसदनुरागे।।२।।
सखीचतुरकैरवीकदम्बकदम्बितकान्तान्द्रः
सरसवपुर्वल्लीसुवल्लरीवल्लरितो रघुचन्द्रः।।३।।
भौमीं भवन् भावुकः पश्यति निजवामाङ्कारूढाम् ।
नवनवनयनानन्दनन्दितो नवयति नवो नवोढाम्।।४।।
श्रीसीतामुखशरच्छर्वरी वल्लभचतुरचकोरः।
रामो रमते शरदि वरवधूर्गिरिधरलोचनचोरः।।५।।

भौमी– मधुर भ्रमरों के गुंजार से देवता, मनुष्य और मुनियों द्वारा गाये गए श्रीहरि, यहाँ सीताजी के साथ विहार कर रहे हैं। रसयुक्त वायु से पूर्ण और खिले हुए बेंतों से सुशोभित और सुन्दर काम के मंत्री चन्द्रमा के द्वारा जिसके अमृतमय जल की पूजा की गई है। ऐसे सरयू तट पर श्रीराम विहार कर रहे हैं। शरद् पूर्णिमा के

अमृतकिरण चन्द्रमा के किरणों से सुशोभित भूमिभाग अर्थात् सरयू तट पर सीताजी के अनुराग से सुशोभित सम्पूर्ण सुखों का चयन करने वाले पल्लवमय शयन पर भगवान श्रीराम शरद् विहार कर रहे हैं। चतुर सखी रूप कुमुदिनियों के समूहों से घिरे हुए सीताजी के प्रेम से घनीभूत पुलकित शरीर सीतारूप लता से आलिंगित रघुकुल के चन्द्रमा श्रीराम सीताजी के साथ शरद् विहार कर रहे हैं। सम्पूर्ण संसार का कल्याण करने वाले श्रीराम अपने वामाङ्क में आरूढ़ पृथ्वीकन्या सीताजी को निहार रहे हैं और नवीन-नवीन नेत्रों के आनन्द से आनन्दित नवीन नायक श्रीराम नव-विवाहिता सीताजी को नवीन अनुराग से नवीन बनाते जा रहे हैं। श्रीसीता जी के मुखरूप शरदचन्द्र के चतुर चकोर **गिरिधर** कवि के नेत्र को चुराने वाले श्रीराम श्रेष्ठ वधू सीताजी के साथ शरद् में विहार कर रहे हैं।

गीत संख्या-६

शुचिशरदि सीतासीतापती रमेते रामौ नवदम्पती।।
अतिनिर्मलनभसि शुभाङ्के विलसति च विधौ विकलङ्के।
अधिरजनि त्रिलोकी मङ्गलकृती रमेते रामौ नवदम्पती।।१।।
रससरसितसरयूतीरे शीतलमृदुमलयसमीरे।
विलसितवानीरे मञ्जुलमती रमेते रामौ नवदम्पती।।२।।
सङ्गायति सखीकदम्बे ध्यायति मुनिजननिकुरम्बे।
पश्यति सुरवर्गे सज्जनगती रमेते रामौ नवदम्पती।।३।।
वादिते विशदवादित्रे नादिते दुन्दुभीचित्रे।
मोदितकविगिरिधरगगनक्षिती रमेते रामौ नवदम्पती।।४।।

भौमी- सुन्दर शरद् ऋतु में सीताजी एवं सीतापति नवीन दम्पती श्रीसीतारामजी रम रहे हैं। अत्यन्त निर्मल, नीरभ्र आकाश में निष्कलंङ्क चन्द्रमा के सुशोभित होते समय शरद् पूर्णिमा की रात्रि में तीनों लोकों का मंगल करने वाले सीतारामजी रम रहे हैं। बेंत के वृक्षों से सुशोभित शीतल मलय वायु से अलंकृत आनन्द रस से परिपूर्ण सरयू तट पर मधुर बुद्धि सम्पन्न श्रीसीतारामजी विहार कर रहे हैं। सखीसमूह के गाते समय, मुनिजनों के ध्यान करते समय तथा देवजनों के दर्शन करते समय सज्जनों के एकमात्र आश्रय नवदम्पती श्रीसीतारामजी शरद् विहार कर रहे हैं। इस समय बज रहे हैं–विचित्र-विचित्र वाद्य तथा निनादित हो रहे हैं विचित्र नगारे एवं प्रसन्न हो रहे हैं **गिरिधर** कवि तथा पृथ्वी और आकाश और नवदम्पती श्रीसीतारामजी शरद् विहार कर रहे हैं।

सन्दर्भश्लोकः

सीतामुखाम्भोरुहचञ्चरीकः सीताहृदम्भोनिधिशारदेन्दुः।
सीताकुचप्रार्पितपत्रलेखो निनाय रामः शरदं सुखेन।।१।।

भौमी- इस प्रकार सीताजी के मुखकमल के भ्रमर सीताजी के हृदयसागर को अन्तरंगित करने वाले चन्द्रमा तथा सीताजी के वक्षोरुहों पर चन्दन का चित्रपत्र बनाने वाले भगवान श्रीराम ने आनन्द विहार के साथ शरद् ऋतु बितायी।

सन्दर्भश्लोकौ

अथो रामौ रामारुचिररजनीजीवनजनी-
महश्शालीशूकैर्विविधशुचिशाकैः परिलसन्।
प्ररोहद्गोधूमः शिशिरकरसोमो मृदुरविः
सुकान्तो हेमन्तोऽभवदुपदिगन्तो रमयितुम्।।१।।
हेमाभं वीक्ष्य हेमन्तं हेमवासा हिमद्युतिः
स्मितः सीतामिदं प्राह सीमन्तं शीलयन् हरिः।।२।।

भौमी- इसके पश्चात् अनुकूल पत्नी की उपस्थिति में गृहस्थों को जिसकी रात्रि सुखद लगती है। ऐसा पुष्पों को जीवन देने वाला सुन्दर धान की बाली से और अनेक हरी-हरी सब्जियों से सुशोभित हो रहा है जिसमें गेहूँ के छोटे-छोटे पौधे उग रहे हैं। जिसमें चन्द्रमा सूर्य की किरणें कोमल हैं, ऐसा दिग्दिगन्त कौतुक कारक सुन्दर हेमन्त नवदम्पती श्रीसीतारामजी को आनन्द देने के लिए उपस्थित हो गया। इस प्रकार सुवर्ण के समान पीले हेमन्त को देखकर सुवर्ण के समान पीताम्बर धारण किए हुए, चन्द्रमा के समान शीतल प्रकाश वाले श्रीहरि भगवान राम सीताजी का झूड़ा सजाते हुए, मुस्कुराते हुए, उन्हीं जनकनन्दिनी सीताजी को सम्बोधन करके गाने लगे-

गीत संख्या-७

हेमन्त आगतोऽयं सीते समीक्ष्यताम्।
शाकैः समावृतोऽयं वृत्तेन वीक्ष्यताम्।।
क्षेत्रं कृषन्ति कामं कर्षं कृषीवलाः।
बीजं विमृग्य वप्तुं नितरां निरीक्ष्यताम्।।१।।
वातः प्रवाति वातः शुचिना सुगन्धिना।
त्वत्पङ्कजाननेन प्रमितः प्रतीक्ष्यताम्।।२।।
गायन्ति ग्रामवध्वो गेयं सगीतकं
त्वामेव चिन्तयन्त्यः परितः परीक्ष्यताम्।।३।।
नर्दन्ति नागकल्पा वीरा वृषा भृशम्
सिराणि संवहन्तोऽप्यंसैरभीक्ष्यताम्।।४।।
गिरिधरगिराऽभिगीते प्राणप्रिये श्रिये।
मम सर्गसम्मितं वै गव्यं गवीक्ष्यताम्।।५।।

भौमी- हे सीते! यह हेमन्त आ गया, देखो, हरी-हरी सब्जियों से घिरा हुआ यह हेमन्त अपने चरित्र से सुशोभित हो रहा है इसको विवेचनापूर्वक देखो। देखो, भूमि शोधकर किसान खेत जोत रहे हैं और बीज बोने की तैयारी कर रहे हैं और इसका ठीक से निरीक्षण करो। सीते! आपके मुखकमल से प्रमाणित हुआ सुन्दर सुगन्धित मलय से सूचित यह वायु धीरे-धीरे चल रहा है। आप इसकी प्रतीक्षा कीजिए। देखिए, चारों ओर

आपका ही चिन्तन करती हुई अवधअञ्चल की ग्रामीण महिलाएँ अवधी भाषा में गेय सुन्दर गीत गा रही हैं। हाथियों के समान विशालबली बैल अपने कन्धों पर हल का जुआ ढोते हुए हुंकार करके गरज रहे हैं, इन्हें निहारिये। **गिरिधर** कवि की वाणी में गाई हुई मुझ राम की प्राणप्रिया सीते! आप कल्याण के लिए पृथ्वी पर पञ्चगव्य देखिए, जो मेरी सृष्टि के समान हैं, अर्थात् जैसे पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश को मिलाकर मैंने सृष्टि की है, उसी प्रकार गाय के दूध, दही, घी, मूत्र और गोबर से मिलकर यह गव्य बना है।

गीत संख्या-८

सीते पश्य शशिनमभिकाङ्कम्।
कलकार्तिकराकाशमुल्लसितमेधितसुखं शुभाङ्कम्।।१।।
नूनं स्पर्धितुमेष प्रयतते तव वदनेन शशाङ्कः।
धृष्टो मन्मथनिशितनिसृष्टो गुरुकुलकलितकलङ्कः।।२।।
क्व तव मुखेन्दुः शतमखसखसुतलोचनचारुचकोरः।
क्वायं जलधिभवोऽभिभवार्दिततनुश्चाटुचलचोरः।।३।।
क्वायं क्षयी क्षीणकलकः कल्कनः कदर्थः सीते।
क्वेदं तव वदनं सुखसदनं कलितकलं परिणीते।।४।।
निष्प्रत्यूहसौभगं सुभगे कविवरगिरिधरगीते।
तव वदनं वन्दतां विधुरयं भक्तो भवन् विनीते।।५।।

भौमी- सीते! इस नीच अङ्ग वाले चन्द्रमा को देखो। कार्तिक की पूर्णिमा से सुशोभित सुख की वर्षा कर रहे सांसारिक, कल्याण के चिन्ह से युक्त, इस चन्द्रमा को देखो। निश्चित ही ढींठ काम के बाणों से घायल, गुरुकुल के कलङ्क से युक्त, यह चन्द्रमा आपके मुख से स्पर्धा करने का प्रयत्न कर रहा है। भला बताओ, कहाँ वह आपका मुखचन्द्र जिसका चकोर बना मैं जो शताश्वमेधी इन्द्र के मित्र दशरथ का पुत्र हूँ और कहाँ यह सागर से उत्पन्न, अपमान से धूमिल चाटुकार चञ्चल चोर चन्द्रमा। हे मेरे परिणयसूत्र में बँधी हुई सीते! कहाँ यह क्षयरोग से ग्रसित क्षीणकलाओं वाला कलङ्की, कलहप्रिय अपमानित चन्द्रमा और कहाँ सम्पूर्ण कलाओं से युक्त सुख का भवन आपका सुन्दर मुख। हे कविवर **गिरिधर** के द्वारा गायी गई सीते! अब तो यह चन्द्रमा भक्त होकर आपके निर्विघ्न सौभाग्य से युक्त मुख को विनम्र होकर वन्दन करे।

गीत संख्या-९

पार्थिवि! पश्य हिमदहेमन्तम् ।
यवगोधूमचणकप्ररोहपरिरूढमहीसीमन्तम् ।।१।।
हिमहतशोभपयोजसमपसारितमशकादिकुदंशम् ।
लम्बितपरीरम्भरसलालसनूतनमिथुनप्रशंसम्।।२।।
कलकम्बलबलकुशलकृषीवललूनशालिवरवाटिम् ।
और्णसु पट्टपिहितविवयोग्रामणीसुकर्णललाटिम्।।३।।

शिशिरितलनिष्कलङ्कहरिणाङ्ककिरणकलसरयूनीरम् ।
शीतलसरसमन्थरितमधुमयमञ्जुलमलयसमीरम्।।४।।
लसितप्रियङ्गुलावललनागणगीतसरससङ्गीतम् ।
रमयतु गिरिधरहृन्निलयं सुचिरं रामं सहसीतम्।।५।।

भौमी– हे सीते, शीतलता देने वाले इस हेमन्त को देखो, जिसमें अब गेहूँ और चने के पौधों से पृथ्वी का जूड़ा सुशोभित हो रहा है। ठंड के कारण जिनकी शोभा नष्ट हो गई है, ऐसे कमल की आभा से युक्त तथा उसी शीतलता के कारण जिसने मच्छरों को दूर हटा दिया है और प्रगाढ़ आलिङ्गन से अनुकूल रस लालसा में नवीन दम्पतियों ने जिसकी प्रशंसा की है। सीते! वह हेमन्त देखो, जिसमें कम्बल ओढ़े हुए कुशल कृषकगण सुन्दर खेत में धान काट रहे हैं। जिसमें गाँव के बुड्ढे ऊन से बनी हुई पट्टिका से कान और सिर ढ़ँके हुए हैं। जिसमें शीतल निष्कलङ्क चन्द्रमा के समान सरयू का जल दिख रहा है। सीते! वह यह हेमन्त है, जहाँ बजरी की बाल काटती हुई महिलाएँ मधुर गीत गा रही हैं इस प्रकार का हेमन्त **गिरिधर** कवि के हृदय भवन में सीताजी के साथ श्रीराम को रमाये।

गीत संख्या-१०

पश्य पश्य सीते पश्य प्रचुरहिमो हेमन्तो,
वसुधा सीमन्त इव शोभते।
दर्शं दर्शं हर्षं हर्षं गुणानामुत्कर्षमस्य,
मामकिनं मनोऽप्यस्मिन् लोभते।।१।।
पश्य भाति भागवती दम्पतीसुभागवती,
मार्गशीर्षशुक्लपक्षपञ्चमी ।
जगति जागर्ति जातु जनता जीवातुभूता,
भूतिभूतेव पुमर्थपञ्चमी।।२।।
अस्यां वै पिनाकं नाकं भक्तिविघ्नितं हि मया,
भक्तेनेव वल्लिभञ्जं भञ्जितम्।
बाहुबलवारिधौ स्वयंवरनृपगर्वपोतम्,
निमज्य स्ववर्गमनो रञ्जितम्।।३।।
मिथिलापुरेऽस्मि पुरा पुरुहूतपुरन्ध्र्या,
मया पौरुषेण परिणीयसे।
दिवानिशमनिमिषवधूवन्द्यपादपद्मे ,
कविगिरिधरगिरा गीयसे।।४।।

भौमी– हे सीते! देखो, प्रचुर शीतलता से भरा हेमन्त पृथ्वीरूप सौभाग्यवती के केशवेश जैसा शोभित हो रहा है। इसके गुणों के उत्कर्ष को देख-देख कर इस पर मेरा मन भी लुभा रहा है। सीते! देखो इसी हेमन्त

ऋतु में हम दोनों दिव्य–दम्पती के सौभाग्यरूपा हमारी विवाह तिथि मार्गशीर्ष की शुक्ल पक्ष की पंचमी सुशोभित हो रही है। अत: आज ही के दिन गत वर्ष हमारा विवाह हुआ था, हमारी यह विवाह की प्रथम वर्षगाँठ है। यह विवाह पञ्चमी सम्पूर्ण प्राणियों की महौषधि बनी हुई विभूतियों की विभूति स्वरूपिणी पुमर्थ पंचमी अर्थात् अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष और भक्ति इन पाँचों पुरुषार्थों को पूर्ण करने वाली पंचमी है। सीते! इसी विवाह पंचमी के उपलक्ष्य में सुखपूर्वक भक्ति को विघ्नित करने वाले पिनाक अर्थात् शिवधनुष को मैंने एक भक्त के समान लता जैसे तोड़ कर फेंक दिया था और अपने बाहुबल के महासागर में तुम्हारे स्वयंवर में आए हुए राजाओं के बाहुबल रूप जलपोत को डुबोकर आत्मीयजनों के मनों का रंजन किया था। इसी विवाह पंचमी के दिन पुरहूत पुरन्ध्री अर्थात् इन्द्रपत्नी शची के द्वारा पूजित आप मेरे द्वारा पौरुष से विवाही गई थीं और हे देव बधुओं के द्वारा वन्दित चरणकमले सीते! **गिरिधर** कवि के द्वारा भी दिनरात आपका ही गान किया जा रहा है।

गीत संख्या–११

दिशि दिशि दिश्यं दिशन्तं प्रिये पश्य हिमदं हेमन्तम्।।
लोपिततरुणमिहिरनीहारम् ,
शतदलदलरिपुतरलतुषारम् ।
वपुषा वासांसि सखयन्तम्,
प्रिये! पश्य हिमदं हेमन्तम्।।१।।
हिमीभवच्छुचिसरयूनीरम् ,
सरसितशिशीरितमलयसमीरम् ।
गात्राणि नृणां वेपयन्तम्,
प्रिये! पश्य हिमदं हेमन्तम्।।२।।
कमठतनूकृतसहचरदेहम् ,
अमृतसदृशपावककृषिगेहम् ।
जठरानलं दीपयन्तम्
प्रिये! पश्य हिमदं हेमन्तम्।।३।।
दयिताश्लेषहृतशैत्यकृतशूलम्
छात्राभ्याससुखददिनमूलम् ।
गिरिधरप्रभुं रमयन्तम्,
प्रिये! पश्य हिमदं हेमन्तम्।।४।।

भौमी– श्रीराम अवधाँचल की लचारी धुन में कहते हैं–हे प्रिये! प्रत्येक दिशा में सन्देश दे रहे शीत को प्रदान करने वाले हेमन्त को देखो, जिसमें इस प्रकार का कुहरा है जो नवीन सूर्य को भी छिपा रहा है। जिसमें वह पाला पड़ रहा है जो कमल के पत्रों का शत्रु है और जो शरीर से वस्त्रों की मित्रता करवा रहा है। ऐसे हेमन्त

को देखो। जिसमें सरयू जल-बर्फ बन गया है और मलयवायु भी अत्यंत शीतल हो गया है जो प्राणियों के शरीर को कपा रहा है ऐसे हेमन्त को देखो। जिसमें चेतनों का भी शरीर कछुए की पीठ के समान जड़ हो रहा है जहाँ अग्नि भी अमृत जैसा लगता है ऐसे कृषि के भवन और जठराग्नि को बढ़ाने वाले हेमन्त को देखो। इसमें प्रियतमा के आलिङ्गन से शीतलता रूप कष्ट समाप्त होता है और जिसका प्रातःकाल छात्रों को शास्त्राभ्यास के लिए सुखद होता है, ऐसे **गिरिधर** के प्रभु मुझ राम को रमाने वाले इस हेमन्त को देखो।

गीत संख्या-१२

हेमन्ते वधूवरौ विहरतः।।
शैत्यसुलभसुखपरिष्वङ्गरभसं नहि रसं क्षणं परिहरतः।।१।।
परस्पराधरसीधुमदिरमनसौ मधुव्रतव्रातमनुहरतः।।२।।
अन्योन्यार्पितभुजगलबन्धौ व्रततितमालश्रियमपहरतः।।३।।
सीतारामौ रममाणौ गिरिधरहृन्निलये सुखमुपहरतः।।४।।

भौमी- हेमन्त ऋतु में नव-दम्पती विहार कर रहे हैं। शैत्य के कारण जिसमें आनन्द सुलभ है, ऐसे आलिङ्गन के आवेश से युक्त रस को एक क्षण भी नहीं छोड़ रहे हैं। एक दूसरे के अधरासव से मत्त मन वाले किशोर दम्पती भ्रमर के व्रत का अनुसरण कर रहे हैं। एक दूसरे को गलबहियाँ दिए हुए सीतारामजी लता और तमाल वृक्ष की शोभा को चुरा रहे हैं। इस प्रकार हेमन्त ऋतु में **गिरिधर** कवि के हृदय भवन में रमण करते हुए श्रीसीतारामजी सुख का उपहार दे रहे हैं।

सन्दर्भश्लोकौ

एवं वैश्रवणानुजान्वयसमुत्फुल्लाम्बुजाताटवी
हेमन्तो हिमवत्सुतापतिनतो गाढं हिमानीसुखम्।
हेमन्तं जनकात्मजार्पितपरिष्वङ्गं समाशीलयन्
श्रीरामो रमयन् श्रियं स भगवान् रेमे रहः केलिभिः।।१।।
अथ शिशिरमनीकं शीतलस्वच्छनीरं
हितमहितसमीरं ध्मायितध्यानधीरम्।
सरससरयुतीरं मञ्जुकुञ्जत्कुटीरे-
ऽलघुलघुरघुवीरो वीक्ष्य वामां बभाषे।।२।।

भौमी- इस प्रकार वैश्रवणानुज अर्थात् कुबेर के छोटे भाई रावण के वंशरूप कमलवन को नष्ट करने के लिए हेमन्त ऋतु स्वरूप हिमाचल पुत्री पार्वतीजी के पति शिवजी द्वारा नमस्कृत वे भगवान श्रीराम जनकनन्दिनी सीताजी द्वारा दिये हुए आलिङ्गन सुख को स्वीकार करके, हेमन्त की शीतलता के सुख का अनुभव करते हुए और हेमन्त ऋतु का सेवन करते हुए सीताजी को रमण कराते हुए ऐकान्तिक रासोचित केलियों द्वारा स्वयं भी रमण किये। इसके पश्चात् सुन्दर कुंज जैसे कुटीर वाले प्रेमयुक्त सरयू तट पर विराजमान रघुकुल के वीर भगवान श्रीराम शीतप्रधान सेना को इकट्ठा करने वाले शीतल और स्वच्छ जल वाले बर्फ से युक्त वायु वाले

ध्यान मात्र से जीवों को कँपा देने वाले अत्यन्तप्रिय शिशिर ऋतु को देखकर अपनी प्राणप्रिया सीताजी से बोले–

गीत संख्या-१३

सीते शीलय सुखमिह शिशिरं
इक्षुसु रसमयमुखमिह शिशिरम्।।१।।
उषःस्नानहतपातकहेतुं
मकरमहितहितदीधितिकेतुम् ।
श्रौतस्मार्तसुमखमिह शिशिरम्।।२।।
श्रितमाकन्दमरन्दललाटं
लसदतिसीसर्षपवरवाटम् ।
भावितमत्पितृसखमिह शिशिरम्।।३।।
हरितहरिततृणचणकपुलाकं
श्यामधामशुचिसाद् बलशाकम्।
पीयूषयत्रिशिखमिह शिशिरम्।।४।।
निशि संश्लिष्टखगमिथुननीडं
सरसयवसकुलपुलकापीडम् ।
गिरिधरगीतसुमुखमिह शिशिरम्।।५।।

भौमी- हे सीते! जिसका प्रारम्भ इक्षु अर्थात् गन्ने के रस की प्रचुरता से युक्त है, ऐसे इस शिशिर का सुखपूर्वक सेवन करो। प्रातःकालीन स्नान से जिसके द्वारा पापों के हेतु रूप अविद्या नष्ट की गई है। जिसमें मकर राशि के आगमन पर सूर्यनारायण का सम्मान हुआ है ऐसे श्रौतस्मार्त यज्ञों से सुहावने शिशिर ऋतु का सेवन करो। जिसके मस्तक पर आम के बौर का रस विराज रहा है और जहाँ खेतों में तीसी और सरसों के फूल शोभायमान हो रहे हैं, ऐसे मेरे पिता के मित्र इन्द्र को प्रसन्न करने वाले इस शिशिर का सेवन करो। जिसमें हरे-हरे चने और मटर लहलहा रहे हैं, जहाँ नीली रंग की घास और हरी-हरी सब्जियाँ सुहावनी लग रही हैं, ऐसे अग्नि को भी अमृत समान कर देने वाले इस शिशिर ऋतु का सेवन करो। जहाँ रात्रि में पक्षियों के जोड़ों से युक्त घोंसले बहुत सुन्दर लग रहे हैं और जहाँ ताजी-ताजी रसीली घास मुकुट के समान विराज रही हैं, ऐसे घास के माध्यम से पुलकावली प्रकट करने वाले गिरिधर कवि द्वारा गायी हुई सुन्दर उन्नत से युक्त इस शिशिर ऋतु का सेवन करो।

विशेष- यह गीत त्रिताल (१६ मात्रा) में निबद्ध है।

गीत संख्या-१४

शिशिरमिहिरमवलोकय सीते।
उषसि विभान्तं शिशुमिव भान्तम्।

वियति विनोदविनीते।।१।।
कलितवनजिनीवदनविकासं
ललितकनककलकमलप्रकाशम् ।
शीलय प्रेमप्रतीते।।२।।
मुखरितमधुकरमधुरवरूथं
वितरितसुखखगमृगवरयूथम् ।
भावय भावमभीते।।३।।
गापितप्रकृतिसुमङ्गलगानं
ध्यापितभूसुरसुविमलध्यानम् ।
कविवरगिरिधरगीते ।।४।।

भौमी- हे सीते, हे विनोदों से प्रशिक्षित सीताजी! आकाश में शिशिरकालीन सूर्य को तो देखो, जो प्रात:काल आकाश में छोटे से बच्चे के समान शोभायमान हो रहे हैं। हे प्रेम से विश्वस्त सीते! जिसने कमलिनी मुख को विकसित किया है ऐसे स्वर्ण और कमल के समान प्रकाश वाले सूर्य का सेवन करो। हे निर्भीक सीते! भौंरों को गुंजारित करने वाले एवं पशु-पक्षियों के समूहों को सुख देने वाले संसार के स्वामी सूर्यनारायण का सेवन कीजिए। हे कविश्रेष्ठ **गिरिधर** के गीतों का विषय बनी हुई सीते! जिन्होंने प्रकृति से मंगल गान गवाया और जिन्होंने देवताओं से निर्मल ध्यान कराया ऐसे सूर्यनारायण का पूजन एवं वंदन करो।

गीत संख्या-१५

सीते शिशिरमभिरामं मनसि मम तनुते सुखम्।
वितरति मुदमभिकामं मनसि मम तनुते सुखम्।।
महितमहीधनवनधनशष्पं
श्रितमिवनिचितमसमसरतल्पम् ।
हरितशस्यश्यामं मनसि मम तनुते सुखम्।।१।।
रुचिरशिशिरमिहमिहिरविभातं
नवसौरभसौरभवरवातम् ।
नवलप्रवालारामं मनसि मम तनुते सुखम्।।२।।
पलितकलितकम्बलसन्नाहं
हिमिततटागसलिलपरिवाहम् ।
विहितस्वेदविरामं मनसि मम तनुते सुखम्।।३।।
आप्तमधुरफलचणकपुलाकं
सोमसदृशवरवस्तुकशाकम् ।
गिरिधरकीर्तितरामं मनसि मम तनुते सुखम्।।४।।

भौमी- हे सीते! यह सुन्दर शिशिर मेरे मन में सुख उत्पन्न कर रहा है और यह मेरे अनुकूल आनन्द का वितरण कर रहा है। इसके कारण पृथ्वी के घने वन और सुन्दर तृणों की शोभा बढ़ी है। ऐसा लगता है, मानों यह शिशिर कामदेव का पलंग ही बन गया है। हरी-हरी खेती से श्यामल यह शिशिर मेरे मन में सुख उत्पन्न कर रहा है। सीते! सूर्यनारायण की किरणों से सुशोभित, नवीन आम्र के पल्लव की सुरभि से मिश्रित वायु वाला और नवीन पल्लवों के उद्यान जैसा यह शिशिर मेरे मन को बहुत सुख दे रहा है। सीते! देखो, शीतलता के कारण काँपते हुए वृद्धजन अपनी बाल पके हुये सिर पर कम्बल ओढ़े हुये दिख रहे हैं और तालाब नदी और नालों में ओला जम गया है और इसके आने से किसी को भी पसीने की अनुभूति नहीं होती। ऐसा शिशिर मुझे सुख दे रहा है। हे सीते! जिस शिशिर ऋतु में **गिरिधर** कवि ने मुझ राम को गाया, जहाँ चने और मटर की कच्ची-कच्ची छिमिया उपलब्ध हो जाती हैं और जिस शिशिर में बथुआ का साग अमृत जैसा लगता है, ऐसा शिशिर मेरे मन में सुख का विस्तार कर रहा है।

गीत संख्या-१६

सीते शिशिरमभिकामं निहारय नयनाभिरामम्।।
मध्यदिनेशदिवसरमणीयं
खगकुलकलरवकलकमनीयम् ।
कृषीबलविपदविरामं निहारय नयनाभिरामम्।।१।।
नवतरुकिसलयविपिनविभागं
विमलहिमानीसलिलतटागम् ।
श्रमितपथिकविश्रामं निहारय नयनाभिरामम्।।२।।
सर्षपसुरभिसुरभिवरवातं
शिषिररुचिररविविभाविभातम् ।
मृदुलाङ्कुरपरिणामं निहारय नयनाभिरामम्।।३।।
कल्पवासिगणगुणितप्रयागं
गङ्गास्नानविहितजपयागम् ।
गिरिधरसंस्मृतरामं निहारय नयनाभिरामम्।।४।।

भौमी- हे सीते! अनुकूल कामनाएँ प्रदान करने वाले नेत्रों को आनन्द देने वाले शिशिर ऋतु को देखो। जो मध्याह्नकालीन सूर्य के कारण रमणीय और पक्षी के कलरव से अत्यन्त सुन्दर है, ऐसे खेती के विपत्ति को नष्ट करने वाले इस शिशिर को देखो। जिसके वन प्रदेश में नवीन पल्लव वाले वृक्ष हैं और जिसके तालाबों में ओलों से भरा हुआ बर्फीला जल है, ऐसे थके पथिकों को विश्राम देने वाले शिशिर को देखो। हे सीते! सरसों के महक से जिसका वायु सुगन्धित हो रहा है और शिशिर काल में सुन्दर सूर्य के किरणों से जो सुन्दर लग रहा है और जिसके परिणाम में कोमल-कोमल अङ्कुर हैं ऐसे नेत्राभिराम शिशिर को देखो। कल्पवासियों के द्वारा जिसने प्रयाग को गुणवान बना दिया और जहाँ गंगा स्नान, और जपात्मक यज्ञ किया जा रहा है और जिसमें **गिरिधर** कवि ने श्रीराम का कीर्तन किया है, ऐसे नयनाभिराम शिशिर को देखो।

सन्दर्भश्लोकः

लोकानुग्रहकातरौ गुणपरौ तद्ब्रह्मभूतावुभौ
राजन्तावदवधेशभव्यभवने श्रीजानकीराघवौ।
लोकान् शिक्षयितुं कृपालुहृदयौ श्रीपञ्चमीपर्वणि
सम्पूज्याथ सरस्वतीं प्रजगतुर्गीते शुभे संस्कृते।।१।।

अत्यन्त कृपालु हृदय वाले संसार पर अनुग्रह करने के लिए विह्वल साक्षात् परब्रह्म स्वरूप श्रीसीताराम जी श्रेष्ठगुणों के परायण होकर भी संसार को शिक्षा देने के लिए महाराज दशरथ के भवन में निवास करते हुए शिशिर ऋतु में आयी हुई श्रीवसन्त पंचमी के पर्व पर सरस्वती जी की पूजा करके दो सुन्दर संस्कृतनिष्ठ गीत गाये।

गीत संख्या-१७

मातः सरस्वति जननि जय जगदम्ब जय जय शारदे।
वरदे वराणि प्रदेहिनो हे अम्ब मङ्गलशारदे।।१।।
वीणाविहितभयनाशने हंसासने कमलासने
हर मूर्खतातिमिरं शुभे श्रुतिशास्त्रसागरपारदे।।२।।
शुक्लाम्बरे श्रुतिनिर्भरे वात्सल्यधुर्यधुरन्धरे
करुणां निधेहि जने जननि विज्ञानविमलविचारदे।।३।।
वल्लकीं वादय भारते भारति भविष्णुविभारते
पायय शिशून् विद्यासुधां गिरिधरविवेकविशारदे।।४।।

भौमी- हे मां सरस्वती, हे जननी, हे जगत की अम्बा! आपकी जय हो, जय हो, जय हो। हे अम्ब, हे मंगल तत्वों को प्रदान करने वाली, वरदायिनी माँ वीणापाणि! आप हमें वरदान दें। हे वीणा से भय नाश करने वाली, हे हंस आसन पर विराजमान कमलासने! कल्याणकारिणी, वेदशास्त्र रूप सागर का पार प्रदान करने वाली सरस्वती माता! हमारे मूर्खतारूप अंधकार को दूर कर दीजिए। हे शुक्ल-वस्त्र धारण करने वाली, वैदिक ज्ञान से परिपूर्ण, हे वात्सल्य भाव के धुरी को धारण करने वालों को भी धारण करने वाली निर्मल विज्ञान और विचार को प्रदान करने वाली माँ, हे भारती, हे भविष्णु प्रकाश में निरत, हे कवि **गिरिधर** के विवेक में निपुण सरस्वती माँ, बालकों को विद्यामृत का पान कराइये।

गीत संख्या-१८

विजयसे मातः सरस्वति।।
मृदुमृणालमरालवाहिनि
मूर्खताभ्रमदावदाहिनि ।
विरतिबोधविवेकमण्डित-

मानसे पावनपयस्वति।।१।।
तुहिनहिमकरवसनवासिनि
कुमुदवल्लभकिरणहासिनि ।
बुधविवेकविभाविलासिनि
कलयसे मञ्जुलमहष्वति ।।२।।
शारदे परिकलितवीणे
विभवभारति भाप्रवीणे।
गिरिधरं रघुवरं गापय
श्रेयसे जाग्रद्यशस्वति।।३।।

भौमी– हे माँ सरस्वती! आपकी जय हो रही है। कमलदण्ड जैसे कोमल हंसासन पर विराजमान; मूर्खता भ्रमरूप वन को जलाने वाली परमपावन ज्ञानदुग्ध से युक्त माँ सरस्वती; वैराग्य, ज्ञान और विवेक युक्त मान से सुशोभित; मानस सरोवर में आप विजयश्री को प्राप्त कर रही हैं। हे बर्फ और चन्द्र किरण के समान वस्त्र धारण करने वाली, चन्द्र किरण के समान मुस्कान वाली, विद्वानों के विवेक के प्रकाश से सुशोभित मधुर तेज से सम्पन्न सरस्वती! आप दिव्य कलाएँ धारण कर रही हैं। हे शारदे, हे वीणापाणि, हे विभवयुक्त भारती, हे प्रकाश में निपुण, हे जाग्रतरूप यशवाली सरस्वती माँ कल्याण के लिए मुझ **गिरिधर** से श्रीराम का यश गान कराती रहिये।

विशेष– यह गीत रूपक ताल में निबद्ध है।

सन्दर्भश्लोकः

वितन्वन्तं भूमौ कमथ मृगयन्तं मृगदृशां
दृशां कोणान् वाणान् ददतमजमाजौ निजसुखम् ।
वनं धन्यं पश्यन् दधतमलिपण्याप्तमुकुलै-
र्वसन्तं वासन्तीसुहृदिदमथाख्यत् सहचरीम्।।१।।

भौमी–इसके पश्चात् पृथ्वी पर सुख का विस्तार करते हुये युद्ध में अजन्मा परमात्मा श्रीराम को प्रतिभट् के रूप में खोजते हुये मृगनयनी नारियों के नेत्रों के कोणों को बाण बनाते हुये, अपने सुख के लिए वन को धन्य करते हुये, भ्रमरों से व्याप्त कोमल कलिकाओं द्वारा उपलक्षित वसन्त को देखते हुये वासन्ती के सखा भगवान श्रीराम ने अपनी सहचरी से इस प्रकार कहा।

गीत संख्या-१९

पश्य पार्थिवि वशिवसन्तम्।।
मिहिरधीरकरैर्विभान्तं प्रकृतिपुण्यप्रभाप्रभान्तम्।
मलयमञ्जुसुगन्धशीतल वायुप्रहितरजोलसन्तम्।।१।।

महितपरभृतकलरवाढ्यं विपिनकौसुमवैभवाढ्यम्।
कुसुमसायकगौरवाढ्यं नलिनिनीरज विकसयन्तम्।।२।।
क्वचिदलङ्कृतविमलनीरं क्वचिदुदञ्चितदलकुटीरम्।
क्वचिदभीप्सितसमसमीरं नियतिनारीं विलसयन्तम्।।३।।
नवपरागसुरागकुञ्जं मुदितमाधविमधुपपुञ्जम्।
सुधितमधुकरमुखरगुञ्जं गिरिधरेश्वरमनसि सन्तम्।।४।।

भौमी– हे पृथ्वीनन्दिनी सीते! सूर्यनारायण की सुन्दर किरणों से सुशोभित प्रकृति की पवित्र कान्ति से चमकते हुये और मलयाचल की शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु से जिसने पृथ्वी की धूलि को दूर कर दिया है, ऐसे संयमी वसन्त को देखो। पूजनीय कोयल के कूजन से युक्त और वन के विकसित पुष्पों की सम्पत्ति से सम्पन्न तथा कामदेव के गौरव से पूर्ण कमलिनियों को विकसित करते हुये इस वसन्त को देखो। कहीं पर निर्मल जल से सजे हुये और कहीं उत्कृष्ट पर्णकुटीरों से सुशोभित और कहीं समशीतोष्ण वायु से अभिलसित प्रकृति वनिता को सजाते हुये इस वसन्त को देखो। नवीन पराग के सुन्दर रंगों का पुंजीभूत और भ्रमरों को प्रसन्न करने वाले माधवी लता के कुंजों से युक्त और अमृतमय भ्रमरों के गुंजार से व्याप्त और **गिरिधर** कवि के स्वामी मुझ राम के मन में विराजमान इस वसन्त को देखो।

विशेष– यह गीत भी रूपक ताल में निबद्ध है।

गीत संख्या–२०

पश्य पश्यर्तुकान्तं वसन्तं प्रिये,
भव्यभासाविभान्तं वसन्तं प्रिये।।
मलयमञ्जुलमरुन्मरमरितपत्रकं
कोकिलाकाकलीसच्चरितसत्रकम् ।
हृज्ज्वरं नाशयन्तं वसन्तं प्रिये ।।१।।
वैनतेयाग्रजोपमनवलकिसलयं
मञ्जुमधुपावलीमृदुमुखरकेशयम् ।
सौरभैः वासयन्तं वसन्तं प्रिये।।२।।
पक्वगोधूमयवसूकमण्डितखलं
लाविकालूनशिललसितजगतीतलम् ।
कूत्सवं वर्धयन्तं वसन्तं प्रिये।।३।।
विहगकलकूजितैर्विबुधकुलपूजितै
र्विषमसरचातुरीकातुरीभूर्जितैः ।
गिरिधरं शन्नयन्तं वसन्तं प्रिये।।४।।

भौमी- हे प्रिये! ऋतुपति वसन्त को देखो-देखो और अपनी दिव्य शोभा से सुशोभित वसन्त को देखो। सीते! मलयाचल के मंजुल वायु से बसन्त पत्तों को मरमरित कर रहा है और कोकिला की काकली से ऋषियों का सत्र भी झंकृत हो रहा है। हृदय के ज्वर को नष्ट करने वाले इस वसन्त को देखो। वैनतेयाग्रज अर्थात् गरुड के बड़े भाई अरुण के ही समान जिसमें लाल-लाल पल्लव हैं। जिस वसन्त में कमलों पर सुन्दर भ्रमर मँडरा रहे हैं ऐसे पुष्पों के सुगन्ध से सुगन्धित करते हुये वसन्त को देखो। हे सीते! देखो, इस बसन्त में किसानों के खलिहान पके हुये गेहूँ और जौ के बालों से सुशोभित हो रहे हैं और खेत काटने वाली महिलाओं द्वारा काटे हुये खेती से गिरे हुये शिल अर्थात् कणों से संसार उल्लसित हो रहा है। इस पृथ्वी के उत्सव को बढ़ाते हुये बसन्त को देखो। पक्षियों के श्रेष्ठ कलरवों से देवताओं के पूजन से और पुष्पधन्वा कामदेव की चतुरता पूर्ण आतुरता की ऊर्जा से युक्त तथा भगवद् गुणगान के द्वारा **गिरिधर** कवि को भी कल्याण की ओर ले जाते हुये इस वसन्त को देखो।

गीत संख्या-२१

पार्थिवि पश्यसि वहसि वसन्तम्।
नलिननयननवनयननलिनरससरसीवपुषि वसन्तम्।।
मलयमधुरमृदुसरससमीर कुटीरकरैरभिभान्तम्।
विरजवनजिनीवदनवरदवल्लभविभयेह विभान्तम्।।१।।
कुसुमितविपिनमिषैः सुहृदेषतविशिखधनूं रचयन्तम्।
नवलयुगलसुमनसि मनसिज वरवाससदमरचयन्तम्।।२।।
मधुरिपुसूनुसखं सुरवरवरशाखितले विश्रान्तम्।
नवसौरभसौरभसुविमलफलसुरसरसैराचान्तम्।।३।।
दिशि दिशि मधुकरमधुरमुखरमिषतः स्वसखं गायन्तम्।
कविगिरिधरं गीतरचनैः सीतारामौ ध्यायन्तम्।।४।।

भौमी- हे सीते! आप देख ही रही हैं और अपने अवयवों द्वारा वसन्त को धारण भी कर रही हैं। आपके कमलनयन ही उसके नेत्र हैं और आपके इस पूर्ण कमल के तालाब जैसे शरीर में निवास कर रहे वसन्त को आप देख रही हैं। मलयाचल के मधुर और रसीले वायु और कुटीरों के समूह से सुशोभित विशिष्ट परागवाली कमलिनी के मुख को भी वरदान देने वाले सूर्यनारायण की प्रभा से सुशोभित इस वसन्त को आप देख रही हैं। खिले हुये वनों के बहाने अपने मित्र कामदेव के लिए नुकीले बाण-समूहों की रचना कर रहे और नव-विवाहित दम्पती के सुन्दर मन में कामदेव का वासभवन बना रहे इस वसन्त को देख रही हैं। मधु नामक असुर के शत्रु नारायण के पुत्र कामदेव के मित्र और कल्पवृक्ष की शाखा के नीचे विश्राम कर रहे नवीन सुगन्धि वाले आम्र के निर्दोष फल के रस से आचमन किए हुए इस बसन्त को देख रही हैं। सभी दिशाओं में भ्रमरों के गुञ्जार के बहाने अपने मित्र कामदेव का गान करते हुए बसन्त को देख रही हैं और भिन्न-भिन्न गीत रचनाओं के माध्यम से हम दोनों श्रीसीतारामजी को ध्यान कर रहे **गिरिधर** कवि को भी आप कृपादृष्टि से निहार रही हैं।

गीत संख्या-२२

जानकि जनमनुवसति वसन्तः।
नवसौरभसौरभसमवासितरसमयसकलदिगन्तः ।।१।।
कलकोकिलकाकलीमधुपमधुगिरागीतरतिकान्तः ।
द्रुहिणतनयनयनजापुलिनश्रितविटपविहितविश्रान्तः।।२।।
मधुमधुमासमधुरमाधवमाधवीसरससीमन्तः ।
मनसिजमधुरमनोरथसत्पथपथिको गीतोदन्तः।।३।।
स्मारं स्मारमिहाथ वसन्तं सीतावरं रटन्तः।
गिरिधरगीतमनघगीतं गायन्तु श्रद्धया सन्तः।।४।।

भौमी- हे जानकी! इस समय प्रत्येक प्राणी के निकट वसन्त निवास कर रहा है। इस समय नवीन सुगन्धि वाले आम के बौरों से सम्पूर्ण दिगन्तों को रसमय और सुगन्धित कर दिया। यह वसन्त कोकिल की कुहू-कुहू ध्वनि और मधुर भ्रमर गुञ्जार से रतिपति कामदेव को गा रहा है और इसने ब्रह्मा, जिनके पुत्र हैं ऐसे विष्णु जी के नेत्र से उत्पन्न हुई सरयू के तट पर विराजमान वन के वृक्षों तले विश्राम किया है। सुन्दर मधुमास चैत्र और माधव, (वैशाख) मास में व्याप्त इस वसन्त ने माधवी लता को अपनी केश का शृंगार बनाया है और यह कामसम्बन्धी मधुर मनोरथरूप श्रेष्ठपथ का पथिक है। इसका इतिहास सभी के द्वारा गाया गया है। इस प्रकार इस प्रकृति में निवास कर रहे वसन्त को स्मरण कर-करके सीताराम को रटते हुए सन्तजन निष्पाप **गिरिधर** कवि द्वारा रचित गीत को श्रद्धापूर्वक गाएँ।

गीत संख्या-२३

त्वया सीते विजिता छविर्वासन्ती।
तवाननरुचिरा चैत्रचन्द्रं हसन्ती।।
अधरदृग्वदनपाणिचरणारुणाभा ।
समर्पितकिसलमृगनिशेशाब्जलाभा ।।
जगत्यां प्रजागर्ति जैत्रान् जयन्ती।।१।।
ललितनीलनीलाभकौशेयशाट्या
विधातुर्विधाशिल्पसौभगरराट्या ।
विभाते वियति विश्रुतिं राजयन्ती।।२।।
चपलचित्रचिकुरावलीकप्रकान्तिः
समाहृतमदनमोहनानन्दशान्तिः ।
मनोभवमधुव्रततितं तर्जयन्ती।।३।।
स्मितव्याजितस्ते दशनशुभ्रशोभा

मुदा दत्तसौदामिनीकुन्दलोभा।
जयति गिरिधरेशं सदा भ्राजयन्ती
त्वया सीते विजिता छविर्वासन्ती।।४।।

भौमी– हे सीते! आपने बसन्त की छवि को जीत लिया है। आपके मुख की शोभा चैत्र चन्द्रमा की भी हँसी उड़ा रही है। जिसने पल्लव, मृग, चन्द्रमा और कमल को सत्ता का लाभ दिया, ऐसी आपकी अधर नेत्र मुखश्री हस्त और चरणों की लाल आभा जीतने वालों को भी जीतती हुई जगत में जागरण कर रही है। इसी प्रकार अत्यन्त ललित नीली-नीली रेशमी साड़ी से और जो कि विधाता की शिल्प-विद्या के सौन्दर्य की मस्तक स्वरूप है द्वारा आपकी शोभा सम्पूर्ण आकाश को सुशोभित करती हुई विराज रही है। आपकी चंचल नीली केश पंक्ति जो कि काममोहक मुझ राम को भी शांति प्रदान करती है, वह तो कामदेव के भ्रमरों की पंक्ति को भी डाँटती हुई सुशोभित हो रही है। जिसने प्रसन्नतापूर्वक बिजली और कुन्द पुष्प को लोभायमान किया ऐसी मुस्कान की व्याधि से प्रस्फुटित होती हुई आपकी दन्तावली की शोभा **गिरिधर** कवि के स्वामी मुझ राम को भी सुशोभित करती हुई सबसे उत्कृष्ट प्रतीत हो रही है।

गीत संख्या-२४

सीता प्राह

विजयसे विभो विश्रवैः क्रूरकामम्।
क्षपयसे जगज्जैत्रदर्पं प्रकामम्।।
निटिलनेत्रमानससरोजन्ममधुकर
वपुर्व्रीडितानन्दसच्चित्पयोधर ।
दमयसे दमैर्नीचनीचं निकामम्।।१।।
मदनवैरिचापाब्जकुञ्जरकृपालो
त्रिपुरहरमनोव्योमदिनकर दयालो।
क्षमयसे न तं षड्विकारैकधामम्।।२।।
कलितसत्परमहंसहृद्ध्वंसजूर्त्या
ललितनीलनवकन्दमृदुमञ्जुमूर्त्या ।
कलयसे कलाकरसखं क्षामं क्षामम्।।३।।
विगणयन् वसनभूषणैस्त्वं वसन्तं
न गणयन् कदाचित् कुमतिहृदि वसन्तम्।
रमयसे रमां गिरिधरं माविरामम्।।४।।

भौमी– सीताजी बोलीं– हे परमात्मन् श्रीराघव! आप अपने यशों से पूर्णकाम को जीत रहे हैं और संसार को जीतने वाले काम के अहंकार को भी नष्ट कर रहे हैं। हे शिवजी के मानस सरोवर के भ्रमर, हे शरीर से सच्चिदानन्द को लज्जित करने वाले मेघ! आप अपने दमनकारी दण्डों से इस नीच को भली प्रकार दण्डित

कर रहे हैं। कामशत्रु शिव के धनुष रूप कमल के लिए गजेन्द्रस्वरूप कृपालो! त्रिपुरारी के मन रूप आकाश के सूर्य दयासिन्धु छहों विकारों के एकमात्र आश्रय उस काम को आप नहीं क्षमा कर रहे हैं। परमहंसों के हृदय को नष्ट करने वाले काम को भी जिसने सन्तप्त किया है, ऐसी नीले मेघ के समान अपनी मधुर मूर्ति द्वारा चन्द्रमा के मित्र काम को आप अत्यन्त दुर्बल बना रहे हैं। हे प्रभो! अपने आभूषण और वस्त्रों से वसन्त का तिरस्कार करते हुए और कुबुद्धियों के हृदय में निवास करने वाले काम की भी चिन्ता न करते हुए आप श्रीराघव निरन्तर मुग्ध सीता और **गिरिधर** कवि को भी रमाते रहते हैं।

सन्दर्भश्लोकौ

अथोपतस्थे वरदाभिरामौ
स्वानन्दशम्पाजलदाभिरामौ ।
रामौ स्वरामौ नवदम्पती तौ
ग्रीष्मोऽपि भीष्मो न हि तत्र भीष्मः।।१।।
सीता सखीभिः सखिभिश्च रामः
स्वलङ्क्रीयेते स्म निजानुरूपैः।
सुरद्रुतातैः कुसुमैः सुजातैः
सञ्जिग्यतू रम्यरतीरुचा तौ।।२।।

भौमी- बसन्त के अनन्तर वरदान देने वाले शिव को भी आनन्द देने वाले आत्मीयजनों के लिए आनन्द की विद्युत और मेघ के समान सुन्दर आत्मीय संतों को आनन्द देने वाले नव-दम्पती श्रीसीतारामजी की सेवा में भयंकर ग्रीष्म उपस्थित हुआ पर वह भगवान श्रीसीतारामजी के समक्ष भयंकर नहीं था। सीताजी सखियों के द्वारा और श्रीरामजी मित्रों के द्वारा अपने-अपने अनुरूप सुन्दर कल्पवृक्ष के पुष्पों से सजाये गये, उन्होंने अपनी कान्ति से रति और काम को भी जीत लिया।

गीत संख्या-२५

रामो गायति

ग्रीष्ममनुभवसि किमु निमिनन्दिनि
मा भैषीः सवितृकुलचन्दिनि।।
निटिलनयन इव दहनमभिवहति
कुधरशयन इव जगदपि निदहति।
प्रवहति खरपवनं निमिनन्दिनि।।१।।
हतशिखिफणिकरिहरिविषमाघं
तापसयति जगदगं निदाघम्
तपति ललाटन्तपमभिवन्दिनि।।२।।

हर हर सर सर कुखरसमीरं
अहनि कवोष्णितविरजानीरम्
मुनिमपि विकलति खलसङ्क्रन्दनि।।३।।
प्रखरचण्डकरतर्जितशान्तिं
सपदि शमितकलकाननकान्तिम्।
मां हर गिरिधरनिरयनिकन्दिनि।।४।।

भौमी- श्रीराम गा रहे हैं–हे निमिकुलनन्दिनी सीते! क्या आप ग्रीष्म का कष्ट अनुभव कर रही हैं? हे सूर्यकुल को प्रसन्न करने वाली सीते! आप मत डरिये। वस्तुतः यह ग्रीष्म निटिल नयन अर्थात् भाल नेत्र शिव की भाँति ही अपने मस्तक पर अग्नि धारण कर रहा है और कैलाशशायी शिवजी के समान ही यह संसार को जला रहा है। हे पृथ्वीनन्दिनी! यह कठोर वायु चला रहा है। हे निमिकुलनन्दिनी! आप ग्रीष्म का अनुभव कर रही हैं। हे सारे संसार से वन्दित सीते! यह ग्रीष्म मयूर और साँप, हाथी और शेर के पारस्परिक वैर को नष्ट करके संसार के सभी जड़–चेतनों को तपस्वी बना रहा है। आप भी ऐसी ग्रीष्म का अनुभव कर रही हैं। हे दुष्टों को क्रन्दित करने वाली सीते! दिन में जिसने सरयू के अगाध जल को गरम कर दिया; ऐसा हर–हर, सर–सर करने वाला भयंकर वायु मुनियों को भी व्याकुल कर रहा है। हे गिरिधर कवि के नरक को नष्ट करने वाली सीते! अत्यन्त गरम सूर्य की किरणों से जिसकी शान्ति भयभीत हो गयी है तथा जिसके मुख की शोभा शीघ्र ही क्लान्त हो उठी है, ऐसे मुझ राम को शीघ्र स्थानान्तरित कर दो।

गीत संख्या–२६

ग्रीष्मो मां न तुदति रघुनन्दन।
तनुते सुखं तपनकुलचन्दन।।
नीलकन्दमिव नीलशरीरम्।
विलसिततडितमथाब्दगभीरम् ।
शिखिनीवैमि सुखं भववन्दन।।१।।
घ्रायं घ्रायं तव पदकञ्जम्।
चुम्बं चुम्बं श्रितसुखपुञ्जम्।
भ्रमरवधूरिवास्मि नृपनन्दन।।२।।
तव मुखचन्दिरसुधां पिबन्ती।
चतुरचकोरीवाधिं घ्नन्ती।
तपो न गणये सुखनिस्यन्दन।।३।।
जाह्नविजनकचरणकृतकेता ।
किं ग्रीष्मे भयमेमि कमेता।
गिरिधरपातकपूगनिकन्दन ।।४।।

भौमी- अब भगवती सीताजी गा रही हैं–हे रघुनन्दन! ग्रीष्म मुझे कष्ट नहीं दे रहा है। हे सूर्यकुल के आनन्द देने वाले प्रभु! यह तो उल्टे मुझमें सुख का संचार कर रहा है। हे समस्त संसार के वन्दनीय प्रभु! विद्युत से युक्त गंभीर बादल के समान आपके श्रीविग्रह को प्राप्त करके मैं मोरनी के समान नाच रही हूँ। हे राजपुत्र, सभी सुखों के पुंज! आपके चरणकमल को सूँघ–सूँघ कर और चूम–चूम कर मैं भ्रमरी के समान प्रेममत्त हो रही हूँ। हे सुख की वर्षा करने वाले प्रभु! मैं चतुर चकोरी की भाँति आपके मुखचन्द्र की सुधा पीती हुई, अपनी मानसिक व्यथा को दूर करती हुई, ग्रीष्म के ताप की कोई चिन्ता नहीं कर रही हूँ। हे **गिरिधर** कवि के पाप समूहों को नष्ट करने वाले रघुनाथ जी! गंगाजी के जन्मदाता आपके श्रीचरण में निवास पाकर आपश्री से मिलकर मैं ग्रीष्म में कैसे दुःखी हो सकती हूँ।

गीत संख्या–२७

तपो वनतीदं जगन्निदाघम्।
लयकेशय इव निखिललोकमेकयतिसुदारुणदाघम्।।१।।
ग्रैष्मं कौतुहलमिह पश्य पश्य ननु शान्ताबन्धो।
सकलं तपोमयं तनुते किल सोमिष्यत्करकन्धो।।२।।
तरुणतपोधन इव तपसा विस्मृतसहजन्मविरोधम्।
कलयति वेदान्तिनमिव भुवनं ग्रीष्मः समप्रबोधम्।।३।।
पक्षच्छायं सद्मति सर्पो गतमन्युः मायूरम्।
हरिणा करी पीयतेऽपो मनसा न मन्यते क्रूरम्।।४।।
प्रावृषण्यवनदाभमब्जनाभं त्वामभि मां ग्रीष्मः।
गिरिधरेश नार्जुनमिव तुदते कृष्णमेघमभि भीष्मः।।५।।

भौमी- सीताजी कहती हैं–हे प्रभो! यह ग्रीष्म ऋतु तो सारे संसार को तपोवन जैसा बना रहा है अर्थात् जैसे तपोवन में विरुद्ध स्वभाव वाले जीव भी अपना स्वाभाविक वैर भूलकर एक ही स्थान पर रह लेते हैं उसी प्रकार इस गर्मी में सभी जीव जहाँ भी शीतलता देखते हैं, वही इकट्ठे हो जाते हैं। यह भीषण गर्मी वाला ग्रीष्म प्रलयकाल में जलशायी भगवान की भाँति सम्पूर्ण लोक को इकट्ठा कर दे रहा है। हे शान्ता के भैया, हे बेरफल को भी अमृत बनाने वाले प्रभु! इस ग्रीष्म का कौतुक तो देखिये यह सारे संसार को तपोवन बना दे रहा है। यह ग्रीष्म युवक तपस्वी की भाँति तपरूप ताप से अपना स्वाभाविक विरोध भुलवाकर संसार को वेदान्ती की भाँति समान ज्ञानवाला कर दे रहा है। देखिये प्रभु, क्रोध छोड़कर सर्प मयूर के पंखे की छाया को अपना घर बना रहा है अर्थात् मोरपंख की छाया के नीचे सर्प बैठ रहा है और मोर भी उसे नहीं खा रहा है। इसी प्रकार हाथी सिंह के साथ जलाशय में पानी पी रहा है। गर्मी से व्याकुल सिंह हाथी पर आक्रमण नहीं कर रहा है। हे वर्षाकालीन मेघ के समान श्रीविग्रह प्रभु! यह भयंकर ग्रीष्म **गिरिधर** कवि के स्वामी आपके पास मुझे देखकर उसी प्रकार नहीं कष्ट दे रहा है, जैसे भविष्यत् काल में श्रीकृष्ण के शरण में गये हुये अर्जुन को भीष्म नहीं कष्ट दे सकेंगे।

गीत संख्या-२८

विभावय ग्रीष्मं नृपतिकिशोर।
अधिननान्दृपुलिनं न बाधते मां मल्लोचनचोर।।१।।
नवलबकुलवानीरसरससरयूजलकलितसमीरम्।
सेवेथाः सीतया शिशिरकरवदनसुसदनकुटीरम्।।२।।
भवत एव स्वसृपयसा शिशिरितमञ्जुतालवरवृन्तम्।
शनैर्बीजयन्ती शमयेयं दयितातपं दुरन्तम्।।३।।
रचयेयं भाले कपोलयोर्मलयशिशिरपाटीरम्।
कुन्दमल्लिकास्त्रजं समर्प्य मुहुः सुखयेयं धीरम्।।४।।
प्रियावचनचातुरीतुष्टमभिकुञ्जं गतं तुरीयम्।
मनसि गीतसीताभिराममिह गिरिधर भज भजनीयम्।।५।।

भौमी- पुनः सीताजी हवेली पद्धति में गाती हैं। हे राजकिशोर! इस ग्रीष्म ऋतु को तो देखिये। हे मेरे नेत्रों को चुराने वाले! ये सरयू मेरी ननद हैं, इनके तट पर यह ग्रीष्म मुझे नहीं सता रहा है। नवीन बकुल तथा बेतलता से सुशोभित सरयूजी के जलकणों से जहाँ वायु शीतल हो रहा है, जहाँ शीतकिरण चन्द्रमा के कारण स्वाभाविक शीतलता उपलब्ध है, ऐसे सुन्दर कुंज कुटीर का मुझ सीता के साथ सेवन कीजिए। क्योंकि आप स्वयं चन्द्रमुख हैं। आपकी ही बहन सरयूजी के जल से गीला करके ताल के पंखें को धीरे-धीरे चलाकर मैं आपश्री के भयंकर ताप को समाप्त कर दूँगी। मैं आपके मस्तक और कपोलों पर शीतल-चन्दन का पाटीर लगाऊँगी और अत्यन्त शीतल कुंद की माला पहनाकर आपश्री को बार-बार सुखी करने का प्रयास करूँगी। इस प्रकार अपनी प्राणप्रिया सीताजी की वचनचातुरी से संतुष्ट और सीताजी के साथ कुंज में प्रवेश किये हुये गीतसीताभिराम महाकाव्य के परम तात्पर्य भजनीय तत्त्व तुरीय भगवान श्रीराम को हे **गिरिधर**! तू भी भज।

सन्दर्भश्लोकः

स्वप्नेऽप्यन्यमृगाक्षि शीतलकरस्पर्शं महारुन्तुदं
मत्वा वान्तमिव त्यजन्तमनिशं सीतैकपत्नीव्रतम्।
जानाना जनकार्थितं जनकजा तं प्राणनाथं रहः
प्रेम्णा मण्डयितुं समारभत तं चारित्रपूजा प्रिया।।१।।

भौमी- स्वप्न में भी अन्य मृगनयनी के शीतल कर स्पर्श को महामर्मान्तक पीड़ा करने वाला मानकर सदैव उसे वमन की भाँति उपेक्षा पूर्वक छोड़ते हुए श्रीराम को स्वयं सीता विषयक एकपत्नी का व्रत धारण किये हुए देवताओं द्वारा पूजित जानती हुई चारित्र की ही पूजा करने वाली श्रीराम की प्राणप्रिया जनकनन्दिनी सीताजी अपने प्राणधन प्रभु को प्रेम से श्रृंगारित करने लगीं।

गीत संख्या-२९

सीता कुरुते वरशृङ्गारम्।
मण्डयते मण्डितमपि मुदिता
वपुषा व्रीडितमारम्।।
तिलकं कलयति ललितललाटे
शिरषि सरसिजापीडम्।
पाटीरं कपोलयोः कर्णे
कुण्डलझषपा क्रीडम्।।१।।
करयोः कुसुमकङ्कणे कलिते
उरसि तुलसिकाहारम्।
मध्ये मृदुमालती तरणिजा
जटितजाह्नवीधारम् ।।२।।
करिकरसदृशसुभगशुभभुजयोः
कन्दलयति केयूरे।
सखयति रघुवरसखी सुखित
सर्पाभ्यां किमुतमयूरे।।३।।
रचयति पुष्परसेनालक्तं
नूपुरयुगलं प्रीता।
विहसति कोटिरतीः सुप्रीता
सीता गिरिधरगीता।।४।।

भौमी- आज सीताजी अपने वर श्रीराम का शृंगार कर रही हैं। यद्यपि अपने शरीर की कान्ति से करोड़ों कामदेवों को लज्जित करने वाले प्रभु श्रीराम पूर्व से ही अलंकारों से सुसज्जित हैं फिर भी प्रसन्न हुई सीताजी उनका शृंगार कर रही हैं। सीताजी श्रीराम के भाल पर तिलक लगा रही हैं, सिर पर कमलों का मुकुट पहना रही हैं, प्रभु के कपोलों पर चन्दन का पाटीर बना रही हैं और उनके कानों में मकराकृत कुण्डल धारण करा रही हैं। प्रभु के हाथ में पुष्पों का कंकण धारण कराती हुई हृदय पर तुलसी का हार, मध्य में मालती लता, मानों श्रीराम की सहचरी सीताजी सर्पों से दो मयूरों की मित्रता करा रही हैं। आज **गिरिधर** कवि द्वारा गीत का विषय बनायी गयी प्रसन्न सीताजी पुष्प के रस से श्रीराम को आलक्त धारण करा रही हैं। चरण में नूपुर धारण कराती हुई करोड़ों रतियों का उपहास कर रही हैं।

गीत संख्या-३०

भौमी भूमानं स्वभूषणै-
र्भूषितमपि भूषयते।

निजसौभाग्यविभवतो बहु
हरिवधूर्मुहुर्दूषयते ।।१।।
परम्परा परिरभ्य पराभ्यां
बाहुलताभ्यां रामम्।
निखिललोकलावण्यललामं
मण्डयते जितकामम्।।२।।
परिधापयति जगद्धातारं
पाटाम्बरमथपीतम्
मन्ये मरकतशैले सुखयति।
शिशुमिहिरं सुप्रीतम्।।३।।
निजकरनिर्मितकुसुमभूषणै-
र्हरिं भूषयति बाला।
नीलघनं नवनक्षत्रैः
शम्पा संयाति रसाला।।४।।
अञ्जयते निरञ्जनं खलु
खञ्जननयनयोर्मृगाक्षी ।
किमुत तया विधीयतेऽलिः
शशिसरसिजसख्ये साक्षी ।।५।।
ग्रीष्मर्तावपि रमयति रामं
विविधविलासैः सीता।
सह हरिणा हरिजापुलिनेषु
विजयते गिरिधरगीता।।६।।

भौमी- आज भूमिनन्दिनी सीताजी अपने आभूषणों से विभूषित होने पर भी भूमा श्रीराम को विभूषणों से विभूषित कर रही हैं और अपने सौभाग्य सम्पत्ति से करोड़ों-करोड़ों लक्ष्मियों की भी हँसी उड़ा रही हैं। श्रीराम की परायणा आह्लादिनी-शक्ति सीताजी सम्पूर्ण लोकों के सौन्दर्य के रत्न काम के विजेता परमेश्वर श्रीराम को अपनी श्रेष्ठ बाहुलताओं से आलिंगन करके उनका शृंगार कर रही हैं। सम्पूर्ण जगत के धाता श्रीराम को सीताजी पीला कौशेय वस्त्र धारण करा रही हैं। मुझे लगता है कि आज वे प्रसन्न होकर मरकत पर्वत के शिखर पर सूर्यनारायण को निवास देकर उन्हें सुखी कर रही हैं। अपने करकमल से उतारे हुये पुष्पों से सीताजी श्रीराम को सजा रही हैं, जैसे बिजली ही नक्षत्र माला से नील मेघ का शृंगार कर रही हो। सीताजी निरंजन प्रभु के भी नेत्रों में अंजन लगा रही हैं। क्या सीताजी के द्वारा कमल और चन्द्रमा की मित्रता में भ्रमर साक्षी तो नहीं बनाया जा रहा है। इस प्रकार ग्रीष्म ऋतु में भी अनेक विलासों से सीताजी श्रीराम को रमा रही हैं और **गिरिधर**

कवि के द्वारा गायी हुई जनकनंदिनीजी विष्णुनेत्रजा सरयू के तटों पर यह श्रीराम के साथ विहार करती हुई सर्वश्रेष्ठता को प्राप्त कर रही हैं।

सन्दर्भश्लोकः

अथाम्भोभृद्भार्यामलललितदीपालिभिरपां
धरध्वानध्वानैरिव दिविशदां दुन्दुभिरवैः।
रुतैः स्वातीतोयैरहिकुलभुजां मञ्जुनटनैः
सहर्षा वर्षाऽऽर्चद्धृतवरवपुर्ब्रह्ममिथुनम्।।१।।

भौमी- इसके अनन्तर मेघपत्नी विद्युतरूप निर्मल दीपमालिकाओं से और मेघमाला के गर्जनरूप देवदुन्दुभियों से स्वाति का जल ही जिनका व्रत है, ऐसे चातकों के स्वरों से, मयूरों के नर्तनों से प्रसन्न वर्षा ने परब्रह्मदम्पती श्रीसीतारामजी का अर्चन किया।

गीत संख्या-३१

सख्यो गायन्ति-

सीतारामौ जनाभिरामौ मणिपर्वते विराजेते।
जितशम्पाब्दौ गौरश्यामौ मणिपर्वते विराजेते।।
मलयसुरभिशुचिसरससमीरे वनरुहलोचनवनतनुतीरे
रामारामौ मनोऽभिरामौ मणिपर्वते विराजेते।।१।।
अधितिष्ठन्तौ सुन्दरदोलां सुरतरुशाखाश्रितां विलोलाम्
विभाविनिन्दितशतरतिकामौ मणिपर्वते विराजेते।।२।।
परस्परानसीधु पिबन्तौ परस्परेक्षणसुखी भवन्तौ
नित्यदम्पती पुण्यप्रणामौ मणिपर्वते विराजेते।।३।।
सुश्रावणीं मुदा गायन्तौ परस्परं ससुखं ध्यायन्तौ
कविगिरिधरसुखकरपरिणामौ मणिपर्वते विराजेते।।४।।

भौमी- लोगों को आनन्द देने वाले श्रीसीताराम मणि पर्वत पर विराज रहे हैं। विद्युत और मेघ को जीतने वाले गौरश्यामदम्पती मणि पर्वत पर विराज रहे हैं। जिसमें सुन्दर मलयानिल बह रहा है, ऐसी कमललोचन नारायण के नेत्र जल से उत्पन्न सरयू नदी के तट पर योगीजनों को भी आनन्द देने वाले दिव्य-दम्पती सुशोभित हो रहे हैं कल्पवृक्ष पर विराजमान चञ्चल हिडोलने पर सुशोभित हो रहे अपनी शोभा से करोड़ों कामों को जीतने वाले श्रीसीतारामजी मणि पर्वत पर विराज रहे हैं। एक-दूसरे की मुखसौन्दर्यरस को पीते हुए एक-दूसरे को देखकर सुखी होते हुए पवित्र प्रणाम वाले नित्य दम्पती श्रीसीतारामजी मणिपर्वत पर शोभायमान हैं। सुन्दर श्रावणीय गीत गाते हुए एक दूसरे का ध्यान करते हुए **गिरिधर** कवि के परिणाम को सुखप्रद बनाने वाले श्रीसीतारामजी मणि पर्वत पर विराज रहे हैं।

गीत संख्या-३२

पार्थिवि पश्य पयोजनिजनिजनि
वनमभिवर्षति वर्षा हे।
सुषमां सम्पश्यतो मनो मम
मुहुरभिकर्षति वर्षा हे।।
नीलनीलगगने वनदा वरदा वनिते राजन्ते
तव चिकुराण्यनुकुर्वाणा गीर्वाणा इव भ्राजन्ते।
क्षपितभूभामिनितर्षा हे
राजति राज्ञी राज्ञि ऋतूनां मुदरभिवर्षति वर्षा हे।।१।।
सरयुवरपुलिने सघने नृत्यन्ति मुदा मायूराः
कलस्वरं गायन्ति गवा कलरवाः सुसलिले शूराः।
कृषकजनकलितोत्कर्षा हे
भद्राभावितभविकभावुका
भवमभिवर्षति वर्षा हे।।२।।
धारासारपयोवृष्ट्या प्रवहन्ति नदा किल नद्यः
किमुत मदीयां भक्तिमाप्य वृत्तयो भवन्ति सुपद्यः।
परमरमणीयप्रकर्षा हे
दीव्यति देवि दिवा सह भूमि-
रमृतमभिवर्षति वर्षा हे।।३।।
मलयमदिरपौरस्त्यपवनप्राह्लादितसकलदिगन्ता
मरमरमञ्जुमर्कप्रसवैः संशोभितविचितनिशान्ताः।
हरिततृणहर्षितहर्षा हे
गिरिधरगीतसुखावहसीता
रसमभिवर्षति वर्षा हे।।४।।

भौमी- श्रीराम पूर्वी धुन में गा रहे हैं- हे सीते! देखिये, पयोजनि-जनि-जनि। अर्थात् जल से उत्पन्न होने वाले कमल के पिता नारायण के नेत्र से जन्म लेने वाली सरयू के तट पर उत्पन्न वन में वर्षा ऋतु जलवृष्टि कर रही है। यह वर्षा ऋतु इस शोभा को देखते हुए मेरे मन को बार-बार आकर्षित कर रही है। हे सीते! नीले-नीले आकाश में वर देने वाले बादल देदीप्यमान हो रहे हैं। ये तुम्हारे केशों का अनुकरण करते हुए देवताओं से सुशोभित हो रहे हैं। यह वर्षा अपने जल से पृथ्वीरूपिणी महिला की प्यास बुझाती हुई बार-बार जल वृष्टि कर रही है ऋतुओं की रानी वर्षा मुझ राजाधिराज के समीप सुशोभित हो रही है और आनन्द की वर्षा कर रही है।

देखिये, इस सघन सरयू तट के वन में मयूर प्रसन्नता से नाच रहे हैं और स्वाती जल में वीरता दिखाने वाले चातक सुन्दर स्वर में गा रहे हैं। कृषकजनों का उत्कर्ष बढ़ाने वाली भावसम्पन्न संसार के लोगों पर कल्याण करने वाली यह वर्षा ऋतु कल्याण की वर्षा कर रही है। हे देवी! धारा सार जलवृष्टि से नाले और नदियाँ बह रहे हैं। क्या मेरी भक्ति पाकर कहीं सेवाएँ शुभगति शील तो नहीं हो गई हैं। इसलिए अत्यन्त रमणीय उन्नति वाली यह पृथ्वी आज आश्रय निशा के साथ खेल रही है और वर्षाऋतु अमृत वर्षा कर रही है। मलय सुगन्ध से मतवाले पुरवैया वायु से सम्पूर्ण दिगन्त को प्राह्लादित करने वाली एवं मर-मर शब्द करते हुए मक्के के बालों से सम्पूर्ण प्रातःकाल को सुशोभित और व्याप्त करने वाली हरी-हरी घासों से हर्ष को भी प्रसन्न करने वाली और **गिरिधर** कवि के गीतों से आपश्री सीता को भी प्रसन्न करने वाली यह वर्षा आनन्द रस की वृष्टि कर रही है।

विशेष- यह गीत पूर्वी उत्तर प्रदेश की बहुत लोकप्रिय पूर्वी लोकधुन में निबद्ध है। इसके बोल हैं- "ऋषि संग चले जात रघुरइया संग में लछिमन भैया हे।"

गीत संख्या-३३

अपि च-

भौमि भूमिरेव भूयसा विभाति प्रिये।
प्रावृषि प्रभाति प्रिये हे।।
कलं कम्प्रदा कटन्ति पीपी चातकाः रटन्ति
वटव इव बटन्ति भेका भवा भाति प्रिये।
प्रावृषि प्रभाति प्रिये हे।।१।।
नद्यो वारि परिवहन्ति पङ्का नो रहो रहन्ति
नाग्नयो दहन्ति नाम्बु भूर्जहाति प्रिये।
प्रावृषि प्रभाति प्रिये हे।।२।।
सालिं बाला रोपयन्ति झिल्ल्यः पिकं कोपयन्ति
लोपयन्ति कुं तृणैश्च समायाति प्रिये।
प्रावृषि प्रभाति प्रिये हे।।३।।
राज्ञी ऋतूनां हि वर्षा
हर्षमातनोत्यकर्षा
गिरिधराय ते पदाब्जरतिं राति प्रिये।
प्रावृषि प्रभाति प्रिये हे।।४।।

भौमी- और भी-हे पृथ्वीनन्दिनी! यह पृथ्वी आज बहुत सुशोभित हो रही है और वर्षा ऋतु में प्रकाशित भी हो रही है। इस समय मेघ सुन्दर वर्षा कर रहे हैं। पपीहे पी-पी रट रहे हैं और मेढक बटुओं की भाँति अत्यन्त बोल रहे हैं और कल्याणी भूमि सुशोभित हो रही है। हे प्रिये! नदियाँ जलधारा बहा रही हैं और कीचड़

मार्ग नहीं छोड़ रहे हैं और अग्नि वर्षा के कारण नहीं जल रहे हैं। भरा हुआ जल पृथ्वी भी नहीं छोड़ रही है, अर्थात् वर्षा के कारण सब कुछ जल में डूब गया है। छोटी-छोटी किसानों की बालिकाएँ धान रोप रही हैं और झींगुर अपने स्वरों से कोयलों को रुष्ट कर रहे हैं। यह वर्षा तृणों से पृथ्वी को ढँकती हुई तरंग में चली आ रही है और वर्षा में पृथ्वी सुन्दर लग रही है। हे प्रिये सीते! यह ऋतुओं की रानी वर्षा प्रसन्न होकर प्राणियों में हर्ष का संचार कर रही है और **गिरिधर** कवि को आप श्रीसीता के चरणकमल की भक्ति प्रदान कर रही है।

गीत संख्या-३४

सीता गायति-

आर्यपुत्र मनोनिकुञ्जे निधीयतां मुहुः सन्निधीयतां मे।
वर्षा सप्रकर्षा भाति मही सह दिवा विभाति
नो जहाति सुखं मतिस्तत्र दीयतां मुहुः सन्निधीयतां मे।।१।।
शस्यश्यामलैव माता हरितपल्लवश्च भ्राता
याता सुखं प्रकृतिरक्षिभिः प्रधीयतां मुहुः सन्निधीयतां मे।।२।।
कलं वारिदाः कटन्ति सर्पसत्रवो नटन्ति
चातकाश्चटन्ति प्रतिष्ठा प्रणीयताम् मुहुः सन्निधीयतां मे।।३।।
कृषीवलास्त्वां गायन्ति योगिनो धिया ध्यायन्ति
गिरिधराय रतिः पादयोः प्रदीयतां मुहुः सन्निधीयतां मे।।४।।

भौमी- अब सीताजी गा रही है-हे आर्यपुत्र! अब अपना मन निकुंज लीला में लगाइये और बार-बार मेरी सन्निधि में रहिए। देखिये उत्कर्ष के साथ वर्षा सुशोभित हो रही है और पृथ्वी आकाश दिशा से मिली हुई-सी प्रतीत हो रही है और हम दोनों को वर्षा का आनन्द नहीं छोड़ रहा है, हमको भी अपनी बुद्धि इसमें लगानी चाहिए। मेरी माता पृथ्वी आज सुन्दर खेतियों से श्यामल हो गई हैं। मेरे भ्राता वृक्षों के पत्ते हरे-हरे हो गये हैं और सम्पूर्ण पृथ्वी सुखी हो गई है। आप अपने श्रीनेत्रों से उसे धारण करें। देखिये, बादल सुन्दर वर्षा कर रहे हैं और सर्प जिनके शत्रु हैं, ऐसे मेढ़क टर्र-टर्र बोल रहे हैं और चातक भी पी कहाँ की धुनि लगा रहे हैं। अब प्रतिष्ठा का निर्माण किया जाय। कृषक आपका गान कर रहे हैं, योगीजन बुद्धि से आपका ध्यान कर रहे हैं और **गिरिधर** कवि को भी अपने चरणकमल की भक्ति प्रदान कीजिए।

गीत संख्या-३५

प्रियतम पश्य वारिदो वर्षति
तव रुचिमनुकुर्वाण इवायं निर्वाणं सोत्सवं प्रवर्षति।।१।।
गर्जं गर्जं नभसि नभस्वत् सखः स्वैर्गणैःसमिबोत्कर्षति
यथा भवान् निजजनहृदम्बरे वरदीत्सया ब्रुवन् प्राकर्षति।।२।।
वर्षर्तौ पूरयन् नदनदीर्नैव चलामतिहृदमपकर्षति
भक्तेच्छाःपूरयन् पुरुभवान् यथा गिरिधरेशः हृदि हर्षति।।३।।

भौमी- अब सीताजी 'त्रिताल' (१६ मात्रा) में पुनः गा रही हैं। हे प्रियतम राघव! निहारिये, यह बादल बरस रहा है। लगता है, मानों आपकी शोभा का अनुकरण करता हुआ उत्साह के साथ मोक्ष सुख की वर्षा कर रहा है। प्रभो! वायु का मित्र यह बादल अपने गणों के साथ गरज-गरज कर आकाश का उत्कर्ष बढ़ा रहा है, जैसे आप अपने भक्त के हृदयाकाश में विराजमान होकर वरदान देने की इच्छा से भाषण करते हुए भक्त का प्रकर्ष बढ़ा देते हैं। देखिये, प्रभु वर्षा ऋतु में बहुत देर तक नहीं रखता। इस प्रकार **गिरिधर** कवि के स्वामी आपश्री राघव भक्तों की इच्छाएँ पूर्ण करके प्रसन्न हो रहे हैं। उनके सम्बन्ध में मुझसे पूछते भी नहीं।

गीत संख्या-३६

सीता मेघं प्रति-

वर्ष वारि सौम्य शम्पापते शनैस्तुष्टशान्ताभवं
शिरिषकुसुमसुकुमारशरीरं मा पीडय नीरैः रघुवीरम्।
तर्ष वीक्ष्य वीक्ष्य विद्युत्पते
शनैः शान्तशान्ताभवम् ।।१।।
ईषत् क्लेदय पटमपि पीतं
विमलविविधशिशुमिहिरपरीतम् ।
वर्ष वर्षं वर्षं चपलापते
शनैर्वर्ष करुणार्णवम्।।२।।
वञ्चय मम कौशुम्भीं शाटीं
सिञ्चय रघुवरललितललाटीम्।
वर्ष मन्दं मन्दं कृषिवल्गते शनैर्वर्ष श्रीराघवम्।।३।।
सुखय ममेशं घर्मच्छामं
मा दुःखय गीतसीताभिरामम्।
वर्ष हर्षं हर्षं मङ्गलमते
शनैर्वर्ष गिरिधरधवम्।।४।।

भौमी- अब सीताजी मेघ के प्रति कहती हैं-हे विद्युत के पति मेघ! जिन्होंने शान्तापति शृङ्गीऋषि को सन्तुष्ट किया है ऐसे श्रीराम पर धीरे-धीरे वर्षा करो। शिरीष पुष्प के समान सुकुमार शरीर वाले श्रीरघुवीर को जलों से मत पीड़ित करो और हे बिजली के नायक! जिन्होंने शान्तापति ऋष्यशृंग को पूजित किया, उन श्रीराम को देख-देखकर धीरे-धीरे लुब्ध हो। हे मेघ! अनेक निर्मल बालसूर्यों की शोभा से युक्त प्रभु के पीताम्बर को धीरे-धीरे गीला करो। हे चपला के स्वामी! बरष-बरष कर बरसते जाओ पर करुणासमुद्र श्रीराम पर धीरे-धीरे बरसो। देखना, मेरी रेशमी साड़ी को बचा देना और श्रीराम के मस्तक को शीतल बूँदों से सींच देना। हे किसानों के एक मात्र आश्रय मेघ राजा! धीरे-धीरे बरसो श्रीराघव के ऊपर तीव्रता से मत बरसो। धूप से क्लान्त मेरे स्वामी को सुखी कर दो और गीतसीताभिराम महाकाव्य के प्रतिपाद्य श्रीराम को दुःखी मत करो।

हे मंगलोन्मुखी बुद्धि वाले मेघ! प्रसन्न हो–होकर बरसो, परन्तु **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराघव पर धीरे–धीरे बरसो।

सन्दर्भश्लोकः

इत्थं वसन्तौ दिवि दिव्यदम्पती
साकेतधामन्यथ सर्वसम्पदि।
सानन्दमानन्दमयौ च षड्ऋतून्
काले यथा धर्ममनू स्म भेजतुः।।१।।

भौमी– इस प्रकार आनन्दस्वरूप दिव्य दम्पती श्रीसीतारामजी सम्पूर्ण सम्पत्तियों से युक्त श्रीसाकेत–धाम अयोध्या में आनन्दपूर्वक निवास करते हुए आनन्दपूर्वक छहों ऋतुओं का अनुभव किये।

इति
श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरमहाकविजगद्गुरुरामानन्दाचार्यस्वामिरामभद्राचार्यगिरिधरकविप्रणीते गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये अयोध्याकाण्डे गीतसीतारामषड्ऋतुविहारो नाम चतुर्थः सर्गः।

इस प्रकार श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर महाकवि जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य गिरिधरकवि द्वारा विरचित गीतरामायण 'गीतसीताभिराम' नामक संस्कृत गीतमहाकाव्य के अयोध्याकाण्ड में गीतसीतारामषड्ऋतुविहारो नामक चतुर्थ सर्ग सम्पन्न हुआ।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

।।श्रीः।।

।।नमो राघवाय।।

गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये
अयोध्याकाण्डे
गीतराष्ट्रदैवतो नाम
पञ्चमः सर्गः
सन्दर्भश्लोकौ

साकेते केतकेते सुकनकभवने सीतयैवादिशक्त्या
भक्त्या भुक्ताधरश्रीर्मधुमधुररसो मन्मथो मन्मथस्य।
मातॄः शीलेन तातं शशिसितयशसा सच्चरित्रैस्त्रिलोकीं
रामो रामोऽर्कवर्षाण्यधिपुरि रमयन् सन्नमस्यां बभूव।।१।।
अथाजगाम नारदः समस्तशास्त्रपारदः
प्रवीणयैकवीणया मुहुर्गृणान आर्जवात्।
त्रिलोकलोकपावनं मुनीन्द्रचित्तभावनं
रघूत्तमस्य कीर्तनं त्रितापपापकृन्तनम्।।२।।

भौमी- अब महाकवि अयोध्याकांड की अग्रिम कथावस्तु को क्रमबद्ध करते हुये उसकी सन्दर्भ-शुद्धी प्रस्तुत कर रहे हैं। सभी धामों के मुकुटमणि साकेत अर्थात् श्रीअवधपुर में विराजमान कनक भवन में अपनी आदिशक्ति सीताजी द्वारा भक्तिपूर्वक जिनका अधरामृत पान किया गया, ऐसे कामदेव के भी कामदेव भगवान श्रीराम विवाह के पश्चात् बारह वर्षपर्यन्त माताओं को शील से, पिताश्री दशरथ जी को चन्द्रधवल यश से, तीनों लोकों को अपने चरित्रों से प्रसन्न करते हुये सज्जनों से नमस्कृत होते रहे। अब महाकवि एक पंचचामर वृत्त में नारदजी के आगमन को सन्दर्भित कर रहे हैं। इसके अनन्तर अर्थात् श्रीराम के विवाह के बारह वर्ष बीतने के पश्चात् समस्त शास्त्रों का सार प्रदान करने वाले देवर्षि नारद कुशल वीणा के माध्यम से तीनों लोकों के प्राणियों को पवित्र करने वाले, मुनिजनों के चित्त को भाने वाले, तीनों प्रकार के तापों और पापों को नष्ट करने वाले श्रीराम का सरलता से कीर्तन करते हुये प्रभु श्रीराम के पास पधारे।

गीत संख्या-१

नारदो गायति-

जय जय जानकीनाथ कृपालो।
अतिसिकुसुमनवनीलकलेवर राघव दीनदयालो।।१।।

जय महेशमानसमानसकलहंस हंसकुलकेतो।
जय मर्यादापुरुषोत्तम सततं श्रितवैदिकसेतो।।२।।
जय सीतामुखचारुचन्द्रचञ्चलचकोर रघुनन्दन।
जय कश्यपनन्दननन्दनतरुनन्दन लसदभिनन्दन।।३।।
जय गिरिधरसारङ्गरङ्गकृतसङ्गनवीनपयोधर।
जय दशरथकुलकमलदिवाकर रघुवर भारतमुद्धर।।४।।

भौमी- अब हवेली पद्धति में नारदजी गा रहे हैं–हे जानकीनाथ, हे कृपासम्पन्न, हे दयामय! तीसी के पुष्प के समान शरीर वाले राघव सरकार, आपकी जय हो, जय हो। शिवजी के मनरूप मानस सरोवर के हंस अर्थात् सूर्यकुल के पताका स्वरूप प्रभु मर्यादा पुरुषोत्तम, सदैव वैदिक संस्कृत सेतु का अनुसरण करने वाले प्रभु श्रीराम आपकी जय हो, जय हो। सीताजी के सुन्दर मुखचंद्र के चंचल चकोर रघुनन्दन श्रीराम! आपकी जय हो। कश्यपपुत्र सूर्य को आनन्द देने वाले और नन्दनवन के पुष्पों से अभिनन्दित प्रभु! आपकी जय हो। हे **गिरिधर** कविरूप चातक के आनन्द को उत्साह देने वाले नवीन बादल! हे दशरथकुल कमल के सूर्य रघुवर! इस भारत का उद्धार कीजिए।

गीत संख्या-२

हरे हर भारतं भारं वयं शरणं प्रपन्नास्त्वाम्।
विभो भर भारतं भारं वयं प्राप्ता विपन्नास्त्वाम्।।
न गावो नाथ दुह्यन्ते नगा वो नाथ द्रुह्यन्ते।
समाहर भारतं भारं वयं नीता निषण्णास्त्वाम्।।१।।
जनाः शोकेन दह्यन्ते प्रद्रुह्यन्ते न दिह्यन्ते।
समाचर भारतं भारं वयं भीता विष्णास्त्वाम्।।२।।
म्रियन्ते मीनिता लोका ध्रियन्ते नो विगतशोकाः।
समुत्सर भारतं भारं वयं नेताः प्रसन्नास्त्वाम्।।३।।
न धत्ते शर्म ना नन्दन् ब्रुवे गिरिधरकविः क्रन्दन्।
समुद्धर भारतं भारं वयं याता न सन्नास्त्वाम्।।४।।

भौमी- नारद कहते हैं–हे हरे! अब आप भारत का भार हर लीजिए, हम आपकी शरण में आये हैं। हे सर्वव्यापी अब आप भरण करने योग्य भारत का भरण-पोषण कीजिए, हम विपन्न होकर आपको प्राप्त हुये हैं। हे नाथ! यहाँ गौएँ नहीं दुही जा रही हैं और आपके नगा अर्थात् वृक्षों और पर्वतों से द्रोह किया जा रहा है। आप इस भारत की विपत्ति-भार को समेट लीजिए, हम निश्चितरूप से आपके पास आकर बैठे हैं। लोग शोक से जग रहे हैं। उनका दोहन हो रहा है और उनकी उन्नति नहीं हो रही है। आप भारत का पोषण कीजिए, हम दुःखी और भयभीत होकर आपके पास उपस्थित हैं। यहाँ लोग मछलियों की भाँति मर रहे हैं और शोकरहित होकर जीवन धारण नहीं कर रहे हैं। आप भारत के संकट का भार दूर कर दीजिए। हम प्रसन्नता के साथ

आपके पास नहीं आये हैं अर्थात् ब्रह्मा के द्वारा रावण को दिये हुये अविचारित वरदान के दुष्परिणाम से खीझकर आपके पास आये हैं। आज मनुष्य प्रसन्न होता हुआ शान्ति नहीं धारण कर रहा है और **गिरिधर** कवि की वाणी में चिल्लाता हुआ मैं प्रार्थना कर रहा हूँ। हे प्रभो! आप भारत का बोंझा अपने सिर पर उठा लीजिए, हम मुखरित होकर आपकी शरण में आये हैं।

गीत संख्या-३

राम राजीवलोचन कृपावारिधे खिद्यमानं भयात् पाहि ते भारतम्।
सर्वसङ्कष्टमोचन दयावारिधे भिद्यमानं भिदा त्राहि ते भारतम्।।१।।
कोटिशो हन्यमाना सदा धेनवो दूषयन्ते नभो मांसमयरेणवः।
हा हता हन्त भो वैदिकी सत्क्रिया क्रन्दमानं भिया पाहि ते भारतम्।।२।।
नित्यमातङ्कवादाग्निना ज्वालितं क्रूरहिंसाकुलिषमालया मालितम्।
पापिपामरपतितपालकैः पालितं कालितं कालतः पाहि ते भारतम्।।३।।
लाल्यते नैव शीलं ललितलालनं पाल्यते नैव पापैः प्रभो पालनम्।
हे पतितपूगपावन परमपावनं पामनं पामरात् पाहि ते भारतम्।।४।।
रामचन्द्रार्चितं यत् पुरा भारतं त्वत्कुलाम्भोधिचन्द्रैर्धुरा भारतम्।
गिरिधरेश्वर तदेवाखुसाम्यं गतं सर्पवक्त्रं श्रितं पाहि ते भारतम्।।५।।

भौमी- नारदजी पुनः कहते हैं– हे श्रीराम! हे राजीवनयन (लाल कमल के समान नेत्र वाले) हे कृपा के सागर! आप दुःखी हो रहे भारत को भय से बचा लीजिये। हे सभी संकटों को दूर करने वाले दयासिन्धु! नाना प्रकार के भेद भावनाओं से बंट रहे अपने भारत की रक्षा कर लीजिए। आज प्रतिदिन करोड़ों-करोड़ों गायें मारी जा रही हैं और गौवों के माँस से मिश्रित धूलियां इस आकाश के पर्यावरण को दूषित कर रही हैं। हाय प्रभो! यह वेद प्रतिपाद्य सुन्दरप्रिया नष्ट हो गई है। ऐसे चिल्लाते हुए अपने भारत को आप ही बचा लीजिए। यह देश आतंकवादरूप अग्नि से निरन्तर जल रहा है और क्रूर हिंसारूप वज्र की मालाओं से यह घिर गया है और पापी दुष्ट तथा नीचे गिरे हुए भ्रष्ट-शासकों से इसका पालन हो रहा है। अतः काल के द्वारा खाये जा रहे अपने भारत देश की आप रक्षा कर लीजिए। आज सभ्यजनों द्वारा लालनीय (सम्मान करने योग्य) शील अर्थात् चरित्र का सम्मान नहीं किया जा रहा है। हे प्रभो! पालनीय स्वभाव पापियों द्वारा नहीं पाला जा रहा है। हे पतित समूहों को पवित्र करने वाले भगवान श्रीराम! अब तो आप 'पामन' अर्थात् अनेक ब्रणों से व्याप्त अपने भारत को भ्रष्ट-शासकों से बचा लीजिए। हे **गिरिधर** कवि के प्रभु श्रीराम! जो भारत पहले आप श्रीरामचन्द्र द्वारा सम्मानित हुआ और आपके कुलरूप क्षीरसागर में उत्पन्न हुए चन्द्रमा के समान अनेक राजाओं द्वारा अपने धर्म की धुरा से सुरक्षित हुआ, वही भारत इस समय चूहे के जैसे साँप के मुख में चला गया है। आप इसकी रक्षा करें।

गीत संख्या-४

देव सत्स्वान्ततो धेहि देशं स्वकं पापिभिः पीडितं कुत्र यामो वयम्।
दिव्यविग्रहगृहाणैतदावेदनं देवनाब्रीडितं कुत्र यामो वयम्।।१।।

यत्र पश्याम आर्याब्धिपार्वणविधो तत्र हाहाकृतः श्रूयते सद्विधो।
रोदनाश्रुःश्रितोऽतोषतापोष्णितो रोगरुग्णा जनाः कुत्र यामो वयम्।।२।।
शान्तशान्तावरज पश्य भो शान्तया सदृशा स्वस्पृशा क्लान्तया कान्तया।
कुक्कुरैः खादितं तावकं शावकं वीक्ष्य वै पावकं कुत्र यामो वयम्।।३।।
यत्र यत्रापि गच्छाम इज्यावृता ईहमाना शमीहां स्वकर्मारता।
कीशबाला इवाग्निं विलोक्याहता हा हता भीभिया कुत्र यामो वयम्।।४।।
नैव शान्तिः न कान्तिः क्वचित् तोषणं क्रूर आतङ्कवादो नृणां शोषणम्।
नो शिवा शैवदेशे शिवा रौति भो गिरिधरेश्वर वदेः कुत्र यामो वयम्।।५।।

भौमी– हे देव! आप स्थिर मन से पापियों से पीड़ित इस देश का ध्यान कीजिए। हम कहाँ जाएँ? हे दिव्य विग्रह प्रभो! विलाप से लज्जित हमारा यह आवेदन स्वीकार कर लीजिए। हम आपको छोड़कर कहाँ जाएँ? हे आर्यवंशरूप क्षीरसागर के पूर्ण चन्द्रमा और 'सद् विधौ' अर्थात् महाविष्णु प्रभु श्रीराम हम जहाँ भी देख रहे हैं, वहाँ का प्राणी हाहाकार के ज्वर से युक्त असंतोष के ताप से तप्त और रोग से रुग्ण है। अब हम कहाँ जाएँ? हे सौम्य! हे शान्ता जी के छोटे भ्राता! आप आत्मीयजनों का स्पर्श करने वाली अपनी शान्त-निर्दोष, सुन्दर-कृपादृष्टि से देखिए। आपके इस बालक को कुत्तों ने खा लिया है, चारों ओर जलती हुई आग देखकर हम कहाँ जाएँ? यज्ञ की दीक्षा में दीक्षित अपने कर्मों में निरत हम लोग कल्याण कामना से जहाँ-जहाँ भी जाते हैं, वहाँ-वहाँ जलती हुई अग्नि को देखकर वानरों के बच्चों की भाँति हम व्याकुल हो रहे हैं। मरे हुए हम लोग भयंकर भय से भयभीत होकर अब कहाँ जाएँ? न तो कहीं शान्ति है, न ही कहीं शोभा और न ही कहीं सन्तोष। आतंकवाद मनुष्यों का निरन्तर शोषण कर रहा है। इस शिवप्रधान देश में शिवा अर्थात् पार्वती जी नहीं दिख रही हैं। यहाँ शिवा अर्थात् गीदड़ी रो रही है। हे **गिरिधर** कवि के स्वामी आप ही बतायें हम कहाँ जाएँ?

गीत संख्या-५

हे हरे भारतवर्षभयं हर।
हे स्मरहरमानससमानसकलहंस हंसमुखमथो पयोभर।।१।।
क्रन्दन्तं क्षुधया अहर्निशं आमसुखं भारतं शुभङ्कर।
स्वाहाकाररतं यं सम्प्रति हाहाकारनिरतमव रघुवर।।२।।
श्रौतस्मार्तयज्ञविलसितशुचिधूमकेतुनभसं पीताम्बर।
पश्यसि किं न साम्प्रतं दनुजैः धेनुकोष्णरुधिरितं महीश्वर।।३।।
जानन्नपि किमुपेक्ष स एनं देशद्रुहं पापिनं श्रीवर।
गिरिधरचातकचारुबलाहक सत्वरमिह भारतं शमाहर।।४।।

भौमी– हे श्री हरे! आप भारतवर्ष का भय दूर कर दीजिए। हे कामशत्रु शिव जी के मनरूप मानस सरोवर के सुन्दर हंस श्रीराघव! अब हंसमुख में दूध पिलाइये अर्थात् भारत को पालिये। भूख से पीड़ित रात और दिन चिल्लाते हुए कच्चे सुख वाले, पूर्व में स्वाहाकार में लगे हुए, वर्तमान में हाहाकार में तत्पर इस भारत देश की आप रक्षा कीजिए। हे कल्याणकारी! हे रघुवर! हे पीताम्बरधारी! हे महीश्वर अर्थात् पृथ्वीपते! क्या

आप नहीं देख रहे हैं जो भारत श्रौत, स्मार्त–यज्ञों के धूम से सुशोभित आकाश वाला था। क्या आप नहीं देख रहे हैं कि वही भारत आज राक्षसों के द्वारा 'गौमाता' के गरम–गरम खून से भर दिया गया है। आप जानकर भी इस देशद्रोही पापी की उपेक्षा क्यों कर रहे हैं। हे **गिरिधर** कविरूप चातक के लिए सुन्दर मेघ! आप अतिशीघ्र इस भारत को अपने वात्सल्यरूप वस्त्र छाया में समेट लें।

विशेष– यह गीत त्रिताल (१६ मात्रा) में निबद्ध है।

गीत संख्या–६

यर्हि राष्ट्रस्य नेताप्यनेता भवेद्, राजनीतिः प्रकल्पेत यर्ह्यागसे।
यर्हि दुश्शासनायेत दुश्शासनं, हे हरे मादृशैः किं विधेयं तदा।।१।।
यर्हि ना नारिवश्योऽनमस्यो भवेद् रक्षको भक्षकः साक्षरा राक्षसाः।
यर्हि वै वायसायेत हंसो हसन् हे हरे मादृशैः किं विधेयं तदा।।२।।
यर्हि भागीरथी कर्मनाशायतां, यर्हि सोमो ज्वलत्पावकायेत भो।
यर्हि कीलालराशिर्भवेद् बालुका, हे हरे मादृशैः किं विधेयं तदा।।३।।
यर्हि मित्रं परायेत पापैकधीर्यर्हि मातैव मृत्युर्भवेद् पुत्रहा।
यर्हि वैवस्वतः स्यात् पिता जन्मदो, हे हरे मादृशैः किं विधेयं तदा।।४।।
यर्हि हाहाकृतिः स्वाहया नो व्रजेत्, यर्हि हैमाद्रिरद्धा हिमं सन्त्यजेत्।
यर्हि जह्यात् क्षमां गिरिधरेश्वरक्षमा, हे हरे मादृशैः किं विधेयं तदा।।५।।

भौमी– जब राष्ट्र का नेता ही अनेता बन जाय और जब राजनीति अपराधीकरण की ओर बढ़ने लगे, जब दुष्ट शासन, दुश्शासन, बनकर राष्ट्र–संस्कृतिरूप द्रौपदी का चीरहरण करने लगे, तो हे हरे! उस परिस्थिति में मुझ जैसे लोगों को क्या करना चाहिए। हे श्री हरे! जब पुरुष ही नारी के वश होकर नमस्कार की पात्रता खो दे और जब रक्षक भक्षक बन जाये तथा साक्षर (पढ़े–लिखे लोग) राक्षस बन जायें, जब हंस हँसते–हँसते निर्लज्ज होकर कौवा बन जाये, उस समय मुझ जैसे लोगों को क्या करना चाहिए? जब गंगाजी ही कर्मनाशा बन जायँ, जब चन्द्रमा जाज्वल्यमान अग्नि का रूप धारण कर लें, जब जलराशि महासागर ही बालू की ढेर बन जाय! हे श्री हरे! उस समय मुझ जैसे लोग क्या करें? जब मित्र ही पापात्मा शत्रु बन जाय, जब माता ही पुत्र की हत्या करने वाली मृत्यु बन जाय, जब जन्मदाता पिता ही यमराज की भूमिका निभाने लगे। हे श्री हरे! उस समय मुझ जैसे लोग क्या करें? जब हाहाकार स्वाहाकार के द्वारा भी न भगाया जा सके, जब हिमालय अपनी बर्फ की राशि छोड़ दे, जब पृथ्वी अपनी स्वाभाविक क्षमा का त्याग कर दे, तो हे **गिरिधर** कवि के स्वामी श्री हरे! तब मुझ जैसे विचारक क्या करें?

गीत संख्या–७

पश्य प्रभो भवनाव ते देशं मनुजनिधनं जातम्।
भावय भवोद्भवनाव ते देशं विपुल विधनं जातम्।।
वार्ता न वार्ता मङ्गला लोकेषु नैव दिवा सुखम्।

न प्रोज्वला शुभसर्वरी काचिन् नखं विलसन्मखम्।
पश्याप्यकं सीतापते देशं विपन्मग्नं जातम्।।१।।
नहि हूयते स्वाहापतिर्लोके न वेदः श्रूयते।
विश्वो लसितहाहाकृतिर्विश्वो विषण्णो दूयते।
पश्याविकं करुणाकृते देशं कलिललग्नं जातम्।।२।।
सत्कौशिकः श्रीराघवं काङ्क्षन् कमीक्षते।
पदपद्मश्रीः शिलाभवं सत्ता प्रतीक्षते।
चिन्तय चिरं मङ्गलमते देशं निजं रुग्णं जातम्।।३।।
नहि भारतं ते भारतं नहि राममण्डितम्।
नहि साम्प्रतं शोभारतं विकलं विखण्डितम्।
उद्धर सपदि गिरिधरगते देशं विभवभग्नं जातम्।।४।।

भौमी– हे प्रभो! हे संसार के रक्षक! आप अपना देश देखिये, यहाँ मनुष्य का ही निधन हो गया है। हे संसार की उत्पत्ति और रक्षा करने वाले! आप चिंतन करके देखिये, आपका देश भारत अत्यन्त निर्धन हो चुका है और आपके देश के बहुत से लोग निर्धन हो चुके हैं। हे प्रभो! लोक में कहीं भी मंगल का समाचार नहीं है न दिन में सुख है और न ही रात्रि में आनन्द। न यहाँ यज्ञ है न अध्यात्म सुख। हे सीतापते! आप अपना देश देखिये, यह विपत्ति में डूब गया है। हे प्रभु! कहीं भी अग्नि में हवन नहीं हो रहा है और कहीं भी वेद ध्वनि सुनायी नहीं पड़ रही है। सम्पूर्ण संसार हाहाकार से विलसित है वह दुःखी है और व्याकुल हो रहा है। हे करुणाकृति प्रभु! देखिये, आपका यह देश भेड़ों के समूह जैसे कीचड़ में फँस गया है। इस समय सन्तरूप विश्वामित्र श्रीराघव की प्रतीक्षा कर रहे हैं और सत्तारूपिणी शिला आपके चरणकमल का कल्याण चाह रही है। हे मंगलमते! आप गंभीरता से चिन्तन करें, आपका देश बहुत रुग्ण हो गया है। हे श्रीराम! इस समय आपका यह भारत–भारत नहीं रह गया अर्थात् यह 'भा' यानी ज्ञान में रत नहीं है। इस समय यह शोभा में रत नहीं, प्रत्युत् विकलांग और विखण्डित हो गया, अब अखण्ड भारत नहीं रहा। हे **गिरिधर** कवि के आश्रय प्रभु श्रीराम इस देश का शीघ्र उद्धार करिये। इस देश का सम्पूर्ण वैभव नष्ट हो गया है।

गीत संख्या–८

उद्धर धनुर्धर राष्ट्रमेतन् मनुजकुलललाम।
कुरु भारतं स्वं भारतं हे सीतापते राम दशरथनन्दन सीताराम।।
सर्वत्रमहार्घता केतुजा कुराक्षसी,
पेपीयतेऽसृक्क्रान्त्वा सतां गवां वक्षसि।
दानवीं दमय चण्डकाण्डकोदण्डाभिराम,
कुरु भारतं स्वं भारतं हे सीतापते राम जगदगचन्दन सीताराम।।१।।
दुष्कालकालरात्रिरेषा नरीनृत्यते,

दुरवग्रहो दुराग्रहोपि वरीवृत्यते।
कृपादृष्टिवृष्ट्या शमय नीलनीरधरश्याम,
कुर भारतं स्वं भारतं हे सीतापते राम
भवभयभञ्जन सीताराम।।२।।
कदाचारशक्रदूषिता सुसंस्कृतिशिला,
रावणातंकवाद विग्नासाधुमैथिला।
अहम्धनुर्भङ्क्त्वा सर्वान् रमय राम रामाराम,
कुरु भारतं स्वं भारतं हे सीतापते राम सज्जनरञ्जन सीताराम।।३।।
निगृहाण रोषभार्गवं समेहिमालिकां
हे राम रमय संस्कृतिं विदेहबालिकाम्।
श्रीराम छिन्धि संशयं विमोहं पूर्णकाम
कुरु भारतं स्वं भारतं हे सीतापते राम कविगिरिधरधन सीताराम।।४।।

भौमी- हे मनुजकुल के आभूषण धनुर्धर श्रीराम इस राष्ट्र का उद्धार कीजिए। हे सीताजी के पति राघव! अपने भारत को 'भा' 'रत' अर्थात् ज्ञान में रत कर दीजिए। हे दशरथ के नन्दन, हे सीताजी को रमाने वाले प्रभु! इस देश का उद्धार कीजिए। हे प्रचण्ड बाणों वाले, हे धनुष से सुशोभित, हे जड़ चेतन को प्रसन्न करने वाले श्रीसीतारामजी! यह महँगाईरूपी ताड़का राक्षसी सब ओर से सन्तों और गौवों की छाती पर चढ़कर खून पी रही है। हे सीतापते! इस महँगाईरूपी ताड़का को मार डालिये। दुष्काल रूप कालरात्रि से उत्पन्न हुई यह महँगाई रूपी ताड़का नाच रही है और यह दुराग्रही दुष्ट अवर्षण जो इस पर बार-बार टूट पड़ रहा है। हे नीले-नीले बादल स्वरूप श्रीराम! अपनी कृपा दृष्टि की वृष्टि से इस भूखमरी और अवर्षण को समाप्त कीजिए। हे संसार का भय हरने वाले श्रीसीतारामजी! अपने भारत को 'भारत' बना दीजिये। यह भारतीय संस्कृति रूपिणी पाषाणशिला कदाचार रूप इन्द्र के द्वारा दूषित कर दी गई है और संतरूप मिथिलानिवासीजन रावणरूप आतंकवाद से व्याकुल हो गये हैं। हे परशुराम और मैथिलानियों को आनन्द देने वाले सज्जनों के सुखद प्रभु! आप अहंकाररूप शिव धनुष तोड़कर सभी को रमा दीजिये। हे श्रीराम! आप क्रोधरूप परशुराम को नियन्त्रित कीजिए और कल्याणरूप जयमाला को प्राप्त कीजिए। संस्कृतरूप जनकनन्दिनीजी को आनन्दित कीजिए। हे पूर्णकाम, हे **गिरिधर** कवि के धन श्रीराम! संशय और मोह को दूर कीजिए, अपने भारत को फिर भारत बना दीजिए।

विशेष- यह गीत एक चलचित्रीय गीत के ढाल पर निबद्ध है–"दे दी हमें आजादी बिना खड्ग बिना ढाल, साबरमती के सन्त तूने कर दिया कमाल, रघुपति राघव राजाराम"।

गीत संख्या-९

हे रामभद्र भावय भद्रं हि भारतीयम्।।
करुणासमुद्र मावय मद्रं स्वभारतीयम्।
देशं विभो विनाथं पश्येस्तमामनाथं

रघुनाथ नाथ नावय राष्ट्रं द्रुतं स्वकीयम्।।१।।
आतङ्कवादलङ्काधिपदत्तमृत्युशङ्का
रङ्का जहद्विटङ्का सीदतितरां महीयम्।
हे रामभद्र भावय भद्रं हि भारतीयम्।।२।।
चौर्यं कदर्थकार्यं वर्वर्ति दुर्निवार्यं
जर्हर्ति धैर्यमर्यं पालय सुपालनीयम्।
हे रामभद्र भावय भद्रं हि भारतीयम्।।३।।
श्रीराम दीनबन्धो सीतेश शीलसिन्धो
त्रायस्व देशमेनं रघुचन्द्र गिरिधरीयम्।
हे रामभद्र भावय भद्रं हि भारतीयम्।।४।।

भौमी- नारद जी कहते हैं–हे रामभद्र! आप अपने भारत के कल्याण के सम्बन्ध में सोचें, हे करुणा के सागर 'स्वभारतीय' अर्थात् अपने भजन में लगे हुये इस देश की श्री की रक्षा करें। हे सर्वव्यापक! इस देश को आप विनाथ और अनाथ रूप में देखें अर्थात् यह विगतनाथ हो गया है इसका कोई स्वामी अब नहीं रहा और यह अनाथ अर्थात् अभी तक किसी समर्थ स्वामी को नहीं प्राप्त कर पाया। हे रघुनाथ, हे सभी के ईश्वर! अपने राष्ट्र को गिरते हुये बचा लीजिए। हे प्रभु आतंकवाद रूप लंकापति रावण ने जहाँ मृत्यु और भय का वातावरण उपस्थित कर दिया है ऐसी पृथ्वी दरिद्र होकर सम्मान रूप कर्णाभूषण से वर्जित होकर बहुत दुःखी हो रही है। हे प्रभो! इस समय चोरी और दुर्निवार्य भ्रष्टाचार बढ़ रहा है और वह स्वामी रूप धैर्य को भी चुरा रहा है इसलिए इस देश का पालन कीजिए। हे दीनों के बन्धु, सीतापते शील के महासागर, रघुकुल के चन्द्रमा श्रीराम, **गिरिधर** कवि के प्रिय जन्मस्थान इस देश की आप रक्षा कीजिए।

गीत संख्या-१०

क्षणमत्र भवता भगवता भारतमभीक्ष्यताम्।
ननु तत्र भवता खगवता भारतमतीक्ष्यताम्।।
किं वाच्यमन्तर्यामिणेऽवैत्येतदाखर्वम्।
किं याच्यमखिलस्वामिने रात्यर्दते सर्वम्।
सद्धर्ममवता शमवता भारतमपीक्ष्यताम्।।१।।
देशं कदामिषादृतं मत्वैव धृष्णवः।
लुञ्चन्ति नो मुञ्चन्त्यहो गृध्रा विगृध्नवः।
गृध्रेश्वरं स्वतावता भारतमवेक्ष्यताम्।।२।।
राष्ट्रस्मितातोऽशासकाः सङ्क्रीडते वेशम्।
दुश्शासिने दुश्शासका विक्रीडिते देशम्।
न कदाचिदवता भववता भारतमुपेक्ष्यताम्।।३।।

आतङ्कवादरावणाल्लोकैर्विभीयते ।
शान्तावरजभारतभुवः शान्तिर्निलीयते।
गिरिधरकवौ द्रवतावता भारतमपेक्ष्यताम्।।४।।

भौमी- नारद जी श्रीराम से प्रार्थना करते हुये फिर गलज्जालिका धुन में गा रहे हैं। एक क्षण के लिए परम आदरणीय भगवान आपके द्वारा भारत के अभीष्ट का चिन्तन किया जाय, खगवता अर्थात् भुशुण्डी और जटायु जैसे साधारण पक्षियों को भी आत्मीय मानने वाले परमपूज्य आप श्रीराघव द्वारा भारत के अतीत का चिंतन किया जाय। आपश्री अन्तर्यामी के समक्ष मैं क्या कहूँ क्योंकि आप चींटी से लेकर ब्रह्मा पर्यंत सबको जानते हैं और सभी लोकों के स्वामी आपसे मैं क्या माँगूँ? जबकि आप माँगने वाले को सब कुछ दे डालते हैं। वैदिक धर्म का भी इच्क्षण अर्थात् कल्याणकारी संकल्प कर लिया जाय। इस भारत देश को सड़े हुये माँस मानकर गीध के समान क्षुद्र लालच में पड़े हुए धृष्ट विदेशी लोग इसे नोच रहे हैं और अपराध करने से बाज नहीं आ रहे हैं। गीधों के ईश्वर जटायु को आत्मीय मानने वाले और उनके पास जाने वाले आप श्रीराघव के द्वारा एक बार भारत को देख लिया जाय। अशिष्ट शासक गण देश की अस्मिता से वेष का क्रय कर रहे हैं। ये दुष्ट शासक दुर्धर्श शासन करने वाले दूर देश के शासक के हाथ देश को बेच रहे हैं। हे कल्याणकारी प्रभो, परम शोभावान! आपश्री के द्वारा अभी भारत की उपेक्षा न की जाय। आज सभी लोग आतंकवादरूप रावण से डर रहे हैं। हे शान्ता के छोटे भाई राघव! शान्ति भारतभूमि से दूर चली जा रही है। **गिरिधर** कवि पर द्रवित हो रहे परम प्रकाशवान आपश्री के द्वारा भारत की अपेक्षा की जाय।

गीत संख्या-११

राजीवलोचन लोच्यतां भवतैव भारतदुर्दशा।
भवभीतिमोचन मोच्यतां भवतैव भारतदुर्दशा।।
भूतीव भौतिकवादलिप्सा भवविभूतिं लिप्सते।
छलनाकलितललनाललितवपुषेजजूर्तिं वीप्सते।
जनकञ्जरोचन रोच्यतां न कदापि भारतभी निशा।।१।।
अर्कास्तवस्तुमहार्घ्यतो दीनोऽप्यहरहो दीयते।
निर्घृणधनाढ्यैर्धामसु प्रधनैर्धनं प्रणिधीयते।
न विलोचनं निमि लोच्यतां ध्वान्तान्धिता भारतदिशा।।२।।
नेताभिनेता स्वार्थदृक् पामरः पापपारायणः।
मुद्राकुराक्षसनष्टदृक् क्रूरो न धृतचान्द्रायणः।
हे दनुजशोचन शोच्यतां भारतमही नीता कृशा।।३।।
सम्प्रत्यघायुः मानवो दुष्टः कुकर्मा दानवः ।
जाह्नवीजलदूषणरतो दम्भान्वितो दोषार्णवः।
हे रामभद्र विलोच्यतां नहि गिरिधरो ब्रूते मृषा।।४।।

भौमी- हे राजीवलोचन! आप भारत की दुर्दशा देखिये, हे संसार का भय नष्ट करने वाले! आप भारत की दुर्दशा नष्ट कीजिए। भौतिकवाद की लिप्सा चुड़ैल की भाँति संसार की विभूति को पाना चाहती है और छल की प्रवृत्ति ललित नारी के वेष से कामज्वर का विज्ञापन कर रही है। हे भक्तरूपकमलों को विकसित करने वाले सूर्य! आपके द्वारा कभी भी भारत की भय-निशा अच्छी नहीं मानी जानी चाहिए। जहाँ सूर्य भी अस्त हो जाते हैं ऐसे विदेशों की वस्तुओं की बहुमूल्यता से गरीब दिन-दिन गरीब होता जा रहा है और अपने घरों में मरने वाले निर्दय धनाढ्यों के द्वारा अपने घरों में ही दबाकर धन संचय किया जा रहा है। हे प्रभो! आप अपनी आँख मत मूँदिये भारत की दिशा अंधकारमय हो गयी है। आज का नेता नाटकीय, स्वार्थैच्छु, अभिनेता- पापाचार में लग गया है। मुद्रा राक्षस ने उसकी दिशा ही नष्ट कर दी है। वह क्रूर हो गया है और वह चान्द्रायणादि व्रतों का आश्रय नहीं ले रहा है। हे राक्षसों को नवशोक देने वाले प्रभु! आप सोचिए आपकी भारतभूमि बहुत दुर्बल कर दी गयी है। इस समय मनुष्य पापात्मा हो गया है, वह दुष्ट होकर कुत्सित कर्मों में लग गया है और वह दानवी प्रवृत्ति का हो गया है, वह गंगाजी के जल को दूषित करने में लग गया है वह दम्भी हो गया है, वह दोष का महासागर बन गया है। हे रामभद्र! आप विचार कीजिए, **गिरिधर** कवि झूठ नहीं बोल रहे हैं।

गीत संख्या-१२

हे भरताग्रज भारतं निघ्नं निरीक्ष्यताम्।
शमनन्तरं समीक्ष्य सरसं समीक्ष्यताम्।।
गावश्च नैव दुह्यन्ते स्वाहा न श्रूयते।
वैश्वानरोऽपि यज्वभिर्हाहा न हूयते।
हे भारतेश भारतं विग्नं प्रवीक्ष्यताम्।।१।।
राष्ट्रस्य शस्यसंस्कृतिर्यन्त्रैः प्रलूयते।
पूर्वेऽप्यपूर्वे पश्चिमं तु समाहूयते।
हे भारतीय भारतं भातं नवीक्ष्यताम्।।२।।
साध्वी कुलीना सीता सतीनात्र मन्यते।
कुलटेह समानीय शूर्पणखा सुमन्यते।
हे रामभद्र भारतं भद्रमभीक्ष्यताम्।।३।।
आतङ्किरावणेन पञ्चवटी छिद्यते।
गोघ्नैः स विघ्नं गौतमीयतटी भिद्यते।
हे गिरिधरेश भारतं तप्तं प्रतीक्ष्यताम्।।४।।

भौमी- हे भरत के बड़े भ्राता! इस भारत का ठीक से निरीक्षण कीजिए। इसके अनन्तर जो करणीय हो, वह कल्याण मय कार्य कीजिए। हाय! आज गौवें नहीं दुही जा रही हैं, स्वाहाकार से अग्नि में हवन नहीं सुना जा रहा है और खेद की बात है कि अग्निदेव में घी की आहुति भी नहीं पड़ रही है। हे भारत के ईश्वर! आज इस उद्विग्न भारत को देखिये। राष्ट्र की कृषि-संस्कृति आज यन्त्रों से काटी जा रही है और अपूर्व पूर्व में भी पश्चिम

को लाया जा रहा है अर्थात् भारत देश में भी पश्चिमी विनिवेश किया जा रहा है। हे भारत में प्रकट हुये भगवन! देखिये, आपका यह भारत देश आज शोभा से हीन हो गया है। आज पतिपरायणा, अच्छे कुल में उत्पन्न हुई सीता का यहाँ सम्मान नहीं किया जा रहा है और कुलटा सूर्पणखा को बुलाकर उसी का सम्मान किया जा रहा है। हे रामभद्र! अब तो भारत के कल्याण पर विचार कीजिए। आज आतंकवादरूप रावण के द्वारा पंचवटी का छेदन किया जा रहा है और गौ-हत्यारों द्वारा गोदावरी का तट तोड़ा जा रहा है। हे **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम! यह भारत तप रहा है, एक बार देखिये तो।

गीत संख्या-१३

यदि रक्षी एव भक्षी तदा राम किं विधेयम्।
यदि साक्षी एव नाक्षी तदा राम किं विधेयम्।।
यो नियोजितो विधात्रा जीवातुसूपहारे
यदि सैव जीवभक्षी तदा राम किं विधेयम्।।१।।
मृदुमानसाब्जखण्डे या च लालिता मराली
यदि सैव बक्यघाक्षी तदा राम किं विधेयम्।।२।।
चिरमार्तकैश्चकोरैर्यो विधुः प्रतीक्षितोऽभूद्
यदि सैव पावकोक्षी तदा राम किं विधेयम्।।३।।
निशि कञ्जमुक्तयेऽलिर्गिरिधररविं यमार्दत्
यदि सैव नैव मोक्षी तदा राम किं विधेयम्।।४।।

भौमी- नारद जी फिर कह रहे हैं—हे श्रीराम! यदि रक्षक ही भक्षक हो जाय तो फिर क्या किया जाय? यदि साक्षी ही नेत्रहीन हो जाय तो क्या किया जाय। जिसको विधाता ने प्राणियों के लिए औषधियों के वितरणार्थ नियुक्त किया था, यदि वही जीवों को खाने वाला बन जाय तो क्या किया जाय? जिस राजहंसिनी का कोमल मानससरोवर के कमलखण्ड पर लालन-पालन किया गया, यदि वही पाप-नेत्रा बगुली बन जाय तो क्या किया जाय? हे श्रीराम! जिस चन्द्रमा की आर्त्त चकोरों ने बहुत कालपर्यन्त प्रतीक्षा की हो, यदि वही चन्द्रमा अमृत के बदले आग उगलने लगे तो क्या किया जाय? हे (**गिरिधर** कवि के स्वामी) राघव-रात में कमल कोष में बँधे हुये भौंरे ने जिस सूर्य से अपनी मुक्ति के लिए रात भर याचना की यदि वही सूर्य भ्रमर को मुक्त नहीं कर पाया तो फिर किया ही क्या जाय?

गीत संख्या-१४

क्रन्दते भारतमाता धृतकृपावारे।
रक्ष रक्ष राक्षसेभ्यो भारतं खरारे।।
नायकाः पावकायन्ते दन्दह्यन्ते भारतम्।
लेहं वानरावमेहा लेलिह्यन्तेऽनारतम्।
राष्ट्रं दानवेभ्यस्त्राहि त्राहि ताटकारे।।१।।

कदाचारकदर्थिता भारतीया जनता।
वनिता वराकी वार्ता वेपमाना विनता।
भोजनीयं भोजय भुजाभ्यां सुभुजारे।।२।।
साक्षरा राक्षसा जाता मुद्रालोभकारणात्।
नीतिहीना प्रजा दीना भीता नेतृवारणात्।
निजश्रुतिसेतुं पाहि पापात् केतुजारे।।३।।
दण्डके दण्डय दण्ड्यान् सीताऽहृतिव्याजतः।
शोकमपनय प्रभो सज्जनसमाजतः।
गिरिधरदेशं दीव्य राम रावणारे।।४।।

भौमी– हे कृपासागर श्रीराम! आज भारत माता चिल्ला रही हैं। हे खर नामक राक्षस के शत्रु श्रीराम! इस भारत को इन राक्षसों से बचा लीजिए बचा लीजिए। क्योंकि आज नायक ही आग बनकर इस देश को भस्म किये दे रहे हैं और ये बानरों से उत्पन्न हुये की भाँति व्यर्थ का चाट खा–खाकर देश को निरर्थक क्षति पहुँचा रहे हैं। हे ताड़का के शत्रु! इस राष्ट्र को इन दानवों से बचा लीजिए। आज भारत की जनता कदाचार से पीड़ित होकर काँपती हुई विनम्र असहाय महिला की भाँति आर्त्त होकर आपसे सहायता की अपेक्षा कर रही है और हे सुबाहु के शत्रु! इस पालनीय भारत का अपनी भुजाओं से पालन कीजिए। हे केतुजा अर्थात् सुकेतु की पुत्री ताड़का के शत्रु आज मुद्रा लोभ के कारण साक्षर भी राक्षस हो गये हैं और यह प्रजा भी आज के तथाकथित नेतारूप खूनी हाथी से डर कर नीतिहीन हो गयी है। अब आप पाप से अपने वैदिक सेतु की रक्षा कीजिए। सीताजी के प्रत्यावर्तन के बहाने से दण्डक वन में पधारकर आप दण्डनीयों को दण्डित कीजिए और हे प्रभो! सज्जन समाज से शोक को दूर कीजिए। हे रावण के शत्रु श्रीराम! **गिरिधर** कवि के जन्म देश इस भारत को प्रकाशित कीजिए।

गीत संख्या–१५

त्वमेवासि राघव पिता त्वं च माता
त्वकं दैवतं नः स्वकं दैवतं नः।
त्वमेवासि भ्राता सखा पुत्र पाता
त्वकं दैवतं न स्वकं दैवतं नः।।
त्वमेवासि सत्स्वान्तमन्दिरविहारी।
दयालुश्च देवः सतां भीतिहारी।
त्वमेवासि पूज्यप्रभुस्त्वं च त्राता।।१।।
त्वमेवासि स्वामी नृणां रक्षकस्त्वम्।
धनी धेनुविप्रद्रुहां भक्षकस्त्वम्।
त्वमेवासि भारतभुवो भूतिदाता।।२।।

त्वकं राम राष्ट्रस्य शं मङ्गलं त्वम्।
सदाऽनाथनाथोऽबलानां बलं त्वम्।
त्वमेवासि राष्ट्रस्य सौभाग्यधाता।।३।।
विधत्स्वेषु सज्यं स्वकोदण्डदण्डम्।
द्रुतं सौम्य संधत्स्व काण्डं प्रचण्डम्।
भयाद् भारतं पातु गिरिधरविधाता।।४।।

भौमी- हे राघव! आप ही माँ हैं, आप ही पिता हैं, आप ही देवता हैं और आप हमारे निजी देवता हैं। आप ही भाई हैं, आप ही मित्र हैं, आप ही पुत्र हैं, आप ही रक्षक हैं। आप श्रेष्ठमनरूप मन्दिर में विहार करने वाले हैं और आप दयालु देवता एवं सन्तों के भयहर्ता हैं। आप रक्षक हैं। आप ही पूज्य हैं, आप समर्थ हैं, आप त्राणदाता हैं। आप प्राणियों में स्वामी और रक्षक हैं आप हमारे राजा हैं, आप गौ, ब्राह्मण और देवताओं के द्रोहियों को समाप्त करते रहते हैं और आप ही इस भारत–भूमि को ऐश्वर्य प्रदान करने वाले हैं। आप हमारे अन्तरंग देवता हैं। हे श्रीराम! आप राष्ट्र के कल्याण और आप ही राष्ट्र के मंगल हैं। आप सदैव अनाथों के नाथ और निर्बलों के भी बल हैं, आप ही इस राष्ट्र के सौभाग्य के सर्जक हैं। हे ईश्वर! धनुष पर शीघ्र प्रत्यन्चा चढ़ाइये और उस पर शीघ्र प्रचंड बाण का संधान कीजिए। हे **गिरिधर** कवि के जीवन के निर्माता श्रीराम आप इस भारत देश की आन्तरिक और बाहरी भय से रक्षा कीजिए।

गीत संख्या–१६

हे रामचन्द्र राघव हे शमसमुद्र माधव
ध्यायस्व भारतं त्वं त्रायस्व भारतं त्वम्।।
भरतभूमिरेषा भरताग्रज विकला विकला जाता
विष्वक्सेन विलोकय वियति विषीदति भारतमाता।
गङ्गैव कर्मनाशा भूताऽविभूतिभाषा
ध्यायस्व भारतं त्वं त्रायस्व भारतं त्वम्।।१।।
नेतारो न नयन्ति कम्भुवं परिक्रीणते वेशं
कामधेनुसुतमिव गवाशिनं विक्रीणते स्वदेशम्।
वेश्येव राजनीतिः पापीयशी सभीतिः
ध्यायस्व भारतं त्वं त्रायस्व भारतं त्वम्।।२।।
हंसासने बकस्तिष्ठति सुरगवीं खरी आह्वयते
भुङ्क्ते हवि रासभो हा कुलटा कुलाङ्गनां ह्वयते।
क्लान्त्या वृतेह शान्तिः भ्रान्त्या हता च कान्ति
ध्यायस्व भारतं त्वं त्रायस्व भारतं त्वम्।।३।।
गिरिधरेश भारतमार्तं वक्षोसृक् पापैः पीतं

कृत्वा वामदृगुरुभुजमथ तद् विकलाङ्गत्वं नीतम्।
हरे रक्ष रक्षकेभ्यः देशं श्वभक्षकेभ्यः
ध्यायस्व भारतं त्वं त्रायस्व भारतं त्वम्।।४।।

भौमी- हे रामचन्द्र, हे रघुकुल में प्रगट राघव, हे कल्याण के महासागर, हे मधुमास में प्रगट होने वाले लक्ष्मीपति श्रीराम! आप अपने भारत का ध्यान करें और भारत की रक्षा करें। हे भरत के बड़े भ्राता श्रीराम! यह भरतभूमि विकला अर्थात् कला से रहित और विकला अर्थात् व्याकुल हो चुकी है। हे विश्वक्सेन! आप भारत के भविष्याकाश की ओर देखिए। भारत माता बहुत ही विषादग्रस्त हो रही हैं। आज गंगा कर्मनाशा के समान हो गई हैं और उसमें विकृत भूतियाँ अपलाप करने लगी हैं। आप भारत का ध्यान कीजिए और उसे बचा लीजिए। आज नेता भी इस देश को कल्याण की ओर नहीं ले जा रहे हैं। देश का ही विक्रय कर रहे हैं। जिस प्रकार कोई कामधेनु के पुत्र को कसाई के हाथों बेच दे, उसी प्रकार ये देश को बेच रहे हैं। राजनीति वारांगना के समान पापिनी और भयपूर्ण हो गई है। आज बगुला हंस के आसन पर बैठ रहा है गधी कामधेनु को ललकार रही है और गधा हवि खा रहा है तथा कुलटा कुलांगना के साथ ईर्ष्या करके उसकी हँसी उड़ा रही है। आज क्लान्ति के द्वारा शान्ति ढक गई है और भ्रान्ति से शोभा नष्ट हो गई है। हे **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम, इस समय भारत बहुत आर्त हो गया है। पापियों ने उसकी छाती का खून पी लिया है। भारत के बायाँ हाथ, बायाँ नेत्र, बायाँ जंघा काटकर स्वार्थी लोगों ने उसे विकलांग बना दिया है अर्थात् आपका भारत अभी अखंड नहीं है। हे हरे! इन तथाकथित रक्षकों से जो कि अपने देश को ही खा रहे हैं, बचा लीजिए भारतभूमि को।

गीत संख्या-१७

रघुनाथ भारतदुर्दशा करुणादृशा दृशमीक्ष्यताम्।
सीतानाथ भारतदुर्दशा कलुषा कृशा कृशमीक्ष्यताम्।।
प्रणिहन्यते गौः कङ्करी सम्मन्यते खरी किङ्करी
दीनानाथ भारतदुर्दशा दीनालसा लसमीक्ष्यताम्।।१।।
नेता त्रिनीतिविवर्जितः प्रेताघसन्धैः सर्जितः
नृपनाथ भारतदुर्दशा विरसा रसारसमीक्ष्यताम्।।२।।
सद्भ्यो दरिद्रैर्द्रुह्यते धर्मोऽविनिद्रैर्दुह्यते
सुरनाथ भारतदुर्दशा धृतसाध्वसा ध्वसमीक्ष्यताम्।।३।।
परिपाहि देशमिमं प्रभो सन्त्राहि गिरिधरकं विभो
नरनाथ भारतदुर्दशा विनिशा निशानिशमीक्ष्यताम्।।४।।

भौमी- नारद जी फिर गाते हैं–हे रघुनाथ जी! इस प्रकार भारत की दुर्दशा को आप करुणा नेत्र से देखें। हे सीतानाथ! यह भारत अत्यन्त दुर्बल हो गया है अतः शोकपूर्ण भारत की दुर्दशा आप देखिए। हे दीनानाथ! आज सुख उत्पन्न करने वाली गाय मारी जा रही है और दासों का भार ढोने वाली गधी सम्मानित हो रही है। हे दीनानाथ! यह भारत आलस्य से युक्त हो गया है। अतः इसकी दीन अलसायी हुई दुर्दशा देखिये। आज भारत

का नेता तीनों प्रकार की साम, दान और भेद नीति से रहित हो गया है अथवा मंत्र शक्ति, प्रभावशक्ति और उत्साहशक्ति से रहित हो गया है। यह तो केवल प्रेतों के पाप-समूहों से ही मानों निर्मित हुआ है। हे राजाओं के ईश्वर श्रीराम! यह भारत रसहीन हो चुका है। अतः विकृत रसवाली आनंद से हीन भारत की दुर्दशा को आप देखिए। आज दरिद्र लोग सभ्यों का द्रोह कर रहे हैं और रात-दिन जागरूक होकर धर्म का दोहन कर रहे हैं। हे देवताओं के ईश्वर, आज भारत बहुत भयभीत है अतः आप इसकी भयंकर दुर्दशा देखिए। हे प्रभो! इस देश की रक्षा कर लीजिए और हे सर्वव्यापी **गिरिधर** कवि को आनंद देने वाले! इस भारत को बचा लीजिए। हे मनुष्यों के ईश्वर! यह भारत सुख की रात्रि से रहित हो गया है, अतः विकृत रात्रि वाली आनंद की रात से रहित भारत की यह दुर्दशा आप देखिए।

गीत संख्या-१८

कथं स्याद् भारतोद्धारो न जाने जानकीजाने
कथं स्यात् सौख्यनिर्धारो न जाने जानकीजाने।।
न गावो द्वाःसु रक्ष्यन्ते प्रतक्ष्यन्ते च भक्ष्यन्ते
कथं स्याद् दुष्टसंहारो न जाने जानकीजाने।।१।।
न धर्मे प्राणिनां प्रीतिः कुनीतिर्व्यापिता भीतिः
कथं स्यात् कष्टनिर्हारो न जाने जानकीजाने।।२।।
न नेता भारते भक्तः छली स्वार्थी धनासक्तः
कथं स्याद् देशश्रृङ्गारो न जाने जानकीजाने।।३।।
न देशे दृश्यते स्वाहा प्रकुरुते गिरिधरो हाहा
कथं स्याद् राष्ट्रसंस्कारो न जाने जानकीजाने।।४।।

भौमी- नारद जी फिर कहते हैं-हे सीतापते! मैं नहीं जान पा रहा हूँ भारत का उद्धार कैसे होगा? मैं यह भी नहीं समझ पा रहा हूँ कि इस देश में सुख का निर्धारण कैसे होगा? हे नाथ! आज द्वारों पर गायों की रक्षा नहीं की जा रही है, वे काटी जा रही हैं और खायी जा रही हैं। दुष्टों का संहार कैसे होगा? हे जानकीजाने! मैं नहीं जान रहा हूँ। आज धर्म में प्राणियों की प्रीति नहीं है। चारों ओर कुनीति और भय व्याप्त है। कष्ट समाप्त कैसे होगा? हे जानकीपते! मैं नहीं जान पा रहा हूँ। हे सीतापते! आज का नेता भारत का भक्त नहीं है। वह छली, स्वार्थी और धन में आसक्त हो गया है। इस देश का शृंगार कैसे होगा, मैं यह नहीं जान रहा हूँ? हे प्रभो! इस देश में स्वाहाकार नहीं दिख रहा है और **गिरिधर** कवि भी हा हा करके चिल्ला रहे हैं। इस देश का संस्कार कैसे होगा, हे जानकीनाथ! मैं नहीं जान पा रहा हूँ?

गीत संख्या-१९

पश्य राघव हन्त हा तव भारतं न विभाति।
खलविधुन्तुदपीतसुधविधुरिव विधो प्रतिभाति।।१।।
धर्मनिरपेक्षता प्राणिषु पांशुलत्वं लाति।

स्वसृदारभिदाम्बुजं करिणीपदैः प्रणिदाति।।२।।
राजनीतीरूपजीवति जीविकां विजहाति।
विबुधधेनुसरः खरी काजलितमपि न जहाति।।३।।
देशमध्वरधूमकेतुं धूमपाशो द्राति।
अयत्प्रातः सौख्यहेतुं सन्मनो निद्राति।।४।।
पश्य राम निकाममसुखं भारतं बाभाति।
पाहि कार्मुकधर न चेत् गिरिधरो जीवं राति।।५।।

भौमी- हे राघव! देखिए, हाय! आपका यह भारत निश्चित ही नहीं शोभित हो रहा है। विधो अर्थात् हे श्री वत्सलांछन! यह तो उस चंद्रमा की भाँति लग रहा है जिसका अमृत दुष्ट राहु ने पी लिया है। आज इस देश की तथाकथित झूठी धर्म-निरपेक्ष्यता प्राणियों में व्यभिचार को जन्म दे रही है। यह हस्तिनी बहन और पत्नी के भेद रूप कमल को अपने पैरों से मसल रही है। यह राजनीति वारांगना बनती हुई अपनी दुष्ट जीविका को नहीं छोड़ रही है। यद्यपि कामधेनु का तालाब कुत्सित जल वाला हो गया है फिर भी इसको गधी नहीं छोड़ रही है। यज्ञ के अग्नि से पवित्र इस देश को आज धूमपाश अर्थात् कुत्सित धूम मलिन बना रहा है। सुख के कारण रूप प्रातः काल को पाकर भी सामान्य प्राणी का मन आज सो रहा है। हे श्रीराम! देखिए, आज यह भारत सुखहीन हो गया है। हे धनुर्धर! इसे शीघ्र बचा लीजिए, नहीं तो गिरिधर कवि आपके द्वार पर ही अपना जीव दे देंगे।

गीत संख्या-२०

राम यदि राष्ट्रं न रक्षसि कुत्र तदा व्रजाम।
शान्तिमस्मभ्यं न यच्छसि तदा किं न गजाम।।१।।
दिवा निशं ह्यभावयुक्ता किं न मृषा व्यजाम।
यदि हिमाद्रिं दहति बह्निः किं न धृतिं त्यजाम।।२।।
भिक्षवस्तक्रं त्वकस्मै कं कथं विसृजाम
स्वयं दुःखस्त्रजः कस्मै सुखः स्त्रजं सृजाम।।३।।
विना पद्भ्यां देवमभ्यर्चितुं कथमायाम।
विधो किं हाहा विधुन्तुदमयाः कथं कुजाम।।४।।
अलब्ध्वा करपट्टीशकलं किमस्मै विभजाम
ब्रूहि गिरिधरप्रभो हित्वा त्वां कं सुरं भजाम।।५।।

भौमी- हे श्रीराम! यदि आप राष्ट्र की रक्षा नहीं कर रहे हैं, तो हम कहाँ जाएँ? यदि आप हमको शान्ति नहीं दे रहे हैं तो हम क्यों नहीं हाथी के समान मत्त हो जाएँ। यदि हम दिन-रात अभाव से युक्त हैं तो झूठ का बहाना क्यों न लें? यदि अग्नि हिमालय को जला रहा है तो हम अपना धैर्य क्यों न छोड़ें? स्वयं छाँछ की भीख माँगने वाले हम दूसरे को अमृत कैसे दें। स्वयं हम दुःखी होकर दूसरों के लिए सुख का सर्जन कैसे करें? यदि

चरण ही नहीं है तो हम देवपूजन के लिए कैसे जाएँ? हे श्रीवत्सलाञ्छन! यदि हमारा स्वरूप राहु का है तो हम मंगल कैसे बन जाएँ? यदि हमको रोटी का टुकड़ा भी नहीं मिला तो हम दूसरों को कैसे दें? हे **गिरिधर** कवि के स्वामी! आप ही बताइये, आपको छोड़कर हम किस स्वामी का भजन करें?

गीत संख्या-२१

राम रातिं रासि नहि राष्ट्रे कथं निवसाम।
दहति यदि वह्निर्हिमाद्रिं तदा कुत्र वसाम।।१।।
यदि जगज्जगदीश रोदिति कथं तर्हि हसाम।
स्वपति हरौ तदीयशावाः किन्न शुनस्त्रसाम।।२।।
यदि सपत्राकृतं विश्वं क्वेव देव लसाम।
विपिनमपि वेपितं यदि विहगा कथं विलसाम।।३।।
नीरसा यदि रसा जाता तदा किं सरसाम।
रासभो रसते रसेशं किमिह हन्त रसाम।।४।।
यदि मरुस्तरुणस्तदा वल्कं किमीश वसाम।
हा श्मशाने कथं गिरिधरगिरा गिरिश रसाम।।५।।

भौमी- नारद जी फिर गाते हैं–हे श्रीराम! यदि आप कृपा का दान नहीं देंगे तो इस राष्ट्र में हम कैसे रह सकते हैं? यदि अग्नि ही हिमाचल को जला रहा हो तो हम कहाँ निवास करें? हे जगदीश्वर! यदि सारा संसार रो रहा है तो हम कैसे हँस सकते हैं? सिंह के सोते रहने पर उसी सिंह के बच्चे हम सब कुत्ते से क्यों नहीं डरेंगे? हे देव! यदि सारा संसार बाणों से जर्जरित और घायल हो गया है तो हम कहाँ सुशोभित हों? यदि वन ही कम्पायमान हो रहा है तो हम पक्षी कहाँ आनन्द करें? यदि सम्पूर्ण पृथ्वी रसहीन हो गयी है तो हम कैसे सरस हो सकते हैं? यदि गधा ही रसेश अर्थात् नमक का आस्वादन ले रहा हो तो हम किसका स्वाद लें? यदि मरुस्थल तरुण अर्थात् सक्रिय है तो हे ईश्वर हम बल्कल कैसे धारण करें क्योंकि यदि मरुस्थल में पेड़ ही नहीं तो उसकी छाल कहाँ से मिलेगी हाय? श्मसान भूमि में **गिरिधर** कवि की वाणी से गिरिश अर्थात् शिवजी को आनन्द देने वाले आप श्रीराम को कैसे आनन्दित करें।

गीत संख्या-२२

त्र्यक्ष्येश देशमेनं मा यच्छ राक्षसेभ्यः।
प्रेक्ष्येश देशमेनं मा प्रेक्ष राक्षसेभ्यः।।
ननु राजनीतिरेषा वाराङ्गनैव जाता
कुप्रतीतिभीतिशेषा नृत्याङ्गनैव भाता।
यक्षेश देशमेनं मा यक्ष राक्षसेभ्यः।।१।।
नेता महाभिनेता पापैनसां प्रणेता
मुद्रैकलक्ष्यचेताः सच्चेतसां विनेता।

दक्षेश देशमेनं मा दक्ष राक्षसेभ्यः।।२।।
जनता विधर्मशीला पापा पुमर्थकीला
क्लीबा जडा प्रमीला दूरोज्झितेशलीला।
दीक्षेश देशमेनं मा दीक्ष राक्षसेभ्यः।।३।।
गावो न गोत्रहेतुर्नहि यज्ञधूमकेतुः
न हि वेदकर्मसेतुर्न मखाग्रयूपकेतुः।
शिक्षेश देशमेनं मा शिक्ष दुर्लभराक्षसेभ्यः।।४।।
भारतदशां विपश्यन् धैर्यं निजं निरस्यन्
दर्धर्ति गिरिधरोऽशं राघव शमां समस्यन्।
रक्षेश देशमेनं मा रक्ष राक्षसेभ्यः।।५।।

भौमी- हे त्रयक्ष्य! अर्थात् तीन नेत्रों वाले शिवजी के भी ईश्वर इस देश को राक्षसों के लिए मत दीजिए। हे सुन्दर रूपवानों में श्रेष्ठ आप इस देश को राक्षसों को देने के लिए दर्शन का विषय मत बनाइये। निश्चित ही यह राजनीति वारांगना ही हो गयी है और इसमें अब अविश्वास और भय ही शेष रह गया है यह नृत्यांगना जैसी हो गयी है। हे यक्षों के ईश्वर प्रभु श्रीराम! इस देश को राक्षसों के लिए मत समर्पित कीजिए। आज नेता बहुत बड़ा नाटकी हो गया है और वह पाप तथा अपराधों की रचना करने लगा है, उसका चित्त मुद्रा के अर्जन में ही लगा हुआ है, वह सन्तों को दण्डित कर रहा है। हे चतुर शिरोमणि! इस देश को राक्षसों की चतुरता के लिए मत उपलब्ध कराइये। यह जनता अधर्मशील हो गयी है, इसमें पाप की प्रचुर मात्रा आ गयी है। इसका पुरुषार्थ भी प्रतिबंधित हो गया है। यह नपुंसक और निश्चेष्ट हो चुकी है। इसमें आलस्य की मात्रा भी बहुत आ गयी है। इसीलिए भारतीय जनता ने आपश्री की लीलाओं को दूर से ही छोड़ दिया है। हे दीक्षाओं के ईश्वर! इस देश को राक्षसों के लिए दीक्षा का विषय मत बनाइये। आज गौवों का समूह इन्द्रियों के रक्षा का हेतु नहीं बन रहा है क्योंकि आज यज्ञ का अग्नि नहीं दिख रहा है। न तो यहाँ वैदिक धर्म सेतु की प्रतिष्ठापना है और न ही यहाँ यज्ञ-स्तम्भ दिख रहे हैं। हे शिक्षाओं के ईश्वर! आप दुर्लभ राक्षसों से सावधान रहने के लिए इस देश को शिक्षा दीजिए। भारत की दशा देखकर अपना धैर्य छोड़ता हुआ सब कुछ संयम संक्षिप्त करके **गिरिधर** कवि बहुत दुःखी हो रहा है। हे ईश्वर! इस देश की रक्षा कीजिए, पर राक्षसों के लिए रक्षा मत कीजिए।

विशेष-यहाँ अनुदात्तेत्व लक्षण आत्मने पद की अनित्यता के ही कारण सभी आत्मनेपदीय धातुओं को भी परस्मै पदमें प्रयुक्त किया गया है।

गीत संख्या-२३

रघुनन्दन राघव राम हरे भव भारतभालललाम हरे।
नृपनन्दन राघव राम हरे भव भारतभालललाम हरे।।
श्रितसत्पथमन्मथसुन्दर हे भवसागरनागरमन्दर हे,
नतसिन्धुसुतावरकन्दर हे श्रितकन्दरभूपपुरन्दर हे।
जनचन्दन राघव राम हरे भव भारतभालललाम हरे।।१।।

कलितेन्दिरदारनतेन्दिर हे विगतव्रणसद्गुणमन्दिर हे,
महामानवकैरवचन्दिर हे मुखकान्तिविनिन्दितचन्दिर हे।
भववन्दन राघव राम हरे भव भारतभालललाम हरे।।२।।
द्विपदांवर वेदविदां वर हे कुभृतांवर शस्त्रभृतांवर हे,
गुणशीलितशैलसुतावर हे रणपण्डितभूमिसुतावर हे।
खलक्रन्दन राघव राम हरे भव भारतभालललाम हरे।।३।।
विमद दशकन्धरसिन्धुर हे हरिवन्धुरवन्धुरवन्धुर हे,
दृढकन्धरधन्यधनुर्धर हे श्रितगिरिधरधन्विधुरन्धर हे।
धर्मस्यन्दन राघव राम हरे भव भारतभालललाम हरे।।४।।

भौमी- हे रघुकुल के नन्दन! हे रघुकुल में प्रकट स्मरण मात्र से पापों को हरने वाले भगवान राम! आप भारत के मस्तक के रत्न बन जाइये। हे राजवंश को आनन्दित करने वाले प्रभु! आप भारतवर्ष के मस्तक के मणि बनकर विराजिये। हे श्रेष्ठ पथ का श्रयण करने वाले कामदेव से भी सुन्दर भवसागर मंथन के लिए चतुर मंदराचल स्वरूप प्रणत हुये लक्ष्मीपति के करुणाजल को नष्ट करने वाले स्वयं ही शरणागतों के लिए सुख और अशास्त्रीय कार्यों में भय उत्पन्न करने वाले राजेन्द्र! भक्तों को आनन्द देने वाले श्रीराम! आप भारत मस्तक के रत्न बन जाइये। हे अपूर्व शोभा सम्पन्न तथा जिन आपश्री की धर्मपत्नी सीताजी को लक्ष्मीजी भी प्रणाम करती हैं, ऐसे हे महामानवरूप कुमुद को विकसित करने के लिए चन्द्रमा स्वरूप और मुख की कान्ति से चन्द्रमा को निन्दित करने वाले, ऐसे हे शिवजी के भी वन्दनीय राघव श्रीराम! आप भारत के शिरोमणि बन जाइये। हे मनुष्य श्रेष्ठ, परम श्रेष्ठ, राजश्रेष्ठ, सर्व शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, श्रीराम! हे अपने गुणों से पार्वती पति-शिव जी को भी सन्तुष्ट करने वाले, संग्राम में कुशल सीतापति, दुष्टों को रूलाने वाले प्रभु श्रीराम! आप भारत के शिरोरत्न बनिये। रावण जैसे मतवाले हाथी को मदहीन करने वाले, सिंह के समान स्कन्ध वाले एवं संसार के बन्धु आचार्य शेष उनके भी बन्धु विष्णु तथा उनके भी परम प्रेमास्पद श्रीराम दृढ़ स्कन्ध, धन्यवाद के पात्र एक मात्र धनुर्धर और **गिरिधर** कवि के आश्रय धनुर्धारियों के भी धुरन्धर, धर्म रथ पर आरूढ़, हे श्रीहरे राघव भगवान राम! आप भारत के मस्तक के मुकुटमणि बन जाइये।

गीत संख्या-२४

भवभञ्जन राघव राम अये परिपालय भारतवर्षभुवम्।।
त्रिपुरान्तककार्मुकखण्डन हे दशकन्धरदर्पविखण्डन हे
निजसेवकचण्डनचण्डन हे वसुधातलमण्डनमण्डन हे।
श्रितसज्जन राघव राम अये! परिपालय भारतवर्षभुवम्।।१।।
न हि रक्षति नेत्रिजनो जनतां न हि यच्छति शान्तिमहो विनतां
परिजच्छिति दीनप्रजां विनतां परितः क्षितिमाप्तमयां वनिताम्।
खलगञ्जन राघव राम अये! परिपालय भारतवर्षभुवम्।।२।।
व्यथते तव भारतभूमिरियं लभते नहि शर्म कदापि न शम्

परियाति पराभवमाधिभयं परिपश्य विशोककुशोकमयम्
करुणाघन राघव राम अये! परिपालय भारतवर्षभुवम्।।३।।
नहि धर्मपथो हि समाद्रियते प्रकृतिर्निकृताविकृता ध्रियते
अनुवासरमेव तिरस्क्रियते कविगिरिधर एत्य भियं म्रियते।
जनरञ्जन राघव राम अये! परिपालय भारतवर्षभुवम्।।४।।

भौमी- हे भवभंजन राघव श्रीराम! आप भारतवर्ष भूमि का पालन कीजिये। हे शिव का धनुष तोड़ने वाले, हे रावण का अहंकार दूर करने वाले, हे अपने सेवकों को सताने वालों को दण्ड देने वाले, हे पृथ्वी के आभूषण सन्तों के अलंकार सज्जनों के आश्रय राघव श्रीराम! आप भारतभूमि का पालन कीजिए। आज नेताओं का वर्ग जनता की रक्षा नहीं कर रहा है। न ही विनम्रतापूर्वक शान्ति प्रदान कर रहा है और यह तो निरीह, दीन प्रजा को ही और भयभीत नारी के समान अभ्रान्त इस पृथ्वी को ही खाए जा रहा है। हे दुष्टों को नष्ट करने वाले श्रीराम! आप भारतभूमि का पालन कीजिए। आप की यह भारत भूमि बहुत व्यथित हो रही है और यह कभी न तो शान्ति ही पा रही है न तो सुख यह प्राप्त कर रही है। अपमान, रोग, भय, विकृतशोक तथा कुत्सित योग की प्रचुरता को ही पा रही है हे करुणा के मेघ श्रीराम! आप भारतभूमि का पालन कीजिए। आज धर्मपथ का आदर नहीं हो रहा है। प्रकृति भी अपमानित और विकृत होकर जी रही है। प्रकृति दिनों दिन तिरष्कृत हो रही है और इस प्रकार वैश्विक भय प्राप्त करके **गिरिधर** कवि की भी मृत्यु होना ही चाहती है। हे भक्तों को आनन्द देने वाले राघव श्रीराम! भारत भूमि का पालन कीजिए।

गीत संख्या-२५

रघुनाथ नाथयेथा भारतमनल्पमार्तं
नृपनाथ नाथयेथा भारतमथाल्पमार्तम्।।
पुरा यत्र वह्निहोत्रं गोभिः स्म पाति गोत्रं
तत्रैव पापतोत्रं धत्ते विपूतिपोत्रम्।
नरनाथ नाथयेथा भारतमथाल्पमार्तम्।।१।।
पुरा यत्र धूमकेतुः श्रितयज्ञयूपसेतुः
तत्रैव कोऽपिकेतुः सुखहारी शोकहेतुः।
जननाथ नाथयेथा भारतमकल्पमार्तम्।।२।।
भरतास्त्रयस्त्वदीया भूषायिता यदीया
खलनायकास्तदीया मलयन्ति चैतदीया।
जगन्नाथ नाथयेथा भारतमकल्पमार्तम्।।३।।
बर्भर्ति नेत्रतोयं दर्धर्ति नो महोऽयं
जर्झर्ति दृक्पयोऽयं जर्हर्ति गिरिधरोऽयम्।
सीतानाथ नाथयेथा भारतमजल्पमार्तम्।।४।।

भौमी- हे रघुनाथ, हे जीवों के नाथ रघुनाथजी! अत्यन्त विकल इस भारत की रक्षा कीजिए। हे राजाओं के नाथ श्रीराम! इस अपने छोटे से भारत की रक्षा कीजिए। जहाँ पहले अग्निहोत्र अपनी किरणों से सम्पूर्ण संसार की रक्षा करता था। वहीं पाप का कोड़ा लिए हुए दुर्गन्धिपूर्ण सूअर का मुख पालन कर रहा है और अपना स्थान जमा रहा है। हे मनुष्यों के नाथ! आप अल्प बल वाले आर्त्त भारत की रक्षा कीजिए और पालन कीजिए। जिस भारत में पहले यज्ञस्तम्भों का सेतु बनाकर याज्ञिक अग्नि विराजमान हुआ करता था। आज उसी भारत में सुख हरने वाला दुःख का कारण एक अपूर्व केतु ग्रह नग्न नर्तन कर रहा है। हे लोकनाथ! अब आप आर्त भारत का पालन कीजिए। आपके तीनों भरत अर्थात् ऋषभजयन्ती पुत्र भरत, दुष्यन्त शकुन्तला पुत्र भरत तथा दशरथकैकेयीपुत्र भरत जिसके आभूषण बने आज उसी के खलनायक इसी देश में जन्मे हुए लोग इसे मलिन बना रहे हैं। हे जगन्नाथ! आप अज्ञात निश्चय वाले इस भारत की रक्षा कीजिए। हे प्रभो! **गिरिधर** कवि अपनी आँखों में आँसू भर रहा है, प्रसन्नता का तेज नहीं धारण कर रहा है और अपने नेत्र जल की वर्षा कर रहा है तथा अपनी गतिशीलता को भी समाप्त कर रहा है। हे सीतापते! मूक क्रन्दन करने वाले आर्त्त भारत को आप बचा लीजिए। इसे ऐश्वर्य प्रदान कीजिए, आशीर्वाद दीजिए।

गीत संख्या-२६

रघुनाथ नाथयन्ते भारतप्रजा भवन्तं
हे नाथ नाथयन्ते भारतप्रजा भवन्तम्।।
गावो निहन्यमानाः शतशः कृतावमाना
विघ्नैर्विहन्यमाना सन्तो गताऽभिमाना।
श्रीनाथ नाथयन्ते कोसलपुरे वसन्तम्।।१।।
पदपद्ममाकरन्दं तव वष्टिभो निषादः
चरणाम्बुजातद्वन्दं स दिदृक्षतेऽविषादः।
लोकनाथ नाथयन्ते वन्या वने लसन्तम्।।२।।
मरणोन्मुखो जटायुर्नित्यं प्रतीक्षते त्वां
शवरी ससङ्कटायुः सत्यं समीक्षते त्वाम्।
दीनानाथ नाथयन्ते कपयो धनुस्पृशन्तम्।।३।।
श्रुतिसंस्कृतिश्च सीता रावणहृता विनीता
रक्षोविदेशिनीता सीदतितमां समीता।
त्वामनाथ नाथयन्ते गिरिधरभयं कृषन्तम्।।४।।

भौमी- हे रघुनाथजी! भारत की प्रजाएँ आपसे याचना कर रही हैं। हे नाथ! भारतीय प्रजाएँ आपसे आशीर्वाद माँग रही हैं। आज करोड़ों की संख्या में अपमानित होकर मारी जा रही गौएँ एवं विघ्नों से पीड़ित हो रहे निरभिमान सन्तजन कोसलपुर में निवास कर रहे आपसे प्रार्थना कर रहे हैं। हे प्रभो! लोकों के नाथ, निषाद केवट विषादरहित होकर आपके चरणकमल के दर्शन करना चाहता है और आपके चरणकमल का मकरन्द अर्थात् चरणामृत चाहता है। ये वनवासी लोग वन में सुशोभित होने वाले आपसे प्रार्थना कर रहे हैं मरणोन्मुख

जटायु आपकी प्रतीक्षा कर रहं हैं। और सङ्कटापन्ना जीवन वाली माँ शबरी आपके सन्तहितैषी व्यवहार की समीक्षा कर रही हैं। हे दीन शबरी के नाथ दीनानाथ धनुष को स्पर्श कर रहे आपसे वानरगण आशीर्वाद माँग रहे हैं। देखिए, वैदिक संस्कृति स्वरूप विनम्र सीताजी का रावण ने हरण कर लिया और वह विदेशी राक्षस द्वारा बन्दी बनाई गई भयभीत होकर चिल्ला रही हैं। हे अनाथों के नाथ! **गिरिधर** कवि के भय को दूर करते हुए आपसे सभी लोग आशीर्वाद की कामना कर रहे हैं।

गीत संख्या-२७

रामभद्र भारतं क्षणं समीक्ष्यतां मुहुर्निरीक्ष्यतां
त्वमस्य यतो राष्ट्रदैवतम्।।
नित्यमेव कोटिशो निहन्यन्ते गावः
सागरेषु नीचकैर्निमज्ज्यन्ते नावः।
देवदेव भारतं भयं समीक्ष्यतां, पुनर्निरीक्ष्यतां
त्वमस्य यतो राष्ट्रदैवतम्।।१।।
पदे पदे पदाक्रान्तमातङ्कवादिभिः
क्रममाणैः समाक्लान्तं यवनैः प्रमादिभिः।
दीनानाथ भारतं भरं समीक्ष्यतां, निजं निरीक्ष्यतां
त्वमस्य यतो राष्ट्रदैवतम्।।२।।
नेतारोऽभिनेतारोऽपि वञ्चयन्ति वै प्रजाः
सन्ततमाखुघ्ना इव लुञ्चयन्ति सद्व्रजाः।
राघवेन्द्र भारतं रहः समीक्ष्यतां नित्यं निरीक्ष्यतां
त्वमस्य यतो राष्ट्रदैवतम्।।३।।
योषितश्च रूपजीवा नैव कापि व्रीडा
दर्शं दर्शं वर्धमाना गिरिधरस्य पीडा।
रामचन्द्र भारतं वृत्तं समीक्ष्यतां, निपुणं निरीक्ष्यतां
त्वमस्य यतो राष्ट्रदैवतम्।।४।।

भौमी- हे रामभद्र! इस भारत की क्षण भर समीक्षा कर लीजिए, इसका बार-बार निरीक्षण कीजिए। क्योंकि आप इसके राष्ट्रदेवता हैं। हे देवताओं के देवता प्रभु श्रीराम! नित्य करोड़ों की संख्या में गौएँ मारी जा रही हैं और नीचों द्वारा सागरों में अनाज से भरी हुई नौकाएँ डुबो दी जा रही हैं। हे देवताओं के देवता प्रभु श्रीराम! आज भारत के भय की समीक्षा कीजिए, एक बार पुनर्निरीक्षण कर लीजिए क्योंकि आप इसके राष्ट्र देवता हैं। हे प्रभो! आतंकवादियों ने इस भारत के पग-पग पर आक्रमण करके अगुवा कर लिया है और प्रमादी यवनों ने घुसपैठ करके इसे घेर लिया है। हे दीनों के नाथ! आप भारत के भार की समीक्षा कीजिए, अपना निरीक्षण कीजिए क्योंकि आप इस राष्ट्र के देवता हैं। आज नेता अभिनेता बनकर धार्मिक प्रजा को ठग

रहे हैं और बिल्लीयों की भाँति निरन्तर उसे रुग्ण करके नोंच रहे हैं। हे राघवेन्द्र! आप भारत की एकान्त में समीक्षा कीजिए और गम्भीरता से निरीक्षण कीजिए क्योंकि आप इसके राष्ट्र देवता हैं। आज नारियाँ रूप बेच रही हैं, किसी प्रकार की लज्जा नहीं रह गई है। यह दृश्य देख-देखकर **गिरिधर** कवि के हृदय में पीड़ा बढ़ रही है। हे श्रीरामचन्द्रजी! आप भारत के चरित्र की समीक्षा कीजिए और निपुणता से निरीक्षण कीजिए क्योंकि आप इस राष्ट्र के देवता हैं।

गीत संख्या-२८

हे नवनलिननयन हे राम श्रीशयन्
हे प्रभो पश्य भो भारतीं दुर्दशाम्।।
कोटिशो हन्यमानाः सदा धेनवः
व्योमव्याप्तन्वते सामिषा रेणवः।
क्रन्दति जगद्धर्मस्यन्दन शीघ्रं दयस्व हे रघुनन्दन
हे प्रभो पश्य भो भारतीं दुर्दशाम्।।१।।
त्वत्प्रतीक्षो निषादो निषीदत्ययम्
जुष्टवृक्षो विषादो विषीदत्ययम्।
शीघ्रं स्वीकुरु विपिनगमनमाशीलय भक्तान् जनतावन
हे प्रभो पश्य भो भारतीं दुर्दशाम्।।२।।
त्वां दिदृक्षन्त एते किराता हरे
त्वां प्रतीक्षन्त इज्या शमाता हरे।
न कुरु विलम्बं वनजवदन अवलम्बय विपिनं शीलसदन
हे प्रभो पश्य भो भारतीं दुर्दशाम्।।३।।
त्वत्प्रतीक्षारता भो जटायुश्श्रिता
माता शबरी त्वदाशा त्वरा संयुता।
पूरय काङ्क्षां गिरिधरधन राजय स्वजनान् राजीवनयन
हे प्रभो पश्य भो भारतीं दुर्दशाम्।।४।।

भौमी- हे नवीन कमल नेत्र, हे सीताजी के हृदय में निवास करने वाले प्रभु! आप भारत की दुर्दशा देखिए। यहाँ सदैव करोड़ों-करोड़ों गौवें मारी जा रही हैं और उनके माँस से युक्त धूलि से आकाश भर रहा है। हे धर्मरथी! सम्पूर्ण जगत चिल्ला रहा है। हे रघुनन्दन! आप शीघ्र दया कीजिए और भारत की दुर्दशा देखिये। आपकी प्रतीक्षा करता हुआ केवट बैठा-बैठा बाट जोह रहा है और वृक्ष का आश्रय लिये हुए विशिष्ट अवसाद से युक्त यह दुःखी भी हो रहा है। आप वनगमन शीघ्र स्वीकारिये और भक्तों को आनन्दित कीजिए। हे निजजनों की रक्षा करने वाले श्रीराम! आप भारत की दुर्दशा देखिये। ये किरात आपका दर्शन चाह रहे हैं और यज्ञसंयम से युक्त मुनिजन आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। हे कमलमुख! आप विलम्ब मत कीजिए। हे शील के मन्दिर!

अब वन का अवलम्ब लीजिए इस भारत की दुर्दशा देखिये। प्रभो राजीवलोचन! जटायु की चिता आपकी प्रतीक्षा कर रही है। माता शबरी आपकी आशा में आतुरता से भरी हुई हैं। हे **गिरिधर** कवि के धन श्रीराघव! सबकी इच्छा पूर्ण कीजिए और अपने भक्तों को प्रकाशित कीजिए।

गीत संख्या-२९

व्रजाशु दिव्यं हे सीताजाने वनं मनोज्ञं हि दण्डकानाम्।
श्रीजाशु भव्यं हे चापपाणे वनं मनोज्ञं हि दण्डकानाम्।।१।।
प्रयातु सार्धं त्वया प्रतीता स्वराज्यलक्ष्मीसमा हि सीता।
त्यजस्व वेषं लसत्कृपाणे वनं मनोज्ञं हि दण्डकानाम्।।२।।
सलक्ष्मणस्त्वं धृतेषुचापः सुवल्कलाढ्यो रविप्रतापः।
सृजस्व बाणान् विशुद्धबाणे वनं मनोज्ञं हि दण्डकानाम्।।३।।
उपेक्ष्य राज्यं सुबन्धुभाज्यं समीक्ष्य चैज्यं मुदैव साज्यम्।
गजाशु गज्यं स्फुरतप्रपाणे वनं मनोज्ञं हि दण्डकानाम्।।४।।
निसर्गसौम्यस्सतां प्रणम्यस्त्वमार्यगम्योऽसतां न नम्यः।
भजस्व गिरिधरगिरैकप्राणे वनं मनोज्ञं हि दण्डकानाम्।।५।।

भौमी- हे सीतापते! अब सुन्दर दण्डक वन में शीघ्र पधारिये। हे धनुषपाणे! अब शीघ्र दण्डक वन को सुन्दर बना दीजिए। स्वराज्य लक्ष्मी की भाँति विश्वस्त सीताजी भी आप ही के साथ सुन्दर दण्डक वन में पधारें और हे सुन्दर खड्ग धारण करने वाले प्रभु आप अपना राजकीय वेश छोड़ दीजिए। धनुष-बाण धारण किये हुये बल्कल से युक्त सूर्य के समान प्रताप वाले शुद्ध वाणी से सम्पन्न आप श्रीराघव लक्ष्मण जी के साथ वन में पधारें और राक्षसों पर अपने अमोघ बाणों का प्रहार करें। श्रेष्ठबंधु भरत जी द्वारा पालनीय इस राज्य की उपेक्ष्या करके और प्रसन्नता पूर्वक घृत की आहुति वाले यज्ञ की समीक्ष्या करके हे शत्रु वध के लिए स्फुरित भुजाओं वाले प्रभु! आप हाथियों से युक्त सुन्दर दण्डक वन में प्रवेश कीजिए। हे प्रभु! आप स्वभाव से सौम्य संतों के प्रणम्य और आर्यों द्वारा गमनीय होते हुये भी दुष्टों के नमनीय नहीं हैं! इसलिए श्री **गिरिधर** कवि की वाणी ही जहाँ एकमात्र प्राण की भूमिका निभा रही है, उस सुन्दर दण्डक वन में पधारिये।

गीत संख्या-३०

हरे राघव खलारे हे यथा शीघ्रं वनं गच्छेः
निखिलकल्मषकुलारे हे यथा शीघ्रं वनं गच्छेः।।
त्वदम्भोरुहपदा पूता भवेद् भूमिः शमुद्भूता।
खरारे दूषणारे हे यथा शीघ्रं वनं गच्छेः।।१।।
सह भ्रात्रादिशक्त्या त्वं विरक्त्या चानुरक्त्या स्वम्।
हरिणमारीचकारे हे यथा शीघ्रं वनं गच्छेः।।२।।
विहायोऽध्याश्रियं दिव्यां विधायात्मश्रुतिं भव्याम्।

पुरन्दरपुत्रकारे हे यथा शीघ्रं वनं गच्छेः।।३।।
पवनसुतहृत्सरोहंसो गिरिशगिरिधरगिरवतंसो।
विभूमन् रावणारे हे यथाशीघ्रं वनं गच्छेः।।४।।

भौमी- हे खलों के शत्रु, रघुकुल में प्रकट श्रीहरे! अब आप यथाशीघ्र वन को पधारें। हे सम्पूर्ण पापकुल के नाशक प्रभु राम! आप यथाशीघ्र वन को प्रस्थान करें। वह वन की भूमि आपके चरणकमल से पवित्र होकर कल्याण की जननी बन जाय। हे खरदूषण के शत्रु श्रीराम! आप यथाशीघ्र वन को प्रस्थान करें। हे कपट मृग मारीच के शत्रु श्रीराम! आप विरक्ति और अनुरक्ति रूप भ्राता लक्ष्मण तथा आदिशक्ति सीताजी के साथ यथाशीघ्र अपने वन में पधारें। हे इन्द्रपुत्र जयन्त के शत्रु श्रीराम! अयोध्या की दिव्य राज्यलक्ष्मी छोड़कर अपनी भव्य कीर्ति का विस्तार करके आप यथाशीघ्र वन को पधारें। हे भूमा ब्रह्म के भी आश्रय, हे रावण के शत्रु प्रभु श्रीराम! आप पवनपुत्र हनुमान जी के हृदय मानस सरोवर के हंस बनकर शिव जी एवं **गिरिधर** कवि की वाणी के अलंकार बनकर अतिशीघ्र वन को पधारें।

विशेष- पूर्व के दोनों गीत सुगम संगीत की धुन में निबद्ध हैं।

गीत संख्या-३१

याहि राघव याहि राघव याहि विपिनं याहि।
दण्डकं दण्डयितुमुग्रान् खलान् विपिनं याहि।।
विसृज वेषं राजकीयं त्यज निसर्गं शासकीयम्।
जनकतनयास्वनुजसद्ध्यङ् याहि विपिनं याहि।।१।।
द्वादशाब्दपुराधिवासं विस्मरन् वनिताविलासम्।
सञ्जिहीर्षन् जगत्त्रासं याहि विपिनं याहि।।२।।
विगणयन् मातुर्ममत्वंवगणयन् पितृवत्सलत्वम्।
नगणयन् परिजनसमत्वं याहि विपिनं याहि।।३।।
राष्ट्रहेतुधृतावतारः सुभगभारतकर्णधारः।
सुकविगिरिधरहृदयहारः याहि विपिनं याहि।।४।।

भौमी- हे राघव! आप वन को पधारें, पधारें, पधारें। उग्र खलों को दण्ड देने के लिए आप दण्डक वन में पधारें। हे प्रभो! आप अपना राजकीय वेश छोड़ दीजिये और अपने कठोर शासकीय स्वभाव का भी त्याग कर दीजिए। अब तो आप जनकनन्दिनी सीताजी और छोटे भाई लक्ष्मण को साथ लेकर वन पधार जाइये। हे प्रभो! अपनी प्राणप्रिया सीताजी के साथ विलास करते हुये बारह वर्षपर्यन्त श्रीअवध के सुखमय निवास को भूलते हुये संसार के त्रास को नष्ट करने की इच्छा करते हुये, माता की ममता की चिंता न करते हुये, पिता के वात्सल्य पर ध्यान न देते हुये, परिवार के समत्व को एक ओर करते हुये, आप वनवास पधारें। राष्ट्र के लिये ही जिन्होंने अवतार लिया है जो आपश्री भारत के सुन्दर कर्णधार हैं और सुन्दर कवि **गिरिधर** के हृदय के हार भी हैं, ऐसे आपश्री राघव वन को पधारें।

गीत संख्या-३२

हे भयमोचन विषमविपद्भ्यो मोचय भारतमातरम्।
श्रितगोरोचन रविकुलरोचन रोचय भारतमातरम्।
नन्दय मातरं, चन्दय मातरम्।।१।।
पश्य पश्चिमादित्यमिवार्तं हे भरताग्रज भारतं
पश्चिमीयसभ्यतासमाप्तं कलितरजोध्वजभारतम्।
नलिनीमिव मर्यादां हन्तुं ह्यगजायितगजभारतं
नक्तंदिवमनार्तं व्याप्तं विपदाभिर्भज भारतम्।
हे राजन् राजीवविलोचन लोचय भारतमातरम्।।
श्रितगोरोचन०।।२।।
उत्तरार्कपश्योत्तरशैले गङ्गां क्षीणकलेवरां
बन्धराहुहतरुचिमिवैन्दवीं नलिनीं मलिनेन्दीवराम्।
कुल्याकुलव्याकुलितधारां दीनां धिक्कृतधीवरां
मलिनसलिलदूषितां श्यामलां कश्मलकुसुरभिपीवराम्।
हे गङ्गाततचरणशरणतो रोचय भारतमातरम्।।
श्रितगोरोचन०।।३।।
दशरथयागापूर्वपूर्वदिशि पश्य भारतीं दुर्दशां
भग्नवेदसंस्कृतिं दुरन्तां निविडां यथा कुहूनिशाम्।
निहतताटकामपि हिंसाताटकाक्षपितशिशुनिर्दशां
स्वाहाकारवर्जितां हाहाकृतां चिरायितसद्द्विषाम्।
निजसङ्कोचिसर्गतो मा सङ्कोचय भारतमातरम्।।
श्रितगोरोचन०।।४।।
पश्य पश्चिमे यवनाक्रान्तं विषयं विकलमनाथितं
देशं स्वीकृतपश्चिमवेषं वेश्यं विषमविनाथितम्।
दूरितधर्मं दुरितदुरन्तं छद्मायितनरनाथितं
उच्छृङ्खलं विखण्डितसीमं निःसत्वं खलनाथितम्।
हे दारिद्र्यदवानलघन मा शोचय भारतमातरम्।।
श्रितगोरोचन०।।५।।
हे दक्षिणादित्य दक्षिणदिशि पश्य दुरन्तदशाननं
रात्रिं दिवं तुदन्तं दुष्टं ऋषिमुनिजुष्टं काननम्।

अबलाशिशुक्रन्दनव्यसनं तपस्तुष्टपञ्चाननं
गिरिधरचातकजलद सपदि संशमयदशास्यहुताशनम्।
हे भरतान्वयशोकशमन मां लोचय भारतमातरम्।।
श्रितगोरोचन०।।६।।

भौमी- हे भय को नष्ट करने वाले श्रीराम! आप भारत माता को भयंकर विपत्तियों से छुड़ा लीजिए। हे गोरोचन तिलक धारण करने वाले सूर्यकुल के सूर्य! आप भारत माता को प्रकाशित कीजिए, माँ को प्रसन्न कीजिए, माँ को शीतल कीजिए। हे भरतजी के बड़े भ्राता श्रीराम! आप सन्ध्याकालीन पश्चिम सूर्य की भाँति ही पश्चिमी सभ्यता से नष्टप्राय एवं धूलि-धूसरित ध्वजा वाले आर्त्त इस भारत को देखिये। कमलिनी की भाँति मर्यादा को नष्ट करने के लिये पर्वत पर उत्पन्न हाथी जैसे इस भारत को देखिये और रात-दिन विपत्तियों से व्याप्त इस भारत को स्वीकारिये। हे राजन, हे राजीवनयन आप भारत माता को ठीक से निहारिये और उन्हें प्रसन्न कीजिए। हे उत्तरार्क अर्थात उत्तर कोसल के सूर्य श्रीराम! आप उत्तराखण्ड की ओर देखिये, जहाँ गंगा जी का शरीर क्षीण हो गया है जो गंगा उस चन्द्रिका के समान हो गई है जिनकी शोभा को अनेक बाँधरूप राहुओं ने ग्रस ली है। यह गंगा उस कमलिनी की भाँति हो चुकी है जिसका कमल कीचड़ से मलिन हो गया है। जिन गंगा की धारा अनेक लहरों के कारण व्याकुलित अर्थात टूट गई है। जो दीन हो गई है, जहाँ केवट धिक्कार रहे हैं अर्थात् बहुत कम जल होने के कारण नाव नहीं चला पा रहे हैं। जो गंगा गन्दे गटरों के जल से दूषित और श्याम हो गई हैं जो गन्दे नालों की दुर्गन्धि से व्याप्त हो गई हैं। गंगाजी जिनके चरणों से निकली, ऐसे हे श्रीराम! आप अपने आश्रय से भारत माँ को प्रकाशित कीजिए। हे दशरथ जी के यज्ञ के फल श्रीराम! पूर्व दिशा में भारत की दुर्दशा देखिये, जिसमें वैदिक संस्कृति नष्ट हो गई है, जिसका अन्त बहुत कठिन है। जो अमावस्या की रात्रि की भाँति बहुत भयंकर है। जहाँ आपके द्वारा ताड़का तो मारी जा चुकी है परन्तु हिंसा रूप ताड़का के द्वारा छोटे-छोटे बिना दाँत वाले दुधमुहे बच्चों का भी वध किया जा रहा है। जो स्वाहाकार से वर्जित हाहाकार से पूर्ण और दिशाहीन है इसलिए हे प्रभु! आप अपने संकोची स्वभाव से इस भारत माँ को संकोच में मत डालिए। हे प्रभु! आप पश्चिम की ओर देखिए, वह यवनों से आक्रान्त और अनाथ हो गया है और उस भूभाग में सभी पश्चिमी वेश को स्वीकार कर चुके हैं। सभी नट के समान क्षण-क्षण में रंग बदलते हैं, जहाँ से धर्म बहुत दूर हो गया है जहाँ पाप अपना तांडव रच रहा है जहाँ शासक पूर्ण कपटी हो चुके हैं। जो कश्मीर का भाग उच्छृंखल खण्डित सीमा वाला और दुष्ट शासकों से युक्त हो चुका है। हे दरिद्ररूप अग्नि को बुझाने वाले बादल! आप भारत माता को शोक में मत डालिए। हे दक्षिण सूर्य के समान तेजस्वी! अब आप दक्षिण दिशा में दुर्धर्ष रावण को देखिए जो ऋषियों और मुनियों से युक्त वन को रात-दिन कष्ट पहुँचा रहा है जो उस वन को सता रहा है जहाँ पीड़ित महिलाओं और बालकों के चिल्लाहट से युक्त भयंकर विपत्ति है जहाँ सिंह भी तपस्वी है। हे **गिरिधर** कविरूप चातक के स्वाति मेघ! आप शीघ्र रावण रूप अग्नि को समाप्त कर दीजिए। हे भरत वंश का शोक नष्ट करने वाले प्रभु! आप भारत माता के प्रति आँख मत मूँदिए, उन्हें प्रसन्न कीजिए और शीतल कीजिए।

गीत संख्या-३३

रघुनाथ दीनवत्सल सीतानाथ साधुसम्बल
गच्छाशु काननं त्वं रक्षाशु काननं त्वम्।।

संगच्छध्वं त्रयो वने यान्तः कैवर्तकिरातैः
संवदध्वमथ विश्वस्ताः पथि वनितामृगपशुजातैः।
रमयस्व चित्रकूटं दमयस्व भो त्रिकूटं,
गच्छाशु काननं त्वं रक्षाशु काननं त्वम्।।१।।
मन्दाकिन्याः पुलिने राम रमस्व सीतया साकं
हरहृन्मानसहंसक विहर वितर दृक्फलमस्माकम्।
श्रय पर्णसत्कुटीरं शीलय मलयसमीरं
गच्छाशु काननं त्वं रक्षाशु काननं त्वम्।।२।।
संगच्छस्व महामुनिभिः शरभङ्गसुतीक्ष्णागस्त्यैः
दिव्यायुध युद्धयस्व निर्भयो हरिणवालिपौलस्त्यैः।
सिन्धौ बधान सेतुं सुयशो गृहाण केतुं,
गच्छाशु काननं त्वं रक्षाशु काननं त्वम्।।३।।
महावीरवन्दितपदाब्ज रघुवीर शरं संधत्स्व
दमयित्वा दशमुखदुरितं भारतमङ्गलं विधत्स्व।
गिरिधरमनःस्वयोध्यां पुनरेहिवेदबोध्यां
गच्छाशु काननं त्वं रक्षाशु काननं त्वम्।।४।।

भौमी- हे दीनों पर वात्सल्य करने वाले रघुनाथजी हे सन्तों को सम्बल देने वाले सीतापति श्रीराम! आप शीघ्र ही वन को प्रस्थान करें और शीघ्र वन में जाते हुये कोल-किरातों से मिलें और विश्वस्त होकर मार्ग में महिलाओं, हरिणों और पशुओं से भी बातचीत करें, आप चित्रकूट को रमायें और त्रिकूट का दमन करें। हे प्रभु! मन्दाकिनी के तट पर आप सीताजी के साथ रमें। हे शिव जी के हृदय मानस के राजहंस! आप वहीं विहार करें और हम लोगों को भी नेत्र का फल दें। आप पर्णकुटी में विराजें और मलय समीर का सेवन करें। हे प्रभु! आप वन यात्रा में अत्रि, शरभंग, सुतीक्ष्ण और अगस्त्य से मिलें। हे दिव्य शस्त्र सम्पन्न प्रभु श्रीराम! आप निर्भय होकर मारीच, बालि, कुंभकरण एवं रावण से युद्ध करें। आप समुद्र में सेतु बंधन करें और केतु स्वरूप सुन्दर यश प्राप्त करें। महावीर हनुमानजी के द्वारा जिनके चरणकमलों की पूजा की जाने वाली है ऐसे हे श्रीराम! आप बाण का संधान करें, रावणरूप दुरित को नष्ट कर भारत का मंगल विधान करें। **गिरिधर** कवि के मन रूप वेदविदित श्रीअयोध्यापुरी में फिर लौटकर आयें परन्तु उसके पूर्व वन को प्रस्थान करें और उसकी रक्षा करें।

गीत संख्या-३४

राम भव भवकृते कुलिशकठोरः।।
कुसुममहो मृद्नाति मधुलिडपि चन्द्रं ग्रसतेऽशिरा सुरद्विडपि।
जहि कुसुमतां भजाशु कुलिशतां त्यज प्रतिपदं कठोरः।।१।।

कोमलतां जगदिदं परिभवति भेत्तुं हीरं किल कः प्रभवति।
ततः कठिनतां कलय कमलदृक् भवाघोर इव घोरः।।२।।
यावद् वर्षचतुर्दशकालं कलय कलेशकालकरवालम्।
अङ्गीकुरु वार्धकव्रतं किल कोसलराजकिशोरः।।३।।
गिरिधरदृक् सारङ्गजलदवर वनवासी भव चण्डधनुर्धर।
दक्षिणार्क इव दक्षिणे हि सीताननचन्द्रचकोरः।।४।।

भौमी- हे श्रीराम! अब आप संसार के लिये वज्र के समान कठोर बनिये क्योंकि पुष्प को भौंरा भी मसल डालता है और चन्द्रमा को सिरहीन राहु भी ग्रस लेता है इसलिए पुष्प भाव को छोड़कर वज्रता स्वीकारिये और प्रतिपदा का चन्द्र न बनकर अब पूर्ण चन्द्र बन जाइये। हे प्रभो, हे कमलनयन! संसार कोमलता का अपमान करता है और आप ही बतायें? हीरे को कौन तोड़ पाता है इसलिये आप कठिनता को स्वीकारिये और अघोर शिव के समान घोर बन जाइये। हे प्रभु, हे कलाओं के ईश्वर वनवास के चौदह वर्ष पर्यन्त आप कालरूप कृपाण को धारण कर लीजिए। कोसलराज के किशोर होकर भी चौदह वर्षों के लिए वृद्ध का व्रत स्वीकार कर लीजिए। हे **गिरिधर** कवि के नेत्ररूप चातक के स्वाति मेघ, हे चण्ड धनुर्धर! आप वनवासी बनें, हे रण कुशल, हे सीताजी के मुख चन्द्र के चकोर! आप दक्षिण सूर्य की भाँति ही अब दक्षिण में प्रकाशित होइये।

गीत संख्या-३५

रघुवर ताटकारे रघुवर ताटकारे कुरुषे विलम्बं कथं नु कथम्।
सीतावर सुभुजारे सीतावर सुभुजारे तनुषे विलम्बं कथं नु कथम्।।
विलपन्ति द्विजवाला श्रितदयितकपाला हृदयं तुदन्ति मुधा रे मुधा
निशिचरहतनाथा गीतसुकरुणगाथा परिदेवयन्ति प्रभुं बहुधा।
शृणु शृणु दनुजारे शृणु शृणु दनुजारे कुरुषे विलम्बं कथं नु कथम्।।१।।
चरणोदकपिपाशुस्तव चरणं यियासुर्विषीदति विषमे विषण्णो गुहः
पथि पथि नारिवर्गः सीताकृतसहसर्गः प्रतीक्षते विकचदृगम्भोरुहः।
सनु सनु वासनारे सनु सनु वासनारे तनुषे विलम्बं कथं नु कथम्।।२।।
श्रय चित्तचित्रकूटं भग्नविषयत्रिकूटं रमस्व श्रीराम जनकसुतया
कुरु शाक्रिमदभङ्गं मिल मुनिशरभङ्गं सुखय प्रपत्या सुखसंयुतया।
दुनु दुरितं खरारे दुनु दुरितं खरारे कुरुषे विलम्बं कथं नु कथम्।।३।।
भव दण्डकनिवासी द्रव जनमनोवासी दमय दनुजकुलं पापमयं
हर गिरिधरत्रासं कुरु भवभयनासं वितनु विभो मुनिकुलमभयम्।
क्षिणु क्षिणु रावणारे क्षिणु क्षिणु रावणारे तनुषे विलम्बं कथं नु कथम्।।४।।

भौमी- हे ताड़का के शत्रु श्रीराम! आप अब क्यों विलम्ब कर रहे हैं। हे सीतापति, हे सुबाहु के शत्रु श्रीराम! आप इतना विलम्ब क्यों कर रहे हैं। देखिये प्रभु अपने पतियों का मस्तक हाथ में लेकर विधवा ब्राह्मण पत्नियाँ बार-बार व्यर्थ अपनी छाती पीट रही हैं। राक्षसों के द्वारा जिनके पतियों को मार डाला गया है वे अपनी करुण गाथाएँ गा-गाकर आपका ही नाम लेकर बहुत प्रकार से विलाप कर रही हैं। हे राक्षसों के शत्रु! सुनिये-सुनिये, आप क्यों विलम्ब कर रहे हैं? हे प्रभु! आपके चरणोदक का प्यासा आपके चरणों में जाने का इच्छुक गुह-निषाद दुःखी होकर विषाद करता हुआ आपकी प्रतीक्षा कर रहा है और वन के प्रत्येक मार्ग में महिला वर्ग सीताजी के साहचर्य का स्वभाव बनकर अपने कमलनयनों से उनकी प्रतीक्षा कर रहा है। हे वासना के शत्रु! आप दान दीजिए, दान दीजिए। आप क्यों विलम्ब कर रहे हैं। हे प्रभु! अब चित्त रूप चित्रकूट का आश्रय कीजिए जिससे विषय के त्रिकूट का हनन हो, वहाँ सीताजी के साथ रमिये। इन्द्रपुत्र जयन्त का मद भंग कीजिए और शरभंग मुनि से मिलिये। आप अद्भुत प्रपत्ति से सबको सुखी कीजिए। हे खर के शत्रु! अब हमारा कष्ट दूर कीजिए, आप क्यों देर कर रहे हैं? हे प्रभु! आप दण्डक वन के निवासी बनिये और भक्तमन के वासी आप द्रवित होइये। पापमय राक्षसकुल को नष्ट कीजिए। **गिरिधर** कवि के त्रास को दूर कीजिए और भवभय का नाश कीजिए तथा मुनिकुल को अभय दान दीजिए। हे रावण के शत्रु! अब आप शत्रु बल को क्षीण कीजिए।

विशेष-यह गीत अवध के एक अति प्राचीन आंचलिक गीत के ढाल में बद्ध है बोल है-

रोवें सब बृजनारी बिलखें राधाकुमारी, बिगरी जात दही रे दही।

गीत संख्या-३६

रघुवीर सङ्गरधीर हे वनमीयतां वनमीयतां
रणधीर श्यामशरीर हे वनमीयतां वनमीयताम्।।
देवाश्च तिर्यक्त्वं गता विग्ना प्रतीक्षन्ते हि त्वां
ब्रह्मादयः श्रद्धायुता भग्ना समीक्षन्ते हि त्वाम्।
गम्भीर श्रीरघुवीर हे सत्वं मनस्याधीयताम्।।१।।
चरणोदकं पातुं मुहुः कैवर्तकी तृड्वर्धते
सम्भाषितुं किल सीतया वनितेहितं च समर्धते।
श्रितधीर सङ्गरवीर हे रोषः खलेषु विधीयताम्।।२।।
कैरातकन्दलसत्फलेभ्यः स्पृह्यतां भवतो मनः
श्रीचित्रकूटे वित्रिकूटे राम रमतां त्वन्मनः।
कोदण्डकाण्डं दण्डके दण्ड्येषु वै प्रणिधीयताम्।।३।।
हे देव दिव्यमहावनं सह सीतया किसलयधनं
सह लक्ष्मणेन महाव्रतेन व्रजासु मण्डितमुनिजनम्।
गिरिधरकवौ रविकुलरवे करुणैव कापि निधीयताम्।।४।।

भौमी- नारद जी अंत में कहते हैं- हे युद्ध में कुशल रघुवीर! आप वन में प्रस्थान कीजिए, वन में

प्रस्थान कीजिए। हे युद्ध में कुशल श्यामल शरीर! आप वन में प्रस्थान कीजिए। देवता वानर बनकर उद्विग्न मन से आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं और रावण से पराजित श्रद्धालु ब्रह्मादि देवता आपकी समीक्षा कर रहे हैं। हे परम गंभीर श्रीराम! अपने मन में सत्व को धारण कीजिए। आपका चरणोदक पान करने के लिए केवट की प्यास बढ़ती जा रही है और सीताजी से वार्ता करने के लिए वनवासिनी महिलाओं की चेष्टा भी बढ़ रही है। हे धीरजनों के आश्रय, युद्ध में वीर, श्रीराम! अब दुष्टों पर क्रोध कीजिए। हे प्रभो किरातों के कन्द मूल और सुन्दर फलों के प्रति आपके मन में स्पृहा जग जाय और त्रिकूट रहित चित्रकूट में आपका मन रमें और दण्डक वन में दण्डनीय राक्षसों पर आपके कोदण्ड से बाण चल जाय। हे देवताओं के देव, पल्लव ही जिसका धन है जो मुनिजनों का भी अलंकार है, ऐसे महावन में सीताजी और लक्ष्मण के साथ आप शीघ्र पधारिये और हे सूर्यकुल के सूर्य श्रीराम! मुझ **गिरिधर** कवि पर कुछ अपूर्ज करुणा की जाय।

सन्दर्भश्लोकः

इत्यावेद्य गते मुनौ विधिसुते यादृक्षिके व्योमनि
प्रोद्गायत्यमलं रघूत्तमयशो वीणैकनिष्ठद्विजे।
श्रीरामः सह सीतया वनमथो गन्तुं स्वलक्षव्रती
चक्रे काञ्चिदचिन्त्यपाटवमयीं लीलां स्फुटां राघवः।।१।।

भौमी–इस प्रकार प्रभु से निवेदन करके श्रीरामजी का दिव्य यश गाते हुये वीणावादन में एकमात्र निष्ठा रखने वाले ब्रह्मपुत्र देवर्षि नारद की अपनी इच्छा से आकाश में पधार जाने पर अपने लक्ष्य को ही व्रत मानने वाले भगवान श्रीराम ने सीताजी को सहयोगिनी बनाकर वन में प्रस्थान करने के लिए किसी अपूर्व लीला की रचना की।

इति
श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरमहाकविजगद्गुरुरामानन्दाचार्यस्वामिरामभद्राचार्यगिरिधरकविप्रणीते गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये अयोध्याकाण्डे गीतराष्ट्रदैवतो नाम पञ्चमः सर्गः।

इस प्रकार श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर महाकवि जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य गिरिधरकवि द्वारा विरचित गीतरामायण 'गीतसीताभिराम' नामक संस्कृत गीतमहाकाव्य के अयोध्याकाण्ड में गीतराष्ट्रदैवत नामक पंचम सर्ग सम्पन्न हुआ।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

।।श्रीः।।

।। नमो राघवाय।।

गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये अयोध्याकाण्डे

गीतराघववनवासो नाम

षष्ठः सर्गः

मङ्गलाचरणम्

श्रीपङ्केरुहरुट्कमण्डलुवरालङ्काररूपं च यद्
यद्भूतेशशिरोललामललितं स्वर्लोकवापीमयम्।
श्रीसीतापतिपादपङ्कजलसन्निस्यन्दमारन्दकं
तत्कैवर्तककाष्ठभाजनसभाजन्यं जनैर्नम्यते।।१।।
जयति जगदधीशो जानकीशो दिगीश-
प्रणतचरणकञ्जः कोसलापुण्यपुञ्जः।
तनुजितशतकामो लोकलोकाभिरामः
स भरतभुवि रामो गीतसीताभिरामः।।२।।

भौमी–अब महाकवि षष्ठ सर्ग का मंगलाचरण करते हुए कहते हैं जो नारायण के नाभिकमल से जन्म लेने वाले ब्रह्माजी के कमंडल का अलंकार बना एवं जो गंगाजी के रूप में शिवजी के मस्तक का चूड़ारत्न बना, वही सीतापति भगवान श्रीराम के श्रीचरणकमल का द्रवीभूत मकरंद रसरूप चरणोदक आज केवट के काठ के कठौते का शृंगार बनकर लोगों के नमस्कार का विषय बन रहा है। सारे संसार के ईश्वर दिग्पाल भी जिनके चरणकमल को प्रणाम करते हैं ऐसे श्रीअवध के पुण्यपुंज स्वरूप, अपने शरीर की शोभा से काम को जीतने वाले, संपूर्ण लोकों के नेत्रों को आनंद देने वाले गीतसीताभिराम महाकाव्य के धीरोदात्त नायक सीतापति भगवान राम भारत–भूमि में सबसे उत्कृष्ट रूप से विराज रहे हैं।

सन्दर्भश्लोकः

श्रीरामोऽपि प्रेक्ष्य वै भारतीयां रक्षोऽधीशप्रापितां तां विपत्तिम्।
सम्मन्त्र्याद्धा सौम्यसीतैकमित्रोऽरण्यं गन्तुं निर्ममो निश्चिकाय।।१।।

भौमी–सौम्य सीताजी जिनकी एकमात्र मित्र हैं, ऐसे प्रभु श्रीराम ने जब यह देखा कि रावण द्वारा भारत

में बहुत बड़ी विपत्ति ढहा दी गई है, तब उसका शमन करने के लिए सीताजी के साथ मंत्रणा करके समस्त बंधु-बांधवों से ममतारहित होकर वन में प्रस्थान करने का निश्चय कर लिया।

गीत संख्या-१

श्रीरामो गायति-

पश्य पश्य प्रिये श्रेयसे सुश्रिये कल्पिते भारते भारते वै भयम्।
भग्नकल्याणके निर्बलप्राणके व्याकुले भारते भारते वै भयम्।।१।।
नैव स्वाहा स्वधा नो वषट्कारको नैवमोङ्कारसद्वैदिकोच्चारकः।
नो सदाचार आचारविभ्रंशिते संशिते भारते भारते वै भयम्।।२।।
योषितो वेषजीवा नरा लम्पटा बालिका बालका व्यालकाः कम्पटाः।
प्राणिनः प्राणपण्याः पणप्राणके जृम्भते भारते भारते वै भयम्।।३।।
नैव माता न तातो न च भ्रातरो नैव पुत्रा न पुत्र्यो न जामातरः।
द्रव्यमेवात्र लक्ष्यं विषुष्यन्मुखे निःसुखे भारते भारते वै भयम्।।४।।
नैव शान्तिर्न कान्तिर्न चैव क्षमा नैव भोगो न योगो न वा संयमः।
नो तितिक्षा न शिक्षा न दीक्षा क्वचिद् गिरिधरोत्तंशिते भारते वै भयम्।।५।।

भौमी- सीताजी को संबोधित करते हुए भगवान श्रीराम गा रहे हैं-हे प्रिये देखिए-देखिए, शोभा से युक्त कल्याण के लिए निर्मित ज्ञान में लगे हुए इस भारत में आज बहुत बड़ा भय व्याप गया है। कल्याण से नष्ट हुए निर्बल प्राण वाले व्याकुल इस ज्ञानमय भारत में भय व्याप्त हो गया है। यहाँ न स्वधा है, न स्वाहा और न वषट्कार। यहाँ प्रणवपूर्वक वैदिक उच्चारण भी नहीं है। यहाँ सदाचार भी नहीं है। इस प्रकार आचार से रहित अप्रशंसित भारत में आज भय व्याप्त गया है। यहाँ महिलाएँ वेष को ही जीविका का साधन बना रही हैं और पुरुष दूसरी स्त्री में आसक्त होकर लम्पट बन गए हैं। बालिकाएँ और बालक साँप के समान कुटिल और कुत्सित वस्त्र वाले हो गए हैं और मनुष्य अपने प्राणों को बेच रहे हैं। (और कलियुग में किडनी का भी व्यापार चलायेंगे)। इस प्रकार जहाँ प्राण पन अर्थात् सट्टा ही प्राण है, ऐसे भारत में भय व्याप्त हो रहा है। यहाँ न कोई माता है, न पिता, न भाई, न पुत्र, न पुत्री, न जमाई। यहाँ तो द्रव्य ही लक्ष्य है। इस प्रकार सुखरहित भारत में भय ही भय व्याप्त है। यहाँ न शान्ति है, न शोभा, न क्षमा, न यहाँ भोग है, न योग है, न संयम। इसी प्रकार यहाँ न तितिक्षा है न शिक्षा है और न ही कहीं दीक्षा की विधि है। प्रिये! गिरिधर कवि के आभूषण स्वरूप इस भारत में आज भय ही भय है।

गीत संख्या-२

पश्य पार्थिवि भारतं मे साम्प्रतं नहि भाति।
खलविधुन्तुदपीतरोचिश्चन्द्रमा इव भाति।।१।।
कलित हाहाकारलोकः शोकतो विद्राति।
नो दिवा भुङ्क्ते सहर्षं न नक्तं निद्राति।।२।।

श्रौतयज्ञविवर्जितं न स्वं कदापि पुनाति।
स्वरपदैरहितं कुहविरिव रावणोऽपि लुनाति।।३।।
अनारतमार्तं विकलतां विभौ नैव विभाति।
शिरस्ताडं मुष्ठिना वक्षो निजं निर्माति।।४।।
नष्टनाथमिवानिकुलमिह शमं शर्म जहाति।
वीक्ष्य भारतदुर्दिनं गिरिधरो मामभियाति।।५।।

भौमी– हे सीते! देखिए, इस समय मेरा भारत नहीं शोभित हो रहा है। वह तो दुष्ट राहु द्वारा जिसके प्रकाश का पान किया गया है ऐसे चंद्रमा की भाँति प्रतीत हो रहा है। हे सीते! यह लोक हाहाकार से युक्त होकर शोक से चिल्ला रहा है। यह बिचारा दिन में न तो प्रसन्नता से भोजन कर रहा है और न ही रात में सो रहा है। यह हमारा भारत श्रौत–यज्ञ से रहित होने के कारण अपने को भी नहीं पवित्र कर पा रहा है। स्वर और पदों से हीन कुत्सित हव्य के समान इसको रावण भी सता रहा है। यह भारत निरंतर आर्त है। अतः मुझ परमात्मा के रहते इसकी व्याकुलता अच्छी नहीं लग रही है। यह सिर पीटकर–पीटकर मुक्के से छाती को मार रहा है। यह कुल की मर्यादा को छोड़कर अनाथ हुआ जैसा शम और शान्ति को छोड़ रहा है। इस प्रकार भारत की दुर्दशा देखकर गिरिधर कवि मेरे शरण में आ रहे हैं।

गीत संख्या–३

पश्य भारतवर्षमेतत् सङ्कटैश्च समावृतम्।
पर्वविधुपरिवेष इव प्रतिवेशिशत्रुभिरावृतम्।।१।।
पूर्वतो नयपालमपि वामा बलेन विदुन्वते।
सप्रचण्डकुशासना विग्नान् विशोऽपि विधुन्वते।।२।।
तथैवोत्तरतः पुनश्चीनांशुधारिण उल्बणाः।
बाणमपि निर्वाणयन्तः प्रजा दधते सब्रणाः।।३।।
पुनः पश्चिमतो जनान् यवना जवेन विकुर्वते।
घ्नतश्मश्रुमतो मतेन न शासका प्रतिकुर्वते।।४।।
तथा दक्षिणतःक्षपाटा मनुजकदने दक्षिणाः।
निर्दया भृज्यन्ति वै भारतप्रजा बहुदक्षिणाः।।५।।
ततो गत्वा विपिनमथ चण्डाञ्शरान् प्रहराण्यहम्।
गिरिधरेशो भारतस्य भरं हरेण हराण्यहम्।।६।।

भौमी– सीते! देखिए, यह भारतवर्ष इस समय संकटों से आवृत हो गया है। यह तो ग्रहणकालीन चंद्रमंडल की भाँति पड़ोसी शत्रुओं से घिरा हुआ है। पूर्व ओर से नेपाल को भी वामपंथी बलपूर्वक सता रहे हैं और प्रचण्ड अर्थात् भयंकर कुशासन से वे भोले–भाले प्राणियों को सता रहे हैं। इसी प्रकार उत्तर ओर से चीनांशुक धारण करने वाले दुष्ट चीनवासी बाण को भी मोक्ष की संज्ञा देते हुए भारतीय प्रजाओं को घायल कर

रहे हैं। इसी प्रकार पश्चिम दिशा से यवन लोग लोगों को वेग से विकृत कर रहे हैं। दिन-रात निर्दोष भारतीयों की हत्या कर रहे इन आतंकवादी तथाकथित अल्पसंख्यकों को मत के लोभ से शासक भी नहीं दंडित कर पा रहे हैं। इसी प्रकार दक्षिण ओर से मनुष्यों के नाश में निपुण रावणवंशीय राक्षस बहुत दक्षिणा देने वाली भारतीय प्रजा को निर्दयतापूर्वक भून रहे हैं। इसलिए मैं वन में चलकर कठोर बाणों का प्रहार करूँ और शिवावतार हनुमान जी को माध्यम बनाकर गिरिधर कवि का स्वामी मैं राम भारत का भार हरूँ।

गीत संख्या-४

सीते वनगमनं सुखेन रोचयावहै।।
धृतमुनिवसनौ पयोजपदरजोभिः हृत्वा रजो वसुमतीं सुसङ्कोचयावहै।।१।।
कोलकपिकिरातैश्च सङ्गच्छमानौ तेषां भाग्यविभवं जगति लोचयावहै।।२।।
सञ्ज्ञादिवाकराविव समुदितप्रभावौ दशमुखकलङ्किविधुं निलोचयावहै।।३।।
गिरिधरप्रभू सुरवधूवन्दीवेणिकां हतसपत्नकोष्णरक्तैरुन्मोचयावहै।।४।।

भौमी- हे सीते! आप और मैं अर्थात् हम दोनों वनगमन को अब सुखपूर्वक स्वीकार कर लें। हम दोनों मुनि वस्त्र धारण करके अपने चरणकमल के रज द्वारा पृथ्वी के रजोगुण को समाप्त करके, उन्हीं को संकोच में डाल दें। कोल, किरात और वानर आदि पशुओं से मिलते हुए उनके भाग्य-वैभव को संसार में सभी को दिखा दें। हम दोनों सीताराम संज्ञा और सूर्य की भाँति अपने पूर्ण प्रभाव को प्रकट करके रावणरूप कलङ्की चन्द्रमा को अस्त कर दें। **गिरिधर** कवि के स्वामिनी-स्वामी हम दोनों सीताराम रावण द्वारा बंदी बनाई हुई देववधूओं की बहुत काल से जटा बनी हुई वेणी को मारे हुए शत्रुओं के गरम-गरम रक्तों से भिगोकर खोल दें।

गीत संख्या-५

लीलावति लीलां व्यापृणवानि।
कृत्वा रहसि राजरसभङ्गं वनगमनं कृणवानि।।१।।
हित्वा राजकीयपटभूषां मुनिवसनं वृणवानि।
कैकेयीं रञ्जयन् त्रिलोक्यां सुविश्रवत श्रृणवानि।।२।।
भरतं भजन् सृजन्नादर्शं पितृभक्तिं तनवानि।
राष्ट्रमङ्गलं चरन् सनातनधर्ममहं धुनवानि।।३।।
मर्यादां मण्डयन् वेदपथमहर्निशं क्षुणवानि।
गिरिधरमपि निर्भयं विधातुं सत्यं प्रतिश्रृणवानि।।४।।

भौमी- श्रीराम हवेली पद्धति में गाते हैं-हे लीलावती सीते! अब मैं एक विचित्र लीला का व्यापार करूँ। एकान्त में राजरस भंग करके मैं वनगमन करूँ। राजकीय वस्त्रभूषण छोड़कर मैं मुनिवस्त्र धारण करूँ। मैं कैकेयी को प्रसन्न करके तीनों लोकों में उनका नाम सुनूँ। मैं भरत को भजता हुआ आदर्श का सृजन करता हुआ पितृभक्ति का विस्तार करूँ। मैं राष्ट्रमंगल का आचरण करता हुआ सनातन धर्म को प्रसन्न करूँ। मैं मर्यादा को अलंकृत करता हुआ दिन-रात वेद मार्ग पर चलने का अभ्यास करूँ और **गिरिधर** कवि को भी

निर्भय करने के लिए सत्य प्रतिज्ञा कर लूँ।

गीत संख्या-६

विपिनगमने निमित्तं समुद्भावयन् सरस्वतीमप्यहं प्रेरयेयम्।
शोकशमने निमित्तं समुद्भावयन् सरस्वतीमप्यहं प्रेरयेयम्।।
सम्मोहयेन्मन्थरां देवी सा च मध्यमामित्वा,
वरद्वयं च याचयेत् पितरं भरतमातरं भित्वा।
तातमरणे निमित्तं समुद्भावयन् सरस्वतीमप्यहं प्रेरयेयम्।।१।।
अनुजानातु नृपो मां भवत्या सह लक्ष्मणेन यातुं ,
चतुर्दशाब्दं परिहितवल्कं वसतिं वने विधातुम्।
विपिनवसने निमित्तं समुद्भावयन् सरस्वतीमप्यहं प्रेरयेयम्।।२।।
अस्मद्दर्शनतः पथि पथि पथिका किल सन्तु सनाथा,
लोचनगोचरफलं प्राप्य मुनयोऽपि भवन्तु विनाथाः।
भक्तिवरणे निमित्तं समुद्भावयन् सरस्वतीमप्यहं प्रेरयेयम्।।३।।
चित्रकूटमधिवसन् त्रिकूटं स्वकूटतः शमयेयं,
कुर्वंस्त्वया साकमथ रासं शक्रसुतं दमयेयं।
शत्रुकदने निमित्तं समुद्भावयन् सरस्वतीमप्यहं प्रेरयेयम्।।४।।
त्वत्प्रतिबिम्बव्यसनव्याजात् हत्वा रणे दशास्यं,
रमयिष्ये भारतं सुखार्तं कृत्वा गिरिधरलास्यम्।
भरतभजने निमित्तं समुद्भावयन् सरस्वतीमप्यहं प्रेरयेयम्।।५।।

भौमी– वनगमन में निमित्त उत्पन्न करते हुए मैं सरस्वतीजी को प्रेरित करूँ। इसी प्रकार सबके शोक को दूर करने में निमित्त प्रस्तुत करने के लिए मैं सरस्वतीजी को प्रेरित करूँ। इसी प्रकार देवी सरस्वती मंथरा को मोहित कर लें और मंथरा मेरी मँझली माँ और भरत को जन्म देने वाली कैकेयी माँ को फोड़कर उन्हीं के द्वारा मेरे पिता महाराज श्री दशरथ से दो वरदान मँगवा लें। पिताश्री के मरण में निमित्त प्रस्तुत करने के लिए मैं सरस्वतीजी को प्रेरित करूँ। महाराज दशरथ भी मुझे आप और लक्ष्मण के साथ वन में जाने की तथा चौदह वर्षपर्यन्त वल्कल वस्त्र धारण करके वन में वास करने की अनुमति दे दें। वनवास में निमित्त प्रस्तुत करने के लिए मैं सरस्वतीजी को प्रेरित करूँ। हमारे दर्शन से पथ-पथ में पथिक सनाथ हों और पुण्य का फल नेत्र से प्रत्यक्ष पाकर मुनिजन भी विशिष्ट स्वामी वाले हो जाएँ। भक्ति के वरण में निमित्त प्रस्तुत करने के लिए मैं माता सरस्वती को प्रेरित करूँ। मैं चित्रकूट में निवास करते हुए कपट सहित त्रिकूट को नष्ट कर दूँ। तुम्हारे साथ रास करता हुआ मैं इन्द्रपुत्र जयन्त को भी दंडित करूँ। शत्रुओं के नाश में निमित्त प्रस्तुत करने हेतु मैं सरस्वती को प्रेरित करूं। आपके प्रतिबिंब के दुख के बहाने युद्ध में रावण को मारकर गिरिधर कवि की प्रसन्नता बढ़ाता हुआ मैं सुखपूर्वक भारत को रमाऊँगा। भरत के भजन में निमित्त उत्पन्न करने हेतु मैं सरस्वती को प्रेरित करूँ।

गीत संख्या-७

सीता गायति-

यदार्यपुत्रेण कल्पितं तद् विशुद्धभावा समर्थयेऽहम्।
यद्देशभूत्यै सङ्कल्पितं तद् ऋजुस्वभावा समर्थयेऽहम्।।१।।
यदेष देशो भवेत् स्वतन्त्रस्तदाऽस्वतन्त्रमङ्गीकुर्याम्।
यदार्यपुत्रेण चिन्तितं तत् शुभस्वभावा समर्थयेऽहम्।।२।।
व्रजाम्यरण्यं त्वयैव साकं अदामि कन्दं सुमूलशाकम्।
यदार्यपुत्रेण कीर्तितं तत् मृदुस्वभावा समर्थयेऽहम्।।३।।
भवन्निदेशं निभालयन्ती प्रविश्य वह्निं सुखं वसन्ती।
यदार्यपुत्रेण दर्शितं तत् शुचिस्वभावा समर्थयेऽहम्।।४।।
न गिरिधरेशेन भावनीयं न मत्प्रतीपं विभावनीयम्।
यदार्यपुत्रेण संशितं तत् समस्वभावा समर्थयेऽहम्।।५।।

भौमी- अब श्रीसीताजी गा रही हैं-हे आर्यपुत्र! जो आपने सोचा है, उसका मैं विशुद्ध भाव से समर्थन करती हूँ। यदि यह देश स्वतंत्र हो सके तो मैं परतंत्रता भी स्वीकार लूँ। आप ने जो भी चिन्तन किया है, उसका मैं कल्याण स्वभाव से समर्थन करती हूँ। मैं आपके साथ ही अब वन चलूँगी और आप ही के साथ कंद, मूल, फल और शाक का आहार करूँगी। आर्यपुत्र ने जो भी कहा है उसका मैं कोमल स्वभाव से समर्थन करती हूँ। मैं आपके निर्देश का पालन करती हुई सुखपूर्वक अग्नि में प्रवेश करके निवास करूँगी। आपने जो भी निदर्शन दिया है उसका मैं पवित्र स्वभाव से समर्थन करती हूँ। **गिरिधर** कवि के स्वामी आपश्री के द्वारा अन्यथा न कुछ सोचा जाए और मेरे स्वभाव में किसी विरोधाभास की कल्पना भी न की जाए। आर्यपुत्र ने जो कुछ कहा है, उसका मैं आपके ही समान स्वभाव से समर्थन करती हूँ।

गीत संख्या-८

सीता पुनर्गायति-

सहयोगमेव श्रीमन् भवतः सदा करिष्ये।
शुभयोगमेव श्रीमन् भवतः सदा करिष्ये।।
यास्यामि भूरिभागा सार्धं त्वयाप्यरण्यं
रास्यामि सानुरागा शान्तिं सतां शरण्यम्।
समयोगमेव धीमन् भवतः सदा करिष्ये।।१।।
सध्र्यङ् च लक्ष्मणस्ते सेवैकलभ्यलक्ष्यः
सद्भक्तिलक्षणस्ते सुतवत् सदैव रक्ष्यः।
मनोयोगमेव भूमन् भवतः सदा करिष्ये।।२।।

श्रोष्यामि सौख्यश्रोत्रं झिल्लीमनोज्ञगीतं
होष्यामि वह्निहोत्रं साकं त्वया प्रतीतम्।
उपयोगमेव भूमन् भवतः सदा करिष्ये।।३।।
हनुमत् पिपासया वै पावकमहं प्रवेक्ष्ये
रक्षो जिघांसया वै गिरिधरप्रभौ निवेक्ष्ये।
अनुयोगमेव भूमन् भवतः सदा करिष्ये।।४।।

भौमी– सीता जी पुनः गाती हैं– हे श्रीमान! मैं आपका सदैव सहयोग करूँगी। हे शोभा सम्पन्न प्रभु! मैं आपका शुभ योग निभाऊँगी। मैं भाग्यशालिनी बनकर आपके साथ संतों के शरण के योग्य वन में जाऊँगी और आपके प्रति अनुरागवती रहकर आपको शान्ति ही प्रदान करूँगी। हे दिव्य बुद्धिसम्पन्न श्रीराघव! मैं आपका सदैव समानरूप से योग करती रहूँगी। आपके साथ आपके सहचर लक्ष्मणजी जिनका सेवा ही एकमात्र लक्ष्य है, वे श्रेष्ठभक्ति के लक्षण से सम्पन्न हैं। उनका पुत्र के समान हम दोनों रक्षण करें। हे परमात्मन्! मैं आपका सदैव मन से भी योग करूँगी। हे भूमन्! अर्थात् दिव्यसत्तासंपन्न। मैं वनों में कानों को सुख देने वाला झिल्ली गीत सुनूँगी और आपके साथ विश्वासपूर्वक अग्निहोत्र का हवन करूँगी। मैं आपका सदैव सदुपयोग करूँगी। मैं आगे चलकर हनुमानजी की रक्षा करने के लिए अग्नि में भी प्रवेश करूँगी जिससे लंका दहन के समय अग्नि हनुमानजी को न जला सके और राक्षसों की वध करने की इच्छा से **गिरिधर** कवि के स्वामी आप में भी मैं कालशक्ति के रूप में निवास करूँगी। हे भूमन् अर्थात् पृथ्वीपते! मैं आपका निरंतर अनुयोग करूँगी अर्थात आपके पीछे–पीछे चलती रहूँगी।

विशेष– यह गीत काव्याली धुन में निबद्ध है। इसमें तीन बार अर्थभेद की दृष्टि से 'भूमन्' शब्द का प्रयोग हुआ है। अतः पुनरुक्ति दोष नहीं समझना चाहिए।

गीत संख्या–९

सीता पुनर्गायति–

पतनात् पतिं न त्रायात् पत्न्या तयाऽथ किम्।
पतनात् पतिं न पायात् पत्न्या तयाऽथ किम्।।
त्रातं न चेच्चरित्रं गात्रैश्च किं शुभैस्तैः।
स्खलनात् पतिं न पायात् पत्न्या तयाऽथ किम्।।१।।
पात्रं न चेत्पवित्रं किमु योगजापयज्ञैः।
पापात् पतिं न पायात् पत्न्या तयाऽथ किम्।।२।।
राष्ट्रे न चेन्नियुङ्क्ते किं स्नेहदेहगेहैः।
दुरितात् पतिं न पायात् पत्न्या तयाऽथ किम्।।३।।
गिरिधरप्रभुं न कवयेत् किं कवितया तया भो।
वृजिनात् पतिं न पायात् पत्न्या तयाऽथ किम्।।४।।

भौमी- सीताजी फिर गा रही हैं- "हे परमात्मन्!" जिस पत्नी ने पति को पतन से मुक्ति नहीं दिलाई, उस पत्नी से क्या लाभ और जिस पत्नी ने पति को पतन से नहीं बचाया, उस पत्नी से क्या लाभ? यदि चरित्र की रक्षा नहीं की गई तो उन शुभ अंगों से क्या लाभ? यदि पति को स्खलन से नहीं बचाया तो उस पत्नी से क्या लाभ? यदि हृदय का पात्र पवित्र नहीं है तो फिर योग, जप, यज्ञों से क्या प्रयोजन? यदि पति को पाप से न बचाया तो उस पत्नी से क्या लाभ? यदि राष्ट्र में उपयोग नहीं हुआ तो स्नेह, शरीर और घर से क्या प्रयोजन? जो पति को दोषों से नहीं बचा पाई, उस पत्नी से क्या लाभ? अरे! जिसने **गिरिधर** कवि के स्वामी आपश्री राघव को वर्णना का विषय नहीं बनाया, उस अभागिनी कविता से क्या लाभ? जिसने पति को नरकोन्मुखी पापों से नहीं बचाया, उस पत्नी से पति का क्या लाभ?

गीत संख्या-१०

सीता पुनर्गायति-

गमनं वनेऽपि मह्यं रघुचन्द्र रोचते।
भ्रमणं वनेऽपि मह्यं रघुचन्द्र रोचते।।
अनुयामि त्वामभीता रविमिव प्रभा प्रतीता।
व्रजनं वनेऽपि मह्यं रघुचन्द्र रोचते।।१।।
दास्यामि सम्बलं ते रास्यामि सद्बलं ते।
अयनं वनेऽपि मह्यं रघुचन्द्र रोचते।।२।।
मार्गश्रमं हरिष्ये सेवां समां करिष्ये।
अटनं वनेऽपि मह्यं रघुचन्द्र रोचते।।३।।
गिरिधरप्रभुं भजन्ती कुटीरे दिवं हसन्ती।
वसनं वनेऽपि मह्यं रघुचन्द्र रोचते।।४।।

भौमी-सीताजी पुनः गाती हैं-हे रघुकुल के चंद्रमा! वन में जाना मुझे भी बहुत अच्छा लग रहा है और वन में भ्रमण करना भी मुझे अच्छा लग रहा है। जिस प्रकार सूर्यनारायण का अनुगमन उनकी प्रभा विस्वस्त भाव से करती है उसी प्रकार मैं निर्भीकतापूर्वक आपका अनुगमन करूँगी। क्योंकि आपके साथ वन में प्रस्थान करना, मुझे बहुत भाता है। मैं आपको सम्बल दूँगी और आपको सात्विक शक्ति प्रदान करूँगी क्योंकि आपके साथ वन में प्रयाण मुझे भी बहुत भा रहा है। हे रघुकुल के चंद्रमा! मैं आपकी मार्ग की थकान हर लूँगी और सम्पूर्ण सेवाएँ करूँगी। आपके साथ वन में विहार करना मुझे बहुत अनुकूल लग रहा है। **गिरिधर** कवि के स्वामी आपश्री रघुनाथ की सेवा करती हुई मैं कुटी में रहकर भी स्वर्ग की हँसी उड़ाऊँगी। आपके साथ वन में निवास करना मुझे बहुत भाता है।

गीत संख्या-११

त्वं ब्रह्म ब्रह्मरक्तो रक्तिस्त्वहं त्वदीया।
त्वं सर्वथा विमुक्तो मुक्तिस्त्वहं त्वदीया।।
त्वं भानुमाननन्या त्वत्तः शुभा प्रभाहम्।

त्वं सोमवान् सुधन्या त्वत्तोऽह्यरुग्विभाहम्।।
त्वं भक्तभावभोग्यो भुक्तिस्त्वहं त्वदीया।।१।।
त्वं कारकः क्रियावान् दिव्या त्वहं कृतिस्ते।
त्वं धारको जगत्या भव्या त्वहं धृतिस्ते।।
त्वं योगियोगयोग्यो युक्तिस्त्वहं त्वदीया।।२।।
जगदेककार्मुकी त्वं तव जानकी धनुर्ज्या।
चण्डाशुगोल्मुकी त्वं तव मैथिली रणे ज्या।।
त्वं शक्तिमाँश्च नित्या शक्तिस्त्वहं त्वदीया।।३।।
त्वमधीश्वरावलम्बो स्तुत्या तवास्मि माया।
त्वं सर्वलोकबिम्बो दिव्या तवास्मि छाया।।
त्वं गिरिधरेश भगवान् भक्तिस्त्वहं त्वदीया।।४।।

भौमी– सीताजी पुनः गाती हैं– हे प्रभु! यदि आप वैदिक धर्म में श्रद्धालु होकर भी ब्रह्म हैं तो मैं आपमें अनुरक्त हूँ। यदि आप सर्वथा विमुक्त हैं तो मैं आत्ममुक्ति हूँ। यदि आप सूर्य हैं तो मैं आपसे अनन्य प्रभा हूँ। यदि आप चन्द्र हैं तो मैं भी आपसे अपृथक् कान्ति हूँ। यदि आप भक्त की भावना से भोग्य हैं तो मैं भी आपमें निहित वृत्तिभुक्ति हूँ। यदि आप सम्पूर्ण क्रियाओं के अधिष्ठाता कारक हैं तो मैं भी आपकी अलौकिक क्रिया हूँ। यदि आप संसार के धारणकर्ता हैं तो मैं भी आपकी भव्य धारणा शक्ति हूँ। यदि आप योग से युक्त योग्य योगी हैं तो मैं आपकी युक्ति अर्थात् योगसाधना हूँ। यदि आप जगत् के एकमात्र धनुर्धर हैं तो मैं भी आपके धनुष की प्रत्यञ्चा हूँ। यदि आप प्रचण्ड बाणरूप अङ्गारों के प्रहर्ता हैं तो मैं भी आपकी युद्ध की यज्ञाहुति हूँ। यदि आप शक्तिमान् हैं तो मैं आपकी नित्य–शक्ति हूँ। यदि आप सबके अवलंबदाता ईश्वर हैं तो मैं आपकी प्रशंसनीय मायाप्रकृति हूँ। यदि आप सर्वलोक के विम्ब हैं तो मैं आपकी अलौकिक छाया हूँ। हे **गिरिधर** कवि के ईश्वर श्रीरघुवीरजी! यदि आप भगवान हैं तो मैं आपकी भक्ति हूँ।

गीत संख्या–१२

राघव त्वन्मुखेन्दोश्चकोरी सीता भूमिलोकं समायां प्रभो त्वत्कृते।
भूत्वा जननी जगत्या जनकमन्दिरे पुत्रिकाभावमायां प्रभो त्वत्कृते।।१।।
जाता मातापि भूमेस्त्रिलोक्या अहं याता रात्रौ वियोगं वा कोक्या अहम्।
स्वामिनी भूत्वा साकेतलोकस्य भोः सेविकाव्रतमकार्षं प्रभो त्वत्कृते।।२।।
त्यक्त्वा साकेतसंसिद्धिसंपन्मदं मैथिलीवीथिराटं निरावृत्पदम्।
भूत्वा गङ्गाततांश्यंशी वरगेहिनी नित्यं गङ्गायामस्नां प्रभो त्वत्कृते।।३।।
इन्दिराशारदागौरिवन्द्या सती देवदेवीस्त्वदर्थं च पूजितवती।
शैवकोदण्डभङ्गे सशङ्काशिवौ कुञ्जरास्यं समार्चं प्रभो त्वत्कृते।।४।।
भूत्वा श्वश्रूः समस्तामरीणामहं सुस्नुषाभूवमायोध्यकानामये।

गिरिधरस्वामिनी देहजितदामिनी श्वश्रूवाणीरश्रौषं प्रभो त्वत्कृते।।५।।

भौमी- हे राघव! आपके मुखचंद्र की चकोरी मैं सीता आप ही के लिए इस भूमिलोक में आयी हूँ। समस्त संसार की माँ होकर भी मैं जनकजी के भवन में आप ही के लिए पुत्री भाव को स्वीकार कर बालिका बन गई। तीनों लोकों की माँ होकर भी मैं पृथ्वी की पुत्री बनीं और रात्रि में चकई की भाँति कुछ दिनों के लिए आपका वियोग भी सहा। साकेतलोक की स्वामिनी होकर भी हे प्रभु! मैंने आपके लिए सेविका व्रत का भी पालन किया। हे प्रभो! साकेत लोक की नित्य सिद्धि का मद छोड़कर मैंने अपने निरावरण चरण से मिथिला की गलियों में भ्रमण किया। हे प्रभो! आपके ही लिए गङ्गाजी के पिता भगवान वामन के अंशी, विष्णु के भी अंशी आप श्रीराघव की गृहलक्ष्मी होकर भी मैंने निरन्तर गङ्गाजी में स्नान किया। हे प्रभो! आपके ही लिए लक्ष्मी, सरस्वती और पार्वती जी की वन्दनीया होती हुई भी मैंने देवताओं और देवियों की निरन्तर पूजा की और आप ही के लिए शिवधनुष टूटते समय मैंने शिवपार्वती और गणपति की भी पूजा की। हे प्रभो! देवियों की भी सासु होकर भी मैंने अयोध्या की सासुओं की सेवा की और अपने शरीर से बिजली को जीतने वाली **गिरिधर** कवि की स्वामिनी मैं सीता आपके ही लिए सासुओं की भिन्न-भिन्न आदेशवाणियों का पालन किया।

विशेष- यह गीत भी सुगम संगीत की विधा काव्याली की धुन में निबद्ध है।

सन्दर्भश्लोकः

अथैकदा दशरथ आत्मनो जरां
विभावयन् श्रवणसमीपपालितिः।
इयेष सङ्गमयितुमाशु राघवं
नृपश्रिया गुणविदि गुण्यते गुणः।।१।।

भौमी-इसके अनन्तर एक बार कानों के समीप श्वेत बाल वाले महाराज दशरथजी ने अपनी वृद्धावस्था का चिंतन करके श्रीराघव को राजलक्ष्मी से संयुक्त करने की इच्छा की क्योंकि गुणवान में ही गुण का मूल्यांकन होता है। अब दशरथ जी श्रीवसिष्ठजी को सम्बोधित करके गाते हैं।

गीत संख्या-१३

दशरथः श्रीवसिष्ठं प्रति-

गुरुकृपाकादम्बिनी मयि वर्षति।।
त्वत्प्रसादप्रासादविहारी रामो जनानां मन आकर्षति।।१।।
कौसल्याप्राचीदिशिचारी स्वजनकमलमिह रविरुत्कर्षति।।२।।
श्रावं श्रावं जनेभ्यः प्रभावं सुभुजरिपोर्हृदयं मम हर्षति।।३।।
निजशीलतश्चरित्रमहिम्ना समः पूर्वपुरुषानादर्शति।।४।।
गिरिधरचेतश्चतुरचातको राघवस्वातिजलभृते तर्षति।।५।।

भौमी- हे भगवान! आप गुरुदेव की कृपाकादम्बिनी मुझ पर वरस रही है। आपके प्रसाद रूप राजमहल

में विहार करने वाले श्रीराम लोगों के मन को आकर्षित कर ले रहे हैं। कौसल्याजी रूपिणी पूर्व दिशा में उदित हुये श्रीराम सूर्य अपने भक्त रूप कमलों का उत्कर्ष बढ़ा रहे हैं। सुबाहु शत्रु श्रीराम का प्रभाव लोगों के मुख से सुनकर मेरा हृदय प्रसन्न हो रहा है। अपने शील से, चरित्र से और महिमा से श्रीराम हमारे पुरुषों के भी आदर्श बन रहे हैं और गिरिधर कवि का चतुर चित्त रूप चातक श्रीराम रूप स्वाति जल के लिए तरस रहा है।

विशेष- यह गीत त्रिताल (१६ मात्रा) में निबद्ध है। इसे हमीर आदि आनन्द के रागों में गाया जा सकता है।

गीत संख्या-१४

जयति जाग्रति रामभद्रः।
विमलनामा रामभद्रः विशदधामा रामभद्रः।।
पतितपावनमहितमहिमा श्रुतिविशारदगदितगरिमा।
खलनिशाचरलघितलघिमा जवति जव्यति रामभद्रः।।१।।
कलितकरतलविशिखचापः हृतसुजनकुलत्रिविधतापः।
कोटिशततपनप्रतापः भवति भव्यति रामभद्रः।।२।।
मञ्जुमरकतमणिश्यामः कमनयामुनजलश्यामः।
नीलनीरजदलश्यामः नवति नव्यति रामभद्रः।।३।।
सकलमङ्गलगुणनिकेतः दयितसीतानुजसमेतः।
विहितगिरिधरहृदयकेतः गवति गव्यति रामभद्रः।।४।।

भौमी- इस जागरूप संसार में श्री रामभद्र की जय हो रही है। विमल नाम वाले दिव्य तेज के धाम श्रीराम की जय हो रही है। जिनकी पतित पावन महिमा मण्डित हो रही है और वेद विशारद नारदादि ने जिनकी गुरु महिमा का गान किया है जिनकी लघिमा ने भी अर्थात छोटे प्रयासों ने भी दुष्ट राक्षसों को लघुतम बना दिया, ऐसे श्रीरामभद्र वेगवान हो रहे हैं और वेगवानों के लिए हितैषी हो रहे हैं। जिनके करतल में धनुषबाण विराजमान है और जिन्होंने सज्जनों के तीनों तापों को नष्ट किया है। जो करोड़ों-करोड़ों सूर्यों के समान तापवान है ऐसे श्रीरामभद्र सबका कल्याण कर रहे हैं और कल्याणकारियों को भी सुख दे रहे हैं तथा भव्य प्रतीत हो रहे हैं। सुन्दर मरकत मणि के समान श्यामल, कमनीय यमुना जल के समान श्यामल तथा नीले कमल दल के समान श्यामल श्रीरामभद्र निरन्तर नवीन होते हुये भी नव्यता को प्राप्त करते जा रहे हैं। सम्पूर्ण गुणों और मंगलों के आश्रय प्रियपत्नी सीता एवं भाई लक्ष्मण के साथ विराजमान **गिरिधर** कवि के हृदय में निवास करने वाले श्रीरामभद्र हमारी इन्द्रियों को भी स्वीकार कर रहे हैं और हमारी इन्द्रियों के विषयों को भी सनाथित कर रहे हैं।

गीत संख्या-१५

विदध्याद् भवान् राघवाभिषेकम्।
मयि जीवति लोकाः प्रलभन्तां मञ्जुलमुत्सवमेकम्।।१।।
कुर्याद् भवान् कोसलापुर्यां श्रीरामं युवराजम्।

अहं भवेयं वीक्ष्य प्रमुदितो यथा मुनिर्द्विजराजम्।।२।।
सर्वा प्रकृतिः प्रभुं प्रशंसति कोऽपि न निन्दति रामम्।
सकल सद्गुणानां मन्दिरमथ नीलमरकतश्यामम्।।३।।
ब्राह्मणकुलं भवानिव सकलं वर्धयते रघुनाथम्।
अहमिव रिपुरपि समभिगृणीते लोकोत्तरगुणगाथम्।।४।।
सिंहासनसंस्थं राघवं जनः सहसीतम्।
दर्शं दर्शं प्रभुं गिरिधरो गायतु मङ्गलगीतम्।।५।।

भौमी- पुनः वसिष्ठजी से महाराज कहते हैं–हे गुरुदेव! आप श्रीराम के अभिषेक में मेरे जीते जी लोक में एक सुन्दर मंगलोत्सव प्राप्त कर लें। आप अयोध्यापुरी में श्रीराम को युवराज बनायें और मैं श्रीराम को राजारूप में देखकर उसी प्रकार प्रसन्न होऊँ जैसे अत्रि ब्राह्मणों के राजा पद पर चन्द्रमा को अभिषिक्त देखकर प्रसन्न हुए थे। सम्पूर्ण सद्गुणों के मन्दिर नीलमणि श्याम प्रभु श्रीराम की सम्पूर्ण प्रजा प्रशंसा कर रही है उनकी कोई भी निन्दा नहीं करता। आपके ही भाँति सम्पूर्ण ब्राह्मणकुल अपने आशीर्वाद से श्रीरघुनाथजी का निरन्तर वर्धापन कर रहा है और लोकोत्तर गुण गाथाओं वाले श्रीराम को मेरे ही समान मेरा चिर प्रतिद्वन्दी शत्रु रावण भी अपनी शुभ कामनाओं से वर्धापित करता है। इस प्रकार सीताजी के सहित सिंहासन पर विराजमान श्रीराम को सभी लोग निहारें और यह दृश्य देख-देखकर **गिरिधर** कवि भी मंगल गीत गाये।

सन्दर्भश्लोकः

मूकस्वीकृतिमाकलय्य स गुरोराहूय रामं नृपः
सीतासेवितमञ्जुलाधरसुधामाधुर्यधूर्याननम् ।
आरोप्याङ्कमनङ्गदर्पदलनाराध्यं च साध्यं सतां
सानन्दं कलगद्गदं दशरथः प्राहारतिं भारतीम्।।१।।

भौमी–गुरुदेव की मूक स्वीकृति प्राप्त कर सीताजी के द्वारा जिसकी मधुर अधरसुधा का पान किया गया है ऐसी मधुरता की धुरी को धारण करने वाले मुखकमल की शोभा से सम्पन्न कामदर्पहारी शिवजी के भी आराध्य, सन्तों के साधन के एकमात्र लक्ष्य प्रभु राम को बुलाकर गोद में लेकर महाराज दशरथ गद्गद स्वर में भगवद्भक्ति पूर्ण वाणी बोले।

गीत संख्या-१६

वत्स राघव श्व एवायोध्यापुरीयौवराज्येऽभिषेक्तास्मि त्वाम्।
कनकसिंहासनस्थं ससीतं पुरे स्वाश्रुभिश्चाभिषेक्तास्मि त्वाम्।।१।।
त्वं हि मज्ज्येष्ठपत्न्यां प्रसूतः सुतः शुचिः प्राच्यामिवेन्दुर्गुणैरद्भुतः।
सर्वसाद्गुण्यकल्याणवन्तं पुरे मन्त्रिभिश्चाभिषेक्तास्मि त्वाम्।।२।।
यावद् देहात्मशक्तिर्न मे लुप्यते यावत्त्वत्प्रेमभक्तिर्न मे कुप्यते।
तावदेवात्मवन्तं महान्तं पुरे सेनपैश्चाभिषेक्तास्मि त्वाम्।।३।।

पुष्यनक्षत्रमायाति भो श्वस्तने चैत्रमासोऽपि बाभाति भो श्वस्तने।
ज्ञानविज्ञानवन्तं लसन्तं पुरे नैगमैश्चाभिषेक्तास्मि त्वाम्।।४।।
रक्ष भारतमहीमप्रमादं सदा यच्छ विश्वाय वै निर्भयं सर्वदा।
गिरिधरेश्वर धनुर्धर वसन्तं पुरे निर्जरैश्चाभिषेक्तास्मि त्वाम्।।५।।

भौमी– हे वत्सराघव! कल ही मैं अयोध्यापुर के युवराज पद पर तुम्हें अभिषिक्त करूँगा और कल ही पुत्रवधू सीताजी के साथ इसी अयोध्यापुर में स्वर्ण सिंहासन पर विराजमान करके अपने अश्रुओं से भी मैं तुम्हारा अभिषेक करूँगा। जिस प्रकार पूर्व दिशा में चन्द्रमा प्रकट हुये उसी प्रकार तुम भी मेरी ज्येष्ठ पत्नी कौसल्या में अद्भुत गुणों से युक्त पवित्र व्यक्तित्व के साथ उत्पन्न हुये हो। अतः कल ही मैं सम्पूर्ण श्रेष्ठ गुणों से युक्त तुम श्रीराम को अपने मंत्री मण्डल के साथ युवराज पद पर अभिषिक्त कर दूँगा। जब तक मेरे शरीर की शक्ति नहीं लुप्त हो रही है और जब तक आप विषयक मेरी प्रेमभक्ति मुझ पर नहीं रूठ रही है तब तक मैं अपने सेनापतियों के साथ परम मनस्वी आपको युवराज पद पर अभिषिक्त कर दूँगा। कल ही पुष्य नक्षत्र आ रहा है और उसी कारण कल चैत्र मास की शोभा भी बहुत बढ़ रही है। अतएव कल ही वेद पारंगत ब्राह्मणों के साथ मैं ज्ञान और विज्ञान से सम्पन्न आपको अयोध्या के राज सिंहासन पर अभिषिक्त कर दूँगा। हे **गिरिधर** कवि के ईश्वर धनुर्धर श्रीराम! आप प्रमाद छोड़कर सदैव भारत भूमि की रक्षा कीजिए और सम्पूर्ण संसार को सदैव अभय दान दीजिए। इस प्रकार मैं कल ही श्रीअयोध्या में निवास कर रहे आपको देवताओं के साथ ही युवराज पद पर अभिषिक्त कर दूँगा।

विशेष– यह गीत भी काव्याली लोक धुन में निबद्ध है।

गीत संख्या–१७

श्रीरामः स्वगतम्–

हरे हरे किमिदमनुचितारम्भम्।
किमिह निक्षिपति पिता वत्सलो मामथ हुतभुजि डिम्भम्।।१।।
एकेनैव तातचरुणा सह चतुर्भ्रातरो जाता।
बाल्ये शयनकेलिभोजनसंस्कारान् युगपद्याताः।।२।।
युगपत्कर्णवेधचूडाशिक्षाव्रतबन्धविवाहाः ।
समं चतुर्णां भ्रातृणां सर्वेऽप्यभवन्नुत्साहाः।।३।।
विमलहंसवंशे तनुषे हे विधे त्वमनुचितमेकम्।
विप्रोषिते भद्रभरते कल्पयसि ममाप्यभिषेकम्।।३।।
तदहं कथमपि नैव रोचये भरतं विना स्वराज्यम्।
श्वो व्रजामि विपिनं हित्वा तृणमिव भारतसाम्राज्यम्।।४।।
एवं स्वगतविहितगिरिधरप्रभुदारुणपश्चात्तापम्।
क्षपयतु रामभक्तहृदयस्थितकठिनकुटिलतातापम्।।५।।

भौमी- श्रीराम अपने मन में ही गुनगुना रहे हैं। हरे-हरे! यह कैसा अनुचित कार्य हो रहा है। मुझ पर वात्सल्य रखने वाले पिताश्री मुझ बालक को आज अग्नि में क्यों झोंक रहे हैं? पिताश्री के दिये हुये एक ही चरु (खीर) से चारों भाई साथ उत्पन्न हुये हैं। बाल्यावस्था में खेल, शयन, भोजन और संस्कार ये सभी विधान चारों के साथ-साथ हुये। कर्ण वेध (कान छिदाई) चूड़ाकरण, शिक्षारम्भ, यज्ञोपवीत ये सभी उत्साह मंगल के कार्य चारों भाइयों के एक साथ समान रूप से हुये। हे विधाता! इस निर्मल सूर्यवंश में तुम यह एक अनुचित कार्य कर रहे हो क्योंकि मेरे भावते भरत के ननिहाल प्रवास में चले जाने पर मेरे अभिषेक की व्यवस्था करा रहे हो। अतएव मैं भरत के बिना किसी भी प्रकार अपना राज्य नहीं स्वीकारूँगा और कल ही भारत का साम्राज्य छोड़कर वन को चला जा रहा हूँ। इस प्रकार अपने मन में किया हुआ **गिरिधर** कवि के स्वामी का पश्चात्ताप रामभक्त के हृदय में उपस्थित अत्यन्त कठोर कुटिलता रूप ताप को नष्ट कर दे।

विशेष- इस गीत को तोड़ी, भैरवी तथा भैरव राग में भी गाया जा सकता है।

गीत संख्या-१८

जय जय जय जगदम्ब शारदे त्रिभुवनजननि सुमतिविशारदे।।
जय सुमृणालमरालविष्टरे जय वैदिकवाङ्मयसुविस्तरे।
जय वीणावादिनि शुचिहासिनि जय विरिञ्चपुरभवनविलासिनि।।१।।
मातर्मुधा विलम्बं तनुषे सुरगणपरिदेवनां न मनुषे।
मोहय सपदि मन्थरां मातः यथा झटिति स्याद्राज्यविघातः।।२।।
याचतु वरद्वयं कैकेयी वनवसतिः स्यात् कौसल्येयी।
भरतो भवतु कोसलावासी रामो दण्डकविपिनविलासी।।३।।
मुनिकुलमर्चतु सहितागस्त्यं हन्तु रणे रामः पौलस्त्यम्।
भवतु भारतं सुखितमभीतं गायतु चिरं गिरिधरो गीतम्।।४।।

भौमी- अब देवता सरस्वतीजी को सम्बोधित करके गाते हैं- हे जगदम्ब, हे शारदे! हे तीनों लोकों की माँ, हे सुन्दर बुद्धि में निपुण सरस्वती देवी! आपकी जय हो, जय हो, जय हो। हे कमलदण्ड के समान धवल हँस को आसन बनाने वाली सरस्वती माँ! आपकी जय हो। हे वैदिक वाङ्मय को विस्तार देने वाली! आपकी जय हो। वीणावादिनी पवित्र हास सम्पन्न माँ! आपकी जय हो। ब्रह्मा जी के भवन को सुशोभित करने वाली सरस्वती माँ! आपकी जय हो। हे माँ! आप व्यर्थ विलम्ब कर रही हैं देवताओं की करुण पुकार भी नहीं मान रही हैं। हे माँ! आप मंथरा को शीघ्र मोहित कर दें जिससे अविलम्ब राज्याभिषेक में विघ्न पड़ जाय। कैकेयी महाराज से दो वरदान माँग लें, जिनमें कौसल्या पुत्र श्रीराम का वनवास और भरत का राज्याभिषेक भरतजी अयोध्यावासी तथा श्रीराम दण्डक वन को सुशोभित करें। श्रीराम अगस्त्य के सहित मुनिकुल का सम्मान करें। श्रीराम युद्ध में पुलस्त्य के पौत्र रावण का वध करें। भारत सुखी और निर्भय बने तथा **गिरिधर** कवि भी बहुत कालपर्यन्त श्रीराम का यशोगीत गाते रहें।

सन्दर्भश्लोकौ

अथेलया विबुधवरप्रणुन्नया प्रवीणया करगतवल्गुवीणया।

विभेदिता मलिनमतिश्च मन्थरा तथा प्रसूः किल भरतस्य रामतः।।१।।
सा कैकयी क्रूरवरद्वयं नृपं कान्तं स्ववैधव्यकरं ह्ययाचत।
साकेतराज्ये भरताभिषेचनं चतुर्दशाब्दं च विवासनं हरेः।।२।।

भौमी–इसके अनन्तर बुद्धि परिवर्तन में कुशल, हाथ में श्रेष्ठ वीणा ली हुई देवताओं से प्रेरित, सरस्वती जी ने मलिन बुद्धि वाली मंथरा तथा भरत की माता कैकेयी को श्रीराम से विपरीत कर दिया। उन माता कैकेयी ने अपनी वैधव्य के मूल कारण रूप दो वरदान महाराज दशरथ से माँगे। एक से अयोध्या के युवराज पद पर भरत का अभिषेक और दूसरे से श्रीराम का चौदह वर्षों के लिए वनवास। अब महाराज दशरथ कैकेयी को समझाते हुये कहते हैं।

गीत संख्या-१९

दशरथः कैकेयीं प्रति–

त्यज त्यज कैकयि दुराग्रहं ते।
मां त्रायस्व मरणतो भामिनि वितनु वितनु मय्यनुग्रहं ते।।
समाहूय बन्धुना भरतमिह श्वोऽभिषेचये कोसलराज्ये।
समासञ्जये छत्रचामरैः सन्नियोजये राज्यप्राज्ये।।१।।
आचतुर्दशाब्दं विजिताब्दं किं विवासयसि भामिनि रामम्।
निरागसं दण्डकविपिने किंकृते त्रासयसि भो मम रामम्।।२।।
किमसुभ्यो वियोजयसि मामपि कुटिले कैकयनन्दिनि व्यर्थम्।
क्षुद्रस्वार्थकृते कुरुषे कुलपांशिनि दुष्टे विषममनर्थम्।।३।।
लोकान्सत्यबलेन भूसुरान् दानैःप्रबलशात्रवान् धनुषा।
शुश्रूषया गुरूंश्च जयन्तं वचसा स्वान् मधुरसुधाजनुषा।।४।।
किं विवास्य विपिने निर्दोषं रामं विमलमुत्पलश्यामम्।
गिरिधरप्राणधनं जीवेयं क्षणमिह त्रिभुवनललितललामम्।।५।।

भौमी– हे कैकेयी! अपना दुराग्रह छोड़ दो। हे भामिनी! मुझे मरण से बचा लो, मुझ पर अनुग्रह करो। मैं कल ही शत्रुघ्न के साथ भरत को बुलाकर उन्हें अयोध्या के राज्य पद पर अभिषिक्त कर देता हूँ और उन्हें छत्र-चामर से युक्त कर देता हूँ तथा अवध राज्य की स्वर्ण सम्पत्ति का अधिकारी बना देता हूँ। हे कैकेयी! अपनी शोभा से मेघ को जीतने वाले श्रीराम को चौदह वर्षों के लिए क्यों निर्वासित कर रही हो? तुम किसलिये निरपराध मेरे राम को दण्डक वन में भेजकर भयभीत कर रही हो? हे कुटिल कैकयनन्दिनी मुझको भी निरर्थक प्राणों से वियुक्त क्यों कर रही हो? अरे दुष्टे! कुल को नष्ट करने वाली कैकेयी! छोटे से स्वार्थ के लिए इतना बड़ा अनर्थ क्यों कर रही हो? कैकेयी सम्पूर्ण लोकों को सत्य से, ब्राह्मणों को दान से, शत्रुओं को धनुष से, गुरुजनों को सेवा से और आत्मीयजनों को मधुर वाणी से जीतते हुये श्रीराम को क्यों निर्वासित कर रही हो तुम्हीं बताओ बिना अपराध के निर्मल, नीलेकमल के समान श्यामल, तीनों लोकों के रत्न, **गिरिधर** कवि के प्राणधन, श्रीराम को वनवास देकर क्या मैं एक क्षण भी जीवित रह सकूँगा?

गीत संख्या-२०

राघवं जगद् गदति निर्दोषम्।
एका त्वमिह दुष्टहृदये रामं तर्कयसि सदोषम्।।१।।
किमुत कयाचन कुटिलपिशाच्या भ्रान्ता कलितावद्ये।
सोममयूखे गरलमहः विषमं शङ्कसेऽनवद्ये।।२।।
तिमिरारिर्मिहिरोऽपि तिमिरमिह प्रतिभाति तवोलूकिनि।
कालदूति मम सकलं प्रतिकूलं कल्पयसे शोकिनि।।३।।
अये सलिलमनलं विभावयसि रामं वामं वामे।
गिरिधरप्रभुं ह्यमित्रीयसि किल मत्पातकपरिणामे।।४।।

भौमी- अरे दुष्टहृदया कैकेयी! सम्पूर्ण संसार श्रीराम को निर्दोष कह रहा है, एक तुम्हीं अपने कुटिल तर्कों से उन्हें सदोष सिद्ध कर रही हो। अहो पाप को स्वीकार करने वाली कैकेयी! क्या तुम किसी कुटिल पिशाचिनी-चुड़ैल के द्वारा भ्रान्त कर दी गयी हो? अहह! निर्दोष अमृत किरण वाले चन्द्रमा में तुम भयंकर विष की आशंका कर रही हो। अरे उलूकिनी! (मादा उल्लू) तुमको तो अंधकार के शत्रु सूर्य भी अंधकार ही दिख रहे हैं। मेरी कालदूती, मेरा शोक बढ़ाने वाली कैकेयी तुम तो मुझमें सब कुछ प्रतिकूल ही देख रही हो। अरे प्रतिकूल मार्ग पर चलने वाली दुष्ट महिला, तुम तो जल को अग्नि समझ रही हो और सर्वथा अनुकूल रहने वाले श्रीराम को प्रतिकूल समझ रही हो। यहाँ तक की मेरे पाप के परिणाम के कारण ही **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम को भी अपना शत्रु समझ रही हो।

गीत संख्या-२१

स्वभावं त्यज भामिनि विपरीतम्।
कनकभवन इह जनाभिरामं भज रामं सहसीतम्।।१।।
यस्य निसर्गरिपूणामपि स्वभाव आस्तेऽत्यनुकूलः।
स्वप्ने स किमु भवेत् कदापि मध्यममातुः प्रतिकूलः।।२।।
शोभां विधुर्जहातु जातु सागरस्त्यजतु निजबेलाम्।
रामो नैव तथापि कर्तुमासीत् मातुरवहेलाम् ।।३।।
त्यक्त्वा कोपं कथय सुमुखि कञ्चन राघवापराधम्।
मा विवास्य रामं प्रवेशयेर्मामघसिन्धुमगाधम्।।४।।
तिष्ठेज्जातु रविमृते लोको जीवेत् कमृते मीनः।
क्वापि न गिरिधरप्रभुं विना तथापि जीवेयं दीनः।।५।।

भौमी- हे कैकेयी! अपना विपरीत स्वभाव छोड़ दो। इसी कनक भवन में भक्तों को आनन्द देने वाले सीतासहित श्रीराम का भजन करो। जिनका स्वभाव स्वाभाविक बैर करने वाले शत्रुओं को भी अत्यन्त अनुकूल लगता है, वे श्रीराम क्या कभी भी स्वयं में भी मँझली माँ के प्रतिकूल हो सकते हैं? भले चन्द्रमा

अपनी शोभा छोड़ दें, कदाचित सागर अपनी मर्यादा वेला का त्याग कर दे, फिर भी श्रीराम अपनी माँ का अपमान नहीं कर सकते। हे सुमुखी! अपना क्रोध छोड़कर कोई भी श्रीराघव का अपराध तो बताओ। अरे! निर्दोष श्रीराम को वनवास देकर मुझको अगाध शोक सागर में क्यों फेंक रही हो? कदाचित सूर्य के बिना संसार रह ले, जल के बिना मछली जीवित रह जाय, फिर भी मैं दीन दशरथ **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम के बिना नहीं जीवित रह सकता।

गीत संख्या-२२

कैकेयि रे त्वां प्राञ्जलिः प्रणमामि।
चक्रवर्तिदशरथोऽपि मूर्ध्ना महारथोऽपि नमामि।।१।।
अनुनयामि चरणस्पर्शं त्वां शं नयामि कलितोत्कर्षां त्वाम्।
मा कार्षीरपकर्षमजकुले बहुशस्त्वां विनयामि।।२।।
शरणं भव दिनकरकुलकेतोः मरणान्मामव कश्मलहेतोः।
परिवर्तय वरदानयुगलमिह पुना रतिं प्रणयामि।।३।।
वन्दं वन्दं त्वामनुरुन्धे निन्दं निन्दं निजं निरुन्धे।
क्रन्दं क्रन्दं कमपि विरुन्धे विरुदं विलज्जयामि।।४।।
मा याचस्व रामवनवासं मा कुरु कोसलविभवविनाशम्।
गिरिधरप्रभुं रक्ष निजभवने शतशस्त्वां याचामि।।५।।

भौमी- हे कैकेयी! तुम्हें हाथ जोड़कर मैं प्रणाम कर रहा हूँ। महारथी चक्रवर्ती होकर भी मैं दशरथ तुम्हें सिर से नमन कर रहा हूँ। मैं चरणों को स्पर्श करके तुमसे अनुनय कर रहा हूँ और उत्कर्ष के साथ तुम्हें नमन कर रहा हूँ, तुमसे बार-बार प्रार्थना कर रहा हूँ कि अज के कुल में अपकर्ष मत करो अर्थात् ऐसा कुछ मत करो जिससे अवनति हो जाय। सूर्यकुल के पताका स्वरूप मुझ दशरथ की रक्षा कर लो और पाप के मूल कारण मरण से मुझे बचा लो। दोनों वरदानों को बदल दो, मैं तुमसे प्रार्थना कर रहा हूँ और अयोध्या के आनन्द का फिर प्रणयन कर रहा हूँ। आज मैं धीरे-धीरे तुमसे अनुरोध कर रहा हूँ, अपनी निन्दा कर-करके अपना ही निरोध कर रहा हूँ और चिल्ला-चिल्ला कर विधाता का विरोध कर रहा हूँ, अपने विरुद को भी लज्जित कर रहा हूँ। श्रीराम का वनवास मत माँगो। कोसल राज्य के वैभव का विनाश मत करो! हे कैकेयी **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम को अपने भवन में रख लो, मैं तुमसे सैकड़ों बार यही याचना कर रहा हूँ।

गीत संख्या-२३

शृणु शृणु कैकयि विनयमकामम्।
मा मा प्रहिणु वनं मम रामम्।।
मा योजय करिणा जलजातं मा कुरु कमलकुले हिमपातम्।
मा विरमय मधुतश्चारामं मा मा प्रहिणु वनं मम रामम् ।१।।
मा मा ज्वालय मनसिजवाटिं मा मा मालय कटुविषताटिम्।

मा स्थापय पुरी विपल्ललामं मा मा प्रहिणु वनं मम रामम्।।२।।
मानिनि मुधा मानमातनुषे हठतो भर्तुर्गिरं न मनुषे।
मा कुरु परिजनसौख्यविरामं मा मा प्रहिणु वनं मम रामम्।।३।।
पश्य प्रिये परिणतपरिणामं मन्मा दूरय नीरदश्यामम्।
मानय गिरिधरमनोऽभिरामं मा मा प्रहिणु वनं मम रामम्।।४।।

भौमी- महाराज दशरथ फिर कह रहे हैं–हे कैकेयी! मेरी निश्छल विनय सुनो, मेरे श्रीराम को वनवास मत भेजो। कैकेयी! कमल को हाथी से मत मिलाओ और कोमल वन पर तुषारपात मत करो और मधु से उद्यान को सूना मत करो, मेरे श्रीराम को वन मत भेजो। अरे! काम के बगीचे को मत जलाओ और भयंकर विष वाटिका को प्रोत्साहित मत करो। इस अयोध्या में विपत्ति के रत्नों को मत स्थापित करो। हे मानिनी! तुम अपने झूठे मान का विस्तार कर रही हो और हठ धर्म के कारण अपने पति की भी बात नहीं मान रही हो। अपने परिवार के सुख का अभाव मत करो। हे कैकेयी! होने वाले परिणाम को देखो। नीलकमलवर्णी श्रीराम को मुझसे दूर मत करो और **गिरिधर** कवि के मन को आनन्द देने वाले श्रीराम का सम्मान करो, उन्हें वन मत भेजो।

गीत संख्या-२४

मा निर्वासय रामं हे केकयकुलकन्ये।
त्रिभुवनललितललामं हे त्यज हठं जघन्ये।।
शिरिषकुसुमसुकुमारोऽयं मम राजकिशोरः।
विपिने स्यात् किमुदारोऽयं श्रीमुखेन्दुचकोरः।
इन्दीवरदलश्यामं हे गुणमहितवदान्ये।।१।।
किमुत सहेत विपत्तिं हे कौसल्याकुमारः।
गहनदहनहिमपत्तिं हे मम लोचनतारः।
तनुरुचिजितशतकामं हे दृष्ट्वा व्यथिष्यन्ते चान्ये।।२।।
सहिष्यते किमुत पिपासां हे मधुराधरकिसलः।
करिष्यति कथमु जिहासां हे सुखस्यापि कष्टाकुशलः।
नवमरकतमणिश्यामं हे भयविपिनेऽप्यधन्ये।।३।।
त्यज हठं भयपरिणामं हे श्रितविरहदुरन्तम्।
भज गीतसीताभिरामं हे त्रिजगति विलसन्तम्।
करिष्यति कृपामभिरामं हे कविगिरिधरेऽनन्ये।।४।।

भौमी- हे कैकयराजकन्ये! श्रीराम को देश निकाला मत दो। तीनों लोकों के सुन्दररत्न प्रभु राम को निर्वासित मत करो। अरे अधम स्वभाववाली कैकेयी! अपना हठ छोड़ दो। मेरे राजकिशोर उदार श्रीराम शिरीष के फूल के समान सुकुमार हैं, ऐसे सीतामुख चन्द्रचकोर श्रीराम वन में कैसे रहेंगे। अपने गुणों से

वदान्यों को भी सम्मानित करने वाली कैकेयी नीलकमलवर्णी रामजी को मत निर्वासित करो। कौसल्या के कुमार, मेरे नयनों के तारे श्रीराम, घनघोर वनाग्नि हिमपात जैसी वन की विपत्ति को कैसे सहेंगे? अतः अपनी शोभा से काम को जीतने वाले श्रीराम को मत निर्वासित करो क्योंकि उन्हें निर्वासित देखकर और लोग भी दुःखी हो जायेंगे। कोमल पल्लव के समान अधर वाले श्रीराम प्यास कैसे सहेंगे और कष्ट सहने में अकुशल मेरे राघव राजकीय सुख के त्याग की इच्छा कैसे करेंगे? इसलिये नवीन मरकत मणि के समान श्यामल श्रीराम को अधन्य इस निर्जन दण्डक वन में मत निर्वासित करो। हे कैकेयी! परिणाम में भय देने वाला दुरन्त विरह से युक्त यह हठ छोड़ दो और तीनों लोकों में सुशोभित हो रहे गीतसीताभिराम महाकाव्य के प्रतिपाद्य श्रीराम को भजो, वे तो अनन्य **गिरिधर** कवि पर भी कृपा से अभिराम अनुग्रह करेंगे ही।

गीत संख्या-२५

अपरं वरं वरय साम्राज्ञि।
सत्कल्याणगुणगृहं रामं गृहे रमय हे राज्ञि।।१।।
त्वमपि प्रशंससि सदा राघवं कुरुषेऽनुपमं स्नेहम्।
अहो केन हेतुना कोपिता तस्य जिहीर्षसि गेहम्।।२।।
श्रुत्वा त्वयि थूत्करिष्यते तापत्रयसङ्कुललोकः।
रामे वनं व्राजिते जगदपि निमज्जयिष्यति शोकः।।३।।
शशिनं पृथङ्निशेव विनासून् तनुरिव हरिं पुरीयम्।
रहिता विहिता विहता भास्यति विकृता विना तुरीयम्।।४।।
त्वां प्रणम्य शिरसा याचे कैकेयि प्रसीद प्रसादय।
गिरिधरप्रभुं वनं हित्वा मा मां परिजनं विषादय।।५।।

भौमी– हे साम्राज्ञी इसे छोड़कर दूसरा वरदान माँग लो। हे रानी! श्रेष्ठ कल्याण गुणों के भवन श्रीराम को कनक भवन में ही रमने दो। तुम भी तो श्रीराम की निरन्तर प्रशंसा करती हो और उन पर निरन्तर स्नेह भी करती हो। अहो! आज किस कारण से कुपित होकर मेरे राघव का घर लूट रही हो। यह कुकृत्य सुनकर तीनों तापों से व्याकुल यह लोक तुम पर थूकेगा, श्रीराम के वन चले जाने पर शोक सारे संसार को डूबो देगा। जिस प्रकार चन्द्रमा के बिना रात्रि, प्राण के बिना शरीर, उसी प्रकार तुरीयतत्व श्रीहरि के बिना यह पुरी शोभारहित निष्प्राण हुई दिखेगी। हे कैकेयी! तुम्हें सिर से प्रणाम करके मैं भीख माँग रहा हूँ तुम प्रसन्न हो जाओ और मुझे भी प्रसन्न करो। **गिरिधर** के प्रभु श्रीराम को वनवास देकर मुझे और परिवार को विषाद मग्न मत करो।

गीत संख्या-२६

अश्वपतिसुते किमपि नावैसि।
बलिपशुरिव नैकटिकदुःखमपि भ्रमविवशा नहि वेत्सि।।१।।
दयितं नैव विहास्यति सीता न खलु लक्ष्मणो रामम्।
त्यक्ष्याम्यसून् दशरथोऽपश्यन् नूतनजलदश्यामम्।।२।।

भरतो विना राघवं राज्यं नो भोक्ष्यते कदाचित्।
शत्रुघ्नोऽपि पृथक् तेभ्यो नासून् रोक्ष्यते कदाचित्।।३।।
व्यसनाद्रक्षकुलं कुलचन्दिनि न प्रव्राजय रामम्।
जीवय मां प्रमत्तमपि मत्तस्त्याजे न चाभिरामम्।।४।।
जगदन्यथा कलङ्कपङ्किलां वक्ष्यति तवापकीर्तिम्।
गिरिधरप्रभुमन्तरेण मय्यपि रासि दुरन्तां जूर्तिम्।।५।।

भौमी- हे अश्वपति की पुत्री कैकेयी! तुम नहीं समझ रही हो। तुम भ्रम के विवश होने के कारण बलि पशु की भाँति निकटवर्ती दु:ख को भी नहीं समझ पा रही हो। सीताजी अपने पति को नहीं छोड़ेंगी और लक्ष्मण भी श्रीराम को नहीं छोड़ेंगे। मैं भी नवीन मेघ श्याम श्रीराम को न देखता हुआ प्राणों को भी छोड़ दूँगा। भरत राघवजी के बिना राज्य का उपभोग नहीं करेंगे और शत्रुघ्न भी इन सबसे अलग होकर अपने प्राणों को कभी नहीं स्वीकारेंगे। हे कुल को शीतल करने वाली कैकेयी! इसे कुल को विपत्ति से बचा लो, श्रीराम को वनवास मत दो और मुझ श्रीराम वियोग में पागल दशरथ को भी जिला लो। मुझसे श्रीराम को मत छुड़वावो नहीं तो यह संसार तुम्हारी कलंक पंकिलाकीर्ति का वर्णन करता रहेगा और गिरिधर कवि के प्रभु श्रीराम के बिना मुझमें भी विषम ज्वर डाल दोगी।

गीत संख्या-२७

दुरन्तां दुर्मतिं त्यक्त्वा स्वमाश्वासय भरतमातः।
अनन्तामघमतिं हित्वा निजं श्वासय भरतमातः।।
प्रभोर्वनवाससङ्कल्पं विहायान्यं कथय कल्पम्।
अनल्पेनांहसा वंशं न सन्नाशय भरतमातः।।१।।
व्रजन्तं वनपथे रामं जना दृष्ट्वा व्यथिष्यन्ते।
कुटुम्बं लोकनिन्दातो न चोच्छ्वासय भरतमातः।।२।।
गते रामे मृते मयि भो भवेर्विधवा पतिघ्नी त्वम्।
महापापं ह्ययोध्यायां न चावासय भरतमातः।।३।।
निवर्तय दुर्मतिं भद्रे प्रवर्तय शं जगद्भद्रे।
प्रभुं गिरिधरकवेः पुरतो न निर्वासय भरतमातः।।४।।

भौमी- हे भरत की माँ कैकेयी! अपनी दुरन्त दुर्बुद्धि छोड़कर समास्वस्त हो जाओ। जिसका अन्त नहीं है उस अभिमान को छोड़कर तुम स्वयं को ही आश्वस्त कर लो। हे भरत की मां! प्रभु श्रीराम के वनवास का संकल्प छोड़कर कोई दूसरा कल्प कहो। बहुत बड़े अपराध से यह वंश मत नष्ट करो। श्रीराम को वनपथ में जाते देख लोग बहुत व्यथित होंगे। इसलिए इस लोक निन्दा से रघुवंश को अस्त व्यस्त मत करो। श्रीराम के चले जाने पर मुझ दशरथ के मर जाने पर तुम विधवा और पति की हत्यारिन बनोगी। इसलिए हे भरत की माँ! अयोध्या में महापाप को मत स्थापित करो। हे कल्याणी! अपनी दुर्बुद्धि दूर करो और जगत में कल्याण का संचार करो। **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम को निर्वासित मत करो।

सन्दर्भश्लोकौ

इति बहुविलपन्तं भूमिपांशौ लुठन्तं
निजचरणरजोभिर्जुष्टमूर्धानमित्वा ।
पतिमपि च पतिघ्नी नो जहौ निश्चयं स्वं
शतकुलिशकठोरा को न नष्टः कुसङ्गात्।।१।।
अथ सुमन्त्रगिरा रघुनन्दनः
समधिगम्य समाधिमिवास्थितम्।
स्वपितरं मरणारणमातुरं
भरतमातरमाह हरिर्गिरम्।।२।।

भौमी- इस प्रकार बहुत प्रकार से विलाप करते हुए पृथ्वी की धूलि में लोटते हुए अपने अर्थात् कैकेयी के ही चरणों की धूलियों से मस्तक को धूसरित करते हुए ऐसे अपने पति दशरथ को देखकर भी करोड़ों वज्रों से भी कठोर कैकेई ने अपना निश्चय नहीं छोड़ा क्योंकि कुसंग से कौन नष्ट नहीं हो जाता? इसके पश्चात् सुमंत्र के वाणी से अपने बुलाये जाने का संकेत पाकर वहाँ पहुँचकर पिताश्री को समाधि में स्थित की भाँति निश्चेष्ट आसन्नमरण और आतुर देखकर रघुवंश को आनन्दित करने वाले श्रीहरि भरत जी की माता कैकेई जी से यह वाणी बोले।

गीत संख्या-२८

रामो गायति-

जननि वद कथमिह पिता विवर्णः।
शुष्यन्मुखो विकलकरणः किं व्यथा दग्धतमदेहसुवर्णः।।१।।
अरुन्तुदालानोऽनिर्वाणो म्लानमुखाम्बुरुहोऽतिग्लानः।
भग्नव्रत इव न कृतस्नानो पक्षीवार्तो विनिहतपर्णः।।२।।
पाशबद्ध इव जरन्मतङ्गो वधिकविवश इव विकलविहङ्गः।
नादमूढ इव कुगतकुरङ्गो विगलितरङ्गो यथाधमर्णः।।३।।
वातमूढनौरिव जलयात्रो पङ्कगूढगौरिव गतगात्रः।
राहुरूढग्लौरिव भयमात्रो गिरिधरेशगिरि संस्थितकर्णः।।४।।

भौमी- श्रीराम माँ से पूछ रहे हैं- हे मझली माँ! मेरे पिताश्री यहाँ इतने विवर्ण क्यों हो गए हैं? उनका मुख सूख गया है, उनकी सभी इंद्रियाँ व्याकुल हो गई हैं। इस व्यथा की अग्नि से पिताजी का स्वर्ण जैसा शरीर जल गया है। ये तो उस हाथी की भाँति व्याकुल हैं, जिसका बन्धन उसके मर्म को काट रहा है। जो चाहता हुआ भी शीतल जल में डूबकर नहीं नहा पाया है। इनका मुख उसी प्रकार मलिन और ग्लानिपूर्ण है, जिस व्रती का स्नान से पूर्व ही व्रत टूट गया हो। पिताजी पंख कटे हुए पक्षी की भाँति अत्यंत आर्त्त क्यों हैं? पाश में बँधे हुए बूढ़े हाथी अथवा बूढ़े कबूतर पक्षी की भाँति, बहेलिए के वश में आए हुए निरीह तोता पक्षी की भाँति और

नाद से मोहित हरिण की भाँति तथा आनंद से रहित ऋणदाता के प्रताड़न से व्याकुल अधमर्ण अर्थात् ऋणी की भाँति पिताजी इतने व्याकुल क्यों हैं? जिसकी नौका समुद्री चक्रवात में फँस गई हो ऐसे जलयात्री की भाँति और कीचड़ में फँसे हुए कँपते शरीर वाले वृद्ध बैल की भाँति और राहु से ग्रस्त भयभीत चंद्रमा की भाँति **गिरिधर** कवि के ईश्वर मुझ राम की वाणी में कान लगाए हुए मेरे पिता की ऐसी स्थिति क्यों है?

विशेष– यह गीत त्रिताल सोलह मात्राओं में निबद्ध है और इसमें मालोपमा का प्रयोग हुआ है।

गीत संख्या–२९

कैकयी प्राह श्रीरामं प्रति–

राम श्रृणु निजपितृविपन्निदानम्।
निगदाम्येषा विगतक्लेशा त्वामिव सञ्जानानम्।।१।।
त्वत्पित्रा प्रेरिता ह्ययाचे युगलवपुर्वरदानम्।
भरतराज्यमपरेण चतुर्दशसमा भवद्वनयानम्।।२।।
तच्छ्रुत्वा व्याकुलं समीक्ष्ये मनुजपतिमिवाज्ञानम्।
यदि शक्नोषि तदा व्रज विपिनं हर निजततदुर्यानम्।।३।।
तावन्न स्नास्यति न भोक्ष्यते यावन्न ते प्रयाणम्।
गच्छ गच्छ नृपवरं रक्ष रघुवर कुरु वचनप्रमाणम्।।४।।
निर्लज्जा गिरिधरस्वामिनं प्रतिजल्पति कटुवाणीम्।
जिघांसयेव नरपते राज्ञी ते जयतीव कृपाणीम्।।५।।

भौमी– कैकेयी श्रीराम के प्रति कह रही हैं–हे श्रीराम! अपने पिता की विपत्ति का कारण सुनिये। मैं यह कैकेयी क्लेशरहित होकर सब कुछ जानते हुए से आपके प्रति स्पष्ट कह रही हूँ। आपके पिताश्री से प्रेरित होकर आपके पिताश्री से मैंने दो वरदान माँगे एक से भरत को राज्य और दूसरे से आपको चौदह वर्षों का वनगमन। उसे सुनकर महाराज को अज्ञानी की भाँति व्याकुल हुआ देख रही हूँ। यदि तुम कर सकते हो तो वन को जाओ और पिता की दुर्गति हर लो। जब तक तुम वन नहीं जाओगे, तब तक तुम्हारे पिता न स्नान करेंगे, न भोजन करेंगे। इसीलिए हे रघुवर! आप वन जाइये, वन जाइये। महाराज के वर की रक्षा कीजिए। इस प्रकार **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम के प्रति कैकेयी निर्लज्ज होकर यह वाणी बोल रही हैं। मानों महाराज का वध करने की इच्छा से रानी कैकेयी अपनी कटार को ही रगड़कर नोकीली बना रही हैं।

गीत संख्या–३०

श्रीरामः कैकयीं प्रति–

मातरधुनैव वनं प्रतियामि।
यावज्जननीं नमस्यामि सीतां चैवानुनयामि।।१।।
पितृप्रसादमूलं स्वीकृतं मे सत्यं ते प्रतिजाने।
पितृसुखसुखी तादृशो दुःखी वच्मि जहन् मदमाने।।२।।

हेतोः पितुः पिबेयं गरलं वह्निं च प्रविशेयम्।
मज्जेयं सागरं सदयितो विपिनं किं न विशेयम्।।३।।
रामो द्विर्न भाषते भद्रे त्वमपि विश्वसिहि सत्यम्।
गिरिधरप्रभुरवति वनं राज्यं राजतु भरते नित्यम्।।४।।

भौमी- अब श्रीराम कैकेयी के प्रति कह रहे हैं- हे माँ! मैं अभी वन को जा रहा हूँ। तब तक माताजी को नमस्कार कर लूँ और सीताजी को अनुनय करके मना लूँ। मैंने पिता की प्रसन्नता को ही आश्रय रूप में स्वीकार कर लिया है। आपसे सत्य प्रतिज्ञा करके कहता हूँ मैं पिता के सुख में सुखी और उनके दुःख में दुःखी हूँ। यह बात मद, मान छोड़कर कह रहा हूँ। मैं पिता के लिए विष पी सकता हूँ, अग्नि में प्रवेश कर सकता हूँ, पत्नी सीता के सहित सागर में डूब सकता हूँ तो फिर वन क्यों नहीं जा सकता? हे भद्रे! राम दो बार किसी बात को नहीं कहता अर्थात जो कहता हूँ वह करता हूँ। आप सत्य विश्वास कीजिए। मुझसे अभिन्न **गिरिधर** कवि का स्वामी अब वन को जा रहा है। यह राज्य भरत के पास नित्य ही सुशोभित रहे।

गीत संख्या-३१

रामोऽभिषेचनिकपरिकरं प्रति-

क्षमध्वं रामदौरात्म्यं विपिनमद्यैव गच्छामः।
न मन्ध्वं रामदौरात्म्यं पितुर्वचनं च रक्ष्यामः।।
चतुर्दशवर्षवनवासं विधायासुरनिकरनाशम्।
त्रयो वै वित्रयो तृष्णास्तिसृभ्यस्तिसृर्यच्छामः।।१।।
समेभ्यः सुलभतां याता यशो जीवितजनव्राताः।
किरातानां सुहृद्भूता सुरान् यज्ञेन यक्ष्यामः।।२।।
निहत्याजौ सतां शत्रून्निशितबाणैर्गलज्जत्रून्।
निरातङ्कां गताशङ्कां भुवं भौजेन भोक्ष्यामः।।३।।
दशाननमौलिपङ्केरुड्वने सञ्चार्यशरभृङ्गान्।
सुकविगिरिधरगिरा गीताः पुनः पुष्पकमारोक्ष्यामः।।४।।

भौमी- श्रीराम अभिषेक के उपकरणों की प्रदक्षिणा करके गा रहे हैं- "हे अभिषेक के उपकरणों! तीर्थ खल, मृगचर्म, सत्यमृतिका आदि मुझ राम की धृष्टता क्षमा करें, हम आज ही वन को जा रहे हैं। तुम लोग मेरी मनमानी मत मानो हम पिताश्री की वाणी की रक्षा कर रहे हैं। हम चौदह वर्षों का वनवास पूर्ण करके राक्षसों का नाश करके, काम, क्रोध, लोभ से रहित हम तीनों राम, लक्ष्मण, सीता तीनों लोकों भूर्भुवः स्वः को तीन विधाएँ ऋग, यजु, साम प्रदान करेंगे। हम तीनों सबके लिए सुलभ होंगे और अपने यश से संपूर्ण लोकों को जीवित करेंगे। किरातों के मित्र बनेंगे और देवताओं का यज्ञ से यजन करेंगे। हे उपकरणों! युद्ध में अपने बाणों से नष्ट अस्थियों वाले सज्जनों के शत्रु राक्षसों को मारकर और पृथ्वी को आतंकवाद और भय से रहित करके अपने भुजबल से उसका पालन करेंगे। हे उपकरणों! रावण के मस्तकरूप कमलवन में बाणरूप भ्रमरों को संचारित करके सुकवियों एवं **गिरिधर** कवि की वाणी द्वारा गाए हुए हम तीनों फिर पुष्पकारूढ़ होकर

अयोध्या आ जाएँगे।

गीत संख्या-३२

श्रीरामः मातरं प्रति–

वस्तुं वने वल्काम्बरं अयि अम्ब अनुजानीहि माम्।
यातुं चतुर्दशवत्सरं अयि अम्ब अनुजानीहि माम्।।
तातेन वनसाम्राज्यकं शुचिचेतसा प्रत्तं हि मे।
अत्तुं फलं सधनुःशरं अयि अम्ब अनुजानीहि माम्।।१।।
आयामि पञ्चदशेऽब्दके सत्यं ब्रवीमि तवाग्रतः।
गन्तुं मनोहरगिरिवरं अयि अम्ब अनुजानीहि माम्।।२।।
यास्यन्ति सुखं समाश्चतुर्दशमाम्ब हृदये दूयताम्।
द्रष्टुं वनं श्रितमुनिवरं अयि अम्ब अनुजानीहि माम्।।३।।
आतङ्कवादनिराकृतं भारतं भूषयितुं भुवा।
कर्तुं रणं हतनिशिचरं अयि अम्ब अनुजानीहि माम्।।४।।
सिंहस्य किं गृहपिञ्जरे गर्जतु स काननगह्वरे।
भोक्तुं क्षणं नतगिरिधरं अयि अम्ब अनुजानीहि माम्।।५।।

भौमी– अब श्रीराम माँ कौसल्या से कहते हैं– हे माँ! वन में निवास करने के लिए वल्कलवस्त्रधारी मुझ राम को अनुज्ञा दीजिए। मुझे चौदह वर्षों के लिए वन जाने की आज्ञा दीजिए। पवित्र चित्त वाले पिताश्री ने मुझे वन का साम्राज्य दिया है। अब तो फल खाने के लिए धनुर्बाणधारी मुझ राम को आप अनुज्ञा दीजिए। मैं पंद्रहवें वर्ष लौट आऊँगा। आपके समक्ष सत्य कह रहा हूँ। हे माँ! मनोहर पर्वतों वाले वन में जाने के लिए आप मुझे अनुज्ञा दीजिए। मेरे चौदह वर्ष सुखपूर्वक बीत जाएँगे। आप हृदय में दुःखी मत होइये। मुनिजनों से युक्त वन को देखने के लिए आप मुझे अनुमति दीजिए। आतंकवाद से रहित भारत को सत्ता से सुशोभित करने के लिए जिसमें राक्षसों का वध हो ऐसा युद्ध करने के लिए भी आप मुझे अनुमति दें। हे माँ! भवन के पिंजरे में सिंह का क्या प्रयोजन? वह तो गंभीर वन की गुफा में गर्जन करे। इसलिए **गिरिधर** कवि के नमस्कार के विषय राक्षस संहाररूप महोत्सव को भोगने के लिए, उसका आनंद लेने के लिए माँ आप मुझे अनुमति दें।

गीत संख्या-३३

माता कौसल्या श्रीराघवं प्रति–

गच्छ राघव सुखं स्वस्ति मङ्गलमुखं रुद्रनेत्राब्दके भूय आगम्यताम्।
तुष्टमारुत्सखं त्वां पुरन्दरसुखं प्राप्य मोदेन प्रकृतिः समागम्यताम्।।
सन्तु मङ्गलयुतास्ते तु विदिशो दिशाः सुप्रभाता ऋता सन्तु सर्वा निशाः।
रक्ष राघव सुखं काननं शं मुखं मातृवाञ्छाब्दके भूय आगम्यताम्।।१।।

देवतास्ते दिशन्त्वीश सन्मङ्गलं ब्राह्मणास्ते दिशन्त्वाशिषा सद्बलं।
वर्धतामुज्ज्वलं ते यशः सम्बलं तातकाङ्क्षाब्दके भूय आगम्यताम्।।२।।
देवमातादितिर्विनताविनताकृतिः देवी चारुन्धती देवहूतीः सती।
घ्नन्तु सर्वाननर्थांश्च पतिदेवता विश्वरक्षाब्दके भूय आगम्यताम्।।३।।
वेदाश्चत्वारो लोका समे सिन्धवः कुञ्जरास्यः षडास्यश्च दिग्बन्धवः।
गिरिधरेशाय सर्वे दिशन्त्वाशिषः लोकशिक्षाब्दके भूय आगम्यताम्।।४।।

भौमी- अब कौसल्या माता श्रीराघव से कहती हैं- हे राघव! आप सुख से पधारिये। आपका कल्याण और मंगल हो। आप रुद्रनेत्र अर्थात् शिव के नेत्र के समान संख्या वाले पंद्रहवें वर्ष के प्रथम दिन ही पुनः श्रीअयोध्या पधार आएँ। वायु की सखा अग्नि को संतुष्ट किए हुए और इंद्र को सुखी किए हुए आपको पाकर प्रजा फिर आनंद से भर जाये। आपकी दिशाएँ और विदिशाएँ मंगलमयी हों। आपकी सभी रात्रियाँ सुन्दर प्रभातों वाली और सत्य हों। हे राघव आप सन्त प्रधान वन की रक्षा कीजिए और माता कैकेयी के इच्छापूर्तिवश अर्थात् पंद्रहवें वर्ष फिर आ जाइये। आपको देवता श्रेष्ठ मंगल प्रदान करें और ब्राह्मण अपने आशीर्वाद से आपको संबल दें। और आपका उज्ज्वल यश रूप संबल बढ़ता रहे। पिताश्री की आकांक्षा पूर्तिवाले अर्थात् पंद्रहवें वर्ष आप फिर आ जाएँ। हे वत्स! देवमाता अदिति, विनम्र आकार वाली विनता, देवी अरुंधती और सती देवहूति, ये सभी पतिव्रताएँ तुम्हारे अनर्थों को समाप्त कर दें और विश्वरक्षा वर्ष अर्थात् पंद्रहवें वर्ष आप फिर अयोध्या लौट आएँ। चारों वेद सभी चौदह लोक, सात महासागर, गणपति और कार्तिकेय तथा दशों दिक्पाल ये सभी **गिरिधर** कवि के स्वामी आप श्रीराम को आशीर्वाद दें और आप लोकशिक्षा के लिए निर्धारित पंद्रहवें वर्ष के प्रथम दिन ही फिर से अवध पधार आएँ।

गीत संख्या-३४

लक्ष्मणः श्रीरामं प्रति-

राघव मां नय वनं स्वेन साकं विधास्ये सेवामहम्।।
यत्र यत्र जानक्या समं भवान् रंस्यते तत्र तत्र मया भवद्भ्यां हि समं गंस्यते।
ईहे विना त्वां न भुवं नैव नाकं विधास्ये सेवामहम्।।१।।
यावन्तो जगत्यां जैत्र जाग्रति सम्बन्धाः तावन्तो मदीयास्त्वया विहितानुबन्धाः।
ऋते त्वन्न कोऽपि क्वापि हितोऽस्माकं विधास्ये सेवामहम्।।२।।
नैव माता नैव तातो नो सखा न बन्धुः त्वमेवासि लक्ष्मणस्य सर्वं कृपासिन्धुः।
त्वत्तो हि रुक् सर्वं नरकपरिपाकं विधास्ये सेवामहम्।।३।।
लक्ष्मणो ब्रवीति सत्यं प्रभुणा प्रतीयतां गिरिधरेण सार्धमेष जनो वनं नीयताम्।
भोक्ष्ये सीतया च त्वया साकं शाकं विधास्ये सेवामहम्।।४।।

भौमी- लक्ष्मण श्रीरामजी को संबोधित करके कहते हैं- हे राघव! आप मुझे अपने साथ वन ले चलिये। मैं आपकी सेवा करूँगा। आप सीताजी के साथ जहाँ-जहाँ रमेंगे, वहाँ-वहाँ मैं आप दोनों के साथ जाऊँगा। आपके बिना मैं पृथ्वी और स्वर्ग कुछ भी नहीं चाहता। आपकी मैं सेवा करूँगा। हे विजयशील प्रभु!

इस संसार में जितने भी सम्बन्ध जागरुक हैं, उन मेरे सभी संबंधों का आपके ही साथ अनुबंध है। आपके बिना हमारा कहीं भी, कोई भी हितैषी नहीं है। हे प्रभु! मेरी माता, पिता, सखा, भ्राता कोई नहीं है। लक्ष्मण के तो कृपासिंधु आप ही सब कुछ हैं। आपके बिना मेरा सब कुछ नरक का परिणाम फल है। लक्ष्मण सत्य कह रहा है। हे प्रभु! आप विश्वास कीजिए और **गिरिधर** कवि के साथ इस सेवक लक्ष्मण को भी वन ले चलिये। आप और सीता माता के साथ मैं भी शाकाहार करूँगा और आपकी सेवा करूँगा।

गीत संख्या-३५

सुमित्रा प्राह लक्ष्मणं प्रति-

याहि लक्ष्मण रामसीताभ्यां वनं सह याहि।
वर्षपञ्चदशे वनात् ताभ्यां सहैवायाहि।।
मातरं जानकीं पितरं राममेव विधाय।
वनं मत्वा गृहं मन्ममतां विरज्य विहाय।।१।।
सदा सीतारामचरणसरोजकोशमुपोष्य।
विजितषड्वर्गो न नः स्मर स्वप्नकेऽपि प्रोष्य।।२।।
उर्मिलायां मयि समातरि स्वे हरौ समुदस्य।
रागरोषेर्ष्यामदं मोहं भजस्व निरस्य।।३।।
प्राणप्रियतममयौ सीताराघवौ संसेव्य।
सदा गिरिधरहृत्कुटीरे समं ताभ्यां दीव्य।।४।।

भौमी- अब सुमित्राजी लक्ष्मणजी से कह रही हैं- हे लक्ष्मण! श्रीरामसीता के साथ वन जाओ और पंद्रहवें वर्ष उन्हीं युगल सरकार के साथ फिर आ जाओ। हे लक्ष्मण! सीताजी को माँ मानकर, श्रीराम को पिता मानकर, वन को अयोध्या समझकर, संसार से विरक्त होकर, मेरी ममता का त्याग करके वन जाओ। निरंतर श्रीसीतारामजी के चरणकमल के कोश के पास रहकर छहों विकारों को जीतकर, हमसे दूर रहकर भी हमें स्वप्न में भी स्मरण मत करना। उर्मिला में और मुझमें राग छोड़कर, कैकेयी के प्रति रोष छोड़कर, संतों के प्रति ईर्ष्या छोड़कर, स्वयं का मद छोड़कर और भगवान राम के विषय में संभावित मोह छोड़कर भगवान का भजन करो। हे लक्ष्मण! प्राणप्रियतम श्रीसीताराघव जी की सेवा करके गिरिधर कवि के हृदय कुटीर में उन दोनों सीतारामजी के साथ तुम निरंतर विहार करते रहो।

गीत संख्या-३६

श्रीरामः दशरथं प्रति-

पितर्नो मुदितमनुज्ञां देहि।
सीतायै लक्ष्मणायापि मे शुभाशिषं च विधेहि।।१।।
स्थित्वा वने चतुर्दशवर्षं पुनरागन्तुं देवाः।
प्राप्यानुज्ञामेत्य समा वै करिष्यामहे सेवाः।।२।।

इत्युक्त्वा नत्वा प्ररुदन्तं पितरमगच्छद्रामः।
सीतालक्ष्मणसध्र्यङ् सम्यङ्मात्रे कृतप्रणामः।।३।।
अग्रे रामस्तदनुलक्ष्मणो द्वयोर्मध्यगा सीता।
चलिता नो चलिता निश्चयतः प्रीता प्रियप्रतीता।।४।।
मुनिपटतूणधनुःशरधारी गीतसप्तदशसर्गः।
गिरिधरगीतयशा विपिनमगाच्चरणविलसदपवर्गः।।५।।

भौमी- अब श्रीराम महाराज दशरथ के प्रति कह रहे हैं– हे पिताश्री! प्रसन्न होकर हम तीनों को वन जाने की अनुमति दीजिए। सीता को, लक्ष्मण को और मुझे भी आशीर्वाद का विधान कीजिए। हे देव! चौदह वर्ष तक वन में रहकर फिर आपकी आज्ञा से अयोध्या लौटकर हम आपकी सभी सेवाएँ करेंगे। इस प्रकार कहकर रोते हुए पिताश्री को प्रणाम करके कैकेयी अम्बा को सम्यक् प्रणाम करके श्रीसीता, लक्ष्मण के साथ श्रीराम वन को पधार गए। आगे–आगे श्रीराम चल रहे हैं, उनके पीछे लक्ष्मण जी, इन दोनों के बीच में चलती हुई प्रसन्न प्रिय श्रीराम की विश्वासपात्र सीता जी वन की ओर चलती हुई भी अपने निश्चय से चलायमान नहीं हो रही हैं। इस प्रकार वल्कल वस्त्र तरकश धनुर्बाण धारण किए हुए गीतरामायण के सत्रहवें सर्ग में भली–भाँति गीतों का विषय बने हुए, अपने चरणों में ही मोक्ष को सुशोभित करने वाले गिरिधर कवि के द्वारा जिनका यश गाया गया है ऐसे भगवान राम वन के लिए प्रस्थान कर गए।

सन्दर्भश्लोकः

इत्थं सीतालक्ष्मणाभ्यां समेतः
स्नातो यातः पौरनेत्राब्जवार्भिः।
दण्डं दित्सन्दण्डकं दण्ड्यदृग्भ्यः
श्यामो रामो गीतसीताभिरामः।।१।।

भौमी- इस प्रकार नगर निवासियों के अश्रुजल से स्नान किए हुए गीत सीताभिराम महाकाव्य के प्रतिपाद्य श्यामवर्ण भगवान राम दण्डनीय नेत्रों वाले राक्षसों को दण्ड देने की इच्छा से सीताजी और लक्ष्मण जी के साथ दण्डक वन के लिए प्रस्थान किये।

इति
श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरमहाकविजगद्गुरुरामानन्दाचार्यस्वामिरामभद्राचार्यगिरिधरकविप्रणीते गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये अयोध्याकाण्डे गीतराघववनवासो नाम षष्ठः सर्गः।

इस प्रकार श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर महाकवि जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य गिरिधरकवि द्वारा विरचित गीतरामायण 'गीतसीताभिराम' नामक संस्कृत गीतमहाकाव्य के अयोध्याकाण्ड में गीतराघववनवास नामक षष्ठ सर्ग सम्पन्न हुआ।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

।।श्रीः।।

।। नमो राघवाय।।

गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये अयोध्याकाण्डे

गीतपथिकाभिरामो नाम

सप्तमः सर्गः

गीत संख्या-१

जय जय सीतावर लक्ष्मणकरुणाकर,
जय दशरथशुभशस्यपयोधर।
राघव कतृतृणितनिजराज्य जय जय राम हरे।।१।।
त्यजसि समातृगिरा स्वकनकभवभवनम्,
व्रजसि विपिनमथ सदवनमवनम्।
राघव धृतमुनिवरवेष जय जय राम हरे।।२।।
सह कुरुषे स्वनुजं लक्ष्मणमथ सीताम् ,
पतिव्रतां प्रियप्रेमप्रतीताम्।
राघव कृतविपिनप्रयाण जय जय राम हरे।।३।।
कलयसि दनुजरुधिरपिशुनं वरबाणम्,
धनुरपि दत्तविमुखनिर्वाणम्।
राघव धृत भटवररूप जय जय राम हरे।।४।।
वितरसि कैवर्तके चरणनवनीरम्,
विरचितजाह्नवीकोटिशरीरम् ।
राघव हृतभार उदार जय जय राम हरे।।५।।
रचयसि चित्रकूट इह पर्णकुटीरम्,
कविगिरिधरहृदि सेवितधीरम्।
राघव श्रितदण्डकवास जय जय राम हरे।।६।।

भौमी– हे सीतावर! हे लक्ष्मण पर करुणा करने वाले, हे राघव! हे दशरथ जी के कल्याणरूप खेती के

बादल! अपने राज्य को तृणवत् छोड़ने वाले! हे हरे! हे श्रीराम! आपकी जय हो, जय हो, जय हो, जय हो। अपनी सौतेली माँ के वचन से आप कनकभवन छोड़ रहे हैं और संतों के रक्षक स्वयं के लिए भ्रमणोपयुक्त वन में पधार रहे हैं। हे मुनिवेशधारी राघव श्रीराम! आपकी जय हो, जय हो। हे राघव! आप अपने साथ में श्रेष्ठ भ्राता लक्ष्मण को और प्रियतम के प्रेम में विस्वस्त धर्मपत्नी सीता को ले रहे हैं। हे वन में प्रवेश करने वाले राम! आपकी जय हो, जय हो। हे वीरवेशधारी श्रीराघव! विमुखों को भी निर्वाण देने वाले और राक्षसों के रक्त के प्यासे श्रेष्ठ बाण और दिव्य धनुष आप धारण करते हैं। हे श्रीराम! आपकी जय हो, जय हो। हे भूमिभारहारी! हे उदार श्रीराघव! आप केवट को वह चरणोदक लुटा रहे हैं जो करोड़ों-करोड़ों गंगाओं को प्रकट करने में समर्थ है। हे श्रीराम! आपकी जय हो, जय हो। हे राघव! हे दण्डकविपिन विहारी! आप श्री चित्रकूट में और **गिरिधर** कवि के हृदय में भी पर्णकुटी का निर्माण करते रहे। हे श्रीराम! आपकी जय हो, जय हो।

गीत संख्या-२

जयति वनपथपथिक रामः।
आप्तकामः पूर्णकामः सुन्दरः सीताभिरामः।।१।।
तृणितकोसलराज्यलक्ष्मीर्लंघितकौशलप्राज्यलक्ष्मीः ।
महितवनसाम्राज्यलक्ष्मीर्लक्ष्मणेडितरुचिललामः ।।२।।
लसितमञ्जुलवन्यवेषः क्षपितसेवकजनक्लेशः।
सन्निहितसीतोर्मिलेशः नीलनीरजघनश्यामः।।३।।
ललितकरतलबाणचापः कोटिकोटिरविप्रतापः।
शिरसि जुष्टजटाकलापः पार्वतीपतिकृतप्रणामः।।४।।
जननिजनकनिदेशकारी पथिकजनतानयनचारी
गहनदण्डकवनविहारी लसति गिरिधरहृदभिरामः।।५।।

भौमी- सभी कामनाओं को प्राप्त किए हुए और जिनकी सभी कामनाएँ पहले से ही पूर्ण हैं ऐसे सीताजी को आनंद देने वाले, सुंदर, वन पथ के पथिक भगवान राम की जय हो रही है। जिन्होंने अयोध्या की राज्यलक्ष्मी को तृण के समान छोड़ दिया तथा जिन्होंने कुशल अवध की धन-धान्य संपत्ति को बहुत ही छोटी मानी और वनसाम्राज्य लक्ष्मी को सम्मान दिया और जिनके सौंदर्यरत्न की लक्ष्मणजी ने भी प्रशंसा की। ऐसे श्रीराम की जय हो रही है। सुंदर वनोचित वेश जिन पर सुशोभित हो रहा है, जिन्होंने सेवक जनों के क्लेश को दूर किया तथा जिन्होंने सीताजी तथा उर्मिलापति लक्ष्मणजी को अपने अत्यंत निकट रखा है, ऐसे नीलकमल और मेघ के समान श्यामल वन पथ के पथिक श्रीराम सबसे उत्कृष्ट हो रहे हैं। हाथ में सुन्दर धनुष-बाण लिये हुये करोड़ों सूर्यों के समान प्रताप वाले, सिर पर सुंदर जटाजूट से सुशोभित एवं पार्वती के पति शिवजी द्वारा प्रणाम के विषय बने हुए पथिक श्रीराम की जय हो। माता-पिता की आज्ञा मानने वाले और पथिकजन के नयनों में भ्रमण करने वाले और घनघोर दंडक वन में विहार करने वाले, **गिरिधर** कवि के हृदय को आनंदित करने वाले भगवान श्रीराम सुशोभित हो रहे हैं और पथिक के रूप में विजयी हो रहे हैं।

गीत संख्या-३

पथिका गायन्ति–

नृपदशरथज्येष्ठकुमारो राघवो मे रोचते।
नवनलिनशिरिषसुकुमारो राघवो मे रोचते।।
शीलसौख्यकरुणागुणसिन्धुर्दीनदयालुः प्रणतजनबन्धुः।
देहविभाजितकोटिकोटिमारो राघवो मे रोचते ।।१।।
मरकतयामुनवनघनश्यामः शोकमोचनो लोचनाभिरामः।
निजभक्तनयनमनोहारो राघवो मे रोचते।।२।।
जननीजनकवचःपालनकर्ता पतितपावनो वैदेहीभर्ता।
खलतामरसतरुणतुषारो राघवो मे रोचते।।३।।
निरावरणनवसरसिजचरणो विचरति विषमविपिनमघहरणः।
हृतकविगिरिधरभवभारो राघवो मे रोचते।।४।।

भौमी- पथिक गा रहे हैं–महाराज दशरथ के ज्येष्ठ राजकुमार राघव मुझे बहुत भाते हैं। नवीनकमल और शिरीष के समान सुकुमार राघवजी मुझे बहुत अच्छे लगते हैं। शील, सुख, करुणा और गुण के महासागर, दीनों पर दया करने वाले, प्रणतजनों के बन्धु, देह की कान्ति से करोड़ों कामों को जीतने वाले राघव मुझे बहुत भाते हैं। मरकत मणि यमुना जल तथा मेघ के समान श्यामल, शोकमोचन, लोकों के नयनों को आनन्द देने वाले, अपने भक्तों के मनों और नेत्रों को चुराने वाले श्रीराघव मुझे बहुत भाते हैं। माता–पिता के आदेश का पालन करने वाले पतितजनों के पावन, सीताजी के पति और खलरूप कमल के लिए ओला स्वरूप श्रीराघव मुझे बहुत भाते हैं। नवीन कमल जैसे चरणों में बिना पदत्राण पहने हुये पापहारी श्रीहरि वन में विचरण कर रहे हैं। वही **गिरिधर** कवि के भवभार को हरने वाले श्रीराघव मुझे बहुत भाते हैं।

गीत संख्या-४

वनदेवता गायन्ति–

हे वल्गुवन तव कण्टककठिनकणाः सीतारामपदं मा तुदन्तु।
वेपनविपिन कूर्पप्रस्तरकुतृणकिणाः पीडास्पदं मा नुदन्तु।।
कैकयिगिरा घोर वनं प्रविशन्तः सीतारामलक्ष्मणा लघवो लसन्तः।
गह्वरगहनदावदारुणदहन विस्फुलिङ्गा व्यथां मा बदन्तु।।१।।
दिव्यौ दशरथराजकुमारौ सह सीतया विहितपदचारौ।
बाष्पोद्गमनग्रीष्मभीषणतपनघर्ममाला भयं मा बदन्तु।।२।।
पद्भ्यां पथीता सुकुमारी सीता प्रीता प्रतीता पतिप्रीतिपुनीता।
तमोगुणवशन दन्दशूकोद्दशनगणाः एकाकिनीं मा विदन्तु।।३।।

पृथ्वी त्यजतु पृथुप्रकृतिं कठोरां शैला जहतु निजनियतिं च घोराम्।
गिरिधरनयनधननीरजनयनकृते नभो यात्रा मङ्गलं नदन्तु।।४।।

भौमी- वन देवियाँ गा रही हैं–हे सुन्दर वन! तुम्हारे काँटों के कठिन कण श्रीसीताराम जी के चरणों को कष्ट न दें। हे कँपाने वाले वन! तुम्हारे कटीले पत्थरों के नोंक और कुत्सित घासें श्रीराम के चरणों में पीड़ा का स्थान न बना लें। कैकेयी के वाक्य से छोटी अवस्था वाले सुशोभित होते हुये श्रीसीताराम–लक्ष्मण वन में प्रवेश कर रहे हैं। गंभीर वन के भयंकर दावाग्नि की लपटें इन किशोरों को कहीं घायल न कर दें। सीताजी के साथ पैदल ही वन प्रयाण करते हुये दिव्य दशरथ राजकुमारों को बाष्प को उगलने वाले ग्रीष्मकालीन भयंकर सूर्य नारायण की धूप की माला कहीं भय से विचलित न कर दे। पतिप्रेम पवित्र परम सन्तुष्ट विश्वस्त सुकुमारी सीताजी आज पैदल ही वन को जा रही हैं। तमोगुण ही जिनकी वस्तु है ऐसे दमन की क्रिया में उद्धत दाँतों वाले सर्पों के गण आप लोग सीताजी को एकाकिनी न समझिए। हे पृथ्वी! आप अपनी कठोर प्रकृति छोड़ दें। हे पर्वतों! आप लोग अपनी घोर प्रकृति समाप्त कर दें। हे आकाश में यात्रा करने वाले देवताओं! **गिरिधर** कवि के नेत्र के धन कमलनयन श्रीराम के लिए मंगलाचरण करो।

गीत संख्या-५

अद्य गृहे गृहे मङ्गलं विधेयं राघवोऽस्माकं वनमाविता।
अद्य वीथ्यां वीथ्यां चतुष्कं विधेयं राघवोऽस्माकं वनमाविता।।
सुरभिगोमयेनापि महीं लेपयेमहि,
वनसुषमया सुरपुरीं ह्लेपयेमहि।
अद्य द्वारि द्वारि तोरणं विधेयं राघवोऽस्माकं वनमाविता।।१।।
आङ्गणेषु तुलसीप्ररोहान् रोपयेमहि,
दर्शं दर्शं सीतारामौ पापं लोपयेमहि।
अद्य वंशैर्मङ्गलवाद्यं विधेयं राघवोऽस्माकं वनमाविता।।२।।
अञ्चलैश्च सीतापतेर्मार्गं मार्जयेमहि,
पक्ष्मभिः पवित्रैश्चापि स्त्रजः सर्जयेमहि।
अद्य खगमृगकुलं च विनेयम् राघवोऽस्माकं वनमाविता।।३।।
वैदिकैर्द्विजेन्द्रैः स्वस्तिवाकं वाचयेमहि,
अविरलभक्तिं प्रभुपार्श्वे याचयेमहि।
अद्य भूरिभूरिभाग्यमनुमेयं राघवोऽस्माकं वनमाविता।।४।।
अङ्के कृत्वा रामलक्ष्मणौ च लालयेमहि,
स्नुषां जानकीं च पक्ष्मपत्रैः पालयेमहि।
अद्य गिरिधरेणापि गीतं गेयं राघवोऽस्माकं वनमाविता।।५।।

भौमी- आज घर–घर में मंगल सजाओ, हमारे राघव शीघ्र ही वन में आने वाले हैं। आज गली–गली में

चौके पूरो हमारे राघव वन में आने वाले हैं। आज कामधेनु के गोबर से हम पृथ्वी को लीपें और वन की शोभा से इन्द्रपुरी को भी लज्जित कर दें। आज हम प्रत्येक द्वार पर तोरण सजायें, क्योंकि हमारे राघव वन में पधारने वाले हैं। हम लोग अपने आँगनों में तुलसी के गमले सजायें और सीतारामजी के दर्शन करके, हम अपने पाप मिटायें। आज बाँस वृक्षों द्वारा मंगल बाजे बजाये जायँ क्योंकि हमारे राघव वन में पधारने वाले हैं। हम अपने आँचलों से सीतापति श्रीराम की खोरी बहारें अर्थात् मार्ग स्वच्छ कर दें और अपने पवित्र पलकों से सुन्दर मालाओं का निर्माण करें। आज पशु–पक्षियों के समूह को भी शिक्षित करना चाहिए क्योंकि हमारे राघव वन में पधारने वाले हैं। हम वैदिक ब्राह्मणों से स्वस्ति वाचन करायें और प्रभु के पास अविरल भक्ति की याचना करें। आज हम अपने बहुत बड़े सौभाग्य का अनुमान करें क्योंकि हमारे श्रीराघव वन में पधारने वाले हैं। हम वन–देवियाँ श्रीरामलक्ष्मण को गोद में लेकर दुलारें और पुत्रवधू सीताजी को पलकों की छाया में पालें, आज **गिरिधर** कवि के द्वारा भी गीत गाया जाय। हमारे श्रीराघव वन में पधारने वाले हैं।

गीत संख्या-६

सीतादेवीं स्नुषां लालयेमहि कृतज्ञा वनदेवताः।।
पश्यामो रघुवरविधुवदनं भवभयकदनममृतरससदनम्।
राम लक्ष्मणौ सुतौ पालयेमहि सुतज्ञा वनदेवताः।।१।।
पुनः पुनः तिस्रो मूर्तीःपरिलोकयेमहि,
शोकाकुलान् स्वात्मनो मुदा विशोकयेमहि।
सिद्धसम्बन्धं सम्भालयेमहि स्मृतिज्ञा वनदेवताः।।२।।
प्रभोः सौख्यसाधनानि सम्पादयेमहि,
भाग्यभाजिलोचनानि प्रतिपादयेमहि।
स्वकं चातकव्रतं निभालयेमहि श्रुतज्ञा वनदेवताः।।३।।
अद्य समा वनदेव्यः सख्यो जाता धन्याः,
अनन्याश्च रामचन्द्रे नितरां वदान्याः।
गिरिधरेशान् न चक्षुश्चालयेमहि स्थितिज्ञा वनदेवताः।।४।।

भौमी- अरे! हम कृतज्ञ वन–देवियाँ पुत्रवधू सीता देवी का पालन करें। पुत्र पालन की विधि जानने वाली हम वन–देवियाँ श्रीराम के मुखचन्द्र को निहारें, जो भवभयहारी और अमृत रस का घर है। हम पुत्र के समान श्रीराम–लक्ष्मण का पालन करें। बार–बार हम इन तीनों मूर्तियों को निहारें और अपनी शोकाकुल आत्माओं को शोकरहित कर लें, स्मृति के तत्व को जानने वाली हम वन–देवियाँ अपने सिद्ध सम्बन्ध को संभाल लें। हम प्रभु के सुख के साधनों का सम्पादन करें और अपने नेत्रों को भाग्य भाजन बनायें। हम शास्त्रज्ञ वन–देवियाँ अपने चातक व्रत का निर्वहण करें। अर्थात् प्रभु के रूपमाधुर्य रूप स्वाति जल का पान करें। हे वनदेवी सखियाँ! आज हम सब धन्य हो गयी हैं। हम श्रीरामचन्द्र में अनन्य होकर दानशीलों की श्रेणी में आ गयी हैं। स्थिति को जानने वाली हम वनदेवियाँ **गिरिधर** कवि के प्रभु श्रीराम से अपने नेत्रों को न हटायें।

गीत संख्या-७

श्रीसीता प्राह श्रीराघवं प्रति-

राघव प्रियतम मम परममधुरतम
विपिनं तदस्ति कियद्दूरि।।
यत्र गन्तुमीहसे कुशलकोसलपते
तृणमिव त्यक्त्वा सुखं भूरि विपिनं तदस्ति कियद्दूरि।।१।।
स्थित्वा तरुतलेऽञ्चलपटेन समीरयेयम्
कुर्वीय पदरजो विदूरि विपिनं तदस्ति कियद्दूरि।।२।।
शिशिरं पीयूषमयं पयः पुनः पाययेय
वीक्षेयाननं लुब्धसूरि विपिनं तदस्ति कियद्दूरि।।३।।
गिरिधरप्रभोः श्रुत्वा वैदेहीवचनं जातम्
जलजनयनमश्रुपूरि विपिनं तदस्ति बहुदूरि।।४।।
अधुना तु वनं बहुदूरं शृणु सुन्दरि
निगदन् निरैक्षत प्रेमभूरि विपिनं तदस्ति बहुदूरि ।।५।।

भौमी- सीताजी श्रीराघव से पूछ रही हैं। हे मेरे मधुरतम प्रियतम राघव! वह वन अभी कितनी दूर है, जहाँ आप कुशल अयोध्यापति सभी सुखों को तृण के समान छोड़कर प्रस्थान करना चाह रहे हैं। मैं वृक्ष के नीचे बैठकर अपने अँचल से आपको बयार करूँ और उसी आँचल के कोने से पोंछ-पोंछकर आपके चरण को धूलि से रहित कर दूँ अर्थात् पग की धूलि झार लूँ। आपको मैं अमृत के समान शीतल जल पिलाऊँ और विद्वानों को भी लोभायमान करने वाले आपके श्रीमुख के दर्शन करूँ। इस प्रकार विदेहनन्दिनी सीताजी के वचन सुनकर **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम के कमलनेत्र अश्रुपूरित हो गये। सुन्दरी! सुनो, अभी तो वन बहुत दूर है, यह कहते-कहते प्रभु ने प्रेमभरी चितवनों से प्रिया जी को निहारा।

विशेष- यह गीत हिमाचल प्रदेश की लोकधुन के ढाल में निबद्ध है उसका बोल है–

"माई री मेरी यै जमुआ दी राहे चम्बा है केतिक दूर।"

गीत संख्या-८

अन्यदपिः-

कियत् दूरं तदस्ति वनं भण भगवन्!
यत्र लक्ष्मणेन मया सार्धं त्वमसि जिगमिषन्।।
यत्र कर्तासि पर्णमयकुटीरं प्रभो
यत्र भर्तासि योगिमुनिधीरं विभो।
यत्र सम्प्रहर्तासीन्द्रसूनुदर्पमुन्मिषन्।।१।।

यत्र कर्तासि निरातङ्कवादं भारतं
यत्र हर्तासि विषमं विषादं भारतम्।
यत्र संस्कर्तासि राष्ट्रनीतिपूगं निर्मिषन्।।२।।
यत्र शमयितासि लोकतापपापं मुहुः
यत्र रमयितासि निजरसिककलापं मुहुः।
यत्र रचयितासि रासनवविलासमाविशन्।।३।।
यत्र द्रष्टासि मुनीशवृन्दवृन्दारकान्
यत्र स्त्रष्टासि विपुलराष्ट्रसंस्कारकान्।
यत्र श्रोतासि गिरिधरस्य गीतमादिशन्।।४।।

भौमी- और भी, हे भगवन! आप यह बतायें कि वह वन अभी कितनी दूर है जहाँ आप मेरे और लक्ष्मण के साथ जाना चाह रहे हैं, हे प्रभो! जहाँ आप पर्णकुटी बनाने वाले हैं और जहाँ योगी, मुनि और धीरों का पालन करने वाले हैं और जहाँ भ्रूभंग मात्र से आप इन्द्र पुत्र जयंत का मद दूर करने वाले हैं, वह वन अभी कितनी दूर है? और जहाँ निवास करते हुये आप भारत को आतंकवाद रहित करने वाले हैं और जहाँ आप भारत के भयंकर विषाद को दूर करने वाले हैं और जहाँ राष्ट्रनीति को संस्कार देने वाले हैं, वह वन अभी कितनी दूर है? अभी वह वन कितनी दूर है जहाँ आप लोगों के ताप और पापों को नष्ट करेंगे। जहाँ आप अपने रसिकों को रमायेंगे। जहाँ आप विराजमान होकर निन्यानवे (९९) महारास सम्पन्न करेंगे। जहाँ आप श्रेष्ठ मुनियों के दर्शन करेंगे, जहाँ आप अनेक राष्ट्र संस्कारों का निर्माण करेंगे, जहाँ **गिरिधर** कवि को प्रेरणा दे देकर दिव्य संस्कृत के गीत सुनेंगे, वह वन अभी कितनी दूर है।

गीत संख्या-९

कैवर्तकः प्राह श्रीरामं प्रति-

न प्रक्षाल्य पदं नावं नाथ रोपयिष्ये त्वाम्।।
क्षालयित्वा चरणसरोजं नावं रोहयित्वा।
सत्यसन्धं सत्यं वच्मि नावरोपयिष्ये त्वाम्।।१।।
मारयतु लक्ष्मणो वा तारयतु विलक्ष्मणो वा।
चरणक्षालनं विना नाधिरोपयिष्ये त्वाम्।।२।।
पदस्पर्शतस्तरणीगौंतमगृहिणीवाद्य ।
तरिष्यति तारयित्वा कं न लोपयिष्ये त्वाम्।।३।।
क्षालयित्वा पादकञ्जं साधयित्वा पुण्यपुञ्जम्।
गिरिधरप्रभुं न कदापि कोपयिष्ये त्वाम्।।४।।

भौमी- अब केवट श्रीराम के प्रति कहता है–हे नाथ! श्रीचरण धोये बिना मैं आपको नाव पर नहीं चढ़ाऊँगा। आपके श्रीचरणकमल को धोकर नाव पर चढ़ाकर आपको उतारूँगा भी नहीं; यह बात मैं आप

सत्यसंध से सत्य कह रहा हूँ। चाहे मुझे लक्ष्मण मार डालें अथवा विलक्ष्मण अर्थात् लक्ष्मणजी जिसके आज्ञाकारी हैं, ऐसे आप मुझे तार दें, मुझे कोई भय नहीं। परन्तु चरणकमल को धोये बिना मैं आपको नाव पर नहीं चढ़ाऊँगा। आज आपके चरण का स्पर्श करके मेरी नाव भी गौतम पत्नी अहल्या की भाँति तर् जायेगी। अतः आपको इस नाव से पार करके और अपनी नाव को अहल्या की भाँति आपके श्रीचरणों से नारी रूप में परिणित कराकर मैं अपने सुख को नहीं समाप्त करूँगा। आपके चरणकमल को पखारकर तथा अपने पुण्यपुंजों को इकट्ठा करके **गिरिधर** कवि के स्वामी आप श्रीराम राघव को कभी भी कुपित नहीं करूँगा।

विशेष- यह गीत एक पारम्परिक भजन की ढाल में निबद्ध है। जिसके बोल हैं-

''बिना पग धोए नाथ नाव न चढ़ाइहौं।''

गीत संख्या-१०

पुनर्नाविकः श्रीरामं प्रति-

पदं देहि क्षालयितुं रघुराज मे।
मनो मम शङ्कते हे नरराज पदं देहि क्षालयितुं रघुराज मे।।
सीतालक्ष्मणानुचरो रामो गङ्गातटमुपयाय हे,
नावमयाचत पारं गन्तुं कैवर्तोऽवददाम्लाय।
पदं देहि क्षालयितुं रघुराज मे।।१।।
तव चरणधूलीन्द्रजालतो दारुतनुं विहाय हे,
भवेन्नौरपि नवा नारी रूपरुचिमायाय।
पदं देहि क्षालयितुं रघुराज मे।।२।।
किमु करिष्ये विना नावं जीविकां परिहाय हे,
आत्मम्भरिरथ किमु भरिष्ये कुलं करुणोपाय।
पदं देहि क्षालयितुं रघुराज मे।।३।।
क्षालयित्वा तव पदाब्जं निहतजनप्रत्यवाय हे,
मुदा पारं नये भवतः क्षपितस्वजनापाय।
पदं देहि क्षालयितुं रघुराज मे।।४।।
दृष्ट्वा जनचातुरीं तुरीयो हसन् मोदमियाय हे,
तरतु गिरिधरकविर्गायन् राम जय उरुगाय।
पदं देहि क्षालयितुं रघुराज मे।।५।।

भौमी-केवट फिर राम के प्रति कह रहा है। हे रघुकुल के राजा श्रीराम! मुझे अपना चरण धोने के लिए दे दीजिए। हे मनुष्यों के राजा! मेरे मन में यह शंका हो रही है आप अपना चरण धोने के लिए मुझे दीजिए सीताजी तथा श्रीलक्ष्मण के स्वामी श्रीराम ने गंगा तट के समीप जाकर पार जाने के लिए नाव माँगी। तब केवट अकुलाकर बोला-प्रभु आप श्रीचरणों को धोने की मुझे आज्ञा दीजिए। आपके श्रीचरण की धूल रूप

जादु से मेरी यह नाव अपना लकड़ी का शरीर छोड़कर सुन्दर रूप और शोभा प्राप्त कर नवीन नारी बन जायेगी। इसलिए आप मुझे चरण धोने की आज्ञा दीजिए। नाव के बिना अपनी जीविका नष्ट करके मैं क्या करूँगा? हे करुणापूर्ण उपाय वाले प्रभु! अपना पेट पालने वाला मैं इस कुल का कैसे भरण पोषण करूँगा? इसलिए मुझे चरण धोने की आज्ञा दीजिए। हे भक्तों के विघ्न नष्ट करने वाले, हे स्वजनों का कष्ट दूर करने वाले प्रभु श्रीराम मैं आपके श्रीचरणकमल को धोकर आप तीनों को प्रसन्नतापूर्वक पार ले चलूँगा। इस प्रकार अपने भक्त की चतुरता देखकर तुरीय तत्त्व भगवान श्रीराम हँसते हुए प्रसन्न हुए। इस यश को गाते हुए **गिरिधर** कवि भी संसार सागर से तर जाय। दिव्य यश वाले श्रीराम की जय हो।

विशेष- यह गीत गुजराती लोकधुन में निबद्ध है। इसका बोल है–

''पग मने धोवा द्यो रघुराय, प्रभु मने शक पड्यो।
मन माय तमारा पग धोवा द्यो रघुराय जी।''

गीत संख्या-११

गायति कविः-

राघवचरणजलजातं हो क्षालयते निषादः।।
काष्ठपात्रकृतपावनपयसा ,
परमहंसमुनिभावनपयसा ।
सुभगसुरधुनीतातं हो क्षालयते निषादः।।१।।
अशरणशरणं भवभयहरणम्,
धरणिकन्यकाहृदयाभरणम् ।
कृतजनदूरितविघातं हो क्षालयते निषादः।।२।।
बन्धुकुसुमशिशुमिहिरसमरुणम् ,
प्रणतभीतिहरमकरणकरुणम् ।
यमभयगिरिपविपातं हो क्षालयते निषादः ।।३।।
चुम्बं चुम्बं नमदवलम्बम्,
लुम्पं लुम्पं पापकदम्बम्।
पूर्वं निजाश्रुस्नातं हो क्षालयते निषादः।।४।।
वर्षति कुसुमं बिवुधवरूथे,
हर्षति मुनिगणकिन्नरयूथे।
गिरिधरकविपारिजातं हो क्षालयते निषादः।।५।।

भौमी- अब कवि स्वयं गा रहे हैं–अहो! आज श्रीराम के चरणकमल को केवट धो रहा है। कठवते में भरे हुए पावन जल से और परमहंस जनों को भी सम्मान देने वाले मंगलमय जल से सुन्दर गंगाजी के भी पिता स्वरूप श्रीराम के चरणकमल को केवट पखार रहा है। आज अशरणों को शरण देने वाले भवभय का हरण

करने वाले, भूमिनन्दिनी सीताजी के हृदय के आभूषण स्वरूप, अपने भक्तों के पाप नष्ट करने वाले श्रीराघव के चरणकमल को आज केवट पखार रहा है। बन्धूक पुष्प एवं बालसूर्य के समान अरुण, प्रणतों का भय हरने वाले, अहैतुकी करुणा वाले, यमराज के भय रूप पर्वत को नष्ट करने के लिए बज्रपातस्वरूप श्रीराम के चरणकमल को केवट पखार रहा है। नमस्कार करने वालों के अवलम्ब स्वरूप प्रभु के चरण को चूम-चूम कर और अपने पाप समूहों को नष्टकर-करके प्रक्षालन के पूर्व अपने ही आँसूओं से स्नान किए हुए श्रीराघव चरणकमल को केवट पखार रहा है। देवताओं के पुष्प बरसते हुए, मुनिगण और किन्नरों के प्रसन्न होते हुए **गिरिधर** कवि के लिए कल्पवृक्षस्वरूप श्रीराघव के चरणकमल को केवट पखार रहा है।

विशेष- यह गीत मध्यप्रदेश की बघेली लोकधुन में निबद्ध है। इसका बोल है-

''बाजत अवध बधाई हो आज राघव प्रगट भये।''

गीत संख्या-१२

कैवर्तको गङ्गां प्रति-

मम राघवस्त्वदीयं पारं याति गङ्गे मातर्मन्दं वहेः।
धृतलाघवस्त्वदीयं पारं याति गङ्गे मातर्मन्दं वहेः।।
शिरिषकुसुमसरसिजसुकुमारो
व्रजति वनं वै राजकुमारः।
कर्तुं भारतश्रृङ्गारं पारं याति गङ्गे मातर्मन्दं वहेः।।१।।
सीतालक्ष्मणबन्धुसमेतो
धृतकार्मुकशरनीतिनिकेतो।
हन्तुं राक्षसमपारं पारं याति गङ्गे मातर्मन्दं वहेः।।२।।
मन्दय तरुणिततरलतरङ्गं
नन्दय रामं नवजलदाङ्गम्।
हर्तुं महिमहाभारं पारं याति गङ्गे मातर्मन्दं वहेः।।३।।
रघुवरांशपदपावितनीरं
क्षणं कृतार्थय सलिलशरीरम्।
द्रष्टुं गिरिधरमुदारं पारं याति गङ्गे मातर्मन्दं वहे ः।।४।।

भौमी- अब केवट गंगा जी से प्रार्थना करते हुए गा रहा है। हे गंगे माँ! मेरे राघव आपके पार जा रहे हैं, आप धीरे-धीरे बहिए, अत्यन्त लघु बनकर अर्थात् अपना ऐश्वर्य छिपाकर श्रीराघव आपके पार जा रहे हैं, धीरे-धीरे बहिए। शिरीष पुष्प और कमल के समान सुकुमार राजकुमार श्रीराम वन में जा रहे हैं, भारत का शृंगार करने के लिए प्रभु आपके पार जा रहे हैं, आप धीरे से बहिए। धनुषबाण धारण किए हुए नीति के आश्रय भगवान राम सीताजी एवं भाई लक्ष्मण को साथ लेकर असभ्य राक्षसकुल का वध करने के लिए आपको पार करके वन जा रहे हैं, आप धीरे धीरे बहिए। हे माँ आप अपने तीव्र नई तरंगों को मन्द कर लीजिए और नवीन

मेघ श्यामलाङ्ग श्रीराम को प्रसन्न कर लीजिए क्योंकि वे पृथ्वी का बहुत बड़ा भार उतारने के लिए आपको पार करके वन जा रहे हैं। अतः आप धीरे-धीरे बहिए। श्रीराम के अंश भगवान वामन के चरण से उत्पन्न पवित्र जल वाले अपने पयोमय शरीर को श्रीराम के स्पर्श से क्षण भर के लिए कृतार्थ कर लीजिए। वे **गिरिधर** कवि को कृपादृष्टि से निहारने के लिए आपके श्रेष्ठ उस पार जा रहे हैं।

विशेष- यह गीत एक चर्चित धुन के अनुकरण गीत के आधार पर निबद्ध है। बोल हैं-

''मेरे राघव जी उतरेंगे पार गंगा मैया धीरे बहो।''

गीत संख्या-१३

ग्राम्याः श्रीरामं प्रति-

राघव क्षणमाम्रवणेपि विश्रम्यताम्।
रम्य आरामे किञ्चित् समारम्यताम्।।
सेवध्वं शिशिरमन्दसुरभितसमीरम्,
पीयध्वं पीयूषसम्मितसुनीरम्।
घोरघर्मणि यात्रातो विरम्यताम्।।१।।
विना पदत्राणं पद्मपद्भ्यां व्रजन्तः,
ग्राम्याणां मनस्सु काञ्च करुणां सृजन्तः।
किसलयाभिरामे किञ्चित् समभिरम्यताम्।।२।।
अधिष्ठाय पल्लवसुतृणमञ्जुतल्पम्,
यूयं विनोदयत पथिश्रममनल्पम्।
अस्मत्प्रीतिपरिणामे परिरम्यताम्।।३।।
पीत्वा जलं भुक्त्वा मधुरफलकन्दमूलम्,
श्वो गन्तास्थ भूयो क्षपितश्रमशूलम्।
कविगिरिधरमनसि राम रम्यताम्।।४।।

भौमी- अब ग्राम्य लोग श्रीराम के प्रति सम्बोधित करके कहते हैं। हे राघव। इस आम्रपालिका में क्षण भर विश्राम कर लीजिए। इस अत्यंत रमणीय उद्यान में थोड़ी देर तक भ्रमण कर लीजिए। आप तीनों शीतल, मंद, सुगन्ध वायु का सेवन करें और अमृत जैसा स्वादिष्ट शुद्ध जल पियें। इस चिलचिलाती धूप में थोड़ी देर के लिए यात्रा से विश्राम ले लें। चरण में पनही के बिना कोमल चरण से प्रयाण करते हुए आप तीनों ग्रामीणों के मनों में भी किसी अपूर्व करुणा की सर्जना कर रहे हैं। इसलिए पल्लवों से सुन्दर इस बगीचे में थोड़ी देर विश्राम कर लीजिए। आप तीनों पल्लव और कोमल तृणों से सजी हुई सुन्दर शैय्या पर बैठकर मार्ग का बहुत बड़ा श्रम दूर कर लें और हमारे प्रेम के परिणाम रूप इस बगीचे में कुछ क्षणों के लिए विश्राम कर लें। आप तीनों जल पीकर, मधुरफल कंदमूल खाकर, आज विश्राम करके, मार्ग के श्रम का कष्ट दूर करके कल आगे चले जाना। हे श्रीराम! आप **गिरिधर** कवि के मन में रम जाइये।

गीत संख्या-१४

पथिकवरो रामो गहनमभियाति।
अनुपानत्पदपङ्करुहाभ्यां मञ्चन् महीं प्रयाति।।
शिरसि लसितसितजटाजूटश्रितकुसुमसौभगो भाति।
मरकतमणिगिरिरिव धनदिनकरहिमकरविभो विभाति।।१।।
कलितकर्णभूषणः स्मितमुखोऽविख्यां काञ्चन लाति।
गुरुयुगलाञ्चितचपला चर्चां शशिनेह्यरुणो राति।।२।।
अंसतूणयुगकरशरचापो जनाभयं निर्माति।
सीतालक्ष्मणसध्यङ्प्रत्यङ्गात्मन आधेह पाति।।३।।
पतितपावनःपतिः पापतः पतितान् पुमान् पुनाति।
गच्छन् महाटवीं खलु गिरिधरदुरिताटवीं लुनाति।।४।।

भौमी- श्रेष्ठपथिक श्रीराम! आज गम्भीर वन की ओर प्रस्थान कर रहे हैं। बिना पदत्राण के चरणकमलों द्वारा पृथ्वी को सुशोभित करते हुये प्रभु पधार रहे हैं। सिर पर विराजमान श्रेष्ठ जटाजूट में गूंथे हुये पुष्पों के सौन्दर्य से श्रीराम देदीप्यमान हो रहे हैं। वे बादल, सूर्य और चंद्रमा की शोभा से युक्त नीलममणि के पर्वत के समान लग रहे हैं। सुन्दर कर्णभूषण धारण किये हुए मन्द मुस्कान से युक्त प्रभु किसी अपूर्व शोभा को प्रस्तुत कर रहे हैं मानों सूर्यनारायण के सारथी अरुण दो वृहस्पतियों से युक्त विद्युत शोभा को चन्द्रमा को ही समर्पित कर रहा है। स्कन्ध पर दो तरकश, हाथ में सुन्दर धनुष-बाण लिये हुये प्रभु भक्तों के लिए अभय का निर्माण कर रहे हैं और श्रीसीता एवं लक्ष्मण जी के सहचर प्रभु प्रत्यगात्मा को भी आँधियों से मुक्त कर रहे हैं। पतितों को पावन करने वाले सबके स्वामी परमपुरुष श्रीराम! पतितों को भी पाप से पवित्र कर रहे हैं और महावन में जाते हुए प्रभु श्रीराम **गिरिधर** कवि के भी पापवन को नष्ट कर रहे हैं।

गीत संख्या-१५

पथिकौ पथि राजेते श्यामलगौरौ।।
धृतमुनिपटौ व्रजन्तौ विपिनं कुसुमकोमलौ कुलिशकठोरौ।।१।।
द्वावन्तरा विराजति वनिता पान्तीव पतिदेवरौ किशोरौ।।२।।
परस्परं पश्यन्तौ लपन्तौ विहसन्तौ निशिचरकुलघोरौ।।३।।
अंसतूणकरतलशरधनुषौ दान्तौ गिरिधरमानसचोरौ।।४।।

भौमी- आज वन पथ में श्यामल और गौर दो पथिक सुशोभित हो रहे हैं, जो बल्कल धारण किये हुए वन की ओर प्रयाण करते हुये पुष्प के समान कोमल और वज्र के समान कठोर हैं। दोनों के बीच में परमसुन्दरी महिला सीताजी विराज रही हैं मानों वे किशोर पति और देवर की रक्षा कर रही हैं। राक्षस कुल के लिए अत्यंत भयंकर दोनों राजकुमार एक दूसरे को निहारते हुए वार्तालाप करते हुए हँस रहे हैं। स्कन्ध पर

तरकश, हाथ में धनुष बाण लिये हुए अत्यंत संयमी **गिरिधर** कवि के मन को चुराने वाले दोनों राजकुमार वनपथ में सुशोभित हो रहे हैं।

विशेष- यह गीत दादरा ताल में निबद्ध है।

गीत संख्या-१६

ग्राम्यवनिताः परस्परम्-

आल्यः पृच्छन्तु पथिकाविमौ कुत आगन्तारौ।।
नीरदचलाशरीरौ रणधीरौ सुगम्भीरौ।
ललनासहायौ सख्यः कुत्र वा गन्तारौ।।१।।
मध्ये वरवनितौ विनीतौ गुणशीलान्वितौ।
शोभासुधां वितरन्तौ कान् जनान् मन्तारौ।।२।।
धृततूणशरचापौ कोटितपनप्रतापौ।
केषां शोकपापतापं रुचा विहन्तारौ।।३।।
क्वापि देशे सुप्रदेशे स्थातारौ वर्णिन्या साकम्।
कविगिरिधरहृदये नित्यशो रन्तारौ।।४।।

भौमी- ग्राम्य बधूएँ एक दूसरे से कह रही हैं। हे सखियों! इन दोनों पथिकों से पूछो न, ये कहाँ से आ रहे हैं? एक महिला को साथ लिये हुये मेघ और बिजली जैसे शरीर वाले रणधीर और गंभीर दोनों पथिक आगे कहाँ जाने वाले हैं? अपने बीच में उन देवी को किये हुये अत्यन्त विनम्र गुणशीलता से युक्त ये दोनों पथिक शोभा अमृत का वितरण करते हुए किन लोगों को सम्मान देने वाले हैं? तरकश-धनुष और बाण लिये हुये करोड़ों सूर्यों के समान प्रतापवान ये पथिक किनके शोक, पाप और ताप नष्ट करने वाले हैं? गिरिधर कवि के हृदय में निरन्तर रमण करने वाले ये दोनों किशोर पथिक किस सुन्दर विभाग वाले देश में श्रेष्ठ महिला के साथ निवास करने वाले हैं?

गीत संख्या-१७

सख्यः पश्यन्तु चैनां विनीतां वनीताम्।
श्यामपदरेखालीनां पुनीतां वनीताम्।।
चम्पककनकचान्द्रीचलाचमत्कारिणीम्
कोटिकोटिकामवामारूपदर्पहारिणीम् ।
पश्यन्त्वदीनामभीतां वनीताम्।।१।।
निरावरणचरणतामरसाभ्यां चलन्तीम्
मानसमरालिकागमनमदं दलन्तीम्।
पतिप्रेमपणपीनां प्रतीतां वनीताम्।।२।।

मध्येभर्तृपदरेखं चरणौ न्यसन्तीम्
व्रतपरिपाट्या पतिदेवताहसन्तीम्।
दयितप्रीतिवारिमीनां सुगीतां वनीताम्।।३।।
युवतिं वराङ्गीं मत्तनागवधूगामिनीम्
सीतामिव सद्गुणानां गिरिधरेशस्वामिनीम्।
सदाचरणप्रवीणां गुणातीतां वनीताम्।।४।।

भौमी- हे सखियों! इन विनीत महिला को तो देखो, जो श्यामल कुमार के चरण की रेखा में तन्मय और पवित्र हैं। चम्पा, स्वर्ण, चाँदनी और बिजली को चमत्कृत करने वाली करोड़ों-करोड़ों रतियों का अहंकार दूर करने वाली इन प्रसन्न और निर्भीक किशोरीजी को देखिये तो। सखियों! पदत्राणरहित चरणकमलों से चलती हुयी और मानसरोवर की हंसिनी के गमन के अहंकार को नष्ट करती हुयी, पतिप्रेम से दृढ़ प्रतिज्ञ प्रियतम के विश्वासपात्र इन श्रेष्ठ महिला को देखिये तो! अपने पति की चरणरेखा के बीच में चरणों को रखती हुयी, अपनी व्रत परम्परा से पतिव्रताओं की भी हँसी उड़ाती हुयी, प्रियतम के प्रेमरूप जल की मछली के समान सुगीत इन पथिक महिला को देखिये तो। अपने पति को प्रिय मतवाली हस्तिनी के समान चलने वाली, सद्गुणों की पृथ्वी के समान **गिरिधर** कवि के ईश्वर श्रीराम की स्वामिनी, सदाचरण में प्रवीण तीनों गुणों से अतीत इन भद्र महिला को देखिये ना।

गीत संख्या-१८

पश्य सखि! त्रयाणां गमनपरिपाटीम्।
नोपलभामहे द्रुहिणप्रपञ्चे।
विषमविचित्रां चलित्रवैराटीम्।।
श्यामलयुवकचरणरेखामध्ये
सुमुखी पङ्कजपदं न्यसन्ती।
चलति सभीते वाति विनीता
स्वगुणैः पतिव्रता विहसन्ती।।१।।
द्वयोश्चरणसरसीरुहरेखां
वञ्चयन् सरलगौरकिशोरः।
चलति दक्षिणो दक्षिणतो निज
बन्धुमुखेन्दुमनोज्ञचकोरः ।।२।।
मन्ये त्रयः केनचित् सख्यः
अहो प्रेषिता वनमायाता।
सुकुमारास्तनु सौकुमार्यतो
निन्दितनन्दनवनवनजाता ।।३।।

वीक्ष्य त्रयाणां प्रेममाधुरीम्
प्रीतिं लौकिकभावमतीताम्।
भावं भावं भक्तिभावनाम्,
सदा गिरिधरो गायति गीताम्।।४।।

भौमी- हे सखी! इन तीनों के चलने की परम्परा तो देखो, वस्तुतः अत्यन्त टेढ़ी आश्चर्यजनक चरित्र की ऐसी परम्परा तो हम ब्रह्मा के प्रपंच में कहीं भी नहीं उपलब्ध कर पाती हैं। सखी! सुन्दर मुखवाली यह युवती श्यामल युवक के चरणों की रेखा के बीच-बीच में डरती हुई-सी, अत्यन्त विनम्र-भाव से अपने चरण रखती हुयी, अपने गुणों से पतिव्रताओं की हँसी उड़ाती हुयी चल रही है। दोनों दिव्य-दम्पती के चरणों की रेखा को बचा-बचाकर अत्यन्त दक्ष अपने भ्राता के मुखचन्द्र का चकोर सरल यह गौर-किशोर दाहिनी ओर से चल रहा है। सखियों! मुझे लगता है ये तीनों किसी के भेजने पर वन में आये हैं। ये अत्यन्त सुकुमार हैं और अपनी सुकुमारता से इन्होंने नन्दनवन के कमलों को भी जीत लिया है। इन तीनों की प्रेममाधुरी एवं लोक भाव से परे प्रीति को देखकर मन में सदैव भावना करते हुये गिरिधर कवि भी इनके गीत गाते रहते हैं।

गीत संख्या-१९

तौ मातापितरौ कीदृङ् निष्ठुरौ सखि! यौ हि वनं प्रैषयेतामीदृग् बालकान्।।
यन्निरीक्ष्य पथि सखि! सर्पिणी निःसर्गसिद्धं जहति विषं फणाभिश्छायां तनुते
वृश्चिकापि वृश्चति नो यदा नन्दतन्तुमहो मातेव ममत्वं येषु समामनुते।
तौ मातापितरौ कीदृङ् निर्घृणौ सखि यौ हि वनं प्रैषयेतामीदृग् बालकान्।।१।।
सूर्योऽपि ललाटन्तपो येषु सखि तपति नो मघोनापि मेघैर्येषुच्छन्नं तन्यते
चन्द्रमाश्च मञ्जुलैर्मयूखैर्मुदा लालयति वात्सल्यसुभावभाजश्चैनान्मन्यते।
तौ मातापितरौ कीदृङ् निर्दयौ सखि! यौ हि वनं प्रैषयेतामीदृग् बालकान्।।२।।
व्याघ्रोऽपि समाजिघ्रति चैषां चरणसरोजं गन्धहस्तिमौक्तिकैश्च पुरस्कुरुते
भल्लूकोऽपि भद्रतां वितनुते ह्यमिषु सखि तिर्यगपि क्वापि नैनान् तिरस्कुरुते।
तौ मातापितरौ कीदृङ् निर्भयौ सखि यौ हि वनं प्रैषयेतामीदृग् बालकान्।।३।।
सिंहोऽपि विहाय निजां क्रूरतां समाद्रियते सिंहवधूरपि सखीयति भामिनीं
करिणी करेण चैनां सलिलैस्समासिञ्चति सम्मन्यते गिरिधरेशगृहस्वामिनीम्।
तौ मातापितरौ कीदृङ् निर्ममौ सखि यौ हि वनं प्रैषयेतामीदृग् बालकान्।।४।।

भौमी- हे सखि! वे माता-पिता कितने कठोर हैं जिन्होंने ऐसे बालकों को वन में भेज दिया। जिन्हें मार्ग में देखकर सर्पिणी भी निसर्ग सिद्ध विष को छोड़ देती है और अपने फन से छाया करती है और जिनके आनंद तंतुओं को बिछू भी नहीं समाप्त करती, माता के समान उन पर ममता करती है। ऐसे बालकों को जिन्होंने वन में भेज दिया, वे माता-पिता कितने निर्घृण हैं? मस्तक को तपाने वाले सूर्यनारायण भी जिनको नहीं तप्त करते हैं, इन्द्र भी मेघों से जिन पर छाया करते हैं, चंद्रमा भी कोमल किरणों से जिन्हें दुलारते हुए अपना वात्सल्यभाजन

मानते हैं। ऐसे बालकों को जिन्होंने वन में भेजा, वे माता–पिता कितने दयाहीन हैं? सखि! वन का बाघ भी इन पर आक्रमण नहीं करता, प्रत्युत् श्रीराम, लक्ष्मण, सीता के चरणकमल को सूँघता है और भल्लूक अर्थात् रीछ भी इनके सम्मुख भद्रता का व्यवहार करता है। तिर्यक योनि में जन्म लिया हुआ कोई भी प्राणी इनका तिरस्कार नहीं करता। हे सखि! ऐसे बालकों को जिन्होंने वन में भेजा, वे माता–पिता कितने निर्भय हैं? जिनके सम्मुख सिंह क्रूरता छोड़कर इनका आदर करता है और सिंहिनी भी युगलकिशोर के बीच विराजमान सीताजी को सखि मानती है। हथिनी भी सीता जी को सूँड़ से लाई हुई शीतल जल से नहलाती है और **गिरिधर** कवि की स्वामिनी का सम्मान करती है। ऐसे बालकों को जिन्होंने वन में भेजा, हे सखि! वे माता पिता कितने ममताहीन हैं?

गीत संख्या–२०

कोटिकामसुन्दरौ वदनजितचन्दिरौ।
सख्यः पश्यन्तु पान्थौ सुगुणमन्दिरौ।।
द्वयोर्द्युतिनिन्दिताशेषविद्युत्प्रभा ।
भीमभवमन्दरौ महितगिरिकन्दरौ।।।।१।।
श्यामगौरौ किशोरौ सुकार्मुकधरौ,
चारुवल्कलं वसानौ विभूषणवरौ।
सिंहकलकन्धरौ बाणतूणीधरौ।।२।।
कथं पद्भ्यां प्रयातौ कठोरं वनम्,
मञ्जुवनितासमेतौ कुकण्टकघनम्।
विजितमदिसिन्धुरौ प्रणतजनबन्धुरौ।।३।।
किं सहिष्येते द्रष्टुं पशून् सुखहरान्,
शीतवातातपं निष्ठरान् निशिचरान्।
गिरिधरे जनुर्धरौ विश्रुतौ धनुर्धरौ।।४।।

भौमी–हे सखियों! करोड़ों कामदेवों के समान सुन्दरमुख से चंद्रमा को जीतने वाले सद्गुणों के मंदिर इन दोनों पथिकों को देखो। इन दोनों के बीच में एक महिला सुशोभित हो रही है जो अपने शरीर की शोभा से करोड़ों बिजलियों को लज्जित कर रही है। सखियों! भयंकर भवसागर के लिए मंदराचल स्वरूप पर्वत की गुफाओं को शोभित करने वाले इन दोनों पथिकों को देखो। सखियों! किशोरावस्था को प्राप्त सुंदर धनुष धारण किये हुए सुंदर वल्कल से सुशोभित, वन्य विभूषणों से युक्त सिंह के समान स्कंध वाले, बाणयुक्त तरकसधारी इन दोनों श्यामलगौर पथिकों को देखो। अरे सखियों! देखो तो इन पथिकों को मतवाले हाथियों को जीतने वाले, प्रणतजनों के बन्धु ये दोनो किशोर एक सुन्दर महिला के साथ कुटिल घने काँटों वाले इस कठोर वन में पदत्राण के विना चरणों से चलकर कैसे आए। अरे सखियों! ये दोनो राजकुमार ग्रीष्म सूर्य की किरणों को कैसे सहेंगे? सुखहारी भयंकर पशुओं को ये कैसे देख सकेंगे? **गिरिधर** कवि के निमित्त जिन्होंने शरीर धारण किया ऐसे प्रसिद्ध धर्नुधर इन दोनों पथिकों को देखिए।

गीत संख्या-२१

प्रियान् पान्थान् प्रतीक्ष्यान्प्रतीक्षेमहि।
मुहुः प्रेम्णा परीक्ष्यान् परीक्षेमहि।।
अत्रिरपि सत्रिभिर्वै स्वनेत्रैः अत्रिदिशमभिमुखान् सहमित्रैः
प्रीत्या परान् परिवीक्षेमहि।।१।।
परमानन्दघनमयान् सौम्यान् निराग्रहगृह्यान् ग्रहनम्यान्
शान्तान् सानन्दान् समीक्षेमहि।।२।।
श्लोकं श्लोकमुत्तमश्लोकान् लोकं लोकमशोकितलोकान्।
लोकापवानुपेक्षेमहि ।।३।।
समवगणय्य पक्ष्मपरिवेशं सुपरिणमय्य मित्रवरदेशम्।
गिरिधरगेयान् सदापेक्षेमहि।।४।।

भौमी- फिर सखियाँ कहती हैं- हे सखियों! हम प्रियपथिक अतिथियों की प्रतीक्षा करें और परीक्षा का विषय न होने पर भी इनकी प्रेम से परीक्षा करें। तीनों गुणों से रहित और अत्रि की दिशा अर्थात् चित्रकूट की ओर जाते हुए इन श्रेष्ठ पथिकों को ज्ञान, वैराग्य, भक्तिसहित सूर्यदेवता से युक्त अपने नेत्रों से हम प्रेमपूर्वक निहारें। हे सखियों! घनीभूत परमानन्दमय, अत्यंत सौम्य, आग्रहरहित लोगों के पक्षधर नवों-ग्रहों के भी वंदनीय, शान्त इन आनंदमय पथिकों की हम समीक्षा करें। इस प्रकार उत्तम श्लोक पथिकों का गुण गा-गाकर संसार को शोकरहित करने वाले इन महानुभावों को निहार-निहारकर हम लोकापवादों की भी उपेक्षा कर दें। पलकों के गिरने की कोई चिन्ता न करके सूर्यनारायण के श्रेष्ठ स्थान अपने नेत्रों को सुंदर परिणामयुक्त बनाकर **गिरिधर** कवि के द्वारा गेय श्रीसीताराम, लक्ष्मणजी की सदा अपेक्षा करें।

गीत संख्या-२२

मातर्मे मानय मातर्मात्रा सम्मानय
मातर्मार्गेऽप्यभद्रे भद्रा भामिनी भाति।।
गौरीविजितकोटिशतगौरी द्वाभ्यां समं प्रयाति
निरावरणपद्भ्यां वनमार्गम्।
मातर्मे ज्ञानय मातर्ज्ञात्रा संज्ञानय
मातर्मार्गेऽप्यभद्रे भद्रा भामिनी।।१।।
तनुहतकोटिचलारुचिरम्या पद्भ्यां भुवं पुनाति
परमहंसमुनिवृन्दप्रणम्या
मातर्मेध्यानय मातर्ध्यात्रा संध्याने
मातर्मार्गेऽप्यसान्द्रेसान्द्रा भामिनी।।२।।

पश्यति पुनः पुनः पुरुतः पुरुपञ्चपुरन्ध्रीधीरा
शीलितचण्डनिदाघसमीरा
मातर्मे मानय मातर्मात्रा मा मानय
मातर्मार्गेऽप्यनिन्द्रे सेन्द्रा भामिनी।।३।।
शूरं सूरं प्रभेव सौरीश्यामं श्यामान् वेति
गिरिधरेशमुखचन्द्रचकोरी,
मातर्मे मानय मातर्यात्रा संयानय
मातर्मार्ग्येऽप्यचन्द्रे चन्द्रा भामिनी।।४।।

भौमी- अब सखी सीताजी का सौंदर्य देखकर अपनी वृद्ध सासु से कह रही है– हे मेरी माँ! मान जाओ। मान जाओ। अपने इंद्रियों से इनका सम्मान करो। इस अकल्याणमय मार्ग में भी यह कल्याणमयी महिला बहुत सुंदर लग रही हैं। देखो माँ! यह गौरांगी अपनी शोभा से करोड़ों पार्वतियों को भी जीतकर अपने पति और देवर जैसे दो राजकुमारों के साथ बिना पनही वाले चरणों से वन मार्ग में जा रही हैं। हे माँ! इन्हें ज्ञान का विषय बनाओ। जानने वाले अंतःकरण से इनका संज्ञान कर लो। अश्रेयस्कर मार्ग में भी श्रेयस्करी यह महिला बहुत सुंदर लग रही हैं। अपनी शरीर से करोड़ों विद्युत प्रभा को लज्जित करने वाली, परमहंस और मुनियों की भी प्रणम्य, यह सुंदर लक्षणों वाली महिला अपने सुंदर चरणों से पृथ्वी को भी पवित्र कर रही हैं। हे मेरी माँ! आप ध्यान कीजिए और ध्यान में सहायक उपकरणों से ठीक ध्यान कीजिए। असान्द्र अर्थात् निर्जन मार्ग में भी सान्द्र अर्थात् अपने स्वजन से घनीभूत जैसी यह महिला सुशोभित हो रही हैं। यह धीर महिला अपने आगे चलते हुए पुरुष को बार–बार निहार रही हैं और तीक्ष्ण वायु का सुखपूर्वक सेवन कर रही हैं। हे मेरी माँ! इनका सम्मान करो और अपनी इंद्रियों से इनका अपमान मत करो। अनेन्द्र अर्थात् रक्षकरहित इस मार्ग से यह महिला रक्षकों से युक्त जैसी निर्भीक शोभित हो रही हैं। जिस प्रकार सूर्य की प्रभा सूर्यनारायण का अनुगमन करती है, उसी प्रकार से यह श्यामा, मुग्धानायिका, पतिव्रता अप्रसूति महिला जो गिरिधर कवि के ईश्वर श्रीराम के मुखचंद्र की चकोरी हैं, श्यामवर्णी श्रीराम का अनुगमन कर रही हैं। हे मेरी माँ! इनका स्वयं भी सम्मान करो और लोगों से भी सम्मान कराओ। अपनी यात्रा अर्थात् अपनी जेठ–देवरानियों से भी इनका स्वागत कराओ। आह्लादरहित इस मार्ग में भी आह्लादवती यह महिला सुशोभित हो रही हैं।

गीत संख्या–२३

पथिका इमे पद्भ्यां वनं प्रतियान्ति।
हरन्तोऽस्मच्चेतांसि विभान्ति।।
ललना लसति द्वयोर्मध्ये, खगारुणयोः श्रीरिव विन्ध्ये
त्रयोऽप्यत्रयस्ति भुवनमखिलं पान्ति।।।।१।।
शिशुशिरीषकुसुमसुकुमारा, राजन्तो राजकुमारा
गुणदात्रैर्जगदघविपिनं दान्ति।।२।।
मिथो वार्ताच्छलैर्हसन्तः स्मितकञ्जमुखविकसन्तः

निजचरितैर्जगति मङ्गलं लान्ति।।३।।
लघुनोऽलघुलक्ष्म्या लसन्तः शमवन्तस्तत्रभवन्तः
निजकरुणां गिरिधरकवये रान्ति।।४।।

भौमी– हे सखियों! ये पथिक चरणों से वन में जा रहे हैं, हमारा चित्त चुराते हुए सुशोभित हो रहे हैं। दोनों पथिकों के बीच एक महिला सुशोभित हो रही है; जैसे–विन्ध्यपर्वत पर सूर्य और अरुण के बीच में लक्ष्मी सुशोभित हो रही हैं। ये नवीन शिरीष पुष्प के समान सुकुमार सुशोभित होते हुए राजकुमार अपने गुण, रूप आरि से सारे संसार के पापों को काट रहे हैं। परस्पर वार्ता के बहाने मुस्कान पूर्ण कमलमुख वाले प्रसन्न होते हुए और हँसते हुए चरित्रों से संसार में मंगल उपस्थित कर रहे हैं। छोटी अवस्था के होकर भी दिव्य सौन्दर्य से सुशोभित होते हुए परम आदरणीय एक साथ रहते हुए **गिरिधर** कवि को भी अपनी भक्ति दे रहे हैं और पैदल वन को प्रयाण कर रहे हैं।

गीत संख्या-२४

मह्यं रोचते न घनश्यामवनगमनम्।
मह्यं रोचते न रामारामवनगमनम्।।
वनवर्त्मकोटिकोटिकुलिशकठोरम्
कथं सोढुमुत्सहतां सुमं पविं घोरम्।
मह्यं रोचते न सुखधामवनगमनम्।।१।।
तपति ललाटन्तपो माध्यन्दिनो भानुः
पीडयति कामं चैतं प्रबलकृशानुः।
मह्यं रोचते न जितकामवनगमनम्।।२।।
पश्य सखि राजसूनोर्मृदुपल्लवोष्ठं
कथमनुमन्यते मरालो बकगोष्ठम्।
मह्यं रोचते न जनारामवनगमनम्।।३।।
अनुजप्रियाभ्यां साकं वनं याति श्यामः
कविगिरिधरमनोनयनाभिरामः ।
मह्यं रोचते न नृललामवनगमनम्।।४।।

भौमी– ग्रामवधुएँ कहती हैं–हे सखी! मुझे मेघवर्णी श्रीराम का वन गमन नहीं अच्छा लग रहा है और मुझे रामा अर्थात् महिलाओं को भी आनन्द देने वाले प्रभु का वन गमन नहीं अच्छा लग रहा है। यह वन मार्ग करोड़ों वज्रों से भी कठोर है। भला बताओ अत्यन्त कोमल पुष्प घोर वज्र की ठोकर कैसे सह सकता है? वस्तुतः सुखधाम श्रीराम का वनगमन मुझे नहीं भा रहा है। देखो, मस्तक को तपाने वाले मध्यान्ह के सूर्य तप रहे हैं और प्रबल अग्नि इन्हें कष्ट दे रहे हैं, इसलिए काम के विजेता श्रीराम का वनगमन मुझे नहीं भा रहा है। हे सखी! देखो, बड़े राजकुमार का पल्लव जैसा ओठ अरे हंस-बगुले के निवास की कैसे अनुमति दे सकता है।

अपने भक्तों के उद्यान स्वरूप श्रीराम का वनगमन मुझे नहीं भा रहा है। **गिरिधर** कवि के मन और नेत्रों को आनन्द देने वाले श्यामवर्णी श्रीराम वन को पधार रहे हैं। इन मानव-रत्न श्रीराम का वनगमन मुझे नहीं भा रहा है।

सन्दर्भश्लोकः

निरीक्ष्य दृक् स्वस्त्ययनं धनुर्धरम्
सभार्यमिन्दीवररोचिषं स्मितम्।
वनं समञ्चन्तमनर्घसौहृदा
प्रभुं समूचुः पुरुषाः परस्परम्।।१।।

भौमी–इस प्रकार नेत्रों के स्वस्त्ययन स्वरूप नीले कमल के समान शोभा वाले मन्द मुस्कान से युक्त धनुर्धारी प्रभु को वन जाते हुये देखकर अत्यन्त प्रेम से भरे हुए गाँव के पुरुष एक-दूसरे से कहने लगे।

गीत संख्या-२५

किमेते देवताप्राया वनं गच्छन्ति भो भ्रातः।
ऋतुपरतिकामपर्याया वनं गच्छन्ति भो भ्रातः।।
किशोराः श्यामवरगौराः महोरादीप्तितेजोराः।
सतां नित्यं हि सुसहाया वनं गच्छन्ति भो भ्रातः।।१।।
न देवा भूमिसंस्पर्शा व्रजन्तीमे सहोत्कर्षा।
महिं मान्या विगतमाया वनं गच्छन्ति भो भ्रातः।।२।।
प्रयुक्ता घोरमापत्या सुयुक्ता रूपसम्पत्या।
विमुक्ताविश्वसदुपाया वनं गच्छन्ति भो भ्रातः।।३।।
सहाभ्यां वै ललितललना रतीवास्ते गतच्छलना।
सुकविगिरिधरकृतच्छाया वनं गच्छन्ति भो भ्रातः।।४।।

भौमी- हे भाई! क्या ये तीन देवता वन में जा रहे हैं अथवा वसन्त, रति और काम के पर्यायवाची ही वन को जा रहे हैं? ये किशोर अवस्था वाले श्याम और गौर तेजस्वी सूर्य को भी तेजस्वी बनाने वाले सन्तों के निरन्तर सहायक क्या वन को चले जा रहे हैं? अरे मित्रों! देवता तो कभी भूमि का स्पर्श करते नहीं, परन्तु ये तीनों तो बड़े ही उत्कर्ष के साथ कपट से रहित होकर माननीय पृथ्वी का स्पर्श करते हुए वन को पधार रहे हैं। अरे भाई! घोर आपत्तियों से जुड़े हुये और रूप की सम्पत्ति से सम्पन्न, सारे प्रपंचों से विमुख, विश्व के श्रेष्ठ उपायरूप ये तीनों वन को पधार रहे हैं। इन दोनों पुरुषों के साथ एक बहुत सुन्दर महिला भी हैं जो छल से रहित रति जैसी लग रही हैं। इस प्रकार **गिरिधर** कवि पर कृपा की छाया करते हुये ये तीनों वन को पधार रहे हैं।

गीत संख्या-२६

कौतस्कुता यूयं देशे क्वचित् गन्तास्थ
धन्यानिधामानि ब्रूत हे पथिकाः।
धाम्यानि धामानि ब्रूत।।
विना पदत्राणं यूयमरण्यं प्रयाताः
स्वीकृतललाटन्तपातपखरवाताः ।
पन्थानं मन्थानं पान्थाः श्रिताः कन्थाः
काम्यानि कामानि ब्रूत हे पथिकाः।।१।।
युवाभ्यां समञ्च लसति ललितललना
मानसमराली यथा गतच्छलना।
ईहध्वे कान् बन्धून् प्रोद्दामयशसा
दाम्यानि दामानि ब्रूत हे पथिकाः।।२।।
बाधेते किं वो न बुभुक्षापिपासे
गाधेते किं न मुमुक्षाजिहासे।
कथं निर्वासिता निष्ठुराभ्यां पितृभ्यां
सौम्यानि सामानि ब्रूत हे पथिकाः।।३।।
श्रमस्वेदसीकरलसितभव्यभालाः
सदाचरणचरणकमलकलितकण्टजालाः ।
गिरिधरकवेर्जीवजीवातुरम्याणि
नम्यानि नामानि ब्रूत हे पथिकाः।।४।।

भौमी- पुरुष कहते हैं–पथिकों! तुम लोग कहाँ से आ रहे हो और कहाँ जाओगे, अपना धन्य जन्मस्थान का नाम बताओ? तुम लोग बिना पनही के वन की यात्रा कर रहे हो और मस्तक को थकाने वाला धूप तथा तीव्र वायु सह रहे हो। अरे पथिकों! इस दण्ड जैसे अगम मार्ग पर कथरी लिए हुए तुम अपनी कमनीय वस्तु बताओ। आप दोनों के बीच में छलरहित मानसराजहंसिनी जैसी एक महिला भी सुशोभित हैं। अपने निर्मल यश से किन्हें अपना बान्धव बनाना चाहते हो? तुम लोग दमन योग्य उन बन्धनों को भी बताओ क्या तुम लोगों को भूख प्यास नहीं लग रही है और मुमुक्षा अर्थात् मुक्त होने की इच्छा और त्याग की इच्छा क्या तुम लोगों को वैचारिक मन्थन में तो नहीं डाल रही है? तुम लोग निष्ठुर माता-पिता द्वारा कैसे वन भेजे गए, पथिकों अपनी सौम्य भ्रांति प्रक्रिया तो बताओ? अरे! तुम तीनों के मस्तक पर पसीने की बूँदें हैं और सदाचरण से युक्त होते हुए भी तुम्हारे चरण कमलों में काँटों के जाल चुभे हुए हैं। **गिरिधर** कवि के जीवात्मा की औषधिस्वरूप अपने सुन्दर और नमन करने योग्य नाम तो बताओ?

विशेष- यह गीत एक भोजपुरी के आँचलिक लोकधुन की ढाल में निबद्ध है इसका बोल है ''माँगी मुनि मनवाँ की सब अभिलाषा जिन माँगी, कोसल किशोर हे मुनि जिन माँगी कोसल किशोर।''

गीत संख्या-२७

हे प्राणप्रियतमपरमपान्थाः इह किमपि विश्रम्यताम्।
सङ्कल्पतः कलकलितकन्थाः क्षणं नैव विरम्यताम्।।
पीयतां युष्मद्वदनवनजमरन्दमञ्जुलमाधुरी।
नयनालिभिर्ग्रामौकसां परितः पथः परिरम्यताम्।।१।।
पानीयमानीतं सुशीतलसोमसममापीयताम्।
सुखकन्द भुक्त्वा कन्दमूलफलानि सुखमभिरम्यताम्।।२।।
किसलयकुसुमदलकलितशैय्या शील्यतां श्रान्तैश्चिरम्।
यावन्नयात्यध्वश्रमस्तावत् स्वरामै रम्यताम्।।३।।
कार्या न लङ्कातङ्कशङ्का निष्कलङ्क मुखेन्दुभिः।
आराममात्मारामका गिरिधरसुखायारम्यताम्।।४।।

भौमी- हे प्राणों के प्रियतम पूज्य पथिकों! यहाँ क्षण भर विश्राम कर लो। हे सुन्दर कथरी लिये हुए बटोहियों! अपने संकल्प से क्षण भर भी विराम मत लो। हे पथिकों! ग्रामवासियों के नेत्र भ्रमरों द्वारा तुम्हारे मुखकमल की मकरन्द माधुरी का पान किया जाय। पथिकों! आज आगे मत जाओ, थोड़ी देर मार्ग के चारों ओर भ्रमण कीजिए। हे सुख के जन्म देने वाले प्रभु! हम अमृत के समान मधुर, शीतल जल लाये हैं। आप जलपान कीजिए और कन्द, मूल, फल खाकर थोड़ी देर विश्राम कीजिए। हे अपने जनों को रमाने वाले पूज्य तीनों बटोहियों! तुम लोग बहुत थक गये हो, अतः पल्लव व फूलों की पंखुड़ियों से बनी हुई शैय्या को स्वीकार करो। जब तक मार्ग का श्रम न चला जाय, तब तक विश्राम करो। हे निष्कलंक पथिकों! यहाँ लंका के आतंक की शंका मत करो। राक्षस यहाँ तुम लोगों का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकेंगे। हम ग्रामवासी संगठित होकर आतंकवादियों का मुँह तोड़ उत्तर देंगे। हे आत्माराम पथिकों! **गिरिधर** कवि के सुख के लिए इस बगीचे में थोड़ी देर तक विश्राम कर लो।

गीत संख्या-२८

पथिक प्रिय सह प्रियया प्रीणीहि।।
पद्भ्यां वसुधामिमां पुनानः पापवनं पश्यतां लुनानः।
स्मरतां दुरितदलानि दुनानः हृन्दि सतां क्रीणीहि।।१।।
तिरस्कृतानथ सत्कुर्वाणः शितशरनिर्भयकृतगीर्वाणः।
शरणागतसंसृतनिर्वाणः सत्कर्म श्रीणीहि।।२।।
क्षणमुटजे कल्पितविश्रामः लोकलोकपतिकृतप्रणामः।
निहतप्रणतभवभयपरिणामः पापं प्रभो श्रिणीहि।।३।।

पथि पथि पर्णसद्मकृतवासः शमिताध्वश्रमक्षुधापिपासः।
स्मितजितसरसिजगर्वविकासः गिरिधरदरं दृणीहि।।४।।

भौमी- हे प्यारे पथिक! अपनी पत्नी के साथ प्रसन्न हो जाओ। हे श्यामल पथिक! अपने चरणों से पृथ्वी को पवित्र करते हुए, दर्शन करने वालों के पाप वन को काटते हुए, स्मरण करने वालों के दुर्भाग्य दल को भी नष्ट करते हुए, सन्तों के हृदयों को क्रय कर लो। तिरस्कृतों को भी सम्मान देते हुए और दिव्य बाण से देवताओं को निर्भय करने वाले, शरणागतों को संसार सागर से मुक्ति देने वाले, प्यारे पथिक! सन्तों की कर्मवासना को समाप्त कर दो। एक क्षण कुटिया में विश्राम करके लोक लोकपालों द्वारा प्रणाम के विषय बनाये हुए प्रणतजनों के भवभय के परिणाम को नष्ट करने वाले, हे प्रभो! हमारे पापों को भी समाप्त कर दीजिए। प्रत्येक वन पथ में पर्ण कुटियों में निवास करते हुए ग्रामवासियों के अनुरोध से मार्ग की थकान और भूख-प्यास को दूर करते हुए अपनी मुस्कान से कमल के अहंकार और विकास को समाप्त करते हुये, हे प्यारे बटोही **गिरिधर** कवि के डर को भी समाप्त कर दो।

विशेष- यह गीत अर्ध-त्रिताल में निबद्ध है, जिसको गायकी में अद्धा त्रिताल (१६ मात्रा) कहा जाता है।

गीत संख्या-२९

कापि सेवा कृपालो त्वया कथ्यताम्।
यां विधायात्मतोषो मया प्रथ्यताम्।।
स्निग्धतरुच्छाये विहितविश्रामैः चक्षुष्मतां चक्षुर्मधुरपरिणामैः।
पथि पथिश्रमं त्यक्त्वा न वै व्यथ्यताम्।१।।
सार्धं प्रयाति तत्र भवता किशोरी गौरी त्वदीयमुखचन्दिरचकोरी।
तदीयाधिनापि नाथ शीघ्रं भवान् नाथ्यताम्।।२।।
सूर्यकरा तापयन्ति युष्मत्कपोलं दर्शं दर्शं दूयते मे चित्तं विलोलम्।
किंचिदध्वश्रमोऽप्यत्र समाश्लथ्यताम्।।३।।
इमे ग्राम्यघोषा अत्र युष्मत्प्रतीक्षाः भावगृह्यैर्नूनं साधुभावा समीक्षाः।
गिरिधरेण गीते भवद्गुणो ग्रथ्यताम्।।४।।

भौमी- हे कृपालु! आप कोई सेवा बताएँ जिसे करके मैं अपना आत्म संतोष बढ़ा सकूँ। यहाँ सुन्दर वृक्ष की छाया में विश्राम किया जा सकता है जो नेत्रवानों के नेत्रों का मधुर परिणाम स्वरूप हैं, ऐसे मार्ग में यात्रा की थकान दूर करके आप प्रसन्न हो जायँ, आपको थकान न हो। हे आदरणीय श्यामल पथिक! आपके साथ एक किशोरी महिला चल रही हैं जो आपके मुखचन्द्र की चकोरी और गौरवर्णा हैं। अरे! उनके श्रम से तो आप थोड़ी देर के लिए उपतप्त हो जायँ अर्थात् अपनी सहचारिणी की थकान दूर करने के लिए ही थोड़ा विश्राम कर लें। तुम लोगों के कपोलों को सूर्य की किरणें तपा रही हैं। यह देख देखकर मेरा चंचल मन बहुत दुःखी हो रहा है। अरे! यहाँ थोड़ी तो थकान शिथिल कर लो। अरे! देखो, ये सुन्दर भाव से बनायी हुई गाँव की

झोपड़ियाँ तुम तीनों पथिकों की प्रतीक्षा कर रही हैं। तुम भाव के पक्षपाती हो, हमारे भाव की समीक्षा कर लो और **गिरिधर** कवि भी अपने गीतों में आपके गुणों का गुंफन कर लें।

गीत संख्या-३०

भगवन् पश्य रसालरसालम्।
मलयसौरभं कलयसौरभं शिशुरविनिन्दककमनप्रवालम्।।१।।
फलभरनमितनवलशुचिशाखा परमपत्रगृहनीडितकीरम्।
परभृतपञ्चमरागकलितकाकलीविमोहितमुनिगणधीरम्।।२।।
मलयमन्दमारुतमृदुमर्मर ऋतुपतिपालितनिखिलदिगन्तम्।
मदनमहितहितकिंशुकचर्चितचलितमहामुनिमनो वसन्तम्।।३।।
माध्यन्दिनरविघर्मघर्घरिततर्षितकाननकेसरिनादम् ।
व्रजसि वनं विगणय्य खरपवनमोष्णमुपेक्ष्य महीध्रविषादम्।।४।।
उज्झित्वा निश्चयं निषेवय पथिकपरममिह निर्मलनीरम्।
शीलय शीलनिधे निमिषाणि निजं किल गिरिधरहृदयकुटीरम्।।५।।

भौमी- हे भगवन! यह रसीला आम्र का फल देखिये, अपने बाल सूर्य को भी निन्दित करने वाले कोमल पल्लवों से युक्त मलयाचल की सुगन्ध से पूर्ण यह आम्रपाली स्वीकारिये। प्रभो! फलों के भार से झुकी हुई पवित्र शाखाएँ और सुन्दर पत्तों के भवन में घोंसले बनाये, तोतों से युक्त और कोयल की पंचम स्वर की राग से मिश्रित कुहक से मुनिजनों और धीरों को भी मोहित करने वाला यह आम का वृक्ष देखिये। मलय के धीरे-धीरे चलने वाले कोमल वायु से मर-मर स्वर कर रहे पत्तों से सुशोभित वसन्त के द्वारा सम्पूर्ण दिगन्तों का पालन कर रहे काम के द्वारा सम्मानित ढाक के पत्तों के समूह से पूजित धीरे-धीरे हिलती हुयी पत्रावली से मुनियों के भी मन-वसन्त को चला देने वाले आम्र वृक्ष को देखिए। मध्य दोपहर में विराजमान सूर्य के धूप से व्याकुल होकर गुफा में घर-घर शब्द करते हुए प्यास से तड़प रहे सिंह की गर्जना से पूर्ण कठोर वायु वाले अत्यन्त तप रहे पर्वतों को भी तपा रहे ऐसे वन में किसी की चिन्ता न करके आप प्रवेश कर रहे हैं। हे शीलनिधे! अविरल वन गमन का निश्चय छोड़कर आप निर्मल जल पी लीजिए और कुछ क्षणों के लिए गिरिधर कवि के हृदय कुटीर में विश्राम कर लीजिए।

विशेष- यह गीत भी त्रिताल (१६ मात्रा) में निबद्ध है।

सन्दर्भश्लोकाः

पानीयं ननु पीयतां मधुफले मूले मनो दीयतां
श्रान्तिश्चात्र विनीयतां किसलितां शय्यासमाश्रीयताम्।
विश्रामं प्रविधाय सुस्मितमुखैः प्रातर्वनं गम्यतां
एवं ग्राम्यसमीरितो रघुवरो रायाद् भुवे मङ्गलम्।।१।।

भौमी–हे राघव! आप पानी पी लीजिए, मन लगाकर सुन्दर फल मूल खा लीजिए। थकान दूर कर लीजिए और पल्लव से बने हुये सेज पर विश्राम कर लीजिए। आज रात यहीं विश्राम करके तीनों पथिक मुस्कुराते हुये कल प्रातः फिर वन को प्रस्थान कीजिए। इस प्रकार ग्रामवासियों द्वारा प्रार्थना का विषय बनाये हुये श्रीराम सम्पूर्ण भू–मण्डल को मंगल प्रदान करें।

श्रुत्वा ग्राम्यनिवेदनं स्वगृहिणीं श्रान्तां विभाव्याच्युतः
कर्तुं विश्रममात्मबन्धुवलितः संसारविश्रामदः।
छायां चारुतरोर्जगाम घटिका कालं क्षणीयन् क्षणं
दित्सन् भक्तवशंवदो हि भगवान् भावप्रियो राघवः।।२।।

भौमी–ग्रामवासियों का निवेदन सुनकर अपनी धर्मपत्नी सीताजी को थकी जानकर, छोटे भाई लक्ष्मण का सम्बल पाकर, संसार की वासना से कभी भी च्युत न होने वाले संसार को विश्राम देने वाले प्रभु श्रीराम एक घड़ी के समय को क्षण जैसा बनाते हुए, भक्तों को महोत्सव प्रदान करते हुए वृक्ष की सुन्दर छाया में पधारे। क्योंकि भगवान श्रीराम भाव–प्रिय और भक्तों के वश में रहते हैं।

सीताभ्यर्णं रणरणकिताः स्मेरवक्त्रारविन्दा
गत्वा नत्वा पुलकितवपुस्साश्रुमुख्यः सुमुख्यः।
सङ्कुञ्चन्त्यो रघुवरवधूं चापि सङ्कोचयन्त्यः
प्रह्वाः प्राहुर्विनयमधुरां गामिमां ग्रामवध्वः।।३।।

भौमी–इसके पश्चात् जिज्ञासा के कौतूहल से व्याकुल मुस्कुराती हुई कमलमुखों वाली पुलकित शरीर और अश्रुपूर्ण मुखोंवाली सुमुखी ग्रामवधुएँ सीताजी के पास जाकर, उन्हें प्रणाम करके, स्वयं संकोच करती हुयी और श्रीराम की धर्मपत्नी सीताजी को भी संकोच में डालती हुयी, अत्यन्त विनम्र होकर, विनय से मधुर यह वाणी बोलीं।

गीत संख्या–३१

ग्रामवध्वः सीतां प्रति–

चम्पकजलदगौरश्यामौ हे शोभने काविमौ ते।
त्रिभुवनभवनललामौ हे लोभने काविमौ ते।।
करतलकलितललितशरचापौ तूणिधरौ श्रितजटाकलापौ।
व्रीडितशतशतकामौ हे मण्डने काविमौ ते।।१।।
विहितमनोहरमुनिवरवेषौ शेषरमेशमहेश्वरशेषौ।
कलिमलमथनप्रणामौ हे रोचने काविमौ ते।।२।।
त्वामिह मध्ये कृत्यचलन्तौ वैराग्यबोधाविभक्तिं बलन्तौ।
भवभयविषयविरामौ हे वन्दने काविमौ ते।।३।।

राजन्तौ पथि राजकिशोरौ कुसुमकोमलौ कुलिशकठोरौ।
जनमङ्गलपरिणामौ हे नन्दने काविमौ ते।।४।।
कोटि कोटिरविसदृशप्रतापौ विनिहतचरणशरणजनतापौ।
गिरिधरनयनाभिरामौ हे चन्दने काविमौ ते।।५।।

भौमी–हे शोभने! चम्पा और बादल के समान गौर-श्याम ये दोनों आपके कौन हैं? हे हमारे मन को लुभाने वाली भद्रे! त्रिलोकी रूप भवन के रत्न स्वरूप ये दोनों आपके कौन हैं? हे महिलाओं की आभूषण स्वरूपिणी सुकुमारी! हाथों में सुन्दर धनुष-बाण लिए हुए, कटितट पर तरकश बाँधे हुए, सिर पर जटाजूट धारण किये हुए, करोड़ों कामों को लज्जित करने वाले, ये दोनों किशोर आपके कौन हैं? हे महिला जगत को प्रकाशित करने वाली कल्याणी! मनोहर मुनि वेश धारण किये हुए, शेष विष्णु और शिवजी के भी स्वामी स्वरूप जिनका प्रणाम कलियुग के मलों को भी नष्ट कर देता है, ऐसे दोनों किशोर आपके कौन है? हे सम्पूर्ण स्तुतियों की आश्रय शुभांगी! आपको ही बीच में करके चलते हुये भक्ति को सम्बल दे रहे, वैराग्य और ज्ञान के जैसे, संसार के भय और विषयों के अभाव स्थान स्वरूप ये दोनों किशोर आपके कौन हैं? हे सम्पूर्ण जगत को आनन्दित करने वाली मनिस्विनी! वनपथ में सुशोभित हो रहे पुष्प के समान कोमल और वज्र के समान कठोर दिख रहे, जनों के लिए मंगलमय परिणाम वाले, ये दोनों राजकिशोर आपके कौन हैं? हे सबको आह्लादित करने वाली वर वर्णिनी करोड़ों करोड़ों सूर्यों के समान प्रतापवान अपने चरणों में शरणागतों के सभी तापों को दूर करने वाले, गिरिधर कवि की आँखों को आनन्द देने वाले, ये दोनों भद्रपुरुष आपके कौन हैं?

विशेष– यह गीत मिथिला की लोकधुन में निबद्ध हैं।

सन्दर्भश्लोकः

खञ्जनमञ्जुदृगञ्चलकृतरघुपतिपतिपुनीतसङ्केता।
सीता प्रीतिपरीता स्मितविधुवदना सखीः प्राह।।१।।

भौमी–अपने खंजन जैसे मधुर नेत्र के कोने से रघुपति श्रीराम का पति रूप में संकेत करके, चन्द्रमुख पर मन्द हास का आश्रय करती हुयी प्रीति से परिपूर्ण सीताजी सखियों को उत्तर देने लगीं।

गीत संख्या-३२

सीताप्राह–

नवमेघमरकतशरीरो हे राघवेन्द्रो वरो मे।
कोटिकोटिसागरगभीरो हे कोसलेन्द्रो वरो मे।।
अशरणशरणो नलिननवचरणो विदितविशुद्धमङ्गलाचरणो।
रणविदलितखलवीरो हे पार्थिवेन्द्रो वरो मे।।१।।
विश्रुतविश्वधनुर्धरधुर्यो मुनिजनविस्मयधारकधैर्यो।
महाशयो जगदेकवीरो हे मानवेन्द्रो वरो मे।।२।।

लघुदेवरलक्ष्मणसंरक्ष्यो दुर्गमलक्ष्यो जनप्रतीक्ष्यो।
महोदयो रणरङ्गधीरो हे रामभद्रो वरो मे।।३।।
कौसल्यादशरथसुतनागो नृपचक्रवर्तियागापूर्वसुभागो।
गिरिधरप्रभू रघुवीरो हे रामचन्द्रो वरो मे।।४।।

भौमी- अब सीताजी उत्तर दे रही हैं-हे सखियों! नवीन मेघ और मरकत मणि के समान शरीर वाले रघुकुल में श्रेष्ठ श्रीराम मेरे वर हैं। करोड़ों-करोड़ों समुद्रों के समान गम्भीर कोसल जनपद के स्वामी रघुनाथ जी मेरे वर हैं। अशरणों को शरण देने वाले, नवीन कमल के समान चरण वाले, संसार में प्रसिद्ध पवित्र मंगलमय आचरण वाले, युद्ध में खलवीरों को नष्ट करने वाले, पार्थिव अर्थात राजाओं में श्रेष्ठ राघव जी मेरे वर हैं। संसार में प्रसिद्ध धनुर्धरों की धुरी को धारण करने वाले तथा मुनिजनों के लिए विस्मयकारक धैर्य से सम्पन्न महान आशय अर्थात् विचार वाले संसार के एकमात्र वीर, मानवों में श्रेष्ठ, रघुनन्दन मेरे वर हैं। लघु देवर लक्ष्मण जी ही जिनके संरक्ष हैं अथवा लक्ष्मण जी के द्वारा जिनकी रक्षा की जा रही है जिनका लक्ष्य बहुत दुर्गम और निश्किंचन भक्ति ही जिनकी प्रतीक्ष अतिथि हैं, ऐसे महान उदय वाले समरभूमि में स्थिर रामभद्र ही मेरे वर हैं। कौसल्या दशरथ जी के श्रेष्ठ पुत्र महाराज चक्रवर्ती जी के यज्ञ के अपूर्व फलस्वरूप, सौभाग्यशाली **गिरिधर** कवि के स्वामी रघुवीर भगवान रामचन्द्र ही मेरे वर अर्थात् पति हैं।

गीत संख्या-३३

विधिं प्रति ग्रामवध्वः-

विधातस्त्वमसि नितान्तकठोरः।
अविचारितरमणीयसृष्टिकृत्त्वं बालिशः प्रघोरः।।१।।
जलधिं लवणजलं सुरधेनुं पशुं विधुं सकलङ्कम्।
पाषाणद्युमणिं कृतवन्तं किं न वदे त्वाऽशङ्कम्।।२।।
यदिमे मुनिपटधरा कुमाराः विदधति तरुतलवासम्।
तत् किमु रचयसि वृथा भूषणं वसनं सौधविलासम्।।३।।
यदिमे मूलफलान्यश्नन्ति चलन्ति विना पदत्राणम्।
तत्त्वां धिक् सुभोज्यपात्रं वहुविधपत्रं कुर्वाणम्।।४।।
इमे कोमला गह्वरविपिनं किमुत घटेतां सख्यः।
गिरिधरप्रभुमिव वभुः स्मरन्त्यः दारुस्त्रियः सुमुख्यः।।५।।

भौमी- अब ग्रामवधुएँ ब्रह्माजी को कोसती हुयी कहती हैं। हे विधाता! तुम अत्यन्त कठोर हो, विचारशून्यों के लिए इस रमणीय सृष्टि के करने वाले तुम अत्यन्त मूर्ख और बहुत भयंकर हो। अरे विधाता! तुमने समुद्र को खारा जल वाला बनाया, कामधेनु को पशु बना दिया, चन्द्रमा को कलंकित कर दिया, चिंतामणि जो मनों की सारी इच्छाऐं पूर्ण कर देती है को पत्थर बना दिया तो मैं तुमको क्यों न निर्भीक और मूर्ख कहूँ। यदि ये राजकुमार वृक्षों के नीचे ही निवास कर रहे हैं और बल्कल वस्त्र ही धारण कर रहे हैं तो फिर तुम ये नाना प्रकार के आभूषण-वस्त्र, सुन्दर महलें दू महलें क्यों व्यर्थ में बनाते जा रहे हो? यदि ये तीनों

पथिक कन्द मूल फल खा रहे हैं और बिना पनही के चल रहे हैं तो फिर सुन्दर भोजनीय पदार्थ, सुन्दर पात्र और अनेक प्रकार के वाहनों के रचने बाले तुम्हें धिक्कार। अरे सखियों! कहाँ ये तीनों कोमल पथिक और कहाँ ये कठोर वन, इस प्रकार कठोरता से कोमलता का कैसे सामंजस्य होगा? यह कहती हुई **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम का स्मरण करती हुई ग्रामवधुएँ कठपुतली के समान निश्चेष्ट हो गयीं।

गीत संख्या-३४

विधिं प्रति ग्रामबध्वः-

अहो हा विधातस्त्वदीयां चिकित्सां कियाँस्त्वं कठोरः कियाँस्त्वं प्रघोरः।
धिगेतां हि घातस्त्वदीयां विधित्सां कियाँस्त्वं कठोरः कियाँस्त्वं प्रघोरः।।
यथेक्षुं फलैः कौसुमैश्चन्दनं स्वं विहीनं विधत्से शिशुकन्दनं त्वम्।
तथा खिद्यसे नैतान् निर्वास्य सौम्यान् कियाँस्त्वं कठोरः कियाँस्त्वं प्रघोरः।।१।।
यथा पावकं धूमजालैर्पिनद्धं यथा सारसं शैवलैश्चापि नद्धम्।
तथा दूयसे नैतान् निर्वास्य नम्यान् कियाँस्त्वं कठोरः कियाँस्त्वं प्रघोरः।।२।।
यथा पाटलं कण्टकात्तं विधत्से यथा चक्षुषे पङ्कपक्ष्माणि दत्से।
तथा दीयसे नैतान् निर्वास्य नव्यान् कियाँस्त्वं कठोरः कियाँस्त्वं प्रघोरः।।३।।
तथा गिरिधरेशं घनश्यामरामं ससीतं लसल्लक्ष्मणं स्वाभिरामम्।
मनाग् लज्जसे नैव निर्वास्य भव्यान् कियाँस्त्वं कठोरः कियाँस्त्वं प्रघोरः।।४।।

भौमी- ग्राम वधुएँ ब्रह्मा को धिक्कार रही हैं-अरे विधाता! तुम्हारी रचना-इच्छा को धिक्कार। तुम कितने कठोर हो और कितने भयंकर हो, तुम्हारी इस विधान-पद्धति की इच्छा को धिक्कार! तुम कितने कठोर और भयंकर हो? जैसे ईख (गन्ना) को फल के बिना, चन्दन को फूल के बिना और सुन्दर बालक को रोदन से युक्त बनाते हुये तुम खिन्न नहीं होते हो, उसी अपनी मूर्खता के कारण इन तीनों पथिकों को वनवास देकर भी तुम खिन्न नहीं हो रहे हो? वास्तव में तुम बहुत कठिन और भयंकर हो। जिस मूर्खता के कारण तुमने अग्नि को धुएँ से युक्त बनाया और कमल को सेवार से बाँध डाला, उसी मूर्खता के कारण नमन करने योग्य इन बालकों को बनवास देकर तुम दुःखी नहीं हो रहे हो? जिस सावधानी से तुमने गुलाब को काँटों से घेर लिया और जिस अदूरदर्शिता के कारण आँख में कीचड़-बरौनी दे दी, उसी अदूरदर्शी चिन्तन से इन तीनों सीतारामलक्ष्मण को वनवास देकर भी तुम दुःखी नहीं हो रहे हो? वस्तुतः तुम कठोर और भयंकर हो, उसी प्रकार **गिरिधर** कवि के स्वामी सीताजी से युक्त लक्ष्मणजी से सुशोभित स्वजनों को आनन्द देने वाले मेघ श्यामल श्रीराम उन सहित उन दोनों सीतालक्ष्मण अर्थात् तीनों नव-वयस्कों को वनवास देकर तुम किंचित भी लज्जित नहीं हो रहे हो? सचमुच तुम बहुत कठोर और बहुत भयंकर हो।

गीत संख्या-३५

प्रकृतिं प्रति ग्रामबध्वः-

भवेर्धरणि त्वं शिरीषपुष्पकोमला पृथिवि प्रथ्यसे सदैव सुतावत्सला।।
साकं भर्त्रा प्रयाति सीता गहनं वनं पद्मपद्भ्यां चलन्ती कुकण्टकठिनम्।

भवक्षमे भौमीकृते कञ्जमञ्जुला पृथिवि प्रथ्यसे सदैव सुतावत्सला।।१।।
घोरकान्तारमितं पश्य जामातरं कान्तया कान्तितं लघुलसद्भ्रातरम्।
याहि मृदुतां मृदुलतृणकुड्मला पृथिवि प्रथ्यसे सदैव सुतावत्सला।।२।।
कन्दलायन्तां दुर्धर्षागिरिकन्दरा सुमदलायन्तां दुस्पर्शा पविप्रस्तरा।
भाहि भाभास्वरा सन्महोज्वला पृथिवि प्रथ्यसे सदैव सुतावत्सला।।३।।
कण्टकान्यधोदूरय वराहप्रिये कङ्कणान् वै विद्धरय पथः सुश्रिये।
राहि गिरिधरेश्वराय शर्म शीतला पृथिवि प्रथ्यसे सदैव सुतावत्सला।।४।।

भौमी– अब प्रकृति को कोसती हुई ग्राम वधुएँ गाती हैं। हे पृथ्वी! अब तुम श्रीरामलक्ष्मणसीता जी के लिए शिरीष पुष्प के समान कोमल बन जाओ, क्योंकि हे पृथ्वी! तुम तो सदैव पुत्रवत्सला के रूप में प्रसिद्ध हो। आज सीताजी अपने कोमल–कोमल चरणों से चलती हुयी अपने पति श्रीराम के साथ कठोर काँटों से भरे हुए गंभीर वन में जा रही हैं। अपनी पत्नी से सुशोभित और छोटे भ्राता लक्ष्मण को शोभा देते हुए तुम्हारे जमाई बने हुये श्रीराम को घोर वन में जाते हुये देखो और अपने तृणों को कोमल करके स्वयं भी कोमल बन जाओ। हे पर्वत की गुफाओं! तुम केले के पत्ते के समान कोमल बन जाओ और हे वज्र के समान कठोर पत्थरों! तुम फूल की पंखुड़ी बन जाओ। हे पृथ्वी! सज्जनों को महोत्सव देती हुयी तुम प्रभु श्रीराम के लिए सुगम बनकर सुशोभित हो। हे वाराह भगवान की प्रिय पत्नी पृथ्वी! अपने काँटों को नीचे फेंक दो और प्रभु के आनन्द के लिए कंकड़ों को भी मार्ग से दूर कर दो और **गिरिधर** कवि के स्वामी भगवान श्रीराम को शीतल बनकर सुख दो क्योंकि तुम पुत्री–वत्सला हो।

विशेष– यह धुन गुजरात और उत्तरप्रदेश के अवध अँचल में भी प्रसिद्ध है, इसका बोल है–

''मोरी बटिया न रोको सँवरिया मोहे भरनी है यमुना गगरिया।''

गीत संख्या–३६

परस्परम्

सखि समाचारः कश्चन जनेभ्यः श्रुतः।
वने वासं व्यधत्त रामो विश्वविश्रुतः।।
लक्ष्मणेनानुयातः शुचिः सीतया धर्मपत्न्याप्रतीतः सतां गीतया।
भग्नभक्तत्रिकूटं चित्रकूटं गतः।।१।।
समयमनुपालयन् समयामन्दाकिनीं अत्रिपत्नीतपोऽपूर्वमघडाकिनीम्।
सुरैः क्लृप्तां सुखं पर्णशालां मितम्।।२।।
कामदं कामदं चापि निकषा वसन् मधुरतिभ्यां यथा।
पुष्पधन्वा लसन् कोलवृन्दैर्विराजन् मुनीन्द्रैर्वृतः।।३।।
चित्रकूटालयः शान्तिसम्पन्मयः प्रत्तभक्ताभयो गिरिधरेशोऽद्वयः।
गीतसीताभिरामः कुटीरं श्रितः।।४।।

भौमी- ग्राम्य बधुएँ परस्पर गा रही हैं। अब महाकवि ग्राम्य वधुओं के माध्यम से अग्रिम कथा को गीत बद्ध कर रहे हैं। हे सखी! हमने लोगों से कोई विशिष्ट समाचार सुना है कि विश्व में विख्यात यश वाले श्रीराम ने अब वन में निवास बना लिया है। उनके पीछे-पीछे लक्ष्मणजी चल रहे थे और संतों के गीतों का विषय बनी हुयी सीताजी भी उन्हीं का अनुगमन कर रही थीं। ऐसे सीताजी के विश्वासपात्र श्रीराम भक्तों के काम-क्रोध-लोभात्मक तीनों कूटों को नष्ट करने वाले चित्रकूट में पधार गये हैं। चौदह वर्ष वनवास की अवधि का पालन करते हुये पापों को नष्ट करने वाली अनुसूया की तपस्या के पुण्यस्वरूप मन्दाकिनीजी के निकट देवताओं द्वारा बनायी हुयी पर्णकुटी में श्रीराम ने प्रवेश किया है। मन की कामवासना को नष्ट करने वाले कामदगिरि के निकट सीताजी एवं लक्ष्मणजी के साथ निवास करते हुए प्रभु ऐसे सुशोभित हो रहे हैं, मानों वसन्त और रति के साथ कामदेव ही हों। उनके आसपास कोल-किरात विराजमान हैं और श्रेष्ठ मुनिगण उन्हें घेरे रहते हैं। इस प्रकार प्रभु ने चित्रकूट में अपना स्थायी निवास बना लिया है और अयोध्या की सम्पत्ति छोड़कर भी श्रीराम शान्तिरूप सम्पत्ति से युक्त हैं। इसी चित्रकूट में रहकर उन्होंने भक्तों को अभयदान दिया है। स्वयं अद्वितीय होकर भी **गिरिधर** कवि के ईश्वर गीतसीताभिराम महाकाव्य के प्रतिपाद्य भगवान श्रीराम श्रीचित्रकूट में रामघाट पर विराजमान पर्णकुटी में विराज रहे हैं।

इति

श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरमहाकविजगद्गुरुरामानन्दाचार्यस्वामिरामभद्राचार्यगिरिधरकविप्रणीते गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये अयोध्याकाण्डे गीतपथिकाभिरामो नाम सप्तमः सर्गः।

इस प्रकार श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर महाकवि जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य गिरिधरकवि द्वारा विरचित गीतरामायण 'गीतसीताभिराम' नामक संस्कृत गीतमहाकाव्य के अयोध्याकाण्ड में गीतपथिकाभिराम नामक सप्तम सर्ग सम्पन्न हुआ।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

।।श्रीः।।

।। नमो राघवाय।।

गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये अयोध्याकाण्डे

गीतायोध्यकविरहालम्बनो नाम

अष्टमः सर्गः

मङ्गलाचरणम्

अयोध्यासौभाग्यं दशरथमखापूर्ववपुषं
पतिं श्रीसीतायाः पतितजनतापावनगुणम्।
तमालाभं लाभं मुनिजनमहातीव्रतपसां
भजे रामं श्यामं भरतविरहालम्बनमहम्।।१।।

भौमी- अयोध्या के सौभाग्यरूप और दशरथ के यज्ञ का फल ही जिनका शरीर है। ऐसे सीताजी के पति पतितपावन गुण से युक्त तमाल के समान अत्यन्त तीव्र तपस्वी मुनिजनों के लाभ स्वरूप तथा भरत जी के विरह के आलंबन श्याम वर्ण श्रीराम को मैं गिरिधर कवि भजन का विषय बना रहा हूँ अर्थात् भज रहा हूँ।

सन्दर्भश्लोकौ

प्रापय्य लक्ष्मणमहीतनयाभिरामं
श्रीशृङ्गवेरपुरमेव रथेन रामम्।
रामाज्ञया प्रतिनिवृत्य पुरीमयोध्यां
मग्नां वियोगवनधौ सचिवो ददर्श।।१।।
हा राम राम रघुनन्दन रामभद्र
हा राम राम जनचन्दन रामचन्द्र।
हा राम राम कृतवन्दन शीलमन्द्र
एवं जनान् प्रलपतो हि ददर्श मन्त्री।।२।।

भौमी- श्रीलक्ष्मण एवं सीताजी से सुन्दर लगने वाले प्रभु श्रीराम को महाराज दशरथ द्वारा निर्दिष्ट रथ से ऋङ्गवेरपुर पहुँचाकर भगवान राम की आज्ञा से पुनः लौटकर मंत्रिवर सुमन्तजी ने श्रीअयोध्या को वियोगसागर में डूबी हुई देखा। हा राम, हा रघुनन्दन, हा रामभद्र, हा जनचन्दन, हा रामचन्द्र, हा जगत के वन्दनीय, हा शील से सुन्दर! इस प्रकार प्रलाप करते हुए लोगों को सुमन्त्र ने देखा।

गीत संख्या-१

पौरा गायन्ति-

हरे हरे हर परिजनपुरशोकम्।
वनादेत्य दर्शयन्मुखाब्जं कुरु नो विगलितशोकम्।।१।।
यस्त्वं नीलतमालतनो लालयसे नः स्माभीक्ष्णम्।
तं त्वा पश्यन्तो विरहं किमु सोढुं शक्यास्तीक्ष्णम्।।२।।
श्रावं श्रावमममृतवाणीं ते मुदिते श्रुती अभूतां।
किं जीवेम विना श्रुत्वा तां स्फीतां करुणापूताम्।।३।।
बाल्ये क्रीडन्तो भवता सह सुहृदः स्म पुरा रमन्ते।
राम विना त्वां ताम्यन्तस्तव विरहं कथं क्षमन्ते।।४।।
हे राजीवनयन समेत्य सत्वरं च नः प्रतिपालय।
शरणागतगिरिधरं धनुर्धर लालनीयमिह लालय।।५।।

भौमी- हे हरे प्रभु राम! परिजनों का शोक दूर कर दीजिए। वन से आकर अपने मुखकमल के दर्शन कराकर हम लोगों को शोक से रहित कर दीजिए। हे नीलतमाल के समान शरीर वाले श्रीराम! जो आप हमको बार-बार दुलारते थे-आज उन्हीं आपको न देखते हुए हम इस तीव्र विरह को कैसे सहें? आपकी अमृतवाणी सुन-सुनकर हम लोगों के कान प्रसन्न होते रहे। आज उसी सर्वगुणसम्पन्न करुणा से पवित्र वाणी को बिना सुने हम कैसे जीवित रहें? हे श्रीराम! बाल्यावस्था में आपके साथ खेलते हुए आपके जो बालमित्र प्रसन्नता में रमते थे। वे ही आपके बालसखा आपके बिना तपते हुए आपका विरह कैसे सह रहे हैं? हे राजीवनयन! शीघ्र वन से लौटकर हमारा पालन कीजिए। हे धनुर्धर! लालन करने योग्य शरण में आए हुए **गिरिधर** कवि का भी लालन कीजिए।

गीत संख्या-२

सुमन्त्रः स्वगतम्-

वीक्ष्ये विवर्णां पुरीं विकलमना भाति।
शून्येयमयोध्या सीतारामं विना रे।।
द्विपो यथा करं विना द्वीपो यथा सरं विना
दीपो भाति शून्यं यथा स्नेहं विना।
यथा च शरीरं पत्यगात्मानं विनैव शून्यं
तथेयमयोध्या सीतारामं विना रे।।१।।
देहं यथा प्राणं विना गेहं यथा त्राणं विना
वनं यथा शून्यं मृगराजं विना।

यथा नारी नाथं विना नितरामनाथा भाति
तथेयमयोध्या सीतारामं विना रे।।२।।
सरो यथा कञ्जं विना नरः पुण्यपुञ्जं विना
नयनं च शून्यं यथा ज्योतिर्विना।
वाणी यथा स्वरं विना प्राणी यथेश्वरं विना
तथेयमयोध्या सीतारामं विना रे।।३।।
दिनं यथा सूर्यं विना नक्तं यथा चन्द्रं विना
ब्राह्मणो यथैव शून्यो विद्यां विना।
गिरिधरप्रभुभजनं विनैव जीवो यथा
तथेयमयोध्या सीतारामं विना रे।।४।।

भौमी– सुमन्त्र अपने मन में कह रहे हैं–हाय! आज श्रीराम के बिना मैं इस पुरी को शोभाहीन देख रहा हूँ। यह पुरी सीतारामजी के बिना शून्य दिख रही है। जिस प्रकार बिना सूँड़ का हाथी जिस प्रकार बिना जल का द्वीप (टापू) और जिस प्रकार बिना तेल के दीपक शून्य लगता है जिस प्रकार जीवात्मा के बिना शरीर निरर्थक लगता है उसी प्रकार यह अयोध्या सीतारामजी के बिना सूनी लग रही है। जिस प्रकार सूक्ष्म शरीर प्राण के बिना और जिस प्रकार गृहरक्षक के बिना और जिस प्रकार वन सिंह के बिना सूना लगता है जिस प्रकार नारी बिना पति के अनाथ दिखती है उसी प्रकार अयोध्या सीतारामजी के बिना अनाथ दिख रही है। जिस प्रकार तालाब कमल के बिना, मनुष्य पुण्य पुञ्ज के बिना तथा नेत्र जैसे ज्योति के बिना निरर्थक लगता है, जैसे वाणी स्वर के बिना, जैसे प्राणी ईश्वर के बिना सारहीन लगता है उसी प्रकार अयोध्या सीतारामजी के बिना शून्य लग रही है। जिस प्रकार सूर्य के बिना दिन, जैसे चन्द्र के बिना रात्रि और जिस प्रकार विद्या के बिना ब्राह्मण शून्य लगता है और **गिरिधर** के प्रभु श्रीराम के भजन के बिना जैसे जीव निरर्थक है। उसी प्रकार सीताराम के बिना अयोध्या शून्य लग रही है।

विशेष– यह गीत पंजाबी गुरुनानक के एक गीत के ढाल पर निबद्ध है– बोल है–

''सुमिरन कर ले मेरे मना तेरी वीती उमर हरि नाम बिना।''

गीत संख्या–३

रामं विना रथं कथं नेष्ये विधातरहं किं वा करिष्ये।
प्रक्ष्यति यदा साध्वी सौमित्रिमाता उद्विग्ना बाष्पपिहितनयनवनजाता।
किमुत्तरं तस्यै प्रदास्ये विधातरहं किं वा करिष्ये।।१।।
प्रक्ष्यति यदैव राममाताऽनवद्या धेनुर्विवत्साऽविबोधेन विद्या।
कथं प्रतिवाचं विधास्ये विधातरहं किं वा करिष्ये।।२।।
प्रक्ष्यन्ति यदा सर्वराघवजनन्यः क्रन्दन्त्यो वत्सायैव गावः पयस्विन्यः।
तदा हृदि वज्रं पिधास्ये विधातरहं किं वा करिष्ये।।३।।

प्रक्ष्यति यदा राजा विमना मनस्वी गिरिधरेशगतप्राणो मुमुर्षुर्यशस्वी।
हन्त तदा कथं समाधास्ये विधातरहं किं वा करिष्ये।।४।।

भौमी- हे विधाता! श्रीराम के बिना शून्य-रथ अयोध्या में कैसे ले जाऊँगा? और अयोध्या जाकर क्या करूँगा? जब उद्विग्न और अश्रुपूर्ण कमलनयनों वाली पतिव्रता लक्ष्मण की माता सुमित्रा जी मुझसे पूछेंगी, तब मैं उन्हें कौन-सा उत्तर दूँगा? जब बछड़े के बिना गाय जैसी और ज्ञान के बिना विद्या जैसी निंदारहित श्रीराम की माता कौसल्याजी मुझसे पूछेंगी, तब मैं उनको कैसे उत्तर दूँगा? अयोध्या जाकर करूँगा क्या? जब बछड़े के लिए गाय की भांति चिल्लाती हुई सभी राममातायें मुझसे पूछेंगी तब तो मैं अपने हृदय में बज्र ही रख लूँगा, अर्थात् सम्वेदनशून्य होकर अयोध्या में क्या करूँगा। जब विकल मन वाले **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम में अपने प्राण को लीन किए हुए मनस्वी महाराज दशरथ मुझसे पूछेंगे, अरे विधाता! तब मैं उनके प्रश्नों का समाधान कैसे करूँगा? और अयोध्या जाकर भी क्या करूँगा?

विशेष- यह गीत अवधी के नचारी धुन में निबद्ध है।

गीत संख्या-४

मातरो गायन्ति-

कथं लोकयेम कुलवीरौ गतौ द्वौ हीरौ वनं नः।
सीताविलक्षणौ रामलक्ष्मणौ परिहितवल्कलचीरौ गतौ द्वौ हीरौ वनं नः।।१।।
पितृनिर्देशपरिपालनविचक्षणौ शिरिषकुसुमकोमलशरीरौ गतौ द्वौ हीरौ वनं नः।।२।।
कथं हृदि धैर्यं धरेम भो स्वजन्यः पिञ्जरादपेतौ सुकीरौ गतौ द्वौ हीरौ वनं नः।।३।।
कथं सहिष्येते वने चण्डकरकिरणान् सेवमानौ घर्मखरसमीरौ गतौ द्वौ हीरौ वनं नः।।४।।
कदा पुनः पश्येम सीतया समेतौ श्रितगिरिधरहृदयकुटीरौ गतौ द्वौ हीरौ वनं नः।।३।।

भौमी- अब सभी माताएँ रोती हुई उसी नचारी धुन में गा रही हैं-अरे! हम लोग अपने कुल के दोनों वीरों को फिर कैसे देखें? क्योंकि हमारे दो हीरे वन में चले गए। सीताजी के साथ राम-लक्ष्मण वल्कल-वस्त्र धारण करके वन में चले गए। पिता का आदेश पालन करने में कुशल शिरीषपुष्प के समान कोमल शरीर वाले हमारे दो हीरे वन को चले गए। अरे सखियों! अब हम कैसे धैर्य धारण करें? पिंजरे से हमारे दो तोते उड़ गए। अरे! कठोर धूप और तीखी वायु सहन करते हुए हमारे दोनों बालक ग्रीष्म के कठोर सूर्य की किरणों को कैसे सहन करेंगे? अरे सखियों! **गिरिधर** कवि के हृदय कुटीर का श्रयण करने वाले इन दोनों राजकुमारों को सीता-सहित हम कब आँख भर देखेंगी।

गीत संख्या-५

जातः कल्यवर्तस्य कालो न चायातौ बालकमरालौ।।
राघवपर्जन्यो वनं यातो हे सखि कोसलेशो जातो दुष्कालो
न चायातौ बालकमरालौ।।१।।
कामं प्रमोदन्ते वन्या कृषीवलाः काननेऽपि काशते सुकालो

न चायातौ बालकमरालौ।।२।।
आरण्याः प्रसीदन्ति लब्ध्वा वसन्तं ग्रीष्मस्तुदति पौरान्करालो
न चायातौ बालकमरालौ।।३।।
गिरिधरप्रभुं दूरयित्वैव विधिना करिणेव मृदितो मृणालो
न चायातौ बालकमरालौ।।४।।

भौमी– हे सखि! कलेवा का समय हो गया है। अभी भी हमारे दो बालहंस नहीं आये। सखि! रामरूप मेघ वन में पधार गए, अयोध्या में दुष्काल पड़ गया। निश्चित रूप से वनवासी किसान प्रसन्न हो रहे हैं और वन में भी सुकाल अर्थात् सुखपूर्ण समय आ गया है। पर, हमारे दोनों बालहंस नहीं आए। अरे! आज वनवासी वसन्त को पाकर प्रसन्न हो रहे हैं और अयोध्यावासियों को कराल ग्रीष्म जला रहा है। **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम को विधाता ने हमसे दूर करके हाथी से कमलदंड को कुचलवा दिया।

गीत संख्या–६

मृद्नासि यन्मृणालं धिग् धिग् विधे! ततस्त्वां क्लिश्नासि यन्मरालं धिग् धिग् विधे! ततस्त्वाम्।।
हंसं विवास्य दूरं मानससरोवरात्त्वं, पुष्णासि काककालं धिग् धिग् विधे! ततस्त्वाम्।।१।।
विक्रीय गाङ्गनीरं निर्णीय कार्मनाशं क्रीणासि कं भयालं धिग् धिग् विधे! ततस्त्वाम्।।२।।
प्रीणासि पापपङ्के पश्यन्निमग्नधेनुं श्रीणासि पुण्यजालं धिग् धिग् विधे! ततस्त्वाम्।।३।।
शुचिगिरिधरेशतोयाद् विकलं वियोज्य विद्वान् मीनासिमीनमालं धिग् धिग् विधे! ततस्त्वाम्।।४।।

भौमी– हे विधाता! तुम कमलदंड को मसल रहे हो, इसीलिए तुम्हें धिक्कार है, धिक्कार है। तुम हंस को सता रहे हो, इसलिए तुम्हें धिक्कार है। अरे विधाता! तुम मानस सरोवर से हंस दूर भगाकर इसमें काले कौवे को पाल रहे हो, इसलिए तुम्हें धिक्कार है। अरे ब्रह्मा! तुम गंगाजी का जल बेचकर निश्चयपूर्वक कर्मनाशा का जल क्रय कर रहे हो। इसलिए तुम्हें धिक्कार है। अरे! पाप के कीचड़ में फँसी हुई गाय को देखते हुए तुम प्रसन्न हो रहे हो और पुण्य के जाल को काट रहे हो। इसलिए तुम्हें धिक्कार है। अरे ब्रह्मा! तुम जानते हुए भी परम पवित्र **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीरामरूप जल से व्याकुल मछली समूह को अलग करके उसी मत्स्यगण की हिंसा कर रहे हो। इसलिए तुम्हें धिक्कार है, धिक्कार है।

विशेष– यह गीत गलज्जलिका धुन में निबद्ध है, जिसको आजकल गजल कहते हैं।

गीत संख्या–७

कौसल्या सखीः प्रति–

अद्य मम रघुवरस्मृतिरायाता।
साश्रुदृशिर्गद्गदस्वरेत्थं वदति कौसल्यामाता।।१।।
अग्रे अग्रे रामो याति पृष्ठतो लक्ष्मणो भ्राता।
मध्ये तयोर्मैथिलीमञ्चति मृदुलचरणजलजाता।।२।।

रामं विना मम शून्या अयोध्या विना लक्ष्मणं छात्रम्।
सीतां विना मम शून्या रसवती कष्टमहो अतिमात्रम्।।३।।
किं बुभुक्षिता अशनमाप्नुयुः किं तृषिता पानीयम्।
किं निद्रिता लभेरन् शैय्यां स्नाने किं स्नानीयम्।।४।।
गर्जति नभो नभस्यो वर्षति पुरो मरुद्भयदाता।
क्वापि तरुतले रामः सीदति सहसीतः सभ्राता।।५।।
कदा विधे तद् दिनमायास्यति सुप्रभातमभिरामम्।
यदाऽलोकयिष्ये गिरिधरप्रभुमहं नवलघनश्यामम्।।६।।

भौमी- यह गीत गोस्वामी जी की एक गीत की छाया है जिसे यहाँ उपन्यस्थ किया जा रहा है।

आज मोहे रघुबर की सुधि आई।
आगे आगे राम चलतहैं, पीछे लक्ष्मण भाई।
उनके बीच में चलत जानकी शोभा बरनि न जाई।
राम बिना मोरी सूनी अयोध्या लछिमन बिन ठकुराई।
सीय बिना मोरी सूनी रसोइयाँ, कइसैक भोजन बनाई।
भूख लगे भोजन कहँ पइहैं, नींद लगे चौपाई।
प्यास लगे पानी कहँ पइहैं, बिपति बरनि न जाई।
सावन गरजे भादो बरसे, पवन चले पुरवाई।
कौन बिरिछ तर भीजत होइहैं, सीय सहित रघुराई।
पुरजन रोवें, परिजन रोवें, रोवें कोठा अथाई।
तुलसीदास माता कौसल्या रोवें जैसे बछरू बिनु गाई।

गीत संख्या-८

कौसल्या अरुन्धतीं प्रति-

मातर्मा कोऽपि वदतु समभीष्टम्।
रामः प्रत्यागतो ह्यरण्यात् वृत्तं गदतु समिष्टम्।।१।।
को मां याचिष्यते प्रातराशं साश्रं प्रत्यूषे
कः सुखमिष्यति मम श्रुती परिकलितवचनपीयूषे।।२।।
कमहो पृष्ठे करं स्पृशन्ती शयने शाययिताहम्।
कमथ लालयन्ती हृदिजच्युतसुपयः पाययिताहम्।।३।।
शोभनघटिका तदा भवित्री यदा गिरिधराराध्यम्।
लोचनविषयं सुतं विधाष्ये रामं सज्जनसाध्यम्।।४।।

भौमी- अब भगवती कौसल्या, अरुन्धती के प्रति कह रही हैं। हे माँ अरुन्धती! मुझे कोई इष्ट समाचार तो सुना दे कि श्रीराम वन से लौट आए हैं। यह अनुकूल समाचार कोई तो सुना दे। माँ! अब प्रातः मुझसे कलेवा कौन माँगेगा और अपने अमृतमय वचनों से मेरे कानों को कौन सुखी करेगा? हे माँ अरुन्धती! मैं अब किसको पीठ पर थपथपाती हुई शैय्या पर शयन कराऊँगी और अपने स्तन से चूता हुआ दूध किसे पिलाऊँगी? माँ! सुंदर घड़ी तो तब होगी। जब **गिरिधर** कवि के आराध्य और सज्जनों की साधना के लक्ष्य अपने पुत्र श्रीराम को वन से लौटने पर फिर निहारूँगी।

गीत संख्या-९

किमु स्वप्न उताहो सत्यं शुभे।
रामविपिननिवाशस्य चन्द्रप्रभे।।१।।
दातुं निश्चितमासीद्राज्यं राज्ञा स्निग्धं कलितप्राज्यम्।
कुहू समायाता चन्द्रे शुक्लप्रभे।।२।।
श्रुत्वा वनवासं न मलिनता सैव चकाशे वदने नलिनता।
राज्ये श्रुतेऽपि नैव प्रहर्षो वदने मञ्जुलवनजनिभे।।३।।
कृत्वा परिजनमेवमनाथं गिरिधरगीतसुगापितगाथम्।
रामो वनं गतः सहभार्यो मुखं दर्शयन् भावलुभे।।४।।

भौमी- हे कल्याणी! यह सपना है या सत्य? चंद्रमा के समान सुंदर श्रीराम के विषय में वनवास की घटना। देखो, महाराज ने धन्य-धान्य पूर्ण अयोध्या का साम्राज्य श्रीराम को देने का निर्णय लिया था। परंतु आज शुक्ल पक्ष में अमावस्या की रात कैसे आ गई? वनवास सुनकर जिनके मुख पर मलिनता नहीं आई और वही कमल की शोभा मुख पर थिरकी और राज्य सुनकर भी कोमल कमल मुख पर प्रसन्नता भी नहीं। इस प्रकार पुरजनों को अनाथ करके और **गिरिधर** कवि के गीतों से सुंदर गाथाएँ गवाते हुए भावलोभी भक्तों को मुख के दर्शन कराते हुए, पत्नी सहित श्रीराम वन को पधार गए।

गीत संख्या-१०

राघव गृहं सकृदायाहि।
वीक्ष्य निजवाजिनः प्रत्ययमेहि वै प्रतियाहि।।
ये स्म ते वरवर्ष्मपृष्ठा गरुडगतिं हरन्ति।
ते विना त्वां वनजवदन कथं स्वसून् निधरन्ति।।१।।
नहि पिबन्ति ऋणं तृणं नादन्ति नो नन्दन्ति।
वीक्ष्यमाणा दिशमवाचिं हेषितं क्रन्दन्ति।।२।।
वारं वारं वार्यमाणा शोकमालाधारि।
मुहुर्मुञ्चन्त्यद्रिरिपु वाहननयनतो वारि।।३।।

वनकुरङ्गा इव तुरङ्गा विपिनमभिधावन्ति।
विना गिरिधरप्रभुं यमपुरमिव पुरीं नावन्ति।।४।।

भौमी- कौसल्याजी श्रीराम को संबोधित करती हुई कहती हैं- हे राघव! एक बार घर तो आ जाइए। अपने घोड़ों को देखकर विश्वास करके फिर लौट जाइए। हे राघव! जो आपके सुंदर से विग्रह को अपने पीठ पर चढ़ाकर गरुड की गति को भी छीन लेते थे। हे कमलमुख! वे ही घोड़े आपके बिना अपने प्राणों को कैसे धारण कर रहे हैं? घोड़े आपके बिना जल नहीं पी रहे हैं, घास नहीं खा रहे हैं, प्रसन्न नहीं हो रहे हैं, दक्षिण दिशा को देखते हुए हिनहिना कर चिल्ला रहे हैं। बार-बार रोके जाते हुए भी वे घोड़े पर्वत के शत्रु, इन्द्र के वाहन, मेघ जैसे नेत्रों से शोक की माला को धारण करने वाले आँसू गिरा रहे हैं। वन के हरिणों की भाँति घोड़े वन की ओर ही दौड़ रहे हैं और **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम आपके बिना अयोध्यापुरी को यमपुर मानकर यहाँ नहीं आ रहे हैं।

विशेष- यह गीत रूपक ताल में निबद्ध है।

गीत संख्या-११

राघव पुरीमभितः पश्य।
विरहविग्नां विपन्मग्नां विकलविशमभिपश्य।।१।।
शान्तदीपां भयसमीपां तर्जितामभ्यस्य।
नीरवां च निरीक्ष्य निपुणं निर्ऋतिं च निरस्य।।२।।
स्त्रियो राम रुदन्ति रौरवितानि सुखान्यपास्य।
बालकाः क्रन्दन्ति ते क्रीडास्थलं समुपास्य।।३।।
हे समस्तसमस्तसङ्कट समस्यां च समस्य।
सुकविगिरिधरमपि सुखी कुरु भवभयं समुदस्य।।४।।

भौमी- हे राघव! इस पुरी को दोनों ओर से देखिये अर्थात् आपके विरह से उद्विग्न और विपत्ति में डूबी हुई और विकलविश अर्थात् जिसमें मनुष्य और व्यापारी विकल हैं, ऐसी पुरी को एक बार निहारिये। राघव! आपकी अयोध्या के दीपक बुझ गए हैं। इसके समीप भय है। लगता है इसे किसी ने बहुत धमकाया है। आप अभ्यास कीजिए। इसको ठीक-ठीक निःशब्द देखकर इसकी मृत्यु को भगा दीजिए। श्रीराम! अपने सुखों को रौरव के समान जानकर उन्हें छोड़कर अयोध्या की नारियाँ फूट-फूटकर रो रही हैं और बच्चे भी आपके क्रीड़ास्थलों पर जा जाकर फूट फूटकर रोते और चिल्लाते हैं। हे सभी संकटों का समाधान करने वाले प्रभु! अब समस्या का समाधान कीजिए और सुकवि **गिरिधर** को भी सुखी कीजिए और भव भय दूर कर दीजिए।

गीत संख्या-१२

कविर्गायति-

माता पश्यति लघुशरचापम्।
चुम्बं चुम्बं मुहुरासिञ्चति कल्पितबाष्पकलापम्।।१।।

क्वापि घुनघुनां दृष्ट्वा सूनोः साश्रुमुखी झुङ्कुरुते।
क्वापि विवत्सा गौरिव राज्ञी राजसखी हुङ्कुरुते।।२।।
क्वापि मूर्च्छति स्मारं स्मारं निजधनवनप्रयाणम्।
क्वापि प्रभोर्लघुपदत्राणमथमनुते प्राणत्राणम्।।३।।
क्वापि विभाव्य वनस्थां सीतां शुभाचित्रितेवास्ते।
गायन्नेतां दशां गिरिधरो निष्ठुरतां समुपास्ते।।४।।

भौमी- अब कवि स्वयं गा रहे हैं-आज माता कौसल्या श्रीराम की छोटी-छोटी तीर धनुहियों को निहार रही हैं। इसे बार-बार चूम-चूमकर अपने अश्रुजल से नहला रही हैं। कभी-कभी बालरूप श्रीराम का घुनघुना देखकर कौसल्याजी अश्रुपूर्ण होकर झुँझला जाती हैं, चीखने लगती हैं और कभी-कभी वत्सहीन गौ की भाँति रानी हुँकार करके रोने लगती हैं। कभी श्रीराम का वनवास स्मरण करके मूर्च्छित हो जाती हैं और कभी बाल्यकालीन श्रीराम की छोटी छोटी पनहियों को अपने प्राणों का रक्षक मान लेती हैं। कभी-कभी सीताजी को वन में गई हुई धारण करके कौसल्याजी चित्रलिखी जैसी स्थिर हो जाती हैं। इस दशा को गाते हुए **गिरिधर** कवि भी निष्ठुरता को धारण करने लगता है।

गीत संख्या-१३

अद्य किं न कथयति कोऽपि सन्देशम्।
प्रत्यायाता वनतो मम सूनवोऽप्ययोध्यादेशम्।।१।।
कं भोजये कल्यवर्त्तं पायये पयः कं स्तन्यम्।
किं मुखारविन्दं पश्यन्ती ग्लपये मानसदैन्यम्।।२।।
समाश्लिष्य कं वल्गुवक्षसा वर्तयेय दृन्नीडम्।
अङ्कं कमारोप्य शिशिरेयं विरहानलितशरीरम्।।३।।
नाप्राक्षीन्मामहह सुमित्रां प्रातरद्य मम रामः।
नायात् सीताप्युषसि प्रणन्तुं नो लक्ष्मणोऽभिरामः।।४।।
धन्यमहस्तद् यदेक्षिष्यते सपतिदेवरा सीता।
तदा गास्यते गिरिधरकविना मञ्जुलमङ्गलगीता।।५।।

भौमी- आज यह सन्देश कोई क्यों नहीं कह रहा है कि मेरे बालक वन से अयोध्या देश मे लौट आए हैं और अब किसे कलेवा खिलाऊँ और किसे अपना स्तनपान कराऊँ और किसका मुखारविन्द निहारती हुई अपनी मन की दीनता मिटाऊँ किसे गले से लगाकर नेत्र आँसुओं से स्नान कराऊँ और किसे गोद में लेकर विरहाग्नि शरीर को शीतल करूँ अहो। आज प्रातः रामजी ने मुझसे सुमित्रा के सम्बन्ध में नहीं पूछा और आज मुझे प्रणाम करने के लिए सीताजी भी नहीं आयीं और न ही लक्ष्मण आए। वह दिन धन्य होगा जब पति और देवर के साथ सीता को निहारुँगी और उसी समय **गिरिधर** कवि के द्वारा भी मंगल मधुर गीत गाया जाएगा।

गीत संख्या-१४

सुमित्रा कौसल्यां प्रति-

विषादस्त्यज्यतां भद्रे वनात्ते राम आयाता।
प्रसादो भज्यतां भद्रे वनाच्छ्रीराम आयाता।।
गतः पुरुषोत्तमोऽरण्यं सभार्यः सानुजोऽरण्यम्।
शरण्यः सर्वलोकानां वनाज्जितकाम आयाता।।१।।
सहायाः स्युः समे देवा विदध्युः सर्वविधसेवाः।
शिवा पन्थान एवैषां वनान्नृललाम आयाता।।२।।
न बाधेरन् गहनपीडा न गाधेरन् मनोव्रीडा।
अविघ्नो द्विमुनिमितशरदां परं तव राम आयाता।।३।।
निहतसुरनागमुनिशत्रुः सुभद्रुर्जैत्रदृढजत्रुः
कुशलकोसलसुतापूर्वं वनाद् घनश्याम आयाता।।४।।
न ते कार्या शुभे शङ्का भवेल्लङ्काकुला रङ्का।
झटिति गिरिधरहृदययानो वनादभिराम आयाता।।५।।

भौमी- अब सुमित्रा जी कौसल्या जी के प्रति कह रही हैं- हे भद्रे! आप अपना कष्ट छोड़ दें, आपके श्रीराम वन से आ जाएंगें और आप प्रसन्नता स्वीकारें। आपके श्रीराम वन से आ जायेंगे। देखिए, आपके पुत्र श्रीराम मर्यादापुरुषोत्तम हैं। उन्हीं की प्रेरणा से पुरुष उत्तम हो जाता है। इसलिए पिताश्री की आज्ञा मानकर पत्नी के साथ वन पधारे और लक्ष्मण भी उनके साथ हैं और वन भी तपस्वियों को शरण देने में समर्थ है। सभी लोगों को शरण देने वाले काम के विजेता श्रीराम वन से श्रीअवध लौट आयेंगे। सभी देवता सहायक और सब प्रकार की सेवाएं करें। इन तीनों बालकों के मार्ग कल्याणमय हों नररत्न श्रीराम वन से अवश्य लौट आयेंगे। इनको वन की पीड़ा नही सताएगी और न ही इनके मन में किसी प्रकार की लज्जा आएगी। द्विमुनि अर्थात् सात का दुगुने चौदह वर्षों के पश्चात् उद्वेगरहित आपके रामजी वन से श्रीअवध लौट आयेंगे। सत्कर्मों में कुशल आप श्रीकौसल्या के पुण्य स्वरूप कल्याण के कल्पवृक्ष दृढ़ अस्थियों वाले मेघ के समान श्यामल आपके श्रीराम देवता मुनि और नाग के शत्रुओं को मारकर चौदह वर्षों के पश्चात वन से आ जायेंगे। हे शुभे! इस विषय में आप शंका न करें, यह लंका शीघ्र ही व्याकुल और दरिद्र बन जाएगी और **गिरिधर** कवि के हृदय रूप पुष्पक पर आरूढ़ होकर सभी को सुख देने वाले श्रीराम शीघ्र ही वन से लौट आयेंगे।

गीत संख्या-१५

उर्मिला स्वगतं लक्ष्मणं प्रति-

नाहं कदाप्युपेक्ष्या त्वया सीतानाथ सध्र्यङ्।
नित्यं वनेऽप्यपेक्ष्या त्वया सीतानाथ सध्र्यङ्।।

नहि पञ्चबाणबाणैस्त्वां क्वापि पीडयिष्ये।
सप्रेमरसनिर्वाणैरिभमिव प्रीणयिष्ये।
स्नेहात् सदा समीक्ष्या त्वया सीतानाथ सध्र्यङ्।।१।।
अहमुर्मिला त्वदब्धिं सूर्म्या च क्रीडयिष्ये।
निजवासनातरङ्गैस्त्वां नैव व्रीडयिष्ये।
त्वा क्वापि न प्रतीक्ष्या त्वया सीतानाथ सध्र्यङ्।।२।।
नीराजना न यावन्निर्वाति राघवानुज।
तावद् वने विहरतात् त्वं शत्रुसूदनाग्रज।
वार्ता ममाप्यवेक्ष्या त्वया सीतानाथ सध्र्यङ्।।३।।
नीरागदोषदम्भः कृतसेवासमारम्भः।
गिरिधरप्रभुप्रसादे जाताखिलावलम्बः।
स्वप्नेऽपि नो परीक्ष्या त्वया सीतानाथ सध्र्यङ्।।४।।

भौमी- उर्मिला अपने मन में लक्ष्मणजी के प्रति कह रही हैं-हे सीतापति रघुनाथ जी के सहचर! आप मेरी कभी उपेक्षा नहीं करेंगे। वन में भी मन से मेरी अपेक्षा करते रहेंगे। हे सीतापति रघुवीर के सेवक! मैं कभी भी पाँच बाणों वाले काम के बाण से आपको पीड़ित नहीं करूँगी और मैं प्रभु श्रीराम के प्रेम रस के निमज्जन से हाथी के समान आपको निरंतर प्रसन्न करूँगी। मैं उर्मिला अर्थात् लहर उत्पन्न करने वाली नदी सुन्दर भक्ति लहरी से आप श्रीलक्ष्मणरूप समुद्र को प्रोत्साहित करती रहूँगी और अपनी वासना के तरंगों से आपको कभी लज्जित नहीं करूँगी। हे सीतापति के सेवक! आप मेरे अतिरिक्त किसी अन्य नारी की प्रतीक्षा मत कीजिएगा। हे श्रीराघव के छोटे भाई जब तक यह मेरी आरती नहीं बुझ रही है तब तक हे शत्रुघ्न के बड़े भ्राता आप सुखपूर्वक वन में विहार करते रहें और हे सीतापति के अनुगामी सेवक! बीच-बीच में मेरा भी कुशल समाचार लेते रहें। हे सीताजी के नाथ रघुनाथ जी के सहयोगी सेवक! आप राग, दोष और दम्भ छोड़कर श्री रघुनंदन का सेवामहोत्सव प्रारम्भ करें और **गिरिधर** कवि के प्रभु श्रीराम की प्रसन्नता में ही अपने सम्पूर्ण अवलम्बों को निर्भर कर लें और मेरी स्वप्न में भी परीक्षा मत करें मुझ पर विश्वस्त रहें।

गीत संख्या-१६

मां नो कदाप्युपेक्षेथाः सीतानाथानुचरेश।।
स्वप्नेऽप्यहं न त्वां पञ्चबाणबाणैः पीडयिष्ये।
रघुगजं प्रेमवारिसुनिर्बाणैः प्रीणयिष्ये।
नक्तं दिवं ह्यवेक्षेथाः रमानाथानुचरेश।।१।।
उर्मिलाहमुर्मिलेव भक्तिसिन्धुं क्रीडयिष्ये।
क्षुल्लवासनावराक्या नात्मबन्धुं व्रीडयिष्ये।
नित्यं वनेऽप्यपेक्षेथाः रघुनाथानुचरेश।।२।।

स्वाङ्गसङ्गरङ्गरक्त्या नैव वीरं बाधयिष्ये।
सेविकापि सेवकस्य सेवाव्रतं साधयिष्ये।
स्निग्धां सदा समेक्षेथाः जगन्नाथानुचरेश।।३।।
अच्युताङ्घ्रिकमलभृङ्गं नो कदाचिच्च्यावयिष्ये।
धर्मपत्नी पाति पतनात् प्रथिष्ठां पावयिष्ये।
त्वां न क्वापि प्रतीक्षेथाः दीनानाथानुचरेश।।४।।
तुभ्यं ज्येष्ठया भगिन्या भव्यभावं दापयिष्ये।
सेवा सुविशेषधर्मं गिरिधरगिरा गापयिष्ये।
प्रिया प्रीतिं परीक्षेथाः लोकनाथानुचरेश।।५।।

भौमी– हे सीतानाथ के सेवकों में श्रेष्ठ! आप मेरी कभी उपेक्षा मत कीजिएगा मैं स्वप्न में भी आपको काम के बाणों से पीड़ित नहीं करूँगी और प्रेमरूप जल में सुन्दर मज्जन कराकर रघुकुल के हाथी स्वरूप आपको प्रसन्न करूँगी और हे रमा अर्थात सीताजी के नाथ श्रीराम के सेवकों में शिरोमणि! आप दिन रात मेरी अपेक्षा कीजिएगा। मैं उर्मिला अर्थात् नदी की भाँति ही भक्ति सिन्धु को प्रोत्साहित करूँगी और इस नीच बिचारी वासना द्वारा अपने सर्वस्व और परमात्मा श्रीराम के बन्धु आप श्रीलक्ष्मण को कभी भी लज्जित नहीं करूँगी। हे रघुनाथ के सेवक शिरोमणि! आप वन में भी मेरी निरन्तर अपेक्षा करते रहियेगा। अपने अंग–संग की आसक्ति और अनुरक्ति से मैं आप वीरव्रती को बाधित नहीं करूँगी और सेविका बनकर श्रीराम के सेवक आप श्रीलक्ष्मण की सेवा व्रत को साधित ही करूँगी और हे जगन्नाथ श्रीराम के सेवक शिरोमणि! मुझ स्नेहमयी उर्मिला की सदैव समीक्षा कीजिएगा। मैं अच्युत श्रीराम के चरणकमल के भ्रमर आपश्री को व्रत से च्युत नहीं करूंगी और पत्नी–पतन से बचाती है इस व्रत को भी मैं पवित्र करूँगी। हे दीनानाथ के सेवक शिरोमणि! आप किसी अन्य की प्रतीक्षा मत कीजिएगा। हे लोकनाथ! श्रीरघुबीर के सेवकों में सर्वश्रेष्ठ! अपनी बड़ी बहन सीताजी से मैं आपको भजन के अनुरूप दिव्य भाव प्रदान कराऊँगी तथा आपके सेवा रूप विशेष धर्म को **गिरिधर** कवि की वाणी से भी गवाऊँगी। हे प्रभु! आप चाहें मुझ प्रिया के प्रेम की भी परीक्षा ले लीजिएगा।

गीत संख्या–१७

सुमन्त्रं श्रुत्वाऽयोध्यापुरीमायातम्।।
स्वभवं भौमीभवं भवेशं सानुजभार्यं भवभवशेषम्।
रामं प्रेष्यारण्यकदेशं विरहतुहिनहतमुखवनजातम्।।१।।
स्मारं स्मारं विप्रवसन्तं जटया तापसपटैर्लसन्तम्।
स्वनुजप्रियाभ्यां समुल्लसन्तं रघुवीरं व्रीडितहरिजातम्।।२।।
सततरुदितजलकलुषकपोलं रामविलोचनलोचनलोलम्।
रघुपतिविनिहितहृदयमलोलं तालविटपमिव श्रितहिमपातम्।।३।।

दृष्ट्वा रामरहितरथवाहं श्रितनीरन्ध्रनयनपथवाहम्।
पौरा रुरुदुरमितहृद्दाहं गिरिधरेण सह धैर्यनिपातम्।।४।।

भौमी- सुमन्त्र को अयोध्यापुर में आया हुआ सुनकर और यह सुनकर कि कल्याण से युक्त पृथ्वी नन्दिनीसीता जी के पति, संसार का कल्याण करने वाले शिवजी के भी स्वामी, लक्ष्मण और पत्नी सीतासहित श्रीराम को वनप्रदेश में भेजकर प्रभु के विरह रूप पाले से सुमन्त्र जी का मुख कमल सूख गया है। वन में प्रवास करते हुये जटा एवं तापसोचित वस्त्रों से सुशोभित छोटे भाई और सीताजी के साथ प्रसन्न कामदेव को भी लज्जित करने वाले श्रीरघुबीर को बार-बार स्मरण करके निरन्तर रूदन से उत्पन्न अश्रुपात से जिनका कपोल मलिन हो चुका है। जिनके नेत्र श्रीराम को निहारने के लिए चंचल हो रहे हैं, जिनका हृदय श्रीराम में तन्मय है, ऐसी स्थिर अवस्था वाले वज्रपात से गिरे हुए ताल वृक्ष स्वरूप विकल सुमन्त्र जी को सुनकर तथा नीरन्ध्र नेत्रों से अश्रु प्रवाह करते हुये श्रीराम से शून्य, रथ पर बैठे हुए सारथी सुमन्त्र को देखकर, असीम हृदय ज्वाला के साथ धैर्य को छोड़ते हुये अयोध्या के लोग **गिरिधर** कवि के साथ रोने लगे।

सन्दर्भश्लोकः

निरीक्ष्य रामरहितं रथं देहं व्यसुं यथा।
पप्रच्छ शोकसहितो स्वहितं जगतीहितः।।१।।

भौमी-निष्प्राण शरीर की भाँति रथ को श्रीराम से रहित देखकर संसार के हितैषी महाराज दशरथ शोक से व्याकुल होकर सुमन्त्रजी से अनुरागपूर्वक पूछने लगे।

गीत संख्या-१८

ब्रूहि मे निर्भयं राघवानामयं कोसलेन्दोर्वरं वाचिकं श्राव्यताम्।
त्यज्यतां साध्वसं भज्यतां मानसं मानवेन्दोर्वरं वाचिकं श्राव्यताम्।।
मन्त्रिदेशं मुदा मञ्जुमूर्ध्ना वहन् त्यक्त्वा राज्यं रहो रत्नराशिं रहन्।
योगतः काननं काननं दर्शयन् तस्य केन्दोर्वरं वाचिकं श्राव्यताम्।।१।।
न प्रसन्नश्च यो राज्यवार्ताश्रुतौ नो विषण्णः प्रवासे स्वसौख्याहुतौ।
तस्य साम्यस्थितेराननेन्दोरुचा ब्रीडितेन्दोर्वरं वाचिकं श्राव्यताम्।।२।।
यं प्रशंसन्ति निर्वैरका वैरिणो यं न निन्दन्ति निःस्वैरका स्वैरिणः।
तस्य लोकोत्तरानन्दकन्दस्मिते पार्थिवेन्दोर्वरं वाचिकं श्राव्यताम्।।३।।
किं च सन्दिष्टवान् रामभद्रो व्रजन् किं च निर्दिष्टवान् लक्ष्मणोऽकं त्यजन्।
किं जगादाथ मे सीता गिरिधरगिरा बालकेन्दोर्वरं वाचिकं श्राव्यताम्।।४।।

भौमी- हे सुमन्त्र! तुम निर्भय होकर श्रीराम का कुशल सुनाओ। भय छोड़ दो और मन में वर्तमान परमात्मा का ध्यान करो। कोसल के चन्द्रमा और मनुष्यों के भी चन्द्रमा, श्रीराघव का श्रेष्ठ संदेश सुनाओ। जो श्रीराम मेरे आदेश को प्रसन्नतापूर्वक मस्तक पर धारण करते हुए राज्य को छोड़कर एकान्त में रत्नराशि का

त्याग करते हुए सुखपूर्ण मुख के दर्शन कराते हुए वन को पधार गये, उन्हीं सुखचन्द्र श्रीराम का मंगलमय संदेश सुनाओ। जो राज्य श्रवण से प्रसन्न नहीं हुये और अपने सुख की आहुति स्वरूप वनवास सुनकर दुःखी नहीं हुए, उन्हीं समत्व में स्थित, अपने मुखचन्द्र की कान्ति से चन्द्रमा को भी लज्जित करने वाले, परब्रह्म श्रीराम का सुन्दर संदेश सुनाओ। बैर छोड़कर बैरी भी जिनकी प्रशंसा करते हैं और निषिद्ध आचरण करने वाले स्वेच्छाचारी भी जिनकी निन्दा नहीं करते, उन्हीं लोकोत्तर आनंद को जन्म देने वाली मुस्कान वाले राजचन्द्र श्रीराम का श्रेष्ठ संदेश सुनाओ। जाते हुए श्रीराम ने क्या संदेश दिया और सुख को छोड़कर शोकाकुल लक्ष्मण ने क्या निर्देश दिया और सीताजी ने क्या कहा? यह सब गिरि (**गिरिधर** की वाणी में) उन बालक श्रेष्ठ श्रीराम का दिव्य संदेश सुनाओ।

सन्दर्भश्लोकः

सुमन्त्रः दशरथं प्रति–

गच्छन्नावा मुनिपटधरो मैथिलीशेषसध्र्यङ्
मध्येगङ्गं गगनकमनः पृष्ठतो भूयभूयः।
मां संबोध्य प्रथितयशसः संस्मरंस्तेऽतिनम्रो
बाष्पं रुद्ध्वा ननु रघुपतिर्व्राचिकं वक्तुमैषीत्।।१।।

भौमी–हे महाराज! बल्कल वस्त्र धारण करके सीताजी एवं लक्ष्मणजी को साथ लेकर, नाव द्वारा गंगा पार करते हुए, गंगाजी के मध्य में आकर, फिर पीछे मुड़कर, मुझे संबोधित करते हुये, निर्मल यश वाले आपका स्मरण करते हुये, आकाश के सदृश श्याम और गंभीर, अत्यन्त विनम्र रघुकुल के स्वामी, प्रभु राम ने विनम्रतापूर्वक संदेश कहने की इच्छा की।

गीत संख्या–१९

वाच्यः पिता मे प्रणामैः सुखदाम प्रणामैः शीलधाम मदीयं कुलकौशलं वने।।
भवन्निदेशाद् वनेऽप्युषित्वा यावच्चतुर्दशाब्दम्
आयाताश्वो नभोनभस्याविव भूयो वर्षाब्दम्।
वाच्यः पिता मे प्रणामैरभिराम मदीयं कुलकौशलं वने।।१।।
निष्प्रत्यूहं वने निवासो भविता भवत्प्रसादात् ।
मा खिद्येथाः शर्म लभेथा राजन् विरम विषादात्।
वाच्यः पिता मे प्रणामैरभिकाम मदीयं कुलकौशलं वने।।२।।
भवदाशिषा लक्ष्मणेनाहं समं सीतया साकम्
भोजं भोजं मोदिष्ये विपिनेऽपि मूलफलशाकम्।
वाच्यः पिता मे प्रणामैराप्तकाम मदीयं कुलकौशलं वने।।३।।
भवदाज्ञया सेवमानो निर्मानः प्रखरसमीरम्

सुरपतिसदनायिष्येऽहं गिरिधरहृत्पर्णकुटीरम्।
वाच्यः पिता मे प्रणामैः पूर्णकाम मदीयं कुलकौशलं वने।।४।।

भौमी- हे सुमन्त्र! प्रणामपूर्वक सुखद बंधन स्वीकारने वाले शील के गुण मेरे पिताजी से वन में मेरा सम्पूर्ण कुशल सुनाना और उनको यह मेरा संदेश दे देना। आपके निर्देश से चौदह वर्षपर्यन्त वन में निवास करके हम दोनों भाई राम-लक्ष्मण उसी प्रकार अयोध्या आ जायेंगे जैसे वर्षाकालीन मेघ के पास सावन-भादों आ जाते हैं। सुमन्त्र! प्रणामपूर्वक मेरे पिताश्री से मेरा सुन्दर कुशल समाचार सुनाना। हे पिताश्री! आपके प्रसाद से हमारा वन का निवास भी निर्विघ्न सम्पन्न होगा। हे महाराज! आप दुःखी न हों, सुख प्राप्त करें और विषाद से विरत हो जायँ। सुमन्त्र! मेरे पिताजी से प्रणाम के साथ मेरे वन का अभिप्सित कुशल समाचार सुनाना। आपके आशीर्वाद से मैं लक्ष्मण और सीता के साथ वन में भी कन्द, मूल, फल, शाक खा-खाकर प्रसन्न रहूँगा। सुमन्त्र! प्रणामपूर्वक मेरे पिताश्री से सम्पूर्ण कामनाओं की पूर्ति के साथ मेरा कुशल समाचार सुना देना। हे पिताश्री! आपकी आज्ञा से मानरहित होकर, कठोर वायु का सेवन करता हुआ, मैं **गिरिधर** कवि के हृदय रूप पर्णकुटी को इन्द्रपुर जैसा मानकर निवास कर लूँगा। सुमन्त्र! प्रणामपूर्वक मेरे पिताश्री को मेरे वन का पूर्ण कुशल समाचार सुना देना।

विशेष- यह गीत उत्तरप्रदेश की पूर्वांचल के कहरवा धुन की ढाल में निबद्ध है। इसका बोल है-

''बाटै रामजी की वाटि अबै बयानिया धनुषिया इनसे कैसे टूटी।''

गीत संख्या-२०

श्रीसीता श्वश्रूः प्रति-

वाच्यौ श्वशुरौ वै शुभौ शमत्र भवता मदीयमनामयं विपिने।।
भवत्प्रसादादगणयमाना घोरारण्यविपत्तिम्।
गतप्रमादा मंस्ये तृणभवनेऽपि सकलसम्पत्तिम्।
वाच्यौ श्वशुरौ वै शुभौ समत्र भवता मदीयमनामयं विपिने।।१।।
श्वश्रूजनो जनितपरितापो मा भूद् वधूनिमित्तम्।
सुखिन्यहं नहि विपत्कलापो मा विषादयतु चित्तम्।
वाच्यौ श्वशुरौ शुभौ स्वधर्ममवता मदीयमनामयं विपिने।।२।।
पृथिवी कुसुमकोमला पङ्कजपद्भ्यां वनं व्रजन्त्याः।
कुटी प्रसादं कुरुते मे प्रासादं सुखं त्यजन्त्याः।
वाच्यौ श्वशुरौ शुभौ स्वशीलमवता मदीयमनामयं विपिने।।३।।
प्राणेश्वरदेवरदोर्भिः सततं सुरक्षिता सीता।
आयातास्मि पुरं पुरहरनयनाब्दे गिरिधरगीता।
वाच्यौ श्वशुरौ शुभौ स्वभावमवता मदीयमनामयं विपिने।।३।।

भौमी- श्रीसीता अपने सासुओं के प्रति सुमन्त्र को सन्देश दे रही हैं-हे आदरणीय सुमन्त्र! आपके द्वारा शुभसंकल्पी सासु श्रीकौसल्या और श्वसुर चक्रवर्ती जी से वन में मेरा अनामय (कुशल) कहा जाय। आपके प्रसाद से घोर वन की विपत्ति की कोई चिन्ता न करती हुई मैं सीता प्रमादरहित होकर घास के भवन में भी सम्पूर्ण सम्पत्ति जैसा आनन्द करूँगी। आदरणीय मेरे सासु-ससुर को मेरा अनामय (कुशल) अवश्य सुनाना। हे आदरणीय! मुझ बहू के लिए मेरी सासु जन किसी प्रकार का परिताप अनुभव न करें। मैं इस वन में सुखपूर्वक रह रही हूँ मुझे किसी प्रकार का कष्ट नहीं है। आप लोग अपने चित्त को दु:खी न करें। मंत्रीवर! अपने धर्म की रक्षा करते हुए आप मेरे सासु-ससुर को वनवासी सीता का अनामय (कुशल) सुना देना। कमलचरणों से वन में जाती हुयी मेरे लिए पृथ्वी पुष्प के समान कोमल बन रही हैं और राजमहल का सुख छोड़ती हुई मुझ सीता पर पर्णकुटी भी प्रसन्नता की वर्षा कर रही है। अपने शील की रक्षा करते हुए मंत्रीवर! आप मेरे सासु-ससुर को मुझ अरण्य वाली सीता का अनामय (कुशल) सुना देना। अपने प्राणपति श्रीराघव और देवर लक्ष्मण की भुजाओं से सुरक्षित और **गिरिधर** कवि के गीता का विषय बनी हुयी, मैं सीता पुरहरनयनाब्द अर्थात् शंकर भगवान के नेत्रों की संख्या वाले पन्द्रहवें वर्ष में श्रीअयोध्या आ जाऊँगी। अपने भाव की रक्षा करते हुए मन्त्री-प्रवर! आप मेरे सासु-ससुर से मुझ आरण्यक सीता का अनामय अर्थात् क्षेम कुशल समाचार सुना देना।

गीत संख्या-२१

सन्देशं श्रुत्वा मुमुर्षुर्महाराजो विलपन्-

अयोध्यामहह कथं द्रक्ष्यामि।।
ऋते रामलक्ष्मणसीताभ्यः पृथग् वाद्यमङ्गलगीताभ्यः।
विगतप्रभां श्मशानमहीमिव मृतकोऽहं स्प्रक्ष्यामि।।१।।
पुरजनपरिजनमयांश्च पूतान् विकलान् यथा विवर्णान् भूतान्।
निरानन्दको भूतराज इव भुवि भूत्यै वक्ष्यामि।।२।।
नारीगिरा प्रवास्य पुत्रकान् निरागसो धृतधर्मसूत्रकान्।
निरंहसो लोकान् प्रदिधक्षुर्प्रलयाग्निं स्त्रक्ष्यामि।।३।।
वितथमनोरथमिमं दशरथं हा हा धिङ् नरनाथ कापथम्।
गिरिधरप्रभुमविलोक्य लोलधी: कान् लोकान् प्रक्ष्यामि।।४।।

भौमी- सन्देश सुनकर मरणासन्न महाराज विलाप करते हुए-अहह! मैं अब अयोध्या को कैसे देखूँगा? श्रीराम, लक्ष्मण, सीताजी के बिना बाद्य और मंगल गीतों से विहीन शोभारहित, इस पुरी को श्मसान भूमि की भाँति मैं आसन्न मरण स्पर्श करूँगा। अरे पवित्र पुरजनों और परिजनों को विवर्ण व्याकुल भूतों के समान देखता हुआ मैं आनन्द से रहित भूतराज शिव की भाँति इस पृथ्वी पर केवल मुर्दे की राख ढोऊँगा। अरे! केवल कैकेयी के कहने से निरपराध धर्मसूत्र धारण करने वाले अपने पुत्रवधू-सीता एवं दोनों पुत्रों राम-लक्ष्मण को वनवास देकर निरपराध समस्त प्राणियों को जलाने का इच्छुक मैं प्रलयाग्नि की रचना करूँगा। अरे! भ्रष्ट

मनोरथ कुत्सित शासक मुझ दशरथ को धिक्कार है, धिक्कार है। हाय-हाय **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम को न देखकर मैं किससे क्या पूछूँगा, कौन बतायेगा मुझे श्रीराम कहाँ हैं?

गीत संख्या-२२

त्यजसि किमु मां पितरं हे नाथ।।
केनागसा विहाय ह्रीमतीं भुवं प्रियामिव श्रियं श्रीमतीम् ।
विरहसागरे तातं क्षिप्त्वा क्षिपसि जनान् श्रीनाथ।।१।।
सरयूं किं युञ्जन्न दूयसे विरहपीडया किं न दीयसे।
क्वापि लीयसे निविडनिकुञ्जे रसिकराज सीतानाथ।।२।।
हा हा राम राम रणरोचन हा पितृवत्सल मम ऋणमोचन।
हा हा नवराजीवविलोचन भयमोचन नरनाथ।।३।।
हा सीतावर राघव रघुवर हा गिरिधरचातकनवजलधर।
क्वासि यासि हा कुत्र धनुर्धर रामभद्र रघुनाथ।।४।।

भौमी- हे नाथ! मुझ पिता को क्यों छोड़ रहे हैं? किस अपराध से शोभा सम्पन्न लज्जावती प्रिया की भाँति पृथ्वी और राज्य लक्ष्मी को छोड़कर विरह-सागर में मुझ पिता दशरथ को डालकर सभी लोगों को छोड़ रहे हैं? हे रसिक शिखर सीतापति! सरयूजी को विरह की पीड़ा से युक्त करते हुए आप क्यों नहीं दुःखी हो रहे हैं और क्यों नहीं पीड़ा का अनुभव कर रहे हैं? आप किस वन (निविड़) निकुंज में छिप गये हैं? परशुराम को भी युद्ध में प्रसन्न करने वाले, हा मुझ पिता पर वात्सल्य करने वाले, हा मेरा ऋण भार उतारने वाले, हा मेरे राजीव लोचन, हा मनुष्यों के नाथ, हा भयमोचन, हा सीतावर, हा राघव, हा रघुबर, हा **गिरिधर** चातक के नवीन बादल, हे धनुर्धर, हे रामभद्र, हे रघुनाथ! आप कहाँ हैं, आप कहाँ जा रहे हैं?

सन्दर्भश्लोकः

इत्थमयं विलपन्नजपुत्रो नासहमान उदूढवियोगम्।
श्रीरघुचन्द्रमसो व्यरमद्धा जीवनतो ननु मङ्गलभूत्यै।।१।।

भौमी-इस प्रकार श्रीरघुकुल के चन्द्रमा राघवजी के उद्दीप्त वियोग को न सहते हुये नाना प्रकार से विलाप करते हुए अज महाराज के पुत्र दशरथ जी मंगल-विभूति के लिए अपने जीवन से विरत हो गये, अर्थात् प्रभु के स्मरण में प्राण छोड़कर मरण को मंगलमय बना लिया।

सन्दर्भश्लोकः

मृते महीपे विरहे खरद्विषो
रुदत्यशेषे भुवने सकोसले।

जना विलेपुर्नयनाश्रुधारया
धरामिवार्द्रां सकलां विधित्सवः।।१।।

भौमी–इस प्रकार प्रभु श्रीराम के वियोग में महाराज के प्राण त्याग देने पर अयोध्यासहित सम्पूर्ण संसार के रो–रोकर करुणा में मग्न हो जाने पर, सम्पूर्ण पृथ्वी को अपनी अश्रुधारा से गीली करने की इच्छा करते हुए से लोग विलाप करने लगे।

गीत संख्या–२३

राज्यं को नु चालयेत भद्रं भरतं विना।
भद्रं भरतं विना भ्रातरं भरतं विना।
अस्मान् कः सम्भालयेत भद्रं भरतं विना।।१।।
कान्तालका गताः कान्तारं राघवलक्ष्मणसीताः।
सहमाना वनकृच्छ्रमपारं राज्ञो वचः प्रतीता।
लोकान् को नु लालयेत भद्रं भरतं विना।।२।।
जातो रामराजरसभङ्गो दूरः स्वाहाकारः।
कुहू निशा दिशि विदिशि तमिस्रा क्रूरो हाहाकारः।
दीपं को नु ज्वालयेत भद्रं भरतं विना।।३।।
कैकय्या वञ्चितो नरपतिश्चक्रेऽमरपुरियानम्।
विधवा सर्वा राजमातरो जातं पुरं श्मशानम्।
धर्मं को नु पालयेत भद्रं भरतं विना।।४।।
किंकर्तव्यविमूढा गुरवः सचिवा जनाः सुजन्यः
कौसल्याप्रमुखा विलपन्ति विषण्णा रामजनन्यः।
विश्वं कः सुकालयेत भद्रं भरतं विना।।५।।
भ्रातृत्वं भक्तिं प्रेमाणं कः शिक्षयेत जगत्याम्
गिरिधरसदृशान् कोटिवैष्णवान् को दीक्षयेत प्रपत्त्याम्।
नियमं को निभालयेत भद्रं भरतं विना।।६।।

भौमी– भद्र–भरत के बिना, भैया भरत के बिना यह राज्य कौन चला सकेगा? भैया भरत के बिना हम सबको कौन संभालेगा? महाराज दशरथजी के वचन पर विश्वास करके, वन का अपार कष्ट सहन करते हुए, सुन्दर केशों वाले राम–लक्ष्मण–सीता वन को पधार गये। अब भरत–भद्र के बिना इस लोक का लालन–पालन कौन करेगा? श्रीराम का राज्य रस–भंग हो गया अर्थात् राज्याभिषेक में विघ्न पड़ गया। स्वाहाकार अर्थात् यज्ञ बहुत दूर चला गया। अमावस्या की रात आ गयी। दिशाओं और विदिशाओं में अंधकार छा गया। सर्वत्र क्रूर हाहाकार मच गया है। अहो! अब भैया भरत के बिना दीपक कौन जलाये? कैकेयी से ठगे हुये

महाराज दशरथ ने तो इन्द्रलोक में प्रयाण कर लिया और सभी राजमाताएँ विधवा हो गयीं। अयोध्या श्मसान बन गयी, अब बिना भरत-भद्र के धर्म का पालन कौन करेगा? आज गुरुजन, मंत्रीजन, अवध के पुरुषगण और महिलाएँ सभी किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये हैं और कौसल्या आदि सभी श्रीराम-माताएँ व्याकुल होकर रो रही हैं। अरे! भावते भरत के बिना इस संसार को दुष्काल से कौन दूर करे? भातृत्व-भक्ति और प्रेम की संसार में कौन शिक्षा देगा और **गिरिधर** कवि जैसे करोड़ों वैष्णवों को प्रपत्ति में कौन दीक्षित करेगा? भरत-भद्र के बिना नियम का पालन कौन करेगा?

विशेष- यह गीत ''रजिया कौन अब चलावे भैया भरत के बिना।'' इस गीत की ढाल में निबद्ध है।

सन्दर्भश्लोकः

अथानयन् वीशजविष्ठभृत्या मातामहावासत ईड्यकीर्तिम् ।
भ्रात्रा समेतं भरतं निकेतं वायुर्यथामोदमरण्यदेशम्।।१।।

भौमी-इसके अनन्तर गरुड़ 'वीश' अर्थात् गरुड के समान वेगशाली धावक दूत ननिहाल से भाई शत्रुघ्न के साथ पवित्र कीर्तिवाले श्रीभरत को उसी प्रकार श्रीअवध ले आये, जैसे वायु सुगन्ध को वन प्रदेश में ले आता है।

गीत संख्या-२४

भरतः कैकयीं प्रति-

जननि वद कुत्र ममास्ते रामः।
क्वास्ते नृणां प्राणप्रियतमस्त्रिभुवनललितललामः।।१।।
क्वास्ते प्रत्यगात्मसर्वस्वं तनुरुचिजितशतकामः।
क्वास्ते सीतानयनचकोरचन्द्रमाः सततमकामः।।२।।
क्वास्ते दशरथमञ्जुमनोरथरथरथिको निष्कामः।
क्वास्ते भरतजीवजीवातु पतितपावनगुणग्रामः।।३।।
क्वास्ते भारतवर्षप्रजाजनशस्यनीरदः श्यामः।
क्वास्ते लक्ष्मणमूर्तभाग्यमिह कविगिरिधराभिरामः।।४।।

भौमी- ननिहाल से आये हुए भरत कैकेयी से पूछते हैं-हे माँ! बताओ, मेरे भैया राम कहाँ हैं? मनुष्यों के प्राणों के प्रियतम तीनों लोकों के सुन्दर-रत्न श्रीराम कहाँ हैं? हे माँ! अपनी शरीर शोभा से अनेक कामों को जीतने वाले जीवात्माओं के सर्वस्वरूप श्रीराम कहाँ हैं? सीताजी के मित्र चकोरों के चन्द्रमा तथा निरन्तर काम-वासनाओं से बहुत दूर श्रीराम कहाँ हैं? चक्रवर्ती दशरथजी के मनोरथरूप रथ के रथी निष्काम श्रीराम कहाँ हैं और जिनका गुणग्राम पतितपावन है ऐसे मुझ भरत की जीवात्मा की औषधि स्वरूप श्रीराम कहाँ हैं। भारतवर्ष की प्रजारूप खेती के नीले बादल श्रीराम कहाँ हैं और लक्ष्मण जी के मूर्तिमान भाग्यस्वरूप तथा **गिरिधर** कवि को आनन्द देने वाले मेरे प्रभु राम कहाँ हैं?

गीत संख्या-२५

कैकेयी भरतं प्रति-

अलं ते परिदेवनया पुत्र विपिनमभियातो वै रामः।
समाश्वसिहि त्वं श्रितसुखसूत्र विहितभयधातो वै रामः।।
पिता तेऽचिरं गतः स्वर्गं तृणीकृतमागतमपवर्गं यथा स्वं भुक्तं त्रैवर्गम्।
रामविरहेण सदा सुसहेन कष्टनिवहेन भवात् परिपातः परिणामः।।१।।
त्वदर्थं कोसलपुरराज्यं समाप्नुहि पुत्रक वै राज्यं भुङ्क्ष्व निष्कण्टकसत्प्राज्यम्।
भयं परिहाय व्यथां च विहाय चिरस्य सुखाय मया सन्त्रातस्त्वं श्यामः।।२।।
प्रोषितेऽरण्यं रघुवीरे सानुजे वसितवल्कचीरे जनकतनयासहिते धीरे।
सुखी भव तात प्राप्तसुविभात भुवनविख्यात सुखेनायातः स्वारामः।।३।।
गिरिधरेशे दूरं याते गते त्रिदिवं वै त्वत्ताते विदेशात् भवति समायाते।
मुहुर्हृष्यामि मनसि मृश्यामि मनाक् क्लिश्यामि सुदूरं यातः सङ्ग्रामः।।४।।

भौमी- अब कैकेयी भरत जी से कहती हैं-हे पुत्र! यहाँ तुम्हारा विलाप व्यर्थ है, क्योंकि राम तो वन को जा चुके हैं। हे सुख के सूत्रों का आश्रय करने वाले पुत्र! तुम समास्वस्त हो जाओ, क्योंकि रामजी ने तुम्हारे भय का भी घात कर दिया है अर्थात् तुम्हें निर्भय करके निष्कंटक राज्य देकर वे वन को चले गये हैं। हे बेटे! तुम्हारे पिताश्री मर्यादा के अनुसार त्रैवर्ग अर्थात् अर्थ, धर्म,काम का उपभोग करके आये हुए मोक्ष को तिनके के समान ठुकराकर निरन्तर असहनीय कष्ट से युक्त राम विरह के कारण शरीर छोड़कर अभी-अभी स्वर्ग को पधार गये हैं और मैंने परिणाम की संसार के विघ्नों से रक्षा कर ली है। यह अयोध्या का साम्राज्य तुम्हारे लिए है। हे पुत्र! इसको स्वीकारो। हे पुत्र! भय छोड़कर व्यथा को दूर करके, इस निष्कंटक धन-धान्यपूर्ण राज्य का भोग करो। मैंने चिरकालीन सुख के लिए श्यामवर्ण वाले तुम भरत की रक्षा कर दी है। वल्कल वस्त्र धारण किये हुये छोटे भाई लक्ष्मण सहित जनकनन्दिनी सीता के साथ परमधीर रघुबीर श्रीरामजी के वन में भेज दिये जाने पर, हे भुवन में प्रसिद्ध जीवन का स्वर्णिम प्रभात प्राप्त करने वाले भरत! अब तुम सुखी हो जाओ। आत्मीयों का यह उद्यान अर्थात् मंगलमय बगीचा तुम्हारा राज्य-वैभव, सुखपूर्वक तुम्हें प्राप्त हो गया। इस प्रकार **गिरिधर** कवि के प्रभु श्रीराम के दूर चले जाने पर तुम्हारे पिता के स्वर्गवासी हो जाने पर और विदेश से तुम्हारे आ जाने पर मैं बहुत प्रसन्न हो रही हूँ। बार-बार विचार कर रही हूँ, तुम्हारी पिता की मृत्यु पर थोड़ी दुःखी हो रही हूँ, पर कोई बहुत बड़ी बात नहीं है, जन्म लेने वाले के लिए तो मृत्यु अनिवार्य है। हर्ष की बात यह है कि संग्राम अर्थात् युद्ध दूर चला गया। तात्पर्य कि बिना रक्तपात के ही तुम्हें राज्य प्राप्त हो गया।

गीत संख्या-२६

भरतः कैकयीं प्रति-

कैकयि त्वं किमकार्षीः कष्टं विना रामं सकलं नष्टम्।
कुमतभ्राष्ट्रे मम कं भ्रष्टं विना रामं सकलं नष्टम्।।१।।

गतो विपिनं ज्येष्ठभ्राता स्वनुजवनिताभ्यां सत्त्राता सकलसुरनरमुनिसुखदाता।
अयोध्याधाम्नि सुपावननाम्नि महार्घ्यललाम्नि दुर्जरामयं समादिष्टम्।।२।।
गतस्त्रिदिवं विलपंस्तातः अमर्षोत्कर्षः सञ्जातः हर्षसंहर्षोऽप्यायातः।
कलङ्काकुलं विपत्सङ्कुलं व्याकुलं कुलं भयं सन्निरयं निर्दिष्टम् ।।३।।
न वा भवितासि राजमाता दुर्गतिं गमितास्यख्याता पतिघ्नी पापमयी जाता।
माममारयो न वा वारयो सते धारयो विषादं देवैः संसृष्टम्।।४।।
अदृष्ट्वा गृहे गिरिधरेशं न सोढुं क्षमे बहुक्लेशं यीथाशुर्द्रुतं जीवितेशम्।
निजं स्वच्छामि स्वकं यच्छामि वनं गच्छामि जनकजादयितसमाश्लिष्टम्।।५।।

भौमी- अब भरत जी कैकेयी से कहते हैं। अरे कैकेयी! तुमने यह क्या कष्ट उपस्थित कर दिया? बिना राम जी के सब कुछ नष्ट हो गया। तुम्हारे कुत्सित भय के भाड़ में मेरा सम्पूर्ण सुख जल भुन गया। सभी देवता मनुष्यों को सुख देने वाले प्राणियों के रक्षक मेरे ज्येष्ठ भ्राता श्रीराम, भाई लक्ष्मण और धर्मपत्नी सीताजी के साथ वन चले गये। बहुमूल्य रत्नों से युक्त पवित्र नाम वाले अयोध्याधाम में तुमने कभी न नष्ट होने वाले रोग को ही आदेश देकर उपस्थित कर दिया। मेरे पिताश्री रोते-रोते स्वर्ग चले गए। यहाँ क्रोध का उत्कर्ष हो गया और हर्ष का संघर्ष आया, अर्थात् इस घटना ने हर्ष को कुचल दिया। कैकेयी यह कुल कलंक से युक्त हो गया, विपत्ति में डूब गया और व्याकुल हो गया, हमारे लिए नरक और भय निर्दिष्ट हो गया। तुम राजमाता नहीं होने वाली हो, तुम कुख्यात होकर दुर्गति को प्राप्त होगी और तुम पति की हत्यारिन और पापिनी हो गयी हो। तुमने मुझे मार डाला और तुमने रोका भी नहीं और सन्तों के लिए देवताओं से निर्दिष्ट कष्ट उपस्थित कर दिया। भवन में **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम को न देखकर मैं बहुत क्लेश सहन नहीं कर सकूँगा। इसलिए अब मैं अपने जीवन के ईश्वर श्रीराम के शरणों में जाने को इच्छुक हो रहा हूँ। मैं अपने को स्वच्छ करूँगा और अपना सब कुछ प्रभु को अर्पित कर दूँगा और जनकनन्दिनी सीताजी के प्राणधन श्रीराम के द्वारा समालिङ्गित श्रीचित्रकूट वन को जाऊँगा।

गीत संख्या-२७

अरे अरे केकयकुलपांशिनि दूरं मत्तो दूरं याहि।
केकयि यावन्मम दृष्टिरत्र मूर्च्छति ततोऽपि विदूरं याहि।।१।।
अरे अरे केकयनृपक्रन्दिनि दूरं मत्तो दूरं भव।
केकयि यावदत्र जीवति भरतो न तावत्त्वया भाषिष्यते।।२।।
अरे अरे भानुवंशघातिनि दूरं मत्तो दूरं व्रज।
केकयि निलीयस्व क्वचिद् गहनकुञ्जे न भरतो दिदृक्षते।।३।।
अरे अरे पतिप्राणपातिनि दूरं मत्तो दूरं गच्छ।
केकयि गिरिधरप्रभुपदसेवको भरतो न तव सुतः।।४।।

भौमी- हे केकय कुल की कलंकिनी! अब दूर जाओ, मुझसे दूर जाओ। कैकेयी! जहाँ तक मेरी दृष्टि

जा रही है। वहाँ से भी दूर जाओ। हे कैकेयी! कुल को क्रन्दित करने वाली कैकेयी तुम मुझसे दूर हो जाओ और कैकेयी जब तक यह भरत जीवित रहेगा, तब तक तुमसे भाषण नहीं करेगा और सूर्यकुल को नष्ट करने वाली कैकेयी मुझसे दूर जाओ, दूर जाओ। कैकेयी किसी झाड़ी में छिप जाओ, भरत तुम्हें नहीं देखना चाहता। अरे पति के प्राणों को नष्ट करने वाली कैकेयी! मुझसे दूर जाओ, दूर जाओ। कैकेयी **गिरिधर** कवि के प्रभु श्रीराम के चरणों का सेवक भरत तुम्हारा बेटा नहीं है।

गीत संख्या-२८

अरे अरे कोसलपुरो गावो विदूरं यान्तु दूरं यान्तु।
गावः पथानेन रामो वनं यातो भवत्यो न न्यवारयन्त।।१।।
अरे अरे वनमार्गदूर्वा विशुष्यन्तु विशुष्यन्तु।
दूर्वाः पथानेन रामो वनं यातो भवत्यो न न्यबन्धयन्त।।२।।
अरे अरे वनवृक्षलतिका भवत्यो भष्मभूता सन्तु।
लतिकाः पथानेन रामो वनं यातो भवत्यो न न्यषेधन्।।३।।
अरे अरे निष्ठुरविधातः कं भरतो विक्रोशतु।
यो वै गिरिधरस्वामिनमपश्यन् सुखेन पापी जीवति।।४।।

भौमी- हे अयोध्यापुर की गौवों! दूर चली जाइये, दूर चली जाइये। गौएँ इसी मार्ग से श्रीराम वन को गये और आप लोगों ने भी नहीं रोका। अरे-अरे वन मार्ग की दूर्बाओं (घास)! तुम सूख जाओ, सूख जाओ। दूर्बाओं, इसी मार्ग से श्रीराम वन को गये और आप लोगों ने भी चरणों में लपेटकर उन्हें नहीं रोका। अरे-अरे वन की लताओं, तुम जल जाओ जल जाओ। लताओं, इसी मार्ग से श्रीरामजी वन को गये और आप लोगों ने भी नहीं रोका। अरे निष्ठुर विधाता! भरत किसको कोसे। जो पापी भरत **गिरिधर** के प्रभु श्रीराम को न देखता हुआ भी सुख से जी रहा है।

विशेष- ये दो गीत अवध की एक आँचलिक लोक धुन की ढाल में निबद्ध है। उसका बोल है- ''अरे अरे बनवों की गैया तुम दूरी फराके जाहु गैया, यहि वन राम मोर गइले तुहहु न बरजलू।''

सन्दर्भश्लोकः

अथ विधिवदनुज्ञां प्राप्य संस्कृत्य तातम्
नलिनजननसूनोर्बाष्पसंक्लिन्ननेत्रः ।
अधिसभमृषिवर्यै राज्यकार्ये नियुक्तो
भरत इदमवोचत् प्राञ्जलिः सर्वसभ्यान्।।१।।

भौमी-इसके अनन्तर कमलजन्मा ब्रह्माजी के पुत्र वसिष्ठजी की आज्ञा पाकर पिताश्री दशरथ का विधिवत संस्कार करके ऋषिगणों द्वारा राज्य में नियुक्त किये हुये भरतजी नेत्रों में अश्रु भरकर हाथ जोड़कर सम्पूर्ण सभासदों से राजसभा में इस प्रकार बोले।

गीत संख्या-२९

भरतः पौरान् प्रति-

अथाऽयोध्यामवन् भरतो विना रामं करिष्ये किम्।
श्लथाऽयोध्यामवन् भरतो विना रामं करिष्ये किम्।।
यथा देहं विना प्राणं यथा गेहं विना त्राणम्।
तथाऽयोध्यामवन् भरतो विना रामं करिष्ये किम्।।१।।
यथा ज्वालां विना दीपं यथाऽम्मालां विना द्वीपम्।
तथाऽयोध्यामवन् भरतो विना रामं करिष्ये किम्।।२।।
यथा पीवा विना शक्तिं यथा जीवा विना भक्तिम्।
तथाऽयोध्यामवन् भरतो विना रामं करिष्ये किम्।।३।।
अतो गत्वा वनं गिरिधरप्रभुं भक्त्या भजिष्येऽहम्।
वृथाऽयोध्यामवन् भरतो विना रामं करिष्ये किम्।।४।।

भौमी- अब भरत नगरवासियों के प्रति कहते हैं। अब मैं भरत बिना रामजी के इस अयोध्या की रक्षा करता हुआ भी क्या कर लूँगा? मैं भरत इस शिथिल अयोध्या को मूर्तरूप देता हुआ भी बिना श्रीराम के क्या करूँगा? जैसे प्राण के बिना शरीर, जैसे रक्षक के बिना घर, उसी प्रकार श्रीराम के बिना इस अयोध्या को प्राप्त करके भी मैं क्या करूँगा? जिस प्रकार ज्वाला के बिना दीपक और जिस प्रकार जल की तरंग, अम्भाला के बिना द्वीप (टापू), उसी प्रकार बिना श्रीराम के इस अयोध्या का पालन करता हुआ भी मैं क्या करूँगा? जिस प्रकार स्थूल शरीर वाला व्यक्ति बिना शक्ति के निरर्थक, और भक्ति के बिना जीव उसी प्रकार श्रीराम के बिना मैं भरत अयोध्या को पालता हुआ भी क्या करूँगा? इसलिए अब वन जाकर मैं **गिरिधर** कवि के प्रभु श्रीराम की भक्ति से भजन करूँगा। क्योंकि श्रीराम के बिना इस व्यर्थ अयोध्या का रक्षण करता हुआ भी मैं क्या करूँगा?

विशेष- इस गीत में प्रयुक्त 'भजिष्ये' शब्द निश्चित रूप से वैयाकरणों के लिए विस्मयाष्पद हो सकता है क्योंकि 'भज्' धातु अनिट् कारिका में पढ़े जाने के कारण इट् भिन्न होने से ऌट् लकार में भी इट् से रहित ही रहेगा और वहाँ भक्ष्ये प्रयोग बनेगा। जबकि मैंने जानबूझकर भजिष्ये शब्द का प्रयोग किया है यह अपाणिनीय नहीं है और न ही पाणिनीय व्याकरण से विरुद्ध है, यहाँ भज् धातु से भाव से अच् प्रत्यय करके पुनः आचार में क्विप् प्रत्यय करके पुनः कर्म व्यतिहार में आत्मने पद करके ऌट् लकार उत्तम पुरुष एकवचन में 'भजिष्ये' पद निष्पन्न हो जायेगा। व्युत्पत्ति इस प्रकार होगी- भजनं भजः भजं करिष्ये इति भजिष्ये। यदि कर्म में अच् प्रत्यय करें तो भज्यते इति भजः। भजं करिष्ये अर्थात् भजनं विषयम् करिष्ये इति भजिष्ये। इसी प्रकार अव धातु के अनेक अर्थो के कारण मैंने इस गीत में छः बार अयोध्यामवन् शब्द का प्रयोग करके यमक अलङ्कार प्रस्तुत किया है।

गीत संख्या-३०

अन्यच्च-

यथा शर्वरी सर्वशोचिः प्रहीणा, यथाऽशाऽम्बरी चण्डरोचिर्विहीना।
यथा सुन्दरी नायकेनाथहीना, तथैवान्तरा राघवं रौत्ययोध्या।।१।।
यथा भामिनी भग्नधम्मिल्लभाला, यथा यामिनी कापि कुह्वां कराला।
यथा दामिनी दूरवारिदरसाला, तथैवान्तरा राघवं रौत्ययोध्या।।२।।
यथोषा विना नोरुसूतप्रकाशं, यथैन्द्री विना दिक्दिनेशार्यहासम्।
यथा देवभाषा विना शब्दकाशं, तथैवान्तरा राघवं रौत्ययोध्या।।३।।
यथा सत्तनुः प्राणवर्जं विवर्णा, यथा सन्मनुर्नष्टमन्त्रार्यवर्णा।
यथा सज्जनुर्जातसाङ्कर्यकर्णा, तथैवान्तरा राघवं रौत्ययोध्या।।४।।
ततश्चित्रकूटं वयं भो व्रजाम, प्रयत्नैः कुकूटं त्रिकूटं त्यजाम।
गिरा गिरिधरस्यापि गीतं सृजाम, सदैवान्तरा राघवं रौत्ययोध्या।।५।।

भौमी- और भी–जैसे रात्रि सर्व अर्थात् शंकर जी को भी प्रकाश देने वाले चन्द्रमा से रहित होकर नहीं शोभित होती। जिस प्रकार आशा अम्बर अर्थात् आकाश दिशा सूर्यनारायण से रहित होकर अशोभनीय लगती है। जिस प्रकार सुन्दरी महिला पति के बिना अशुभ लगती है उसी प्रकार श्रीराम के बिना यह अयोध्या रो रही है। जिस प्रकार महिला सिन्दूर या बिंदिया के बिना सुन्दर नहीं लगती और जिस प्रकार अमावस्या को पाकर रात्रि भयंकर लगती है जिस प्रकार बरसाती मेघ के बिना बिजली अर्थहीन होती है उसी प्रकार मेरे राघव के बिना अयोध्या रो रही है। जिस प्रकार प्रभात बेला अरुण के प्रकाश के बिना भयंकर लगती है जिस प्रकार सूर्यनारायण के मुस्कान के बिना पूर्व दिशा भयंकर लगती है जिस प्रकार देवभाषा व्याकरण बोध के बिना शोभा नहीं पाती, उसी प्रकार राघवजी बिना यह अयोध्या रो रही है। जिस प्रकार प्राण के बिना सुन्दर शरीर विवर्ण हो जाता है जिस प्रकार श्रेष्ठ मन्त्र स्वर और वर्ण के बिना निस्तेज हो जाता है और जिस प्रकार सुन्दर जाति वर्ण-सांकर्य से नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार यह अयोध्या राघवजी के बिना रो रही है। इसलिए हे सभासदों! अब हम चित्रकूट चलें और प्रयत्न करके इस कपट के कूट त्रिकूट को छोड़ दें और **गिरिधर** कवि की वाणी में प्रभु श्रीराम के गीतों को रच-रचकर गायें। राघव के बिना यह अयोध्या सदैव रोती रहेगी, अतः इसे प्रसन्न करने के लिए श्रीराघव को लायें और भविष्यत् काल में भी श्रीराम का उन्हीं की जन्मभूमि पर भव्य मंदिर बनायें।

गीत संख्या-३१

भरतो मार्गवासिनः प्रति-

दीनबन्धुर्धुन्वन्धनुः केनापि मम रामो दृष्टः।
कृपासिन्धुर्धुन्वन्धनुः केनापि सीतारामो दृष्टः।।

सीतालक्ष्मणानुचरो जटाजूटधारी केन पथा गतो मम दण्डकविहारी।
दण्डेन दाम्यद्दनुः केनापि पूर्णकामो दृष्टः।।१।।
कटिलसन्मुनिपटः काण्डचण्डचापः सनिषङ्गो गतसङ्गो द्युमणिप्रतापः।
दृढव्रत प्रसीदन्मनुः केनापि लोकरामो दृष्टः।।२।।
अनुपानम्पादपद्मोऽप्यञ्चन्भूमिभागं मण्डयन्नमण्डनोऽपि सज्जनानुरागम्।
गुणैः परिरञ्जयन् जनुः केनापि जनारामो दृष्ट।।३।।
तमालः प्रदर्शयतु सुतमालनीलं रसालो निदर्शयतु रसरम्यशीलम्।
नवकन्दतुल्यत्तनुः केनापि श्यामाश्यामो दृष्टः।।४।।
कोला भिल्ला भणत भणत रघुवीरं श्रितगिरिधरकविसुमनःकुटीरम्।
छविजिततपनसूनुः केनापि स्वाभिरामो दृष्टः।।४।।

भौमी–भरतजी मार्गवासियों से पूछ रहे हैं–हे मार्गवासियों! तुम में से किसी ने धनुष को फेरते हुए दीनबन्धु श्रीराम को देखा है। तुममें से किसी ने धनुष को घुमाते हुए श्रीराम को देखा है। श्रीसीता एवं श्रीलक्ष्मण जिनके अनुचर हैं, ऐसे पीताम्बरधारी दण्डकबिहारी मेरे श्रीराम किस मार्ग से गये हैं? दण्ड से दनुवंशियों का दमन करने वाले मेरे श्रीराम को तुममें से किसी ने देखा है। कटि तट पर बल्कल वस्त्र धारण किये हुए, हाथ में बाण और भयंकर धनुष लिये हुये तरकश धारण किये हुए, आसक्तिरहित सूर्य के समान प्रतापी अपने दृढ़ व्रत से मनु को भी प्रसन्न करने वाले ऐसे लोकाभिराम श्रीराम को तुममें से किसी ने देखा है? चरणकमल में पदत्राण न पहने हुए पृथ्वी पर चलते हुए, आभूषण रहित होकर भी सज्जनों के स्नेह को सुशोभित करते हुए और अपने गुण से मानव जन्म को सुखी करते हुए, भक्तों को आनन्द करने वाले श्रीराम को तुममें से किसी ने देखा है? हे तमाल वृक्ष! आप तमाल नील श्रीराम के दर्शन करा दीजिए। हे आम्र! आनन्द से रमणीय स्वभाव वाले श्रीराम का निदर्शन अर्थात् संकेत करा दीजिए। नवीन मेघ के समान श्याम–विग्रह श्रीराम को तुममें से किसी ने देखा है। हे कोल भीलों! **गिरिधर** कवि के मनरूप कुटीर में विराजमान श्रीराम के विषय में बताओ, बताओ। अपनी छवि से सूर्यपुत्र अश्विनी कुमारों को जीतने वाले आत्मीय जनों को रमाने वाले श्रीराम को तुममें से किसी ने देखा है।

गीत संख्या–३२

कोलकिराताः श्रीभरतं प्रति–

मनसि धर धैर्यं राजकुमार।।
न चिराद् द्रक्ष्यसि सीतारामौ तनुसुषमाजितशतरतिकामौ।
स्रक्ष्यसि परमानन्दजनितनयनाश्रुस्रजं सुकुमार।।१।।
न चिराद् द्रक्ष्यसि पर्णकुटीरं परिमण्डितमन्दाकिनीतीरम्।
चित्रकूटकाननकमनीयसमीरं सज्जनहार।।२।।

न चिराद् भद्र भरिष्यसि भावं ललितलक्ष्मणे हतदवदावम्।
न चिरात् परिरप्स्यसे सुमित्रासुतं सुजनशृङ्गार।।३।।
न चिरान् मैथिलीचरणसरोजे परिलुण्ठिष्यसि मथितमनोजे।
सीताकरसरसिजस्पर्शसुखमेष्यसि परमोदार।।४।।
न चिरात्त्यक्ष्यसि विरहजतापं गिरिधरेशपदहतपरितापम्।
भरत गीतसीताभिरामहृदि विहर सदा सुखसार।।५।।

भौमी- अब कोल-किरात श्रीभरत के प्रति कह रहे हैं-हे राजकुमार! आप मन में धैर्य धारण कीजिए। हे भरत-भद्र! आप शीघ्र ही अपनी शोभा से करोड़ों कामों को जीतने वाले सीतारामजी के दर्शन करेंगे और हे सुकुमार! आप बहुत शीघ्र ही श्रीराम दर्शन से उत्पन्न परमानन्द से उदभूत आँसुओं की माला का भी सृजन करेंगे। हे सज्जनों के हार! आप शीघ्र ही चित्रकूट वन के कमनीय वायु से युक्त मन्दाकिनी के अलंकार स्वरूप श्रीराम के पर्णकुटीर के दर्शन करेंगे। हे सज्जनों के शृंगार भरतजी! संसार के आचार्य श्रीलक्ष्मण पर भव-दावाग्नि को नष्ट करने वाला दिव्य-भाव दर्शन आप शीघ्र धारण करेंगे और शीघ्र ही सुमित्रा पुत्र लक्ष्मण का आलिंगन भी करेंगे। हे परम उदार भरतजी! आप शीघ्र ही कामवासना को नष्ट करने वाले सीताजी के चरणकमल पर लोटेंगे और शीघ्र ही जनकनन्दिनीजी के करकमल के स्पर्श सुख का आनन्द प्राप्त करेंगे। हे भजन सुख के सारसर्वस्व भरत! आप शीघ्र ही **गिरिधर** कवि के ईश्वर श्रीराम के चरण से जहाँ जीव का समस्त ताप नष्ट हो गया है ऐसे विरह से उत्पन्न ताप को शीघ्र छोड़ देंगे और हे भरत! गीतसीताभिराम श्रीराम के हृदय में आप शीघ्र विहार करेंगे।

गीत संख्या-३३

भरतो दण्डवद् प्रणमन् श्रीरामं प्रति-

राम राघव भरतमेनं पाहि पापात् पाहि।
कलितलाघव भरतमेनं त्राहि तापात् त्राहि।।१।।
चित्रकूटे मां निवास्य प्रभो अयोध्यां याहि।
मनाङ्नाथ समातृविहिते न खलु रुषमायाहि।।२।।
देव यदि नहि रोचते मदनुचरितः पुरमेहि।
राम राजा भव त्रिलोक्याः मङ्गलं भुवि धेहि।।३।।
मा प्रहिणु मां दीनबन्धो दीनतां विदुनीहि।
क्रन्दतो गिरिधरस्यापि भवाटवीं प्रलुनीहि।।४।।

भौमी- अब भरत दण्डवत प्रणाम करके श्रीराम के प्रति कहते हैं-हे राम, हे राघव! इस भरत को पाप से बचा लीजिए, बचा लीजिए। हे हस्तलाघव से युक्त प्रभु! इस भरत की तीनों तापों से रक्षा कीजिए। हे नाथ! चित्रकूट में मुझे प्रवासित करके आप अयोध्या पधारें और कैकेयी माँ के कुकृत्यों पर कुछ भी क्रोध न करें। हे देव! यदि आपको यह पथ न भाता हो तो आप मेरे सेवकत्व में अयोध्या चलिए। हे श्रीराम! आप तीनों

लोकों के राजा बनें पृथ्वी का मंगल करें। हे दीनबंधों! मुझे मत भेजिए, मेरी दीनता को नष्ट कीजिए और क्रन्दन करते हुए **गिरिधर** कवि की भी भवाटवी को काट डालिए।

गीत संख्या-३४

श्रीरामो भरतं प्रति-

भरतभद्र मा चित्ते सङ्ग्लाय।।
स्मारं स्मारं जननिकृतं भो मा विकलो विग्लाय।
मा परिताप्य तपनकुलमण्डन मनाङ् मनसि माम्लाय।।१।।
गच्छायोध्यां शिरषि पादुके त्वं मामिके निधाय।
राज्यं शाधि साधिकारं न्यक्कारं समं विहाय।।२।।
भ्रातर्भरत भातृभक्त्या भक्तः सततं मां ध्याय।
गिरिधरगिरा गीतसीताभिराममिह गीतैर्गाय।।३।।

भौमी- अब श्रीराम भरत के प्रति कहते हैं- हे भरत-भद्र! तुम अपने चित्त में ग्लानि मत करो। माँ के कुकृत्य का स्मरण कर करके विकल होकर व्याकुल मत होओ। हे सूर्यकुल के आभूषण! पछतावा मत करो और मन में थोड़ा-सा भी दुःखी मत होओ। मेरी पादुका को सिर पर लेकर अयोध्या जाओ और सभी तिरस्कारों को छोड़कर साधिकार राज्य शासन करो। हे भैया भरत! मुझे भातृ-भक्ति से ही कुशल भक्त बनकर ध्यान का विषय बनाओ और मुझ गीत सीताभिराम को **गिरिधर** कवि की वाणी द्वारा गाये हुए गीतों से निरन्तर गाते रहो।

गीत संख्या-३५

पादुके गृहीत्वा भरतः श्रीरामं प्रति-

रघुपते यामि पुरीं निरुपायः।।
किं कर्तुं शक्नोमि नाथ पातकी प्रकटितापायः।
शिरसादेशं वहन्नहह प्रेये पादुकासहायः।।१।।
विधिना कुजननिजठराज्जनितस्त्वद्वनवासनिमित्तम्।
धिङ् मां पापमहाकूपारं किमाश्वासये चित्तम्।।२।।
यावदवधि ते वचः पालयन् प्राणान् प्रभो धरिष्ये।
पश्चादनालोकयंस्तव पदमग्निं गतिं करिष्ये।।३।।
इत्युक्त्वा सीताभिराममथ नत्वाऽयोध्यां यातः।
प्रभुविरहेण मुमुर्षू रामपादुकाभ्यां वै त्रातः।।४।।
नन्दिग्रामे कुटीं कृतवतो गर्तो वसतिर्जाता।
भणति गिरिधरो नहि त्रिकाले भरतसमो भुवि भ्राता।।५।।

भौमी- पादुका ग्रहण करके भरतजी अब श्रीराम के प्रति कहते हैं-हे रघुपते! अब मैं उपायहीन होकर श्रीअयोध्या जा रहा हूँ। हे नाथ! मैं कर ही क्या सकता हूँ क्योंकि दोषों को प्रकट करने वाला मैं पापी हूँ और पादुका को ही सहायक मानकर आपका आदेश सिर पर धारण करते हुए अब मैं चल रहा हूँ। विधिवशात् दुष्ट माता के गर्भ से जन्म लेने के कारण आपके वनवास का निमित्त बने हुए मुझ पाप समुद्र को धिक्कार। मैं अपने चित्त को क्या आश्वासन दूँ? आपकी वाणी का पालन करते हुए चौदह वर्ष अवधिपर्यन्त अपने प्राणों को धारण करूँगा। इसके पश्चात् आपके दर्शन न पाकर अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगा। इस प्रकार सीताभिराम श्रीराम से कहकर श्रीभरत अयोध्या को पधारे। प्रभु के विरह में आसन्न मरण होते हुए भी भरतजी की श्रीराम चरणपादुकाओं ने रक्षा कर ली। नन्दी ग्राम में कुटी बनाकर नीचे खोदा हुआ भू सेना गड्ढा (भूमि में खोदी हुई गुफा) भरत जी का निवास स्थली बनी। **गिरिधर** कवि कहते हैं कि भरत के समान तीनों कालों में, तीनों लोकों में कोई भ्राता नहीं है।

गीत संख्या-३६

माण्डवी स्वगतम्-

राघवो मैथिलीलक्ष्मणाभ्यां युतः कान्त मात्रा निरागाश्च विप्रोषित-
श्चक्रवर्ती पुरन्दरपुरं प्रापितो हे हरे ह्रीमती किं लपेन्माण्डवी।।१।।
द्यौर्यदा कर्मनाशां समासावयेत् गौर्यदा निर्जराणां विषं च्यावयेत्।
नौश्च पान्थान् यदा पाथसि प्रावयेत् हे हरे ह्रीमती किं रपेन्माण्डवी।।२।।
यद्धि मान्या भवेद्धव्यवाट् वर्षणं चेत् क्षमा यातु मन्युं सुदुर्मर्षणम्।
ज्योत्स्नया दीयते चेद् गराकर्षणं हे हरे ह्रीमती किं चपेन्माण्डवी।।३।।
चेत् सुधादीर्घिका कालकूटं वहेत् यद्यसौ शीतरश्मिश्चकोरं दहेत्।
दुर्लिपिं लेखितुं धाता चेदुत्सहेत् हे हरे ह्रीमती किं जपेन्माण्डवी।।४।।
आर्यपुत्रो वनात् कोसला नागतः पादुकासन्नतो गिरिधरेशं श्रितः।
नान्दनीवाटिका विषफलोत्पादिनी हे हरे ह्रीमती किं वपेन्माण्डवी।।५।।

भौमी- माण्डवी अपने मन में कह रही हैं-श्रीराघव मेरे पति की माँ कैकेयी की हठ-धर्मिता से निरपराध होने पर भी सीताजी एवं लक्ष्मण जी के साथ वनवास भेज दिए गए। चक्रवर्ती श्वसुर दशरथजी शरीर छोड़कर इन्द्रलोक चले गए। हे भगवान लज्जावती माण्डवी! किसको क्या कहे? यदि स्वर्ग के अभिमानी देवता गंगा के बदले कर्मनाशा को उत्पन्न करने लग जाये और यदि देवताओं की गौ कामधेनु अमृत दुग्ध के बदले विष चुआने लग जाए और यदि नौका यात्रियों को जल में डुबो दे तो इस स्थिति में लज्जावती माण्डवी किसको क्या कहे? यदि हिमानी अर्थात् बर्फ के समूह से अग्नि की वर्षा होने लग जाए और यदि स्वाभाविक क्षमाशील पृथ्वी भयंकर क्रोध कर ले और यदि चन्द्रमा की चाँदनी अमृत को छोड़कर विष का आकर्षण स्वीकार ले तो हे हरे! ऐसी परिस्थिति में माण्डवी क्या बोले? यदि अमृत की बावली विष को प्रवाहित करने लग जाए यदि चन्द्रमा चकोर को भस्म करने लगे, यदि विधाता ही मस्तक पर दुर्भाग्य की रेखा लिखने का मन बना ले, तो हे हरे! इस परिस्थिति में माण्डवी किसका जप करे? अब मेरे आर्यपुत्र भरत जी पादुका जी को लेकर वन से श्रीअवध पधार आए हैं। वे निरन्तर पादुकाजी की पूजा कर रहे हैं और **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम के नाम

रूप लीला धाम का चिन्तन करते हुए उन्हीं को आश्रय बनाकर प्राणों को रखें हुए हैं। यदि नन्दनवन की वाटिका विषफल को उत्पन्न कर रही हो तो हे हरे! माण्डवी उसमें किसका बीज बोए। माण्डवी सब श्रीसीताराम जी पर छोड़ रही है। परिणाम मंगलमय होगा।

उपसंहारश्लोकः

इत्थं सीतावरविरहजं तापमालम्बमानो
नन्दिग्रामे तरुणजटिलो वल्कली गर्तशायी।
यावत् सिन्धुद्विगुणशरदो गीतसीताभिरामं
रामं ध्यायन्निहह भरतो भक्तिभव्यो व्यनैषीत्।।१।।

भौमी–इस प्रकार श्रीसीतापति रामचन्द्र के विरह से उत्पन्न ताप को स्वीकार करते हुए भक्ति के कल्याण से युक्त श्रीभरत नन्दीग्राम में तरुण होकर भी जटाधारण करके वल्कल वस्त्र धारण किए हुए भूमि में खुदे हुए गड्ढे में शयन करते हुए चौदह वर्ष की अवधि गीतसीताभिराम का स्मरण करते हुए बिता दिये।

इति

श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरमहाकविजगद्गुरुरामानन्दाचार्यस्वामिरामभद्राचार्यगिरिधरकविप्रणीते गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये अयोध्याकाण्डे गीतायोध्यकविरहालम्बनो नाम अष्टमः सर्गः।।

इस प्रकार श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर महाकवि जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य गिरिधरकवि द्वारा विरचित गीतरामायण 'गीतसीताभिराम' नामक संस्कृत गीतमहाकाव्य के अयोध्याकाण्ड में गीतायोध्यकाविरहालम्बन नामक अष्टम सर्ग सम्पन्न हुआ।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

।।श्रीः।।

।। नमो राघवाय।।

गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये
अयोध्याकाण्डे
गीतचित्रकूटमण्डनो नाम
नवमः सर्गः

मङ्गलाचरणम्

मन्दाकिनीकाननकुञ्जचारी
सीतामनोऽरण्यरहोविहारी ।
भग्नत्रिकूटः श्रितचित्रकूटः
श्रीराघवो मङ्गलमातनोतु।।१।।

भौमी- अब महाकविजी अयोध्याकाण्ड के समापन सर्ग का प्रस्ताव करते हुए आशीर्वादात्मक मंगलाचरण उपस्थित करते हैं। मंदाकिनी नदी के तट पर विराजमान वन के कुञ्जों में भ्रमण करने वाले सीताजी के मनरूप वन में एकान्त विहार करने वाले भक्तों के तीनों काम, क्रोध, लोभात्मक कूटों को नष्ट करने वाले श्रीचित्रकूट विहारी राघव सरकार हम सबका मंगल करें।

सन्दर्भश्लोकौ

अथ गते भरते भरते पुरं
पुरपुरन्ध्रिविवर्णकृदीडितः ।
रघुवरो रमयन् जनकात्मजाम्
सुरसरित्पुलिनानि समाश्रयत्।।१।।
स विजहार विहारविधाचण-
श्चरणजातटकुञ्जगृहेष्वथ ।
वनितयाऽनितयाऽनितयाऽनितः
सुमनसां वनिता नितया श्रिया।।२।।

भौमी- इसके अनन्तर भगवद्-भाव में निरत भरतजी के श्रीअवध पधार जाने पर पुरांगनाओं को विवर्ण करने वाली देववधूओं के द्वारा स्तुत्य भगवान श्रीराम, जनकनंदिनी सीताजी को रमाने के लिए

स्वर्गगंगा की धारा मंदाकिनी जी की तटों का आश्रय लिये। इसके पश्चात् देवताओं की वनिताएँ जिन्हें नहीं प्राप्त कर सकीं और जो श्रीराम के अतिरिक्त और किसी पुरुष द्वारा प्राप्त नहीं की जा सकीं तथा जिन्होंने श्रीराम के अतिरिक्त और किसी का स्वप्न में भी अनुगमन नहीं किया। ऐसी युवावस्था संपन्न, प्रभु में पूर्ण अनुरागवती श्रीसीताजी के साथ अपनी चरण से प्रकट मंदाकिनी जी के तटों पर विराजमान कुंजगृहों में विहारकला में कुशल भगवान राम विहार करने लगे।

गीत संख्या-१

कविर्गायति-

विहरति चित्रकूटभुवि रामः।।
मन्दाकिनी पुलिनकुञ्जेषु वामदिशि वामितवामः।
आरामे जितविवुधारामे व्रीडितशतरतिकामः।।१।।
मधौ मधुमथनमहितमाधुरी मदनमधुरपरिणामः।
परीरम्भसंरम्भदम्भविश्रम्भमनसिजोद्दामः ।।२।।
दशनवसनशुचिचषकसमर्पितसीधुमोदितश्यामः।
मुक्तहाससुविलासरासरसरञ्जितदयिता क्षामः।।३।।
किसलकमलदलकल्पिततल्पसमाकल्पितविश्रामः।
जयति गीतसीताभिरामरामो गिरिधराभिरामः।।४।।

भौमी- अब स्वयं महाकवि गा रहे हैं–श्रीचित्रकूट की भूमि पर श्रीराम विहार कर रहे हैं। अपने वाम भाग में विराजमान अन्य सुंदरियों को भी प्रतिकूल करने वाली सीताजी के साथ मंदाकिनी तटवर्ती कुंजों में श्रीराम विहार कर रहे हैं। देवताओं के उद्यान को भी जीतने वाले, सुंदर उद्यान में कोटि-कोटि रति-काम पर विजय प्राप्त किये हुए श्रीराम विहार कर रहे हैं। वसन्त के समय मधुसूदन विष्णु के द्वारा भी जिनकी माधुरी की पूजा की गई है, जिनका परिणाम कामदेव के लिये भी मधुर है, ऐसे प्रभु आलिंगन के प्रारंभ द्वारा दंभ के विश्राम से युक्त अलौकिक उन्मुक्त काम कला से सम्पन्न श्रीराम चित्रकूट में विहार कर रहे हैं। रामजी दन्तावली के वस्त्रस्वरूप अधररूप पवित्र पात्र से समर्पित सीधु रस द्वारा मुग्धानायिका सीताजी को प्रसन्न करने वाले उन्मुक्त हास, शोभन और मर्यादित विलास तथा निन्यानवे महारासों की शृंखला से, वन के क्लेश से दुर्बल प्रियतमा सीताजी का रञ्जन करते हुए श्रीचित्रकूट में विहार कर रहे हैं। पल्लव और कमलदल से रचित शैय्या पर विश्राम करते हुये, **गिरिधर** कवि को आनन्द देने वाले गीतसीताभिराम सदैव सभी से उत्कृष्ट रूप में विराज रहे हैं।

विशेष- यह गीत हवेली पद्धति में निबद्ध है।

गीत संख्या-२

विहरति चित्रकूट इह सीता।।
अभिरामेण समं रामेण प्राणप्रियप्रेमप्रतीता।

मन्दाकिनीललिततीरेषु समाश्रितभावमभीता।।१।।
अदूषणाश्रितकुसुमभूषणा दूषणरिपुहृदि नीता।
खेलति दयितशुभाङ्कमङ्कमधिरूढा विनयविनीता।।२।।
धातुरागरक्ताङ्गी मृद्वङ्गी सत्सङ्गसुनीता।
मैथिलयागापूर्वमयतनुः वैदिकधर्मप्रणीता।।३।।
तनु सुषमाजितमनसिजवामा प्रियतमप्रीतिपरीता।
सौदामिनीस्वर्णवरवर्णा वर्णिनी जगति सुप्रीता।।४।।
श्रीरामं रमयन्ती दमयन्ती कलिमलं पुनीता।
रामचन्द्रमुखचन्द्रचकोरी विलसति गिरिधरगीता।।५।।

भौमी- अभिरमण कराने वाले भगवान श्रीराम के साथ, प्राणप्रिय प्रभु के प्रेम और विश्वास की पात्र सीताजी इसी चित्रकूट में विहार कर रही हैं। मन्दाकिनी के सुंदर तटों पर दिव्य भावों को प्राप्त करके निर्भीकता से सीताजी विहार कर रही हैं। सीताजी निर्दोष होती हुई, पुष्पों के आभूषणों से सजी हुई, दूषण के शत्रु श्रीराम के हृदय में विराजमान होती हुई, विनय से प्रशिक्षित होकर सुंदर लक्षणों से युक्त श्रीराम के अङ्क में अधिरूढ़ होकर खेल रही हैं। सीताजी के सभी अंग आज धातु के रंग से रंग गये हैं। वे सत्संग के भाव में निरन्तर मग्न रहती हैं। मिथिलापति जनक के यज्ञ का अपूर्व फल ही उनका शरीर है और वे वैदिक-धर्म की रक्षा के लिये ही आविर्भूत हुई हैं। अपने शरीर की शोभा से कामदेव की पत्नी को जीतने वाली और प्रभु की प्रीति से व्याप्त स्वर्ण वर्ण वाली बिजली जैसी तथा श्रेष्ठ वर्णिनीयों के जगत में सम्मान प्राप्त सीताजी श्रीचित्रकूट में विहार कर रही हैं। श्रीराम को रमाती हुई कलियुग के मल नष्ट करती हुई परम पवित्र व्यक्तित्व वाली श्रीराम के मुखचंद्र की चकोरी, **गिरिधर** कवि द्वारा गायी जाने वाली जनकनंदिनी सीताजी सुशोभित हो रही हैं और विहार भी कर रही हैं।

गीत संख्या-३

रमयति सुरामा रामं हे चित्रकूटे वसन्तम्।
विश्रमयति सुश्रामं हे जटाजूटे लसन्तम्।।
मन्दाकिनीतीरे राजन्निकुञ्जे सौरभसुकिलयकलितसुखपुञ्जे।
शमयति दयितमकामं हे चित्तशान्तिं कषन्तम्।।१।।
लक्ष्मणकलितलघुलाघवकुटीरे मलयमञ्जुमारुतसुरभिनदीनीरे।
सुखयति सुखितनिजारामं हे मन्दं मन्दं हसन्तम् ।।२।।
बद्धवरवाहुबल्लीप्राणपतिकण्ठे लब्धहरिमनोमल्ली रमेव वैकुण्ठे।
मृडयति मृडसुप्रणामं हे वन्यवेषं सुसन्तम्।।३।।
भावभव्यभाषया भवं च भाषयन्ती पुरविप्रयोगव्यथां प्रभोर्नाशयन्ति।
सदा गीतसीताभिरामं हे गिरिधरेशं रसन्तम् ।।४।।

भौमी- आज चित्रकूट में निवास कर रहे श्रीराम को उनकी प्राणप्रिया सीताजी रमा रही हैं। जटाजूट से सुशोभित होते हुए मृगया से श्रांत श्रीराम को सीताजी विश्राम करा रही हैं। आम्र के पल्लवों से जहाँ सुख पुंजीभूत हो रहा है, ऐसे मंदाकिनी तट पर विराजित कुंज में चित्त की शान्ति चाह रहे श्रीराम के श्रम को सीताजी दूर कर रही हैं और शान्त्यभिलाषी श्रीराम को रमा रही हैं। जहाँ मलय के मधुर वायु द्वारा मंदाकिनी का जल भी सुगंधित कर दिया गया है ऐसे लक्ष्मण द्वारा रचित सुंदर पर्णकुटी में अपने भक्तों को सुख देने वाले मन्द-मन्द मुस्कुरा रहे श्रीराम को सीताजी सुखी कर रही हैं। प्रभु के मनोमल्लिका को प्राप्त की हुई वैकुण्ठवासिनी रमा की भाँति अपने प्राणपति श्रीराम के गले में बाहुलता को डालकर गलबहियाँ दी हुई सीताजी शिव के द्वारा प्रणत श्रीराम को प्रसन्न कर रही हैं। अपने भाव से भव्य भाषा द्वारा प्रभु को भाषित करती हुयी और प्रभु के नगर वियोग दु:ख को नष्ट करती हुई और निरन्तर **गिरिधर** कवि के स्वामी आनंदानुभव कर रहे गीतसीताभिराम श्रीराम को जानकीजी आनंदित कर रही हैं।

गीत संख्या-४

मलयसमीरे मन्दाकिनीतीरे किसलयपर्णकुटीरे।
मधुकरमुखरकरम्बितकूजति कोकिलमञ्जुलकीरे।।
विपिने लसत सीतारामौ धृतमुनिवेषौ
हरिहरशेषौ छविनिन्दितरतिकामौ।।१।।
क्वचिल्लसन्तौ क्वचिद्धसन्तौ क्वचिद्रहो रममाणौ।
क्वचिदभिबद्धकण्ठभुजलतिकौ वनकुञ्जं क्रममाणौ।।२।।
क्वचिदज्ञातसुखाम्बुधिमग्नौ विस्मृतपौरवियोगौ।
क्वचिदनुकूलदम्पती नव्यौ कलितसरससंयोगौ।।३।।
क्वचिदथ किसलयसुमदलशयने परिश्रमेण शयानौ।
क्वचिदनुकृतकोकिलाकाकली कल्पितमङ्गलगानौ।।४।।
क्वचिन्नवलवनसुषमादर्शनमुदितौ जनाभिरामौ।
गिरिधरकविभवभयं हरन्तौ जगदगविपद्विरामौ।।५।।

भौमी- अनेक भ्रमरों के सुंदर स्वर से समुहित और कूँजते हुए कोकिला तथा तोतों से युक्त मलयमारूत से झंकृत मंदाकिनी तट पर पल्लव और पत्तों से बनी हुई कुटी में मुनिवेशधारी भगवान विष्णु और शंकर के स्वामी कोटि-कोटि रतिकामों को जीतने वाले श्रीसीतारामजी चित्रकूट में विराज रहे हैं। कहीं सुशोभित होते हुए, कहीं हँसते हुए, कहीं एकान्त में रमण करते हुए, कहीं गलबहियाँ डालकर कुंज में धीरे-धीरे चलते हुए श्रीसीताराम जी सुशोभित हो रहे हैं। कहीं पर पुरजनों का वियोग भूलकर अज्ञात सुखसागर में डूबे हुए कहीं पर नवीन अनुकूल दम्पती मधुरतम संयोग स्वीकार कर वन में शोभित हो रहे हैं। कहीं पर परिश्रम से थककर पल्लव और पुष्प की शैय्या पर शयन करते हुए कहीं पर कोकिला के स्वर का अनुकरण करते हुए परस्पर मंगलगान करके विहार कर रहे हैं। कहीं पर नवीन वन की शोभा को देखकर प्रसन्न हुए भक्तों को आनन्द दे रहे

गिरिधर कवि के भवभय को हरण कर रहे जड़-चेतनों के विपत्ति को नष्ट करने वाले श्री चित्रकूट विहारी विहारिणी जू श्रीसीताराम जी वन में सुशोभित हो रहे हैं।

गीत संख्या-५

विहरति श्रीरघुवीरस्तटे मन्दाकिन्याः।
लालितलक्ष्मणवीरस्तटे मन्दाकिन्याः।।
सीताऽभिवर्धितवामविभागः।
चरणसरोरुहशर्वानुरागः।।
नवलपयोधरशरीरस्तटे मन्दाकिन्याः।। १।।
लसितनिषङ्गललितशरचापः।
मुनिपटधरो धृतजटाकलापः।।
सागरगगनगभीरस्तटे मन्दाकिन्याः।।२।।
नततरुशाखार्चितनवनलिनचरणः।
अशरणशरणशीलो भीमभयहरणः।।
यशोमुखरकोकिलालिकीरस्तटे मन्दाकिन्याः।।३।।
मुनिवर्यतपःफलं योगिजनध्येयः।
कान्तारकवृन्दारकबुधगणज्ञेयः।।
श्रितशीतलपरिमलसमीरस्तटे मन्दाकिन्याः।।४।।
अतिरथो दशरथराजकिशोरः
सीतावदनचारुचन्दिरचकोरः।।
कवि गिरिधरहृदयकुटीरस्तटे मन्दाकिन्याः।।५।।

भौमी- श्रीसीतारामजी मंदाकिनी के तट पर विहार कर रहे हैं। वीर लक्ष्मण को दुलारने वाले प्रभु मंदाकिनी के तट पर विहर रहे हैं। सीताजी के द्वारा जिनके वाम भाग का सम्मान हुआ है और जिनके चरणों में शिवजी का भी अनुराग है, ऐसे नवीन बादल के समान शरीर वाले श्रीराम मंदाकिनी के तट पर विहार कर रहे हैं। सुंदर तरकस और धनुषबाण धारण किए हुए, मुनिपटधारी, जटाजूट से सुशोभित, सागर और आकाश के समान गंभीर श्रीराम मंदाकिनी के तट पर विहार कर रहे हैं। झुकी हुई वृक्ष शाखाओं के द्वारा जिनके नवीन कमल चरण का अर्चन किया जा रहा है जिनका शील अशरण शरण है तथा जो भयंकर भव भय को हरने वाले हैं और जिनके यश को कोयल, भ्रमर और तोते गा रहे हैं, ऐसे श्रीराम मंदाकिनी तट पर विहार कर रहे हैं। मुनियों के तपस्या के फलस्वरूप योगिजनों के ध्यान के विषय, वन के देवता और बुधजनों के कान के विषय बने हुए श्रीराम शीतल मलयसमीर का आश्रय करके मंदाकिनी के तट पर विहार कर रहे हैं। अतिरथी दशरथ के राजकिशोर, सीतामुखचन्द्र के चकोर तथा **गिरिधर** कवि के हृदय कुटीर में विराजमान श्रीराम मंदाकिनी तट पर विहार कर रहे हैं।

गीत संख्या-६

लसति सीतारामो गिरौ चित्रकूटे।
लषति रामारामो गिरौ चित्रकूटे।।
सीताकण्ठकन्दलीकलितबाहुबन्धो ।
मन्दाकिनीतटे रामो रमते मधुरबन्धो।।
वसति वामावामो गिरौ चित्रकूटे।।१।।
कोककोकनदलोकशोकश्रमहारी ।
मानसमृणालमञ्जुसरसिजविहारी ।।
चलति पूर्णकामो गिरौ चित्रकूटे।।२।।
दर्शं दर्शं युगलशोभां हरिणा हरिण्यः।
प्रमोदन्ते स्पर्शं स्पर्शं करिणः करिण्यः।।
जयति कन्दश्यामो गिरौ चित्रकूटे।।३।।
तापसाः परिव्राजो मुनिवरकिशोरा।
गिरिधरेशवदनचन्द्रचक्षुश्चकोराः ।।
न्यसति नरललामो गिरौ चित्रकूटे।।४।।

भौमी- श्रीसीताराम चित्रकूट में विराज रहे हैं और रामा अर्थात् सीताजी को आनंदित करने वाले श्रीराम चित्रकूट पर्वत के प्रति लसति अर्थात् इच्छुक हो रहे हैं। सीताजी के कण्ठ रूप कदली पर अपने बाहुबन्ध से सुशोभित अर्थात् गलबहियाँ डाले हुए मधुर बन्धन को स्वीकार किए हुए श्रीराम मन्दाकिनी तट पर रम रहे हैं और वामबामा अर्थात् अनुकूल पत्नी सीताजी के साथ चित्रकूट में निवास कर रहे हैं। चकवे, कमल और संसार के शोकश्रम को हरने वाले मानस सरोवर के कोमल दंड वाले कमल के विहारी पूर्णकाम श्रीसीताराम चित्रकूट में विचरण कर रहे हैं। इस प्रकार युगल शोभा को देखकर हरिन-हरिनियाँ एवं प्रभु को छू-छूकर हाथी और हथनियाँ भी प्रसन्न हो रहे हैं और ऐसे बादल के समान सुंदर श्रीराम चित्रकूट पर्वत पर विजयी हो रहे हैं। इस प्रकार तपस्वी, परिव्राजक और मुनिकुमार ये सभी **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम के मुखचंद्र के चकोर बनकर नेत्रों को धन्य कर रहे हैं और मनुष्य-रत्न श्रीराम चित्रकूट पर्वत पर धीरे-धीरे चरण रख रहे हैं।

गीत संख्या-७

श्रीसीता स्वगतम्-

अहं व्यस्मार्षमयोध्यां श्वशुरधाम मह्यं चित्रकूटो रोचते।
अहं नास्मार्षं मिथिलां मातृधाम मह्यं चित्रकूटो रोचते।।
यत्र मन्दाकिनीसुधामयीधारा वहति।
यत्र चानसूया तपोऽनलं दुरितं दहति।।

यत्र खगोऽपि रटति सीताराम स मह्यं चित्रकूटो रोचते।।१।।
यत्र कामदः सकलशैलमणी राजते।
यत्र मुनिरत्रिस्तपःशिखामणिर्भ्राजते।।
यत्र साधवो जपन्ति रामनाम स मह्यं चित्रकूटो रोचते।।२।।
यत्र तापसास्तपस्यन्ति संशितव्रता।
यत्र योगिनो युञ्जते योगं संयमरता।।
यत्र नित्यं शोभां धत्ते चतुर्धाम स मह्यं चित्रकूटो रोचते।।३।।
यत्र तरवोऽपि तरुणतपसि सुस्थिरा।
यत्र सीताराम चरणाङ्किताश्च प्रस्तराः।।
यत्र रामभक्तिर्भनक्ति कुदाम स मह्यं चित्रकूटो रोचते।।४।।
यत्र शान्तिरेव राज्ञी विवेको नृपो।
यत्र वैराग्यं केसरिणा जितः कलिद्विपो।।
यत्र गिरिधरेशप्रेमाललाम स मह्यं चित्रकूटो रोचते।।५।।

भौमी– सीताजी अपने मन में कह रही हैं– मैं अपने श्वसुरजी का धाम अयोध्या भूल गयी। मुझे चित्रकूट अच्छा लगता है। मैं अपना माइका मिथिला भी भूल गयी, मुझे चित्रकूट भाता है। जहाँ मन्दाकिनी की अमृतमयी धारा बहती रहती है, जहाँ अनुसूइया जी का तपरूप अग्नि सभी पापों के परिणामों को जला डालता है, जहाँ पक्षी भी सीताराम–सीताराम रटते हैं, वह चित्रकूट मुझे बहुत भाता है। जहाँ सम्पूर्ण पर्वतों के शिरोमणि कामद (कामतानाथ भगवान) विराज रहे हैं, जहाँ तपस्वियों के शिखा–मणि अत्रिमुनि देदीप्यमान हैं, जहाँ साधुजन रामनाम का जप करते हैं, वह चित्रकूट मुझे बहुत भाता है। जहाँ दृढ़–व्रत धारण करके तपस्वीजन तपस्या करते हैं, जहाँ योगीजन ध्यान, धारणा समाधि में लगे हुए योगाभ्यास करते हैं, जहाँ चार धाम अनुसूइया, स्फटिक शिला, गुप्त गोदावरी, जानकी कुण्ड दिव्य शोभा पाते हैं, वह चित्रकूट मुझे बहुत भाता है। जहाँ वृक्ष भी तीव्र तपस्या में सुस्थिर रहते हैं, जहाँ के पत्थर भी सीतारामजी के चरण–चिह्न से अंकित हैं, जहाँ रामभक्ति संसार बंधनों को काट डालती है, वह चित्रकूट मुझे बहुत प्रिय लगता है। जहाँ शान्ति रानी और विवेक राजा हैं, जहाँ वैराग्य रूप सिंह ने कलियुगरूप हाथी को जीत लिया है, जहाँ **गिरिधर** कवि के प्रभु श्रीराम का प्रेम ही सभी साधनों का रत्न है, वह चित्रकूट मुझ सीता को बहुत प्रिय लगता है।

गीत संख्या-८

लक्ष्मणः स्वगतम्

अन्तरेण प्रभू श्रीसीतारामौ न स्वर्गोऽपि मे रोचते।
अन्तरेण विभू विपदां विरामौ न स्वर्गोऽपि मे रोचते।।
नाहं वाञ्छामि पारमेष्ठ्यं पृष्ठं दिवः।
नाहं काङ्क्षामि रसां नाधिपत्यं भुवः।।

अन्तरेण विद्युद्घनगौरश्यामौ न स्वर्गोऽपि मे रोचते।।१।।
नो जनन्यै न चोर्मिलायै स्पृहये क्वचिद्
यौवराज्याय न चोत्साहं वृहये स्ववित्।
अन्तरेण विभाजितरतिकामौ न स्वर्गोऽपि मे रोचते।।२।।
भग्नकूटश्चित्रकूटोऽप्ययोध्यायते ।
नो कदाचिन् मया राज्यसौख्यं ध्यायते।
अन्तरेण भूरिभुवनललामौ न स्वर्गोऽपि मे रोचते।।३।।
मातापितरौ च सीताराघवौ वत्सलौ।
मां पुत्रीयतो लक्ष्मणं सदा सद्बलौ।
अन्तरेण गिरिधरनयनाभिरामौ न स्वर्गोऽपि मे रोचते।।४।।

भौमी- अब लक्ष्मणजी अपने मन में कह रहे हैं– प्रभु श्रीसीतारामजी के बिना मुझे स्वर्ग भी नहीं भाता तथा सर्वव्यापी, विपत्तियों के अभाव स्थान सीतारामजी के बिना मुझे स्वर्ग भी नहीं अच्छा लगता। मैं ब्रह्मलोक नहीं चाहता और न ही स्वर्गलोक का उच्चासन। मैं पातालसुख नहीं चाहता और न ही पृथ्वी का स्वामित्व। मुझे तो बिजली और मेघ के समान गौरश्याम सीतारामजी के बिना स्वर्ग भी नहीं भाता। मैं कभी भी माँ सुमित्रा और पत्नी उर्मिला की स्पृहा नहीं करता और यौवराज्य के लिए भी अपना मनोराज्य कभी नहीं बढ़ाता। मुझको तो अपनी शोभा से करोड़ों रतिकाम को जीतने वाले सीतारामजी के बिना स्वर्ग भी नहीं प्रिय लगता। भक्तों का त्रिकूट नष्ट करने वाला यह चित्रकूट भी मेरे लिये अयोध्या बन गया है। मैं कभी भी राजसुख का ध्यान नहीं करता। अनन्त कोटि लोकों के रत्न सीतारामजी के बिना मुझे स्वर्ग भी नहीं भाता। श्रीसीताराघव वात्सल्य करने वाले मेरे माता-पिता हैं, उन्हीं से सन्तों को बल मिला है और वे मुझ लक्ष्मण को अपना पुत्र ही मानते हैं। **गिरिधर** कवि के नेत्रों के सुखदाता उन श्रीसीतारामजी के बिना मुझे स्वर्ग भी नहीं भाता है।

सन्दर्भश्लोकः

रामः प्राह लता प्रिये बहुमता सम्भूषयन्ती तरुं
सीतोवाच लताश्रयस्तरुरयं धन्यो न चैषा लता।
सौमित्रिर्निजगाद राजतु तरू राराज्यतां वै लता
छायामाप्य ययोः सदैव पथिको मोमुद्यमानोऽवति।।१।।

भौमी- एक बार श्रीराम ने सुंदर लता से आलिंगित पुष्प वृक्ष को देखकर श्रीसीताजी से कहा– ''प्रिये! ये लता बहुत सम्मान पात्र है जो अपने आलिंगन से इस वृक्ष की शोभा बढ़ा रही है। सीताजी ने कहा– नहीं नाथ! धन्यवाद का पात्र तो यह वृक्ष है, जो निराधार लता को अवलंब दे रहा है।'' इसके पश्चात् ही परिसंवाद के बीच में लक्ष्मण जी बोल पड़े– ''कोई बात नहीं, प्रभु के कथनानुसार शोभित होती रहे यह लता और भाभी माँ की इच्छानुसार सदैव देदीप्यमान रहे यह वृक्ष, जिन दोनों लता और वृक्ष की छाया को पाकर पथिक निरंतर प्रसन्न होता हुआ प्रकाशमान होता रहता है।''

विशेष- इस प्रसंग पर एक दोहा द्रष्टव्य है-

"राम कहा धनि बेलि यह, सिय कहेउ तरु धन्य।
लखन कहेउ धनि पथिक यह, गिरिधर मुदित अनन्य।।"

गीत संख्या-९

कथयतां पथिकसुभाग्यं भवन्तौ।
यं सुखयतश्च छायया नित्यं व्रततितरू विलसन्तौ।।१।।
चण्डरश्मिघर्मार्तमनशनं श्रान्तमभीप्सितनीरम्।
विश्रमयतो यमाप्य किसलसच्छायां शिशिरसमीरम्।।२।।
अन्योन्यं समर्प्य शृङ्गारं मिथो महितमाधुर्यौ।
पथि पथि पथिकमहो मृडयन्तौ रुचिररसिकरसधुर्यौ।।३।।
धन्याविमौ दम्पती दिव्यौ लक्ष्मणसुखपरिणामौ।
रातां सद्भ्यः सदा मुदं श्रितगिरिधरहृदयारामौ।।४।।

भौमी- लक्ष्मणजी कहने लगे- "हे भाभी माँ और हे बड़े भैया राघव! आप दोनों उस पथिक के सौभाग्य की चर्चा करें, जिसको शोभित होते हुए लता और वृक्ष अपनी छाया से निरंतर सुखी करते रहते हैं। सूर्यनारायण की चिलचिलाती धूप से व्याकुल भूखे, थके और जल के लिये प्यासे जिस पथिक को पल्लवों की छाया और शीतल वायु प्रदान करके, ये लता और वृक्ष विश्राम देते रहते हैं। धन्य हैं, ये लता-वृक्ष अद्भुत रसिक और रस के धुरीन तथा एक दूसरे से सम्मानित माधुर्य वाले अद्भुत नायिका-नायक जो एक दूसरे का शृंगार करते हुये प्रत्येक मार्ग में पथिक को सुखी करते रहते हैं। ये धन्य हैं, लता वृक्ष के समान, लक्ष्मण के सुख के परिणामरूप अलौकिक दम्पती। ये ही श्रीसीतारामजी लता वृक्ष की भाँति **गिरिधर** कवि के हृदयरूप बगीचे में विराजमान रहकर संतों को सदैव सुख देते रहें।

गीत संख्या-१०

किं च-

रामं श्रीसीताभिरामं हो चित्रकूटो बिभर्ति।
सतां मोक्षधर्मार्थकामं हो चित्रकूटः पिपर्ति।।
विभ्रन्मूर्ध्नि मन्दाकिनीं मृडमौलिमालाम्।
सुधाधवलधाराधरां हृतमोहजालम्।।
रामं सजलघनश्यामं हो चित्रकूटो विभर्ति।।१।।
निघ्नन्कूटदर्शनेन नृणां त्रिविधतापम्।
प्रघ्नन्पांशुसेवनेन पातककलापम्।।
रामं लोकललितललामं हो चित्रकूटो बिभर्ति।।२।।

अश्नन् धामधावनेन विषयानुरक्तिम्।
पुष्णन्नामचिन्तनेन सीतारामभक्तिम्।।
रामं रामरामं रामारामं हो चित्रकूटो बिभर्ति।।३।।
विश्वविपिनचूडामणिर्धन्यश्चित्रकूटः ।
सर्वदिव्यतीर्थाग्रणीर्गण्यश्चित्रकूटः ।।
रामं कविगिरिधराभिरामं हो चित्रकूटो बिभर्ति।।४।।

भौमी- और भी- ''अहा! सीताभिराम श्रीराम को चित्रकूट धारण कर रहा है और संतों के मोक्ष, धर्म, अर्थ, काम को चित्रकूट पूर्ण कर रहा है। अपने मस्तक पर अमृत के समान धवल-धारा को धारण करती हुई मोह-जाल को नष्ट करने वाली शिवजी के मुकुट के मालास्वरूप मंदाकिनीजी को मष्तक पर धारण करता हुआ यह चित्रकूट मेघ श्यामल श्रीराम को भी धारण कर रहा है। शिखरों के दर्शन से मनुष्यों के तीनों तापों को नष्ट करता हुआ, धूल के सेवन मात्र से पापसमूहों को भी दूर करता हुआ, संसार के ललितरत्न श्रीराम को भी श्रीचित्रकूट धारण कर रहा है। धाम की धावना करने से विषयों की अनुरक्ति को समाप्त करता हुआ और भगवन्नाम के चिंतन से श्रीसीताराम भक्ति को पोषित करता हुआ यह चित्रकूट परशुराम जी को रमाने वाले श्रीसीताजी को आनंदित करने वाले श्रीराम को धारण कर रहा है। चित्रकूट संपूर्ण वनों का चूड़ामणि है और यही चित्रकूट संपूर्ण तीर्थों का भी अग्रगण्य है क्योंकि यही चित्रकूट **गिरिधर** कवि को आनंद देने वाले भगवान राम को अपनी उपत्यका और अभित्यका में धारण कर रहा है।

विशेष- यह गीत बघेली लोकधुन में निबद्ध है।

गीत संख्या-११

वासन्ती सखी गायति-

सरससमीरे पयस्विनीतीरे पल्लवपर्णकुटीरे।
मदिरमधुरमधुरमुखरमधुकरनीरजनीरजनीरे ।
विहरति हरिरधिवनं वसन्ते
आरामे रमते रामो रामारामोऽभिदिगन्ते।।
कलरसालकिसलयसुनिलयकोकिलाकाकलीपुञ्जे
रतिपतिसुखमुखरितखगकुलमृदुमलयमालतीकुञ्जे ।।१।।
अवनिसुताकुचकलशसरसकररुहविरचितपाटीरः ।
चुम्बन् वधूवदनमथमदयन्मदनं निधुवनधीरः।।२।।
सुखारम्भवरपरीरम्भप्रस्वेदितपुलकशरीरः ।
समापीतदयिताधरसीधुसुधः शतसिन्धुगभीरः।।३।।
भौमीभव्यभाग्यमिवभालं कान्ताकमनकपोलम्।
मनश्शिलातिलकेन तिलकयन् कुर्वन् स्वमनोऽलोलम्।।४।।

निजकरचितकृतकुसुमभूषणैर्जनकसुताशृङ्गारम् ।
विदधानो निदधानस्तस्या वक्षसि भुजवरहारम्।।५।।
चरणालक्तकमहितनूपुरं मृदुलकुसुमकेयूरम्।
परिधापयन् नयनयोरञ्जन् श्रुतिपूरं सुखपूरम्।।६।।
चित्रकूटमण्डनं मनसि मृडयत रामं सहसीतम्।
भवभयनिरयनुत्तमे गायत गिरिधरगीतसुगीतम्।।७।।

भौमी- अब वासन्ती सखी गा रही है-"अहो! रसमय वायु से युक्त पयस्विनी जी के तट पर पल्लव और पत्तों से निर्मित कुटी में मतवाले मधुर-मधुर गुंजन करने वाले, भ्रमरों से सुशोभित, कमलों से अलंकृत निर्मल जल से संपन्न, वसन्त ऋतु में श्रीहरि भगवान राम चित्रकूट वन में विहार कर रहे हैं। संपूर्ण दिगन्तों के लिये अनुकूल वसन्त में सीताजी को रमाते हुये श्रीराम पयस्विनी तट पर लगे हुये उद्यान में रम रहे हैं। सुन्दर आम्र पल्लव के सुंदर भवन में कोयलों की वाणी से सुशोभित और काम के मित्र वसंत को सुखी करने वाले, बोल रहे पक्षियों से सुशोभित और मलयानिल से व्याप्त मालती लता के कुंज में श्रीहरि विहार कर रहे हैं। रहस्य विहार में कुशल श्रीराम भूमिनन्दिनी सीताजी के वक्षोरुह पर रोमांचित हाथ की अंगुलियों से पाटीर की रचना करते हुये प्रियतमा सीता जी के मुख को चूमते हुये और उनसे संयोगात्मक काम को और उद्दीप्त करते हुये श्रीचित्रकूट वन में विहार कर रहे हैं। आरम्भ में भी सुखप्रद श्रेष्ठ आलिंगन से पसीने-पसीने हुये पुलकित शरीर वाले प्रियतमा सीताजी के अधरासव-सुधा का पूर्ण रूप से पान किये हुये और अनंत सागरों के समान गम्भीर श्रीराम चित्रकूट वन में विहार कर रहे हैं। पृथ्वीपुत्री सीताजी के कल्याणमय भाग्यस्वरूप मस्तक को और प्रियतमा के सुंदर कपोल को मनःशिला के तिलक से तिलकांचित करते हुये और सीताजी में ही अपने मन को निश्चल करते हुये, श्रीराम चित्रकूट में विहार कर रहे हैं। अपने हाथ से चुने हुये और उन्हीं के द्वारा बनाये हुये सुंदर पुष्पमय आभूषणों से जनकनन्दिनीजी का श्रृंगार करते हुये और उन्हीं के वक्ष पर अपनी हार जैसी भुजाओं को रखे हुये श्रीराम चित्रकूट वन में विहार कर रहे हैं। सीताजी के चरणों में महावर और पुष्पों से रचित नूपुर तथा भुजाओं में कोमल पुष्प निर्मित केयूर धारण कराते हुये नयनों में कामधेनु के घी से निर्मित सूरमा लगाते हुये तथा कानों में सुखपूर्ण कुंडल धारण कराते हुये प्रभु श्री चित्रकूट में विहार कर रहे हैं। इस प्रकार चित्रकूट के श्रृंगार स्वरूप सीतासहित श्रीराम को सुखी करो और भवसागर के भय तथा नरक को नष्ट करने के लिए **गिरिधर** कवि के द्वारा गाये हुये सुंदर गीतों को गाओ। यही तुम सभी श्रीरामभक्तों के लिये मुझ सीतासखि वासंती का निर्देश है।

गीत संख्या-१२

विहरति हरिश्चित्रकूटे हे भूमिपुत्रीमुपयाय भूमिपुत्रीमुपयाय।।
लताकुञ्जगृहे रामः सीतां शृङ्गारयन् नखशिखनिसर्गरम्यां नितरां निहारयन्।
विहरति कलितकर्णकूटे हे सीधुसारघं निपाय सीधुसारघं निपाय।।१।।
आलक्तेन चरणनलिननखजातं रञ्जयन् पाटलपयोजभानुभौममदं भञ्जयन्।
विहरति सुवर्णस्वर्णकूटे हे भौम्यां मनः सन्निधाय भौम्यां मनः सन्निधाय।।२।।

रचयन्नुरोरुहयोश्चित्रचित्रपत्रकं सचयन् मनोभवमनोज्ञशास्त्रसूत्रकम्।
विहरति विचित्रवर्णकूटे हे सर्वदुःखं परिहाय सर्वदुःखं परिहाय।।३।।
कुसुमचन्द्रहारं शनैः कण्ठे निधापयन् कर्णयोश्च कर्णिकारकुण्डले विधापयन्।
विहरति लसत्षडर्णकूटे हे कविगिरिधरसुखाय कवि गिरिधरसुखाय।।४।।

भौमी- वासन्ती फिर गाती है– अहो! भूमिपुत्री सीताजी के समीप जाकर श्रीहरि चित्रकूट में विहार कर रहे हैं। लताकुंज गृह में सीताजी का श्रृंगार करते हुये स्वभाव से सुंदरी जनकनन्दिनीजी को नख से शिखा-पर्यन्त सूक्ष्मता से निहारते हुये, कर्मों को समाप्त करने वाले श्रीचित्रकूट में सीताजी के अधरासव का पान करके श्रीराम चित्रकूट में विहार कर रहे हैं। महावर से सीताजी के चरणकमलों के नखों को रँगते हुये, इसी ब्याज से गुलाब, कमल, सूर्य एवं मंगल के मद को चूर करते हुये श्रीराम जनकनन्दिनीजी में मन को सुस्थिर करके सुंदर वर्ण वाले स्वर्णकूट पर विहार कर रहे हैं। सीताजी के वक्षोरुहों पर चन्दन से सुंदर चित्रपत्रक की रचना करते हुये और इसी बहाने से कामशास्त्र के मनोज्ञ सूत्रों की रचना करते हुये श्रीराम अपना सम्पूर्ण दुःख भूलकर विचित्र वर्ण वाले चित्रकूट पर विहार कर रहे हैं। सीताजी के कण्ठ में अपने द्वारा निर्मित पुष्प चंद्रहार धारण कराते हुये और उनके कानों में कर्णिकार पुष्प का कुंडल पहनाते हुए श्रीराम पाया हुआ राज्य छोड़कर षड़क्षर राममंत्र जपसमूह से सुशोभित चित्रकूट में विहार कर रहे हैं। प्रियाजी के कमलनेत्रों को श्यामल अंजन से अंजित करते हुए एवं विस्वस्त सीताजी को अपनी बाहुलता में लपेटते हुए श्रीराम **गिरिधर** कवि के सुख के लिये सुंदर भक्तिरूपषड़र्ण कूट में श्रीराम विहार कर रहे हैं।

गीत संख्या-१३

विहरतः सीतारघुवीरौ महितमन्दाकिनीतीरे।।
अन्योन्यकण्ठबद्धवरबाहुलतिकौ सुरभितशिशिरसमीरे महितमन्दाकिनीतीरे।।१।।
निरावारणनलिनचरणकृतपादचारौ कलितवलितवानीरे महितमन्दाकिनीतीरे।।२।।
विहितविविधविधविशदविहारौ मण्डितमुनियोगिधीरे महितमन्दाकिनीतीरे।।३।।
परस्परं लसन्तौ हसन्तौ लसन्तौ नीरजनिर्मलनीरे महितमन्दाकिनीतीरे।।४।।
हारं हारं हरिणौ हरी हर्षयन्तौ गिरिधरहृदयकुटीरे महितमन्दाकिनीतीरे।।५।।

भौमी- श्रीसीता एवं रघुवीरजी पूजनीय मंदाकिनीजी के तट पर विहार कर रहे हैं। एक-दूसरे को गलबहियाँ डाले हुये सुगंधित शीतल वायु से युक्त मंदाकिनी तट पर सीतारामजी विहार कर रहे हैं। सुंदर लता जैसे मुड़े हुये बेतों से युक्त मंदाकिनी तट पर पनही से रहित चरणकमल से विचरण करते हुए सीतारामजी विहार कर रहे हैं। योगियों और धीर मुनियों से सुशोभित मंदाकिनी तट पर अनेक प्रकार की विहार क्रियाओं को सम्पन्न किये हुये अब भी सीतारामजी विहार ही कर रहे हैं। धूल से रहित निर्मल जल वाले मंदाकनी तट पर एक दूसरे से बात करते हुये, हँसते हुये, सुशोभित होते हुये सीतारामजी विहार कर रहे हैं। हरिण और हरिणी के समान परब्रह्म परमात्मा रूप दंपती सभी को प्रसन्न करते हुये, **गिरिधर** कवि के हृदय कुटीर में विहार कर रहे हैं।

विशेष- यह गीत नचारी धुन में निबद्ध है।

गीत संख्या-१४

चित्रकूटगिरिविचित्रगह्वरनिर्झरपवित्रमहीहृदयहारसुरनदी पयस्विनी।।१।।
विलसितलक्ष्मणललामलोकलोचनाभिरामरामवामवाममैथिलिमनस्विनी।।२।।
कलितराघवीविहारसुधाधवलधवलधारमज्जनहतसमलभारभरतरस्विनी।।३।।
सुरभिशिशिरशुचिसमीरमुखरितखगपिकसुकीरमदिरमधुरमधुपधीरमुनिमहस्विनी।।४।।
गिरिधरगिरिगीयमानसुजननयननीयमानरामचरणसरोरुहरजोयशस्विनी।।५।।

भौमी- अब महाकवि ध्रुपद में पयस्विनी का वर्णन प्रस्तुत कर रहे हैं-चित्रकूट पर्वत पर विचित्र वन और झरनों से पवित्र पृथ्वी की हृदय हार बनी हुयी देवनदी पयस्विनीजी विराज रही हैं। जहाँ लक्ष्मणजी के लिये रत्नस्वरूप संसार के नेत्रों को आनंद देने वाले श्रीराम की पवित्र धर्मपत्नी मनस्विनी मैथिली सुशोभित हो रही हैं। वह पयस्विनी रामप्रिया सीताजी के विहार से युक्त तथा अमृत जैसी धवल धारा से सम्पन्न स्नान मात्र से मलभार को नष्ट करने वाले अलौकिक वेग से सम्पन्न हैं। जो शीतल, मंद, सुगंध वायु से युक्त, कोयल, तोते आदि पक्षियों को मुखरित करने वाली, मतवाले भ्रमरों के गुंजार से मुनियों को महोत्सव प्रदान करने वाली हैं। **गिरिधर** कवि की वाणी में गाये जाते हुये और सज्जनों के नयनों में निवास करने वाले श्रीरामचंद्रजी के चरणकमल की धूलि के यश से पवित्र हो रही हैं।

गीत संख्या-१५

सीता श्रीरामं प्रति-

आर्यपुत्र तत्र भवतैव साकं यथा स्वश्चित्रकूटेऽपि रमे।।
मन्दाकिन्यां मुदा त्रिकालं भवता सह संस्नामि।
सुधासमानं कन्दमूलफलशाकं वा अश्नामि।।
राजपुत्र तत्र भवतैव साकं यथा स्वश्चित्रकूटेऽपि रमे।।१।।
कामदगिरिं समं सानन्दं भवता परिक्रमामि।
बद्धभवद्गलचारुभुजलता वनिता वनं भ्रमामि।।
भूपपुत्र तत्र भवतैव साकं यथा स्वश्चित्रकूटेऽपि रमे।।२।।
दर्शं दर्शं विपिनसम्पदं स्वापदमानन्दामि।
वने वसन्ती कोटिकोटिसुरपुरोऽप्यहं निन्दामि।।
मैत्रपुत्र तत्र भवतैव साकं यथा स्वश्चित्रकूटेऽपि रमे।।३।।
भवता समं कटेऽपि मदनशैयावत् सुखं शयेऽहम्।
सीता सुरपतिगृहवत् कुट्यां गिरिधरप्रभुं श्रयेऽहम्।।
शाक्रपुत्र तत्र भवतैव साकं यथा स्वश्चित्रकूटेऽपि रमे।।४।।

भौमी- अब सीताजी श्रीराम को संबोधित करके कहती हैं- हे आर्यपुत्र! आदरणीय आपके साथ मैं चित्रकूट में भी साकेतलोक की भाँति ही रम रही हूँ और रमती रहूँगी। मैं आप के ही साथ मंदाकिनी में तीन बार स्नान करती हूँ और आपके ही साथ अमृत के समान स्वादिष्ट कन्द-मूल, फल और शाक खा लेती हूँ। हे राजपुत्र! आपके साथ मैं चित्रकूट में भी स्वर्ग के समान रमती हूँ। मैं आपके ही साथ कामदगिरि की आनंद से परिक्रमा करती हूँ और आपके गले में हाथ डालकर निःसंदेह वन में भ्रमण करती हूँ। हे भूप के पुत्र! आपके साथ मैं स्वर्ग की भाँति चित्रकूट में रमती हूँ। इस प्रकार वन की संपत्ति और पशुधन को देखकर मैं बहुत प्रसन्न होती हूँ। वन में रहती हुयी मैं करोड़ों-करोड़ों अमरावतियों की भी निन्दा करती हूँ। हे सूर्य के गोत्र में प्रकट प्रभु! आपके साथ मैं चित्रकूट में भी स्वर्ग की भाँति रहूँगी। आपके साथ शैय्या ही की भाँति मैं कुश की चटाई पर सोऊँगी। मैं सीता कुटी में इन्द्रलोक की कल्पना करके श्रीराम का श्रयण करूँगी। हे इन्द्र के मित्र के पुत्र श्रीराघव! आपके साथ रहकर मैं चित्रकूट में स्वर्ग की भाँति रह लूँगी।

गीत संख्या-१६

श्रीरामः सीतां प्रति-

सीते सार्धं तत्र भवत्या विपिनं स्वरिव रोचते मे।।
सुरपुरायते किल कान्तारं प्रकृतिभामिनीश्रितसुखसारम्।
प्रीते साकं तत्रभवत्या विपिनं स्वरिव रोचते मे।।१।।
इह खगमृगाः परिजनायन्ते धृतनगनगाःपुरजनायन्ते।
स्फीते सममिह तत्र भवत्या विपिनं स्वरिव रोचते मे।।२।।
शक्रसदनमिव पर्णकुटीरं सीलितशीतलसुरभिसमीरम्।
ह्रीते किल सह तत्र भवत्या विपिनं स्वरिव रोचते मे।।३।।
द्विगुणितसप्तसमागिरिगह्वरविजनं सुखं सेवितुं गिरिधर-
गीते सध्र्यङ् तत्र भवत्या विपिनं स्वरिव रोचते मे।।४।।

भौमी- अब श्रीराम सीताजी के प्रति कह रहे हैं- हे सीते! आपके साथ मुझे वन स्वर्ग की भाँति लग रहा है। हे सीते! आपके साथ मुझे यह वन इंद्रपुरी के समान लग रहा है। इसमें प्रकृति ने संपूर्ण सुखों का सार डाल दिया है। यहाँ पशु-पक्षी परिजन जैसे लग रहे हैं और मणियों को धारण करने वाले वृक्ष पुरजन जैसे लग रहे हैं। वस्तुतः आप आदरणीय के साथ रहकर मुझे चित्रकूट वन स्वर्ग जैसा सुहावना लग रहा है। शीतल, मंद, सुगंध वायु से युक्त यह पर्णकुटी भी मुझे इंद्र के भवन के समान लग रही है और आदरणीय आपके साथ चित्रकूट साकेत जैसा प्रतीत हो रहा है। हे गिरिधर कवि के द्वारा गायी हुयी सीते! आपके साथ चौदह वर्षपर्यन्त गंभीर वन और निर्जन स्थान में निवास करना भी मेरे लिये बहुत सुखप्रद रहेगा क्योंकि आपके साथ मुझे वन स्वर्ग की भाँति रुचता है।

विशेष- यह गीत पूर्वी लोकधुन में निबद्ध है।

गीत संख्या-१७

किं च-

त्वया सह मया सुखेन वने स्थीयते सीते नैव गृहमधींयते।।
रम्यश्चित्रकूटगिरिरेष शुचिमुनितपसा क्षपितक्लेशः।
पुण्यप्रदेशो हतभयलेशः सुखं वनवासकाल इह नीयते।।१।।
प्रकृतिसुन्दरी विहतविभ्रमा विपिनविभासंलसितसम्भ्रमा।
सुखदा कामदगिरिपरिक्रमा यां विधाय नृभिर्यमान्नैव भीयते।।२।।
स्थिरा स्थावरा इव तपस्विनः खगा मृगास्तरवो मनस्विनः।
प्लवङ्गमास्तरुणातरस्विनो यैर्न स्वप्नेऽपि मनो मले दीयते।।३।।
भारतहृदयहारमिव हृद्यं स्मरणमात्रतो हरत्यवद्यम्।
चित्रकूटशुचिवनमनवद्यं गिरिधरेण वै गिर्वाणगिरा गीयते।।४।।

भौमी- और भी- हे सीते! आपके साथ मैं सुखपूर्वक वन में रह रहा हूँ और घर का भी स्मरण नहीं कर रहा हूँ। यह चित्रकूट पर्वत बहुत रमणीय है। पवित्र मुनियों के तप से यहाँ क्लेश नहीं रह गये हैं और भय के सम्बन्ध से रहित यह प्रदेश अत्यन्त पवित्र है। यहीं रहकर मैं वनवास का बहुत-सा काल सुखपूर्वक बिता रहा हूँ, घर का स्मरण नहीं कर रहा हूँ। यहाँ की प्रकृति बहुत सुन्दरी, भ्रमरहित और वन की शोभा से सुखद विलासवती हो गयी है और यह कामदगिरि की परिक्रमा इतनी मनोहर है कि जिसे करके लोग यमराज से भी नहीं डरते। यहाँ स्थावर अर्थात् पाषाण तपस्वियों की भाँति स्थिर हैं। पशु-पक्षी और वृक्ष सबने अपने मन को वश में कर रखा है और यहाँ के वानर भी युवक वेग संपन्न साधक ही दिख रहे हैं जो स्वप्न में भी अपना मन मल की ओर नहीं ले जाते। यह चित्रकूट पर्वत निर्दोष भारत का हृदय हार है। यह स्मरणमात्र से पापों को नष्ट कर देता है। इसलिये **गिरिधर** कवि द्वारा भी इसका संस्कृत भाषा में गान किया जा रहा है।

गीत संख्या-१८

रमे रामो रमे नित्यं विचित्रे चित्रकूटेऽस्मिन्।
स्वविश्रामो रमे नित्यं विचित्रे चित्रकूटेऽस्मिन्।।
महितमन्दाकिनीतीरे सहितवानीरसन्नीरे।
जनारामो रमे नित्यं स्वचित्रे चित्रकूटेऽस्मिन्।।१।।
सुकिसलयपर्णकौटीरे भवघ्ने सौख्यशौटीरे।
सहश्यामो रमे नित्यं सुचित्रे चित्रकूटेऽस्मिन्।।२।।
ऋषीणां सत्तपःपूते मुनीनां स्वाश्रमीभूते।
घनश्यामो रमे नित्यं वहित्रे चित्रकूटेऽस्मिन्।।३।।

लसन्मुनिजनजटाजूटे क्षपितगिरिधरविषयकूटे।
विजितकामो रमे नित्यं पवित्रे चित्रकूटेऽस्मिन्।।४।।

भौमी- हे रमे! मैं राम इस विचित्र चित्रकूट में नित्य ही रमता हूँ। अपने भक्तों को विश्राम देने वाला मैं इस सुंदर चित्र वाले चित्रकूट में नित्य रमता हूँ। बेंत और निर्मल जल से युक्त, सम्मानित मंदाकिनी तट वाले, अपने ही चित्र से युक्त, इस चित्रकूट में भक्तों के लिये उद्यान के समान होकर भी मैं नित्य रमता हूँ। सुंदर पल्लव और पत्तों के कुटीर से युक्त, भवबाधा को नष्ट करने वाले, सुख के साधनों से सम्पन्न, सुंदर चित्रों से युक्त इस चित्रकूट में आप श्रीश्यामा के साथ निरंतर रमता हूँ। ऋषियों की तपस्या से पवित्र और मुनियों के अपने आश्रम के समान, भवसागर के लिये जहाजरूप इस चित्रकूट में मेघ के समान श्यामल मैं नित्य रमता हूँ। मुनिजनों के जटाजूट से युक्त **गिरिधर** कवि के विषय कूट को नष्ट करने वाले इसी पवित्र चित्रकूट में कामवासना को जीतने वाला मैं निरंतर ही रमता हूँ।

गीत संख्या-१९

अन्यच्च-

रमसे नु यत्र नित्यं सीते त्रिलोक्यां सैव धन्यश्चित्रकूटः।।
प्रोज्झितसुरपतिदुर्लभराज्या विस्मृतपितृश्वशुरसाम्राज्या।
क्रमसे नु यत्र सुखं सीते त्रिलोक्यां सैव मान्यश्चित्रकूटः।।१।।
कृतकान्तकण्ठबाहुवल्लीसरित्तीरे कुसुमितकदम्बकञ्जमल्लीसमीरे।
भ्रमसे नु यत्र सुखं सीते त्रिलोक्यां सैव जन्यश्चित्रकूटः।।२।।
यत्र विराजसे तुलसीतरुं रोपयन्ती चरणप्रपन्नपापपूगं लोपयन्ती।
क्षमसे नु यत्र सुखं सीते त्रिलोक्यां स वरण्यश्चित्रकूटः।।३।।
यत्र गापयसे धीरान् कीरान् गिरिधरेशं यत्र ध्यापयसे रामं मुहुर्मुनिवरेशम्।
नमसे नु यत्र सुखं सीते त्रिलोक्यां स शरण्यश्चित्रकूटः।।४।।

भौमी- और भी- हे सीते! जहाँ आप नित्य रमती हैं, वही चित्रकूट त्रिलोकी में धन्य है। देव-दुर्लभ राज्य को छोड़कर, पिता और ससुर के साम्राज्य को भूलकर, सीते! आप जहाँ धीरे-धीरे चरण रखती हैं वही चित्रकूट त्रिलोकी में सम्माननीय है। मुझ पति के गले में हाथ डालकर, विकसित कमल, कदम्ब और चमेली के वायु से युक्त नदी तट पर जहाँ आप सुखपूर्वक भ्रमण करती हैं, वही चित्रकूट तीनों लोकों में सफल जन्म वाला है। जहाँ तुलसी का पौधा लगाती हुयी, अपने चरण शरणागतों के पापसमूहों को नष्ट करती हुयी, आप जनकनंदिनीजी वन की विडंबनाओं को सुखपूर्वक सह लेती हैं, वह चित्रकूट तीनों लोकों में श्रेष्ठ है। हे सीते! जहाँ आप तोतों से भी **गिरिधर** कवि के स्वामी मुझ राम को गवाती रहती हैं और जहाँ श्रेष्ठ मुनियों से मेरा ध्यान कराती रहती हैं, जहाँ आप सुखपूर्वक संतों को नमन करती रहती हैं, वही चित्रकूट तीनों लोकों में एकमात्र शरण देने वाला है।

गीत संख्या-२०

गायति कविः-

राजतेऽधिचित्रकूटं स्वङ्गीकृत्य जटाजूटं भङ्क्त्वा भक्तकुत्रिकूटं चित्रकूटविहारी।।१।।
नीरनीरधरश्यामो लोकलोचनाभिरामो विभाविजितकोटिकामो वामदर्पप्रहारी।।२।।
नवलनलिनचरणयुगो बाहुदण्डाभरणयुगो गोपकन्यकासुहार्दकलशकलितसुवारी।।३।।
करतलधृतविशिखचापः शिरषि लसितकचकलापः कोटितपनसुप्रतापः प्रणतविरुदविचारी।।४।।
जनकसुताप्राणधनो धन्वी जितसजलघनो महितहितस्नेहवनो गिरिधरभयनिवारी।।५।।

भौमी- अब कवि स्वयं गा रहे हैं-जटाजूट स्वीकार करके भक्तों का निंदित त्रिकूट काम, क्रोध, लोभ को समाप्त करके चित्रकूट विहारी श्रीरामजी चित्रकूट में विराज रहे हैं। नीले बादल के समान श्यामल, संसार के नेत्रों के अभिराम, करोड़ों कामों के विजेता, दुष्टों के अहंकारहारी श्रीहरि चित्रकूट में विराज रहे हैं। नवीन कमल के समान जिनके दोनों चरण हैं, जिनके बाहुदंड हल के जुवा के समान सुंदर लग रहे हैं और जनकनन्दिनी सीताजी के वक्षोरूह कलश ही जिनके मन गजेन्द्र का बन्धन है। हाथ में धनुष-बाण लिये हुये, सिर पर जटाजूट से सुशोभित, कोटि सूर्यों के समान प्रताप वाले और प्रणत के विरूद् पर विचार करने वाले प्रभु चित्रकूट में विराज रहे हैं। सीताजी के प्राण ही जिनके धन हैं, ऐसे कुशल धनुर्धर सजल मेघ को जीतने वाले, अनुरागियों के प्रेम वन का सम्मान करने वाले, **गिरिधर** कवि के भय के निवारक चित्रकूट विहारी श्रीराम चित्रकूट में विराज रहे हैं।

विशेष- यह गीत झपताल में निबद्ध है।

गीत संख्या-२१

स्फटिकशिला स्वनाविला सदुर्मिला सुपिच्छिला सीतासाममञ्जुलविहारसुस्थली।।१।।
मन्दाकिनीपयःपूरसिक्ता शीतलफेनिलसैकता श्रिताप्तमुनितपस्तपस्थली।।२।।
परितःश्रितकुटजकुसुमविहगपरमगमसुगमभगवदुचितनिचितनिकरशरजपस्थली।।३।।
लक्ष्मणहतप्रत्यवायशमदमयमकलितकाययुक्तयोगिमुनिनिकायसाधनास्थली।।४।।
गिरिधरनयनाभिरामनीलसरोरुहश्यामरामचन्द्रमश्चकोरी लसन् मैथिली।।५।।

भौमी- श्रीस्फटिक शिला अत्यंत निर्मल, मंदाकिनी की लहरों से युक्त तथा बहुत चिकनी जो सीतारामजी के मधुर विहारस्थली के रूप में प्रसिद्ध है। जो मंदाकिनी के जल से निरंतर सिंची रहती है। जो शीतल फेन से युक्त सुंदर तटों वाली, श्रेष्ठ मुनियों की तपस्थली बन गयी है। जो चारों ओर से कुटज के फूलों से घिरी हुयी, पक्षियों से रमणीय, विषयियों के लिये अगम, भक्तों के लिए सुगम, भगवान श्रीराम के लिये अनुकूल, पृथ्वी पर उगे हुए सरकंडों और जप की सामग्री की स्थली बन गयी है। लक्ष्मणजी के द्वारा जिनके विघ्न नष्ट किये गये हैं, ऐसे शम, दम, यम से सुशोभित शरीर वाले युक्त और युंजान योगियों मुनियों की साधनास्थली है। उसी स्फटिक शिला पर **गिरिधर** कवि के नेत्रों को आनंद देने वाले, नीलकमल के समान श्यामल, श्रीरामरूप चंद्रमा की चकोरी मिथिलाधिराज कन्या श्रीसीताजी सुशोभित हो रही हैं।

गीत संख्या-२२

जय जय रघुकुमुदचन्द्र चित्रकूटविहारिन्।
जय जय शोभासमुद्र सत्रिकूटविहारिन्।।
परमकारुणिककृपालो निर्व्यलीकजनदयालो।
दीनबन्धो दयासिन्धो विनतविपद्विदारिन्।।१।।
वल्कलकटिकलितवेष सहकृतजानकीशेष शेषशेषशेषिन्।
जय विषयविषनिवारिन्।।२।।
हरहृन्मानससुहंस हंसवंशशुभवतंस हतनृशंस।
सुप्रशंस लोकसौख्यकारिन्।।३।।
मन्दाकिनीतटाभरण ललितनवलनलिनचरण।
गिरिधरकविदुरितहरण भक्तभयप्रहारिन्।।४।।

भौमी- रघुकुल रूप कुमुद के चन्द्रमा, चित्रकूट विहारी श्रीराम आपकी जय हो। शोभा के समुद्र सज्जनों के ज्ञान-वैराग्य और भक्ति कूट में विहार करने वाले प्रभु आपकी जय हो। हे परमकारुणिक! हे कृपालो! हे निष्कपट जनों पर दया करने वाले दीनबंधु कृपा के सागर प्रणतजनों के विपत्ति को नष्ट करने वाले आपकी जय हो। कटि प्रदेश में वल्कल वस्त्र धारण करने वाले, जानकीजी और शेष के भी अवतारी लक्ष्मणजी को सेवक बनाने वाले, शेष नाग के भी स्वामी, विष्णु के भी शेषी अर्थात् स्वामी महाविष्णु, विषय रूप विष को समाप्त करने वाले प्रभु आपकी जय हो। हे शंकरजी के हृदय मानस के राजहंस, सूर्यवंश के आभूषण, नृशंसों को मारने वाले, श्रेष्ठ प्रशंसा से युक्त, लोकों को आनंद देने वाले प्रभु राम आपकी जय हो। मंदाकिनी तट के आभूषण, नवीन कमलचरण, **गिरिधर** कवि के पाप को हरने वाले, भक्तभयहारी श्रीचित्रकूटविहारी प्रभु आपकी जय हो।

विशेष- यह गीत एक ताल में निबद्ध है और इसे वागीश्वरी राग में गाना चाहिये।

गीत संख्या-२३

राजति रघुरामचन्द्रश्चित्रचित्रकूटे।।
शिरषि कलितजटाजूटो विलसितसाद्गुण्यकूटो भीषणभवकाननलवित्रचित्रकूटे।।१।।
निहितधनुश्शरनिषङ्गो महितस्वजनमनोरङ्गो विहितसुजनसङ्गः सुपवित्रचित्रकूटे।।२।।
जानकीलक्ष्मणसमेतो भक्तमनो वननिकेतो विहगमृगवरूथवनविचित्रचित्रकूटे।।३।।
प्रणतकामपारिजातो ललितवदनवारिजातो गिरिधरभववारिधिवहित्रचित्रकूटे।।४।।

भौमी- सुंदर चित्रकूट में रघुकुल में प्रकट श्रीराम सुशोभित हो रहे हैं। भयंकर संसार वन को काटने के लिये हँसिया शस्त्र के समान चित्रकूट में सिर पर जटाजूट धारण किये हुये, श्रेष्ठ गुणों के समूह से युक्त, श्रीराम विराज रहे हैं। तरकश और धनुष-बाण लिये हुये, स्वजनों की मनोरंगभूमि को सम्मानित करते हुये, संतों का

साथ किये हुये, श्रीराम पवित्र चित्रकूट में विराज रहे हैं। भक्त को मनुष्य रूप में विश्राम भवन बनाने वाले, प्रभु श्रीराम जानकीजी और लक्ष्मण जी के साथ, पक्षी, मृगों से सुसेवित वनों से विचित्र चित्रकूट में विराज रहे हैं। प्रणतजनों की कामना के लिये कल्पवृक्षस्वरूप, सुंदर नवीन कमल के समान मुख वाले श्रीराम, **गिरिधर** कवि के भवसागर के लिये जलयान बने हुये, चित्रकूट में विराज रहे हैं।

विशेष– यह गीत भी एक ताल में निबद्ध है। इसे भी वागीश्वरी राग में गाना चाहिए।

गीत संख्या–२४

लसति रघुरामश्चिरं चित्रकूटे।।
दधानो जटां काण्डकं चण्डचापम्।
वसानो वरं बल्कलं सत्प्रतापम्।।
विजितभृगुरामश्चिरं चित्रकूटे।१।।
कनत्कर्णकारश्रुतिश्चारुहासः ।
लसत्सन्मतिः सत्कृतिः सद्विलासः।।
महितयदुरामश्चिरं चित्रकूटे।।२।।
विदेहात्मजाप्रोल्लसद्वामभागो ।
लसल्लक्षणे लक्ष्मणे सानुरागो।।
यवितनररामश्चिरं चित्रकूटे।।३।।
विधुन्वन्धनुःपर्णशालानिकेतो ।
वितन्वन् गिरं गिरिधरीं सत्समेतो ।।
लसति प्रभुरामश्चिरं चित्रकूटे।।४।।

भौमी– रघुवंशियों को रमाने वाले श्रीराम अनन्तकालपर्यंत चित्रकूट में सुशोभित हैं। जटा, अमोघ बाण और भयंकर धनुष धारण किये हुए, परम प्रतापी, श्रेष्ठ वल्कल वस्त्र को धारण किये हुए, परशुराम को जीतने वाले प्रभु चित्रकूट में विराज रहे हैं। कानों में सुंदर कर्णिकार कुंडल धारण किये हुये, सुंदर हास से युक्त, श्रेष्ठ बुद्धि, श्रेष्ठ कृति और श्रेष्ठ विलास वाले, भावी बलराम के भी पूज्य श्रीराम चित्रकूट में विराज रहे हैं। सीताजी के द्वारा जिनका वाम भाग सुशोभित है जो सुशोभित लक्षणों वाले लक्ष्मण पर निरंतर अनुरागवान रहते हैं, जिन्होंने सामान्य मनुष्यों को भी गतिमान बनाया, ऐसे श्रीराम चित्रकूट में विराज रहे हैं अथवा जिन्होंने आत्मारामों को भी गतिमान बनाया, वे प्रभु चित्रकूट में विराज रहे हैं। पर्णशाला को अपना भवन बनाकर संतों के साथ विराजमान हुये, धनुष को फेरते हुये, प्रभु श्रीरामचंद्रजी अनादि काल के लिये चित्रकूट में सुशोभित हैं।

सन्दर्भश्लोकः

विलोलद्वानीरे मधुमलपयन्दारविलुलन्
मरन्दाञ्चन्नीरे शिशिरितसमीरे सुपयसि।

प्रमाद्यन् माकन्दे विदलदरविन्दे मधुकरे
वसन्ते वासन्ती मृदुगिरमवोचद् जनकजाम्।।१।।

भौमी- जिसमें बेंत लता धीरे-धीरे हिल रही है, जिसमें मधुर मलय वायु से गिरते हुये मकरन्द से जल सुशोभित हो रहा है, जिसमें वायु शीतल है और जल निर्मल है। जिसमें आम्र की मञ्जरी मतवाली हो रही है, जहाँ भौंरा बाहर निकलने के लिये धीरे-धीरे कमल की पंखुड़ियों को खोल रहा है, ऐसे बसन्त ऋतु में वासन्ती सखी ने जनकनन्दिनी सीताजी से इस प्रकार कोमल वाणी में कहा।

गीत संख्या-२५

मधुरमधौ मधुमाधवमधुरितमधुमन्दाकिनितीरे
किसलयलसितकुशेशयशयने प्रसृमरपर्णकुटीरे।।
सीतामाह्वयति त्वां रामः।
मदनमनोरथरथोऽप्यतिरथो दशरथमनोऽभिरामः।।१।।
ऊष्णमुच्छ्वसिति नैव विश्वसिति लभते नैवस्थैर्यम्।
भवति प्रतीक्षारतस्त्यजति ननु धीरमणिरहोधैर्यम्।।२।।
क्षणमपि तिष्ठति क्षणमुत्तिष्ठति श्रयते क्षणमपि शयनम्।
क्षणदायां नो क्षणं विश्रमं लभते स्फारितनयनम्।।३।।
अन्तरिते लक्ष्मणे प्रहरिणि हरिणिदृङ् न कुरु विरामम्।
शीलय शीलनिधिं सीमन्तिनि रमय रमे श्रीरामम्।। ४।।
न कुरु विलम्बं चिकुरकदम्बं शुचि सीमन्तय सीते।
भज भजनीयं सृज सृजनीयं गापय गिरिधरगीते।।५।।

भौमी- वासन्ती कहने लगी-हे सीते! अत्यन्त मधुर वसन्त ऋतु में, मधुर वसन्त के मित्र काम के कारण, मधुरित अत्यन्त मधुर मंदाकिनी के तट पर सुंदर पर्णकुटीर में सुसज्जित, पल्लव से युक्त, कमल की शैय्या पर स्मरणात्मक, मदन के मनोरथ रथ पर आरूढ़, अति रथ होकर भी दशरथ जी के मन को आनन्द देने वाले श्रीराम आपका आह्वान कर रहे हैं। वे गरम निःश्वास ले रहे हैं, किसी पर विश्वास नहीं कर रहे हैं। स्थिरता को प्राप्त नहीं कर रहे हैं, धीर शिरोमणि होकर भी प्रभु श्रीराम, आपकी प्रतीक्षा करते हुये अपना धैर्य छोड़ रहे हैं। रात्रि में भी अपने नेत्रों को फाड़े हुये प्रभु क्षण भर भी विश्राम नहीं पा रहे हैं। कभी बैठते हैं, कभी उठते हैं, कभी शैय्या पर लेट जाते हैं। एक क्षण भी विश्राम नहीं लेते। पहरा देने वाले लक्ष्मणजी के दूर चले जाने पर हे मृगाक्षी सीते! अब विराम मत लीजिये। हे सीमन्तीनि! अब आप शीलनिधान श्रीराम के पास पधारिये और आपसे अभिन्न साकेत की सीताजी को रमाने वाले श्रीराम को रमाइये। हे सीते! अब विलंब मत कीजिये, अपने केशों को सँवारिये, भजनीय श्रीराम को भजिये और सर्जनहार आनंद की सर्जना कीजिये और **गिरिधर** द्वारा गाये हुये श्रीराम को ही सभी वैष्णवों से गवाइये।

सन्दर्भश्लोकः

अथ सखीवचनेन विदेहजा
समभिगम्य शनैः स्मरसुन्दरम्।
रघुपतिं पतितान्वयपावनं
स्वजनमाप दृशोऽनवमं फलम्।।१।।

भौमी– इसके अनन्तर वासन्ती सखी का वचन सुनकर जनकनन्दिनी श्रीसीताजी ने प्रभु के पास धीरे से जाकर काम को भी जिनसे सुंदरता प्राप्त हुयी, रघुकुल के स्वामी, पतितकुल के पावन, स्वजन श्रीराम को देखकर नेत्रों का अनुपम फल पा लिया।

गीत संख्या–२६

गायति श्रीसीता–

विजयसे विश्वविलोचनचोर।।

हरमानसमानसमरालवर खलकुलकालानलकरालतर।
धृतामोघशरचण्डधनुर्धर रणकर्कशतरघोर।।१।।
तनुरुचिविजितनभस्यनीरधर भववारिधिमन्दरहरिकन्धर।
कुतुककदिष्यमाणदशकन्धर रिपुकुलकुलिशकठोर।।२।।
विशदविरुदमुखरितशुकशारद नामसोममोदितमुनिनारद।
निगमागमवरबोध विशारद कोसलराजकिशोर।।३।।
जननीजनकगुरुबन्धुविकासिन् चित्रकूटगिरिकाननवासिन्।
गिरिधरमनःकुटीरनिवासिन् मन्मुखचन्द्रचकोर।।४।।

भौमी– श्रीसीताजी गा रही हैं– हे विश्वविलोचन के चोर! आपकी जय हो। हे शिव के मनरूप मानस सरोवर के राजहंस! हे दुष्टों के लिये कराल कालाग्नि, अमोघ बाण और भयंकर धनुष धारण करने वाले, अत्यंत भयंकर श्रीराम आपकी जय हो। अपने शरीर की शोभा से भादों के बादल को जीतने वाले, भवसागर के लिये मंदराचल, खेल–खेल में भविष्य में रावण का वध करने वाले, शत्रुओं के लिये वज्र से भी कठोर प्रभु आपकी जय हो। अपने दिव्य विरुद से शुक और शारदा को भी मुखरित करने वाले और अपने नामामृत से नारद को भी प्रसन्न करने वाले, आगम–निगम और पुराणों में निपुण, हे कोसलराज किशोर! आपकी जय हो। माता–पिता गुरुजन और बांधवों को प्रसन्न करने वाले और चित्रकूट पर्वत के वन में निवास करने वाले, **गिरिधर** कवि के मन कुटीर में निवास करने वाले, मुझ सीता के मुख चंद्र के चकोर, आपकी जय हो।

गीत संख्या–२७

किमेतद्रूपलावण्यं नरोत्तम वरवपुषि धत्से।
किमेतन्नम्रतारुण्यं रघूत्तम वरवपुषि धत्से।।

दधानो पीड्यमुनिवेषं विमदयन् कामराकेशम्।
किमेतत् कम्रकारुण्यं कमुद्गम वरवपुषि धत्से।।१।।
त्यजन्नरपालप्रासादं मनाङ् नाप्तो मनः सादम्।
किमेतद् धारणास्थैर्यं शमुद्गम वरवपुषि धत्से।।२।।
वसानो बल्कलं धीमन् न भूतोऽभूतिभूर्भूमन्।
किमेतत् सौम्यसौन्दर्यं सुरोत्तम वरवपुषि धत्से।।३।।
लसत्सीतो वने प्रीतो वसन् गिरिधरगिरागीतः।
किमेतन् मञ्जुमाधुर्यं विभूत्तम वरवपुषि धत्से।।४।।

भौमी– पुनः सीताजी कहती हैं– अहो! हे पुरुषोत्तम! अपने श्रेष्ठ शरीर में क्या ही अद्‌भुत रूप–लावण्य को धारण कर रखा है। हे रघुकुल में श्रेष्ठ! अपने शरीर में क्या ही विनम्र तरुणावस्था धारण कर रखी है। हे कल्याण के उत्पत्ति स्थान! श्रेष्ठ मुनिवेश धारण करते हुये भी, आप कामदेव और चंद्रमा को भी मोहित कर रहे हैं। आप अपने शरीर में यह कैसा कारुण्य धारण कर रहे हैं। हे शान्ति के उद्‌गम स्थान प्रभु! राजप्रासाद छोड़कर भी आपके मन में किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं हुआ? आपने अपने अन्तःकरण में ये किस प्रकार का स्थिर धारणा स्वरूप धारण कर रखा है? हे दिव्य बुद्धि सम्पन्न! वल्कल वस्त्र धारण करके भी आप शिव के समान भयंकर नहीं हुये। हे देवताओं में श्रेष्ठ! आपने अपने शरीर में यह कैसा सौम्य सौंदर्य धारण कर रखा है? मुझ सीता को सुशोभित करते हुये, प्रसन्नतापूर्वक वन में निवास कर रहे **गिरिधर** कवि की वाणी द्वारा गाये हुये हे विभुओं में उत्तम परमेश्वर! आपने यह कौन–सा मधुर–माधुर्य अपने शरीर में धारण कर रखा है?

गीत संख्या–२८

परात्मन् नरव्याजमात्माभिरामं प्रभो ते स्वरूपं विभो ते स्वरूपम्।
भवात्मन् भवप्राज्यमाप्ताभिकामं प्रभो ते स्वरूपं विभो ते स्वरूपम्।।१।।
अपूर्वं खवेदाश्वयागस्य मूर्तं फलं साधनानां समिष्टासपूर्तम्।
जगन्मङ्गलं विश्वविश्वप्रणामं प्रभो ते स्वरूपं विभो ते स्वरूपम्।।२।।
विशुद्धं प्रबुद्धं कुभोगैर्न विद्धं गुणातीतमिद्धं सुसिद्धं प्रसिद्धम्।
परब्रह्मधामाऽव्ययं सल्ललामं प्रभो ते स्वरूपं विभो ते स्वरूपम्।।३।।
चिदानन्दकन्दाभनीलं शरीरं वरं वल्गुसंभग्नकालिन्दिनीरम्।
लसत्काण्डकोदण्डसाद्गुण्यधामं प्रभो ते स्वरूपं विभो ते स्वरूपम्।।४।।
विहायापि राज्यं न यस्मिन्निराशा प्रहायापि प्राज्यं न यस्मिन् दुराशा।
सुकविगिरिधरस्याक्षिचित्तैकरामं प्रभो ते स्वरूपं विभो ते स्वरूपम्।।५।।

भौमी– पुनः सीताजी कहती हैं– हे परमेश्वर! आपका यह मंगलमय स्वरूप मनुष्य का जैसा होता हुआ भी आत्माओं को आनंद देने वाला है। हे कल्याणात्मन्! आपका यह स्वरूप व्यापक और संसार की एकमात्र संपत्ति तथा सभी जीवात्माओं के लिये अभीष्ट कामनाओं का प्रदाता है। हे व्यापक! हे समर्थ प्रभो! खवेदाश्व

अर्थात् चालीस घोड़ों वाले दशरथ जी के यज्ञ का मूर्तिमान पुण्य और सम्पूर्ण साधनों का फल और इष्टापूर्त का भी कल्याणकारक, जगत को मंगल देने वाला, संपूर्ण विश्व के प्रणामों का आश्रय, आपका स्वरूप अद्‌भुत है। हे प्रभो! आपका स्वरूप अत्यंत पवित्र, ज्ञानमय, कुभोगों से कभी न प्रभावित होने वाला और तीनों गुणों से अतीत, देदीप्यमान, नित्य-सिद्ध, प्रसिद्ध-परब्रह्ममय, तेजोमय, अविनाशी और संतों का हृदयरत्न है। हे परमेश्वर! आपका स्वरूप सच्चिदानंदमय मेघ के आभा से युक्त है। आपका शरीर श्रेष्ठ और सुंदर है। उसने यमुनाजी के जल को भी लज्जित कर दिया है और सुंदर बाण-धनुष से सुशोभित श्रेष्ठ गुणों का आश्रय, आपश्री का स्वरूप अद्‌भुत है। हे प्रभो! धन्य है वह आपका स्वरूप, राज्य छोड़कर जिसमें निराशा नहीं आयी और धन छोड़कर जिसमें दुराशा नहीं आयी। वही तो **गिरिधर** कवि के नेत्र और चित्त को एकमात्र आनंद दे रहा है।

गीत संख्या-२९

एतद्रूपं रमणीयं राघव कामकमनीयं प्राप्तं कुतो भवता लब्धं कुतो भवता।।
किमुत सच्चिदानन्दं शुद्धं कल्पयेत माया किं घटेत सा विधातुमेतत् जडा त्रिगुणकाया।
मुक्तं मुक्तनमनीयं युक्तं योगिगमनीयं प्राप्तं कुतो भवता लब्धं कुतो भवता।।१।।
किमु लीलाशक्त्या सत्यं जगते प्रकटितं नैव क्षमा क्षमासुताहितं निष्कपटितम्।
भव्यं सेव्यसेवनीयं दिव्यं देवदेवनीयं प्राप्तं कुतो भवता लब्धं कुतो भवता।।२।।
विमलं विज्ञानमयं नित्यं निरपायं न्यस्तहेयप्रत्यनीकं शुभगुणकायम्।
स्वेच्छामयं माननीयं धीरैर्धियाध्याननीयं प्राप्तं कुतो भवता लब्धं कुतो भवता।।३।।
धृततूणिशरचापं रामं नराकारं मैथिलीहृदयहारं शीलकृपाऽगारम्।
गिरिधरगिरागापनीयं भक्तैर्हृदाधापनीयं प्राप्तं कुतो भवता लब्धं कुतो भवता।।४।।

भौमी- हे राघव! जो काम की भी इच्छा का विषय बना हुआ आपका रमणीय रूप है, उसे आपने कहाँ से पाया? उसे आपने कहाँ से उपलब्ध किया? क्या इस विशुद्ध सच्चिदानंद रूप को माया रच सकती है? अरे! जो स्वयं जड़ और सत्, रजस्, तमस् शरीर वाली है, वह इसको बनाने में कैसे समर्थ हो सकती है? हे राघव! जो सर्वथा माया के कार्यों से मुक्त, मुक्तजनों के द्वारा नमस्कार्य-युक्त और योगिजनों का गति है, ऐसा स्वरूप आपने कहाँ से प्राप्त किया? क्या, आपकी लीलाशक्ति द्वारा जगत के लिये यह सत्य स्वरूप प्रकट किया गया? जो क्षमापुत्री सीताजी का हितैषी और निष्कपट रूप है, उसे लीलाशक्ति नहीं प्रकट कर सकती। जो कल्याणमय है, जो सभी का सेव्य, ब्रह्मा, विष्णु, शंकर का भी सेव्य है, जो दिव्य है और देवताओं की भी स्तुति का विषय है, ऐसा स्वरूप आपको कहाँ से प्राप्त हुआ? वस्तुतः यह आपका रूप निर्मल, विज्ञानस्वरूप, नित्य, विनाशरहित, हेय गुणों और विरुद्ध गुणों से रहित, सद्‌गुणों से युक्त अत्यंत अद्वितीय है। वह स्वेच्छामय है अर्थात् भक्तों की इच्छानुसार आपने उसे धारण किया है। ऐसे सबके सम्माननीय, धीरजनों द्वारा बुद्धि से ध्यान करने योग्य, यह स्वरूप आपने कहाँ से प्राप्त किया? तरकश, धनुष-बाण धारण किये हुए, मनुष्य के समान आकृति वाले, मुझ मैथिली के हृदय का हार, शील और कृपा का भांडागार **गिरिधर** कवि की वाणी से गाने योग्य, भक्तों की धारणा का विषय, ऐसा यह श्रीरामरूप आपके द्वारा कहाँ से प्राप्त किया गया?

गीत संख्या-३०

राघव किमुग्रं तपस्तप्तं भो येन लब्धो मया त्वम्।
राघव किमीड्यं पुण्यं क्लृप्तं भो येन लब्धो मया त्वम्।।
पद्भ्यां समागत्य भङ्क्त्वा शम्भुचापम्।
मां स्वयम्वरेऽजैषीः कृत्वा शत्रुतापम।
किमु ब्राह्मणेभ्यो दानं दत्तं भो येन लब्धो मया त्वम्।।१।।
क्वाहं कुजाकुलजा सामान्या राजकन्या।
क्व त्वदुपलब्धिर्योगिदुर्लभातिधन्या।।
किं ऋत्विग्भ्यो दाक्षिण्यं सुदत्तं भो येन लब्धो मया त्वम्।।२।।
पुरोडाशमिव यजमानो मामनैषीः।
रावणराषभाद्रामभद्र नाप्यभैषीः।।
किमु श्रुतिविहितं विक्लृप्तं भो येन लब्धो मया त्वम्।।३।।
अबलाऽपि भवद् बाहुबलमाप्य सीता।
चित्रकूटे निर्भयाऽस्मि गिरिधरगीता।।
किमु चेष्टापूर्तं प्रक्लृप्तं भो येन लब्धो मया त्वम्।।४।।

भौमी- हे राघव! मैंने कौन-सा उग्र तप किया था, जिससे आप मुझे प्राप्त हुये? हे प्रभो! मैंने कौन-सा पुण्य संचय किया था, जिससे मैंने आपको प्राप्त किया? स्वयं पैदल मिथिला आकर, शिवजी का धनुष तोड़कर, शत्रुओं को तपाकर स्वयंवर में आपने मुझे जीता। मैंने ब्राह्मणों को कौन-सा दान दिया था, जिससे आप मुझे प्राप्त हुये? कहाँ मैं पृथ्वी उत्पन्न अकुलजा अर्थात् अयोनिजा सामान्य राजकन्या और कहाँ योगिजनों को भी दुर्लभ अत्यन्त धन्य आपकी उपलब्धि? मैंने ऋत्विजों को कौन-सी दक्षिणा दी है, जिससे मुझे आप प्राप्त हुये? हे प्रभो! पुरोडाश को यजमान की भाँति आपने मुझे स्वीकारा और रावण रूप गधे से भी आप नहीं डरे। मैंने कौन-सा वेदविहित कर्म किया था, जिससे आप मुझे प्राप्त हुये? मैं सीता अबला होकर भी आपका बाहुबल प्राप्त कर **गिरिधर** कवि के गीतों का विषय बनकर चित्रकूट में निर्भय विहार कर रही हूँ। मैंने कौन-सा ईष्टापूर्त किया था जिससे आप मुझे प्राप्त हुये?

सन्दर्भश्लोकः

निशम्य वाक्यं जनकात्मजाया
माधुर्यमञ्जूत्तमभावजुष्टम् ।
रामोऽभिरामो निजवामभागे
सीतां समारोप्य जगाद हृष्टः।।१।।

भौमी- इस प्रकार माधुर्य से पूर्ण, उत्तम भाव से युक्त, सीताजी का वाक्य सुनकर प्रभु श्रीराम प्रियतमा को वामभाग में बिठाकर यह वाक्य बोले-

गीत संख्या-३१

शक्रमित्रस्य सौम्यस्नुषाया मुहुः स्वागतं देवि ते स्वागतं स्वागतम्।
भानुवंशप्रदीपप्रियाया मुहुः स्वागतं देवि ते स्वागतं स्वागतम्।।
अद्य नाथस्त्रिलोक्या सनाथस्त्वया राघवोऽहं समाभग्नचिच्चम्पया।
देहशोभाऽभिभूतात्मभूशम्पया स्वागतं देवि ते स्वागतं स्वागतम्।।१।।
त्वद्विना स्वर्गलोको न मे रोचते किं प्रभाहीनभानुर्न निम्लोचते।
ज्योत्स्नया दूरश्चन्द्रो न किं शोचते स्वागतं देवि ते स्वागतं स्वागतम्।।२।।
आस्यतां वामे वामे समाश्वास्यतां मानसाधिर्मदीया द्रुतं नास्यताम्।
कोकिलाकाकलीला मुदा भाष्यतां स्वागतं देवि ते स्वागतं स्वागतम्।।३।।
गेहलक्ष्म्या जनोऽयं सुखं श्लिष्यतां दोर्लताभ्यां च श्रीवत्समाक्लिष्यताम्।
स्वप्नभावेऽपि भौम्या न विश्लिष्यतां स्वागतं देवि ते स्वागतं स्वागतम्।।४।।
चित्रकूटालये भातु वै भामिनी गिरिधरस्वामिनीतुष्टसौदामिनी।
भाग्यवैभवविजितपञ्चशरकामिनी स्वागतं देवि ते स्वागतं स्वागतम्।।५।।

भौमी- इन्द्र के मित्र दशरथजी के सौम्य पुत्रवधू आपका स्वागत है, बार-बार स्वागत है। सूर्यवंश के दीपक मुझ राम की प्राणप्रिया सीता का बार-बार स्वागत है, स्वागत है। आज तीनों लोकों का नाथ होकर भी मैं राघव चेतना में चम्पा को लजाने वाली, देह की कान्ति से बिजली को जीतने वाली, आपसे सनाथ हो गया हूँ। आपके बिना मुझे साकेत भी अच्छा नहीं लगता। क्या प्रभा के बिना सूर्यनारायण नहीं अस्त हो जाते? क्या चंद्रिका के बिना चंद्रमा नहीं शोचनीय होते? हे देवी! आपका स्वागत है, स्वागत है। आप मेरे वामभाग में विराजमान होइये, आप मेरी मन की पीड़ा समाप्त कीजिये और कोकिल स्वर में प्रेम से वार्तालाप कीजिये। आपका स्वागत है, स्वागत है। हे गृहलक्ष्मी! मेरा सुख से आलिंगन कीजिये और अपनी बाहुलता से मेरे श्रीवत्सलांछन का संघर्षण कीजिये। स्वप्न-भाव में भी मुझसे अलग न होइये। हे पृथ्वीनंदिनी! आपका स्वागत है, स्वागत है। इस चित्रकूट के पर्णकुटी में **गिरिधर** कवि की स्वामिनी, बिजली को संतुष्ट करने वाली, भाग्य-वैभव से रति को भी जीत लेने वाली, आप सुशोभित हों। आपका स्वागत है, स्वागत है।

गीत संख्या-३२

सीते त्वमसि वाटिका कापि।
ऐकरसा सर्वर्तुषु सुखदा शुष्यति नैव कदापि।।१।।
यस्यां सङ्क्रीडते सरसिजे कुर्वन् गजोऽनुरागम्।
रम्भां परीरिप्सुरथ तनुते वारीवारितरागम्।।२।।
सरसि गिरिवरावधिगिरिकञ्जे ते अनुलसति कपोतः।
तमनुमृणालौ तदनुमरालौ तदनुदामिनीपोतः।।३।।

बिम्बफलं समया शुकशावो नैतद् दशति कदाचित्।
चन्द्रं निकषा कमलमलिकुलं नो सङ्कुचति कथञ्चित्।।४।।
अभितो धनुषी चरतः खञ्जौ त्यक्त्वा काममपि भीतिम्।
नागवधूः स्पृहयते सुधायै शशिनि कुर्वति प्रीतिम्।।५।।
दर्शं दर्शमनुपमां वाटीं विवासितोऽपि न दीये।
गिरिधरेशमधुपेशः सीते त्वदधरासवं पीये।।६।।

भौमी– हे सीते! तुम एक अपूर्व वाटिका हो, जो सभी ऋतुओं में एकरस रहकर सुख देती रहती है और कभी नहीं सूखती। जिस वाटिका में कमल पर प्रेम करता हुआ हाथी खेलता है और बन्धन के कारण अन्य रागों से रहित होकर कदली का आलिंगन करना चाहता है। और आश्चर्य यह है कि कमल पर तालाब और पर्वत विराज रहे हैं और उन पर कबूतर सुंदर लग रहा है। उसके पास कमल दंड उसी के पास हंस और उसके पास विद्युत का बालक है। विम्बा फल के समीप है एक तोते का बच्चा, जो उसे कभी डसता नहीं और चन्द्रमा के समीप है कमल, जो भ्रमर से व्याप्त है। पर वह कभी संकुचित नहीं होता। और धनुषों के दोनों ओर किसी भी प्रकार का भय छोड़कर दो खंजन पक्षी चर रहे हैं और नागिन चंद्रमा से प्रेम करती हुयी अमृत के लिये स्पृहा कर रही है। इस निरूपम वाटिका को देख–देखकर मैं निर्वासित होकर भी दुःखी नहीं हो रहा हूँ और गिरिधर कवि का स्वामी मैं भ्रमरों का राजा राम आपके अधरासव का पान कर रहा हूँ।

गीत संख्या–३३

सीते पिबँस्तवाधरबिम्बम्।।
स्वप्नेऽपि स्पृहये न सुधायै नैव समीहे क्वचित् क्षुधायै।
निर्विकल्प इव रतः समाधौ लभमानःस्ववलम्बम्।।१।।
राम जीवजीवातुममोघं विस्मारितकोसलसुखमोघम्।
विदलितविप्रवासदुःखौघं स्वादुसोमनिकुरम्बम्।।२।।
अरुणचषकसमममृतनिधानं सौरतसौख्यसुभगसोपानम्।
नवशृङ्गारसारनीपानं विगलितभवभयसम्बम्।।३।।
जीवनयौवनमङ्गलमन्त्रं प्रेमवीथिकानिरुपमतन्त्रम्।
गिरिधरप्रभुस्तन्मयः पीये नन्दनसुरभिकदम्बम्।।४।।

भौमी– हे सीते! आपके बिम्बाधर का पान करता हुआ मैं अमृत के लिये स्पृहा नहीं कर रहा हूँ और भूख शांत करने की कोई चेष्टा नहीं करता हूँ। मैं दिव्य अवलंब प्राप्त कर निर्विकल्प समाधि में मग्न हो गया हूँ। यह मुझ राम की जीवन की औषधि है। इसने अयोध्या के सुख को झूठा करके भुला दिया है और इसने वनवास के दुःख–समूहों को नष्ट कर दिया है। इसमें अनेक अमृतों का स्वाद है। यह अमृत का खजाना लाल–प्याला है, यह दांपत्य प्रेम का सुंदर सोपान है, यह श्रृंगार–सार का सुंदर जलाशय है और यही भवभय को नष्ट करने के लिये वज्र है। यह जीवन और यौवन का मंगल मंत्र है, यही प्रेमगली का निर्मल शासनतंत्र है और इसी

नन्दन की सुगन्धि से युक्त, आपश्रीसीता के अधरासव को गिरिधर कवि का प्रभु मैं राम तन्मय होकर पी रहा हूँ।

गीत संख्या-३४

वनदेव्यः गायन्ति-

श्रीचित्रकूटे भाति रामो जानकीं शृङ्गारयन्।
तनुरुचिविजितशतकोटिकामो मन्मथं संस्कारयन्।।
कस्तूरिकातिलकं कपोलयुगे चरन् कुचयोः कलम्।
सुविचित्रचित्रितपत्रिकां सापत्रपः सन्धारयन्।।१।।
सीमन्तमासीमन्तयन् करकुण्डले शुचिकर्णयोः।
खञ्जनदृशावञ्जन् जनार्दन जैत्रकं संहारयन्।।२।।
आलक्तकं किसलाधरे दशनानिरञ्जन् धातुभिः।
निजनिर्मितं सुमकङ्कणं करकञ्जयोः परिधारयन्।।३।।
कट्यां कुसुमकलकिङ्किणीं मृदुपद्मपदयोर्नूपुरम्।
गिरिधरप्रभू राराज्यते भूनन्दिनीमाभारयन्।।४।।

भौमी- अब वनदेवियाँ गा रही हैं–सीताजी को शृंगारित करते हुये, कामदेव को संस्कार देते हुये, अपनी शोभा से करोड़ों कामों को जीतने वाले श्रीराम श्रीचित्रकूट में सुशोभित हो रहे हैं। सीताजी के दोनों कपोलों पर कस्तूरी तिलक करते हुये और दोनों वक्षोरूहों पर सुंदर चित्रपत्रक की रचना करते हुये श्रीराम सुशोभित हो रहे हैं। सीताजी की चोटी बनाते हुये, कान में कुण्डल धारण कराते हुये और खंजन जैसे नेत्रों में अंजन लगाते हुये, जनार्दन को भी जीतने वाले, काम को भी नियंत्रित करते हुये श्रीराम सुशोभित हो रहे हैं। सीताजी के पल्लव जैसे अधर का आलक्तक और सीताजी के दाँतों को धातुओं से रंगते हुए और सीताजी के करकमल में अपने ही द्वारा निर्मित कंकण पहनाते हुए श्रीराम सुशोभित हो रहे हैं। सीताजी के कटि प्रदेश में किंकिणी और चरणकमल में नूपुर धारण कराते हुये, सीताजी को अलंकृत करते हुये, गिरिधर कवि के स्वामी श्रीराम बहुत सुशोभित हो रहे हैं।

गीत संख्या-३५

राघवश्चित्रकूटे विभाति सीतालक्ष्मणसध्र्यङ् प्रभाति।
मन्दाकिनितटकृतपर्णधाम संसृत्य विहरति प्रहतदाम।।१।।
सौमित्रियुतो मृगयां प्रयाति न मृगेषु शरं क्वचिदपि जहाति।
विस्फारितनिजनयनैर्निहार्य मृग्यो मुमुहुर्निमिषं निवार्य।।२।।
मृदुमलयजवातः सुखं वाति सीतारामाभ्यां मुदं राति।
मङ्गलं मुनिभ्यः श्रीर्ददाति रामः क्षेमं सत्स्वादधाति।।३।।

सीता द्वितीयकः संश्चकार नवनवतिरासकं वै बभार।
गिरिधरप्रभुर्भूतीरियाय द्वादशशरदां कालं निनाय।।४।।

भौमी- श्रीराघव सीता-लक्ष्मणजी के सहित चित्रकूट में विराज रहे हैं। मंदाकिनी के तट पर सुंदर पर्णकुटी बनाकर उद्यान में विहर रहे हैं। लक्ष्मणजी के साथ मृगया करने जाते हैं, पर मृगों पर कभी बाण नहीं छोड़ते। प्रभु को विस्फारित नेत्रों से निहारकर, पलक गिराना बन्द करके, मृगियाँ मोहित हो गयीं। मलयसमीर सुख से बह रहा है जो श्रीसीताराम जी को प्रसन्नता प्रदान कर रहा है। सीताजी मुनियों को मंगल दे रही हैं और भगवान राम संतों का कल्याण कर रहे हैं। इस प्रकार चित्रकूट में निवास करते हुये, सीताजी के साथ भगवान राम निन्यानवें महारास किये। **गिरिधर** कवि के स्वामी भगवान श्रीराम श्रीचित्रकूट में बारह वर्षों का समय बिताये और दिव्य ऐश्वर्य प्राप्त किये।

गीत संख्या-३६

कविर्गायति-

राम सीताराम जय जय राम रामाराम जय जय।।
जननीजनकनिदेशपालक विपिनवसते नृपतिबालक।
पतितपावनगुणनिभालक शीलशोभाधाम जय जय।।१।।
जानकीसौमित्रिसध्य्रङ् धर्मरथसमतीरथसम्यङ्।
विमलगुणामोदितप्रत्यङ् प्रणतकल्पाराम जय जय।।२।।
वनपथिकजनमनोरञ्जन सुखितकोलकिरातपरिजन।
पदकमलरतदुरितभञ्जन नीलनीरदश्याम जय जय।।३।।
भरतभावसुवापिकावर हंसहंसकुलाब्जदिनकर।
पादुकाऽविर्भावश्रीवर सुजनदृक्विश्राम जय जय।।४।।
कम्रकार्मुकतूणशरधर कठिनवनपथपद्मपदचर।
गिरिधराधिविराम जय जय।।५।।

भौमी- अब कवि स्वयं गा रहे हैं-हे सीताराम! हे रामाराम! आपकी जय हो, जय हो। माता पिता का आदेश पालन करने वाले वनवासी राजकुमार शील-शोभा के धाम, पतितपावन, गुण को संभालने वाले, आपकी जय हो, जय हो। जानकीजी एवं लक्ष्मणजी को सहचर बनाने वाले, धर्मरथी, अतिरथी, वेद के सम्यक् पूजक, प्रणतजनों के कल्पवृक्ष, आपकी जय हो, जय हो। वनपथिकों का मनोरंजन करने वाले और कोल-किरात रूप परिजनों को सुखी करने वाले और चरणकमलों में प्रेम करने वालों के पाप को नष्ट करने वाले, नीले कमल के समान श्यामल प्रभु, आपकी जय हो, जय हो। भरत के भाव रूप बावली के राजहंस, सूर्यकुल कमल के सूर्य और पादुका जी में अपना आविर्भाव प्रकट करने वाले, सज्जनों के नेत्रों के विश्राम स्वरूप प्रभु, आपकी जय हो, जय हो। सुंदर धनुष, बाण, तरकस धारण करने वाले, कठिन वनपथ में चरणकमल से चलने वाले, निन्यानवे महारासों के ईश्वर, **गिरिधर** कवि के भय और विषयों के अभावस्थान प्रभु राम आपकी जय हो, जय हो।

उपसंहारश्लोकः

इत्थं रामो गीतसीताभिराम-
स्त्यक्त्वा राज्यं तातनिर्देशतोऽसौ।
स्थित्वारण्ये सानुजश्चित्रकूटे
सीतामित्रो मित्रवर्षं निनाय।।१।।

भौमी– इस प्रकार पिता के निर्देश से राज्य को छोड़कर लक्ष्मणजी के साथ, सीताजी को अपना मित्र बनाकर, चित्रकूट वन में निवास करके गीतसीताभिराम श्रीराम ने वनवास के बारह वर्ष बिता दिये।

इति
श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरमहाकविजगद्गुरुरामानन्दाचार्यस्वामिरामभद्राचार्यगिरिधरकविप्रणीते गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये अयोध्याकाण्डे गीतचित्रकूटमण्डनो नाम नवमः सर्गः।।

।।अयोध्याकाण्डं सम्पूर्णम् ।।

इस प्रकार श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर महाकवि जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य गिरिधरकवि द्वारा विरचित गीतरामायण 'गीतसीताभिराम' नामक संस्कृत गीतमहाकाव्य के अयोध्याकाण्ड में गीतचित्रकूटमण्डन नामक नवम सर्ग संपन्न हुआ और अयोध्याकाण्ड संपूर्ण हो गया।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

।।श्रीः।।
।।नमो राघवाय।।
।।श्रीमद्राघवो विजयते। श्रीसीतारामौ विजयेते।।

अथ अरण्यकाण्डम्

गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये अरण्यकाण्डे गीतललितनरलीलो नाम

प्रथमः सर्गः

मङ्गलाचरणम्

श्रिया जुष्टस्तुष्टो निजनिचितलाभेन नमितो
निलिम्पैर्नैलिम्पैर्महमहितमाद्यन्महिमभिः।
प्रतीतः श्रीसीतावदनवनजाली रघुवरो
भवारण्योऽरण्ये सुरवरवरेण्यो विजयते।।१।।

भौमी– महाकवि अरण्यकाण्ड का मंगलाचरण करते हुये वस्तुनिर्देशात्मक मंगल प्रस्तुत करते हैं। अपनी नित्य आह्लादिनी शक्ति श्रीसीताजी से सेवित, अपने ही लाभ से संतुष्ट, अनेक उत्सवों से पूजित, परमप्रसन्न महिमाओं वाले, देवताओं और देवपुत्रों द्वारा वंदित, परम विस्वस्त श्रीसीताजी के मुखकमल के भ्रमर, श्रेष्ठ देवताओं के भी वरणीय, सभी को शरण देने में समर्थ, रघुकुल में श्रेष्ठ, भगवान राम इस कल्याणमय वन में विजय प्राप्त कर रहे हैं।

सन्दर्भश्लोकः

स्वाङ्कं स्वामधिरोप्य वल्गुवनितां वेणीं वरो वेणयन्
नूत्नैर्नन्दनकाननीयकुसुमैरालक्तयन्नाधरम् ।
भाले मञ्जुमनः शिलां तिलकयन् वक्षोरुहे पत्रयन्
सीतास्येन्दुचकोरको विजयते श्रृङ्गारहारो हरिः।।१।।

भौमी–अपने अङ्क में श्रेष्ठ वनिता सीताजी को अधिरोपित करके नन्दनवन के सुन्दर पुष्पों द्वारा जनकनन्दिनीजी की वेणी गूँथते हुए एवं उनके अधर को आलक्त से अभिरञ्जित करते हुए एवं भगवतीजी के भाल पर मन:शिला का तिलक करते हुए भूमिनन्दिनी के वक्षोरूहों पर चित्रपत्रक का निर्माण करते हुए श्रृंगार

के अलंकारस्वरूप श्रीसीताजी के मुखचन्द्र के चकोर भगवान् श्रीराम श्रीचित्रकूट प्रान्तर में सर्वोत्कृष्टतया विराजमान हो रहे हैं।

गीत संख्या-१

मदनमोहनघनश्यामो विजयतां राघवो रामः प्रजयतां माधवो रामः।
भुवनलोभनजनारामो विजयतां राघवो रामः प्रजयतां माधवो रामः।।
जनकजाननवनजभृङ्गो विभाव्रीडितशतानङ्गो
विरङ्गोऽनङ्गरिपुरङ्गो विसङ्गो जुष्टसत्सङ्गः।
मृदुजदूर्वादलश्यामो विजयतां राघवो रामः।।१।।
सनाथितधर्ममर्यादो विनाथितदैत्यमनुजादो
विसर्जितपौरप्रासादो विनासितदानवाह्लादः।
नवलनीलोत्पलश्यामो विजयतां राघवो रामः।।२।।
इषुधिसायकधनुर्धारी महीतलभारभरहारी
हरिरसज्जनमनश्चारी खरारिर्लोकसुखकारी।
शरजवाहनगलश्यामो विजयतां राघवो रामः।।३।।
श्रितारण्यो भृतारण्यो नतारण्यो मतारण्योऽ-
शरण्यः सम्मतारैण्यो वरेण्यो गिरिधरारण्यः।
यमीयामुनजलश्यामो विजयतां राघवो रामः।।४।।

भौमी– अब देवांगनाएँ गा रही हैं–काम को मोहित करने वाले तथा मद और मोह से रहित मेघ के समान श्यामल, रघुकुल में प्रकट, श्रीराम की जय हो और मधुमास में आविर्भूत होने वाले मा अर्थात् साकेत विहारिणी सीताजी के धव अर्थात् पति पुनः मा अर्थात् माया, उसके भी धव अर्थात् पति मधुमास में आविर्भूत सीतापति तथा मायापति भगवान राम की प्रकृष्ट जय हो। सारे संसार को लुभाने वाले और भक्तों को पूर्ण आनन्द देने वाले श्रीराम की जय हो। जनकनन्दिनी सीताजी के मुखकमल के भ्रमर अपनी कान्ति से अनेक कामदेवों को लज्जित करने वाले आसक्ति से रहित और कामारि शिव को भी आनन्द देने वाले संसार का अन्यसङ्ग छोड़कर सत्संग का प्रेमपूर्वक सेवन करने वाले कोमल दूर्वादल के समान श्यामल श्रीराम की जय हो। धर्म मर्यादा को सनाथ करने वाले नरभोजी दैत्यों को अनाथ करने वाले, अवधपुरी के प्रासाद को छोड़ने वाले, दानवों का हर्ष नष्ट करने वाले नवीन नीले कमल के समान श्रीराम की जय हो। तरकस बाण और धनुष–बाण धारण करने वाले, पृथ्वी तल की विपत्ति को भी हरने वाले सज्जनों के मन में विचरण करने वाले एवं राक्षस के शत्रु लोकों को सुख देने वाले शरज अर्थात् सरकण्डे के वन में प्रकट हुए कार्तिकेय जी के वाहन मयूर के गले के समान श्यामल श्रीराम की जय हो। श्रितारण्य अर्थात् चौदह वर्षो के लिए वन का आश्रय लेने वाले, भृतारण्य अर्थात् वन का पालन करने वाले नतारण्य अर्थात् आरण्य में निवास कर रहे आरण्यों को नमन करने वाले और आरण्य जनों की पूजा करने वाले अशरण्य अर्थात् विष्णु को भी शरण देने वाले, सम्मतारण्य अर्थात् अरण्य जनों को सम्मान देने वाले सबके वरणीय और **गिरिधर** कवि के समर्थ

शरणदाता संयमी यमुनाजल के समान श्यामल प्रभु राम की विजय हो। यह गीत अपने समय में प्रसिद्ध एक चलचित्रीय गीत की धुन में निबद्ध है।

प्रजयतां- यहाँ 'कर्तरि कर्मव्यतिहारे' पा०अ०१/३/१४ सूत्र से आत्मनेपद लोट् लकार, प्र० पु० एकवचन का प्रयोग हुआ है।

गीत संख्या-२

चित्रकूट इह रमते रामः।।
शृङ्गारयन् वरवधूं मुदितो यवितयौवनां युवतीमुदित।
मथितमन्मथो युवासमुदितऽचित्रकूट इह रमते रामः।।१।।
आनखशिखं मण्डयन् वामां कामयमानां कमथाकामाम्।
रमयन् रहसि रसिकरसरामां चित्रकूट इह रमते रामः।।२।।
मदनमनोरथरथमारूढो दोर्लतयावनितयोपगूढः।
मनसि रासरसतरुवररूढोऽचित्रकूट इह रमते रामः।।३।।
भावुकभावभावितः सुरवरवधूगीतचरितो रसनिर्भरः।
प्रियाप्रेमविवशः कविगिरिधरः चित्रकूट इह रमते रामः।।४।।

भौमी- इस चित्रकूट में श्रीराम रम रहे हैं। गतिशील युवावस्था वाली श्रेष्ठवधू सीताजी का शृंगार करते हुए पूर्णयुवक प्रसन्न श्रीराम विष्णु से भी (दत्रात्रेय के रूप में सेवित) चित्रकूट में रम रहे हैं। संसार की वासना से रहित होकर भी, सम्पूर्ण कलाओं से युक्त होते हुए भी, प्रभु श्रीराम को ही अपनी इच्छा का आश्रय बना रही श्रेष्ठरसिक और रसिकेश्वर प्रभु को भी रमाने वाली, कामाङ्गिनी सीताजी को एकांत में नख से शिखापर्यन्त शृंगारित करते हुए, चेतना को त्राण देने वाले शिखरों से युक्त चित्रकूट में श्रीराम रम रहे हैं। काम के मनोरथ रूप रथ पर विराजमान और पृथ्वीपुत्री सीताजी द्वारा अपनी भुजालता में आलिंगित तथा मन में जपे हुए (उत्पन्न) रास रस के दिव्य वृक्ष से युक्त, विष्णु को भी आश्चर्य में डालने वाले चित्रकूट में श्रीराम रम रहे हैं। भावुकों के भावों से सम्मानित एवं देववधुओं के द्वारा जिनके चरित्रों का गान किया गया है। ऐसे रसपूर्ण प्रिया सीताजी के प्रेम के विवश **गिरिधर** कवि के द्वारा सेवित चित्रकूट में श्रीराम रम रहे हैं।

विशेष- यह गीत १६ मात्रा त्रिताल में निबद्ध है।

गीत संख्या-३

चित्रकूटमभिरामो रमते सत्त्रिकूटमभिरामो रमते।।
मुहुः श्यामया रम्यरामया वपुर्विभवजितकामवामया।
भूरिभुवनललनाललामया रत्नकूटमभिरामो रमते।।१।।
पुरहरमौलिमालिकातीरे शिशिरमधुरमृदुमलयसमीरे।
सुकुसुमकल्पितकुञ्जकुटीरे स्वर्णकूटमभिरामो रमते।।२।।

ग्रहयुगरासैर्रमणीं रमयन् पुरयुगविवसनखेदं शमयन्।
कुमदनमदनकुमदमपि दमयन् रजतकूटमभिरामो रमते।।३।।
मृडयन् शिरिशसरसश्रृङ्गारां चम्पककनककमलकलहाराम्।
सुमनसमिव सुमनोऽलङ्कारां वर्णकूटमभिरामो रमते।।४।।
विबुधवधूटीगीतयशोवरविनतविहतकश्मलो धनुर्धर।
जगद्गुरुर्गदितः कविगिरिधरकर्णकूटमभिरामो रमते।।५।।

भौमी- श्रीराम चित्रकूट में रम रहे हैं और वे सन्तों के ज्ञान, वैराग्य, भक्ति रूप तीनों त्रिकूटों में रम रहे हैं। अपनी शोभा से करोड़ों कामों को जीतने वाले, अनन्त भुवनों की महिलाओं की रत्नस्वरूप रमणीय पत्नी सीताजी के साथ श्रीराम रत्नकूट में रम रहे हैं। मलयाचल के शीतल, मन्द, वायु से युक्त सुन्दर पुष्पों के सहित, वनपर्ण कुटीरों वाले, त्रिपुर शत्रु शिवजी की मुकुटमाला, मंदाकिनी के तट पर श्रीराम स्वर्णकूट में रम रहे हैं। इस प्रकार सीताजी को निन्यानवें महारासों में रमाते हुए और मैके तथा ससुराल के निर्वासन से उत्पन्न खेद को दूर करते हुए कुत्सित मद का दमन करते हुए श्रीराम रजतकूट (चाँदी) में रमण कर रहे हैं। शिरीष पुष्प का सुन्दर शृंगार की हुई चम्पा, सोना और कमल जैसे स्वभाव वाले, विशिष्टता धारण की हुई पुष्पों के अलंकार से सजी साक्षात देवी स्वरूपिणी सीताजी को प्रसन्न करते हुए अनेक वर्णों वाले चित्रकूट में श्रीराम रम रहे हैं। देववधुओं द्वारा जिनका दिव्य यश गाया गया है और जिन्होंने अपने चरणों में विनम्र भक्तों के समस्त दोषों को नष्ट कर दिया, ऐसे अद्वितीय धनुर्धर जगद्गुरु के नाम से प्रसिद्ध श्रीराम **गिरिधर** कवि के कर्णकूट अर्थात् दशों इन्द्रियों तथा चारों अन्तःकरणों में श्रीराम रम रहे हैं।

गीत संख्या-४

रामा रामारामं रमयति।।
विश्रम्भेण परीरम्भेण शमारम्भेण वरं विश्रमयति।।१।।
हासं हासं विविधविलासं रसिकसाररतिरसमाक्रमयति।।२।।
चुम्बं चुम्बं मुखमविलम्बं स्वाधरबिम्बं भवमक्लमयति।।३।।
श्लेषं श्लेषं प्रियमक्लेशं दयितश्रमलेशं संशमयति।।४।।
रघुवरगृहिणी वनं गृहन्ती गिरिधरविषयविनोदं दमयति।।५।।

भौमी- रामजी को आनन्द देने वाली सीताजी श्रीराम को रमा रही हैं। वे विश्वास द्वारा आलिंगन कल्याण के आरम्भ द्वारा अपने वर श्रीराम को विश्राम दे रही हैं। हँस-हँसकर अनेक विलासों द्वारा रसिकों के साररूप शृंगार रस को भी उपस्थित करती हुई विलम्ब किए बिना सुन्दर बिम्बाधर वाले प्रभु का मुख चूम-चूमकर उनकी थकान दूर करती हैं। आनन्द से प्रभु को आलिंगन कर करके श्रीराघव के श्रमगन्ध को भी समाप्त कर रही हैं। इस प्रकार वन को भी घर बना रही श्रीराम की धर्मपत्नी सीताजी **गिरिधर** कवि के सांसारिक विषय विनोद का भी दमन कर रही हैं।

विशेष- यह गीत भी त्रिताल १६ मात्रा में निबद्ध है।

गीत संख्या-५

पश्यत पार्थिवीसौभाग्यम्।
सुरललनाललनाशिरोमणेः सुभणत भौम्याभाग्यम्।।१।।
या पुरमथनमनोमन्दिरदेवतारघूत्तममूर्तिः।
अहो सैव सुलभा माहेयी मदनमनोरथपूर्तिः।।२।।
क्षणमपि यन्मुखचन्द्रदृशे स्पृहयन्ते शुकसनकाद्याः।
देवी तद्वदनेन्दुचकोरी जनककिशोरी आद्या।।३।।
यं न समाधावपि पश्यन्ति निमिषमिह योगिमुनीशाः।
अहो स्तनोपपीडमिह तं परिरभतेऽसौ जगदीशा।।४।।
यावदमितकल्पं न जानकीसमाभाग्यभाङ्नारी।
भक्त्या ततः सन्ततं गायति गिरिधरकविरधिकारी।।५।।

भौमी- अरे लोगों! पृथ्वीपुत्री सीताजी का सौभाग्य देखो। हे देवांगनाओं! नारी-शिरोमणि सीताजी के भाग्य का वर्णन करो। अरे! जो श्रीरामजी की मूर्ति त्रिपुर शत्रु शिवजी ने मनमन्दिर की देवता की हुई है। वही प्रभु की मूर्ति आज महिनन्दिनी सीताजी के प्रेमात्मक काम के मनोरथों की पूर्ति बनकर सुलभ हो गई है। जिन प्रभु के मुखचन्द्र के क्षणमात्र के दर्शनों के लिए शुकसनकादि तरसते रहते हैं उन्हीं जनकनन्दिनी सीताजी इन्हीं प्रभु मुखचन्द्र की चकोरी बनकर निर्निमेष नयनों से सदैव रूपरस का पान किया करती हैं। अहो! जिन प्रभु श्रीराम को समाधि में क्षणमात्र के लिए भी योगी और मुनीश्वर नहीं दर्शन कर पाते, उन्हीं श्रीराम को अपने स्तनों की उत्पीड़न के साथ जनकनन्दिनी सीताजी प्रेम से आलिंगन करती रहती हैं। जिनकी चरणामृत की बूँद को भी विष्णु, शिव और ब्रह्मा नहीं प्राप्त कर पाते, उन्हीं प्रभु श्रीराम के अधरामृत का पान करती हुई सीताजी मंगलों का आरम्भ करती रहती हैं। वस्तुतः अनेक कल्पपर्यन्त सीताजी के समान कोई सौभाग्यवती महिला उपलब्ध नहीं होगी, इसीलिए **गिरिधर** कवि भी भक्ति के साथ अधिकारपूर्वक इन्हीं जनकनन्दिनीजी को निरन्तर गाते रहते हैं।

गीत संख्या-६

अहो देवाङ्गना दिव्यां विपश्यत राममर्यादाम्।
लसच्चन्द्रानना भव्यां प्रपश्यत राममर्यादाम्।।
वयं स्पृहयामहे यस्मै तपस्यन्त्यः स्वतनुतापम्।
स सीतामात्रसापेक्षः सुपश्यत राममर्यादाम्।।१।।
विराजंश्चित्रकूटे चैकपत्नीव्रतधरो धन्वी।
वशी बर्हिष्मतां वर्योऽभिपश्यत राममर्यादाम्।।२।।
अहो अस्मदृगालीभिः प्रपीतच्छविमधुर्भारी।
यथा नतकन्धरानयनोऽनुपश्यत राममर्यादाम्।।३।।

न चेदृक् क्वापि मर्यादा यथा रामे त्रिलोक्यां भो।
ततो गिरिधरधिया साकं नमस्यत राममर्यादाम्।।४।।

भौमी- देवांगनाएँ परस्पर गा रही हैं–अरे देवियों! श्रीराम की दिव्य मर्यादा पर विचार तो करो। हे सुशोभित चन्द्रमुखियों! प्रभु राम की कल्याणमयी मर्यादा तो देखो। देवियों! अपने शरीर को तपाकर तपस्या करती हुई, हम देवियाँ जिन श्रीराम को पाने के लिए स्पृहा करती रहती हैं, वे श्रीराम केवल सीताजी के प्रति सापेक्ष रहते हैं। हमको भूलकर भी नहीं निहारते। श्रीराम की इस मर्यादा को शोभनरूप से देखो। इसी चित्रकूट में विराजमान होकर अग्निहोत्र करने वालों में श्रेष्ठ इन्द्रियों को वश में करने वाले धनुर्धर श्रीराम एक पत्नीव्रत धारण कर रहे हैं। श्रीराम की इस मर्यादा को अपने अभीष्ट रूप में देखो। अहो! हमें ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे हमारी दृष्टिरूप भ्रमरियों द्वारा जिनकी छवि मदिरा का पान किया गया है ऐसे प्रभु हमारे नेत्रों के भार से बोझिल हो गए हैं। इसीलिए उनकी कन्धा और नेत्र झुक गए हैं। जैसे व्यक्ति बहुत बड़े भार को न सहन करते हुए झुक जाता है। श्रीराम की इस मर्यादा को अनुकूलता से देखो। अरे देवियों! जिस प्रकार श्रीराम में मर्यादा विराज रही है। ऐसी मर्यादा त्रिकाल में त्रिलोकी में सम्भव नहीं है। इसीलिए तुम सब **गिरिधर** कवि की बुद्धि के साथ ही राम की मर्यादा को नमन करो, वन्दन करो, अर्चन करो।

सन्दर्भश्लोकः

अथ जयन्तवधूर्वनजाननं परिसमीक्ष्य हरिं सह सीतया।
रघुवरं स्वनुजानुचरं रहः पतिमुपेत्य सुवाचमुवाच सा।।१।।

भौमी–इसके पश्चात् सीताजी के साथ विराजमान शोभन भ्राता लक्ष्मणजी से सेवित, कमलमुख, महाविष्णु श्रीराम के दर्शन करके इन्द्रपुत्र जयन्त की पत्नी ने अपने पति जयन्त के पास जाकर एकान्त में यह सुन्दर वाणी कही।

गीत संख्या-७

सुरेन्द्रसुत शीघ्रं चित्रकूटमुपेहि।।
लोचनगोचरसुकृतफलं लब्ध्वात्मशान्तिमाधेहि।
सत्यसन्धमनुसन्दधान इह निजहृदयं सन्धेहि।।१।।
निरुपधिनिरुपाधिकसौन्दर्यं चक्षुः समुपाधेहि।
सावधानमवधाय राघवं तत्र मनः समाधेहि।।२।।
आनखशिखमवलोक्य विशोकं सदयहृदयमाधेहि।
आलभस्व निजजीवनलाभं मनोऽन्यत्र मा धेहि।।३।।
सममोदन्त जयन्त सुरवरा यतस्ततोऽनुविधेहि।
गिरिधरप्रभुमुखचन्द्रचकोरो नयने निजे निधेहि।।४।।

भौमी- हे इन्द्रपुत्र! शीघ्र चित्रकूट चलो। अपने पुण्यफल को नेत्र का विषय बना हुआ प्राप्तकर आत्मशांति पाओ और सत्यसन्ध प्रभु का अनुसन्धान करते हुए अपने हृदय को स्थित कर लो। कपटरहित

और मायारहित प्रभु के सौन्दर्य को अपने नेत्र के निकट ले आओ और सावधान होकर श्रीराम की धारणा करके उन्हीं में मन का समाधान कर लो। हे जयन्त! दयापूर्ण हृदय वाले शोकरहित श्रीराम को नखशिखपर्यन्त निहारकर आदरपूर्वक उन्हीं की धारणा कर लो। अपने जीवन का लाभ प्राप्त कर लो, मन को अन्यत्र न ले जाओ। हे जयन्त! देवताओं ने भी अनुमोदन कर दिया है, इसलिए तुम अब उन्हीं का अनुगमन करो और **गिरिधर** कवि के प्रभु श्रीराम के मुखचन्द्र का चकोर बनकर उन्हीं रघुवर को अपने आँख में भर लो।

गीत संख्या-८

जयन्तपत्नी पुनर्गायति-

मया समं चित्रकूटमुपयाहि।।
अवन् गीतसीताभिराममिह नेत्रं त्रासात् त्राहि।
स प्रत्ययं प्रतीत्य प्रत्यगात्मानं पापात् पाहि।।१।।
पश्य पश्य रामयाभिरामं रामं वने वसन्तम्।
विहरन्तं श्रीहरिं सुषमया हरिनन्दनं हसन्तम्।।२।।
शृङ्गारयन्तमवनिकन्यकां नन्दनवनप्रसूनैः।
हारयन्तमथहृदि हृष्यन्तं काञ्चनकामलसूनैः।।३।।
शङ्कापङ्ककलङ्ककालुषीं दूरात् त्यज हे कान्त।
गिरिधरप्रभुमवलोक्य विशोको जायय जयं जयन्त।।४।।

भौमी- जयन्त पत्नी फिर कहती है- हे जयन्त! मेरे साथ आप चित्रकूट चलिये और गीतसीताभिराम को निहारते हुए अपने नेत्र की भवत्रास से रक्षा कर लीजिए। विश्वास के साथ प्रभु को निहारकर अपनी प्रत्यगात्मा को भी पाप से बचा लीजिए। अरे! सीताजी के साथ वन में निवास करते हुए तथा विहार करते हुए, अपनी शोभा से हरिनन्दन अर्थात् नारायण के पुत्र कामदेव का परिहास करते हुए, अभिराम श्रीराम के दर्शन कीजिए, दर्शन कीजिए। अरे जयन्त! नन्दनवन के पुष्पों से भूमिनन्दिनी सीता को शृंगारित करते हुए और स्वर्ण के कमलों से निर्मित चन्द्रहार सीताजी को पहनाते हुए हृदय में प्रसन्न हो रहे अभिराम श्रीराम को देखो। हे पति जयन्त! अपनी शंकारूप कीचड़ और कलंकाभास की कलुषता को दूर से छोड़ दो और **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम को निहारकर तुम विजय को भी जीत लो, अन्यथा तुम्हारे जय का अन्त हो जाएगा। जयस्य अन्तः यस्य स जयन्तः- जिसकी जय का अन्त अवश्यंभावी है उसी को जयन्त कहते हैं। यहाँ शकन्ध्वादिगण की आकृति गण होने के कारण जय शब्द के अन्त्य अकार के साथ अन्त शब्द के आदि अकार का पररूप समझना चाहिए।

गीत संख्या-९

विहरति श्रीरघुवीरे मधुरमन्दाकिनीतीरे।
मनो धेहि भजनकुटीरे मधुरमन्दाकिनीतीरे।।
पितृनिदेशसेवितवनवासे सह सीतयाऽकृतनवनवतिरासे।
शीलितमलयसमीरे मधुरमन्दाकिनीतीरे।।१।।

देवाङ्गनागीतसुधितचरित्रे दुर्गमभवाम्बुनिधिचरणवहित्रे।
बलितवनितवानीरे मधुरमन्दाकिनीतीरे।।२।।
शङ्कां विहाय चलाचिरं चित्रकूटं तत्पांशुभिः शोधयाशु स्वत्रिकूटम्।
कूजितशुकपिककीरे मधुरमन्दाकिनीतीरे।।३।।
स्वमनो निधेहि नाथनाकपललामे गिरिधरवसुनि गीतसीताभिरामे।
जलधरश्यामलशरीरे मधुरमन्दाकिनीतीरे।।४।।

भौमी- हे जयन्त! मधुर मन्दाकिनी के तट पर विहार कर रहे भजन-कुटीर बनाए हुए श्रीराम में अपने मन को लगा दीजिए। पिता का वचन मानकर वनवास का सेवन कर रहे सीताजी के साथ निन्यानबे महारास सम्पन्न किए हुए एवं मलय समीर का सेवन करने वाले रघुवीरजी में मन को लगा दीजिए। देवांगनाओं के द्वारा जिनके शोभामय चरित्र का गान किया गया और जिनके चरण ही दुर्गम जलसागर के लिए जलयान हैं, ऐसे वन में उत्पन्न बेतों से चिपके हुए या उन्हें सम्बल देने वाले रघुवरजी में अपना मन लगाओ। हे जयन्त! शंका छोड़कर चित्रकूट चलो और उसी चित्रकूट की धूलियों से अपने कपट-समूह को पवित्र कर लो, जहाँ तोते कोयल और मोर बोल रहे हैं। उसी मन्दाकिनी तट पर विहार करने वाले रघुवीर जी में मन लगाओ। हे नाथ! स्वर्गपालक इन्द्र के श्रीरत्नस्वरूप गीतसीताभिराम महाकाव्य के मुख्य नायक, मेघ के समान श्यामल शरीर, **गिरिधर** कवि के एकमात्र धन रघुवीर जी में अपना मन लगा दो।

गीत संख्या-१०

मावजानीहि जानीहि रामं हरिं सीतारामे मनः सुस्थिरं धीयताम्।
चिन्तयित्वा जगद्घोरसागरतरिं आत्मारामे मनः सुस्थिरं नीयताम्।।
यस्य भासा विभात्येतदखिलं जगद्यस्य भूत्यैव भूतं च भव्यं भवत्।
वारणावारणाधारणाधारणे तत्र पुण्यप्रणामे मुदा धीयताम्।।१।।
यस्य सङ्कल्पतस्सृष्टिरासृज्यते यस्य चैवेच्छया भज्यते भज्यते।
तत् परब्रह्मणि व्यापकेऽधीश्वरे पूर्णकामे स्वकात्मा समाधीयताम्।।२।।
नेति नेतीति वेदा प्रगायन्ति यं शेषसनकादयश्चापि ध्यायन्ति यम्।
तत्र सर्वत्र व्याप्तेऽसमाप्ते विभौ विश्वतो विश्वकामे कमाश्रीयताम्।।३।।
त्यक्त्वा शङ्काङ्कपङ्कं मृगाङ्काननो राघवः संश्रयप्रोल्लसत् काननो।
गिरिधरैकाश्रयः चित्रकूटालयो गीतसीताभिरामः समाश्रीयताम्।।४।।

भौमी- हे जयन्त! प्रभु का अपमान मत करो, श्रीराम को महाविष्णु ही जानो। सीतारामजी में सुस्थिर मन लगा दो। प्रभु को संसार सागर का जहाज मानकर उन्हीं आत्माराम में अपना सुस्थिर मन लगा दो। जिनके प्रकाश से सारा संसार प्रकाशित हो रहा है और जिसकी विभूति से भूत, भविष्यत्, वर्तमान ये तीनों काल सुरक्षित हैं, उन्हीं संसाररूप हाथी का वरण करने वाली दिव्य-धारणा से धारण करने योग्य पुण्य-प्रणाम श्रीराम में स्वयं को आश्रित कर लो। जिनके संकल्प से सृष्टि की रचना होती है, पालन होता है, संहार हो जाता है; उन्हीं परब्रह्म व्यापक ईश्वर पूर्णकाम श्रीराम में अपनी आत्मा को समाहित कर लीजिए। जिनको वेद नेति-

नेति कहकर गाते हैं और जिनका शेषसनकादि ध्यान करते हैं, उन्हीं सर्वत्र व्याप्त-असमाप्त अर्थात् अनन्त सभी मूर्त द्रव्यों के साथ संयोग करने वाले, सभी की कामनाएँ पूर्ण करने वाले श्रीराम में ही सब ओर से मन हटाकर सुखपूर्वक आश्रय स्वीकार कर लो। सम्पूर्ण शंकारूप कीचड़ छोड़कर, चन्द्रमुख अपने निवास से, वन को सुशोभित करने वाले, रघुकुल में प्रकट, **गिरिधर** कवि के एकमात्र आश्रय चित्रकूट विहारी गीतसीताभिराम श्रीराम का सम्यक् प्रकार से आश्रय ले लो।

गीत संख्या-११

महारासेऽद्य रामो राजते गीतसीताभिरामो भ्राजते।।
चित्रकूटेऽचित्रकूटे शरदुत्सवे मल्लिकामाधवीमञ्जुकुसुमोद्भवे।
व्रीडितानेककामो राजते महारासेऽद्य रामो राजते।।१।।
शततमे महारासे समारब्धे सौख्यसारे शृङ्गारे समुपलब्धे।
मैथिलीदृगारामो राजते महारासेऽद्य रामो राजते।।२।।
यशो गायत्यमोघं देवीगणे जानकीनूपुरे लसन् मधुरक्वणे।
मानितः श्यामाश्यामो राजते महारासेऽद्य रामो राजते।।३।।
धर्मचारिण्या सहचारिण्या सीतया समन्वितः कविगिरिधरगिरागीतया।
लोकलोकाभिरामो राजते महारासेऽद्य रामो राजते।।४।।

भौमी- आज सौवें महारास में श्रीराम सुशोभित हो रहे हैं, गीतसीताभिराम प्रभु देदीप्यमान हो रहे हैं। काम, क्रोध, लोभ के त्रिकूट से रहित चित्रकूट में चमेली, मालती आदि सुन्दर कुसुमों के विकास से युक्त शरद् के निमित्त समायोजित महोत्सव में करोड़ों-कामों को लज्जित करने वाले श्रीराम सुशोभित हो रहे हैं। सुख के सारभूत शृंगार के उपलब्ध होने पर सौवें महारास के आरम्भ हो जाने पर सीताजी के नेत्रों को पूर्ण रूप से रमाने वाले श्रीराम विराज रहे हैं। सखी-गणों के सुन्दर यश गाते रहने पर मधुर झन्कार वाले मैथिलीजी के नूपुर के सक्रिय हो जाने पर परम आदरणीय श्यामा सीताजी के साथ श्यामसुन्दर श्रीराम सुशोभित हो रहे हैं। **गिरिधर** कवि के स्वामी द्वारा गाई हुई अपनी नित्य-सहचारिणी धर्मपत्नी सीताजी के साथ संसार की दर्शनशक्ति को आनन्द देने वाले श्रीराम विराज रहे हैं।

गीत संख्या-१२

शाक्रे पश्य प्रभोर्मर्यादाम्।
पत्नीव्रतिनश्चैकनारिव्रतमानन्दितसुरनरमनुजादाम् ।।
रासे स्वं किल लक्षकोटिशः कर्तुं यथैव सीता क्रमते।
तावत्संख्यमात्मरूपं कृत्वा रामोऽपि रामया रमते।।१।।
सङ्क्रीडते प्रतिजनककन्यं रामः कृतसमसंख्यं रूपम्।
तथा मैथिली प्रतिरामं रमयति तादृग्भूत्वा भूभूपम्।।२।।

नैतादृग्दम्पतिमर्यादा सीतारामतोऽन्यतो दृष्टा।
रामः सृष्टः श्रीसीतायै श्रीरामाय च सीता सृष्टा।।३।।
वारिवीचिवत् प्रभाभानुवत् ह्यपृथग् भावमुभयतो ध्यायति।
सीतारामौ ब्रह्मदम्पती सुरनरगिरा गिरिधरो गायति।।४।।

भौमी- हे इन्द्रपुत्र! देवता, मनुष्य और राक्षसों को भी आनन्द देने वाली, एकपत्नीव्रती श्रीराम की मर्यादा और एक नारीव्रत को भी देखो। जिस प्रकार इस महारास में सीताजी अपने करोड़ों रूप बना सकती हैं और बनाकर उपस्थित हो रही हैं, उसी प्रकार श्रीराम भी उतनी ही संख्या में अपने रूपों का निर्माण करके सीताजी के साथ महारास रच रहे हैं। श्रीराम जितनी सीताएँ हैं उतनी ही संख्या में अपनी रूप बनाकर जनकनन्दिनी जी के प्रत्येक रूप के साथ खेल रहे हैं। उसी प्रकार सीताजी ने भी जितनी संख्या में श्रीराम हैं उतनी संख्या में प्रकट होकर प्रत्येक रामरूप के साथ खेलती हुई प्रभु को आनन्द दे रही हैं। वस्तुतः श्रीसीतारामजी को छोड़कर अन्यत्र ऐसी दम्पती मर्यादा नहीं देखी, वस्तुतः श्रीराम सीताजी के लिए रूप रचकर प्रकट हुए हैं और सीताजी श्रीराम के लिए श्रीसीतारामजी परब्रह्म रूप दम्पती हैं, वे जल और तरंग की भाँति, प्रभा तथा सूर्य की भाँति एक दूसरे से अपृथक् हैं। इस प्रकार मुझसे अभिन्न **गिरिधर** कवि दोनों की अनन्यता का ध्यान करते हुए इन्हीं दोनों को निरन्तर कभी देववाणी संस्कृत में कभी नरवाणी हिन्दी, मैथिली, भोजपुरी, अवधी, गुजराती, ब्रज आदि भाषाओं में गाया करते हैं।

गीत संख्या-१३

सन्ति वै पतिव्रता लोके सदा योषितो रामचन्द्रस्त्वद्वितीय एकपत्नीव्रतः।
सन्ति नार्योऽधुनापीड्य नैजभर्तृनिरता रामचन्द्रस्त्वद्वितीय एकनारीव्रतः।।
पतिव्रतानामसंख्यता त्रिकाले श्रुता पावनी परम्परा च योषितां विश्रुता।
किन्तु त्रिकाले त्रिलोके नैव दृष्टः श्रुतः कोऽपि रामेण सदृक्षः पतिः पत्नीव्रतः।।१।।
सन्ति सम्प्रत्यपि गृहेलक्ष्म्यः पतिदेवता एकपतिनिष्ठा सुप्रतिष्ठा स्वपतिव्रताः।
किन्तु नैवाद्यावधि क्वापि ना नः श्रुतः कोऽपि राघवेण तुल्यश्चैकनार्यां रतः।।२।।
सन्त्यनेका लोके नार्यो नाथ सङ्कल्पिता यासां हृत्सु पृथग् पतिभ्यो न मूर्तिः कल्पिता।
किन्तु नैव त्रिलोक्यां पुमान् हि रामसम्मितः यस्य चात्मा नैव परदारचिन्तनरतः।।३।।
रामो विग्रहवान् धर्मश्चैकपत्नीव्रतः नित्यं सीतासङ्गतश्च समारुद्धसौरतः।
ततो मर्यादापुरुषोत्तमं स्मरत्यहर्निशं गिरिधरोऽपि देवनरगिराभ्यां गायन् भावतः।।४।।

भौमी- जयन्त की पत्नी पुनः कहती है—लोक में आज भी पतिव्रता नारियाँ हैं, परन्तु पत्नीव्रत पुरुष तो एकमात्र श्रीराम हैं। आज भी ऐसी नारियाँ बहुसंख्यक हैं। जो अपने पति में निरत हैं, परन्तु एकनारीव्रत तो एकमात्र श्रीराम ही हैं। तीनों कालों में पतिव्रताओं की असंख्यता सुनी जाती है और ऐसी पतिपरायण महिलाओं की पति-परम्परा प्रसिद्ध भी है। किन्तु तीनों कालों में, तीनों लोकों में श्रीराम के समान पत्नीव्रत पति न देखा गया, न सुना गया। इस समय भी बहुत-सी नारियाँ पति को देवता मानने वाली एक पति में निष्ठा रखने वाली प्रतिष्ठित पतिव्रता हैं किन्तु आज पर्यन्त कोई पुरुष हमें नहीं सुनाई पड़ा जो श्रीराम के समान एक नारी में निरत

हो। आज भी अनेक नारियाँ पतियों के प्रति कृतसंकल्प हैं जिनके हृदयों में पति से पृथक् किसी मूर्ति की कल्पना नहीं, किन्तु तीनों लोकों में श्रीराम के समान कोई पुरुष नहीं है जिसका मन कभी न कभी परनारी की चिन्तन में न लगा हुआ हो। श्रीराम विग्रहवान–धर्म एकपत्नीव्रत नित्य–निरन्तर सीताजी से संयुक्त तथा अखण्ड ब्रह्मचर्य सम्पन्न हैं, इसीलिए **गिरिधर** कवि भी दिन–रात देवभाषा और मनुष्यभाषा में उन्हीं मर्यादा पुरुषोत्तम प्रभु को गाते हुए उन्हीं सीताभिराम श्रीराम का स्मरण करते रहते हैं।

गीत संख्या–१४

रामो नैव प्राकृतो राजा।
परब्रह्मभूतः परमात्मा निर्वासितो वने सम्राजा।।१।।
श्रुत्वा राज्यं न प्रमोदितो नो वनवासविषादाज्जग्लौ।
प्रासादे नैव प्रसादितो नैव पर्णशालायां मम्लौ।।२।।
प्रकृतिमेकरसरूपां कलयन् नो हर्षं नो याति विषादम्।
सदा समत्वयोगमभियुञ्जन् कुरुते स्वजने कृपाप्रसादम्।।३।।
उदयास्तमयौ चन्द्र इवायं समभावेन सदैवाफलयति।
रामचन्द्रनामाप्यन्वर्थं गिरिधरप्रभुरिह सदा सफलयति।।४।।

भौमी– पुनः जयन्त पत्नी कहती है– इन्द्रपुत्र! चक्रवर्ती दशरथजी द्वारा वन में निर्वासित हुए श्रीराम साधारण राजा नहीं हैं, वे तो परब्रह्म परमात्मा हैं। जो राज्य सुनकर न प्रसन्न हुए और न ही वनवास सुनकर जिन्हें ग्लानि हुई जो राजप्रासाद में न प्रमुदित हुए और जो पर्णशाला में न दुःखी हुए। श्रीराम तो एकरस प्रकृति को स्वीकार करते हुए न सुखी होते हैं, न दुःखी होते हैं। वे तो सदैव समत्वरूप योग का आश्रय किए हुए स्वजनों पर कृपाप्रसाद की वृष्टि करते रहते हैं। श्रीराम चन्द्रमा की ही भाँति उन्नति और अवनति को समभाव से देखते हैं अर्थात् जैसे चन्द्रमा उदय और अस्त दोनों ही कालों में एकरस रहते हैं उसी प्रकार श्रीराम भी उन्नति और अवनति दोनों में ही समान भाव से विराजते हैं। इसीलिए **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम रामचन्द्र नाम को भी यथार्थरूप में सफल कर रहे हैं।

गीत संख्या–१५

चलाद्य भर्तः श्रीचित्रकूटे यत्रार्यरामस्तनोति रासम्।
चलाद्य भर्तर्भग्नत्रिकूटे यत्राभिरामस्तनोति रासम्।।१।।
नदत्सु वाद्येषु दिव्यधाम्नि सुरेषु गायत्सु पूतनाम्नि।
चलाद्य भर्तः सुवर्णकूटे यत्रात्मारामस्तनोति रासम्।।२।।
सीता ससंख्यान् विधाय देहान् धिनोति देवीं सुशीलगेहान्।
चलाद्य भर्तः सुरत्नकूटे यत्राप्तकामस्तनोति रासम्।।३।।
अनेकदेवीगणैश्च दृष्टो न मारनाराचलक्षमिष्टः।
चलाद्य भर्तः सुरौप्यकूटे यत्राब्दश्यामस्तनोति रासम्।।४।।

सुरासमिह शततमं विधित्सन् श्रीसीतया कौ कमेष धित्सन्।
चलाद्य गिरिधरहृच्चित्रकूटे यत्र श्रीरामस्तनोति रासम्।।५।।

भौमी– जयन्त पत्नी पुनः कहती है–हे प्रियतम! आज उस चित्रकूट में चलिए, जहाँ श्रीराम रास कर रहे हैं। हे इन्द्रपुत्र! त्रिकूट को नष्ट करने वाले उस चित्रकूट में चलिए, जहाँ अभिराम श्रीराम रास कर रहे हैं। बजते हुए बाजे और गाते हुए देवताओं की उपस्थिति में उस सुवर्ण–कूट में चलिए, जहाँ आत्माराम श्रीराम रास कर रहे हैं। सीताजी के ही समान संख्या में शील के भवन स्वरूप, शरीरों को प्रकट करके, श्रीराम सीताजी को प्रसन्न कर रहे हैं। आज उस रत्नकूट में चलिये, जहाँ श्रीराम रास कर रहे हैं। अनेक देवांगनाओं के द्वारा देखे जाने पर भी वह काम के बाणों के लक्ष्य नहीं बने। हे पतिदेव! अब उस रौप्यकूट अर्थात् रूप के शिखर पर चलिए, जहाँ आप्तकाम श्रीराम रास कर रहे हैं। सीताजी के साथ सौवाँ महारास करते हुए पृथ्वी पर सुख लाने की इच्छा करते हुए श्रीराम जहाँ रास कर रहे हैं, उसी **गिरिधर** कवि के हृदय कुटीर में चलिए।

सन्दर्भश्लाकौ

गत्वा श्रीचित्रकूटं हरिमवनिजया भ्राजमानं च दृष्ट्वा
तन्वानं दिव्यरासं शततममनघं गीयमानं सुरीभिः।।
वीर्यं जिज्ञासमानो ननु सुभुजभिदो वायसात्मा जयन्तो
विव्याध स्वीयचञ्च्वा सरसिजचरणं भूमिपुत्र्या दुरात्मा।।१।।
प्रवहदभिनिरीक्ष्य भूमिजायाः पदवनजाद्रुधिरं सुवेपितायाः।
रघुकुलवृषभश्चुकोप तस्मै विधिविशिखं प्रजिघाय वायसाय।।२।।

भौमी– पत्नी के कहने से श्रीचित्रकूट जाकर, भूमिपुत्री सीताजी के साथ शोभित होते हुए एवं निष्पाप सौवाँ महारास करते हुए, देववधुओं द्वारा गाए जाते हुए, ऐसे भगवान राम को देखकर दुष्ट जयन्त ने कौए का वेश धारण करके सुबाहु के शत्रु श्रीराम के बल को जानने की इच्छा करते हुए, भूमिपुत्री सीताजी के चरण को चोंच से वेध दिया। जनकनन्दिनी सीताजी के चरणकमल से खून बहता देख और उन्हें काँपती हुई जानकर रघुकुल के सिंह श्रीराम जयन्त पर बहुत कुपित हुए और उसके लिए ब्रह्मास्त्र छोड़ा।

गीत संख्या–१६

रामः प्राह जानकीं प्रति–

कस्ते चरणसरोजमतौत्सीत्।
को वै वैनतेयमहिराजं परिजग्धुं विषमं समनौत्सीत्।।१।।
को मद्बाहुदण्डप्रलयाग्नौ कालवशः शलभोऽथ बुभूषति।
को मृत्यवे दत्तपरितोषः प्रेतपतेः शान्त्यै प्रबुभूषति।।२।।
कः स्वशिरोमालयापुररिपोः कण्ठमुण्डमालास्पदमीप्सति।
कः कदूष्णशोणितोपायनैश्चण्डीव्रतपारणतां धीप्सति।।३।।

कस्तावद्भारतीयनारीमवज्ञाय मद्दण्डं यास्यति।
कस्य गिरिधरप्रभुशरनिकरो कोष्णां शोणितधारां पास्यति।।४।।

भौमी- श्रीराम सीताजी से कहते हैं। हे सीते! आपके चरणकमल को किसने वेध दिया? विषम सर्पराज का भक्षण करने के लिए गरुड को किसने प्रेरित कर दिया? कौन मेरे भुजदण्ड रूप प्रलयाग्नि में पतिंगा बनकर जलना चाहता है? अरे! कौन मृत्यु को स्वयं का पारितोषिक देकर यमराज की शांति के लिए पर्याप्त सामग्री बनना चाहता है? कौन अपने सिर की माला से शिवजी की कण्ठ की मुण्डमाला बनाना चाहता है? और कौन अपने ऊष्णरक्त के उपहारों से चण्डिका जी के व्रत पारणा को धारण करने की इच्छा कर रहा है? कौन भारतीय नारी का अपमान करके मेरा दण्ड पायेगा और **गिरिधर** कवि के स्वामी मुझ राम के बाणों का समूह किसकी ऊष्णरक्त धारा का पान करेगा?

गीत संख्या-१७

जयन्तं वीक्ष्य रामः-

तिष्ठ तिष्ठ रे दुष्ट सुराधम।
भारतललनापरिहेलनदण्डं गृहाण मा व्रज विबुधाधम।।१।।
सबलामप्यबलां मत्वा सीतामवजानन् जीवसि पापिन्।
तावद् यावद् ब्रह्मविशिख एषोपहरति नासूंस्ते तापिन्।।२।।
न प्राणत्राणं त्रैलोक्ये सत्यं वक्ति तवाग्रे रामः।
तिष्ठ तिष्ठ भुज्यतां भुज्यतां निजदुष्कृतपरिणतपरिणामः।।३।।
इत्युक्त्वा विससर्ज वज्रसदृशं ब्रह्माशुगमिन्द्रसुताय।
गिरिधरप्रभोरपसरन् भीतो स्वरगान्मूढो भुवं विहाय।।४।।

भौमी- जयन्त को देखकर श्रीराम–अरे! दुष्ट, अधम देवता खड़ा रह, खड़ा रह। हे देवताओं में अधम! भारतीय नारी के अपमान का दण्ड ले, मत भाग। सबला सीताजी को अबला मानकर हे पापी! तू तभी तक जी रहा है। हे सबको कष्ट देने वाला जयन्त! जब तक यह ब्रह्मास्त्र तुम्हारे प्राणों को नहीं ले रहा है तब तक तीनों लोकों में तेरे प्राणों की रक्षा नहीं हो सकती यह राम तेरे सामने सत्य कह रहा है, ठहर, ठहर अपने पापों का पका हुआ फल भोग ले, भोग ले। इतना कहकर इन्द्रपुत्र के लिए प्रभु श्रीराम ने वज्र के समान कठोर ब्रह्मास्त्र चला दिया। **गिरिधर** कवि के प्रभु श्रीराम से भयभीत होकर पृथ्वी को छोड़कर भगता हुआ जयन्त स्वर्गलोक को गया।

सन्दर्भश्लोकः

यातो जयन्तो जननीं प्रभीतो ब्रह्मास्त्रतो राघवहस्तमुक्तात्।
कृतागसं तं परिवीक्ष्य पापं शची स्वपुत्रं रुदती जगाद।।१।।

भौमी- श्रीराम के हाथ से छोड़े हुए ब्रह्मास्त्र से डरा हुआ जयन्त अपनी माता शची के पास गया। अपराध किए हुए पापी बेटे जयन्त को देखकर रोती हुई शची जी बोलीं।

गीत संख्या-१८

धिग् धिक् कुपुत्रमज्ञं हा हा सुतं जयन्तम्।
राघवगुणानभिज्ञं हा हा सुतं जयन्तम्।।
सीतावमानपापं नारीजनाभिशापम्।
मूर्ध्ना मुहुर्वहन्तं हा हा सुतं जयन्तम्।।१।।
कृतकर्मणापि काकं निजजन्मनापि काकम्।
मत्पातकं जयन्तं हा हा सुतं जयन्तम्।।२।।
रामं प्रकोप्य पापी लब्धास्ति किं कुतापी।
ब्रह्मास्त्रतस्त्रसन्तं हा हा सुतं जयन्तम्।।३।।
दूरं प्रयाहि मत्तो मूढो म्रियस्व मत्तो।
धिक् त्वां वृथा श्वसन्तं हा हा सुतं जयन्तम्।।४।।
गिरिधरप्रभोर्विरुद्धं धिग् धिक्तरामशुद्धम्।
रोत्स्यामि नो व्रजन्तं हा हा सुतं जयन्तम्।।५।।

भौमी- हाय! इस कुपुत्र अज्ञानी जयन्त को धिक्कार है, धिक्कार है। राघवजी के गुणों से सर्वथा अनभिज्ञ जयन्त को, हा! हा! सीताजी के अपमान के पाप को, नारीजनों के अभिशाप को, अपने सिर पर ढोते हुए जयन्त को धिक्कार। किए हुए कर्म से भी कौए और जन्म से भी कौए, मेरे पाप से भी उत्कृष्ट पाप करने वाले जयन्त को हाय, हाय धिक्कार। श्रीराम को कुपित करके यह सबको सताने वाला पापी क्या पाएगा? अतः ब्रह्मास्त्र से डरते हुए जयन्त को धिक्कार। रे दुष्ट! मुझसे दूर चला जा पागल, अभी मर जा। व्यर्थ श्वास लेते हुए तुम्हें धिक्कार, जयन्त को हाय हाय! **गिरिधर** कवि के प्रभु से विरुद्ध, अशुद्ध जयन्त को धिक्कार है, धिक्कार है। मैं जाते हुए तुम्हें नहीं रोकूँगी, जयन्त को हा हा (हाय-हाय)।

सन्दर्भश्लोकः

मात्रानिरस्तं गतमर्कमस्तं यथा तमायान्तमतीवभीतम्।
अक्ष्णां सहस्त्रैः प्रदहन्निवेन्द्रो निघ्नन् पदोवाच वचोऽतिरोषात्।।१।।

भौमी- इस प्रकार माँ के द्वारा भगाये हुए, अस्त हुये सूर्य की भाँति, तेजोहीन अत्यंत डरे हुये, जयंत को अपने समीप आते हुये, देखकर हजारों नेत्रों से जलाते हुये से इंद्र जयंत को लात से मारते हुये अत्यंत क्रोधपूर्वक वचन बोले।

गीत संख्या-१९

याहि रे मत्तो दूरं याहि।।
रामविमुखमात्मानं पापिन् सीतागो मलिनं परितापिन्।
विबुधसुताधमविधिविशिखात्स्वं कथं कथंचित् त्राहि।।१।।

धिङ्मां त्वादृङ्कुतनयतातं दौर्भाग्यार्जितदुरितव्रातम्।
सीताहेलनजनितमहारौरवे नीच सम्माहि।।२।।
सत्यं वहन्नघवपुः काकं भुङ्क्ष्व सुताधम कृतपरिपाकम्।
भारतीयनारीविमानदण्डैतिह्यं निर्माहि।।३।।
मदवमेहभूतं त्वां त्रातुं कोऽपि त्रिलोक्यां क्षमो न पातुम्।
गिरिधरप्रभो सुतं मे दण्डय मा मा पापं पाहि।।४।।

भौमी- अरे जयंत! जा, मुझसे दूर जा। हे पापी। मेरे हृदय को ताप पहुँचाने वाले, अधम देवपुत्र! तू श्रीराम से विमुख अपने को और सीताजी के पाप से मलिन आत्मीय, धन और अपनी जाति को ब्रह्मास्त्र से किसी भी प्रकार बचा। अहो! दुर्भाग्य से पापों के समूह को अर्जित करने वाले तुझ जैसे कुपुत्र के पिता मुझ इंद्र को धिक्कार है। हे नीच! सीताजी के अपमान से जनित घोर रौरव में स्वयं समा जा। यथार्थरूप में कौवे का सिर धारण करता हुआ, अपने कर्म का फल भोग। अरे अधम पुत्र! आज तू भारतीय नारी के अपमान के दंड का इतिहास रच दे। अरे! तू मेरा पुत्र नहीं मूत्र है। तुझको बचाने के लिये और तेरी रक्षा करने के लिये तीनों लोकों में कोई समर्थ नहीं है। अन्त में इन्द्र भगवान श्रीराम से कहते हैं– "हे गिरिधर कवि के स्वामी श्रीराम! मेरे पुत्र को दंडित कीजिये। इस पापी की मत रक्षा कीजिये, मत रक्षा कीजिये।"

गीत संख्या-२०

इन्द्रः पुनर्गायति-

पुरुषः पुरीषकारी नारी सदैव नारी।
पुरुषः पुरन् विकारी नारी सदैव नारी।।
नास्मिन्नहो मुमुक्षा भुङ्क्ते गुणान् बुभुक्षा।
पुरुषोऽपराधकारी नारी सदैव नारी।।१।।
किं वक्ति नरकद्वारं नारीं वृथाघभारम्।
पुरुषः सदाघकारी नारी सदैव नारी।।२।।
जननीं निजां विनिन्दन् न विभेत्यघं प्रविन्दन्।
पुरुषः सदापकारी नारी सदैव नारी।।३।।
नरतोऽधिकाविमात्रा नार्यां कृता विधात्रा।
पुरुषस्तु तापकारी नारी सदैव नारी।।४।।
हे गिरिधरेशि सीते मां क्षामय प्रतीते।
पुरुषः पुरोऽतिचारी नारी सदैव नारी।।५।।

भौमी- इन्द्र पुनः गाते हुये कहते हैं– पुरुष निरंतर मल को उत्पन्न करता है, नारी सदैव नारी ही रहती है। पुरुष विकार में अग्रसर है, नारी सदैव नारी ही रहती है। पुरुष में मोक्ष की भावना नहीं होती और भोग की

इच्छा इसी में होती है। इसीलिए यह दुर्गुणों का भोग करता है। पुरुष अपराध करता है, नारी तो सदा नर की माता होती है। अरे! नारी को पाप का भार और नरक का द्वार क्यों कहते हैं? पुरुष सदैव पाप करता है और नारी सदैव नारी ही रहती है। अरे! अपनी माँ की निन्दा करता हुआ, पाप को प्राप्त करता हुआ, यह पुरुष नहीं डरता क्योंकि पुरुष सदैव अपकार करता है, नारी सदैव नारी बनी रहती है। विधाता ने ही नर शब्द की अपेक्षा नारी शब्द में दो-दो दीर्घ मात्राएँ अधिक की हैं। पुरुष सदैव ताप ही देता है और नारी, नारी ही बनी रहती है। हे **'गिरिधर'** कवि की ईश्वरी सीते! आप विश्वासपूर्वक मुझे क्षमा कीजिये। पुरुष सदैव अधिचार करता है, नारी सदा नारी अर्थात् न अरि, नारी किसी की शत्रु नहीं होती।

सन्दर्भश्लोकः

त्रिलोक्यां भ्रममाणोऽपि न शर्माप यदाधमः।
योगतो नारदो दृष्टः सद्दर्शनमघापहम्।।१।।

भौमी- तीनों लोकों में भ्रमण करके जब जयंत ने शांति नहीं पायी, तब उसने संयोग से नारद जी के दर्शन किये क्योंकि संतों का दर्शन पापहारी होता है।

गीत संख्या-२१

नारदो गायति-

याहि रे राघवशरणं याहि।
पापिन् पापकलेवरकाशिन् पापात् प्राणान् पाहि।।१।।
यस्य नाम भवसिन्धुकुम्भजो भवपोतं यच्चरितम्।
यस्य कथा नाशितव्यथा दुरितघ्नं यस्याचरितम्।।२।।
यस्य विरुदमिह पतितपावनं पापघ्नी यत् कीर्तिः।
कलिमलशमनी यद् गुणगाथा सुजनमनोरथपूर्तिः।।३।।
जगच्छरण्यं शरणमेहि सन्तो येनैवैधन्तः।
गिरिधरगीतं गायं गायं जागृहि जगति जयन्त।।४।।

भौमी- अब नारद गाते हैं- अरे जयन्त! जा, श्रीराघव की शरण में जा। हे पापी। हे पाप शरीर से युक्त जयंत! तू अपने प्राणों की पाप से रक्षा कर ले। जिन प्रभु का नाम भवसागर सोखने के लिये कुम्भज है, जिनके चरण भवसागर के लिये जहाज हैं, जिनकी कथा व्यथा को नष्ट कर देती है, जिनका आचरण पाप को हर लेता है, जिनका विरुद पतितपावन है, जिनकी कीर्ति पापनाशिनी है, जिनकी गुणगाथा कलिमल नष्ट करने वाली और सज्जनों के मनोरथों की पूर्ति स्वरूपिणी है। हे जयन्त! उन्हीं सम्पूर्ण जगत के शरणदाता श्रीराम की शरण में जाओ जिनसे संत वृद्धि को प्राप्त हुये। हे जयन्त! **गिरिधर** कवि द्वारा रचित गीत को और **गिरिधर** द्वारा गाये गये भगवान श्रीराम को गा-गाकर इस जगत में जागरूक हो जाओ।

गीत संख्या-२२

नारदः पुनः गायति-

राघवं शरणमासादय प्रभुं रामचन्द्रं प्रसादय।।
याहि जयन्त जयन्तं शीघ्रं माहि मृडं मृडयन्तं शीघ्रम्।
मैवात्मानमवसादय प्रभुं रामचन्द्रं प्रसादय।।१।।
क्षंस्यते त्वां स तु दीनदयालुः क्षमासुतायाः भर्ता कृपालुः।
तं क्षमानिधिमुपसादय प्रभुं रामचन्द्रं प्रसादय।।२।।
तद् योषितारतोऽहमपि क्षान्तः त्वं तत्प्रियापदं विद्ध्वा विश्रान्तः।
क्षमाकृते तं तु परिसादय प्रभुं रामचन्द्रं प्रसादय।।३।।
गच्छ गच्छ गच्छ नैव कालं विलम्बय शरणागतवत्सलमवलम्बय।
गिरिधरनाथमनुसादय प्रभुं रामचन्द्रं प्रसादय।।४।।

भौमी- नारद जी पुनः गाते हैं- हे जयन्त! श्रीराघव की शरण में जाओ और प्रभु श्रीरामचन्द्र को प्रसन्न करो। हे जयन्त! शत्रुओं को जीतने वाले श्रीराम के पास शीघ्र जाओ और शिवजी को भी प्रसन्न करने वाले श्रीराम का सम्मान करो। अपने को बहुत दुःखी मत करो। वे दीनदयालु, क्षमासुता अर्थात् पृथ्वी की पुत्री श्रीसीताजी के पति, कृपालु श्रीराम तुम्हें क्षमा कर देंगे। उन क्षमानिधि के पास जाओ। प्रभु श्रीराम को प्रसन्न करो। अरे! जिन प्रभु की पत्नी माया में अनुरक्त होकर भी मैं प्रभु के द्वारा क्षमा कर दिया गया, तुमने तो केवल उन परमेश्वर की प्रिया के चरणों को ही बेधा है। अतः क्षमा के लिये उन्हीं प्रभु से प्रार्थना करो, श्रीराम को प्रसन्न करो। जयन्त जाओ! जाओ! जाओ! विलम्ब मत करो। शरणागतवत्सल श्रीराम का अवलंबन लो। **गिरिधर** कवि के नाथ श्रीराम को अनुकूल करो। प्रभु श्रीरामचंद्र को प्रसन्न कर लो।

सन्दर्भश्लोकः

ततो जयन्तः समुपेत्य राघवं ग्रहीतुकामः सुभुजद्विषः पदम्।
पपात भूमौ पतितः स्ववृत्ततः प्रभुप्रणामो वृजिनार्दनो हि नुः।।१।।

भौमी- इसके अनन्तर जयन्त श्रीराम के पास जाकर सुबाहु शत्रु प्रभु के चरणों को पकड़ने की इच्छा करता हुआ भूमि पर ही गिर पड़ा। यद्यपि वह पूर्व में ही अपने चरित्र से गिरा हुआ था क्योंकि प्रभु को किया हुआ प्रणाम, प्राणी के पाप को हर लेता है।

गीत संख्या-२३

जयन्तः प्राह-

हे करुणाधाम खरारे दुष्कृतपापान् मां पाहि प्रभो।
हे सुन्दरश्याम खलारे दुरितकलापान् मां पाहि विभो।।
सीतापदपद्मं विद्धं ककचञ्च्वा कृतं निषिद्धम्।

हे जनरञ्जन दनुजारे विधिशरतापान् मां पाहि प्रभो।।१।।
देवोऽप्यहमभवं रक्षः जगज्जननीशोणितभक्षः।
हे भवभञ्जनासुरारे निजपरितापान् मां पाहि प्रभो।।२।।
सुरतोऽहं काको जातः मातापि निरास्थत्तातः।
हे रघुनन्दन सुभुजारे जननीशापान् मां पाहि प्रभो।।३।।
क्षमानिधे क्षमस्व जयन्तं पतितं पदपद्मे पतन्तम्।
हे गिरिधरेश ताटकारे पश्चात्तापान् मां पाहि प्रभो।।४।।

भौमी– जयन्त श्रीराघव से कहता है– हे करुणा के धाम! खर के शत्रु प्रभु राम! दुष्कर्मजनित पाप से मेरी रक्षा कर लीजिये। हे श्यामसुन्दर! खलों के शत्रु श्रीराम! मुझे पाप की राशि से बचा लीजिये। मेरे द्वारा कौवे की चोंच से सीताजी के चरणकमल को बेधा गया। मैंने यह बहुत बड़ा निषिद्ध–कर्म कर दिया। हे भक्तों को आनन्द देने वाले! दनुजों के शत्रु श्रीराम! मुझे ब्रह्मास्त्र के ताप से बचा लीजिये। अरे! मैं देवता होकर भी राक्षस बन गया क्योंकि जगत की माता सीता के रक्त का मैंने आहार किया। हे भवभय के भंजन! असुरों के शत्रु! मुझे अपने ही परिताप से बचा लीजिये। हे नाथ! मैं देवता से कौआ बना। मुझे माता शची और पिता इन्द्र, इन दोनों ने ठुकरा दिया। हे रघुनन्दन! हे सुबाहु के शत्रु! मुझे माता के शाप से बचा लीजिये। हे क्षमानिधि! बहुत बड़े पतित आपके चरण में पड़ते हुये, मुझ जयन्त को क्षमा कर दीजिये। हे ताड़का के शत्रु! **गिरिधर** कवि के प्रभु श्रीराम! मुझे पश्चाताप से बचा लीजिये।

विशेष– यह गीत एक गुजराती गीत के ढाल में निबद्ध है जिसका बोल है–

''हे चित्रकूट ना वासी भवसागर थी मने पार करो।''

गीत संख्या–२४

दीनबन्धो दयाधाम सीतापते पापनाशिन् जयन्तो हरे क्षम्यताम्।
सर्वसौन्दर्यसुखधाम सीतापते तापनाशिन् जयन्तो हरे क्षम्यताम्।।
मातृपादाम्बुजं चञ्च्वा विद्धं मया पापिनाकारि पापं निषिद्धं मया।
देहशोभाविजितकाम सीतापते विश्ववासिन् जयन्तो हरे क्षम्यताम्।।१।।
त्वद्विरुद्धः शठः किं करिष्यामि भो ब्रह्मनाराचविद्धो मरिष्यामि भो।
सं जयत् सद्गुणग्राम सीतापते चापकाशिन् जयन्तो हरे क्षम्यताम्।।२।।
मात्रा पित्रा त्रिलोक्या निरस्तः प्रभो त्वागतः सर्वनॄणां शरण्यं विभो।
हे लसद्वन्यसुमदाम सीतापते दुष्टत्राशिन् जयन्तो हरे क्षम्यताम्।।३।।
हे पतितपूगपावन् चरितवारिधे पाहि पापं जयन्तं सुमङ्गलनिधे।
गिरिधरेश्वर घनश्याम सीतापते मञ्जुभाषिन् जयन्तो हरे क्षम्यताम्।।४।।

भौमी– हे दीनों के बन्धु! हे कृपा के आश्रय! सीतापते! हे पाप को नष्ट करने वाले श्रीहरे! अब जयन्त को क्षमा कीजिये। हे सम्पूर्ण सौंदर्य और सुखों के धाम! सीतापते! तापों को नष्ट करने वाले श्रीहरे! मुझ जयन्त

को क्षमा कीजिये। मैंने माँ के चरणकमल को चोंच से बेधा और मुझ पापी ने बहुत निषिद्ध पाप किया। अपनी शोभा से काम को जीतने वाले, विश्व में निवास करने वाले श्रीहरे! सीतापते! हे राम! मुझ जयन्त को क्षमा करें। हे प्रभु! आपके विरुद्ध होकर मैं शठ क्या करूँगा? उल्टे ब्रह्मबाण से लगने से मर ही जाऊँगा। हे कल्याण के विजेता गुणग्राम वाले धनुष से सुशोभित सीतापते श्रीहरे! अब मुझ जयन्त को क्षमा कर दें। हे प्रभो! माता–पिता और तीनों लोकों से ठुकराया गया, संपूर्ण प्राणियों को शरण देने वाले, मैं आपकी शरण में आ गया हूँ। हे वन्य पुरुषों की वनमाला से सुशोभित! दुष्टों के त्रासक सीतापति श्रीराम! अब मुझ जयन्त को क्षमा किया जाए। हे पतित समूहों को पवित्र करने वाले। हे चरित्रों के महासागर! हे सुमंगलों के निधान! आप पापी जयन्त को बचा लीजिए। हे **गिरिधर** कवि के ईश्वर! कोमल भाषण करने वाले घनश्याम सीतापति श्रीराम! अब मुझ जयंत को क्षमा कर दीजिये।

विशेष– यह गीत काव्याली धुन में निबद्ध है।

सन्दर्भश्लोकः

ततस्त्रातो जयन्तोऽसौ रामेण द्रुहिणाशुगात्।
एकाक्षिलक्ष्यमाक्लृप्य क्षमासारा हि साधवः।।१।।

भौमी– इसके अनन्तर श्रीराम ने अपने बाण को जयन्त के एक ही आँख का लक्ष्य बनाकर उसे ब्रह्मास्त्र से मुक्त कर दिया क्योंकि साधुजन क्षमा को ही अपना सार–सर्वस्व मानते हैं।

गीत संख्या–२५

श्रीरामः सीतां प्रति–

जयन्तोऽविघ्नयन् मौढ्यान् मदीयं शततमं रासम्।
भवत्या पदमहन् प्रौढ्यान् मदीयं व्यातुदल्लासम्।।
कृता श्रीचित्रकूटस्था सुरासाः सार्धनवनवतिः।
पुनर्नेमं करिष्येऽहं सुवृन्दावनगतो रासम्।।१।।
युगेऽष्टाविंशके भूयः पवित्रे द्वापरे प्राप्ते।
तव व्यूहात्मगोपीभिर्विधास्ये ते मुखोल्लासम्।।२।।
त्वमेवाग्रे विगतबाधा भवित्री मैथिली राधा।
अहं भूत्वा त्वया कृष्णो समारप्स्ये महारासम्।।३।।
पुनर्वृन्दावनं श्रीचित्रकूटारण्यमापन्नम्।
स्थितौ रंस्यावहे गिरिधरहृदयवृन्दाविपिनवासम्।।४।।

भौमी– श्रीराम सीताजी के प्रति कहते हैं–हे सीते! जयन्त ने मूर्खता के कारण मेरे सौवें महारास में विघ्न डाल दिया। अपने अहंकार के कारण उसने आपके चरण में चोंच मार दी और मेरी प्रसन्नता को बहुत पीड़ा पहुँचाई। इसी चित्रकूट में रहकर मेरे द्वारा साढ़े निन्यानबे महारास किये गए अब जो आधा अवशेष है उसे मैं कृष्णावतार में वृन्दावन में जाकर सम्पन्न करूँगा। हे सीते! फिर से अट्ठाइसवें पवित्र द्वापर में तुम्हारी ही

व्यूहात्मक गोपियों के साथ रास करके मैं तुम्हारा मुखोल्लास बढ़ाऊँगा। हे सीते! आप ही आगे चलकर बाधारहित राधा बनेंगी और मैं कृष्ण बनकर आपके साथ महारास प्रारम्भ करूँगा। पुनः यही श्रीचित्रकूट वृन्दावन बन जाएगा और वहीं हम दोनों सीताराम, भविष्य में राधा-कृष्ण बनकर **गिरिधर** कवि के हृदय रूप वृन्दावन में निवास करके रमण करेंगे।

गीत संख्या-२६

अन्यच्च-

दण्डयिष्यन् खलानद्य दण्डकवनं सीतया लक्ष्मणेन प्रयास्यामि भो।
मण्डयिष्यन् यदा शापितं काननं चित्रकूटं विहायाभियास्यामि भो।।
कुर्वन् देशं निरातङ्कवादं मुदा तन्वन् द्वेषं तया चासुरीसम्पदा।
षण्ढयिष्यन् पुरुषघष्मरान् राक्षसान् सर्वसौख्यं विहायैष यास्यामि भो।।१।।
रावणं हन्तुकामोऽभिरामो सतां न्यस्तभारां महीं कुर्वन् दुःखप्लुताम्।
खण्डयिष्यन् खराणां खरं शासनं सानुजश्रीः सुसन्धाय यास्यामि भो।।२।।
मेदिनीं गौतमक्रोशसङ्क्रन्दिनीं संविधित्सञ्चरणरेणुभिर्नन्दिनीम्।
चण्डयिष्यन् जगद्रावणं रावणं गिरिधरेशोऽप्युपायं प्रधाष्यामि भो।।३।।
रञ्जयिष्यन् सतो लोकसंरञ्जनान् भञ्जयिष्यन् भुजाभ्यां भुवो भञ्जनान् ।
मुण्डयिष्यन् क्षपाकांश्च मुण्डस्रजे मुण्डमालां विधाय प्रदाष्यामि भो।।४।।

भौमी- और भी-और हे सीते! खलों को दण्ड देने के लिए मैं आज ही तुम सीता और लक्ष्मण के साथ दण्डक वन जाऊँगा। शुक्र या गौतम मुनि के द्वारा शापित दण्डक वन को अपने चरणों से सुशोभित करने के लिए आज ही मैं चित्रकूट छोड़कर आगे बढ़ जाऊँगा। इस देश को आतंकवाद से रहित करने के लिए और आसुरी सम्पत्ति से द्वेष बढ़ाते हुए ये नीच राक्षस पुरुषों को नपुंसक बनाने के लिए आज सम्पूर्ण सुख छोड़कर मैं दण्डक वन की ओर जाऊँगा। रावण को मारने की इच्छा करता हुआ और दुःख से युक्त पृथ्वी को भारहीन करने के लिए और गधों के समान विवेकशून्य राक्षसों के तीव्र शासन को नष्ट करने के लिए मैं सज्जनों का आनन्ददाता राम छोटे भाई लक्ष्मण और आप श्रीसीता के साथ योजनाबद्ध कार्यक्रमों की सन्धि करके दण्डक वन जाऊँगा। **गिरिधर** कवि का ईश्वर मैं राम गौतम के शाप से चिल्लाती हुई इस दण्डक वन के भूमि को अपनी चरण के धूलियों से प्रसन्न करने के लिए और जगत् को रुलाने वाले, रावण को भी क्रोध से उकसाने के लिए मैं कोई न कोई उपाय करूँगा। लोक को प्रसन्न करने वाले, सज्जनों का रंजन करने के लिए और पृथ्वी को छिन्न-भिन्न करने वालों को अपनी भुजाओं से भग्न करने के लिए, दुष्टों का सिर काटने के लिए, उन्हीं राक्षसों के कटे सिरों से मुण्डमाली शिव को मुण्डमाला प्रदान करूँगा।

सन्दर्भश्लोकः

जिहासन्तं समालोक्य चित्रकूटं श्रियः पतिम्।
ससीतालक्ष्मणं रामं कोलाः प्रोचुः शुचातुराः।।१।।

भौमी- इस प्रकार श्रीसीता-लक्ष्मण जी के साथ श्रीराम जी को चित्रकूट छोड़ने की इच्छा करते हुए देखकर आतुर हुए कोल-किरात बोले।

गीत संख्या-२७

नहि त्यज राम चित्रकूटं सदा भज धाम चित्रकूटम्।।
सदा कैङ्करीं करिष्यामो व्यथां आसुरीं हरिष्यामः।
नदीं जित्वरीं तरिष्यामो मा विसृज राम चित्रकूटम्।।१।।
खलेभ्यो भवतः पास्यामः सुखं युष्मभ्यं दास्यामः।
भवत्सु प्रीतिं धास्यामः शुभं सृज राम चित्रकूटम्।।२।।
प्रणेष्यामश्च कन्दमूलं विनेष्यामो भवतां शूलम्।
उपेष्यामश्चाप्यनुकूलं समासृज राम चित्रकूटम्।।३।।
दशास्यः शक्यो नागन्तुं क्षमोऽत्रस्थोऽपि भवान् हन्तुम्।
गिरिधराधिं वै विनियन्तुं समासज राम चित्रकूटम्।।४।।

भौमी- हे श्रीराम! आप चित्रकूट मत छोड़ें। आप सदैव चित्रकूट में ही रहें, हम आपकी सदैव सेवा करेंगे आपकी असुर सम्बन्धिनी पीड़ा को दूर करेंगे और आपके लिए हम वेगवती नदी को भी पार करेंगे इसलिए आप चित्रकूट को न छोड़ें। हम दुष्टों से आप लोगों की रक्षा करेंगे और आप तीनों को यथासम्भव सुख देंगे। आप तीनों में हम प्रीति करेंगे। हे श्रीराम! आप इस चित्रकूट को कल्याणमय बनाएँ। हम आपके लिए कंद मूल-फल लाएँगे और आपकी थकान दूर करेंगे और आपके अनुकूल बने रहेंगे। हे श्रीराम! आप इस चित्रकूट का सम्यक् सृजन करें। यहाँ रावण आ नहीं सकता और यहाँ रहकर भी आप रावण को मार सकते हैं तथा **गिरिधर** कवि की भी मनोव्यथा को हर सकते हैं। हे श्रीराम! अन्यत्र अनासक्त होकर भी आप चित्रकूट के प्रति सदैव आसक्त बने रहिये।

गीत संख्या-२८

जयति दण्डकवनविहारी।
जानकीसौमित्रिसहचरमुनिविपिनचरमोदकारी ।।
अत्रिमुनिशरभङ्गमङ्गः कृतसुतीक्ष्णागस्त्यसङ्गः।
निहतनिशिचरसमररङ्गः रिपुभगिनिवैरूप्यकारी।।१।।
खरत्रिमस्तकदूषणारिः कुटिलरावणभूषणारिः।
सुरनरासुरशोषणारिः दस्युदशमुखदर्पहारी।।२।।
विहितकौणपकूटभङ्गः निहतकैतवकूटरङ्गः।
प्रहतमायामयकुरङ्गः मैथिलीहृतिविरहधारी।।३।।
कृतजटायुसुसंस्कारः सुखितशबरीफलाहारः।
नारदेरितशुभविचारः गिरिधरात्मारण्यचारी।।४।।

भौमी- दण्डकवनविहारी श्रीराम की जय हो। जानकीजी और लक्ष्मण जी को साथ लिए हुए, मुनियों और ब्रह्मचारियों को प्रसन्न करने वाले, अत्रि तथा शरभङ्ग मुनि को सुखद अङ्ग वाले, सुतीक्ष्ण और अगस्त्य का सङ्ग करने वाले और रणभूमि में राक्षसों का वध करने वाले, रावण की बहन सूर्पणखा को विरूपित करने वाले दण्डकवनविहारी श्रीराम की जय हो। खरत्रिशिरादूषण के शत्रु और कुटिल रावण के आभूषणों के शत्रु, देवता, नर और असुरों के शोषक राक्षसों के शत्रु रावण रूप डाकू का अहंकार दूर करने वाले श्रीराम की जय हो। राक्षसों के कपट जाल को भङ्ग करने वाले और माया के कपट रङ्गभूमि को नष्ट करने वाले और स्वर्णमय मायामृग का वध करने वाले तथा सीताहरण से उत्पन्न वियोग को धारण करने वाले श्रीराम की जय हो। जटायु का संस्कार करने वाले, शबरी के फलाहार से सुखी और नारद को पवित्र सुन्दर विचार प्रकट करने वाले और **गिरिधर** कवि के मन रूप वन में विचरण करने वाले दण्डकवनविहारी श्रीराम की जय हो।

गीत संख्या-२९

रामः सीतां प्रति-

शृणु शृणु प्राणप्रिये मम सीते।
अङ्गीकुरु मम गिरं सुशिरषा प्रियतमप्रेमप्रतीते।।
त्वं तावदवधिनिरवधिसुन्दरि कुरु पावके निवासम्।
यावदहं करोमि मुनिभीकरवनचरनिशिचरनाशम्।।१।।
त्वत्प्रतिबिम्बसीतया भौमि तनोमि ललितनरलीलाम्।
रक्षन् सदैवैकपत्नीव्रतमापद्धर्मसुशीलाम्।।२।।
दशमुखकनकनगरदहनानेहसि हनुमन्तं रक्षेः।
पान्ती वह्निमहास्फुलिङ्गतस्तस्मै शान्तिं यच्छेः।।३।।
भूयः शरदि पञ्चदस्यां भवतीमग्नेरानेष्ये।
सुखं गीतसीताभिरामकं गिरिधरकवौ प्रणेष्ये।।४।।

भौमी- अब अत्रि से विदा लेकर शरभङ्ग सुतीक्ष्ण एवं अगस्त्य से आशीर्वाद पाकर अनन्तर सूर्पणखा का विरूपीकरण करके उससे उत्तेजित स्वयं पर आक्रमण करने वाले खरदूषण त्रिशिरा सहित चौदह सहस्त्र राक्षसों का वध करके भावी रणनीति बनाते हुए श्रीराम सीताजी से कह रहे हैं। हे मेरी प्राणप्रिया सीताजी! सुनिये, हे प्रियतम के प्रेम से पवित्र सीते! आप मेरी वाणी सिर से स्वीकारिये। हे अतुलनीय सुन्दरी! आप तब तक की अवधि के लिए अग्नि में निवास कीजिए, जब तक कि मैं मुनियों को कष्ट देने वाले वनचारी राक्षसों का नाश करूँ। हे पृथ्वीनन्दिनी! आपके प्रतिविम्ब रूप सीता से ही एक पत्नीव्रत की रक्षा करते हुए भी मैं आपसे धर्म में शोभनशील वाली ललित नरलीला करूँगा। हे सीते! रावण के स्वर्ण नगर को जलाते समय आप हनुमान जी की रक्षा कीजियेगा और उनको अग्नि की भयंकर लपटों से बचाते हुए उन्हें शीतलता प्रदान कीजिएगा। और फिर पन्द्रहवें वर्ष मैं आपको अग्नि से ले आऊँगा इस प्रकार **गिरिधर** कवि को निमित्त बनाकर मैं ही सुखपूर्वक गीतसीताभिराम काव्य की रचना करूँगा।

सन्दर्भश्लोकः

इत्थं निदिष्टा रघुनन्दनेन प्रह्वावनेयी प्रजगाम वह्निम्।
चित्ते खरद्युट्चरणौ दधाना रामेऽर्पयित्वाप्रतिबिम्बसीताम्।।१।।

भौमी- इस प्रकार प्रभु का निर्देश पाकर विनम्र भूमिपुत्री सीताजी श्रीराम को अपने प्रतिविम्ब से बनी हुई सीता को अर्पित करके खर शत्रु राघव के चरण को चित्त में धारण करती हुई अग्नि में प्रवेश कर गईं।

गीत संख्या-३०

मारीचो रावणं प्रति-

मानय वचनं मम मयजारमण श्रममिदानीं तु परिहर रे।
त्यज सीताहरणाभिलाषं विनाशकरं सदाचारं सदाचर रे।।
एकबाणद्वारा येन ताटका प्रणिहता कौतुकेन मत्प्रमुखा निशिचरा निराकृता।
त्यज मोघं निरबन्धं भज रामसम्बन्धं हरौ रोषं समाहर रे।।१।।
सीतास्वयम्बरे येन नलिननालभञ्जं भङ्क्त्वा शम्भुकार्मुकं समर्जि यशोपुञ्जम्।
तमाराधयाशु सर्वयोगिदुराराध्यं लङ्कायां स्वया विहर रे।।२।।
त्यज रामचन्द्रगतं सुदुष्करं कोपं भज रामभद्रमेव सर्वपापलोपम् ।
प्रतियाहि लङ्कां निरातङ्कां राक्षसेश्वर गिरिधरेशमनुसर रे।।३।।

भौमी-हे मन्दोदरीपति रावण! मेरी बात मान जाओ, इस समय यह श्रम छोड़ दो, अपने कुल का विनाश करने वाला सीताहरण रूप अभिलाष समाप्त कर दो, सदैव सदाचरण करो। अरे! जिन्होंने एक ही बाण से ताड़का को मार डाला और खेल-खेल में मुझ जैसे अनेक राक्षस वीरों का वध किया। अपना मोह और हठ छोड़ दो, श्रीराम के सेवक सेव्य सम्बन्ध का भजन करो और श्रीहरी में उत्पन्न रोष को समेट लो। जिन प्रभु ने सीताजी के स्वयंवर में शिव धनुष को कमल दण्ड के समान तोड़कर दिव्य यश पुंज का अर्जन किया, उन्हीं सभी योगियों के आराध्य श्रीराम को प्रसन्न करो और लङ्का में अपनी पत्नी मंदोदरी के साथ विहार करो। हे रावण! श्रीरामचन्द्र जी के प्रति उमड़े हुए दुष्कर कोप को छोड़ दो और सम्पूर्ण पापों को हरण करने वाले श्री रामभद्र का भजन करो। इसलिए हे राक्षसेश्वर! आतंकरहित लंका को वापस लौट जाओ और **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम का अनुसरण करो।

विशेष- यह गीत महाकवि की स्वयं की बनाई हुई धुन में निबद्ध है। इसका बोल है-

मान जाओ मेरी बात तात हे दशानन राघव को भजियो रे।

सन्दर्भश्लोकः

निर्दिष्टो रावणेनाथ मारीचः कांचनो मृगः।
भूत्वा प्रालोभयन् मायासीतां पंचवटीगताम्।।१।।

भौमी-पुनः रावण का आदेश पाकर स्वर्णमृग बनकर मारीच ने पंचवटी में जाकर माया सीता को प्रलोभित कर लिया।

गीत संख्या-३१

सीता श्रीराघवं प्रति मायामृगं दृष्ट्वा-

आर्यपुत्र पश्य मनोरामो मृगोऽयम्।।
पुष्पवाटिकायां चरन् मामकीनं मनो हरन् भाति भव्यरूपो लोकरामो मृगोऽयम्।।१।।
नखशिखसुन्दरः सुमाणिक्यवैदूर्यमयो योगिजनदुर्लभोऽभिकामो मृगोऽयम्।।२।।
वारय विपत्तिं प्रधारय वा मारय निखिललोकहरिणललामो मृगोऽयम्।।३।।
जीवन्तं पालयिष्ये गतासोर्वेशिष्ये कृतिं गिरिधरसुखदपरिणामो मृगोऽयम्।।४।।

भौमी- मायामृग को देखकर सीताजी श्रीरामजी के प्रति-हे आर्यपुत्र! देखिए, यह मृग बहुत ही मनोरम है पुष्पवाटिका में घूमता हुआ, मेरे मन को चुराता हुआ, यह भव्यरूप मृग सम्पूर्ण लोकों को रमा रहा है। यह नख से शिखापर्यन्त सुन्दर माणिक्य और वैदूर्यमय तथा सभी लोकों को रमाने वाला है और इसका रूप भी बहुत भव्य है। आप विपत्ति को समाप्त कीजिये, इसे पालिये या मारकर ले आइये क्योंकि यह सम्पूर्ण लोकों के मृगों का रत्न है। यदि यह जीवित मिलेगा तो इसका पालन करूँगी, यदि मर जायेगा तो इसकी छाल बिछाकर भजन करूँगी। वस्तुतः **गिरिधर** कवि के लिए भी इसका परिणाम सुखद है।

गीत संख्या-३२

कविर्गायति-

दूरमेत्य श्रीहरिर्हतवान् हरिणम्।
प्रत्यावृत्य प्रियाप्रहितं स्वनुजं ददर्श यथा त्रिडितं करिणम्।।१।।
शून्ये यतिवेषं दशवदनं दृष्ट्वाभैषीत् मृगीव केसरिणम्।
ददृशुर्लोका श्रियं हरन्तं खलमम्बुजिनीमिव कुञ्जरिणम्।।२।।
गिरिधरेशमाक्रोशत् सीता रावणविवशा वल्काम्बरिणम्।
हा हा जगदीश्वर रघुनन्दन शीघ्रं जहि खलमुदरम्भरिणम्।।३।।

भौमी- अब कवि स्वयं गाते हैं- दूर जाकर श्रीहरि ने कपट मृग को मारा। प्रभु ने लौटकर प्रिया सीता द्वारा भेजे हुये लक्ष्मण को उसी प्रकार देखा जैसे प्यासा हाथी। इधर श्रीराम लक्ष्मण से रहित कुटी में यतिवेश धारी रावण को देखकर सीताजी सिंह को देखकर मृगी की भाँति डर गयीं। सभी लोगों ने कमलिनी को कुचलते हुए हाथी के समान सीताजी का हरण करते हुये रावण को देखा। रावण से विवश सीताजी वल्कल वस्त्रधारी **गिरिधर** कवि के ईश्वर श्रीराम को चिल्ला-चिल्लाकर पुकारने लगीं। सीता जी कहने लगीं- "हे जगदीश्वर! हे रघुनन्दन राघव! इस उदर परायण खल का शीघ्र वध कीजिये।"

गीत संख्या-३३

सीता जटायुषम्-

जटायू रक्षतु मां मनुजादात्।
रामेऽन्तरिते प्रहिते देवरे रक्ष द्विजपुरीष पुरुषादात्।।
हा रघुनन्दन हा जनचन्दन हा रणकर्कश निरुपमदेव।
हा जगदेकवीर वरधन्विन् हा सुरनरमुनिवाञ्छितसेव।।१।।
हा हा शुभलक्षण शिशुलक्ष्मण किंचिन्नहि त्वदीयो दोषः।
तद्धि फलं लब्धं यदकारि तवोपरि मयाऽकारणो रोषः।।२।।
हे हे दीनानाथ नाथ रघुनाथ रावणान् मां त्रायस्व।
गिरिधरप्रभो निहत्य संयुगे दशमुखममलयशो ध्यायस्व।।३।।

भौमी- अब सीता जटायु को सम्बोधित करती हुई कहती हैं– हे जटायु! आप मुझे इस राक्षस से बचा लीजिये। श्रीराम के दूर चले जाने पर और मेरे द्वारा देवर लक्ष्मण के भी भेज दिये जाने पर हे पक्षीराज! पुलस्त्य कुल के मल रूप रावण से मेरी रक्षा कर लीजिये। हा राम! हा जनों को आनंदित करने वाले! हा युद्ध में कठोर उपमा रहित देव! हा जगत के एकमात्र वीर! हा श्रेष्ठ धनुर्धर! हा देवता, मनुष्य और मुनियों द्वारा अभीष्ट सेवा वाले राघव! हा शुभलक्षण! पुत्र लक्ष्मण! तुम्हारा कोई दोष नहीं है। मैंने वह फल पा लिया जो तुम पर मैंने अकारण क्रोध किया। हे मुझ दीना के नाथ! हे मेरे प्राणनाथ! हे रघुनाथ! आप रावण से मेरी रक्षा कीजिये। हे **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराघव! युद्ध में रावण का वध करके निर्मल यश का ध्यान कीजिये।

सन्दर्भश्लोकः

निशम्य सीतावचनं जटायुषा प्रकाममायुध्यत पङ्क्तिमौलिना।
विकृत्तपक्षो विरहातुरं हरिं विलोक्य विग्नो विजगाद राघवम्।।१।।

भौमी- सीताजी का वचन सुनकर जटायुजी ने रावण के साथ घनघोर युद्ध किया। पश्चात् रावण द्वारा पंख काट दिये जाने पर पृथ्वी पर पड़े जटायुजी ने सीताजी के अन्वेषण के क्रम में अपने पास आये हुये सीताजी के विरह में व्याकुल भगवान राम को देखकर उनसे उद्विग्न स्वर में कहा–

गीत संख्या-३४

जटायुः श्रीरामं प्रति-

राम भार्यां त्वदीयामहार्षीद् दशास्यस्तेनैव भूमावहं पातितः।
दक्षिणामितो नीत्वेव गावं गवाशो हत्वा पक्षौ क्रूरेण वै घातितः।।
मा शुचो मा मुचोऽश्रूणि वीराग्रणीस्त्वया सीतापि शीघ्रं समालप्स्यते।
तथा फलमाप्स्यते पापिना निजकृतं यथा निर्दोषोऽहं युद्धे संस्थापितः।।१।।

कृत्वा त्रायोदशं श्राद्धं फलतः प्रभो वार्षिकं शत्रुमांस्येन सम्पाद्यताम्।
तस्य दोष्णां चयैर्मत्स्नुषा कर्षिता यैरनर्थं ह्यहं रक्षसाऽपातितः।।२।।
मा स्म तापं कृथा मा स्म शोचिर्वृथा तावकीयं रघूत्तम महिष्ठा कथा।
गीयतां गीतसीताभिरामे चिरं गिरिधरस्तत्कृते यं समासादितः।।३।।

भौमी– हे श्रीराम! आपकी पत्नी का रावण ने हरण कर लिया है। उसी के द्वारा पंख काटकर मैं पृथ्वी पर गिरा दिया गया हूँ। वह मेरे पंख काटकर सीताजी को दक्षिण दिशा में गौ को कसाई की भाँति लेकर चला गया और मैं मार डाला गया। हे वीरशिरोमणि! आप न तो शोक करें और न ही अश्रुपात करें। आप सीताजी को शीघ्र प्राप्त कर लेंगे। जैसे मुझ निर्दोष को नीच रावण ने युद्ध में पंख काटकर मार डाला उसी प्रकार उस पापी को शीघ्र फल मिलेगा। हे प्रभो! मेरा त्रयोदशाह श्राद्ध तो फल से कीजिये परंतु मेरा वार्षिक श्राद्ध रावण की उन भुजाओं के मांस से कीजिये जिन भुजाओं से दशानन ने मेरी निर्दोष पुत्रवधू को घसीटा था और जिनके द्वारा राक्षस ने मुझ पर अनर्थ ढहाया। हे राघव! न तो आप पश्चात्ताप करें और न ही व्यर्थ सोचें। आपकी यह महिमामयी कथा गीतसीताभिराम नामक संस्कृत गीत महाकाव्य में निरन्तर गायी जाये। उसी के लिये आपने कवि '**गिरिधर**' को भी नियुक्त किया है।

सन्दर्भश्लोकः

अथो दशरथाद्रामो दशगुणितां जटायुषि।
विभ्रद्भक्तिं तदन्त्येष्टिं चक्रे देवशिखामणिः।।१।।

भौमी–इसके अनन्तर देवशिरोमणि भगवान् श्रीराम ने दशरथ से भी जटायु पर दशगुनी भक्ति धारण करते हुए उनका अन्तिम संस्कार कर दिया।

गीत संख्या–३५

श्रीरामः जडचेतनान् प्रति सीतां पृच्छिति–

विषमविषादव्याकुला केनापि मम सीताऽलोपिता।
विरहव्यथया सङ्कुला केनापि मम सीताऽलोपिता।।१।।
तरवो वदन्तु मम वनितां वराङ्गीं किमद्राक्षुर्लतिका मे ललनां शुभाङ्गीम्।
करुणाशुचा समाकुला केनापि मम सीताऽलोपिता।।२।।
सारिकाश्च शुका पिका मधुपा मनोज्ञा पक्षिणो न पक्षपातं नो विदध्युर्योग्या।
रदजितवकुलकुला केनापि मम सीताऽलोपिता।।३।।
नद्यो विनदत कामं मुञ्चत निनादं मा तनुत रामहृदि वैदेहीविषादम्।
गिरिधरभक्तिमाकुला केनापि मम सीताऽलोपिता।।४।।

भौमी– श्रीरामवृक्ष लताओं से पूछ रहे हैं–विषम विषाद से व्याकुल मेरी सीताजी किसके द्वारा छिपा ली गयी हैं? विरह व्यथा से विकल मेरी सीताजी किसके द्वारा लुप्त कर दी गयीं? हे वृक्षों! श्रेष्ठ अंगों वाली मेरी

युवती धर्मपत्नी को बताओ। हे लतिकाओं! क्या मेरी शुभ अंगों वाली धर्मपत्नी को तुमने देखा है? करुणा के आँसू से युक्त मेरी सीता किसके द्वारा चुरा ली गयीं? हे मैना! तोता! कोकिला! और सुन्दर भ्रमरों! ऐसे योग्य पक्षियों! सही बताना, पक्षपात मत करना। अपनी दाँतों की श्वेतिमा से बकुल पुष्प की पंक्तियों को जीतने वाली सीता किसके द्वारा छिपा ली गयीं? हे नदियों! बताओ, एक बार तो नाद करो और मुझ राम के हृदय में सीताजी का विषाद मत बढ़ाओ। **गिरिधर** कवि की भक्ति की लक्ष्मी से युक्त मेरी सीताजी किसके द्वारा चुरा ली गयीं?

सन्दर्भश्लोकः

शबरी शरदीव शर्वरी रघुचन्द्रेड्यकृपाविभास्पृहा।
भगवच्चरिताम्बरेऽम्बरं ननु रामस्य समीक्षिणी बभौ।।१।।

भौमी– श्रीरामरूप चन्द्रमा की स्तुत्य कृपारूप प्रकाश से युक्त शबरी शरदकाल की रात्रि जैसी लग रही थी। जो भगवत चरित्र रूप आकाश में श्रीराम के पीताम्बर की समीक्षा करती हुई सुशोभित हुई।

गीत संख्या–३६

सरोवरतीरे शबरी निषण्णा रटन्ती राम सुनाम रटन्ती राम सुनाम।
कदाचित् समायातु स्वामी मदीयः पावयतान् मम धाम।।
अधिवटमूलं तदीयं कुटीरं ललितनयनयोः सुनिर्मलनीरम्।
हृदि चिन्तयन्ती रघुवंशवीरं वक्ति मुखेन राम राम।।१।।
नित्यं विवर्धते राघवदिदृक्षा नास्ति पिपासा न लगति बुभुक्षा।
सततं समेधते रघुवरप्रतीक्षा वैक्लवज्वरं प्रोद्दाम।।२।।
रघुनन्दनेक्षणमनोरथविलीना मातापितृभ्यां कुटुम्बेन हीना।
विदेवयमाना दिवानिशं दीना ब्रूते क्व भो सीताराम।।३।।
व्याकुलिता सा न धैर्यं लभते क्षणं बहिः क्षणमन्तरटाट्यामारभते।
गिरिधरप्रभुं सा किमप्युपालभते किं दूरं यासि श्रीराम।।४।।

भौमी– पम्पा सरोवर के तट पर बैठी हुई शबरी जी प्रभु का सुन्दर राम नाम रट रही हैं। वे सोचती हैं कि मेरे स्वामी श्रीराम कब आयेंगे और कब मेरी पर्णकुटी पवित्र करेंगे। वट वृक्ष के नीचे उन शबरी जी की झोपड़ी है। उनके सुन्दर नेत्रों में पवित्र जल है। शबरी जी हृदय में रघुवंश के वीर श्रीराम का चिन्तन कर रही हैं और मुख से राम–राम बोल रही हैं। उनके मन में श्रीराम के दर्शनों की इच्छा नित्य बढ़ती जा रही है। न उन्हें प्यास लगती है, न भूख लगती है और श्रीराम की प्रतीक्षा सतत् बढ़ रही है तथा व्याकुलता का ज्वर भी तीव्र हो चुका है। श्रीरामचन्द्र के दर्शनों के मनोरथ में लीन हुई माता–पिता और कुटुम्ब से हीन, रात–दिन दीन स्वर में विलाप करती हुई शबरी जी मात्र इतना कोस रही हैं कि हे सीताराम! आप कहाँ हैं? व्याकुल शबरी जी धैर्य नहीं प्राप्त कर पा रही हैं। क्षण में बाहर जाती हैं और क्षण में भीतर आती हैं और **गिरिधर** कवि के प्रभु श्रीराम को उपालम्भ देने लगती हैं। हे श्रीराम! आप कहाँ दूर चले जा रहे हैं।

विशेष– यह गीत एक गुजराती लोकधुन में निबद्ध है उसका बोल है–

''सरवर काठे शबरी बैठी, रटेछे राम नु नाम।''

सन्दर्भश्लोकः

एवं प्रीत्या कृष्यमाणः शबर्या रामोऽयच्छद् दर्शनं भक्तिवस्यः।
भुक्त्वा तस्याः कन्दमूलं फलानि प्रह्वस्तृप्तो राघवो भावगृह्यः।।१।।

भौमी–इस प्रकार शबरी के प्रीति से खिंचे हुए भक्तिवश श्रीराम ने उन्हें दर्शन दिया और शबरी जी के द्वारा दिए हुए कन्दमूल–फल खाकर प्रभु तृप्त हो गए और उनके वश में हो गए क्योंकि भगवान तो भाव के ही पक्षपाती हैं।

उपसंहारश्लोकः

इत्थं काव्ये महति लसिते गीतसीताभिरामे
रामारामं मनुजसुलभां लालितीलासलीलाम्।
कुर्वाणं श्रीजनकतनया बल्लभं रामचन्द्रम्
गायन् व्याघात् गिरिधरकविः सर्गमेकाद्यविंशम्।।१।।

भौमी–इस प्रकार गीतसीताभिराम नामक सुन्दर महाकाव्य के मनुष्य के लिये सुलभ लालित्य से सुन्दर लीला को कर रहे परशुराम को भी आनन्द देने वाले, सीताजी के प्राणपति, श्रीरामचन्द्र को गाते हुए **गिरिधर** कवि ने इक्कीसवें सर्ग का प्रणयन किया।

इति
श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरमहाकविजगद्गुरुरामानन्दाचार्यस्वामिरामभद्राचार्यगिरिधरकविप्रणीते
गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये अरण्यकाण्डे
गीतललितनरलीलो नाम प्रथमः सर्गः।

।।अरण्यकाण्डं सम्पूर्णम्।।

इस प्रकार श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर महाकवि जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य गिरिधरकवि द्वारा विरचित गीतरामायण 'गीतसीताभिराम' नामक संस्कृत गीतमहाकाव्य के अरण्यकाण्ड में गीतललितनरलीला नामक प्रथम सर्ग सम्पन्न हुआ और अरण्यकाण्ड भी सम्पूर्ण हुआ।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु।।

।।श्रीः।।

।। नमो राघवाय।।

।।श्रीमद्राघवो विजयते। श्रीसीतारामौ विजयेते।।

अथ किष्किन्धाकाण्डम्

गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे

गीतमारुतिजयो नाम

प्रथमः सर्गः

मङ्गलाचरणम्

मनोऽमायं मायामहिमहिषिशंजातजनुषं
महत् कायं कायस्तुतसुजनुषं धन्यधनुषम्।
स्वमग्रे सौमित्रिं किमपि मृगयन्तं मृगदृशं
जगन्नाथं नाथं तमिह रघुनाथं हृदि दधे।।१।।
महाबाहुं राहुं दशवदनवंशात्मशशिनः
शुभाक्षं हर्यक्षं रजनीचरकायैककरिणाम्।
लसच्चित्तारामं रघुतिलकतापिच्छतरुणा
हनूमन्तं सन्तं प्रणमति भवन्तं गिरिधरः।।२।।

भौमी–अब महाकवि दो शिखरिणी श्लोकों में मंगलाचरण प्रस्तुत करते हैं। जिनके मन में माया अर्थात् कृपाशक्ति रूपिणी सीताजी विराजमान हैं। ऐसे लीला के महोत्सव से युक्त तेज के निमित्त ही जिन्होंने दिव्य-शरीर धारण किया है जो महापुरुषों को अपने पास बुलाते हैं। 'क' अर्थात् ब्रह्मा, 'अ' अर्थात् विष्णु, 'य' अर्थात् शिव, इन्हीं काय पद के वाच्य ब्रह्मा, विष्णु, शिव ने जिनकी स्तुति की है। जिनका धनुष धन्य है, ऐसे लक्ष्मणजी को आगे करके अपने किसी आत्मीय को और मृगनयनी सीताजी को ढूँढते हुए सारे संसार के नाथ, ऐश्वर्य-सम्पन्न उन श्रीरघुनाथजी को मैं **गिरिधर** कवि अपने हृदय में धारण करता हूँ। विशाल भुजावाले, रावण वंश रूप चन्द्र के राहु, सुन्दर नेत्र, राक्षसों के शरीर रूप हाथियों के लिए सिंह स्वरूप, रघुश्रेष्ठ श्रीराम रूप तमाल से जिनका चित्तरूप उद्यान सुशोभित है, ऐसे परमसन्त आप श्रीहनुमान जी को **गिरिधर** कवि प्रणाम करता है।

सन्दर्भश्लोकः

किष्किन्धाभिमुखं शशाङ्कसुमुखं त्रैलोक्यतेजत् सुखं
खं शङ्खस्मितमब्दसुन्दरमघव्यापादि नामाक्षरम्।
रामं भानवमैक्ष्य भानुतनयो धैर्यं जहज्जानुभू-
र्भूयिष्ठं भयविह्वलस्स्सदनुजं वार्तिं जगादैजितः।।१।।

भौमी–अब महाकवि कथाक्रम को व्यवस्थित करते हुए सन्दर्भश्लोक प्रस्तुत करते हैं। चन्द्रमा के समान मुख वाले त्रिलोकी के सुख को तेजोमय करने वाले शंख के समान श्वेत मुस्कान वाले मेघ के समान सुन्दर, पापनाशक नामाक्षर वाले अर्थात् प्रभु के राम नाम के दो अक्षर सभी पापों को नष्ट कर डालते हैं, ऐसे सूर्यकुल में प्रकट परब्रह्म श्रीराम को किष्किन्धा की ओर मुख करके आते देख सूर्यनारायण के पुत्र सुग्रीव जी धैर्य को छोड़कर पृथ्वी पर घुटना टेककर अत्यन्त भय से व्याकुल होकर काँपते हुए हनुमान जी से बोले।

गीत संख्या-१

सुग्रीवो गायति-

काविमौ धन्यधनुषौ सुजनुषौ नरौ मत्पुरश्चाभियासू हरे।
चण्डसायकलसत्तूणिखड्गान्वितौ किं शरान् मयि जिहासू हरे।।१।।
तेजसा भासयन्तौ कुधरकन्दरं भूयसा भूषयन्तौ भुवप्रान्तरम्।
मेदिनी भामिनी भव्यसीमन्तिनी भाग्यभूषामियासू हरे।।२।।
पीतपाथोजतापिच्छसमसुन्दरौ वैरिबलवीर्यसिन्धून् मथनमन्दरौ।
कपटिकुलकरटिकण्ठीरवोत्कन्धरौ किमु प्राणान् पिपासू हरे।।३।।
पादत्राणं विना पादचारौ शुची कौमलौ कोटिकन्दर्परोचनरुची।
रोचिषा रोचमानावनेजद्रुची कञ्च रायं रिरासू हरे।।४।।
क्राम्यतः कस्य हेतोरिमौ गह्वरे भ्राम्यतः किं निमित्तं कुकण्टकभरे।
निष्ठुरेऽनिष्ठुरौ सीधुविधुवन्धुरौ गिरिधरे किं लिलासू हरे।।५।।

भौमी- सुग्रीव कह रहे हैं– हे हनुमानजी! सुन्दरकुल में जन्मे हुए धन्य धनुर्धर ये कौन दोनों महापुरुष मेरे निकट आने के लिए इच्छुक हो रहे हैं? भयंकर बाण, श्रेष्ठ तरकस एवं सुन्दर तलवार लिए हुए ये दोनों वीर क्या मुझ पर बाणों का प्रहार करना चाह रहे हैं? हे हनुमानजी! अपने तेज से पर्वत कन्दराओं को देदीप्यमान करते हुए और पृथ्वी के प्रान्तर को भी अत्यन्त सुशोभित करते हुए, ये दोनों युवक सुन्दर वेष वाली पृथ्वीरूप सौभाग्यवती की भव्य श्रृंगार शोभा को प्राप्त करने के लिए इच्छुक हो रहे हैं। हे हनुमानजी! पीले कमल और नीले तमाल के समान सुन्दर शत्रुओं के बल पराक्रम, महासागर को मथने के लिए मन्दराचल के समान एवं कपटी कठोर राक्षस रूप हाथियों के लिए सिंह के समान उत्कृष्ट कन्धराओं वाले क्या ये दोनों राजकुमार कहीं मेरे प्राणों को पीने की इच्छा कर रहे हैं? हे वानर श्रेष्ठ हनुमानजी! बिना पनही के पैदल चल रहे, परम पवित्र, अत्यन्त कोमल, करोड़ों कामदेवों को प्रकाशित करने वाले, प्रकाश से सम्पन्न, दिव्य तेज से स्वयं प्रकाशित

एवं अनेजद् रुचि अर्थात् अकम्प्यदृढ़ इच्छा वाले, ये दोनों नरपुंगव किसको कौन–सा दान देने को इच्छुक हो रहे हैं? हे हरिश्रेष्ठ हनुमान! ये दोनों राजकुमार किसलिए वन में पैदल चल रहे हैं और पीड़ा पहुँचाने वाले कष्ट से परे इस निष्ठुर वन प्रदेश में किस निमित्त भ्रमण कर रहे हैं? ये अत्यन्त कोमल चन्द्रमा के समान मधुर दोनों युवक **गिरिधर** में किस रस का आधान करना चाह रहे हैं?

विशेष– यह गीत सुगम संगीत के ढाल में निबद्ध है। इस धुन की रचना कवि प्रतिभा प्राप्त है।

गीत संख्या–२

हरे हरे कावेतौ सुकुमारौ।।
आयातोऽभिमुखं विमुखं मां सुमुखौ धृतसुखसारौ।
खड्गतूणिशरधनुर्धारिणौ रिपुकुलकमलतुषारौ।।१।।
विपिनभुवं विभूषयन्तौ पदपद्माभ्यामविकारौ।
कोटिकामसुन्दरौ किशोरौ शङ्के राजकुमारौ।।२।।
द्वौ भ्रातरौ परस्परपरमप्रेमान्वितौ कुमारौ।
अन्योऽन्ये हितसमिङ्गितज्ञौ सर्वज्ञौ जितमारौ।।३।।
किं निमित्तमिह परिश्राम्यतो गहने हतभवभारौ।
किं चिकीर्षया वने विहरतो गिरिधरप्राणाधारौ।।४।।

भौमी– हे वानर श्रेष्ठ! सुकुमार सुन्दर मुखों वाले, सुख के तत्व को धारण करने वाले, ये कौन दोनों विमुख हो रहे मेरे सम्मुख चले आ रहे हैं अर्थात् मैं इनसे विमुख हूँ वे मुझसे अभिमुख हैं? और खड्ग, तरकश और धनुष धारण किए हुए शत्रु कुल रूप कमल के लिए ओले के समान ये दोनों कौन हैं? हे हनुमान जी! अपने चरणकमलों से वनभूमि को सुशोभित करते हुए निर्विकार करोड़ों कामदेवों के समान सुन्दर ये दोनों कोई राजकुमार हैं, ऐसी मुझे आशंका है। काम को जीतने वाले ये दोनों कुमार परस्पर पवित्र प्रेम से युक्त एक दूसरे की चेष्टा और संकेतों को समझने वाले तथा सर्वज्ञ हैं। भवभयहारी ये दोनों कुमार इस गहन वन में इतना परिश्रम किसलिए कर रहे हैं और **गिरिधर** कवि के प्राण के आधार ये दोनों कौन–सा कार्य करने की इच्छा से वन में विहार कर रहे हैं?

गीत संख्या–३

हरे नरहरेः पुरतो याहि।।
कलितवटुवेषोऽप्यशेषं विधित्सितमवयाहि।
त्वं विदित्वा तच्चिकीर्षितमत्रपुनरायाहि।।१।।
प्रेषितौ यदि बालिना मम मारणाय वनेऽत्र।
तद्दृशा सङ्केतयेथा यथा याम्यन्यत्र।।२।।
नो हरति कठिनापि वनभूरिदं कोमलधाम।
अहह कण्टकतोऽपि नो व्रणितं नलिननवदाम।।३।।

यदि च भगवानेव मां धन्ययितुमेवायातु।
गिरिधरेशं तदा सुग्रीवोऽपि शरणं यातु।।४।।

भौमी– हे वानर श्रेष्ठ हनुमानजी! मनुष्य में सिंह बड़े राजकुमार के पास आप जाइये। आप ब्राह्मण का वेश बनाकर वहाँ जायें और उनका सम्पूर्ण विधित्सित् समझ कर आएँ। अर्थात् वे लोग जो विधान करना चाहते हैं उसे जाने और उस विधान की सफलता के लिए वे युवक जो उपाय करना चाहते हैं उसे जानकर आप पुनः यहाँ आ जाइये। यदि मुझे मारने के लिए ये दोनों बालि द्वारा इस वन में भेजे गए हों। तो आप नेत्र से संकेत कर दीजिएगा। जिससे मैं अन्यत्र जा सकूँ। अहो! यह कठिन वन इनके कोमल तेज को नहीं समाप्त कर रहा है और आश्चर्य यह है कि नवीन कमलों की माला भी वन के काँटों से घायल नहीं हो रही है। यदि मुझे धन्य करने के लिए भगवान ही आ रहे हों, तब तो सुग्रीव ही स्वयं **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम के शरण में चला जाय।

विशेष– यह गीत रूपक ताल में निबद्ध है।

सन्दर्भश्लोकः

अथ हरिर्हरिमेत्य हरिं स्मरन् हरिमहा हरिजो हरिविग्रहः।
हरिविधित्सितमाप्तुमना हरिं हरिगिरा हरिहेतुहरिर्जगौ।।१।।

भौमी– इस सन्दर्भश्लोक में कवि ने हनुमानजी की शरणागति का चिंतन करते हुए और उन्हें रुद्रावतार स्वीकार करते हुए ग्यारह बार हरि शब्द का प्रयोग किया है। इसके अनन्तर 'हरिमहा' अर्थात् सिंह के समान तेजस्वी, 'हरिजः' अर्थात् वानर केशरी के पुत्र, 'हरिविग्रहः' अर्थात वानरशरीर धारी, 'हरिहेतुहरिः' अर्थात् यमराज के जन्मदाता 'हरि' अर्थात् सूर्यनारायण को भी जिन्होंने निगल लिया है। ऐसे 'हरि' अर्थात् वानरश्रेष्ठ हनुमानजी 'हरिं' अर्थात् महाविष्णु भगवान श्रीराम के पास जाकर 'हरिविधित्सितं' प्रभु श्रीराम के चिकीर्षित जानने की इच्छा से 'हरिं स्मरन्' उन्हीं प्रभु श्रीराम का स्मरण करते हुए 'हरिगिरा' अर्थात् देवेन्द्र इन्द्र की वाणी संस्कृत में गीत गाते हुए प्रभु श्रीराम से बोले।

गीत संख्या-४

हनुमान् श्रीरामलक्ष्मणौ प्रति–

कौ युवां वन इहायातौ।।
वसितबल्गुसुबल्कचीरौ नीलपीताम्बुजशरीरौ।
परमवीरौ समरधीरौ नयननिन्दितनीरजातौ।।१।।
खड्गतूणिधनुर्दधानौ सत्यसायकसुसन्धानौ।
श्रुतिविहितधर्मप्रधानौ जनमनोरथपारिजातौ।।२।।
वनाकौशलकमलपादौ भग्नभक्तमनोविषादौ।
दमितदानवहृत्प्रसादौ स्वजनरञ्जनगुणव्रातौ।।३।।

कठिनकाननभूप्रदेशं युवां भ्रमथः किमुद्देशम्।
निगदतं गिरिधरवसन्ते मलयमञ्जुलबहलवातौ।।४।।

भौमी- हनुमानजी श्रीरामलक्ष्मण से प्रश्न करते हैं–सुन्दर वल्कल वस्त्र धारण किए हुए नीले-पीले कमल के समान शरीर वाले, परमवीर समर में स्थिर नेत्रों से नवीन कमलों को लज्जित कर देने वाले आप दोनों कौन इस वन में आए हैं? खड्ग, तरकश और धनुष धारण किए हुए और सन्तों के हित में अमोघ बाण का सुन्दर सन्धान करने वाले, वेदविहित धर्म में प्रधान आस्था रखने वाले, भक्तों के मनोरथों को पूर्ण करने के लिए कल्पवृक्ष स्वरूप आप दोनों कौन हैं? आपके चरणकमल वनयात्रा में कुशल नहीं हैं, आपने अपने भक्तों के मन का विषाद दूर किया है। आपने दानवों का दमन करके हृदय में प्रसन्नता धारण की है और आप के गुणसमूह आपके भक्तों का रंजन कर रहे हैं, ऐसे आप दोनों कौन हैं? इस अत्यन्त कठिन वन्य भू प्रदेश में आप दोनों किस उद्देश्य से भ्रमण कर रहे हैं? **गिरिधर** कविरूप वसन्त में मलय से मधुर सुन्दर वायु बनकर आने वाले आप दोनों कौन हैं?

विशेष- यह गीत रूपक ताल में निबद्ध है- इसे मंगल ललित आदि रागों में गाया जा सकता है।

गीत संख्या-५

हनुमान् पुनः गायति-

अहो युवयोरुचिररूपम्।।
क्षपितशतकन्दर्पदर्पं विहितभीमभयापसर्पम्।
शमितदुर्जयविषयसर्पं भग्नभवकूपारकूपम्।।१।।
जितसितासितवारिजातं स्वजनजीवनपारिजातम्।
सूर्यचन्द्रकरावदातं महितवैदिकयज्ञयूपम्।।२।।
शस्त्रशास्त्रसमग्रसम्पत् प्रहतनिजजनभीषणापत्।
निर्मलं नियतं निरापत् प्रत्यगात्म परात्मरूपम्।।३।।
परिघसम्मितबाहवो वां कुणपहिमकरराहवो वाम्।
कथं नैव विभूषिता भणतं भविष्णु भवानुरूपम्।।४।।
कार्यकारणब्रह्मभूतौ चिदीश्वरसङ्घातपूतौ।
कथयतं गिरिधरगिरागीतावुचितमुत्तरस्वरूपम्।।५।।

भौमी- हनुमान जी फिर गाते हैं–अहो! आप दोनों का कितना सुन्दर रूप है जिसने अनेक कामों के अहंकार को चूर किया और जिसने भक्तों के मन से भयंकर भय को ही भगा दिया, जिसे देखकर अजेय विषयरूप सर्प शांत हो गया और जिसने भक्तों के भवसागर के कूओं को ही समाप्त कर डाला। श्वेत और नीले कमल को जीतने वाले, भक्तों के जीवन के लिए कल्पवृक्ष स्वरूप, अनेक सूर्य और अनेक चन्द्रमा के समान चमकता हुआ वैदिक यज्ञ के स्तम्भों को सम्मानित करने वाले आप दोनों का यह रूप कितना सुन्दर है। शस्त्रों और शास्त्रों की सम्पूर्ण सम्पत्ति से युक्त और अपने भक्तों की भीषण विपत्ति को नष्ट करने वाले, निर्मल-नियत और सारी विघ्न बाधाओं से रहित जीवात्मा और परमात्मा स्वरूप यह आप दोनों का स्वरूप कितना सुन्दर है।

हे महानुभावों! राक्षस रूप चन्द्रमा के लिए राहु के समान आप दोनों की परिघ जैसी भुजाएँ भविष्यत् कल्याण के अनुरूप क्यों नहीं सजाई गयीं? आप दोनों इसका रहस्य बताइए। आप दोनों कार्य–कारण ब्रह्मस्वरूप हैं और आप ही दोनों से चित् और ईश्वर का संहार पवित्र हुआ है, परन्तु आप दोनों यहाँ क्यों आए, कहाँ से आए, किस नाम से आपको जाना जाता है? हे **गिरिधर** कवि के गीतों के आश्रय दोनों महानुभाव! इस प्रश्न का उचित उत्तर स्वरूप दीजिए।

गीत संख्या–६

पम्पाविपिनविहारिन्नुचितमुत्तरमाशु दद्याः।।
करकार्मुकसायकजननायक कामकोटिमदहारिन्नुचितमुत्तरमाशु दद्याः।।१।।
भवभञ्जनसज्जनमनोरञ्जन निजजनविपद्विदारिन्नुचितमुत्तरमाशु दद्याः।।२।।
भुवनविमोहन भयव्यपोहन तूणधनुः शरधारिन्नुचितमुत्तरमाशु दद्याः।।३।।
घनसुन्दर भवसागरमन्दर गिरिधरमनोवनचारिन्नुचितमुत्तरमाशु दद्याः।।४।।

भौमी– हे पम्पाविपिन के विहारी! शीघ्र उत्तर दीजिए। हाथ में धनुष–बाण लिए हुए प्राणियों के नायक, करोड़ों–कामदेवों का अहंकार दूर करने वाले, आप उचित उत्तर दें। संसार का भय का नाश करने वाले, सज्जनों का मनोरंजन करने वाले, अपने भक्तों की विपत्ति हरने वाले, आप हमें उचित उत्तर दें। संसार को मोहित करने वाले और भय को दूर करने वाले धनुष–बाण तरकश धारण करने वाले, आप उचित उत्तर दें। मेघ के समान सुन्दर भवसागर के मन्दराचल और **गिरिधर** कवि के मनरूप वन में विचरण करने वाले, प्रभु उचित उत्तर दें।

गीत संख्या–७

युवां किन्नामकौ साधु भो भण्यताम्।
युवां किं धामकौ साधु भो भण्यताम्।।
किं त्रिदेवेषु कौचिन् महोमण्डितौ, मण्डयन्तौ त्रिलोकीं महापण्डितौ।
युवां किं धामकौ साधु भो भण्यताम्।।१।।
कस्मिन्देशे प्रजातौ महामानवौ, कौ च वामम्बातातौ दलितदानवौ।
युवां किं धामकौ साधु भो भण्यताम्।।२।।
किं वृषाकपी किं वा स्थो मधुमाधवौ, किं वा सुरवैद्यौ किं वा रमोमोमाधवौ।
युवां किं धामकौ साधु भो भण्यताम्।।३।।
किं वा वरवर्णिनौ विधू ऋषिपालकौ, किं वा राजर्षिसूनू किं वा द्विजबालकौ।
युवां किं धामकौ साधु भो भण्यताम्।।४।।
किं वा नरनारायणौ युवां संशितव्रतौ, गिरिधरेशौ महोमूर्ती करुणारतौ।
युवां किं ग्रामकौ साधु भो भण्यताम्।।५।।

भौमी– हनुमानजी फिर पूछते हैं–महोदय! आप दोनों का क्या नाम है, स्पष्ट बताइये? आप दोनों का

कौन-सा जन्म स्थान है? स्पष्ट कहिये। क्या तीनों लोकों को सुशोभित करते हुए महापण्डित परम तेजस्वी आप दोनों तीनों देवों में से कोई दो हैं? आप दोनों महामानव किस देश में प्रकट हुए और हे दानवों को दण्डित करने वाले! आप दोनों के माता-पिता कौन हैं और आप दोनों का निवास स्थान सातों पुरियों में से कौन है? क्या आप वृषा कपि अर्थात् शिव-विष्णु हैं। क्या आप मधुमाधव अर्थात् चैत-वैशाख हैं? क्या आप देववैद्य अश्विनी कुमार हैं, क्या आप लक्ष्मीपति, पार्वतीपति हैं। आप दोनों किस कोटि के हैं? क्या आप दोनों ब्रह्मचारी दो रूप में विष्णु ही हैं? क्या आप किसी राजर्षि के कुमार हैं? क्या कोई ब्राह्मण कुमार हैं या आप दोनों किस वर्ग के हैं? क्या आप नरनारायण हैं? दृढ़व्रती **गिरिधर** कवि के ईश्वर तेजोमय मूर्ति आप दोनों किस ग्राम के हैं? इस प्रश्न का उचित उत्तर दीजिए।

गीत संख्या-८

अन्यच्च-

भवन्तौ नैवासुरौ नो देवौ।
विमलविशुद्धविबोधविग्रहौ त्रिभुवनजीवसमर्पितसेवौ।।
पद्भ्यां भूमिं न च स्पृशन्ति कदापि सुरा इति श्रुतं पुराणे।
युवां स्पृशन्तौ ब्रजथो धरणीं धनुर्धराविह वनप्रयाणे।।१।।
असुरास्तमःप्रकृतयो दुष्टा क्रूरनिश्चया गेहे शूरा।
किन्तु युवां सात्विकौ सर्गतः कथयन्त्यङ्का सद्गुणपूराः।।२।।
दनुजा नैव निसर्गाद्दान्ता कामकिङ्कराः शठाः कुशीलाः।
किन्तु युवां भो ब्रह्मचारिणौ दान्तौ वेदविश्रुता लीलाः।।३।।
सर्वे प्राणभृतो विधिसृष्टौ मायामयकल्पितगुणदोषाः।
किन्तु युवां मायया विमुक्तौ सूचयन्ति युष्मद्गुणकोषाः।।४।।
युवां ब्रह्मविग्रहौ निर्गुणौ विदितसमस्तसद्गुणाधारौ।
धृतावतारौ मनुजाकारौ कविवरगिरिधरगीः श‍ृङ्गारौ।।५।।

भौमी- और भी, आप दोनों न तो असुर हैं न तो देवता, आपका विग्रह निर्मल-पवित्र और ज्ञानमय है। तीनों लोकों के जीव आपको सेवा समर्पित करते हैं। पुराणों में सुना है कि देवता चरणों से पृथ्वी का स्पर्श नहीं करते जबकि आप दोनों धनुर्धर वनयात्रा के क्रम में पृथ्वी का स्पर्श करते हुए चल रहे हैं। असुर तो स्वभाव से तमोगुण की प्रकृति के होते हैं, क्रूर-निश्चय वाले होते हैं और घर में ही शूरवीर बने रहते हैं। किन्तु आप लोग स्वभाव से सात्विक हैं। इस प्रकार सद्गुणों से पूर्ण आपके चिह्न बता रहे हैं। असुर कभी भी स्वभाव से संयमी नहीं होते, वे काम के ही सेवक होते हैं। वे शठ और दुष्ट शीलवाले होते हैं। किन्तु आप दोनों तो ब्रह्मचारी हैं, संयमी हैं, आपकी लीला वेदों में प्रसिद्ध है। ब्रह्मा की सृष्टि में सभी माया से निर्मित गुण-दोषों से युक्त हैं किन्तु आप दोनों माया से रहित हैं। आपके गुणों के वेश इस प्रकार की सूचना दे रहे हैं। आप दोनों प्राकृत-गुणों से रहित ब्रह्मस्वरूप और प्रसिद्ध सभी श्रेष्ठ गुणों के आधार और अवतार लिए हुए मनुष्य के आकार में परिणत श्रेष्ठकवि **गिरिधर** की वाणी के श‍ृंगार हैं।

गीत संख्या-९

विधत्तामुचितोत्तरं भवान्।।
मा गोपायतु कृपया कायतु माकं ध्यायत्वायुष्मान्।
मा मा म्लायतु हृदि मा ग्लायतु चायतु चित्रं ज्योतिष्मान्।।१।।
ऐश्वर्यं प्रकटयतु मम पुरो निःशङ्कं रविरोचिष्मान्।
माधुर्ये सन्दिहते बहवो शृणु रजनीकरशोचिष्मान्।।२।।
भुवनेशो मनुजावतारधृक् कारणब्रह्मपरं श्रीमान्।
निराकारसाकारवपुर्मायामुक्तो विदितो भगवान्।।३।।
सत्यं वदतु नैव गोपायतु गोप्ता गोप्यधनो बलवान्।
साम्रेडं पृच्छति प्राञ्जलिर्गिरिधरप्रभुं भक्तहनुमान्।।४।।

भौमी- आप उचित उत्तर दीजिए– हे आयुष्मान्! आप छिपाएँ नहीं, किसी अप्रिय का ध्यान न करें, कृपया कहें। हे ज्योतिस्वरूप आप अपने मन में खिन्न न हों और न ही ग्लानि करें, अपने चित्त में उत्साहित हों। हे सूर्य के समान प्रकाशमान्! आप मेरे सामने निःसंकोच ऐश्वर्य प्रकट कीजिए। हे चन्द्र के समान कान्ति वाले प्रभु! आपकी माधुरी लीला में बहुत लोग सन्देह करते हैं। आप भुवनेश्वर मनुष्य का अवतार लिए हुए कारण परब्रह्म हैं। आप अकारों को छिपा लेने के कारण निराकार हैं और भक्तों के लिए उपयोगी आकारों को प्रकट कर लेने से साकार हैं। आप भगवान रूप में प्रसिद्ध हैं। गोपनीयता ही जिनका धन है ऐसे परम बलवान आप सत्य बोलें, छिपाएँ नहीं, **गिरिधर** कवि के प्रभु आपसे भक्त हनुमान बार–बार हाथ जोड़कर पूछ रहा है।

गीत संख्या-१०

श्रीरामः लक्ष्मणं प्रति-

कश्चन काञ्चनकान्तशरीरः।
पृच्छति नौ नम्रो वरवर्णी वर्णधर्ममर्यादाधीरः।।१।।
नैव स्खलति कदापि सम्ब्रुवन् वाचं व्रीडितमेघगभीरः।
त्रिस्थानव्यङ्ग्यया गिरा चकितीकृतवाचस्पतिः सुधीरः।।२।।
अनया चारुचित्रया वाचा श्रोत्रं सोमरसं ह्याचामति।
धृतखड्गकरः परोऽपि परतो नूनममुष्यजनो विश्रामति।।३।।
बहु व्याहरन् नैवाशुद्धं शास्त्रविरुद्धं वटुरभिधत्ते।
गिरिधरप्रभोः कपिर्व्याकरणं समधीयानः सविधि विधत्ते।।४।।

भौमी- अब श्रीराम लक्ष्मण के प्रति कहते हैं–देखो लक्ष्मण! कोई सुवर्ण के समान सुन्दर शरीर वाला, विनम्र वर्ण धर्म और मर्यादा में स्थिर, श्रेष्ठ ब्रह्मचारी हम दोनों से कुछ पूछ रहा है। गंभीर मेघ को भी लज्जित कर देने वाला यह ब्रह्मचारी स्पष्ट वाणी बोलता हुआ भी कहीं भी स्खलित नहीं हो रहा है। यह हृदय, कंठ और मूर्धा इन तीन स्थानों से स्पष्ट होती हुई वाणी द्वारा बृहस्पति को भी चकित कर रहा है और बहुत ही धीर है।

ब्रह्मचारी की आश्चर्यमयी वाणी से कर्णकुहर सोमरस का पान कर रहा है और तलवार लेकर आया हुआ शत्रु भी इस वाणी को सुनकर इस ब्रह्मचारी को मारने से विश्राम ले लेता है। बहुत बोलता हुआ भी यह ब्रह्मचारी एक भी अक्षर न तो अशुद्ध बोल रहा है, न ही शास्त्र विरुद्ध बोल रहा है। ऐसा लगता है कि जैसे **गिरिधर** कवि के स्वामी मुझ राम का सेवक होने वाला यह वानर कदाचित श्रम करके विधिपूर्वक व्याकरण पढ़कर आया है।

गीत संख्या-११

कश्चन काञ्चनशैलशरीरः।
पृच्छति नौ प्रश्नं गुणकृत्स्नं गिरा मधुरया जलधिगभीरः।।१।।
अरुणापाङ्गमहोमयरोचनलोचनललितो व्रतेषु धीरः।
यज्ञसूत्रमण्डितमांशल सुदृढांशो वंश्यो व्रती प्रवीरः।।२।।
मूर्तं ब्रह्मचर्यमिव बिभ्रत् भ्राजिष्णुर्वर्णी रणधीरः।
बज्रसंहननमयो मनस्वी महाबाहुरतिशैतसमीरः।।३।।
गिरिधरेशगुणगरिममाधुरीमहोमयो धीमान् महावीरः।
लक्षयते मङ्गलं मङ्गलो मङ्गलमयमङ्गलाक्षनीरः।।४।।

भौमी- हे लक्ष्मण! समुद्र के समान गंभीर, कोई स्वर्ण पर्वत के समान शरीर वाला, ब्रह्मचारी, अपनी मधुर वाणी से हम दोनों से सम्पूर्ण गुणों से पूर्ण प्रश्न पूछ रहा है। देखो, इसके नेत्र के कोने लाल और तेजस्वी हैं। इसके नेत्र निर्दोष हैं और यह व्रतों में बहुत स्थिर है। इसके स्कन्ध पर यज्ञोपवीत और उसकी कन्धरा बहुत दृढ़ है। स्वयं भी यह विद्या और जन्म दोनों में ही परम्परा में शुद्ध इसलिए वंश्य है। यह ब्रह्मचर्यव्रती और जितेन्द्रिय है। देखो, शरीरधारी ब्रह्मचर्य के ही समान आकार धारण करता हुआ यह ब्रह्मचारी देदीप्यमान और युद्ध में कुशल दिख रहा है। वायु को भी वेग से चकित करने वाला, बज्राङ्ग, मनस्वी और यह महाबाहु है। लक्ष्मण! यह **गिरिधर** कवि के स्वामी मुझ राम के गुणों की गरिमा से उत्पन्न, तेजोमय माधुरी से युक्त, बहुत बड़ा बुद्धिमान और महावीर है। मुझे लगता है मङ्गलमय जल भरे नेत्रवाला मङ्गलाकार यह ब्रह्मचारी किसी अपूर्व मङ्गल की सूचना दे रहा है।

गीत संख्या-१२

रामो हनुमन्तं प्रति-

आवां दशरथात्नु जातौ।
जननिजनकनिदेशमथमूर्ध्ना बिभ्राणौ काननमायातौ।।
रामलक्ष्मणौ समं सीतया स्वीकृतमुनिवरबल्कलचीरौ।
त्यक्त्वा राजसुखं विपिनमितौ सोढखरातपशीतसमीरौ।।१।।
अत्र हृता रक्षसा जानकी शून्ये शुना मृगीव मृगाक्षी।
अन्विष्यतेऽनुकाननगुहमिह यथौषधिर्द्वाभ्यां जलजाक्षी।।२।।

आवां ऋषिमुनिवृन्दसेवकौ न स्वामिनो कदाचिद् बन्धो।
दिदृक्षावहे सुग्रीवं कुरु साचिव्यं हे मङ्गलसिन्धो।।३।।
इत्युक्त्वा तूष्णीं बभूव सीतावियोगविकलो रघुचन्द्रः।
प्रभुर्गिरिधरस्याति न राजति राहुग्रस्त इव प्रतिपच्चन्द्रः।।४।।

भौमी- अब श्रीराम हनुमानजी के प्रति कहते हैं। हम दोनों दशरथ से उत्पन्न हुए हैं। माता-पिता का आदेश सिर माथे लेकर वन को चले आए हैं। हम दोनों राम, लक्ष्मण, सीताजी के साथ वल्कल वस्त्र स्वीकार करके तीखा वायु, कठिन धूप सहन करते हुए राज्य छोड़कर वन में आए। यहाँ पर हम दोनों से रहित स्थान में कुत्ते द्वारा हरिणी की भाँति मृगनयनी कमलनेत्र सीता का राक्षस ने हरण कर लिया, उन्हीं को हम दोनों औषधि की भाँति ढूँढ रहे हैं। हम दोनों भाई ऋषि-मुनियों के सेवक हैं, स्वामी कभी भी नहीं हैं, मङ्गल के समुद्र भैया हम सुग्रीव से मिलना चाह रहे हैं, आप हमारी सहायता कीजिए। इस प्रकार कहकर रघुकुल के चन्द्रमा श्रीराम चुप हो गए। **गिरिधर** कवि के प्रभु श्रीरामचन्द्र सीताजी के वियोग में राहुग्रस्त प्रतिपद चन्द्रमा की भाँति बहुत नहीं सुशोभित हो रहे हैं।

गीत संख्या-१३

हनुमान् राघवं प्रति-

हरे मां रमयस्व सरसिजचरणे।।
अशरणशरणे भवभयहरणे जगदगकारणकरणे।।१।।
बन्धुजीवराजीवसमरुणे सीताहृदयाभरणे।।२।।
गङ्गाप्रजननकारणकरणे निजजनविपद्विदरणे।।३।।
बलिगुरुगर्वमहीधरदरणे गौतमदारोद्धरणे।।४।।
दण्डकधरणिदुरितसंहरणे काञ्चनमृगानुसरणे।।५।।
शिवमानसमानससंस्करणे जगन्मङ्गलाचरणे।।६।।
दुस्तरभवसागरसत्तरणे मङ्गलमोदवितरणे।।७।।
गिरिधरभणितिभक्तिसंस्मरणे हनुमन्मनोविहरणे।।८।।

भौमी- अब हनुमानजी राघव के प्रति कहते हैं- हे श्रीहरे! आप मुझे अशरणों को शरण देने वाले, भवभय का हरण करने वाले और जड़-चेतन के कारणों के भी कारण अपने श्रीचरणों में रमा लीजिये। जो बन्धूक-पुष्प तथा लाल कमल के समान अरुण और सीताजी के हृदय के आभूषण हैं, जो गंगाजी की उत्पत्ति के कारण, वामन के भी अंशी, विष्णु के अंशी हैं और जो भक्तों की विपत्ति के नाशक हैं, उन्हीं चरणों में मुझे रमा लीजिए। जो बलि के गुरुदेव शुक्राचार्य के गर्वरूप पर्वत को नष्ट करने वाले हैं और जो गौतम की पत्नी के उद्धारक हैं, जो दण्डक वन की पृथ्वी के पाप को नष्ट करने वाले तथा कांचन मृग का अनुसरण करने वाले हैं, उन्हीं चरणों में मुझे रमा लीजिये। जो शिवजी के मनरूप मानस सरोवर के अलंकरण हैं, जो जगत के मंगलाचरण स्वरूप हैं और जो दुस्तर भवसागर के लिये नौका के समान हैं। जो मंगल और प्रसन्नता को प्रदान

करते हैं और जो **गिरिधर** कवि की कविता और उनकी भक्ति के संस्मरण हैं, जो मंगल और प्रसन्नता का वितरण करते हैं और मुझ हनुमान के मन में विहार करते हैं, हे श्रीराघव! उन्हीं चरणों में मुझे रमा लीजिये।

गीत संख्या-१४

रघुनाथ सीतानाथ हे हनुमन्तमिह पालय प्रभो।
श्रीनाथ चरणसरोरुहं विलषन्तमभिपालय विभो।।
पतितं पतितपावनपदे निकृतं सुभक्ते जननदे।
रघुनाथ नाकपनाथ हे हनुमन्तमभिलालय प्रभो।।१।।
मातापितृभ्यां प्रेषितं तव सेवने संप्रेषितम्।
रघुनाथ राघवनाथ हे हनुमन्तमभिभालय प्रभो।।२।।
वाचा सुमनसा कर्मणा निजनर्मणा धृतशर्मणा।
त्वत्पादपद्ममधुव्रतं हनुमन्तमनुलालय प्रभो।।३।।
मा मा जनो हि परीक्ष्यतां शान्तानुजेन न वीक्ष्यताम्।
सेवाव्रतं त्वत्सम्मतं गिरिधरं सम्भालय प्रभो।।४।।

भौमी- हे रघुनाथ! हे सीतापते! यहाँ मुझ हनुमान का पालन कीजिये। हे श्रीजी के प्राण वल्लभ! अपने श्रीचरणकमल की अभिलाषा करते हुये, मुझ हनुमान का पालन कीजिये। हे इन्द्र के भी स्वामी रघुनाथजी! अपने भक्तों को आनन्द देने के लिए आनन्द नद के समान पतितपावन चरणारविंद में गिरे हुए और पूर्णरूप से चरणों में नमस्कार करते हुये मुझ हनुमान को दुलारिये। माता अंजना और पिता वायु के द्वारा प्रेरणा देकर आपकी सेवा में भेजे हुये मुझ हनुमान को हे रघुनाथ! हे राघव! हे नाथ! अब आप सम्भाल लीजिये। वाणी से, मन से, कर्म से, अपने विनोद से, सुख से आपके चरणकमल के भ्रमर मुझ हनुमान का अनुकूलता से लालन कीजिये। हे शान्ता के छोटे भाई श्रीराघव! इस जन की परीक्षा मत कीजिये और निरीक्षण भी मत कीजिये और आपके प्रिय सेवाव्रती मुझ **गिरिधर** अर्थात् पर्वत धारण करने वाले हनुमान एवं **गिरिधर** नामक कवि, इन दोनों को संभाल लीजिये।

गीत संख्या-१५

शृणु प्रभो पञ्चावयवप्रतिज्ञाम्।
श्रुत्वा धरधैर्यं सहानुजस्तदनु देहि मेऽनुज्ञाम्।।
पञ्चमुखानि श्रुतौ हनूमतस्तन्त्रेष्वाख्याप्यन्ते।
तैरथपञ्चनिर्णया भवतां कृतेऽपि संज्ञाप्यन्ते।।१।।
सूकरपोतमुखेन सूचये धरणीमिव वाराहः।
पातालत आनेष्ये सीतां मृगयन् कलितोत्साहः।।२।।
हयग्रीवमुखतो निवेदये यथा हयशिराः स्वामिन्।
आनेष्ये मैथिलीमदृष्टामन्यैरन्तरयामिन्।।३।।

गरुडमुखेन वदामि गरुडवल्लङ्घित्वा कूपारम्।
सीतामानेष्यामि तव पुरो नीतां सागरपारम्।।४।।
नरहरिमुखेनेरये नरहरिरिव खलहृदयविदारम्।
सीतामत्रभवत उपदास्ये भङ्क्त्वा भूतलभारम्।।५।।
वानरमुखेनेरयन् राघव काममहं जिह्रेमि।
गिरिधरप्रभुसेवां प्रतिजानानो यावदसु बिभेमि।।६।।

भौमी- हे प्रभो! मेरी पाँच अंगों वाली प्रतिज्ञा सुनिये। इसे सुनकर लक्ष्मणजी के सहित धैर्य धारण कीजिये। इसके पश्चात् मुझे अनुमति प्रदान कीजिये। श्रुति तथा तंत्र में मुझ हनुमान के पाँच मुख कहे जाते हैं। उन्हीं पाँच मुखों से आपके लिए मेरे द्वारा पाँच निर्णय बताये जा रहे हैं। मैं सूकर मुख से यह सूचित करता हूँ कि जैसे वाराह भगवान पृथ्वी को लाये, उसी प्रकार उत्साहपूर्वक खोजता हुआ मैं, सीताजी को पाताल से भी ला दूँगा। हे स्वामी! हे अन्तर्यामी! मैं हयग्रीव मुख से निवेदन करता हूँ कि हयग्रीव भगवान की भाँति दूसरों द्वारा कभी न देखी गयी सीताजी को मैं ला दूँगा। मैं गरुड मुख से यह कह रहा हूँ कि सागर को लाँघकर सिंधु पार ले जाई गयी सीताजी को आपके पास ले आऊँगा। मैं नरसिंह मुख से यह सूचना देता हूँ कि नरसिंह की भाँति ही दुष्टों का हृदय फाड़कर, पृथ्वी का भार दूरकर, आपके समक्ष सीताजी को उपस्थित कर दूँगा। वानर मुख से सूचना देते हुये मैं बहुत लज्जित हो रहा हूँ कि यावद्-जीवन **गिरिधर** कवि के प्रभु आपश्री की सेवा की प्रतिज्ञा करता हुआ मैं डर रहा हूँ।

गीत संख्या-१६

हनुमन्तं हरे प्रतिपालय।
भक्तिमन्तं प्रभो परिलालय।।
त्वमेवासि पिता प्रभो त्वमेवासि माता।
त्वमेवासि सखाबन्धुस्त्वमेवासि भ्राता।।
तापवन्तं विभो अनुलालय।।१।।
नैव ते पदं विहाय क्वचिन्मे ईयासा।
सुधानदे स्थिते किं विषस्य भो पिपासा।।
प्रीतिमन्तं श्रितं साधु शालय।।२।।
नैव जाने भजनोपायं नैव योगयज्ञम्।
पाहि पार्वतीशपते साधनानभिज्ञम्।।
नाथ चरणशरणवन्तं निभालय।।३।।
वानरशरीरं सर्वसाधनाविहीनम्।
रक्ष गिरिधरेश मोहमहोदधिमीनम्।।
दैन्यवन्तं कृपालो सम्भालय।।४।।

भौमी- हे श्रीहरे! मुझ हनुमान का पालन कीजिये। मुझ भक्तिमान का पालन कीजिये। आपही मेरे पिता तथा आप ही माता हैं। आप ही मेरे मित्र व बन्धु तथा आप ही मेरे रक्षक हैं। हे ज्ञापक! तीनों तापों से युक्त मेरा अनुलालन कीजिये। आपके चरणों को छोड़कर मुझे कहीं जाने की इच्छा नहीं है तथा अमृतनद के वर्तमान रहने पर किसी को विष की प्यास लगेगी? मुझ प्रीतिमान शरणागत को भक्तों के गुणालंकारों से सुशोभित कीजिये। हे प्रभो! मैं भजन का उपाय नहीं जानता और न ही योग, जप, यज्ञ जानता हूँ। हे पार्वतीपति के भी स्वामी श्रीराम! साधना से अनभिज्ञ मुझ सेवक की रक्षा कर लीजिये, कर लीजिए। हे **गिरिधर** कवि के स्वामी! वानर शरीर में वर्तमान सभी साधनाओं से विहीन मोह महासागर के मछली मुझ सेवक की रक्षा कीजिये।

गीत संख्या-१७

श्रीरामो हनुमन्तं प्रति परिष्वज्य-

हनूमन् मा मा मनसि विषीद।
त्वं लक्ष्मणतो द्विगुणप्रियतरो मम विज्ञाय प्रसीद।।१।।
मत्सेवार्थं त्यक्त्वा दारान् सुतसुखजनकैलाशम्।
तिर्यग् देहमेत्य कुरुषे मत्कृते कुकाननवासम्।।२।।
त्रिभुवनगुरुर्भवन् शिष्यः स्वामीसेवकः प्रवीणः।
वृषाकपिर्हा कपिः कोऽपि जगदीशोऽविसुताधीनः।।३।।
धन्यो जगज्जैत्रमपि कामं मत्सेवयानुजयसे।
गिरिधरप्रभुं प्रीणयन्नित्यं विष्वग् विभुर्विजयसे।।४।।

भौमी- भगवान श्रीराम गले लगाकर हनुमान जी से कहते हैं-हे हनुमान! तुम मन में विषाद मत करो क्योंकि तुम मुझे लक्ष्मण से दुगुने प्रिय हो। ऐसा समझकर प्रसन्न हो जाओ। मेरी सेवा के लिए ही पत्नी, पुत्र, सुख, सेवक और कैलाश को भी छोड़कर वानर शरीर प्राप्त करके तुम वन में निवास कर रहे हो। अहो! आप त्रिभुवन के गुरु होकर भी सूर्य के शिष्य बने, स्वामी होकर भी कुशल सेवक बने। वृषाकपि होकर भी कपि बने और जगदीश्वर होकर भी अविसुत अर्थात् सूर्यपुत्र के अधीन बने। जगद्विजयी काम को भी मेरी सेवा से तुम जीत रहे हो। हे हनुमान! **गिरिधर** कवि के स्वामी मुझ राम को प्रसन्न करते हुए सर्वव्यापक होकर तुम सभी प्रकार से विजयी हो रहे हो।

गीत संख्या-१८

हनुमान् श्रीरामं प्रति-

जय जानकीजीवन राम हे।।
जय जय जगदगजयिञ्जनार्दन जय पूरितजनकाम हे।
जय जानकीपते पतितान्वयपावन पावननाम हे।।१।।
जय जय रघुकुलकुमुदसुधाकर दिनकरदिनकरधाम हे।

जय दिनेशकुलभूषणभूषण दूषणदूषणदाम हे।।२।।
जय हनुमन्मानसमानसमराल विदितगुणग्राम हे।
जय निजजनजीवनधन नवघनमञ्जुलमरकतश्याम हे।।३।।
जय विधिहरिहरवन्दितनिन्दितकोटिकोटिशतकाम हे।
जय लक्ष्मणानुचर सीतावर जय गिरिधराभिराम हे।।४।।

भौमी- अब हनुमानजी श्रीराम के प्रति कहते हैं–हे जानकीजीवन श्रीराम! आपकी जय हो। जड़–चेतनों पर विजय प्राप्त करने वाले जनार्दन अर्थात् लोगों की याचना के आश्रय भक्तों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले प्रभु! आपकी जय हो। हे जानकीपते, हे पतितवंश के पावन, हे पवित्र नाम वाले प्रभु! आपकी जय हो। हे रघुकुल कुमुद के चन्द्रमा! आपकी जय हो। सूर्य के भी सूर्य परमधामस्वरूप! आपकी जय हो। हे सूर्यकुल के भूषण, श्रीभरत लक्ष्मण के भी आभूषण, हे दोषों को भी दूषित करने वाले दिव्य मालाधारी! आपकी जय हो। हे हनुमान के मनरूप मानस सरोवर के राजहंस और प्रसिद्ध गुणग्राम वाले और अपने भक्तों के जीवनधन, नये मेघ और मरकत के समान श्यामल प्रभु! आपकी जय हो। ब्रह्मा, विष्णु, शिव से वन्दित और असंख्य कामों को निन्दित करने वाले श्रीराम आपकी जय हो और लक्ष्मणजी से सेवित सीताजी के पति श्रीराम आपकी जय हो और **गिरिधर** प्रभु को आनन्द देने वाले प्रभु श्रीराम! आपकी जय हो।

विशेष- यह गीत मालकौश, चन्द्रकौश, जयवन्ती तथा केदार–राग में गेय है।

गीत संख्या-१९

दरग्रीव सुग्रीवमुपेहि भो।।
श्रुतिपथनिष्ठपृष्ठमारूढो मम कौशलमुपधेहि भो।
पश्यन् भानवभानवमूर्धनि सरसिजकरमाधेहि भो।।
नतग्रीवसुग्रीवमुपेहि भो।।१।।
हे राजीवविलोचनलोचन सुखं सुदुःखिनि धेहि भो।
मङ्गलायतन मङ्गलमस्मिन् मङ्गलनिधे निधेहि भो।।
स्तुतग्रीवसुग्रीवमुपेहि भो।।२।।
हत्वा पापशालिनं बालिनमाजौ मुदं विधेहि भो।
निष्कण्टकं कपीश्वरराज्यं भानुसुवे किल देहि भो।।
वरग्रीवसुग्रीवमुपेहि भो।।३।।
दीनदयालो परमकृपालो कुसङ्कटं समाधेहि भो।
सार्धं तेन च गिरिधरकवये अभयदानमथ देहि भो।।
शुभग्रीवसुग्रीवमुपेहि भो।।४।।

भौमी- हनुमान जी कहते हैं–हे शंख जैसी ग्रीवा वाले श्रीराम! आप सुग्रीव के पास चलें। हे वेदपथ में निष्ठा रखने वाले प्रभु! आप मेरी पीठ पर विराजमान होकर मुझमें कुशलता का संचार कीजिए। हे भानव,

अर्थात् सूर्यवंश में उत्पन्न भानव अर्थात् सूर्यपुत्र सुग्रीव के मस्तक पर कमलकर रख दीजिए। हे प्रभु! आप नत कन्धराओं वाले सुग्रीव के पास चलिए। हे राजीवनयन! आप दुःखी सुग्रीव में सुख का संचार कीजिए। हे मङ्गलायतन अर्थात् मङ्गलों के आश्रय! हे मङ्गल के कोष श्रीराम! अब सुग्रीव में मङ्गल का संचार कीजिए और हे स्तुतग्रीव अर्थात् प्रशंसित ग्रीवा वाले श्रीराम! आप सुग्रीव के पास चलिये। युद्ध में पापी बालि का वध करके आप प्रसन्नता का आधान कीजिए और सूर्यपुत्र सुग्रीव को निष्कंटक वानरों का राज दे दीजिए। हे श्रेष्ठग्रीवा वाले प्रभु! आप सुग्रीव के पास चलिए। हे परम कृपालु दीनदयालु! इस कुसङ्कट का समाधान कीजिए और उसी के साथ **गिरिधर** कवि को भी अभयदान दे दीजिए। हे सुन्दर ग्रीवा वाले प्रभु! आप सुग्रीव के पास चलिए।

विशेष- यह गीत त्रिताल में निबद्ध है, इसे बागेश्वरी में गाएगे।

गीत संख्या-२०

कविर्गायति-

विलसति भानुसुतं गच्छन् हनूमत्पृष्ठारूढो रामः।
शाश्वतधर्मकर्मनिष्ठो परमेष्ठिगुणागूढो रामः।।
हनुमति वियति पतति रघुपतिमतिवहति भवति शोभा दिव्या।
हाटककुधरे सुरपतिमणिगिरिशिखरे श्रयति विभा नव्या।।१।।
क्वचिदथ तिष्ठति क्वचिदथ धावति क्वचिदथ तनुते विश्रामम्।
क्वचिदाश्रमयति क्वचिद् विरमयति क्वचिदारमयति श्रीरामम्।।२।।
गच्छन् मधुरमनोरथमातन्वानो राजति रघुराजः।
धुन्वानः पुच्छं धन्यो हनूमांश्च विराजति कपिराजः।।३।।
रघुपतिमुपरि परिवहन् हनूमानुपमां लभते महाकपिः।
गरुड इवोपरि वृषाकपिं गिरिधरप्रभुमास्ते वृषाकपिः।।४।।

भौमी- अब कवि स्वयं गा रहे हैं–आज सूर्यपुत्र के पास जाते हुए वैदिक धर्म और कर्म में निष्ठ एवं ब्रह्मा को भी सृष्टि रचना एवं गुण प्राप्त कराने वाले, प्रकट विग्रह योगियों को भी रमाने वाले श्रीराम, हनुमानजी के पृष्ठ पर आरूढ़ होकर अत्यन्त सुन्दर लग रहे हैं। आकाश में उड़ते हुए श्रीराम को पीठ पर धारण करते हुए हनुमानजी की दिव्य शोभा प्रकट हो रही है जो सुवर्ण के पर्वत पर विराजमान नीलमणि के पर्वत पर अद्‌भुत प्रकाश से युक्त हो रही है। कहीं हनुमानजी रुकते हैं, कहीं खड़े होते हैं, कहीं विश्राम करते हैं, कहीं प्रभु को भी थका देते हैं। कहीं उन्हें विराम कराते हैं और कहीं आत्माराम प्रभु को भी आराम कराते हैं। सुग्रीव के पास जाते हुए रघुकुल के राजा श्रीराम मधुर मनोरथ करते हुए सुशोभित हो रहे हैं और इधर वानरों के राजा हनुमानजी भी श्रीराम को पीठ पर चढ़ाए हुए पूँछ हिलाते हुए विराज रहे हैं। श्रीराम को ऊपर-ऊपर ले जाते हुए महाकपि हनुमानजी दिव्य उपमा प्राप्त कर रहे हैं। जैसे ऐसा लगता है मानों भगवान विष्णु को धारण किए हुए गरुड के ही समान **गिरिधर** कवि के प्रभु श्रीराम को पीठ पर बिठाए हुए साक्षात् शिवजी ही शोभा पा रहे हैं।

गीत संख्या-२१

अधिहरि हरिर्हरिं ददर्श।।
सलक्ष्मणमथदरग्रीवं नतग्रीवे ससुग्रीवः।
स्वधिकनकगिरिहरिविधू इव हरौ हरिर्जहर्ष।।१।।
नयनगोचरसुकृतफलमिव नरवपुर्धरमबलबलमिव।
अकलब्रह्म निसृष्टकलमिव राघवं निददर्श।।२।।
अजजपुण्यं मूर्तभूतं श्रुतिद्रविणमिव परमपूतम्।
भजनरसमथसत्प्रसूतं मानवं विममर्श।।३।।
पीतपङ्कजश्रितमिवालिं स्वगुणसत्कृतसद्भवालिम्।
राममिन्दीवरश्यामं मृशन् मनसि ततर्ष।।४।।
सन्तमिह हनुमन्तमीशं लालयन्तं जानकीशम्।
वीक्ष्य गिरिधरगीतप्रभुपदपद्ममापस्पर्श।।५।।

भौमी- हरि अर्थात् वानर सुग्रीव ने अधिहरि अर्थात् वानर श्रेष्ठ हनुमानजी के ऊपर हरि अर्थात् श्रीराम को देखा और लक्ष्मणजी के साथ शंख के समान ग्रीवा वाले श्रीराम को झुकी हुई ग्रीवा वाले हनुमानजी के ऊपर विराजमान देखकर सुग्रीव ने सोचा जैसे स्वर्ण के पर्वत पर सूर्य और चन्द्र विराजमान हैं। इस भावना से ही सुग्रीव बहुत प्रसन्न हुए। सुग्रीवजी ने श्रीराघव को नेत्रों के विषय बने हुए पुण्यों के फल के रूप में मानव शरीरधारी निर्बल के बल के रूप में सम्पूर्ण कलाओं की रचना करने वाले निर्गुण ब्रह्म के रूप में समझा और उसी प्रकार का निदर्शन किया। सुग्रीवजी ने मनुवंश में उत्पन्न श्रीराघवजी का शरीरधारी अजपुत्र दशरथ के पुण्य के रूप में परमपवित्र स्तुतियों के धन के रूप में और सन्तों में प्रकट भगवद्भजन रस के रूप में ही विमर्श किया। सुग्रीव हनुमानजी के पीठ पर बैठे हुए श्रीराम के प्रति विमर्श करने लगे। क्या यह कोई पीले कमल में बैठा हुआ भ्रमर है? जिसने अपने दिव्य-गुणों से सज्जन समूह को सम्मानित किया। इस प्रकार नीलकमल के समान श्यामल श्रीराम के प्रति विमर्श करते हुए भी सुग्रीव प्रभु के रूप के और प्यासे हो गये। इस प्रकार से सन्त प्रवर हनुमानजी को दुलारते हुए अपने ईश्वर श्रीराम को देखकर सुग्रीवजी ने **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराघव के चरणकमल का स्पर्श किया।

गीत संख्या-२२

सुग्रीव प्राह श्रीरामम्-

राघव भवतु मञ्जुमैत्री हे भवतो मया साकम्।।
यद्यप्यहं नीचयोनिश्च तिर्यङ् भवान् मनुवंशप्रसूतः श्रीसध्र्यङ्।
मिथः परमप्रीतिजनयित्री हे भवतो मया साकम्।।१।।
महतां सामान्यैः सह सङ्गमौदार्यं एतल्लक्षणसद्गुणोऽयं त्वाधितिष्ठत्यार्यम्।
परस्परप्रतीतिप्रसवित्री हे भवतो मया साकम्।।२।।

अहं भानुरौरसो भुवनविख्यातो भवान् भाग्यवशाद् भानुवंशमनुजातो।
आवयोः सम्बन्धस्मारयित्री हे भवतो मया साकम्।।३।।
गिरिधरप्रभुसुपर्णो जीवमात्रमित्रं अहं ते भवेयं सखा चैतदेव चित्रम्।
मुण्डकश्रुतिप्रमाणयित्री हे भवतो मया साकम्।।४।।

भौमी- सुग्रीव ने श्रीराम से कहा–हे राघव! आपकी मेरे साथ सुन्दर मित्रता हो जाय, यद्यपि मैं प्रभु निम्नकोटि का वानर हूँ और आप मनुवंश में प्रकट साकेतविहारिणी श्रीजी के सहचर हैं। फिर भी यह मित्रता हम दोनों के परस्पर प्रीति की जननी बनेगी। महान लोगों का अति सामान्य के साथ संगम ही औदार्य है। इस प्रकार के लक्षण वाला यह सद्गुण आपश्री में ही विराज रहा है। अतः यह मित्रता हम दोनों के पारस्परिक विश्वास को जन्म देगी। प्रभो! भाग्य से मैं सूर्यनारायण का औरस पुत्र हूँ और आप सूर्यवंश में प्रकट हुए और इस नाम से भुवन में विख्यात भी हुए। अतः हमारी आपकी ये मित्रता हम दोनों के सम्बन्ध को स्मरण कराती रहेगी। हे **गिरिधर** कवि के स्वामी! आप जीव मात्र के मित्र, श्रुतिप्रसिद्ध सुपर्ण हैं। मैं भी आप का सखा बनकर सुपर्ण हो जाऊँ, यह दार्शनिकों के लिए एक विचित्र आश्चर्यमयी घटना होगी और हमारी आपकी यह मित्रता प्रमाण के रूप में मुण्डकश्रुति को प्रस्तुत करेगी, श्रुति इस प्रकार है–

''द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।।''

(मुण्डक ३/१/१)

अर्थात् एक वृक्ष पर दो सुन्दर पक्षी बैठे हैं, दोनों एक साथ रहने वाले मित्र हैं और दोनों ने इस वृक्ष का आश्रय लिया है, उनमें से एक उस पीपल वृक्ष का फल खा रहा है और दूसरा न खाता हुआ भी प्रसन्न रह रहा है। ठीक वही परिस्थिति प्रभु आज हम आप अर्थात् राम सुग्रीव की है। मैं संसार का भोक्ता होकर भी आज दुःखी हूँ और आप निष्कासित होकर भी सुखी हैं।

सन्दर्भश्लोकः

ततो हनूमान् प्रकटय्य वह्निं सुग्रीवरामप्रणयं प्रक्लृप्तम्।
अचीकरन्मैत्रविधानयुक्तं सम्बन्धमाचार्य इवात्मभूम्नोः।।१।।

भौमी- इसके पश्चात् जिस प्रकार आचार्य जीवात्मा और परमात्मा का सम्बन्ध सिद्ध कर देता है उसी प्रकार हनुमानजी महाराज ने अग्नि प्रकट करके मित्रता के विधान के साथ श्रीराम, सुग्रीव की मैत्री करा दी।

गीत संख्या-२३

हनुमान् श्रीरामं प्रति-

रघुवर हर हर हरिवरपीडाम्।
कपिर्बालिबलशालिताडितो धत्ते ब्रणितो ब्रीडाम्।।१।।
दिवानिशं भ्राम्यति संश्राम्यति लभते नो विश्रामम्।
यत्र यत्र यात्यहो तत्र तत्रैव स तुदति निकामम्।।२।।

ब्रणयति हन्ति लत्तया लाघवमातनुते तं दीनम्।
नित्यं निराकरोति नृशंसस्तिष्ठति न समीचीनम्।।३।।
नो भुङ्क्ते स दिवा दिवसेश्वरसुतो निशि न निद्राति।
गिरिधरप्रभौ स्थिते धनदेशे कोऽप्यधनो दरिद्राति।।४।।

भौमी- अब हनुमानजी श्रीराम के प्रति कहते हैं-हे रघुश्रेष्ठ श्रीराघव! आप वानरश्रेष्ठ सुग्रीव की पीड़ा हर लीजिये। ये बलशाली बालि से पिटे हुए शरीर में बहुत से घावों और लज्जा को धारण कर रहे हैं। अहो! सुग्रीव दिन-रात भागते रहते हैं—थकते रहते हैं, एक भी क्षण विश्राम नहीं पाते, सुग्रीवजी जहाँ-जहाँ जाते हैं, वही-वहीं बालि इन्हें बहुत पीटता है। हे प्रभु! सुग्रीवजी को बालि घायल कर देता है, लात से मारता है। इनके साथ अत्यन्त हल्का व्यवहार करता है। दीन सुग्रीव को सदैव अपमानित करता रहता है और यह नृशंस बालि सुग्रीवजी के साथ सुन्दर बर्ताव नहीं करता। सूर्य के पुत्र सुग्रीव दिन में न भोजन करते हैं और न ही रात में नींद लेते हैं। अहो! **गिरिधर** कवि के प्रभु कुबेर के भी ईश्वर! आप श्रीराघव के स्थित होने पर भी कोई दरिद्र दुर्गति को प्राप्त कर रहा है।

गीत संख्या-२४

राम बालिनं त्वरितं जहि जहि।
तं चरित्रहीनं मा मर्शय दर्शय रुषं क्षमां कुरु नहि नहि।।१।।
हे मर्यादापुरुषोत्तम मर्यादामार्यावर्ते दर्शय।
मैनमनुजभार्याभिमर्शिनं स्वनुजमृषाश्रुं क्षणमपि मर्शय।।२।।
एकविशिखलक्षं कृत्वा धर्मध्वजिनं पशुमारं मारय।
संस्कारय भारतीं प्रजामथ दीनबन्धुविरुदं विस्तारय।।३।।
सीतापते पतितपावन पतिताननेकशः प्रसमुद्धारय।
झटिति गिरिधरं कविं धनुर्धरदुस्तरभवसागरतस्तारय।।४।।

भौमी- हे श्रीराम! बालि को अत्यन्त शीघ्र मार डालिए, मार डालिए। उस चरित्रहीन को मत क्षमा कीजिए। क्रोध का प्रदर्शन कीजिए। उसे कभी भी क्षमादान मत कीजिए। हे मर्यादा पुरुषोत्तम प्रभु! इस आर्यावर्त में मर्यादा के दर्शन कराइये। हे सुन्दर अनुज वाले श्रीराम इस छोटे भाई की पत्नी का अभिमर्शन करने वाले इस दुष्ट को कभी क्षमा मत कीजिए। एक ही बाण का लक्ष्य बनाकर इस धर्मध्वजी को पशु की भाँति मारिये और उससे भारत की प्रजा को संस्कृत कीजिए तथा दीनबन्धुरूप विरुद का विस्तरण कीजिए। हे सीतापते, हे पतितपावन! अनेक पतितों का उद्धार कीजिए। हे धनुर्धर! इस **गिरिधर** कवि को भी दुस्तर भव-सागर से पार कर दीजिए।

गीत संख्या-२५

सुग्रीवेण समं भवतस्त्वनादिः परिचयः।
न जीवेन सह भवतस्तु सादिः परिचयः।।

जन्मजन्मनां त्वदीयोऽस्ति जीवः किङ्करः।
किन्तु विसस्मार मूढो माययात्वकङ्करः।।
नैव ततस्त्वया त्याज्य कृपा सुसञ्चयः।।१।।
द्वौ सुपर्णौ सहायौ सखायौ श्रुतौ।
श्रुत्यागीतावुभौ तरुश्लेषान्वितौ।।
एकोऽभुक्त्वाऽप्यभयो ह्यन्यो भुक्त्वाऽसद्भयः।।२।।
जीवो दासो भवान् स्वामी रघुनायकः।
जीवो नेयो भवान्नेताऽमोघसायकः।।
जीवयत्वेनमीशः सुदृढनिश्चयः।।३।।
जीवो भिक्षुर्भवान्दानी सत्यव्रतः जीवः।
पाल्यो भवान् पालकः शाश्वतः।।
गिरिधरेऽपि प्रयोज्यो निजो निर्णयः।।४।।

भौमी-हे प्रभु! सुग्रीव के साथ आपका अनादि परिचय है क्योंकि जीव के साथ आपका परिचय सादि हो ही नहीं सकता है। यह जीव जन्म-जन्म से आपका सेवक है क्योंकि यह मूर्ख माया के कारण आपको भूल गया, इसीलिए दुःखी हुआ। इसलिए कृपा का सुन्दर चयनकर्ता जीव आपके द्वारा त्याज्य नहीं है। श्रुति ने ब्रह्म और जीव दोनों को सुन्दर दो पक्षियों की भाँति सहायक और सखा मानकर प्रतिपादित किया और दोनों को श्रुति ने समान रूप से वृक्ष पर आलिङ्गित बताया और एक कुछ भी न खाकर अभय है और दूसरा भोगता हुआ भी सभय है। जीव दास है और रघुकुल के नायक आप स्वामी हैं। जीव नेय है और अमोघ बाण वाले आप नेता अर्थात् नायक हैं। इसलिए सुदृढ़ निश्चय वाले आपश्री ईश्वर इस जीव को जिलाते रहिये। जीव भिक्षुक है, आप सत्यव्रत दानी हैं, जीव पालनीय है, आप शाश्वत पालक हैं। इसलिए **गिरिधर** कवि पर भी आप इसी अपने निर्णय का प्रयोग कीजिए।

गीत संख्या-२६

स्मर स्मर राम जीवसम्बन्धम्।
करुणाकन्दमुकुन्दद्वन्द्वं दमय निचितनिर्बन्धम्।।
जीवो व्याप्यस्त्वमसिव्यापको जीवोऽणुस्त्वं भूमा।
जीवः सीमा सङ्कीर्णस्त्वमसीमः सद्गुणसीमा।।१।।
जीवोऽल्पज्ञस्त्वं सर्वज्ञो दासोऽयं त्वं स्वामी।
जीवो माया परिच्छिन्नकस्त्वममायोऽन्तरयामी।।२।।
जीवः पुत्रस्त्वमसि पिता खलु जीवोऽर्भस्त्वं माता।
जीवो पाल्यस्त्वं पाता जीवो ध्येयस्त्वं धाता।।३।।

जीवब्रह्मविविधसम्बन्धान् त्वं स्मर भक्तान् स्मारय।
सुग्रीवं गिरिधरं धनुर्धर मा मारय मा तारय।।४।।

भौमी- हे श्रीराम! आप अपने और जीव के सम्बन्ध का स्मरण कीजिए। हे करुणा के बादल मुकुन्द! आप हठ का संग्रह किये हुए द्वन्द्व का दमन कीजिए। जीव व्याप्य है, आप व्यापक हैं, जीव अणु है आप भूमा हैं, जीव सीमाओं में बँधा है आप सभी सीमाओं से परे हैं। जीव अल्पज्ञ है, आप सर्वज्ञ हैं, जीव दास है, आप स्वामी हैं जीव माया से परिछिन्न है, आप माया से परे अन्तर्यामी हैं। जीव पुत्र है आप पिता हैं, जीव शिशु है आप माता हैं। जीव रक्ष्य है आप रक्षक हैं, जीव धारणीय है आप धारण करने वाले हैं। जीव-ब्रह्म के बीच अनेक सम्बन्ध हैं, हे प्रभु! आप स्मरण भी करें और भक्तों को भी स्मरण करायें। अतः हे धनुर्धर! सुग्रीव वानर को और **गिरिधर** कवि को मत मारिये और न ही तारिये अर्थात् अपनी सेवा में लगाए रखिये।

गीत संख्या-२७

सुग्रीवं प्रति श्रीहनुमान्-

न रामं विस्मर भो सुग्रीव।
कृतं सदा स्मर सीताभर्तुर्मा भव किमपि कृतघ्नो जीव।।
एकशरेण निहत्य बालिनं त्वां व्यदधात् वानरकुलराजम्।
अभयमदात् तुभ्यं स राघवः कृतवान्नङ्गदमपि युवराजम्।।१।।
चातुर्मास्य कृते प्रवर्षणं गतो भवत्यपि करुणां वर्षति।
धिक् कृतघ्नचूडामणिमभिकं त्वां तथापि नो भयमाकर्षति।।२।।
प्रतिश्रुत्य विस्मृत्य रामकार्यं निर्भयः सुखं त्वं शेषे।
पश्यन्नपि हरिशरपराक्रमं हरे अरे नासौ संशेषे।।३।।
गच्छ शरणमथ रघुकुलकेतुं क्षामय रामं क्षमासागरम्।
गिरिधरेशगुणमपि गायन् छिन्ध्यविलम्बं भवविषयबागुरम्।।४।।

भौमी- सुग्रीव के प्रति श्रीहनुमानजी कह रहे हैं-हे सुग्रीव! श्रीराम को मत भूलो, सीतापति श्रीराम के किये हुए उपकार का स्मरण करो और हे जीव! श्रीराम के प्रति कृतघ्न मत बनो। एक बाण से बालि को मारकर प्रभु ने तुमको वानर कुल का राजा बनाया तुम्हें अभय दान दिया और अंगद को युवराज बनाया। प्रभु चातुर्मास के लिए प्रवर्षण पर्वत पर चले गये, वहाँ से भी वे तुझ पर करुणा की दृष्टि कर रहे हैं परन्तु कृतघ्न शिरोमणि, कामी, तुम सुग्रीव को धिक्कार है कि इतने पर भी तुम्हारा मन प्रभु पर आकृष्ट नहीं हो रहा है। तुम प्रतिज्ञा करके भी श्रीराम कार्य को भूलकर, निर्भय होकर, सुखपूर्वक सो रहे हो। तुम श्रीराम के बाण का पराक्रम देखते हुए भी अरे वानर! प्रभु श्रीराम मनुष्य हैं, इस प्रकार का संशय कर रहे हो। शीघ्र ही रघुकुल के श्रीराम के शरण में जाओ, कृपा के सागर श्रीराम से क्षमा माँगो और **गिरिधर** के प्रभु श्रीराम का गुण गाते हुए शीघ्र ही संसार के विषय जाल को काट डालो।

सन्दर्भश्लोकः

निशम्य वाक्यं पवनात्मजस्य प्रबोधितः पूर्वमहीश्वरेण।
यथा प्रबुद्धः शरणं शरण्यं जगाम रामं समुवाच चेत्थम्।।१।।

भौमी–इस प्रकार हनुमानजी का वाक्य सुनकर इसके पूर्व लक्ष्मणजी के द्वारा जगाये गये सुग्रीव सावधान होकर शरण देने वाले प्रभु श्रीराम की शरण में गये और इस प्रकार बोले–

गीत संख्या–२८

राम राघव राम राघव राम राघव त्राहि माम्।
राम माधव राम माधव राम माधव माहि माम्।।
पाहि पार्वणविमलविधुमुख सततसुखसीतापते।
पाहि पाहि परेश हे करुणासुखार्णव पाहि माम्।।१।।
जन्मतः पशुयोनिपामरपापिनं किल पामनम्।
पालय प्रभविष्णुदोर्भ्यां कलितलाघव पाहि माम्।।२।।
विषयसुखकीलाललालसमत्स्यमनसमवेहि माम्।
धेहि शिरषि कराम्बुरुहमथ गदितगौरव पाहि माम्।।३।।
मा रुषं व्रज मन्युमात्यज भावभृद् भज कारुणिम्।
कामकलुषितकालकूटात् केश केशव पाहि माम्।।४।।
क्षामये क्षामः क्षमापं मत्कृतान्यागांस्यहम्।
गिरिधरेश विशुद्धवैभव भग्नरौरव पाहि माम्।।५।।

भौमी– हे रघुकुल में प्रकट श्रीराम! मेरी रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए। हे चैत्रमास में प्रकट मायापति श्रीराम! मुझे अपने में समाहित कर लीजिए। हे पूर्णचन्द्र के समान मुखवाले! निरंतर सुख स्वरूप सीतापति श्रीराम! आप मेरी रक्षा कीजिए। हे परमेश्वर! मेरी रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए। हे करुणा सुख के समुद्र! मेरी रक्षा कीजिए। जन्म से पशु योनि में वर्तमान, नीच पापी और विषय के फोड़ों से युक्त मुझ सुग्रीव को आप अपनी समर्थ भुजाओं से पालिए। हे हस्तलाघव सम्पन्न प्रभु! मेरी रक्षा कीजिए। हे राघव! मुझ सुग्रीव को विषयसुख रूप जल की लालसा में डूबे मछली के समान मन वाला समझिए। इसलिए मेरे सिर पर करकमल रखिये। हे विख्यात गौरव सम्पन्न प्रभु! मेरी रक्षा कीजिए। हे विशुद्ध वैभव वाले, हे भक्तों का रौरव नष्ट करने वाले श्रीराघव! मैं दुर्बल सुग्रीव पृथ्वीपति आप श्रीराघव से अपने किये हुए अपराधों को क्षमा करा रहा हूँ। हे **गिरिधर** कवि के स्वामी प्रभु! राघव मेरी रक्षा कीजिए।

गीत संख्या–२९

वानराः श्रीरामं प्रति–

दनुजारे राम खरारे हे कपिकटकं द्रुतं निदिश्यतां जनकसुताया अन्वेषणे।
यदि पातालं नीता सीता दशमौलिना दयालो।।

यदि वा नभस्तदानेष्यामस्तरषाक्षिद्य कृपालो प्रभो हे।
तरषाक्षिद्य कृपालो असुरारे कुणपखलारे हे।।
बलमस्मत् कृतेऽभिदिश्यतां जनकसुताया अन्वेषणे।।१।।
यदि सीता नीताऽसुरसदनं कुटिलरक्षसा श्रीमन्।
यदि वा मेरुगुहायां पिहिता आनेतास्मो भूमन् ताटकारे सुभुजबलारे हे।।
सानन्दं दलमादिश्यतां जनकसुताया अन्वेषणे।।२।।
दिशि दिशि यामस्तां मृगयामो मृगीदृशं ते भार्यां।
आनेष्यामो द्रुतमौषधिमिव मा मा शोचीरार्यां दुष्पारे वनकूपारे हे।।
हनुमानथ मुदा प्रदिश्यतां जनकसुताया अन्वेषणे।।३।।
भवत्प्रतापा विगलिततापा कपयः शूराः वीराः।
कोटि कोटिरावणान्निहन्तुं क्षमामहे रणधीराः सुखसारे गिरिधराधारे हे।।
निजसैन्यं प्रभो प्रविश्यतां जनकसुताया अन्वेषणे।।४।।

भौमी- आये हुए सभी वानर अब श्रीराम के प्रति कहते हैं। हे दनुकुल में उत्पन्न दानवों के शत्रु, हे श्रीराम खर नामक राक्षस के शत्रु! आप जनकनन्दिनी सीताजी के अन्वेषण में वानर सेना को निर्दिष्ट कीजिए। यदि रावण के द्वारा सीताजी पाताल में ले जायी गयी हों अथवा आकाश में तो भी हम रावण के हाथों से बलपूर्वक छीनकर ले आयेंगे। हे असुरों के शत्रु, हे शरीर पोषक खलों के विनाशक! सीताजी के अन्वेषण में लगे हम वानरों में अपने बल का संचार कीजिए। हे श्रीमन्! यदि कुटिल राक्षस सीताजी को देवलोक में ले गया हो अथवा उन्हें सुमेरु पर्वत के गुफा में बंद कर दिया हो तो भी हम उन्हें ले आयेंगे। हे ताड़का के शत्रु, हे सुबाहु के नाशक! आप आनन्दपूर्वक वानरसेना को आदेश करें कि हम सीताजी की खोज करें। हे प्रभो! हम आपकी मृगनयनी धर्मपत्नी सीताजी को प्रत्येक दिशा में ढूँढेंगे और सर्वत्र जायेंगे। हम औषधि की भाँति उन्हें ढूँढ कर शीघ्र लायेंगे। आप भार्या के प्रति शोक न करें। अतः आप जनकनन्दिनीजी का अन्वेषण करने के लिए, अपार जल सागर को पार करने के लिए तो हनुमानजी को ही निर्देश दीजिए। हे परमात्मा! आपके प्रताप से युक्त, सभी तापों से रहित युद्ध में स्थिर, हम शूरवीर वानर करोड़ों-करोड़ों रावणों को मारने में समर्थ हो रहे हैं, इसलिए हे राघवेन्द्र! सीताजी के अन्वेषण में तत्पर, सुख के तत्व आपकी कृपा से युक्त गिरिधराधार अर्थात् **गिरिधर** कवि की आश्रय रूप तथा **गिरिधर** अर्थात् पर्वत को धारण करने वाले हनुमानजी जिसके आश्रय हैं, ऐसी आपकी वानरी सेना में आप श्रीराघव सरकार स्वयं प्रवेश करें।

गीत संख्या-३०

श्रीरामः मुद्रिकां प्रयच्छन् हनुमन्तं प्रति-

अञ्जनाकुमार हे पवनमनश्चन्दन हे श्रृणु श्रृणु वत्स महावीर मनागत्रागच्छ।
त्वमेवासि मम नावः कुशलः कैवर्तको हे परमप्रवीर रणधीर मनागत्रागच्छ।।१।।
मत्तो वत्स गृहाण त्वं करलग्नमुद्रिकां खेलया प्रयाहि दक्षिणवेलां सामुद्रिकाम्।
त्रायस्व विरहवारिराशेर्निजमातरं करुणाकलितमतिधीर मनागत्रागच्छ।।२।।

कोटिकोटितपनसुतपनीयविग्रहनिराग्रह सिद्धमुनिसाधुसुरानुग्रह।
महाबलिन् बलशालिनवैर्यतन्त्रीमालिन् हे जातरूपपर्वतशरीर मनागत्रागच्छ।।३।।
मम मुद्रिकां समर्प्य मोदराकारजनीं विरहज्वलनतो निवारय स्वजननीम्।
लङ्कातङ्कहेतो रक्षोवनधूमकेतो हे बलवेगब्रीडितसमीर मनागत्रागच्छ।।४।।
लङ्घयस्व महासिन्धुं कौतुकेन शत्रुहन् गिरिधरप्राणधन ज्ञानघन हनूमन्।
बालब्रह्मचारिन् भक्तभीमभयहारिन् हे विधिहरिहररूपवीर मनागत्रागच्छ।।५।।

भौमी- अब श्रीराम मुद्रिका देते हुए हनुमानजी से कह रहे हैं–हे अन्जना के पुत्र, हे पवन के मन को आनन्दित करने वाले, हे वत्स महावीर! सुनो, सुनो! तनिक यहाँ तो आओ। हे परमश्रेष्ठ वीर, हे रणधीर हनुमान! तुम्हीं मेरी नैया के कुशल खेवैया हो। हे वत्स! मेरी उंगली में लगी हुयी इस मुद्रिका को ले लो और खेल–खेल में दक्षिण सागर के तट पर जाओ और हे करुणा से युक्त, धीरबुद्धि वाले हनुमान, विरह सागर से अपनी माँ की रक्षा कर लो। हे करोड़ों सूर्यों के समान तेजस्वी स्वर्ण विग्रह! आग्रहरहित सिद्ध मुनि, साधु और देवताओं के आशीर्वाद स्वरूप स्वर्ण पर्वत के समान शरीर वाले हनुमान थोड़ा यहाँ आओ। मेरी मुद्रिका सौंपकर प्रसन्नता की पूनम की रात्रि स्वरूप अपनी माँ को विरह की अग्नि से बचा लो। हे लंका के आतंक के हेतु राक्षसों के वन को जलाने के लिए अग्नि के समान और वेग से वायु को लज्जित करने वाले आञ्जनेय! थोड़ा यहाँ आओ। हे शत्रुनाशक! तुम खेल–खेल में सागर लाँघ जाओ। हे **गिरिधर** कवि के प्राणधन, हे ज्ञान के मेघ, हे हनुमान, हे बालब्रह्मचारिन्, हे भक्तों का भय हरने वाले, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र स्वरूप हनुमान! थोड़ा यहाँ आओ।

विशेष- यह गीत इस ग्रन्थ के रचयिता के ही एक प्रसिद्ध भोजपुरी रचना का छायानुवाद जैसा है। इसका बोल है–

''अंजना के वारे हे दुलारे पवन देवता के सुना बेटवा वीर हनुमान तनी हेन्ने आवा।''

गीत संख्या-३१

हनूमन्तं नियुञ्जे हनुमन्तम् सीतान्वेषणे नियुञ्जे भवन्तम्।।
परन्तपं तपनीयपर्वतशरीरं महारणधीरं कोटिसागरगम्भीरम्।
सूरं सन्तं नियुञ्जे बलवन्तं सीतान्वेषणे नियुञ्जे भवन्तम्।।१।।
चलालोलल्लाङ्गूलभीतमहाकालम् ।
प्रलयज्वालामालाकरालं कालकालम्।।
वीर्यवन्तं नियुञ्जे दमवन्तम्।।२।।
महावैयाकरणं कोटिकाव्यकलासिन्धुम्।
रामायणगाथारतिं रामभक्तबन्धुम्।।
बुद्धिमन्तं नियुञ्जे गुणवन्तम्।।३।।
परमभागवतं ज्ञानगुणगणसमुद्रम्।

मन्मथमथनमूर्ध्वरेतसं समुद्रम्।।
भक्तिमन्तं नियुञ्जे शमवन्तम्।।४।।
जनकसुताविरहवार्धिपोतं प्रेमपूतम्।
गिरिधरकवेश्चजीवजीवातुभूतम् ।।
महावीरं नियुञ्जे दयावन्तम्।।५।।

भौमी- मैं तुम बलवान हनुमान को सीताजी के अन्वेषण में नियुक्त कर रहा हूँ। शत्रुओं के तापक और सुवर्ण पर्वत के समान शरीर वाले महारणधीर, करोड़ों सागरों के समान गंभीर, शूरवीर, तुम संत हनुमान को मैं सीताजी की खोज में लगा रहा हूँ। बिजली के समान चंचल लांगूर से महाकाल को भी भयभीत करने वाले, प्रलय-कालीन अग्नि ज्वालाओं की माला के समान भयंकर और कालों के भी काल परमपराक्रमी, तुम हनुमान को सीताजी के अन्वेषण में लगा रहा हूँ। मैं महावैयाकरण, करोड़ों काव्यकलाओं के सागर, रामायण की गाथा में तत्पर और मुझ राम के भक्तों के एक मात्र बान्धव, बुद्धिमान, तुम हनुमान को सीताजी के अन्वेषण में नियुक्त कर रहा हूँ। मैं परमभागवत ज्ञान और गुणों के सागर काम के विजेता ऊर्ध्वरेता मेरी मुद्रिका से युक्त परम भक्तिमान तुम हनुमान को सीता की खोज में लगा रहा हूँ। जनकनंदिनी सीता के लिए जलयान स्वरूप, प्रेम से पवित्र और **गिरिधर** कवि के जीवात्मा की महौषधि स्वरूप महावीर तुम हनुमान को सीता के अन्वेषण में नियुक्त कर रहा हूँ।

विशेष- यह गीत एक विशुद्ध कवि कल्पना प्रसूत अवधी लोकधुन की ढाल पर निबद्ध है, इसका बोल है-

''हनुमनऊं हमार हनुमनऊं तू त बाट बड़ा बलवनऊ।''

गीत संख्या-३२

कविर्गायति-

रघुवीरनिदिष्टो वानरः।।
समधिमुखं प्रणिधाय मुद्रिकां क्रम्यमानमहासागरः।
नत्वा प्रभुं प्रतस्थे प्रथमः सबलो गुणगणनागरः।।१।।
मृगयन् मृगीदृशं गिरिगह्वरगहनगुहासु सुगुणाकरः।
वार्तामलभमान उद्विग्नो विकलो धृतदृङ्निर्झरः।।२।।
स्वयम्प्रभाप्रेषित उपवारिधितीरं तरणिभयङ्करः।
अश्रौषीत् सम्पातिमुखात् सीतोदन्तं जितशङ्करः।।३।।
ऋक्षराजबोधितवीर्यः सुप्तोत्थित इव कपिसुन्दरः।
गिरिधरप्रभुं मनसि विभ्राणो मुमुदे मोदितश्रीधरः।।४।।

भौमी- अब कवि स्वयं गा रहे हैं। श्रीराम के द्वारा निर्दिष्ट वानर श्रेष्ठ हनुमानजी महाराज अपने मुख में मुद्रिका लेकर महासागर को लाँघते हुए अत्यन्त बलवीर गुणगणों में चतुर, श्रेष्ठ हनुमानजी प्रभु को प्रणाम

करके प्रस्थान किए। मृगनयनी सीताजी को पर्वत वन गुफाओं में ढूँढते हुए उनका समाचार न पाकर उद्विग्न गुण की खान हनुमानजी के भी नेत्रों से अश्रु का झरना चल पड़ा। सूर्यनारायण को भी भय देने वाले शिवजी को भी जीतने वाले श्रीहनुमानजी ने स्वयंप्रभा द्वारा सभी वानरों सहित समुद्र के तट पर प्रेषित होकर सम्पाती के मुख से सीताजी का सम्पूर्ण समाचार सुना। जाम्बवान के द्वारा अपने पराक्रम का स्मरण कराये जाने पर वानरों में सुन्दर हनुमानजी सोकर उठे हुए की भाँति मन में **गिरिधर** प्रभु के ईश्वर श्रीराम को धारण करते हुए प्रसन्न हुए और भगवान राम को भी प्रसन्न कर लिया।

विशेष- यह गीत त्रिताल में निबद्ध है, इसे वागेश्री में गाना चाहिए।

गीत संख्या-३३

वानराः दृष्टवन्यप्राणिनः प्रति-

क्वास्ते सीता प्रणीता कुणपमौलिना काननप्राणिभिर्निर्भयं भण्यताम्।
चेद् विदुर्वेदनीयां भवन्तः सतीं शास्त्रसंज्ञानिभिर्निर्भयं भण्यताम्।।१।।
रामपत्नी परेशानुगा भामिनी देहशोभाविजितसौम्यसौदामिनी।
चेत् प्रदिष्टा सुदृष्टा सुखं जीविता साधकध्यानिभिर्निर्भयं भण्यताम्।।२।।
तापसाश्चैव सिद्धा सुसन्न्यासिनः वानप्रस्थाः विरक्तास्तथा न्यासिनः।
चेद् विदुर्वै भवन्तो विदेहात्मजां कारुणी दानिभिर्निर्भयं भण्यताम्।।३।।
नैव सीतामदृष्ट्वा व्रजामो वयं व्याकुलाः प्राणनाशां त्यजामो वयम्।
गिरिधरस्वामिनी चेत् समाश्वासिता संविदामानिभिर्निर्भयं भण्यताम्।।४।।

भौमी- वानर वन्य-प्राणियों के प्रति सम्बोधित करके गाते हैं। राक्षसों द्वारा चुरायी हुई सीताजी कहाँ हैं? हे वन के प्राणियों! निर्भय होकर बताओ। यदि शास्त्रज्ञ लोगों द्वारा जानने योग्य साध्वी सीताजी को आप लोग जानते हैं तो निर्भय होकर बताइए। श्रीराम की धर्मपत्नी परमेश्वर श्रीराम का अनुगमन करने वाली, शरीर की शोभा से शान्ति, विद्युत प्रभा को जीतने वाली, जनकनन्दिनीजी को यदि आप लोगों ने सुखपूर्वक स्थित और जीवित देखा हो तो हे साधकों! हे ध्यानियों! आप निर्भय होकर बताएँ। हे तपस्वियों, हे सिद्धों, हे संन्यासियों, हे वानप्रस्थों, हे गृहस्थों, हे वैष्णव शरणागतों! यदि आप लोग जनकनन्दिनी सीताजी को जानते हों तो करुणा का गान करने वाले आप सब निर्भय होकर बता दें। बिना सीताजी के दर्शन किए, हम नहीं लौटेंगे और व्याकुल होकर हम अपनी जीवन की आशा को छोड़ देंगे। यदि **गिरिधर** कवि की स्वामिनी सीताजी आप लोगों के द्वारा मधुर वाक्यों से आश्वस्त की गयी हों तो हे मानरहित महानुभावों! आप निर्भय होकर बता दें।

गीत संख्या-३४

जाम्बवान् हनूमन्तं प्रति-

हनुमन् किं त्वं तूष्णीं तिष्ठसि।
जरठ इवैकान्ते किं शान्तः सुप्तोत्थित इव किं त्वं तिष्ठसि।।१।।
कोटिकोटिशतकीशवाहिनीं विकलां पश्यन् किं त्वं तिष्ठसि।

नो गर्जसि नो खलांस्तर्जयसि श्रुतिं वेपयन् किं त्वं तिष्ठसि।।२।।
भुजबलशक्तिपरीक्षणसमये गतप्राण इव किं त्वं तिष्ठसि।
स्वल्पस्नेह इवाहर्दीपः कुनिर्वाण इव किं त्वं तिष्ठसि।।३।।
तपनमण्डलग्रसनस्वसनज सुम्रियमाण इव किं त्वं तिष्ठसि।
गिरिधरहृदयभूधरे गिरिधरविनिद्राण इव किं त्वं तिष्ठसि।।४।।

भौमी- अब जाम्बवान हनुमान से कह रहे हैं–हे हनुमान! तुम चुपचाप क्यों बैठे हो? तुम बुद्धि की भाँति एकान्त में क्यों शान्त बैठे हो? तुम सोकर उठे की भाँति क्यों चुपचाप बैठे हो। करोड़ों–करोड़ों की संख्या में इकट्ठी वानरी सेना को विकल देखते हुए भी तुम क्यों बैठे हो? अरे! अमावस्या की रात्रि के सागर की भाँति तुम शांत तरंग होकर क्यों बैठे हो? सभी वानरों के पराक्रमहीन हो जाने पर तुम स्वयं लज्जित होते हुए से अपने बल को लज्जित करते हुए क्यों बैठे हो? न गरज रहे हो, न दुष्टों को डरा रहे हो और न ही अपनी गर्जना से किसी के कान कँपा रहे हो। तुम क्यों इस प्रकार निश्चेष्ट बैठे हो? अपने भुजबल और शक्ति की परीक्षा के समय तुम अल्पप्राण के समान क्यों बैठे हो और थोड़े से तेल वाले बुरी प्रकार से बुझ रहे दिन के दीपक की भाँति तुम क्यों बैठे हो? अरे! सूर्यमण्डल को ग्रसने वाले वायु पुत्र! आज तुम मर रहे प्राणी की भाँति क्यों बैठे हो? हे पर्वतधारी हनुमान! **गिरिधर** कवि के हृदयरूप पर्वत पर सोते हुए से क्यों बैठे हो?

गीत संख्या-३५

हनूमान् जाम्बवन्तं प्रति प्रकटितरौद्ररूपः-

जयति दशवक्त्रकुञ्जरतरुणकेसरी रामचन्द्रो धनुर्बाणधारी।
भानुजागर्भदुग्धाब्धिशारदशशी भक्तपरितापसन्तापहारी।।१।।
जयति दशवदनवदनासृगुक्षणविचक्षणचलत्काण्डखरचण्डचण्डी।
चण्डिकाचण्डिकेश्वरविनोदव्रती दुष्टदशमौलिदशमौलिखण्डी।।२।।
जयति सौमित्रिसीतानुचररजनिचरनिकरखलखर्वगर्वप्रहर्ता।
नीलमणिनीरदश्याम रामारमण रामभद्रो भुवो भारहर्ता।।३।।
जयति बलिबालिसङ्कटनतग्रीवसुग्रीवशोकाटवीधूमकेतुः।
खरत्रिशिरदुष्टदूषणविराधक्षपणनीचमारीचनिर्वाणहेतुः।।४।।
पारेपाथोधि गत्वा दशास्यं च हत्वा द्रुतं मैथिलीमानयेयम्।
एतद् वेगेन मारुतगतिर्वीर्यवान् योजनानां सहस्त्रं व्रजेयम्।।५।।
हत्वा परदारहर्तारमुग्रं खलं लङ्कानगरं किमिह सन्निधेयम्।
शाधि मां जाम्बवन् गिरिधरस्वामिना हनुमता हन्त किं वा विधेयम्।।६।।

भौमी- अब रौद्ररूप प्रकट करके हनुमानजी जाम्बवान से कहते हैं–कौसल्याजी के गर्भ रूप क्षीरसागर के शरदकालीन चन्द्रमा, भक्तों का परिताप और सन्ताप हरने वाले रावणरूप हाथी का वध करने के लिए युवकसिंहस्वरूप धनुर्बाणधारी श्रीरामचन्द्रजी की जय हो। रावण के दशोमुखों से निकल रहे रक्त के स्नान में

कुशल चंचल बाण से युक्त एवं दुष्टों पर उद्दीप्त, क्रोध से परम क्रुद्ध, चण्डिका और चण्डिकापति शिव के विनोद का व्रत लेने वाले अर्थात् उन्हें प्रसन्न करने वाले, दुष्ट रावण के दशों सिरों का अनेक बार खण्डन करने वाले प्रभु राम की जय हो। लक्ष्मणजी एवं सीताजी से सेवित, राक्षस समूह और निम्नकोटि के खल प्रवृति वाले सागर के उत्तरतट-वासी प्राणियों के गर्व को हरने वाले, नीलमणि और नीले मेघ के समान श्यामल, भू-भारहारी सीतारमण श्रीरामभद्र की जय हो। बलवान बालि के संकट से झुकी हुई ग्रीवा वाले सुग्रीव के दुःखरूप वन को जलाने के लिए अग्निस्वरूप खर, त्रिसिरा, दुष्ट दूषण तथा वीराध का वध करने वाले और नीच मारीच को मोक्ष देने वाले प्रभु राम की जय हो। मैं इसी वेग से वायु के समान चलता हुआ सौ योजन दौड़ सकता हूँ और समुद्र के पार जाकर रावण को मारकर सीताजी को ला सकता हूँ। क्या परदारहर्ता उग्र खल रावण का वध करके लंका नगर को यहाँ ला दूँ। हे जाम्बवान! आप मुझे शिक्षा दीजिए, **गिरिधर** कवि के स्वामी हनुमान के द्वारा आज क्या किया जाय?

गीत संख्या-३६

जाम्बवान् हनुमन्तं प्रति-

महावीर सीतापार्श्वं गच्छ।
कुतुकतो वारिधिं तीर्त्वा रामपत्नीं रक्ष।।
शिवास्ते पन्थान ईड्या सन्तु सन्मङ्गलसमीड्या।
सन्तु कौणपभटापीड्या सफलतामधिगच्छ।।१।।
रामभद्रभविष्णुकृपया गोष्पदायतु युतस्त्रपया।
सागरो गुणसागरस्य सदा शुभान्यनुगच्छ।।२।।
शत्रवस्ते सखीयन्तां बुद्धिविभवा महीयन्ताम्।
कौशलान्यपि न हीयन्तां मङ्गलं परिगच्छ।।३।।
पश्य सीतां रिपून्नीतां सङ्गमय रामेण प्रीताम्।
ब्रूमहे पुण्याहवाचं सुखी पुनरागच्छ।।४।।
रामबाणानलपतङ्गा सन्तु कुणपा समररङ्गा।
कपे सुन्दररामभक्तिं गिरिधराय प्रयच्छ।।५।।

भौमी- अब जाम्बवान हनुमान से कहते हैं-हे महावीर! आप सीताजी के पास जाइये, आप खेल-खेल में सौ योजन सागर को लाँघकर श्रीराम की धर्मपत्नी सीताजी की रक्षा कीजिए। आपके मार्ग, श्रेष्ठ मंगलों से युक्त होकर, स्तुति के योग्य और कल्याणकारी हों और राक्षस भी आपसे पीड़ित हों। आप सफलता प्राप्त करें। भगवान श्रीराम की भविष्णु कृपा से लज्जा से युक्त यह सागर आपके लिए गोष्पद अर्थात् गौ खुर के समान हो जाय। आप गुणसागर श्रीराम के शुभ चरित्रों का अनुगमन करें और सीताजी के पास जायें। हे हनुमानजी! आपके शत्रु भी आपके मित्र बन जायें और बुद्धि-वैभव सम्पन्न लोग आपकी पूजा करें। आपको कुशलताएँ कभी न छोड़ें और आप चारों ओर से मंगल प्राप्त करें। हे हनुमानजी! शत्रु द्वारा हरण की हुई सीताजी के आप दर्शन करें और परमप्रीतिमती सीताजी को श्रीराम से मिलायें, हम आपका पुण्याहवाचन कर रहे हैं। आप

सुखपूर्वक कार्य सम्पन्न करके फिर लौट आयें। हे सुन्दर कपि! राक्षस लोग समरांगण में आकर श्रीराम के बाणाग्नि के पतंगे बन जायँ और आप गीतरामायण के प्रणेता **गिरिधर** कवि को श्रीराम भक्ति प्रदान करें।

उपसंहारश्लोकः

गत्वा लङ्कां त्वत्कृतानीकपङ्काम्
हत्वा संख्ये रावणं चण्डचापः।
लब्ध्वा सीतां जातवेदो विशुद्धाम्
जीयाद्रामो गीतसीताभिरामः।।१।।

भौमी–अब कवि इस काण्ड का उपसंहार श्लोक प्रस्तुत करते हैं। जाम्बवानजी आशीर्वादात्मक मंगलाचरण कर रहे हैं–हे हनुमान! आपके द्वारा जिसमें सेना को कीचड़ के समान मसल दिया जाना है, ऐसी लंका पर आक्रमण करके युद्ध में तीक्ष्ण धुनष से छोड़े बाणों से रावण का वध करके पुनः अग्नि में पवित्र सीताजी को प्राप्त करके श्रीअवध को लौट रहे गीतसीताभिराम भगवान राम की जय हो।

इति
श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरमहाकविजगद्गुरुरामानन्दाचार्यस्वामिरामभद्राचार्यगिरिधरकविप्रणीते गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे गीतमारुतिजयो नाम प्रथमः सर्गः।

।।किष्किन्धाकाण्डं सम्पूर्णम्।।

इस प्रकार श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर महाकवि जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य गिरिधरकवि द्वारा विरचित गीतरामायण 'गीतसीताभिराम' नामक संस्कृत गीतमहाकाव्य के किष्किन्धाकाण्ड में गीतमारुतिजय नामक प्रथम सर्ग सम्पन्न हुआ और किष्किन्धाकाण्ड भी पूर्ण हुआ।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

।।श्रीः।।

।। नमो राघवाय।।

।।श्रीमद्राघवो विजयते। श्रीसीतारामौ विजयेते।।

अथ सुन्दरकाण्डम्

गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये सुन्दरकाण्डे

गीतहनुमत्पराक्रमो नाम

प्रथमः सर्गः

मङ्गलाचरणम्

ध्यायन् सीतां प्रणीतां दशखरशिरसा राक्षसीं राजधानीं
चायंश्चारं चरिष्णुं श्वसनसुतमलं मुद्रया मोदयिष्यन्।
कायन् कर्णे कलार्णं जनककुलसुवे वाचिकं वल्गुवाग्मी
रामः सौमित्रिमित्रः स जयति जयिनो गीतसीताभिरामः।।१।।
गर्जन् कुस्त्रीकुगर्भार्भकपतनमहो रामनामध्वनीद्धं
तर्जं तर्जं तरस्वी रजनिचरकरान् भग्नसाम्वर्तकौजा।
सर्जं सर्जं सहिष्णुः कुणपखलकुलाम्भोजवज्रोग्रवृष्टिं
यास्यन् पारेपयोधेः स इह विजयते वानराकारमेघः।।२।।
रघुवरकरमुद्रिकया वल्गितवदनः पुलस्त्यकुलकदनः।
लङ्घितललामसदनः कश्चन कपिसज्जनो जयति।।३।।

भौमी- दशमुख रावण द्वारा राक्षसों की राजधानी लंका में ले जायी गयी सीताजी का ध्यान करते हुए, गतिशील दूत वायुपुत्र हनुमानजी को उत्साहित करते हुये और मुद्रिका से प्रसन्न करते हुये और जानकीजी के लिये कानों को सुखद अक्षरों वाला संदेश हनुमानजी के माध्यम से कहते हुये, ऐसे मधुर वाणी वाले सुंदर लक्ष्मण ही जिनके मित्र हैं ऐसे प्रशस्त वक्ता भगवान श्रीराम विश्वविजयी कामादि खलों को भी जीत रहे हैं। राक्षस स्त्रियों के कुसंस्कारी गर्भस्थ शिशुओं के पतन की घटनामय तेज से युक्त रामनाम की ध्वनि से व्याप्त दिव्य गर्जन करते हुये, अत्यंत वेगवान राक्षस समूहों को बार-बार डरवाते हुये, प्रलयकारी मेघ के भी ओज को नष्ट करने वाले, राक्षस कुलरूप कमल को नष्ट करने के लिए बार-बार वज्रपात का सर्जन करते हुए, ऐसे

सागर के पार जाते हुये वानर के आकार में विद्यमान हनुमान मेघ की जय हो। श्रीराम की दी हुई मुद्रिका से जिनका मुख सुशोभित हो रहा है, ऐसे रत्नों की राशि सागर को लाँघने वाले रावण कुल के नाशक, अपूर्व वैष्णवश्रेष्ठ वानरेन्द्र हनुमान् जी की जय हो।

सन्दर्भश्लोकः

अथ जाम्बवता प्रणोदितः प्रपतिस्यन् सुरशत्रुसादनम्।
ववृधे हनुमान् समुद्रिको वनवह्निर्मरुतेव वेगितः।।१।।

भौमी– इसके अनन्तर जाम्बवानजी के द्वारा उत्साहित होकर देवशत्रु रावण के नगर पर आक्रमण करते हुये, मुद्रिका के साथ हनुमानजी उसी प्रकार बढ़े जिस प्रकार वायु से प्रेरित हुआ वन का अग्नि उद्दीप्त हो जाता है।

गीत संख्या–१

किन्नरा गायन्ति–

लङ्कामशङ्कः प्रयातो हे वायुपुत्रो हनूमान्।।
मुखे मेलयित्वा रामनामाङ्कमुद्राम्।
चूषन् यथा शिशुर्हरितां हरिद्राम्।।
राजन्निखिलगुणव्रातो हे वायुपुत्रो हनूमान्।।१।।
तेजोमयजातरूपपर्वतशरीरः ।
सौम्य कपिवीरो रणधीरो महावीरः।।
क्रियमाण विघ्नकुलविघातो हे वायुपुत्रो हनूमान्।।२।।
सीताकुशलवार्तां राघवाय दित्सन्।
रावणमनसि परितापं प्रदित्सन्।।
बलवेगवीर्यविजितवातो हे वायुपुत्रो हनूमान्।।३।।
प्रतिष्ठाप्य मनोमन्दिरे च रघुवीरम्।
नत्वा सीतारामौ गुरून् वानरान् समीरम्।।
सुन्दरभूधरमायातो हे वायुपुत्रो हनूमान्।।४।।
लवणाम्बुधिं लङ्घिष्यमाणो मनस्वी।
उत्प्लुतो नभोभविष्णुर्भव्यो यशस्वी।।
गिरिधराभिरामपारिजातो हे वायुपुत्रो हनूमान्।।५।।

भौमी– किन्नर गीत गाने लगे–अहो! आज वायु के पुत्र हनुमान निर्भीक होकर लंका को चल पड़े हैं। श्रीरामनामांकित मुद्रिका को मुख में डालकर जैसे बालक हरित हरिद्रा को चूसता है, उसी प्रकार मुद्रिका का स्वाद लेते हुये, जिनमें सम्पूर्ण गुणों के समूह शोभित हो रहे हैं, ऐसे वायु के पुत्र हनुमान लंका को प्रस्थान कर

रहे हैं। तेजस्वी, स्वर्ण पर्वत के समान शरीर वाले युद्ध में धीर, अत्यंत सौम्य, वानरों में वीर, महावीर जू सम्पूर्ण विघ्नों का नाश करते हुये निर्भीकतापूर्वक लंका को प्रयाण कर चुके हैं। श्रीराम को सीताजी का कुशल समाचार देने के इच्छुक और रावण के मन में परिताप देने की इच्छा करते हुए बल, वेग एवं पराक्रम से वायु को भी जीते हुये हनुमानजी लंका की ओर प्रस्थान कर रहे हैं। अपने मन मंदिर में श्रीरघुवीरजी को विराजमान करके सीतारामजी गुरुदेव सूर्यनारायण, वृद्ध वानरों तथा वायु को नमस्कार करके वायुपुत्र हनुमान जी सुंदर पर्वत पर आये। नमक के सागर को लाँघने की इच्छा करते हुये, **गिरिधर** कवि के सुंदर कल्पवृक्षस्वरूप वायुपुत्र हनुमानजी भावी कल्याण से सम्पन्न होकर एवं प्रशस्त यश से देदीप्यमान होते हुये आकाश में उछले।

गीत संख्या-२

कनककुधरशतसुन्दर मितमन्दर हे।
सुमनोमहितरघुवीर जय महावीर हरे।।१।।
हृदयसुधृतधरणीधर श्रितभूधर हे।
जवजितगरुडसमीर जय महावीर हरे।।२।।
प्रभुमुद्रिकामुखमेलन कपिखेलन हे।
गर्जनगगनगभीर जय महावीर हरे।।३।।
खलकुलकदनविशारद नतनारद हे।
ब्रह्मचर्यचर्चितशरीर जय महावीर हरे।।४।।
मैनाकसुरसामदमर्दन सिंहिकार्दन हे।
लंघितसिन्धुर्लंकिनीर जय महावीर हरे।।५।।
जनकसुतासमाश्वासन वननाशन हे।
लङ्कादहनरणधीर जय महावीर हरे।।६।।
चूडामणिश्रीवचनार्पण स्वसमर्पण हे।
प्रसृमर प्रेमपाटीर जय महावीर हरे।।७।।
रघुवरचरभवभावन जनपावन हे।
गिरिधरनयनकुटीर जय महावीर हरे।।८।।

भौमी- अनेक स्वर्ण पर्वतों के समान सुंदर मंदराचल पर्वत को भी सीमित करने वाले, अपने सुंदर मन में रघुवीर श्रीराम का पूजन करने वाले, हे वानर श्रेष्ठ महावीर! आपकी जय हो। अपने हृदय में पृथ्वी को धारण कर रहे श्रीराम को धारण किये हुये और महेन्द्राचल पर्वत का आश्रय लिये हुये वेग से गरुड और वायु को जीते हुये, हे महावीर हनुमानजी! आपकी जय हो। मुख में प्रभु की मुद्रिका लिये हुये, वानर की लीला करने वाले, गरजते हुये, आकाश के समान गंभीर हे कपिश्रेष्ठ महावीरजी! आपकी जय हो। राक्षसकुल के नाश में निपुण और अपने व्यक्तित्व से नारदजी को भी झुकाये हुये अथवा नारद के द्वारा नमस्कृत, ब्रह्मचर्य से सुशोभित शरीर वाले, हे महावीरजी! आपकी जय हो। हे मैनाक और सुरसा के मद को नष्ट करने वाले! हे सिंहिका का वध करने वाले! सागर लाँघने वाले! लंकिनी राक्षसी को कँपाने वाले, महावीरजी! आपकी जय

हो। जनकनंदिनी सीताजी को आश्वासन देने वाले, अशोक वाटिका को नष्ट करने वाले, युद्ध में अक्ष का वध करके मेघनाद को पराजित करने वाले, लंका को जलाकर अग्निसात करने वाले हे महावीरजी! आपकी जय हो। प्रभु को चूड़ामणि और सीताजी का संदेश देने वाले, स्वयं को श्रीरामजी के चरणों में समर्पित करने वाले और अत्यंत कोमल प्रेमानुलेप से युक्त, हे महावीर आपकी जय हो। हे श्रीराम के श्रेष्ठ दूत! शिवजी को भी प्रसन्न करने वाले! संसार को पवित्र करने वाले तथा **गिरिधर** कवि के नेत्र कुटीर में निवास करने वाले! हे महावीरजी! आपकी जय हो।

गीत संख्या-३

मैनाको हनूमन्तं प्रति आविर्भूय-

हनूमन् मे कनककूटे क्षणं विश्रम्यतां श्रीमन्।
महात्मन् मे रुचिरकूटे सुखं विश्रम्यतां धीमन्।।
शिवत्वे पार्वतीभ्रातुर्ममापीड्योऽसि जामाता।
कपित्वे वायुसूनुस्त्वं भ्रातृव्यो मेऽसि सुखदाता।।
परात्मन् मे सुभगकूटे क्षणं विश्रम्यतां धीमन्।। १।।
भवान् रघुनाथकार्यार्थी रघोर्वंश्योऽस्ति कूपारः।
समुद्रान्तरनिवासत्वात्तदीयो मयि समुपकारः।।
गुणात्मन् मे महति कूटे क्षण विश्रम्यतां धीमन्।।२।।
दिदृक्षुं मैथिलीं यान्तं निरातङ्कं कपिं लङ्काम्।
न सेवेच्चेत्तदा यायां सदाऽकीर्तिं कलङ्काङ्काम्।।
रसात्मन् मे लसति कूटे क्षणं विश्रम्यतां धीमन्।।३।।
कृतार्थःस्यां हनूमन्तं भजन् गिरिधरप्रभुं सन्तम्।
समुद्रस्यापि वायोर्वै मुदा यायां मृणस्यान्तम्।।
भवात्मन् मे भवति कूटे क्षणं विश्रम्यतां धीमन्।। ४।।

भौमी- अब प्रकट होकर मैनाक हनुमानजी से कहता है- हे हनुमानजी! स्वर्ण शिखर पर क्षण भर के लिये विश्राम कर लीजिये। हे श्रीमन्! हे प्रशस्त बुद्धि वाले हनुमानजी! सुखपूर्वक विश्राम कर लीजिये। हे महात्मन! मेरे सुंदर शिखर पर क्षण भर सुखपूर्वक विश्राम कर लीजिये। शिवरूप में आप पार्वती के भाई मुझ मैनाक के स्तुति करने योग्य जमाई अर्थात् बहनोई हैं और वानर रूप में वायु के पुत्र आप हनुमान मेरे भतीजे हैं, इसलिये हे परात्मन! आप मेरे सुंदर शिखर पर सुखपूर्वक क्षण भर विश्राम कर लें। आप श्रीरघुनाथ के कार्य करने वाले दूत हैं और समुद्र रघुवंशी है और समुद्र के अंदर निवास करने के कारण मुझ पर समुद्र का बहुत बड़ा उपकार है। हे गुणात्मन! आप मेरे महान शिखर पर क्षण भर सुखपूर्वक विश्राम कर लीजिये। सीताजी के दर्शनों के इच्छुक निर्भीक लंका जाते हुये, आप वानरश्रेष्ठ की यदि मैं नहीं सेवा करूँगा तो मुझे सदैव कलंकित अपकीर्ति ही मिलेगी। इसलिये हे राम रस से पूर्ण आत्मा वाले हनुमानजी! मेरे सुशोभित शिखर पर क्षण भर के

लिये विश्राम कर लीजिये। हे प्रभु! इसी बहाने **गिरिधर** कवि के प्रभु परम संत आप श्रीहनुमान की सेवा करता हुआ मैं कृतार्थ हो जाऊँगा और समुद्र तथा वायु से उऋण हो जाऊँगा। हे कल्याणात्मन! आप मेरे कल्याणकारी शिखर पर क्षण भर सुखपूर्वक विश्राम कर लीजिये।

गीत संख्या-४

हनूमान् मैनाकं प्रति-

भवतु मयि विश्वस्तो मैनाकः।
रघुपतिकार्यमन्तरा क्षणमपि को विश्रमो वराकः।।
सीतान्वेषणकृते सावधिकसमया वयं निदिष्टाः।
तदतिक्रमे मरणमिति सुग्रीवेण वयं निर्दिष्टाः।।१।।
यावन्नो पश्यामि रामपत्नीमिह तनूं धरन्तीम्।
तावत् किमपेक्षेय पिपासां प्राणान् क्षुधं हरन्तीम्।।२।।
यावद् भौमीकुशलवार्तया सन्तोष्येत न रामः।
तावत् कथं भोजनं शयनं स्वीक्रियतां विश्रामः।।३।।
अनुजानीहि ततो मां गन्तुं भवता मित्र शपामि।
गिरिधरप्रभुपत्नीदर्शनलक्ष्यो नो मृषा लपामि।।४।।

भौमी– हनुमानजी मैनाक के प्रति कहते हैं– हे मैनाक! आप मुझपर विश्वस्त हो जाइये, श्रीराम के कार्य के बिना एक क्षण के लिए भी यह विचारा विश्राम कहाँ सम्भव है? सीताजी के अन्वेषण के लिए हम लोगों को एक मास की अवधि का समय दिया गया था। उसका अतिक्रमण होने पर सभी वानरों को मृत्युदण्ड मिलेगा। इस प्रकार सुग्रीवजी ने हम लोगों को निर्देश दिया था। जब तक मैं श्रीराम पत्नी सीताजी को शरीर धारण करते हुए नहीं देख रहा हूँ तब तक प्राणों को हरती हुई भी प्यास और क्षुधा की कैसे अपेक्षा कर सकता हूँ? जब तक सीताजी के कुशल वार्ता से मैं श्रीराम को सन्तुष्ट नहीं कर ले रहा हूँ तब तक भोजन, शयन या विश्राम कैसे स्वीकार किया जाय? इसलिए हे मैनाक! अब मुझे जाने की आज्ञा दो, मैं **गिरिधर** कवि के प्रभु श्रीराम की धर्मपत्नी सीताजी के दर्शन का लक्ष्य लेकर आया हूँ। तुम्हारी शपथ करके कहता हूँ कि झूठ नहीं बोल रहा हूँ।

सन्दर्भश्लोकः

ततोऽहिमाता बिबुधैः प्रणोदिता स्वमत्तुमुग्रा सुरसा यशस्विनी।
निवार्यमाणापि रुषातिमात्रया न्यगादि गद्या हि पुनर्हनूमता।।१।।

भौमी–इसके अनन्तर देवताओं द्वारा भेजी हुई और हनुमानजी को खाने के लिए उद्यत यशस्विनी नागमाता सुरसा अत्यन्त क्रोध से हनुमानजी द्वारा रोक दी जाती हुई भी जब हठ पर अड़ी रही फिर हनुमानजी ने सुस्पष्ट अक्षरों में उससे कहा।

गीत संख्या-५

सुरसे त्यज नितरां निर्बन्धम्।
मां खादितुं वदसि वाचाटे परिहर हठानुबन्धम्।।
त्वं भुजङ्गमाता विख्याता वायुसुतोऽहं भद्रे।
कथमशितुं मां प्रभवसि वह्निं हा हा कलिताभद्रे।।१।।
सूर्यमण्डलग्रासिनमपि ग्रससे मां कुटिलाचारे।
किं सम्माति सागरः शुक्त्यां निगद मृषाव्यवहारे।।२।।
सीतादर्शनमेत्य सत्वरं कृत्वा राघवकार्यम्।
पुनस्त्वदाननमेव प्रवेक्ष्ये सत्यं वचोऽनिवार्यम्।।३।।
गिरिधरप्रभुपदपद्ममधुकरं प्रस्थापय हनुमन्तम्।
मा व्यवधेहि जानकीं द्रष्टुं ह्यनुजानीहि लषन्तम्।।४।।

भौमी- हे सुरसे! अपना बहुत बड़ा हठ छोड़ दो, अरे! बहुत निकृष्ट बोलने वाली मुझे खाने की बात करती है, यह हठ का अनुबन्ध छोड़ दो। कल्याणी! तुम सर्पों की माँ विख्यात तो और मैं वायुपुत्र अर्थात अग्नि हूँ। फिर तुम मुझे कैसे खा सकती हो? हाय! तुममें इस प्रकार का अकल्याण क्यों आ गया? अरे कुटिल आचार वाली नागमाता! सूर्य मंडल को भी ग्रस लेने वाले मुझे खाना चाहती हो। झूठ व्यवहार करने वाली सुरसे! बोलो, क्या सागर छोटी-सी सीपी में समा सकता है? सीताजी के दर्शन करके श्रीराम का कार्य करके फिर मैं तुम्हारे मुख में प्रवेश कर लूँगा, यह मेरा अनिवार्य सत्य वचन है। **गिरिधर** कवि के प्रभु श्रीराम के चरण कमल के भ्रमर मुझ हनुमान को जाने दो। सीताजी के दर्शनों की इच्छा करते हुए मुझ हनुमान को अनुज्ञा दो, व्यवधान मत डालो।

गीत संख्या-६

कविर्गायति-

विचित्रः कोऽपि मारुतेर्योगः।
विस्मापकः सिद्धसङ्घानां भवनिरुपमप्रयोगः।।
निरालम्बमार्गं गच्छन् वियदपि सुदृढव्यायोगः।
नो बिभेति न श्राम्यति ताम्यति योगिसुलभसंयोगः।। १।।
नो कूप्यति सुरसायै वीरस्तनुते शिष्टाचारम्।
पश्यन् प्राणसङ्कटं न ग्लायति भीमं व्यवहारम्।।२।।
यथा यथा वर्धयते सुरसा विकृतविशालं वदनम्।
तथा तथा तद् द्विगुणं तनुते स्ववपुर्मङ्गलसदनम्।।३।।
शतयोजने विस्तृते वदने सूक्ष्मः कपिकुलवीरः।

प्रविश्यागतो हसन् विनीतो गच्छति सङ्गरधीरः।।४।।
गिरिधरप्रभुप्रतापं कलयन् यास्यति सागरपारम्।
लङ्घिष्यते रामकार्यार्थं गोष्पदमिव कूपारम्।।५।।

भौमी- अब कवि गा रहे हैं–वायुपुत्र हनुमानजी का कोई यह विचित्र ही कौशल है जो सिद्ध समूहों को भी विस्मित करने वाला और संसार का अद्वितीय प्रयोग है। आश्चर्य है आलम्बनरहित आकाश मार्ग में जाते हुए भी श्रीहनुमान् न डर रहे हैं, न थक रहे हैं और न ही दुःखी हो रहे हैं, क्योंकि उनका उद्यम दृढ़ है और उनमें योगियों के लिए ही सुलभ सिद्धियों का संयोग है। वीर हनुमान सुरसा पर कुपित नहीं हो रहे हैं, उसके सामने शिष्टाचार ही प्रकट कर रहे हैं अपना प्राण संकटरूप सुरसा का भयंकर व्यवहार देखते हुये भी हनुमानजी का हर्ष क्षीण नहीं हो रहा है। सुरसा जिस जिस प्रकार से अपना विकृत और विशाल मुख फैलाती जाती है, हनुमानजी उसी उसी प्रकार से उसकी दुगुनी मात्रा में मंगल मंदिर स्वरूप अपना शरीर बढ़ा लेते हैं। सुरसा के मुख के सौ योजनपर्यन्त विस्तीर्ण हो जाने पर दृढ़ प्रतिज्ञ वानर कुल में श्रेष्ठ हनुमानजी उसके मुख में प्रवेश करके बाहर आये हँसते हुए आगे चल पड़े। **गिरिधर** कवि के प्रभु श्रीराम का प्रताप हृदय में धारण करके हनुमानजी सागर पार जायेंगे और प्रभु के कार्य के लिए ही विशाल सागर को गोखुर के समान लाँघ जायेंगे।

गीत संख्या-७

स्वमुखान्निष्क्रान्तं हनुमन्तं प्रति सुरसा-

गच्छ गच्छ द्रुतं कपिकुलवीर भवन्तु तव मङ्गला दिशः।
शीघ्रं याहि पयोनिधिपारं धर्षय पद्भ्यां रिपुप्राकारम्।
पश्य पश्य प्रभोः पत्नीं प्रवीर लभस्व तस्याः शुभा आशिषः।।१।।
अष्टसिद्धयो ननु नवनिधयो वृणतां त्वां सुखमङ्गलविधयो।
रक्ष ब्रह्मचर्यव्रतं बलवीर भवन्तु तुभ्यं सुखदा निशः।।२।।
रामचन्द्रकार्याणि निधारय संयुगे रावणमपि संहारय।
यच्छ यच्छ मुदं सद्भ्यो रणधीर भवन्तु तव भस्मसाद् द्विषः।।३।।
राघवेण मैथिलीं समानय गिरिधरगीतं हृदि सम्मानय।
शिक्षयस्व सर्वलोकं महावीर भवन्तु तुभ्यं सारसा दृशः।।४।।

भौमी- अपने मुख से निकले हुए हनुमानजी को सम्बोधित करती हुई सुरसा कहती है–हे कपिकुल के वीर हनुमान! तुम शीघ्र जाओ, तुम्हारे लिए सभी दिशाएँ मंगलमय हों। तुम सागर के पार शीघ्र जाओ और शत्रु रावण के प्राकार को चरणों से कुचल दो और हे प्रकृष्ट वीर! प्रभु श्रीराम की धर्मपत्नी सीताजी के दर्शन करो, उनका शुभ आशीर्वाद प्राप्त करो। सुख मंगल विधान करने वाली आठों सिद्धियाँ और नौ निधियाँ तुम्हारा मंगल करें, तुम अपने ब्रह्मचर्य की निरन्तर रक्षा करते रहो। हे रणधीर! श्रीराम के कार्यों का निश्चय करो और उनका सम्पादन करो। युद्ध में श्रीरामजी से रावण का वध कराओ और सन्तों को प्रसन्नता प्रदान करो, तुम्हारे

शत्रु भस्मसात हो जायँ। तुम सीताजी को श्रीराघव से मिलाओ और **गिरिधर** कवि के गीत का हृदय में सम्मान करो, हे महावीर! तुम सम्पूर्ण लोक को कर्तव्य और श्रीराम भक्ति की शिक्षा दो, सभी के नेत्र तुम्हारे लिए प्रेमरस से परिपूर्ण हों।

सन्दर्भश्लोकः

सुरसां समनुज्ञाप्य गच्छन् वियति वानरः।
छायागृहीतसंवेगः सिंहिकां वीक्ष्य विस्मितः।।१।।

भौमी–इस प्रकार सुरसा से आज्ञा लेकर आकाश मार्ग से जाते हुए किसी अज्ञात छाया से अपने वेग को ग्रहण कर लिए जाने पर वानरश्रेष्ठ हनुमानजी समुद्र में सिंहिका को देखकर विस्मित हो गये।

गीत संख्या-८

स्वगतं हनूमान्-

किं ममच्छायां विनिघ्नज्जले तिष्ठति प्राणि।
अवध्यं नारीशरीरं विधे किं करवाणि।।
खलं निजराष्ट्रद्रुहं तत् कृते वै प्रणिहन्मि।
राष्ट्रदेवो राष्ट्रविघ्नं विमलधीर्विनिहन्मि।।१।।
राष्ट्रलक्ष्यो राष्ट्ररक्षायै स्वमेव समर्प्य।
सदा स्वाहाकारमेव करोत्यसून् प्रत्यर्प्य।।२।।
इदं राष्ट्रायैव नहि मम मन्त्रमेनमुदीर्य।
सन्ततं जागर्ति जगति जयेन जगत्समीर्य।।३।।
वक्ति गिरिधरकविरामं राष्ट्रमङ्गलनाम।
ततो हत्वा सिंहिकां सुखयामि भारतधाम।।४।।

भौमी- हनुमानजी अपने मन में कह रहे हैं–हे ब्रह्मन्! मेरी छाया को विघ्नित करता हुआ अर्थात् रोकता हुआ यह कौन–सा प्राणी जल में निवास कर रहा है? अरे! यह तो नारी है। नारी शरीर अवध्य होता है। हे विधाता! अब मैं क्या करूँ? कोई बात नहीं। अपने राष्ट्र का द्रोह करने वाले किसी भी लिंग में दिख रहे खल का अब मैं वध करूँगा क्योंकि आतंकवादी का कोई लिंग–धर्म–जाति–वय नहीं होता। मैं रामाभिन्न राष्ट्र को अपना देवता मानता हूँ। अतः विमल बुद्धि वाला मैं हनुमान अपने राष्ट्र के इस विघ्न को अभी समाप्त कर दे रहा हूँ। राष्ट्र की उन्नति को लक्ष्य मानने वाला व्यक्ति राष्ट्र की रक्षा के लिये अपने को ही समर्पित करके अपने प्राणों को भी प्रत्यर्पण करके निरन्तर स्वाहाकार ही करता है। ''यह राष्ट्र के लिये है, मेरा नहीं''–इसी मन्त्र का जप करके अपने विजय से जगत को प्रेरणा देकर राष्ट्रभक्त संसार में अहर्निश जागता रहता है। **गिरिधर** कवि भी यही कहते हैं कि श्रीराम राष्ट्र के मंगल हैं। इसलिये आज मैं सिंहिका का वध करके इस भारत धाम को सुखी करूँगा।

गीत संख्या-९

सागरपारं गत्वा हनूमान् स्वगतम्-

अहो निशा गहना पुरी प्रविश्यतां सुखं निविश्यतां व्रजेयमद्य द्रष्टुं जानकीम्।।
संक्षिप्य स्वरुपं वृषदंशमात्रो भूत्वा वीर्यलवित्रेण रक्षसां च नासां लूत्वा।
तनौ चण्डपराक्रमः समाविश्यतां बलं निविश्यतां व्रजेयमद्य द्रष्टुं जानकीम्।।१।।
हत्वा मुष्टिकया लङ्किनीं प्रचण्डपापिनीं प्रविश्य शत्रुपुरीं सर्वप्राणितापिनीम्।
रावणस्य मूर्धनि पदं प्रदिश्यतां सती नु दृश्यतां व्रजेयमद्य द्रष्टुं जानकीम्।।२।।
राघववियोगविग्नां सीतां समाश्वासये हरन् तस्या मनोव्यथां रक्षोवनं नाशये।
असुरजिघांसया वीर्यधारा वृश्यतां न खलो मृश्यतां व्रजेयमद्य द्रष्टुं जानकीम्।।३।।
होलिकायितां विधाय वैरिवर्धितां पुरीं गिरिधरप्रभो प्रदर्श्य तूर्यचारचातुरीम्।
रावणात् खरारिकृपा समाकृष्यतां यशो विक्लिश्यतां व्रजेयमद्य द्रष्टुं जानकीम्।।४।।

भौमी- समुद्र पार जाकर हनुमानजी अपने मन में कह रहे हैं- अहो! यह अंधेरी रात, अब मैं लंकापुर में सुखपूर्वक प्रवेश करूँ, सुख से निवेश करूँ और जानकीजी के दर्शन के लिये आगे बढ़ूँ। अपने विशाल स्वरूप को संक्षिप्त करके और मसक के समान छोटा वानर रूप धारण करके अपने पराक्रम रूप कैंची से राक्षसों की नासिका काटकर अपने शरीर में चंड पराक्रम का आवेश करूँ। हल्की मुक्का से भयंकर पापिनी लंकिनी को मारकर सम्पूर्ण प्राणियों को कष्ट देने वाली लंकापुरी में प्रवेश करूँ और रावण के मस्तक पर मैं अपना चरण रखूँ और सती जानकीजी के दर्शन करूँ। राघवजी के वियोग से उद्विग्न सीताजी को आश्वासन दूँ और उनकी मनोव्यथा को दूर करके अशोक वाटिका को तहस-नहस कर दूँ, असुरों को मारने की इच्छा से अपने पराक्रम धारा की वर्षा करूँ। खल प्रकृति रावण को क्षमा न करूँ। शत्रु द्वारा पालित इस लंका को होलिका के समान अग्निसात करके **गिरिधर** कवि के प्रभु श्रीराम के समक्ष उन्हीं के गुप्तचर चातुरी का दर्शन कराऊँ। रावण पर से भगवान श्रीराम की कृपा हटा लूँ और उसका यश मसल डालूँ।

गीत संख्या-१०

हनुमान् लङ्किनीं प्रति तया पृच्छ्यमानः

अहं रामस्य दूतो हनूमान् भो मा मा विरमय्य कार्यान् माम्।।
प्रभुमुद्रिकां स्ववदने रक्षन् सिन्धुपारमायातः।
रामनामबीजं बिभ्राणो भौमीं द्रष्टुं यातः।।
अहं ब्रह्मचर्यपूतो हनूमान् भो मा मा प्रशमय्य कार्यान् माम्।।१।।
यावन्नो पश्यामि मैथिलीं तावत् स्नामि न भुञ्जे।
अनुजानीहि न पथो विलम्बय वैनायिकं हि प्रयुञ्जे।।
अहं क्वाप्यपराभूतो हनूमान् भो मा मा विदमय्य कार्यान् माम्।।२।।

सत्यं वच्मि विलोक्य मैथिलीं भूयस्त्वां द्रष्टा हे।
कृतकार्यो न निवार्योऽदेव्या पादौ ते प्रष्टा हे।।
अहं कार्ये परिणूतो हनूमान् भो मा मा निरमय्य कार्यान् माम्।।३।।
मा बधान मा निर्बधान मा मा व्यवदध्या लङ्के।
गिरिधरप्रभुं विरुद्ध्य भवे भवितास्यथ श्रिता कलङ्के।।
अहमञ्जनाप्रसूतो हनूमान् भो मा मा विश्रमय्य कार्यान् माम्।।४।।

भौमी- लंकिनी द्वारा पूछे जाने पर हनुमानजी लंकिनी से कहते हैं–लंकिनी! मैं श्रीराम का दूत हनुमान हूँ, मुझे प्रभु के कार्य से मत रोको। अपने मुख में प्रभु की मुद्रिका लेकर मैं सागर पार आया। रामनाम का बीज धारण करते हुये मैं सीताजी के दर्शनों को निकला हूँ। मैं ब्रह्मचर्य से पवित्र हनुमान हूँ। मुझे कार्य से शान्त मत करो। जब तक मैं सीताजी के दर्शन नहीं कर रहा हूँ तब तक न स्नान करूँगा और न ही भोजन। आप आज्ञा दीजिये, मार्ग में विलंब मत कीजिये। लंकिनी! मैं कहीं भी और कभी भी न दबाया जाने वाला हनुमान हूँ। मुझे कार्य से दूर मत करो। मैं सत्य बोल रहा हूँ। सीताजी के दर्शन करके फिर आपके दर्शन करूँगा। आप मुझे रोकें नहीं। मैं कार्य करके आपके चरण छुऊँगा क्योंकि मैं कार्य के लिये प्रेरित हनुमान हूँ। आप मुझे कार्य से मत विलंबित करें। हे लंकिनी! मुझे बाँधो मत। मेरे साथ हठ मत करो। विघ्न मत डाल क्योंकि हे लंकिनी! **गिरिधर** कवि के प्रभु श्रीराम का विरोध करके तू बहुत बड़े कलंक में सन जायेगी। मैं अंजना–पुत्र हनुमान हूँ। मुझे मेरे कार्य से मत विश्राम कराओ।

गीत संख्या-११

पुनर्हनुमता ताडिता लङ्किनी श्रीमहावीरं प्रति-

पाहि महावीर पाहि पाहि पापिपापतः।
त्राहि रणधीर त्राहि त्राहि तीव्रतापतः।।
महाबाहो लङ्कापुरी सुखेन प्रविश्यताम्।
रावणेन नीता सीताऽशोकवने दृश्यताम्।।
पाहि कपिवीर शत्रुसङ्कटकलापतः।।१।।
अवज्ञा कृता त्वदीया मया त्वया क्षम्यताम्।
मूढराक्षसीस्वभावतस्त्वयाऽभिशम्यताम् ।।
याहि जाम्बूनदशरीर पापपश्चयत्तापनः।।२।।
नावरोत्से नो विरोत्से सुखं तात गम्यताम्।
मैथिलीं विलोक्य पुनाराघव प्रणम्यताम्।।
याहि वीर याहि पाहि मनः परितापतः।।३।।
लङ्का पापपङ्का होलिकाग्नये प्रदीयताम्।

तावकं सुयशो गिरिधरेण गिरा गीयताम्।।
पाहि श्रितरघुवीर पाहि भानुतापतः।।४।।

भौमी- फिर हनुमानजी के द्वारा मुक्के से ताड़ित की हुई लंकिनी हनुमानजी के प्रति–हे महावीर! पापी रावण के पाप से मुझे बचा लीजिये–बचा लीजिये। हे रणधीर! भयंकर ताप से मेरी रक्षा कीजिए। हे महाबाहो! आप सुखपूर्वक लंका में प्रवेश करें और रावण द्वारा हरी हुई सीताजी के अशोक वन में दर्शन करें। हे वीर वानर! शत्रुओं के संकट समूह से मेरी रक्षा कीजिए। मैंने मूढ़ राक्षसी स्वभाव के कारण आपका अपमान किया। आप मुझे क्षमा करें और उस पाप का शमन कर दें। हे स्वर्ण शरीर! आप पाप के पश्चात्ताप से मेरी रक्षा करें। मैं आपका अवरोध नहीं करूँगी और न ही विरोध करूँगी। हे वीर! आप सुखपूर्वक पधारें। सीताजी के दर्शन करके सफलतापूर्वक लौटकर फिर राघवजी को प्रणाम करें। हे वीर! आप लंकापुरी पधारें–पधारें। मानसिक परिताप से मेरी रक्षा करें। पाप के कीचड़ में सनी हुई यह लंकानगरी को होली की आग में दे दीजिए अर्थात् लंका जला डालिए और आपका सुयश **गिरिधर** कवि भी अपनी संस्कृत और प्राकृत वाणी में गाते रहें। हे श्रीरघुवीरजी के सेवक हनुमानजी! आप मुझ लंकिनी की अनुताप से रक्षा कर लीजिए, रक्षा कर लीजिए।

गीत संख्या–१२

हनूमान् लङ्कापुरीं प्रविशन् स्वगतम् –

रघुवीर मङ्गलानि मङ्गलं दिशन्तु मे।
रणधीर मङ्गलानि मङ्गलं दिशन्तु मे।।
लङ्कां प्रयामि भौमीं द्रष्टुकामःशान्तधीः।
रक्षःपुरीं प्रपन्नः पर्यटामि शान्तभीः।।
मुनिधीरसम्बलानि मङ्गलं दिशन्तु मे।।१।।
प्रतिसद्मरक्षसां मया सुखं प्रविश्यते।
वन्यकैर्वनस्पतिर्यथैव देव्यन्विष्यते।।
धर्मधीर सद्बलानि मङ्गलं दिशन्तु मे।।२।।
प्रतिनारिमुखं वीक्ष्य मैथिली विचीयते।
सुमनस्तथापि मे न धर्मतोपचीयते।।
मतिधीरहृद्बलानि मङ्गलं दिशन्तु मे।।३।।
लघुरूपभृता मया पार्थिवी प्रणंस्यते।
कवि गिरिधरेण रामं गायताभिरंस्यते।।
महावीर वत्सलानि मङ्गलं दिशन्तु मे।।४।।

भौमी- लंकिनी की अनुमति पाकर लंकापुरी में प्रवेश करते हुए हनुमानजी अपने मन में कह रहे हैं–हे रघुवीर! आपकी सभी मंगल विभूतियाँ मुझे मंगल प्रदान करें। हे रणधीर! आपके सभी मंगल उपकरण मुझे मंगल प्रदान करें। सीताजी के दर्शनों की कामना करता हुआ, शान्त बुद्धि वाला मैं हनुमान लंका में प्रवेश कर रहा हूँ और राक्षसों की पुरी को प्राप्त करके निर्भीक मैं इधर-उधर सीताजी को ढूँढ़ता हुआ पर्यटन कर रहा हूँ। मुनियों और धीरों के पाथेय आपके उपकरण मुझे मंगल प्रदान करें। आज मैं राक्षसों के प्रत्येक भवन में प्रवेश कर रहा हूँ। जैसे वनचर वनौषधियों का अन्वेषण करते हैं, उसी प्रकार मैं सीताजी का अन्वेषण कर रहा हूँ। धर्म में धीर रहने वाले महापुरुषों के श्रेष्ठ बलरूप आपके उपकरण मुझे मंगल प्रदान करें। आज मैं प्रत्येक राक्षसी नारी का मुख देख-देखकर सीताजी को ढूँढ रहा हूँ फिर भी मेरा पवित्र मन धर्म से नहीं च्युत हो रहा है। अतः धीर बुद्धि वाले महापुरुषों के हार्दिक बलस्वरूप आपके उपकरण मुझे मंगल प्रदान करें।

गीत संख्या-१३

विभीषणगृहं प्रेक्ष्य हनूमान् -

नूनमेतत् सुवैष्णवस्य धाम दृश्यते।
इदं परितस्तुलसीतरुदाम दृश्यते।।
अहो वैष्णवपताका चतुरस्त्रभाविनी।
भग्नपापपरिपाका पतितपावनी।।
इदं पुरतः पवित्रधेनुधाम दृश्यते।
इदं परितस्तुलसीतरुदाम दृश्यते।।१।।
एतत् समया लसति चारुपुष्पवाटिका।
एतत् पूर्वाप्यपूर्वा शुद्धवारिवापिका।।
नैवेद्यार्थं कदलीलतादाम दृश्यते।
इदं कस्यचित् सुवैष्णवस्य धाम दृश्यते।।२।।
अहो रामायुधलक्षितं श्रीराममन्दिरम्।
भवाम्भोधिमन्दरं कनककलशसुन्दरम्।
श्रितपरिक्रमाविभागं भाग्यधाम दृश्यते।
इदं परितस्तुलसीतरुदाम दृश्यते।।३।।
रात्रावपि कोटिभास्करकरप्रकाशकम्।
रक्षःपुरे क्वेदृक्तीर्थं तमस्तोमनाशकम्।।
गिरिधरस्य काव्यकलाकीर्तिधाम दृश्यते।
इदं परितस्तुलसीतरुदाम दृश्यते।।४।।

भौमी- विभीषण का घर देखकर हनुमानजी कहते हैं–निश्चित ही यह किसी वैष्णव का घर है क्योंकि

इसके चारों ओर तुलसीवृक्ष के गमले दिख रहे हैं। अहो! चारों ओर फहरती हुई यह वैष्णव पताका जो पापों के परिपाक को नष्ट करने वाली एवं पतितजनों को पवित्र बनाने वाली है, इसी वैष्णव भवन के आगे एक गौशाला भी दिख रही है। लंका में सर्वत्र गौएँ मारी जाती हैं, लगता है केवल इसी घर में गौवें पाली जाती हैं। इस भवन के निकट ही सुन्दर फुलवारी सुशोभित हो रही है और उसी के पूर्व दिशा में शुद्ध सुन्दर जल वाली बावली भी है। भगवान के नैवेद्य के लिए यहाँ केले के सुन्दर वृक्ष का झुण्ड दिख रहा है, निश्चित ही यह किसी वैष्णव का घर है। अहो! भगवान राम के धनुषबाण से चिन्हित श्रीराम मन्दिर भी दिखाई पड़ रहा है जो भवसागर के मन्दराचल के समान है और इसके कलश भी स्वर्णमय हैं। इसमें चारों ओर परिक्रमा का मार्ग बना हुआ है और यह श्रीराम भक्तों के भाग्य का धाम है। अहो! रात्रि में भी यह श्रीराम मन्दिर करोड़ों सूर्यों की भाँति प्रकाश कर रहा है। भला राक्षसों के पुर में भी इस प्रकार अन्धकार नाशक तीर्थ कहाँ से आ गया? यह तो **गिरिधर** कवि की काव्यकला के तीर्थ का धाम है।

गीत संख्या-१४

विनिद्रविभीषणाद्रामनामोच्चारणं श्रुत्वा हनूमान् निश्चिन्वन् -

संस्तवं करोम्यनेन भक्तिमता श्रीमता, विगतसर्वविधदोषो भाति मे विभीषणः।।
एतद्धाम्नि रामचन्द्रप्रतिष्ठा विराजते, एतन्मुखे रामनामसुनिष्ठा विराजते।
नूनं विशुद्धेन भाव्यं विधेऽनेन ह्रीमता, सकलकल्याणकोशो भाति मे विभीषणः।।१।।
एतद् द्वारे रम्भमाणा भान्ति वै धेनवः, एतं परितः पवित्रयन्ति मखरेणवः।
रामभक्तेन भाव्यं तदानेन धीमता, विहितविष्णुजनतोषो भाति मे विभीषणः।।२।।
कार्यहानिर्न भविता कदापि साधुतः, पापम्लानिर्न भविता कदाप्यसाधुतः।
शुद्धसाधुनैव भाव्यं भो अनेन श्रीमता, न्यस्तसन्मार्गशोषो भाति मे विभीषणः।।३।।
परिचयं विधाय साधयामि कार्यं हरेः, संस्तवं विधाय वाधयामि बाधकान् हरेः।
गिरिधरप्रभुसेवकेन भाव्यं पापभीमता, व्यस्तमदमानपोषो भाति मे विभीषणः।।४।।

भौमी- जगे हुए विभीषण के मुख से श्रीराम नामोच्चारण सुनकर निश्चय करते हुए हनुमानजी कह रहे हैं—इस भक्तिमान व्यक्ति के आधार पर मैं परिचय कर पा रहा हूँ कि सब प्रकार के दोषों से रहित यह व्यक्ति मुझे विभीषण ही प्रतीत हो रहा है क्योंकि इस भद्र के धाम में श्रीरामजी की प्रतिष्ठा सुशोभित है, इसके मुख में श्रीराम नाम की निष्ठा विराज रही है। निश्चित ही इस लज्जाशील व्यक्ति को पवित्र ही होना चाहिए, यह तो सम्पूर्ण कल्याणों का कोश विभीषण ही लग रहा है। इस व्यक्ति के द्वार पर गायें रंभा रही हैं और यज्ञीय ब्राह्मणों की चरणरेणु इसे चारों ओर से पवित्र कर रही हैं। निश्चित ही यह बुद्धिमान व्यक्ति कोई रामभक्त ही होना चाहिए। मुझे तो यह वैष्णवजनों को सन्तुष्ट करने वाला विभीषण ही प्रतीत हो रहा है। साधु से कभी कार्य की हानि नहीं होती। असाधु से कभी पाप का नाश नहीं होता। यह श्रीमान् कोई न कोई शुद्ध साधु है। वस्तुतस्तु यह सन्मार्ग के शोषण से रहित विभीषण ही प्रतीत होता है। मैं इससे परिचय करके भगवान का कार्य सिद्ध कर दूँ और इनसे अन्तरंगता स्थापित करके प्रभु के बाधकों का भी वध करूँ। यह कोई न कोई **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम का सेवक है, मुझे तो मान, मदरहित सन्तों का पोषक विभीषण ही प्रतीत होता है।

गीत संख्या-१५

हनूमान् आह्वयन् विभीषणं विप्ररूपः-

श्रृणु श्रृणु मम वरवचो महाशय।
निद्रां जहज्जहासि न तल्पं मलीमसाशयमेतन्माश्रय।।१।।
भाति विभातं मलयजवातं रविसूतेऽभ्युदिते त्वं शेषे।
त्यज कुण्ठां दूरितवैकुण्ठां किं मयि तिष्ठति हृदि संशेषे।।२।।
किं विजृम्भसे नैवारभसे रामभजनमयी पथिकदुराशय।
विसृज मोहममताकुवासनां प्रक्षालय वदनं कुटिलाशय।।३।।
उत्तिष्ठार्य तल्पमधितिष्ठसि सन्तिष्ठस्व न जगति दुरात्मन्।
रामनाम रसिको भव राक्षस भज महेशमहितं च महात्मन्।।४।।
द्रुतमायाहि सखे मम पुरतः पुनः पुनः सप्रेम बोधये।
गिरिधरप्रभुसुकीर्तिसुरनद्यां स्नापं स्नापं चिदं शोधये।।५।।

भौमी- ब्राह्मणरूप धारण करके विभीषण का आह्वान करते हुए श्रीहनुमान-हे महाशय! मेरी यह श्रेष्ठ वाणी सुनिये। तुम निद्रा छोड़ते हुए भी अपना पलंग नहीं छोड़ रहे हो, इस मलिन विचार का आश्रय मत करो। अरे महाशय! मलय वायु से युक्त यह प्रभात सुशोभित हो रहा है। अरुणोदय होने की तैयारी है पर अब भी तुम सो रहे हो? भगवान को दूर करने वाली इस निद्रा, कुण्ठा को छोड़ो। मेरे उपस्थित रहते हुए भी तुम संशय क्यों कर रहे हो? अरे संसार पथ के राही! दुर्बोध विचार वाले पथिक क्यों जमुहा रहे हो? श्रीराम भजन का आरम्भ क्यों नहीं कर रहे हो? अरे कुटिल आशय वाले निद्रालु! मोह, ममता, कुवासना को छोड़ों और मुख धो लो। हे आर्य! उठो। अभी भी बिस्तर पर पड़े हो। अरे दुष्ट बुद्धि वाले! संसार पर भरोसा मत करो। अरे राक्षस! राम नाम के रसिक बन जाओ, हे महात्मन! शिवजी के भी पूजित श्रीराम का पूजन करो। हे मित्र! बिस्तर छोड़कर मेरे पास शीघ्र आओ, मैं तुम्हें प्रेमपूर्वक बुला रहा हूँ। **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम की कीर्ति गंगा में नहला-नहला कर तुम्हारे चित्तत्त्व को मैं शुद्ध करना चाहता हूँ।

विशेष- यह गीत १६ मात्रा त्रिताल में बद्ध है इसे जोगिया, बैरागी और ललित राग में गाया जा सकता है।

गीत संख्या-१६

विभीषणः समागत्य हनुमन्तं-

कुत आयासि कोऽसि किल मे वद।
लङ्घित्वा सागरं परपुरीं रात्रौ कथमायातः सुखह्रद।।१।।
ब्रह्मचर्यभूषितललाटकः कनककपोलः कनकशरीरः।
शुभ्रमखोपवीतमण्डितवामांशो योगिवरो यमिधीरः।।२।।

पादपद्मपादुकासुप्रसृमर गतिहतवृजिनो महानुभावः।
मन्ये ब्रह्मचर्यमिव मूर्तं मामभियातो मृदुस्वभावः।।३।।
चन्दनकमलपाटलीसुरभिनिहतदुर्गन्धो दृढानुबन्धः।
मन्ये दृग्गोचरोऽभ्युपेतः सेवकसेव्यभावसम्बन्धः।।४।।
किं वा परोपकारनिरत इह समायाति रघुनन्दनदासः।
किं वा मत्सौभ्याग्यविवर्धन धियाऽभिजातो रमानिवासः।।५।।
सत्यं ब्रूहि कुतोऽसि कोऽसि गोपाय न किंचित् करुणासिन्धो।
गिरिधरचातकनूतनजलधर रामरूपभूसुरजनबन्धो।।६।।

भौमी– विभीषणजी हनुमान जी से कहते हैं– हे भद्र! आप कहाँ से आ रहे हैं? कौन हैं? यह मुझे बतायें। इस सागर को लाँघकर आप शत्रु की पुरी में कैसे आये? हे सुखद ज्ञान! आप मुझे बतायें। आपका मस्तक ब्रह्मचर्य से सुशोभित है। आपका कपोल बहुत सुन्दर और शरीर स्वर्ण के समान है और आपका बायाँ स्कन्ध श्वेत यज्ञोपवीत से सुशोभित है। आप श्रेष्ठ–योगी, संयमी और धीर प्रतीत होते हैं। आप अपने चरणकमल की कोमल पादुका की सुन्दर गति से पाप को नष्ट कर रहे हैं। मुझे लगता है कि ब्रह्मचर्य ही शरीर धारण करके आप कोमल स्वभाव सम्पन्न होकर ही मेरे पास आये हैं। आप चन्दन कमल और गुलाब की सुगन्ध से यहाँ की दुर्गन्ध को मिटा रहे हैं। आपका अनुबन्ध ही दृढ़ है। मैं ऐसा मानता हूँ कि सेवक–सेव्यभाव सम्बन्ध ही नेत्रों का विषय बन गया है। क्या परोपकार में लगे हुये आप कोई श्रीराम के दास ही यहाँ आये हैं? अथवा मेरा सौभाग्य बढ़ाने की इच्छा से साक्षात् भगवान राम ही उपस्थित हो गये हैं? हे **गिरिधर** कवि रूप चातक के नवीन मेघ! हे श्रीराम रूप सज्जनों के बन्धु ब्राह्मण श्रेष्ठ! आप सत्य बोलिये। कहाँ से आ रहे हैं? कौन हैं? हे करुणा सिन्धो! मुझसे कुछ मत छिपाइये।

गीत संख्या-१७

ज्ञातपरिचयो विभीषणः हनूमन्तं प्रति-

वद वद पवनकुमार हे रामः कदा कृपां कर्ता।।
कदा भानुकुलनाथो नितरामनाथम्।
मां विधाता भाग्यहीनं सबलं सनाथम्।।
वद वद परमोदार हे रामो दयां कदा कर्ता।।१।।
कदा रामो दर्शयिता वदनारविन्दम्।
कदा मां प्रहर्षयिता हृतसौख्यकन्दम्।।
वद वद भजनैकसार हे रामः कदा भवं भर्ता।।२।।
कदा शरणमायातं मामनन्यपालः।
त्राताभीमभवसिन्धोः कौसल्यालालः।।
वद वद करुणाकूपार हे रामो भयं कदा हर्ता।।३।।

त्वं तु वेत्सि राघवस्य सरलं स्वभावम्।
विधिहरिहराणां दुरापं प्रभावम्।।
वद वद गिरिधराधार हे रामः कदाऽकं संहर्ता।।४।।

भौमी– परिचय जानने के पश्चात् विभीषण हनुमानजी से कहते हैं। हे पवनकुमार! बोलिये– बोलिये। श्रीराम मेरे ऊपर कब कृपा करेंगे? सूर्यकुल के नाथ भगवान राम मुझ अनाथ भाग्यहीन को कब समर्थ और सनाथ बनायेंगे? हे परमोदार! बताइये, बताइये! श्रीराम कब मुझ पर दया करेंगे? हे हनुमानजी! श्रीराम मुझे अपना मुखकमल कब दिखायेंगे? मुझ सुखहीन को कब प्रसन्न करेंगे। हे भजनसार सर्वस्व हनुमानजी! आप बतायें कि श्रीराम मेरा कब कल्याण करेंगे? हे करुणा के सागर हनुमानजी! बतायें कि शरण में आये हुये मुझ विभीषण को अनन्यों के पालक कौसल्यानन्दन श्रीराम भवसागर से कब पार करेंगे और मेरा भय कब दूर करेंगे? आप तो श्रीराम का सरल–स्वभाव और ब्रह्मा, विष्णु, शिवजी के लिये भी दुर्लभ प्रभाव को जानते हैं। हे **गिरिधर** कवि के आधार हनुमानजी! आप बतायें कि श्रीराम मेरे दुःख का संहार कब करेंगे?

गीत संख्या–१८

हनूमान् विभीषणं प्रति–

व्रज शरणं रघुनाथं हे मा शोच विभीषण।
व्रज शरणं दीनानाथं हे मा लोच विभीषण।।१।।
त्यज ममतामदमोहं हे निजानन्दव्यपोहम्।
व्रज शरणं लोकनाथं हे माऽनुशोच विभीषण।।२।।
प्रणतकल्पमन्दारं हे भवविपद्विदारम्।
व्रज शरणं नृपनाथं हे मा विलोच विभीषण।।३।।
करतलधृतशरचापं हे हतसेवकतापम्।
व्रज शरणं जगन्नाथं हे मा निशोच विभीषण।।४।।
गिरिधरहृदयविहारं हे विगलितभवभारम्।
व्रज शरणं सीतानाथं हे माऽवशोच विभीषण।।५।।

भौमी– अब हनुमानजी विभीषण के प्रति कहते हैं–हे विभीषण! रघुनाथजी की शरण में जाओ और चिन्ता मत करो। अब तुम दीनानाथ के शरण में जाओ, व्यर्थ के गुण–दोषों की आलोचना मत करो। हे विभीषण! अपने आनन्द को नष्ट करने वाले ममता–मद–मोह को छोड़ो, लोकनाथ भगवान की शरण में जाओ, पश्चात्ताप मत करो। हे विभीषण! प्रणतों के लिये कल्पवृक्ष स्वरूप संसार की विपत्ति नष्ट करने वाले राजाओं के भी राजा श्रीराम की शरण में जाओ, व्यर्थ का विचार मत करो। हाथ में धनुष–बाण लिये हुये सेवकों का कष्ट दूर करने वाले जगन्नाथ की शरण में जाओ। हे विभीषण! निरर्थक शोक मत करो। हे विभीषण! **गिरिधर** कवि के हृदय में विहार करने वाले भवभयभार को दूर करने वाले सीतानाथ श्रीराम की शरण में जाओ। अवमूल्यन करने वाला शोक मत करो।

सन्दर्भश्लोकः

विभीषणं समाभाष्य गतोऽशोकवनं कपिः।
ददर्श मैथिलीं शुक्लपक्ष इन्दुप्रभामिव।।१।।

भौमी- विभीषण को आश्वासन देकर हनुमानजी अशोक वाटिका गये और वहाँ सीताजी को शुक्ल पक्ष के प्रतिपदा की चंद्रप्रभा की भाँति देखा।

गीत संख्या-१९

कविर्गायति-

दृष्टा सीताऽशोकवने वियोगविग्ना महाकपिना।।
प्रतिपच्चन्द्रलेखेव शोभाविहीना।
परिरक्षिता राक्षसीभिः सुदीना।।
दृष्टा सीताऽशोकविपिने विरहलग्ना महाकपिना।।१।।
राहुग्रस्तविधू रोहिणीव विकला।
कनकशलाकेव वह्निकृतशकला।।
दृष्टा सीताऽशोकदहने विगतोपघ्ना महाकपिना।।२।।
शूनीभिः समावृता मृगीव मृगीदृशी।
शालिनीव विना शुष्यन्तीव कृषी।।
दृष्टा सीताऽशोकगहने विपत्तिमग्ना महाकपिना।।३।।
उपवासकृषा वेपमाना दुर्बलाङ्गी।
खलनीचदृशा वीक्ष्यमाणा निर्बलाङ्गी।।
दृष्टा सीताऽशोकवहने विभवभग्ना महाकपिना।।४।।
विनाथेव नाथं मुहुर्मुहुर्विकाङ्क्षन्ती।
गिरिधरप्रभुं विश्वाविश्वं विवाञ्छन्ती।।
दृष्टा सीताऽशोकतरुधने नैर्ऋतनिघ्ना महाकपिना।।५।।

भौमी- कवि स्वयं गाते हैं- अशोक वन में महाकपि हनुमानजी ने सीताजी को वियोग से उद्विग्न देखा। यहाँ भी प्रतिपदा की चंद्रलेखा की भाँति शोभा से विहीन, राक्षसियों से परिरक्षित, अत्यंत दीन, वियोग में लीन सीताजी को हनुमान जी ने देखा। राहु से ग्रस्त चंद्रमा वाली रोहिणी के समान विकल और अग्नि द्वारा जलाकर टुकड़े में विभक्त की गयी, स्वर्ण की सलाई की भाँति, सीताजी को हनुमानजी ने वन में आधाररहित लता की भाँति देखा। कुत्तियों से घिरी हुयी मृगी की भाँति एवं जल के बिना सूख रही धान की खेती की भाँति मृगनयनी

सीताजी को हनुमानजी ने अशोक वन में विपत्ति मग्न देखा। उपवास से दुर्बल काँपती हुयी, विह्वल अंगों वाली, नीच रावण की खल दृष्टि से देखी जा रही, निर्बल शरीरा सीताजी को हनुमानजी ने अशोक वन में विभव से रहित देखा। अनाथ की भाँति अपने नाथ श्रीराम की बार–बार इच्छा करती हुयी और धनहीन हुयी–सी अपने विशिष्ट धन **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम की अपेक्षा करती हुयी सीताजी को हनुमानजी ने अशोक वन में राक्षसों से पराधीन देखा।

गीत संख्या–२०

हनुमान् श्रियं वीक्ष्य प्रेयाय।।
अध्यशोकवनं वराङ्गीं पतिवियोगकृशां कृशाङ्गीम्।
मरणकृतनिश्चयां पश्यन् तां च शनैरियाय।।१।।
एकवेणीधरां दीनां एकपत्नीं पतिविहीनाम्।
एकलां प्ररुरोद दृष्ट्वा कपिर्धृतिं विहाय।।२।।
राक्षसीभिः रक्ष्यमाणां क्रूरदृग्भिः वीक्ष्यमाणाम्।
वीक्ष्य वक्षोऽतुदत्तुदतीं धैर्यमिव परिहाय।।३।।
राम राम सदा जपन्तीं हा हतास्मीत्थं लपन्तीम्।
मुहुर्धातारं शपन्तीं पटैर्मुखं पिधाय।।४।।
शोकसागरमध्यमग्नां करिवधूमिव पङ्कलग्नाम्।
पोतमिव समुपैत्य गिरिधरकपिर्जगौ सुखाय।।५।।

भौमी– हनुमानजी सीताजी को देखकर उनके निकट गये। अशोक वन में श्रेष्ठ अंगों वाली और पति के वियोग से दुर्बल अंगों वाली सीताजी को मरने के लिये निश्चय की हुयी देखकर धीरे–धीरे उनके निकट गये। जूड़े को जटाजूट बनाकर एक चोटी बाँधी हुयी एकमात्र पत्नीव्रता, दीन श्रीसीताजी को अकेली देखकर धैर्य छोड़कर हनुमानजी फूट–फूटकर रोने लगे। राक्षसियों द्वारा सुरक्षित होती हुयी, क्रूर–दृष्टियों द्वारा देखी जाती हुयी, धैर्य छोड़कर, बार–बार छाती पीटती हुयी, राम–राम सदा इस प्रकार जप करती हुयी, 'अरे मैं मार डाली गयी' इस प्रकार विलाप करती हुयी कपड़े से मुख ढँककर विधाता को बार–बार कोसती हुयी सीताजी को देखकर हनुमानजी रोने लगे। कीचड़ में फँसी हुयी हथिनी की भाँति, शोक सागर के बीच डूबती हुयी सीताजी के पास जल–जहाज की भाँति पहुँचकर **गिरिधर** कवि के स्वामी हनुमानजी सीताजी के सुख के लिये इस प्रकार गा पड़े।

विशेष– यह गीत रूपक ताल में निबद्ध है।

गीत संख्या–२१

मातरहं रघुनायकदूतः।
हनुमान्नामो वायुसङ्कल्पात् तुभ्यं मात्रेऽञ्जनया सूतः।।१।।

ज्येष्ठो दशरथराजकुमारो रामो नामभुवनविख्यातः।
त्यक्त्वा भवनं पितृनिदेशतः सह सीतया विपिनमायातः।।२।।
सह लक्ष्मणो दण्डकेऽवात्तां सीतारामौ जनाभिरामौ।
शतशतरतीकन्दर्पदर्पहररूपौ हरहृल्ललितललामौ।।३।।
भौमीमहरन्नीचरावणो हेमहरिणमभिरामे याते।
रघुनाथोऽमित्रयन् मित्रजं साक्षिणि मयि किल मारुतताते।।४।।
त्वां मृगयन्नहमेक आगतः तत्प्रेषितः पयोनिधिपारे।
अत्राद्राक्षं त्वां सुयोगतः सीदन्तीं ननु विरहेऽपारे।।५।।
शोकं विसृज गृहाण मुद्रिकां मयि विश्वसिहि जननि मम सीते।
अचिराद्रक्षसि निहतरावणं श्रीरघुवीरं गिरिधरगीते।।६।।

भौमी- हे माँ! मैं रघुनायक श्रीराम का दूत हूँ। मेरा नाम हनुमान है। आपके लिये ही वायु के संकल्प से माता अंजना ने मुझे जन्म दिया है। महाराज दशरथ के ज्येष्ठ राजकुमार जो कि रामनाम से भुवन में प्रसिद्ध हैं, पिताश्री की आज्ञा से राज्य छोड़कर वन में आये। वे लोकों को आनन्द देने वाले, अपने सौंदर्य से करोड़ों रति-कामदेवों का अहंकार दूर करने वाले, शिवजी के हृदय के सुन्दररत्नरूप श्रीसीतारामजी लक्ष्मणजी के साथ दण्डक वन में निवास किये। स्वर्ण मृग के पीछे-पीछे श्रीराम के चले जाने पर नीच रावण ने सीताजी का हरण कर लिया और वायुपुत्र मुझ हनुमान को साक्षी बनाकर रघुनाथजी ने सूर्यपुत्र सुग्रीव को अपना मित्र बनाया। श्रीरघुनाथजी के द्वारा भेजा गया मैं आपको ढूँढते-ढूँढते अकेले समुद्रपार आ गया और यहाँ संयोग से अपार विरह में डूबती हुई मैंने आपको देखा। हे **गिरिधर** कवि द्वारा गायी हुई माता सीता! शोक छोड़िये, मुद्रिका लीजिये और मुझ पर विश्वास कीजिये। आप रावण का वध किये हुये समर विजयी श्रीराम को शीघ्र ही देखेंगी।

गीत संख्या-२२

रघुवरचरं मां प्रत्येहि।
सत्यमेवाभिदध ईश्वरि निर्भयं समवेहि।।१।।
प्रत्ययं च निरत्ययं सुनिरर्गलं निरवेहि।
निम्ननैर्ऋतनिरयनीचं निर्हतं च निरेहि।।२।।
सत्यमहं प्रतिश्रृणोमि न मत् कदापि परेहि।
साम्प्रतं विश्वसिहि भद्रे नैव मद् विपरेहि।।३।।
रामबाणहुताशशलभं रावणं त्वमवेहि।
राघवाभ्यां युता गिरिधरहृदयकमलमुपेहि।।४।।

भौमी- हनुमानजी फिर कहने लगे-हे माँ! आप मुझे श्रीराम का दूत जानिये और विश्वास कीजिये। मैं सत्य बोल रहा हूँ। आप निर्भय होकर मुझ पर विश्वास कीजिये। हे माँ! विघ्नरहित यह विश्वास किसी प्रकार के

बन्धनों से युक्त नहीं है अर्थात् सब प्रकार से निरर्गल है और निम्नगामी राक्षसरूप नीच नरक को अब पूर्णरूपेण समाप्त ही समझिये। मैं सत्य ही बोल रहा हूँ और सत्य की प्रतिज्ञा भी कर रहा हूँ। हे कल्याणी! मुझसे दूर मत जाइये। इस समय आप मुझ पर विश्वास कीजिये। मुझसे विपरीत कुछ मत सोचिये। आप रावण को श्रीराम के बाणाग्नि का पतंगा ही समझिये और श्रीरामलक्ष्मण से युक्त होकर **गिरिधर** कवि के हृदयकमल में विराजमान होइये।

गीत संख्या–२३

सीता पृच्छति–

कस्त्वं रामकथामिह गायसि।
कर्णकलं कान्तं कमनीयं कस्त्वं करुणं कायसि।।१।।
कस्त्वं नन्दनचन्दनचर्चितचन्दनवपुषं चायसि।
परमहंसमुनिहृदये निहितमथ सुजनहितं निश्चायसि।।२।।
स्मारं स्मारं स्मरहरहृद्यं नैव मनागाग्लायसि।
पारेसिन्धु निशाचरपुर्यां न त्वं मनसा म्लायसि।।३।।
निरुपधि संवर्णयन् प्रियतमं श्रमं च नैवाधायसि।
गिरिधरप्रभुं स्वधिया ध्यापयन् मुहुरथ ध्येयं ध्यायसि।।४।।

भौमी– अब सीताजी प्रश्न करती हैं– अरे भाई! तुम कौन हो, जो श्रीराम कथा गा रहे हो? तुम कौन हो जो कानों को मधुर लगने वाली अत्यंत कमनीय करुणगाथा का विस्तार कर रहे हो? नन्दनवन के चन्दन से लेपित शीतल शरीर वाले प्रभु को तुम कौन विस्तार से गा रहे हो और परमहंस और मुनियों के हृदय में विराजमान सुजनों के हितैषी परमात्मा को इतने निश्चय से गा रहे हो? शिवजी के भी हृदयहारी प्रभु राघव का स्मरण करके तुम थक नहीं रहे हो और समुद्र के पार इस राक्षसपुरी में आकर भी तुम मन से भी भयभीत नहीं हो रहे हो। निष्कपट रूप से परमात्मा को अपने हृदय में समेटकर भी तुम श्रम नहीं धारण कर रहे हो। **गिरिधर** कवि के प्रभु श्रीराम को अपनी बुद्धि के द्वारा ध्यान का विषय बनाकर भी अपने ध्येय का तुम बार–बार ध्यान कर रहे हो।

गीत संख्या–२४

हनूमान्नुत्तरयति–

मयि रामदूते किं भवत्या न प्रतीयते।
वाताञ्जनाप्रसूते भवत्या न प्रतीयते।।
कतिभिश्क्षणैर्गोष्पदितसमुद्रे अर्पितरामनाममयमुद्रे।
गौतमसुतासूते भवत्या न प्रतीयते।।१।।
निजमतिबलपरितोषितसुरसे वीर्यविहतसिंहिकाछले विरसे।
प्रभुभक्त्याऽभिभूते भवत्या न प्रतीयते।।२।।

मुष्ठिकाप्रहारविह्वलीकृतलङ्के प्रविष्टे दशाननगरमशङ्के।
बालब्रह्मचर्यपूते भवत्या न प्रतीयते।।३।।
विहितत्वदीयप्रतिप्रश्नसमाधाने विखण्डितानेकतर्कतरुणविताने।
गिरिधरेशि पुत्रीभूते भवत्या न प्रतीयते।।४।।

भौमी– अब हनुमानजी उत्तर दे रहे हैं–मुझ रामदूत पर आप विश्वास क्यों नहीं कर रही हैं? वायु और अंजना से उत्पन्न मुझ हनुमान पर आप क्यों विश्वास नहीं कर रही हैं? अपने बुद्धि-बल से सुरसा को संतुष्ट करने वाले, सिंहिका का वध करके उसके छल को नीरस बनाने वाले और भगवान की भक्ति से अभिभूत मुझ हनुमान पर आप विश्वास क्यों नहीं कर रही हैं। मुष्ठिका के प्रहार से लंकिनी को विह्वल करने वाले और शंकारहित मन से रावण के नगर में प्रवेश करने वाले और बालब्रह्मचर्य से पवित्र मुझ हनुमान पर आप विश्वास क्यों नहीं कर रही हैं। आपके प्रश्नों का समाधान करने वाले और आपके अनेक नये-नये तर्कों के जाल का खण्डन करने वाले **गिरिधर** कवि के ईश्वर श्रीराम के पुत्रकल्प मुझ हनुमान पर आप क्यों विश्वास नहीं कर रही हैं।

गीत संख्या-२५

अहं नूनं देवि रामचन्द्रदासो वैदेहि मयि विश्वस्यताम्।।
मुखधृतरामनामाङ्कितसुमुद्रिकः कुतुकलङ्घितसर्वसङ्कटसमुद्रिकः।
अहं नूनं देवि कोसलेन्द्रदासो वैदेहि मयि विश्वस्यताम्।।१।।
मैनाकदत्तप्रलोभनमुपेक्षमाणो रामकार्यं प्राथमिकतयाऽप्यपेक्षमाणः।
अहं नूनं देवि राघवेन्द्रदासो वैदेहि मयि विश्वस्यताम्।।२।।
समाधाय सुरसां सिंहिकागृहीतछायः क्षणादेव विनिर्धूतराहुमातृमायः।
अहं नूनं देवि पार्थिवेन्द्रदासो वैदेहि मयि विश्वस्यताम्।।३।।
एकसमाप्लुत्यैव विलङ्घितसमुद्रः स्वमनोमहितगिरिधरगीश्चकोरीचन्द्रः।
अहं नूनं देवि रामभद्रदासः वैदेहि मयि विश्वस्यताम्।।४।।

भौमी– हे देवी वैदेही! मैं निश्चित श्रीरामचंद्र का दास हूँ। आप मुझ पर विश्वास कीजिये। मुख में श्रीराम नामांकित मुद्रिका लेकर मैं खेल-खेल में सम्पूर्ण संकटों से भरा हुआ समुद्र लाँघ गया। मैं कोसलेन्द्र भगवान का दास हूँ। आप मुझ पर विश्वास कीजिये। मैनाक के दिये हुये प्रलोभन की उपेक्षा करता हुआ, प्राथमिकता से श्रीराम कार्य की अपेक्षा करता हुआ, मैं प्रभु राघवेन्द्र का दास हूँ। आप मुझ पर विश्वास कीजिये। सुरसा का समाधान करके, सिंहिका के द्वारा छाया पकड़े जाने पर, एक क्षण में राहु की माता की माया को नष्ट करने वाला मैं राजाओं के राजा श्रीराम का दास हूँ। आप मुझ पर विश्वास कीजिये। एक ही छलांग में सागर को लाँघने वाला और अपने मन में **गिरिधर** कवि के वाणी रूप चकोरी के चन्द्रमा श्रीराम की पूजा करने वाला मैं रामभद्र भगवान का दास हूँ। आप मुझ पर विश्वास कीजिये।

विशेष– यह गीत 'कहरवा' लोकधुन में निबद्ध है।

गीत संख्या-२६

सीता हनुमन्तं प्रति-

केसरिनन्दन सहस्त्रयुगं जीव्या।
मारुतनन्दन सहस्त्रयुगं जीव्याः।।
वज्रसंहननोऽजरोऽमरो भव प्रवीरः।
वीर्यवेगविनिन्दितप्रलयमयसमीरः।।
मेदिनीमण्डन सहस्त्रयुगं जीव्याः।
केसरिनन्दन सहस्त्रयुगं जीव्याः।।१।।
भवशीलतो विजितशतशतनिशेषः।
प्रवलप्रतापतप्तकोटिशितदिनेशः ।।
भवभारखण्डन सहस्त्रयुगं जीव्याः।
केसरिनन्दन सहस्त्रयुगं जीव्याः।।२।।
क्वापि त्वां न बाधेतां बुभुक्षापिपासे।
कपिगुरुं न गाधेतां व्यथाकथाजिहासे।।
जनमनोरञ्जन सहस्त्रयुगं जीव्याः।
केसरिनन्दन सहस्त्रयुगं जीव्याः।।३।।
गिरिधरसारङ्गनवीननववनधर ।
मनोमन्दिराधिराजमान मैथिलीवर।।
जगदगचन्दन सहस्त्रयुगं जीव्याः।
केसरिनन्दन सहस्त्रयुगं जीव्याः।।४।।

भौमी- अब सीताजी हनुमानजी से कहती हैं-हे केसरीनन्दन! तुम हजारों युगों तक जीते रहो। हे वायु के पुत्र! तुम हजारों युगों तक जीते रहो। वज्र के समान शरीर वाले, अजर, अमर, श्रेष्ठवीर, अपने वेग से प्रलयंकारी वायु की निन्दा करने वाले, हे पृथ्वी के आभूषण हनुमान! तुम हजारों युगों तक जीते रहो। तुम अपने शील से करोड़ों चंद्रमा को जीतो और अपने प्रताप से करोड़ों सूर्यों पर विजय पाओ। हे भवभारहारी! तुम करोड़ों-युगों तक जीते रहो। तुम्हें भूख-प्यास कभी न सतायें और वानरों के प्रमुख तुम हनुमान को व्यथा और श्रीरामकथा के त्याग इच्छा कभी न बिलोभित करे। हे भक्तों के मनोरंजन हनुमान! तुम सहस्त्र युगों तक जीओ। हे **गिरिधर** कवि रूप चातक के नवीन मेघ और अपने मन-मंदिर में सीतापति श्रीराम को विराजमान कराने वाले, हे जड़-चेतनों को प्रसन्न करने वाले हनुमान! तुम सहस्त्र युगों तक जीयो।

गीत संख्या-२७

त्वयि भवतात् कृपालुः सीतानाथः।
सहस्त्रकल्पं जीव्याः बलवन्।।
अजरस्त्वममरो भवेच्छामृत्युरज्वरः।
कोटिकोटितपनप्रतापो जितनिर्जरः।।
त्वयि भवतात् कृपालुर्दीनानाथः।
सहस्त्रकल्पं जीव्याः बुद्धिमन्।।१।।
वर्धतां प्रतापस्तव मध्याह्नभानुवत्।
समेधतां तेजस्तव ग्रैष्मककृशानुवत्।।
त्वयि भवतात् दयालुर्लोकनाथः।
सहस्त्रकल्पं जीव्याः शीलवन्।।२।।
सोमकोटिसमशीलं शीलयतु भवन्तम्।
कोटिलोमशायुरपि यात्वायुष्मन्तम्।।
त्वयि भवतात् कृपालू रमानाथः।
सहस्त्रकल्पं जीव्या भक्तिमन्।।३।।
भागीरथीधारा यथा त्वयि भक्तिर्वर्धताम्।
राघवानुरक्तिर्वार्धिवीचिवत् समर्धताम्।।
त्वयि भवताद् दयालुर्जगन्नाथः।
सहस्त्रकल्पं जीव्या द्युतिमन्।।४।।
लङ्घित्वा समुद्रं त्वं समुद्रं इहायातः।
नैव प्राकृतोऽसि कपिर्गिरिधरपारिजातः।।
त्वयि भवताद् दयालू रघुनाथः।
सहस्त्रकल्पं जीव्याः हनूमन्।।५।।

भौमी– हे बलवान! तुम पर मुझ सीता के नाथ श्रीराघव कृपालु हों। तुम हजारों वर्षों तक जीवित रहो। तुम अजर हो, अमर हो, तुम्हारी इच्छामृत्यु हो, तुम ज्वरहीन हो, करोड़ों सूर्यों के समान प्रतापवान और देवताओं के विजेता बनो, तुम पर दीना शबरी के नाथ श्रीराघव कृपालु हों। हे बुद्धिमान! तुम सहस्त्रों कल्पों तक जीओ। तुम्हारा प्रताप मध्याह्न सूर्य की भाँति बढ़े और तुम्हारा तेज ग्रीष्म सूर्य की भाँति समृद्ध हो, तुम पर लोकनाथ श्रीराम दयालु हों। हे शीलवान! तुम सहस्त्र कल्पपर्यंत जीओ। करोड़ों चंद्रमा का शील तुम्हें

सनाथित करें और करोड़ों लोमशों का आयु तुम्हें मिल जाये, तुम पर मुझ रमा के नाथ श्रीरघुवीर दयालु हों और तुम भक्तिमान होकर सहस्रों कल्पों तक जीओ। हे प्रकाशमान! गंगाजी की धारा के समान भक्ति का प्रवाह तुममें बढ़ता रहे और तुममें समुद्र की लहरों की भाँति श्रीराघव का प्रेम लहराता रहे। तुम पर जगत के नाथ श्रीराघव दयालु हों। तुम सहस्रों कल्पों तक जीयो। मुद्रिका लेकर समुद्र को लाँघकर तुम यहाँ आये। तुम साधारण वानर नहीं हो। तुम तो **गिरिधर** कवि के लिये कल्पवृक्ष हो। तुम पर रघुनाथजी दयालु हों। हे हनुमान! तुम सहस्रों कल्पों पर्यंत जीते रहो।

विशेष- यह गीत 'सुगम-संगीत' के स्वर में निबद्ध है।

गीत संख्या-२८

अन्यच्च-

हनूमन्वानराकारं नहि त्वां प्राकृतं मन्ये।
महात्मन्मर्कटाकारं नहि त्वां प्राकृतं मन्ये।।
मुखे प्रभुमुद्रिकां रक्षन्खलेभ्यः साध्वसं यच्छन्।
पयोधेरागतः पारं नहि त्वां प्राकृतं मन्ये।।१।।
विहतमैनाकसत्कारं सुमितसुरसामुखाकारम्।
दमितहरिकावपुःसारं नहि त्वां प्राकृतं मन्ये।।२।।
मथित्वा लङ्किनीं लङ्कां समायाः मां सदाशङ्काम्।
क्षपितमद् विरहकूपारं नहि त्वां प्राकृतं मन्ये।।३।।
न तेऽभूद् रावणात्त्रासो व्यवर्धद्दहरिमुखोल्लासः।
कपिं गिरिधरगिराधारं नहि त्वां प्राकृतं मन्ये।।४।।

भौमी- सीताजी और भी कहती हैं- हे हनुमान! वानर का आकार होने पर भी मैं तुम्हें सामान्य वानर नहीं मानती। हे महात्मन् ! चंचल वानर के आकार में होने पर भी मैं तुम्हें प्राकृत नहीं मानती। अरे! अपने मुख में लेकर प्रभु की मुद्रिका की रक्षा करते हुये, दुष्टों को भय देते हुये, तुम सागर के पार आये। मैं तुम्हें प्राकृत नहीं मानती। मैनाक के सत्कार को ठुकराने वाले, सुरसा के मुख की सीमा को सीमित करने वाले एवं सिंहिका का शरीर फाड़ देने वाले हनुमान, तुमको मैं प्राकृत नहीं मानती। अरे! लंकिनी को मारकर आशंकाओं से घिरी हुयी मुझे देखने के लिये तुम लंका आये। मेरे विरह सागर को सोखने वाले तुम हनुमान को मैं प्राकृत नहीं मानती। तुम्हें रावण से डर भी नहीं लगा! उल्टे तुम्हारे कृत्य से प्रभु श्रीराम का मुखोल्लास ही बढ़ा। अतः **गिरिधर** कवि की वाणी के आधाररूप, तुम हनुमान को मैं प्राकृत वानर नहीं मानती।

गीत संख्या-२९

त्वं महादेवः कैलाशवासी शिवः।
काशसे कीसरूपो मदर्थं कपे।।

त्वं वृषासीनः काशीनिवासी भवः।
भाषसे मर्कभूपो मदर्थं कपे।।
रामनामाङ्कामित्वा प्रभोर्मुद्रिकाम्।
वेलामाया ह्यवाचीञ्च सामुद्रिकाम्।।
कृत्वा मूर्धनि पदं वैरिणां स्वापदम्।
सच्चतुष्पत्स्वरूपः कपे मत्कृते।।१।।
मञ्जुमैनाकमाननञ्चनाजीगणः ।
सुरसावक्त्रं समानञ्चनाविव्रणः।।
कृत्वा लङ्कां सशङ्कां समायाश्च माम्।
खातयज्ञेड्ययूपः कपे मत्कृते।।२।।
नात्यभैषीर्मनाग् रावाणाद् धीधनः।
नाप्यभैत्षीःस्वधैर्यं ह्यनल्पं जनः।।
मद्विरहवारिधौ पोतभूतो भटः।
भग्नसंसारकूपः कपे! मत्कृते।।३।।
त्वं सदा शङ्करो रामसेवापरः।
दृश्यसे प्राकृतैः प्राकृतो वानरः।
गिरिधरानन्ददायी हनूमान् हरिः।
क्लृप्तकौणपविरूपः कपे मत्कृते।।४।।

भौमी- हे हनुमानजी! आप कैलासवासी महादेव शिव हैं। आपने मेरे लिये वानर का रूप धारणकर लिया है। आप नंदी पर सवार काशी निवासी कल्याणमय भव हैं। केवल मेरे लिये वानरश्रेष्ठ बन गये हैं। प्रभु श्रीराम से राम-नामांकित मुद्रिका प्राप्त कर, पशु-विग्रह धारण कर, शत्रुओं के सिर पर चरण रखकर आप समुद्र के दक्षिण तट पर आ गये। वस्तुतः आप मेरे लिये ही चौपाये के स्वरूप में दिख रहे हैं। आपने मैनाक का सम्मान ठुकराया और सुरसा के मुख को भी व्रणित न करके उसमें प्रवेश किया। लंका को सशंक करके मेरे पास आये और मेरे लिये ही लंका में युद्धयज्ञ का खंभा गाड़ दिया। बुद्धि को धन मानने वाले आप, रावण से थोड़ा भी नहीं डरे और आप श्रीराम के भक्त हनुमान अपना धैर्य भी नहीं छोड़े। मेरे विरह महासागर के आप जहाज बने और मेरे लिये ही आपने संसार-कूप को ही समाप्त कर दिया। आप सदाशिव श्रीराम की सेवा में तत्पर होकर भी सामान्य लोगों के द्वारा सामान्य वानर के जैसे दिखते हैं। **गिरिधर** कवि को आनन्द देने वाले, वानराकार, श्रीरामनामामृत पीने वाले, आपश्री हनुमान ने मेरे लिये ही राक्षसों को विकृत रूप करने का संकल्प लिया।

गीत संख्या-३०

देव्यो गायन्ति-

लङ्कामधाक्षीत् सशङ्कां हे अञ्जनायाः कुमारः।।
सीतां प्रणम्य मृष्टफलं भक्षयित्वा।
यातुधानयूथं यमलोके रक्षयित्वा।।
लङ्कामकार्षीद्रक्तपङ्कां हे वायुपुत्रोऽत्युदारः।।१।।
विधवामिवाशोकवाटीं हासयित्वा।
आरामस्य रम्यरम्यतरून्नाशयित्वा।।
लङ्कामभाङ्क्षीत् करुणाङ्कां हे सत्पराक्रमकूपारः।।२।।
अक्षं सूदयित्वा निशाचरान् धर्षयित्वा।
दशमौलये च बाहुबलं दर्शयित्वा।।
लङ्कामभाक्षीद् भर्जिताङ्कां हे महारुद्रावतारः।।३।।
यातुधाननारी रुरस्ताडं रोदयित्वा।
विविधवधूवन्दीर्वन्दमाना मोदयित्वा।।
लङ्कामहार्षीदतिरङ्कां हे गिरिधरगिरः श्रृङ्गारः।।४।।

भौमी- अब देव-बधुएँ गा रही हैं-अहो! अन्जनापुत्र हनुमानजी ने भयभीत लंका को जला दिया। सीताजी को प्रणाम करके अशोकवाटिका के मधुरफल खाकर राक्षसयूथपतियों के लिये यमलोक में आरक्षण कराकर अत्यन्त उदार वायुपुत्र हनुमानजी ने लंका को रक्त के कीचड़ से युक्त कर दिया। भगवद्भजनहीन विधवा की भाँति अशोकवाटिका की परिहास विडंबना करके और वन के सुन्दर-सुन्दर वृक्षों को नष्ट करके, श्रेष्ठ पराक्रम के महासागर हनुमान ने करुण चिन्हों वाली लंका को तहस-नहस कर दिया। अक्ष का वध करके, राक्षसों को रौंदकर, रावण को बाहुबल के दर्शन कराकर महारुद्रावतार हनुमानजी ने नगर की सभी सामग्रियों को भूनकर लंकापुरी को भी जला-जलाकर भून डाला। छाती पिट-पिटाकर, राक्षसपत्नियों को रुलाकर और रावण के बंदीगृह में पड़ी हुई प्रभु को प्रणाम करने वाली देववधुओं को प्रसन्न करके **गिरिधर** कवि की वाणी के श्रृंगार हनुमानजी ने लंका को अत्यन्त दरिद्रा बना दिया।

गीत संख्या-३१

कविर्गायति-

क्रीडति बलबीरो हनुमान् लङ्कापुरे होलीं दुरन्ताम्।।
तैलघृताक्तपटैस्तृणतूलैर्बध्वा वरलाङ्गूले।

दशमुखाज्ञया कुणपघस्मरैर्वह्निप्रदीपितमूले।।
स्फुलिङ्गमालाज्वलितदिगन्तां क्रीडति रणधीरो हनुमान्।
लङ्कापुरे होलीं दुरन्ताम्।।१।।
चटचटपटपटशरशरमरमरचण्डध्वनिध्वनितत्रिलोकः।
प्रलयदहन इव दलितदशास्यदववलितक्षपाटदारशोकः।।
करालज्वालाकृतशर्वशान्तां क्रीडति सुसमीरो हनुमान्।
लङ्कापुरे होलीं दुरन्ताम्।।२।।
देहि जलं देहि देहि परेहि परेहि रक्ष रक्ष वस्तु पाहि जीवधानीम्।
एवं विधं विलपद् बालवृद्धनरनारीरवां रावयन् रावणराजधानीम्।।
भसितचकितितचन्द्रकान्तां क्रीडति मतिधीरो हनुमान्।
लङ्कापुरे होलीं दुरन्ताम्।।३।।
रोषघृतयातुधानयवतिलधानहव्य लूमस्त्रुक्प्रहुतधूमकेतुः।
स्वाहामहागर्जनत्रासितनिशाचरमहो गिरिधरमनोमोदहेतु-
र्बलाब्धिक्लिन्नवीरतासीमन्तां क्रीडति महावीरो हनुमान्।
लङ्कापुरे होलीं दुरन्ताम्।।४।।

भौमी- अब महाकवि स्वयं गा रहे हैं-आज बलशाली वीर हनुमान लंकापुरी में कभी न नष्ट होने वाली होली खेल रहे हैं। दसमुखों वाले रावण की आज्ञा से दुष्ट राक्षसों द्वारा तेल और घी से भिगे हुये गीले हुए वस्त्रों-सूखी घासों तथा रुई से लांगूर को बाँधकर पुनः हनुमानजी की पूँछ की जड़ में पूजा के बहाने जलाये हुये दीपक से आग लगा दिये जाने पर रणधीर हनुमान अग्नि की लपट से दिगंतों को प्रकाशित करने वाली होली खेल रहे हैं। चट-चट-पट-पट-शर-शर-मर-मर जैसे अग्नि जलने की स्वाभाविक भयंकर ध्वनि से तीनों लोकों को ध्वनित करते हुये, प्रलयकालीन अग्नि के समान रावण के वन को नष्ट करके, राक्षस-पत्नियों के शोक को बल देने वाले, सुन्दर वायु से प्रेरित हनुमानजी कराल ज्वाला से शिवजी को भी शान्त कर देने वाली भयंकर होली लंका में खेल रहे हैं। जल दो-जल दो-जल दो, भागो-भागो, वस्तु की रक्षा करो, शरीर की रक्षा करो। इस प्रकार विलाप करते हुये बाल-वृद्ध नर नारियों के चीत्कार से व्याप्त रावण की राजधानी लंका को रुलाते हुये मतिधीर हनुमानजी लंका में जले हुये भवनों की राख से चंद्रकान्त अर्थात् चन्द्रमा से सुशोभित शिवजी को चकित करने वाली, कभी न समाप्त होने वाली होली खेल रहे हैं। क्रोध रूप घी और राक्षस रूप जौ-तिल-धान मिश्रित हव्य से पूँछ को स्रुवा बनाकर हवन करके धूमध्वज अग्नि को प्रसन्न करने वाले, स्वाहारूप श्रीरामनाम के महागर्जन से राक्षस-भटों को भयभीत करके **गिरिधर** कवि की मानसिक प्रसन्नता के मूल कारण महावीर हनुमानजी अपने बाहुबल के महासागर में

वीरतारूपिणी नायिका के सिर के जूड़े को स्नान कराकर लंकापुर में कभी भी विश्राम न लेने वाली होली खेल रहे हैं।

विशेष- यह गीत दीपचन्दी ताल मध्यलय और राग-काफी में निबद्ध है।

गीत संख्या-३२

लङ्कादाहनहोलीं प्रक्रीड्य नक्तंचरयूथभटान् प्रपीड्य।।
दशमुखं रामवीर्यं प्रगाय भस्मसाद्राजधानीं विधाय।
उपदिश्य रामबलवीर्यधाम प्रविभज्य शक्रजित् बद्धदाम।।१।।
क्रीडित्वा सुभटैः समरधाम्नि आजन्मप्रतीतो रामनाम्नि।
वाटीं विभज्य कुणपान् विमथ्य रणरङ्गचुञ्चुमक्षं प्रमथ्य।।२।।
घननादप्रयुक्तं मुदाश्रित्य ब्रह्मास्त्रममोघं समादृत्य।
नीतोऽथ सभां कुणपान् प्रदृश्य रावणं रामनामोपदिश्य।।३।।
होलिमिव लङ्कां सम्प्रदाह्य राक्षसीशुग्जलैः समुपवाह्य।
विहिताप्लवपुः सीतां प्रणम्य सिन्धुं तीर्त्वा प्रभुमुपागम्य।।४।।
चूडामणिमसुरभिदे समर्प्य भौमीकुशलं राघवायार्प्य।
गिरिधरकपिरूचे राम राम जय राम गीतसीताभिराम।।५।।

भौमी- अब कवि हनुमानजी के भावी वृत्तान्त को गीतबद्ध कर रहे हैं। लंकादहन-रूप होली खेलकर राक्षस यूथ-भटों को पीड़ित करके, रावण के समक्ष श्रीराम का पराक्रम गाकर, राजधानी को भस्मीभूत करके श्रीराम के बल-पराक्रम और तेज का उपदेश देकर इन्द्रजित द्वारा बाँधे गये नागपाश को तोड़कर, जीवनपर्यन्त राम-नाम में निष्ठ हनुमानजी समरांगण में राक्षसों के साथ खेलकर, अशोकवाटिका को तहस-नहस करके, युद्ध में कुशल अक्ष को मसलकर, प्राण-विहीन करके, मेघनाद द्वारा छोड़े हुये ब्रह्मास्त्र को आदरपूर्वक प्रसन्नता से स्वीकार कर, सभा में आकर सभासद राक्षसों को देखकर, रावण को रामनाम का उपदेश करके, होली की भाँति, लंकापुरी को पूर्णरूप से जलाकर राक्षसियों को शोकाश्रुओं से पूर्णरूपेण नहलाकर, पुनः छोटे वानर के रूप में आकर, सीताजी को प्रणाम करके, समुद्र को पार करके, प्रभु श्रीराम के पास आकर, असुर नाशक प्रभु को चूड़ामणि समर्पित करके, सीताजी का समाचार श्रीराघव को अर्पित करके, **गिरिधर** कवि के आराध्य 'गिरि' अर्थात् पर्वतधारी हनुमानजी ने अपनी सफलता सूचित करते हुए गरज कर कहा-

जय राम जय राम जय राम राम जय गीतसीताभिराम।

विशेष- यह गीत त्रिताल द्रुतलय एवं मालकौंश राग में निबद्ध है।

गीत संख्या-३३

श्रीरामो हनुमन्तं प्रति-

अहो दिष्ट्या समायातं लभे क्षेमे हनूमन्तम्,
सुचूडामणिमवनिजाया लभे प्रेमाश्रयं सन्तम्।।
अपारे विरहकूपारे निमज्जनमग्नसंसारे।
महापोतं यथायान्तं लभे प्राभञ्जनीं भान्तम्।।१।।
न बाल्ये नो विवाहेऽहं तथामोदान्वितो जातो
यथेदानीं विगततोदः प्रमोदे वीक्ष्य धीमन्तम्।।२।।
किमेनं भोजये भोज्यं कमाशीर्वादमायुञ्जे।
प्रयुञ्जे केन सद्वचसा कया प्रीत्या च श्रीमन्तम्।।३।।
ऋणी सीताभिरामो गिरिधरेशश्चाभवं अहो वातेः।
हनूमन्तं मुदादोर्भ्यां हृदाश्लिष्यामि ह्रीमन्तम्।।४।।

भौमी- अब श्रीराम हनुमानजी के प्रति कहते हैं-अहो! सौभाग्य से लंका से सकुशल लौटे हुये अपने हनुमानजी को मैं प्राप्त कर रहा हूँ और जनकनन्दिनीजी द्वारा भेजे हुये दाम्पत्य प्रेम के आश्रय श्रेष्ठ चूड़ामणि को भी मैं प्राप्त कर रहा हूँ। वस्तुतः सात्विक आत्मबल को भी नष्ट करने वाले, अपार विरह सागर में डूबता हुआ मैं राम महाजलयान के समान आते हुये प्रकाशमान हनुमान को प्राप्त कर रहा हूँ। मैं बाल्यावस्था में और विवाह में भी उतना प्रसन्न नहीं हुआ जिस प्रकार बुद्धिमान् हनुमान् को देखकर इस समय पीड़ा से रहित और प्रसन्न हो रहा हूँ। अहो! आज श्रीमान् हनुमान् को मैं कौन-सा भोज्य पदार्थ खिलाऊँ? कौन-सा आशीर्वाद दूँ? किस श्रेष्ठ वाणी से और किस प्रीति से संयुक्त करके हनुमान का सम्मान करूँ? आज सीताजी को आनंदित करने वाला **गिरिधर** कवि का ईश्वर मैं राम वायुपुत्र हनुमान का ऋणी हो गया हूँ। इसलिये विनम्रता के कारण लज्जित हनुमान को प्रसन्नतापूर्वक अपनी बाहों में भरकर मैं हृदय से लगा रहा हूँ।

गीत संख्या-३४

हनुमन् सीतावार्तं श्रावय

हे वार्ताहृतिचण सुविचक्षण पवनतनय बलवीर्यविलक्षण।
सीताकुशलकलाधरकिरणैर्विरहविषं मे मनसो द्रावय।।१।।
चूडामणिमिह दर्शं दर्शं जीवातुमिव स्पर्शं स्पर्शम्।
समास्वसिमि विश्वसिमि महात्मन् पुनरपि भौमी वच आश्रावय।।२।।
हे मम चरवर हे वनवनचर हे विरहानल जलधाराधर।
मैथिलिशुभसंदेशलवित्रैर्विरहाटवीं मदीयां लावय।।३।।

न कुरु विलम्बं गिरमविलम्बं सैरध्वजीमयीं स्वालम्बम्।
व्याहर हे हर गिरिधरगीतैः श्रुतिगीतां सीतामनुभावय।।४।।

भौमी– पुनः श्रीराम कहते हैं– हे हनुमान! सीताजी का संदेश सुनाओ। संदेश लाने में कुशल, अत्यन्त निपुण, बल पराक्रम में विलक्षण, हे पवननन्दन! सीताजी के कुशल स्वरूप चन्द्रमा की किरणों से मेरे मन के विरह–विष को समाप्त कर दो। हे महात्मन! इस चूड़ामणि को देख–देखकर इसे संजीवनी बूटी की भाँति छू–छूकर मैं आश्वस्त हो रहा हूँ और विश्वस्त भी हो रहा हूँ। फिर भी मुझे पृथ्वीनन्दिनी सीताजी की वार्ता सुनाओ। हे अद्वितीय वनचर अर्थात् सबके रक्षक वानर श्रेष्ठ! हे मेरे श्रेष्ठ दूत! और हे विरहाग्नि को बुझाने के लिये जलवर्षी मेघस्वरूप हनुमान! सीताजी के संदेश वचन रूप कुल्हाड़ों से मेरे विरह वन को काट डालो। हे शिव! रुद्रावतार हनुमान! अब विलम्ब मत कीजिये। मुझे अवलम्बन देने वाली सैरध्वजी सीताजी से सम्बन्धित वाणी का श्रवण कराइये और **गिरिधर** कवि के रचित गीतों से वेदों में गाई हुई सीताजी का अनुभव कराइये।

विशेष– यह गीत त्रिताल बद्ध है और इसे केदारा, बिलावल और भूपाली राग में गाना बहुत ही समीचीन होगा।

गीत संख्या–३५

हनुमान् श्रीरामं प्रति–

राम हरे रामाराम हरे सीदति सीता पुरेऽसुरे।।
रावणनीता विरहपरीता लङ्कां सीता शशीव भीता।
मृगी शुनीभिर्यथा प्रणीता विपदं रोदिति तारस्वरे।।१।।
विपिनेऽशोकेऽप्यहः सशोका विस्मृतशयनासनसुखलोका।
हा हा राम रटन्ती लीना कुररीवास्ते महाज्वरे।।२।।
शिरसि जटाविधृतैकलवेणी मुखरितरामचरितसुश्रेणी।
सुश्रोणीमरणश्रेणीमिव प्राप्यजिगमिषति भवात् परे।।३।।
दिशि दिशि पश्यति पतिं भवन्तं ध्यायति कनकहरिणमनुयान्तम्।
गिरिधरप्रभुं विलप्य विषण्णा लुठति महीतलपांशुभरे।।४।।

भौमी– अब हनुमानजी श्रीरामजी के प्रति कहते हैं–हे श्रीराम! हे हरे! हे रामा अर्थात् सीताजी को भी रमण कराने वाले प्रभु! इस समय असुरपुर में बन्दी बनी हुई सीताजी बहुत कष्ट पा रही हैं। हे प्रभु! रावण के द्वारा अपहरण की गई सीताजी लंका में उसी प्रकार भयभीत रह रही हैं जैसे राहु द्वारा चंद्रमा से अलग की हुई रोहिणी, कुत्तियों द्वारा विपत्ति की ओर ढकेली हुई, भोली–भाली मृगी की भाँति, राक्षसियों से घिरी हुई, सीताजी तारस्वर में रोती रहती हैं। अहो! अशोकवन में भी सीताजी शोक से युक्त हैं, वे कुररी पक्षी की भाँति भोजन–

शयन–सुख को भूलकर, हा राम–हा राम रटती हुई विरह ज्वर में लीन हैं। सीताजी सिर पर अपनी जटा से एक ही जूड़ा बाँधी हुई हैं। उनके मुख से श्रीराम के चरित समूह मुखरित हो रहे हैं, सुन्दर कटि प्रदेश वाली सीताजी मानों मरण का सोपान प्राप्त करके भव से पार जाने की इच्छा कर रही हैं। विदिशा–दिशा में स्वर्ण मृग का पीछा कर रहे अपने प्राणपति आप श्रीराम को ही देखती रहती हैं और **गिरिधर** कवि के प्रभु आप श्रीराम का विलाप करती हुई पृथ्वी की धूलिराशि में लोटती रहती हैं।

विशेष– यह गीत राग–देश तथा तोड़ी राग में भी गाया जा सकता है।

गीत संख्या–३६

हे हरे सीता कथञ्चिज्जीवति।
दृष्टा मया परपुरे विवशा साध्वी त्वद्गुणगणमनुजीवति।।
तीर्त्वा सिन्धुमशोककानने कञ्जानना मया खलु दृष्टा।
प्रतिपत्पाठशीलविद्येव कृशाङ्गी भवत्पदाद्विश्लिष्टा।।१।।
परितो वृता राक्षसीभिर्हरिणीव शुनीभिः प्रभो परीता।
त्वन्नाथापि विनाथेवाहो क्रन्दति करुणं रावणनीता।।२।।
परिकर्मणा विहीना दीना गतालङ्कृतिस्त्वां दीव्यन्ती।
भौमी भाति चन्द्रविधुरा रोहिणी यथा भाग्यं सीव्यन्ती।।३।।
ताडं ताडं स्वशिरो वक्षो मुहुर्लुठन्ती भुवि श्लथन्ती।
क्वासि क्वासि राम रघुनन्दन गिरमीदृशी किमपि कथयन्ती।।४।।
अलं वर्ण्यवरवर्णिनीपीडामाहरकालं न प्रतिपालय।
गिरिधरप्रभो जानकीमानय दीनानाथ यशोऽपि निभालय।।५।।

भौमी– हे श्रीहरे! सीताजी किसी प्रकार जी रही हैं। मैंने अपनी आँख से रावण के नगर में वन्दिनी सीताजी को विवश देखा। वे पतिव्रता शिरोमणि आपके गुण–गणों के आधार पर ही अपना जीवन धारण कर रही हैं। मैंने समुद्र पार करके अशोकवन में आपके कमलचरणों से बिछुड़ी हुई कमलनयनी सीताजी को प्रतिपदा के दिन पढ़ने वाले ब्रह्मचारी की विद्या की भाँति दुर्बलांगी देखी। प्रभु! कुत्तियों से घिरी हुई हरिणी की भाँति, सीताजी चारों ओर से राक्षसियों से घिरी हुई हैं। आप जैसे समर्थ नाथ के होने पर भी अनाथ की भाँति रावण द्वारा बन्दी बनाई गयी सीताजी करुण–क्रन्दन करती रहती हैं। स्नान आदि सभी क्रियाओं से विहीन और दीन स्थिति में रहकर, अलंकारों से रहित होकर आपकी ही स्तुति करती हुई सीताजी चन्द्रमा से बिछुड़ी हुई रोहिणी की भाँति अपने भाग्य को सीती हुई दिख रही हैं। सीताजी अपना शरीर, सिर–छाती पीट–पीटकर, बार–बार लोटती हैं और पृथ्वी पर गिर पड़ती है और चिल्लाने लगती हैं। हे राम, हे राम! हे रघुनन्दन! आप कहाँ हैं? कहाँ हैं? इस प्रकार करुणवाणी बोलती रहती हैं। हे प्रभु! अब सीताजी की पीड़ा का वर्णन करना व्यर्थ है। आप हर काल अर्थात् शिवजी के समय की प्रतीक्षा मत कीजिये। हे **गिरिधर** कवि के प्रभु! आप सीताजी को ले आइये और दीनानाथ जैसे विरुद का सम्मान कीजिये।

सन्दर्भश्लोकः

इति निवेद्य वचो हरिपुङ्गवो जनकजा विरहाम्बुधिवीचिभृत्।
रघुवरं प्ररुरोद यथा शिशुर्विगतमातृक आर्त्ततरस्वरम्।।

भौमी–जनकनन्दिनी सीताजी के वियोग सागर की तरंगों को धारण करने वाले वानरश्रेष्ठ हनुमानजी इस प्रकार श्रीराम से निवेदन करके उसी प्रकार फूट–फूटकर आर्तस्वर में रोने लगे जैसे माता से हीन छोटा–सा बालक।

इति
श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरमहाकविजगद्गुरुरामानन्दाचार्यस्वामिरामभद्राचार्यगिरिधरकविप्रणीते
गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये सुन्दरकाण्डे
गीतहनुमत्पराक्रमो नाम प्रथमः सर्गः।।

इस प्रकार श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर महाकवि जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य गिरिधरकवि द्वारा विरचित गीतरामायण 'गीतसीताभिराम' नामक संस्कृत गीतमहाकाव्य के सुन्दरकाण्ड में गीतहनुमत्पराक्रम नामक प्रथम सर्ग सम्पन्न हुआ।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

।।श्रीः।।

।। नमो राघवाय।।

गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये

सुन्दरकाण्डे

गीतसमर्थशरण्यो नाम

द्वितीयः सर्गः

मङ्गलाचरणम्

विभीषणं विधित्सन्तं भुवनैकविभूषणम्।
सङ्ग्रामभीषणं सेवे विभूषणविभूषणम्।।१।।

भौमी– मैं **गिरिधर** कवि विभीषण को भुवन का एकमात्र आभूषण बनाने के इच्छुक संग्राम में भयंकर और आभूषणों के भी आभूषण भगवान श्रीराम की सेवा करता हूँ।

सन्दर्भश्लोकः

वातेः समाचारमवाप्य भौम्या भूमेर्भरं हर्तुमनन्तवीर्यः।
प्रस्थातुकामो रिपुराजधानीं प्रस्थापयामास कपीशसेनाम्।।१।।

भौमी– हनुमानजी से सीताजी का समाचार प्राप्त करके अनन्त पराक्रमी भगवान श्रीराम ने भू–भार हरने के लिये प्रस्थान करने की इच्छा करते हुये शत्रु रावण की राजधानी लंका पर आक्रमण करने हेतु वानरी सेना को प्रस्थान कराया।

गीत संख्या–१

रामस्य सेना प्रस्थिता राघवस्य सेना प्रस्थिता।।
पापमेव पापिनां तापमेव तापिनां हन्तुमेव साध्वसं रक्षसां प्रतापिनाम्।
वानरेन्द्रसेना प्रस्थिता रामस्य सेना प्रस्थिता।।१।।
गर्जतां प्रतर्जतां भुवो भरं भर्जतां मत्सरं विसर्जतां साहसं च सर्जताम्।
वानराणां सेना प्रस्थिता रामस्य सेना प्रस्थिता।।२।।
वृक्षशैलशालिनां महावीर्यशालिनां रामकृपाशालिनां रणत्रपाशालिनाम्।
बलिनाञ्च सेना प्रस्थिता रामस्य सेना प्रस्थिता।।३।।
हनूमतो हंकृतैर्जयश्रीणां हिंकृतैः मर्कटानां हुङ्कृतैः फणिनाञ्च फुङ्कृतैः।
तरस्विनां सेना प्रस्थिता रामस्य सेना प्रस्थिता।।४।।

हनूमता चालिता लक्ष्मणेन पालिता सुकण्ठेन चारिता गिरिधरप्रचारिता।
मनस्विनां सेना प्रस्थिता रामस्य सेना प्रस्थिता।।५।।

भौमी- आज लंका के लिये श्रीराम की सेना प्रस्थान कर रही है। पापियों के पाप को, तापियों के ताप को, प्रतापी राक्षसों के भय को, नष्ट करने के लिये ही वानरेन्द्र सुग्रीव द्वारा संचालित वानरी सेना चल पड़ी है। गरजते हुये एक दूसरे को डाँटते-धमकाते हुये, पृथ्वी का भार नष्ट करते हुये, मात्सर्य को छोड़ते हुये और साहस की सर्जना करते हुये वानरों की सेना चल पड़ी है। वृक्ष और पर्वत लिये हुये, महापराक्रमशाली श्रीराम की कृपा से सुशोभित और युद्ध में पराङ्मुख होने से श्रीराम सेवा से वंचित कर देंगे, इस लज्जा से युक्त महाबली वानरों की सेना चल पड़ी। हनुमान की हङ्कारों से, जय श्रीराम की हिंकारों से, कुल नागों की फुंकारों से और वानरों की हुँकारों से युक्त वेगशाली वानरों की सेना चल पड़ी। हनुमानजी के द्वारा संचालित होती हुई, लक्ष्मणजी द्वारा पालित होती हुई, सुग्रीव द्वारा संचारित होती हुई और **गिरिधर** कवि द्वारा प्रचारित होती हुई श्रीराम की सेना चल पड़ी।

विशेष- यह गीत '**रामजी की सेना चली**' गीत के ढाल पर है।

गीत संख्या-२

रामचन्द्रनिर्दिष्टा सेना लङ्काविजयकृते यान्ती।
हन्तुं रावणबलं समग्रं विष्वग्विश्वहिते भान्ती।।
जय राम जय श्रीराम जय राम जय श्रीराम।।१।।
महापराक्रमबलसमन्विता वीररसाम्बुधिसुस्नाता।
राक्षसवनप्रलयाग्निसमाना नानाप्रहरणनिष्णाता।।
जय राम जय श्रीराम जय राम जय श्रीराम।।२।।
वज्रकल्पनखविटपभूधरानुद्धतदोर्भिर्विभ्राणा ।
धावन्ती निशिचरान् जिहांसू रामकृते प्रार्पितप्राणान्।।
जय राम जय श्रीराम जय राम जय श्रीराम।।३।।
दन्तकटकटा कुपितकिलकिला शब्दव्यापृतदिगन्तरा।
लङ्कामत्तुमिवाभिव्रजन्ती धूलिधूसरितवसुन्धरा।।
जय राम जय श्रीराम जय राम जय श्रीराम।।४।।
पृष्टविराजितरामलक्ष्मणो मुदा प्रतस्थे कपिबलवान्।
पौलस्त्यं संयुगे विजेतुं गिरिधरगीतः श्रीहनुमान्।।
जय राम जय श्रीराम जय राम जय श्रीराम।।५।।

भौमी- श्रीरामचन्द्र के द्वारा निर्दिष्ट वानरी सेना लंका के विजय के लिए जा रही है। सम्पूर्ण रावण सेना को नष्ट करने के लिये पूर्णरूप से विश्व के हित में समर्पित सुशोभित होती हुई, सेना विजय-यात्रा कर रही है और जय राम, जय श्रीराम का गर्जन कर रही है। यह सेना महान पराक्रम तथा महान बल से युक्त है और यह

वीररस के महासागर में आशिरस्क स्नान की हुई, नाना शस्त्रों के प्रहार में निपुण तथा राक्षसों के लिये प्रलयाग्नि के समान है। वानरी सेना अपने उद्धत भुजाओं से वज्र के समान वृक्ष और पर्वतों को धारण करती हुई श्रीराम के लिये अपने प्राणों को समर्पित की हुई राक्षसों का वध करने के लिये दौड़ रही है। जय राम, जय श्रीराम उद्घोष कर रही है। वानरी सेना के दाँतों के कटकटाहट से, क्रोध की किलकिलाहट से, सम्पूर्ण दिशाएँ भर गई हैं और वह पृथ्वी को धूल–धूसरित करती हुई जय श्रीराम की गर्जना करती हुई मानों लंका को ही खाने के लिए दौड़ रही है। अपने पीठ पर श्रीराम लक्ष्मण को विराजमान करके **गिरिधर** कवि के द्वारा गाए हुए बलवान श्रीहनुमानजी युद्ध में रावण को जीतने के लिए प्रसन्नतापूर्वक प्रस्थान किए।

गीत संख्या-३

श्रीरामो विजयाय विजयते।।
विजयमुहूर्तं वीक्ष्य प्रस्थितो जितकामो विजयाय विजयते।
भ्रात्रा सह कपिकटकसमर्जितसङ्ग्रामो विजयाय विजयते।।१।।
वनचरचीत्कारितवरदिग्गजविभ्रामो विजयाय विजयते।
रजोराशिलोपितदिवाकरो जनरामो विजयाय विजयते।।२।।
सैन्यभारकम्पितकच्छपकोलस्त्रामो विजयाय विजयते।
वानरचमूचकितदिग्पतिशङ्कररामो विजयाय विजयते।।३।।
लोललोललाङ्गूलहनूमद्विश्रामो विजयाय विजयते।
अभिरामः कविगिरिधरगीतगुणग्रामो विजयाय विजयते।।४।।

भौमी– श्रीराम विजय के लिए विजय यात्रा कर रहे हैं। विजय मुहूर्त देखकर काम विजेता श्रीराम विजय के लिए प्रस्थान कर रहे हैं। भाई लक्ष्मण के सहित वानरी सेना द्वारा इकट्ठी की गई संग्राम सामग्री के साथ श्रीराम विजय के लिए प्रस्थान कर रहे हैं। वानरों के चीत्कार से भयभीत दिग्गजों का जहाँ विभ्रम है और जिनके कारण वानरी सेना के खुर की धूलि से सूर्यनारायण छिप गए हैं, ऐसे लोकमंगल श्रीराम विजय यात्रा कर रहे हैं। जिनकी सेना के भार से कच्छप काँप गए हैं। महावाराह को भ्रम हो गया है। ऐसे श्रीराम विजय यात्रा कर रहे हैं और जिन्होंने वानरी सेना से दिग्पाल शिव और परशुराम को भी चकित कर दिया है। ऐसे श्रीराम विजय यात्रा कर रहे हैं। चंचल, हिलते हुए लाङ्गूल वाले हनुमानजी पर जिन्होंने विश्राम किया है ऐसे सबको सुख देने वाले और **गिरिधर** कवि द्वारा जिनके गुणसमूहों को गीत का विषय बनाया गया है ऐसे लोकाभिराम श्रीराम आश्विन शुक्ल पक्ष दशमी विजय मुहूर्त में विजय यात्रा कर रहे हैं।

सन्दर्भश्लोकः

अक्षं हत्वा हनुमति हते दग्धलङ्केऽत्यशङ्के
रामां रामाचरितचरितं प्रस्थितं चाभिलङ्काम्।
श्रुत्वोदन्तं चकितचकितः प्रातरुत्थाय धीमान्
दध्यौ धीरो रघुकुलमणिं रावणस्यानुजः कम्।।१।।

भौमी- अक्ष का वध करके, अत्यन्त निर्भीकता से लंका जलाकर, श्रीहनुमानजी के श्रीराम के पास प्रस्थान किए जाने पर और सीताजी के लिए ही युद्ध का आचरण करने वाले लंका की ओर प्रस्थानाभिमुख श्रीराम का स्मरण करके इस प्रकार दूतों से समाचार सुनकर प्रातः उठकर बुद्धिमान रावण के भाई विभीषण ने परब्रह्म स्वरूप रघुकुलमणि श्रीराम को ध्यान का ध्येय बनाया।

गीत संख्या-४

मनो रे भज रामं गोविन्दं हरिम्।।
मरकतजलजनीरदश्यामं पूरितसज्जनसुमनः कामम्।
कोटिकोटिमन्मथाभिरामं ब्रह्म मुकुन्दं हरिम्।।१।।
धृततूणीररुचिरशरचापं कोटिदिवाकरतरुणप्रतापम्।
स्मृतहतनिजजनपापत्रितापं आनन्दकन्दं हरिम्।।२।।
श्यामतामरससुभगशरीरं समररङ्गधीरं मतिधीरम्।
लक्ष्मणललितं श्रीरघुवीरं सुखनिस्यन्दं हरिम्।।३।।
परब्रह्ममयमनुजाकारं सुमुखं दशरथराजकुमारम्।
निरघं हतगिरिधरभवभारं परमानन्दं हरिम्।।४।।

भौमी- हे मन! श्रीराम गोविन्द हरि का भजन करो। मरकत, नीलकमल और बादल के समान श्यामल, सज्जनों के सुन्दर मन की कामना पूर्ण करने वाले करोड़ों-करोड़ों कामों को आनन्द देने वाले, श्रीब्रह्म भुक्ति-मुक्ति-दाता श्रीहरि का भजन करो। सुन्दर तरकश, धनुष, बाण धारण करने वाले करोड़ों सूर्य के समान प्रतापवान, स्मरण मात्र से सेवकों का पाप और त्रिताप हरने वाले आनन्दकन्द श्रीहरि का भजन करो। नीले कमल के समान सुन्दर शरीर वाले, रणभूमि में स्थिर धीरबुद्धि वाले, लक्ष्मणजी से सुशोभित श्रीरघुवीर, सुखों के स्रोतों से युक्त श्रीहरि का भजन करो। परब्रह्मस्वरूप मनुष्य की आकृति वाले सुमुख दशरथजी के ज्येष्ठ राजकुमार निष्पाप और **गिरिधर** कवि का भवभार हरने वाले परमानन्द श्रीहरि का भजन करो।

विशेष- यह गीत बहुचर्चित भजन '**भजो रे ब्रह्म रामगोविन्दहरी**' की ढाल में निबद्ध है।

गीत संख्या-५

रामसीता रामसीता रामसीताराम रामरामा रामरामा राम रामाराम।।
पश्य मिथ्या भूतलोकं न्यस्य मायामोहशोकम्।
जिह्वया जप जागरूकं शीलशोभाधाम राम सीताराम।।१।।
पश्य पामरपुरो माया भात्यभास्वरत्रिगुणकाया।
दुर्जया दूषणनिकाया त्यजैनामघधाम राम रामाराम।।२।।
पश्य ते पुरतः प्रभातं वाति मञ्जुलमलयवातम्।
मनसि मन दृग्वारिजातं ललितलोकललाम राम सीताराम।।३।।

भज विभीषणपूर्णकामं गिरिधरात्ममनोऽभिरामम्।
भविक भावय भव्यभामं रसनया रट राम राम सीताराम।।४।।

भौमी- विभीषण भगवान का मंगलमय नाम ले रहे हैं–**'राम सीताराम, सीताराम सीताराम राम रामाराम, रामाराम रामाराम'** इस प्रकार भगवान का स्मरण कर रहे हैं। देखो, यह लोक मिथ्या है। अतः माया मोह और शोक को छोड़कर जागरुकता से, अपनी जिह्वा से, शील–शोभा के आश्रय श्रीसीताराम का जप करो। अरे पामर जीव! सामने देखो, यह दुष्ट माया अंधकार स्वरूपिणी और तीनों गुणों से युक्त और सर्वघ्न अजेय दोषों से युक्त अपना चमत्कार प्रस्तुत कर रही है, पाप का आश्रय इस माया को छोड़ दो। सीतारामजी का भजन करो। जीव, देखो, तुम्हारी ही दृष्टि के समक्ष यह मलय मधुर वायु चल रहा है। सुहावना प्रातःकाल अनुभव में आ रहा है। इस समय अपने मन में कमलनयन और सम्पूर्ण लोकों के स्वरूप श्रीसीतारामजी का मनन करो। हे विभीषण, पूर्णकाम और **गिरिधर** कवि के आत्मा और मन को आनन्द देने वाले श्रीराम को भज। हे कल्याणमय, जिनकी पत्नी भी कल्याणमयी हैं, ऐसे प्रभु की भावना कर रसना से रामनाम रट।

विशेष–यह गीत रूपक ताल में निबद्ध है, इसे जोग, जोगिया, वैरागी, भैरव, भैरवी आदि रागों में गाया जा सकता है, इस प्रकार के गीतों को सन्त परम्परा में प्रभाती गीत कहा जाता है।

गीत संख्या-६

मनो रे शृणु निर्बलबलमस्ति रामः।।
मरकघनदूर्वादलश्यामो यमुनाजलाभिरामः।
शतशतकोटिकामकमनीयः कलाकदर्थितकामः।।१।।
यावत् प्रभृति गजेन निजबलात् कृतो झषेण सङ्ग्रामः।
तावत् प्रभृति बभूव निर्जितो भयभृता स्मृतो रामः।।२।।
द्रुपदसुता यावत् स्वपतिमतिः कोऽभूत् तत्परिणामः।
निर्बलया यदास्मारि माधवो वसनवपुरभूत् श्यामः।।३।।
गणिकागृद्ध्राजामिलमुख्ये सुखदश्चात्मारामः।
निर्बलगृह्यो भाति राघवो गिरिधरगिराभिरामः।।४।।

भौमी- रे मन सुन! श्रीराम निर्बलों के बल हैं, वे मरकतमणि मेघ और दूर्बादल के समान श्यामल तथा यमुना जल के समान सुन्दर हैं। वे करोड़ों कामदेवों से भी कमनीय और अपनी कला से कामदेव को निन्दित करने वाले हैं जब तक गजेन्द्र ने अपने बल से ग्राह के साथ संग्राम किया तब तक ग्राह से हारता रहा और हारकर जब राम का स्मरण किया, तब जीत गया। जब तक द्रौपदी अपने पतियों में बुद्धि लगाई रही, तब तक क्या परिणाम निकला? जब निर्बल होकर माधव का स्मरण किया, तब श्यामसुन्दर स्वयं वस्त्र ही बन गए। गणिका, गीध और अजामिल प्रमुख पतितों के प्रति आत्माराम प्रभु सुखद ही तो हुए **गिरिधर** कवि की वाणी को आनन्द देने वाले रघुकुल के प्रवर श्रीराम तो निर्बलों का पक्ष लेकर शोभित होते हैं।

विशेष-यह गीत **'सुनेरी मैंने निर्बल के बल राम'** के ढाल पर है। यहाँ विभीषण भक्ति पवित्र ऋतम्भरा प्रज्ञा से द्रौपदी की भविष्यत घटना का स्मरण कर रहे हैं इसलिए सन्देह नहीं करना चाहिए।

गीत संख्या-७

राम श्रीराम सदा रट रसने त्यज मिथ्या परवादविवादम्।
वर्धितदूषणविषमविषादं रामाराम सदा रट रसने।।१।।
त्यज संसारवासनास्वादं भज भगवन्मुखशिष्टप्रसादम्।
जय जय राम सदा रट रसने राम श्रीराम सदा रट रसने।।२।।
विस्मर लोकविगर्हितहासं स्मर सीतावरशुभेतिहासम्।
जय श्रीराम सदा रट रसने राम श्रीराम सदा रट रसने।।३।।
काय कलं रघुनन्दनसीतां गाय सततमिह गिरिधरगीताम्।
सीताराम सदा रट रसने राम श्रीराम सदा रट रसने।।४।।

भौमी- हे रसने, हे मेरे जिह्वे! सदैव श्रीराम का रटन कर। मिथ्या, दोष और भयंकर विषाद को बढ़ाने वाले पर वाद-विवाद को छोड़, रामाराम श्रीराम का रटन कर। हे जिह्वे! संसार की वासना-स्वाद छोड़ भगवान के मुख का शिष्ट प्रसाद का सेवन कर। सदैव जय जय श्रीराम रट। लोक निन्दित हास-परिहास भूल जा और सीतापति भगवान श्रीराम के अमृतमय इतिहास का स्मरण कर। हे जिह्वे! सदैव जय श्रीराम रट। निरन्तर श्रीरघुनन्दन सीता का उच्चारण कर और **गिरिधर** कवि द्वारा रचित गीत को गा और हे मेरे जीभ! सदा तू सीताराम सीताराम रट।

गीत संख्या-८

राघव मां त्वं कदा मुखचन्द्रं दर्शयिष्यसे।।
कदा सीतालक्ष्मणाभ्यां समेतः समुपागम्य।
मां विरम्य राम मम कामं कर्षयिष्यसे।।१।।
कदा हरिणाक्ष्या समम्।
विहरन् पुरतो मम हारं हारं हरे मञ्जुमनः संस्त्रयिष्यसे।।२।।
कदा श्रावं श्रावं श्रुतिसुखदाम्।
सुधितां गिरं गिरिधरदर्शनस्य तृषं तर्षयिष्यसे।।३।।
कदा कमलाक्ष्या कञ्जकरम्।
नवकञ्जनेत्र मूर्धनि मदीये त्रिमूर्धारि स्पर्शयिष्यसे।।४।।

भौमी- विभीषण पुनः कह रहे हैं–हे राघव! आप मुझे अपने मुखचन्द्र के दर्शन कब कराओगे? कब श्रीसीता-लक्ष्मण के साथ आकर आप श्रीराम विराम के बिना मेरी काम की भक्ति को समाप्त कर दोगे? हे श्रीहरे! मृगनयनी सीताजी के साथ मेरे समक्ष विहार करते हुए सुन्दर मन को बार-बार चुराकर कब उसमें विराजिएगा। हे राघव! कानों को सुख देने वाली अपनी अमृत वाणी सुना-सुनाकर **गिरिधर** कवि की स्वविषयक दर्शन तृष्णा को और कब बढ़ाइएगा। हे नवीन कमल नेत्र, हे त्रिसिरा के शत्रु श्रीराम! आप कमलनयनी सीताजी के साथ मेरे सिर पर अपने कमल कर का कब स्पर्श करेंगे?

गीत संख्या-९

मनो रामं शरणं याहि रे मा मा कुरु मां कं मां कम्।।
मायामयं मृषा परिभावय स्वप्नसमं संसारम्।
राममृते सम्बन्धमसत्यं सुतकलत्रपरिवारम्।।
घनश्यामं शरणं याहि रे मा मा कुरु मां कं मां कम्।।१।।
यावदस्ति किञ्चित् तव पार्श्वे तावद् जनास्त्वदीयाः।
निष्किञ्चने भवति भवितारो भवत इमे परकीयाः।।
श्रीरामं शरणं याहि रे मा मा कुरु मां कं मां कम्।।२।।
जायाभगिनीसुतभ्रातरः स्वार्थं ते स्पृहयन्ते।
स्वार्थे गते समे कुक्कुरवत् त्याज्यतया गृहयन्ते।।
अभिरामं शरणं याहि रे मा मा कुरु मां कं मां कम्।।३।।
मनोनिरासं भवकुटुम्बतस्त्यज मिथ्या निर्बन्धम्।
स्वीकुरु गिरिधरप्रभुणा साकं दासस्वामिसम्बन्धम्।
सीतारामं शरणं याहि रे मा मा कुरु मां कं मां कम्।।४।।

भौमी– विभीषण अपने मन से कह रहे हैं–

मन राम शरण में जा, मत कर तू मेरा मेरा।
स्वप्न समान जगत कर चिन्तन, मायामय सब झूठा।।
पत्नी सुत परिवार राम बिन नाता मृषा अनूठा।
घनश्याम शरण में जा, मत कर तू मेरा-मेरा।।१।।
जब तक कुछ भी पास है तेरे सभी तभी तक तेरे।
लख निष्किञ्चन तुझे तजेंगे शत्रु सरिस ये डेरे।
श्रीराम शरण में जा, मत कर तू मेरा-मेरा।।२।।
स्वारथ लागि बहिन भाई तेरे हैं सुत हित जाया।
गए स्वार्थ छोड़ेंगे तुमको श्वान समान निकाया।
अभिराम शरण में जा, मत कर तू मेरा-मेरा।।३।।
मन निराश हो जा कुटुम्ब से मिथ्या ममता छोड़ो।
गिरिधर प्रभु से नाता जोड़ो सबसे मुखड़ा मोड़ो।
सीताराम शरण में जा, मत कर तू मेरा-मेरा।।४।।

गीत संख्या-१०

विभीषणो रावणं प्रति-

सीतां निर्यातय दशकन्धर।
त्यज निर्बन्धं कुरु सम्बन्धं रामेण समं वीरधुरन्धर।।

मन्दोदर्याऽसकृद् बोधितो मन्दमते न त्वं मानयसे।
दीनबन्धुमथ करुणासिन्धुं रामं न त्वं सम्मानयसे।।१।।
यदा प्रभृत्या हृता मैथिली शून्याद् दण्डकविपिनाद् दीना।
तदा प्रभृत्यशान्तिरायाता लङ्का विपद्वारिधौ लीना।।२।।
सुतद्वयं हा हतं तावकं लङ्कापुरमलातमिव दग्धम्।
विध्वंसितमशोकवनमखिलं त्वदभिमानतृणमपि निर्दग्धम्।।३।।
सम्प्रसीद राक्षसकुलवल्लभ मा विषीद वैदेहिं यापय।
गिरिधरप्रभवे जगदगविभवे क्रूरतमं वैरं निर्यापय।।४।।

भौमी– अब विभीषण रावण के प्रति कहते हैं–हे रावण! सीताजी को लौटा दो। हे वीरश्रेष्ठ! हठ छोड़ दो, श्रीराम के साथ सेवक से व्यवहार सम्बन्ध कर लो। तुमको मन्दोदरी ने बार–बार समझाया, फिर भी मन्दबुद्धि रावण तुम नहीं समझ रहे हो। दीनों के बन्धु, करुणा के सागर, श्रीराम का सम्मान नहीं कर रहे हो। जबसे दण्डक वन की शून्य कुटी से तुम सीताजी को हर कर लाए हो, तभी से लंका में अशान्ति आ गई है और यह नगरी विपत्ति के सागर में डूब गई है। तुम्हारे दो पुत्र मार डाले गए, लंकापुरी सूखी घास के समान जला दी गयी और अशोक वन तहस–नहस हो गया। तुम्हारा अभिमान तृण भी भस्म हो गया। हे राक्षस कुल के स्वामी! आप प्रसन्न हो जाएँ, दुःखी न हों, जड़–चेतन के स्वामी, **गिरिधर** प्रभु के स्वामी श्रीराम को श्रीसीताजी को लौटा दो। प्रभु से वैर छोड़ दो।

विशेष– यह गीत भी त्रिताल १६ मात्रा में निबद्ध है।

गीत संख्या–११

रामो नहि मनुजः सामान्यः।।
भुवनेश्वरः कालकालोऽयं भवता नैव विमान्यः।
सकललोकसम्पत्समन्वितः सनातनः सम्मान्यः।।१।।
हर्तुं महीमहाभयभारं परब्रह्म साकारम्।
अवातरद् धृतमनुजाकारं विगुणं विगतविकारम्।।२।।
गवां द्विजानां सतां सुराणां मोदवर्धनो रामः।
गिरिधरप्रभुः प्रकटितोऽवधपुरि मङ्गलमयपरिणामः।।३।।

भौमी– हे रावण! श्रीराम सामान्य मनुष्य नहीं हैं। ये भुवनेश्वर और काल के भी काल हैं। इनका अपमान मत करो। ये सम्पूर्ण लोकों की सम्पत्ति से युक्त तथा सनातन हैं, इनका सम्मान करिये। अरे! रावण! पृथ्वी का महान भार उतारने के लिए ही विकाररहित विशिष्ट गुणों से युक्त सगुण साकार परब्रह्म ही मनुष्य का आकार ग्रहण करके अवतार लिए हैं। गौओं, ब्राह्मणों, सन्तों और देवताओं के आनन्द को बढ़ाने वाले, मंगलमय परिणाम वाले, श्रीराम **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराघव श्रीअवधपुर में प्रकट हुए हैं।

गीत संख्या-१२

स्वीकुरु दशमौले मम शिक्षाम्।
रामायार्पय झटिति जानकीं देहिमां मे भिक्षाम्।।१।।
कालरात्रिरिव निशाचराणां भवता नीता सीता।
मृत्युदूतिका हृता त्वयेयं कुमतिस्ते विपरीता।।२।।
तव कुलकमलकाननं हन्तुं सीताशीतनिशेयम्।
यातुधानमृत्यवे राजते दक्षादक्षदिशेयम्।।३।।
कुलं रक्ष जानकीं यच्छ यक्षेशावरज विचारय।
गिरिधरप्रभवे निजं समर्पय लोकद्वयं सुधारय।।४।।

भौमी- हे रावण! मेरी भिक्षा स्वीकार करो, श्रीराम को सीताजी को शीघ्र सौंप दो। यही मुझे भीख दो। राक्षसों की कालरात्रि जैसी सीताजी को तुम ले आए हो, यह तो तुम्हारे द्वारा मृत्यु की दूतिका ही लाई गई है। तुम्हारी यह कुमति अत्यंत विपरीत है। तुम्हारे कुलरूप कमल वन को नष्ट करने के लिए ये सीताजी शीत-रात्रि के स्वरूप में (हेमन्त रात्रि) और यह चतुर जानकीजी राक्षसों की मृत्यु के लिए दक्षिण दिशा ही हैं। हे यक्षेश कुबेर के छोटे भाई! विचार करो, लंकापुर की रक्षा करो। **गिरिधर** प्रभु श्रीराम को जानकी जी को सौंप दो और अपने को भी उनके चरण में डाल दो, दोनों लोकों को सुधार लो।

गीत संख्या-१३

श्रृणु दशमौले वचो मम भ्रातः त्यज रघुवरवैरं सुरभयदातः।।
शीघ्रं समर्पय राघवाय सीतां त्यज निजमनसः कुबुद्धिं विपरीताम्।।१।।
अन्यथा मरिष्यसि रघुवीरबाणैः शयनं करिष्यसि रणभूविप्राणैः।।२।।
माभूर्निशाचरवंशधूमकेतुः यक्षखरारये भौमिं रक्षःश्रुतिसेतुम् ।।३।।
गिरिधरप्रभुमेव शरणं प्रयायाः नीचमृत्युतो निखिल नैरितान् प्रपायाः।।४।।

भौमी- हे भाई दशमौले! (दस सिर वाले रावण) मेरी बात सुनो। हे देवताओं को दुःख देने वाले रावण! श्रीराम का वैर छोड़ दो। श्रीराम को सीताजी शीघ्र सौंप दो, अपने मन की विपरीत बुद्धि छोड़ दो। नहीं तो श्रीराम के बाणों से मरोगे और युद्ध भूमि में प्राणों के साथ सो जाओगे। राक्षस वंश के धूमकेतु मत बनो। खरशत्रु श्रीराम को सीताजी को समर्पित कर दो और वैदिक सेतु की रक्षा करो। अब **गिरिधर** के प्रभु श्रीराम की शरण में जाओ और राक्षसकुल को नीच मृत्यु से बचा लो।

गीत संख्या-१४

श्रृणु श्रृणु वचनं मे विबुधारे विरोधं परिहर श्रीहरेः।।
करुणासिन्धुरशेषहितैषी जगतां श्रीराघवः सुभैषी।
श्रृणु श्रृणु वचनं मे निर्जरारे विरोधं परिहर श्रीहरेः।।१।।

प्रणतपालकः परमकृपालुः यशोनिभालको दीनदयालुः।
शृणु शृणु वचनं मे त्रिदशारे विरोधं परिहर श्रीहरेः।।२।।
दाशरथये प्रदेहि मैथिलीं मा कुरु वृत्तिं हरौ पुंश्चलीम्।
शृणु शृणु वचनं मे त्वं सुरारे विरोधं परिहर श्रीहरेः।।३।।
गिरिधरेश्वरं भज भगवन्तं पत्नीव्रतं जानकीकान्तम्।
शृणु शृणु वचनं मे देवारे विरोधं परिहर श्रीहरेः।।४।।

भौमी- हे विबुधों के शत्रु! मेरा वचन सुनिए और श्रीहरि का विरोध छोड़ दीजिए। श्रीराम करुणा के सागर और सबके हितैषी हैं और श्रीराम जगत के शुभैषी हैं। हे देवताओं के शत्रु। मेरी बात सुनिए। श्रीराम का विरोध छोड़ दीजिए। श्रीराम प्रणतजनों के पालक, परम कृपालु, यश का संभाल करने वाले और दीनों के दयालु हैं। हे त्रिदश अर्थात् तीन दशाओं वाले देवताओं के शत्रु श्रीराम का विरोध छोड़ दो। दशरथनन्दन श्रीराम को जानकीजी को सौंप दो, श्रीहरि के प्रति व्यभिचारिणी वृत्ति मत करो। हे देवताओं के शत्रु! मेरी बात सुनो, प्रभु का विरोध छोड़ दो। **गिरिधर** कवि के स्वामी पत्नीव्रत सीतापति प्रभु श्रीराम का भजन करो, हे देवशत्रु रावण! मेरी बात सुनो और सीताजी को लौटा दो।

गीत संख्या-१५

न रामं परब्रह्म किं वेत्सि।
जानन् कोसलराजकुमारं परमं प्रभुमववेत्सि।।
येन हतौ ताटकासुबाहू मारीचोऽब्धौ क्षिप्तः।
विश्वामित्रमखोऽपि त्रातो मुनिश्रमः संक्षिप्तः।।१।।
मृणालभञ्जं पुरहरचापं भङ्क्त्वा धनुर्मुरारेः।
नमितं भृगुपतिबलमपि दमितं शमितं दमं सुरारेः।।२।।
मिथिलास्वयम्वरेऽजीयत येनायोनिजापि सीता।
त्रिभुवननृणां महं पश्यतां श्रुतिविधिना परिणीता।।३।।
पितृनिदेशतो विपिनमागतं कुतुकाद्धतो विराधः।
ब्रह्मास्त्रतो जयन्तो दमितः क्षान्तः कृतापराधः।।४।।
खरदूषणो त्रिशिरसं हत्वा योऽहन् मृगमारीचम्।
मित्रं खलु प्रविधाय मित्रजं न्यहन् बालिनं नीचम्।।५।।
यद्दूतः क्रान्त्वा वारीशं तृणमिवादहल्लङ्काम्।
वनमशोकमक्षं हत्वा योऽकार्षीत् पुरीं सशङ्काम्।।६।।
तं क्षामय रघुवरं प्रभुं दशमौले प्रियप्रतीताम्।
झटिति समर्पय राजसूनवे सीतां गिरिधरगीताम्।।७।।

भौमी- श्रीराम को तुम परब्रह्म क्यों नहीं समझ रहे हो? अयोध्या राजकुमार श्रीराम को परब्रह्म जानते हुए भी तुम उनका अपमान कर रहे हो। जिनके द्वारा ताड़का, सुबाहु मारे गए, मारीच सागर में फेंका गया, विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा की गई और मुनियों का श्रम भी संक्षिप्त कर दिया गया। अरे! शिव धनुष को कमलदंड के समान तोड़कर जिन्होंने विष्णुधनुष को चढ़ा दिया, उसी के साथ परशुरामजी के बल का भी दमन किया गया और तुम रावण के दम्भ का भी शमन किया गया। जिनके द्वारा मिथिला के स्वयंवर में अयोनिजा सीताजी भी जीती गईं और सभी प्राणियों के देखते-देखते, जिन्होंने अयोनिजा सीताजी का विधिवत पाणि- ग्रहण स्वीकारा। पिता की आज्ञा से जो वन में पधारे, खेल-खेल में विराध का वध किया और ब्रह्मास्त्र से जयन्त का दमन किया फिर सीताजी के अनुरोध पर, अपराध करने पर भी छोड़ दिया। जिन्होंने खर, दूषण, त्रिशिरा का वध करके मारीच-मृग का वध किया एवं सूर्यपुत्र सुग्रीव को मित्र बनाकर नीच बालि को मार डाला। जिनका दूत समुद्र लाँघकर लंका को तृण के समान भस्म कर गया और अशोक वन तथा अक्ष का वध करके लंकापुरी शंकाकुल कर दिया। हे रावण! **गिरिधर** कवि के प्रभु श्रीराम से क्षमा माँगो और प्रियतम के विश्वासपात्र सीताजी को जो **गिरिधर** कवि के गीत का विषय बन रही हैं, उनको राजपुत्र श्रीराम को सौंप दो।

सन्दर्भश्लोकः

दत्ता लत्ता क्रोधतो रावणेन भ्रातुर्वक्षस्यात्तकालक्रमेण।
ज्ञात्वादेशं सोऽपि रक्षः कनिष्ठः सीतानाथं सर्वभावैः प्रपन्नः।।१।।

भौमी- अनन्तर कालाधिवश रावण ने क्रोध के आवेश में आकर भाई विभीषण की छाती में लात मारी, रावण के कनिष्ठ भ्राता विभीषण भी प्रभु का आदेश मानकर सब प्रकार से श्रीराम की शरण में चले गये।

गीत संख्या-१६

विभीषणः स्वगतम् -

रामं शरणमभियामि हो त्यक्त्वा सर्वपरिवारम्।।
यातुधानपतिना नितान्तं निराकृतो मध्येसभं ताडितोऽथ लत्तया तिरस्कृतः।
श्यामं शरणमभियामि हो त्यक्त्वा पुत्रभृत्यदारम्।।१।।
शिवमञ्जुमानसमनोज्ञकलहंसं हंसवंशावतंसं महितमनुवंशम्।
कामं शरणमभियामि हो त्यक्त्वा रक्षो राज्यभारम्।।२।।
भवसिन्धुपोतपूतपादारविन्दं सुरनरमुनिवन्द्यमानन्दकन्दम्।
नामं शरणमभियामि हो त्यक्त्वा भोगसुखसारम्।।३।।
सर्वसमर्थं प्रभुं त्रिजगतां शरण्यं गिरिधरगिरागीतं त्रिविबुधवरेण्यम्।
धामं शरणमभियामि हो त्यक्त्वा संसृतिविकारम्।।४।।

भौमी- विभीषण अपने मन में कह रहे हैं। आज सम्पूर्ण परिवार को छोड़कर मैं रामजी की शरण में जा रहा हूँ। आज सभी के बीच राक्षसपति ने मेरा अपमान किया, लात से मारकर ठुकराया। अब मैं पुत्र, सेवक

और पत्नी को छोड़कर श्रीराम की शरण में जा रहा हूँ। आज शंकरजी के सुन्दर मन के मधुर हंस अर्थात् सूर्यवंश के आभूषण, वैवश्वत मनु के वंश को सम्मानित करने वाले (क) अर्थात् ब्रह्मा, (अ) अर्थात् विष्णु, (म) अर्थात् शिव इन तीनों के नियंता भगवान राम के शरण में जा रहा हूँ अर्थात् राक्षस राज्य का सम्पूर्ण भार छोड़कर सबके काम में श्रीराम की शरणागति स्वीकार कर रहा हूँ। लंका का भोग सुखसार छोड़कर जिनका पवित्र चरणारविन्द संसार सागर का जलयान है और ऐसे देवता मनुष्य-मुनियों से वंदित आनन्दकन्द, सबके नमनीय श्रीराम की शरण में जा रहा हूँ। संसार के वासनात्मक कामादि विकारों को छोड़कर सर्वसमर्थ, स्वामी, तीनों जगतों को शरण देने में समर्थ और **गिरिधर** कवि के वाणी से गीत और तीनों देवता ब्रह्मा, विष्णु, शंकर के वरणीय परमधामस्वरूप श्रीराम की शरण में जा रहा हूँ।

गीत संख्या-१७

त्यक्त्वा रावणराज्यभारं शरणमहं रामं प्रपद्ये।।
आनुकूल्यसङ्कल्पं कृत्वातिहृष्टः।
प्रातिकूल्यवर्जनं विधाय संप्रहृष्टः।।
त्यक्त्वा लङ्कागृहसुखसारं शरणमहं रामं प्रपद्ये।।१।।
रामो रक्षिष्यतीति विधाय सुविश्वासम्।
गोप्ता रामभद्र इति कृत्वा समाश्वासम्।।
त्यक्त्वा सुतवित्तमित्रदारं शरणमहं रामं प्रपद्ये।।२।।
दीनतां निधाय नित्यं दीनो दीनबन्धौ।
कार्पण्यं प्रकल्प्य सत्कृपाणे कृपासिन्धौ।।
त्यक्त्वा भवविषयं विकारं शरणमहं रामं प्रपद्ये।।३।।
सीतालक्ष्मणानुचरं श्यामलशरीरम्।
गिरिधरचातकजलधर रघुवीरम्।।
त्यक्त्वा संसारं निरासारं शरणमहं रामं प्रपद्ये।।४।।

भौमी- रावण का राज्यभार छोड़कर अब मैं श्रीराम के शरण में जा रहा हूँ। मैं आनुकूल्य का संकल्प करके अत्यंत प्रसन्न हूँ और प्रातिकूल्य का वर्जन करके भी बहुत संतुष्ट हूँ, लंका भवन के गृहसुख तत्व को छोड़कर श्रीराम के शरण में जा रहा हूँ। रामजी रक्षा करेंगे, इस प्रकार विश्वास करके और रामजी ही मेरे रक्षक हैं इस प्रकार आश्वासन स्वीकार करके पुत्र धन, मित्र और पत्नी छोड़कर मैं रामजी की शरण में जा रहा हूँ। दीनबन्धु श्रीरामचन्द्रजी में नित्य दीनता धारण करके और सुन्दर कृपाण धारण किए हुए कृपा के सागर श्रीराम में कार्पण्य स्वीकार करके संसार के विषय विकार को छोड़कर सीताजी और लक्ष्मणजी से सेवित श्यामल शरीर वाले **गिरिधर** कविरूप चातक के स्वाति के बादल रघुवीर श्रीरामजी के शरण में जा रहा हूँ।

गीत संख्या-१८

रघुरामं शरणं याम्यहम्।।
गत्वा सिन्धोपारमपारं कूपारं पश्याम्यहम्।

दीनानाथं श्रीरघुनाथं नाथं संपश्याम्यहम्।।
श्रीरामं शरणं याम्यहम्।।१।।
लब्ध्वा लोचनलाभमदभ्रं सुखसिन्धौ मज्जाम्यहम्।
स्मारं स्मारं करुणागारं भवभारं भृज्याम्यहम्।।
प्रभुरामं शरणं याम्यहम्।।२।।
नामं नामं जलदश्यामं संस्फीतोऽथ भवाम्यहम्।
इत्वा शुभमूलं बिना मूल्यं विक्रीतोऽपि भवाम्यहम्।।
अभिरामं शरणं याम्यहम्।।३।।
सर्वं तत्र समर्प्य राघवे भाग्यस्त्रजं सृजाम्यहम्।
गिरिधरप्रभुः शरणो विभीषणः कृतकृत्यतां व्रजाम्यहम्।।
सीतारामं शरणं याम्यहम्।।४।।

भौमी- मैं रघुकुल को रमाने वाले श्रीराम की शरण में जा रहा हूँ। समुद्र पार जाकर एक अपार समुद्र का आज दर्शन करूँगा और दीनों के आनाथ अर्थात् आदरणीय नाथ एवं दीना अहल्या, शबरी, तारा के नाथ श्रीरघुनाथजी को अपने स्वामी के रूप में निहारूँगा और श्रीराम की शरण में जाऊँगा। आज नेत्र-निर्दोष लाभ प्राप्त करके मैं सुख के सागर में डूब जाऊँगा और करुणा के भवन श्रीराम का स्मरण करके प्रभु के प्रतापाग्नि में भवभार को ही भून डालूँगा। मैं प्रभु राम की शरण में जाऊँगा। मैं मेघ श्याम श्रीराम को बार-बार नमस्कार करके कल्याण से परिपूर्ण हो जाऊँगा और शुभ के आशय प्रभु के पास जाकर बिना मोल के ही वहाँ बिक जाऊँगा। वहाँ राघव के चरणों में सब कुछ समर्पित करके मैं सौभाग्य की माला का निर्माण करूँगा। **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम की शरण अर्थात् रक्षक बनाया हुआ मैं विभीषण कृतकृत्य हो जाऊँगा। अब मैं सीताराम की शरण में जाऊँगा।

गीत संख्या-१९

अहं रामं शरणमभियामि हो त्यक्त्वा पुरपरिवारम्।।
दीनानाथं दीनदयालुं करुणासिन्धुं परमकृपालुम्।
पूर्णकामं शरणमभियामि हो त्यक्त्वा पुत्रसुखदाराम्।।१।।
वक्षसि रावणलत्तयानिहतः मनसि तृष्णया प्रत्तया प्रहतः।
घनश्यामं शरणमभियामि हो त्यक्त्वा विषयविकारम्।।२।।
एतावद् जीवनं विषये प्रयुक्तं मिथ्याभूतं लङ्कापतिनिलये नियुक्तम्।
रामारामं शरणमभियामि हो त्यक्त्वा भीमभवभारम्।।३।।
अधुना यावद् विधात्रा भवाटव्यां वञ्चितः गिरिधरप्रभुं विहाय विकारैः प्रपञ्चितः।
सीतारामं शरणमभियामि हो त्यक्त्वा सारमसंसारम्।।४।।

भौमी- मैं पुर और परिवार को छोड़कर श्रीराम की शरण में जा रहा हूँ। मैं पुत्र, सुख और पत्नी को

छोड़कर दीनों के नाथ, दीनों पर दया करने वाले, करुणा के सागर, परम कृपालु, पूर्णकाम, श्रीराम की शरण में जा रहा हूँ। रावण के द्वारा छाती में लात से मारा हुआ और मन में भी संसारियों द्वारा दी हुई तृष्णा से पीड़ित मैं विभीषण विषय विकारों को छोड़कर घनश्याम श्रीराम की शरण में जा रहा हूँ। इतना बड़ा जीवन मैंने शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध नामक विषयों में लगा दिया और यह निरर्थक चला गया क्योंकि इसे मैंने रावण के भवन में नियुक्त किया था। अतः अब भयंकर संसार के भार को छोड़कर मैं रामाराम अर्थात् परशुराम के भी आरमण के स्थान श्रीराम की शरण में जा रहा हूँ। अब तक मैं विधाता के द्वारा इस संसार के वन में ठगा गया। **गिरिधर** कवि के प्रभु श्रीराम को छोड़कर विषयों के द्वारा प्रवंचित हुआ। अब तो असार संसार को छोड़कर मैं श्रीसीतारामजी की शरण में जा रहा हूँ।

गीत संख्या-२०

रामादन्यं कं वा भजेयं दयालुं कं वा शरणं व्रजेयम्।।
रामं विना कोऽकारणकरुणासमुद्रः कश्चरित्रमूर्तिः कश्चशीलसिन्धुचन्द्रः।
कमतोऽन्यमनन्यो निजेयं दयालुं कं वा शरणं व्रजेयम्।।१।।
कश्चैक नारीव्रतो रामादन्यो विश्वे कश्च वेदधर्मरतो रामादन्यो नीष्वे।
कमन्यं कदापि न त्यजेयं दयालुं कं वा शरणं व्रजेयम्।।२।।
कस्य निरन्तरं भवति निजरक्षलज्जा कं च सातयति सदा पापिपापमज्जा।
कस्य कृते सुस्त्यजं त्यजेयं दयालुं कं वा शरणं व्रजेयम्।।३।।
अजामिलसमानाः खलाः कस्य सदसि भाता गिरिधरसमाश्च केन पापाः परित्राता।
रामादन्यं किं स्त्रजं स्त्रजेयं दयालुं कं वा शरणं व्रजेयम्।।४।।

भौमी- श्रीराम के अतिरिक्त किसका भजन करूँ और उन प्रभु के अतिरिक्त किस दयालु की शरण में जाऊँ? श्रीराम के अतिरिक्त करुणा का सागर और कौन है? उनके अतिरिक्त और कौन है? चरित्र मूर्ति और शील सागर का चन्द्रमा? अतः उनके अतिरिक्त किसको मैं अनन्य बनकर अपना बनाऊँ और किसकी शरण में जाऊँ? इस संसार में श्रीराम के अतिरिक्त एक नारी-व्रत कौन है और श्रीराम को छोड़कर वैदिक धर्म में रत कौन है? श्रीराम के अतिरिक्त ऐसा कौन दयालु देवता है, जिसे मैं कभी नहीं छोड़ सकूँ? किसको अपने रक्षणीय की निरंतर लज्जा रहती है और पापियों के पाप की मज्जा किसको सदा सताती है? किसके लिये मैं न छोड़ने वाली वस्तु भी छोड़ सकता हूँ? अजामिल के समान खल किसकी सभा में सुंदर लगे? और **गिरिधर** कवि के समान अनेक पापियों को किस स्वामी ने तारा? रामजी के अतिरिक्त और किसको अपनी प्रेममाला से अलंकृत करूँ और किसकी शरण में जाऊँ?

विशेष- यह गीत नचारी धुन में निबद्ध है।

गीत संख्या-२१

त्यक्त्वा परिवारं भीमबाधासमुद्रं व्रजामि शरणम्।
सर्वभावैर्राममभद्रं व्रजामि शरणम्।।

तपो नैव तप्तं तापैरहमेव तप्तः।
जपं नैव जप्तं जापैरहमेव जप्तः।।
हित्वा सुतदारं दावदारुणमुदग्रं व्रजामि शरणम्।
सर्वभावैर्रामभद्रं व्रजामि शरणम्।।१।।
पूर्वस्मिन् जन्मनि द्विजेन्द्रैरभिशप्तः।
सम्प्रतिके रक्षःक्रूरकर्मणानुतप्तः।।
उज्झित्वाहङ्कारं कालकालन्ममद्रं, व्रजामि शरणम्।
सर्वभावैर्रामभद्रं व्रजामि शरणम्।।२।।
किं करिष्ये दारैरहं सुतैः कुप्रकृतिभिः।
किं विधास्ये दशमुखवशम्बदविकृतिभिः।।
मुक्त्वा भवनभारं सर्वसङ्कटसमग्रं व्रजामि शरणम्।
सर्वभावैर्रामभद्रं व्रजामि शरणम्।।३।।
गिरिधरप्रभोः समेत्य कृपासुप्रसादम्।
राघवं प्रसाद्य विभीषणो निष्प्रमादम्।।
वान्त्वा भवविकारं प्राणहरविषयविषाग्रं व्रजामि शरणम्।
सर्वभावैर्रामभद्रं व्रजामि शरणम्।।४।।

भौमी– भयंकर बाधाओं के सागर परिवार को छोड़कर सर्वभाव से मैं विभीषण रामभद्र की शरण में जा रहा हूँ, शरण में जा रहा हूँ। मैंने कोई तप नहीं किया, उल्टे मैं ही तापों से तप गया। मैंने कोई जप भी नहीं किया, उल्टे जपों ने ही मुझे जप लिया। अब तो मैं विषयाग्नियों से भयंकर पुत्र–पत्नी आदि को छोड़कर रामभद्र की शरण में जा रहा हूँ। पूर्व जन्म में मैं ब्राह्मणों द्वारा अभिशप्त हुआ, इस जन्म में क्रूर–कर्मा रावण द्वारा संतप्त हुआ। अतः काल को समीप बुलाने वाले कल्याण रहित अहंकार को छोड़कर मैं रामभद्र की शरण में जा रहा हूँ। मैं पत्नी से और बुरी प्रकृति वाले पुत्रों से क्या करूँगा और रावण के वश में रहने वाले दुर्धर्ष राक्षसों से मैं किस समस्या का समाधान करूँगा? इसलिए सम्पूर्ण संकटों से भरे हुए घर के भार को छोड़कर मैं श्रीराम की शरण में चला जाऊँगा। **गिरिधर** कवि के प्रभु श्रीराम की कृपासुख से भरा हुआ प्रसाद लेकर प्रमाद रहित होकर श्रीराम को प्रसन्न करके अब प्राण को हरने वाले विषय–विष ही जिसके परिणाम हैं, ऐसे संसार के विकार को कै के समान उलटी करके समभाव से श्रीरामभद्र की शरण में जा रहा हूँ।

गीत संख्या–२२

व्रजामि शरणं रामं सर्वजनशरण्यम्।।
आत्मारामं पूर्णकामं प्राप्तसर्वकामम्।
कमलचरणशरणगतसमाप्तसर्वकामम् ।।
व्रजामि शरणम् रामं दीनजनशरण्यम्।।१।।

दृष्ट्वाप्युपेक्ष्यमाणं निजदासदोषम्।
श्रुत्वाप्यपेक्ष्यमाणं स्वजनस्वगुणकोषम्।।
व्रजामि शरणं रामं मुनिजनशरण्यम्।।२।।
मेरुसमं रजयन्तं सेवकापराधम्।
शोषयन्तं भक्तपापवारिधिमगाधम्।।
व्रजामि शरणं रामप्रेमधनशरण्यम्।।३।।
सीतालक्ष्मणानुचरं कौसल्याकुमारम्।
गिरिधरसारङ्गवारिधरं कृपागारम्।।
व्रजामि शरणं रामं त्रिभुवनशरण्यम्।।४।।

भौमी– सभी लोगों को शरण देने में समर्थ, श्रीराम की शरण में जा रहा हूँ। आत्माराम, पूर्णकाम और सभी कामनाओं को प्राप्त किए हुए और कमल चरण के शरण में आए हुए महानुभावों की सभी सांसारिक इच्छाएँ समाप्त किए हुए दीनजनों के शरण देने वाले श्रीराम की शरण में जा रहा हूँ। देखकर भी अपने भक्त की दोष की उपेक्षा करने वाले और सुनकर भी स्वजनों के गुण कोष की अपेक्षा करने वाले मुनिजनों के शरण दाता श्रीराम की शरण में जा रहा हूँ। सुमेरु के समान होने पर भी सेवक के अपराध को धूलि के समान करते हुए और भक्त के अगाध पाप सागर को सुखाते हुए प्रेम को ही एकमात्र धन मानने वाले महापुरुषों के शरणदाता श्रीराम की शरण में जा रहा हूँ। श्रीसीता और लक्ष्मणजी ही जिनके अनुचर हैं ऐसे कौसल्याजी के पुत्र **गिरिधर** कवि रूप चातक के मेघ स्वरूप तीनों लोकों की शरण देने में समर्थ श्रीराम की शरण में मैं विभीषण जा रहा हूँ।

गीत संख्या–२३

श्रीरामदीनबन्धो करुणाकृपैकसिन्धो।
शरणागतस्तवाहं चरणाश्रितस्तवाहम्।।
हे रघुनन्दन त्रिभुवनचन्दन दशरथराजकिशोर।
नीरजलोचन जलभयमोचन भुवनविलोचनचोर।।
चारित्रचारुमूर्ते जनभावपूतपूर्ते।
शरणागतस्तवाहं चरणाश्रितस्तवाहम्।।१।।
हे नरभूषण भूषणभूषण दूषणदूषण राम।
जानकीजीवन निष्किञ्चनधनकरुणाघन सुखधाम।।
कामारिसौख्यहेतो सन्त्रातधर्मसेतो।
शरणागतस्तवाहं चरणाश्रितस्तवाहम्।।२।।
हे स्मरसुन्दर भवनिधिमन्दर गुणमन्दिर सुखकन्द।
हे जनरञ्जन हे भवभञ्जन मोहितमदन मुकुन्द।।

आनन्दकन्दमोहन शोभनभवव्यपोहन।
शरणागतस्तवाहं चरणाश्रितस्तवाहम्।।३।।
हे हरमानसमानसहंस हंसकुलकलावतंस।
हे हनुमत्सुमनोगृह सत्स्पृहसुग्रहकृतप्रशंस।।
जनतापपापहारिन् गिरिधरमनोविहारिन्।
शरणागतस्तवाहं चरणाश्रितस्तवाहम्।।४।।

भौमी- विभीषण पुनः कह रहे हैं- हे दीनों के बन्धु, हे करुणा और कृपा के एकमात्र सागर श्रीराम! मैं विभीषण आपका शरणागत हूँ, मैं चरण में आश्रित हूँ। हे रघुकुल के नन्दन! अपने जनों को प्रसन्न करने वाले दशरथजी के राजकिशोर, कमल नेत्र, भवभय को नष्ट करने वाले, सम्पूर्ण भुवनों के नेत्रों को चुराने वाले चारित्र्य रूप, सुन्दरमूर्ति धारण करने वाले सन्तों के भावों के पवित्र पूर्ति करने वाले श्रीराघव सरकार मैं आपकी शरण में आया हूँ मैं आपके चरण में आश्रित हूँ। हे मनुष्यों के आभूषण और हे आभूषणों के भी आभूषण, दूषण राक्षस के शत्रु, जानकीजी के जीवन, निकिञ्चनों के भी धन, करुणा के मेघ, सुख के आश्रय, शिवजी के सुख के उपादान कारण, वैदिक धर्म सेतु के रक्षक श्रीराम मैं विभीषण आपके शरण में हूँ, मैं आपके श्रीचरणों के भरोसे हूँ। हे कामदेव से भी सुन्दर, भवसागर के मन्दराचलस्वरूप, काम को मोहित करने वाले, भुक्ति-मुक्ति देने वाले, हे भक्तों के सुखदाता, हे भयनाशक, हे गुणों के मन्दिर, हे सुख के उपादानकारण, हे आनन्द के मेघ, सबके मोहक शोभायमान, सांसारिक भाव को नष्ट करने वाले, प्रभु मैं आपका शरणागत हूँ, आपका चरणाश्रित हूँ। हे शंकरजी के मनमानस सरोवर के हंस, हे हंस अर्थात् सूर्यकुल के सुन्दर अलंकार, हे हनुमानजी के सुन्दर मन को अपना भवन बनाने वाले, हे सन्तों की स्पृहा के केन्द्र, हे गुणग्राही जनों की प्रशंसा के विषय, हे भक्तों के पाप-ताप को नष्ट करने वाले, हे **गिरिधर** कवि के मन में विहार करने वाले प्रभु श्रीराम, मैं विभीषण आपके शरण में आया हूँ, मैं आपके चरणों के आश्रित हूँ।

गीत संख्या-२४

रघुनन्दन राघव राम हरे शरणं करवाणि तवाङ्घ्रिमहम्।
जनचन्दन राघव राम हरे शरणं करवाणि तवाङ्घ्रिमहम्।।
दशशीर्षकृताभिभवेन विभो स्वमनोभवशुक्प्रभवेण प्रभो।
भवभञ्जन भावुकधाम हरे शरणं करवाणि तवाङ्घ्रिमहम्।।१।।
दशकण्ठविनाशनचण्डशरं भुवनैकधनुर्धरमेमिकरम्।
जनरञ्जन रञ्जननाम हरे, शरणं करवाणि तवाङ्घ्रिमहम्।।२।।
अव भक्तविभीषणमाप्तभयं भवभूपविभूषणरोचिरयम्।
सुखवर्धन नीरदश्याम हरे शरणं करवाणि तवाङ्घ्रिमहम्।।३।।
परिपाहि कृपाकर भीमभवात् गिरिधरमव राघव घोरदवात्।
हृतबन्धनलोकललाम हरे शरणं करवाणि तवाङ्घ्रिमहम्।।४।।

भौमी- हे रघुनन्दन राघव! सबको रमाने वाले श्रीहरि मैं आपके चरण को ही अपना शरण बना रहा हूँ।

हे भक्तों को प्रसन्न करने वाले! मैं आपके चरण को अपना रक्षक बनाऊँ। हे व्यापक! रावण के द्वारा किए अपमान से और अपने मन में उत्पन्न शोक के प्रादुर्भाव से उद्वेलित मैं विभीषण हे भवभञ्जन! हे कल्याण के धाम! आपके चरण को ही अपना आश्रय निश्चित करने की इच्छा कर रहा हूँ। जिनका भयंकर बाण रावण का विनाशक है, ऐसे चौदहों भुवनों के एकमात्र धनुर्धर सुखदाता आप श्रीराम के पास एमि अर्थात् मैं विभीषण रावण को छोड़कर आ रहा हूँ। हे जनों के रञ्जन सुखकारी रामनाम वाले प्रभु! मैं आपके चरण को अपना आधार बनाने जा रहा हूँ। जिसका वेग रुचिकर है, ऐसे भय को प्राप्त मुझ विभीषण की रक्षा कीजिए। हे संसार के सभी राजाओं के अलंकार, सुख बढ़ाने वाले मेघश्याम श्रीराम! मैं आपके शरण में आ रहा हूँ। हे कृपा की खान मेरी भयंकर भवसागर से रक्षा कर लीजिए और हे राघव! कवि **गिरिधर** को भी घोर वनाग्नि से बचा लीजिए। हे बन्धन नष्ट करने वाले! हे संसार के रत्न श्रीराम! मैं आपके चरणों को रक्षक और आश्रय बनाने की अनुमति चाह रहा हूँ।

विशेष– यह गीत भैरवी में गाना चाहिए।

गीत संख्या–२५

रघुनन्दन दयानिधान मदीयं भव शरणम्।।
करुणागार जने करुणां कुरु कृपाकूपार कृपां तरुणां कुरु।
श्रितवैदिकधर्मविधान मदीयं भव शरणम्।।१।।
पतितं पाहि पतितकुलपावन मरणात्त्राहि महेश्वरभावन।
हे कृतश्रुतिसेतुप्रधान मदीयं भव शरणम्।।२।।
मङ्गलमन्दिर दीनदयालो भवनिधिमन्दर परमकृपालो।
भाभारतसुखसोपान मदीयं भव शरणम्।।३।।
शरणागतविभीषणं पायाः दूषणरिपो दूषणात्त्रायाः।
गिरिधरकृतगुणगान मदीयं भव शरणम्।।४।।

भौमी– हे दया के निधान रघुनन्दन! आप मेरे शरण अर्थात् रक्षक हो जाइए। हे करुणा के भवन! मुझ सेवक पर करुणा कीजिए। हे कृपासागर! आप अपनी नवीन कृपा कीजिए। हे वैदिक धर्म के श्रयण कर्ता श्रीराम! आप मेरे आश्रय बन जाइए। हे पतितकुल को पावन करने वाले! मुझ पतित की रक्षा कीजिए। हे महेश्वर शिव के भावन! अर्थात् सुख की रक्षा करने वाले प्रभु राम! मुझे मरण से बचा लीजिए। हे प्रधान वैदिक सेतु के निर्माता! आप मेरे शरण अर्थात् निवास स्थान बन जाइए। हे मंगल के मन्दिर, हे दीनों पर दया करने वाले, हे भवसागर के मन्दराचल, हे परमकृपालु, हे भा! अर्थात् वैदिक ज्ञान अर्थात् भारत के सुख के सोपानसीढ़ी स्वरूप! आप मेरे रक्षक बन जाइए। हे दूषण के शत्रु! शरणागत मुझ विभीषण की रक्षा कीजिए, मुझ विभीषण को बचा लीजिए। हे **गिरिधर** कवि के गुणगान के आश्रय! आप मेरे रक्षक बन जाइए।

सन्दर्भश्लोकः

अथाजिपौत्रेण विमानितो भृशं विहाय लङ्कां दशकन्धरानुजः।
प्रपत्तुकामश्शरणं खरद्विषश्चकार चित्ते मधुरं मनोरथम्।।१।।

भौमी- इसके अनन्तर आजि पौत्र अर्थात् ब्रह्मा के पुत्र पुलस्त्य के पौत्र रावण द्वारा अत्यन्त अपमानित हुए रावण के छोटे भाई विभीषण लंका को छोड़कर मार्ग में जाते हुए खर के शत्रु श्रीराम के श्रीचरणों में प्रपन्न होने की इच्छा करते हुए अपने चित्त में बड़े मधुर मनोरथ करने लगे।

गीत संख्या-२६

द्रक्ष्येऽद्य रघुवरपदपङ्कजम्।।
वीक्ष्येऽभीत्य पयोनिधिपारं मण्डितमञ्जुमनोगजम्।
लक्षितकुलिषकलशकमलाङ्कुशसुधाकुण्डसधनुर्ध्वजम्।।१।।
मुनिजनमानसमृदुमरालवापीमयमीड्यगुणोत्स्त्रजम्।
गङ्गाजनकमनघमघमर्दनममितकोटिदुरितोन्मृजम् ।।२।।
भववारिधिमन्दरं मन्दिरं सुसद्‌गुणानां श्रीसृजम्।
गौतमगृहिणीदोषभयभञ्जनजगदगकलुषमरीमृजम् ।।३।।
सीतामनोमधुपमकरन्दं कविकुलसुमतिगुणस्त्रजम्।
रामाराममनुपमं मृदुलं गिरिधरगृध्नु गवीव्रजम्।।४।।

भौमी- आज मैं रघुनाथजी के चरण कमल के दर्शन करूँगा। मैं विभीषण समुद्र पार जाकर मन रूप हाथी को सुशोभित करने वाले वज्र, कलश, कमल, बर्छी, अमृतकुंड, धनुष और ध्वज से अंकित श्रीराम के चरण कमल निहारूँगा। मुनिजनों के मन-मानस रूप हंस के सुन्दर बावली स्वरूप, त्यागरूप दिव्य गुण वाले गंगाजी के जन्मदाता निष्पाप, पाप को नष्ट करने वाले, अनन्त दोषों को नष्ट करने वाले, भवसागर के मन्दर स्वरूप, श्रेष्ठ गुणों के मन्दिर, शोभा के रचयिता गौतमजी की पत्नी अहल्या के दोष को नष्ट करने वाले, जड़-चेतनों के पापों का परिमार्जन करने वाले, सीताजी के मनरूप भ्रमर के मकरन्द के आशय, कविकुल की श्रेष्ठ बुद्धि के लिए गुणों के मौक्तिकमालास्वरूप परशुराम को भी आनन्द देने वाले, उपमारहित कोमल और **गिरिधर** कवि के भी वाणी रूप लोभी गाय के लिए व्रज अर्थात् गोचर भूमिस्वरूप श्रीराम के चरणकमल को आज निहारूँगा।

गीत संख्या-२७

अद्य गत्वा पयोधेस्तटं सूत्तरं रामपदपद्मयुगमं मया द्रक्ष्यते।
रावणावज्ञया खिन्नचित्तेन भो योगिमुनिवर्यरुक्मं मया द्रक्ष्यते।।
यस्माज्जाता जगत्पावनी जाह्नवी विष्णुसुयसः पताकेव राराज्यते।
तद् दुराराध्यमखिलात्मनां योगिनां कोष्णनेत्राम्बुजातैर्मया सेक्ष्यते।।१।।
गौतमस्त्रीविपत्क्षापपापापहं योगिमुनिवरपरमहंसतापापहम्।
सत्त्रितापापहं जानकीजीवनं तन्मयासाद्य वरवक्षषा वक्ष्यते।।२।।
यद्विरोचनसुताध्वरसुकृतलम्बितं यज्जनकपाणिपाथोजरोलम्बितम्।
यच्च दण्डकभयदभूमिपावनकरं तत्पदाम्भोरुहं वै मया स्प्रक्ष्यते।।३।।

द्रष्टा हनुमत्कुशेसय करातिथिभवं यत्समरुणं निहतभक्तभवरौरवम्।
तत्पदाम्भोरुहद्वन्द्वमजसुतभुवो गिरिधरेणापि कवितास्त्रजा स्त्रक्ष्यते।।४।।

भौमी- अरे! आज समुद्र के उत्तरी तट पर जाकर मुझ विभीषण द्वारा भगवान राम के श्रीचरणकमल युगल के दर्शन किए जायेंगे। रावण द्वारा किए गए अपमान से खिन्न चित्त मुझ विभीषण द्वारा योगियों और श्रेष्ठ मुनियों के स्वर्णधन स्वरूप प्रभु के चरणकमल निहारे जाएंगे। जिससे प्रकट हुई गंगाजी जगत को पवित्र करती हुई भगवान वामन की यश पताका की भाँति सुशोभित हो रही हैं। उन्हीं समस्त प्राणियों के आत्मस्वरूप योगिजनों के लिए भी दुराराध्य प्रभु के श्रीचरण कमलों का आज मेरे द्वारा अपने गरम अश्रु जल से अभिषेक किया जाएगा। जो गौतम की पत्नी अहल्या की विपत्ति शाप और पाप को नष्ट करने वाले हैं और जो योगियों, श्रेष्ठ मुनियों और परमहंसों के ताप को नष्ट करने वाले हैं। जो सन्तों के तीनों तापों को नष्ट करने वाले तथा जानकीजी के जीवन स्वरूप हैं उन्हीं चरणों को आज प्राप्त करके मेरे द्वारा अपने सुन्दर हृदय से चिपका लिया जाएगा। जो बलि के यज्ञ से उत्पन्न पुण्य के आधार बने और जो जनकजी के करकमल के भ्रमर बने, जिन्होंने दण्डक की भयंकर भूमि को पवित्र किया, उन्हीं चरणकमलों का आज मेरे द्वारा स्पर्श किया जाएगा। जो हनुमानजी के करकमल के अतिथि स्वरूप हैं और जो अत्यन्त लाल तथा भक्तों का घोर रौरव नष्ट करने वाले हैं, मैं विभीषण उन्हीं चरणकमलों को आज दर्शन करूँगा और अजसुतभुवः अर्थात् अज के पुत्र दशरथजी के यहाँ प्रकट हुए श्रीराम के उन्हीं श्रीचरणकमल युगल को **गिरिधर** कवि के द्वारा अपनी कविता रूप मालिका द्वारा अलंकृत किया जाएगा।

सन्दर्भश्लोकः

ततो निरस्तो दशमौलिना वै विभीषणः पारमुपेत्य वार्धेः।
स उत्तरं व्योम्नि गतो बभाषे कपीश्वरान् रामपदं प्रपन्नः।।१।।

भौमी- इसके अनन्तर रावण द्वारा अपमानित वे विभीषण समुद्र पार जाकर उत्तरी तट के आकाश में स्थित होकर श्रीराम के चरणों में प्रपन्न वीर वानरों को सम्बोधित करते हुए इस प्रकार बोले।

गीत संख्या-२८

विभीषणः वानरान् प्रति-

अये वानरा ब्रूत हे चापधारिन् शरणमभ्युपेतो विभीषण इह त्वाम्।
त्रिभिस्तापकैस्तप्तो हे तापहारिन् शरणमभ्युपेतो विभीषण इह त्वाम्।।
हतो लत्तया बन्धुनोरसि कृपालो पराभूतिराप्ता सभायां दयालो।
विहायैव सम्बन्धजातं जगत्या शरणमभ्युपेतो विभीषण इह त्वाम्।।१।।
मया त्यक्तं प्राज्यं सुभोज्यं वैराज्यं दशग्रीवसाम्राज्यमीड्यं स्वराज्यम्।।
क्षणात्स्वप्नवत् त्यक्त्वा दारांश्च पुत्रान् शरणमभ्युपेतो विभीषण इह त्वाम्।।२।।
त्वमेवासि माता पिता त्वं मदीयः त्वमेवासि बन्धुः सखा त्वं मदीयः।
त्वमेवासि सर्वस्वं मे राम राजन् शरणमभ्युपेतो विभीषण इह त्वाम्।।३।।

श्रुतो मारुतेः श्रीमुखात्त्वत्स्वभावः तथा सर्वसद्भ्यः श्रुतस्तेऽनुभावः।
महान्तं त्वयि प्राप्य विश्वासमीशं शरणमभ्युपेतो विभीषण इह त्वाम्।।४।।
न मां प्रत्याख्याहि प्रकामं निहन्याः प्रभो मामपेक्षस्व विघ्नान् विहन्याः।
प्रभुः ब्रूहि गिरिधरधनुर्धरमुदारं शरणमभ्युपेतो विभीषण इह त्वाम्।।५।।

भौमी- इसका हिन्दी गीतबद्ध अनुवाद इस प्रकार है-

कहो कपियों राघव से हे चापधारिन् शरण आज आया विभीषण तुम्हारी।
तपा तीनों तापों से हे तापहारिन् चरण छाँह पाया विभीषण तुम्हारी।
हनी लात रावण ने छाती में राघव, सहा राक्षसों का सभा में पराभव।
सभी छोड़ सम्बन्ध जग के मुदित मन, चरण सिर झुकाया विभीषण दुःखारी।।
तजे मैंने लंका के सुख-भोग सारे, प्रणतपाल केवल भरोसे तुम्हारे।
कृपासिन्धु के आ पड़ा आन द्वारे, चरण मन रमाया विभीषण विकारी।
तुम्हीं मेरी माता, पिता भी तुम्हीं हो, तुम्हीं मेरे भ्राता, सखा भी तुम्हीं हो।
तुम्हीं मेरे सर्वस्व, हे रामराजा, चरण चित् लगाया विभीषण विकारी।
श्रवण सुन तुम्हारा सुयश सन्त जन से, दृढ़ा दिव्य विश्वास मारुत सुवन से।
तुरत छोड़ ममता स्वजन धन भवन से चरण सिर नवाया विभीषण भिखारी।।
न ठुकराएँ मुझको कुचल दें भले ही, न लौटाएँ जन को अनाथों के नेही।
कहो जाके गिरिधर धनुर्धर प्रभू से, नयन जल ही लाया विभीषण पुजारी।।

गीत संख्या-२९

वानराः श्रीरामं प्रति-

खरारिं राघवं रामं विभीषण आगतः शरणम्।
अघारिं नीरदश्यामं विभीषण आगतः शरणम्।।
विहितसुग्रीवकपिभूपं निहतशाक्रिं मनुजरूपम्।
हरिं शोभाविजितकामं विभीषण आगतः शरणम्।।१।।
निरस्तो रावणेनायं भवन्तं देवमुरुगायम्।
शरण्यं लोकलालामं विभीषण आगतः शरणम्।।२।।
अनन्यो धन्विनं धन्यं स्वजनसारङ्गपर्जन्यम्।
विभुं त्वां विश्वविश्रामं विभीषण आगतः शरणम्।।३।।
यथा स्याद् देवनिर्देशः तथा देयोऽत्र सन्देशः।।
प्रभुं गिरिधरमनोरामं विभीषण आगतः शरणम्।।४।।

भौमी- विभीषण का आवेदन सुनकर वानर भगवान राम के प्रति कहते हैं-खर के शत्रु रघुकुल में प्रकट आप श्रीराम की शरण में विभीषण आए हैं। पापहारी मेघ के समान श्यामल आपश्री की शरण में

विभीषण आए हैं। सुग्रीव को वानरों को राजा बनाने वाले शाक्रि अर्थात् इन्द्रपुत्र बालि का वध करने वाले, मनुष्य रूप में विराजमान शोभा से काम को जीतने वाले, आप श्रीहरि की शरण में विभीषण आए हैं। हे प्रभो! रावण से अपमानित हुए ये विभीषण अनन्तकीर्ति वाले देवाधिदेव सारे संसार के रत्न-शरण देने में समर्थ आप श्रीराघव की शरण में आए हैं। हे प्रभु! अन्य आश्रयों का त्याग करके एकमात्र आपका आश्रय स्वीकारे हुए विभीषणजी अद्वितीय धनुर्धर सभी धन्यवादों के पात्र, अपने भक्तरूप चातकों के लिए स्वाति मेघ स्वरूप सर्वव्यापक और सम्पूर्ण विश्व के विश्राम देने वाले आपश्री की शरण में आए हैं। हे देव! इस सम्बन्ध में आपश्री का जैसा निर्देश हो, हम विभीषण को वही संदेश दें। वस्तुतस्तु **गिरिधर** कवि के मन को रमाने वाले सर्वसमर्थ आप श्रीराघव सरकार की शरण में विभीषण आए हैं।

गीत संख्या-३०

सर्वसचिवान् पृच्छन्तं श्रीरामं प्रति हनुमान्

प्रभो विभीषणं प्रत्येहि मैनं नाथ निराकुर्याः।
विभो विभीषणं प्रत्येहि मैनं देव तिरस्कुर्याः।।
दशमौलिना लत्तया वक्षसि भृशं हतो रघुनन्दन।
त्यक्त्वा सर्वं शरणमागतस्त्वां वैष्णवकुलचन्दन।।
निजदासं द्रुतं विधेहि मैनं नाथ निराकुर्याः।।१।।
अनन्यसाध्ये स्वाभीष्टे परिकलितमहाविश्वासः।
प्राप्तो दशकन्धरानुजोऽयं समुल्लसितनिःश्वासः।।
वरमभयममुष्मै देहि मैनं नाथ निराकुर्याः।।२।।
विप्रतिपद्यन्तेऽत्र वानरा मोघं त्वा जानन्तः।
शङ्कन्ते सज्जने विमूढा वैष्णवमवजानन्तः।।
सन्देहं हृदि मा धेहि मैनं नाथ निराकुर्याः।।३।।
भाति सज्जनो विभीषणो नो नाथ संशयः कार्यः।
गिरिधरप्रभो धनुर्बाणं पृष्ट्वा निर्णयो निधार्यः।।
निजचरणे जनं निधेहि मैनं नाथ निराकुर्याः।।४।।

भौमी- सम्पूर्ण सचिवों से पूछते हुए श्रीराम के प्रति हनुमानजी निवेदन करते हैं-हे प्रभो! आप विभीषण पर विश्वास कीजिए, हे नाथ! इन्हें मत ठुकराइये! हे सर्वव्यापक! विभीषण पर विश्वास कीजिए। हे परम प्रकाशमान देव! इनका तिरस्कार मत कीजिए। हे रघुनन्दन! रावण के द्वारा लात से छाती में बहुत मारे हुए ये विभीषण सब कुछ छोड़कर आपश्री की शरण में आ गए हैं। हे वैष्णवकुल को आह्लादित करने वाले प्रभु! आप विभीषण को शीघ्र अपना दास बनायें। इन्हें ठुकराए नहीं। उनका अभीष्ट आपश्री के बिना किसी और से साध्य नहीं होगा। इस अवधारणा पर महान विश्वास करके प्रसन्नता के निःश्वास से सुशोभित रावण के छोटे भाई विभीषण आपश्री के चरणों में आए हैं। हे परमेश्वर! इन्हें अभय वरदान दे दीजिए। इनको अपने चरणों से अलग मत कीजिए। आपको जानते हुए भी आपके सचिव वानर-वर यहाँ व्यर्थ का बखेड़ा खड़ा करके

निरर्थक वाद-विवाद कर रहे हैं। जबकि मूढ़ता के कारण वैष्णव श्रेष्ठ विभीषणजी का अपमान करते हुए आपश्री के इन भक्त शिरोमणि पर निरर्थक शंकाकुशंका कर रहे हैं, परन्तु विभीषण के प्रति आपश्री किसी प्रकार का संदेह धारण न करें। हे महाराज! विभीषण सज्जन प्रतीत हो रहे हैं, इनके प्रति संशय नहीं करना चाहिए। हे **गिरिधर** कवि के स्वामी रघुनाथजी! आप अपने धनुष-बाण से पूछकर ही किसी निर्णय की अवधारणा पर पहुँचे। आशय यह है कि जैसे सीधे बाण के साथ टेढ़ा धनुष भी तो आपके साथ रहता है। आपश्री तो टेढ़े धनुष को कंधे पर लटकाए रहते हैं और बाण को अपने पीठ पर लटकाकर तरकश में धारण करते हैं, कभी दाहिने हाथ में लेते हैं। धनुष को कभी नहीं छोड़ते परन्तु राक्षसों को मारने के लिए बाण को बार-बार दूर फेंकते रहते हैं। इससे ऐसा लगता है कि आपश्री के दरवार में सीधों की अपेक्षा टेढ़ों का बहुत सम्मान है। अतः यदि विभीषण को छोड़ना हो तो धनुष भी छोड़ें जबकि आप धनुष कभी नहीं छोड़ सकते। इसी प्रकार विभीषण भी आपके लिए सर्वथा स्वीकार्य और अनिवार्य हैं।

विशेष- यह गीत एक सुगम संगीतीय गीत की ढाल पर निबद्ध है। इसका बोल है-

''तू राम शरण में जा मत कर तू मेरा मेरा।''

गीत संख्या-३१

हनुमान् पुनर्गायति-

महात्मा विभीषणो मे भाति।।
परमात्मानं कथं दुरात्मा सन्मुखमेष शरणमायाति।
किमुत तपति तपने मध्याह्ने चण्डदीधितौ तमोऽभियाति।।१।।
किमुत कल्पपादपः सृतछायस्य महादुरितं न लुनाति।
किमुताच्युतपदपद्ममरन्दमयी गङ्गा पापं न पुनाति।।२।।
महामत्तगजराजगण्डभिदुरस्य हरेरधिकाननधाम।
किं कर्तुं शक्नोति मूषिकस्तोदं किञ्चिदपि प्रोद्दाम।।३।।
अभिराघवं न चायं कपटी स्याद्विभीषणो हे रघुचन्द्र।
गिरिधरप्रभो पाहि शरणागतमिमं दीनमिह कृपासमुद्र।।४।।

भौमी- हनुमानजी पुनः कहते हैं-मुझे तो विभीषणजी महात्मा लग रहे हैं, यदि ये दुरात्मा होते तो आपश्री परमात्मा की शरण में क्यों आते, मध्याह्न में तपते हुए सूर्य के पास क्या अंधकार आ सकता है। क्या कल्पवृक्ष अपनी छाया का आश्रय लेने वाली के दारिद्र्य का दलन नहीं करता? क्या आपश्री के चरणकमल की मकरन्द रूपा गंगा स्नान करने वाले के पाप को नहीं नष्ट करती? अरे! अत्यन्त मतवाले गजराज के गण्डस्थल के भेदन में निपुण वन की गुफा में मस्ती में सो रहे सिंह का बन्धन से खुला हुआ छोटा-सा चूहा थोड़ा भी उत्पीड़न कर सकता है। हे रघुकुल के चन्द्रमा! आपश्री राघव सरकार के समक्ष विभीषण कपटी नहीं रह सकते अर्थात् यदि होगा भी तो आपके प्रभाव से इनका कपट समाप्त हो जाएगा। हे **गिरिधर** कवि के स्वामी कृपासागर भगवान राम! अब आपश्री के शरण में आए हुए इन दीनभक्त विभीषण की आपश्री ही रावण से रक्षा करें।

सन्दर्भश्लोकः

ततः प्रसन्नो हनुमद्वचोभिः प्रपन्नकामार्पणपारिजातः।
सुग्रीवमुख्यान् सचिवान् विधुन्वन् श्रोत्राभिरामं निजगाद रामः।।१।।

भौमी– इसके पश्चात् श्रीहनुमानजी महाराज की वाणी से प्रसन्न हुये शरणागतों की सभी अभीष्ट वस्तुओं को देने के लिये कल्पवृक्ष स्वरूप भगवान राम सुग्रीव प्रमुख वानरों को प्रसन्न करते हुये श्रवणों को आनन्द दायक वचन बोले।

गीत संख्या–३२

नैव दुष्टो विभीषण इनो रक्षसां सादरं सानुरोधं समानीयताम्।
त्यक्तशङ्काकलङ्कैर्भटैर्वानरैर्मत्सखो निर्विरोधं समानीयताम्।।
शुद्धसाधुः प्रकृत्या गिराचेङ्गितैः सौम्यचित्तश्च मे भाति दनुजानुजः।
त्यक्त सुतवित्तदारः शरणमागतो मत्समीपं सखा मे समानीयताम्।।१।।
चेत्प्रपन्नः सकृन्माभयं याचते सर्वभूतेभ्य एवाभयं राम्यहम्।
एवमेतद् व्रतं मे स्मरद्भिः समैः निर्विवादं सखा मे समानीयताम्।।२।।
कोऽपि पापी कलापी समस्तागसां स्याज्जगद्रोहकृतसागरः साध्वसाम्।
न त्यजेयं तमपि क्वापि शरणागतं मत्सकाशं सखा मे समानीयताम्।।३।।
रावणो वाथवा रावणस्यानुजो दत्तमस्याभयं भो शृणुध्वं समे।
गिरिधरप्रभुगिरा नेह संशय्यतां निष्प्रमादं सखा मे समानीयताम्।।४।।

भौमी– राक्षसों के स्वामी विभीषण दुष्ट नहीं हैं, अतएव उन्हें अनुरोध और आदर के साथ मेरे पास लाया जाय। शंकारूप कलंक का त्याग किये हुये आप सभी वीर वानरों द्वारा मेरे मित्र विभीषण को पारस्परिक विरोध छोड़कर मेरे पास लाया जाय। वस्तुतः वाणी से, संकेत से और स्वभाव से रावण के छोटे भाई विभीषण मुझे शुद्ध साधु लग रहे हैं। ये पुत्र, धन, सम्पत्ति छोड़कर मेरी शरण में आये हैं, अतः मेरे मित्र विभीषण को मेरे समीप लाया जाय। यदि मेरी शरण में आकर एक बार भी मुझसे कोई भी अभय की याचना कर लेता है तो मैं उसे सभी प्राणधारियों से अभयदान दे देता हूँ। इस प्रकार मेरे इस व्रत का स्मरण करते हुये विवाद छोड़कर आप लोगों द्वारा मेरे मित्र विभीषण को लाया जाय। कोई कितना भी बड़ा पापी हो, सभी अपराधों का समूह उसी में हो, भले उसने सम्पूर्ण संसार से द्रोह किया हो, भले वह भयों का समुद्र बन गया हो इतने पर भी यदि वह मेरी शरण में आ जाय तो मैं उसे कभी भी कहीं भी नहीं छोड़ सकता। इसलिये भी विभीषण को मेरे निकट लाया जाय। अरे वानरों! सुनो, यह रावण हो या रावण का छोटा भाई विभीषण, मैंने इसे अभयदान दे दिया। **गिरिधर** कवि के प्रभु मुझ राम की वाणी से स्फुरित निर्णय सुनकर अब इस विषय में कोई संशय मत कीजिये। प्रमाद रहित होकर मेरे मित्र विभीषण को मेरे पास ले आइये।

गीत संख्या-३३

विभीषणमानय हे सुग्रीव।
त्यज संशयं कुरु प्रणयं मैतस्मिन् विचिकित्सेर्वरग्रीव।।
यदि चेन्मयि विश्वासघातमिह कर्तुमीहते स्वशरणयाची।
तदा लक्ष्मणो यावन्निमिषं हन्यादेतमुभयतः साची।।१।।
सन्तु नाम राक्षसास्त्रिलोक्यां काममासतां हरिहररक्ष्या।
मयेच्छता वामकरकनिष्ठ्या तेऽपि भवेयुर्ननु यम भक्ष्या।।२।।
आयातं शरणं विभीषणं ध्रुवं करिष्ये लङ्काराजम्।
यदि रावणस्तमवधराजमथ कृत्वा यास्ये विपिनसमाजम्।।३।।
गिरिधरप्रभुवचनेन तोषिताः कपयः कुशुमं सुरा प्रववृषुः।
जयतु गीतसीताभिराम इति मुदा गदन्त्यो देव्यो जहृसुः।।४।।

भौमी- हे सुग्रीव! विभीषण को ले आइये। संशय छोड़ दीजिये। विभीषण से प्रेम कीजिये। हे सुन्दर ग्रीवा वाले सुग्रीव! विभीषण पर कोई विचिकित्सा अर्थात् सन्देह मत कीजिये। यदि शरणागत की प्रार्थना करने वाला विभीषणवेशधारी रावण शरण में आकर भी मुझसे विश्वासघात करने की सोचता है तो दोनों हाथों से बाण चलाने वाले मेरे लक्ष्मण उसे एक क्षण में मार डालेंगे। भले इस त्रिलोकी में बहुत से राक्षस हैं, भले ही उनकी विष्णु और शिव जैसे देवता रक्षा कर रहे हों पर यदि मैं इच्छा कर लूँ तो उन्हें मैं अपने बायें हाथ की कनिष्ठिका से मारकर यमराज का भोजन बना सकता हूँ। यदि विभीषण मेरी शरण में आये हैं, तो मैं उन्हें लंका का राजा बना दूँगा। यदि कदाचित् विभीषण की शरणागति के पश्चात् रावण मेरी शरण में आता है तो मैं उसे अयोध्या का राजा बनाकर सदैव के लिये वन में रहने वाले मुनियों के समाज में चला जाऊँगा। इस प्रकार **गिरिधर** कवि के प्रभु श्रीराम के सुस्पष्ट नीति निर्धारक वचन से सन्तुष्ट हुये वानर और देवता पुष्पों की वर्षा करने लगे। गीतसीताभिराम श्रीराम की जय हो, ऐसा कहकर देवांगनाएँ प्रसन्न हो उठीं।

सन्दर्भश्लोकः

सादरं कपिमुख्यैश्च समानीतो विभीषणः।
ददर्श सानुजं रामं शरणागतवत्सलम्।।१।।

भौमी- इस प्रकार प्रभु के द्वारा आदेश दिये जाने पर श्रेष्ठ वानरों द्वारा आदरपूर्वक प्रभु के पास लाये गये विभीषण ने शरणागत-वत्सल श्रीराम को छोटे भाई लक्ष्मणजी के साथ देखा।

गीत संख्या-३४

विभीषणो गायति-

जगति राजति रामचन्द्रः दिनकरान्वयकुमुदचन्द्रः।
सुजनचारुचकोरचन्द्रः जगति राजति रामचन्द्रः।।

तूणसायकचण्डचापः शिरसि सुभगजटाकलापः।
प्रहतसज्जनदुरितपापः निष्कलङ्ककठोरचन्द्रः।।१।।
ललितलक्ष्मणदक्षभागः कपिसमूहसमृद्धरागः।
पवनसुतललितानुरागः स्वजनशम्भुकिशोरचन्द्रः।।२।।
पद्मिनीपतिवंशभूषण विगतदूषण विहतदूषण।
शरणसुखसम्मतविभीषण विमलमनो महोरचन्द्रः।।३।।
नीलनीरजघनश्यामः सततपूरितप्रणतकामः।
तनुविनिन्दितकोटिकामः गिरिधराम्बकचोरचन्द्रः।।४।।

भौमी– अब विभीषण गा रहे हैं–सूर्यवंश रूप कुमुद के चन्द्रमा तथा सज्जनरूप सुन्दर चकोरों के चन्द्रमारूप श्रीरामचन्द्र इस संसार में देदीप्यमान हो रहे हैं। तरकस–बाण और भयंकर धनुष धारण किये हुये, सिर पर सुन्दर जटाजूट से सुशोभित, सज्जनों के दोष व पापों को नष्ट करने वाले निष्कलंक पूर्ण चन्द्रस्वरूप श्रीराम संसार में सुशोभित हो रहे हैं। सुन्दर लक्ष्मणजी के द्वारा जिनका दक्षिण भाग ललित लग रहा है और वानर समूह पर जिनका राग समृद्ध हो रहा है तथा जिन पर पवनपुत्र हनुमानजी का प्रेम बढ़ता जा रहा है ऐसे श्रीराम भक्त रूप शंकर के बालचंद्र स्वरूप श्रीराम संसार में सुशोभित हो रहे हैं। पद्मिनी पति अर्थात् कमलिनी के पति सूर्य के वंशाभूषण दूषणों से रहित और दूषण नामक राक्षस के वधकर्ता, मुझ विभीषण का शरणागत के सुख से सम्मान करने वाले, निर्मल मन को उत्सव देने वाले, चन्द्रमारूप श्रीरामचन्द्र सुशोभित हो रहे हैं। नीलेकमल और मेघ के समान श्यामल सदैव प्रणतजनों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले अपने शरीर की शोभा से करोड़ों कामदेवों को जीतने वाले **गिरिधर** कवि के नेत्र को चुराने वाले चन्द्रस्वरूप श्रीराम संसार में सुशोभित हो रहे हैं।

विशेष– यह गीत रूपक ताल में निबद्ध है और इसे हेमकल्याण एवं कामोद राग के मिश्रण से गाना चाहिए।

गीत संख्या–३५

श्रुत्वाचार्यां यशो नन्वहं साध्वसो हे सुखार्णव त्राहि मां राम राघव।।
यदा हनुमन्मुखात्ते स्वभावः श्रुतः देवविस्मापकस्ते प्रभावः श्रुतः।
तदा प्राप्तं सुखं सर्वमङ्गलमुखं न्यस्तलाघव त्राहि मां त्राहि हे राम राघव।।१।।
भ्रात्रा वक्षस्यहं लत्तया ताडितः पराभूत्याऽसता प्रत्ययपीडितः
प्राणभयनिर्भरे पातितं सागरे महितमानव त्राहि मां राम राघव।।२।।
त्यक्त्वा पुत्रान् कलत्रं प्रियं परिजनं शरणमायां भवन्तं भजञ्चिद्घनम्।
मा परावर्तये मा च निर्वर्तये भग्नरौरव त्राहि मां राम राघव।।३।।
पाहि त्रैलोक्यभूषण विभीषणमिमं पाहि पाहि ईश सम्प्राप्तदूषणमिमम्।
त्वां शरणमागतं गिरिधरेणान्वितं गीतगौरव त्राहि मां राम राघव।।४।।

भौमी– हे सुख के सागर! आपका यश सुनकर भय से पूर्ण मैं विभीषण आपकी शरण में आया हूँ। मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। हे राम! हे राघव! मेरी रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये। जब मैंने हनुमानजी के मुख से आपका स्वभाव सुना और देवताओं को विस्मित करने वाला आपका प्रभाव भी सुना, उसी समय सम्पूर्ण मंगलाभिमुख सुख मुझे प्राप्त हो गया। हे सुख के महासागर! अब मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। हे प्रभु! भाई रावण द्वारा मैं छाती में लात से मारा गया और उस दुष्ट द्वारा मैं अपमान से और उसके प्रति विश्वास से पीड़ित हुआ प्राणभय से पूर्ण इस सागर में पड़े हुये मुझ विभीषण की आप रक्षा कीजिये। हे मनुवंश को सम्मान दिलाने वाले! आप मेरी रक्षा कीजिये। मैं पुत्रों को, पत्नी को और पूरे परिवार को छोड़कर आपश्री चेतनाघन परमात्मा का भजन करता हुआ आपकी शरण में आ गया हूँ। हे भक्तों का रौरव नष्ट करने वाले प्रभु! मुझको लौटाइये नहीं, मुझे शान्त कीजिये एवं मेरी रक्षा कर लीजिये। हे तीनों लोकों के आभूषण प्रभु राम! मुझ विभीषण की रक्षा कीजिये। हे ईश्वर! जीवन में दोषों को ही प्राप्त किये हुये मुझ विभीषण की रक्षा कीजिये। जिनका गौरव कवियों के गीत का विषय बना, ऐसे हे परमेश्वर! **गिरिधर** कवि के साथ आपकी शरण में आये हुये मुझ विभीषण की रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये।

गीत संख्या–३६

श्रीरामस्तिलकयन् विभीषणं प्रति–

सखे विभीषण तिष्ठ निर्भयं रामबाहुबलसुरक्षितः।
यातु ते ज्वरो भवे गतज्वरो मया भुजाभ्यां प्ररक्षितः।।१।।
त्वां च तिलकयन् प्रतिजानेहं हाटकलङ्कापुरराज्यम्।
आकल्पं शम्भुङ्क्ष्व ससखे रजनीचर सङ्कुलसाम्राज्यम्।।२।।
मां सेवस्व सहानुजसीतं भव वैष्णवकुलदीपस्त्वम्।
कल्पायुर्मम भजनशुभायुर्निशिचरवंशमहीपस्त्वम्।।३।।
पाषाणैः पाथोधिं बद्ध्वा हत्वा समरे दशाननम्।
सीतानीतो गिरिधरगीतो यक्षे यज्ञै हुताशनम्।।४।।

भौमी– अब श्रीराम तिलक करते हुये विभीषण के प्रति कहते हैं– हे विभीषण! मुझ राम के बाहुबल से सुरक्षित होकर अब तुम यहाँ निर्भय होकर रहो। अब तुम मेरी भुजाओं से रक्षित हो, अतः तुम्हारा चिन्ता ज्वर चला जाय, तुम तीनों प्रकार के ज्वरों से रहित हो जाओ। हे मित्र! तुम्हें तिलक करते हुये मैं स्वर्ण लंका के राज्य की प्रतिज्ञा करता हूँ अर्थात् तुम्हें लंका का राजा बनाता हूँ। हे मित्र! अब एक कल्पपर्यन्त तुम राक्षस कुल के साम्राज्य का भोग करो। लक्ष्मण, सीता सहित मुझ राम की सेवा करो। राक्षस वंश के दीपक बनो और मेरे भजन से कल्याणमय जीवन और एक कल्प का आयुष्य प्राप्त करो और एक कल्पपर्यन्त राक्षस वंश के राजा हो। मैं पत्थरों से समुद्र में सेतु बंधाकर युद्ध में रावण को मारकर सीताजी को अग्निपरीक्षा के बहाने अग्नि से वापस लाकर **गिरिधर** कवि के द्वारा गाये गीतों का प्रतिपाद्य बनकर अनेक यज्ञों द्वारा अग्निदेव को संतुष्ट करूँगा।

उपसंहारश्लोकः

इत्यभिषिच्य विभीषणमित्रं पावकबाणवशीकृतसिन्धुः।
बन्धितसेतुरबन्धितवीर्यः सुन्दरकाण्डकथोऽवतिरामः।।१।।

भौमी- इस प्रकार अपने मित्र विभीषण को लंका के राजा के रूप में अभिषेक करके आग्नेय बाण से सागर को अपने वश में करके, समुद्र में सेतु बंधाकर, प्रतिबन्ध रहित पराक्रम वाले भगवान श्रीराम सुन्दरकाण्ड की कथा का प्रतिपाद्य बनकर सुशोभित हो रहे हैं।

इति
श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरमहाकविजगद्गुरुरामानन्दाचार्यस्वामिरामभद्राचार्यगिरिधरकविप्रणीते गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये सुन्दरकाण्डे गीतसमर्थशरण्यो नाम द्वितीयः सर्गः।

।।सुन्दरकाण्डं सम्पूर्णम्।।

इस प्रकार श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर महाकवि जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य गिरिधरकवि द्वारा विरचित गीतरामायण 'गीतसीताभिराम' नामक संस्कृत गीतमहाकाव्य के सुन्दरकाण्ड में गीतसमर्थशरण्य नामक द्वितीय सर्ग सम्पन्न हुआ और सुन्दरकाण्ड भी सम्पूर्ण हो गया।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

।।श्रीः।।
।। नमो राघवाय।।
।।श्रीमद्राघवो विजयते।।श्री सीतारामौ विजयेते।।

अथ युद्धकाण्डम्

गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये युद्धकाण्डे

गीतरणकर्कशो नाम

प्रथमः सर्गः

मङ्गलाचरणम्

कोदण्डं चण्डचण्डं फणिपतिप्रहितं वामहस्तेन गृह्णन्
सज्जं कुर्वन् सकोपं विकटभृकुटिको रक्तराजीवनेत्रः।
उद्दण्डान् दण्डयिष्यन् ज्वलनशरमथो सन्दधानो मनस्वी
पाथोधिं निग्रहीष्यन् जगति विजयते राघवो धन्विधुर्यः।।१।।
कालदण्डविकरालकार्मुकं, कालकालफणिसायकं वहन्।
कालवह्निरुडमोघकालतः कालरूपरघुनायकोऽवतु।।२।।

भौमी– अब महाकवि युद्धकाण्ड का वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण प्रस्तुत कर रहे हैं। श्रीलक्ष्मण द्वारा दिये हुये अत्यंत भयंकर धनुष को बायें हाथ से ग्रहण करते हुये, क्रोध से लाल नेत्र होकर उस धनुष को प्रत्यंचायुक्त करते हुये, उद्दंडों को दंडित करने के लिए धनुष पर आग्नेय बाण का संधान करते हुए, समुद्र को निग्रहीत करने वाले धनुर्धरों में श्रेष्ठ श्रीराम राघवजी सर्वश्रेष्ठ दृष्टिगोचर हो रहे हैं। अब कवि आशीर्वादात्मक मंगलाचरण प्रस्तुत कर रहे हैं। कालदंड के समान भयंकर धनुष और कालों के भी काल सर्पस्वरूप बाण को धारण करते हुये कालाग्नि के समान क्रोध वाले कालरूप रघुनायक श्रीराम अमोघ काल से हमारी रक्षा करें।

गीत संख्या-१

अथ त्रिरात्रोपोषितः क्रोधरक्तान्तलोचनो रामो लक्ष्मणं प्रति–

लक्ष्मण देहि धनुः शरचण्डम्।
आनय कोटिकालविकारालं दमितोद्दण्दं मम कोदण्डम्।।१।।

मौर्वीं समारोप्य वैश्वानरशरं प्रचण्डं सन्धास्येऽहम्।
सोषयिष्ये इह सागरमुग्रं प्रोद्दण्डाय फलं दास्येऽहम्।।२।।
मन्वानोऽथ विभीषणवाक्यं सिन्धोःस्म शये तटे त्रिरात्रम्।
नैवासावश्रृणोन्निवेदनं मूढस्तब्धः शठोऽतिमात्रम्।।३।।
मर्यादापुरुषोत्तममवजानन्नुदधिस्यान्निर्मर्यादः।
पद्भ्यां यातु बलीमुखनिकरः पारेसिन्धुविभग्नविषादः।।४।।
पाथोधिं पथयामि पार्थिवीकृते प्रचण्डपावकाशुगतः।
भवच्छुष्कपङ्कः पयोनिधिर्मत्प्रतीपपथ पथिक उद्गतः।।५।।
शीघ्रं भवतु विबुधवन्दीनामुद्ग्रन्थिः सुष्नाता वेणी।
गिरिधरप्रभोर्दशास्यशिरोरक्तं प्रपीयतां विशिखश्रेणी।।६।।

भौमी–इसके अनन्तर तीन रात्रि पर्यन्त उपवास किये हुये क्रोध से अरुण नेत्र भगवान श्रीराम लक्ष्मणजी को संबोधित करते हुये कहते हैं हे लक्ष्मण! भयंकर बाण से युक्त मेरा धनुष मुझे दो। करोड़ों कालों के समान भयंकर उद्दण्डों को दमन करने वाला मेरा धनुष ले आओ। मैं धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर प्रचंड अग्निबाण का संधान करूँगा। इसी समय भयंकर सागर को सुखा दूँगा। इस उद्दंड को इसकी करनी का फल दूँगा। मैंने विभीषण का वाक्य मानते हुये इसके तट पर तीन दिन, तीन रात शयन किया। फिर भी मूर्ख, अहंकारी, अत्यंत शठ यह समुद्र मेरी प्रार्थना नहीं सुनता। अरे लक्ष्मण! मुझ मर्यादापुरुषोत्तम राम का अपमान करता हुआ यह सागर भी मर्यादाहीन हो जाय। वानर समूह विषाद छोड़कर पैदल ही समुद्र पार चला जाए। लक्ष्मण! मैं सीताजी के लिये ही प्रचण्ड आग्नेय बाण से इस पाथोधि अर्थात् सागर को '**पथयामि**' अर्थात् सुखाकर राजपथ बना दे रहा हूँ। मेरे विपरीत मार्ग का पथिक अहंकारी समुद्र शुष्क कीचड़ से युक्त हो जाए और बंदी बनायी हुयी देवियों की खुली गाँठ वाली वेणी (चोटी) शीघ्र ही सुष्नात हो जाए, स्नान कर ले और **गिरिधर** कवि के प्रभु मुझ राम की बाणों की श्रेणी, रावण के शिरों के रक्त का पान करें।

विशेष– यह गीत त्रिताल सोलह मात्रा में निबद्ध है। इसे मारू राग में गाया जाना चाहिये।

गीत संख्या–२

लक्ष्मण मे धनुर्दीयतां पावकास्त्रमानीयताम्।।
मत्क्षमा निरर्थिका जाता सिन्धौ व्यर्थिका।
मा भवत्वपार्थिका क्षमासिद्धसार्थिका।।
बन्धो त्वरा विधीयताम्।।१।।
धिक् क्षमां च बालिशे कातराममारिसे।
शोभतां भवादृशे वर्धताममादृशे।।
वह्निशरः सन्धीयताम्।।२।।

चापमानयाशु मे वचो मानयाशु मे।
शरं दानयाशु मे गुणं ध्वानयाशु मे।।
निसङ्गं समादीयताम्।।३।।
शोषये कुसागरं पोषये कुशागरम्।
तोषये विषागरं रोषये मृसागरम्।।
सत्यं समाधीयताम्।।४।।
क्षमा नात्र जृम्भतां पौरुषं प्रजृम्भताम्।
सुवीर्यं विजृम्भतां दया नैव जृम्भताम्।।
दण्डमस्मै चण्डं धीयताम्।।५।।
पद्भ्यां यान्तु वानराः रणे भान्तु वानराः।
सतः पान्तु वानराः खलान् दान्तु वानराः।।
गिरिधरेण कथा गीयताम्।।६।।

भौमी- हे लक्ष्मण! मेरा धनुष दो, आग्नेयास्त्र ले आओ। समुद्र के समक्ष मेरी क्षमा निरर्थक और व्यर्थ हो गयी। सिद्ध अर्थ वाली क्षमा प्रयोजन हीन न हो जाए। हे भाई! शीघ्रता करो, अग्नि बाण ले आओ। मूर्ख के विषय में की हुयी क्षमा को धिक्कार है। अपूजनीय व्यक्ति पर की गयी कायर क्षमा को धिक्कार है। वह तो तुम जैसे वीर में सुशोभित हो और मुझ जैसे व्यक्ति से भिन्न व्यक्ति में बढ़े। अब मैं अग्निबाण का संधान करूँ। हे लक्ष्मण! मेरा धनुष शीघ्र ले आओ, मेरी बात शीघ्र मान जाओ। मेरे बाण को पाषाण पर रगड़कर शीघ्र नुकीला बनाओ और मेरी प्रत्यंचा को झटककर शब्दमय कर दो। मेरा तरकस और आग्नेयास्त्र ले आओ। लक्ष्मण! आज दुष्ट सागर को सोख लूँगा और जिनका कुश ही शाप देने में विष का काम करता है, ऐसे ब्राह्मण परिवार का पोषण करूँगा। आज विष के आगार नागलोक को संतुष्ट करूँगा और झूठ के भांडागार इस सागर को कुपित करूँगा। इस वास्तविकता का आज समाधान किया जाए। यहाँ क्षमा न तो प्रकट हो, सोया हुआ पौरुष अँगड़ाई ले, सुंदर पराक्रम सक्रिय हो और दया निष्क्रिय हो जाए। इस समुद्र पर प्रचंड दंड का विधान किया जाए। वानर पैदल चले जाएँ, वीर वानर लंका के रणांगण में शोभित हों, वानर संतों की रक्षा करें, वानर योद्धा खलों का वध करें और **गिरिधर** कवि के द्वारा भी यह कथा गायी जाए। लक्ष्मण मेरा धनुष दो और आग्नेय बाण ले आओ।

विशेष- यह गीत रामायण सीरियल में चर्चित '**रामजी की सेना चली**' गीत के ढाल में निबद्ध है। इसे भी मारू राग में गाना चाहिए।

गीत संख्या-३

नैव क्षमा नीचे भाति।।
कुटिलकरटे कोकिला परिहास्यतामिव याति।
हंसो नीचबके वराके वरत्वं न दधाति।।१।।

नैव पापं ब्रह्मविद्या क्वापि लक्ष्मण पाति।
पारदारिकमहः सद्वार्ता न शान्त्यै राति।।२।।
क्रूरसर्पे पयोधारा गरलमेवालाति।
नास्तिकं सङ्गता मेधा सद्गुणान् प्रलुनाति।।३।।
अक्षमा साऽक्षमेऽक्षमतां कातरत्वं ख्याति।
क्षमा नूनं बालिशे किल क्लीबतां व्याख्याति।।४।।
अतो नैवक्षमेऽक्षम्यं निम्नतां संयाति।
दण्डमेवात्रोचितं गिरिधरप्रभो प्रतिभाति।।५।।

भौमी- नीच के विषय में क्षमा शोभित नहीं होती। कुटिल कौवे के सामने कोकिला की भाँति नीच व्यक्ति के प्रति की हुई क्षमा व्यक्ति को हँसी का पात्र बना देती है। जैसे नीच–निरीह बगुले के सामने हंस अपनी श्रेष्ठता का पोषण नहीं करता। अरे लक्ष्मण! कभी भी ब्रह्मविद्या पापी की रक्षा नहीं करती और परस्त्रीगामी को कभी भी संतों की वार्ता शान्ति के लिये समर्पित नहीं करती। क्रूर सर्प को पिलायी हुयी दूध की धारा विष को ही उपस्थित करती है और नास्तिक को मिली हुयी सुंदर बुद्धि भी सद्गुणों को ही नष्ट करती है। वस्तुतः असमर्थ के प्रति की हुयी क्षमा असमर्थता और कायरता को ही प्रकट करती है। निश्चित ही मूर्ख के प्रति की हुयी क्षमा नपुंसकता की ही व्याख्या करती है। इसलिए इस अक्षम्य को मैं नहीं क्षमा करूँगा। यह तो नीचता को ही प्रस्तुत कर रहा है। **गिरिधर** कवि के स्वामी मुझ राम को तो इस पर दंड विधान ही उचित लग रहा है।

गीत संख्या-४

क्षमा नो खले कदापि विधेया।
किं क्षमया कृतया या क्रूरैः कातरतयाभिनेया।।१।।
सर्वसमर्थमपि क्षममाणं मां लक्ष्मण कूपारः।
अवजानात्यसमर्थं मत्वा मत्तो विविध विकारः।।२।।
धिग् धिग् क्षमामीदृशे मूढे य इमां सुदुरुपयुङ्क्ते।
निर्जरगवीमहह यो मन्दो माद्यन्हले प्रयुङ्क्ते।।३।।
अहो देवदुर्लभां क्षमां योऽवेत्ति नपुंसकभावम्।
दण्ड एव तत्कृते समुचितः निदर्शयेत प्रभावम्।।४।।
तस्मादत्र पौरुषं स्वं प्रकटय्य शोषये सिन्धुम्।
गिरिधरप्रभुर्निहत्य रावणं सन्निधापये बन्धुम्।।५।।

भौमी- खल पर कभी क्षमा नहीं करना चाहिए। अरे! की गई उस क्षमा से क्या लाभ, जिसे दुष्ट लोग कायरता समझ लें। लक्ष्मण! देखो, अनेक विकारों से भरा हुआ यह दुष्ट समुद्र क्षमा करते हुए सर्वसमर्थ मुझ राम को असमर्थ मानकर अपमानित करता रहता है। इस प्रकार के मूर्ख पर की हुई क्षमा को धिक्कार है जो मूर्ख मन्दबुद्धि अहंकार से पागल होता हुआ देवताओं की गौ कामधेनु को हल में जोतता है। अहो! जो देव–

दुर्लभ क्षमा को क्षमा करने वालों की नपुंसकता समझ रहा हो, उसके लिए तो दण्ड ही उचित है। वह अपना प्रभाव दिखा सकता है। इसलिए यहाँ अपना पुरुषार्थ प्रकट करके सागर को सोख लेता हूँ, **गिरिधर** कवि का स्वामी मैं राम रावण का वध करके अपनी मित्र सीता को अपने पास ले आऊँ।

गीत संख्या-५

समुद्रः प्रकटो भूत्वा प्राह-

जय श्रीराम मङ्गलधाम।
जानकीश कृपानिधान समस्तगुणगणधाम जय श्रीराम।।१।।
जय जयन्तदुरन्तमदहर कलितकाननवास।
विहितमुनिवरवेष जय जय कोटिशतशशिहास।।२।।
जय जनार्दन सुजननिजधन धन्विधुर्य नृपेश।
जय जगत्त्रयशोकनाशन जैत्र जय विबुधेश।।३।।
जय महेश्वरचापखण्डन हृतमहीतलभार।
जय जनकजाचातकीघन कोसलेन्द्रकुमार।।४।।
जय विराधकबन्धमदहर शरमथितमारीच।
जय कपटहरिणानुधावन दमितदशमुखनीच।।५।।
बन्धयित्वा सेतुमुदधौ याहि लङ्कां वीर।
रावणं जहि जहि रणे गिरिधरप्रभो रणधीर।।६।।

भौमी- समुद्र प्रकट होकर बोला-मंगलधाम श्रीराम की जय हो, हे जानकीपति कृपा के भाण्डागार! समस्त गुणगणों के आश्रय! आपकी जय हो। जयन्त का दुरन्त मद हरने वाले वनवासी मुनि वेशधारी चन्द्रकिरणों को जीतने वाली मन्द मुस्कान से युक्त प्रभु! आपकी जय हो। हे भक्तों की याचना के विषय, हे सज्जनों के एकमात्र धन, हे श्रेष्ठ धनुर्धर हे राजाधिराज, हे जगत के त्रिशोकहारी, हे विजयशील, हे देवताओं के ईश्वर श्रीराम! आपकी जय हो, जय हो, जय हो। हे शिवजी का चाप (धनुष) तोड़ने वाले, भूभारहारी! आपकी जय हो। हे सीताजीरूप चातकी के बादल, कोसलेन्द्र दशरथ के पुत्र श्रीराम! आपकी जय हो। हे कबन्ध और विराध का मद हरने वाले, एक ही बाण से मारीच का वध करने वाले और कपट-मृग के पीछे दौड़ने वाले, नीच रावण का दमन करने वाले प्रभु! आपकी जय हो। हे वीर! सागर में सेतु बँधाकर लंका को प्रस्थान कीजिए। हे **गिरिधर** कवि के स्वामी, रणधीर श्रीराम! युद्ध में रावण का वध कीजिए, वध कीजिए।

गीत संख्या-६

जहि जहि रावणं रघुवीर।
कीशबन्धितसिन्धुसेतो याहि लङ्कां वीर।।
वानरीं सेनां विकर्षन्नसुरसंयुगधीर।
चण्डशरधारां प्रवर्षन् कलितकालशरीर।।१।।

धर्मरथसत्पथपथिकपाथेयगुणगम्भीर ।
सत्यसन्ध कृपानिधान पवित्रचरित प्रवीर।।२।।
तूणशर कोदण्डधर धरणीसुतावर वीर।
प्रखरसङ्गर तुष्टशङ्कर गुणगुणितमहावीर।।३।।
सततवैदिकधर्मनिरततपस्विवर मतिधीर
चिरञ्जीव रमस्व गिरिधरहृद्गृहे रणधीर।।४।।

भौमी- हे रघुवीर! आप युद्ध में रावण को मार डालिए। वानरों के द्वारा मुझ समुद्र में सेतु बँधाकर आप लंका पर आक्रमण कीजिए। हे राक्षसों के युद्ध में धीर, हे काल शरीर धारण करने वाले प्रभु! आप विशाल वानरी सेना को लिए हुए प्रचण्ड बाणधारा की वर्षा करते हुए लंका पर आक्रमण कीजिए। हे धर्मरथ के रथी, श्रेष्ठ पथ के पथिक! पाथेयरूप गुणों से गम्भीर, हे सत्यसन्ध, कृपा के कोष, पवित्र चरित्र वाले श्रेष्ठ वीर! आप लंका पर आक्रमण करें। तरकश, धनुष, बाण धारण करने वाले, पृथ्वीपुत्री सीताजी के पति, वीर! अपने तीव्र युद्ध से शिवजी को सन्तुष्ट करने वाले अपने गुणों से हनुमानजी को भी गुणवान बनाने वाले प्रभु आप लंका पधारें। निरन्तर वैदिक धर्म में निरत, श्रेष्ठ तपस्वी, धीरबुद्धि, हे श्रीराम! आप रणधीर श्रीराम चिरंजीवी हों और **गिरिधर** कवि के हृदयरूप गृह में रमते रहें।

विशेष–यह दोनों गीत रूपक ताल में वागेश्री राग में गेय है।

गीत संख्या-७

देववध्वो गायन्ति-

राघवेण सेतुरहो सागरेऽपि बन्ध्यते।
कीर्तिरियं निश्चला त्रिभुवने निबन्ध्यते।।
आनीयन्ते वृक्षपर्वताः प्रधाव्य पर्वतः।
बलीमुखैः साहसिभिः सर्वमुखैः सर्वतः।।
शतयोजनविस्तीर्णः प्रबन्धैः प्रबन्ध्यते।।१।।
गमं गमं गतिमन्तो विहङ्गमप्रदेशतः।
आनयन्ति शैलतरून् जाम्बवन्निदेशतः।।
नाथेनैव गृह्णताऽनुगृह्णताऽनुबन्ध्यते।।२।।
कन्दुकितान् गिरींस्तरून् नलनीलौ गृह्णतः।
रामवीर्यतोऽप्यगाधं वारिधिं निगृह्णतः।।
शान्ततरङ्गोऽपीह महासागरो विबन्ध्यते।।३।।
रामप्रतापं विलोक्य विबुधैर्विष्मीयते।
इयं कथा गिरिधरेण देवगिरागीयते।।
ईश्वरेण जलराशिःप्रस्तरैः सम्बन्ध्यते।।४।।

भौमी- अब देववधुएँ गा रही हैं। अहो! राघवजी के द्वारा सागर में सेतु बँधा जा रहा है और यह कीर्ति तीनों लोक में अचल रूप से स्थापित की जा रही है। देखो, सब प्रकार से सभी ओर से दौड़-दौड़ कर साहसी वानरों द्वारा वृक्ष और पर्वत मूल से उखाड़कर लाए जा रहे हैं और बहुत बड़े थलों के साथ सौ योजन लम्बा यह सेतु बाँधा जा रहा है। देखिए, गतिमान वानर यह पक्षियों के उड़ने के प्रदेश आकाश मार्ग से जा-जाकर जाम्बवानजी के आदेश से पर्वत और वृक्ष ला रहे हैं और रघुनाथजी सभी वानरों में अपना बल प्रदान करके पर्वत वृक्षों को स्वयं ले रहे हैं उन पर कृपा कर रहे हैं और व्यवस्थित रूप में सेतु का निबन्धन करा रहे हैं। श्रीराम के पराक्रम से नल-नील गेंद की भाँति पर्वतों और वृक्षों को हाथ में लेते हैं और अगाध सागर को निगृहीत करके सेतु बना रहे हैं प्रभु के प्रताप से सागर स्वयं अपनी लहरों को शांत करके व्यवस्थित रूप से बँधवा ले रहा है। श्रीराम का प्रताप देखकर देवता विस्मित हो रहे हैं और **गिरिधर** कवि द्वारा भी यह कथा संस्कृत भाषा में गायी जा रही है। ईश्वर के द्वारा आज सागर से जुड़कर पत्थर भी तैर रहे हैं।

गीत संख्या-८

पश्यत देव्यो रामप्रभावम्

वाङ्मनसातीतं सुदुर्लभं सुरदुष्करानुभावम्।।१।।
ये तरुशैला मज्जयन्ति नहि पारयन्ति वै त्रातुम्।
तेऽपि तरणिवत् तारयन्ति वानरांश्च पारे यातुम्।।२।।
ये मज्जन्ति विशालसागरे संविसन्ति पातालम्।
ते तरन्ति रघुवीर प्रतापादुपर्युपरि कीलालम्।।३।।
नायं महिमा शैलतरूणां नो वारिध्यनुभावः।
नूनमेष गिरिधरप्रभोर्विचकास्तिप्रतापप्रभावः।।४।।

भौमी- हे देवियों! श्रीराम का यह प्रभाव देखो जो वाणी और मन से अतीत तथा अत्यन्त दुर्लभ है। जिसका प्रयोग देवताओं के लिए भी दुष्कर है। अरे! जो वृक्ष और पर्वत स्वयं दूसरों को डुबो देते हैं अपने भी डूबते हैं, भारी होने से किसी की रक्षा नहीं कर पाते हैं वे ही आज न डूबने वाली नौका की भाँति पार जाने के लिए वानरों को तैरा रहे हैं अर्थात् पार ले जा रहे हैं। देखो देवियों! जो विशाल पर्वत और वृक्ष फेंकने पर महासागर में डूब जाते हैं और पाताल में चले जाते हैं वे ही वृक्ष और पर्वत श्रीरघुवीर भगवान राम के प्रताप से जल के ऊपर-ऊपर तैर रहे हैं। यह महिमा पर्वतों और वृक्षों की नहीं है और न ही यह सागर का प्रभाव है, यह तो **गिरिधर** कवि के ईश्वर भगवान राम के प्रताप का प्रभाव चमक रहा है।

गीत संख्या-९

राजते सिन्धौ प्रभुकृतसेतुः।
पश्यत तरति पोत इव जलधौ सुरगणमङ्गलहेतुः।।१।।
येषां वीरकपीनां सहते नो मेदिन्यपि भारम्।
ते सेतूपरि धावन्तो गच्छन्ति पयोनिधिपारम्।।२।।

हनुमदादयो गर्जन्तो धावन्तो वीरप्लवङ्गाः।
मर्दं मर्दं सेतुं पद्भ्यां जवितसुयौवनरङ्गाः।।३।।
कोटिकोटिवीराः धावन्तो नहि सेतौ सम्मान्तः।
शोभन्ते व्योमनीव बहवो खगाः खगैः सह यान्तः।।४।।
सेतुबन्धशुभकथया साकं गायन्तो रघुवीरम्।
यान्ति पयोनिधिपारं कपयः कलितनयननवनीरम्।।५।।
ये मज्जन्ति शैलगिरयस्ते तरन्त्युपर्युपरि समुद्रम्।
गिरिधरप्रभुलीलैव समस्तं घटयति चरितमुदग्रम्।।६।।

भौमी- देखो देवियों! समुद्र के ऊपर प्रभु श्रीराम द्वारा बनाया हुआ सेतु सुशोभित हो रहा है। देवताओं के मंगल का हेतु बना यह सेतु सागर में जहाज की भाँति तैर रहा है। देखो, जिन वानरों का भार पृथ्वी भी नहीं सह पाती, वे ही वानर इस सेतु पर दौड़ते हुये सागर पार चले जा रहे हैं। हनुमान आदि वीर वानर यौवन के रंगभूमि को वेगवती बनाते हुए गरजते हुए चरणों से सेतु को दबा-दबा करके दौड़ रहे हैं पर सेतु टस से मस नहीं हो रहा है। करोड़ों-करोड़ों वीर दौड़ते हुए सेतु में समा नहीं रहे हैं। वे पक्षियों के साथ आकाश में जाते हुए पक्षियों जैसे ही सुन्दर लग रहे हैं। सेतुबन्ध की शुभकथा के साथ श्रीराम को गाते हुए नेत्रों में आँसू भरते हुए श्रीराम भजन में मत्त वानरगण सागर पार चले जा रहे हैं। जो पर्वत और वृक्ष सागर में डूब जाते हैं, वे ही आज सागर के ऊपर ऊपर तैर रहे हैं। यह सब अद्‌भुत चरित्र **गिरिधर** प्रभु श्रीराम की लीला ही घटा रही है।

गीत संख्या-१०

श्रीरामः सचीवान् प्रति-

अधिभूमि भारतभूतये संस्थापये रामेश्वरम्।
निस्सीमभारतभूतये प्रतिष्ठापये रामेश्वरम्।।
दृढसेतुबन्धे सुप्रबन्धे दक्षिणोदधिसैकते।
विश्वासमिव रामनाम्न्यहं संस्थापये रामेश्वरम्।।१।।
तुहिनाद्रितनयाबल्लभं मुनिमनुजनिर्जरदुर्लभम्।
देवाधिदेवं शङ्करं संस्थापये रामेश्वरम्।।२।।
घनसारशशिधरविग्रहं कृतरामविमुखसुनिग्रहम्।
गुणसङ्ग्रहं भुवनेश्वरं संस्थापये रामेश्वरम्।।३।।
पशुपतिमनन्तपराक्रमं गिरिपतिमनादिमरिन्दमम्।
गिरिधरगुरुं करुणाकरं संस्थापये रामेश्वरम्।।४।।

भौमी- श्रीराम मन्त्रियों के प्रति सम्बोधित करते हुये कहते हैं-भारत की विभव के लिये मैं इस द्रविड़ पृथ्वी पर श्रीरामेश्वरम् की स्थापना कर रहा हूँ। सीमारहित भारत की विभूति के लिए मैं रामेश्वरम् की प्रतिष्ठा

कर रहा हूँ। व्यवस्थित इस दृढ़ सेतुबन्ध–स्थल में दक्षिण सागर के तट पर मैं राम नाम पर विश्वास की भाँति रामेश्वरम् की स्थापना कर रहा हूँ। हिमालय राजकन्या पार्वतीजी के पति, मुनि, मनुष्य और देवताओं के लिए भी दुर्लभ देवाधिदेव रामेश्वर शंकर जी की मैं राम स्थापना कर रहा हूँ। कपूर, चंद्रमा और शंख के समान श्वेत शरीर वाले, मुझ राम से विमुखों को दण्ड देने वाले, सभी सद्‌गुणों के संग्रह स्वरूप, सभी भुवनों के ईश्वर, रामेश्वर की मैं स्थापना कर रहा हूँ। पशु जैसे भव–बन्धन में बँधे हुए जीवों के पति अनन्त पराक्रम वाले कैलाशपति आदिरहित, शत्रुनाशक, करुणा की खान, **गिरिधर** कवि के गुरु रामेश्वर ज्योतिर्लिंग की मैं स्थापना कर रहा हूँ।

गीत संख्या–११

कर्पूरगौराय भूतेश्वराय गौरीमुखाम्भोजभृङ्गेश्वराय।
ओङ्काररूपाय गङ्गेश्वराय रामेश्वरायाथ नमः शिवाय।।१।।
सङ्ग्रामशूराय सोमेश्वराय वाञ्छाप्रपूराय वामेश्वराय।
दुष्टातिदूराय दुग्धेश्वराय रामेश्वरायाथ नमः शिवाय।।२।।
कामेश्वरायाथ वामेश्वराय दीनेश्वरायाथ विल्वेश्वराय।
नागेश्वरायाथ नागेश्वराय रामेश्वरायाथ नमः शिवाय।।३।।
गिरिधरगिरागीतसीतेश्वराय गीतेश्वराय प्रतीतेश्वराय।
नीतेश्वरायाविनीतेश्वराय रामेश्वरायाथ नमः शिवाय।।४।।

भौमी– कपूर के समान श्वेत, भूतों के ईश्वर, पार्वतीजी के मुखकमल के श्रेष्ठ भ्रमर, ओंकारस्वरूप गंगेश्वर, रामेश्वर शिव को नमस्कार है। संग्राम में वीर, सोमेश्वर, इच्छाओं की पूर्ति करने वाले, वामदेव, दुष्टों के लिये अत्यन्त दूर, दुग्धेश्वर, रामेश्वर शिव को नमस्कार है। काम के शत्रु भगवद्‌विमुखों के शत्रु, दीनों के ईश्वर, बिल्वेश्वर, नागेश्वर अर्थात् सर्पों के ईश्वर, पुनः नागेश्वर अर्थात् हाथी का वेश धारण किये हुये अन्धकासुर के शत्रु, रामेश्वर शिवजी को नमस्कार हो। **गिरिधर** कवि की वाणी से सीतेश्वर अर्थात् सीतापति श्रीराम को गाने वाले गीतेश्वर और विश्वास के ईश्वर, शरण में गये हुये भक्तों के ईश्वर, अविनीत दुष्टों को दण्ड देने वाले, रामेश्वर शिव को नमस्कार हो।

गीत संख्या–१२

रामेश्वराय नमो नमः शिवाय तुभ्यं शंङ्कर नमः शिवाय।।
कुन्देन्दुगौराय करुणाकराय सर्पेन्द्रहाराय देवेश्वराय।
भूताधिनाथाय भक्तप्रियाय तुभ्यं शङ्कर नमः शिवाय।।१।।
भस्माङ्गलेपाय भूतेश्वराय भालार्भचन्द्राय गङ्गाधराय।
कामप्रमाथाय व्याघ्राम्बराय तुभ्यं शङ्कर नमः शिवाय।।२।।
सन्मुण्डमालाय प्रलयङ्कराय दीनप्रपालाय ढक्काधराय।

शङ्खेन्दुशोभाय गिरिजावराय तुभ्यं शङ्कर नमः शिवाय।।३।।
कालाग्निनेत्राय सूर्याम्बकाय चन्द्राक्षिशुभ्राय सौम्यप्रभाय।
गिरिधरगिरागीतसीतावराय तुभ्यं शङ्कर नमः शिवाय।।४।।

भौमी- करुणा की खान, कुंद और चंद्रमा के समान, शेषनाग को हृदय का हार बनाने वाले, देवताओं के ईश्वर, भूतों के नाथ, भक्तों को प्रिय, ऐसे हे शंकर! आप श्रीशिव को नमस्कार। भस्म का लेप लगाने वाले, भूतों के ईश्वर और मस्तक पर बालचन्द्र धारण करने वाले, गंगाधर, कामशत्रु, व्याघ्राम्बर धारण करने वाले, आप श्रीशिव को नमस्कार। मुण्डमाला धारण किये हुए, प्रलयंकर, दीनों के रक्षक, डमरूधारी, शंख और चन्द्रमा के समान शोभा वाले, पार्वतीपति आपश्री शिव को नमस्कार। कालाग्निरूप नेत्र वाले, सूर्यनयन, चन्द्रलोचन, शुभ्र, सौम्यप्रभा वाले, **गिरिधर** कवि की वाणी में सीतावर मुझ राम को गाने वाले, कल्याणकारी, हे सदाशिव! आपको नमस्कार।

गीत संख्या-१३

शतचण्डताण्डवरचयितर्नटराजराज नमोऽस्तुते।
त्रिभुवनगुरो जगतां पितर्नटराजराज नमोऽस्तुते।।१।।
मूर्धनि दधानो जाह्नवीं ज्योत्स्नां जुषाणो मैन्दवीम्।
वृत्तिं पुषाणो गौरवीं कृत्तिं वसानो रौरवीम्।।
त्रिजगत्प्रलयकृतिकलयितर्नटराजराज नमोऽस्तुते।।२।।
सूर्याग्निचन्द्रत्रिलोचनो भवभीमभीतिविमोचनो।
निजदाससंसृतिमोचनो भास्वान् भवानीरोचनः।।
संसारसङ्कटसमयितर्नटराजराज नमोऽस्तुते।।३।।
शूलं करे गरलं गले बर्भर्सि सर्पमुरोऽमले।
गिरिधरगिरागीतोज्वले, रमसे मयि श्रुतिवत्सले।।
रामेश्वरासुरदमयितर्नटराजराज नमोऽस्तुते।।४।।

भौमी- हे अनन्त ताण्डवों के रचयिता! नटराजों के भी राजा शिव! आपको नमस्कार हो। हे तीनों लोकों के गुरु! जगत के पिता! नटराजराज आपको नमस्कार हो। सिर पर गंगाजी को धारण किये हुये तथा भाल पर चंद्रमा की ज्योत्स्ना का सेवन किये हुए, गौरव पूर्ण वृत्ति का पोषण करते हुये और मृगचर्म पहने हुये, तीनों लोकों के प्रलय व्यापार को प्रस्तुत करने वाले, हे नटराज राज! आपको नमस्कार हो। हे संसार संकट को नष्ट करने वाले, आप सूर्य, चंद्र, अग्नि नेत्रवाले और संसार का भयंकर भय दूर करने वाले, अपने दास के संसार भाव को दूर करने वाले, प्रकाशमान तथा पार्वतीजी को प्रसन्न करने वाले, हे संसार के कष्ट को दूर करने वाले, नटराजराज! आपको नमस्कार हो। हे रामेश्वर! आप हाथ में त्रिशूल, गले में विष तथा निर्मल हृदय पर साँप को धारण करते हैं। **गिरिधर** कवि के द्वारा गाये हुए उज्ज्वलयशवाले, श्रुतिवत्सल, मुझ राम में आप रमते हैं। हे रामेश्वर, हे असुरों का दमन करने वाले, नटराज राज! आपको नमस्कार हो।

गीत संख्या-१४

मन्दोदरी रावणं प्रति-

रामचन्द्रचरणाम्बुजशरणं व्रज दशकन्धर विमुक्तये।
मा सृज रामशरान्निजमरणं त्यज प्रभुवैरं स्वभुक्तये।।१।।
दीनदयालुं परमकृपालुं शरणागतसुपारिजातम्।
मृगय दशानन हरिमनपायं मा भूर्ग्रहिलः कुयुक्तये।।२।।
निजनीतां सीतां च समर्पय त्रिभुवनभर्त्रे खरहन्त्रे।
त्यज निर्बन्धं भज सम्बन्धं यत्नं शोधय स्वमुक्तये।।३।।
येन सागरे सेतुर्बद्धो नासौ साधारणमनुजः।
मानय विनयं ध्यानय प्रणयं माभूर्हेतुर्विभक्तये।।४।।
शृणु मम वचः प्रसादय रामं त्यज दुराग्रहं लङ्केश्वर।
गिरिधरगीतामर्पय सीतां सोपानं सृज सुभक्तये।।५।।

भौमी- अब मन्दोदरी रावण के प्रति कहती हैं। हे रावण! अपनी मुक्ति के लिए श्रीरामचन्द्रजी के चरणकमल की शरण में जाओ और अपनी भुक्ति के लिए अथवा स्वजनों को कष्ट भोगवाने के लिये श्रीराम के बाणों से अपनी मृत्यु की सर्जना मत करो। हे रावण! दीनों के दयालु, परम कृपालु शरणागतों के कल्पवृक्ष ऐसे विनाशरहित श्रीराम का अन्वेषण करो। इसलिए कुत्सित युक्ति के लिए हठी मत बनो। हे रावण! अपने द्वारा हरी हुई सीताजी को त्रिभुवनपति खर राक्षस के शत्रु श्रीराम को सौंप दो। हठ छोड़ दो। भगवान के साथ सम्बन्ध निश्चित कर लो तथा अपनी मुक्ति के लिए कोई दूसरा यत्न ढूँढो। अरे! जिन्होंने सागर में सेतु बाँध दिया, वे श्रीराम साधारण मनुष्य नहीं हैं। मेरा विनय मान लो, प्रभु से प्रेम करो। राक्षसों के तितर-बितर करने में हेतु मत बनो। हे लंकापति! मेरी बात सुनो- श्रीराम को प्रसन्न कर लो और **गिरिधर** कवि द्वारा गायी हुई सीताजी को श्रीराम को सौंप दो और सुन्दर भक्ति के लिये सोपान बना लो।

गीत संख्या-१५

राक्षस्यः प्रलपन्त्यः प्राहुः-

पुनः कोऽपि लङ्कां कपिरायातः।।
एको गत आहत्य वाटिकां दग्धपुरोऽनिलजातः।
लङ्घिताब्धिरभिधर्षितरक्षा कृतदशमुखसुतघातः।।१।।
किं विधित्सुरयमपि समागतो विद्मो नैव विधातः।
लङ्काधूमकेतुरथवायं कल्पितसौख्यविघातः।।२।।
हतो प्रहस्तोऽनेन श्रुतं सखि वहति भयप्रदवातः।
वातजात इव किमयं कर्ता भीतो रक्षोव्रातः।।३।।

प्रसादयामो गिरिधरेश्वरं सुदुर्वार्यबाधातः।
पायात् सैव भयाद् विभीषणो येन तरस्वी त्रातः।।४।।

भौमी- राक्षसियाँ प्रलाप करती हुई कह रही हैं–अरे! लंका में फिर एक वानर आ गया, एक वायुपुत्र हनुमान वाटिका को नष्ट करके, लंका को जलाकर, सागर को लाँघकर राक्षसों को रौंदकर रावणपुत्र को मारकर चले गए। अरे! विधाता यह क्या करने की इच्छा से आया है? क्या यह लंका के लिए उत्पात केतु अथवा सुख का नाशक है? हम नहीं जान पा रहे हैं। सखी! ऐसा सुना है कि इसी ने प्रहस्त को मार डाला, वायु भयंकर बह रहा है। वायुपुत्र हनुमान की भाँति यह क्या करने वाला है? सम्पूर्ण राक्षस समूह डर गया है। अब हम **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम को ही प्रसन्न करें, वे ही इस भयंकर बाधा से हमारी रक्षा करें। जिन्होंने भयभीत विभीषण की रक्षा की।

गीत संख्या-१६

लङ्कां गतो मुदा युवराजः।।
रामाज्ञां शिरसा विभ्राणो मोदितकपिकुलराजः।
हतप्रहस्तो बलदृढहस्तो गजेषु वा वनराजः।।१।।
निजवाग्विभवचातुरीचकितितविस्मितनिशिचरराजः ।
हृदयविवर्धितरामप्रतापो रुचिनिन्दितद्विजराजः।।२।।
शत्रुं समुपदिश्य विस्मापितदशमुखमुख्यसमाजः।
चरणोत्थापनमिशतो ब्रीडितरावणकटकब्राजः।।३।।
रिपुमुन्मथ्य विमथ्य विक्रमं हर्षितवानरराजः।
गिरिधरप्रभुपदपद्मरजः पस्पर्श सुखितरघुराजः।।४।।

भौमी- वानरों को प्रसन्न करके, श्रीराम की आज्ञा को सिर पर धारण करते हुए, प्रहस्त को मारकर युवराज अंगद प्रसन्नता से लंका में प्रवेश किए अपने हाथ में प्रभु बल धारण करते हुए, हाथियों के समूह में सिंह की भाँति निर्भीकता से प्रवेश किया। अपनी वाणी के वैभव चातुरी से राक्षसराज रावण को चकित और विस्मित करके हृदय में श्रीराम प्रताप को और अधिक सक्रिय करते हुए अंगदजी अपनी शोभा से चन्द्रमा को भी लज्जित कर रहे थे। अंगदजी ने शत्रु रावण को उपदेश देकर रावण के मुख्य सभासदों को विस्मित कर दिया और चरण के उठवाने के बहाने रावण के वीर समूहों को भी लज्जित कर दिया। इस प्रकार रावण को पराजित करके, उसके पराक्रम को तहस–नहस करके, सुग्रीव को प्रसन्न करके तथा श्रीराम को सुखी करके, युवराज अंगद ने **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम के चरणकमल के रज का स्पर्श किया।

गीत संख्या-१७

अङ्गदो रावणं प्रति-

रामो नास्ति सामान्यो नरपालो हठं त्यज दशमौले।
एष परब्रह्म दशरथबालो हठं त्यज पङ्क्तिमौले।।

परमपराक्रमो धृतचण्डचापः।
महाबलो महाबाहुर्भास्करप्रतापः।।
भीमः कोटिमहाकालविकरालो हठं त्यज दशमौले।।१।।
कोऽनुत्रिलोक्यां सहेत रघुवीरबाणान्।
कालभुजङ्गान् यथा पिबतो रिपुप्राणान्।।
वीरो वैनतेयो ग्रस्तकालव्यालो हठं त्यज दशमौले।।२।।
सूर्यस्यापि सूर्यश्चन्द्रचन्द्रो विष्णुविष्णुः।
श्रियः श्रीश्च वह्नेर्वह्नि जिष्णोरपि जिष्णुः।।
विधिहरिहरमानसमरालो हठं त्यज दशमौले।।३।।
सीतां देहि मा भूः रामसायकैकलक्ष्यम्।
मा स्म भूः पुलस्त्यपौत्र काकगृध्रभक्ष्यम्।।
रामो हतगिरिधरजगज्जालो हठं त्यज दशमौले।।४।।

भौमी- अब श्रीअंगद रावण के प्रति कहते हैं-हे रावण! श्रीराम सामान्य राजा नहीं हैं। तुम अपना हठ छोड़ दो। ये तो महाराज दशरथ के पुत्र होकर भी परब्रह्म हैं। हे दशमुख रावण! हठ छोड़ दो। ये परम पराक्रमी भयंकर धनुष धारण करने वाले महाबली, महान भुजा वाले सूर्यनारायण को भी प्रताप देने वाले श्रीराम अत्यन्त भयंकर और करोड़ों कालों से भी विकराल हैं। रावण अपना हठ छोड़ दो। कालसर्पों के समान शत्रुओं के प्राण पीते हुए श्रीराम के बाणों को त्रिलोकी में कौन सह सकता है? ये तो कालरूप सर्प को ग्रसने के लिए वैनतेय गरुड के समान हैं। श्रीराम सूर्य के सूर्य, चन्द्रमा के चन्द्रमा, विष्णु के विष्णु, श्री जी के श्री, अग्नि के अग्नि और सभी के विजेता शिव के भी शिव हैं। ये ब्रह्मा, विष्णु, शंकर के भी मनमानस सरोवर के हंस हैं। हे रावण! सीताजी को श्रीराम के हाथों सौंप दो, रामजी के बाण के एकमात्र लक्ष्य मत बनो। हे पुलस्त्य के पौत्र! कौओं और गीधों के भोजन मत बनो। श्रीराम **गिरिधर** कवि के जगज्जाल के नष्ट कर्ता हैं। तुम हठ मत करो।

गीत संख्या-१८

साधारणो न भूपो रामः पुमान् पुराणः।
साक्षात् स ब्रह्मरूपो रामः पुमान् पुराणः।।
वेदान्तवेद्यधामा विख्यात रामनामा।
गुणभग्नभक्तकूपो रामः पुमान् पुराणः।।१।।
व्यापक इहास्ति व्याप्यः प्रापक इहास्ति प्राप्यः।
शङ्कातयज्ञकूपो रामः पुमान् पुराणः।।२।।

श्रीमान् स सत्यसन्धः कृतसिन्धुसेतुबन्धः।
नित्यनव्यभव्यभूपो रामः पुमान् पुराणः।।३।।
निर्गुणो निरञ्जनोऽयं खलगर्वभञ्जनोऽयम्।
गिरिधरमहस्वरूपो रामः पुमान् पुराणः।।४।।

भौमी- श्रीराम साधारण राजा नहीं हैं, वे पुराण पुरुषोत्तम हैं। वे साक्षात् परब्रह्म हैं। श्रीराम का तेज वेदान्तवेद्य है, उनका रामनाम संसार में ख्यात है, उन्होंने अपने गुणों से भक्तों के भव को नष्ट किया है। रावण! प्रभु श्रीराम व्यापक होकर भी यहाँ व्याप्य हो गये हैं और प्रापक होकर भी प्राप्य हो गये हैं। अरे रावण! तुम्हारे द्वारा यज्ञों का विरोध करने पर भी उन्होंने भारत-भूमि में यज्ञों का खम्भा गाड़ दिया है। अतः वे पुराण पुरुषोत्तम हैं। ये श्रीमान सत्यप्रतिज्ञ! समुद्र में सेतुबन्धन करने वाले श्रीराम पुराण पुरुष होकर भी निरन्तर नूतन और कल्याणमय सम्राट हैं। ये निर्गुण निरञ्जन और दुष्टों के अहंकार को नष्ट करने वाले हैं और ये ही पुराण पुरुषोत्तम श्रीराम **गिरिधर** कवि के उत्सव स्वरूप भी हैं।

सन्दर्भश्लोकः

स्मृत्वा रामप्रतापं सुरनरमुनिभिर्दुस्प्रतापं प्रतापं
कुप्यन्पाकारि पौत्रो निशिचरपतये दर्शयन् रामचन्द्रे।
विश्वासं साट्टहासं भुवि पविसदृशं रोपयन् वामपादं
वाचा रक्षोऽधिनाथं सदसि विमदयन्नङ्गदः प्राह गर्जन्।।१।।

भौमी- देवता, मनुष्य और मुनियों के द्वारा जिसे प्रतप्त नहीं किया जा सकता, ऐसे सबको तपाने वाले श्रीराम प्रताप का स्मरण करके, रावण पर क्रुद्ध होते हुए इन्द्र के पौत्र अंगद ने श्रीरामचन्द्र में अपना विश्वास दिखाते हुये अट्टहासपूर्वक गर्जना करते हुये पृथ्वी पर बज्र के समान अपना चरण जमाते हुये सभा में अपनी वाणी से राक्षसपति रावण को मदहीन करते हुये इस प्रकार कहा।

गीत संख्या-१९

अङ्गदः प्राह रावणं प्रति-

त्वया शठ यदि मम चरणश्चाल्येत।
सीतारामौ मां विहाय प्रतियातां प्रतिश्श्रुतिः पाल्येत।।
पराजितः स्यां तव पुरि बन्दी सम्वर्धितसुग्रीवविषादः।
नियतव्रतो निराहारो युष्मदानुभावितभजनप्रमादः।।१।।
नैव करोतु त्वय्याक्रमणं कपिबलमेतु पुरीं किष्किन्धाम्।
मां खादन्तु पिबन्तु तावकाः मज्जां लज्जावनतस्कन्धाम्।।२।।
यदि मे चरणं त्वं विचालयेर्रामं नाहं प्रति गच्छेयम्।
सीता सह रामो निवर्ततां नाहं कपिसैन्यं रक्षेयम्।।३।।

प्रतिश्रृण्वता ज्ञायसे यद्यपि रावणकुतुकतुलितकैलाशः।
गिरिधरप्रभौ तथापि जृम्भते श्रीरामेऽङ्गददृढविश्वासः।।४।।

भौमी- अब अंगद रावण को सम्बोधित करते हुए कहते हैं–हे दुष्ट! यदि पृथ्वी पर जमे हुये मेरे चरण को तुम हिला सकोगे तो मुझे तुम्हारे यहाँ छोड़कर सीतारामजी श्रीअवध लौट जायेंगे और मैं भी अपनी प्रतिज्ञा का पालन करके तेरी सेवा करता रहूँगा। फिर तो मैं पराजित होकर तुम्हारे ही नगर में बन्दी बनकर सुग्रीव का विषाद बढ़ाता हुआ, तुम लोगों द्वारा भजन के प्रमाद का अनुभव कराया जाता हुआ, निश्चित व्रत करके निराहार रह लूँगा। यदि तुम मेरा चरण डिगा दोगे तो मैं पराजय स्वीकार कर लूँगा और वानरी सेना तुम पर आक्रमण नहीं करेगी, वह किष्किन्धा लौट जायेगी और तुम्हारे सेवक राक्षस मेरा माँस नोच-नोच कर खायें और लज्जा से झुके हुये स्कन्ध वाली मेरी चर्बी को पियें। यदि तुम मेरा चरण डिगा भर दोगे तो मैं रामजी के पास नहीं जाऊँगा। सीताजी भगवान राम के साथ अयोध्या लौट जायेंगी और मैं वानरी सेना की रक्षा नहीं करूँगा। हे रावण! यद्यपि प्रतिज्ञा करते समय मैं यह जान चुका हूँ कि तुम वही रावण हो जिसने खेल-खेल में कैलास उठा लिया था फिर भी **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम पर मुझ अंगद का दृढ़ विश्वास सबसे उत्कृष्ट रूप में विराजमान हो रहा है।

गीत संख्या-२०

विजयते अङ्गदविश्वासः कलितहरिभक्तमुखोल्लासः।।
न शक्ता यातुधानसेना कपिचरणसञ्चालने सेना।
निरस्ता नीचविलसितेना विवृद्धो रावणनिःश्वासः।।१।।
संयुगे सुरासुराः सेन्द्रा जिता येनानिलरविचन्द्राः।
विभग्ना विबुधवधूमद्रा स इह जिह्रेति महोच्छ्वासः।।२।।
पुरन्दरजित्प्रमुखा योधाः परावृत्ताः कलितक्रोधाः।
विषीदद्वदना गतबोधा शुचा क्लिन्नो दशमुखहासः।।३।।
प्रसन्ना सुराः सुमान् ववृषुः प्रनृत्यन्त्यो देव्यो जहृषुः।
दनुजललनालालान् चक्रुषुः विलसते कविगिरिधरलासः।।४।।

भौमी- अब कवि स्वयं गा रहे हैं- श्रीराम भक्तों का मुखोल्लास बढ़ाता हुआ श्रीअंगद का श्रीराम पर विश्वास विजयी हुआ, विजयी हो रहा है और विजयी होता रहेगा। अहो! सेना अर्थात् इन अपने स्वामी रावण के साथ राक्षसों की सेना अंगदजी का चरण डिगाने में समर्थ नहीं हो सकती और नीच, शोभाहीन, अल्पप्राण, राक्षसों के स्वामी, रावण का निःश्वास बढ़ा कर अंगदजी का विश्वास जीता। जिसके द्वारा युद्ध में इन्द्र के सहित देवता और दानव जीते गये और वायु, सूर्य और चन्द्र जैसे देवता जिसके द्वारा परास्त किये गये, देववधुओं का कल्याण करने वाले, विषयी देवता जिसके द्वारा पीट-पीटकर भगा दिये गये वही रावण यहाँ आज ऊँची-ऊँची साँसें लेकर लज्जित हो रहा है और इधर अंगदजी का विश्वास जीत रहा है। सूखते मुख वाले, अज्ञानी इन्द्र को जीतने वाले, मेघनाद आदि प्रमुख योद्धा अंगद के चरण को उठाने

में असमर्थ होकर लौट गये और रावण की हँसी भी आँसुओं से गीली हो गयी अर्थात् रोने में बदल गयी और अंगद का विश्वास जीत गया। प्रसन्न हुये देवता पुष्प बरसाने लगे। नृत्य करती हुई देवांगनाएँ प्रसन्न होने लगीं और राक्षसियाँ सूखी हुई लार चाटने लगीं। **गिरिधर** कवि का मुखोल्लास सुशोभित हो रहा है और अंगदजी का विश्वास विजयी हो रहा है।

विशेष– यह गीत '**आरती कुंज-बिहारी की**' शीर्षक सुगम संगीतीय ढाल में बद्ध है।

गीत संख्या-२१

इदानीमपि मानय दशकण्ठ।।
परिहर रामविरोधं क्रोधं भज भगवन्तं विलसितबोधम्।
त्यज भगवति पतितं प्रतिशोधं तपस्तुष्टशितिकण्ठ।।१।।
नो शक्यो रामो युधि जेतुं सुरासुरैः संयति सञ्जेतुम्।
कुणपपुङ्गवैरपि निर्जेतुं मावगम्य विषकण्ठ।।२।।
शरणं याहि सपदि रघुनाथं निगमागमकीर्तितगुणगाथम्।
करुणामूर्तिं जगदगनाथं स्मर हरकररसकण्ठ।।३।।
निर्यातय रामाय विनीतां स्वाहिताय लङ्कामानीताम्।
सीतां कविवरगिरिधरगीतां रघुवरशरवशकण्ठ।।४।।

भौमी– फिर अंगदजी रावण से कहते हैं–हे रावण! इस समय भी मान जाओ, अभी कुछ नहीं बिगड़ा है। हे तपस्या से शिवजी को संतुष्ट करने वाले रावण! श्रीराम के प्रति विरोध और उनके प्रति अपना क्रोध छोड़ दो। ज्ञान से सुशोभित भगवान राम का भजन करो और भगवान के प्रति आपतित प्रतिशोध को छोड़ दो। हे विष से भरे कण्ठ वाले रावण! श्रीराम तुम्हारे द्वारा युद्ध में नहीं जीते जा सकते। वे देवताओं और असुरों के संयुक्त युद्ध में भी नहीं जीते जा सकते, इन्हें बड़े-बड़े राक्षस भी नहीं जीत सकते, ऐसे अजेय प्रभु का अपमान मत करो। वेद और पुराणों द्वारा जिनकी कीर्ति का गान किया गया है, ऐसे करुणा के सागर, जड़ों और चेतनों के स्वामी श्रीरघुनाथजी की शरण में जाओ और शिवजी के करकमल से जिसके कंठ को जीवनदान मिला है, ऐसे हे रावण! तुम प्रभु का स्मरण करो। हे रामजी के बाण से वशीभूत कण्ठ वाले! अब तो परम विनम्र, अपने ही अकल्याण के लिए लंका में लायी हुई और **गिरिधर** कवि द्वारा गाई गई सीताजी को श्रीराम को सौंप दो।

सन्दर्भश्लोकः

प्रत्यागते वालिसुतेऽथ रामं निर्मथ्य वीर्यं दशकन्धरस्य।
सायं गतं सद्म शुचातिखिन्नं मन्दोदरी मन्दमुवाच मन्दम्।।१।।

भौमी– इसके पश्चात् रावण का पराक्रम चूर-चूर करके जब बालिपुत्र अंगद श्रीराम के पास चले आये तब सायंकाल सभा का विसर्जन करके चिन्ता से व्याकुल रावण अपने घर लौटा। फिर मन्दोदरी मन्द बुद्धि रावण को समझाती हुई मन्द स्वर में बोली।

गीत संख्या-२२

मानय वचनं दशकन्धर मे परिहर रामविरोधं रे।
व्रज हरि शरणं त्यज निजमरणं स्वीकुरु ममानुरोधं रे।।
रामो विग्रहवान् किल धर्मः अकरणकरुणाकूपारः।
एकनारिव्रतरतो महात्मा विलसितमङ्गलसुखसारः।।
भज श्रीरामं जलधरश्यामं कुरु निजमनो निरोधं रे।।१।।
त्वं न राघवं तुलयितुमीशस्त्यज मिथ्या निजदम्भं रे।
किमु खद्योतो दिनकरसदृशो विसृज मुधा संरम्भं रे।।
कलय मनसि सन् मनसिजमधुरं रघुवीरं निष्क्रोधं रे।।२।।
सिन्धुमतार्षीत् तस्य वानरस्त्वं न धनूरेखामतरः।
त्वया न दग्धं हनुमत्पुच्छं स तु ज्वालित त्वन्नगरः।।
श्रीसीतां रामाय समर्पय अनुसर निजावरोधं रे।।३।।
मृतौ द्वौ सुतौ लङ्का दग्धा अधुनापि इच्छा पूरय रे।
भज भर्तर्भौमीभर्तारं मोहमपारं दूरय रे।।
श्रय शरणं गिरिधराभिरामं रामं विलसित बोधं रे।।४।।

भौमी- हे रावण! मेरी बात मान जाओ। तुम श्रीराम का विरोध छोड़ दो और प्रभु की शरण में जाओ। अपने मरण की आशंका छोड़ो, मेरा अनुरोध स्वीकार कर लो। श्रीराम विग्रहवान धर्म हैं। वे अहेतुक करुणा समुद्र हैं और वे एक पत्नीव्रती तथा मंगल सुख के तत्व से सुशोभित हैं। ऐसे मेघश्यामल श्रीराम का भजन करो और मन को नियन्त्रित करो। अरे रावण! तुम राघवजी की तुलना नहीं कर सकते। अपना मिथ्या दम्भ छोड़ो। क्या जुगुनूँ सूर्य के समान हो सकता है? अपना क्रोध छोड़ दो और काम के समान मधुर, क्रोधरहित रघुवीरजी को मन में धारण करो। अरे रावण! श्रीराम का वानर तो समुद्र लाँघ गया और तुम लक्ष्मण द्वारा बनाई गई धनुष की रेखा भी नहीं लाँघ सके। तुम हनुमानजी की छोटी-सी पूँछ नहीं जला पाये और हनुमानजी तुम्हारी लंका को भस्मसात करके चले गये। इसलिए हे रावण! श्रीसीताजी को रामजी के हाथों सौंप दो और अपने रनिवास में जाओ। दो पुत्र मर गये, लंका जल गई अभी भी अपनी इच्छापूर्ति कर लो। हे पति रावण! सीतापति श्रीरामजी का भजन करो और अपना अपार मोह छोड़ दो। अतः **गिरिधर** कवि को आनन्द देने वाले भगवान श्रीराम की शरण लो।

गीत संख्या-२३

रामचन्द्रं शरणमभियाहि विरोधं त्यज रावण।
रघुचन्द्रं शरणमभियाहि स्वक्रोधं त्यज रावण।।
परमकृपालुं दीनदयालुं सञ्जागरितामितनिद्रालुम्।
शोभासान्द्रं शरणमभियाहि विरोधं त्यज रावण।।१।।

निखिलधनुर्धरपरमाचार्यं परमोदारं गुणनिधिमार्यम्।
कोसलेन्द्रं शरणमभियाहि विरोधं त्यज रावण।।२।।
यस्य सदा निजरक्षस्य लज्जा।
यं नहि निन्दति शत्रुसमज्या।।
राघवेन्द्रं शरणमभियाहि विरोधं त्यज रावण।।३।।
करुणां विधाय यो न तनुते रोषं यो नैव ध्यायति गिरिधरदोषम्।
रामभद्रं शरणमभियाहि विरोधं त्यज रावण।।४।।

भौमी- हे रावण! श्रीराम की शरण में जाओ और विरोध छोड़ दो। रघुकुल के चन्द्रमा श्रीराम की शरण में जाओ और अपना क्रोध छोड़ दो। परमकृपालु, दीनों पर दया करने वाले और अनेक निद्रामग्न लोगों को जगाने वाले, शोभा के घनीभूत विग्रह श्रीराम की शरण में जाओ और विरोध छोड़ो। सम्पूर्ण धनुर्धरों के परमाचार्य, परम उदार गुणों के महासागर, आर्य भगवान कोसलेन्द्र की शरण में जाओ, विरोध छोड़ दो। जिसको अपनी रक्षणीय की निरन्तर लज्जा रहती है, शत्रुओं की सभा भी जिसकी कभी निन्दा नहीं करती, उन भगवान राघवेन्द्र की शरण में जाओ और विरोध छोड़ दो। जो करुणा करके क्रोध नहीं करते और जो **गिरिधर** कवि के दोषों को नहीं ध्यान में लाते उन रामभद्र की शरण में जाओ, विरोध छोड़ दो।

सन्दर्भश्लोकः

सर्वेषामुपदेशमञ्जुलसुधाधारागिरोऽवक्षिपन्
यन्मन्दोदरिमाल्यवत् प्रभृतिभिः सञ्जल्पितं भूतये।
चक्रे बन्धुविभीषणोऽपि यतनं सर्वं समाहेल्य तत्
सीताकालनिशामुखे स्म मरणं रोरुच्यते रावणः।।१।।

भौमी- जो मन्दोदरी माल्यवान आदि लोगों ने रावण के कल्याण के लिये सुझाव दिये। इन सबकी उपदेशामृत की मधुर धाराओं को एक ओर रखते हुये अर्थात् इनकी कोई चिन्ता न करते हुये किंबहुना भाई विभीषणजी ने भी जो प्रयास किये इन सबकी अवहेलना करके रावण ने श्रीसीतारूप कालरात्रि के मुख में अपने मरण को ही अच्छा माना।

गीत संख्या-२४

कविर्गायति-

रामरावणीयमहोयुद्धमभ्यवर्तत ।
सीताकालनिशाकं विरुद्धमभ्यवर्तत।।
वानरा महाद्रिशिलावृक्षतुङ्गधारिणः।
राक्षसाः प्रचण्डकाण्डशक्तिसम्प्रहारिणः।।
छिन्धि भिन्धि धर मार क्रुद्धमभ्यवर्तत।।१।।

वानरप्रवीरा रणे राघवजयकाङ्क्षया।
यातुधानधीरा रावणाभिमुक्तिवाञ्छया।।
अन्योन्यं प्रहृत्य तद्विरुद्धमभ्यवर्तत।।२।।
कोटिकोटिनिशाचरा हनुमता निपातिता।
लक्षलक्ष राक्षसाश्च लक्ष्मणेन घातिताः।।
रक्षोवानराणां द्वन्द्वयुद्धमभ्यवर्तत।।३।।
जयताच्च रामो रणे भाषन्ते स्म वानराः।
क्षयतात् दशास्यो रणे ब्रूवते स्म निशाचराः।।
गिरिधराभिरामरामबुद्धमभ्यवर्तत ।।४।।

भौमी- अब कवि स्वयं गा रहे हैं- अहो! अब श्रीराम और रावण का युद्ध प्रारम्भ हुआ जो सीतारूप काल-निशा को सुख दे रहा था और एक दूसरे के विरुद्ध था। एक ओर वानर विशाल शिला और बड़े-बड़े वृक्षों को धारण किये हुये थे और दूसरी ओर राक्षस भयंकर बाण, शक्ति आदि शस्त्रों से प्रहार कर रहे थे। इस प्रकार काटो, फोड़ो, पकड़ो, मारो आदि शब्दों के प्रयोगों से भरा हुआ क्रोधपूर्ण युद्ध होने लगा। वीर वानर श्रीराम के विजय के आकांक्षी थे और धीर राक्षस सबन्धु-बान्धव रावण की मुक्ति चाह रहे थे। इस प्रकार एक दूसरे पर प्रहार करके विरोधपूर्ण युद्ध चल पड़ा। करोड़ों-करोड़ों राक्षसों को हनुमानजी ने मार डाला और लाखों-लाखों राक्षसों को लक्ष्मण जी ने समाप्त किया। इस प्रकार वानरों और राक्षसों का द्वन्द्व युद्ध होने लगा। 'रामजी की जय हो' इस प्रकार वानर बोल रहे थे। 'रावण की क्षय हो' इस प्रकार राक्षस चिल्ला रहे थे और गिरिधर कवि को आनन्द देने वाले भगवान राम के ज्ञान से यह युद्ध हो रहा था।

गीत संख्या-२५

जयति रणभुवि महावीरः।
परमवीरः परमधीरः हृदिमहितरघुवंशवीरः।।
समरचनमारुतकुमारः कमनकाञ्चनशैलसारः।
बलनिधी रुद्रावतारः तपनतर्जनतरुणधीरः।।१।।
सुनखपादपकुधरधारी वज्रदेहो ब्रह्मचारी।
जनकतनया शोकहारी भजनधनपावनशरीरः।।२।।
दशमुखान्वयकदनकर्ता भयमहामयमदनहर्ता।
त्रिदशपुङ्गवसदनभर्ता चरणपङ्कजनमितधीरः।।३।।
ललितलघुलाङ्गूलशोभः रामचन्द्रपदाब्जलोभः।
सुकविगिरिधरगीतमङ्गलवपुर्लसन् मनःकुटीरः।।४।।

भौमी- परम पूजनीय वीर, परम श्रेष्ठधीर, हृदय में रघुकुल के वीर, श्रीराम की आराधना करने वाले, महावीर हनुमानजी युद्धभूमि में विजयी हो रहे हैं। युद्ध में कुशल वायु के पुत्र सुन्दर स्वर्ण पर्वत के सार सर्वस्व, बल के महासागर, रुद्रावतार, सूर्यनारायण को भी भयभीत करने वाले, धीर युवक, हनुमानजी की जय हो रही है। सुन्दर नख, वृक्ष और पर्वत धारण करने वाले वज्रमय शरीर ब्रह्मचारी जनकनन्दिनी सीताजी का शोक हरने वाले और भगवदभजन के धन से युक्त पवित्र शरीर हनुमानजी की जय हो रही है। रावण वंश का विनाश करने वाले, भय, महान रोग और कामवासना को हरण करने वाले, श्रेष्ठ देवताओं के भवनों की रक्षा करने वाले और धीर मुनियों द्वारा प्रणाम किये हुये चरणकमल हनुमानजी की जय हो रही है। सुन्दर, चंचल, लाल-लाल पूँछ की शोभा से युक्त श्रीरामचन्द्र के चरणकमल में लोभ करने वाले, कवि श्रेष्ठ **गिरिधर** द्वारा गाये हुये मंगलमय विग्रह मनरूप कुटीर को सुशोभित करने वाले महावीर श्रीहनुमानजी महाराज लंका के समरांगण में विजयी हो रहे हैं।

गीत संख्या-२६

रावणसुतो मनसि विचार्य।।
हन्तुमना विभीषणं प्रति शक्तिमहन् प्रचार्य।
वीरघातिनीनामिकां सम्मन्त्र्य गवि सञ्चार्य।।१।।
हन्तुमेति विभीषणं लक्ष्मण इति व्यवधार्य।
पृष्ठयंस्तं स्वयं सेहे सर्वतः सन्धार्य।।२।।
वीरघातिन्याहतो विमुमुर्च्छ बलं विधार्य।
भुवि पपात महीधरोऽपि निजैश्वरं विनिवार्य।।३।।
वीक्ष्य वानरबलं तस्थौ राघवं सम्वार्य।
गिरिधरेश्वरबाहुसेतुं नयनवनमावार्य।।४।।

भौमी- अब महाकवि लक्ष्मण शक्ति-प्रसंग को उपस्थित कर रहे हैं। रावणपुत्र मेघनाद ने मन में विचार करके विभीषण को मारने की इच्छा से पूर्ण अभिमन्त्रित करके अपनी वाणी में संचारित कर वीरघातिनी नामक शक्ति ललकार कर छोड़ दी। यह शक्ति विभीषण को मारने आ रही है, इस प्रकार विचार करके विभीषण को पीछे करते हुये शक्ति को समेटकर लक्ष्मणजी ने सहन कर लिया। वीरघातिनी शक्ति से आहत होकर थोड़ी देर के लिए अपने बल की उपेक्षा करके लक्ष्मणजी मूर्च्छित हो गये। पृथ्वी को धारण करने वाले भी अपना ऐश्वर्य रोककर पृथ्वी पर ही गिर पड़े। **गिरिधर** कवि के ईश्वर श्रीराम के लिये जिनकी भुजा ही सेतु बनी, ऐसे लक्ष्मणजी को मूर्च्छित देखकर उन्हें घेरकर नेत्र से आँसू गिराती हुई वानर सेना वहीं स्थिर हो गई।

गीत संख्या-२७

लक्ष्मणं व्रणितं रणे विलोक्य।
आनीतं हनुमता पुरो हरिरारुरोद सँल्लोक्य।।१।।

क्रोडीकृत्य शक्तिजर्जरतनूमीक्ष्यमाण ईशोऽपि।
धैर्यं जहद् रुरोद कृपाधैर्यामृतवारीशोऽपि।।२।।
चुम्बं चुम्बं बन्धोर्वदनं विलपन् वारिजनयनः।
स्वाहाकारचणोऽपि ररौ हाहाकारं सुखचयनः।।३।।
स्मारं स्मारं लक्ष्मणसेवां धीरो धरति न धैर्यम्।
को गिरिधरप्रभुमद्य शीलयेद्रणे विना सोदर्यम्।।४।।

भौमी- लक्ष्मणजी को युद्ध में घायल देखकर हनुमानजी द्वारा अपने समक्ष लाये हुये, लक्ष्मणजी को अचेतन अवस्था में निहारकर श्रीहरि भगवान राम फूट-फूटकर रो पड़े। लक्ष्मणजी को शक्ति से जर्जरित देखते हुये कृपाधैर्यरूप अमृत के सागर होते हुये भी भगवान श्रीराम धैर्य छोड़कर फूट-फूटकर रोने लगे। भाई लक्ष्मण का मुख चूम-चूमकर कमलनयन सुख के संग्रह श्रीराम स्वाहाकार में कुशल होकर भी हा-हाकार करने लगे। भाई लक्ष्मण की सेवा का स्मरण करते हुये, धीर होकर भी श्रीराम धैर्य नहीं धारण कर रहे हैं। आज युद्ध में छोटे भाई लक्ष्मण के बिना **गिरिधर** कवि के प्रभु श्रीराम को कौन विश्वास देकर संतुष्ट करे?

गीत संख्या-२८

मदीयो हतो निखिलपुरुषार्थः।
विना लक्ष्मणं गतस्त्रिवर्गः किमुघटतां परमार्थः।।
शृणु सुकण्ठ साम्प्रतं तु मत्तो विमुखो भाति विधाता।
अस्मिन् समये समरसङ्कटेऽत्याक्षील्लक्ष्मणभ्राता।।१।।
येन मदर्थं त्यक्ता जननी पत्नी पुरजनतातः।
सैव मया कृतघ्नचूडामणिना न हरिजितस्त्रातः।।२।।
प्रयास्यन्ति कपयो गिरिगहनेऽहं त्वनुजं ग्लायामि।
कुत्र गमिष्यति मम विभीषणः शुचानया म्लायामि।।३।।
गिरिधरप्रभुं रुदन्तं चेत्थं वीक्ष्य सचिवसुग्रीवः।
हा हा कृत्वा रुदत् भृषार्तो मुहुः सन्नतग्रीवः।।४।।

भौमी- मेरा सभी पुरुषार्थ समाप्त हो गया, जब लक्ष्मण के बिना मेरा त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ, काम ही चला गया तो मोक्ष कैसे संपन्न हो सकेगा? हे सुग्रीव सुनिये! इस समय विधाता मुझ पर रूठे हैं। ऐसे समय में, युद्ध के संकट में मुझे लक्ष्मण जैसे भाई ने छोड़ दिया। जिन लक्ष्मण के द्वारा मेरे लिये माता, पत्नी, पुरजन और पिता का त्याग किया गया, मुझ कृतघ्न चूड़ामणि ने उन्हीं लक्ष्मण को मेघनाद से नहीं बचाया। वानर पर्वत की गुफाओं में चले जायेंगे, मैं लक्ष्मण का अनुगमन करूँगा, परन्तु मेरे भक्त विभीषण कहाँ जायेंगे? इस चिन्ता से मैं व्याकुल हो रहा हूँ। इस प्रकार **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम को रोते देखकर मित्र सुग्रीव अपनी गर्दन झुकाकर हा-हाकार करके आर्त्त स्वर में रोने लगे।

गीत संख्या-२९

रामो विलपति-

अहं वै सकलानर्थकमूलम्।
यद्धेतोरसहिष्टलक्ष्मणो वीरघातिनीशूलम्।।
त्यक्त्वा राज्यं वनमायान्तं बन्धुर्मामनुयातः।
दारनिमित्तं सोऽपि हापितो मया प्राणप्रियतातः।।१।।
मत्कीर्तिं रक्षता बन्धुना वीरघातिनी सोढा।
घ्नन्ती विभीषणं भ्रात्रा मे हठान्निजोरसि वोढा।।२।।
हतः शक्रयिना समरे किल भानुवंशवरकेतुः।
भग्नो मया समरसागरसन्तरणवाहुवरसेतुः।।३।।
किं वक्ष्यामि सुमित्रां देवीं सतीमुर्मिलां बालाम्।
यस्यै सन्दातास्मि विधिवसात् भर्तृवियोगजहालाम्।।४।।
फणी मणिं मत्स्यः कीलालं यथा विनाप्यतिदीनः।
गिरिधरप्रभुर्लक्ष्मणं त्यक्त्वा जीवति तथैव हीनः।।५।।

भौमी- श्रीराम विलाप कर रहे हैं-मैं सभी अनर्थों का मूल हूँ। जिसके कारण मेरे लक्ष्मण ने वीरघातिनी का यह कष्ट सहन किया। राज्य छोड़कर वन में आते हुये मेरे पीछे-पीछे मेरे छोटे भाई लक्ष्मण भी आये। उन प्राणप्रिय अपने भाई को भी मैंने पत्नी के लिये खो दिया। मेरी कीर्ति की रक्षा करने के लिये मेरे भाई लक्ष्मण ने वीरघातिनी शक्ति को सहन किया। यह विभीषण को मारना चाह रही थी, परंतु मेरे भैया ने बीच में आकर इसे अपनी छाती पर ले लिया। अहो! इन्द्रजीत ने सूर्यवंश के श्रेष्ठ केतु लक्ष्मण को क्या युद्ध में समाप्त कर दिया? क्या समर-सागर को पार करने के लिये जिनकी भुजाएँ मेरे लिये सेतु बनीं, क्या उन लक्ष्मण को मैंने खो दिया? मैं माता सुमित्रा से क्या कहूँगा और छोटी अवस्था वाली सती उर्मिला से क्या कहूँगा? जिसको मैं उनके पतिवियोग से उत्पन्न विष देने वाला हूँ। जिस प्रकार मणि को छोड़कर सर्प, जल के बिना मछली, उसी प्रकार **गिरिधर** कवि का प्रभु मैं राम, लक्ष्मण को छोड़कर अत्यंत हीन भावना से जी रहा हूँ।

गीत संख्या-३०

लक्ष्मण कुत्र यासि मां त्यक्त्वा।
अस्मिन् सङ्कटकलितानेहसि मामुचितं खलु मुक्त्वा।।१।।
त्यक्तो मत्कारणं पिता पत्नी मनस्विनी माता।
सैव साम्प्रतं समरे व्रणितो भवान् कृतज्ञो भ्राता।।२।।

तातं जननीं राज्यं भरतं नैवाहं शोचामि।
काङ्गतिको विभीषणो भवितेत्यहं समनुशोचामि।।३।।
नो चिन्तये जटायुर्मरणं नैव मैथिलीहरणम्।
नैव सिन्धुतरणं कदाप्यहं यथा विभीषणशरणम्।।४।।
स्वर्मयि गते लक्ष्मणे जाते सीता चापि गमिष्यति।
गिरिधरप्रभुमन्तरा विभीषण भक्तो न परिरमिष्यति।।५।।

भौमी- हे लक्ष्मण! मुझे छोड़कर कहाँ जा रहे हो? इस संकटपूर्ण समय में मुझे छोड़ना तुम्हारे लिये उचित नहीं है। मेरे कारण आपने पिता, पत्नी और मनस्विनी माता को छोड़ दिया। वही मेरे कृतज्ञ भाई आप इस समय युद्ध में घायल हो गये हैं। मैं पिता, माता, राज्य और भरत की कोई चिन्ता नहीं कर रहा हूँ। परंतु विभीषण की क्या गति होगी, इसी पक्ष पर मैं बहुत चिंतित हूँ। मैं जटायु के मरण पर, सीताजी के हरण पर, समुद्र तरण पर उतना चिंतित नहीं हूँ जितना कि विभीषण की शरणागति के संबंध में चिन्तित हूँ। मेरे स्वर्ग चले जाने पर लक्ष्मणजी चले जायेंगे, सीताजी भी मेरा अनुगमन कर लेंगी, परंतु **गिरिधर** कवि के स्वामी मुझ राम के बिना अनाथ विभीषण सुखी नहीं होंगे।

गीत संख्या-३१

बन्धुं विना विहतं मम युग्मम्।
धिङ्मां मूढमतिं कृतघ्नकं येन त्याजितमनुपं रुक्मम्।।१।।
किमुत्तरं दद्यां मागध्यै यत्सूनुना घटितमिह युग्मम्।।२।।
क्वायोध्या क्व च नगरी लङ्का वैद्यो वसति शत्रो रावणतुक्मम्।।३।।
गिरिधरप्रभुशिरस्ताडं प्ररोदिति कथमसौ जीवतु पश्यन्न युग्मम्।।४।।

भौमी- भाई के बिना मेरी जोड़ी टूट गयी। मुझ मूढ़ मति कृतघ्न को धिक्कार, जिसने ऐसा उपमारहित स्वर्ण खो दिया। अरे! मैं सुमित्रा माता को क्या उत्तर दूँगा, जिनके पुत्र ने यह सुंदर जोड़ी निभाई। कहाँ अयोध्या, कहाँ नगरी लंका और वैद्य भी शत्रु रावण के नगर में रहता है। आज **गिरिधर** कवि के प्रभु श्रीराम सिर पीट-पीटकर रो रहे हैं। अरे! वे अपने को अकेले देखते हुये कैसे जियें?

विशेष- यह गीत एक पारंपरिक अवधी लोकगीत के ढाल में निबद्ध है। उसके बोल हैं-

''बंधु बिना बिछुरलि मोरि जोड़ी।''

सन्दर्भश्लोकः

रुदन्तं राघवं वीक्ष्य बाष्पपर्याकुलेक्षणम्।
जाम्बवान् बोधयामास हनूमन्तं कपीश्वरम्।।१।।

भौमी- इस प्रकार आँसुओं से भरे नेत्र वाले राघवजी को रोते हुये देखकर जाम्बवानजी ने वानर श्रेष्ठ हनुमानजी को जगाया।

गीत संख्या-३२

हनुमान् श्रीराघवं प्रति-

यद्यहं भवदाज्ञामधियायाम्।
तदा चन्द्रमापीड्यचैलवत् पीयूषञ्च गृहीत्वा यायाम्।।१।।
अथवा भुवनावरणं भित्वा भानुं तत्र राहुणा लायाम्।।२।।
किंवा भङ्क्त्वा यम पटुपाशं शीघ्रं सौमित्रयेऽप्यमरतां रायाम्।।३।।
भुवि विपोथ्य मूषकवन्मृत्युं मरणभयात् वैष्णवांश्च पायाम्।।४।।
तथा निदेशं देहि हनुमते यथा च गिरिधरप्रभवे भायाम्।।५।।

भौमी- यदि मैं आपकी आज्ञा पा जाऊँ तो चन्द्रमा को वस्त्र की भाँति निचोड़कर अमृत लेकर चला आऊँ। अथवा भुवनों का आवरण भेदकर सूर्य को बाहर करके वहाँ राहु को ढककर लगा दूँ। अथवा यमराज का पाश तोड़कर निद्रित लक्ष्मण को पूर्ण अमरता दे दूँ। अथवा चूहे की भाँति मृत्यु को पृथ्वी पर पटककर सभी वैष्णवों को मरणभय से बचा लूँ, मुझ हनुमान को उसी प्रकार का निर्देश दीजिए जिससे **गिरिधर** कवि के प्रभु आपश्री को मैं भाऊँ।

गीत संख्या-३३

जाम्बवान् हनुमन्तं प्रति-

हनुमन् द्रोणाचलमेव लाहि सौमित्रयेऽसुदानं प्राहि।।
नत्वा रामं किल गच्छ वीर आगच्छौषधिभिर्महावीर।
गत्वा दूरं पन्थानमेव आनयौषधं हे महादेव।।१।।
प्रभुसङ्कल्पा विघ्नानि दान्तु विपदोविपदो दूरं प्रयान्तु।
तव विजयपताका समाभान्तु सन्तस्तुभ्यं मङ्गलं रान्तु।।२।।
गच्छन् हनुमन्त्वं मा विषीद मायानिशि निष्ठे मा निशीद।
लक्ष्यैकचक्षुरुत्तमोत्सङ्ग उत्सर्गसर्गरामान्तरङ्ग।।३।।
कृतकार्यः शीघ्रं समायाहि लक्ष्मणप्राणदाता प्रभाहि।
रामायणमालारत्नरम्य जय जय हनुमन् गिरिधरप्रणम्य।।४।।

भौमी- अब जाम्बवान हनुमानजी के प्रति कहते हैं-हे हनुमान! आप द्रोणाचल पर्वत ले आओ, लक्ष्मणजी को प्राणदान दो। हे वीर! श्रीराम को प्रणाम करके जाओ और हे महावीर संजीवनी औषधि के साथ आओ। यह मार्ग दूर मानकर भी हे महादेव! आप जाकर औषधि अवश्य ले आएँ। भगवान के संकल्प सारे विघ्नों को नष्ट कर दें और विपत्तियाँ विशिष्ट गति के साथ दूर चली जाएँ। आपकी विजय पताकाएँ सदा शोभित रहें, सन्त आपके लिये मंगल प्रदान करें। हे हनुमान! जाते हुये तुम्हें किसी प्रकार का कष्ट न हो। इस मायारात्रि

में निम्न स्थान में भूलकर भी मत बैठो, लक्ष्य को एकमात्र नेत्र मानकर सर्वोत्तम प्रभु की गोद में विराजने वाले, त्याग को ही अपना स्वभाव बनाने वाले, श्रीराम के अंतरंग सेवक कार्य करके शीघ्र आइये और लक्ष्मणजी को प्राण दानकर सुशोभित होइये। हे रामायणमाला के सुंदररत्न, हे **गिरिधर** कवि के द्वारा प्रणम्य हनुमानजी! आपकी जय हो, जय हो।

विशेष- इसे मालकौश और केदारा में गाना चाहिये।

सन्दर्भश्लोकः

हत्वाऽसौ कालनेमिं पथिदुरितकरं पर्वतेशञ्च गत्वा
प्राप्तायोध्यः सशैलो भरतशरहतो मूर्छितो बोधितश्च।
सम्भाष्यैनं हनूमान् अथ च ददृशिवान् राममात्रा सुमित्रा
मागध्या रामसाह्यो रिपुकुलदमनः प्रेषितः तत्र गन्तुम्।।१।।

भौमी- मार्ग में विघ्न करने वाले, कालनेमि को मारकर और द्रोणाचल के पास जाकर, औषधि के साथ अयोध्या के पास पहुँचकर पुनः भरतजी द्वारा बाण से घायल होकर हनुमानजी मूर्च्छित हुये। पुनः श्रीभरत द्वारा जगाये गये। उनसे वार्तालाप करके हनुमानजी ने कौसल्या के सहित सुमित्रा को देखा। पुनः मगधवंशा सुमित्राजी शत्रुओं के नाश के लिये श्रीराम के सहायार्थ शत्रुघ्न को भी भेजने लगीं।

गीत संख्या-३४

सुमित्रा प्राह शत्रुघ्नम्-

हे शत्रुसूदन रघूत्तमचरणमभिगमनं विचारय हे।
गच्छाशु लङ्कामशङ्को हनूमता शत्रून् प्रचारय हे।।
राघवस्य कार्ये समाहतस्ते वरीयान्।
धन्यं धन्यमकार्षीत् स्वजीवनं गरीयान्।।
तमनुगच्छ गच्छाशु लङ्कारणाङ्गणं राममलङ्कारय हे।।१।।
धन्यं मम जठरं लक्ष्मणो यतो जातः।
रामसेवाहुतात्मा महात्मा त्वभिजातः।।
त्वमपि तदीयां पदवीं प्रयाहि हे ललन प्रभुं धृति धारय हे।।२।।
मा विलम्बं कृथा मा स्म प्राक्षीः श्रुतिकीर्तिम्।
गिरिधरप्रभौ कुरु मनोरथानां पूर्तिम्।।
सीताचित्तचातकसजलश्यामघनसेवकत्वं प्रधारय हे।।३।।
मेघनादं संहर समाहर सुचित्तम्।

रामपादपङ्कजे उपाहरात्मवित्तम्।।
साकमाञ्जनेयेन व्रज सज्जनैकधन जीवनं सुधारय हे।।४।।

भौमी- अब सुमित्रा जी शत्रुघ्नजी से कहती हैं–हे शत्रुघ्न! श्रीराम के चरण में जाने का विचार करो और हनुमानजी के साथ निर्भीक होकर लंका जाओ और वहाँ शत्रुओं को ललकारो। हे शत्रुघ्न! श्रीराम की सेवा में तुम्हारे बड़े भाई समाप्त हो गये। उन श्रेष्ठवीर ने अपने जीवन को धन्य कर लिया। इसलिये तुम लक्ष्मण का अनुगमन करो, शीघ्र लंका के समरांगण में जाओ और अपनी उपस्थिति से श्रीराम को शोभित करो। मेरी कोख धन्य है, जहाँ लक्ष्मण उत्पन्न हुये। उन्होंने श्रीराम की सेवा में अपने शरीर को ही हवन कर दिया क्योंकि वे जन्मना महात्मा थे। तुम भी उनकी पदवी का अनुसरण करो और श्रीराम जैसी धृति धारण करो। हे शत्रुघ्न! विलम्ब मत करो। श्रुतकीर्ति से मत पूछो। **गिरिधर** के प्रभु श्रीराम से ही अपने मनोरथों की पूर्ति करो और सीताजी के चित्तरूप चातक के जलयुक्त श्याम बादल श्रीराम के प्रति सेवकत्व का पालन करो। युद्ध में मेघनाद का वध करो। अपने चित्त को समाहित कर लो। श्रीराम के चरणकमल में आत्मारूप धन को उपहृत कर लो। हे सज्जनों के एकमात्र धन शत्रुघ्न! हनुमानजी के साथ शीघ्र जाओ और अपना जीवन सुधार लो।

सन्दर्भश्लोकः

ततो महावीरमुवाच धीरा नीरं वहन्ती शतपत्रनेत्रे।
निवार्य शत्रुघ्नमनुव्रजन्तं श्रीराममाता हनुमन्तमीड्या।।१।।

इसके पश्चात् हनुमानजी के पीछे-पीछे लंका की ओर जाते हुए शत्रुघ्नजी को रोककर स्तुति करने योग्य अत्यंत धीर भगवान राम की माता कौसल्याजी कमलनेत्र में आँसू भरकर महावीरजी को संबोधित करती हुयी इस प्रकार बोलीं–

गीत संख्या-३५

कौसल्या हनुमन्तं प्रति-

हनुमन् राघवं प्रतियाहि।।
एक एव विलम्ब मा कालं स्वकं सम्माहि।
वाचिकं मे वाग्मिनं रघुचन्द्रमेवाख्याहि।।१।।
यदपि वत्स कदवसरे त्वं लक्ष्मणेन विनाद्य।
वैरिणं मोपेक्ष्य तदपि कदापि हे निरवद्य।।२।।
एहि लक्ष्मणयुतोऽयोध्यां हतदशास्यो राम।
लक्ष्मणेन विना ललितमथ लगति नहि तव नाम।।३।।
समं लक्ष्मणजानकीभ्यां पुरमवधमागच्छ।
कोसलानधिवसन् कुशली गिरिधरं संरक्ष।।४।।

भौमी- अब कौसल्याजी हनुमानजी से बोलीं-हे हनुमान! तुम अकेले श्रीराम के पास जाओ। मार्ग में विलंब मत करो। अपना समय संभाल लो और प्रशस्त वाणी से सम्पन्न श्रीरामचन्द्रजी से मेरा एक संदेश कह देना। हे वत्स! यद्यपि आज लक्ष्मण के बिना तुम बहुत बुरे समय में फँस गये हो फिर भी हे निष्पाप! शत्रु की कभी भी उपेक्षा मत करना। हे राघवेन्द्र! रावण को मारकर लक्ष्मण के साथ अयोध्या लौटकर आना क्योंकि लक्ष्मण के बिना तुम्हारा नाम सुंदर नहीं लगता। लक्ष्मण और सीता के साथ अवधपुरी आओ और श्रीअवध में सकुशल निवास करते हुए **गिरिधर** कवि की भी रक्षा करो।

विशेष- यह गीत रूपक ताल में निबद्ध है। इसे वागेश्री में गाना चाहिये।

सन्दर्भश्लोकः

प्रणम्य जननीं हरेर्भरतभावितो धीधनो
रघूत्तममुपागतः प्रणिनिधाप्य सञ्जीवनीम्।
स लक्ष्मणमुखे कपिः शमितरामचित्तातुरि-
स्तुरीयपरिलालितो विजयतेऽञ्जनानन्दनः।।१।।

भौमि- परम बुद्धिमान हनुमानजी श्रीराम की माता कौसल्याजी को प्रणाम करके भरतजी से सम्मानित होकर श्रीराम के पास आकर लक्ष्मणजी के मुख में संजीवनी देकर श्रीरामजी की चिंता और आतुरता को समाप्त करके तुरीय अर्थात् तुरीयावस्था के विभु भगवान राम से दुलार पाकर अंजनानंदवर्धन हनुमानजी सब प्रकार से विजयी हो रहे हैं।

गीत संख्या-३६

कविर्गायति-

व्रणस्तु मम हृदये पीडा च रघुवीरे।।
लब्धौषधिर्जीवितो लक्ष्मण आह दृशौ श्रितनिर्मलनीरे।।१।।
समाहिता सकला च समस्या हनूमता विलपति रणधीरे।।२।।
श्रीराघवे निरस्तलाघवे शोककण्टकितसुभगशरीरे।।३।।
हनिष्यामि राक्षसानेकलो राजति रघुवरवंशप्रवीरे।।४।।
सह सीतया विहरताद्रामो नित्यं गिरिधरनयनकुटीरे।।५।।

भौमि- अब स्वयं कवि गा रहे हैं- हनुमानजी से औषधि प्राप्त करके, पुनर्जीवित होकर, निर्मल नेत्र में जलभरकर श्रीलक्ष्मण बोल पड़े-घाव तो मेरे हृदय में हुआ है पर पीड़ा श्रीरघुवीर को हुयी है। रणधीर श्रीराम के विलाप करते रहने पर ही हनुमानजी के द्वारा संपूर्ण समस्याओं का समाधान हो गया। लघुता का निरसन करने वाले, शोक से पुलकित शरीर, श्रीराघव के विद्यमान रहते ही सारे संकटों के बादल छट गये। अब तो रघुवंशवीर श्रीराघव के देखते-देखते मैं अकेले संपूर्ण राक्षसों का वध कर दूँगा और सीताजी के सहित भगवान राम **गिरिधर** कवि के नेत्ररूप कुटीर में नित्य विहार करते रहें।

उपसंहारश्लोकः

विलोक्य सञ्जीवितमेव लक्ष्मणं समेत्यरामः श्रुतवल्गुभाषणः।
पुनर्हनूमन्तमुदूह्य वक्षसा प्रहर्षयामास कपीन् रघूद्वहः।।१।।

भौमी– अब कवि उपसंहार श्लोक प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार लक्ष्मणजी को सम्यक्–जीवित देखकर और उनसे मिलकर तथा लक्ष्मणजी का सुंदर भाषण सुनकर पुनः हनुमानजी को हृदय से लगाकर भगवान श्रीराम ने संपूर्ण वानरों को प्रसन्न कर दिया।

इति
श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरमहाकविजगद्गुरुरामानन्दाचार्यस्वामिरामभद्राचार्यगिरिधरकविप्रणीते गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये युद्धकाण्डे
गीतरणकर्कशो नाम प्रथमः सर्गः

इस प्रकार श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर महाकवि जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य गिरिधरकवि द्वारा विरचित गीतरामायण 'गीतसीताभिराम' नामक संस्कृत गीतमहाकाव्य के युद्धकाण्ड में गीतरणकर्कश नामक प्रथम सर्ग संपन्न हुआ।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

।।श्रीः।।

।।नमो राघवाय।।

गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये युद्धकाण्डे

गीतरावणारिर्नाम

द्वितीयः सर्गः

मङ्गलाचरणम्

किं विग्नोऽर्यस्तसैन्यः किमवनितनया चोरिता किन्न भुक्ता
सा वै रामैकनिष्ठा स नहि किमभवो नास्मि शक्तस्तथात्वे।
स्वान्ते श्रीरामरूपे लसति मम समा योषितो मातृरूपाः
भान्तीत्थं रावणेन स्तुतशुभचरितो राघवो रातु शन्नः।।१।।
तूणीरे द्रढयन् जटाः सुजटयन् कोदण्डमासज्जयन्
नाराचान् परितेजयन् हृदि लषन् सीतां मणिं मानयन्।
चण्डीशं स्त्रजयन् भुवं सुभवयन् हृष्यन् बलं व्यूहयन्
रायाद्रावणरावणोद्यमपरो रामः सतां मङ्गलम्।।२।।

भौमी–यहाँ कवि कुम्भकर्ण रावण के संवाद व्याज से प्रभु के उदात्त चरित का स्मरण करते हुए आशीर्वादात्मक मंगलाचरण प्रस्तुत करते हैं। हनुमानजी के प्रयास से लक्ष्मणजी की मूर्च्छा समाप्त होने के पश्चात् रावण ने कुम्भकर्ण को जगाया। रावण को उदास देखकर कुम्भकर्ण ने प्रश्न किया किं विग्नः– अरे भाई! आज तुम इतने उद्विग्न क्यों हो? रावण ने कहा अर्यस्त सैन्यः–शत्रु राम ने मेरी सेना को समाप्त कर डाला। किं–? क्यों अवनितनया चोरिता– क्योंकि मैंने पृथ्वीपुत्री सीताजी को चुरा लिया, इसीलिए श्रीराम ने मुझ पर आक्रमण किया और युद्ध में उनकी वानर सेना द्वारा हमारी सेना मार डाली गई। कुम्भकर्ण ने पूछा–किं न भुक्ता– यदि तुमने सीताजी का हरण किया ही था तो उन्हें अपनी पटरानी क्यों नहीं बना ली? रावण ने कहा–सा वै रामैकनिष्ठा सीताजी की निष्ठा एकमात्र श्रीराम में हैं। इसी से मैं उन्हें समझाने में सफल नहीं हुआ। नलकूबर के शाप के कारण सीताजी पर मैं बल का प्रयोग भी नहीं कर सकता था क्योंकि ऐसा करने पर मेरे सिर के दो टुकड़े हो जाते। कुम्भकर्ण ने पूछा– स नहि किम भवः– तुम तो मायावी थे, तुम माया के बल से श्रीराम क्यों नहीं हो गए, श्रीराम का रूप क्यों नहीं धारण कर लिया? रावण ने उत्तर दिया– नास्मि शक्तस्तथात्वे– मैं श्रीराम नहीं बन सकता क्योंकि किसी भी माया के बल से श्रीराम का रूप धारण नहीं किया जा सकता। स्वान्ते श्रीरामरूपे लसति मम समा योषितो– मातृरूपा भान्ति– किं बहुना–श्रीराम रूप धारण करना तो बहुत दूर है जो मैं नहीं कर पाऊँगा, यहाँ तक कि जब मैं श्रीराम रूप का चिन्तन भी करता हूँ और मेरे अन्तःकरण में जब मेघवर्णी श्रीराम का श्यामलरूप स्फूर्ति होने लगता है उस समय संसार की सभी

स्त्रियाँ मुझे माता के रूप में दिखने लगती हैं। इत्थं रावणेन स्तुतशुभचरितः राघव नः– इस प्रकार रावण के द्वारा जिनके शुभचरित की स्तुति की गई है, ऐसे श्रीराघव भगवान राम हम सबको मंगल प्रदान करें। दोनों तरकशों को कटि में दृढ़ता से कसते हुए जटा को ठीक–ठीक बाँधते हुए धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाते हुए बाणों को पत्थरों पर घिसकर नुकीला बनाते हुए, हृदय में सीताजी की इच्छा करते हुए, कौस्तुभमणि का सम्मान करते हुए, शिवजी को अपने बाणों से काटे हुए रावण के शिरों को माला पहनाते हुए, पृथ्वी का कल्याण करते हुए, स्वयं रोमांचित होते हुए वानरी सेना का व्यूह बनाते हुए, ऐसी क्रियाओं द्वारा रावण को रुलाने के उद्यम में लगे हुए परमात्मा परब्रह्म भगवान् श्रीराम सन्तों को मंगल प्रदान करें।

गीत संख्या–१

रावणेन बोधितः कुम्भकर्णो रावणं प्रति–

राघवमेव शरणं यामि।
कोटि तीर्थपसदृश हरिशरतो मरणमुपयामि।।
देहि मेऽनुज्ञां दशानन क्वापि नैव द्रामि।
बोधितः सुप्तोत्थितो नो पुनरहं निद्रामि।।१।।
राममेव विलोक्य लोचनपापमपानुदामि।
सुजनचन्द्रविधुन्तुदं स्वं संयुगेऽद्य तुदामि।।२।।
प्रेक्ष्य सीतापतिं पतितो निजपतिं वरयामि।
खरद्विड्गुणगणगरिम्णा स्वान्तमपि गरयामि।।३।।
यामि गिरिधरप्रभुं शरणं त्वत्पदं श्लिष्यामि।
रामविधुमुखमद्य दृष्ट्वा नैव ते पश्यामि।।४।।

भौमी– मैं श्रीराम की ही शरण में जा रहा हूँ। करोड़ों तीर्थों के समान पावन श्रीराम के बाणों से ही मैं मरण के समीप जाऊँ। हे रावण! अब मुझे अनुमति दो मैं कहीं भी कुत्सित कार्य न करूँ। पहले सोता रहा, बीच में ही तुमने जगा दिया। अब सोकर, फिर नहीं सोऊँगा श्रीराम के दर्शन करके आज मैं नेत्रों के पापों को नष्ट करूँगा और आज युद्ध में ही सज्जन रूप चन्द्रमा के राहुस्वरूप अपने को ही युद्ध में पीड़ित करूँगा। अर्थात् प्रभु राम के बाणों को सहूँगा कोई वास्तविक प्रतिक्रिया नहीं करूँगा। पतित होकर भी मैं सीतापति श्रीराम के दर्शन करके उन्हीं को पति रूप में वरण करूँगा। और खर के शत्रु श्रीराम के गुणगणों की गरिमा से अपने मन को ही गौरवशाली बना लूँगा। अब मैं **गिरिधर** कवि के प्रभु श्रीराम के शरण में जा रहा हूँ। तुम्हारा चरण छू रहा हूँ। श्रीराम के मुखचन्द्र के दर्शन करके फिर तुम्हें कभी नहीं देखूँगा।

विशेष– यह गीत रूपकताल में निबद्ध है।

गीत संख्या–२

गच्छन् पथि प्रणमन्तं विभीषणं प्रति कुम्भकर्णः–

याहि रे रामं शरणं याहि।।
मा विलम्बय भो विभीषण सुखं स्वस्मै राहि।

पार्वतीपतिपूज्यमित्वा यातुधानान् पाहि।।१।।
कर्मणा मनसा च वाचा राममनुचर तात।
मा छलं कार्षीः प्रभुं प्रति किल विहितशुभजात।।२।।
अनुज्ञाप्य दशाननं रामं शरणमिह यामि।
अलं मामनुरुध्य वत्स निजाध्वकं मृगयामि।।३।।
कुम्भकर्णः कुम्भकर्णे हरिसुधां कलयामि।
व्रजन् परलोकं हरेश्चरितं च सम्बलयामि।।४।।
रावणं मा शोच गिरिधरप्रभोश्चरणं गच्छ।
सुखी भव राजन् विभीषण कुणपवंशं रक्ष।।५।।

भौमी- युद्ध के लिए जाता हुआ कुम्भकर्ण मार्ग में मिलकर प्रणाम करते हुए विभीषण के प्रति कहता है। अरे विभीषण! जाओ श्रीराम की शरण में जाओ। अरे विभीषण! मत विलम्ब करो, स्वयं को सुख प्रदान करो, पार्वती के पति शिवजी के भी पूज्य श्रीराम को प्राप्त करके राक्षसों की रक्षा कर लो। हे तात! कर्म से, मन से, वाणी से, श्रीराम की सेवा करना। प्रभु के प्रति किसी प्रकार का छल मत करना। मैं रावण से अनुज्ञा लेकर रामजी की शरण में जा रहा हूँ। अब मुझसे अनुरोध करना भी व्यर्थ है। मैं अब अपना मार्ग ढूँढ़ रहा हूँ। मैं कुम्भकर्ण हूँ, इसलिए कुम्भ अर्थात् घड़े के समान अपने कान में भगवान की कथा-सुधा का संचय करूँगा और परलोक में जाता हुआ भी मैं श्रीहरि के चरित को पाथेय बना रहा हूँ। रावण की कोई चिन्ता न करके अब तुम **गिरिधर** प्रभु श्रीराम के चरण में जाओ। हे राजन विभीषण! सुखी होओ और राक्षस वंश की रक्षा करो।

गीत संख्या-३

कुम्भकर्णो राघवं पश्यन्-

हरन् मच्चित्तगारल्यं अहो श्रीराम माधुर्यम्।
दिशन् मे स्वान्तसारल्यं अहो घनश्याम सौन्दर्यम्।।१।।
निसर्गात् पातकी पश्यन्नहं रामं सुखी जातः।
दिशन् मे चित्ततारल्यं अहो जितकामसौन्दर्यम्।।२।।
न तृप्तिं याति मे स्वान्तं प्रभोः रूपं विलोकयतः।
हरन् मे चित्तचाञ्चल्यं अहो सुखधामसौन्दर्यम्।।३।।
इयं नो कल्पना धातुः सुसृष्टिर्लक्ष्मणभ्रातुः।
तुदन् मे क्रूरचापल्यं अहो रघुरामसौन्दर्यम्।।४।।
विचित्रं स्नेहकारुण्यं पवित्रं देहि तारण्यम्।
नुदद् गिरिधरमनःशल्यं अहो अभिरामसौन्दर्यम्।।५।।

भौमी- कुम्भकर्ण श्रीराघव को देखता हुआ-अहो मेरे चित्त के विष को चुरा रहा श्रीराम का माधुर्य कितना अपूर्व है? मेरे मन को सरलता प्रदान कर रहा मेघवर्णी श्रीराम का सौन्दर्य कितना अद्भुत है? अरे!

स्वभाव से पापी मैं कुम्भकर्ण प्रभु श्रीराम को देखता हुआ सुखी हो गया। मेरे चित्त को तरल बना रहा, काम विजेता भगवान राम का कितना अद्‌भुत सौन्दर्य है? प्रभु का रूप देखते हुए मेरे मन को तृप्ति नहीं हो रही है। मेरे चित्त की चञ्चलता को दूर करता हुआ। सुखधाम श्रीराम का सौन्दर्य कितना अपूर्व है? अरे! यह ब्रह्मा की कल्पना नहीं है। अहो लक्ष्मण के भ्राता श्रीराम की यह अपनी सृष्टि है। मेरे क्रूर चपलता को नष्ट करता हुआ रघुकुल को रमाने वाले प्रभु राम का सौन्दर्य कितना अद्‌भुत है? अहो! प्रभु का स्नेह और कारुण्य कितना विचित्र है? प्रभु के शरीर की पवित्रता कितनी विचित्र है और **गिरिधर** कवि के मन के कष्ट को दूर करता हुआ श्रीराम का सौन्दर्य कितना प्यारा है।

गीत संख्या-४

इमं प्रकटय्य रघुचन्द्रं निशल्या भाति कौसल्या।
इमं निकटय्य प्रभुचन्द्रं विशल्या भाति कौसल्या।।
असितनीरजघनश्यामं विभाव्रीडितविविधकामम्।
इमं प्रकटय्य श्रीचन्द्रं निशल्या भाति कौसल्या।।१।।
नखादाशिखं निरवद्यं स्मरणविनिहतजनावद्यम्।
इमं प्रकटय्य हरिचन्द्रं निशल्या भाति कौसल्या।।२।।
अहो रामस्य सौन्दर्यं रणेऽपि त्यजति नो धैर्यम्।
इमं प्रकटय्य सुरचन्द्रं निशल्या भाति कौसल्या।।३।।
अहो रामस्य कारुण्यं अहो रामस्य तारुण्यम्।
इमं प्रकटय्य नरचन्द्रं निशल्या भाति कौसल्या।।४।।
प्रणतजनतामनोरामं सुकविगिरिधरदृगभिरामम्।
इमं प्रकटय्य भूचन्द्रं निशल्या भाति कौशल्या।।५।।

भौमी– रघुकुल के चन्द्रमा श्रीराम को प्रकट करके संसार की पीड़ा से रहित कौसल्या बहुत सुन्दर लग रही हैं और प्रभुओं को भी आह्लादित करने वाले उन श्रीराम को हमारे निकट करके कौसल्या की दुःख से रहित प्रतीत हो रही हैं। नीले कमल और मेघ के समान श्यामल अपनी कान्ति से करोड़ों कामों को लज्जित करने वाले श्रीजी को भी आह्लादित करने वाले इन श्रीराम को प्रकट करके भगवती कौसल्या सांसारिक पीड़ा से रहित होकर सुशोभित हो रही हैं। नख से शिखापर्यन्त पापरहित स्मरणमात्र से भक्तों का पाप नष्ट करने वाले इन हरि अर्थात् सूर्य-चन्द्र-अग्नि-वायु-यम इन्द्र किं बहुना विष्णु को भी आह्लादित करने वाले, इन श्रीराम को प्रकट करके, सभी पीड़ा दूर करके कौसल्या जी सुशोभित हो रही हैं। अहो! अद्‌भुत है, श्रीराम का सौन्दर्य युद्ध में भी जो अपना धैर्य नहीं छोड़ रहे हैं। इन्हीं देवताओं को आह्लादित करने वाले प्रभु को प्रकट करके सभी दुःखों से रहित कौसल्या सुशोभित हो रही हैं। अद्‌भुत है श्रीराम की करुणा और अनुपम है श्रीराम की युवावस्था। मनुष्यों को आह्लादित करने वाले इन श्रीराम को प्रकट करके सभी मन पीड़ाओं से रहित कौसल्या सुशोभित हो रही हैं। शरणागतजनों के मन को आनन्द देने वाले और कवि श्रेष्ठ **गिरिधर** के नेत्रों को सुखी करने वाले इन पृथ्वी के आह्लादक श्रीराम को प्रकट करके तीनों तापों से रहित कौसल्या सुशोभित हो रही हैं।

गीत संख्या-५

कुम्भकर्णो ब्रह्माणं प्रति-

कथमनेन युद्धेय विधातः।।
निष्ठुरं हि संयोगं दत्त्वा किमु त्वं शठो न जातः।
वनगमनं सीताहरणं किं भवता कृत उत्पातः।।१।।
भरतमातृमन्थरामती संप्रेर्य कृतोऽस्ति कुघातः।
मन्ये कमलदलं विद्धं हा विधे पविशलाकातः।।२।।
यं दृष्ट्वा सङ्कुचति रविः शिशिरति खरकिरणव्रातः।
तस्मिन् मया कथं क्रियतां गिरिपादपमुष्टिनिपातः।।३।।
किं करवाणि विसङ्कटसङ्कटमहं साम्प्रतं यातः।
गिरिधरहृद्गहने लीयस्व सपदि हे भरतभ्रातः।।४।।

भौमी–हे विधाता! मैं इन श्रीराम से कैसे युद्ध करूँ? यह निष्ठुर संयोग देकर विधाता क्या तुम निष्ठुर नहीं बन गए हो? अरे! इनका वनगमन सीताजी का हरण तुमने क्या यह उत्पात नहीं किया? अरे विधाता! तुमने ही तो सरस्वती द्वारा भरत की माता कैकेयी और मन्थरा की बुद्धि को भ्रष्ट कराकर कुघात किया। मुझे तो लगता है कि तुमने वज्र की सलाई से कमलदल को वेध दिया। अरे! जिन्हें देखकर सूर्यनारायण भी संकुचित होकर अपने कठोर किरणों के समूह को शीतल कर देते हैं। अरे विधाता! उन्हीं उत्पन्न कोमल प्रभु पर मैं पर्वत गुहा और मुष्टिका का प्रहार कैसे करूँगा? मैं कुम्भकर्ण क्या करूँ? इस समय बहुत बड़े संकट में पड़ गया हूँ। अतः हे भरत के बड़े भैया! अब तो आप **गिरिधर** कवि के हृदय वन में ही छिप जाइए।

गीत संख्या-६

भवतु क्रियतां रणकर्म कठोरम्।
सङ्कोचं त्यक्त्वा विधीयतां हरिणा युद्धं घोरम्।।
आयुधपातं समभिनयन् हरिगात्रं नो व्रणयिष्ये।
दर्शं दर्शं प्रभुमुखकमलं रणक्षणं क्षणयिष्ये।।१।।
कोटिकोटिकपिवीरऋक्षकान् प्रसभं मुखे भरिष्ये।
संह्लादयन् समररसिकान् रणकौशलमहं करिष्ये।।२।।
त्यक्ष्याम्यशून्योधयन् रामं सुरदुष्कररणयागे।
तरिष्यामि नूनं गिरिधरप्रभुः सायकपुण्यप्रयागे।।३।।
करिष्यते रामेण मया सह सुरभीषणरणलीला।
तरिष्यते भवसागरमनया जनमण्डली सुशीला।।४।।

भौमी–अब मेरे द्वारा कठोर रणकर्म किया जाय। अब संकोच छोड़कर श्रीहरि के साथ मैं घोर युद्ध करूँ। मैं शस्त्र के प्रहार का नाटक करता हुआ प्रभु के शरीर को घायल नहीं करूँगा। श्रीहरि का मुखकमल निहार–

निहार कर युद्ध के क्षणों को उत्सव में परिवर्तित कर लूँगा। करोड़ो-करोड़ों वीर वानर और भालुओं को मुख में भर लूँगा। युद्ध के रसिकों को आह्लादित करता हुआ मैं युद्ध का कौशल करूँगा। देवों द्वारा भी न किए जा सकने वाले इस युद्ध-यज्ञ में श्रीरामजी को लड़ाता हुआ मैं अपने प्राणों को छोड़ दूँगा और निश्चित ही मैं **गिरिधर** कवि के प्रभु श्रीराम के बाणरूप पवित्र प्रयाग में तर जाऊँगा। श्रीराम मेरे साथ देव-दुर्लभ युद्ध-लीला करेंगे और सुशील भक्त मण्डली इसे गा-गाकर भव सागर से तर जायेगी।

गीत संख्या-७

कविर्गायति-

राजति लङ्कारणभुवि रामः।
निखिललोकलावण्यलालितो विभाविनिन्दितशतशतकामः।।१।।
अरुणचरणराजीवपीतवल्कलकटिमण्डितरुचिरनिषङ्गः।
करतलकलितरुचिरशरचापो विलसितयौवनतरलतरङ्गः।।२।।
श्रीवत्साङ्कितितुलसिमालिकामण्डितकलकपाटवरवक्षाः।
सिंहस्कन्धो मांसलपरिघसमानबाहुवरमर्दितरक्षाः।।३।।
कम्बुग्रीवो जीवितजीवो भूषणमयकपोतकलकण्ठः।
बिम्बाधरो विमलविधुवदनो मधुरमूर्तिमोहितशितकण्ठः।।४।।
मसृणकपोलः कुण्डललोलः कीरनासिको नीरजनयनः।
गिरिधरप्रभुः सकलसौन्दर्यः सीताहृदयकमलकृतशयनः।।५।।

भौमी- अब कवि स्वयं गा रहे हैं-सम्पूर्ण लोकों की सुन्दरता से पालित अपनी कान्ति से कोटि-कोटि कामों को लज्जित करने वाले भगवान राम लंका के समरांगण में सुशोभित हो रहे है। प्रभु के कमल के समान श्रीचरण हैं तथा उनके कटि तट पर पीला वल्कल और सुन्दर तरकस है। हाथ में अत्यन्त प्यारे धनुष-बाण और प्रभु में युवावस्था की तरल तरंगें भी शोभित हो रही हैं। श्रीवत्सलाञ्छन से चिन्हित और तुलसी माला से सुशोभित किवाड़ के समान चौड़ा वक्षस्थल तथा सिंह के जैसा स्कन्ध एवं प्रभु ने स्थूल तथा परिघ के समान बाहु से राक्षसों का मर्दन किया है। शंख के समान प्रभु का गला और जीवों को भी जीवन देने वाले प्रभु राम का आभूषणों से सुशोभित कबूतर के गले के समान कंठ, बिम्बजल के समान अधर, निर्मल चन्द्रमा के समान मुख है और श्रीराघव अपनी मधुर मूर्ति से शिव जी को भी मोहित कर रहे हैं। प्रभु का कपोल बहुत चिकना और उनके कुंडल चंचल हैं। उनकी तोता के चोंच के समान नासिका और कमल के समान नेत्र हैं। इस प्रकार संपूर्ण सौंदर्यमय सीताजी के हृदय-कमल में शयन करने वाले **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम लंका के समरांगण में विराजमान हैं।

गीत संख्या-८

नारदो गायति-

रणाङ्गणे राघवो विजयते।।
निहतकुम्भकर्णो धृतकरणो मनुवरणो मानवो विजयते।।१।।

वानरभल्लुवरूथवल्गितो दलितदृप्तदानवो विजयते।।२।।
रुधिरकणाङ्कितनीलशरीरो ललितहस्तलाघवो विजयते।।३।।
अरुणपक्षिपक्षिततमाल इव रणधीरोऽलाघवो विजयते।।४।।
कोदण्डाश्रितशरंसंस्पृशन् रिपुवारिधिवाडवो विजयते।।५।।
गिरिधरगीतयशा नारदसर्वस्वं करुणार्णवो विजयते।।६।।

भौमी- अब प्रभु को देखकर नारद जी गा रहे हैं–रणांगण में श्रीराम राघव विजयी हो रहे हैं। कुंभकर्ण को मारकर स्वस्थ इन्द्रियों वाले मंत्रों के वरणीय मनुवंश में प्रकट श्रीराम विजयी हो रहे हैं। वानरों, भालुओं की गर्जना से सुशोभित अहंकारी दानव कुंभकर्ण का वध करने वाले प्रभु श्रीराम विजयी हो रहे हैं। प्रभु का नीलवर्णी शरीर कुम्भकर्ण के खून के छीटों से भर गया है। ऐसे लालित्यपूर्ण हस्तलाघव वाले श्रीराम विजयी हो रहे हैं। लाल चिड़ियों से सुशोभित तमाल वृक्ष के समान सांसारिक लघुता से रहित रणधीर श्रीराम विजयी हो रहे हैं। धनुष पर चढ़े हुए बाण का स्पर्श करते हुए रिपुरूप सागर के वाडवानल श्रीराम विजयी हो रहे हैं। **गिरिधर** कवि के द्वारा जिनका यश गाया गया है ऐसे मुझ नारद के सर्वस्व करुणा के महासागर श्रीराम लंका के रणांगण में विजयी हो रहे हैं।

गीत संख्या-९

संङ्ग्राममूर्धनि धन्विनो रामस्य जितकामच्छविः।
रणरङ्गसीम्नि मनस्विनो रामस्य सुखधामच्छविः।।
नवनीलनीरजजलदमरकतमञ्जुसौभगशालिनः ।
श्रीवत्सलाञ्छनहृल्लसत्तुलसीमनोहरमालिनः ।।
संयुगसुयोगमहस्विनः रामस्य जनरामच्छविः।।१।।
प्रत्यूषशिशुदिनकरविभानिन्दकसुवल्कलवाससः ।
सौमित्रिसद्ध्रीचो विभो रणरौद्रजितदिग्वाससः।।
रविवंशहंससरस्विनः रामस्य चिद्रामच्छविः।।२।।
वरवीररसपावनपयोनिधिचारुचन्द्रमसो हरेः।
पौलस्त्यकुलनाशव्यशनशरसालिसद्धनुषो हरेः।।
रणकर्कशस्य तरस्विनो रामस्य सद्रामच्छविः।।३।।
विबुधावतंसशुभांशवीरमहाबलीमुखशोभिनः ।
योगीन्द्रमुनिगणपरमहंसमहात्ममण्डललोभिनः ।।
गिरिधरगिरीड्ययशस्विनः रामस्यदृग्रामच्छविः।।४।।

भौमी- इस संग्राम के शिखर पर धनुर्धारी श्रीराम की काम–विजयिनी छवि अद्भुत है। युद्ध रङ्गभूमि की सीमा में मनस्वी श्रीराम की छवि सुख की धाम बन गई है। नवीन नीलकमल मेघ और मरकत मणि की मधुर शोभा से युक्त और श्रीवत्सलांछन हृदय में विराजित तुलसी की सुन्दर माला धारण किये हुए। ऐसे युद्ध के

सुयोग के तेज से युक्त श्रीराम की छवि भक्तों को रमा रही है। प्रातःकालीन सूर्य की शोभा को निन्दित करने वाला बल्कल-वस्त्र धारण किये हुए और लक्ष्मण ही जिनके सहचर हैं, ऐसे सर्वव्यापक और रणयुद्ध के रौद्र कर्म से दिगम्बर शिव को भी जीतने वाले श्रीराम की अद्‌भुत छवि है। ऐसे सूर्यवंश रूप हंस मानससर में विहार करने वाले श्रीराम की छवि चेतनों को रमा रही है। श्रेष्ठ वीर रसरूप क्षीरसागर के पूर्ण चन्द्रमा श्रीहरि और पौलस्त्य रावण के वंश नाश के व्यसन से युक्त सुन्दर बाण और श्रेष्ठ धनुष से युक्त महाविष्णु युद्ध में कठोर और वेगशाली श्रीराम की छवि सन्तों को रमा रही है। श्रेष्ठ देवताओं के सुन्दर अंशरूप महापराक्रमी वानरों से सुशोभित श्रेष्ठयोगी मुनिजन परमहंस और महात्माओं के मण्डल लुभाने वाले और **गिरिधर** कवि द्वारा गाए हुए सुन्दर यश वाले श्रीराम की छवि नेत्रों को आनन्द दे रही है।

सन्दर्भश्लोकौ

हते कुम्भकर्णे रणे राघवेण प्रवीरेण बालिद्विषा रावणिर्वै।
विशिष्टात्ममायो महाभीमकायो नगं नागपाशेन रामं बबन्ध।।१।।
रामे निबध्ये ननु नागपाशैः सुग्रीवमुख्ये भयविह्वले च।
देवर्षिणा प्रेषित एत्य देवं सलब्धसेवो गरुडो जगाद।।२।।

भौमी- परमवीर राघवजी द्वारा कुम्भकर्ण का वध किए जाने पर रावण पुत्र मेघनाद जो कि विशिष्ट योगमाया सम्पन्न और भयंकर शरीर वाला था, ने तमाल वृक्ष स्वरूप श्रीराम को नागपाश में बाँध लिया। मेघनाद द्वारा श्रीराम के नागपाश में बद्ध हो जाने पर तथा सुग्रीव आदि वानर वीरों के भय से विह्वल हो जाने पर देवर्षि नारदजी के द्वारा भेजे हुए गरुड़ देव श्रीराम के पास आकर इस प्रकार बोले।

गीत संख्या-१०

अद्य रामरुद्रो दरीदृश्यते।।
कलितरौद्ररसके सङ्ग्रामे रौद्रो भवन् हि सुभटाऽभिरामे।
निहतविनतजनदारुणकामः कश्चित् परामृश्यते।।१।।
पावकशरहतभसितिमण्डितो कपिनन्दीरणकर्मपण्डितः।
प्रवीरकाचण्डिकाचण्डितो धर्मवृषभो वृश्यते।।२।।
नागपाशमयनागभूषणो नाकभूषणोऽनाकभूषणो।
विमलभक्तिगङ्गाविभूषणो रिपून् न वै मृश्यते।।३।।
सीतानुजहनुमत्त्रिलोचनो जनत्रिशूलधृग् भीतिमोचनो।
सुवात्सल्यशिशुशशिविरोचनो गिरिधरगिरास्पृश्यते।।४।।

भौमी- आज भगवान राम रुद्ररूप में दर्शन दे रहे हैं, रौद्ररस से पूर्ण वीरों को आनन्द देने वाले, रौद्र रस से युक्त, इस संग्राम में भक्तों की दारुण वासना को समाप्त करने वाले एक अपूर्व लीला सम्पन्न प्रभु विचार के विषय बन रहे हैं। आग्नेय बाण से उत्पन्न राक्षसों के जले शरीर के भस्म से सुशोभित और वानर वर श्रीहनुमान ही जिनके नन्दी हैं ऐसे युद्ध में विशारद और वीररस की भावना रूप चण्डिका से उत्साहित और धर्मरूप नन्दी

बैल पर सवार शिव स्वरूप प्रभु दर्शन दे रहे हैं। नाग पाशरूप नागों के आभूषण बनाने वाले नाकभूषण अर्थात् स्वर्ग के आभूषण स्वरूप, न अक भूषण अर्थात् दु:ख को नष्ट करने वाले विमलभक्तिरूप गंगाजी को आभूषण बनाने वाले श्रीरामरुद्र शत्रुओं को नहीं सहन कर रहे हैं। सीताजी, लक्ष्मणजी और हनुमानजी तीन नेत्रों से और भक्तों के तापरूप त्रिशूल को धारण करने वाले वात्सल्यरूप बाल चन्द्रमा से सुशोभित श्रीरामरूप **गिरिधर** कवि के वाणी के भी गेय बन रहे हैं।

गीत संख्या-११

लक्ष्मणो मेघनादवधप्रतिज्ञां कुर्वन् श्रीरामं प्रति-

यदि च घननादं रणे नैव हन्याम्।।
तदा नहि स्यां रामसेवकः प्रभुपदपरिकरभावं विहन्याम्।।१।।
न स्यां तदा वसिष्ठविधेयो यदि रणभुवि नैर्ऋतं न हन्याम्।।२।।
यदि धूलिसात् खलं युद्धे नैव कुर्यां तदा निजवंशप्रभावं प्रणिहन्याम्।।३।।
शतशङ्करसहायमपि नीचं यदि समाहूय रणभूमौ न हन्याम्।।४।।
गिरिधरेशकृपापात्रं तदा न भवेयं निजविद्याव्यसनानुभावमभिहन्याम्।।५।।

भौमी- मेघनाद के वध की प्रतिज्ञा करके लक्ष्मणजी भगवान राम से कह रहे हैं-यदि मैं मेघनाद को युद्ध में न मार पाऊँ तो श्रीराम का सेवक भी न कहलाऊँ और आपके श्रीचरणों के सेवकभाव को भी समाप्त कर दूँ। यदि मैं युद्धभूमि में राक्षस मेघनाद का वध न कर लूँ तो मैं वसिष्ठजी का शिष्य भी न कहलाऊँ। यदि युद्ध में इस खल को मैं धूलिसात् न कर लूँ तो अपने वंश के प्रभाव को भी नष्ट कर लूँ। सैकड़ों शिव के सहायक होने पर भी यदि नीच मेघनाद को मैं ललकार कर न मार डालूँ तो मैं **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम का कृपापात्र न बनूँ और अपने शस्त्र विद्या के व्यसन का अनुभव भी समाप्त कर दूँ।

विशेष-यह गीत दादरा में निबद्ध है।

सन्दर्भश्लोकः

निहतं युधि वीक्ष्य शात्रवं फणिपेनेन्द्रजितं महाबलम्।
त्रिदशा ववृषुः प्रसूनकै रघुवीरस्य जगुर्यशोऽमलम्।।१।।

भौमी- युद्ध में लक्ष्मणजी द्वारा अपने शत्रु महाबली इन्द्रजीत को मारा गया देखकर देवता पुष्पों की वर्षा करने लगे और श्रीराम का निर्मल यश गाने लगे।

गीत संख्या-१२

जयसि रणभुवि ललितलक्ष्मण।
रामचन्द्रप्रतापपालित विमलसेवाफलित लक्ष्मण।।१।।
चारुचम्पककनकसौभग विपुलभुजबलभग्नदुर्भग।
चरितचर्चितचकितजगदग सुजनकरुणाकलित लक्ष्मण।।२।।

जानकीवात्सल्यभाजन विशदरामकथासभाजन।
कोसलेश्वरश्यामनवघनचतुरचातकचलित लक्ष्मण।।३।।
रामसेवाव्रतविलक्षण रणकलाकौशलविचक्षण।
रामभक्तिसुभव्यलक्षण हरियशःसङ्कलित लक्ष्मण।।४।।
शुचि सुमित्रातनय सुन्दर दशरथात्मज निहतनिशिचर।
उर्मिलावर सुखितगिरिधर प्रभुचरितसंवलित लक्ष्मण।।५।।

भौमी- इस युद्धभूमि में ललित लक्ष्मण कुमार आप विजयी हो रहे हैं, श्रीराम के प्रताप से पालित विमलयश से युक्त कुमार लक्ष्मण आप विजयी हो रहे हैं। हे चम्पा और स्वर्ण के समान शोभा वाले! अपनी अपरिमित भुजबल से दुष्टों का दमन करने वाले, अपने दिव्यचरित से जड़-चेतन को चकित करने वाले, सुजनों पर करुणा करने वाले, लक्ष्मण कुमार आपकी जय हो रही है। हे सीताजी के वात्सल्य भाजन, हे निर्मल रामकथा के सम्मान कर्ता श्रीराम रूप श्यामघन के चञ्चल और चतुर चातक लक्ष्मण! आपकी विजय हो रही है। विलक्षण रामसेवा-व्रत वाले युद्धकला कौशल में निपुण, श्रीरामभक्ति के लक्षणों से युक्त रघुनाथ यश के संकलन रूप लक्ष्मण! आप विजयी हो रहे हैं। हे पवित्र सुन्दर सुमित्रापुत्र दशरथ जी के तृतीय तनय! राक्षसों का वध करने वाले उर्मिलापति! **गिरिधर** कवि को सुखी करने वाले श्रीराम के चरित्रमय लक्ष्मण युद्धभूमि में आपकी जय हो रही है।

गीत संख्या-१३

श्रीरामो लक्ष्मणं प्रति-

युगं युगं जीव लक्ष्मणलाल।
रणनिहतघननाद विगतविषादनिर्जरजाल।।१।।
ब्रह्मचर्यव्रतनिरत रणचण्डकालकराल।
प्रलयवह्निज्वालयार्चित वदनदुर्जनकाल।।२।।
त्यक्तपुरपरिजनसदनसुखपरमपत्नीबाल ।
आचतुर्दशवर्षमिह सूज्झितविषयसुखमाल।।३।।
इन्द्रजिदरे स्निग्धसीताकृपावापिमराल।
चिरञ्जीव सुखेन गिरिधरगिराहंसिमृणाल।।४।।

भौमी- श्रीराम लक्ष्मण के प्रति कहते हैं-हे लक्ष्मण लाल! तुम जुग-जुग जीते रहो। हे ब्रह्मचर्य व्रत में तत्पर, युद्ध में भयंकर काल के भी काल और प्रलयकालीन अग्निज्वाला से युक्त मुखमण्डल, दुर्जनों के लिए कालस्वरूप लक्ष्मण! तुम युग-युग तक जियो। नगर, परिजन, सुख, भवन एवं श्रेष्ठ युवती-पत्नी का भी त्याग करके चौदह वर्षपर्यन्तपूर्णरूप से विषयों का त्याग करके कठिन व्रत निभाने वाले लक्ष्मण! तुम युग-युग तक जियो। अरे! इन्द्रजित मेघनाद के शत्रु एवं सीताजी के वात्सल्यमय स्नेह वाटिका के हंस और **गिरिधर** कवि की वाणीरूप हंसिनी के विहार स्थल कमलदण्डस्वरूप लक्ष्मण! तुम सुखपूर्वक अनादिकाल तक जीते रहो।

विशेष- यह गीत रूपक ताल में निबद्ध है।

गीत संख्या-१४

विभीषणो रामं प्रति-

प्रभो रिपुं कथं जेष्यसि रणे।।
वीक्ष्य रथिनं रावणं रामं विरथमत्र क्षणे।
मानसे सन्दिहे दीनो दयानिधौ विलक्षणे।।१।।
प्रेक्ष्य प्रभो पुलस्त्यपौत्रं रथस्थं समराङ्गणे।
भवन्तं च विना पदत्राणं शिरस्त्रं सक्षणे।।२।।
विदन्त्वां वीराग्रणीं सन्तिष्ठमानं लक्ष्मणे।
तदपि नाथ विभेमि भीतं प्रेक्ष्य कपिवलमुल्बणे।।३।।
पाहि पार्थिवपार्थिवीवर सतर्को भव कर्मणे।
रामरणकर्कशघटय गिरिधरं सेवाशर्मणे।।४।।

भौमी- अब विभीषण श्रीराम के प्रति कहते हैं–हे प्रभो! युद्ध में आप शत्रु को कैसे जीतेंगे? इस समय रावण को रथी और आप श्रीराम को विरथ देखकर मैं विलक्षण होने पर भी आपश्री दयानिधान में संदेह करने लगा हूँ। हे प्रभो! इस उत्सवपूर्ण युद्धस्थल में पुलस्त्य पौत्र रावण को रथस्थ देखकर और आपको पनहीं और शिर के टोपे के बिना देखकर मेरे मन में संदेह स्वाभाविक है। आपको लक्ष्मण पर भरोसा करते हुये यद्यपि मैं वीर शिरोमणि जानता हूँ फिर भी इस भयंकर युद्ध में वानरदल को भयभीत देखकर मैं भी डर रहा हूँ। हे महाराज! हे पृथ्वीपुत्री के पति! रक्षा कीजिये। इस युद्ध कर्म के लिए सतर्क हो जाइये। हे रण में कठोर श्रीराम! **गिरिधर** कवि को भी अपनी सेवा सुख के लिये उपयुक्त मान लीजिए।

गीत संख्या-१५

श्रीरामः विभीषणं प्रति-

विभीषण सखे मा स्म भैषीः कदाचित्।
विभूषणसखे मा स्म क्षैषीः कदाचित्।।
अयोध्यातो मया धर्मरथः समानीतः।
ततो वैरिगणो जातो मत्तो भीतभीतः।।
स्वधैर्यं सखे मा स्म नैषीः कदाचित्।।१।।
शीलं सुपताका सत्यमेव चास्य केतुः।
शौर्यं धैर्यं चक्रवान् रथो मे विजयहेतुः।।
स्वचित्तमसुखे मा स्म रासीः कदाचित्।।२।।
बलं विवेको दमः परोपकारो घोटकाः।
क्षमाकृपा समतासक्ताः पापमोटकाः।।

सन्देहसम्मुखे मा स्म यासीः कदाचित्।।३।।
ईश्वरभजननामचतुरचारुसूतः ।
विरतिचर्मसुसुतोषखड्गधारापूतः ।।
चरणं दुर्मुखे मा स्म दासीः कदाचित्।।४।।
विमलस्वान्ततूणो यमनियमशिलीमुखः।
गिरिधरेशगुरुपूजाकवचः सतां सुखः।।
भजनविमुखे मा स्म भाषीः कदाचित्।।५।।

भौमी- श्रीराम विभीषण के प्रति कहते हैं–हे मित्र विभीषण! कभी मत डरो। हे मुझ विभु के पास ऊषण अर्थात् निवास करने वाले मित्र! क्षीण मत हो। अयोध्या से मेरे द्वारा धर्मरथ लाया गया है। इसलिये शत्रुगण मुझसे बहुत डर गये हैं। हे मित्र! कभी अपना धैर्य मत छोड़ना। इस रथ का सत्य ही ध्वज और शील ही पताका है। शौर्य और धैर्य यही दो इसके चक्के हैं। अतः यही रथ मेरे विजय का कारण है। तुम अपने चित्त को दुःख में मत लगाओ। बल, विवेक, दम और परोपकार ये चारों घोड़े क्षमा, कृपा और समता रूप रस्सियों से बँधे हैं, ये पाप राशि के नासक हैं। अतः मित्र! कभी भी संदेह के सम्मुख मत जाओ। ईश्वर का भजन ही यहाँ चतुर सारथी है, जो वैराग्यरूप ढाल और संतोषरूप तलवार से पवित्र है। इसलिए इस दुर्मुख अर्थात् दुःखद परिणाम वाले संशय के विषय में अपना चरण मत रखो। हे विभीषण! उस धर्म रथ का निर्मल मन ही तरकस है और संयम, नियम, बाण तथा **गिरिधर** कवि के प्रभु मुझ राम एवं गुरुदेव की पूजा ही इसका कवच है। अतः भजन विमुख के समक्ष कभी मत उपस्थित होवो।

विशेष- यह गीत दादरा ताल में निबद्ध है।

गीत संख्या-१६

देवाः प्रार्थयन्ते-

जहि रावणं हरे सङ्ग्रामे।।
मा दयस्व दयितावमानिनः प्रजहि प्रजहि विवशमिह कामे।
अलं लम्ब्य समालम्ब्य पौरुषं घटय बलं विदलितविश्रामे।।१।।
अलमुपेक्ष्य जयिनं विजयीन् जहि शत्रुं रणे कुपुरुषश्रामे।
छिन्धि शिरश्श्रेणीः शितवाणैर्दशवदनस्य कातरक्षामे।।२।।
सीता सीदति सदाधिलङ्कं बल्गाति वैरिणि भीमभ्रामे।
किमुपेक्ष्यसे रुदन्तीं जायां सङ्कटगहने कुणपक्रामे।।३।
घटय पौरुषं हे पुरुषोत्तम पुरुषाधमे क्षपाटललामे।
गायतु गीतं मुदा गिरिधरः सम्प्रति मङ्गलमयपरिणामे।।४।।

भौमी- अब देवता भगवान श्रीराम से प्रार्थना करते हैं। हे श्रीहरे! संग्राम में रावण का वध कीजिये। हे प्रभो! आपकी पत्नी श्रीसीता का अपमान करने वाले इस रावण पर दया मत कीजिए। काम विवश रावण को

मार डालिये–मार डालिये। हे प्रभो! विलंब मत कीजिये। पौरुष का अवलम्बन करके संसार का विश्राम हरने वाले इस रावण पर बल का प्रयोग कीजिये। हे विजयशील! रावण की उपेक्षा मत कीजिये। इस जगत के विजेता शत्रु को युद्ध में मार डालिए, इस पृथ्वी के पुरुषों को थका देने वाले कायर और दुर्बल रावण सम्बन्धी सिरों के समूहों को नुकीले बाणों से काट डालिये। भयंकर भ्रम से पूर्ण शत्रु रावण के गरजते समय सदैव लंका में रहने वाली सीताजी दुःखी हो रही हैं। अरे! राक्षसों के पद संचार से पूर्ण संकट के वन में बैठकर रोती हुई अपनी धर्मपत्नी सीताजी की आप क्यों उपेक्षा कर रहे हैं? हे पुरुषोत्तम! इस अधम पुरुष राक्षसराज रावण पर अपने पौरुष का प्रयोग कीजिये और मंगलमय परिणाम के प्राप्त होने पर अर्थात् रावण वध हो जाने पर **गिरिधर** कवि भी प्रसन्नतापूर्वक गीत गायें।

विशेष– यह गीत राग मारु एवं तीन ताल में बद्ध है।

गीत संख्या–१७

त्रिजटा सीतां प्रति–

रामो रावणं रणे जेष्यति हे सीते त्यज शोकम्।
श्यामः श्रावणं क्षणे नेष्यति हे सीते त्यज शोकम्।।१।।
वामनेत्रभुजं चापि संस्फुरति तावकम्।
मङ्गलं च शंशतीव शुभमङ्गं मामकम्।।
रामो विरहवेदनां विनश्यति हे सीते त्यज शोकम्।।२।।
पश्य शत्रुसेना नैव भाति हतनायका।
भूमौ विलुण्ठति विलग्नरामशायका।।
रामः शीघ्रं भवत्या समेस्यति हे सीते त्यज शोकम्।।३।।
हतः कुम्भकर्णो मेघनादोऽपि निपातितः।
वैनतेयेनापि नागपाशः प्रभोः सातितः।।
रामः सर्वमङ्गलं प्रणेष्यति हे सीते त्यज शोकम्।।४।।
सुखं समाश्वसिहि दृढं विश्वसिहि भामे।
स्वस्ति तुभ्यं गिरिधरगीतसीताभिरामे।।
रामः पुनः प्रियामनुनेष्यति हे सीते त्यज शोकम्।।५।।

भौमी– अब त्रिजटा सीताजी के प्रति कहती हैं–हे सीताजी! युद्ध में श्रीराम रावण को जीत लेंगे। आप शोक छोड़ दीजिए। श्यामवर्ण श्रीराम क्षणभर में सावन का दृश्य उपस्थित करेंगे। देखो, तुम्हारी बायीं आँख और भुजा फड़क रही है और मेरे भी शुभ अंग मंगल की सूचनाएँ दे रहे हैं। इसलिये भगवान राम तुम्हारी विरह वेदना को समाप्त करेंगे। सीते! तुम प्रसन्न हो जाओ। सीते! देख रही हो राक्षस वीर सेनापतियों के मारे जाने पर रावण की सेना शोभित नहीं हो रही है। वह श्रीराम जी के बाणों से घायल होकर पृथ्वी पर लोट रही है। श्रीराम शीघ्र ही तुमसे मिल जायेंगे। हे सीते! निश्चिन्त हो जाओ। कुम्भकर्ण मार डाला गया। मेघनाद भी कुमार लक्ष्मण द्वारा प्राणहीन करके गिरा दिया गया और गरुड देव द्वारा प्रभु श्रीराम का नागपाश भी नष्ट कर दिया

गया। श्रीराम सभी के लिये सभी मंगल विधान करेंगे। हे सुन्दर लक्षणों से सम्पन्न श्रेष्ठ महिला सीते! आप सुखपूर्वक आश्वासन प्राप्त करें। **गिरिधर** कवि के द्वारा जिनके लिये गीतसीताभिराम नामक ग्रन्थ गाया गया ऐसी हे सीते! आप सुखपूर्वक आश्वासन प्राप्त करें और विश्वास करें। श्रीराम आपश्री प्रियतमा सीताजी को फिर अनुनय-विनय करके मनायेंगे, आप शोक छोड़ दीजिये।

गीत संख्या-१८

सीता त्रिजटां प्रति-

कियद् दूरं तत्स्वर्णदिनम्।
त्रिजटे यदा निहतरावणमिह वीक्ष्ये समायातं राममिनम्।।१।।
कृतलङ्काविजयः सुखनिलयो वानरसैन्यसमेतः।
आयास्यति एकदा सखि विपिनं हनुमद्दृष्टनिकेतः।।२।।
रावणरक्तसुरञ्जितवपुषं कदा वीक्ष्य रघुचन्द्रम्।
स्नपयिष्ये सुधारया गिरिमिव घनरेखेव सुभद्रम्।।३।।
कदा विजयिनं वीक्ष्य राघवं कृतकार्यं हृष्येयम्।
लङ्कानृपं विभीषणमित्वा सुखिनी स्यां दृश्येयम्।।४।।
कदा पुनर्रघुनाथसमेता कोसलपुरीं व्रजेयम्।।
रामराज्यमुपलभ्य समृद्धं गिरिधरप्रभुं भजेयम्।।५।।

भौमी- अब सीता जी त्रिजटा से पूछ रही हैं-हे त्रिजटे! वह स्वर्णिम दिन अभी कितनी दूर है? जब रावण को मारकर अपने समीप आये हुये स्वामी श्रीराम को मैं देखूँगी। हे सखी! रावण पर विजय प्राप्त करके वानरी सेना के साथ सुखभवन श्रीराम श्रीहनुमान द्वारा मेरे निवास का संकेत करने पर इस अशोक वाटिका में कब आयेंगे? हे त्रिजटे! रावण के खून के छीटों से रंगे हुये शरीर वाले रघुकुल के चंद्रमा श्रीराम को देखकर मैं जिस प्रकार बादल की रेखापर्वत को जलधारा से नहलाती है उसी प्रकार अपने अश्रुधारा से कब नहलाऊँगी? वह दिन कब होगा, जब विजयी और सभी कार्यों को सम्पन्न किये हुये श्रीराम को देखकर मैं प्रसन्न होऊँगी और विभीषण को लंका का राजा सुनकर श्यामल स्निग्ध नेत्रों से मैं सुख का अनुभव करूँगी? वह दिन कब होगा जब मैं श्रीरघुनाथ जी से मिलकर सकुशल अयोध्या लौटूँगी और समृद्ध रामराज्य को प्राप्त कर **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम का भजन करूँगी?

गीत संख्या-१९

राघवेण रणे भूरियत्नोऽपि क्रियते।
कथय त्रिजटे किं दशाननो न म्रियते।।
बारम्बारं शिरांस्यस्य हरिणा छिद्यन्ते।
तत्क्षणं च रक्षसोऽप्यसंख्यानि विद्यन्ते।।
किमुत महाकालोऽपि रक्षःसमाद्रियते।।१।।

नरीनर्ति रक्तपानपिसुनापि कालिका।
वरीवर्ति चण्डिका दशास्यमुण्डमालिका।।
किं न नीचनैऋतं निऋतिर्निरादृयते।।२।।
पश्य पश्य श्रमबिन्दूनार्यपुत्रभाले।
चन्द्रकरानिन्द्रनीलमणाविव विशाले।।
भरताग्रजेन भुवो भारोऽपि न ह्रियते।।३।।
वल्कली फलाहारी रामो वनवासी।
दिनेश्वरकुलोत्तंसो दीनहृन्निवासी।।
गिरिधरप्रभुर्विना मया कथञ्चित् ध्रियते।।४।।

भौमी- सीता जी ने पुनः पूछा। हे त्रिजटे! श्रीराघव सरकार तो युद्ध में बहुत प्रयत्न कर रहे हैं, फिर भी रावण क्यों नहीं मर रहा है? भगवान श्रीराम रावण के सिरों को बार-बार काट रहे हैं और उसी क्षण राक्षस के असंख्य सिर हो जा रहे हैं। अरे! महाकाल भी इस राक्षस का इतना क्यों आदर कर रहे हैं? अहो! रक्तपान की प्यासी कालिका बार-बार नाच रही हैं। और रावण के सिरों की मुण्डमाला पहने हुये कालिका यहीं रह रही हैं। भला बताओ, मृत्यु इस राक्षस का क्यों नहीं निरादर कर रहा है? देखो त्रिजटे! मरकतमणि के पर्वत पर चंद्रमा की किरणें जैसे आर्यपुत्र राघव सरकार के श्रीमस्तक पर इन श्रम बिन्दुओं को देखो। भरत के बड़े भाई श्रीराघव समस्त राक्षसों का विनाश करके भू-भार क्यों नहीं हर रहे हैं? त्रिजटे! बल्कल धारण करने वाले, फलमात्र भोजन करने वाले वनवासी सूर्यकुल के आभूषण, दीनों के हृदय में निवास करने वाले **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम मेरे बिना किसी प्रकार जीवित रह रहे हैं।

गीत संख्या-२०

त्रिजटा प्राह-

राघवोऽपि रणे सावधानो दरीदृश्यते।
शत्रुमारणे कृतावधानो दरीदृश्यते।।
बाणपरम्परातन्यमाना तनीतन्यते।
भग्नकुकन्धरासन्यमना सनीसन्यते।।
मानयन्ननेहसममनीषी मरीमृश्यते।।१।।
ध्यायतस्सदैव त्वा मनस्विनोऽस्य रक्षसः।
ध्यानपथं त्वमागता त्वन् निगूढवक्षसः।।
वक्षो वञ्चं वञ्चं बाणवर्षं वरीवृश्यते।।२।।
कोटिकोटिकालविकरालविकृताननो ।
नामतो दशाननोऽपीदानीं सहस्राननो।।
भञ्जं भञ्जं तस्य भालं रामो जरीहृष्यते।।३।।

नो दिवा न चैव रात्रौ नो मुहूर्तं न क्षणम्।
विरामं प्रयाति नैव रामरावणं रणम्।।
युद्धलीलां वीक्ष्य गिरिधरात्मा चरीकृष्यते।।४।।

भौमी- अब त्रिजटा उत्तर दे रही हैं–हे सीते! श्रीराम युद्ध में बहुत सावधान दिख रहे हैं और शत्रु का वध करने में भी बहुत ध्यान देते हुए प्रतीत हो रहे हैं। बाण की परम्परा भी अनवरत विस्तृत होती जा रही है और आश्चर्य यह है कि रावण की कन्धराओं को काटती हुई भी यह सनसन शब्द करती हुई सक्रिय होती ही जा रही है और समय का सम्मान करते हुए श्रीराम इतना विचार कर रहे हैं। वस्तुतः आपका निरन्तर ध्यान करते-करते इस राक्षस के ध्यान-पथ पर आप आ गई हैं। चूँकि इसके हृदय में आप छिपी हुई हैं इसीलिए प्रभु इसके हृदय को बचा-बचाकर बाणों की वर्षा कर रहे हैं। रावण करोड़ों-करोड़ों कालों से भी विकराल मुख वाला है। दशानन नाम होकर भी आज यह सहस्रों मुखों वाला है। इसलिए इसके सिरों को काट-काटकर श्रीराम बहुत प्रसन्न हो रहे हैं। वस्तुतः यह राम-रावण युद्ध न दिन न रात, न मुहूर्त, न क्षण कभी भी विश्राम ले ही नहीं रहा है। प्रभु की युद्ध लीला देखकर **गिरिधर** कवि का मन भी आकर्षित होता जा रहा है।

गीत संख्या-२१

सीते शृणु तन्निधनोपायम्।
यमाश्रित्य निमिषेण निहन्यात् प्रभू रिपुं निरुपायम्।।
रणकर्कशो रावणाभिमुखं द्वन्द्वयुद्धमास्थास्यति।
कोटिकोटिविशिखान् प्रहृत्य तद् ध्यानदशामालास्यति।।१।।
छेदं छेदं कुटिलरक्षसः कण्ठाटवीमनिन्द्यः।
भेदं भेदं भीमभुजवनं व्याकुलयन् निरवद्यः।।२।।
भ्रामं भ्रामं मुहुस्त्रिलोक्यां तं स्यन्दनेन धीरः।
श्रामं श्रामं कृतप्रतिक्रियं तं क्लमयन् रघुवीरः।।३।।
दृष्ट्वा ध्यानशून्यमनसं हृदये श्रमसुभगशरीरः।
भेत्स्यति रामो रणे रावणं जिघांसया रणधीरः।।४।।
गिरिधरप्रभुर्मुनीन्द्रसिद्धजेगीयमानगुणगाथः।
मुदा गीतसीताभिराम उपयाता त्वा रघुनाथः।।५।।

भौमी- हे सीते! अब रावण के वध का उपाय सुनिये। जिसका आश्रय लेकर भगवान श्रीराम उपायहीन अपने शत्रु रावण को एक क्षण में मार सकते हैं। रण में कठोर भगवान श्रीराम रावण के सम्मुख द्वन्द्व-युद्ध में स्थित होंगे और करोड़ों- करोड़ों बाणों का प्रहार करके रावण का ध्यान भंग कर देंगे। इस प्रकार कुटिल राक्षस के कण्ठ-वन को काट-काटकर और रावण के भयंकर भुजाओं के जंगल को भिन्न कर-करके निन्दा रहित निष्पाप श्रीराम उसे व्याकुल कर देंगे। युद्ध में धीर, रघुकुल के वीर श्रीराम युद्ध में शस्त्रों की प्रतिक्रिया कर रहे रावण को रथ से तीनों लोकों में दौड़ा-दौड़ा कर उसे थका-थका कर बहुत थका डालेंगे। इन परिश्रमों के कारण रावण को आपके ध्यान से शून्य मन वाला देखकर श्रम-बिन्दुओं से सुन्दर शरीर वाले रणधीर श्रीराम वध करने की इच्छा से रावण को

हृदय में बाण से बेध देंगे। **गिरिधर** कवि के स्वामी मुनीन्द्रों और सिद्धों द्वारा बारम्बार जिनकी गुणगाथा गायी जा रही है, ऐसे रघुकुल के नाथ गीतसीताभिराम श्रीराम प्रसन्नता से आपको प्राप्त कर लेंगे।

गीत संख्या-२२

कविर्गायति-

विचित्रोऽयं द्वैरथसङ्ग्रामः।।
निर्द्वन्दोऽपि हरिर्द्वन्द्वयते रणे रावणं रामः।
निष्पक्षोऽपि भवन् प्रतिपक्षी पक्षिपहृदयललामः।।१।।
लोकश्रमहारी श्राम्यति विश्राम्यति जनविश्रामः।
भक्तसारथी रथी राजते भवभवविभवविरामः।।२।।
जगद्रक्षको निजरक्षार्थं व्यालीढ व्यायामः।
सगुणोऽप्यहो धनुर्गुणकर्तं कल्पितबाणारामः।।३।।
अच्छेद्यश्छिनत्ति दशमुखखरशिरोऽटवीं श्रीरामः।
भवन्नभेद्योऽपि खलकन्धरा भिनत्त्येशघनश्यामः।।४।।
अवधपती रावणवधमिच्छति जयी विजयपरिणामः।
मायासीतां स्मरन् न मायो गिरिधरमनोऽभिरामः।।५।।

भौमी- अब महाकवि स्वयं गा रहे हैं। अहो! यह दो महारथियों के बीच सम्पन्न हो रहा संग्राम बहुत विचित्र है। स्वयं निर्द्वन्द्व अर्थात् द्वन्द्वों से रहित होकर भी श्रीहरि भगवान राम रावण से द्वन्द्व-युद्ध कर रहे हैं। पक्षिराज गरुड के हृदय के रत्न स्वरूप प्रभु निष्पक्ष होकर भी आज रावण के प्रतिपक्षी बन रहे हैं। लोक का श्रम हरने वाले भी आज श्रमित हो रहे हैं। भक्तों को विश्राम देने वाले श्रीराम बीच-बीच में रावण के मूर्च्छित होने पर विश्राम भी कर रहे हैं और संसार की विपत्तियों के विरामस्थान भक्तों का जीवन रथ चलाने वाले श्रीराघव आज रथी बन रहे हैं। संसार के रक्षक होकर भी अपनी सुरक्षा सुनिश्चित करते हुये प्रभु अनेक प्रकार के पैंतरे बदल रहे हैं। स्वयं सगुणब्रह्म होने पर भी अपने बाणों के उद्यान में रावण के अनेक धनुषों के गुणों को काट रहे हैं। स्वयं अच्छेद्य अर्थात् न काटने योग्य होकर भी रावण के सिरों के वन को काट रहे हैं और अभेद्य होते हुये भी मेघवर्णी श्रीराम रावण की कन्धराएँ तोड़ रहे हैं। अहो! मायारहित होकर भी माया की सीताजी का स्मरण करते हुये **गिरिधर** कवि के मन को आनन्द देने वाले विजयशील परिणाम की अपेक्षा करते हुये अयोध्यापति श्रीराम रावणवध की इच्छा कर रहे हैं।

विशेष- पूर्व के दोनों गीतों में परिकरालंकार दृष्टव्य है।

गीत संख्या-२३

रावणः श्रीरामं प्रति-

किं गुणेन माममतिशेषे सत्यं ब्रूहि राम हे तथ्यं ब्रूहि राम हे।
किं बलेन माममतिशेषे सत्यं ब्रूहि राम हे।।

त्वं दण्डकवनवासी मानवनिर्वासितः फलाशी।
अहं कनकपुरवासी दानवरक्षःपतिः पलाशी।।
किं धनेन मामतिशेषे सत्यं ब्रूहि राम हे।।१।।
त्वमसि चतुर्हस्तो मृदुहस्तो गुहाननग्रहकायः।
लङ्कायां लघुरपि ग्रहश्रुतिको महाप्रहरणोपायः।।
किं जनेन मामतिशेषे सत्यं ब्रूहि राम हे।।२।।
तव सीतैका पत्नी अबला सापि मया पुरि नीता।
मम पार्श्वे लक्षाधिकललना रम्भासमाविनीता।।
किं गृहेण मामतिशेषे सत्यं ब्रूहि राम हे।।३।।
त्वं मनुजः पित्रा विवासितो विरही काननचारी।
शिवविधिलब्धवरोऽहं दनुजो लङ्कापुरी विहारी।।
किं वरेण मामतिशेषे सत्यं ब्रूहि राम हे।।४।।
एकं सच्चरित्रमिह राजति नित्यं त्वयि हे राघव।
येन त्रिभुवनं सदाऽतिशेषे गिरिधरेश धृतलाघव।।
चारित्र्येण हि मामतिशेषे सत्यं वच्मि राम हे।।५।।

भौमी- अब रावण भगवान श्रीराम के प्रति कहता है- हे श्रीराम! सत्य बोलें, आप किस गुण से मेरी अपेक्षा श्रेष्ठ हैं? आप किस बल से मुझे दबाते जा रहे हैं? हे राघवेन्द्र! आप दण्डकवनवासी पिता के द्वारा निकाले हुये फलाहारी हैं और मैं सोने के नगर में रहने वाला दानव और राक्षसों का स्वामी तथा मांसाहारी हूँ। आप मुझे किस धन से दबाते जा रहे हैं? आप अत्यंत कोमल हस्तों वाले अपने हाथ के नाप से चार हाथ के और छानबे अंगुल के हैं और लंका में तो जो सबसे, छोटा राक्षस है वह भी उन्चास हाथ का है और अनेक शस्त्रों को चलाने में निपुण है। हे रघुनन्दन राम! आप सत्य बतायें कि आप किस जनबल के आधार पर मुझे दबा रहे हैं? आपके पास सीताजी एकमात्र पत्नी हैं, वे भी मेरे द्वारा चुराकर लंका में ले आयी गयीं और मेरे पास तो रम्भा के समान विनम्र लाखों से भी अधिक पत्नियाँ हैं तो आप किस अन्तःपुर के आधार पर मुझे दबाते जा रहे हैं? अरे! आप मनुष्य हैं उस पर भी आपके पिता ने आपको निकाल दिया है। आप नारी विरही वन में भटकने वाले हैं और मैं रावण शिव और ब्रह्माजी से अनेक वरदान पाने वाला लंकापुरी का विहारी दशानन हूँ। राघव आपके पास कौन-सा इतना बड़ा वरदान है, जिससे आप मुझे दबा रहे हैं? हे राघव! आपके पास एक ही वैशिष्ट्य है जो किसी के पास नहीं है। आपमें एक मात्र सुन्दर चरित्र विराज रहा है जिससे आप तीनों लोकों को जीत रहे हैं। अतः हे हस्तलाघव सम्पन्न श्रीराम! मैं सत्य कह रहा हूँ, यथार्थ कह रहा हूँ कि आप अपने चरित्र से मुझे दबा रहे हैं, दबाते जा रहे हैं और सदैव दबाते रहेंगे। मुझमें सब कुछ है चरित्र नहीं है और आपमें चरित्र है। वह सभी अभावों की पूर्ति करता रहेगा। हे **गिरिधर** कवि के स्वामी! हे चरित्र मूर्ते! आप विजयी हों।

गीत संख्या-२४

देवा गायन्ति-

अनुपमं राघवरावणयुद्धम्।
नो भूतं न भविष्यति भाव्यं विरुद्धमप्यविरुद्धम्।।
गगनमेव गगनाकारं सिन्धुः सिन्धूपम एव।
राघवरावणयोर्युद्धं निरुपमं स्वयं स्वयमेव।।१।।
द्वावपि लोके परं वैरिणौ अन्योन्यार्दितस्वाङ्गौ।
अन्योन्यं हन्तुं कृतोद्यमौ वस्तुतो न बहिरङ्गौ।।२।।
पाताले भुवि नभश्चरन्तौ रणकुशलौ द्वौ वीरौ।
प्रदर्शयन्तौ पुरुषार्थं सङ्ग्रामपण्डितौ धीरौ।।३।।
जेतव्यं राघवः प्राह मर्तव्यं रावण ऊचे।
दिव्यास्त्राणि समं प्रहरन्तौ युयुधाते नीचोच्चे।।४।।
कोटिकल्पकालं यावत् राघवरावणसङ्ग्रामम्।
गातुं नैव क्षमा शारदा कविगिरिधराभिरामम्।।५।।

भौमी- अब देवता गा रहे हैं-यह श्रीराघव और रावण का युद्ध बड़ा ही अनुपम है। ऐसा युद्ध इसके पहले न कभी हुआ और न कभी भविष्य में होगा। यह विरुद्ध होकर भी अविरुद्ध है। अर्थात् देखने में दोनों ही प्रतिद्वन्दी विरुद्ध लग रहे हैं परन्तु अन्तरंग से एक सेव्य है दूसरा सेवक। जैसे आकाश आकाश के ही समान है तथा सागर-सागर जैसा ही है उसी प्रकार श्रीराम रावण-युद्ध श्रीराम रावण युद्ध जैसा ही है। लोक में श्रीराम एवं रावण दोनों ही एक दूसरे के परम शत्रु हैं, एक-दूसरे के अंगों को पीड़ा पहुँचा रहे हैं, एक-दूसरे को मारने को उद्यत हैं, वस्तुतस्तु दोनों ही अन्तरंग हैं। दोनों वीर संग्राम में कुशल और रणधीर हैं। दोनों पाताल, पृथ्वी और आकाश में भ्रमण करते हुये युद्ध कौशल दिखा रहे हैं। श्रीराम कह रहे हैं मुझे जीतना है, रावण कह रहा है मुझे मरना है इस प्रकार जीतने मरने का निश्चय करके ये दोनों एक दूसरे पर दिव्यास्त्रों का प्रहार कर रहे हैं और कभी नीचे, कभी ऊँचे अर्थात् कभी थककर कभी छककर युद्ध कर रहे हैं। इस प्रकार **गिरिधर** कवि को आनन्द देने वाले श्रीराम रावण-संग्राम को सरस्वती जी भी करोड़ों-करोड़ों कल्पों पर्यन्त गाने में समर्थ नहीं हैं।

गीत संख्या-२५

विभीषणः श्रीरामं प्रति-

श्रृणु सर्वज्ञचराचरनायक प्रणतपाल सुरमुनिसुखदायक।
करतलकल्पितकार्मुकसायक भारतभारतभाग्यविधायक।।१।।
नाभावस्य सुधारसकुण्डं जीवति ततो दधत् पाखण्डम् ।।२।।
पावकशरेणैव तं शोषय निहतरावणस्त्रिजगत्पोषय।।३।।

यावद्भाति श्रवणनक्षत्रं तावत् क्षपय निशिचरच्छत्रम् ।।४।।
यावत् कालो नैति प्रदोषः तावद् बध्यो रिपुः सदोषः।।५।।
सदा विजयतां हृतभवभारः जयताद् गिरिधरजीवाधारः।।६।।

भौमी- अब विभीषण श्रीराम के प्रति कहते हैं–हे सर्वज्ञ! हे जड़चेतन के नायक! हे प्रणतों के पालक! हे देवताओं और मुनियों को सुख देने वाले! हे हाथ में धनुष–बाण धारण किये हुये प्रभु! हे ज्ञान में निरत! भारत के भाग्य विधाता राघवेन्द्र प्रभु! सुनिये–इसके (रावण के) नाभि में अमृत रस का कुण्ड है। इसी कारण यह पाखण्डी जी रहा है। अतः आग्नेय बाण से इसे सोख लीजिये और रावण को मारकर त्रिलोक का पालन कीजिये। जब तक श्रवण नक्षत्र वर्तमान है इसी बीच राक्षसों के छत्र का विनाश कर दीजिए। जब तक प्रदोष नहीं आ रहा है तब तक दोष युक्त इस रावण का वध कर दीजिए। भू–भारहारी आपकी सदैव विजय होती रहे और **गिरिधर** कवि के जीव के आधार आप श्रीराम निरन्तर विजयी रहें।

गीत संख्या-२६

गायति कविः-

विभीषणवचो निशम्य कृपालुः।
संप्रहस्य जग्राह कार्मुके चण्डं शरं दयालुः।।
यस्य च वाजेष्वनिलो विलसति फलेषु सूर्यनिशेषौ।
तनुराकाशमयी गुरुतायां मन्दरमञ्जुनगेशौ।।१।।
नित्यं भूतद्रुहां खलानां मज्जास्रिक् च यदशनम्।
रक्षस्त्रीणां भ्रूणश्रावणमतिकठिनं यद्रशनम्।।२।।
सदापूजितं सिद्धनागनरसुरमुनिगन्धर्वाणाम्।
सम्मानितं पूज्यवन् नित्यं हरि विरिञ्चशर्वाणाम्।।३।।
मन्दोदरीभाग्यलुण्ठनमथ निखिलरक्षसां भयदम्।
इक्ष्वाकूणां हर्षवर्धनं सुरमुनिसतामभयदम्।।४।।
शार्ङ्गे तं सन्दधे संयुगे रामः पावकबाणम्।
गिरिधरप्रभुरभिलक्ष्यरावणं धृतवपुरिव निर्वाणम्।।५।।

भौमी- कवि स्वयं गा रहे हैं–विभीषण की वाणी सुनकर कृपालु और दयालु श्रीरामचन्द्र जी ने हँसकर धनुष पर भयंकर बाण रख लिया। जिसके वेग में वायुदेव सुशोभित हैं, जिसके नोंक में सूर्य, चन्द्रमा, विराज रहे हैं, जिसका शरीर आकाशमय है और जिसकी गुरुता में सुमेरु और मन्दराचल हैं, जीवों का द्रोह करने वाले खलों की चर्बी और रक्त ही जिसका भोजन है, जिसका अत्यन्त कठिन झंकार राक्षस–पत्नियों का गर्भस्रावक है, जो सिद्ध नाग, मनुष्य, देवता, मुनि और गन्धर्वों का सदैव पूजनीय है जो ब्रह्मा, विष्णु, शिव के लिये भी सदैव सम्मानित और पूजनीय है। मन्दोदरी के भाग्य को लूटने वाला, सभी राक्षसों को भय देने वाला, इक्ष्वाकु–वंशियों के हर्ष को बढ़ाने वाला और देवता मुनि संतों को अभय देने वाला है। **गिरिधर** कवि के प्रभु श्रीराम ने रावण को लक्ष्य बनाकर शरीरधारी मोक्ष की ही भाँति उसी बाण का शार्ङ्ग पर संधान किया।

गीत संख्या-२७

यदानलशरं सन्दधे रामः।
सन्त्रास तदाखिललोको विस्मृतसुखपरिणामः।।
सन्त्रेसुः प्राणिनश्चुचुक्रुषुर्भीता हाहाकारम्।
प्रलयकाल इव जगद्भयार्तं त्यक्त्वा स्वाहाकारम्।।१।।
वेदमन्त्रपूर्वकमभ्यर्च्य विकृष्य प्रचण्डं चापम्।
आकर्णं विससर्ज वज्रमिव रिपवे प्रबलप्रतापम्।।२।।
महाकालमिव सुदुर्निवारं कोटिहिमाचलसारम्।
चण्डीस्वरमिव प्रलयकारिणं कोटिमहीतलभारम्।।३।।
संविभेद हृदयं दुरात्मनो रावणस्य वरकाण्डः।
भोगावतिपयसास्नातस्तूर्णीं प्राविशत् प्रचण्डः।।४।।
वज्राहत इव गिरी रावणो न्यपतत् भुवि निष्प्राणः।
गिरिधरप्रभुविसिखप्रार्पितमुनिजनदुर्लभनिर्वाणः ।।५।।

भौमी- जब श्रीराम ने आग्नेय-बाण का संधान किया, उसी समय परिणाम में आने वाले सुख को भूलकर सारा संसार त्रस्त हो गया। हा-हाकार करते हुये सभी प्राणी भयभीत हुये और स्वाहाकार भूलकर हा-हाकार करते हुये चिल्लाने लगे। संसार प्रलयकाल की भाँति भयभीत हो गया। वेदमन्त्र से अभिमन्त्रित करके प्रचण्ड-धनुष को कान तक खींचकर अत्यन्त प्रतापमय बाण को शत्रु रावण के लिये वज्र की भाँति छोड़ दिया। महाकाल के समान अत्यन्त दुर्निवार्य, करोड़ों हिमालयों के समान भारी, करोड़ों पृथ्वियों का भार लिये हुये शिवजी के समान प्रलयंकर बाण को भगवान राम ने रावण के लिये छोड़ा। श्रीराम का वह प्रचण्ड बाण ने दुष्टात्मा रावण के हृदय को भेद दिया और भोगावती गंगा के जल में स्नान करके फिर श्रीराम के तरकश में आ गया। उस बाण के प्रहार से वज्रपात से आहत पर्वत की भाँति रावण निष्प्राण होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा और **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम के बाण ने रावण को मुनिजनों के लिये दुर्लभ मोक्ष दे दिया।

गीत संख्या-२८

जय जय रामभुजबलधाम जय श्रीराम मङ्गलधाम।।
जय महितमनुवंशमामय निरामय सुखधाम।
जय शरानलदग्धदशमुखशलभ शोभाधाम।।१।।
जय महेश्वरमनोमानसहंस सद्गुणधाम।
जय भवानीभावभावित भवविभवभवधाम।।२।।
जय भृगूद्वहगर्वहारिन् जय विपुलबलधाम।
जय कमलपदपथितकानन जय भरतमतिधाम।।३।।

जय दनुजभगिनीविरूपण जय महाछविधाम।
जय निहतखरत्रिशिरदूषण कपटमृगगतिधाम।।४।।
जय जटायुःशबरिरञ्जन हनुमदर्चितधाम।
जय सुकण्ठविपत्तिदारण निहतबालिकुधाम।।५।।
जय क्षपितलङ्काकलङ्क मृगाङ्कमुखरुचिधाम।
जय समररसरसिक सीतावरमहोमहधाम।।६।।
जय निशितशरनिहतरावण सकलमङ्गलधाम।
जय निरन्तरसुकविगिरिधरभणितिमतिरतिधाम।।७।।

भौमी- कवि स्वयं स्तुति कर रहे हैं-हे भुजबल के धाम श्रीराम! आपकी जय हो। हे मंगलों के आश्रय श्रीराम! आपकी जय हो। मनुवंश को सुशोभित करने वाले, शोभामय, संसार की आमय अर्थात् रोग से रहित, हे सुख के आश्रय! आपकी जय हो। अपने बाणाग्नि से रावण रूप पतंगे को जलाकर भस्म करने वाले, शोभा के भवन श्रीराम आपकी जय हो। भगवान शंकर के मन मनोरथ मानस के हंस, सद्गुणों के धाम! आपकी जय हो। हे पार्वती जी के पति श्रीशंकर जी द्वारा पूजित! संसार की स्थिति और कल्याण के धाम! आपकी जय हो। परशुराम का गर्व दूर करने वाले और अनंत बल के धाम श्रीराम! आपकी जय हो। कमलचरणों से वन में जाने वाले प्रभु! आपकी जय हो और भरतजी की इच्छा के आश्रय प्रभु! आपकी जय हो। रावण की बहन शूर्पणखा को विरूप करने वाले प्रभु! आपकी जय हो और महाछवि के आश्रय आपकी जय हो। खर, त्रिसिरा, दूषण का वध करने वाले प्रभु! आपकी जय हो और कपटमृग के पीछे-पीछे चलने वाले प्रभु! आपकी जय हो। जटायु, शबरी को प्रसन्न करने वाले प्रभु! आपकी जय हो और हनुमानजी के द्वारा जिनके तेज की पूजा की गयी है, ऐसे प्रभु! आपकी जय हो। सुग्रीव की विपत्ति को नष्ट करने वाले प्रभु! आपकी जय हो। बाली के दुष्ट तेज को समाप्त करने वाले प्रभु! आपकी जय हो। लंका के कलंक को नष्ट करने वाले, चंद्रमुख, शोभा के आश्रय प्रभु! आपकी जय हो और समररस अर्थात् वीररस के रसिक, सीताजी के पति, तेज और उत्सव के आश्रय प्रभु! आपकी जय हो। नुकीले बाणों से रावण का वध करने वाले, संपूर्ण मंगलों के धाम श्रीराम! आपकी जय हो और कविश्रेष्ठ **गिरिधर** की कविता, बुद्धि और भक्ति के निरंतर आश्रय श्रीराम आपकी जय हो।

गीत संख्या-२९

रामो विभीषणं प्रति-

विभीषण सपदि जानकीमानय।।
चिरोपवासकृशां सुस्नातां मद्वियोगभववाष्पस्नाताम्।
निष्णातां भारतीपद्धतौ सस्नेहं स्निग्धां सम्मानय।।१।।
विपिनाशोके स्थितां सशोकां कोकीमिव सम्प्रोषितकोकाम्।
विरहविदग्धसकलसुखलोकां नहि मनसापि सतीं च विमानय।।२।।
शीघ्रं याहि पवनसुतसहितः वन्दीमुन्मोचय भयरहितः।
आनय मत्सविधे मतिमहितः श्रीसीताहर्षं सन्तानय।।३।।

मा कुरु किञ्चित् कालविलम्बं दर्शय सीताकचनिकुरम्बम्।
भावय भामिनीभावकदम्बं कविवरगिरिधरगीतामानय।।४।।

भौमी- अब श्रीराम विभीषण के प्रति कहते हैं-हे विभीषण! सीताजी को अशोक वाटिका से शीघ्र ले आओ। चिरकालीन उपवास से दुबली, स्नान की हुई, मेरे वियोग से उत्पन्न आँसुओं से नहायी हुयी, भारतीय पद्धति में निष्णात स्नेहवती सीताजी का सम्मान करो। अशोक वन में भी शोक से युक्त, अपने पति चकवे से बिछुड़े हुये चकवी की भाँति और विरह की अग्नि में सभी सुखों को भस्मसात की हुयी, ऐसी सती को मन से भी अपमानित मत करना। हे विभीषण! हनुमानजी के साथ शीघ्र जाओ और भयरहित होकर सीताजी की बंदी छोड़ो और प्रसन्न होकर बुद्धि से सम्मानित होकर मेरे निकट ले आओ और श्रीसीताजी के हर्ष को भी विस्तृत कर दो। हे विभीषण! किसी प्रकार का विलंब मत करो। सीताजी के घुँघराले केशों के दर्शन कराओ और सुलक्षणा सीताजी के भावों की पूजा करो और कविश्रेष्ठ **गिरिधर** द्वारा गायी गयी सीताजी का सम्मान करो।

गीत संख्या-३०

विभीषणः सीतां प्रणमन्-

जननि दिष्ट्या भुवि विजयसे।।
अतिसुरासुरसमरचत्वरकुदशकन्धरकदनखरशर-
महितवनचरविलसदनुचरकृपादृष्ट्या भुवि विजयसे।।१।।
अञ्जनानन्दनतरुणतरभुजबलाम्बुधिमग्ननिशिचर-
सुभटवानरभालुसुखकरसौख्यसृष्ट्या भुवि विजयसे।।२।।
पूर्णसंश्रुतिप्रतिज्ञाश्रुतिमण्डितश्रुतिसुरगणस्तुति-
विश्वविश्रुतविशदविश्रुतिशम्प्रवृष्ट्या भुवि विजयसे।।३।।
रामचन्द्रचकोरि सीते जनकनृपतिकिशोरि सीते।
व्रज प्रभुं प्रति सुखितगिरिधरभाववृष्ट्या भुवि विजयसे।।४।।

भौमी- श्रीराम की आज्ञा से अशोक वाटिका में जाकर सीताजी को प्रणाम करते हुये विभीषण जी गाते हैं-विभीषणजी सीताजी को प्रोत्साहित करते हुये कहते हैं- हे माँ! सौभाग्य से आप विजयिनी हो रही हैं। देवताओं और असुरों की भी कल्पना से परे, समरांगण में रावण के भयंकर कन्धों को काटने के लिये कठिनतम बाण वाले, वानरों को सम्मान देने वाले, सेवकों को सुशोभित करने वाले परमात्मा श्रीराम की कृपादृष्टि से आप विजयिनी हो रही हैं। अंजनापुत्र हनुमानजी के उच्छलित भुजबलरूप महासागर में राक्षसों को डुबो देने वाले, ऐसे वीर वानर भालुओं को सुख देने वाले श्रीराम की सुख सर्जना से आप विजयिनी हो रही हैं। पूर्ण परिचय वाली प्रतिज्ञा की घोषणा और श्रुतियों का मण्डन करने वाले, देवताओं की स्तुति के विषय और विश्व में प्रसिद्ध यश वाले भगवान राम की भावनात्मक प्रविष्टि से ही आपकी विजय हो रही है। हे श्रीरामचन्द्र की चकोरी जानकीजी! हे जनकराज की किशोरी! हलाग्र से प्रकटी हुयी जानकीजी! अब आप प्रभु राम के समीप पधारें, क्योंकि **गिरिधर** कवि को सुखी करने वाले प्रभु की भाववृष्टि से ही आप विजयिनी हो रही है।

गीत संख्या-३१

श्रीरामानुरुद्धा वह्निं प्रवेक्षन्ती सीता लक्ष्मणपावकौ प्रति-

लाल लक्ष्मण कुजनपङ्कशङ्काशमनपूतपूता चिता मे समाचीयताम्।
मिथ्या जल्पन्कुटिलदारुकत्तृणदहन्दावनीता चिता मे मुदा चीयताम्।।१।।
राघवाज्ञां स्वमूर्ध्नावहन्ती सती पालयन्ती निदेशं च वैश्वानरम्।
याम्यहं सत्वरं पश्यतां प्राणिनां सम्प्रणीता चिता मे समाचीयताम्।।२।।
मा विलम्बं कृथा मानुशोचीर्वृथा रातु विश्वाय सत्प्रेरणां सत्कथा।
मा व्यथिष्ठा भवद् धर्मनिष्ठाऽश्लथा भग्नचित्ता चिता मे समाचीयताम्।।३।।
तुभ्यमुक्तं मयाऽवाच्यमज्ञानतो धर्ममातन्वतेऽकृत्य विज्ञानतो।
घोरपापस्य चैतस्य सम्मार्जनी वीतभीता चिता मे समाचीयताम्।।४।।
रोचते यद्वपुर्नैवमत्स्वामिने गिरिधरेशाय मत्तद्विरद्गामिने।
तन्महः सद्मभूता प्रभूतेधसां नाथप्रीता चिता मे समाचीयताम्।।५।।

भौमी- श्रीराम के अनुरोध पर अग्नि में प्रवेश करती हुयी सीताजी लक्ष्मण और अग्नि के प्रति कह रही हैं-हे लाल लक्ष्मण! दुर्जनों के शंका कलंक को नष्ट करने वाली परम पवित्र चिता बना दो। लक्ष्मण! मिथ्या अपवादरूप काष्ठा और कुत्सित घासों को जलाने वाले अग्नि से व्याप्त चिता मेरे लिये प्रसन्नतापूर्वक लगा दो। लक्ष्मण! राघव सरकार की आज्ञा को सिर पर धारण करती हुयी और प्रभु के आदेश का पालन करती हुयी मैं साध्वी सती सीता सभी प्राणियों के देखते-देखते शीघ्र ही अग्नि में प्रवेश कर रही हूँ। मेरे लिये व्यवस्थित चिता लगा दो। लक्ष्मण! विलम्ब मत करो, व्यर्थ का शोक मत करो। तुम्हारी धर्म-निष्ठा शिथिल न हो। सभी चिन्ताओं को नष्ट करने वाली चिता मेरे लिये लगा दो। मैंने अज्ञान से तुम्हारे लिये कठोर वाक्य कहा और कृत्य के जानने से प्रायश्चित्त करके सुधीजन धर्म का विस्तार कर लेते हैं। इस महान पाप का मार्जन करने वाली भयरहित चिता मेरे लिये लगा दो। जो शरीर **गिरिधर** कवि के ईश्वर मतवाले हाथी के समान चलने वाले मेरे प्रभु को नहीं भा रहा है उस शरीर के तेजस्वी निवास रूप ईंधन से जाज्वल्यमान मेरे प्रभु श्रीराम को प्रसन्न करने वाली चिता मेरे लिये लगा दो तात्पर्य यह कि जो शरीर मेरे प्रभु को नहीं भाता, उसे मैं इसी अग्नि के घर में पधरा दूँगी।

गीत संख्या-३२

हे महानल विमल विश्वसाक्षिन् सर्वतः पाहि मां सर्वरक्षिन्।।
शुभ्रज्वालाप्रबलसर्वसाक्षिन् सर्वतः पाहि मां सर्वरक्षिन्।।
यद्यहं नातिवर्ते खरारिं नित्यं ध्यायन्ती वर्तेऽसुरारिम्।
कर्मणा मनसा वाचा भूतसाक्षिन् मैथिलीं पाहि मां सर्वरक्षिन्।।१।।
यद्यहं जागरे स्वप्नभावे सत्सुसुप्तौ तथा सर्वभावे।
रामचन्द्रेऽर्पिता सर्वसाक्षिन् पार्थिवीं पाहि मां सर्वरक्षिन्।।२।।

यन्मदीयेऽमले कान्ते स्वान्ते राघवादन्यो ना नो प्रशान्ते।
भूयाः श्रीखण्डितो लोकसाक्षिन् भामिनीं पाहि मां सर्वरक्षिन्।।३।।
सर्वदा भावये यद्यनागा गिरिधरेशं भवं दूरितागा।
तन्मे भव चन्दनो देवसाक्षिन् जानकीं पाहि मां पापभक्षिन्।।४।।

भौमी- हे निर्मल महान अग्नि! हे विश्व के साक्षी! सबकी रक्षा करने वाले अग्नि देव! मेरी सब ओर से रक्षा कीजिये। हे शुभ्र ज्वालाओं से प्रबल, सभी के साक्षी और सबके रक्षक अग्निदेव! मेरी सब प्रकार से रक्षा कीजिये। यदि मैं खर के शत्रु श्रीराम का अतिवर्तन नहीं करती, यदि मैं कर्म से, मन से और वाणी से असुरों के शत्रु श्रीराम के अतिरिक्त किसी का चिंतन नहीं करती हूँ, तो हे भूतों के साक्षी अग्निदेव! मुझ मैथिली की रक्षा कीजिये। यदि मैं जागरण में, स्वप्न में, सुषुप्ति में, सर्वभाव से श्रीरामजी के ही लिये अर्पित हूँ तो सर्वसाक्षी अग्नि! मुझ पृथ्वीनंदिनी की रक्षा करो। यदि मेरे निर्मल, सुंदर, शांत मन में श्रीराघव के अतिरिक्त कोई पुरुष नहीं है तो हे लोकसाक्षी अग्नि! तो मेरे लिये चन्दन बन जाओ। यदि मैं निर्दोष भाव से, सभी पापों से रहित होकर **गिरिधर** कवि के ईश्वर भगवान राघव की सर्वदा भावना करती हूँ तो हे देवसाक्षी अग्निदेव! मेरे लिये चन्दन हो जाओ और मुझ जानकी की सब ओर से रक्षा कर लो।

गीत संख्या-३३

कविर्गायति-

विजयते किल जगति सीता।
वह्निपूता भुवो भूता रामचन्द्ररतिप्रतीता।।
इद्धवह्निमुखं प्रविष्टा विश्वविश्वस्त्यै निदिष्टा।
अक्षताहुतभुजि निविष्टा सती चर्चितचरितनीता।।१।।
पावकं श्रीखण्डमित्वा श्वसुरमग्निं निजं नीत्वा।
आललितलीलामुषित्वा पतिपरायणप्रेमप्रीता।।२।।
वह्निमङ्गैः शिशिरयन्ती मनोमाद्यन्मदिरयन्ती।
जगन्महसामिहिरयन्ती सुकविगिरिधरगीतगीता।।३।।
राघवेन्द्रं नन्दयन्ती कोसलेन्द्रं वन्दयन्ती।
दुर्जनानिह निन्दयन्ती राति चारित्रं प्रतीता।।४।।

भौमी- अब कवि स्वयं गा रहे हैं-जगत में सीताजी की जय हो रही है। अग्नि से पवित्र, पृथ्वी से प्रकट, श्रीरामचन्द्र की भक्ति में विश्वास करने वाली सीताजी की जय हो रही है। जलते हुये अग्नि के मुख में प्रविष्ट और विश्व के विश्वास के लिये श्रीराम के निर्देश पर हव्यभोजी अग्नि में प्रवेश करके भी कहीं से न जली हुयी, सतियों द्वारा चर्चित चरित्र में समाहित सीताजी की विजय हो रही है। ललित नर लीलापर्यन्त अग्नि को चन्दन के समान करके और अग्नि को अपना श्वसुर मानकर, उन्हीं अग्नि में निवास करके भी पूर्ण अक्षत रही हुयी, पतिपरायण प्रेम से संतुष्ट सीताजी की विजय हो रही है। अपने श्रीअंगों से अग्नि को शीतल बनाती हुयी और प्रभु के प्रेमरस मत्त मन को मतवाला करती हुयी और सारे संसार को अपने तेज से सूर्य के समान प्रकाशित

करती हुयी, कविश्रेष्ठ **गिरिधर** के गीतों का विषय बनी हुयी सीताजी की विजय हो रही है। राघवेन्द्र जी को प्रसन्न करती हुयी कोसलेन्द्र भगवान को प्रणाम करती हुयी, दुर्जनों की निन्दा करती हुयी, विस्वस्त होकर चरित रूप धन का सीताजी दान कर रही हैं और जगत में उनकी जय जयकार हो रही है।

गीत संख्या-३४

विराजते सीतामुपेतो हे राघवो राजा रामः।
विराजते आनन्दकेतो हे मानवो राजा रामः।।
वह्नौ विशुद्धां सदैवाविरुद्धां सीतां समालभ्य भावानुरुद्धाम्।
विराजते करुणानिकेतो हे पापमोचनप्रणामः।।१।।
हनुमत्प्रधानैः सदा सेव्यमानो देवैस्त्रिदेवैर्दिवं देव्यमानो।
लोकापवादादपेतो हे नीलनीरधरश्यामः।।२।।
सैरध्वजीनेत्रसारङ्गकन्दः पौलस्त्यवंशानलः श्रीमुकुन्दः।
रघुवंशकेतोऽप्यकेतो हे विजितसुरपतिललामः।।३।।
श्रीधारणेयीमुखोडुपचकोरः कोमलकठोरो लोकलोचनैकचोरः।
गिरिधरसुकविगवीकेतो हे गीतसीताभिरामः।।५।।

भौमी- आज सीताजी को प्राप्त करके राघवेन्द्र राजा राम सुन्दर लग रहे हैं। आज आनन्द निकेत मनुवंशी श्रीराम विराज रहे हैं। अग्नि में पवित्र, सर्वथा स्वयं से अविरुद्ध और भाव से अनरुद्ध सीताजी को प्राप्त करके पापहारी प्रणाम वाले करुणा के भवन श्रीराम विराज रहे हैं। हनुमदादि वीर वानरों से सेवित और स्वर्ग में विराजमान देवों के भी देवता, ब्रह्मा, विष्णु, शिव से निरंतर प्रशंसित हो रहे, लोकापवाद से रहित, मेघवर्णी श्रीराम सुशोभित हो रहे हैं। सीताजी के नेत्र चातक के मेघ और रावण कुलरूप बाँसवन के अग्नि स्वरूप, भुक्ति-मुक्ति के प्रदाता, रघुकुल के ध्वज और सदैव विकृत, अनुचित भवनों को नष्ट करने वाले, मरकतमणि को जीतने वाले श्रीराम विराज रहे हैं। पृथिवीनन्दिनी सीताजी के मुख चंद्र के चकोर, कोमल और कठोर, संसार के नेत्रों को चुराने वाले, **गिरिधर** कवि की वाणी में विश्राम करने वाले गीतसीताभिराम श्रीराम विराज रहे हैं।

गीत संख्या-३५

अद्य सीताभिरामः प्रभू राजते।
अद्यलोकाभिरामो विभू राजते।।
वह्नौ विशुद्धां सीतामधिगत्य राघवो
नन्दयन् सुहृदो नन्दन् नन्दितार्यमानवो।
नरलोकाभिरामो प्रभू राजते।।१।।
सीतारामयुगलं निहारयन्ति वानराः
शोभायां स्वसर्वस्वं निवारयन्ति वानराः।

कोटिमन्मथाभिरामो प्रभू राजते।।२।।
विभीषणमुखामुखं दृष्ट्वा सीतारामयो-
स्तृप्तिं न भजन्ते भव्यं जितरतिकामयोः।
लोकलोचनाभिरामो प्रभू राजते।।३।।
स्तावं स्तावं निर्भया प्रयाता सर्वनिर्जराः
स्वं स्वं लोकं गतशोका विगतभ्रमज्वरा।
गिरिधरवचनाभिरामो प्रभू राजते।।४।।

भौमी- आज सीताभिराम प्रभु विराज रहे हैं। आज लोक के आनन्ददाता व्यापक श्रीराम विराज रहे हैं। अग्नि में पवित्र सीताजी को प्राप्त करके, आर्य मानवों को प्रसन्न करके, मित्रों को आनंदित करते हुये, स्वयं आनंदित होते हुये, मनुष्यलोक के सुखद रामराघव विराज रहे हैं। आज वानर श्रीसीताराम युगल को निहार रहे हैं और उनकी शोभा पर सब कुछ न्यौछावर कर रहे हैं। करोड़ों कामदेवों को आनंद देने वाले प्रभु सुशोभित हो रहे हैं। विभीषण आदि भक्तगण रति-काम को जीतने वाले सीतारामजी का मुख निहारकर तृप्त नहीं हो रहे हैं। आज लोकों के नेत्रों के आनन्ददाता प्रभु राम विराज रहे हैं। भगवान की स्तुति कर करके शोक रहित होकर, भय और चिन्ता को समाप्त करके सभी देवता निर्भय होकर अपने-अपने लोकों को पधारे। इस प्रकार **गिरिधर** कवि की वाणी को आनंद देने वाले प्रभु राम विराज रहे हैं।

गीत संख्या-३६

गायति कविः-

रामो जयति पुष्पकारूढः।
सीतासहितः सुषमामहितः सजलो घन इव रविमारूढः।।
सौमित्रिणा जुष्टपदकमलः परितो वानरभटैः परीतः।
नीलमृणाल इवालिवरूथैश्चिन्मयसरसि वृतो गुणिगीतः।।१।।
एकलसिंहासने निषण्णौ चिरं प्रोषितौ पुनरथ मिलितौ।
ब्रह्मदम्पती कनकलतातापिच्छाविव निसर्गसम्मिलितौ।।२।।
उत्तरदिशं व्रजन्तौ द्यन्तौ कोटिकोटिरतिमन्मथशोभाम्।
वार्तां पृच्छन्तौ यच्छन्तावन्योन्यं रतिमनुपं लोभाम्।।३।।
चलितविमाने नभसि समाने जय श्रीराम रटन्ति वानराः।
वहति विभाते मलयजवाते गायन्तीड्यं यशस्सुरनराः।।४।।
अभिभतं सम्प्रेष्य मारुतिं सुग्रीवादिपरिवृतो रामः।
जयति गीतसीताभिराम इह कविगिरिधरकृतगिराप्रणामः।।५।।

भौमी- कवि स्वयं गा रहे हैं-श्रीराम पुष्पकारूढ़ होकर सुशोभित हो रहे हैं। शोभा से युक्त होकर, सीता सहित श्रीराम पुष्पक पर ऐसे विराज रहे हैं मानों बिजली के सहित मेघ सूर्यमंडल पर आरूढ़ हो गया हो।

लक्ष्मणजी प्रभु के चरण कमल की सेवा कर रहे हैं। चारों ओर से वानर भट घेर रहे हैं। मानों चिन्मय तालाब में गुणियों द्वारा गाया हुआ नीलाकमल भ्रमर वरूथों से घिर गया है। एक सिंहासन पर बहुत दिन के बिछुड़े हुये पुनः मिले हुये ब्रह्मदंपती श्रीसीतारामजी ऐसे विराज रहे हैं जैसे सुवर्णलता और तमाल अन्योन्य का आलिंगन कर रहे हों। उत्तर दिशा की ओर जाते हुये, करोड़ों रति–कामों की शोभा को नष्ट करते हुये, अन्योन्य का कुशल समाचार पूछते हुये और एक दूसरे को अनुपम लोभ से युक्त प्रेम प्रदान करते हुये सीतारामजी विराज रहे हैं। आकाश में ससम्मान विमान के चलते समय वानर जय श्रीराम की गर्जना कर रहे हैं और सुंदर मलयसमीर के बहते हुये देवता और मनुष्य प्रभु का दिव्य यश गा रहे हैं। हनुमानजी को भरतजी के पास भेजकर कवि **गिरिधर** के द्वारा वाणी से प्रणाम का विषय बने हुये, सुग्रीवादि वानरों से युक्त गीतसीताभिराम श्रीराम विजयी हो रहे हैं।

उपसंहारश्लोकः

इत्थं घोररणे निहत्य भगवांश्चण्डांशुगै रावणम्।
लङ्कां प्राप्य विभीषणाय दहने शुद्धां श्रितो जानकीम्।।
सुग्रीवादिसमावृतः सुरगणान् संस्थाप्य लोकेष्वसौ।
सीतालक्ष्मणसंयुतोऽवतु सतो वैमानिको राघवः।।

भौमी– इस प्रकार घोर युद्ध में भयंकर बाणों से रावण का वध करके, विभीषण को लंका का साम्राज्य देकर, अग्नि में शुद्ध सीताजी को प्राप्त करके, सुग्रीवादि वानरों से युक्त होकर और देवताओं को उनके उनके लोकों में स्थापित करके सीताजी और लक्ष्मणजी से युक्त पुष्पकविहारी भगवान श्रीराघव संतों की रक्षा करें।

इति
श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरमहाकविजगद्गुरुरामानन्दाचार्यस्वामिरामभद्राचार्यगिरिधरकविप्रणीते
गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये युद्धकाण्डे
गीतरावणारिर्नाम द्वितीयः सर्गः।

।।युद्धकाण्डं सम्पूर्णम्।।

इस प्रकार श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर महाकवि जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य गिरिधरकवि द्वारा विरचित गीतरामायण 'गीतसीताभिराम' नामक संस्कृत गीतमहाकाव्य के युद्धकाण्ड में गीतरावणारि नामक द्वितीय सर्ग सम्पन्न हुआ और युद्धकाण्ड भी संपन्न हो गया।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु।।

।।श्रीः।।

।। नमो राघवाय।।

।।श्रीमद्राघवो विजयते। श्रीसीतारामौ विजयेते।।

अथ उत्तरकाण्डम्

गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये उत्तरकाण्डे गीतसीतारामपट्टाभिषेको नाम

प्रथमः सर्गः

मङ्गलाचरणम्

सीतामुखाम्बुरुहनिश्चलचञ्चरीको
लङ्केशभानुसुतजुष्टपदो मनस्वी।
श्रीमारुतेर्मधुरमानसराजहंसो
हंसान्वयाम्बुजरविर्जयतात् स रामः।।१।।
हारं सिंहासनस्थो जनकनृपसुवे निर्भयं लोकपेभ्यो
यच्छन् वासो वसानो जितकनकविभं धन्यधन्वं विधुन्वन्।
राजीवाक्षो विनिघ्नन् निजभयविपदं मोदयन् मित्रवर्गं
रामो सीताभिरामस्त्रिभुवनतिलको भाति राजाधिराजः।।२।।

भौमी–अब गीतरामायण गीतसीताभिराम संस्कृत महाकाव्य में उत्तरकाण्ड का गीतसीतारामपट्टाभिषेक नामक प्रथम सर्ग प्रारम्भ होता है। श्रीसीताजी के मुखकमल के अचल भ्रमर विभीषण और सुग्रीव द्वारा सेवित चरण, शुद्ध मन वाले श्रीहनुमानजी के मधुर मनमानस सरोवर के राजहंस सूर्यवंश रूप, कमल के सूर्य, भगवान श्रीराम की जय हो। जनकराज कन्या सीताजी को सुन्दर हार अर्पित करते हुये, लोकपालों को अभयदान प्रदान करते हुये, स्वर्ण की कांति को जीतने वाला वस्त्र धारण किये हुये और अत्यन्त श्रेष्ठ धनुष को फेरते हुये तथा अपने भक्तों का भय एवं उनकी विपत्ति को दूर करते हुये, मित्रवर्ग को प्रसन्न करते हुये सिंहासन पर विराजमान तीनों लोकों के तिलकस्वरूप कमलनेत्र सीताजी को आनन्द देने वाले, राजाधिराज भगवान राम सुशोभित हो रहे हैं और सदैव सुशोभित होते रहेंगे।

गीत संख्या-१

जनन्यो नो गदत हे जनन्यो नो गदत हे।
जनन्यो हे गदत कदायास्यति श्रीरामः।।
पृच्छन्ति विग्ना अयोध्यापुरबालाः लोचननीराः कलिताधरलालाः।
जनन्यो नो गदत कदायास्यति पूर्णकामः।।१।।
चतुर्दशवर्षाणि जातानि अम्बा कदा द्रक्ष्यते सीता माता जगदम्बा।
जनन्यो नो गदत कदायास्यत्याप्तकामः।।२।।
एकमेकनिमिषञ्चकल्पायते नः त्रुटिरपि विपदामनल्पायते नः।
जनन्यो नो गदत कदायास्यति जनारामः।।३।।
रामं विना शून्यो गृहपरिवारो नन्दनवनं भाति ज्वलितमहाङ्गारो।
जनन्यो नो गदत कदा यास्यति जितसङ्ग्रामः।।४।।
गिरिधरेशमन्तरा न रोचतेऽप्ययोध्या नरकायते रामं विना वेदबोध्या।।
जनन्यो नो गदत कदायास्यति घनश्यामः।।५।।

भौमी– अवधि का एक दिन अवशेष है। नेत्र में आँसू भरे हुये, अधरों से लार टपकाते हुये, छोटे बच्चे पूछ रहे हैं– माता! बताओ श्रीराम कब आयेंगे? हे माताओं! चौदह वर्ष बीत गये। जगदम्बा सीता माताजी के दर्शन कब होंगे? बताओ माताओं पूर्णकाम रामजी कब आयेंगे? एक-एक क्षण हमारे लिये कल्प के समान बीत रहा है और पलक का गिरना भी विपत्ति में बहुत भारी पड़ रहा है। हे माताओं! बताओ, मनुष्यों को विश्राम देने वाले श्रीराम कब आयेंगे? श्रीराम के बिना हमारा घर-परिवार सब सूना है। नन्दनवन भी जलते हुये अंगारे जैसा लग रहा है। हे माताओं! बताओ संग्राम विजेता रामजी कब आयेंगे? **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम के बिना अयोध्या भी नहीं अच्छी लग रही है। वेद प्रसिद्ध होने पर भी यह पुरी श्रीराम के बिना नरक जैसी प्रतीत हो रही है। बताओ माताओं! मेघवर्णी श्रीराम कब आयेंगे?

विशेष– यह गीत एक भोजपुरी गीत की ढाल में निबद्ध है। उसका बोल है–

'बतावा जननी प्यारे राम कब अइहैं?' इसे दादरा ताल में गाया जाना चाहिये।

गीत संख्या-२

स्नुसाः पृच्छन्ति–

अरे अरे कथयत अम्बा त्रिजगदवलम्बाः।।
कदाऽयास्यन्ति लक्ष्मणरामसीताः अवधिरेकदिनमास्ते।।१।।
एकमेकं दिनं कल्पदृशं जनन्यो नो व्यत्येति।
कदाऽयास्यन्ति परमविनीता अवधिरेकदिनमास्ते।।२।।

तेभ्यो विना भोजनं शयनं न भोगाः केऽपि रोचन्ते।
कदाऽयास्यन्ति प्राणप्रतीता अवधिरेकदिनमास्ते।।३।।
तेभ्यो विना सकलं हि शून्यं अयोध्या नरकायते।
कदाऽयास्यन्ति प्रियतमप्रीता अवधिरेकदिनमास्ते।।४।।
अरे अरे निगदत मातरो वदत जातु यातरो नः।
कदाऽयास्यन्ति गिरिधरगीता अवधिरेकदिनमास्ते।।५।।

भौमी– अब बहुएँ अपनी सासुओं से पूछ रही हैं। हे माताओं! बताओ, तीनों लोकों को अवलम्ब देने वाले श्रीराम, लक्ष्मण, सीता–श्रीअवध कब आयेंगे? अब तो अवधि का एक ही दिन शेष है। माताओं! हमारे लिये एक-एक दिन कल्प के समान बीत रहा है। आप बताएँ परम विनम्र वे तीनों मूर्ति श्रीअवध कब लौटेंगे? अब तो अवधि का एक ही दिन शेष बचा है? उनके बिना हमको भोजन शयन और कोई भी भोग अच्छे नहीं लग रहे हैं। माताओं! बताओ, हमारे प्राणों के विश्वासपात्र श्रीरामलक्ष्मण सीताजी श्रीअवध को कब लौटेंगे? अब तो अवधि का एक ही दिन शेष है। इन तीनों के बिना सब कुछ शून्य हो रहा है। अयोध्या भी नर्क जैसी लग रही है। माताओं, हमारे प्रियतम, आत्माओं के भी प्रेमाश्रय, श्रीरामलक्ष्मण सीताजी श्रीअवध कब आयेंगे? अब तो अवधि का एक ही दिन शेष है। अरे माताओं! बताओ, अरे! हमारी जेठानियों! हमें बताओ– **गिरिधर** कवि द्वारा गाये गये श्रीरामलक्ष्मण सीता श्रीअवध कब आयेंगे? अब तो अवधि का एक ही दिन शेष है।

विशेष– यह गीत अवध के आँचलिक गीत के ढाल पर निबद्ध है उसकी धुन है–

अरे-अरे कह ऽ मोरी सासू गिराव ऽ जिनि आँसू,
कब अइहैं राम लखन अरु सीता, अवधि एक दिन बाटइ।।

यही भाव मानसकार मानस के उत्तरकाण्ड के प्रथम दोहे में कहते हैं–

रहेउ एक दिन अवधि कर अति आरत पुर लोग।
जहँ तहँ सोचहिं नारि नर कृस तनु राम बियोग।।

गीत संख्या–३

मातरः परस्परम् –

अवधिरियमेकदिनमास्ते कदायास्यन्ति नो वत्साः।।
चतुर्दशवर्षवनवासो व्यतीतो राघवस्याहो।
दिनं श्वस्त्यं प्रतीक्षामः कदायास्यन्ति नो वत्साः।।१।।
स्फुरति नेत्रञ्च नो वामं पिको रोरौति सद्रामम्।
शकुनमालाशुभान्याख्यत् कदायास्यन्ति नो वत्साः।।२।।
सुमित्रे पश्य भो द्वारे प्रभाते वाति कोऽप्येवम्।
समायाता इव स्निग्धा कदायास्यन्ति नो वत्साः।।३।।

क्षणं सौधे क्षणं द्वारे अटाट्यां कुर्महे विग्ना।
सुकविगिरिधरगिराधारा कदायास्यन्ति नो वत्साः।।४।।

भौमी– अब माताएँ परस्पर कह रही हैं–अरे! यह अवधि अब एक ही दिन शेष रह गयी है। हमारे तीनों बालक कब आयेंगे? अहो! राघवजी का चतुर्दश वर्षीय वनवास व्यतीत हो गया। अब हम कल के दिन की प्रतीक्षा कर रहे हैं, हमारे तीनों बालक राम, लक्ष्मण और सीता कब आयेंगे? हमारे बायें नेत्र फड़क रहे हैं। कोयल पक्षी भी सन्तों को रमाने वाला शब्द बोल रहा है और शकुनों की माला भी सुन्दर शुभ की सूचना दे रही है। हमारे बालक कब आयेंगे? अरे सुमित्रे! राज द्वार पर जाकर देखो न! कोई प्रातःकाल इस प्रकार सूचना दे रहा है, मानों श्रीराम, लक्ष्मण, सीता आ गये। हम एक क्षण राजमहल और दूसरे क्षण द्वार इस प्रकार यहाँ–वहाँ चक्कर लगाती जा रही हैं। श्रेष्ठ कवि **गिरिधर** की वाणी के आधार स्वरूप हमारे बालक राम, लक्ष्मण, सीता कब आयेंगे?

विशेष– यही भाव मानसकार उत्तरकाण्ड के तीसरे दोहे में कहते हैं–

कौसल्यादि मातु सब, मन अनन्द अस होइ।
आयो प्रभु श्री अनुज जुत, कहन चहत अब कोइ।।

गीत संख्या–४

भरतः स्वगतम्

कुटिलं विदन् मां निरास्थात् किं रामो भ्राता न चागात्।
विस्मृत्योपेक्षामिहागात्किं रामो भ्राता न चागात्।।
वनवासकालावधिरेकदिनमास्ते विरहोऽयं निरवधिः क्षणं क्षणं चास्ते।
विस्मृतिपथं मामुपाधात् किं रामो भ्राता न चागात्।।१।।
किं कारणं मामुपेक्षते नाथः किं दूषणं मे ह्यवैति रघुनाथः।
दीनवत्सलत्वं समास्थात् किं रामो भ्राता न चागात्।।२।।
हनुमन्तमतुदं सञ्जीवनीं नयन्तं व्यलम्बये लम्बमानयात्रां स्त्रयन्तम्।
अपराधतोऽतो व्यथामगात् किं रामो भ्राता न चागात्।।३।।
स्वजनानां दुर्गुणान् कदापि नैव मनुते दीनबन्धुदीनान् समाहूय समावृणुते।
गिरिधरसमस्यां नो समाधात् किं रामो भ्राता न चागात्।।४।।

भौमी– भरत अपने मन में– अरे! मुझे कुटिल समझकर प्रभु ने छोड़ दिया क्या? मेरे राम भैया नहीं आये। मुझे भुलाकर मेरी उपेक्षा कर दी क्या? अभी तक भैया राघव नहीं आये। वनवास काल की अवधि एक ही दिन शेष है, इधर मेरा क्षण–क्षण का विरह असीम होता जा रहा है। क्या प्रभु ने मुझे भुला दिया? अभी तक भ्राता रघुनाथजी नहीं आये। मेरे नाथ किस कारण मेरी उपेक्षा कर रहे हैं? रघुनाथजी मेरा कौन–सा दोष समझ रहे हैं? क्या उन्होंने अपनी दीन वत्सलता छोड़ दी है? जो अभी तक राघव भैया नहीं आये? लक्ष्मणजी के लिये संजीवनी ले जाते हुये हनुमानजी को मैंने बाण से बेध दिया था और लम्बी यात्रा करते हुये हनुमानजी को

विलम्बित कर दिया था, क्या मेरे इसी अपराध से प्रभु दुःखी हो गये जो अभी तक नहीं लौटे? प्रभु दीनों के बन्धु और दीना अर्थात् दीन महिला अहल्या, सबरी, तारा आदि के नाथ हैं, इसलिये वे अपने भक्तों के दुर्गुण कभी नहीं देखते और दीनों (दीनजनों) को बुला-बुलाकर उन्हें स्वीकारते हैं। अरे! क्या उन दीनबन्धु, दीनानाथ, रघुनाथजी ने अत्यन्त दीन **गिरिधर** कवि की समस्या का समाधान नहीं किया। अभी तक राघव भैया क्यों नहीं आये?

विशेष- यह गीत बहुचर्चित एक भोजपुरी गीत की ढाल पर बद्ध है, उसका बोल है-

'जानि कुटिल बिसरा गइलैं का भैया नाहीं अइलैं?'

गीत संख्या-५

अहो को विघ्नकृज्जातो न रामो मे समायातः।
अहो को निघ्नकृज्जातो न रामो मे समायतः।।
श्रुतो रावणिरणे शक्त्या वितुन्नो लक्ष्मणो भ्राता।
किमधुना नारुजो जातो न रामो मे समायातः।।१।।
हृता सीता च दशशिरसा श्रुतं युद्धं खरारेर्वै।
किमनरिर्नो हरिर्जातो न रामो मे समायातः।।२।।
नयन् सञ्जीवनीं हनुमान् मया नाराचतो बिद्धः।
किमभवं खिन्नहरिजातो न रामो मे समायातः।।३।।
व्यतीतेऽवधिदिने गिरिधरप्रभुश्चेत् क्षणमतीयातः।
न भरतोऽसून्श्रयेत् तातो न रामो मे समायातः।।४।।

भौमी- भरत जी पुनः कह रहे हैं—अहो! किसने बीच में विघ्न डाल दिया जो अभी तक मेरे रामजी नहीं आये? अहो! किसने प्रभु को पराधीन कर लिया, जो अभी तक प्रभु अवध नहीं पधारे? ऐसा श्रीहनुमानजी से सुना था कि श्रीराम-रावण युद्ध में मेघनाद की शक्ति से भैया लक्ष्मण घायल हो गये थे क्या अभी तक वे स्वस्थ नहीं हुये? क्योंकि मेरे भैया राघव नहीं आये। मुझे यह भी समाचार मिला कि सीता भाभीमाँ का रावण ने हरण कर लिया था और इसी कारण श्रीराघव का रावण से तुमुल युद्ध हुआ। क्या अभी भी श्रीहरि राघव सरकार अनरि अर्थात् शत्रु विहीन नहीं हुये? क्या अभी तक रावण नहीं मारा गया? क्योंकि अभी तक मेरे राम नहीं पधारे। संजीवनी लेकर जाते हुये हनुमानजी मेरे द्वारा बाण से बेध दिये गये थे, तो क्या हरिजातः अर्थात् हरि श्रीहनुमानजी जात अर्थात् जिनके पुत्र हैं ऐसे श्रीराम को क्या मैंने खिन्न कर दिया? अभी तक मेरे राम नहीं आये। यदि अवधि का दिन व्यतीत होने पर **गिरिधर** कवि के प्रभु श्रीराम ने एक क्षण भी आने में विलंब किया तो उनका छोटा भाई भरत प्राण धारण नहीं करेगा। अभी तक तो मेरे रामजी नहीं आये। अभी अवधि का एक दिन शेष है।

विशेष- यही भाव मानसकार उत्तरकाण्ड के प्रथम दोहे की अन्तिम पंक्ति में कहते हैं-

बीते अवधि रहिहिं जौं प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना।।

सन्दर्भश्लोकौ

इति बहुविलपन्तमार्तचित्तं प्रभुविरहाम्बुनिधौ निमग्नमारात्।
भरतमथमुदासमुद्दिधीर्षुस्तरिरभवत् वटुवेषधृद्धनूमान्।।१।।
कुशासने वीक्ष्य निषण्णमार्यं जपन्तमीड्यं किल रामनाम।
कृषं जटाधारिणमश्रुनेत्रं हरिर्जहर्षैलसुधां ववर्ष।।२।।

भौमी– इस प्रकार बहुत विलाप करते हुये आर्तचित्त वाले भगवान के विरह सागर में डूबे हुये श्रीभरत जी को निकालने के इच्छुक श्रीहनुमानजी बटुवेश धारण करके साक्षात् जलयान ही बन गये। कुशासन पर बैठे हुये श्रीरामनाम का जप करते हुये दुर्बल जटाधारी और अश्रुपूरित नेत्र श्रीभरत को देखकर श्रीहनुमान बहुत प्रसन्न हुये और वाणीमय सुधा की वर्षा कर दी।

गीत संख्या–६

मा स्म भूर्विषण्णो भरत तव भ्राता।
श्व एव सानुजः सीताराम आयाता।।
ब्रह्मादिकक्षणे रणे रावणं च हत्वा।
सीतां प्राप्य लङ्कां विभीषणाय दत्त्वा।।
पुष्पके निषण्णो मुदितस्तव भ्राता।
श्व एव सुव्रजः सीताराम आयाता।।१।।
सीताप्रत्यानयतो विशोध्य जातवेदसम्।
वामभागे समारोप्य जानकीं सुवेधसम्।।
श्रिया सुप्रसन्नः कपितस्तव भ्राता।
श्व एव सद्गजः सीताराम आयाता।।२।।
निहतकुम्भकर्णः प्रत्तखगपप्रसादः।
लक्ष्मणेन लोकान्तरं गमितमेघनादः।।
हतरावणोऽविषण्णः सुखितस्तव भ्राता।
श्व एव नीरुजः सीताराम आयाता।।३।।
विबुधवरस्तूयमानमञ्जुलयशस्कः।
गिरिधरकविगीयमानमङ्गलमहस्कः।।
सुबान्धवा सन्नः कमितस्तव भ्राता।
श्व एव वरभुजः सीताराम आयाता।।४।।

भौमी– हे भरत! आप दुःखी न हों। आपके बड़े भ्राता सीताजी में रमने वाले श्रीराम कल ही श्रीसीता

लक्ष्मण के साथ आ जायेंगे। ब्रह्मादि के महोत्सवस्वरूप युद्ध में रावण का वध करके, सीताजी को प्राप्तकर लंका का साम्राज्य विभीषण को सौंपकर आपके बड़े भैया श्रीराघव प्रसन्नतापूर्वक पुष्पक विमान पर आरूढ़ हो चुके हैं। कल ही शोभन प्रस्थान करके लक्ष्मणजी के साथ सीतारामजी अवध आ जायेंगे। सीताजी के प्रत्यानयन के बहाने अग्नि को ही पवित्र करके स्वयं श्रीराम को सुखी करने वाली जानकीजी को वामभाग में विराजमान करके सीताजी की प्राप्ति से प्रसन्न हुये सन्तों को हाथी के समान भजन के रस में झुमाकर आपके भ्राता श्रीसीतापति भगवान राम कल ही वानरी सेना के साथ लक्ष्मण और सीता जी के समेत श्रीअवध पधार आयेंगे। कुम्भकर्ण को मारकर, नागपाश कटवाने के बहाने गरुडदेव को कृपा प्रसाद देकर, लक्ष्मणजी द्वारा मेघनाद को साकेत लोक भिजवाकर, रावण का वध करके, अविषण्णः अर्थात् सम्पूर्ण विषाद का त्याग करके, किसी भी प्रकार की सामरिक पीड़ा से रहित सुखी आपके बड़े भैया सीताजी और लक्ष्मणजी के साथ कल ही अवध पधार आयेंगे। जिनके दिव्य यश का देवतागण स्तवन कर रहे हैं और **गिरिधर** कवि के द्वारा जिनके मंगलमय तेज का गान किया जा रहा है ऐसे सच्चिदानंदस्वरूप आपके बड़े भ्राता सीताजी में रमने वाले श्रीरघुनाथजी अपने मित्र वानर भालू-बान्धवों को लेकर लक्ष्मणजी के साथ कल ही श्रीअवध पधार आयेंगे।

विशेष- यह गीत भोजपुरी के एक राम विवाह गारी गीत के ढाल पर निबद्ध है जिसका बोल है-

रामजी से पूँछैं जनकपुर की नारी।
बताद ऽ बबुआ लोगवा देत काहें गारी।।

गीत संख्या-७

लब्धसमाचारो भरतो हनुमन्तं प्रति-

अञ्जनानन्दवर्धन् हनुमन् समाचारं शुभं श्रावयसे।।
विरहानलज्वालाज्वलितं यावच्चतुर्दशाब्दम्।
भरतमिहाश्वासयसे बन्धो ब्रुवन् वचः सोमाब्दम्।।
सज्जनानन्दवर्धन् मतिमन् सुखाचारं शुभं श्रावयसे।।१।।
रामकथाभिः संह्लादयसे व्यथितं मनोऽप्यधीरम्।
रामकुशलवृत्तैः शिशिरयसे विरहज्वलितशरीरम्।।
मुनिजनानन्दवर्धन् गतिमन् वराचारं शुभं श्रावयसे।।२।।
एतत्सन्देशेन समानं किमपि न वसु वसुमत्याम्।
किं दद्यां हनुमत इह तुभ्यं विधनोऽहं त्रिजगत्याम्।।
प्रभञ्जनानन्दवर्धन् श्रुतिमन् श्रुताचारं समाश्रावयसे।।३।।
ऋणी भवेयं तव कपिपुङ्गव यावत्कोटिककल्पम्।
गिरिधरप्रभुराघवसहितोऽहं तवाधमरणोऽनल्पम्।।
हरिजनानन्दवर्धन् रतिमन् महाचारं समाश्रावयसे।।४।।

भौमी- समाचार प्राप्त करके भरतजी हनुमानजी के प्रति कहते हैं- हे अंजना को आनंद देने वाले हनुमान! सुंदर समाचार सुना रहे हो। चौदह वर्षपर्यन्त विरहाग्नि की ज्वाला से जले हुये मुझको अमृतमेघ से निकले हुये वचन का वर्षण करते हुए समाश्वासित कर रहे हो। हे सज्जनों का आनंद बढ़ाने वाले बुद्धिमान! सुख के आचरण से युक्त समाचार सुना रहे हो। हे हनुमान जी! आप मेरे अधीर और व्यथित मन को श्रीराम की कथा से आह्लादित कर रहे हैं और प्रभु के विरह से जले हुये मेरे शरीर को श्रीराम के कुशल समाचारों से शीतल कर रहे हैं। हे मुनिजनों को आनन्द देने वाले गतिमान! आप श्रेष्ठ आचरणों वाले भगवान का समाचार सुना रहे हैं। इस संदेश के समान पृथ्वी में कोई धन नहीं है। तुम हनुमान को आज मैं क्या दूँ? आज त्रिलोकी में मैं निर्धन हूँ। हे प्रभञ्जन अर्थात् वायु को आनन्द देने वाले वैदिक वाङ्मय युक्त हनुमान! मुझे तुम शास्त्रीय कल्याणमय समाचार सुना रहे हो। हे वानर श्रेष्ठ! मैं करोड़ों कल्पपर्यन्त तुम्हारा ऋणी ही रहूँगा। **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराघव के सहित मैं तुम्हारा बहुत बड़ा अधमर्ण अर्थात् ऋणग्राहक रहूँगा। हे भगवद्भक्तों को आनन्द देने वाले रामभक्तियुक्त हनुमान! मुझे तुम महाचरण-सम्पन्न प्रभु का समाचार सुना रहे हो।

गीत संख्या-८

हनुमान् भरतं प्रति-

भरत भ्रातर्मानुचिन्तां कृषीष्ठाः।।
सत्यसन्धो निराबन्धो राघवः कृपालुः।
जगन्नाथो दीनानाथो दीनेषु दयालुः।।
सुकुलजातर्मानुशङ्कां कृषीष्ठाः।।१।।
नक्तंदिवं देवस्तव विरहाब्धिमग्नः।
लभते न क्वापि कं करीव पङ्कलग्नः।।
सुजनत्रातर्मानुशोकं कृषीष्ठाः।।२।।
भवन्तं स्मरति रामः शोचति भवन्तम्।
भजते भवन्तं जीवो यथा भगवन्तम्।।
श्रीभक्तिदातर्मा स्म भीतिं कृषीष्ठाः।।३।।
सदा भरतभरतेति रामो जपन्नास्ते।
त्वद्यशांसि गिरिधराभिरामो लपन्नास्ते।।
वरदभ्रातर्मानुतापं कृषीष्ठाः।।४।।

भौमी- अब हनुमानजी भरतजी के प्रति कहते हैं-हे भरत भैया! आप चिन्ता न करें। श्रीराम सत्यप्रतिज्ञ, बन्धनों से रहित, कृपालु, दीनों के बन्धु, दीनों के आसमन्तात् नाथ, दीनों पर दया करने वाले हैं और हे श्रेष्ठकुल में प्रकट भरत! इसलिये आप शंका मत कीजिये। देवाधिदेव श्रीराम! आपके विरहसागर में रात-दिन मग्न रहते हैं। कीचड़ में फँसे हाथी की भाँति कभी भी शान्ति नहीं प्राप्त कर पाते। इसलिये हे सज्जनों के रक्षक

भरत! आप शोक मत कीजिये। श्रीराम निरन्तर आपका स्मरण करते हैं, आपके प्रति शोक करते हैं और आपको उसी प्रकार भजते हैं जैसे जीव भगवान को भजता है। हे श्रीभक्ति के प्रदानकर्ता भरत! आप मन में भय मत धारण कीजिये। श्रीराम सदैव भरत-भरत इसी नाम का जप करते हैं और **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम आपके यशों का निरन्तर व्याहरण करते रहते हैं। हे वैष्णवजनों को वरदान देने वाले भ्राता भरत! आप पश्चात्ताप मत कीजिये।

गीत संख्या-९

मातॄः प्रति भरतः

जनन्यः शृणुत समाचारं सपदि पश्यथ करुणागारम्।।
हनुमता संश्राविता कथा महितप्रभुविजयश्लथव्यथा।
समेतं स्वनुजं सद्दारं राममिह पश्यत सुकुमारम्।।१।।
निहतघटकर्णं महाबलं क्षपितदशमौलिं सुकौशलम्।
कुशलकौसल्यासुकुमारं राममिह पश्यत सुकुमारम्।।२।।
शक्रशरघातितघननादं लक्ष्मणेनैधितरिपुसादम्।
महीसुरसस्य सुधासारं राममिह पश्यत सुखसारम्।।३।।
अवधमायान्तं सहसीतं ससौमित्रिं गिरिधरगीतम्।
सकपिकटकं हृतभूभारं राममिह पश्यत सुकुमारम्।।४।।

भौमी- अब माताओं के प्रति भरतजी सम्बोधन करके कहते हैं-हे माताओं! समाचार सुनो। करुणा के भवन श्रीराम को शीघ्र ही निहारो। हनुमानजी ने प्रभु श्रीराम की कथा सुना दी है। अब आप लोग शीघ्र ही छोटे भाई लक्ष्मण और सीताजी से युक्त सुकुमार श्रीराम को निहारें। कुम्भकर्ण को मारने वाले महापराक्रमी रावण को नष्ट करने वाले अत्यन्त कुशल कौसल्याजी के पुत्र श्रीराम को यहाँ शीघ्र निहारिये। ऐन्द्रास्त्र से लक्ष्मण द्वारा मेघनाद का वध कराने वाले, शत्रुओं का विषाद बढ़ाने वाले, ब्राह्मण रूप खेती के लिये अमृतवर्षी मेघ के समान सुकुमार श्रीराम को आप यहाँ निहारें। सीताजी और लक्ष्मणजी के साथ अवध में पधारे हुये **गिरिधर** कवि के द्वारा गाये हुये, भू-भारहारी वानर सेना के साथ विराजमान सुकुमार श्रीराम को आप यहाँ शीघ्र निहारें।

गीत संख्या-१०

मातरो गायन्ति-

चल चल री अवधपुरनारि सीतारामौ वर्द्धयितुम्।
त्वर त्वर री अवधपुरनारि सीतारामौ वर्द्धयितुम्।।१।।
चिरप्रोषितौ पुरमायातौ वदनविभाव्रीडितवनजातौ।
धाव धाव री अवधपुरनारि सीतारामौ वर्द्धयितुम्।।२।।

वितनुत गृहे गृहे तोरणद्वारं रचयत प्रतिधाम मङ्गलाचारम्।
व्रज व्रज री अवधपुरनारि सीतारामौ वर्द्धयितुम्।।३।।
अभिशमयेमहि नेत्रपिपासां प्रपूरयेम मनोमृदुलाशाम्।
एहि एहि री अवधपुरनारि सीतारामौ वर्द्धयितुम्।।४।।
दर्शं दर्शं गिरिधरनाथं नेत्रं स्वं कुर्याम सनाथम्।
आव आव री अवधपुरनारि सीतारामौ वर्द्धयितुम्।।५।।

भौमी– माताएँ गा रही हैं– ऐ अवधपुरी की नारियों! सीतारामजी को बधाई देने के लिये चलो, चलो। अरे अवधपुर की नारियों! सीतारामजी को बधाई देने के लिये शीघ्रता करो, शीघ्रता करो। चौदह वर्ष के वनवास के पश्चात् अयोध्या में पधारे हुये अपने मुख की कांति से कमल को लजाने वाले सीतारामजी को बधाई देने के लिये अवधपुर की नारियों दौड़ो–दौड़ो। अरे अवधपुर की नारियों! घर–घर में तोरणद्वार सजाओ। प्रत्येक भवन में मंगलाचार करो। श्रीसीताराम को बधाई देने के लिये प्रस्थान करो, प्रस्थान करो। अरे अवधपुर की नारियों! हम अपने आँखों की प्यास बुझायें और मन की कोमल आशाएँ पूर्ण करें सीतारामजी को बधाई देने के लिए आओ–आओ। **गिरिधर** कवि के नाथ रघुनाथ को देख–देखकर हम अपने नेत्रों को सनाथ करें। अरे अवधपुर की नारियों! सीतारामजी को बधाई देने के लिये आओ, आओ।

विशेष– यह गीत ब्रजभाषा के बधाई गीत के ढाल पर निबद्ध है। इसका बोल है–

चलो चलो री सकल ब्रजनारि बधाई देवे लालन को।।

गीत संख्या–११

अथ तरुण्यो गायन्ति–

भाव्या भवितव्यता नान्यथास्ति नव्यता।
एकदिने आसीद् वनवास इमं पश्य राजतिलकम्।।
यस्य सुमूर्धनि पुरा विलसिता जटामुकुटकृतलेखा।
तस्य ललाटेऽद्यैव लसित्री राजतिलकशुभरेखा।।
भाव्या भवितव्यता नान्यथास्ति नव्यता।
एकदिने आसीद् वनवास इमं पश्य राजतिलकम्।।१।।
यस्य सुचरणौ पुरा स्म चलतः कठिने कण्टकविपिने।
तावेवाद्य सुखं भविष्यतो भव्ये हाटकभवने।।
भाव्या भवितव्यता नान्यथास्ति नव्यता।
एकदिने आसीद् वनवास इमं पश्य रामतिलकम्।।२।।
यस्य करौ श्रितकुशपवित्रिकौ पुरा कठिनतां यातौ।

ताविह कटकमुद्रिकामुदितौ भास्यत इमौ विभातौ।।
भाव्या भवितव्यता नान्यथास्ति नव्यता।
एकदिने आसीद् वनवास इमं पश्य राजतिलकम्।।३।।
यस्य शिरो रविदीधितितप्तं छत्रविहीनं दृष्टम् ।
गिरिधरप्रभोस्तस्य द्रक्ष्यामः सुभगच्छत्रं सृष्टम् ।।
भाव्या भवितव्यता नान्यथास्ति नव्यता।
एकदिने आसीद् वनवास इमं पश्य राजतिलकम्।।४।।

भौमी- अब युवती माताएँ गा रही हैं– भवितव्यता होकर ही रहती है, टलने पर नहीं टलती। एक दिन श्रीराम का वनवास हुआ था। अब यह राजतिलक देखो। जिनके मस्तक पर आज से पहले जटा–मुकुट की झाँकी दिखती थी, उन्हीं के मस्तक पर आज यह राजतिलक की रेखा सुशोभित होगी। होनी होकर ही रहती है, वहाँ कोई नया परिवर्तन नहीं होता। एक दिन श्रीराम का वनवास हुआ था, अब यह राजतिलक देखो। जिनके श्रीचरण आज से पहले कठिन कंटकाकीर्ण वन में भ्रमण करते थे, वे ही प्रभु श्रीराम के श्रीचरण भव्य कनक भवन में आज फूल और मखमल के स्तरणों पर सुशोभित होंगे। क्योंकि भवितव्यता होकर रहती है उसे टाला नहीं जा सकता। पहले वनवास और आज राजतिलक। जिनके श्रीहस्त आज से पहले वनवास काल में कुश की पवित्री धारण करके कठोर हो गये थे, वे ही कंकण–स्वर्णमुद्रिका धारण करके आज शोभित होते हुये भी और शोभित होंगे। क्योंकि भवितव्यता होकर रहती है, उसमें कोई दूसरे प्रकार की नवीनता नहीं होती। भवितव्यता ने एक दिन वनवास और आज राजतिलक घटा दिया। आज से पूर्व जिन श्रीराम के सिर पर कोई छत्र नहीं था और सूर्यनारायण की किरणों से वह तप्त हुआ करता था उन्हीं **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराम के सिर पर आज हम सूर्यवंश की परम्परा से प्राप्त सुन्दर छत्र के दर्शन करेंगी, क्योंकि भवितव्यता होकर ही रहती है। उसे टाला नहीं जा सकता। एक दिन श्रीराम का वनवास हुआ था आज यह राज्याभिषेक देखो।

विशेष- यह गीत एक पारम्परिक गीत की ढाल पर निबद्ध है, उसका बोल है–

'होनी होके रहती टाले नहीं टलती इक दिन हुआ था, वनवास आज देखो राजतिलक है।

गीत संख्या-१२

पुष्पकारूढो रामः सुग्रीवविभीषणौ प्रति-

पश्यतं सखायौ पुरीं अयोध्यां रम्याम्।
प्रणम्या यत्र सरयू राजते।।
सकलभुवनवन्दितोऽनिन्दितो भाति भारतो देशः।
तस्योत्तरभागे विराजते कोशलनामप्रदेशः।।
पश्यतं सखायौ योगिमुनीनां गम्याम्।।१।।
सप्तपुरीणां चूडामणिरिव नगरी लसत्ययोध्या।

इक्ष्वाकूद्वहराजराजधानी समवसत्ययोध्या।।
पश्यतं सखायौ महिमस्तके प्रणम्याम् ।।२।।
त्रेतारम्भे कार्तिकशुक्ले यानिरुपमानमम्याम्।
आयाता भारतं मदर्थं यानुपमाप्यनवम्याम्।।
पश्यतं सखायौ पुरीं तुरीयां नम्याम्।।३।।
अत्र सरव्याः दक्षिणे भागे जन्ममही मे भाति।
कोटिकोटिवर्षेभ्यो या हिन्दूनामास्थां पाति।।
पश्यतं सखायौ पुरीं सतां सङ्गम्याम्।।४।।
यत्र क्षणनिवासितो धीरो जयति सकलशुभराशिम्।
हसत्यनिन्द्या भववन्द्या मथुराप्रयागमथ काशीम्।।
पश्यतं सखायौ गिरिधरगीतनिगम्याम्।।५।।

भौमी- अब श्रीअवध के निकट आकर पुष्पकारूढ श्रीराम सुग्रीव-विभीषण को संबोधित करके कहते हैं। हे मित्रों! तुम दोनों मेरी इस रमणीय अयोध्यापुरी को देखो। जहाँ प्रणम्य सरयू माता विराज रही हैं। हे मित्रों! सम्पूर्ण लोकों में वन्दित और निन्दारहित हमारा भारत देश सुशोभित हो रहा है। उसी भारत के उत्तर भाग में कोसल नाम का प्रदेश सुशोभित हो रहा है। मित्रों! योगियों और मुनियों के आश्रयरूप इस अयोध्या को देखो, जहाँ पूज्य सरयू जी विराजती हैं। हे मित्रों! सात (७) मोक्षदापुरियों की चूड़ामणि के समान यह हमारी अयोध्या नगरी सुशोभित हो रही है। यही अयोध्या सभी इक्ष्वाकुवंशी राजाओं की राजधानी बनकर व्यवस्थित बसी हुयी है। हे मित्रों! पृथ्वी के मस्तक पर पूजनीय इस अयोध्या को देखो। जो त्रेता के आरम्भ में कार्तिक शुक्ल पक्ष में अनुपम नौमी तिथि को सभी उपमाओं और सादृश्यों से रहित होकर मेरे लिये भारतवर्ष में आयी। हे मित्रों! उसी मुझ तुरीयतत्व राम के भी आदरणीय और पूज्य इस अयोध्या को देखो जहाँ वन्दनीय सरयूजी विराज रही हैं। हे मित्रों! इसी श्रीअयोध्यापुरी में सरयूजी के दक्षिण भाग में मेरी जन्मभूमि विराजमान है। जो करोड़ों वर्षों से (न्यूनातिन्यून एक करोड़, अस्सी लाख, पचास हजार वर्षों से) हिन्दुओं की आस्था की रक्षा करती आ रही है। हे मित्रों! सन्तों के समागम से युक्त मेरी इस पुरी को देखो, जहाँ पूज्य सरयूजी विराज रही हैं। जहाँ एक क्षण भर निवास करके भी प्राणी सभी शुभ राशियों को जीत लेता है और निन्दारहित जगतवन्द्या अयोध्या मथुरा-प्रयाग और काशी की भी हँसी उड़ाती है। हे मित्रों! **गिरिधर** कवि के गीतों की निदर्शनारूप मेरी इस पुरी को देखो। जहाँ पूजनीय सरयू विराज रही हैं।

गीत संख्या-१३

यो द्वारे द्वारे गोमातुर्गोमयहुंकृत शुचिदेशः।
सोऽयं मम भारतदेशः सोऽयं मम भारतदेशः।।
यः काण्डे काण्डे खगपतिभिः कल्पितनवमीड्यो देशः।
सोऽयं मम भारतदेशः सोऽयं मम भारतदेशः।।

यस्मिन् सत्यं वद धर्मं चर, प्रथमं समुपदिशति वेदः।
वसुधैव कुटुम्बकमितिघोषो, यस्मिन् विलसति गतभेदः।।
आसिन्धुहिमालयमखण्डितो यो मङ्गलमयप्रदेशः।
सोऽयं मम भारतदेशः सोऽयं मम भारतदेशः।।१।।
यस्मिन् साधवोऽपि जगदर्थं कुर्वन्त्यस्थनामपि दानम्।
यस्मिन् राजापि कपोतार्थं कुरुते स्वामिषप्रदानम्।।
सर्वे भवन्तु सुखिनो नित्यं यस्यास्ति सुखदसन्देशः।
सोऽयं मम भारतदेशः सोऽयं मम भारतदेशः।।२।।
यस्मिन् शिशवो वै सिंहशिशुनामपि दन्तान् गणयन्ते।
यस्मिन् ललना निजपतिव्रततः स्वर्देवीरवगणयन्ते।।
सञ्जातुं यत्र सुराणामपि सम्भवत्सुत्सवोऽशेषः।
सोऽयं मम भारतदेशः सोऽयं मम भारतदेशः।।३।।
यस्मिन्नित्यं सञ्जाघटीति मातृतातातिथिगुरुभक्तिः।
सत्सङ्गपरोपकाररक्तिः सततं दुर्व्यसनविरक्तिः।।
यस्मिन् शाश्वतः समवतर्तुं नित्यं वाञ्छतिभुवनेशः।
सोऽयं मम भारतदेशः सोऽयं मम भारतदेशः।।४।।
यस्मिन् हरिरपि हरितक्रान्तिं समवतरति सदा चिकीर्षन्।
दण्डयन् खलान् रक्षन् साधून्, श्रुतिधर्मं समुद्दिधीर्षन्।।
भारतसंस्कृतिनिष्ठो भवति वेदानां यत्र निदेशः।
सोऽयं मम भारतदेशः सोऽयं मम भारतदेशः।।५।।
सूर्योऽपि प्रथमकिरणैरर्चति नित्यं यस्यप्रत्यूषम्।
चन्द्रमाः सदा पाययतेऽयं शुचिकरचषकैः पीयूषम्।।
गङ्गादिसरिद्भिः सुधाजलैरभिषिक्तप्रतिप्रदेशः।
सोऽयं मम भारतदेशः सोऽयं मम भारतदेशः।।६।।
यस्मिन् समाननागरिकसंहिता योऽस्ति धर्मसापेक्षः।
सत्तासद्भिः समनुशासिता यः सदा पान्थनिरपेक्षः।।
यो धर्मनियन्त्रितराजनीतिनिर्णीतशासनादेशः।
सोऽयं मम भारतदेशः सोऽयं मम भारतदेशः।।७।।

यस्मिन् मर्यादापुरुषोत्तमएकलनारिव्रतधारी।
वह्निं श्रीखण्डयते गिरिधरगीता पतिव्रता नारी।।
पादुका भूपः सचिवो भ्राता यत्राभितपत्यसुशेषः।
सोऽयं मम भारतदेशः सोऽयं मम भारतदेशः।।८।।

भौमी- जो द्वार-द्वार पर गोमाता के गोबर और हुँकारों से अपने विभाग को पवित्र करता रहता है, वही है—मेरा भारत देश। जो प्रत्येक वृक्ष की डाली पर श्रेष्ठ पक्षियों के घोंसलों से सुशोभित है वही है—मेरा भारत देश। जहाँ सत्यं वद-धर्मं चर अर्थात् सत्य बोलो-धर्माचरण करो इस प्रकार वेद सर्वप्रथम उपदेश देता है और जहाँ '**वसुधैव कुटुम्बकम्**' का उद्घोष (नारा) से सहित होकर सुशोभित हो रहा है और जो समुद्र से लेकर हिमालयपर्यन्त अखण्ड और मंगलमय प्रदेशों वाला है, वही मेरा भारत देश है। जिस देश में साधु लोग जगत कल्याण के लिये हड्डियों का भी दान कर देते हैं और जिस देश का राजा कबूतर की भूख मिटाने के लिये अपने शरीर के माँस को भी प्रदान कर देता है। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः'—सभी सुखी हों—(इस प्रकार का जिसका सुखद संदेश है), वही मेरा भारत देश है। जहाँ के बालक सिंह के बच्चे का दाँत गिनते हैं और जहाँ स्त्रियाँ अपने पतिव्रत से स्वर्ग की देवियों की भी हँसी उड़ाती हैं और जहाँ जन्म लेना देवताओं के लिये भी सम्पूर्ण उत्सवों का स्थान बन जाता है, वही मेरा भारत देश है। जिस भारत में माता-पिता-गुरु और अतिथि की भक्ति निरन्तर विद्यमान रहती है और जहाँ सत्संग और परोपकार में अनुराग होता है। और दुर्व्यसनों से जहां के लोगों का वैराग्य रहता है और जिस भारतवर्ष में शाश्वत होकर भी परमात्मा अवतार लेने की इच्छा करते हैं—मेरा वही भारत देश है। जहां श्रीहरि भी हरितक्रान्ति करने की इच्छा से अवतार लेते हैं और जहाँ दुष्टों को दण्ड देते हुए साधुओं की रक्षा करते हुये और वैदिक धर्म का उद्धार करने की इच्छा करते हुये अवतार लेते हैं और जहाँ वेद स्पष्ट आज्ञा करते हैं कि भारतीय संस्कृति में निष्ठा रखो, वही भारत मेरा देश है। सूर्यनारायण भी अपने प्रथम किरणों से जिसके प्रातःकाल की पूजा करते हैं और चन्द्रमा भी अपने किरण पात्रों से जिसे अमृत पिलाया करते हैं और गंगादि नदियाँ अपने अमृत-जल से जिसके प्रत्येक प्रदेश का सिंचन करती हैं, वही मेरा भारत देश है। जिसमें समान नागरिक संहिता की व्यवस्था है और जो निरन्तर धर्म-सापेक्ष रहता है, जिसकी सत्ता संतों से अनुशासित है और जो पन्थ-निरपेक्ष है और जिसमें राजनीति धर्म से नियंत्रित है, इस प्रकार जिसका शासनादेश निर्णीत है—वही मेरा भारत देश है। जिस भारत में मैं राम मर्यादा पुरुषोत्तम और एक नारीव्रत धारी हूँ और जहाँ **गिरिधर** कवि द्वारा गायी हुयी पतिव्रता नारी सीताजी अग्नि को भी चन्दन बना देती हैं और जहाँ का भ्राता पादुकारूप राजा का मंत्री बनकर केवल प्राणों को शेष रखता है, मेरा वही भारत देश है।

गीत संख्या-१४

पुष्पकादवतीर्य श्रीरामः प्रथमं वसिष्ठं प्रणमति-

प्रभु हो प्राणमद् गुरुं वसिष्ठम्।
पुष्पकतोऽवतीर्य सीतालक्ष्मणसहितः श्रुतिबोधवरिष्ठम्।।१।।
प्रणमन्तं विलोक्य रघुचन्द्रं मुनिरुत्थाप्य सस्वजे रामम्।

मन्ये पीतसरोरुहकोषो नीलोत्पलमभिदलमभिरामम्।।२।।
चुम्बं चुम्बं हरिमुखकमलं मुनिवृन्दारकोऽपि नो तृप्यति।
नूनं नवलनीरदं भानुर्मुहुर्लालयन् मनसि न दृप्यति।।३।।
पृष्टोऽनामयोऽथ कुलगुरुणा रामोऽवदन् निसर्गविनीतः।
सर्वं नो वार्तं यत्रास्ते मुनिर्दयालुर्गिरिधरगीतः।।४।।

भौमी- पुष्पक से उतरकर श्रीराम पहले वसिष्ठजी को प्रणाम करते हैं। इसके पश्चात् पुष्पक विमान से उतरकर सीताजी एवं लक्ष्मणजी सहित प्रभु श्रीराम ने वेदज्ञानियों में श्रेष्ठ वसिष्ठजी को प्रणाम किया। प्रणाम करते हुये रघुकुल के चन्द्रमा श्रीराम को देखकर उठकर मुनि वसिष्ठ ने उन्हें हृदय से लगा लिया। मुझे लगता है कि जैसे पीले कमल ने अत्यन्त सुन्दर अभीष्ट दल वाले नीलकमल को ही समेट लिया हो। प्रभु के मुखकमल को चूम-चूम कर मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजी तृप्त नहीं हो रहे हैं। निश्चित ही आज सूर्यनारायण नवीन नीले मेघ को दुलारते हुये अघा नहीं रहे हैं। कुलगुरु के द्वारा कुशल पूछे जाने पर **गिरिधर** कवि के गीतों के विषय स्वभाव से विनम्र श्रीराम बोले- जिन पर आप श्रीगुरुदेव मुनिवर दयालु हैं, ऐसे हम तीनों राम-लक्ष्मण-सीता का सब कुछ कुशल ही कुशल है।

विशेष- यह गीत सोलह मात्रा त्रिताल में निबद्ध है।

गीत संख्या-१५

श्रीरामलक्ष्मणौ कृतप्रणामावासास्यप्रणमन्तीं सीतां प्रति भगवती अरुन्धती-

त्वं समेधिषीष्ठाः सीते सती भवाखण्डसौभाग्यवती।।
वह्निज्वालाविशुद्धे विशुद्धव्रते सर्वदैवाविरुद्धेऽविरुद्धे रते।
त्वं प्रवर्धिषीष्ठाः प्रीते सती।।१।।
त्वत्पतिव्रतप्रभावेण रामो रणे सर्वरक्षांसि व्यजेष्ट विसङ्कटक्षणे।
त्वं विवर्धिषीष्ठाः स्फीते सती।।२।।
भारतीयं ललनादर्शं दर्शितवती रावणस्य वैभवं च पदा धर्षितवती।
शंवर्धिषीष्ठाः सीते सती।।३।।
त्वं शिशुर्यदि वा शिष्या यदसि तत्तथा त्वय्यरुन्धत्या वर्धते।
रतिरश्लथा व्यजेष्ठा गिरिधरगीते सती।।४।।

भौमी- प्रणाम किये हुये श्रीरामलक्ष्मण को आशीर्वाद देकर प्रणाम करती हुई सीताजी को सम्बोधित करके भगवती अरुन्धती कहती हैं। हे सती सीता! तुम्हारी सम्यक वृद्धि हो। तुम अखण्ड सौभाग्यवती रहो। हे अग्निज्वाला को भी शुद्ध करने वाली! हे पवित्रव्रत वाली! हे सदैव किसी से भी विरोध न करने वाली! और अविरुद्ध अर्थात् सभी जड़-चेतनों के विरोध से रहित श्रीराम में तन्मय, परमप्रसन्न सीते! तुम निरन्तर बढ़ती रहो। हे सर्वगुणों से सम्पन्न सती शिरोमणि! तुम्हारे ही पतिव्रत के प्रभाव से श्रीराम ने भयंकर क्षणों में भी सभी

राक्षसों को जीत लिया। तुम विशिष्ट वृद्धि को प्राप्त करो और सदैव अखण्ड सौभाग्यवती रहो। तुमने भारतीय महिला के श्रेष्ठ आदर्श के दर्शन कराये और तुमने अपने वाम चरण से रावण का वैभव कुचल दिया। हे सीते! अर्थात् जनकजी के हल के अग्र भाग से प्रकट होने वाली सती! तुम सदैव सब प्रकार से वृद्धिमती होओ और तुम्हारा सौभाग्य सदैव अखण्ड रहे। हे देवी! तुम मेरी पुत्री हो या शिष्या? जो भी हो वह रहो परन्तु तुममें मुझ अरुन्धती की भक्ति सुदृढ़ होती जा रही है। **गिरिधर** कवि के द्वारा अनेक गीतों में गायी गई तुम सीता ने सबको जीत लिया। विजयिनी बन गई। विजयश्री प्राप्त कर ली। सदैव अखण्ड सौभाग्यवती रहो।

विशेष– यह गीत गुजराती लोक धुन की ढाल में निबद्ध है, बोल हैं–

''तने साँचवे सीता सती अखण्डसौभाग्यवती''

सन्दर्भश्लोकः

अथ रघुपतिपादाम्भोजमाद्यन्मरन्दस्नपित -
तनुविराजत्पादुकोद्भासिभालम् ।
जनकदुहितृमातुः क्रोडमेवाश्रयन्तं
भरतमवनिरामो राम आश्लिक्षदेनम्।।१।।

भौमी– इसके पश्चात् रघुपति श्रीराम के चरणकमल के निस्पन्दमान प्रेममकरन्द से जिनका दिव्य शरीर स्नात है और जिनके मस्तक पर श्रीराम की पादुका विराजमान हैं, ऐसे जनकराज कन्या सीताजी की माता पृथ्वी की गोद का आश्रय लेते हुये भरतजी को भूमण्डल को रमाने वाले श्रीरामजी ने हृदय से लगा लिया।

गीत संख्या–१६

भरतभ्रातरं राम आश्लिष्यतीड्यम्।।
चरणे पतन्तं धरणौ निपतन्तम्।
विषमविरहबहलवह्निज्वालया ज्वलन्तम्।।
भरतभ्रातरं राम आश्लिष्यतीड्यम्।।१।।
आचतुर्दशाब्दमब्दमिवाम्भो वर्षन्तम्।
वर्षचातकं वा रूपपयसे तर्षन्तम्।।
भरतभ्रातरं राम आश्लिष्यतीड्यम्।।२।।
शिष्कं शिष्कं हिक्कं हिक्कं करुणं रुदन्तम्।
बाष्पवारिवर्षे सोरसताडं तुदन्तम्।।
भरतभ्रातरं राम आश्लिष्यतीड्यम्।।३।।
मुदा जानुबाहुभ्यामुत्थाप्य लम्बमानो।
गिरिधरेशो यथार्भं सस्नेहमम्बमानो।।
भरतभ्रातरं राम आश्लिष्यतीड्यम्।।४।।

भौमी– आज भैया भरत को रामजी हृदय से लगा रहे हैं। चरणों पर गिरते हुये, पृथ्वी पर लोटते हुये और विरह की भयंकर अग्नि ज्वाला में जलते हुये स्तुतियोग्य भाव में रत भरतजी को श्रीरामजी हृदय से लगा रहे हैं। चौदह वर्षपर्यन्त मेघ की भाँति अश्रुधारा की वर्षा करते हुये वर्षाकालीन चातक की भाँति रूप स्वाति जल के लिये तरसते हुए, भजन में निरत भाई भरत को श्रीराम हृदय से लगा रहे हैं। सिसक–सिसककर, हिचक–हिचककर अत्यन्त करुण–क्रन्दन करते हुये, आँसुओं की वर्षा करते हुये, छाती पीट–पीटकर रोते हुए भगवान राम में निरत स्तुति करने योग्य भरतजी को श्रीराम हृदय से लगा रहे हैं। **गिरिधर** कवि के ईश्वर श्रीराम आजानबाहुओं से भरतजी को उठाकर हृदय से लगाते हुये और एक माँ की भाँति दुलार करते हुये, भगवद्‌भक्तों में निरत भरत को श्रीराम हृदय से लगा रहे हैं।

विशेष– इस गीत में कवि ने श्लेष के माध्यम से प्रत्येक स्थायी में प्रयुक्त 'भरत' शब्द का नवीन अर्थ ही विकसित किया है।

गीत संख्या–१७

रामः परिष्वजत इह भरतम्।।
वनं प्रोषितः पुरं प्रोषितं दोर्भ्यां परिष्वजत इह भरतम्।।१।।
भुवि निपतन्तं मुहू रुदन्तं सन्तं परिष्वजत इह भरतम्।।२।।
धैर्यपादपं विलपन् दात्रैर्दान्तं परिष्वजत इह भरतम्।।३।।
विरह चेतसं गिरिधरहृदये भान्तं परिष्वजत इह भरतम्।।४।।

भौमी– श्रीराम आज भरतजी को हृदय से लगा रहे हैं। स्वयं वन में प्रेषित होकर (प्रवास किये हुए) प्रभु श्रीराम अयोध्यापुर में निवास करते हुये भी वनवास जैसा आचरण करते हुये भरतजी को दोनों भुजाओं से उठाकर हृदय से लगा रहे हैं। पृथ्वी पर गिरते हुये और बहुत अधिक रोते हुए सन्त भरतजी को श्रीराम हृदय से लगा रहे हैं। अपने विलापरूप कुल्हाड़ों से धैर्यरूप वृक्ष को काटते हुये, भरत जी को श्रीराम हृदय से लगा रहे हैं। विरहपूर्ण चित्त वाले और इसी रूप में **गिरिधर** कवि के हृदय में स्थित होकर शोभायमान भरतजी को श्रीराम हृदय से लगा रहे हैं।

विशेष– यह गीत सोलह मात्रा त्रिताल यमनकाल राग में निबद्ध है।

गीत संख्या–१८

सीताचरणवनजातं हो वन्दत इह भरतः।।
यद्‌दण्डकवनधरणिमण्डनं यत्सुरपतिसुतदुरितखण्डनम्।
जानकीचरणजलजातं हो वन्दत इह भरतः।।१।।
यत्कोसलनृपभवनभूषणं यत्सेवकदूषणविदूषणम्।
भौमीचरणसरो जातं हो वन्दत इह भरतः।।२।।
यन्मुनियोगिमनोमानसहंसं यन्नृपमैथिलवंशावतंशम्।
पार्थिवीचरणपयोजातं हो वन्दत इह भरतः।।३।।

यद् दशमुखनतिशत्कृतघातं समरुणं कविगिरिधरपारिजातम्।
मैथिलीचरणसलिलजातं हो वन्दत इह भरतः।।४।।

भौमी- सीताजी के श्रीचरणकमल को भरत जी यहाँ वन्दन कर रहे हैं। जो दण्डकवन की पृथ्वी के आभूषण बने और जिन्होंने इन्द्रपुत्र जयन्त के दोषों को भी समाप्त किया, जनकनन्दिनीजी के उन्हीं चरणकमलों को आज भरतजी वन्दन कर रहे हैं। जो कोसलराज के भवन के अलंकार बने और जिन्होंने सेवकों के दोषों को भी दूषित किया सीताजी के उन्हीं चरणकमलों को यहाँ भरतजी नमन कर रहे हैं। जो योगी-मुनियों के मनमानस सरोवर के हंस बने, जो मैथिलवंशी राजाओं के वंश के आभूषण कहलाये, पृथ्वीनन्दिनी सीताजी के उन्हीं चरणकमलों को आज भरतजी वन्दन कर रहे हैं। जिन्होंने रावण के करोड़ों नमस्कारों को कुचल दिया और जो **गिरिधर** कवि के लिये कल्पवृक्ष स्वरूप हैं, उन्हीं लाल-लाल मिथिलाधिराज कन्या सीताजी के चरणकमल को आज भरतजी नमन कर रहे हैं।

गीत संख्या-१९

रामं निरीक्ष्य कैकेयी हो लज्जमाना परिष्वजते।।
सीतालक्ष्मणाभ्यां कुशलमायातम्।
प्रणमन्तं सस्मितवदनवनजातम्।।
रामं प्रवीक्ष्य कैकेयी हो मज्जमाना परिष्वजते।।१।।
स्मारं स्मारं निरागसे दत्तं वनवासम्।
भावं भावं भर्तृमृत्युं लोकपरिहासम्।।
रामं परीक्ष्य कैकेयी हो सज्जमाना परिष्वजते।।२।।
देवं देवं भरतशीलसमुल्लसद्भक्तिम्।
नन्द्रिग्रामवासं तस्य भोगतो विरक्तिम्।।
रामं समीक्ष्य कैकेयी हो त्यज्यमाना परिष्वजते।।३।।
चिन्तं चिन्तं सीता क्लेशं तथा शून्यहरणम्।
श्रावं श्रावं गिरिधरप्रभो कराद्रक्षोमरणम्।।
रामं प्रतीक्ष्य कैकेयी हो भज्यमाना परिष्वजते।।४।।

भौमी- आज नमन करते हुये श्रीराम को देखकर लज्जित होती हुई कैकेयी हृदय से लगा रही हैं। सीताजी एवं लक्ष्मणजी के साथ सकुशल वन से लौटे हुये मन्द हासपूर्ण-कमलबदन श्रीराम को प्रणाम करते हुये देखकर लज्जा महासागर में डूबती हुई कैकेयी हृदय से लगा रही हैं। निर्दोष श्रीराम को दिये हुये वनवास का बार-बार स्मरण करके और पति दशरथजी की मृत्यु तथा लोक परिहास का बार-बार चिन्तन करके, श्रीराम की परीक्षा करके, संकोच से सिकुड़ती हुई कैकेयी हृदय से लगा रही हैं। भरतजी के शील और उससे सुशोभित भक्ति की बार-बार स्तुति करके और नन्दीग्राम में निवास और संसार के प्रति विरक्ति की बार-बार

प्रशंसा करके, श्रीराम की समीक्षा करके, कैकेयी अपने ही द्वारा स्वयं छोड़ी जाती हुई, श्रीराम को हृदय से लगा रही हैं। सीताजी के क्लेश का, सूनी कुटिया से उनके हरण का बार–बार चिन्तन करके और **गिरिधर** कवि के प्रभु श्रीराम के हाथों राक्षसों के मरण का बार–बार श्रवण करके, श्रीराम की प्रतीक्षा करके, कैकेयी अपने से ही टूटती हुई प्रभु को गले से लगा रही हैं।

गीत संख्या–२०

श्रीरामः कैकेयीं प्रति–

मातर्मा हृदि लज्जां धारय।।
अहं त्वदीयः पुत्रो मातर्मनसा दृढं निधारय।
सीतास्नुसा तवेयं सुमुखी सपदीमां श्रृङ्गारय।।१।।
नाभविष्यदथ चेद् वनवासः किमु सीतामहरिष्यत्।
नीचरावणो किमसौ युद्धे मद्बाणैरमरिष्यत्।।२।।
कथमभविष्यन् सुरा विशोका भूभारःकिमयास्यत्।
शक्रजितं हत्वाथ लक्ष्मणस्त्रीन् लोकान् किमपास्यत्।।३।।
किममोक्षन् सुरललना वन्द्यः कारागारजशोकम्।
अग्निविशुद्धां सीतामेत्य किमकरिष्यं निःशोकम्।।४।।
कथं रामराज्ये भारतवर्षे मङ्गलमाधास्यम्।
कथं गीतरामायणसौख्यं गिरिधरकवयेऽदास्यम्।।५।।

भौमी– अब श्रीरामजी कैकेयी के प्रति कहते हैं। हे माँ! आप अपने हृदय में लज्जा धारण न करें। मैं आपका बेटा हूँ यह बात मन में दृढ़पूर्वक निश्चित कर लीजिये। ये सुन्दर मुख वाली सीता जो आपकी पुत्रवधू हैं। इनको शीघ्र सजाइये। यदि यह वनवास न हुआ होता तो यह नीच रावण सीताजी का हरण कैसे करता और फिर मेरे बाणों से मरता कैसे? यदि आपके निमित्त यह बनवास न हुआ होता तो देवता निश्चिन्त कैसे होते? यह पृथ्वी का भार कैसे समाप्त होता? और इस वनवास के बिना लक्ष्मण इन्द्रजीत मेघनाद का वध करके तीनों लोकों की रक्षा कैसे करते? वनवास के बिना रावण के यहाँ बन्दी बनायी गई, देवियाँ अपना शोक कैसे छोड़तीं? और अग्नि में पवित्र सीता को प्राप्त कर मैं सभी को शोकरहित कैसे कर पाता? यदि वनवास न हुआ होता तो रामराज्य में मैं भारतवर्ष में मंगल का आधान कैसे कर पाता? और **गिरिधर** कवि को गीत रामायण का मैं सुख कैसे दे पाता?

गीत संख्या–२१

रामो मरकतश्यामो नमति कौसल्यासुमित्रे।
सीतानुजाभ्यां चरणान् स्पृष्ट्वा वात्सल्यभावाद् विचित्रे।।१।।

नामं नामं शुभपरिणामं शोभाशीलपवित्रे।।२।।
वन्दं वन्दं नितरामनिन्दे अनवद्ये अनघचरित्रे।।३।।
संवाहं संवाहं तच्चरणनलिने गिरिधरभवनिधिवहित्रे।।४।।

भौमी- मरकत के समान श्यामल श्रीराम, कौसल्या और सुमित्राजी को प्रणाम कर रहे हैं-सीताजी तथा लक्ष्मणजी के साथ चरणों को स्पर्श करके, श्रीराम वात्सल्य-भाव से विचित्र कौसल्या सुमित्राजी को नमन कर रहे हैं। सुन्दर परिणाम के साथ शोभा और शील से पवित्र कौसल्या-सुमित्राजी को प्रभु श्रीराम नमन करके पुनः प्रणाम कर रहे हैं। सदैव निन्दारहित, पापरहित, निर्दोष चरित्र वाली कौसल्या-सुमित्रा जी को प्रभु अनेक बार वन्दन करके प्रणाम कर रहे हैं। **गिरिधर** कवि के भवसागर के लिये जलयान के समान कौसल्या-सुमित्राजी के चरणकमलों को बार-बार चम्पन करते हुये (सेवाभाव से दबाते हुये) श्रीराम दोनों माताओं को नमन कर रहे हैं।

सन्दर्भश्लोकः

अथाभिषेकं रघुवंशकेतोः संयोजयिष्यन् द्विजमन्त्रिवर्यैः।
शुद्धं मुहूर्तं परिशोध्य विद्वान् विप्रानुवाचैव वशी वसिष्ठः।।१।।

भौमी- इसके पश्चात् ब्राह्मणों और श्रेष्ठ मंत्रिगणों के साथ रघुवंश के ध्वजस्वरूप श्रीराम के पट्टाभिषेक को आयोजित करते हुए, शुद्ध मुहूर्त का परिशोधन करके विद्वान् संयमी गुरु वसिष्ठ जी ब्राह्मणों से बोले।

गीत संख्या-२२

अनुज्ञां दत्त हे विप्रा भवतु रामो महाराजः।
शमाज्ञां दत्त हे विप्रा भवतु रामो महाराजः।।
नृपादेशात् द्विसप्ताब्दं वनं भुक्त्वा समायातः।
शुभाज्ञां दत्त हे विप्रा भवतु रामो महाराजः।।१।।
प्रजघ्ने रावणो रामेण सह बलबान्धवो युद्धे।
वराज्ञां दत्त हे विप्रा भवतु रामो महाराजः।।२।।
निरातङ्काकृता भारतमही रामेण निःसीमा।
मुदाज्ञां दत्त हे विप्रा भवतु रामो महाराजः।।३।।
अयोध्या भातु सन्नाथा लसितगिरिधरप्रभूद्‌गाथा।
निजाज्ञां दत्त हे विप्रा भवतु रामो महाराजः।।४।।

भौमी- हे ब्राह्मणों! अनुमति दो। श्रीराम अयोध्या के महाराज बनें। हे ब्राह्मणों! ठीक-ठीक आज्ञा दो श्रीराम महाराज बनें। महाराज का आदेश पालन करते हुये चौदह वर्षों का वनवास भोगकर श्रीराम अयोध्या पधार आये हैं, अब इन्हें महाराज बनने की शुभाज्ञा दो। श्रीराम द्वारा युद्ध में बन्धु-बान्धवों सहित रावण मारा

गया है। हे ब्राह्मणों! अब श्रेष्ठ आज्ञा दो। श्रीराम महाराजा बनें। हे ब्राह्मणों! श्रीराम ने भारतभूमि को सभी सीमाओं से रहित और आतंकवाद से रहित कर दिया है। अब तुम सब इन्हें महाराज बनने के लिये प्रसन्नता से आज्ञा दो। यह अयोध्या **गिरिधर** कवि के प्रभु श्रीराम की उत्कृष्ट गाथाओं से सुशोभित होती हुई परमात्मा श्रीराम रूप स्वामी से युक्त हो जाय। हे ब्राह्मणों! अब तुम अपनी आज्ञा दो। श्रीराम अवधराज सिंहासन पर आसीन होकर महाराज बनें।

गीत संख्या-२३

ब्राह्मणा ऊचुः-

कुर्वन्तु महाराजं रामं न विलम्बो वै भवता कार्यः।
तन्वन्तु नृपं मेघश्यामं न विलम्बो धर्मवता कार्यः।।
संग्रामे हतरावणं प्रभुं जगदेकधनुर्धरमाद्यविभुम्।
कुर्वन्तु नृपं सीतारामं न विलम्बो ज्ञानवता कार्यः।।१।।
आतंकवादरहितं देशं रामोऽकृत हतरक्षक्लेशम्।
कुर्वन्तु नृपं भुजबलधामं न विलम्बो ध्यानवता कार्यः।।२।।
महनीयगुणं रणकलाचणं भूसुताक्षणं क्षणविलक्षणम्।
कुर्वन्तु नृपं रामारामं न विलम्बो वेदवता कार्यः।।३।।
राघवाभिषेको विधीयतां मङ्गलं गिरिधरेण गीयताम्।
कुर्वन्तु नृपं हरिमभिरामं न विलम्बो नियमवता कार्यः।।४।।

भौमी- अब ब्राह्मण कहने लगे- आप अब श्रीराम को महाराज बनायें। इस समय आप विलम्ब न करें। मेघवर्णी श्रीराम को राजा बनायें। आपश्री धार्मिक वसिष्ठ द्वारा विलम्ब न किया जाय। संग्राम में रावण का वध किये हुये सर्वसमर्थ संसार के अद्वितीय धनुर्धर आद्यविभु अर्थात् तुरीयावस्था के विभु परमेश्वर सीतापति श्रीराम को राजा बनाइये। हे ज्ञानवान! आप विलम्ब न करें। श्रीराम ने राक्षसों के क्लेश से रहित करके इस भारत देश को भी आतंकवाद से रहित कर दिया है। अतः बाहुबल के आश्रय श्रीराम को राजा बनायें। हे ध्यानवान गुरुदेव! इस सम्बन्ध में विलम्ब न किया जाय। पूजनीय गुणों वाले, युद्ध में कुशल भूमिनन्दिनी सीताजी को महोत्सव प्रदान करने वाले और प्रत्येक क्षण को विलक्षण बनाने वाले, परशुराम को भी आनन्दित करने वाले, श्रीराम को अवध का राजा बनायें। हे वेद-निधान! आपके द्वारा विलम्ब न किया जाय। अब श्रीराम का पट्टाभिषेक किया जाय और **गिरिधर** कवि के द्वारा भी मंगल गान किया जाय, सबको सुख देने वाले श्रीहरि भगवान राम को आपश्री महाराज बनायें। हे नियमवान! अब किसी प्रकार का विलम्ब न करें।

विशेष- यह गीत हमारे बाल्यकाल में प्रचलित एक प्रार्थना गीत की ढाल पर निबद्ध है, बोल है- वह शक्ति हमें दो दयानिधे कर्तव्य मार्ग पर डंट जावें।

गीत संख्या-२४

गायति कविः-

अद्य अयोध्यायां वर्द्धते वर्द्धापनं वर्द्धापनं राघवाभिषेको रामराज्याभिषेकः।।
हत रावणो रामो वनवासादागतः सीतालक्ष्मणाभ्यां समं सखिभिश्च संयुतः।
अद्य अयोध्यायां वर्तते वर्द्धापनं वर्द्धापनं राघवाभिषेको रामराज्याभिषेकः।।१।।
वर्षन्ति मुदिताः प्रसूनानि देवाः गायन्त्यो नृत्यन्त्यो देव्यः प्रस्तुवन्ति सेवाः।
अद्य अयोध्यायां वाद्यते वर्द्धापनं वर्द्धापनं राघवाभिषेको रामराज्याभिषेकः।।२।।
तोरणादिभिः पुरीं च सज्जयन्ति नागराः हेमघटैरंशुमन्तं लज्जयन्त्युज्जागराः।
अद्य अयोध्यायां धीयते वर्द्धापनं वर्द्धापनं राघवाभिषेको रामराज्याभिषेकः।।३।।
नृत्यन्ति कूर्दन्ते गायन्ति लोकाः वर्द्धन्ते वर्द्धयन्ते प्रहसन्त्यशोकाः।
अद्य अयोध्यायां दीयते वर्द्धापनं वर्द्धापनं राघवाभिषेको रामराज्याभिषेकः।।४।।
स्नातानुलिप्ता योषाः श्रृगारयन्ते गिरिधरप्रभुं निहार्य सर्वं वारयन्ते।
अद्य अयोध्यायां गीयते वर्द्धापनं वर्द्धापनं राघवाभिषेको रामराज्याभिषेकः।।५।।

भौमी- कवि स्वयं गा रहे हैं-आज अयोध्या में बधाई हो रही है, बधाई हो रही है। यहाँ राघवजी का पट्टाभिषेक हो रहा है, श्रीराम का राज्याभिषेक हो रहा है। रावण का वध करके श्रीसीता लक्ष्मणजी के साथ तथा अपने मित्र राक्षस वानर-भालुओं को लेकर श्रीराम वनवास-पूर्ण करके अयोध्या पधार आये हैं। आज अयोध्या में बधाई सम्पन्न हो रही है। देवता प्रसन्न होकर पुष्पवर्षा कर रहे हैं और देवियाँ नाचती हुई, गाती हुई अपनी सेवाएँ प्रस्तुत कर रही हैं। आज अयोध्या में बधाइयाँ बज रही हैं। श्रीराम का पट्टाभिषेक हो रहा है। आज लोग शोकरहित होकर नाच रहे हैं, कूद रहे हैं, गा रहे हैं, हँस रहे हैं, बधाई ले रहे हैं और बधाई दे रहे हैं। आज अयोध्या में श्रीराम को बधाई दी जा रही है। श्रीराम का पट्टाभिषेक हो रहा है। अवध की महिलाएँ स्नान करके सुन्दर अंग रागों से अनुलेपन करके सोलह श्रृंगारों से स्वयं को श्रृंगारित कर रही हैं। **गिरिधर** कवि के प्रभु श्रीराम को निहार-निहारकर उन पर अपना सर्वस्व लुटा रही हैं। आज अयोध्या में बधाई के गीत गाये जा रहे हैं। श्रीराघव का पट्टाभिषेक हो रहा है। श्रीराम का राज्याभिषेक हो रहा है।

गीत संख्या-२५

अद्य सीतारामौ दम्पती निहारयामहे।
दिव्यौ पूर्णकामौ दम्पती निहारयामहे।।
रत्नपीठे समासीनौ चन्दनानुलिप्तौ।
वसिष्ठेन द्विजैर्देवैर्मङ्गलाभिषिक्तौ।।
गौरश्यामौ राजदम्पती निहारयामहे।।१।।

दिव्यदिव्यनव्यनव्यभव्यभव्यभावतः ।
भूषणैरदूषणैर्विभूषितौ स्वभावतः।।
लोकरामौ नव्यदम्पती निहारयामहे।।२।।
कनकसिंहासने वसिष्ठेन निवेशितौ।
श्वेतच्छत्रमुकुटादिभिश्च परिवेशितौ ।।
आत्मारामौ भव्यदम्पती निहारयामहे।।३।।
प्रथमं वसिष्ठमुनिना विहिततिलकौ।
गिरिधरप्रभू भूविभूती मेचकालकौ।।
अभिरामौ ब्रह्मदम्पती निहारयामहे।।४।।

भौमी- आज श्रीसीताराम राजदम्पती को हम निहार रहे हैं और अलौकिक पूर्णकाम दम्पती अर्थात् महारानी-महाराजा को हम निहार रहे हैं। आज रत्नजटित सिंहासन पर विराजमान, चंदन चर्चित वसिष्ठजी ब्राह्मण और देवताओं द्वारा मंगल-जल से अभिषिक्त गौर-श्याम सीतामहारानी एवं महाराज रामजी को हम निहार रहे हैं। लोकोत्तर नये-नये-कल्याणमय-भावों से स्वभावतः दोषरहित, आभूषणों से विभूषित लोक को आनन्द देने वाले, इन नित्य नवीन दम्पती सीतारामजी को हम निहार रहे हैं। कनक सिंहासन पर वसिष्ठजी द्वारा विराजमान कराये हुये श्वेत-छत्र-मुकुट आदि राजकीय अलंकारों से सजाये हुये जीवात्माओं के भी उद्यान स्वरूप कल्याणमय दम्पती को आज हम निहार रहे हैं। सर्वप्रथम ब्रह्मर्षि वसिष्ठजी द्वारा जिन महारानी सीता और महाराज श्रीराम को तिलक किया गया है, ऐसे **गिरिधर** कवि के स्वामिनी और स्वामी, ठकुरानी-ठाकुर पृथ्वी पर चतुष्पाद विभूति के रूप में प्रकट नीले घुँघुराली अलकों वाले, सभी को आनन्द देने वाले, परब्रह्म स्वरूप दम्पती महारानी सीता और महाराज राम को हम निहार रहे हैं।

गीत संख्या-२६

मणिकनकमयसिंहासने राजाधिराजो राजते।
सहसीतया च नृपासने रघुराजराजो राजते।।
शतकोटिमन्मथसुन्दरो भवभीमवारिधिमन्दरो।
भूपालपूगपुरन्दरो रणहतसकुलदशकन्धरो।।
गुरुक्लृप्तपूतमहासने राजाधिराजो राजते।।१।।
रविविपुलमुकुटो ललिततिलकः कलितकाञ्चनकुण्डलः।
किसलाधरो दाडिमरदो मुखजितशरदविधुमण्डलः।।
पट्टाभिषेकवरासने राजाधिराजो राजते।।२।।
रामो मिहिरकुलभूषणो नृपराजराजसुभूषणो।
हतदूषणो जितदूषणो मैथिलीकण्ठविभूषणो।।।

भारतभविष्यधरासने राजाधिराजो राजते।।३।।
केयूरकङ्कणसल्लसत्पाणिः करेसधनुश्शरः।
कापोतकण्ठे कौस्तुभः श्रीवत्सवक्षाः श्रीधरः।।
त्रैलोक्यभद्रकरासने राजाधिराजो राजते।।४।।
वामाङ्गविलसितसीतया श्लिष्टो नितान्तप्रतीतया।
तापिच्छ इव कलकनकवल्या प्रीतया श्रुतिगीतया।।
गिरिधरसुगीतगिरासने राजाधिराजो राजते।।५।।

भौमी- मणिजटित स्वर्णमय सिंहासन पर राजाधिराज श्रीराम सुशोभित हो रहे हैं, अयोध्या के राजसिंहासन पर सीताजी के सहित रघुवंश के सर्वश्रेष्ठ राजा श्रीराम सुशोभित हो रहे हैं। अनन्त कोटि कामदेवों के समान सुन्दर, भयंकर भवसागर के मन्दराचल स्वरूप, राजसमूहों के इन्द्र, युद्ध में रावण के वधकर्ता, राजाधिराज श्रीराम, गुरुदेव द्वारा व्यवस्थित, पवित्र, पूज्य राज-सिंहासन पर विराज रहे हैं। करोड़ों सूर्यों के समान, प्रकाशमान मुकुट धारण किये हुये, सुन्दर तिलक से सुशोभित, स्वर्णमय कुण्डल धारण किये हुये, पल्लव के समान ओष्ठ और अनार के समान दाँत वाले, मुख से शरदकालीन चन्द्र मण्डल को जीतने वाले, राजाधिराज श्रीराम पट्टाभिषेक सम्बन्धी श्रेष्ठ राज-सिंहासन पर विराज रहे हैं। सूर्यकुल के आभूषण, राजाओं के राजा, कुबेर के भी राजा, शिवजी के आभूषण, निर्दोष, दूषण शत्रु के विजेता, सीता के कंठाभूषण, राजाधिराज श्रीराम भारतीय भविष्य के आधार स्वरूप सिंहासन पर विराज रहे हैं। केयूर और कंकण से सुशोभित, श्रीहस्त वाले, हाथ में धनुर्बाण धारण किये हुये और कपोत जैसे कण्ठ पर कौस्तुभमणि तथा वक्ष पर श्रीवत्सलांछन धारण किये हुये, सीतापति राजाधिराज श्रीराम तीनों लोकों का कल्याण करने वाले, सिंहासन पर विराज रहे हैं। अत्यन्त विश्वस्त वामांग में सुशोभित सीताजी से उसी प्रकार आलिंगित हो रहे हैं मानों प्रसन्न वेदों द्वारा गायी हुयी स्वर्णलता से आलिंगित तमाल ऐसे राजाधिराज श्रीराम **गिरिधर** कवि के गीतों से सुशोभित वाणीमय सिंहासन पर विराज रहे हैं।

विशेष- इसे रूपकताल सप्त मात्रा में और दरबारी राग में निबद्ध किया गया है।

गीत संख्या-२७

जयति रामचन्द्रो राजाधिराजः।
जयति रघुचन्द्रो राजाधिराजः।।
कनकसिंहासने सीतासमेतः।
समासीनो दीनबन्धुः करुणानिकेतः।।
सर्वश्रेष्ठगुणोपेतो महाराजः।।१।।
शशिकरछत्रधरः काञ्चनकिरीटः।
मकराकृतकुण्डलो निहतखलकीटः।।
रघुकुलकुमुदविमलद्विजराजः ।।२।।

केयूरकङ्कणकलितबाहुदण्डो ।
हस्तिहस्तहस्तलसितकाण्डकोदण्डो ।।
महाबलपराक्रमव्राजो रघुराजः।।३।।
श्रीवत्सवक्षसि विराजमानहारो।
विपुलकोटिमन्मथमथनश्रीशृङ्गारः ।।
सज्जनसरोरुहतरुणदिनराजः ।।४।।
रत्नमणिमहार्घवसनभूषणपरीतः ।
पार्वतीशवाहनांशयज्ञोपवीतः ।।
गिरिधरगीतगीतो विजितऋतुराजः।।५।।

भौमी- राजाधिराज श्रीरामजी की जय हो रही है। रघुकुल के चंद्रमा राजाधिराज की जय हो रही है। स्वर्ण के सिंहासन पर सीताजी के सहित आसीन दीनबन्धु, करुणा के भवन, सर्वश्रेष्ठ गुणों से युक्त महाराज राम की विजय हो रही है। चन्द्र के समान छत्र धारण किये हुये, सुवर्ण मुकुट से सुशोभित, मकराकृत कुण्डल से अलंकृत, राक्षस रूप कीड़ों को मारने वाले, रघुकुल कुमुद के निर्मल चन्द्रमा श्रीराम की जय हो रही है। केयूर और कंकण से सुशोभित, भुजदण्ड हाथी के सूँड के समान श्रीहस्त में बाण-धनुष धारण किये हुये, महाबल और पराक्रम के पुंज श्रीराम की जय हो रही है। वक्षस्थल पर श्रीवत्सलांछन और हार से सुशोभित, अनन्त कामदेवों के मद को हरने वाले, श्रीजी को सुशोभित करने वाले, भक्तकमलों के विकासार्थ बाल सूर्यस्वरूप राजाधिराज की जय हो रही है। रत्नों-मणियों से जटित, बहुमूल्य वस्त्रों-आभूषणों से सुसज्जित और पार्वतीपति शिवजी के वाहन नन्दी रूप धर्म के अंशीभूत, परमधर्म का यज्ञोपवीत धारण करने वाले, **गिरिधर** कवि की वाणी से सदैव गाये जाने वाले, आभूषणों की सज्जा से वसंत को भी जीतने वाले राजाधिराज श्रीराम की जय हो रही है।

विशेष-यह गीत "**भक्तों के राजा श्याम मोरे आजा**" इस गीत के ढाल पर है।

गीत संख्या-२८

जयति राघवो रामराजेन्द्रराजाधिपो रघुवरो रक्षिताशेषलोकः।
उत्तमश्लोकस्त्रैलोक्यशोकापहो नाशिताशेषसुरवृन्दशोकः।।१।।
जयति वृन्दारकानतनिखिलमुनिनिकरविनतपदपद्मपीठः खरारिः।
देवदेवः परब्रह्म पुरुषोत्तमो मधुरमूर्तिर्महादानवारिः।।२।।
जयति व्यापको व्याप्य एकोऽद्वितीयोऽनुपमभूतिकृतभूतिभृतभूतिहारी।
निर्गुणः सगुण उपमारहित ईश्वरो रोमरोमाण्डशतकोटिधारी।।३।।
जयति सुरनागकिन्नरमहामुनिनिकरयक्षगन्धर्वजेगीयमानः।
भूमिजाचारुलोचनचकोरकचकितद्वारतो मुदितपेपीयमानः।।४।।

जयति खलदण्डदाता महितदण्डको दण्डकारण्यवीथीविहारी।
प्रवलभुजदण्डकोदण्डशरचण्डधरगिरिधरत्रासभवभीतिहारी ।।५।।

भौमी- रघुकुल में प्रकट राम राजेन्द्र राजाओं के भी राजा, रघुकुल में ज्येष्ठ, सभी लोकों की रक्षा करने वाले, उत्तम यश वाले, तीनों लोकों का शोक नष्ट करने वाले, सम्पूर्ण देवताओं का शोक नष्ट करने वाले, राजाधिराज श्रीराम की जय हो रही है। विनम्र देवता, सम्पूर्ण मुनिवृन्द द्वारा जिनके चरण पादुका को नमन किया गया है, ऐसे खर के शत्रु देवताओं के भी देवता, परब्रह्म मर्यादा पुरुषोत्तम, मधुर मूर्ति, खर नामक राक्षस के शत्रु और महान दानवों के शत्रु श्रीराम भगवान की जय हो। ज्ञानियों के लिये व्यापक, भक्तों के लिये व्याप्य, एक अद्वितीय उपमारहित, भक्तों का ऐश्वर्य बढ़ाने वाले, स्वयं ऐश्वर्यों का पालन करने वाले, निर्गुण-सगुण सभी उपमाओं से रहित पाँचों क्लेशों से रहित ईश्वर और प्रत्येक रोम में कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों को धारण करने वाले श्रीराम की जय हो। देवता, नाग, किन्नर, महामुनि, यक्ष और गन्धर्वों द्वारा बार-बार गाये जाते हुए पृथ्वीपुत्री सीताजी के सुन्दर नेत्ररूप चकोरों द्वारा प्रसन्नतापूर्वक पीये जाते हुए श्रीरामचन्द्र की जय हो। खलों को दण्ड देने वाले, दण्डक वन को पवित्र करने वाले, दण्डक वन की गलियों में भ्रमण करने वाले, प्रबल भुजदण्ड में धनुष एवं दिव्य बाण धारण करने वाले, **गिरिधर** कवि के त्रास और भय को हरने वाले दण्डक बिहारी श्रीराम जी की जय हो।

विशेष- यह गीत दण्डक वृत्त में निबद्ध है।

गीत संख्या-२९

जयति कम्रकल्याणकोसलसुतागर्भपाथोधिभवभवविभवचारुचन्द्रः।
जानकीचारुलोचनचकोरकनिखिलसुजनकैरवसुखदरामचन्द्रः।।१।।
जयति सगुणसाकारविग्रहनिखिलदनुजनिग्रहनिरन्तरमहितवेदसेतुः।
सच्चिदानन्द आनन्दकन्दाकरोद्रुहिणसुततनयसुतवंशकेतुः।।२।।
जयति मुनिकौशिकाध्वरसुरक्षणकुणपकदनचणमुनिवधूशापहर्ता।
जानकीवरस्वयंवरत्रिपुरहरधनुर्मथनभृगुवर्यगर्वापहर्ता ।।३।।
जयति सीतासमर्पित विजयमालिकाललितमिथिलानगरमोदकारी।
सीरकेतूत्तमानन्ददाता रुचिररुपमोहितसकलपुरुषनारी।।४।।
जयति दशरथनिदेशैकपालनविपिनगमनशुचिचित्रकूटद्रिकाशी।
भरतभावैकसाक्षी प्रहितपादुकः पादपद्मार्चनाभीतिनाशी।।५।।
जयति कुविराधखरत्रिशिरदूषणकदनविहितदशवदनभगिनीविरूपः।
नीचमारीचमर्दनजनकजाहरणविरहसुविलापमनुजानुरूपः ।।६।।
जयति जटायुर्महाश्राद्धकर्ता शबरिकारुचिरकन्दफलमूलभक्षी।
चरणपङ्कजमहितपवनसुतपृष्ठको निहतहरिशूनुहरिशूनुरक्षी।।७।।

जयति दत्तमुद्रिकहनूमद्विवर्धितवलो लङ्घिताम्भोधिरिपुनगरदाही।
घातिताक्षोन्मथितवनवलागारभटचूड़ामणिदेशसंदेशवाही ।।८।।
जयति वद्धसेतुर्महारणनिहतरावणो वह्निशुद्धश्रिया प्रेक्ष्यमाणः।
पुष्पकारूढरामो घनश्यामलः सुकविगिरिधरगिरापेक्ष्यमाणः।।९।।

भौमी- सुन्दर कल्याणमय, कौसल्या के गर्भरूप, क्षीरसागर से उत्पन्न, संसार का जन्म, पालन, संहार करने वाले, पूर्णचंद्रमा, जानकीजी के सुंदर नेत्ररूप चकोर तथा सभी सज्जनरूप कुमुदों को सुख देने वाले श्रीरामचन्द्र की जय हो। सगुण-साकार, मानव विग्रह, दनुजवंश का निग्रह करने वाले, वैदिक सेतु की निरंतर रक्षा करने वाले, सच्चिदानंद, आनंद के मेघों की खानि और ब्रह्मपुत्र मरीचि के भी पुत्र कश्यप के पुत्र सूर्यनारायण के कुल के दिव्य पताका, आपकी जय हो। विश्वामित्र के यज्ञ के रक्षक, राक्षस वध में निपुण, अहल्या के शापहारी, सीतापति और सीता के श्रेष्ठ स्वयंवर में शिवजी का धनुष तोड़ने वाले, परशुराम के गर्वहर्ता श्रीराम की जय हो। सीताजी द्वारा समर्पित, श्रेष्ठ जयमाला से सुशोभित, मिथिला नगर को आनंद देने वाले, जनकजी के उत्तम आनंददाता और सुंदररूप से नगर के नर-नारियों को मोहित करने वाले श्रीराम की जय हो रही है। दशरथजी के आदेश के एकमात्र पालनकर्ता, वनगमनकर्ता, पवित्र चित्रकूट पर्वत पर निवास करने वाले, भरतजी के भावों के एकमात्र साक्षी, पादुका प्रदान करने वाले और चरणकमल के पूजन से भय को नष्ट करने वाले प्रभु श्रीराम की जय हो रही है। विराध, खर, त्रिशिरा, दूषण का वध करने वाले, रावण की बहन को कुरूप करने वाले, नीच मारीच का वध करने वाले, सीताजी के हरण से उत्पन्न विरह में मनुष्य के अनुरूप विलाप करने वाले श्रीराम की जय हो रही है। जटायु का महाश्राद्ध करने वाले, शबरी के सुंदर कंद-मूल-फल खाने वाले, अपने चरणकमल से हनुमानजी की पीठ को सम्मान देने वाले, हरिशूनु अर्थात् इन्द्रपुत्र बालि को मारने वाले और हरिशूनुरक्षी अर्थात् सूर्यपुत्र सुग्रीव की रक्षा करने वाले श्रीराम की जय हो रही है। मुद्रिका देकर हनुमानजी का बल बढ़ाने वाले, हनुमानजी द्वारा सागर का लंघन कराने वाले और हनुमानजी द्वारा ही लंका को भस्मसात् कराने वाले, श्रीहनुमान द्वारा अक्ष का वध कराने वाले, अशोक वाटिका, सेना, भवन और वीरों को तहस-नहस कराने वाले और चूड़ामणि के द्वारा स्वयं अपना संदेश हनुमान जी द्वारा मँगवाने वाले श्रीराम की जय हो रही है। समुद्र में सेतु बँधाकर, भयंकर युद्ध में रावण का वध करने वाले, अग्नि को शुद्ध करने वाली और दस महीने पर्यन्त अग्नि में निवास करके प्रगटी हुयी सीताजी द्वारा देखे जा रहे, मेघ के समान श्यामल, कविश्रेष्ठ **गिरिधर** की वाणी से अपेक्षित होते हुये पुष्पक विमान पर विराजमान श्रीराम की जय हो रही है।

गीत संख्या-३०

जयति जानकीचारुलोचनचकोरकविधुर्विधुविधू राघवो रामचन्द्रः।
घोरसंयुगदमितदुष्टदशकन्धरो मृगपकलकन्धरो रामभद्रः।।१।।
जयति मुनिवरवसिष्ठप्रहितदिव्यतमतिलकसँल्लसितमञ्जुलललाटः।
सीतया प्रीतया जुष्टसिंहासनो हंस इव सूर्यबिम्बेवराटः।।२।।

जयति भरतार्पितच्छत्रसम्भूषितः सौम्यसौमित्रिश्रितचामराढ्यः।
शत्रुसूदनधृतव्यजनलङ्काधिपतिधृतधनू राजसद्गुणधनाढयः।।३।।
जयति हरिसुतसुतासिर्मरून्नन्दनप्रोल्लसच्चारुचर्मा नृपेन्द्रः।
सूर्यसुतशक्तिको वायुसुतभक्तिको भावुकैर्भावितो राघवेन्द्रः।।४।।
जयति विश्वविश्रुतविभूतिर्विभुर्भूतिमान्भूतिभूतिश्चतुष्पाद्विभूतिः।
सत्यसन्धो जगन्मङ्गलोतिः प्रभुर्ब्रह्मवेदान्तवेद्यानुभूतिः।।५।।
जयति लोकपालेशदिक्पालनरपालसुरपालभूपालमणिजुष्टपादः।
राजराजेन्द्रभूपेन्द्रमनुजैकमणिरीड्यगौरवसमितसद्विषादः ।।६।।
जयति वर्णाश्रमाचारवैदिकविहितधर्ममर्यादयामहितलोकः।
सर्वजनहितकरः सर्वजनसुखपरः परमकरुणाक्षपितसर्वशोकः।।७।।
जयत्येकपत्नीव्रतो लोकरक्षणरतो लोकशिक्षणरतो रामभद्रः।
नित्यसन्न्यस्तहेयप्रतीकेड्यगुणसदनविधुवदनशोभासमुद्रः ।।८।।
जयति विश्वविख्यातशासनप्रशासनरामराज्यजनरञ्जनो महाराजः।
भिक्षते भिक्षुको गिरिधरः पदरतिं रातु शं रातु राजाधिराजः।।९।।

भौमी– सीता जी के सुंदर नेत्ररूप चकोर के चन्द्रमा और विधु विधु अर्थात् विष्णु के भी विष्णु, रघुकुल में प्रकट श्रीरामचन्द्र की जय हो रही है। घोर युद्ध में दुष्ट रावण का दमन करने वाले, सिंह के समान कंधरा वाले रामभद्र की जय हो रही है। मुनिवर वसिष्ठ द्वारा किये हुये दिव्यतम तिलक से जिनका सुंदर ललाट सुशोभित हो रहा है, प्रसन्न सीताजी से जिनका सिंहासन शोभित है, जैसे सूर्यमंडल में हंसिनी के सहित हंस हो ऐसे राजाधिराज की जय हो। भरतजी के द्वारा अर्पित छत्र से सुशोभित, सौम्य सुमित्रापुत्र लक्ष्मण के द्वारा चलाये जा रहे, चामर से सुशोभित, शत्रुघ्न के द्वारा लिये हुये पंखे एवं विभीषण द्वारा लिये हुये धनुष एवं अन्य राज्यगुणों से सुशोभित श्रीराम की जय हो रही है। इन्द्र के पौत्र अंगद ने जिनकी तलवार ले रखी है, मरुतपुत्र हनुमान ने जिनकी ढाल सम्भाल रखी है तथा सूर्यपुत्र सुग्रीव ने जिनकी शक्ति पकड़ कर रखी है, हनुमानजी की भक्ति से युक्त और भावुकों से पूजित राजाओं में श्रेष्ठ राघवेन्द्र श्रीराम की जय हो रही है। विश्व में प्रसिद्ध विभूति वाले, सर्वव्यापक, षड़ैश्वर्य सम्पन्न, ईश्वरों के भी ईश्वर, चतुष्पाद विभूति, सत्यप्रतिज्ञ और जगन्मंगलकारिणी लीला करने वाले, प्रभु सर्वसमर्थ, परब्रह्म परमात्मा, वेदान्त विद्या की अनुभूतियों से युक्त प्रभु श्रीराम की जय हो। श्रेष्ठ लोकपाल, दिग्पाल, राजा इन्द्र एवं पृथिवी के पालक भूपालमणियों द्वारा जिनके चरणकमलों की सेवा की गयी है, राजाओं के भी राजाओं से श्रेष्ठ और मनुष्य के एकमात्र श्रेष्ठमणि और स्तुति करने योग्य गौरव संतों का विषाद नष्ट करने वाले श्रीराम की जय हो। वर्णाश्रम संबंधी आचरण और वेदविहित धर्म की मर्यादा से इस लोक की पूजा करने वाले, सभी का हित करने वाले, सभी के सुख के एकमात्र परायण और अपनी दिव्य करुणा से सबका शोक नष्ट करने वाले श्रीराम की जय हो। एकपत्नी व्रतधारी, लोक के रक्षण में परायण और लोक के शिक्षण में लगे हुये, निरंतर हेय प्रत्यनीक गुणों को छोड़ देने वाले और सद्गुण के सागर,

चन्द्रमुख, शोभा के समुद्र रामभद्र की जय हो। जिनका शासन और प्रशासन विश्वविख्यात है, ऐसे रामराज्य के प्रवर्तक, लोगों को आनन्द देने वाले महाराज आपकी जय हो। भिक्षुक **गिरिधर** आप श्रीराम के चरणप्रेम की भिक्षा माँगता है। हे राजाधिराज! आप **गिरिधर** कवि को अपने चरण की भक्ति दें और भजन में कोई बाधा न आये ऐसा कल्याण प्रदान करें।

गीत संख्या-३१

अद्य कोसलपुरे महामङ्गलं रामराज्याभिषेकस्य मङ्गलम्।।
भाति सिंहासनस्थस्त्रिलोकेश्वरो दिव्यशतपत्रनेत्रश्च सीतावरो।
विश्वसङ्कटहरो विश्वमङ्गलम्।।१।।
सीताननचारुचन्दिरचकोरः प्रभुः सर्वविश्रामदाताविधाता विभुः।
संविधित्सन् सदा सर्वमङ्गलम्।।२।।
श्वेतछत्रं वहन् भाति भरतो भजन् लक्ष्मणश्चामराभ्यां सुसेवां सृजन्।
व्यजनं शत्रुघ्नो लोकाय मङ्गलम्।।३।।
वायुपुत्रो विनृत्यन् प्रगायति यशः रामराज्यस्य सर्वत्र माद्यन् रसः।
गिरिधरायापि शं रायान् मङ्गलम्।।४।।

भौमी- आज कोसलपुर में महामंगल है और रामराज्याभिषेक का मंगल है। तीनों लोकों के ईश्वर और दिव्य कमलनेत्र, सीताजी के पति और विश्व का संकट हरने वाले और विश्व के मंगलस्वरूप राजाधिराज श्रीराम सिंहासन पर विराज रहे हैं। सीताजी के मुखचन्द्र के चकोर सबको विश्राम देने वाले, सबका निर्माण करने वाले, सबका मंगल विधान करने के लिये इच्छुक श्रीराम सिंहासन पर विराज रहे हैं। भरतजी भगवान श्रीराम का श्वेत छत्र लिये हुये भजन की मुद्रा में सुशोभित हो रहे हैं और लक्ष्मण चामरों से सुंदर सेवा करते हुये, शोभा पा रहे हैं और शत्रुघ्नजी व्यजन लेकर संसार को मंगल प्रदान कर रहे हैं। वायुपुत्र हनुमानजी नृत्य करके भगवान का यश गा रहे हैं और रामराज्य का रस सर्वत्र प्रसन्नता से फैल रहा है। वह **गिरिधर** कवि के लिये भी कल्याण मंगल प्रदान करे।

गीत संख्या-३२

हनुमान् गायति-

मनो मे निरन्तरमिदं गुनगुनाय नमो राघवाय नमो राघवाय।।
पिता राघवो राघवश्चैव माता सखा राघवो राघवश्चैव भ्राता।
विना राघवं चित्त किञ्चिन्न ध्याय नमो राघवाय नमो राघवाय।।१।।
मतौ राघवो मे श्रुतौ राघवो मे गतौ राघवो मे रतौ राघवो मे।
रतं राघवे मे मनो नैव म्लाय नमो राघवाय नमो राघवाय।।२।।

धृतौ राघवो मे कृतौ राघवो मे स्थितौ राघवो मे नतौ राघवो मे।
श्रितं राघवे चेतः किञ्चिन्न ग्लाय नमो राघवाय नमो राघवाय।।३।।
वस प्राणे राघव लस ध्याने राघव रस ज्ञाने राघव स्पृशोद्याने राघव।
यशो राघवस्यैव गिरिधरप्रगाय नमो राघवाय नमो राघवाय।।४।।

भौमी- अब हनुमानजी गा रहे हैं-अरे मेरे मन! तुम नमो राघवाय, नमो राघवाय यही निरंतर गुनगुनाते रहो। राघव जी मेरे पिता हैं, राघव जी मेरे माता हैं, राघव जी मेरे मित्र हैं और राघव जी मेरे भ्राता हैं। मेरे चित्त! तू राघव के अतिरिक्त कुछ भी ध्यान मत कर। मेरी बुद्धि में राघव हैं, मेरी भक्ति में राघव हैं, मेरी गति में राघव हैं, मेरी श्रुति में राघव हैं और राघव में लगा हुआ मेरा मन तू दुःखी न हो। मेरे धैर्य में राघव हैं, मेरी कृति में राघव हैं मेरी स्थिति में राघव हैं, मेरी श्रुति में राघव हैं। श्रीराघव में लगा हुआ मेरा चित्त कुछ भी ग्लानि मत कर। हे राघव! आप मेरे प्राण में बसें, मेरे ध्यान में सुशोभित हों, मेरे ज्ञान में आनन्द लें और मेरे गमन को भी स्पर्श करें। हे गिरिधर! तू निरंतर राघव का यश गाता रह।

गीत संख्या-३३

शिवः प्राह-

त्रैलोक्यसङ्कटशोकहर राजाधिराज नमोऽस्तुते।
भवरोगसंसृतिलोकहर रघुराजराज नमोऽस्तुते।।१।।
सिंहासने सीतासहित आसीनभयसंशयरहित।
रावणरिपो विद्याविभवसाद्गुण्यशुभमहिमामहित।
वरतूणयुगशरचापधर राजाधिराज नमोऽस्तुते।।२।।
रणधीर श्रीरघुवीर हे शतकोटिसिन्धुगभीर हे।
हे ब्रह्मनिर्गुणनिस्प्रलय नवकन्दश्यामशरीर हे।
हे राम परमेश्वरमधुर राजाधिराज नमोऽस्तुते।।३।।
रघुनाथ सीतानाथ हे श्रीनाथ दीनानाथ हे।
नरनाथ जगदगनाथ हे श्रुतिचयविदितगुणगाथ हे।
गिरधरगिराश्रयपुरुषपर राजाधिराज नमोऽस्तुते।।४।।

भौमी- अब शिवजी स्तुति करते हुये कह रहे हैं। तीनों लोकों के संकट और शोक को नष्ट करने वाले हे राजाधिराज! आपको नमस्कार। और संसार के रोग तथा संसार भाव को हरने वाले, हे रघुकुल के राजाओं के भी राजा श्रीराम! आपको नमस्कार हो। सिंहासन पर सीताजी के साथ विराजमान, भय-संशय से रहित, रावण के शत्रु, विद्या, वैभव, श्रेष्ठ गुण और महिमा से आमहित अर्थात् पूर्ण पूजित दो तरकस, धनुष-बाण धारण करने वाले हे राजाधिराज! आपको नमन हो। हे रणधीर, हे रघुवीर, हे करोड़ों सागरों जैसे गंभीर, हे निर्गुण, प्रलयरहित ब्रह्म, नवीन मेघ जैसे शरीर वाले, हे परमेश्वर, मधुरब्रह्म श्रीराम

राजाधिराज! आपको नमन हो। हे रघुनाथ! हे सीतानाथ! हे श्रीनाथ! हे दीनानाथ! हे मनुष्यों के नाथ! हे जड़–चेतन के नाथ! हे वेदों में विदित गुण–गाथा वाले और **गिरिधर** की वाणी के आश्रय परात्पर पुरुष राजाधिराज! आपको नमस्कार हो।

गीत संख्या–३४

ब्रह्मा गायति–

देहि नो निजरतिं महाराज।।
दीनबन्धो कृपासिन्धो अशितशबरीसुकारकन्धो।
खातनक्तंचर महान्धो रामश्रीरघुराज।।१।।
मुनिवधूमयशिलातारण जनकसंशयभयनिवारण।
त्रिपुरहरकार्मुकविदारण श्रीपते सुरराज।।२।।
सशरसङ्गरनिहतरावण यातुधानप्रततरावण।
पतितपावन प्रणतभावन नृपमणे नरराज।।३।।
पट्टमहिषीमहितराघव सकलकश्मलरहितराघव।
गिरिधरं श्रीसहितराघव पाहि राजाधिराज।।४।।

भौमी– अब ब्रह्माजी गा रहे हैं–हे महाराज! हम जीवों को अपने श्रीचरणों की भक्ति दीजिये। हे दीनों के बंधु! कृपा के सागर! शबरी का बेर खाने वाले! और राक्षसों के लिये मरण का कूप खोदने वाले! हे रघुकुल के राजा श्रीराम! हम जीवों को अपने चरणों की रति दीजिये। मुनिपत्नीरूप शिला का उद्धार करने वाले! जनकजी का संशय और भय दूर करने वाले! भगवान शंकर का धनुष तोड़ने वाले! श्रीपति! देवताओं के प्रशासक प्रभु! आप हम जीवों को भक्ति दीजिये। सुंदर बाण धारण करने वाले! युद्ध में रावण का वध करने वाले! जातुधान! राक्षससमूहों को रुलाने वाले! पतितपावन! प्रणतजनों को सुख देने वाले! राजाओं के मुकुटमणि! राजाधिराज! हम जीवों को अपनी भक्ति दीजिये। पट्टमहिषी सीताजी से पूजित! रघुकुल में प्रकट! सभी पापों से रहित! रघु नामक जीवों के हितैषी! एवं रघु के जनपद में आविर्भूत! सीताजी के सहित हे राघव! हे राजाधिराज! **गिरिधर** कवि की रक्षा कीजिये।

विशेष– यह गीत रूपक ताल में निबद्ध है। इसे मालकौश, चन्द्रकौश, तिलककामोद, केदारा और दरबारी राग में भी गाया जा सकता है।

गीत संख्या–३५

गायत उभौ राजदम्पती–

दत्तमिमं हारं सीते यस्येच्छसि तस्मै समर्पयेः।
यं चेच्छसि वात्सल्यभाजनं तस्मै हारं त्वमर्पयेः।।१।।
यस्स्यात् तव पुत्रो वरवर्णिनी तमथनिर्भयं शृङ्गारय।
तं जगतीतलभागधेयभाजं निजबुद्ध्या निर्धारय।।२।।

सीता हारं हनूमते दत्त्वाधिषभं प्रोचे वाचम्।
मन्ये हनुमन्तं राजाधिराज तव मूर्तं नाराचम्।।३।।
वीर्यं बलं साहसं बुद्धिः सङ्ग्रामे शौर्यं स्थैर्यम्।
यस्मिन् सर्वे गुणाः सोदरा भान्ति दधाना इव धैर्यम्।।४।।
शतयोजनविस्तीर्णसागरं को लङ्घेत दुरामर्षम्।
विनैवाञ्जनेयं दशवदनं को धर्षयेद्दुराधर्षम्।।५।।
को नौ गिरिधरप्रभू विरहवारिधितः शीघ्रं हि तारयेत्।
को हनुमन्तं विना रामरावणसङ्ग्रामं प्रपारयेत्।।६।।

भौमी- अब स्वयं राजदम्ती गा रहे हैं। भगवान राम कहते हैं–हे सीते! यह हार मैंने तुम्हें दे दिया, तुम जिसे चाहो दे दो। जिसको तुम वात्सल्य भाजन मानती हो उसी को अर्पित कर दो। हे वरवर्णिनी जो तुम्हारा बेटा हो इस सभा में निर्भयतापूर्वक उसी का श्रृंगार करो और संसार के भाग्यभाजन उसी पुत्र को अपनी बुद्धि से निश्चित कर दो। सीताजी ने प्रभु का दिया हुआ हार हनुमानजी को पहनाकर सभा के बीच प्रभु को सम्बोधित करके कहा–हे राजाधिराज! मैं हनुमान जी को आपका देहधारी बाण ही मानती हूँ। वीर्य, पराक्रम, साहस, बुद्धि, संग्राम में वीरता, स्थिरता ये सभी दिव्य गुण जिनमें सहोदर भाइयों की भाँति धैर्य धारण किये हुये से एक साथ विराजते हैं। भला बताइये हनुमानजी के बिना–सौ योजन विस्तीर्ण चिन्तन में कठिन इस सागर को कौन लाँघ सकता और दुराधर्ष रावण का प्रधर्षण कौन कर सकता? बिना हनुमान के **गिरिधर** कवि के स्वामिनी–स्वामी हम आप सीताराम को विरह सागर से कौन पार करता और 'हनुमान' के बिना इस अभूतपूर्व राम–रावण संग्राम को पूर्णता की ओर कौन ले जाता?

विशेष- यह गीत केदारा राग में निबद्ध है।

गीत संख्या-३६

रामः प्राह-

भरतभ्रातः कपेरहं ऋणी नित्यम्।।
सत्यं वच्मि समेसामग्रे नास्ति कपटि मम चित्तम्।
एष मदीयं सर्वस्वं पुत्रो मित्रं मम वित्तम्।।१।।
भौमीतो निराशमनसं विरहाब्धौ मां मज्जन्तम्।
को हनुमन्तं विना त्रायतां निधनस्त्रजं सृजन्तम्।।२।।
शतयोजनविस्तीर्णजलधिमथ को लङ्घतामपारम्।
ऋते वैनतेयं धीमन्तं यद्वाञ्जनाकुमारम्।।३।।
शक्त्या व्रणितं को नु लक्ष्मणं त्यज्यमानतनुमव्यात्।
को भरतस्य तवाहो विरहवारिधौ सपदि सुनाव्यात्।।४।।

अहं लक्ष्मणो वैदेही भरतस्त्वं कोसलराज्यम्।
सर्वे गिरिधरहरेर्वयं ऋणिनस्तत् पार्श्वे प्राज्यम्।।५।।

भौमी– भगवान राम कह रहे हैं–हे भरत भैया! मैं हनुमानजी का नित्य ही ऋणी हूँ। मैं सभी के समक्ष सत्य बोल रहा हूँ। मेरा चित्त कपटी नहीं है। ये हनुमान मेरे सब कुछ हैं। ये मेरे पुत्र, मित्र और धन भी हैं। सीताजी से निराश मन वाले, विरह सागर में डूबते हुए और अपनी मृत्यु की माला गूँथते हुए मुझ राम को हनुमान के बिना कौन बचाता? अरे! धीमान् गरुड के बिना अथवा अञ्जनानन्दवर्धन हनुमान के बिना सौ योजन लम्बे सागर को एक छलांग में कौन लाँघ सकता है? अरे! वीरघातिनी शक्ति से घायल शरीर छोड़ रहे कुमार लक्ष्मण की रक्षा कौन करता और तुम भरत के लिए विरह सागर में जलपोत की भूमिका कौन निभाता? मैं राजाधिराज, लक्ष्मण, सीता, तुम भरत, कोसलपुर का यह राज्य इसके प्रति वर्तमान सम्पूर्ण धन ये हम सभी गिरिधर कवि के आराध्य और गिरिधर अर्थात् पर्वतधारी इन वानर श्रेष्ठ हनुमान जी के ऋणी हैं।

उपसंहारश्लोकः

इत्थं राजाधिराजो नरवरसदसि प्रोज्य वातेःप्रशस्तिं
सीतादत्तेड्यहारं हृदयगतहरिं हर्षयन् हर्षितार्यः।
आलिङ्ग्य प्रेमपूर्णं कपिकुलतिलकं पूर्णकामं प्रपुष्णन्
रेजे श्रीरामराज्ये हरिरखिलपतिर्गीतसीताभिरामः।।१।।

भौमी– इस प्रकार श्रेष्ठ मनुष्यों की सभा में वायुपुत्र हनुमान जी की प्रशंसा करके, जिन्हें सीताजी के द्वारा सुन्दर हार दिया गया है। जिनके हृदय में स्वयं श्रीहरि रामजी विराजते हैं ऐसे वानर श्रेष्ठ श्रीहनुमानजी को प्रसन्न करते हुए, उन्हें अपना प्रेमपूर्वक आलिङ्गन देकर, पूर्णकाम हनुमानजी को दुलारते हुए, श्रेष्ठ जनों को प्रसन्न करने वाले, गीतसीताभिराम महाकाव्य के प्रतिपाद्य सभी प्राणियों के ईश्वर श्रीहरि राजाधिराज भगवान राम स्वयं द्वारा प्रवर्तित रामराज्य में अनादि काल से विराज रहे हैं और अनन्त काल तक विराजते रहेंगे।

इति

श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरमहाकविजगद्गुरुरामानन्दाचार्यस्वामिरामभद्राचार्यगिरिधरकविप्रणीते गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये उत्तरकाण्डे गीतसीतारामपट्टाभिषेको नाम प्रथमः सर्गः।

इस प्रकार श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर महाकवि जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य गिरिधरकवि द्वारा विरचित गीतरामायण 'गीतसीताभिराम' नामक संस्कृत गीतमहाकाव्य के उत्तरकाण्ड में गीतसीतारामपट्टाभिषेक नामक प्रथम सर्ग सम्पन्न हुआ।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु।।

।।श्रीः।।

।।नमो राघवाय।।

गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये उत्तरकाण्डे

गीतराजाधिराजो नाम

द्वितीयः सर्गः

मङ्गलाचरणम्

वैदेहीं रमयन् सखींश्च मृडयन्नायोध्यकान् रञ्जयन्
सौन्दर्यं कलयन् बलं प्रबलयन् प्रीताः प्रजाः पालयन्।
संस्कारान् स्त्रजयन् चरित्रमहसा लोकत्रयं शिक्षयन्
वार्तिं वत्सलयन् कविं गिरिधरं राजाधिराजोऽवतु।।१।।

अन्यच्च

कदायोध्याधाम्नीश्वरसदसि सिंहासनगतम्
हरिं सीताप्रीतं सुरमुनिसदस्यघनरुचिम्।
अये राजन् राम प्रणतजनसारङ्गजलद
प्रसीदेत्याकुर्वन् निमिषमिव नेष्यामि शरदः।।२।।

भौमी- सीताजी को रमाते हुये, मित्रों को सुखी करते हुये, अवधवासियों को आनन्द देते हुये, सौन्दर्य धारण करते हुये, शक्ति और सेना को प्रबल करते हुये, प्रसन्न प्रजा का पालन करते हुये, संस्कारों का सर्जन करते हुये, अपने चरित्र के तेज से तीनों लोकों को शिक्षित करते हुये हनुमानजी के भक्तिमय कल्याण को दृढ़ करते हुए और वायुपुत्र हनुमान को वात्सल्य प्रदान करते हुये, राजाधिराज श्रीराम मुझ **गिरिधर** कवि की भी रक्षा कर लें। और भी अहो! श्रीअयोध्याधाम में श्रेष्ठ सभा में सिंहासन पर विराजमान सीताजी पर प्रसन्न देवता और मुनिरूप सभासदों से युक्त मेघवर्णी भगवान श्रीराम को हे राजन्! हे राम! हे प्रणतजनरूप चातकों के मेघ! प्रभु आप प्रसन्न हों, इस प्रकार प्रेम से स्मरण करता हुआ मैं **गिरिधर** कवि कब अपने जीवन के वर्षों को क्षण के समान सुखपूर्वक बिताऊँगा?

सन्दर्भश्लोकः

अथ विसृज्य हरीन् हरिपुङ्गवो रघुवरः समवाप्य वसुन्धराम्।
हतरिपुः प्रशसास बहूः समाः जनकजासहितो महितो मखैः।।१।।

भौमी– इसके अनन्तर अर्थात् राम राज्याभिषेक के छः मास पश्चात् अपने वानर मित्रों को उनके घर भेजकर 'हरि' शब्द के वाच्य यमादि चौदहों हरियों में श्रेष्ठ महाविष्णु रघुवर भगवान श्रीराम जिन्होंने रावणादि समस्त शत्रुओं को समाप्त कर लिया है, ने निष्कण्टक पृथ्वी को प्राप्त करके अनेक अश्वमेधादि यज्ञों से सम्मानित होकर जनकनन्दिनी सीताजी के साथ अयोध्या के राजसिंहासन पर विराजमान रहकर अनेक सहस्त्रवर्षपर्यन्त सम्पूर्ण भुवनों पर शासन किया।

गीत संख्या–१

अनुपमं राराज्यते रामराज्यं निरुपमं बाभ्राज्यते रामराज्यम्।
नो भूतं न च भाव्यं भविष्यति सदा विलसित प्राज्यम्।।
नो विधवा नाशुतिनी लोके सत्पतिव्रता नारी।
पत्नीव्रतः पुमांश्चरित्रमान् एकनारिव्रतधारी।।१।।
पुत्रश्राद्धं न पिता कुरुते नास्ते कोऽपि दरिद्रः।
नो दुर्भिक्षी नो बहुभिक्षी नास्ते कोऽपि कुनिद्रः।।२।।
न चाग्निजा न वातजा भीतिः नास्तिकपटसमवीतिः।
अन्योन्यं वर्धते प्रतीतिः सीतारामपदप्रीतिः।।३।।
लोकत्रयं मङ्गलाचरणं दूरोज्झितकदाचरणम्।
सततं सीतारामस्मरणं सततं श्रीहरिशरणम्।।४।।
त्रेता कृतयुगायिता नूनं भूमिः सस्यश्यामा।
वृक्षपुष्पफलसरित्सरोभिर्गिरिधरप्रभ्वभिरामा ।।५।।

भौमी– यह अनुपम रामराज्य सुशोभित हो रहा है। निरुपम रामराज्य देदीप्यमान हो रहा है। ऐसा राज्य इसके पहले न तो कभी हुआ और न ही इसके पश्चात् भविष्य में कभी होगा। यह रामराज्य निरन्तर धन–धान्य सम्पन्न रहता है। रामराज्य के समय संसार में न कोई महिला विधवा थी और न ही निःसंतान। प्रत्येक नारी साध्वी और पतिव्रता थी और उस समय पुरुष भी पत्नीव्रत, चरित्रवान और एकनारीव्रती था अर्थात् श्रीराम के राज्यकाल में किसी को भी बहु–विवाह करने की अनुमति नहीं थी। रामराज्य में पिता पुत्र का श्राद्ध नहीं करता था, उस समय कोई दरिद्र नहीं था और न ही कोई दुष्काल से पीड़ित था और न ही कोई निन्दित भिक्षा माँगता था और न ही कोई बिना समय अर्थात् असमय में सोता था। रामराज्य में कहीं भी, न ही अग्नि का भय था और न ही वायु का और न ही कोई कपट व्यवहार करता था। सभी लोग एक दूसरे के प्रति विश्वस्त थे और सबको श्रीसीतारामजी के चरणों में प्रीति थी। तीनों लोक मंगलाचरण से पूर्ण थे, कहीं भी कदाचार नहीं था,

सभी सीतारामजी का स्मरण करते थे और सभी श्रीहरि के शरण में थे। त्रेता कृतयुग बन गई थी, पृथ्वी हरी खेती से श्यामल होकर, हरित वृक्षों, पुष्पों, फलों, नदियों तथा तालाबों से **गिरिधर** कवि के प्रभु श्रीराम को आनन्द दे रही थी।

गीत संख्या-२

अयोध्या धन्या राघवो यत्र राजा।
अयोध्या मान्या राघवो यत्र राजा।।
यत्रभगवती सीताराज्ञी जनकसुता साध्वी साम्राज्ञी।
न तादृगन्या राघवो यत्र राजा।।१।।
यत्रास्ते भरतो युवराजो राजा राजति रघुकुलराजो।
भवेत् कान्या राघवो यत्र राजा।।२।।
यत्र राजमाता कौसल्या सुखिताहल्या सदा निशल्या।
गुणैरनन्या राघवो यत्र राजा।।३।।
यत्र समे वर्णाश्रमशीला सङ्कीर्तितगिरिधरप्रभुलीला।
पुरी वदान्या राघवो यत्र राजा।।४।।

भौमी- धन्य है वह अयोध्या जहाँ श्रीराम राजा हैं। सम्मानीय है अयोध्या जहाँ राम राजा हैं। जहाँ भगवती सीता महारानी हैं, सती शिरोमणि जनकनन्दिनीजी जहाँ साम्राज्ञी हैं, उस अयोध्या के समान अन्य पुरी नहीं हो सकती। जहाँ भरतजी युवराज हैं और रघुकुल के राम राजा सुशोभित हो रहे हैं, जहाँ राम स्वयं राजा हैं। ऐसे अयोध्या के समान और पुरी कैसे हो सकती है? जहाँ अहल्याजी को भी सुखी करने वाली संसार के दुःखों से रहित कौसल्या अम्बा राजमाता हैं, ऐसी अयोध्या अपने गुणों से अनन्य ही है। जहाँ सभी लोग वर्णाश्रम व्यवस्था में विश्वास करते हैं और **गिरिधर** कवि के प्रभु श्रीराम की लीलाओं का संकीर्तन करते रहते हैं, वह पुरी सर्वश्रेष्ठ है जहाँ श्रीराम राजा हैं।

विशेष- यह गीत दादरा ताल में निबद्ध है।

गीत संख्या-३

मह्यं सीता सुविनीता जीवधानी रोचते जीवधानी रोचते।
मह्यं मातायोध्या रामराजधानी रोचते।।
रामौ श्यामौ यत्र दम्पती राजेते गम्भीरौ।
कोसलपुरवीथीषु विहरतः श्रीसीतारघुवीरौ।।
मह्यं महितगिरारमामृडानि रोचते जीवधानी रोचते।
मह्यं मातायोध्या रामराजधानी रोचते।।१।।

यस्या उत्तरदिशाविभागे सरयू वहति सुनीरा।
प्रतितीरं मुनिवृन्दसेविता मलयजमधुरसमीरा।।
मह्यं क्षपितकपटकुहिमानि रोचते जीवधानी रोचते।
मह्यं मातायोध्या रामराजधानी रोचते।।२।।
या नित्यं परिकलितवापिका कूपतटागकुटीरा।
शीतलमन्दसुगन्धसमीरितबकुलबहलवानीरा ।।
मह्यं दलितत्रितापयातुधानी रोचते जीवधानी रोचते।
मह्यं मातायोध्या रामराजधानी रोचते।।३।।
यत्र प्रजाधर्मसापेक्षा श्रयते सीतारामौ।
वर्णाश्रमिणी राष्ट्रदेवता गिरिधरमनोऽभिरामौ।।
मह्यं व्रीडितपातालस्वर्गधानी रोचते जीवधानी रोचते।
मह्यं मातायोध्या रामराजधानी रोचते।।४।।

भौमी- महाकवि स्वयं गा रहे हैं–मुझको सम्पूर्ण जीवों का पालन करने वाली अत्यन्त विनम्र माता सीताजी अच्छी लगती हैं और मुझको श्रीराम की राजधानी अयोध्या बहुत सुन्दर लगती है। जहाँ पर श्यामा, श्याम, रामा तथा श्रीराम ये विलक्षण गम्भीर सीताराम दम्पती विराजते रहते हैं। जिस कोसल की गलियों में श्रीसीता–राघव नित्य विहार करते हैं, ऐसी सरस्वती, लक्ष्मी और पार्वतीजी से सम्मानित, भगवान राम की राजधानी अयोध्या मुझे बहुत भाती है। जिस अयोध्या के उत्तर दिशा में प्रत्येक तट पर मुनिवृन्दों से सेवित, मधुर मलयवायु से युक्त, सुन्दर जल वाली सरयू नदी प्रवाहित हो रही हैं, ऐसी कपटरूप कुत्सित हिमानी अर्थात् भयंकर ठंड को नष्ट करने वाली भगवान राम की राजधानी माता अयोध्या मुझे बहुत भाती हैं। जो बावली, कुएँ, तालाब और कुटियों से निरन्तर सुशोभित रहती है, जो शीतल–मन्द–सुगन्ध वायु से युक्त, बकुल और सुन्दर बेतों के वृक्षों से विराजमान रहती है, ऐसे तीनों तापरूप राक्षसी सेना को समाप्त करने वाली श्रीराम की राजधानी अयोध्या माता मुझे बहुत भाती हैं। जहाँ वर्णाश्रम पर विश्वास करने वाली, राष्ट्र को देवता मानने वाली, धर्म–निरपेक्ष प्रजा **गिरिधर** कवि के मन को आनन्द देने वाले, श्रीसीतारामजी को आश्रय करके उनका भजन करती रहती है; ऐसी पाताल और स्वर्ग को भी लज्जित करने वाली, भगवान राम की राजधानी माता अयोध्या मुझे बहुत रुचती हैं।

विशेष- यह गीत एक बहुप्रचलित पारम्परिक गीत के ढाल में निबद्ध है। उसका बोल है–

मीठो रस से भरी रे राधा रानी लागे।
माने खारो खारो जमुना जी रो पानी लागे।।

गीत संख्या-४

अयोध्याधिकं सर्गतो भाति।
कोटिकोटिवैकुण्ठलोकतो गरीयसी प्रतिभाति।।

साकेततो रमयितुं रामं यायाता भारतमभिकामं
सकललोकलोचनाभिराम् ।
मोक्षदपुरी शिरोमणिभूता पूतापरा प्रभाति।।१।।
या चिन्मयीप्रकाशस्वरूपा स्वाञ्चलक्रीडितजगदगभूपा
सेवनहतसज्जनभवकूपा ।
निखिललोकनाथो रघुनाथो यां क्षणमपि न जहाति।।२।।
यदुत्तरे सरयू शुचिनीरा वहति तीरसेवितमुनिधीरा
खगकुलकूजितकुञ्जकुटीरा ।
श्रीसीतापतिजन्मभूमिरथ पतितान् प्रभुः पुनाति।।३।।
यदवाच्यां हरिजन्मस्थानं सरयूतस्त्रिशतधनुर्मानं
गिरिधरगीतनिगमकृतगानम् ।
कोटिकोटिहिन्दूनामास्थां या पूर्णा पुष्णाति।।४।।

भौमी- आज अयोध्या ब्रह्माजी की सृष्टि से अधिक सुशोभित हो रही है। यह करोड़ों-करोड़ों बैकुण्ठ लोकों से भी श्रेष्ठ लग रही है। जो सम्पूर्ण लोकों के नेत्रों को आनन्द देने वाले भगवान राम को रमाने के लिये साकेतलोक से अपनी इच्छा के ही आधार पर भारतवर्ष में पधारीं, वही मोक्षदापुरियों की शिरोमणि परम पवित्र, परात्पर परमेश्वर की पुरी अयोध्या आज बहुत सुशोभित हो रही हैं। जो विशुद्ध चेतनामय प्रकाशस्वरूप हैं, जिन्होंने अपने आँचल में चराचर स्वामी श्रीराम को खेलने का अवसर दिया और जो सेवन मात्र से सज्जनों के संसार कूप को नष्ट कर डालती हैं और सम्पूर्ण लोकों के स्वामी श्रीराम रघुनाथजी जिनको एक क्षण भी नहीं छोड़ते ऐसी श्रीअयोध्या सबसे श्रेष्ठ हैं, इसमें आश्चर्य क्या? जिन अयोध्या के उत्तर दिशा में पवित्र जल वाली, अपने प्रत्येक तट पर बसे धीर-मुनियों की सेवा करने वाली, पक्षीगणों से मुखरित कुंजकुटीर वाली, ऐसी सरयू मैया प्रवाहित हो रही हैं, जो सीताजी के पति भगवान राम की जन्मभूमि का गौरव प्राप्त करके सर्वसमर्थ होती हुई, पतितों को भी पावन बना रही हैं, ऐसी अयोध्या आज सृष्टि में सर्वाधिक शोभा पा रही हैं। जिस अयोध्या के दक्षिण विभाग में श्रीराम जन्मस्थान है, जो सरयूजी से दक्षिण तीन सौ धनुष दूरी पर है और जिसे **गिरिधर** कवि तथा वेदों ने भी गाया, जो अयोध्या जन्मभूमि स्वयं पूर्ण होकर भी करोड़ों-करोड़ों हिन्दुओं की आस्था को पोषित कर रही है, ऐसी अयोध्या सृष्टि में सर्वाधिक शोभा पा रही हैं।

गीत संख्या-५

अयोध्यायां राजति रघुराजः।
सार्वभौमसम्राट् समितिञ्जय सुजनकुमुदद्विजराजः।।१।।
रामो राजा सीता राज्ञी श्रीभरतो युवराजः।
लक्ष्मणशत्रुघ्नौ शुचिबन्धू पुरगुरुसचिवसमाजः।।२।।

वर्णाश्रमणी प्रजा परिजनः सुखी सदा निर्व्याजः।
श्रौतस्मार्तयज्ञधूमो विलसत्यनुयाजप्रयाजः।।३।।
चातुर्वर्ण्यधर्ममहितो निहतारिपुरजनव्राजः।
श्रीरामे रतिमान् विराजते रामराज्यसुसमाजः।।४।।
धनसम्पन्ना धरणिर्धरते शास्ति भुवं महाराजः।
सहप्रकृत्याप्यवति गिरिधरं रामो राजाधिराजः।।४।।

भौमी- श्रीअयोध्या में रघुकुल के राजा श्रीराम विराज रहे हैं जो सार्वभौम सम्राट संग्राम विजेता और सज्जन कुलरूप कुमुद को पोषित करने हेतु चन्द्रमा स्वरूप हैं। यहाँ श्रीराम राजा, सीताजी महारानी और श्रीभरत युवराज हैं, लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न जैसे पवित्र भाई, कुलगुरु वसिष्ठ और सुमन्त्रादि सचिवों का समाज सब कुछ बहुत अनुकूल है। इस अयोध्या में पुरजनों का समूह, चातुर्वर्ण्य धर्म में निरत अर्थात् वर्णाश्रम व्यवस्था में विश्वास करने वाला शत्रुरहित निष्कण्टक है। यह रामराज्य का सुन्दर समाज श्रीराम में ही प्रेम करता हुआ विराज रहा है। इसी प्रकार धन से सम्पन्न पृथ्वी विराज रही है। महाराज राघवेन्द्रजी इस पृथ्वी का शासन कर रहे हैं और राजाधिराज भगवान राम प्रजा के साथ **गिरिधर** कवि की भी रक्षा कर रहे हैं।

गीत संख्या-६

अयोध्यायां न दृश्यते चोरः।
यत्र स्वयं राज्यमधिकुरुते विश्वविलोचनचोरः।।
रामो रामो राम इति कथा जाग्रति सकलसमाजे।
राममयं विश्वं विराजते रामे श्रीरघुराजे।।१।।
दण्डमस्ति केवलं त्रिदण्डिनि करो नरे गजराजे।
भेदो नर्तकनृत्यसमाजे दोहो गोव्रजराजे।।२।।
क्षेयं पापं जेयं मन इति करिषु दृश्यते दानम्।
विद्वत्सु श्रूयते ह्युपाधिः स्वान्ते निग्रहधानम्।।३।।
नातिक्रामति सिन्धुः क्वापि कदापि निजां मर्यादाम्।
मर्यादापुरुषोत्तमराज्ये दमितदनुजमनुजादाम्।।४।।
वर्णाश्रमधर्मं सर्वेऽनुसरन्ति शीलव्रतनिष्ठाः।
स्वं स्वं कर्तव्यं प्रकुर्वते वृद्धा युवककनिष्ठाः।।५।।
नाधिव्याधिपीडितो लोकः सुखी समृद्धसमाजः।
सुखिनं करोतु गिरिधरं दीनं रामो राजाधिराजः।।६।।

भौमी- अयोध्या में कोई चोर नहीं दीखता है जहाँ स्वयं सम्पूर्ण संसार के नेत्रों को चुराने वाले श्रीराम स्वयं राज्य कर रहे हैं। सम्पूर्ण समाज में **'राम-राम-राम'** इस प्रकार वाक्यों के साथ वार्ताएँ होती रहती हैं

और श्रीराम राजा के विराजमान रहते सम्पूर्ण विश्व राममय हो गया है। रामराज्य में किसी को दण्ड नहीं दिया जाता क्योंकि कोई अपराध ही नहीं करता। अब तो दण्ड शब्द केवल त्रिदण्डी संन्यासी के पास सुना जाता है। रामराज्य में किसी से कर नहीं लिया जाता, अब तो कर शब्द मनुष्य के पास हाथ के अर्थ में और हाथी के पास सूँड के अर्थ में सुना जाता है। रामराज्य में ऊँच–नीच का भेद नहीं है, भेद शब्द तो नर्तकों के नृत्य समाज में ही सुनाई पड़ता है, जहाँ गाने वाले अलग, बजाने वाले अलग, नाचने वाले अलग। श्रीराम राज्य में पाप को ही क्षेय और मन को ही जेय माना जाता है अर्थात् अब कोई और शत्रु क्षय और जय के लिए शेष नहीं बचा है, सभी रामराज्य में सम्पन्न हैं। कोई किसी से दान नहीं लेता। अब तो दान शब्द केवल हाथियों के यहाँ मद के अर्थ में प्रयुक्त होता है। और उपाधि विद्वानों के यहाँ ही सुनी जाती है, अन्यत्र कपटरूप उपाधि नहीं रह गयी है और रामराज्य में कहीं किसी का निग्रह अर्थात् धर पकड़ नहीं हो रही है। अतः 'निग्रह' शब्द मन के ही सम्बन्ध में सुना जाता है। मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामराज्य में नरभक्षी राक्षसों का दमन करने वाली मर्यादा को कभी सागर भूलकर भी नहीं लांघता। सभी नर–नारी शीलव्रत में निष्ठा धारण करके वर्णाश्रम धर्म का अनुसरण करते हैं। वृद्ध युवक और बालक अपने अपने कर्तव्यों का पालन करते हैं। श्रीराम के राज्यकाल में कोई भी आधि अर्थात् मानसिक रोग और व्याधि अर्थात् शारीरिक रोग से पीड़ित नहीं है। सम्पूर्ण समाज सुखी और समृद्ध है। अब तो राजाधिराज श्रीराम दीन **गिरिधर** कवि को सुखी कर दें।

गीत संख्या–७

रामो यजते मखाननेकान्।
यज्ञमयः पुरुषोऽपि समनुतिष्ठति मङ्गलाभिषेकान्।।
इन्द्रः शतक्रतुर्जातः किल कृत्वा शताश्वमेधान्।
कोटिक्रतू राघवोऽभूदिष्ट्वाथ कोटिहयमेधान्।।१।।
शतक्रतुस्तथापि नेर्ष्याञ्चकार कोटिक्रतवेऽपि।
श्रीरामोऽपि सदा सम्मानं ददौ शतक्रतवेऽपि।।२।।
कौसल्याकैकयीसुमित्रावत् सीतापीन्द्राणीम्।
शुश्रूषते सदा श्वश्रूमिव समभावा शक्राणीम्।।३।।
अमरावत्ययोध्ययोरैक्यं सन्तन्वन् रघुराजः।
लसत्यध्ययोध्यं गिरिधरप्रियरामो राजाधिराजः।।४।।

भौमी– श्रीराम अनेक यज्ञ कर रहे हैं, यज्ञमय पुरुष होकर भी अनेक मंगलाभिषेक कर रहे हैं। इन्द्र सौ अश्वमेध यज्ञ करके शतक्रतु बने, परन्तु श्रीराम करोड़ अश्वमेघ यज्ञ करके कोटिक्रतु बन गये। शतक्रतु इन्द्र, कोटिक्रतु श्रीराम के प्रति कभी ईर्ष्या नहीं किये। क्योंकि इन्द्र को राघवेन्द्र से कोई डर नहीं था। उन्हें इतना विश्वास था कि राघवेन्द्र उनका इन्द्रासन क्या करेंगे? क्योंकि उनकी अयोध्या करोड़ों इन्द्रलोकों से श्रेष्ठ है। इधर श्रीराम भी स्वयं कोटिक्रतु होकर भी शतक्रतु इन्द्र का सम्मान करते थे। महाराज दशरथ का मित्र होने के कारण इन्द्र को काका मानते थे। सीताजी भी इन्द्रपत्नी शची को कोसल्या, कैकेयी, सुमित्रा की भाँति ही सासू

मानकर सेवा सम्मान किया करती थीं। इस प्रकार अमरावती व अयोध्या में एकता का विस्तार करते हुये **गिरिधर** कवि के प्रिय श्रीराम राजाधिराज रघुराज श्रीअयोध्या में विराज रहे हैं।

गीत संख्या-८

जयत्यधिभुवि रामराज्यम्।
धर्मराज्यं शर्मराज्यं निखिलवैदिककर्मराज्यम्।।१।।
करतलीकृतचतुर्वर्गं शास्त्रसमयन्त्रितत्रिवर्गम्।
नारिनरसुलभापवर्गं निहतभवभयदामराज्यम्।।२।।
सर्वजनहितकरं राज्यं सर्वजनसुखपरं राज्यम्।
छलकपटपाखण्डवर्जितभवितभारतधामराज्यम्।।३।।
विगतमायामोहचौर्यं निहतकामक्रोधक्रौर्यम्।
कलितगौरवधैर्यशौर्यं समलशोकविरामराज्यम्।।४।।
धर्मशीलप्रजासमेतं भारतीयविभानिकेतम्।
अद्वितीयगुणाभ्युपेतं विबुधजनविश्रामराज्यम्।।५।।
प्रथितवर्णाश्रमाचारं ग्रथितसद्गुणसदाचारम्।
गदितगिरिधरगीःप्रचारं निखिलभुवनललामराज्यम्।।६।।

भौमी- इस पृथ्वी पर श्रीराम राज्य विजयी हो रहा है जो धर्म का राज्य है, सात्विक सुख का राज्य है, सभी वैदिक कर्मों का राज्य है। जिस रामराज्य में अर्थ-धर्म-काम-मोक्ष हस्तगत हैं, जहाँ धर्म-अर्थ-काम शास्त्र से नियन्त्रित हैं, जहाँ स्त्री-पुरुष सभी को मोक्ष सुलभ है और जिस रामराज्य में भवसागर का भय और संसार का बंधन सर्वथा नष्ट हो गया है। यह रामराज्य सर्वजन हितैषी, सभी को सुखप्रद, छल-कपट-पाखंड से रहित कल्याणमय भारत धाम का राज्य है। इस रामराज्य ने माया-मोह की चोरी नष्ट कर दी है और इसके द्वारा काम-क्रोध की क्रूरता समाप्त कर दी गई है और यह गौरव धैर्य और वीरता से युक्त है। यह सम्पूर्ण बुराइयों और शोकों का विराम स्थान है। यह रामराज्य धर्मपरायण प्रजा से युक्त और भारतीय अध्यात्म प्रकाश का निवास स्थान और अद्वितीय गुणों से युक्त तथा देवजनों के विश्राम का राज्य है। जिसमें वर्णाश्रमानुकूल आचरण ही प्रसिद्ध है और जहाँ सद्गुण और सदाचार ही गुम्फित हुये हैं, जहाँ **गिरिधर** कवि की वाणी का प्रचार स्पष्ट रूप से उद्घोषित हो रहा है, ऐसा सम्पूर्ण भुवनों का रत्नस्वरूप श्रीरामराज्य इस भूमंडल पर सर्वश्रेष्ठता के साथ विराज रहा है।

गीत संख्या-९

अधिराजते राज्ञिराज्ञी हे सीतासम्राज्ञी।।
चामीकरचपला चम्पकचारुदेहा
रघुचन्द्रचर्चितमानसव्योमगेहा ।
अनुराजते राज्ञिराज्ञी हे सीतासम्राज्ञी।।१।।

दिव्यनव्यभव्यवसनविभूषणशुभाङ्गी
रामभद्रभवावरवर्णिनी वराङ्गी।
अनुराजते राज्ञिराज्ञी हे सीतासम्राज्ञी।।२।।
भर्तृशुश्रूषणरता ललना पतिव्रता
विश्रम्भेण विश्रमेण श्रमनोदनेयुता।
अनुराजते राज्ञिराज्ञी हे सीतासम्राज्ञी।।३।।
रूपसौदामिनीवैषा राघवेन्द्रभामिनी
जितकामिनी वै गिरिधरस्वामिनी।
परिराजते राज्ञिराज्ञी हे सीतासम्राज्ञी।।४।।

भौमी- महारानी सीता साम्राज्ञी बनकर श्रीराम के पास सटकर विराजमान हो रही हैं। सुवर्ण, बिजली और चम्पा के समान सुन्दर शरीर वाली, रघुकुल के चन्द्रमा श्रीरामरूप चन्द्र से जिनका मानसगगन और भवन ये दोनों सुशोभित हैं, ऐसी महारानी साम्राज्ञी सीताजी अनुकूल भाव से श्रीराजाराम के निकट विराज रही हैं। अलौकिक, नवीन और सुन्दर वस्त्रों और अलंकारों से जिनके अंग सुशोभित हैं, ऐसी श्रीरामभद्र की धर्मपत्नी सुन्दर वर्ण वाली, श्रेष्ठ अवयवों से सम्पन्न, महारानी पट्टमहिषी सीताजी राजाराम के पास अनुरूपता से सुशोभित हो रही हैं। प्राणपति श्रीराम की सेवा में लगी हुई सुलक्षणा, पतिव्रता विश्वास और विश्राम से प्रभु की थकान दूर करती हुई, ऐसी महारानी साम्राज्ञी श्रीसीताजी राजाधिराज श्रीराम के पास अनुक्षण विराजती रहती हैं। रति को जीतने वाली, **गिरिधर** कवि की स्वामिनी, श्रीराघव की धर्मपत्नी सीताजी रूप की बिजली ही हैं और महारानी पट्टमहिषी सीताजी श्रीरामराजा के चारों ओर विराज रही हैं।

सन्दर्भश्लोकः

इत्थं श्रीरघुराजकीर्तिविलसत् सिंहासनस्थोस्तयो-
र्दम्पत्योः परिशासतोस्त्रिभुवनं राज्ञो रहः क्रीडतोः।
सञ्जातं त्र्ययुतं निरभ्रशरदां धर्मं प्रयुञ्जानयोः
पश्चात् कल्पयतः स्म तौ लवकुशौ वंशप्रवृद्ध्यै रघोः।।१।।

भौमी- इस प्रकार श्रीराजा रघु की कीर्ति से सुशोभित, सिंहासन पर विराजमान होकर, तीनों लोकों पर शासन करते हुये, धर्म का आचरण करते हुये, आदर्श दम्पती श्रीसीतारामजी के न्यूनतम तैंतीस हजार (३३००० हजार) वर्ष बीत गये। इसके पश्चात् रघुवंश की वृद्धि करने के लिए उन दोनों ने लवकुश को आविर्भूत किया।

गीत संख्या-१०

रामः प्राह श्रीसीताम्-

सीते द्वौ तनयौ मे देहि।
अयोनिजापि धर्मरक्षार्थं गर्भे मामाधेहि।।

द्वावेतौ हि मम प्रतिबिम्बौ जठरे ते क्रीडेताम्।
मत्समान बलवीर्यतेजसौ कामशतं व्रीडेताम्।।१।।
अहमात्मानं द्वेधा कृत्वा पुत्रौ द्वौ जनयेयम्।
इमौ लवकुशौ भूत्वा भद्रे त्रैलोक्यं मृडयेयम्।।२।।
एकतत्वरूपावावां लीलया लोकसुखदाता।
पिता रामरूपश्च पुनः सीतात्वे भूयो माता।।३।।
भूत्वा पितरौ सीतारामौ त्रिजगत्संरमयेव।
गिरिधरप्रभूसुतौ च लवकुशौ भवतापं शमयेव।।४।।

भौमी- श्रीराम सीताजी के प्रति कह रहे हैं-हे सीते! आप मुझे दो पुत्र दीजिये। अयोनिजा होकर भी धर्म की रक्षा के लिये माँ बनकर मुझे ही गर्भ में धारण कीजिये। ये दोनों मेरे प्रतिबिम्ब आपके गर्भ में खेलें। मेरे ही समान बल-पराक्रम-तेज से युक्त होकर सैकड़ों कामदेवों को लज्जित करें। मैं अपने को ही दो रूपों में रचकर दो बालकों को प्रकट करता हूँ। हे भद्रे! ये देखो लव-कुश बनकर अब मैं तीनों लोकों को प्रसन्न करूँगा। एक तत्व रूप हम दोनों लीला में रामरूप में लोकसुखदाता पिता और सीता के रूप में माता वन रहे हैं। **गिरिधर** कवि के ईष्ट देवता हम दोनों सीताराम एक ओर माता-पिता की भूमिका निभायेंगे और दूसरी ओर लवकुश रूप में पुत्र बनकर तीनों लोकों का ताप दूर करेंगे।

गीत संख्या-११

गायति कविः-

निखिलजगन्मातापितरौ पितामहस्य पितरौ हो।
हरि हरि सीतारामौ पितरौ विराजेते सञ्जातौ तनयौ हो।।१।।
आषाढस्य शुभशुक्लनवमी सुदिनमिदं मङ्गलं हो।
हरि हरि अभिजितसुखदमुहूर्ते सुभगसूनू सञ्जातौ हो।।२।।
देवाः प्रसूनानि ववृषुः सुराङ्गना जहृषुर्हो।
हरि हरि ननृतुर्विबुधवरवारस्त्रिलोकी जगौ सोहरं हो।।३।।
भरतो लुण्ठयते स्म धेनुर्लक्ष्मणो मणिमुक्तामाला हो।
हरि हरि शत्रुघ्नः स्यन्दनवाजिहस्तिनस्पित्रव्यास्त्रयो मुमुदिरे हो।।४।।
माण्डवी उर्मिला श्रुतिकीर्तिर्जानकीयातरोऽपि हृष्टा हो।
हरि हरि गिरिधरप्रभुसुतजन्मनि सर्वा जगुर्गीतानि हो।।५।।

भौमी- महाकवि स्वयं गा रहे हैं- सम्पूर्ण संसार के माता-पिता और ब्रह्माजी के भी माता-पिता श्रीसीतारामजी आज अवध राजभवन में माता-पिता बनकर सुशोभित हो रहे हैं और उनके यहाँ दो बालकों ने जन्म ले लिया है। आषाढ़ की शुक्ल पक्ष की नौमी सुन्दर मंगलवार दिन और अभिजित् मुहूर्त अर्थात् मध्याह्न

में दो सुन्दर पुत्र जन्म लिये। देवता पुष्प बरसाने लगे। देवियाँ प्रसन्न होने लगीं। अप्सराएँ नाचने लगीं और तीनों लोक सोहर गाने लगे। भरत जी गायें लुटाने लगे, लक्ष्मणजी मणि–मुक्ता–मालायें लुटाने लगे, शत्रुघ्नजी रथ–घोड़े–हाथी दान देने लगे। इसी प्रकार तीनों काका भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न प्रसन्न हो गये। माण्डवी, उर्मिला, श्रुतिकीर्ति ये तीनों सीताजी की बहनें और देवरानियाँ काकी बनकर और मौसी बनकर बहुत प्रसन्न हुयीं। **गिरिधर** कवि के प्रभु श्रीराम के पुत्र जन्मोत्सव में सभी महिलाएँ गीत गाने लगीं।

विशेष– यह गीत अवध अँचल के सोहर लोकगीत की ढाल में निबद्ध है बोल हैं–

मचियैं बैठी कौसल्या रानी सुरुजू मनावैंनी हो,
भगवन हमरे जौ होइहैं होरिलवा अरघ तोहँके देबइ हो।।

गीत संख्या–१२

धन्या धन्या आषाढस्य नवमी धवलपक्षो धन्यो धन्यो हो।
हरि हरि धन्यं दीनं मङ्गलमनुपमं लवकुशौ च यत्र जातौ हो।।१।।
धन्यौ धन्यौ पितरौ सीतारामौ धन्यस्तयोः सङ्कल्पो हो।
येन सञ्जातौ बालकमरालौ महार्घबलतेजसौ हो।।२।।
धन्या धन्या पितृव्यास्त्रयो वीरा पितामह्यस्तिस्रो धन्या हो।
हरि हरि धन्यो वै दशरथः पितामहो दिवि दृष्ट्वा दीव्यति हो।।३।।
वर्धापनं वाद्यते अयोध्यायां सुरदेव्यो गायन्ति हो।
हरि हरि नृत्यन्ति रम्भाप्रभृतयः सकलनगरे सोहरं हो।।४।।
कौसल्या प्रवारयते मुक्ता कैकेयी देवी मणिगणं हो।
हरि हरि माता सुमित्रा राति रामभक्तिं गिरिधरगायकाय हो।।५।।

भौमी– आषाढ़ मास की नवमी धन्य है, शुक्ल पक्ष धन्य है और मंगल दिन भी धन्य है। जिस दिन श्रीराम के यहाँ लवकुश का जन्म हुआ। माता पिता श्रीसीताराम धन्य हैं, उन दोनों का संकल्प धन्य है जिस संकल्प से महार्घबल तेज सम्पन्न इन बाल हंसों का जन्म हुआ। इन बालकों के तीनों काका भरत–लक्ष्मण–शत्रुघ्न धन्य हैं। इनकी तीनों दादियाँ कौसल्या–कैकेयी–सुमित्रा धन्य हैं और इनके पितामह महाराज दशरथ भी धन्य हैं जो अपने पराक्रमी पौत्रों को स्वर्ग से ही देख–देखकर प्रसन्न हो रहे हैं। आज अयोध्या में बधाइयाँ बज रही हैं और देवियाँ गा रही हैं। रम्भा आदि अप्सराएँ नाच रही हैं। सम्पूर्ण नगर में सोहर गान हो रहा है। माता कौसल्या मोती लुटा रही हैं। देवी कैकेयी मणिगणों की वारणा कर रही हैं और माता सुमित्रा गायक **गिरिधर** कवि को श्रीराम भक्ति की न्यौछावर दे रही हैं।

गीत संख्या–१३

रामचन्द्रहृदि हर्षो न माति लवकुशौ सीता प्रसूता।।
आषाढशुक्लपक्षनवमी मनोज्ञा अभिजिन्मुहूर्तं शकुनघटियोग्या।
भ्राता भरतोऽपि मोदे च भाति लवकुशौ सीता प्रसूता।।१।।

दर्शं दर्शं भ्रातृव्यवदनारविन्दं नैव भाति सौमित्रे प्रमोदनिस्यन्दम्।
लक्ष्मणोऽपि निजस्थैर्यं जहाति लवकुशौ सीता प्रसूता।।२।।
शत्रुघ्नोऽपि दर्शं दर्शं भ्रातृजौ प्रजातौ श्यामावदातौ वदनवनजातौ।
हर्षपूर्णो मणिमुक्तां ददाति लवकुशौ सीता प्रसूता।।३।।
हनुमान् प्रहृष्टो वीक्ष्य भ्रात्रोः प्रसूतिमानन्दमग्नो लब्ध्वा ब्रह्मानुभूतिम्।
कविगिरिधराय रामभक्तिं राति लवकुशौ सीता प्रसूता।।४।।

भौमी– भगवान रामचन्द्र के हृदय में आज हर्ष समा नहीं रहा है। सीताजी ने लवकुश को जन्म दिया है। आषाढ़ शुक्ल पक्ष की नवमी बहुत रमणीय है। अभिजित् मुहूर्त और जन्म की घड़ी बहुत ही उचित है। भैया भरत भी प्रसन्नता से झूम रहे हैं। सीताजी ने लवकुश को जन्म दिया है। प्यारे भतीजों का मुख निहार–निहारकर लक्ष्मणजी का भी आनन्द प्रवाह नहीं समा रहा है और सुमित्रानन्दन लक्ष्मण अपनी स्थिरता छोड़ रहे हैं आनन्द में झूम रहे हैं, सीताजी ने लवकुश को जन्म दिया है। शत्रुघ्नजी भी श्यामवर्णी कमलमुख, प्यारे दो–दो भतीजों को देखकर प्रसन्न होकर मणि–मोती लुटा रहे हैं। हनुमानजी भी अपने दो भाइयों (लवकुश) का जन्म देखकर ब्रह्मानुभूति प्राप्तकर आनन्द में मग्न होकर **गिरिधर** कवि को राम भक्ति का दान दे रहे हैं। सीताजी ने लवकुश को जन्म दिया है।

विशेष– यह गीत अवधी अँचल के पुत्र जन्म के मंगल में गाये जाने वाले उठान गीत की ढाल में निबद्ध है।

गीत संख्या–१४

आनन्दमग्ना कौसल्या हे दृष्ट्वा पौत्रौ प्रसूतौ।
हृष्टा कैकेयी निशल्या हे दृष्ट्वा पौत्रौ प्रसूतौ।।
पितामही सुमित्रा निसर्गतः पवित्रा।
भूत्वा सुपौत्रवती हृष्टा सुचित्रा।।
जाता विगतसर्वशल्या हे धर्मसूत्रौ प्रसूतौ।।१।।
वसिष्ठं समाहूय ज्येष्ठराजमाता।
वाचयते स्वस्त्ययनं पौत्रिणी सञ्जाता।।
संवर्तितविप्रार्घ्यकल्या हे भानुगोत्रौ प्रसूतौ।।२।।
राजाधिराजगृहे गीतवाद्यनृत्यम्।
युगपत् समारब्धं जातकसुकृत्यम्।।
राजमातामङ्गलनिभाल्या हे दिव्यच्छत्रौ प्रसूतौ।।३।।
जयध्वनिर्वेदध्वनिर्वाद्यध्वनिः पूर्णा।
अम्बरे न माति जाता ककुभः प्रपूर्णा।।
गिरिधरसुगीतमञ्जुमाल्या हे भक्तिनेत्रौ प्रसूतौ।।४।।

भौमी- दो पौत्र लवकुश को जन्में देख कौसल्याजी आनन्द में डूब गयीं और इन सुन्दर जुड़वे पोतों को देख कैकेयीजी भी पूर्व की कलंक पीड़ा से रहित हो गईं। स्वभाव से पवित्र सुमित्रा पौत्रवती होकर रोमांचित और आश्चर्यवती हुईं आज धर्मसूत्रों के प्रवर्तक लवकुश को देखकर उन्हें पूर्व के सभी कष्ट भूल गये। बड़ी राजमाता कौसल्या जी ब्राह्मणों को अर्घ्य देकर, प्रातःकालीन सुन्दर भोजन कराकर, वसिष्ठजी को बुलाकर, स्वस्तिवाचन करा रही हैं। अब वे पौत्रवती हो गई हैं। उनके यहाँ दो-दो सूर्य वंश के प्रवर्तकों ने जन्म ले लिया है। राजाधिराज श्रीराम के घर में एक ही साथ गीत-वाद्य-नृत्य और पुत्र-जातक का वैदिक-कृत्य प्रारम्भ हो गया है। राजमाता कौसल्या मांगलिक कार्य संभाल रही हैं। क्योंकि उनके यहाँ दिव्य छत्रधारी दो पौत्रों का जन्म हुआ है। जयध्वनि, वेदध्वनि, वाद्यध्वनि से पूर्ण स्वरसमृद्धि आकाश में नहीं समा रही है। सारी दिशाएँ भर गईं और **गिरिधर** कवि की सुन्दर गीतमालिका भी प्रभु को समर्पित हो गई। आज रामभक्ति के दो-दो प्रतिष्ठाचार्य प्रकट हो गये हैं।

सन्दर्भश्लोकः

समाहूता शान्ता रघुतिलकपुत्रप्रसवके
सुतौ दृष्ट्वा सूतौ रुचिररुचिरौ भूमिसुतया।
जहौ ग्लानिं म्लानिं विपिनविभवां तापसवधू-
र्ववन्दे सौभाग्यं लवकुशपितृस्वसृकरणम्।।१।।

भौमी- श्रीराम के पुत्र जन्म के महोत्सव में बुलायी हुयी, तापस पत्नी शान्ताजी (जो कि श्रीराम की बड़ी बहन हैं।) ने पृथ्वीकन्या सीताजी द्वारा प्रकट किये गये अत्यंत सुंदर दो पुत्रों को देखकर, वननिवास की ग्लानि और कष्ट छोड़ दिया तथा लवकुश की पितृश्वसा पिता की बहन बुआ बनने के अपने सौभाग्य को वंदन किया।

गीत संख्या-१५

अहं शान्ता चिरादशान्ता समायाता भ्रातृजयोर्जन्मोत्सवे।।
यदा नीतवती ततः शतगुणं गृहीत्वा सुखेनैव स्वगृहं प्रयातास्मि।।१।।
कोटिकोटिजन्मना प्रयाच्यां नाशयित्वा भगिनीर्णं सानन्दं निर्यातास्मि।।२।।
हीरकं ग्रहीष्ये न मौक्तिकं ग्रहीष्ये अद्वितीयकृते समायातास्मि।।३।।
राजाधिराजरामभक्तिं ग्रहीष्ये गिरिधरेण स्तुतिं गातास्मि।।४।।

भौमी- मैं चिरकाल से अशान्त शान्ता आज अपने भतीजों के जन्मोत्सव में आयी हूँ, जो लायी थी उससे अनंत गुना अधिक ग्रहण करके अपने घर जा रही हूँ। मैं करोड़ों-करोड़ों जन्मों की याचना को नष्ट करके भतीजों के जन्मोत्सव में बहिन का ऋण भी समाप्त करके जा रही हूँ। मैं हीरा नहीं लूँगी, मोती नहीं लूँगी। किसी अद्वितीय उपहार के लिये भतीजों के जन्मोत्सव में आयी हूँ। मैं तो नेत्र में राजाधिराज श्रीराम की भक्ति ही लूँगी और **गिरिधर** कवि के साथ प्रभु की स्तुति गाऊँगी।

विशेष- यह गीत अवधी लोकधुन के 'उठान' की ढाल में निबद्ध है। उठान गीत बालक-जन्म का सोहर गीत का अंग है और इसे महिलाएँ जन्म मंगलगीत को विश्राम देते समय गाती हैं।

गीत संख्या-१६

शान्ता प्राह श्रीरामं प्रति-

भ्रातश्चिरात्त्वं पुत्रवान् जातो देहि मे पारिबर्हम्।।
राजाधिराजराजमणे राम भगवन् विमलविनतकल्पपादपारामभूमन्।
सुजनशर्मदातः प्रणतत्रातः देहि मह्यं पारिबर्हम्।।१।।
त्रिंशत्सहस्त्रवर्षं विहिता प्रतीक्षा विधात्रापि कृता शान्तासंयमपरीक्षा।
सफलो मे मनोरथपारिजातो देहि मह्यं पारिबर्हम्।।२।।
सीतया प्रासाविषातां सुतौ बलवीरौ नागकन्याभोग्यौ योग्यौ सागरगभीरौ।
लब्ध्वा त्वं देहि मह्यं पितृणमुक्तो जातः।।३।।
यौतुकेन विना राघव नाहं निवर्ते गिरिधरप्रभुसुताभ्यां सहैव परावर्ते।
ममाप्येष शुभः कालः समायातः देहि मह्यं पारिबर्हम्।।४।।
नो दातुं शक्नोषि यदि रामबन्धो तदा शृणूपायं तं च कुरु कृपासिन्धो।
सहसीतो मनसि वस भ्रातः देहि मह्यं पारिबर्हम्।।५।।

भौमी- शान्ताजी भगवान श्रीराम से कहती हैं- हे भैया! आप बहुत दिनों के पश्चात् पुत्रवान हुये हैं। मुझे नेग दीजिये। हे राजाधिराज! हे राजाओं के शिरोमणि! हे भगवान राम! हे निर्मल और निर्मल भक्तों के लिये कल्पवृक्ष के बगीचे! हे सज्जनों को सुख देने वाले! प्रणतों की रक्षा करने वाले प्रभु! मुझे नेग दीजिये। तीस हजार वर्षों तक मैंने प्रतीक्षा की और विधाता ने भी शान्ता के संयम की परीक्षा कर ली। आज मेरा मनोरथ कल्पवृक्ष फलवान हो गया। अब मुझे दहेज दीजिये। सीताजी ने उन दो पुत्रों को जन्म दिया है, जो नाग-कन्याओं के लिए भोग्य हैं। योग्य सागर के समान गंभीर, बलवान और पराक्रमी हैं। उन्हें पाकर आप भी पितृऋण से मुक्त हो गये हैं। मुझे दहेज दीजिये। हे राघव! मैं दहेज, नेग पाये बिना नहीं लौटूँगी। यदि नहीं दोगे तो **गिरिधर** कवि के स्वामी आप श्रीराम के दोनों पुत्रों के साथ शृंगवेरपुर जाऊँगी। अर्थात् लवकुश को सीताजी को नहीं दूँगी। इन्हें अपने साथ ले जाऊँगी। मेरा भी आज शुभ समय आया है। राघव भैया! मुझे नेग दीजिये। हे राम भैया! यदि आप यह नेग नहीं दे सकते हो तो हे कृपा के सागर! मैं जो उपाय कहूँ उसे सुनिये और कीजिये। हे राघव भैया! अब आप तो सीता भाभी के साथ मेरे मन में ही निवास कर लीजिये। यही मेरा मुझे नेग दीजिये।

गीत संख्या-१७

शान्ता श्रीसीतां प्रति-

लप्स्ये सीते राज्ञि ते कमलकरकङ्कणम्।
कमलकरकङ्कणं नवलकरकङ्कणम्।।
विना यौतुकं न यामि भ्रातृजाभ्यां वा प्रयामि।
मातृकैकेयीरितापि नो जहामि वै पणम्।।१।।

यद्दृगयनं सुखचयनं विपश्चितां शमानयनम्।
त्रिनयननयनजसंस्कृतं महःक्वणम्।।२।।
देहि मा विलम्बं धेहि भातृजाये समाधेहि।
ननान्दुः समस्यां समां व्रणय मम व्रणम्।।३।।
शान्तया निवेद्यमाना ददाति कङ्कणं निजम्।
सीता गिरिधररायापि राति मङ्गलक्षणम्।।४।।

भौमी- अब शान्ताजी श्रीसीताजी से कहती हैं– हे सीता महारानी! मैं आज आपके कमलकर का कंकण लूँगी। श्रीहस्त में धारण किया हुआ नया कंकण ले लूँगी। मैं नेग के बिना नहीं जाऊँगी। यदि नहीं दोगी तो दोनों भतीजों को साथ ले जाऊँगी। माता कैकेयी के कहने पर भी अपनी प्रतिज्ञा नहीं छोड़ूँगी। जो ऋचाओं का स्थान है, सुख का चयन स्वरूप है और विद्वानों के कल्याण का प्राप्त करने वाला माध्यम है और जो त्रिनेत्र शंकर भगवान के नेत्र से उत्पन्न संस्कार में तेज संबंधी शब्द से पूर्ण है। वही कंकण मैं भतीजों के नेग में लूँगी। हे भाभीश्री! यह नेग दे दीजिये विलम्ब मत कीजिये। भाभीश्री! ननद की सभी समस्याओं का समाधान कीजिये। मैं अपने संसार के व्रण को समाप्त कर दूँ। इस प्रकार शान्ताजी से निवेदित होकर उन्हें अपना कंकण देती हुयी सीताजी **गिरिधर** कवि को भी श्रीरामभक्ति रूप मंगल महोत्सव प्रदान कर रही हैं।

गीत संख्या-१८

सीता प्राह शान्तां प्रति-

लवकुशोद्भवे शान्ते वन्देऽहं त्वामार्ये।
त्वद्याच्यां प्रातुं वै अभिनन्दे त्वामार्ये।।
त्वं शुभे ननान्दा मे त्वां पूजयामि भद्रे।
निजद्रविणैः प्राणपणैः त्वां मानयामि भद्रे।।
जनजनविमलस्वान्ते त्वं वस ब्राह्मणभार्ये।।१।।
त्वं श्रीरघुवरभगिनी तस्यापि सदा मान्या।
तत्सम्बन्धात् सौम्ये मम चापि महामान्या।।
प्रतिरामभक्तिचित्ते त्वं वस भूसुरभार्ये।।२।।
त्वं शान्तितनुस्तन्वी शीलय सुजनस्वान्तम्।
शान्ते शान्तिर्भूत्वा सज्जनं वितनु शान्तम्।।
मानय ममानुरोधं संसेवितमुनिवर्ये।।३।।
यत्रापि भजकचित्ते सहभवेन्मया रामः।
नवनीलघनश्यामो गिरिधरदृग्विश्रामः।।
तत्रापि त्वया भाव्यं सन्तोषितजगदार्ये।।४।।

भौमी- अब सीताजी शान्ताजी से कह रही हैं–हे शान्ते! लवकुश के जन्म महोत्सव में मैं आपका वन्दन करती हूँ। आपकी याचना को पूर्ण करने के लिये मैं आपका अभिनंदन करती हूँ। हे कल्याणी! आप मेरी ननद हैं। अतः मैं आपकी पूजा करती हूँ। अपने प्राणों से भी आपका सम्मान करती हूँ। अतः हे ब्राह्मणपत्नी! हम सीताराम के निजभक्तों के निर्मल मन में आप शान्ति बनकर निवास करें। हे सूक्ष्म अंगों वाली! आप शान्तिमयी होकर सज्जनों के मन में निवास कीजिये और हे शान्ते! आप शान्ति बनकर सज्जनों को शान्त कीजिये। हे मुनियों द्वारा सेवित शान्ते! आप मेरा अनुरोध मान लीजिये। जिस भजन करने वाले के चित्त में नीले मेघ के समान श्यामल गिरिधर कवि के नेत्रों के विश्रामदाता श्रीराम मेरे साथ विराजें। हे जगत के श्रेष्ठ लोगों को संतुष्ट करने वाली शान्ते! आप वहाँ शान्तिरूप में अवश्य निवास करें।

गीत संख्या-१९

वर्धापनं वाद्यते रघुनाथद्वारे।।
आषाढशुक्लनवमी धन्या धन्या भूता।
यस्यां विदेहसुता लवकुशौ प्रसूता।।
वर्धापनं वाद्यते सीतानाथद्वारे।।१।।
कन्दावदातौ वदनवनजातौ।
रामप्रतिविम्बभूतौ तनयौ सुजातौ।।
वर्धापनं वाद्यते रमानाथद्वारे।।२।।
भरतलक्ष्मणशत्रुघ्नवात्सल्यभाजौ ।
मारुतिमतौ तुष्टवैष्णवसमाजौ।।
वर्धापनं वाद्यते नृपनाथद्वारे।।३।।
सीतारामप्रेममयौ दिव्यगुणागारौ।
वन्दारुमन्दारौ गिरिधरश्रृङ्गारौ।
वर्धापनं वाद्यते जगन्नाथद्वारे।।४।।

भौमी- आज रघुनाथजी के द्वार पर बधाई बज रही है। आषाढ़ शुक्ल पक्ष की यह नवमी धन्य है। जिसमें सीताजी ने लवकुश को जन्म दिया है। आज सीतापति के द्वार पर बधाई बज रही है। बादल के समान सुन्दर कमलमुख, सुन्दर दोनों बेटे साक्षात् रामजी के ही प्रतिबिम्ब होकर जन्मे हैं। आज रमानाथ के द्वार पर बधाई बज रही है। ये दोनों राजकुमार श्रीभरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न के वात्सल्य-पात्र हैं–हनुमानजी से सत्कृत तथा वैष्णव समाज को संतुष्ट करने वाले ये दोनों राजकुमार शोभित हो रहे हैं और राजाओं के नाथ श्रीराम के द्वार पर बधाई बज रही है। ये दोनों राजकुमार श्रीसीताराम के प्रेम-प्राचुर्य से युक्त, दिव्य-गुणों के भवन, प्रणाम करने वालों के लिए कल्पवृक्ष स्वरूप **गिरिधर** कवि के शृंगार रूप लवकुश श्रीअवध के राजभवन में जन्मे हैं और जगन्नाथ श्रीराम के द्वार पर बधाई बज रही है।

गीत संख्या-२०

अद्य रघुपतिगृहे लवकुशषष्ठी।
लवकुशषष्ठी खलाङ्कुशषष्ठी।।
आषाढ़शुक्लपक्षनवमी पुनीता।
यस्यां लवकुशौ तनयावसुत सीता।।
अद्य भौमीपतिगृहे लवकुशषष्ठी।।१।।
रामप्रतिबिम्बभूतौ रघुवीरबालकौ।
परमप्रतापिनौ निखिललोकपालकौ।।
अद्य रमापतिगृहे लवकुशषष्ठी।।२।।
कौसल्याकैकेयीमागधेयीपरिलालितौ ।
ऊर्मिलामाण्डवीश्रुतिकीर्तिप्रीतिपालितौ ।।
अद्य नरपतिगृहे लवकुशषष्ठी।।३।।
मङ्गलकलशद्वारतोरणैरलङ्कृता ।
अयोध्यामरावतीव गिरिधरेशवन्दिता।।
अद्य जगतपतिगृहे लवकुशषष्ठी।।४।।

भौमी- आज श्रीराम के राजभवन में लवकुशजी की षष्ठी मनाई जा रही है यह खलों के अंकुश स्वरूप लवकुशजी की षष्ठी है। पवित्र है, आषाढ़ शुक्ल पक्ष की नवमी, जिसमें सीताजी ने दो बालकों को जन्म दिया है। आज सीतापति के भवन में लवकुश की षष्ठी मनाई जा रही है। ये दोनों श्रीराम के बालक रामजी के ही प्रतिबिम्ब परमप्रतापी और सभी लोकों के पालक हैं। आज रमा अर्थात् श्रीराम की आह्लादिनी-शक्ति जानकीजी के पति राघवजी के भवन में षष्ठी है। इन दोनों बालकों को श्रीकौसल्या कैकेयी और सुमित्रा जी तीनों दादियाँ दुलार कर रही हैं और माण्डवी उर्मिला तथा श्रुतिकीर्ति ये तीनों काकियाँ पालन कर रही हैं। आज महाराज के भवन में लवकुश की षष्ठी आयोजित है। यह श्रीअयोध्या जो गिरिधर कवि के ईश्वर श्रीराम के द्वारा भी वन्दित है, आज मांगलिक कलश और द्वार के तोरणों से सुशोभित हो रही है। आज जगतपति श्रीराम के भवन में लवकुशजी का षष्ठी महोत्सव आयोजित हो रहा है।

गीत संख्या-२१

अद्यायोध्यायां द्वादशी विभाति जन्मनो लवकुशयोः।।
पुरुषार्थपञ्चमीव श्रावणकृष्णपञ्चमी।
यत्र विराराज्यते मूर्तेव भक्तिपञ्चमी।।
अद्य महोल्लसी द्वादशी विभाति।।१।।

वर्धापनं व्याहरन्ति गुरवो मुनीन्द्राः।
स्वस्तिवाचमुच्चरन्ति वैदिका द्विजेन्द्राः।।
अद्य गुणोल्लसी द्वादशी विभाति।।२।।
वसिष्ठश्चकार नामकरणसंस्कारम्।
लवं कुशं नाम्ना लोकवेदशुद्धाचारम्।।
अद्य सत्तुलसी द्वादशी विभाति।।३।।
रामो ददौ ब्राह्मणेभ्यो धनं भूरिदक्षिणाम्।
पुत्रजन्ममहोत्सवे कृत्वा सुप्रदक्षिणाम्।।
गिरिधरगीतोल्लसी द्वादशी विभाति।।४।।

भौमी- आज अयोध्या में लवकुशजी के जन्म की बारही मनायी जा रही है। पुरुषार्थ पंचमी अर्थात् प्रेमभक्ति जैसी श्रावण की कृष्ण पक्ष की पंचमी सुशोभित हो रही है। जहाँ नवधा की पाँचवीं भक्ति अर्थात् अर्चना अथवा शबरी के यहाँ कही हुई पंचम भक्ति दृढ़विश्वास पूर्वक श्रीराम मन्त्र जपरूपा वस्तुतस्तु निर्भरा, अविरला, अनपायनी, भावभक्ति तथा प्रेमाभक्तियों में से पाँचवीं प्रेमाभक्ति ही मूर्तिमति होकर ही यहाँ विराज रही हैं और लवकुश के जन्म की बारही उत्सव से सुशोभित हो रही हैं। आज गुरुजन, मुनिजन बधाई शब्दों का उच्चारण कर रहे हैं। वैदिक ब्राह्मणगण स्वस्तिवाचन कर रहे हैं। आज गुणों से सुशोभित लवकुश जन्म की बारही प्रकाशित हो रही है। वसिष्ठजी ने लोक-वेद से विशुद्ध आचरण वाले प्रथम कुमार का नाम लव और द्वितीय कुमार का नाम कुश घोषित किया। आज श्रीराम लक्ष्मण सीताजी की प्रसन्नता से भरी हुई लवकुश की जन्म बारही सुशोभित हो रही है। पुत्र जन्म-महोत्सव में प्रदक्षिणा करके भगवान राम ने ब्राह्मणों को दक्षिणारूप में बहुत-सा धन दिया। और गिरिधर कवि के गीतों से सुशोभित लवकुश की जन्म-बारही प्रकाशित हो रही है।

गीत संख्या-२२

हरितहरितकाण्डेषु काञ्चनहिन्दोलना।
दोलेते लवकुशौ दोलयति सीताललना।।
अयोध्यायाः कनकभवने सीतया प्रसूतौ।
दर्शं दर्शं लवकुशौ प्रमोदतेऽतिपूतौ।।
चुम्बं चुम्बं पुत्रमुखे नन्दति विच्छलना।
दोलेते लवकुशौ दोलयति दिव्यललना।।१।।
उर्मिलामाण्डवीश्रुतिकीर्तयोऽपि हर्षिताः।
वीक्ष्य तिस्त्रः पितामह्यः पौत्रौ प्रहर्षिताः।।

शिक्षयन्ती चलितुं कलितसर्वकलना।
दोलेते लवकुशौ दोलयति राजललना।।२।।
जगच्छिक्षकोऽपि रामः शिक्षयते पुत्रकौ।
वर्णमालं वाक्यजालं धृतधर्मसूत्रकौ।।
प्रवक्तुमभ्यासयति भौमीभाग्यभालना।
दोलेते लवकुशौ दोलयति नृपललना।।३।।
संस्कारपूर्वकं सा पालयति पाल्यौ।
गिरिधरेशस्वामिनी सा लालयति लाल्यौ।।
वादं वादं मृदुवादं पापपूगच्छालना।
दोलेते लवकुशौ दोलयति भूपललना।।४।।

भौमी– हरी–हरी डालों पर आज सोने का पालना विराज रहा है। कुमार लवकुश झूल रहे हैं और सीता माता झुला रही हैं। अयोध्या के कनक भवन में सीताजी ने दो जुड़वे बालकों को जन्म दिया है। इन दोनों पवित्र बालकों को देख–देखकर सीताजी बहुत प्रसन्न हो रही हैं। छलरहित सीताजी पुत्रों के मुख चूम–चूमकर प्रसन्न हो रही हैं और दिव्यरूप में पालना झुला रही हैं। उर्मिला, माण्डवी, श्रुतिकीर्ति ये तीनों काकियाँ भी हर्षित हैं और श्रीकौसल्या, कैकेयी, सुमित्रा ये तीनों दादियाँ अपने प्रतापी पौत्रों को देखकर बहुत प्रसन्न हैं सम्पूर्ण कलाओं से युक्त तीनों दादियाँ कौसल्या, कैकेयी, सुमित्रा, लवकुश नामक अपने प्यारे दोनों पोतों को अंगुली पकड़कर चलना सिखा रही हैं और राजरानी सीता जी इन्हें पालने पर झुला रही हैं। जगत के शिक्षक भगवान राम धर्म का सूत्र धारण करने वाले अपने दोनों पुत्रों को वर्णमाला और वाक्य जालों को लिखना सिखा रहे हैं। सौभाग्य को सम्हालने वाली सीताजी पुत्र लवकुश को वर्णों और वाक्यों का उच्चारण करना सिखा रही हैं। लवकुश झूल रहे हैं और महारानीजी पालना झुला रही हैं। सीताजी पालन करने योग्य बालकों को संस्कारों के साथ पाल रही हैं और **गिरिधर** कवि के श्रीराम की गृहस्वामिनी सीताजी लालन करने योग्य लवकुश को दुलार रही हैं। पापसमूहों को प्रक्षालित करने वाली जानकीजी कोमल वाणी में बोल–बोलकर शिशुपुत्रों को वैदिक सिद्धांत समझाती हैं, लवकुश झूलते हैं और पट्टमहिषी सीताजी उन्हें पालने पर झुलाती हैं।

विशेष– यह गीत कवि की स्वयं निर्मित धुन की ढाल में निबद्ध है। बोल हैं–

हरी–हरी डालों पे सोने का पालना।
झूलें प्यारे लवकुश झुलायें सीता ललना।।

गीत संख्या–२३

वसिष्ठः सन्दीक्षयति कुमारौ।
कृतोपवीतौ परमविनीतौ शिक्षयते सुकुमारौ।।
रामबिम्बभूतावतिपूतौ पाठयते श्रुतिजातम्।
धनुर्वेदमथ सरहस्यं शास्त्रं दिव्यास्त्रव्रातम्।।१।।

सकृदाकर्ण्य स्माधीयाते सुप्रतिभासम्पन्नौ।
हनुमत्कृपाविशुद्धसन्मती सीतापदप्रपन्नौ।।२।।
अरुन्धतीपौत्राविव चैतौ सल्लालयति प्रतीतौ।
कन्दमूलसुफलं भोजयते संस्मृतराघवसीतौ।।३।।
विद्यासद्विवेकसंस्कारैः कृतभारतसंस्कारौ।
सीतासुतौ जीवतां नित्यं गिरिधरवाण्याधारौ।।४।।

भौमी- आज वसिष्ठजी लवकुश को व्रतबन्ध की दीक्षा दे रहे हैं। बालक लवकुश का यज्ञोपवीत करके इन परम विनम्र सुकुमार दोनों राजकुमारों को वसिष्ठजी शिक्षा दे रहे हैं। श्रीरामजी के बिम्ब अर्थात् श्रीविग्रहस्वरूप अत्यन्त पवित्र राजकुमार लवकुश को वसिष्ठजी पारम्परिक चारों वेद रहस्य के साथ यजुर्वेद का उपवेद धनुर्वेद शस्त्र और दिव्यास्त्रों का समूह समझा-समझाकर, पढ़ा-पढ़ाकर अभ्यास करा रहे हैं। हनुमानजी की कृपा से अत्यन्त पवित्र हुई सात्विक बुद्धि वाले सुप्रतिभा अर्थात् कारयित्री प्रतिभा से सम्पन्न सीताजी के चरणों में प्रपन्न कुमार लवकुश गुरुमुख से एक ही बार सुनकर सम्पूर्ण पाठ्य-विषय, अर्थ के साथ कण्ठस्थ कर लेते थे। माता अरुन्धती निरन्तर श्रीराम और सीताजी का स्मरण कर रहे इन दोनों राजकुमार लवकुश को अपना पौत्र ही मानकर और विश्वास-पात्र समझकर प्रसन्नता से दुलारती हैं और मनुहार करके कंद-मूल-फल खिलाती हैं। इस प्रकार विद्या, श्रेष्ठ विवेक और संस्कारों से भारत का संस्कार किये हुये सीतारामजी के दोनों पुत्र लवकुश **गिरिधर** कवि की वाणी के आधार बनकर नित्य जीवित रहें।

गीत संख्या-२४

त्रयोऽपि भ्रातरः सञ्जाता सुतवन्तः।
रघुपतिकृपया श्रितरूपशीलगुणवन्तः।।
भरताच्छ्रीमाण्डवी व्यजनयत् तक्षपुष्कलौ वीरौ।
पितृवद्रामपदारविन्दनिरतौ निपुणौ रणधीरौ।।१।।
चन्द्रकेतुमङ्गदं लक्ष्मणादूर्मिलाजनयदीशौ।
सीतारामपदाब्जसेविनौ गुणमोदितजगदीशौ।।२।।
तथा सुबाहुं शत्रुघातिनं शत्रुघ्नाच्छ्रुतिकीर्तिः।
गिरिधरप्रभोरजनयत् भक्तौ भक्तमनोरथपूर्तिः।।३।।
एवं रामः ससुतबन्धुकः स्निग्धं राज्यं चक्रे।
निष्कण्टकं विजितशत्रुस्त्रिभुवनमपि समलञ्चक्रे।।४।।

भौमी- अब कवि उत्तरकथा को गीत बद्ध करते हुये कहते हैं कि लवकुश के जन्म के पश्चात् श्रीराम के तीनों भ्राता श्रीभरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न पुत्रवान हुये। श्रीराम की कृपा से इन तीनों भ्राताओं के पुत्र भी रूप, शील और गुणों से संपन्न हुये। भरतजी से श्रीमाण्डवीजी ने तक्ष और पुष्कल नामक दो वीर पुत्रों को जन्म दिया। जो

अपने पिता भरत के ही समान भगवान राम के चरणकमल में निरत कुशल और युद्ध में धीर थे। इस प्रकार लक्ष्मणजी के सम्पर्क से उर्मिलाजी ने चन्द्रकेतु और अंगद इन दो समर्थ पुत्रों को जन्म दिया। वे सीतारामजी के चरणकमल के सेवक थे तथा उन्होंने अपने गुणों से जगत के ईश्वर प्रभु श्रीराम को प्रसन्न कर लिया था। इसी प्रकार शत्रुघ्नलाल के सम्पर्क से श्रुतिकीर्तिजी ने सुबाहु और शत्रुघाती नामक दो पुत्रों को जन्म दिया। वे दोनों बालक **गिरिधर** प्रभु के श्रीराम के भक्त थे और भक्तों के मनोरथों की पूर्ति करते थे। इस प्रकार श्रीराम तीन भाई, दो पुत्र, छः भतीजों के साथ न्यूनातिन्यून ३३००० (तैंतीस हजार) वर्ष-पर्यन्त प्रेमपूर्वक तीनों लोकों पर शत्रुओं को मारकर निष्कण्टक राज्य किये और अपने चरित्र के अलंकार से तीनों लोकों को सुशोभित कर दिया।

विशेष- शत्रुघ्न के पुत्र का नाम सुबाहु सुनकर जिज्ञासुओं के मन में यह शंका स्वाभाविक है कि सुबाहु तो एक राक्षस का नाम था जिसका वध बाल्यकाल में विश्वामित्र की यज्ञ रक्षा के समय भगवान राम ने किया था फिर वही नाम शत्रुघ्न के पुत्र का क्यों रखा गया? इसका उत्तर यह है कि दोनों नामों में अक्षरों की समानता होने पर भी अर्थ की दृष्टि से बहुत अन्तर है। राक्षस के सन्दर्भ में सुबाहु शब्द का अर्थ है सज्जनों को कष्ट देने वाला "सुजनान् बाधते इति सुबाहुः" जो सुजनों को कष्ट देता है उसे सुबाहु कहते हैं। यहाँ 'सु' उपसर्ग बाध् धातु उण प्रत्यय और पृषोदरादित्वात् धृ के स्थान पर हकार आदेश होकर सुबाहु शब्द निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ है सज्जनों को पीड़ा पहुँचाने वाला। और शत्रुघ्न पुत्र के सन्दर्भ में सुबाहु का अर्थ है सुन्दर बाहुओं वाला राजकुमार। "**शोभनो बाहू यस्य स सुबाहुः**" इनकी बाहुएँ सुन्दर हैं, जिन्हें प्रभु राम ने स्वयं थपथपाया है।

गीत संख्या-२५

पृथिव्यां को ननु रामसमानः।
सन्नपि सर्वसमर्थः प्रभुरपि यः स्याद्गलदभिमानः।।
हतताटकासुबाहुः पदरजसा समुद्धताहल्यः।
विश्वामित्रं भजति भृत्यवत् तथात्ययं कौसल्यः।।१।।
भग्नशिवधनुः श्रीस्वयंवरे भार्गवगर्वप्रहारी।
सीतापतिर्जनन्याः सविधे सालसदृक् सुखकारी।।२।।
हरदृग्ब्रह्मवेदहरिसेना क्षणाद्धता रणधाम्नि।
सैव तरुलतावयोमृगालीन् जिज्ञासू रिपुनाम्नि।।३।।
बद्धसेतुरणनिहतनिशिचरः कुतुकाद्रावणजेता।
गिरिधरप्रभुर्वसिष्ठकृतज्ञो निरभिमानशुचिचेता।।४।।

भौमी- अब महाकवि सर्ग के शेष भाग में अपने आराध्य प्रभु श्रीराम के उदात्त गुणों का वर्णन करते हैं। इस पृथ्वी पर श्रीराम के समान कौन हुआ, कौन है और कौन होगा? जो सर्वसमर्थ होकर सबका स्वामी होकर भी सर्वथा अभिमान से रहित हो। अहो! जिन्होंने ताटका और सुबाहु का वध किया तथा अपने चरणकमल

की धूलि से शिला बनी हुई अहल्या का उद्धार भी किया फिर भी अर्थात् इतनी विशेषताओं के होते हुये भी वे कौसल्यानंदवर्धन श्रीराघव एक सामान्य चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी, वैतनिक भृत्य की भाँति विश्वामित्र जी की सेवा करते रहते हैं। जिन्होंने सीताजी के स्वयंवर में शंकरजी का धनुष तोड़कर परशुराम का गर्व चूर-चूर कर दिया और सीताजी की जयमाला धारण की। वे ही सीतापति सुखप्रद भगवान श्रीराम अयोध्या लौटकर अपने तीनों माताओं के समक्ष आलस भरी आँखों से थके हुये दिख रहे हैं। जिन्होंने दण्डक वन के रणांगण में खर की चौदह सहस्त्र सेना को एक क्षण में अकेले मार डाला था, वे ही प्रभु अपने ऐश्वर्य का अभिमान छोड़कर सीताजी के हरणकर्ता शत्रु के नाम के सम्बन्ध में वृक्ष, लता, पक्षी, मृग और भ्रमरों से जिज्ञासा कर रहे हैं कि तुम लोग बताओ सीताजी का हरण किसने किया? जिन प्रभु श्रीराम ने अगाध सागर में बिना किसी सीमेन्ट, बालू, चूना, लोहा, लक्कड़, गारा के सुदृढ़ सेतु का निर्माण कराया। युद्ध में बड़े-बड़े राक्षसों को मारा, खेल-खेल में ही रावण जैसे अजेय, दुर्दान्त वीर को जीता; वे ही अभिमान शून्य, पवित्र चित्त **गिरिधर** कवि के प्रभु श्रीराम श्रीअवध लौटकर गुरुदेव वसिष्ठजी के कृतज्ञ बन रहे हैं कि आप श्री की कृपा से हमने राक्षसों का वध किया।

गीत संख्या-२६

रामो मदनमोहनो देवः।
यत्र मदो नहि नैव च मोहः सुरमुनिवाञ्छितसेवः।।
कोटिकोटिब्रह्माण्डजातकं प्रतिरोमं विभ्राणः।
मातृस्तनन्धयः सोऽयं नीरजनेत्रो निद्राणः।।१।।
कौशिकमखरक्षणः क्षणाद्रणनिहतानेकसुरारिः।
विश्वामित्रं सैव सेवते भृत्यो यथा खलारिः।।२।।
हरचापं विभज्य भृगुरामं सदसि च दमयाञ्चक्रे।
उपकौसल्यं स एवालसो कलयति मीलितनेत्रे।।३।।
मुनिजनगीतचारुचरितो नतशिरा दृश्यते नम्रः।
आभारं विभर्ति गुरुपदपाथोजपरागविनम्रः।।४।।
यस्यांशतो भवन्ति कोटिशः विधिहरिशम्भुवरूथाः।
तेन सेतुबन्धे प्रतिष्ठितः शिवः साक्षिकपियूथाः।।५।।
नागपाशबन्धे न मानसे किञ्चित् कलयति मोहम्।
सागरनिग्रहकालेऽपि प्रस्तौति न किञ्चिद् द्रोहम्।।६।।
भवतु नाम मदमोहावपरे किन्त्वस्मिन् नैवैतौ।
अतो गिरिधरेणापि मदनमोहनः श्रितो भवसेतौ।।७।।

भौमी- श्रीराम मदनमोहन देवता हैं अर्थात् ''**मद न मोह न**'' जहाँ न मद है और जहां न मोह है उन्हें

कहते हैं मदनमोहन। **''मदः न यस्मिन् स मदनः मोहः न यस्मिन स मोहनः''** इस प्रकार व्युत्पत्ति करके ''मयूर व्यंसकादयश्च'' इस पाणिनीय सूत्र से ''मदनमोहन'' शब्दों में बहुब्रीह समास नकार का पश्चात् प्रयोग और उसके लोप का अभाव समझना चाहिये अथवा दोनों शब्दों को ''पृषोदरादिगण'' में पठित मानकर बहुब्रीहि समास नकार के लोप का अभाव और उसका पश्चात् प्रयोग समझना चाहिए। फिर कर्मधारय करके ''मदनश्चासौमोहनः'' जो मद रहित है वही मोह रहित है। इस प्रकार विग्रह करके मदनमोहन शब्द की निष्पत्ति कर लेनी चाहिये। इसी आशय को गीत बद्ध करते हुये कवि कहते हैं कि जिन प्रभु राम के पास मद और मोह दोनों नहीं हैं, देवता और मुनि जिनकी सेवा की इच्छा करते रहते हैं वे ही श्रीराम मदनमोहन देव हैं। अरे! जो अपने प्रत्येक रोम में करोड़ों-करोड़ों ब्रह्माण्डों को एक साथ धारण करते हैं, जहाँ एक-एक रोम में न्यूनातिन्यून करोड़ क्षीरसागर अर्थात् दूध के समुद्र रहते होंगे वे ही अरबों दूध समुद्रों के आधार श्रीराम माता का स्तनपान कर रहे हैं और सायंकाल होते ही सांध्यकमल की भाँति अपने नेत्रों में झपकी लेकर सो जाते हैं। जिन्होंने क्षणभर में समर भूमि में अनेक देवशत्रु-राक्षसों का वध करके विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा की वे ही खलों के शत्रु श्रीराघव मद और मोह से दूर रहकर वैतनिक अनपढ़ सेवक की भाँति विश्वामित्रजी की सेवा कर रहे हैं। जिन्होंने सीता-स्वयंवर में शिवधनुष तोड़कर परशुराम का दमन किया था, वे ही श्रीराम कौसल्या माता के समक्ष अपनी आँखें बन्द करके आलस्य प्रकट कर रहे हैं। जब मुनिजन प्रभु के सुन्दर चरित्र का गान करते हैं तब श्रीराम विनम्र होकर सिर झुकाये दिखते हैं और गुरुदेव के चरणकमल के परागरूप धूल पर विनम्र होकर उन्हीं का आभार प्रकट करते हैं। जिनके अंश से करोड़ों-करोड़ों ब्रह्मा, विष्णु, शिव उत्पन्न होते हैं वे ही सबके अंशी प्रभु श्रीराम सेतु वंधस्थल में रामेश्वररूप शिव की प्रतिष्ठा कर रहे हैं। इस दृश्य के सभी वीर वानर साक्षी हैं। नागपाश-बन्धन के समय प्रभु श्रीराम अपने मन में किसी भी प्रकार का मोह धारण नहीं कर रहे हैं और सागर-निग्रह काल में भी समुद्र के प्रति किसी भी प्रकार का विद्रोह प्रस्तुत नहीं कर रहे हैं, यही है उनका मदनमोहनत्व। अन्य देवता में भले ही मद और मोह रह ले, किन्तु मेरे प्रभु श्रीराम में मद-मोह कभी फटकने भी नहीं पाते। इसीलिये भवसागर के सेतुरूप में मुझ **गिरिधर** कवि ने भी मदनमोहन श्रीराम का ही आश्रय लिया है।

गीत संख्या-२७

क्वचिन्नैवं श्रुतो दृष्टो यथा राघव स्वभावस्ते।
क्वचित्केनापि नोद्दिष्टो यथा राघव स्वभावस्ते।।
सुखे नो लब्धसंहर्षो न दुःखे वै मनः कर्षः।
तुलितचन्द्रो न वै सृष्टो यथा राघव स्वभावस्ते।।१।।
न हृष्टो राज्यसम्प्राप्तो न वा क्लिष्टो वनावाप्तौ।
समो नो सर्वदा दृष्टो यथा राघव स्वभावस्ते।।२।।
जयन्ते नोल्लसत् क्रोधो दशग्रीवे न रिपुबोधो।
विशिष्टो नैव निर्दिष्टो यथा राघव स्वभावस्ते।।३।।

विशिष्टः सर्वभूतेभ्यः स्वभावो गिरिधरेशस्य।
त्रिलोक्यां नो समादृष्टो यथा राघव स्वभावस्ते।।४।।

भौमी- हे राघव! आपका जैसा स्वभाव है, वैसा किसी के द्वारा न कहीं सुना गया है और न ही देखा गया है। और हे राघव! आपका जैसा स्वभाव है वैसा किसी के द्वारा कीर्तन का विषय भी नहीं बनाया गया अर्थात् कहा भी नहीं गया। अहो! आपका स्वभाव तो चन्द्र के समान है। जैसे चन्द्रमा उदय और अस्त में एक ही समान रहते हैं उसी प्रकार आप भी। आपके स्वभाव में सुखकाल में न तो हर्ष दिखती है और न मन में दुःख ही दिखता है। वस्तुतः आपके जैसा स्वभाव विधाता द्वारा बनाया ही नहीं गया है। जो राज्य की प्राप्ति पर प्रसन्न नहीं हुआ तथा जो वनवास की उपलब्धि पर दुःखी नहीं हुआ, इस प्रकार हर्ष विषाद दोनों परिस्थितियों में समान, आपके स्वभाव के समान कोई दूसरा संज्ञान में नहीं आता। अरे! जयन्त पर जिसे क्रोध नहीं आया और रावण पर जिसको शत्रुबुद्धि नहीं हुई, हे राघव! जैसा विशिष्ट स्वभाव आपका है ऐसा कोई दूसरा स्वभाव विधाता की सृष्टि के निर्देश में भी नहीं है। हे **गिरिधर** कवि के स्वामी श्रीराघव! आपका स्वभाव सभी प्राणियों में विशिष्ट है और ऐसा स्वभाव त्रिलोकी में किसी का भी नहीं देखा जाता, जैसा आपका है।

गीत संख्या-२८

एतादृक् स्वभावस्त्वया कुतः समालब्धो
हे रघुनन्दन राजन् श्रुत्वा मनस्तत्रैव प्रयाति हे रघुनन्दन राजन्।।१।।
सुखे न प्रसादः क्वापि दुःखे नो विषादो
हे नृपनन्दन राजन् दृष्ट्वा योगी मदं सञ्जहाति।।२।।
राज्ये न प्रसन्नो वनवासे नो विषण्णो
हे जनचन्दन राजन् राकेश इवैकरसो भाति।।३।।
जयन्ते नो क्रोधो नो दशास्ये शत्रुबोधो
हे रिपुगञ्जन राजन् स्थितप्रज्ञ इव प्रतिभाति।।४।।
सदैव कृतज्ञो नैव कदाचित् कृतघ्नो
हे भवभञ्जन राजन् वैरीवन्द्यमानोऽयं विभाति।।५।।
गिरिधरप्रभोरेषोऽद्वितीयः स्वभावो
हे मुनिरञ्जन राजन् ज्ञात्वा चित्ते प्रीतिर्न सम्माति।।६।।

भौमी- हे रघुकुल को आनन्द देने वाले राजन! ऐसा स्वभाव आपने कहाँ से पा लिया? जिसे सुनकर मन वहीं चला जाता है। हे राजाओं को भी आनन्दित करने वाले प्रभु! जिस स्वभाव में सुख के समय न प्रसन्नता देखी गई और न ही दुःख के समय विषाद देखा गया। आपके इस विलक्षण स्वभाव को देखकर योगी भी अपने योग का मद छोड़ देता है। हे भक्तों को शीतल करने वाले महाराज! आपका स्वभाव राज्य-प्राप्ति

की सम्भावना में प्रसन्न नहीं हुआ और वनवास प्राप्त करके दु:खी भी नहीं हुआ। यह तो पूर्णिमा की चन्द्रमा की भाँति उन्नति, अवनति दोनों में ही एक रस सुशोभित होता रहता है। हे शत्रुओं को नष्ट करने वाले राजाधिराज! आपके स्वभाव में जयन्त पर न तो क्रोध आया और न ही उसमें रावण के सम्बन्ध में शत्रु का बोध हुआ। आपका स्वभाव तो स्थितप्रज्ञ की भाँति प्रतीत होता है जो दु:ख सुख दोनों में ही सम रह लेता है। हे भवभय को नष्ट करने वाले राजेन्द्र राम! आपका स्वभाव निरन्तर कृतज्ञ ही रहता है। किसी भी समय किसी भी के प्रति कृतघ्न नहीं रहता। इसलिये आपके शत्रु भी आपके स्वभाव को वन्दन करते हैं। हे मुनियों को आनन्द देने वाले महाराज रघुनाथजी! **गिरिधर** कवि के स्वामी! आप श्रीराम का यह स्वभाव अद्वितीय है। इसे समझकर मेरे मन में आपके प्रति उमड़ी हुयी प्रीति समा नहीं रही है।

गीत संख्या-२९

राघव स्वभावप्रभावौ ते नो कदाचिद् विरुद्धौ।
युगपद्विहितसख्यभावौ ते सर्वदैवानुरुद्धौ।।
एकत्र कौसल्या विश्वरूपदर्शनम्।
अपरत्र बालरूप पय:पानमर्षणम्।।
वत्सलाद्भुतरसानुभावौ ते नैव लोके निरुद्धौ।।१।।
एकत्र ताटकादिनिशिचरसंहार:।
अन्यत्र मुनिसेवाशिलासमुद्धार:।।
कारुण्यशौर्यानुभावौ ते नैव विधिप्रतिषिद्धौ।।२।।
एकत्र शम्भुधनुर्भङ्गे कठोर:।
अपरत्र सीताप्रणये कोमल: किशोर:।।
वज्रकमलसङ्गाविर्भावौ ते नैव नीत्या निषिद्धौ।।३।।
शबरीजटायुर्गतिदानेऽत्युदार: ।
गिरिधरेशो रक्षोवधे कठिनप्रहार:।।
धर्मावुभौ मिथ: सहभावौ नैव विप्रतिषिद्धौ।।४।।
दुष्टनिग्रहाय प्रभाव: प्रयुक्त:।
भक्तानुग्रहाय वै स्वभावो नियुक्त:।
उभौ प्रशमितभवदावौ ते नित्य शुद्धौ प्रसिद्धौ।।५।।

भौमी– हे राघव! आपके स्वभाव और प्रभाव कभी भी एक दूसरे से विरुद्ध नहीं होते। ये दोनों एक साथ मैत्री भाव करके रहते हैं और ये सब प्रकार से एक दूसरे से अनिरुद्ध अर्थात् अनुरोधी होकर एक दूसरे के समर्थक ही रहते हैं। अरे! एक ओर आप माता कौसल्या को विश्वरूप के दर्शन कराते हैं और दूसरी ओर बालरूप में कौसल्याजी का स्तनपय पान करते हैं कि ये परस्पर विरुद्ध वत्सलरस और

अद्‌भुत रस के आप सम्बन्धी अनुभाव लोक में किसी के द्वारा रोके भी तो नहीं जा सकते। एक ओर आप ताड़कादि राक्षसों का संहार करते हैं और दूसरी ओर विश्वामित्र की सेवा और अहल्या का उद्धार। इस प्रकार आपके व्यक्तित्व में परस्पर विरुद्ध होने पर भी करुण रस और वीर रस के अनुभाव विधि प्रसिद्ध नहीं है। अर्थात् रसशास्त्रीय मर्यादा के अनुकूल ही है। एक ओर आप शिव धनुर्भंग में वज्र के समान कठोर दिखते हैं और दूसरी ओर सीताजी के प्रेम-प्रसंग में कमल के समान कोमल किशोराकृति। इस प्रकार आपके स्वभाव में वज्र और कमल के संगम के आविर्भाव अर्थात् प्रकटित हुये ऐश्वर्य, माधुर्य आपके स्वभाव में नीति द्वारा निषिद्ध नहीं हैं। आप शबरी और जटायु को गति देते समय अत्यन्त उदार दिखते हैं और वही **गिरिधर** कवि के स्वामी आप श्रीराघव राक्षसों का वध करते समय कठिन शस्त्रों का प्रहार करते हैं। इस प्रकार निर्वाण और बाण ये दोनों धर्म परस्पर विरुद्ध होते हुये भी आपके यहाँ साथ रहते हैं और विप्रतिषिद्ध नहीं होते अर्थात् कभी एक दूसरे से टकराते नहीं। प्रभो! आप दुष्टों का निग्रह करने के लिये अपने प्रभाव का प्रयोग करते हैं और भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये आपने अपने स्वभाव को नियुक्त कर रखा है। इस प्रकार आपके स्वभाव और प्रभाव ये दोनों ही भक्त की विषयाग्नि को शान्त कर देते हैं। ये नित्य शुद्ध और सर्वप्रसिद्ध हैं।

गीत संख्या-३०

राघव तव चरणरजो यदि चेदुपलब्धं स्यात्।
तदा सत्यं वच्मि प्रभो भाग्यं मम बुद्धं स्यात्।।
आजन्मतोऽहं पापी भगवांश्च पापहारी।
अहमथ पश्चात्तापी भगवांस्त्रितापहारी।।
अवलम्बय मां भगवन् मम जन्म विशुद्धं स्यात्।।१।।
अहमतिसाधनहीनश्त्वं समसाधनदाता।
निर्धनोऽस्म्यतिदीनस्त्वं धनदो जनत्राता।।
स्वीकुरु मां हे स्वामिन् यथा भयं निषिद्धं स्यात्।।२।।
त्वं सेव्योऽहं दासस्त्वं नाथोऽहमनाथः।
दीनानाथ कृपादृष्ट्या भूयासंसुसनाथः।।
चेतय मान्तर्यामिन् मम दवं न सिद्धं स्यात्।।३।।
करुणाकर सीतावर वात्सल्यमहासागर।
गिरिधरचातकजलधर मां पाहि धनुर्नागर।।
अवलोकय हरिगामिन् मम भवं प्रसिद्धं स्यात्।।४।।

भौमी- हे राघव! यदि आपकी चरणधूल मुझे मिल जाती तो हे प्रभो! मैं सत्य ही कह रहा हूँ कि मेरा भाग्य जग जाता। हे भगवन्! मैं जन्म से पापी हूँ और आप पाप हरने वाले हैं और मैं पश्चाताप करने वाला हूँ और आप तीनों ताप हरने वाले हैं। हे भगवन्! मुझे अवलम्ब दीजिये। जिससे मेरा जन्म शुद्ध हो जाये। मैं अत्यन्त साधनहीन हूँ और आप सभी साधनों के दाता हैं और मैं अत्यन्त दीन, निर्धन हूँ। आप धन देने वाले

कुबेर और भक्तों के रक्षक हैं। हे स्वामी! आप मुझे स्वीकार कीजिये, जिससे मेरे भय का निषेध हो जाये अर्थात् वह कभी न आये। आप सेव्य हैं, मैं सेवक हूँ, आप नाथ हैं, मैं अनाथ हूँ, हे दीनानाथ! आपकी कृपादृष्टि से मैं सनाथ हो जाऊँ, ऐसा ही आशीर्वाद दीजिये। हे अन्तर्यामी! मेरा चिन्तन कीजिये। अथवा मुझे चिन्तन की प्रेरणा दीजिये, जिससे मेरा यह विषयवन सिद्ध न हो सके अर्थात् फूल-फल न सके। हे करुणा के सागर! हे सीतावर! हे वात्सल्य के महासागर! हे **गिरिधर** कविरूप चातक के स्वाति के मेघ! हे धनुर्विद्या में अत्यन्त निपुण श्रीराम! मेरी रक्षा कीजिये। हे हरिगामी अर्थात् 'हरि' शब्द के वाच्य वानर श्रेष्ठ हनुमानजी की पीठ पर आरूढ़ होकर समरयात्रा करने वाले प्रभु श्रीराम! एक बार मेरी ओर निहारिये जिससे मेरा जन्म लेना प्रसिद्ध अर्थात् विख्यात हो जाये।

विशेष- यह गीत बहुप्रचलित सुगम संगीतीय ढाल में निबद्ध है- इसके बोल हैं-

''राघव तेरे चरणों की मुझे धूल जो मिल जाय।''

गीत संख्या-३१

चित्रकूटकाननविहारिन् मयि द्रव हे धनुर्धारिन्।।
करसरसिजधृतकार्मुकसायक भारतभारतभाग्यविधायक।
रघुनायक सुखकारिन् मयि द्रव हे धनुर्धारिन्।।१।।
मन्दाकिनीपुलिनमहिमण्डन वसुन्धराधर भारविखण्डन।
खलखण्डन भयहारिन् मयि द्रव हे धनुर्धारिन्।।२।।
मैथिलीमानसहंसकृपालो भास्करवंशावतंसदयालो।
जनोत्तंशमलदारिन् मयि द्रव हे धनुर्धारिन्।।३।।
भरतभावसरसीरुहमधुकर निजजनचातकनूतनजलधर।
गिरिधरविभयविदारिन् मयि द्रव हे धनुर्धारिन्।।४।।

भौमी- हे चित्रकूट कानन में विहार करने वाले धनुर्धारी श्रीराम! मुझ पर आप पिघल जाइये। अपने करकमल में धनुष-बाण धारण करने वाले ज्ञान में निरत, भारत के भाग्य विधाता, हे रघुनायक! हे सुखकारी! धनुर्धारी प्रभु! मुझ पर पिघल जाइये। हे मन्दाकिनी तट और पृथ्वी के अलंकार! वसुंधरा को धारण करने वाले और पृथ्वी का भार नष्ट करने वाले, खलों को दण्ड देने वाले प्रभु! मुझ पर पिघल जाइये। हे मैथिलीजी के मन-मानस सरोवर के हंस, कृपालु, सूर्य वंश के आभूषण दयालु! हे भक्तों के अलंकार, मलों को विदीर्ण करने वाले श्रीराम! मुझ पर कृपा कीजिये। हे श्रीभरत के भाव कमल के भ्रमर और अपने भक्त रूप चातकों के नवीन मेघ, **गिरिधर** कवि के भय को विदीर्ण करने वाले, चित्रकूट वन विहारी धनुर्धर श्रीराम! मुझ पर द्रवित हो जाइये।

गीत संख्या-३२

राम राघव राम राघव राम राघव पाहि माम्।।
घोरभवपाथोधिमग्नं पतितपावन पापलग्नम्।

खलमनोभवपाशनिघ्नं कलितलाघव त्राहि माम्।।१।।
परमपामरपापपीनं विषयवरुणालयकुमीनम्।
विषमभवभयदावदीनं गदितगौरव याहि माम्।।२।।
सन्मुखादाकर्ण्य दीव्यं भक्तवश्यस्वभावभव्यम्।
शरणमायातं सुनव्यं रघुपते मा दाहि माम्।।३।।
प्रणतपालक जनं पालय दीनबन्धुयशो निभालय।
चरणशरणागतं मालय गिरिधरं सम्माहि माम्।।४।।

भौमी- हे राम! हे राघव! हे रघुकुल में प्रकट श्रीराम! हे योगियों के हितैषी! सम्पूर्ण जीवों के मंगलदाता! मेरी रक्षा कीजिये। हे पतितपावन! हे हस्तलाघव सम्पन्न राघवजी। घोर संसार सागर में डूबे हुये पाप के कीचड़ में फंसे हुये, दुष्ट काम के पाश-बन्धन के अधीन मुझ पापी की रक्षा कीजिये। हे प्रसिद्ध गौरव वाले राघव! अत्यन्त निकृष्ट पाप से स्थूल, विषयरूप महासागर की कुत्सित मछली और अत्यन्त भयंकर संसार की अग्नि से जले हुये मुझ नीच के पास आप पधारें। हे रघुकुल के स्वामी! संतों के मुख से लोकोत्तर, नवीन, भक्त के वश में रहने वाले! आपका सत्य स्वभाव सुनकर शरण में आये हुये मुझ दीन को अपने ऐश्वर्य कृपाण से मत काटिये। हे प्रणतों को पालने वाले प्रभु! हे दीनबन्धो! हे 'मा' अर्थात् सीतारूपिणी आह्लादिनी-शक्ति के निवास स्थान प्रभु श्रीराम! मुझ जन का पालन कीजिये। दीनबंधु रूप यश को सम्भालिये। आपके चरणों की शरण में आये हुए मुझ गिरिधर कवि को भी अपने चरणों में समाहित कर लीजिये।

विशेष- यह गीत रूपक ताल और भैरवी राग में निबद्ध है।

गीत संख्या-३३

राम राघव राम राघव राम राघव रक्ष माम्।।
कलिकरालकुकालभीतं सकलमङ्गलसौख्यवीतम्।
दुरितमोहमलैः परीतं पापिनं परिरक्ष माम्।।१।।
जन्ममरणजराभयार्तं कामवामकसाभयार्तम्।
भव प्रघोरमहामयार्तं तापिनं संरक्ष माम्।।२।।
भवद्गुरुगोत्रं प्रलीनं पापपङ्के दीनदीनम्।
उभयथा लोचनविहीनं चरणमितमवगच्छ माम्।।३।।
पाहि पाहि महाकृपालो त्राहि त्राहि जनं दयालो।
गिरिधरं कलये धनुर्धर पापिने मा यच्छ माम्।।४।।

भौमी- हे रामराघव! मेरी रक्षा कीजिये। रक्षा कीजिये। कराल कलिकाल से भयभीत सभी मंगलों और सुख से रहित और दोष-मोह तथा मलों से व्याप्त मुझ पापी की चारों ओर से रक्षा कीजिये। जन्म-मृत्यु और वृद्धावस्था के भय से व्याप्त और नीच काम के कोड़े के भय से और संसार के घोर महान रोगों से विकल तीनों तापों से तपे हुए मुझ आतुर व्यक्ति की रक्षा कीजिये। आपके गुरुदेव वसिष्ठ के गोत्र में जन्मे हुए पाप के

दल-दल में फँसे हुए दोनों प्रकार के नेत्रों से विहीन मुझ साधक को अपने चरण के समीप आया हुआ जानिये। हे महाकृपालु! बचाइये, बचाइये। हे दयालो! मुझ भक्त की रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। हे धनुर्धर श्रीराम! मुझ कवि **गिरिधर** को इस पापी कलिकाल के हाथ में मत सौंपिये।

विशेष- यह गीत भी रूपक ताल और राग भैरवी में निबद्ध है।

गीत संख्या-३४

जगति को राघवसदृश उदारः।
को रघुवीरसमो लोकेऽकारणकरुणाकूपारः।।
यां योगिनो गतिं स्पृहयन्ते यतयस्तप्त्वा प्राणम्।
तत्सङ्कुचन् खगाय शवर्यै राति हरिर्निर्वाणम्।।१।।
या रावणेन शिवतः सम्पन्मूर्धार्पणेन प्राप्ता।
सा रामेण विभीषणाय लज्जयार्पिता पर्याप्ता।।२।।
यच्चरणामृतमजोऽर्चयन् निजजलपात्रे कणमात्रम्।
तत्पीतं नाविकेन नूनं यावत्तृप्तिविमात्रम्।।३।।
यदि वाञ्छसि भवखेदच्छेदं भवभवविभवविरामम्।
तदानन्यगतिको भज गिरिधर भक्त्या सीतारामम्।।४।।

भौमी- इस संसार में श्रीराम के समान कौन उदार है? इस लोक में श्रीरघुवीर के समान बिना कारण करुणा का सागर कौन है? जिस मोक्ष गति के लिये अपने प्राणों को तपाकर योगी, यति स्पृहा करते रहते हैं, उसी मोक्ष को भगवान श्रीराम शबरी और जटायु को संकुचित होकर दे देते हैं। जो सम्पत्ति रावण ने दशों मस्तक देकर शिवजी से प्राप्त की थी वही और उससे भी पर्याप्त सम्पत्ति श्रीराम के द्वारा संकोचपूर्वक विभीषण को दी गयी। प्रभु का जो चरणामृत ब्रह्माजी ने अपने कमंडल में केवल एक बूँद इकट्ठा किया था, प्रभु का वही चरणामृत केवट ने मात्रा से रहित अर्थात् पच्चीसों कठोते भर-भरकर अपनी प्यास की तृप्ति पर्यन्त पिया। हे कवि **गिरिधर**! यदि तुम संसार के खेद का विनाश चाहते हो और यदि तुम संसार में उत्पन्न विकृत पदार्थों का अभाव चाहते हो तब तो एकमात्र श्रीराम को अपना आश्रय मानकर अनन्य गति से अनन्य प्रेमाभक्ति से श्रीसीतारामजी को भजो।

गीत संख्या-३५

अर्थ ईप्स्यते न धर्मः काम ईप्स्यते।
कौसल्याकुमारो मह्यं राम ईप्स्यते।।
भगवाननाथनाथो दीनहितकारी।
सदेप्स्यते विप्रवधू पापतापहारी।।
जानकीजीवनः पूर्णकाम ईप्स्यते।
कौसल्याकुमारो मह्यं राम ईप्स्यते।।१।।

सत्यसन्धो दयासिन्धुर्वीरव्रतधारी।
सदेप्स्यते चित्रकूटकाननविहारी।।
मन्दाकिनीललितललाम ईप्स्यते।
कौसल्याकुमारो मह्यं राम ईप्स्यते।।२।।
नीलनीलधरश्याम राम मह्यं ईप्स्यते।
शक्रनीलमणिश्याम राम मह्यं ईप्स्यते।।
परब्रह्म भवभयविराम ईप्स्यते।
कौसल्या कुमारो मह्यं राम ईप्स्यते।।३।।
कोटिमन्मथाभिरामरामो मह्यं ईप्स्यते।
लोकलोचनाभिरामो राम मह्यं ईप्स्यते।।
गिरिधरगीतसीताभिराम ईप्स्यते।
कौसल्या कुमारो मह्यं राम ईप्स्यते।।४।।

भौमी-

अर्थ चाहिये न धर्म काम चाहिये।
कौसल्या कुमार मुझे राम चाहिये।।
अशरण, अनाथ, नाथ, दीन हितकारी।
चाहिये विप्र वधु पाप शाप हारी।।
जानकी जीवन पूर्ण काम चाहिये।।१।।कौसल्या.
सत्य-सन्ध, दया सिन्धु वीर व्रत धारी।
चाहिये चित्रकूट कानन बिहारी।।
मन्दाकिनी ललित ललाम चाहिये।।२।।कौसल्या.
इन्द्र-नील-मणि श्याम राम मुझे चाहिये।
नील-नीरधर श्याम राम मुझे चाहिये।
परब्रह्म भवभय विराम चाहिये।।३।।कौसल्या.
कोटिमन्मथाभिराम राम मुझे चाहिये।
लोकलोचनाभिराम राम मुझे चाहिये।।
गिरिधर गीत सीताभिराम चाहिये।।४।।कौसल्या.

विशेष- यह गीत राग-भीमपलासी एवं दादरा ताल में निबद्ध है।

गीत संख्या-३६

मनो भज मे सन्ततं सीतारामम्।
मनो भज मे शाश्वतं सीतारामम्।।

कोटिकोटिरतिकन्दर्पमोहनम् ।
चपलाजलधरगौरश्यामम् ।।
मनो मन मे सुन्दरं सीतारामम्।।१।।
जनरञ्जनभवभञ्जनचरितम् ।
भवभयविषमयविषयविरामम् ।।
मनो वर मे बन्धुरं सीतारामम्।।२।।
करतलधृतसायकवरचापम् ।
सततं पूरितसज्जनकामम्।।
मनो नम मे वत्सलं सीतारामम्।।३।।
नीरजनयननं मङ्गलचयनम्।
करुणं सुजनसुखदपरिणामम्।
मनो जप मे निष्कलं सीतारामम्।।४।।
गीतरामायणं गीतसीताभिरामम्
सुरगिरि गिरिधरगिराभिरामम्।
मनः स्मर मे निर्मलं सीतारामम्।।५।।

भौमी- हे मेरे मन! निरन्तर श्रीसीतारामजी का भजन करो। हे मेरे मन! शाश्वत सीतारामजी का भजन करो। करोड़ों-करोड़ों रति-कामदेवों को मोहित करने वाले, बिजली और मेघ के समान गौर-श्यामल सुन्दर श्रीसीताराम को मेरे मन निरन्तर मनन करो। ओ मेरे मन! जिनका चरित्र भक्तों को आनन्द देने वाला और भव-भय को नष्ट करने वाला है, ऐसे संसार का भय-विषस्वरूप विषयों को विराम देने वाले सबके बन्धु श्रीसीतारामजी को वरण करो। अरे मेरे मन! हाथ में सुंदर धनुष-बाण लिये हुये सदैव सज्जनों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले प्राणिमात्र पर वात्सल्य करने वाले सीतारामजी को नमन करो। अरे मेरे मन! कमल नेत्र मंगलों का चयन करने वाले परिणाम में सज्जनों को सुखद पाप की कलाओं से रहित श्रीसीताराम का जप करो। हे मेरे मन! इस प्रकार गीतरामायण तथा उपनाम गीतसीताभिरामम् के प्रतिपाद्य-देववाणी में प्रयुक्त **गिरिधर** कवि की वाणी को आनन्द देने वाले ऐसे श्रीसीतारामजी को स्मरण करो।

''श्रीसीताराम जी की जय''

विश्रामश्लोकः

श्रीसीतारामपादाम्बुजरसरसिके नाप्तबोधेन दिव्यं
नव्यं गीतैः परीतं वसुखखहरिभिः प्रेमभक्त्येकसारम्।
गीतं श्रीदेववाण्यां गिरिधरकविना गीतरामायणं तत्
नित्यं श्रीरामभक्तिं दिशतु सुकृतिनां गीतसीताभिरामम्।।१।।

भौमी- श्रीसीताराम जी के श्रीचरणकमल के प्रेम रस के रसिक और सीताराम जी की कृपा से रामायण रचना सम्बन्धी अलौकिक ज्ञान प्राप्त किये हुये मुझ श्रीचित्रकूट तुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य महाकवि स्वामी रामभद्राचार्य **गिरिधर** कवि द्वारा एक हजार आठ गीतों से युक्त दिव्य और नवीन संस्कृत भाषा में गाया हुआ प्रेम-भक्तिरूप एकमात्र तत्व से युक्त 'गीतरामायणम्' गीतसीताभिराम नामक यह संस्कृत महाकाव्य सुकृति श्रीवैष्णव जनों को सदैव श्रीरामभक्ति प्रदान करता रहे।

इति

श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरमहाकविजगद्गुरुरामानन्दाचार्यस्वामिरामभद्राचार्यगिरिधरकविप्रणीते गीतरामायणे गीतसीताभिरामे संस्कृतगीतमहाकाव्ये उत्तरकाण्डे गीतराजाधिराजो नाम द्वितीयः सर्गः।

।।उत्तरकाण्डं सम्पूर्णम्।।

।।सम्पूर्णञ्च गीतरामायणम्।।

इस प्रकार श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर महाकवि जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य गिरिधरकवि द्वारा विरचित गीतरामायण 'गीतसीताभिराम' नामक संस्कृत गीतमहाकाव्य के उत्तरकाण्ड में गीतराजाधिराज नामक द्वितीय सर्ग सम्पन्न हुआ और गीतरामायणम् नामक यह महाकाव्य भी संपन्न हुआ।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु।।

।।श्रीसीतारामार्पणमस्तु।।

।।श्रीः।।

।।नमो राघवाय।।

।।अथ गीतरामायणस्य नीराजनम्।।

भक्त्या नीराजये गीतरामायणम्,
पापसन्त्रासनं पुण्यपारायणम्।।
गीतसीताभिरामं परमशोभनम्,
प्रोल्लसत् सीतारामं सतां लोभनम्,
निर्मलं निष्कलं प्रेमपारायणम्।।१।।
देवगव्या सुगव्यं शुभं सुन्दरम्,
नव्यनव्यञ्च भव्यं भवाब्धिमन्दरम्,
जगन्मङ्गलायनं धर्मपारायणम्।।२।।
सीतारामयशोमहितरामचरितसागरम् ,
अष्टोत्तरसहस्त्रगीतमयं प्रेमनागरम्,
मञ्जुमारुतिमहं मर्मपारायणम्।।३।।
भारतोद्गीतलोकध्वनिस्वादृतम् ,
शतपदेनेव सुमनः सुमध्वाहृतम्,
कविगिरिधरेण कृतं भक्तिपारायणम्।।४।।

भौमी– मैं भक्तिपूर्वक गीतरामायण की आरती कर रहा हूँ जो पाप का नाशक और पुण्य का पारायण है। जिसमें सीतारामजी निरन्तर विराज रहे हैं ऐसे सज्जनों को लुभाने वाले प्रेमपारायण स्वरूप, निर्मल, निर्दोष, परमसुन्दर, गीतसीताभिराम गीतरामायण की मैं आरती करता हूँ। देवभाषा रूप कामधेनु के गव्य कल्याणकारी, सुन्दर, अत्यंत दिव्य, नवीन, भवसागर के लिये मन्दराचल स्वरूप, विश्व के मंगल के आयतन, धर्म पारायण स्वरूप गीतरामायण की मैं आरती कर रहा हूँ। श्रीसीतारामजी के यश से सुशोभित श्रीरामजी के चरित्रों के महासागर एक हजार आठ गीतों से युक्त भगवद्प्रेम में निपुण श्रीहनुमानजी को महोत्सव प्रदान करने वाले और मार्मिक तत्वों के पारायण स्वरूप गीतरामायण की मैं भक्तिपूर्वक आरती करता हूँ। भारत में प्रसिद्ध लोक ध्वनियों में भ्रमर द्वारा पुष्पों में मधु की भाँति **गिरिधर** कवि द्वारा रचित भक्ति–पारायणस्वरूप गीतरामायण की मैं आरती करता हूँ।

।।नमो राघवाय।।